ISSUE-07 / Vol.-25 / Sep.-Dec., 2019 ISSN NO. 2319-5908

An International Multidisciplinary Peer Reviewed Quarterly Journal

SHODH SANDARSH

Education, Literatura, History, Art, Culture, Science, Commerce etc.

Editorial Managerable Office

Vijay Pratap Tiwari
539-A, Bukhshi Khurd, Daraganj, Prayagraj-211006
Email : shodhsandarshalld@gmail.com
Website : www.shodhsandarsh.com
Mobile : 09415627149, 09450586526, 09015465436

Publisher & Printer

Vagisha Prakashan, Old Jhunsi, Kohna, Jhunsi, Prayagraj
Email : vijaykumarmishra1976@gmail.com

SHODH SANDARSH

Education, Literatura, History, Art,
Culture, Science, Commerce etc.

सम्पादकीय

शिक्षा समाज की रीढ़ होती है। शिक्षा राष्ट्र की धमनियों में विचार और बौद्धिकता के रूप में प्रवाहित होती है। कहा गया है कि जिस प्रकार का अन्न मनुष्य खाता है उसी प्रकार उसका मस्तिष्क निर्मित होता है। ठीक उसी प्रकार, किसी भी राष्ट्र का समाज शिक्षा के अनुकूल ही निर्मित होता है। यदि बालकों को राष्ट्र की संस्कृति के अनुरूप गुणवत्तापूर्ण और उचित शिक्षा का अवसर नहीं प्राप्त होगा तो समाज में असमानता, अन्याय और भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिलेगा। भारत में प्राचीन काल से ही शिक्षा राज्य का विषय नहीं रहा है। शासन-सत्ता का हस्तक्षेप शिक्षा में बहुत कम रहा है लेकिन शासन सत्तायें शिक्षा और शिक्षकों के सामने नतमस्तक रहे हैं। उस समय के गुरुओं और शिक्षकों का शैक्षिक उद्देश्य नैतिक, व्यावहारिक और जीवन मूल्यों से अनुप्राणित रहा है। यद्यपि समय-समय पर शासन और सत्तायें कुछ-न-कुछ सहयोग उनको अवश्य करती थीं। लेकिन प्राचीन शिक्षा व्यवस्था राज्याश्रय से दूर स्वावलम्बी ढंग से राष्ट्र के नागरिकों का निर्माण करती थीं। वे छात्रों में मुख्य रूप से स्वावलम्बन, नैतिकता और जीवन मूल्य का गुण आरोपित करती थीं जिससे शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक रूप से स्वस्थ रहकर छात्र कर्तव्यों का निर्वहन करते हुए समाज और राज्य के उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। मध्यकाल में भारतीय शिक्षा व्यवस्था को पूरी तरह से नष्ट कर दिया गया। क्योंकि भारतीय शिक्षा व्यवस्था मुख्य रूप से मन्दिरों, मठों, गुरुकुलों से संचालित होती थीं। यद्यपि उस समय नालन्दा, विक्रमशिला, ओदन्तपुरी जैसे विश्वविद्यालय भी थे। मुस्लिम आक्रमणकारियों ने वास्तव में सिर्फ भारतीय धर्म और आध्यात्मिकता ही आक्रमण नहीं किया वरन् यहाँ की शिक्षा व्यवस्था को तहस-नहस कर डाला क्योंकि शिक्षा मन्दिरों, मठों जैसे स्थानों पर से संचालित होती थी। नालन्दा, ओदन्तपुरी जैसे विश्वविद्यालय और बड़े पुस्तकालयों को बख्तियार खिलजी ने बुरी तरह से नष्ट कर दिया और पुस्तकालयों में आग लगवा दी। ऐसे कई आक्रमण किये गये जिसने भारतीय धर्म ही नहीं बल्कि यहाँ की शिक्षा व्यवस्था जो कि अध्यात्म, दर्शन और धार्मिक सूत्रों से जुड़ी हुई थी। सब कुछ एक निश्चित उद्देश्य के कारण मुस्लिम राज्य के विस्तारवादी नीति के आधार पर ही किया गया। मध्यकाल में ही भारतीय शिक्षा व्यवस्था पूरी तरह से ध्वस्त हो चुकी थी जिसके कारण अंग्रेजों ने आधुनिक काल में अपने हितों के संदर्भ में नई शिक्षा व्यवस्था की स्थापना की जिसको स्थापित करने में मैकाले की सबसे बड़ी भूमिका रही। इतिहासकारों, शिक्षाशास्त्री आधुनिक शिक्षा व्यवस्था के लिए मैकाले को ही दोष देते हैं लेकिन मध्यकाल में भारतीय शिक्षा को मुस्लिम आक्रमणकारियों द्वारा ध्वस्तीकरण की तरफ उनका बिल्कुल ध्यान नहीं जाता। स्वतंत्रता के पश्चात् भी अंग्रेजी शासन की मैकालेवादी शिक्षा व्यवस्था का ढांचा भारत में चलता रहा। भारतीय शिक्षा व्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन नहीं हुए। यद्यपि समय-समय पर कई आयोग, समितियों, आन्दोलन, संस्थाओं, एन.ई.पी., एन.सी.एफ. करिकुलम आदि द्वारा भारतीय शिक्षा व्यवस्था को समयानुकूल व्यापक और समावेशी बनाने का निरन्तर प्रयास किया गया फिर भी यह रोजगार उन्मुख और गौरवशाली नहीं बन पायी तथा अंग्रेजियत के भ्रम को नहीं तोड़ पाई। प्राचीन काल में जहाँ शिक्षा व्यवस्था शासन से दूर रहकर अधिक कल्याणकारी और स्वावलम्बी नागरिक का निर्माण करती थी जो कि आधुनिक शिक्षा प्रणाली में सम्भव नहीं है। विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक कारणों से शिक्षा व्यवस्था में शासन को एक उचित दखल देना आवश्यक है। अन्यथा समाज में शैक्षिक भेदभाव उत्पन्न हो जाएगा। ऐसा देखने को भी मिल रहा है कि उच्च वर्ग के लोग कोचिंग व बड़े-बड़े स्कूलों में अपने बच्चों को पढ़ाकर मध्यम वर्ग और निम्न वर्ग के छात्रों से प्रतिस्पर्धा में आगे हो जा रहे हैं। उनके प्रतिउत्तर में सरकारी विद्यालय साधन और गुणवत्ता में पीछे हो जा रहे हैं। शासन-व्यवस्था का नकारात्मक दृष्टिकोण और उदासीनता मध्यम और निम्न वर्ग के घरों में पढ़ने वाले

सरकारी विद्यालय के छात्रों को समाज में पिछले पायदान पर खड़ा कर दे रहे हैं। जिस मात्रा में शिक्षा में जी.डी.पी. का निवेश होना चाहिए वह नहीं हो पा रहा है। वह दाल में नमक के बराबर हो रहा है। जबकि जरूरत यह है कि दाल के बराबर जी.डी.पी. का निवेश हो क्योंकि निम्न वर्ग और मध्यम वर्ग के लिए यही दाल ही सबसे पौष्टिक होती है। भारत की लगभग 80 प्रतिशत आबादी इन्हीं वर्ग से है। भौतिक और मानवीय संसाधनों पर जो व्यवस्था द्वारा निवेश होना चाहिए उससे सभी सरकारें कतराती रही हैं। शिक्षकों के प्रशिक्षण का नितान्त अभाव रहता है। मात्र खाना पूर्ति से ही काम चलाया जाता है। इसका परिणाम यह हुआ कि सरकारी विद्यालय और शिक्षक का पहले जैसा सम्मान नहीं रहा।

ऐसी बहुत सी समस्याएँ और चुनौतियाँ हैं जिन पर सरकार और समाज के लोगों के ध्यान देने की आवश्यकता है। इधर कुछ दिनों से राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 का शोर सुनायी पड़ रहा है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 का ड्राफ्ट देखने पर बहुत सी उम्मीद जगती है और ऐसा लगता है कि अब राष्ट्रीय शिक्षा नीति वास्तव में भारतीय राष्ट्र के प्राचीन जीवन और मूल्यों के अनुरूप निर्मित होगी। फिर भी एक शंका मन में उठती है क्योंकि शैक्षिक नीतियाँ हमेशा विभिन्न आयोगों के सुझाव पर बेहतर बनती हैं। किन्तु जो सिद्धान्त रहे वह व्यवहार के धरातल पर नहीं उतर पाये और उसका दुष्परिणाम सामान्य वर्ग के बच्चों को भुगतना पड़ रहा है जिसके कारण समाज और राष्ट्र भी सुदृढ़ नहीं हो पा रहा है। नई शिक्षा नीति में सरकार और समाज दोनों को ही इस बात का ध्यान रखना होगा कि सिद्धान्त और व्यवहार में एकता किस प्रकार स्थापित हो जिससे कि शिक्षा व्यवस्था में अपेक्षित परिणाम निकल सके। बार-बार शासन का मुंह देखना उचित नहीं है। अपने बच्चों के भविष्य के लिए सभी नागरिकों को सामने आना होगा। इस विमर्शकारी और निर्माणकारी शैक्षिक विषय पर सभी को एकजुट प्रयास करना होगा।

सम्पादक

CONTENT

Sanskrit

Hindi

History

Sociology

Education

Geography

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Sanskrit : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page 1-5

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

युधिष्ठिर विजय महाकाव्य में दार्शनिक चेतना का विश्लेषणात्मक अध्ययन

*विजय कुमार यादव**

*डॉ. संगीता अगवाल***

***सारांश**–भारतवर्ष में प्राचीनकाल से दार्शनिक चिन्तन की परम्परा प्रचलित रही है। महाकवि वासुदेव कृत युधिष्ठिर विजय महाकाव्य में षड्दर्शन के सभी पक्षों का प्रतिबिम्ब देखने को मिलता है। इस महाकाव्य में सांख्य दर्शन के सत्व, न्याय वैशेषिक के 12 प्रमेयों, वेदान्त और मीमांसा के ब्रहमसूत्र, नास्तिक दर्शन में चार्वाक के मृदु सिद्वान्तों एवं वार्हस्पत्य सूत्र, भाग्यवाद, जैन दर्शन के नय सिद्वान्तों तथा बौद्ध दर्शन के चार आर्य सत्य, पूजा खण्डन आदि का वर्णन यत्र–तत्र परिलक्षित होता है। युधिष्ठिर विजय महाकाव्य में सारभूत तात्विक चिन्तन आदि दार्शनिक चेतनाएं प्रस्फुटित हैं।*

***शब्दकुन्ज**– महाकाव्य, दार्शनिक चेतना, विश्लेषणात्मक, वाङमय आदि।*

प्रस्तावना–दर्शन शब्द की इस व्युत्पत्ति का तात्पर्य है कि जिसके द्वारा देखा जाये उसे दर्शन कहते हैं। प्रश्न उठता है कि क्या देखा जाय? सत्यभूत तात्विक स्वरूप का दर्शन ही मुख्यतः परम उद्देश्य रहा है। चाहे जीवात्मा विषयक विचार हो या दृश्यमान जगत् विषयक विचार हो, सृष्टि अवधारण को अर्थात् चेतन अचेतन की बात हो या सांसारिक कर्तव्य की बात हो अर्थात् जीवन मुक्ति के साधन का प्रश्न हो तो आदि का सारभूत एवं तात्विक चिन्तन ही दर्शन का मुख्य क्षेत्र रहा है।

पाश्चात्य विचारकों ने इसे फिलासफी की संज्ञा दी है। यह शब्द 'फिलास' और 'सोफिया' नामक दो ग्रीक शब्दों के सम्मिश्रण से बना है जिसका अर्थ है–विद्या के प्रति प्रेम फिलासफी क्षेत्र के अन्तर्गत पहले विज्ञान भी था सम्प्रति पाश्चात्य देशों में दर्शन और विज्ञान पृथक–पृथक हो गये हैं।

विषय वस्तु–भारतवर्ष में प्रायः बौद्धकाल में दार्शनिक चिन्तन की धारा प्रचुर रूप में प्रवाहित हुई बौद्ध तथा जैन धर्मों के विप्लव ने भारतीय चिन्तन धारा के क्षेत्र में एक ऐतिहासिक एवं संस्मरणीय युग का निर्माण किया। महान बौद्ध विचारकों के तार्किक बुद्धि ने ही अन्य दार्शनिक भावों के खण्डनात्मक समालोचना का वातावरण तैयार किया वास्तविक और जिज्ञासा भावों से प्रादुर्भूत संशयवाद उसको स्वाभाविक पृष्ठभूमि पर स्थापित करने में सहायक होता है और इसका गूढ़ अध्ययन ही उसके परिणाम में दार्शनिक कुतूहल के साथ जिज्ञासा को जन्म देता है। इसी गूढ़ जिज्ञासा के अन्वेषणार्थ पृष्ठभूमि के कारण भारतीय षड् आस्तिक दर्शनों का जन्म हुआ और इसके बाद इनका विश्लेषण शुष्क से शुष्कतर होता चला गया और अपने विचारों की पुष्टि में तार्किक प्रमाणों का आश्रय तद्वत दार्शनिक प्रतिस्थापकों ने लिया। इस समय तक दर्शन का समीक्षात्मक स्वरूप उतना महत्वपूर्ण हो गया कि जितना अभी तक उसका प्रकल्पनात्मक पक्ष था।

---

* *शोध छात्र (संस्कृत विभाग), चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ (उ.प्र.)*

** *विभागाध्यक्ष (संस्कृत विभाग), आर्य कन्या पी.जी. कालेज, हापुड (उ.प्र.)*

(अ) युधिष्ठिर विजय महाकाव्य में वर्णित दार्शनिक प्रतिमान—चिन्मय जगत् में एकमात्र तत्व है ''परम शिव।'' वह चित् है सभी चिन्तय पदार्थ उससे ही आविर्भूत होते हैं। और पुनः उसी में विलीन हो जाते है। सृष्टि तो उनका उन्मीलन मात्र है—

अन्तः स्थितवतामेव घटते बहिरात्मना[1]

उन्मीलनम् अवस्थितस्येव प्रकटीकरणम्[2]

आस्तिक दर्शन—चिन्तनशील मानव भारतीय मनीषा सदैव अध्यात्म की ओर उन्मुख रही है, इसलिए अध्यात्म चिन्तन और मानव विकास में अविच्छिन्न सम्बन्ध रहा है यदि विश्व के समस्त वाङ्मय पर दृष्टिपात करें तो प्राचीन भारतीय वाङ्मय के नासदीय सूक्त के प्रणयन काल से ही अध्यात्मिक प्रवृत्ति के बीजांकुर संवर्धित होने लगे थे—

को अदा वेह कइह प्रवोचत् कृत आजाता कृत इयंविसृष्टिः।[3]

इस विराट ब्रह्माण्ड के असंख्य उपादेय पदार्थों के समक्ष जीवन लक्ष्य क्या है? इसका सृष्टा कौन है मनुष्य के अस्तित्व का उद्देश्य क्या है? जीवन यापन के सुष्ठु मूल्यों का स्वरूप क्या है? नैतिक मूल्यों के अवधारणा की प्रासंगिक व्यवहारिकता क्या है? प्रभृति प्रश्नों का उत्तर मानव मन को कोलाहल पूर्ण तथा जिज्ञासा युक्त बना देता है और यहीं से उत्पन्न होता है अध्यात्मिक चिन्तन दर्शनशास्त्र का जन्म भी इस भीषणतम् ऊहापोहों के मध्य ही हुआ है। शास्त्रों का अवलोकन इसी प्रसंग में विभिन्न मनीषियों साधु सन्तों के द्वारा प्रारम्भ से ही किया जा रहा है।

फिर भी समस्त शास्त्राध्ययनों को दो स्थूल भागों में समविभक्त किया गया है—दर्शनशास्त्र में ज्ञाता का अध्ययन होता है जबकि अन्य शास्त्रों में ज्ञेय का अध्ययन किया जाता है। दर्शनशास्त्र का प्रतिपाद्य है विषयी जबकि अन्य शास्त्र के प्रतिपाद्य हैं—विभिन्न प्रमाता अथवा ज्ञाता का स्वरूप बोध ही परम पुरुषार्थ है। सम्यक् दर्शन प्राप्त होने पर कर्म मनुष्य को बन्धन में नहीं डाल सकते जिनको यह तत्व ज्ञान नहीं है वे संसार के माया मोह में निबद्ध हो जाते हैं—

सम्यक् दर्शनसम्पन्नः कर्मभिः न निबद्धयते।

दर्शनेन विहीनः तु संसार प्रतिपाद्यते।।[4]

जीवन लक्ष्य को समझने के लिए नितान्त आवश्यक है दर्शनों का गूढ़ गहनतम परिशीलन है क्योंकि दर्शन का उद्देश्य न केवल मानसिक कौतूहल की निवृत्ति है अपितु मानव का सर्वांगीण विकास पद्धति को सम्यक् प्रतिबोधित करना मनुष्य का क्षणभंगुर शरीर है तथापि इसके माध्यम से अध्यात्मिक साधना करके देश कालातीत शाश्वत शान्ति और अखण्डानन्द की अवस्था प्राप्त कर सकता है। अस्तु साधनभूत मानव शरीर दुर्लभ धन सम्पत्ति है—

दुर्लभों मानसो देहो देहिनाम क्षणभंगुरः।।[5]

आत्मानुसन्धित्सु ऋषि प्रवर के दीर्घकाल तक जिन सुचिन्तित उदात्त विचारों के कारण भारतभूमि में अनेक दार्शनिक विधाओं का प्रादुर्भाव हुआ उनमें आस्तिक षट् दर्शन और नास्तिक चार्वाक (लोकायत) जैन और बौध सम्मिलित हैं।

प्रायः आस्तिक का अर्थ ईश्वरवादी दर्शनों से है और नास्तिक का अर्थ अनीश्वर वादी प्राचीन दार्शनिक वाङ्मय में आस्तिक का अर्थ वेदानुयायी तथा नास्तिक का अर्थ वेद विरोधी है। इसप्रकार मीमांसा, वेदान्त सांख्ययोग न्याय तथा वैशेषिक को आस्तिक दर्शन और अन्य सभी नास्तिक दर्शन स्वीकार किया गया है।

युधिष्ठिर विजय महाकाव्य में वर्णित सांख्ययोग—सांख्य दर्शन आस्तिक दर्शनों में सर्वाधिक प्राचीन है इसकी प्राचीनता स्वयं इस बात से सिद्ध है कि श्रुति, मृति, पुराण, प्रभृति समस्त पुरातन कृतियों से इसकी दार्शनिकता की सम्पुष्टि स्वतः परिलक्षित है। सांख्य के इस प्राचीनतम प्रकीर्ण हुए विचारों को सुसंगत और वैज्ञानिक ढंग से व्यवस्थित करने का कार्य महर्षि कपिल ने ही किया है। सांख्य दर्शन की विकास परम्परा महर्षि कपिल के सांख्य सूत्र से लेकर 17वीं शताब्दी ई0 के ख्याति प्राप्त दार्शनिक विद्वानों द्वारा रचित सांख्य प्रवचन भाष्य ने यह विचार स्पष्ट किया है।

सांख्य दर्शन में 4 प्रकार के पदार्थों का प्रतिपादन है– प्रकृति–विकृति उभयात्मक और विकृति निवृत्ति उभयरूप भिन्न है। सत्व–रज–तम की साम्यावस्था ही प्रकृति है जो सप्तधा है और यही है विकृति के भी सात विकृति अहंकार है। जो महातत्व की विकृति है शब्द स्पर्श, रूप, रस, गन्ध क्रमशः आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी इनकी प्रकृति है और अहंकार की विकृति, पंचमहाभूतों में श्रोत त्वक चक्षु रसना, धाण ज्ञानेन्द्रिय और पाणिपाद, वाक, वायु, उपस्थ पांच कमेन्द्रियों और ज्ञान कर्म उभयेन्द्रियात्मक मन ये सोलह पदार्थ केवल विकार रूप हैं। ये किसी के प्रकृति नहीं हैं पुरुष न प्रकृति है न विकृति और न किसी का उभय रूप। एक केवल प्रकृति, सात, प्रकृति–विकृति महदादि–16 केवल विकार अर्थात् कुल मिलाकर 24 और पुरुष मिलाकर 25 पंगु सम्बन्ध सृष्टि का जनक है। दोनों अवलम्बित हैं एक–दूसरे पर दुःखों से निवृत्ति पाने के लिए यह दर्शन अत्यधिक मूल्यवान है यह साधक को जीवन के परम लक्ष्य मोक्ष का मार्ग प्रदान करता है। युधिष्ठिर विजय महाकाव्य के परिशीलन से ज्ञात होता है कि कवि ने अपने सांख्य दर्शन के ज्ञान का संक्षेपतः परिचय दिया है तथा सांख्य दर्शन में तीन गुण सत्व, रज, तम बतलाये गये हैं क्रमशः प्रकाश या ज्ञान प्रवृत्ति एवं मोह रूप कार्य है–

सविकासत्वे जनयन् रजसो रक्षां च महति सत्वेज्जनयन्
भुवनवितानं तमसि क्षपयत्रनु तत्वमच्युतानन्तमसि।।[6]

युधिष्ठिर विजय महाकाव्य में वर्णित न्याय वैशेषिक–प्रामणैरर्थ्यपरीक्षण न्यायः–प्रमाणों के द्वारा विषय की सिद्धि करना ही न्याय है। न्याय दर्शन गौतम के काव्य का सूक्ष्म प्रस्फुटन है उसके बाद अनेक न्याय भाष्य लिखे हैं जिनमें वात्स्यायन का न्याय भाष्य, उद्योतकर का न्याय वार्तिक, वाचस्पति की न्याय वार्तिक तात्पर्य टीका आदि प्रमुख है। न्याय का प्रकाश परिव्याप्त है। नव्य न्याय और नव्य न्याय के प्रचार तथा उत्थान के बाद न्याय दर्षन तथा वैशेषिक दर्शन एक साथ हो गये इसीलिए इन्हें न्याय वैशेषिक कहा जाता है।

न्याय वैशेषिक के अनुसार अखिल विश्व अथवा ब्रह्माण्ड का निर्माण माहेश्वर की कृपा है और उन्हीं की इच्छा से संसार की सृष्टि होती है जिसमें जीव कर्मानुसार सुख–दुःख का भोग करते हैं। जब उनकी इच्छा होती है इस जाल को समेट लेते हैं।

सृष्टि तथा लय का यह क्रम अनादि काल से चला आ रहा है। इसलिए प्रत्येक सृष्टि के पूर्ण लय और लय के पूर्व सृष्टि होती है। जीवों प्राक्तन कर्मों से ही ईश्वर नवसृष्टि करता है जब यह सृष्टि रचना का संकल्प करते हैं तब जीवात्मा के अदृष्ट कर्म और उनके भोग साधन बनने लगते हैं।

न्याय शास्त्रानुंयत वायु परमाणुओं के संयोग से द्वयगुणक, त्रयगुणक आदि क्रम से वायु महाभूत की उत्पत्ति होती है जो नित्य आकाश में प्रवहमाण है। पृथ्वी के परमाणुओं से पृथ्वी का महाभूत, तेज के परमाणुओं से तेज का महाभूत जल परमाणु के संयोग से जल महाभूत की उत्पत्ति होती है जो वायु में अवस्थित होकर प्रवाहित होने लगते हैं। वायु महाभूत और तेज महाभूत दोनों जल महाभूत में अवस्थित है।

तदनन्तर ईश्वर के अभिध्यान मात्र से विश्व का गर्भ स्वरूप ब्रह्माण्ड उत्पन्न हो जाता है। इस ब्रह्माण्ड को विश्वात्मका जो अनन्तज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्य के भण्डार संचालित करते हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि के सांख्य दर्शन सर्वप्राचीन है परंन्तु आस्तिक दर्शनों का शुभारम्भ न्याय से हुआ है। न्याय दर्शन के 12 प्रमेय–आत्मा, शरीर, इन्द्रिय अर्थ बुद्धि, मनस, प्रवृत्ति दोष प्रेत्याभाव, छल, दुःख तथा अपवर्ग मानता है।[7]

युधिष्ठिर विजय महाकाव्य में वेदान्त और मीमांसा–आचार्य वादरायण के ब्रह्मसूत्र से मिश्रित वेदान्त दर्शन की महत्ता अद्यापि प्रासंगिक है अनेक आचार्यों ने ब्रह्मसूत्र की अनेक टीकाएँ प्रस्तुत की हैं।

आदि गुरु शंकराचार्य ने वेदान्त मत का प्रचार–प्रसार अबाध गति से किया है वह सनातन धर्म की रक्षा के लिए परमोपयोगी है अज्ञान से उपहित जीव ब्रह्म माया का प्रपंच ही यह सृष्टि है। वेदान्त दर्शन में अधिकारी, अनुलब्ध चतुष्ट्य, अज्ञान, अज्ञान की शक्तियाँ जीव विषयक महाकाव्य की समाधि जीवन मोक्ष प्रभृति तत्वों का विशेष वैशिष्ट्य है अविद्यास की जगत् का हेतु है और अज्ञानों के हित ब्रह्म ही मूल रूप से आवृत्त रहता है।

आवरण और विक्षेप दो शक्तियाँ हैं जिनके कारण ब्रह्मतत्व का आवृत्त होना और पुनः नाना रूपात्मक सृष्टि का विधान निहित होता है। इस प्रकार वेदान्त सृष्टि अज्ञान से उपहित होती है जो ज्ञानोपरान्त ही नष्ट हो जाती हैं।

युधिष्ठिर विजय महाकाव्य में महाकवि ने वेदान्त दर्शन का ज्ञान स्पष्टतः प्रतिबिम्बित हो रहा है–

व्यक्तिरसावाध्यातुः स्वच्छज्ञानान्वितस्य सा बाध्या तु।
शक्तेरज तव देव प्रस्फुटिता शुक्तिकासु रजतवदेव।।[8]

वेदान्त दर्शन के मतानुसार ब्रह्म ही एक सत्य है– ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या।

महाकवि वासुदेव ने वैयाकरणों के दर्शनशास्त्र की मीमांसा की है कुछ लोग शब्द को ही ब्रह्म मानते हैं।[9] वेद कर्मकाण्ड इत्यादि के विधान से श्रेष्ठ यज्ञ द्वारा ही स्वर्ग ही अर्थात् ईश्वर की प्राप्ति होती है– मीमांसक वेदों को स्वतः प्रामाण्य एवं अपौरुषेय मानते हैं।[10]

यही कारण है कि योगी लोग ईश्वर के दर्शन भिन्न प्रकार से करते हैं। वे समाधि में रेचकादि प्राणायाम द्वारा अपनी वायु को वश में करके परमात्मा के अणुरूप का दर्शन करते हैं–

उत्सन्नोरुध्वान्तस्त्वां हृदि मरुतश्च मुनिजनो रुदध्वान्तः।
अविकारमणीयांसं सकलं वा स्मरति देव रमणीयासम्।।[11]

अपि च–

वादिभिरेतत्त्वं ध्रुवमिति यद्यन्मतं हरे तत्रत्वम्।
तमसामस्तमयाय प्रभो नमस्ते समस्तमयाय।।[12]

नास्तिक दर्शन–भारतीय दर्शन में स्थूल रूप में आत्म दर्शन की प्रक्रिया तथा वेदोक्त प्रमाणों को न मानने वाले कुछ विद्वानों का ऐसा भी समुदाय था जो किसी तरह के दर्शनों को प्रसारित किया करते रहे इनमें से–

1. चार्वाक
2. जैन
3. बौद्ध

1. चार्वाक–चारु + वाक – मधुर वचनों का दर्शन मृदु सिद्धान्तों का दर्शन मनोनुकूल वाणी का दर्शन।

शुक्राचार्य की अनुपस्थिति में बृहस्पति द्वारा दानवों को दिया गया उपदेश ही चार्वाक दर्शन है इसलिए इसे वार्हस्पत्य दर्शन कहा जाता है और इनके सूत्रों को वार्हस्पत्य सूत्र–चार्वाक दर्शन का प्राचीन स्वरूप–कालवाद, स्वभाववाद, नियतिवाद तथा यदृक्षावाद विशेषतः प्रचलित हैं चार्वाक दर्शन स्थूल विचारों वाला है ज्ञान के विकास के प्रथम सोपान पर चढ़कर चार्वाक मतावलम्बी आत्मा का अन्वेषण करते हैं इसीलिए चार्वाक दर्शन में पृथ्वी जल वायु और तेज ये ही चार पदार्थ संसार में प्रमेय कहलाता हैं।

चार्वाक दर्शन भाग्यवादी विचारधाराओं वाला कालवाद, सिद्धान्त प्रसिद्ध सिद्धान्त है। शंकराचार्य ने कालवाद को स्वभाव अथवा प्रकृतिवाद कहा है।

2. जैन दर्शन –जैन दर्शन में तत्वों का परिज्ञान अन्य दर्शनों की भाँति प्रमाणों से किया जाता है। जिसे इसके अतिरिक्त जैन लोग दृष्टि भेद से जिसे वे नय कहते हैं तत्वों के ज्ञान की विशेष रूप से पुष्टि करते हैं। इसलिए जैन दर्शन में नय का अपना स्वतन्त्र स्थान है। युधिष्ठिर विजय महाकाव्य में भी जैन दर्शन के उदाहरण यत्र–तत्र परिलक्षित होते हैं।

3. बौद्ध दर्शन–भारतीय आस्तिक दर्शनों में बौद्ध दर्शन का अपना विशिष्ट स्थान है। जापान, भींगापुर, नेपाल, जयपुर प्रभृति बौद्ध दर्शन का प्रभाव आज भी पाया जाता है जीवन में बौद्ध दर्शन सहज रूप में परिलक्षित है। भगवान बुद्ध के चार आर्य सत्य आज भी विश्व विश्रुत हैं। मूर्ति पूजा का खण्डन विभिन्न आस्तिक दर्शनों का खण्डन आदि कार्य बौद्ध की प्रमुखता में है। युधिष्ठिर विजय महाकाव्य में महाकवि वासुदेव ने सनातन धर्म का खण्डन कर बौद्ध धर्म का प्रतिपादन ही बौद्ध का प्रमुख कार्य है।

निष्कर्ष–महाकवि वासुदेव कृत युधिष्ठिर विजय महाकाव्य में दार्शनिक चेतना गागर में सागर के रूप में विद्यमान है। इस महाकाव्य में दर्शन के सारभूत सिद्वान्तों, तात्विक चिन्तन और वैज्ञानिकता के लक्षण अनेक स्थानों पर विधिवत विद्यमान है। इसमें सांख्य दर्शन के मनुष्य की प्रकषति (सत्व, रज, तम) का प्रतिपादन है। न्याय वैशेषिक के 12 प्रमेयों, वेदान्त और मीमांसा का मत ब्रह्म, ब्रह्म एक सत्य है, नास्तिक दर्शन में चार्वाक दर्शन के प्राचीन स्वरूप –कालवाद, स्वभाववाद, नियतिवाद तथा यदृक्षवाद के प्रचलित रूप, न्याय दर्शन के प्रमाण सिद्वान्तों, जैन दर्शन के नय सिद्वान्तों तथा बौद्ध दर्शन के चार आर्य सत्य, पूजा खण्डन आदि का वर्णन यत्र–तत्र परिबिम्बित है। जो समाज के सम्यक् जीवन के संचालन में नयी दिशा प्रदान करते हैं।

सन्दर्भ–सूची

1. ईश्वरप्रत्यभिज्ञा, 32
2. प्रत्यभिज्ञा हदयं, पृ. 6
3. मनुस्मृति, 6/74
4. भागवत्, 11/2/26
5. यु.वि.महा., 6/140
6. न्याय सूत्र, 1/1/9
7. वेदान्तसार, विविध प्रसंग
8. यु.वि.महा., 6/139
9. यु.वि.महा., 6/141
10. यु.वि.महा., 6/142
11. यु.वि.महा., 6/143
12. यु.वि.महा., 6/144

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Sanskrit : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 6-8

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

प्रो. अमरनाथ पाण्डेय का जीवन वृत्त एवं कर्त्तव्य

*प्रशान्त शुक्ल**

विश्व की समस्त भाषाओं में सर्वाधिक सहज, सबल, सात्विक, समृद्धि और प्रेरणादायिनी भाषा ''देव भाषा'' संस्कृत है। वैदिक काल से लेकर आज तक संस्कृत भाषा में निरन्तर अनेक ग्रन्थ लिखे गये व लिखे जा रहे हैं, जिससे सम्पूर्ण मानव जाति लाभान्वित हो रही है। संस्कृत, जिसका सम्बन्ध मानव जाति के समस्त विषयों से है, में वेद, दर्शन, व्याकरण साहित्य आदि अनेक विषय रहे हैं।

साहित्य–सृजन के इस यज्ञ में अनेक विद्वानों ने अपना योगदान दिया है जिसने मानव कल्याणार्थ अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया ऐसे दिव्य संस्कृत विद्वानों में एक रससिद्ध, ज्ञानविदग्ध, उत्कृष्ठ समालोचक काशीपुराधिपति भगवान् शंकर के परम भक्त, सुजनता, सरलता, सहजता, सौम्यता, शालीनता विनयशीलता की प्रतिमूर्ति, विविध विद्या–वैभव विभूषित, विशिष्टताविशिष्ट, महनीय उपलब्धियों से अभिमण्डित, स्पृहणीय सम्मानों से सम्मानित, विश्ववारा सनातन संस्कृत एवं संस्कृत विद्या के संरक्षण–सम्पोषण–संवर्द्धन में जागरूक रूप से आजीवन संलग्न रहने वाले, उदार चेता, परोपकारी, संकल्पवान् दृढ़निश्चयी कर्मपुरुषार्थी, मधुमधुर, सत्यसंध, प्रसन्नवदन, रक्त–चन्दन–कुंकुम–चर्चित–प्रशस्तभाल, सिद्धान्तों एवं जीव–मूल्यों के प्रति आग्रही, स्वाभिमानी, तेजोमय, अप्रतिम, अनुपमेय प्रेरक, बहु आयामी, विराट् व्यक्तित्व के धनी, काशी की विभूति संस्कृत के गौरव प्रो. अमरनाथ पाण्डेय जी थे। इनका जीवन वृत्त एवं कर्तृत्व अधोलिखित शीर्षकों में व्याख्यात है।

जीवन–वृत्त –प्रो0 अमरनाथ पाण्डेय जी का जन्म उत्तर प्रदेश प्रान्त में इलाहाबाद जनपद के अन्तर्गत अनुवाँ ग्राम (जंघई) में पं0 रामनरेश पाण्डेय के घर सन् 1937 ई0 6 अक्टूबर को हुआ था। प्रो0 पाण्डेय प्रारम्भ से ही मेधावी छात्र रहे। आपने हाई स्कूल से एम0ए0 तक की सभी परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। इण्टरमीडिएट की परीक्षा में सर्वाधिक अंक प्राप्त करने पर आपको भुवनेश्वरी बुक प्राइज तथा पुरुषोत्तम स्कॉलरशिप प्राप्त हुयी।

आपका उच्च शिक्षा इलाहाबाद विश्वविद्यालय में हुआ। आपने बी0ए0, एम0ए0 तथा डी0 फिल0 की उपाधियां प्राप्त की। प्रो0 अमरनाथ पाण्डेय जी ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अपना शोध कार्य सन् 1958–1960 ई0 में सम्पन्न किया।

प्रो0 पाण्डेय प्रारम्भ से ही संस्कृत भाषण में दक्ष थे एम0ए0 परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद उनके गुरु प्रो0 क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय, ने उनके विषय में जो प्रमाण–पत्र दिया, उसमें लिखा था– He Could Speak flawless Sanskrit at the M.A. Stage. उनके दूसरे गुरु डॉ0 उमेश मिश्रा ने लिखा – He Can examine Problems conneted with his subject on Scientific lines with great confidence.

सन् 1960 ई0 में काशी विद्यापीठ वाराणसी में संस्कृत के सहायक प्रोफेसर के पद पर आपकी नियुक्ति हुयी, वहीं रीडर के पद पर तथा अल्पवय में आचार्य के पद पर आपकी नियुक्ति हुयी। आपने काशी विद्यापीठ में मुख्य गृहपति, अवैतनिक पुस्तकालय अध्यक्ष, मानविकी संकायाध्यक्ष तथा छात्र–कल्याण–संकायाध्यक्ष के रूप में प्रशासन कार्य सम्पन्न किया। साथ ही काशी विद्यापीठ की बौद्ध आकार ग्रन्थमाला के उपाध्यक्ष भी रहे।

* *शोध छात्र (संस्कृत विभाग), वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर*

प्रो0 अमरनाथ पाण्डेय 37 वर्ष (1960–1997) तक महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ में संस्कृत–विभाग के अध्यक्ष रहे और 1998 कार्यमुक्त हुए। आपके निर्देशन में 40 छात्रों ने शोधोपाधि प्राप्त की है। इनमें 39 छात्रों ने पी–एच0डी0 तथा 1 छात्र ने डी0 लिट्0 उपाधि प्राप्त की, हावर्ड विश्वविद्यालय की छात्रा हाली एन सीलिंग ने पी–एच0डी0 उपाधि के लिए कुछ समय तक आपके निर्देशन में कार्य किया।

प्रो0 अमरनाथ पाण्डेय साहित्य, व्याकरण, वेद तथा दर्शन के प्रतिष्ठित विद्वान् थे। आप न केवल भारत में बल्कि विश्व में अपने योगदान के लिए जाने जाते हैं। प्रो0 पाण्डेय को उनके कार्य व कार्य क्षेत्र में योगदान के लिये अनेक सम्मान एवं पुरस्कार प्राप्त हैं जिनमें प्रमुख रूप से निम्नलिखित हैं –

1. अखिल भारतीय पण्डित महापरिषद् ने 'पण्डितराज' की उपाधि प्रदान की।
2. आर्यावर्त विद्वत्परिषद् से 'महामहोपाध्याय'।
3. गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय हरिद्वार ने 'विद्या रत्नाकर'।
4. उ0प्र0 संस्कृत संस्थान ने, 'व्यास महोत्सव सम्मान'।
5. सर्म्पूणानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय ने भारत के केन्द्रिय शासन द्वारा उद्घोषित 'संस्कृत वर्ष सम्मान'।
6. राष्ट्रपति द्वारा सन् 2011 में 'सर्टिफिकेट ऑव् आनर सम्मान'।
7. विश्वभारती अनुसंधान परिषद् ज्ञानपुर भदोही ने सन् 2012 में 'पद्मश्री डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी स्मृति विश्वभारती सम्मान'।
8. सन् 2012 में नागकूपशास्त्रार्थ समिति ने 'अन्नपूर्णाश्री सम्मान'।
9. सन् 2013 ई0 में वृजदेवी पं0 हनुमत्दत्त शास्त्री स्मृति अकादमी जयपुर द्वारा, 'दधीचि सम्मान'।
10. सन् 2014 ई0 को जंगमबाडी मठ संस्थान वाराणसी से प्रो0 अमरनाथ पाण्डेय को 'विश्वाराध्यविश्वभारती पुरस्कार' प्राप्त हुआ।

इनके अतिरिक्त बहुत से अन्य सम्मान व पुरस्कार प्रो0 पाण्डेय को प्राप्त हुआ।

कर्तृत्व–भारतीय संस्कृति और संस्कृत वाङ्मय के आप प्रकाण्ड पण्डित थे। आपका साहित्य संस्कृत, हिन्दी तथा अंग्रेजी तीनों भाषाओं में प्रकाशित है। आपकी 18 पुस्तकें प्रकाशित हैं जिनमें–बाणभट्ट का आदान–प्रदान, संस्कृत प्रथम पाठ, संस्कृत व्याकरणज्योत्सना, उपसर्गवर्गः, बाणभट्ट का साहित्यिक अनुशीलन, शब्द विमर्श, संस्कृत कवि समीक्षा, दशरूपकम्, दशरूपकविवरणम् वाररुचिसङ्गहः, सौन्दर्यवल्ली, मङ्गल्या, इन्डालाजिकल क्रिटीक, आकाङ्क्षा, काव्य सिद्धान्तकारिका, महिम्नस्तोत्र, संस्कृत काव्यशास्त्र का आलोचनात्मक इतिहास व कालिदास है।

प्रो0 पाण्डेय जी ने संस्कृत में लगभग 81 लेख व कविताओं को लिखा है–

1. आपने हिन्दी में 151 लेख लिखे।
2. आपने अंग्रेजी भाषा में 20 लेख लिखे।

इसके अतिरिक्त प्रो0 पाण्डेय ने 33 पुस्तकों के प्राक्कथन को भी अपने शब्द शक्ति से पिरोया। प्रो0 पाण्डेय जी ने 56 बार रेडियों पर आकर वार्ता किया। आपने 90 गोष्ठियों व सम्मेलन में भाग लिया तथा आपके द्वारा 117 विशिष्ट व्याख्यान दिये गये।

आपने 'भास्वती' संस्कृत पत्रिका का सम्पादन किया था। जिसके विषय में केरल के विद्वान् प्रो0 भरत विषारोटि ने अपनी पुस्तक 'नवरत्नम्' में लिखा है–सम्पाद्यते यामरनाथपाण्डेयाख्यैरनल्पप्रतिभा प्रसत्रैश्चुम्बितैः प्रौढ़तमैश्च लेखैराचार्यकं सा विदुषां विधत्ते। आपने अनेक राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रिय सम्मेलनों में शोध–पत्र पढ़ा और अध्यक्षता किया। आपने आस्ट्रेलिया के मेलबर्न में आयोजित नवम अधिवेशन में व्याकरण सत्र तथा बंगलौर में आयोजित दशम अधिवेशन में व्याकरण सत्र की अध्यक्षता की। आपने मलेशिया तथा आस्ट्रेलिया में भारतीय दर्शन तथा संस्कृत के

विषय में अनेक व्याख्यान दिए। प्रो0 पाण्डेय ने विदेश के अनेक विद्वानों की शोध योजनाओं के सम्बन्ध में परामर्श दिये। प्रो0 पाण्डेय कवि, लेखक तथा मौलिक चिन्तक के रूप में प्रतिष्ठित थे। इनकी भाषा, शैली भावों का पूर्णतः अनुगमन करती है।

26.10.2015 को प्रो0 अमरनाथ पाण्डेय जी अपने नाम को चरितार्थ करते हुये पंचभौतिक शरीर को पंचभूत में समेट लिया। आज उनका आशीर्वाद संस्कृत के समुपासकों पर, सेवकों पर, अनुयायियों पर निरन्तर है। आप अपनी कृतियों के माध्यम से सदैव ही अजर–अमर हो कर संस्कृतानुरागियों को अपना आशीष व संरक्षण प्रदान करते रहेंगे। प्रो0 पाण्डेय के विषय में अधोलिखित कथन सर्वथा समीचन है।

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम् ।।

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Sanskrit : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 9-17

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

'अपरिग्रह' की भावना से आत्मा को शान्ति एवं आर्थिक समस्या का भी समाधान

*डॉ. सिकन्दर लाल**

'अपरिग्रह'[1] शब्द महर्षि पतंजलि द्वारा रचित योग दर्शन का महत्त्वपूर्ण अंग अष्टांग योग का जो पहला 'यम' नामक योग है, इसी 'यम' नामक योग का पाँचवा भेद है। इस 'यम नामक योग को नैतिक साधन भी कहा गया है अर्थात् जिसे अपनाने से हमारा मन, वाणी एवं कर्म आदि निर्मल होता है। इस यम का पाँच (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह) भेद है। पाँचवा भेद जो 'अपरिग्रह' नामक नैतिक साधन है। ''अपरिग्रह'' शब्द भगवान् बुद्ध द्वारा मानव एवं जीव–जन्तु के कल्याण हेतु स्थापित बौद्ध दर्शन में विद्यमान ''दश शील'' के अन्तर्गत दूसरा ''अपरिग्रह'' नामक शील भी है। इसका तात्पर्य यह है कि कामना के वशीभूत होकर अर्थात् लालचवश अनावश्यक धन–दौलत आदि को इकट्ठा न करना। कहने का तात्पर्य यह है कि जो कुछ मूर्ख मनुष्यों द्वारा जान–बूझकर बेईमानी एवं भ्रष्टाचार में लिप्त होकर अधिक धन–दौलत आदि इकट्ठा करने में लगे रहते हैं, ऐसा मानवों द्वारा न करना ''अपरिग्रह'' कहलाता है, वैसे तो उपर्युक्त पाँचों नैतिक साधन व्यक्ति की आत्मा को शान्ति प्रदान करने के साथ–साथ प्रबल रूप में आर्थिक व्यवस्था को सुदृढ़ करने में भी सहायक सिद्ध है। परन्तु शोधपत्र की सीमा को ध्यान में रखते हुए मात्र हमने 'अपरिग्रह' (अधिक धन–दौलत, जमीन–जायदाद आदि इकट्ठा न करना) के सन्दर्भ में ही अपनी क्षमतानुसार मौलिक चिन्तन व्यक्त करते हुए, यह सिद्ध करने का विनम्र प्रयास किया है कि किस तरह से व्यक्ति इस 'अपरिग्रह' की भावना को जीवन पर्यन्त अपने मन, वाणी एवं कर्म में प्रयोग करके स्वयं को शान्ति प्रदान करने के साथ–साथ समाज की आर्थिक सुदृढ़–व्यवस्था में भी अपनी भूमिका निभा सकता है।

'अपरिग्रह' अर्थात् जान–बूझकर चोरी, बेईमानी आदि करके तथा भ्रष्टाचार आदि में लिप्त होकर अधिक धन–दौलत, रुपया–पैसा आदि इकट्ठा न करना। कहने का तात्पर्य यह है कि व्यक्ति अपने जीवन में किसी भी प्रकार की जान–बूझकर चोरी, बेईमानी आदि करके धन–दौलत आदि न इकट्ठा करें। संसार में मौजूद कुछ मूर्ख मनुष्य कई तरह से गलत काम करके, अधिक धन–दौलत आदि इकट्ठा करने में लगे रहते हैं। ये कुछ मूर्ख मनुष्य संसार रूपी पावन धाम में कैसे कुकर्म करके अधिक धन–दौलत आदि इकट्ठा करने की भरपूर कोशिश करते हैं। जैसे कि अपने विद्यालय, महाविद्यालय या फिर कोई और सरकारी संस्थान हो, विना गये पूरा वेतन लेना या फिर सप्ताह, महीने आदि में दो–चार बार जाकर पूरे महीने का हस्ताक्षर करके वेतन आदि लेना। जान–बूझकर अपने विद्यालय, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय या फिर कोई भी सरकारी संस्थान आदि हो, समय से न पहुँचने के बजाय 99 : देर–सबेर जाना। कुछ मूर्ख मनुष्य तो ऐसे भी हैं कि जब तक बायोमैट्रिक मशीन आदि लगी थी तो समय से जाना–आना आदि होता था, जैसे ही बायोमैट्रिक मशीन बिगड़ गई या फिर कोरोना वायरस के कारण बायोमैट्रिक हस्ताक्षर की अनिवार्यता समाप्त हो गई, फिर क्या था अपने मन से देर–सबेर जाना या फिर जाना ही नहीं। कुछ तो ऐसे प्राथमिक, माध्यमिक आदि विभिन्न संस्थानों के शिक्षक/अधिकारी/कर्मचारी आदि भी सुने गए हैं कि सुबह और शाम में बायोमैट्रिक हस्ताक्षर करके, बीच में गायब रहते हैं। कुछ माध्यमिक/उच्च शिक्षा या फिर अन्य विभाग के अधिकारी एवं कर्मचारी स्वयं सक्षम होते हुए भी अपने पैसे बचाने के लिए जान–बूझकर अपने

* *एसोसिएट प्रोफेसर (संस्कृत विभाग), कौशल्या भारत सिंह गाँधी राजकीय महिला महाविद्यालय, ढिंढ़ुई, पट्टी, प्रतापगढ़ (उ.प्र.)*

से छोटे अथवा अपने से बड़े सीधे–साधे शिक्षक/अधिकारी/कर्मचारी आदि के साथ बार–बार कार या बाइक आदि पर बैठकर प्रतिदिन अपने संस्थान, विद्यालय, महाविद्यालय आदि जाना (ये कुछ मूर्ख लोग सोचते हैं कि यदि हम कार/बाईक आदि खरीदेंगे तो हमारा पैसा बचने के बजाय खर्च होगा, इसलिए हम क्यों न दूसरे के कार/बाईक आदि से अपने संस्थान, विद्यालय, महाविद्यालय या फिर कोई भी सरकारी/व्यक्तिगत संस्थान में नौकरी करने हेतु जायें, जिससे कि हमारा पैसा इत्यादि बचे)। कुछ मूर्ख मनुष्य सक्षम होते हुए भी पैसा बचाने के लिए अपने से छोटे–बड़े अधिकारी/कर्मचारी, शिक्षक, प्रोफेसर या फिर किसी व्यक्ति से उधार माँगकर पैसा लेना और समय आने पर भी जान–बूझकर न देना। कुछ मूर्ख मनुष्य बेईमानी से, अधिक पैसा आदि इकट्ठा करने के लिए काम कराने के बहाने छल, कपट पूर्वक, भोले–भाले मानवों से ठगकर पैसा ले लेना और फिर उस भोले–भाले व्यक्ति को, काम न होने पर भी, पैसा वापस न करना। कुछ विभिन्न विभाग के अधिकारी/कर्मचारी तथा शिक्षक/प्रिंसिपल/लिपिक आदि फर्जी बिल–बाउचर आदि लगाकर सरकारी पैसा हड़पना, सरकारी गाड़ी आदि का दुरुपयोग करना। फर्जी प्रमाण–पत्र लगाकर सरकारी/व्यक्तिगत सर्विस (सेवा) प्राप्त कर लेना। कुछ मूर्ख व्यक्ति और विभिन्न विभाग के कुछ मूर्ख अधिकारी/कर्मचारी पैसे आदि के लिए अपने से बड़े/छोटे सीधे–साधे ईमानदार अधिकारी/कर्मचारी आदि से डरा–धमकाकर जबरदस्ती फर्जी बिल–बाउचर या फिर अन्य सरकारी/व्यक्तिगत प्रपत्र आदि पर हस्ताक्षर करवाना। कुछ शिक्षा विभाग के शिक्षक/प्रिंसिपल/प्रबन्धक तथा अधिकारी/कर्मचारी आदि द्वारा विद्यार्थी से नकल, प्रयोगात्मक परीक्षा, पीएच–डी0 तथा एफ0फिल आदि के नाम पर मानक से कहीं अधिक पैसा, फीस आदि ले लेना। कुछ छात्र–छात्राओं द्वारा नकल आदि करने के लिए नकल माफिया आदि को पैसा देना। उच्च तथा माध्यमिक शिक्षा के कुछ अधिकारियों/कर्मचारियों द्वारा पैसा लेकर नकल आदि करने के लिए छूट देना। कुछ उच्च तथा माध्यमिक सचल दल (उड़ाका दल आदि) द्वारा नकल में छूट देने के लिए पैसा इत्यादि लेना। कुछ माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा के शिक्षकों, प्रधानाचार्यों, प्राचार्यों एवं प्रबन्धकों द्वारा नकल आदि के नाम पर विद्यार्थियों से जबरदस्ती पैसा आदि वसूल करना तथा सचल दल (उड़ाका दल) आदि को पैसा देना। कुछ मूर्ख विभिन्न विभाग के अधिकारी, कर्मचारी द्वारा विना पैसे के साधारण आदमी का काम न करना। साधारण आदमी द्वारा अपने काम के लिए परिस्थितिवश पैसा आदि न दे पाने पर कुछ मूर्ख विभिन्न विभाग के अधिकारी, कर्मचारी द्वारा जान–बूझकर, उस साधारण आदमी के काम को रोक देना अर्थात् न करना। जबकि जिसके अधिकारी में जो भी काम है उस अधिकारी, कर्मचारी को, उस साधारण आदमी का काम इत्यादि कर देना चाहिए। भले ही वह थोड़ा और समय ले ले। इसी तरह कुछ व्यक्तिगत् अर्थात् गैर सरकारी व्यक्ति भी मूर्ख होते हैं, जो साधारण आदमी का काम, अपने अधिकार में होने के बाद भी, नहीं करता बल्कि जो अनैतिक कार्यों से आगे बढ़ना चाहता है, वह मूर्ख मनुष्य उसी मूर्ख मनुष्य का साथ देता है। कुछ मूर्ख मनुष्यों द्वारा अधिक पैसे बचाने हेतु, सरकार के किसी कार्य को करने या फिर किसी भी वस्तु को सरकारी संस्थानों में पहुँचाने हेतु ठेका आदि लेकर, कुछ अधिक पैसों के लोभी अधिकारी, कर्मचारी तथा नेता, मंत्री आदि की मिलीभगत से, सरकारी संस्थानों आदि के कार्य को मजबूत बनाने के बजाय कमजोर बनाना तथा इसी तरह सरकारी संस्थानों हेतु कमजोर वस्तु को खरीदकर दे देना या फिर कभी–कभी कुछ विभिन्न विभाग के सरकारी अधिकारी/कर्मचारी द्वारा एक भी वस्तु नहीं लिया गया और विना लिये हुए वस्तु को भी खराब वस्तु रजिस्टर इत्यादि में दिखाकर फर्जी बिल–बाउचर लगाकर पूरा का पूरा सरकारी पैसा अपने स्वार्थ की पूर्ति हेतु निकाल लेना। कुछ अधिकारी/कर्मचारी, देश–राज्य का मंत्री, सांसद, विधायक, जिलाध्यक्ष, जिला पंचायत सदस्य, ब्लाक प्रमुख, ग्राम प्रधान आदि द्वारा विकास के नाम पर सरकार से बजट लेना और फिर आधा–अधूरा कार्य करके शेष पैसों का फर्जी बिल–बाउचर लगाकर स्वयं या फिर जो भी इस चोरी के काम में साथ दिया है, उन सभी लोगों द्वारा आपस में मिल–बाँटकर ले लेना। सरकार द्वारा गरीब, असहाय आदि व्यक्ति को बाँटने हेतु जो खाद्य पदार्थ (अनाज आदि) कोटेदारों आदि को दिया जाता है, उनमें से अधिकतर कोटेदारों द्वारा कुछ खाद्य विभाग के अधिकारी/कर्मचारी तथा प्रधान/चेयरमैन आदि की मिलीभगत से यथार्थ गरीब, असहाय आदि व्यक्ति को खाद्य पदार्थ आदि को न दिया जाना, दिया भी गया तो कुछ ही गरीब व्यक्ति को, बाकी अमीर व्यक्ति को देना तथा शेष बचे हुए खाद्य पदार्थों को दुकानदार आदि को बेचकर पैसा ले लेना। कुछ अधिकारी/कर्मचारी तथा प्रधान आदि की मिलीभगत से अधिकतर गरीब व्यक्ति को

आवास न देना, वल्कि पर्याप्त मात्रा में पैसा आदि से सम्पन्न व्यक्ति को पैसा इत्यादि लेकर आवास आदि दे देना। अधिक पैसों के लिए कुछ व्यक्तिगत/सरकारी व्यक्तियों द्वारा जाँच अधिकारी को पैसा या धमकी देकर, सरकारी या अन्य किसी प्रकार के संस्थाओं में पैसा इत्यादि खर्च के व्यौरों को सही तरीके से जाँच न करवाना। कुछ जाँचकर्ता अधिकारी/कर्मचारी द्वारा पैसा इत्यादि लेकर सरकारी या अन्य किसी प्रकार की संस्थाओं में खर्च हुए पैसों के विवरण के सन्दर्भ में सही जाँच न करना, बल्कि इस जाँच आदि से सम्बन्धित फाइल को दबवा देना। कुछ वकील, जज (न्यायधीश), पुलिस या फिर अन्य किसी प्रकार के अधिकारी/कर्मचारी द्वारा पैसों के लिए या फिर पैसे इत्यादि लेकर गलत न्याय, जाँच आदि करना। इसी तरह कुछ और न्याय विभाग के अधिकारी/कर्मचारी आदि पैसों के लिए अपराधी व्यक्ति को छुड़वा देना और निरपराधी व्यक्ति को फँसा देना। कुछ मूर्ख मनुष्यों द्वारा कुछ विभिन्न विभागों के अधिकारी/कर्मचारी आदि को गलत काम करने हेतु पैसा देना। हमारे देश के कुछ मूर्ख मीडिया (पत्रकार) द्वारा टी0वी0, समाचार पत्रों आदि में सही खबर आदि न दिखाना अर्थात् पैसा लेकर सही को झूठ और झूठ को सही बताना। कहने का तात्पर्य यह है कि निर्दोष को दोषी और दोषी को निर्दोष बताना, जो कि यह झूठी खबर हमारे देश के लिए घातक है। कूछ मूर्ख मनुष्यों द्वारा धर्म के नाम पर जल–जंगल–जमीन आदि को बहुत अधिक कब्जा करके और उसमें मन्दिर–मस्जिद–चर्च–गुरुद्वारा आदि बनाकर तथा उसमें बैठकर झूठ–मूठ का प्रवचन देकर भोले–भाले मानवों को ठगना। इसी तरह भ्रष्टाचार में अधिक लिप्त मूर्ख मनुष्य से भी ये कुछ पाखण्डी मनुष्य दान के रूप में पैसा, सोना, चाँदी आदि लेना। यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि जहाँ कुछ पाखण्डी मनुष्य, भोले–भाले मानवों को ठगने हेतु पूर्णरूप से अपराधी है वहीं कुछ मूर्ख मनुष्य लोग भ्रष्टाचार में लिप्त होकर अधिक बेईमानी पूर्वक कमाये गये धन–दौलत में से कुछ रुपये–पैसे, सोने–चाँदी आदि को इन कुछ पाखण्डी साधुओं को देने हेतु, यह कुछ मूर्ख (भ्रष्टाचार में लिप्त व्यक्ति) मनुष्य भी दोषी है। कहने का तात्पर्य यह है कि ये कुछ मूर्ख मनुष्य जहाँ भ्रष्टाचार में लिप्त होकर अधिक धन–दौलत कमाने के कारण अपराधी है वहीं दूसरी ओर यह मूर्ख मनुष्य कुछ पाखण्डी साधुओं को रूपया–पैसा आदि देने के लिए एक और अपराधी है अर्थात् ऐसे कुछ मूर्ख मनुष्य (जान–बूझकर भ्रष्टाचार में लिप्त व्यक्ति) दो अपराध करने के कारण बहुत बड़े चोर ही कहे जायेंगे। कुछ पाखण्डी मनुष्य विना मेहनत परिश्रम के बैठे–बैठे खाने हेतु, किसान देवता द्वारा उगाये गये खाद्य पदार्थों को भगवान् के नाम से चढ़वाना और इस चढ़ाये हुए खाद्य पदार्थों को ठगकर खाना, शेष बचे हुए खाद्य पदार्थों को बेचना या फिर फेकना आदि। आय से अधिक सम्पत्ति रखना, अपने आय से सम्बन्धित धन–दौलत का सम्पूर्ण विवरण सरकार को न देना या फिर दिया गया तो आधा–अधूरा। इस तरह जान–बूझकर बेईमानी, छल–कपट पूर्वक तथा भ्रष्टाचार में लिप्त होकर अधिक धन–दौलत, जमीन–जायदाद, रूप–सौन्दर्य, पद–प्रतिष्ठा आदि को जीवन में इकट्ठा रखने की भरपूर कोशिश करना जैसे कुकर्मों को न करने के लिए, महर्षि पतंजलि जैसे ऋषियों, भगवान् बुद्ध जैसे महामानवों तथा यथार्थ महाकवियों और महापुरुषों आदि ने मनुष्यों से कहा है, जो कि 'अपरिग्रह' की भावना को दर्शाता है। वैसे भी यह स्थापित सत्य है कि ये जो कुछ मूर्ख मनुष्य संसार रूपी पावन धाम में जान–बूझकर बेईमानी, छल–कपट तथा भ्रष्टाचार आदि में लिप्त होकर कमाये गये रूपये–पैसों से अपना रूप–रंग सँवराने, घर–परिवार आदि को सजाने, अधिक धन–दौलत, जमीन–जायदाद, गाड़ी–घोड़ा (बहुत मँहगी कारें आदि) तथा सोना, चाँदी आदि इकट्ठा करने में लगे हुए हैं, बच नहीं जायेंगे। क्योंकि इस तरह से उपर्युक्त अनेकों प्रकार के कुकर्म में जो मनुष्य जान–बूझकर लिप्त है वह सब के सब चोर हैं। इन उपर्युक्त विभिन्न प्रकार के चोरों के सन्दर्भ में परम् ज्ञानी सन्त तुलसीदास ने लिखा है कि–'ऊँच निवासु नीचि करतूती, देख न सकहिं पराई बिभूती।[2] करतब बायस बेष–मराला[3] आदि।

परम् ज्ञानी सन्त कबीरदास जैसे मनीषियों ने मनुष्यों को समझाया है कि–हे मनुष्य! ईश्वर की बनाई हुई विभिन्न वस्तु को बेईमानी पूर्वक क्यों इकट्ठा करने में लगे हुए हो? हे मनुष्यों! इस रूप–सौन्दर्य, घर–परिवार, पद–प्रतिष्ठा, धन–दौलत, जमीन–जायदाद आदि को जो तुम अज्ञानता एवं मूर्खतावश बेईमानीपूर्वक इकट्ठा करके अपना मानते हो, वह सब एक दिन आपको छोड़ देगा। इस सन्दर्भ को स्पष्ट करते हुए परम् ज्ञानी सन्त कबीरदास लिखते हैं कि–

यह तन काँचा कुंभ है, लियाँ फिरै था साथि।[4]
ढबका लागा फूटि गया, कछु न आया हाथि।।
कबीर कह गरबियो, ऊँचे देखि अवास।
काल्हि पर्‌यूँ भ्वै लोटणाँ, ऊपरि जामै घास।।
कबीर कह गरबियौ, देहीं देखि सुरग।
बिछड़ियाँ मिलिबौ नहीं, ज्यूँ काँचली भुवंग।।

जब समय आने पर कुछ बचना ही नहीं है तब हे मनुष्यों ईमानदारी पूर्वक कमाये गये धन–दौलत से, ईश्वर की बनाई हुई संरचना (सम्पूर्ण मानव एवं जीव–जन्तु) की अपनी क्षमतानुसार सेवा–सुरक्षा करते हुए सदुपयोग करके शेष बचे हुए पदार्थों को, ईश्वर को अर्पण कर दो। इसी में आपकी भलाई है। जैसे कि संस्कृत–हिन्दी साहित्य के विश्वविख्यात परम् ज्ञानी सन्त तुलसीदास जैसे अनेकों महामानवों ने की है। इस बात को स्पष्ट करते हुए सन्त तुलसीदास लिखते हैं कि–**नाथ सकल संपदा तुम्हारी, मैं सेवकु समेत सुत नारी।[5]**

परमात्मा तुल्य सन्त कबीरदास ने भी इस बात को स्पष्ट किया है–

खाय पकाय लुटाय के, करि ले अपना काम।[6]
चलती बिरिया रे नरा, संग न चलै छदाम।।

सन्त कबीर पुनः लिखते हैं कि हे मनुष्यों! जो तुम जान–बूझकर बेईमानी, छल–कपट पूर्वक और भ्रष्टाचार आदि में लिप्त होकर ढेर सारा धन–दौलत इकट्‌ठा किये हुए हो, समय आने पर ईश्वर सब उसे छीन लेंगे और तुम लोग (कुछ मूर्ख मनुष्य) कहीं के भी नहीं रह जाओगे। इस बात को स्पष्ट करते हुए सन्त कबीरदास लिखते हैं कि–

का माँगू कुछ थिर न रहाई, देखत नैन चल्या जग जाई।।[7]
इक लख पूत सवा लख नाती, ता रावन घरि दिया न बाती।।
लंका–सा कोट समुद्र–सी खाई, ता रावनि की खबर न पाई।।
आवत संगि न जात संगाती, कहा भयौ दरि बाँधे हाथी।।
कहै कबीर अंत की बारी, हाथ झाड़ि जैसे चले जुवारी।।

इस उपर्युक्त सन्त कबीरदास जी की बानी से मिलता–जुलता यह समाचार दिनांक 19 अक्टूबर 2019 को प्रयागराज से प्रकाशित हिन्दुस्तान समाचार पत्र के पृष्ठ सं0–14 से है। जिसमें यह बताया गया है कि**–'अकेलेपन' में ही मर गया 200 करोड़ की सम्पत्ति का मालिक।**

परम् ज्ञानी सन्त कबीरदास के इस बात को कुछ मूर्ख मनुष्यों ने नहीं माना और वर्तमान में भी ये जो कुछ मूर्ख लोग जो धर्म तथा विकास आदि के नाम पर जान–बूझकर बेईमानी, रिश्वतखोरी, भ्रष्टाचार, छल–कपट एवं पाखण्ड आदि में लिप्त होकर, सोना–चाँदी, धन–दौलत, पद–प्रतिष्ठा आदि को पाकर, अपना घर–परिवार तथा रूप–सौन्दर्य आदि को सजाने, सँवारने आदि में लगे हुए हैं। तभी तो इन कुछ मूर्ख मनुष्यों के सन्दर्भ में परम् ज्ञानी सन्त तुलसीदास अपने पावन ग्रन्थ रामचरितमानस में लिखते हैं कि–

सोई सयान जो परधन हारी। जो कर दंभ सो बड़ आचारी।।[8]
जो कह झूँठ मसखरी जाना। कलिजुग सोई गुनवंत बखाना।।
पर त्रिय लंपट कपट सयाने। मोह द्रोह ममता लिपटाने।[9]
तेई अभेदबादी ग्यानी नर। देखा मैं चरित्र कलिजुग कर।।
धनवंत कुलीन मलीन अपी। द्विज चिन्ह जनेउ उधार तपी।।[10]
नहिं मान पुरान न बेदहि जो। हरि सेवक संत सही कलि सो।
बहु दाम सँवारहिं धाम जती। बिषया हरि लीन्हि न रहि बिरती।।[11]
तपसी धनवंत दरिद्र गृही। कलि कौतुक तात न जात कही।।

इसी तरह भ्रष्टाचार में लिप्त कुछ मूर्ख मनुष्यों के सन्दर्भ में मैं यहाँ कुछ उदाहरण दे रहा हूँ जो बेईमानी से अधिक पैसा आदि इकट्ठा करके अपना रूप–सौन्दर्य सँवारने तथा घर–परिवार को सजाने हेतु छल–कपट, बेईमानी, भ्रष्टाचार आदि में जान–बूझकर लिप्त होकर अपने संस्थानों के साथ गद्दारी करते हैं। इस सन्दर्भ की पुष्टि हेतु मैं यहाँ कुछ उदाहरण माँ सरस्वती की कष्पा से समाचार पत्रों आदि से ग्रहण कर प्रस्तुत कर रहा हूँ, जो अधोलिखित रूप में इस प्रकार से है–

यह समाचार दिनांक 28 मार्च, 2018 को प्रयागराज से प्रकाशित दैनिक जागरण समाचार पत्र के पष्ठ सं0–06 से है। जिसमें यह बताया गया है कि–इलाहाबाद राज्य विश्वविद्यालय की परीक्षा में रिश्वत खोरी के मामले में उड़ाकादल के चारों सदस्यों को वाराणसी जेल भेज दिया। इस सचल दल के टीम में इलाहाबाद (प्रयागराज) से तीन तथा प्रतापगढ़ से 01 शिक्षक थे, जो कि शासकीय/अशासकीय महाविद्यालय में तैनात थे।

दिनांक 07 जनवरी, 2019 को प्रयागराज से प्रकाशित दैनिक जागरण समाचार पत्र के पृष्ठ सं0–01 से है। जिसमें यह बताया गया है कि–शिक्षक भर्ती परीक्षा में एसटीएफ ने 13 साल्वर गैंग को गिरफ्तार किया।

दिनांक 09 फरवरी, 2020 में प्रयागराज से प्रकाशित अमर उजाला समाचार पत्र के पृष्ठ सं0–02 से हैं। जिसमें यह बताया गया है कि **'अधिकारियों और शिक्षक नेताओं की साठगाँठ से घर बैठे वेतन ले रही शिक्षिकाएँ'**। इस शीर्षक के अन्तर्गत लिखा हुआ है कि बेसिक शिक्षा विभाग में कुछ अफसरों और शिक्षक नेताओं की साठगाँठ से शिक्षिकाएँ घर बैठे वेतन ले रही हैं। इस खेल में एक या दो नहीं बल्कि दर्जनों शिक्षिकाएँ शामिल हैं। इनमें अधिकांश अफसरों की बीबियाँ हैं। वह अपने पति के साथ दूसरे प्रदेशों में रहती हैं और यहाँ स्कूल में फर्जी दस्तखत बनाकर उनके खातों में वेतन का भुगतान हो रहा है। जो विना मेहनत के पैसा ले रही हैं उनका नाम–अमिता सिंह, अंकिता पांडेय (शोधपत्र की सीमा को ध्यान में रखते हुए विद्यालय का नाम नहीं लिखा गया है। वैसे यह समाचार प्रतापगढ़ जनपद से है।) इसी तरह पैसा बचाने हेतु कुछ कामचोर एवं गद्दार लोग अन्य जनपद, राज्य आदि में शिक्षक/शिक्षिकाओं या फिर अन्य किसी सरकारी कर्मचारी/अधिकारी के रूप में हो सकते हैं।

यह समाचार 06 जनवरी, 2018 को इलाहाबाद (प्रयागराज) से प्रकाशित हिन्दुस्तान समाचार पत्र के पष्ठ सं0–01 से है। जिसमें यह बताया गया है कि–**80 हजार कॉलेज शिक्षक तीन जगहों से ले रहे वेतन।** इसी तरह दिनांक 09 फरवरी, 2020 को प्रकाशित अमर उजाला समाचार पत्र के पृष्ठ सं0–02 पर बताया गया है कि–स्वच्छ भारत मिशन में 374946 शौचालयों का निर्माण कराने का दावा, 314157 की हुई जीओ टैगिंग, कहने का तात्पर्य यह है कि इसमें 60789 शौचालय कहाँ बने हैं इसे विभागीय अफसर नहीं खोज पा रहे हैं।

दिनांक 11 मार्च, 2019 में प्रकाशित हिन्दुस्तान समाचार पत्र के पृष्ठ सं0–01 पर बताया गया है कि–**'रेलवे के दो अफसर रंगे हाथ धराये'**। इनका नाम है–नीरजपुरी गोस्वामी तथा पी0के0 सिंह, ये दोनों अफसर क्रमशः छः और चार लाख रूपये लेते हुए रंगे हाथ पकड़े गये।

यह समाचार दिनांक 19 अप्रैल, 2016 में प्रतापगढ़–इलाहाबाद से प्रकाशित अमर उजाला समाचार पत्र के पृष्ठ सं0–05 से है। जिसमें बताया गया है कि–**सरकारी खर्च पर घूम रही कमिश्नर की माँ।**

यह समाचार दिनांक 21 फरवरी, 2019 को प्रयागराज से प्रकाशित दैनिक जागरण समाचार पत्र के पृष्ठ सं0–01 से है। इसमें कहा गया है कि– **453 करोड़ नहीं चुकाये तो जेल जायेंगे अनिल अम्बानी।**

यह समाचार 21 मार्च, 2019 को प्रयागराज से प्रकाशित अमर उजाला समाचार पत्र के पृष्ठ सं0–12 से है।, जिसमें कहा गया है कि– **कुंभ में 800 करोड़ का घोटाला।**

इसी तरह दिनाँक 14 अप्रैल, 2019 को प्रयागराज से प्रकाशित दैनिक जागरण समाचार पत्र के पृष्ठ सं0–01 से है। जिसमें यह बताया गया है कि– **152 करोड़ की ओवर बिलिंग पकड़ी।** (कुंभ में विभिन्न सरकारी विभागों की लगभग 152 करोड़ रुपये की ओवर विलिंग पकड़ी हुई है। यह समाचार दिनांक 10 मार्च, 2020 को प्रयागराज से प्रकाशित दैनिक जागरण समाचार पत्र के पृष्ठ सं0–13 से है। जिसमें यह बताया गया है कि–**राणा परिवार में (रिश्वतखोरी से) बनाई भारत में 4500 करोड़ की सम्पत्ति।**

इसी तरह हमारे देश में अनेकों मूर्ख मनुष्य हैं जो जिस संस्थान की कमाई खाते हैं, उसी को आय से अधिक धन–दौलत आदि इकट्ठा करने के लिए नोचने में लगे हुए हैं। तभी तो इन मूर्खों को शान्ति नहीं मिलती है, शान्ति तो तब मिलेगी जब हम लोग अपने मन, वाणी एवं कर्म में ''अपरिग्रह'' आदि की भावना (जान–बूझकर चोरी, छल–कपट, बेईमानी तथा भ्रष्टाचार आदि में लिप्त होकर धन–दौलत, जमीन–जायदाद आदि इकट्ठा करके अपना रूप–सौन्दर्य तथा घर–परिवार इत्यादि को न सँवारना और न सजाना) को अपनायेंगे क्योंकि अपरिग्रह–भावना को अपनाने के बाद ईश्वर द्वारा (ईमानदारी पूर्वक कमाये गये) दिये गये रूप, सौन्दर्य, पद–प्रतिष्ठा, धन–दौलत आदि से संसार रूपी धाम में विराजमान् मानव एवं जीव–जन्तु रूपी मूर्तियों की अपनी क्षमतानुसार सेवा–सुरक्षा करने में जीवन निर्वाह करेंगे। कहने का तात्पर्य यह है कि जब हमारे मन, वाणी एवं कर्म में 'अपरिग्रह' अर्थात् बेईमानी, छल–कपट इत्यादि न करके धन–दौलत आदि इकट्ठा करने की भावना नहीं होगी, तब हम यही मानेंगे कि ईश्वर द्वारा प्रदत्त जो भी वस्तु हमें मिला है, उसमें ईश्वर द्वारा निर्मित सम्पूर्ण मानव एवं जीव–जन्तु का भी अधिकार है अर्थात् ईश्वर द्वारा बनाये गये सम्पूर्ण रचना (सम्पूर्ण मानव एवं जीव–जन्तु) की अपनी क्षमतानुसार सेवा–सुरक्षा करते हुए, हम अपने आपको वास्तविक रूप में ईश्वर का सेवक मानेंगे, जैसे कि परम् ज्ञानी सन्त तुलसीदास ने अपने जीवन में निर्वाह किया और लिखा भी है कि–

नाथ सकल संपदा तुम्हारी। मैं सेवकु समेत सुत नारी।।[12]

कहने का भावार्थ यह है कि ईमानदारी के कमाई में जो कुछ हमको रूप, सौन्दर्य, धन–दौलत, पद–प्रतिष्ठा, घर–परिवार, जमीन–जायदाद आदि मिला है, उसी से ईश्वर की बनाई हुई संरचना (मानव एवं जीव–जन्तु) की अपनी क्षमतानुसार सेवा–सुरक्षा करते हुए सुख–शान्ति महसूस करना। न कि कुछ मूर्ख मनुष्यों की भाँति हम बेईमानी छल, कपट आदि से कमाये गये धन–दौलत से अपना घर–परिवार, रूप–सौन्दर्य आदि को सजा–सँवारके, ईश्वर द्वारा प्रदत्त पदार्थ का दुरुपयोग करना, बल्कि हम भगवान् बुद्ध के अष्टांगिक मार्ग सम्यक् जीविकोपार्जन अर्थात् ईमानदारी पूर्वक कमाये गये धन–दौलत से ही हम अपने आपको खुश रखें। इस प्रकार से खुश रहना ही हम सबके के लिए, परम् शान्ति की प्राप्ति है।

इस प्रकार से हम लोगों का यह भरपूर प्रयास रहे कि संसार में मौजूद कुछ मूर्ख मनुष्यों (जान–बूझकर बेईमानीपूर्वक एवं भ्रष्टाचार में लिप्त होकर एवं धन–दौलत इकट्ठा करने वाला व्यक्ति) की भाँति फर्जी बिल बाउचर इत्यादि लगाकर गलत तरीके से पैसा आदि न कमायें, इसी तरह नकल इत्यादि के नाम पर तथा अपने–अपने संस्थानों के साथ गद्दारी इत्यादि न करके किसी भी तरह से हम जान–बूझकर सरकारी पैसा, गाड़ी आदि विभिन्न वस्तु का दुरुपयोग न करें, क्योंकि यह स्पष्ट है कि बेईमानी से कमाये गये धन–दौलत इत्यादि से रूप–सौन्दर्य, पद–प्रतिष्ठा, जमीन–जायदाद, कार, बंगला आदि इकट्ठा करने से तनिक भी शान्ति नहीं मिलती। इसलिए ईमानदारी एवं छल–कपट से रहित होकर जो भी हमको धन–दौलत प्राप्त हो उसी को हम प्रसाद मानकर, प्रसाद अर्थात् प्रसन्न रहें। कुछ मौजूद मूर्ख मनुष्यों द्वारा अपने भारत देश रूपी पावन धाम में बेईमानी करने का ही परिणाम है कि हमारे देश में ढेर सारे ऐसे लोग हैं जिन्हें पर्याप्त मात्रा में शिक्षा, रोटी, कपड़ा, घर तथा उत्तम स्वास्थ्य आदि की सुविधायें नहीं मिल पा रही है। यदि इन समस्याओं का अन्त करना है तो मैं माँ सरस्वती की कृपा से कुछ विनम्र सुझाव यहाँ दे रहा हूँ, हो सकता है कि हमारे इस विनम्र सुझाव से भारत देश रूपी पावन धाम में विराजमान् मानव एवं जीव–जन्तु रूपी मूर्तियों के जीवन में कुछ और सुख–शान्ति की वृद्धि हो सके। हमारे द्वारा दिया गया यह विनम्र सुझाव कुछ इस प्रकार से है–

1. वस्तु के क्रय–विक्रय हेतु बिल–बाउचर रसीद की प्रति ऑनलाइन प्रणाली वाली हो।

2. सरकारी सामान खरीदने वाले व्यक्ति को पर्याप्त रूप में टी0ए0, डी0ए0 आदि दिया जाय, जिससे वह खुशीपूर्वक सरकारी सामान आदि को खरीद सके।

3. सरकारी संस्थाओं में आवश्यकता के अनुरूप बजट इत्यादि दिया जाय।

4. पर व्यक्ति प्रतिदिन 300 रूपये ही नगद निकासी कर सके, शेष पैसे की धनराशि का लेन–देन ऑनलाइन ट्रांसफर प्रणाली से किया जाय।

5. आय से अधिक सम्पत्ति अर्थात् जमीन–जायदाद, घर तथा पैसा आदि जब्त किया जाय।

6. धर्म के नाम पर सरकार द्वारा एक रूपये भी पैसा इत्यादि खर्च न किया जाय।

7. धर्म के नाम पर जल–जंगल–जमीन आदि को कब्जा करने वाले व्यक्तियों को सख्ती से हटाया जाय। क्योंकि इससे जल–जंगल–जमीन आदि की दिनों–दिन कमी होती जा रही है, किसान देवता कहाँ से अधिक अन्न उपजायें।

8. लेखपाल, कानूनगो आदि राजस्व विभाग द्वारा आवश्यकता पड़े तो अन्य विभागों का सहयोग लेकर निष्पक्ष और पारदर्शी पूर्ण सत्यापित कराकर राशनकार्ड आदि बनाये जायें।

9. सरकारी पैसों, गाड़ी को जो कुछ मूर्ख लोग जान–बूझकर दुरुपयोग करते हैं ऐसे विभिन्न विभाग के कुछ अधिकारी/कर्मचारी, नेता, ठेकेदार आदि को कठोर से कठोर दण्ड देने का प्राविधान हो।

10. ऋग्वेद, उपनिषद् आदि के अनुसार हमारा देश ही पावन धाम है, और इसमें विराजमान् मानव एवं जीव–जन्तु मूर्ति हैं। इसलिए अलग से मन्दिर–मस्जिद– चर्च–गुरुद्वारा आदि के निर्माण हेतु न ही सरकार द्वारा और न ही किसी व्यक्ति विशेष द्वारा एक रूपये भी खर्च न किये जाये।

11. कुम्भ मेला आदि का आयोजन हेतु सरकार द्वारा पैसा न खर्च किया जाय। जिससेकि नदियों आदि का जल दूषित होने से बचा रहे और इस बचे हुए पैसों से स्कूल, कॉलेज उत्तम स्वास्थ्य सेवायें, पेड़–पौधों तथा वन संरक्षण, कषि, गरीबों के विकास तथा अन्य महत्त्वपूर्ण विकास कार्य हेतु लगाये जायें। क्योंकि ऋग्वेद, उपनिषद् आदि में गंगा आदि महान् नदियों के तट पर बहुत अधिक पक्का घाट आदि निर्माण करने की बात नहीं है। ऐसा करने से सरिया, सीमेन्ट, बालू, गिट्टी आदि का दुरुपयोग ही होता है इससे प्रकषति का भरपूर दोहन ही होता है। क्योंकि ये सब पदार्थ धरती माता से ही निकलता है, इसलिए जो भी वस्तु धरती माता से ग्रहण किया जाय, वह सीमित मात्रा में हो। इस सन्दर्भ में बनाये गये नियम का कठोरता से भी पालन होना चाहिए।

12. क्रिकेट आदि खेल के नाम पर सरकार द्वारा अनाप–शनाप पैसे आदि न खर्च करके विशालकाय स्टेडियम (खेल का मैदान) आदि का निर्माण न कराया जाय, बल्कि अन्य खेलों की भाँति इस खेल को भी कम से कम पैसों में सामान्य तरीकों से संचालित किया जाय।

13. घूमने–फिरने हेतु सरकार द्वारा बड़े–बड़े पार्क आदि का निर्माण न कराया जाय।

14. संसार ही धाम है और इसमें रहने वाले प्राणी (सम्पूर्ण मानव एवं जीव–जन्तु) मूर्ति हैं, इन्हीं मूर्तियों की अपनी क्षमतानुसार सेवा–सुरक्षा करना ही धर्म एवं पूजा है, जिस सन्दर्भ की पुष्टि भगवान् श्रीकष्ण ने अर्जुन से गीता में कह कर की थी।[13] ईश्वर संसार के प्रत्येक प्राणी में विराजमान् हैं जैसा कि कहा भी गया है–ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किंच जगत्यां जगत्।[14] ऐसे घटि–घटि राम हैं।[15] सीय राममय सब जग जानी।[16] हरि व्यापक सर्वत्र समाना।[17] अखिल बिस्व यह मोर उपाया। सब पर मोहि बराबर दाया।।[18] इसलिए सरकार या किसी व्यक्ति विशेष द्वारा महापुरुषों की विशालकाय प्रतिमा आदि को निर्माण न करके बल्कि छोटी सी छोटी प्रतिमाओं आदि का निर्माण करने की सरकार द्वारा अनुमति हो और वैसे भी सात्विक महापुरुषों ने प्रतिमाओं की निर्माण आदि के लिए नहीं कहा है। क्योंकि ऋग्वेद्, उपनिषद् आदि पावन ग्रन्थों में किसी भी प्रकार की मूर्ति पूजा का उल्लेख नहीं मिलता। बल्कि ईश्वर स्वरूप प्रकषति ही विशालकाय मूर्ति है, इसी को हम लोग साक्षी मानकर जीवन पर्यन्त अमर्यादित कार्यों से बचे, जो कि यथार्थ सत्य है।

15. प्रत्येक सरकारी संस्थान में अधिकारी/कर्मचारी की उपस्थिति है बायोमैट्रिक मशीन लगाई जाय और तीन बार उपस्थिति दर्ज की जाय तथा इन अधिकारी, कर्मचारी को सप्ताह में दो बार अवकाश दिये जायें।

16. प्रत्येक सरकारी संस्थान में अधिकारी/कर्मचारी के पूरे पद भरे जायें।

अतएव उपर्युक्त 'अपरिग्रह' की भावना के सन्दर्भ में चिन्तन–मनन करने के साथ ही साथ हमने जो कुछ विनम्र सुझाव भी दिया है इससे स्पष्ट है कि यदि हम लोग इस चिन्तन–मनन से युक्त सुझाव को अपने मन, वाणी एवं कर्म में जीवन पर्यन्त अपनायें और इस सकारात्मक नियम के अनुसार सरकार/व्यक्ति द्वारा देश–समाज इत्यादि का संचालन हो, तो निश्चित ही मानव एवं जीव–जन्तु के जीवन में सुख–शान्ति के साथ–साथ पशु–पक्षियों के

जीवन में भी सुख–शान्ति की वृद्धि हो सकेगी और साथ ही हमारे देश–समाज की अर्थव्यवस्था भी मजबूत होगी। क्योंकि जब प्रत्येक व्यक्ति के मन, वाणी एवं कर्म में बेईमानी इत्यादि नहीं होगी, तो यह स्थापित सत्य है कि अनावश्यक पैसे इत्यादि बरबाद नहीं होंगे, जिससे ढेर सारे पैसे इत्यादि बचेंगे जो मानव एवं जीव–जन्तु के कल्याण हेतु पूरी तरह से लाभकारी सिद्ध होगा।

इस प्रकार हम निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि यदि हम लोग ईश्वर की कृपा और अपने ईमानदारी की मेहनत–परिश्रम से डॉक्टर, प्रोफेसर, शिक्षक, कृषक, प्रिंसिपल, डायरेक्टर, अधिकारी, कर्मचारी, न्यायधीश, वकील, इंजीनियर, व्यापारी, देश समाज का मंत्री, सांसद विधायक, जिला पंचायत सदस्य, जिलाध्यक्ष, ब्लाक प्रमुख, ग्राम प्रधान, साधु–संन्यासी, ठेकेदार आदि बन जाय तो 'अपरिग्रह' की भावना अर्थात् ईमानदारी से समाज में सेवा इत्यादि से कमाये गये रूपये–पैसे से अपना तथा अपने घर–परिवार, समाज आदि का पेट भरने की भरपूर कोशिश करेंगे, न कि हम लोग जान–बूझकर बेईमानी तथा छल, कपट पूर्वक कमाये गये धन–दौलत से। ऐसा करने से ही हम सभी लोगों को भरपूर सुख–शान्ति की महसूस होगी। इस तरह से जब प्रत्येक व्यक्ति अपने संस्थान से युक्त देश को पावन धाम और इसमें विराजमान् मानव एवं जीव–जन्तु को मूर्ति मानकर अपनी–अपनी क्षमतानुसार सेवा–सुरक्षा करेंगे तो निश्चित ही व्यक्ति के, सुख–शान्ति के साथ जीव–जन्तु के जीवन में भी सुख–शान्ति की वषद्धि हो सकेगी और मानवों द्वारा अपने देश के प्रति ईमानदारी पूर्वक समर्पण भाव के कारण, देश की अर्थव्यवस्था भी सुदष्ढ़ होगी। सुदृढ़ अर्थव्यवस्था के कारण बचे हुए पैसों से उन लोगों को भी पर्याप्त रूप में शिक्षा, रोटी, कपड़ा, मकान तथा उत्तम स्वास्थ्य आदि मिल सकेगा, जो हमारे देश रूपी पावन धाम में रहने के बावजूद भी, पर्याप्त मात्रा में मूलभूत सुविधाओं से वंचित हैं।

अतएव इस प्रकार से स्पष्ट है कि अपरिग्रह की भावना से आत्मा की शान्ति एवं आर्थिक समस्या का समाधान पूर्णरूप से सम्भव है।

संन्दर्भ–सूची

1. डॉ0 शशिभूषण सिंह एवं डॉ0 केदारनाथ सिंह द्वारा रचित भारतीय दर्शन, पृ. 408, ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित।
2. रामचरितमानस अयोध्याकाण्ड, चौपाई, पृ. 296, पुस्तक कोड–82, तिरसठवाँ संस्करण, गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित।
3. रामचरितमानस बालकाण्ड, चौपाई, पृ. 15, पुस्तक कोड–82, तिरसठवाँ संस्करण, गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित।
4. कबीर ग्रन्थावली से।
5. रामचरितमानस बालकाण्ड, चौपाई, पृ. 283, पुस्तक कोड–82, तिरसठवाँ संस्करण, गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित।
6. कबीर ग्रन्थावली से।
7. कबीर ग्रन्थावली से।
8. रामचरितमानस उत्तरकाण्ड, चौपाई, पृ.–868, पुस्तक कोड–82, तिरसठवाँ संस्करण, गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित।
9. रामचरितमानस उत्तरकाण्ड, चौपाई, पृ. 869, पुस्तक कोड–82, तिरसठवाँ संस्करण, गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित।
10. रामचरितमानस उत्तरकाण्ड, छन्द, पृ. 871, पुस्तक कोड–82, तिरसठवाँ संस्करण, गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित।
11. रामचरितमानस उत्तरकाण्ड, छन्द, पृ. 870, पुस्तक कोड–82, तिरसठवाँ संस्करण, गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित।

12. रामचरितमानस बालकाण्ड, चौपाई, पृ. 283, पुस्तक कोड–82, तिरसठवाँ संस्करण, गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित।
13. यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं नतम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।। –गीता, 18/46
14. ईशावास्योपनिषद् का पहला मन्त्र।
15. कबीर ग्रन्थावली से।
16. रामचरितमानस बालकाण्ड, चौपाई, पृ. 10, पुस्तक कोड–82, तिरसठवाँ संस्करण, गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित।
17. रामचरितमानस बालकाण्ड, चौपाई, पृ. 149, पुस्तक कोड–82, तिरसठवाँ संस्करण, गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित।
18. रामचरितमानस उत्तरकाण्ड, चौपाई, पृ. 859, पुस्तक कोड–82, तिरसठवाँ संस्करण, गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित।

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Sanskrit : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 18-23

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

महाभारत कालीन सामाजिक परिवर्तन

*डॉ. राजेश रंजन**

महाभारत काल में ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से अनेकों सामाजिक परिवर्तन बताये गये हैं। सामाजिक परिवर्तन में–चातुर्वर्ण्य व्यवस्था, संस्कार, आश्रम, त्रिवर्ग, शिक्षा आदि के क्षेत्र में परिशीलन करना विषयानुकुल होगा। इस प्रकार से ऋग्वेद में वर्णित चातुर्वर्ण्य विषयक यह श्लोक विचारणीय है–

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहु राजन्यः कृतः।
उरु तदस्य उद्वैश्चः पदभ्यां शूद्रो अजायतः।।[1]

अर्थात विराट पुरुष के मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, उरु से वैश्य तथा पाद भाग से शूद्र उत्पत्ति की विवेचना की गयी है। अपितु ऋग्वेद की एक ऋचा में अंगीरस का यह कथन है कि–''मैं कवि हूं, मेरे पिता वैद्य है और मेरी माता अन्न पीसने वाली है।'' जो वर्ण व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य ''कर्म'' के स्वरूप को बताया गया है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के अनेक सूत्रों (116–124) के रचयिता ऋषि काक्षीवान भी औषिक नाम की शूद्र माता के पुत्र थे तथा ऐतरेयब्राह्मण के रचयिता महीदास, जो आज्ञात आचार्य की पत्नी इतरा (शूद्र) दासी के पुत्र थे । ये सभी अपनी विद्वता एवं योग्यता के कारण उच्च स्थान प्राप्त किये इस प्रकार इन प्रसंगों से सिद्ध होता है कि वर्ण के निर्धारण में कर्म की प्रधानता थी ।

महाभारत कालीन सामाजिक परिवर्तन

1. **चातुर्वर्ण्य**–वैदिक काल के समान महाभारत काल में भी यही समान भाव दिखाई देते है, कृष्ण स्वयं कहते हैं कि ''चातुर्वर्ण्य मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः'' अर्थात मैंने चातुर्वर्ण्य की व्यवस्था गुण–कर्म के आधार पर की है। ऋग्वेद में वर्णित विराट पुरुष से चातुर्वर्ण्य की उत्पत्ति का भाव जो समान रूप से महाभारत के भीष्म पर्व के इस श्लोक में द्रश्टव्य है–

मुखतः सोऽसृजद्विप्रान् बाहुभ्यां क्षत्रियांस्तथा।
वैश्यांश्चाप्यूरुतो राजन् शूद्रान् वै पादतस्तथा।।[2]

विचारणीय है कि उत्पत्ति का श्रेय जननी को होता है न कि पुरुष को। इस लिए विराट पुरुष से चातुर्वर्ण्य की उत्पत्ति का यह भाव स्वयं में विचार करने के योग्य है। कदाचित इस भाव की पृष्ठभूमि में सामाजिक ''वर्ग–कर्म'' की प्रधानता निहित है, अर्थात् अध्ययन–अध्यापन और श्रेष्ठ कर्म करने वाला ब्रह्म ज्ञानी मुखरूपी ब्राह्मण है, बाहुबल के द्वारा सुव्यवस्था, युद्ध, राज कार्य करने वाला क्षत्रिय एवं कृषि व्यवसाय आदि कार्य करने वाला व्यक्ति वैश्य तथा हीनकर्मा, क्षुद्रज्ञानी व्यक्ति इन तीन वर्णों की सेवा करने के फलस्वरूप शूद्र वर्ण के अन्तर्गत आता था। महाभारत काल में प्रचुर रूप से कर्म द्वारा वर्ण और जाति निर्धारण के प्रमाण भी प्राप्त होते हैं। अनुशासन पर्व के महेश्वर संवाद में महेश्वर स्वयं कहते हैं कि–

एतैः कर्मफलैर्देवि न्यूनजाति कुलोद्भवः।
शूद्रोऽप्यागमसम्पन्नो द्विजो भवति संस्कृतः ।।[3]

* *प्रवक्ता, संस्कृत विभाग, आदर्श देवकली बाबा स्मारक महाविद्यालय, उदैना, अहरौला, आजमगढ़*

अर्थात् जो सच्चरित्र, दयालु, अतिथि–परायण, निरहंकार गृहस्थ है वह नीच जाति में जन्म लेने पर द्विजत्व लाभ करता है तथा जो ब्राह्मण हो कर भी चरित्रहीन, सर्वभक्षी, निन्दित कर्म करने वाला होता है, वह शूद्रत्व प्राप्त करता है। इसके बाद इसी संवाद में महेश्वर पुनः कहते हैं कि–

एतते गुह्यमाख्यातं तथा शूद्रो भवेद्द्विजः।
ब्राह्मणो वाच्युतो धर्माद् तथा शूद्रत्वमाप्नुते।।[4]

अर्थात् मैं तुम्हें गुह्यतत्व बताता हूँ कि शूद्र कुल में जन्म लेकर भी ब्राह्मणत्व प्राप्त किया जा सकता है और ब्राह्मण भी धर्मच्युत होकर शूद्रत्व को प्राप्त होता है।

इस प्रकार से महाभारत के आदि पर्व अनुशासन पर्व, बताया गया है कि विश्वामित्र ने क्षत्रिय कुल में जन्म लेकर भी अपनी कठोर तपस्या के बल पर ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था।[5] महर्षि भृगु के प्रसाद से क्षत्रिय हैहय राज ब्रह्मर्षि बन गये थे।[6] द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा एवं कृपाचार्य ब्राह्मण थे परन्तु यह सभी शस्त्र ग्रहण कर कौरव पक्ष की ओर से महाभारत के युद्ध में भाग ले रहे थे। लेकिन महाभारत काल में परिवर्तन स्वरूप इसके विपरीत भाव देखने को मिलते हैं–वनपर्व का यह श्लोक– स्वयोनितः कर्म सदा चरन्ति।[7] अर्थात् सभी प्राणियों का जन्म से ही अपना–अपना कर्म निश्चित होता है। वन पर्व एवं भीष्म पर्व के एक अन्य श्लोक में जन्मगत, जाति, धर्म किसी भी व्यवस्था में परित्याज्य नहीं है।[8] अनुशासन पर्व के अनुसार ब्राह्मण कुल में जन्म लेने से ही ब्राह्मण पूज्यनीय होता है।[9] इस परिप्रेक्ष्य में एकलव्य की कथा विचारणीय है निषादराज हिरण्यधन का पुत्र एकलव्य जब धनुर्विद्या ग्रहण करने के उद्देश्य से आचार्य द्रोण के निकट उपस्थित हुआ तो आचार्य ने उसे शिष्य के रूप में स्वीकार नहीं किया। इसके अतिरिक्त छल से उसका अंगूठा भी गुरुदक्षिणा में दान स्वरूप ले लिया। इससे ज्ञात होता है कि वर्ण व्यवस्था की जटिलता एवं ऊँच–नीच का भेद–भाव, जाति प्रथा के अन्तर्गत आरम्भ हो चुका था। चार्तुवर्ण्य के इसी परिवर्तनीय भाव ने कालान्तर में जटिलतम स्वरूप ग्रहण कर लिया था।

2. संस्कार–सभी संस्कारों का वर्णन महाभारत में विशद् रूप से नहीं प्राप्त होता है। मात्र दो या चार के ही वर्णन मिलते हैं। प्राचीन काल से धर्म के प्रधान अंग के रूप में वर्णाश्रम समाज में विवाह, गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म एवं उपनयन संस्कार प्रचलित थे। उपनयन संस्कार शूद्रों के लिए वर्जित था। महाभारत में गर्भाधान का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। शान्ति पर्व के अनुसार आधि–व्याधि–विमुक्त संतान का पिता बनने की इच्छा हो तो समचित्त होकर केवल ऋतुकाल में ही अभिगमन करना आवश्यक कर्तव्य माना गया है।[10] लेकिन महाभारत काल में संस्कार के अन्तर्गत विवाह के विषय में परस्पर विरोधी भावनाएँ प्राप्त होती हैं। प्राचीन काल से चला आ रहा नर–नारी का यथेच्छ मिलन ही इस काल की प्रथा थी। नारी का बहुत से पुरुषों के प्रति एवं एक पुरुष का बहुत सी नारियों के प्रति आकृष्ट होना सामाजिक रूप से दोष नहीं माना जाता था। पांडु की उक्ति के अनुसार उनके राज काल में भी उत्तर कुरु में विवाह प्रथा प्रचलित थी। इस विषय में आदि पर्व में यह श्लोक कहा गया है–

अनावृताः किंल पुरा स्त्रिः आसब्वरानेनाः।
कामचार विहारिव्य स्वतन्त्रश्चारूहासिनी।।
तासांव्युच्चरमाणानां कौमारात्गुभगे पतीन् ।
नाधर्मीऽभूद्वरारोह स हि धर्मः पुराऽभवत्।।[11]

इसका आशय पूर्वकाल में स्त्रियां अपनी इच्छानुसार स्वतंत्र थीं। वह कुमारी होने पर भी अनेक पुरुषों से सम्बन्ध रख सकती थीं। ऐसा करना अधर्म नहीं समझा जाता था और यह परम्परानुकूल था। आदि पर्व के एक अन्य श्लोक में–ऋतावृतौ राजपुत्रि स्त्रिया भर्त्ता पतिव्रते।[12] इत्यादि अर्थात् केवल ऋतुकाल में पति के साथ तथा अन्य दिनों में नारियां इच्छानुसार दूसरे पुरुषों के साथ विहार कर सकती थीं। यह नियम समाज में प्रचलित था। इस सम्बन्ध में आदि पर्व का यह श्लोक द्रष्टव्य है–

ऋतुं वै याचमानाया नं ददाति पुत्रानृतुम ।

भ्रूण हेतुच्युते ब्रह्मन स इय महर्षिभि ।।[13]

इस आशय यदि कोई ऋतुस्नाना स्त्री किसी पुरुष से काम निवेदन करे ऐसे में उसकी पुरुष द्वारा उपेक्षा करना पाप बताया गया है। इन स्वतंत्र भावनाओं के विपरीत महाभारत के कथानकों से ज्ञात होता है कि यौन–व्यापार के स्वच्छंदाचरण से क्षुब्ध होकर ऋषि उद्दालक– आरुणि के पुत्र श्वेतकेतु तथा दीर्घतमा ने एक पुरुष व एक ही स्त्री के परस्पर सम्बन्ध के नियम बनाये जो कालान्तर में जटिलतम् परिवर्तन स्वरूप विवाह–मर्यादा के रूप में परिनिष्ठित हुआ।[14]

3. नियोग–पति की मृत्यु या संतानोत्पत्ति में असमर्थ होने पर अपुत्रा नारी जब वंष–लोप के उद्देश्य से अन्य किसी उत्तम पुरुष के संयोग द्वारा गर्भधारण करती है तो इस व्यवस्था को नियोग प्रथा कहते हैं और इस प्रकार से उत्पन्न पुत्र को क्षेत्रज कहा जाता था। आदि पर्व के अनुसार तत्कालीन समाज में यह प्रथा प्रचलित थी।[15] धृतराष्ट्र, पाण्डु एवं विदुर के जन्मदाता कृष्णद्वैपायन (वेदव्यास) को माना जाता है।[16]

आदि पर्व के अनुसार कुन्ती ने क्रमानुसार धर्म, वायु व इन्द्र से गर्भधारण कर क्रमशः तीन पुत्र युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन को तथा माद्री ने अश्वनी कुमारों से नकुल व सहदेव को जन्म दिया।[17] महाभारत काल में नियोग प्रथा के अनेकों उदाहरण प्राप्त होते हैं। सर्व साधारण क्षेत्रज पुत्र को बहुत अच्छी दृष्टि से नहीं देखा जाता था। जयद्रथ, दुःशासन और दुर्योधन, पाण्डुओं को प्रायः पाण्डु के क्षेत्रज पुत्र कहकर संबोधित किया करते थे। कदाचित् इस युक्ति से ज्ञात होता है कि हीन भावनाओं के फलस्वरूप कालान्तर में नियोग प्रथा का ह्रास हो गया। प्राचीन काल से प्रचलित बहुपत्नीत्व और बहुपतित्व प्रथा भी महाभारत काल में दिखायी देती है। आदि पर्व के अनुसार–जटिला सात ऋषियों के साथ तथा बाक्षीं प्रचेता दस पुरुषों के साथ विवाह सूत्र में आबद्ध हुई थी जो परस्पर भाई–भाई थे।[18] नारी–प्रबन्ध के परिशीलन से ज्ञात होता है कि बलात्कार में स्त्री का दोष नहीं माना जाता था। अनुशासन पर्व पितृगृह में ऋतुमती होने के तीन वर्षों के उपरान्त पितृमत की प्रतिक्षा किये बिना कन्या को अपना पति चुन लेने का विधान है।[19]

4. विवाह–महाभारत के आदि पर्व में दिये श्लोक के परिशीलन से–अष्टावेव समासेन विवाहा धर्मतः स्मृताः।[20] आठ प्रकार के विवाह का विधान होता है।

1. ब्रह्म विवाह[21], 2. दैव विवाह[22], 3. आर्ष विवाह[23], 4. प्रजापत्य विवाह[24], 5. असुर विवाह[25], 5. गंधर्व विवाह[26], 7. राक्षस विवाह[27], 8. पैशाच विवाह।[28]

महाभारत काल में संक्षेप में वर और कन्या की आयु के सम्बन्ध में भी विवरण प्राप्त होता है। तीस वर्ष का वर दस वर्ष की वयस्का और इक्कीस वर्ष का वर तथा सात वर्ष की नग्निका से पाणिग्रहण करने का भी उल्लेख है। महाभारत काल में स्वयंवर प्रथा का भी प्रचलन था।

5. जाति–भेद कन्या ग्रहण–महाभारत में जाति व वर्ण के आधार पर विवाह की अनेक विधि निषेध है। ब्राह्मण पुरुष क्षत्रिय व वैश्य की कन्या को पत्नी के रूप में ग्रहण कर सकता था। इसी प्रकार क्षत्रिय पुरुष क्षत्रिय व वैश्य की कन्या से विवाह कर सकता था। वैश्य केवल वैश्य एवं शूद्र मात्र शूद्र कन्या से विवाह कर सकता था। अनुलोम–प्रतिलोम विवाह के विषय में महाभारत में अनेक उदाहरण मिलते हैं जिसमें अनुलोम विवाह के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं– जैसे– पराशर का सत्यवती से[29], च्यवन ऋषि का सुकन्या से[30], ऋचीक का गाधि कन्या से[31], जगदग्नि का रेणुका से विवाह[32] आदि। महाभारत में प्रतिलोम विवाह को बहुत निन्दनीय बताया गया है। विदुर यदि चाहते तो क्षत्रिय कन्या से विवाह कर सकते थे परन्तु धर्मनाश के भय से उन्होंने ब्राह्मण पिता एवं शूद्र माता के गर्भ से उत्पन्न कन्या पारश्वी से विवाह किया था।[33] द्रौपदी ने अपने स्वयंवर सभा में समस्त उपस्थित जन के समक्ष कर्ण द्वारा लक्ष्य भेद के उद्देश्य से धनुष वर बाण चढ़ाते समय उच्च स्वर में कहा–''दृष्टवा तु तं द्रोपती वाक्यमुच्यैर्जगद नाहं वरयामि सूतम्'' ।[34] अर्थात '' मैं सूत–पुत्र को वरण नहीं करूंगी''। एक मात्र भार्या की सहायता से पुरुष धर्म, अर्थ और काम रूप त्रिवर्ग का एक साथ उपभोग कर सकता है।[35]

6. शिक्षा–महाभारत काल में सभी जातियों एवं वर्णों की समान शिक्षा का उदाहरण प्राप्त होता है। शूद्रगर्भजात महामत विदुर सर्वशास्त्रों के पंडित थे, सूतजातीय लौमहर्षण, संजय, सैति, युयुत्सु आदि भी प्रकाण्ड

पंडित थे। राजा द्वारा अमात्यों की नियुक्ति करते समय उनमें तीन शूद्रों को भी नियुक्त करना पड़ता था। अनेक विदुषी महिलाओं का विवरण भी प्राप्त होता है। जैसे–शिवा, विदुला, ब्रह्मज्ञा, गौतमी, अरून्धती, दम्यन्ती, उत्तरा, माधवी आदि। परन्तु मात्र ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इत्यादि तीन वर्णों की शिक्षा के विषय में अनेक विवरण भी प्राप्त होते हैं। अतएव द्विजातीय के लिए शिक्षा अनिवार्य थी और वे वेदाव्यास का परित्याग नहीं कर सकते थे। दरिद्र के लिए भी उच्च शिक्षा दुष्प्राय नहीं थी। महाभारत काल की शिक्षण संस्थाओं में मिथिला का विद्यापीठ, बद्रीकाश्रम का विद्यापीठ और नैमिषारण्य का महाविद्यापीठ आदि विद्या के सुप्रसिद्ध केन्द्र थे। नैमिषारण्ये शौनकस्य कुलपतेद्वदिशवार्शिके सत्रे।[36] अर्थात् नैमिषारण्य में शौणिक नामक एक कुलपति ने द्वादश वर्षीय एक यज्ञ किया था। पंडितगण राज्यसभा में रहते हुए भी अपने शास्त्रों का उपदेश देते थे। महाभारत में हर जाति–वर्ण के उपदेशकों का विवरण प्राप्त होता है। मिथिला निवासी एक स्वधर्मनिष्ठ व्याध ने तपस्वी ब्राह्मण कौशिका को धर्मोपदेश दिया था।[37]

7. जीविका व्यवस्था–महाभारतकार का कथन है कि जीविका व्यवस्था मनुष्यकृत नहीं है। यह वृत्ति मनुष्य को उत्तराधिकार के सूत्र से प्राप्त होती थी।[38] अलग–अलग वर्ण एवं जाति के उद्देश्य से अलग–अलग वृत्ति की जो व्यवस्था की गयी थी उसका प्रधान उद्देश्य था कि समाज के गठन से सामंजस्य बनाये रखना। वन पर्व के द्विज–व्याथ–संवाद एवं शान्ति पर्व के तुलाधार–जाजलि–संवाद से पता लगता है कि वंश परम्परागत सामाजिक अधिकारों का व्यतिक्रम करना इस युग में युक्ति संगत नहीं था अर्थात् एक वर्ण के सामाजिक अधिकारों में दूसरे वर्ण का प्रवेश बिलकुल निषिद्ध था परन्तु आवश्यक होने पर या आपत्ति काल में प्राण रक्षा के उद्देश्य से थोड़े बहुत व्यतिक्रम का अनुमोदन प्राप्त होता है। इस सामाज में कृषि को श्रेष्ठ एवं उत्तम माना गया है। स्वयं लक्ष्मी कहती हैं–वैश्य च कृष्याभिरते वसामि।[39] अर्थात् कृषिरत वैश्य के शरीर में मैं स्वयं वास करती हूं। महाभारत काल में राजा द्वारा कृषि, वाणिज्य, पशुपालन और महाजनी के कार्य हेतु सज्जन पुरुषों की नियुक्ति का विवरण भी प्राप्त होता है। वैश्य किसी व्यक्ति के मूल धन से वाणिज्य करे तो वह उससे लाभ का सप्तांश अपने पारिश्रमिक स्वरूप ले सकता है।[40] दरिद्र कृषक गोरक्षक या वणिक यदि ऋण लेता है तो अपनी आय द्वारा उसे चुकता नहीं कर सकता तो राजा उन्हें ऋण–मुक्त कर देता था। प्रजा रक्षा के निमित्त राजा का कृषक तथा वणिक से उसकी आय का षष्ठांश कर के रूप में लेने का नियम था।[41]

8. आहार एवं खाद्य–महाभारत काल में आहार एवं खाद्य के सम्बन्ध में यह विचार प्रचलित था कि मनुष्य का आहार केवल शरीर रक्षा के निमित्त नहीं होता बल्कि आहार के साथ मन का अद्भुत सम्बन्ध है। मन पर खाद्य का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। भीष्म पर्व के अनुसार–जो खाद्य वस्तुएँ आयु, सत्व, बल, आरोग्य, सुख और प्रीतिवर्धक एवं स्वादिष्ट रसीली व मनपसन्द होती हैं। वहीं सात्विक प्रकृति के लोगों को प्रिय होती है। इसके विपरीत कटु, अम्ल, लवण, मिर्च आदि तीखे तथा रस रहित रूक्ष तथा विदाहक, खाद्य पदार्थ तामसी प्रकृति के लोगों को प्रिय होते हैं।[42]

अन्य खाद्य वस्तुओं में धान और जौ प्रधान थे तथा गुड़, दही, दूध, घी, तिल, अचार, मछली, मांस और अनेक प्रकार के साग व तरकारी आदि तत्कालीन समाज में प्रचलित थे। महाभारत काल में मांस भक्षण की निन्दा भी की गयी है तथा उसका विधान भी है। सभा पर्व के अनुसार– मांसैर्वाराहहारिणैः।[43] युधिष्ठिर ने अपने राजसूय यज्ञ में ब्राह्मणों को वराह एवं हरिण का मांस दिया था। अश्वपर्व के अनुसार–स्थलजा जलजा ये च पशवः।[44] अर्थात युधिष्ठिर के अश्वमेध यज्ञ में संग्रहीत खाद्य पदार्थों में पशु पक्षी भी सम्मिलित थे। पितरो के तृप्ति एवं ब्राह्मण भोज के उद्देश्य से विहित मंत्रों सहित बलि दिये गये पशु पक्षियों का मांस खाना अवैध नहीं माना गया है।[45] यज्ञादि में निहित पशु के मांस भक्षण में भी कोई दोष नहीं माना गया है।[46] अनुशासन पर्व के अनुसार–आरण्याः सर्वदैवत्याः सर्वशः प्रोक्षिता मगाः।[47] अर्थात् शिकार में मारे गये पशुओं का मांस खाना विहित था। विशेषकर क्षत्रियों के लिए क्योंकि वन के समस्त पशुओं को महर्षि अगस्त ने प्रेक्षित कर दिया था। परन्तु महाभारत के अनुशासन पर्व में मांस भक्षण की निन्दा की गयी थी–''जो मांस खाने के लिए प्राणी हत्या करते हैं वे भी दूसरे जन्म में निहित होते हैं''।[48] उपरोक्त तथ्यों से ज्ञात होता है कि इन भावनाओं के फलस्वरूप पशु हत्या निषिद्ध कही गयी है लेकिन पितरों

की तृप्ति व यज्ञादि एवं शिकार के उद्देश्य से मांस भक्षण को वैध माना गया है इसलिए इन विरोधाभावों से यह ज्ञात होता है कि महाभारत कालीन समाज में मांस भक्षण अथवा उसका निशेध सामाजिक परिवर्तन को दृष्टिगत करता है।

महाभारत काल में सुरापान मुख्य रूप से धनिकों के बीच अधिक प्रचलित था। विराट पर्व के अनुसार–सुरामैरेयपानानि प्रभूतान्युपहारयन्।[49] अर्थात् अभिमन्यु के विवाह में सूरा का अत्यधिक प्रबन्ध था। उद्योग पर्व के अनुसार–कृष्ण व अर्जुन दोनों को सुरा के नशे में मदहोश पाया गया।[50] अश्व पर्व के अनुसार–युधिष्ठिर के अश्वमेध यज्ञ में खाद्य व पेय वस्तुओं की तालिका में मांस व सुरा की ही अधिकता थी।[51] इसी प्रकार कृष्ण व अर्जुन जिस समय जलक्रीड़ा के लिए यमुना तीर पर गये थे तो उनके साथ द्रोपदी, सुभद्रा आदि कुल वधुएं भी गयी थीं। कोई खशी से नाच रही थी, तो कोई हंस रही थी, कोई–कोई उत्कृष्ट सुरा का पान कर रही थी।[52] महाभारत के अनेक पर्वों में सुरापान के प्रचलन होने के साथ–साथ निन्दा भी की गयी है। जो सामाजिक जीवन में परिवर्तन का प्रतीक है।

महाभारत कालीन समाज में वर्ण, संस्कार, विवाह, शिक्षा, नारी–पुरुष बंधन, आहार और खाद्य आदि विषयों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था परिवर्तन सहित जटिलता के पथ पर अग्रसर थी।

सन्दर्भ–सूची

1. ऋग्वेद, 10/90/12
2. महाभारत, भीष्म पर्व, 67–19
3. महाभारत, अनुशासन पर्व, 143/46–47
4. महाभारत, 143/59
5. महाभारत, आदि पर्व, 175/47, अनुशासन पर्व, 40/11, अनुशासन पर्व 4/48 व 18/17
6. महाभारत, अनुशासन पर्व, 30/66
7. महाभारत, वन पर्व, 25/16
8. महाभारत, वन पर्व, 206/20, भीष्म पर्व–42/48
9. महाभारत, अनुशासन पर्व, 268/12
10. महाभारत, शान्ति पर्व, 61/11
11. महाभारत, आदि पर्व, 122/3–4
12. महाभारत, 122/25–26
13. महाभारत, 83/33–35
14. महाभारत, 122/10–20 व आदि पर्व 122/25–26
15. महाभारत, 103/10
16. महाभारत, 106वां अध्याय
17. महाभारत 123वां अध्याय
18. महाभारत 196/44–15
19. महाभारत अनुशासन पर्व 44/16
20. महाभारत आदि पर्व 73/8–9
21. महाभारत अनुशासन पर्व 44/3–4
22. महाभारत 44/3–4
23. महाभारत, 45/20
24. महाभारत, 44/4

25. महाभारत, 44/7, 12, 13
26. महाभारत, अनुशासन पर्व 44/6 व आदि पर्व 73/18–27
27. महाभारत, 44/8
28. महाभारत, 44/8 व आदि पर्व 73/9
29. महाभारत, आदि पर्व 63वां अध्याय
30. महाभारत, वन पर्व 122वां अध्याय
31. महाभारत, 115–21 व अनुशासन पर्व 4/19
32. महाभारत, 116/2
33. महाभारत, आदि पर्व 114/12
34. महाभारत, 187/23
35. महाभारत, अनुशासन पर्व 129/102 व आदि पर्व 74/41–48
36. महाभारत, आदि पर्व 1/1
37. महाभारत, वन पर्व 206वां अध्याय
38. महाभारत, अनुशासन पर्व 73/11 व वन पर्व 207/19
39. महाभारत, 11/19
40. महाभारत, अनुशासन पर्व 60/25
41. महाभारत, 69/25 व 71/10
42. महाभारत, भीष्म पर्व 41/8–10
43. महाभारत, सभा पर्व 4/2
44. महाभारत, अश्व पर्व 85/32
45. महाभारत, अनुशासन पर्व 88/4–10 व 115/45
46. महाभारत, 116/14
47. महाभारत, 116/16
48. महाभारत, 116/11–36
49. महाभारत, विराट पर्व 72/28
50. सुखमय भट्टाचार्य, महाभारत कालीन समाज, पृष्ठ सं0 202
51. महाभारत, अश्व पर्व 89/39
52. महाभारत, आदि पर्व 222/24

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Sanskrit : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 24-28

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

बौद्ध धर्म ग्रन्थों में पर्यावरण

*डॉ. सुकृति**

जल, पृथ्वी, वनस्पति, नदी, पहाड़ इत्यादि में होने वाले बाधाओं ने हमारे जीवन को झाकझोर कर रख दिया है। इस संदर्भ में महात्मा बुद्ध ने यह शिक्षा दी है कि संपूर्ण ब्रह्माण्ड प्रकृति का एक भाग है और इन सबों में जिन्दगी है। अतः मनुष्य, पशु, पक्षी, कीड़े–मकोड़े, पेड़–पौधे, नदियाँ, समुद्र इत्यादि सभी में जीवन है। बुद्ध ने कहा है कि पर्यावरण सम्बन्धी खतरा का कारण है उपयोगितावाद, सांसारिकता, भोग–विलास के प्रति प्रेम, अपवित्रता इत्यादि। यह विचार संपूर्ण विश्व में व्याप्त है। हमने संपूर्ण पृथ्वी को अपनी विलासिता और अपने सुविधानुसार उपयोग करना शुरू कर दिया, फलतः पर्यावरण असंतुलन की स्थिति उत्पन्न हो गयी। प्रारंभिक सुत्र, सुत्त, निपात, धमाक सूत्र में कहा गया है कि मनुष्य को चाहिए कि न वह किसी के प्रति हिंसा करे न ही दूसरों को हिंसा करने के लिए प्रोत्साहित करे, अगर कोई दूसरे को कष्ट पहुँचाता है तो खुशी न मनावें। बुद्ध ने कहा है कि हमें सभी जीव–जन्तुओं, पेड़–पौधों के प्रति संवेदनशील रहना चाहिए, उनके प्रति सहानुभूति, करुणा को प्रदर्शित करना चाहिए। बौद्ध लिपि तेवाग सूत्त में भी इस बात की चर्चा की गयी हैकि हमें समस्त जीवंत वस्तुओं, जन्तुओं के प्रति प्रेम प्रदर्शित करनी चाहिए।

महायान संप्रदाय से सम्बन्धित मिक्यो सूत्र का जापानी मोन्क कूकई ने अपने Dharma Practice का आधार बनाया जिसमें महात्मा बुद्ध राजा–महाराजाओं को यह शिक्षा देते हैं कि सात प्रकार के विपत्तियों को नष्ट करो, चार ऋतुओं को सुव्यवस्थित करो और इस प्रकार पारिस्थितिकी संतुलन के द्वारा अपने–अपने देश की रक्षा करो। जिन सात प्रकार के विपत्तियों की चर्चा बुद्ध ने की है उनकी व्याख्या Nino Kyo के रूप में उपलब्ध है। इन Ninno Kyo के माध्यम से सातों प्रकार के विपत्तियों से बचा सकता हे। ये सात विपत्तियाँ हैं[1] :

1. The calamity of being deprived of the proper order of sun and moon (nichi gastu shitsu do nan)
2. The calamity of being deprived of the proper order of the stars (sei shuku shitsu do nan.)
3. The calamity of the misfortune of fire (sai ka nan.)
4. The calamity of rain and water - (U Sai nam)
5. The calamity of wicked wind - (Aku Fu nan.)
6. The calamity of drought (koyo-nan.)
7. The calamity of wicked rebellion (aku Zoku Nan.)

उपरोक्त वर्णित विपत्तियाँ प्रकृति प्रदत्त पाँचों तत्वों को एवं संपूर्ण पर्यावरण एवं पारिस्थितिक तंत्र को प्रभावित करती हैं। प्रश्न है पारिस्थितिक तंत्र है क्या? प्रकृति में विभिन्न प्रकार के पौधे एवं प्राणी प्रायः प्रत्येक स्थान पर पाये जाते हैं। कोई भी जीव अपने जैसे जीवों तथा विभिन्न जीवों द्वारा प्रभावित रहता है। किसी भी स्थान पर विभिन्न प्रकार के जीव आपस में मिलकर एक समुदाय बनाते हैं। समुदाय के सदस्य आपस में एक दूसरे कोप्रभावित करते ही है, उनसे वातावरण के अन्य घटक भी प्रभावित होते रहते हैं। ब्रिटिश पारिस्थितिकशास्त्री ए. जी. टेन्सले

* *अतिथि व्याख्याता, संस्कृत विभाग, एम. आर. एम. कॉलेज, दरभंगा*

ने 1935 ई. में समुदाय एवं उसे वातावरण के लिए रूप को एक तंत्र माना था। इसी तंत्र को इकोलॉजिकल सिस्टम या पारिस्थितिक तंत्र कहा गया है।[2]

बुद्ध ने कहा था कि पेड़ों में भी जीवन है (जीव संजिनो) । अतः हमें इनकी रक्षा करनी चाहिये। पेड़ों को काटकर हमें अपने मूर्खता को उजागर नहीं करनी चाहिये। जब मनुष्यों द्वारा नये ताड़ वृक्षों को काटकर उसके पत्तों से पादुकायें बनायी जाने लगी तो महात्मा बुद्ध ने मनुष्यों को ऐसा करने से रोकने का प्रयास किया क्योंकि उनके अनुसार ऐसा करना उचित नहीं था। उनका मानना था कि पेड़ों की कटाई से जीव हत्या होती है। साथ ही वातावरण में पर्यावरणीय समस्याएं भी उत्पन्न होती हैं। पर्यावरण का अर्थ जलवायु एवं भूमि से होते हुए भी उसे उनके उस अर्थसम्बन्ध से लिया गया है जो जलवायु भूमि मनुष्य, अन्य जीवित प्राणियों, वृक्षों एवं सूक्ष्म जीव जगत के बीच में मौजूद है। अतः यह स्पष्ट है कि पर्यावरण के अंतर्गत सिर्फ पेड़ पौधे ही नहीं अपितु जल, वायु, वृक्ष, जंगल एवं स्थावर, पशु–पक्षी, कीड़े–मकोड़े इत्यादि सभी सम्मिलित हैं। इन सबों की रक्षा से ही पर्यावरण को स्वच्छ रखा जा सकता है। 'करणीमेत सुत्त' में बुद्ध ने कहा है कि छोटे–बड़े दीर्घ या महान, मध्यम या हस्व, अणु के समान छोटे, दृष्ट या अदृष्ट, दूरस्थ या निकटस्थ, उत्पन्न या अनुत्पन्न समस्त प्राणी सुखी पूर्वक रहें, एक दूसरे की निन्दा, बंचना न करें, सबों के प्रति करुणा एवं दया का भाव रखें।[3]

पर्यावरण पारिस्थितिक के लिए विश्वसनीयता जरूरी है। बौद्धों के संघाराम में सर्वत्र सादगी एवं सहिष्णुता सबों के प्रति आदर, पशु–पक्षियों के प्रति करुणा एवं अहिंसा का अहसास किया जा सकता है। वृक्षों की देखभाल के प्रति बौद्धों का नजरिया हमारे लिए एक सीख प्रस्तुत करता है।

पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी का क्षेत्र काफी व्यापक है। अतः मनुष्य के जीवन एवं वनस्पति के जीवन के मध य किसी भी प्रकार की सीमा रेखा खींची नहीं जा सकती है। मनुष्य एवं वनस्पति एक–दूसरे के पूरक हैं। वनस्पति के साथ–साथ पशु–पक्षी, कीड़े–मकोड़े, नदी आदि सृष्टि में ऐसा समवाय पैदा करते हैं।

महात्मा बुद्ध ने पेड़–पौधों को अपरिहार्य माना है क्योंकि इससे उत्सर्जित होने वाला ऑक्सीजन अंततः हम सभी प्राणियों के लिए जरूरी है। ऑक्सीजन के अभाव में ऑक्सीजन की कमी से लोगों का दिल–दिमाग प्रदूषित हो जाता है। फलतः वे हिंसक हो उठते हैं। यही कारण है कि भगवान बुद्ध ने सदैव पेड़ पौधों से अभिन्नता रखी है।

महात्मा बुद्ध के जन्म से लेकर महापरिनिर्वाण तक के सफर का जब हम अध्ययन करते हैं तो पाते हैं कि उनका जन्म 563 बी. सी. (अप्रैल–मई महीने) में वैशाख के दिन सल वृक्ष के नीचे हुआ। उनका जन्म स्थान लुम्बिनी वन जो कपिलवस्तु एवं देवदार के मध्य भारत नेपाल की सीमा के पास ही हुआ। बचपन में उन्होंने पर्व त्योहार के समय जंबू (rose apple) वृक्ष के नीचे समाधि लगाया एवं अपना पहला ज्ञान विभोत्कर्ष प्राप्त किया। ज्ञान प्राप्त करने के क्रम में महात्मा बुद्ध गया के निकट ऊरूवेला पहुंचे एवं वहाँ के वनों को देखने के उपरांत काफी खुश हुए, वहाँ बहती नदियों को देखकर भाव–विह्वल हुए। वहाँ के वातावरण को देखने के उपरान्त वृक्ष से आच्छादित वन (Deer park) जो वाराणसी से कुछ दूर सारनाथ के वन ऋषिपत्तन मृगदाव में था, वहीं पर बुद्ध ने अपना प्रथम उपदेश अपने पांच अनुयायियों को दिया। उन्होंने अपने शरीर का त्याग कुशीनगर के शालवन में किया। उनका शरीर त्याग महापरिनिर्वाण कहलाता है। इस तरह हम देखते हैं कि महात्मा बुद्ध का संपूर्णजीवन (मृत्यु से महापरिनिर्वाण तक) जंगलों के बीच ही गुजरा। बुद्ध ने अपने अनुयायियों को जंगल में निवास स्थल बनाने की सलाह दी है। उन्होंने आनन्द से कहा कि भिक्खुजनों को धम्म का आचरण करने के लिए शांतप्रिय जगह में होना जरूरी है और अगर संभव हो तो वह जगह वन होना चाहिए। साथ ही ध्यान लगाने के लिए शुद्ध पर्यावरण की जरूरत होती है जो वनों में उपलब्ध है।

बुद्ध का पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी तंत्र का क्षेत्र पशु–पक्षियों, वृक्षों, पौधों के प्रति सहानुभूति तक ही सीमित नहीं है बल्कि वे संपूर्णमानव समाज को एक परिवार के रूप में देखते हैं जिसकी अवधारणा उन्होंने अपने भिक्खुसंघ में प्रदर्शित की है। पारिस्थितिकी के अंतर्गत बुद्ध ने यह नियम बनाया कि चलते–फिरते, उठते–बैठते हमें सदैव इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वृद्धजनों को किसी प्रकार का कष्ट न हों। चुलवग्ग के अंतर्गत 'व्रत स्कंधक' को

सामाजिक पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण का आधारशिला माना गया है। इसमें आने वाले व्यक्ति के कर्तव्य शिष्टाचार नियम निरूपित हैं यद्यपि ये कर्तव्य एवं शिष्टाचार भिक्खुओं के स्वस्थ पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण के लिये बनाये गये थे फिर भी वे संपूर्णसमाज के लिए आज भी अनुकरणीय है।

महात्मा बुद्ध ने स्वच्छता को पर्यावरण के लिए अति महत्वपूर्ण माना है क्योंकि गंदगी से संपूर्ण पर्यावरण प्रदूषित हो जाती है। विनय पिटक के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि विहार में आने वाले लोग धूल–धक्कड़ से परेशान न हों, इससे बचने के लिए भिक्खु संघ के एकत्रित होने के पूर्व ही बिहार में झाडू लगाकर साफ सफाई कर ली जाती थी। इसी तरह शौचालय (बच्चकुटी) के बच्चकूट को ढकने की व्यवस्था की जाती थी ताकि दुर्गन्ध से बचा जा सके। शौचालयों में उपयोग की जानेवाली पानी की निकासी हेतु नाली का निर्माण किया जाता था। पानी के लिए मिट्टी का बड़ा मटका बच्चकुटि में मल को खिसकाकर बच्चकूप में डालने वाला डंडा रखने की व्यवस्था की जाती थी। इसी तरह पेशाब करने के लिए पेशाबघर की अलग से व्यवस्था की जाती थी। पेशाब करने के लिए पेशाबघर में आधुनिक 'यूरिनल' की तरह 'पस्साबकुभि' एवं 'पस्साबदोणि' होती थी जिसके ऊपर ठक्कन (अपिधान) लगाया जाता था। ऐसा करने से विहार में दुर्गन्ध का फैलाव नहीं होता था।

पानी की स्वच्छता पर भी महात्मा बुद्ध का विशेष जोर होता था। विहारों में हाथ–पैर धोने के लिए पानी की व्यवस्था अलग से की जाती थी जबकि पीने योग्य पानी की व्यवस्था अलग से थी। जिसजल का प्रयो हाथ–पैर धोने के लिए किया जाता था उसे 'अपरनीय' कहा जाता था जबकि पीने योग्य पानी को 'पानीय' कहा जाता था। पानी के लिए विहारों में 'उद्पानशाला' हुआ करती थी। इस उद्पानशाला में मिट्टी, काष्ठ एवं लौह से बने बड़े–बड़े बर्तन रखे जाते थे। संपूर्ण 'उद्कशाला' को ढक कर रखने की व्यवस्था की जाती थी ताकि उसमें खर, धूलकण इत्यादि को जाने से रोका जा सके एवं पानी को दूषित होने से बचाया जा सके।

बौद्ध एवं जैन दर्शन में अहिंसा पर अधिक बल दिया गया है। यही कारण है कि बौ दर्शन में पशु–पक्षी, कीड़े–मकोड़े को पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी का एक अंग माना गया है। आज विलुप्त हो रहे गिद्ध की उपयोगिता पर विचार करें तो पायेंगे कि यह पक्षी हमारे पर्यावरण को स्वच्छ बनाये रखने में कितना मददगार साबित हुआ करता था। जब भी कोई जानवर मर जाता था तो गिद्ध उसजानवर के मांस का भक्षण करता था। अगर ऐसा नहीं किया जाता तो मरे हुए जानवर के शरीर से सड़ांध उत्पन्न होती एवं संपूर्ण पर्यावरण प्रदूषित हो जाता। उसके दुर्गन्ध से हमारा जीवन मुश्किल हो जाता। इसी तरह सूअर आदि पशु पर्यावरण को स्व्च्छ बनाये रखने में हमारी मदद करता है। पालि त्रिपिटक से यह स्पष्ट होता है कि भगवान बुद्ध ने पशु–पक्षियों का बराबर ध्यान रखा। जब भी बौद्ध विहार का निर्माण किया जाता था तो इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता था कि उस स्थान में किसी की हिंसा न होने पाये। लोगों द्वारा सिंह, बाघ, चीता को मारकर उसके खाल का प्रयोग आसन बनाने में किया जाता था। इसी तरह लोग गाय के बछडछों को मारकर उससे प्राप्त होने वाले चमड़ा से जूता बनाकर पहनते थे। महात्मा बुद्ध ने इस पशुओं की हत्या पर रोक लगाने एवं उससे प्राप्त चमड़े के प्रयोग को बन्द करने का काम किया। भगवान बुद्ध ने यह भी कहा कि अगर वनों में भिक्खुओं के ध्यान भावना में पशु–पक्षियों को कष्ट होता है तो वे उस स्थान का त्याग कर अन्यत्र चले जायें। वे समस्त प्रकार की जीवों (जल जीव सोत) की अहिंसा की बात कियाकरते थे। जल जीव को विनश्ट होने से बचाने के लिए वे कहा करते थे कि जल को मैला न करें। उसमें कोई ऐसा पदार्थ न डालें जिससे जल जीवों का जीवन समाप्त हो जाये। विश्व स्तर पर अस्सी के दशक के बाद जीव–जन्तुओं के विकास हेतु पर्यावरण प्रदूषण एक बहुत बड़ा कारण बनकर उभरा है और चारों तरफ इसकी चर्चा विस्तृत रूप से की जा रही है। ऐसा करना हमारे लिए इसलिए जरूरी है कि जिससे पर्यावरण को बचाया जा सके। जल को प्रदूषित होने से बचाने के लिए बुद्ध ने कठोर नियम बनाकर पर्यावरण संरक्षण मार्ग की नींव डाली एवं अपने अनुयायियों को उनके बताये मार्ग पर चलने को कहा। चुल्लवग्ग में कीड़े–मकोड़े दो पैरों वालों अर्थात् मनुष्य, चार पैर वाले जानवर आदि समस्त जीवों के प्रति मैत्री की भावना को जागृत करने का सफल–प्रयास महात्मा बुद्ध द्वारा किया गया है। भगवान बुद्ध पर्यावरण

के इतने प्रशंसक थे कि उनके अनुसार यदि भोजन के बाद भोजन बच जाये तो उसे हरियाली के ऊपर न फेंके क्योंकि ऐसा करने से हरियाली के नष्ट होने का खतरा बढ़ जाता है।

महामानव बुद्ध ने पर्यावरण और पारिस्थितिकी संरक्षण के लिए अन्यों को दोषी मानने की अपेक्षा स्वयं अपने चित्त को टटोलना आवश्यक है। प्रायः देखा जाता है कि सरकारें वृक्षारोपण कार्यक्रम प्रतिवर्ष बड़े जोशो–खरोश से चलाती है। वर्ष के अंत में लगाये गये पौधों की दशांश भी कहीं दिखाई नहीं देता। वृक्षारोपण ही पर्यावरण सुधार की इतिश्री नहीं है, अपितु यह तो इसका प्रारंभ है। एक बच्चे की तरह यदि प्रारंभ से पौधे की निरंतर देखीाल नहीं होती है तो उसके जीवित रहने की संभावना बहुत कम रहती है। प्रारंभ में एक निश्चित समय तक बच्चे की देखभाल उसके अच्छे नागरिक बनने की गारंटी रहती है। ठीक वैसे ही पौधों के साथ भी चरितार्थ होता है। आज चलन चल पड़ा है पौधों को गोद लेने का। यह गोद लेना उसके सफल जीवन के लिए आवश्यक है। प्रत्येक व्यक्ति अपने परिवेश के गोद लिए पौधों की सुरक्षा करता है। यह सोच कि पर्यावरण बाहर से कोई नहीं सुधारेगा इसके लिए हमें ही कुछ करना पड़ेगा, बुद्ध भगवान का अपने चित्त को टटोलना ही तो है, जिसकी आवश्यकता उन्होंने अब से बहुत पहले निरूपित की थी। इसके लिए उन्होंने भिक्खुसंघ के लिए 'स्वापराधस्वीकारोक्ति' का नियम बनाया था जिसे 'प्रतिमोक्ष' कहा गया है।

इस प्रकार विनय पिटक में स्वयं मनुष्य को अपने सुधार के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान किया जाता था, जिससे पर्यावरण और पारिस्थितिकी के सुधार में स्वसहायता मिलती थी। इसमें कोई संदेह नहीं है कि वर्तमान समय में मानव समाज के लिए आवश्यक पर्यावरण अत्यध्कि दूष्ति हेत जा रहा है। अब तो पानी, हवा आदि के प्रदूषण से कहीं अधिक हानिकर प्रदूषण मनुष्य का दूषित मस्तिष्क है। यदि इसी प्रकार वातावरण्पा दूषित होता रहा तो जल्दी ही इस पृथ्वी से मानव जीवन का अस्तित्व समाप्त हो जाएगा। ऐसी स्थिति में बुद्ध के करूणा, मैत्री, मुदिता, सुचिता और दया का जीवन में व्यवहार ही विनाश से बचा जा सकता है।

वनों की रक्षा करना बौद्ध धर्म में अतिमहत्वपूर्ण स्थान रखता है। महात्मा बुद्ध कहा करते थे कि वन प्रकृअत की ऐसी धरोहर हुआ करती है जिसमें प्राणियों के लिए अपार दया एवं परोपकार की भावना विद्यमान है। वन दूसरों के प्रति करुणा की भावना तो रखती है किन्तु बदले में अपने लिए कुछ भी याचना नहीं करती। है। वृक्ष सदैव ही उदारतापूर्वक जीवन दायक पदार्थ भेंट करती रहती है। वृक्ष जिसे हम निर्ममतापूर्वक काटने में संकोच तक नहीं करते वे उस वक्त भी हमारा सूर्याताप से रक्षा करते हैं। धम्मपद में इस बात का उल्लेख आया है कि जिस प्रकार भौंरा फूलों के वर्ण एवं गंध को बिना क्षति पहुंचाये उसका रसपान कर उड़ जाता है, उसी प्रकार गुनि भी बिना किसी को कष्ट पहुंचाये ग्रामों में भिक्षाटन करें।

त्रिपिटक भिक्षु धर्मरक्षित ने कहा है कि प्रकम्पन से हवा को प्रमुदित करने वाले, पत्तों द्वारा पशुओं को खुश करने वाले, वल्कर से ऋषि–मुनियों को प्रसन्नचित करने वाले, फूलों द्वारा भौंरों को मुग्ध करनेवाले, धूप से पीड़ित लोगों को अपनी छत्र छाया में विश्राम देने वाले वृक्षों तुमने समस्त विश्व के ऊपर अपनी कृपा दृष्टि देकर उसे कृतार्थ करने का काम किया है।

महात्मा बुद्ध स्वयं अपने अनुयायियों को यह सलाह दिया करते थे कि उन्हें निवास स्थान वनों में बनाना चाहिए। उन्होंने आनन्द से कहा कि एक भिक्खु को धम्म का पालन करना चाहिए, पत्तिमुख का अनुसरण करना चाहिये, प्रशंसा पाने की इच्छा को सीमित करना चाहिये और प्रयास करना चाहिए कि अपना निवास स्थान शांतिप्रिय वन में बनावें और वनों की प्रशंसा स्वच्छ पर्यावरण के रूप में करनी चाहिए ताकि ध्यान लाने में मुश्किलें पैदा न हों। किन्तु यहां यह ध्यान देने की जरूरत है कि योगी को पूर्णतः अपने आपको अलग–अलग नहीं रहना चाहिये। इस तरह बौद्ध सिद्धान्त पर्यावरणीय दृष्टिकोण पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है। महात्मा बुद्ध ने वर्षा के मौसम में अपने अनुयायियों को अपना अधिकांश समय विहार में ही व्यतीत करने को कहा करते थे क्योंकि यह वह समय हुआ करता है कि जब खेतों में पौधे बड़े होते रहते हैं, नित्य नयी नयी जिन्दगियाँ उत्पन्न होती रहती हैं। अगर वनों में या खेतों में भिक्खुओं का भ्रमण अधिकाधिक होगा तो इससे पौधे, जीव–जन्तुओं के पैर के नीचे दब जाने की संभावना बनी रहेगी जो अहिंसा

के सिद्धान्त के विरुद्ध है और पर्यावरण को भी क्षति पहुंचाने में अपनी भूमिका अदा किया करेगी। इस तरह पर्यावरण की स्वच्छता के प्रति महात्मा बुद्ध का दृष्टिकोण स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

संदर्भ–सूची

1. S.K. Pathak (Ed;) : Buddhism and Ecology : Ecology.
2. पारिस्थितिक विज्ञान, पृ. 81 हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, उ0 प्र0, 1973
3. महावग्ग, पृ. 208/28
4. करणीमेत सुत्र गाथा 4–7 (आनन्द बोधि प्रकाशन, श्रावस्ती–1998)
5. विनय पिटक, पृ. 178

* * * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Sanskrit : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 29-31

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

रस स्वरूप-एक विवेचन

संदीप कुमार पाण्डेय

श्रव्य काव्य के पठन अथवा श्रवण एवं दृश्य काव्य के दर्शन तथा श्रवण में जो अलौकिक आनन्द प्राप्त होता है वही काव्य में रस कहलाता है। रस के सम्पूर्ण विवेचन का आधार है भरत मुनि का यह प्रसिद्ध सूत्र –

तत्र विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।

इस सूत्र में मूलतः रस की निष्पत्ति का आख्यान है स्वरूप का नहीं परन्तु रस के स्वरूप का विवेचन इसी में निहित है। स्वयं भरत ने भी अपने मन्तव्य को इस प्रकार स्पष्ट किया है।

यथा हि नानाव्यञ्जनौषधिद्र व्यसंयोगाद्रसनिष्पत्तिर्भवति, यथा हि गुडादिभिर्द्रव्यैव्यंजनैरोषभिश्च षाडवादयो रसा निर्वर्तन्ते...तस्मात्राट्यरसा इत्यभिव्याख्याताः।

जिस प्रकार के नाना प्रकार के व्यंजनों, औषधियों तथा द्रव्यों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है, जिस प्रकार गुड़ादि द्रव्यों, व्यंजनों और औषधियों से 'षाडवादी' रस बनते हैं उसी प्रकार विविध भावों से संयुक्त होकर स्थायीभाव भी रस रूप को प्राप्त होते हैं। प्रश्न उठता है कि रस कौन सा पदार्थ है, इसका उत्तर यह है कि जो आस्वाद्य हो वह रस है। जिस प्रकार नानाविध व्यंजनों का उपभोग करते हुए प्रसन्नचित्त पुरुष रसों का आस्वादन करते हैं और हर्षादि का अनुभव करते हैं उसी प्रकार प्रसन्न व्यक्ति विविध भावों एवं अभिनयों द्वारा व्यंजित, वाचिक, आंगिक तथा सात्विक अभिनयों से संयुक्त स्थायीभावों का आस्वादन करते हैं और हर्षादि को प्राप्त होते हैं। यहीं से रस स्वरूप की चर्चा प्राप्त हो जाती है कि रस का स्वरूप द्विविध है।

1. विषयगत 2. विषयिगत

भरतमुनि के अनुसार विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों से संयुक्त एवं वाचिक, आंगिक तथा सात्विक अभिनयों से व्यंजित स्थायीभाव ही रस है। अर्थात् रस एक प्रकार की भाव मूलक कलात्मक स्थिति है जो विभाव अनुभाव और व्यभिचारीभावों के प्रसंग से नाट्य सामाग्री के द्वारा रंग–मंच पर उपस्थित हो जाती है। ध्वनि पूर्व काल में अलंकारवादियों ने इसे काव्य के क्षेत्र में भी इसी रूप में ग्रहण कर लिया और परिभाषा का रूप इस प्रकार बना।

प्राक्प्रीतिर्दर्शिता सेयं रतिः श्रृंगारतां गता।
रूपबाहुल्ययोगेन तदिदं रसवद्वचः।।

शब्द अर्थ के सौन्दर्य के माध्यम से विभाव, अनुभाव और व्यभिचारियों से संयुक्त स्थायीभाव ही रस का रूप धारण कर लेता है। अर्थात् रस आस्वाद्य रूप है।

इसके अभिनव गुप्त जी के आने के बाद रस का स्वरूप क्रमशः विषयिगत हो गया। उनके अनुसार रस का अर्थ है आनन्द और आनन्द विषयगत न होकर आत्मगत ही होता है। विषय तो आत्मपरामर्श या आत्मास्वाद का माध्यम मात्र है। इसे एक उदाहरण के द्वारा समझते हैं। कुशल नट–नटी दुष्यन्त शकुन्तला के रूप में हमारे सम्मुख उपस्थित होते हैं। ये तपोवन के रमणीय कुजों में पहले–पहल मिलते हैं (विभाव)। दोनों एक दूसरे के आह्लादकर सौन्दर्य को देखकर चकित हो जाते हैं और उत्सुक नेत्रों से एक दूसरे की ओर देखते हैं। अनिच्छापूर्वक जाती हुई शकुन्तला चोरी–चोरी दुष्यन्त पर दृष्टिपात करती है (अनुभाव)। वियोग में कभी–कभी उत्कण्ठा और कभी निराशा से व्यग्र होकर वे एक दूसरे से मिलने को आतुर हो उठते हैं (व्यभिचारीभाव)। सौभाग्य से शकुन्तला, सखी की सहायता से, पत्र द्वारा दुष्यन्त पर अपना प्रेम प्रकट करने का अवसर प्राप्त करती है इतने में दुष्यन्त वहाँ उपस्थित

हो जाता है और इस प्रकार दोनों प्रेमियों का संयोग हो जाता है। यह सब जब काव्य, संगीत, राग वैभव आदि की सहायता से मंच पर प्रदर्शित किया जाता है तो प्रेक्षक के चित्त में वासना रूप से स्थिति रति स्थायीभाव जागृत होकर उस चरम सीमा तक उदीप्त हो जाता है जहां प्रेक्षक वीतविघ्न होकर अर्थात् व्यक्ति देशकाल का अन्तर भूलकर, प्रस्तुत प्रसंग के साथ तनमन हो जाने से आत्मविश्रान्तिमयी आनन्द चेतना में विभोर हो जाता है। यही आनन्द चेतना रस है।

अभिनव के उपरान्त मम्मट ने रस की इसी परिभाषा का व्याख्यान किया और पण्डित राज जगन्नाथ तक यह निरन्तर चलती रही। चौदहवीं शदी के संग्राहक आचार्य विश्वनाथ ने रस स्वरूप का इस प्रकार बताया–

सत्त्वोद्रेकादखण्डस्वप्रकाशानन्दचिन्मयः।
वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वादसहोदरः।
लोकोत्तरचमत्कारप्राणः कैश्चित्प्रमातृभिः।
स्वाकारवदभित्रत्वेनायमास्वाद्यते रसः।।

चित्त में सतोगुण के उद्रेक की स्थिति में विशिष्ट, संस्कारवान, सहृय जन अखण्ड, स्वप्रकाशानन्द, चिनमय अन्य सभी प्रकार के ज्ञान से विर्निमुक्त, ब्रह्मास्वाद–सहोदर, लोकोत्तर चमत्कार प्राण रस का निज स्वरूप से अभिन्नतः आस्वादन करते हैं। इस परिभाषा को सरल शब्दों में अभिव्यक्त करें तो–

1. रस आस्वादन का विषय है–रस का अपने स्वरूप से अभिन्न रीति से आस्वादन किया जाता है तात्पर्य यह है कि रस मौलिक रूप से आस्वाद रूप ही है आस्वाद्य पदार्थ नहीं। किन्तु बोल–चाल की भाषा में हम कहते हैं कि रस का आस्वादन किया जाता है। यह अजीब तरह का विरोधाभाष है। इसको गहराई से समझने के लिये हमें अद्वैत दर्शन को समझना होगा। अद्वैत दर्शन के अनुसार केवल एक आत्म तत्व की ही सत्ता है इसका मतलब यह आत्मा आनन्द रूप है, आनन्द इसका स्वभाव है, भोग्यपदार्थ नहीं है, परन्तु व्यावहारिक रूप से आत्मा द्वारा आनन्द के भोग की चर्चा शास्त्रों में मिलती है। हम ऐसा कह सकते हैं कि आत्मा, आनन्द और भोग जिस प्रकार तत्व रूप में एक है उसी प्रकार आस्वादयिता, आस्वाद्य, आस्वाद भी तत्व रूप में एक है। अतः भरत तथा ध्वनि पूर्व काल के अलंकारवादियों की वस्तु परक व्याख्या अशुद्ध है।

2. रस का आर्विभाव सतो गुण के उद्रेक की स्थिति में होता है–संसारिक राग द्वेष से मुक्त चित्त ही सतोगुण की स्थिति में होता है और रस का आस्वाद राग द्वेष से मुक्त चित्त के वैशद्य या समाहिति की अवस्था में संभव है। यह आस्वाद सात्विक अर्थात् अत्यन्त परिष्कृत कोटि का होता है।

3. रस अखण्ड है–इसका तात्पर्य यह है कि जब रसानुभूति की प्रक्रिया होती है तो विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी आदि की अलग–अलग क्रम से अनुभूति नहीं होती है बल्कि एकान्वित अनुभूति होती है। दूसरी प्रमुख बात यह कि रसानुभव में, आत्मा का पूर्ण तन्मयीभाव होने के कारण मात्रा भेद नहीं है। पूर्णता में किसी प्रकार के तारतम्य की संभावना नहीं होती क्योंकि पूर्ण से पूर्णतर की तो कल्पना ही नहीं की जा सकती क्योंकि जो पूर्ण से कम होगा वहां परमानन्द कैसे होगा। अर्थात् वहां रस की स्थिति नहीं होगी।

4. रस अन्य ज्ञान से रहित है–तात्पर्य यह है कि रस पूर्णरूप से मग्न होने की स्थिति है। अतः इस अवस्था में अन्य किसी प्रकार के ज्ञान की संभावना नहीं रह जाती। रस की स्थिति में व्यक्ति स्व, पर, तटस्थ आदि की भावना से मुक्त हो जाता है। इस अवस्था में वह सभी प्रकार के बंधनों से ऊपर उठ कर आत्मलीन हो जाता है।

5. रस स्वप्रकाशानन्द है चिन्मय है–रसानुभूति वस्तुतः आत्म चैतन्य से प्रकाशित आनन्दमयी चेतना है। हम कह सकते हैं कि जिस प्रकार ब्रह्म स्वयं प्रकाशमान है उसी प्रकार रस भी स्वयं प्रकाशानन्द है। मुख्य बात यह है कि रसानुभव एक प्रकार का स्वस्थ परिष्कृत आनन्द है जिसकी तुलना ऐन्द्रिक आनन्द या विषय सुख की कोटि के आनन्द से नहीं की जा सकती।

6. रस लोकोत्तर चमत्कारमय है –रस का हम प्रत्यक्ष रूप से अनुभव नहीं कर सकते और न ही परोक्ष रूप से। न तो यह ऐसा ज्ञान है, जिसमें ज्ञाता की चेतना विद्यमान रहती है और न ऐसा ज्ञान, जिसमें ज्ञाता की चेतना विलीन हो जाती है। इस प्रकार यह अनिर्वचनीय और अलौकिक है। यहां पर ध्यातव्य बात ये है कि अलौकिक कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि रस अति प्राकृतिक है बल्कि हम ऐसा कह सकते हैं कि इन्द्रियों के द्वारा हम उसका अनुभव नहीं कर सकते।

7. रस ब्रह्मा स्वादसहोदय है–तात्पर्य यह है कि रस विषयानन्द से भिन्न है। अर्थात् वह इन्द्रियों का विषय न होकर चैतन्य आत्मा का विषय है। परन्तु यहां एक बात अत्यन्त ध्यान देने योग्य है कि रस ब्रह्मानन्द नहीं है क्योंकि ब्रह्मानन्द स्थायी होता है, रस अस्थायी। रस में लौकिक विषयों का सर्वथा तिरोभाव नहीं होता।

पण्डित राज जगन्नाथ के दृष्टिकोण से भी काव्यानन्द में और ब्रह्मानन्द में अन्तर है। ये दोनों ही आत्मानन्द के भेद हैं। काव्यानन्द ने विशुद्ध रत्यादि की भूमिका रहती है अतः वह अस्थायी है। वहीं ब्रह्मानन्द में इस प्रकार की कोई भूमिका नहीं रहती अतः वह स्थायी है। विषयानन्द में भी जो आनन्द है वह आत्मास्वाद का वाचक है किन्तु वह विषय से ग्रस्त है। अर्थात् प्रकृति के दोष उसमें विद्यमान है।

अन्त में सारांश यह है कि रस काव्य का आस्वाद है। यह आस्वाद आनन्दमय है इसे एक प्रकार की आनन्द चेतना कह सकते हैं। जिसका अर्थ है आत्म–साक्षात्कार। अभिनव गुप्त जी के शब्दों में आत्म परामर्श और भट्टनायक के शब्दों में संविद्विश्रान्ति। फिर भी चूंकि यह आनन्द न तो स्थायी होता है और न इसमें लौकिक विषयों का सर्वथा तिरोभाव ही हो पाता है। अतः यह शुद्ध आत्मानन्द नहीं है। इस प्रकार संस्कृत काव्यशास्त्र के प्रतिनिधि आचार्यों के अनुसार आत्म चैतन्य के आस्वाद का नाम रस है।

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Sanskrit : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 32-34

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

वेणीसंहार में द्रौपदी का संघर्षात्मक जीवन

एकता प्रो. अनीता जैन***

शोध–सारांश

मनुष्य का मन और बाहरी जगत एक दूसरे के समान और सापेक्ष है बाहरी जगतएवं मनुष्य के मन में संघर्ष चलता रहता है, साहित्यकार मनुष्य के इन संघर्षों को सहज या परोक्ष रूप से नाटक में चित्रित करता है। संघर्ष से युक्त नाटक जीवांत, स्वाभाविक, मार्मिक, प्रेरणादायक और रुचिकर होता है। जिसके फलस्वरूप नाटक में संघर्ष का विशेष महत्व होता है भट्टनारायण ने नाटक में द्रौपदी के संघर्षात्मक जीवन का स्वाभाविक एवं आकर्षित चित्रण किया है। अतः मेरे इस शोधपत्र का उद्देश्य वेणीसहांर में द्रौपदी के संघर्षात्मक जीवन को दर्शाना है।

संघर्ष एक सार्वभौम प्रक्रिया है। संघर्ष हमारे समाज, सृष्टि और मन की ऐसी अवस्था है जो जीवन के हर क्षेत्र में व्याप्त है प्रकृति के विकास में भी संघर्ष ही महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। सूर्य की किरणों का समुद्र की लहरों से संघर्ष का परिणाम ही मेघखंड होता है, पूर्णिमा की चांदनी और लहरों के संघर्ष से ज्वार भाटा का जन्म होता है इसी प्रकार मानव की आंतरिक और बाह्य परिस्थितियां अथवा अवस्थाएं मिलकर कई प्रकार की संघर्षात्मक परिस्थितियाँ उत्पन्न करती हैं। इस संघर्ष का क्षेत्र भी मानव मन, जीवन और इस प्राकृतिक सत्ता की भांति अत्यंत व्यापक है। संघर्ष को जीवन का लक्षण भी कहा जाता है और संघर्ष के द्वारा ही सही अर्थों में जीवन रत्न की प्राप्ति होती है व्यक्तिगत और समष्टिगत जीवन की प्रगति के लिए संघर्ष अत्यंत उपादेय है व्यक्ति जीवन में जितना आगे बढ़ना चाहता है उसे संघर्ष भी उतना ही करना पड़ता है जो व्यक्ति या समाज मुर्दे की तरह पड़ा रहता है वे स्वयं नष्ट हो जाया करते हैं अतः संघर्ष ही जीवन है।

संघर्ष के विविध रूपों एवं आयामों ने मानव व्यवहार समाज को बहुत प्रभावित किया है। इसको दो भागों में विभक्त किया जा सकता है 1. आंतरिक संघर्ष 2. बाह्य संघर्ष।

आंतरिक संघर्ष –यह संघर्ष मनुष्य के भीतर उठे विरोधों पर आधारित होता है यह भीतरी विरोधी जीवन मूल्यों, मूल प्रवृत्तियों, भावनाओं, आकांक्षाओं, इच्छाओं में उठा होता हैं।[1]

बाह्यसंघर्ष–मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, समाज में रहते हुए उसे अनेक परिस्थितियों से संघर्ष करना पड़ता है। परिस्थिति विशेष के अंतर्गत व्यक्ति को नियति से, व्यक्ति को प्रकृति से, व्यक्ति का अन्य व्यक्ति से, व्यक्ति का समुदाय से, व्यक्ति का आर्थिक व्यवस्था से,व्यक्ति का राजनीति से, समुदाय का समुदाय से संघर्ष हो सकता है। अतः बाह्य संघर्ष सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक हो सकता है।[2]

वेणीसहांर में द्रौपदी के संघर्षात्मक जीवन का वर्णन भट्टनारायण ने प्रथम तथा छठे अंक में किया है। भट्टनारायण ने नाटक के प्रथम अंक में भीमसेन की उक्ति से प्रकट द्रौपदी के संघर्षात्मक जीवन को संकेत रूप में दर्शाया है वह कहता है कि राज्यसभा में उस दशा को प्राप्त द्रौपदी को देखकर (हम लोगों ने) वल्कल धारण करके वन में व्याधों के साथ चिरकाल तक निवास किया। अनुचित कार्य करते हुए भी विराट के भवन में अवस्थान किया।[3] पांडवों के जीवित रहते हुए भी वह द्रौपदी दूर प्रदेश ना जाकर (हमारे साथ) ऐसे ही दशा को धारण कर

** शोध छात्रा (पी-एच.डी.), संस्कृत, दर्शन एवं वैदिक अध्ययन विभाग, वनस्थली विद्यापीठ*

*** प्रोफेसर, संस्कृत, दर्शन एवं वैदिक अध्ययन विभाग, वनस्थली विद्यापीठ*

रही है।[4] अर्थात् पांडवों के साथ रहते हुए भी द्रौपदी ने अनेक संघर्षों का सामना किया है द्यूतसभा अपमान, वन में निवास, जयद्रथ द्वारा हरण, विराट के घर दासी रूप में रहना तथा कीचक द्वारा अपमान आदि।

द्यूतसभा अपमान द्रौपदी के जीवन संघर्ष का सबसे पीड़ादायक क्षण है जिसे वह कभी नहीं भूलती है कि किस प्रकार राज्यसभा में युधिष्ठिर द्वारा सर्वस्व हार जाने पर सिर नीचे करके बैठे हुए महापराक्रमी पांडवों के सामने उनकी पत्नी श्रेष्ठ कुल की माननीय कुलवधू द्रौपदी को बालों से खींचते हुए दुःशासन द्वारा राज्यसभा में लाया जाता है। किस प्रकार राज्यसभा में सभी सदस्यों के सामने दुर्योधन अपनी जंघा के प्रदर्शन के कारण उसे अपमानित करता हुआ दासी शब्द से अभिहित करता है नाटक में इस दृश्य की ओर संकेत करता हुआ भीम धृतराष्ट्र से कहता है कि आप की सभा में जिन राजाओं द्वारा पांडवों की पत्नी द्रौपदी को केशों से पकड़कर खींची गई, हे तात! पुत्रों और पौत्रों के द्वारा किए गए दुष्कर कार्य के आप भी साक्षी हैं।[5]

देखा जाए तो यह अपमान पूर्ण दृश्य राजनीतिक संघर्ष का परिणाम है कौरवों द्वारा चली गई राजनीतिक चाल के कारण ही द्रौपदी को इतना अपमान सहना पड़ा है। इस अपमान के कारण वह प्रत्येक क्षण प्रतिशोध की अग्नि को अपने अंदर समेटे हुए जलती रहती है और दूसरों को भी जलाती रहती है। इस राजनीतिक संघर्ष के कारण ही महाभारत का युद्ध उत्पन्न हुआ जिसमें अनेकों मनुष्यों को प्रतिशोध रूपी अग्नि में ध्वस्त होना पड़ा।

चीरहरण राजनीतिक संघर्ष के साथ–साथ द्रौपदी के मानसिक संघर्ष का भी सबसे बड़ा उदाहरण है। जो उसके अंदर अनेकों द्वंद्व पूर्ण विचारों को उत्पन्न करता है। उसे यह सोचने के लिए प्रेरित करता है कि क्या इस राज्यसभा में कोई ऐसा पुरुष नहीं है। जो इस अबला नारी के लिए आवाज उठा सके क्या पांच पतियों के होते हुए भी वह अकेली ही है क्या पिता और भाई के होते हुए भी वह अनाथ है। इस संदर्भ में द्रौपदी के लिए महाभारत में दो शब्द प्रयुक्त हुए हैं "नाथवती अनाथवत"।[6]

द्रौपदी का संघर्षात्मक जीवन यहीं समाप्त नहीं होता है यह तो उसके संघर्षपूर्ण जीवन का एकमात्र पड़ाव है इसके उपरांत भी द्रौपदी ने अनेक संकटों का सामना किया है। एक महारानी होते हुए भी राजसी–वैभव को छोड़कर पांडवों के साथ वन में निवास करती है जहां उसे जयद्रथ द्वारा अपहरण रूपी पीड़ा से गुजरना पड़ता है। इसके उपरान्त राजा विराट के घर दासी के रूप में कार्य करते हुए कीचक के द्वारा किए गए अपमान रूपी वेदना को भी सहन करना पड़ता है। इन सब आंतरिक एवं बाह्य संघर्षों का सामना करते हुए भी वह जीवन पथ पर अग्रसर रहती है। क्योंकि संघर्ष ही जीवन है एक साहसिक निडर व्यक्ति ही संघर्षों का सामना कर सकता है संघर्ष के द्वारा ही व्यक्ति बुराई का विरोध कर सकता है तथा अपने आप को तटस्थ बना सकता है।

नाटक में द्रौपदी एक स्वाभिमानी नारी है जो समाज को नारी षक्ति से परिचित कराना चाहती है। प्रतिशोध रूपी लक्ष्य के पीछे उसका उद्देश्य संसार में स्त्रियों के प्रति मानसिकता बदलने से है। जो स्त्री को एक तुच्छ वस्तु की भांति समझते हैं। वह समाज में नारियों को एक सम्मानित जीवन दिलाना चाहती है वह उन पुराने रीति–रिवाजों से संघर्ष करती है जो नारी को आंतरिक रूप से समाप्त करना चाहते हैं वह सामाजिक संघर्ष के रूप में नारी शक्ति को जागरुक करना चाहती है। इसी लक्ष्य से प्रेरित होकर वह नाटक में भीम को अपने प्रतिशोध के लिए उकसाती रहती है, भीम की क्रोधाग्नि बढ़ाने का कार्य करती है।[7]

मानव मन में जहां एक तरफ सद् प्रवृत्तियां विद्यमान रहती हैं तो दूसरी ओर असद् प्रवृत्तियां भी डेरा डाले रहती हैं उक्त दोनों में भी संघर्ष चलता है सद्प्रवृत्तियां मनुष्य को सुमार्ग पर चलाने के लिए प्रेरित करती है और असद् प्रवृत्तियां व्यक्ति को कुमार्ग की तरफ प्रेरित करती है यदि मनुष्य को किसी लक्ष्य को प्राप्त करना होता है तो उसे असद् प्रवृत्तियों से संघर्ष करके देवत्व अर्थात् सद्प्रवृत्तियों की तरफ अग्रसर होना होता है।[8] भट्टनारायण ने द्रौपदी की सद्प्रवृत्तियों को दर्शाया है जो मर्यादाओं का पालन करते हुए न्याय पथ पर अग्रसर रहकर लक्ष्य को प्राप्त करती हैं।

नाटक में भट्टनारायण ने द्रौपदी के मानसिक संघर्ष के साथ शारीरिक संघर्ष को भी दिखाया है शारीरिक संघर्ष का कारण मन में उत्पन्न संघर्ष से होता है। तब उसका व्यवहार में परिवर्तन आना स्वाभाविक ही होता है। पाँच गांव से संधि की बात से वह अत्यंत क्रोधित हो जाती है उसे अपने संघर्षात्मक जीवन का एक लक्ष्य (प्रतिशोध)

संधि के रूप में परिवर्तित होता नजर आने लगता है उससे उसकी भावनाओं (क्रोध भाव, आत्म हीनता भावना) के बीच संघर्ष उत्पन्न हो जाता है वह अपने दीनता को आंसुओं के द्वारा शारीरिक (चेष्टां) के रूप में प्रकट करती हुई भीम से कहती है– हे नाथ! इन्हें लज्जा नहीं आती देखिए आप भी न भूल जाना। हे नाथ! आप लोगों के उदासीन होने पर मुझे क्रोध आता है क्रोधित होने पर नहीं।[10] भय, क्रोध ईर्ष्या आदि भावनाओं का मनुष्य के बाह्य व्यवहारों पर बड़ा प्रभाव रहता है।

द्रौपदी के आंतरिक तथा बाह्य संघर्ष का सबसे बड़ा कारण तो उसके स्वयं के भाई–बंधु ही थे जो उसके ऊपर हुए अत्याचारों को चुपचाप सहन करते रहते थे।

द्रौपदी के मानसिक संघर्ष को भट्टनारायण ने छठे अंक में भी दर्शाया है जिसमें वह जीवन तथा मृत्यु से संबंधित प्रवृत्तियों के माध्यम मध्य उलझी नजर आती है राक्षस द्वारा भीम के मृत्यु वृतांत को सुनकर वह अचेतन हो जाती है उसकी अचेतन अवस्था द्वंदात्मक स्थिति को प्रकट करती है एक और प्रतिशोध रूपी लक्ष्य नष्ट होना दूसरी तरफ दुर्योधन की जीत के कारण उसके खुले केश एवं आत्मसम्मान का ह्रास, इन दोनों संघर्षपूर्ण परिस्थितियों में वह उलझी हुई नजर आती है जिससे वह तीव्र मृत्यु प्रवृत्ति की अधीकता कारणवश मृत्यु करने का निश्चय करती है।[11]

भट्टनारायणद्रौपदी के जीवन संघर्षात्मक नाटक में दर्शाने के साथ–साथ धार्मिक संघर्ष को भी दर्शाया है धार्मिक संघर्ष में संसार में सदैव अच्छाई–बुराई, पाप–पुण्य, सुकृत्य–कुकृत्य का हमेशा टकराव रहता है। धर्म पर अधर्म की लड़ाई ही धार्मिक संघर्ष है जो द्रौपदी के संघर्षपूर्ण जीवन का परिणाम ही धर्म की स्थापना है।

सन्दर्भ–सूची

1. शैक्षिक मनोविज्ञान, श्री जी.पी. शैरी एवं रामनारायण महरौत्रा, प्रथम संस्करण, पृ. 253–54
2. आधुनिक हिन्दी नाटकों में संघर्ष तत्त्व, डॉ. ज्ञानराज काशीनाथ, प. 41
3. तथाभूतां दृष्ट्वा नृपसदसि पांन्चालवतनयां
   वने व्याधैः सार्धं सुचिरमुशितं वल्कलधरैः।
   विराप्स्यावासे स्थितमनुचितारम्भानभृतं
   गुरुः खेदं खिन्ने मयि भजति नाद्यापि कुरुषु।।–वेणीसंहार–1/11
4. जीवत्सु पाण्डुपुत्रेशु दूरमप्रोशितेशु च।
   पांन्चालराजतनया वहते यदिमां दशाम्।।–वेणीसंहार–1/18
5. कृष्णा केशेशु कृष्टा तव सदसि वधूः पाण्डवानां नृपैर्यः
   सर्वे वे क्रोधवह्नौ कृशशलभकुलावज्ञया येन दृग्धा।
   एतस्माच्छ्रावयेऽहं न खलु भुनबलश्लाधया नापि
   दर्पात्पुत्रैः पौत्रेश्च कर्मण्यतिगुरुणि कृते तात साक्षी त्वमेव।–वेणीसंहार–5/29
6. महाभारत, सभापर्व–68.59
7. यद्वैद्युतमिव ज्योतिरार्ये कुद्धेऽद्य संभृतम्।
   तत् प्रावृडिव कृष्णेयं नूनं संवर्धायिश्याति।।–वेणीसंहार–1/14
8. हिन्दी उपन्यास : द्वन्द्व एवं संघर्ष, डॉ. मोहन लाल रत्नाकर, पृ. 20
9. द्रौपदी–नाथ, न लज्जन्त एते। त्वमपि तावन्मा विस्मार्षीः।–वेणीसंहार, प्रथम अंक, पृ. 29
10. द्रौपदी–नाथ, उदासीनेषु युश्मासु मम भन्युः, न पुनः कुपितेषु।–वेणीसंहार, प्रथम अंक, पृ. 29
11. द्रौपदी (आकाशे दत्तदृष्टिः) नाथ, भीमसेन, त्वया किल मे केशाः संयमयितव्याः। न युक्तं वीरस्य क्षत्रियस्य प्रतिज्ञातं शिथिलयितुम्। तत् प्रविपालय मां यावदुपसर्पामि।–वेणीसंहार, षष्ठ अंक, पृ. 278

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 35-39

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

स्त्री अस्मिता के पथ की अन्वेषी : मीराबाई

*डॉ. रतन कुमारी वर्मा**

मध्यकाल के क्षितिज पर सन्तों एवं भक्तों के मध्य एक ऐसी स्त्री का पदार्पण होता है, जो स्त्री शक्ति का स्वर बनकर गुंजायमान होता है। मीराबाई का जन्म मेड़ता के समीप 'कुड़की' गाँव में 1504 ई0 में हुआ। राठौड़ वंश की मेड़तिया शाखा में राव दूदा के चतुर्थ पुत्र रत्न सिंह के घर पैदा हुईं। मीरा के पिता रत्न सिंह को कुड़की समेत 12 गाँवों की जागीर प्राप्त थी। दो वर्ष की अवस्था में माता का देहान्त हो जाने के कारण राव दूदा नन्हीं मीरा को मेड़ता अपने पास ले आये। रत्न सिंह सदैव युद्धरत रहने के कारण मीरा का लालन–पालन करने में असमर्थ थे। राव दूदा तलवार के धनी होने के साथ–साथ परम वैष्णव भक्त भी थे। उन्हीं की छत्रछाया में रहकर बालिका मीरा के हृदय में गिरधर गोपाल के प्रति अनन्य आस्था उत्पन्न हुई। मीरा का चचेरा भाई जयमल भी भक्त प्रकृति का राजकुमार था। निरन्तर युद्ध और मृत्यु से होली खेलने वाले राजपूतों के यहाँ उन दिनों शिक्षा–दीक्षा का कोई प्रबंध नहीं था। पारिवारिक वातावरण, समाज में प्रचलित लोकगीत तथा यदा–कदा राजमहलों में आने वाले सिद्ध–संन्यासियों या रमते जोगियों के भक्तिमय उपदेश का प्रभाव मीरा के कोमल मन पर पड़ा। लोकगीतों की मधुरता, राजसी कलाप्रियता ने अनायास ही मीरा को संगीत–प्रेमिका बना दिया। साधु–संगति के प्रभाववश उनका हृदय भक्ति एवं वैराग्य की ओर आकृष्ट हुआ, जिसकी परिणति उनकी रचनाओं में हुई है।

मीराबाई का विवाह चित्तौड़ के राणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज से 1516 में हुआ। दुःसंयोगवश विवाह के सात वर्ष बाद ही राजा भोजराज का स्वर्गवास हो गया। तत्कालीन प्रथा के अनुसार मीरा सती नहीं हुईं, क्योंकि वे स्वयं को अजर–अमर स्वामी की चिर सुहागिनी मानती थीं–

जग सुहाग मिथ्या री सजनी हावा हो मिट जासी।
वरन कर्या हरि अविनाशी म्हारो काल–व्याल न खासी।।

राजरानी मीरा का यह निश्चय मेवाड़ के राजघराने के लिए सर्वथा अप्रत्याशित था। मीरा अब जीवन के लौकिक बन्धनों से मुक्त होकर निश्चिन्त भाव से साधु–सन्तों की संगति में पूजा–अर्चना करने लगीं। राणा सांगा की मृत्यु के पश्चात् उनके उत्तराधिकारी विक्रम सिंह को भी मीरा का यह आचरण असह्य लगा। ऐसा कहा जाता है कि कुछ समय बाद जयमल और उनके पिता वीरमदेव ने मीरा को मेड़ता बुलाया किन्तु मीराबाई पुष्कर यात्रा से लौटती हुई वृन्दावन चली गईं। वहीं पर रहकर कृष्ण के माधुर्य रूप की उपासना करने लगीं। वहीं इनकी भेंट प्रसिद्ध कृष्ण भक्त जीव गोस्वामी से हुई। वृन्दावन में गिरधर गोपाल के गीत गाते–गाते न जाने मीरा को कब यह आभास हुआ कि उनके आराध्य तो वृन्दावन छोड़कर द्वारका जा विराजे हैं। मीरा वहाँ से द्वारका चली गईं। वहीं रणछोड़ जी के मन्दिर में भगवान की मूर्ति के सम्मुख एकाग्र भाव से भजन कीर्तन करते हुए मीरा ने शेष जीवन वहीं व्यतीत किया। उनकी मृत्यु के सम्बन्ध में अनुमान लगाया जाता है कि 1558 से 1563 के मध्य मीरा का स्वर्गवास हुआ।

मीरा ने कृष्ण की भक्ति की। उनकी लीलाएं गायीं। बैठ करके कोई रचना नहीं की। उनके अन्तःमन में कृष्ण के प्रति जो भावनाएं अप्रकटरूप से व्याप्त थीं, उन्हीं का प्रकटीकरण उनके पदों में हुआ है। फिर भी मीरा के नाम से जिन रचनाओं का उल्लेख मिलता है, उनमें गीतगोविन्द की टीका, नरसी जी का मायरा, राग सोरठ का पद,

* *एसोशिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, जगत तारन गर्ल्स पी.जी. कालेज, इलाहाबाद*

मलार राग, राग गोविन्द, सत्यभामानुरूसणं, मीरा की गरबी, रूक्मणी मंगल, नरसी मेहता की हुंडी, चरीत (चरित्र) स्फुट पद आदि प्रमुख हैं। मीरा के स्फुट पद ही 'मीराबाई की पदावली' के नाम से प्रकाशित रूप में प्राप्त हैं। कुछ पंक्तियाँ ऐसी मिलती हैं जिससे पता चलता है कि उन्होंने रैदास को अपना गुरू माना।

गुरु मिलिया रैदास दीन्हीं ज्ञान की गुटकी।

जबकि अन्य कृष्ण भक्तों से भी इनकी मुलाकात हुई थी। गुसाई विठ्टलनाथ, चैतन्य देव और जीव गोस्वामी भी कृष्ण के प्रति इनकी भक्ति और माधुर्य से बहुत प्रभावित थे। सामान्यतः कहा जाता है कि धर्म में सबको बराबर का सम्मान व अधिकार मिलता है। घरों में महिलायें सबसे अधिक धार्मिक होती हैं। ऐसा नहीं है कि मध्य युग में महिलायें घर में पूजा–अर्चना नहीं करती थीं। सवाल इस बात का है कि घर के बाहर मन्दिर में जाकर उपासना करने का साहस कहाँ से आया। यह तो महिलाओं के लिए वर्जित क्षेत्र था। इस्लाम के प्रभाव से जहां एकेश्वरवाद की आँधी चल रही हो, हिन्दू–मुस्लिम में एकता स्थापित करने के लिए निर्गुण, निराकार रूप पर बल दिया जा रहा हो, कबीर और जायसी जैसे दिग्गज संत आराधना कर रहे हों, तुलसीदास रामचरितमानस की रचना में लीन हों और कृष्ण सभी के प्यारे–दुलारे हों। कृष्ण की भक्ति उत्तर से लेकर दक्षिण भारत तक व्याप्त थी। कृष्ण की भक्ति आसान थी इसलिए भक्तों की संख्या भी विपुल थी। कृष्ण भक्ति ही एक मात्र ऐसी शाखा है जिसमें विभिन्न सम्प्रदाय के लोग आराधना कर रहे थे। मीरा ने किसी सम्प्रदाय विशेष में दीक्षित होना उपयुक्त नहीं समझा। वह स्वतंत्र रूप से कृष्ण की उपासना में लीन हो गईं। कृष्ण की उपासना करते–करते नृत्य भी करने लगती थीं–

पग घुघरूँ बाध मीरा नाची रे।

मीरा निर्गुण की भक्ति नहीं करतीं। उनको तो कृष्ण का साँवला सलोना रूप लुभाता है–

बसो मेरे नैनन में नंदलाल।

मोहनी मूरत साँवरी सूरत नैना बने विसाल।।

मीरा पदावली में कृष्ण की भक्ति के प्रति अनगिनत पद में उनके इस अन्तर्निहित भाव का वर्णन है–

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो ना कोई।

अपनी माँ से कहती हैं–

माई री मैं तो लियो गोविन्दो मोल।

कोई कहे छाड़े, कोई कहे चौड़े, लियो री बजंता ढोल।।

कृष्ण के प्रति जो भी साधना करेगा, वही उनकी भक्ति को प्राप्त कर सकता है–

मीरा के प्रभु गिरधर नागर, जोइ सेवै सोई पावै।

मीरा कृष्ण से बराबरी का रिश्ता न जोड़ सकीं। वह गोविन्द के सामने आत्मसमर्पण इसलिए करना चाहती हैं कि उससे अर्जित शक्ति से अपनी लड़ाई जारी रख सकें। सिसोदिया कुल रूठ कर मेरा क्या कर लेगा। जैसे मराठी भक्त कवयित्री आंडाल ने जिस तरह बिना किसी की परवाह किये कृष्ण की भक्ति के प्रति आसक्त बनी थीं–

जोई पहिरावै सोई पहिरूँ, जोई दे सोइ खाऊँ।

जहाँ बैठावे तितहीं बैठू, बेंचे तो बिक जाऊँ।।

पूरी तरह आत्मसमर्पित होकर बड़ी गहरी निष्ठा के साथ मीरा कृष्ण की आराधना करती हैं। अपने दर्द का वर्णन करते हुए कहती हैं–

हे री मैं तो दरद दिवाणी। मेरो दरद न जाणै कोय।।

घायल की गति घायल जाणै। की जिण लाई होय।।

कृष्ण के प्रेम में डूबी हुई मीरा किस तरह के दर्द का अनुभव करती हैं, इसको वही समझ सकता है जो इस पथ से गुजरा हो।

लेकिन मीरा की भक्ति के मार्ग में अनेकों बाधाएँ हैं। सबसे पहले है पारिवारिक बाधा– परिवार की परम्पराओं की चुनौतियों को तोड़ना। परिवार में सबसे पहले सास, ननद, जेठ, देवर ये सभी पात्र बाधा बनकर उपस्थित होते हैं। हर घर की हर स्त्री के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती यही होती है। उपर से मध्यकाल में जब स्त्रियों के पास शिक्षा नाम की चीज ही नहीं थी। उस समय मीरा को इन लोगों से कैसा व्यवहार मिला होगा। मीरा फिर भी हिम्मत नहीं हारी। अपने पदों में वर्णन करते हुए कहती हैं–

सासु बुरी है म्हारी नणद हठीली।
सासु नणद देवर जेठानी सब मिलि जगड़ी।
देवर जेठ म्हारे कुबुधि। नित की राड़े पछाड़।।

परिवार के सभी सदस्य उनकी भक्ति के मार्ग में बाधा डालते हैं। उन्हें भगवान में भी मन नहीं लगाने देते। लेकिन जितना ही उनकी भक्ति की मार्ग में बाधा आती है उनकी भक्ति का स्वरूप और गहरा और दृढ़ होता जाता है। अपने प्रेम के वर्णन में कहती हैं–

मैं तो गिरधर के घर जाऊँ।
पिया बिन रह्यो न जाइ।
होली पिया बिन लागै खारी।

लौकिक पति तो स्वर्ग सिधार गये। कृष्ण को उन्होंने पति के रूप में वरण कर लिया। उनके बिना उन्हें कैसा सूना लगता है यह जग, उसकी अभिव्यक्ति इन पदों में हुई है।

हिन्दी साहित्य के हजारों साल के इतिहास में मध्ययुग में जिस तरह कबीर अकेले खड़े होकर समाज का मोर्चा सँभालते हैं उसी तरह मीरा भी अकेली स्त्री जाति के लिए खड़ी होकर भक्ति का मार्ग खोलती हैं। मीरा का संघर्ष बहुत कठिन संघर्ष था। पहले तो मीरा स्त्री जाति की, ऊपर से राजघराने की स्त्री, राजघराने की कुलवधू, राजपरम्परा, मर्यादा, कुलकानि तोड़ने का संघर्ष। उनके ऊपर जितने भी आरोप लगे, जितनी भी निंदा की गई, उसकी उन्होंने परवाह नहीं की। अपने भक्ति की मार्ग पर अकेले चल पड़ीं। सामाजिक पितृसत्ता से संघर्ष, संस्थागत धर्म की पितृसत्ता से संघर्ष।

सबको धत्ता बताकर अपनी शर्त पर जिन्दगी जीने का प्रचण्ड दुस्साहस करने वाली मीरा ने नारी–जीवन पर आरोपित, सर्वग्रासी, सर्वाच्छादी संरचना 'पत्नीत्व' के विधि निषेधों को पग–पग पर अस्वीकार किया। विधवा होने पर विधवा के झूठे–सच के परखच्चे उड़ा दिये। कदाचित् मीरा को यह बोध था कि कोई भी स्त्री विधवा नहीं होती, बनाई जाती है। पुरुषों के साथ तो ऐसा नहीं किया जाता है। ऐसा क्यों होता है? वैधव्य एक काल्पनिक दुःख है। जो स्त्री पर थोपकर उसे आजीवन दुःखी रहने को धर्म ठहराया जाता है। इसके तहत सामाजिक व्यवहार, वस्त्र विन्यास, यहाँ तक कि खान–पान में भी उसे शोक सूचक परिस्थितियों में पड़े रहना इसके लिए उसे बाध्य किया जाता है। उससे अपेक्षा की जाती है कि अपनी जिन्दगी को पाप का फल समझते हुए उसकी लाश को आमरण घसीटती रहे। वैधव्य के पीछे है– विवाह की पितृसत्तात्मक धारणा तथा विवाह के सन्दर्भ में स्त्री के मानवाधिकार। विवाह करे या न करे किससे करे, इसकी स्वतन्त्रता को कुचलते रहना। मीरा ने ऐसे विवाह को खारिज कर दिया था। उस युग में पति की मृत्यु पर रूपकुँवर बनाई जाने वाली अनगिनत स्त्रियाँ थीं, पर रूपकुँवर बनने से इन्कार करने वाली मीरा एक थीं। अकेली थीं। खुले मैदान में समाज में ताल ठोंककर कुत्सित माँग को खारिज करती हुई चुनौती देती हैं–

गिरधर गास्याँ, सती न होस्याँ.............।

प्रो0 मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है– ''मीरा का जीवन और काव्य उस काल में अन्य भक्त कवियों की स्त्री सम्बन्धी मान्यताओं का प्रतिकार है और प्रत्युत्तर भी।''

स्त्री को सबसे अधिक दबाया जाता है लोक लाज के नाम पर। वह लोक–लाज की ठेकेदार है। कुल–मर्यादा के सारे ठेके स्त्री के नाम है। इसी का भय दिखाकर हमेशा स्त्री के स्वतंत्र निर्णय को कुचला जाता रहा है। मीरा इसकी परवाह नहीं करतीं–

लोक लाज कुल काण जगत की दर्द बहाय जस पाणी।
अपने घर का पर्दा करले, मैं अबला बौरानी।।

सूरज पालीवाल ने लिखा है–''मध्ययुगीन नारी विरोधी समाज में मीराबाई ही अकेली ऐसी स्त्री हैं, जिन्होंने सामाजिक रूढ़ियों और पारिवारिक मान्यताओं की तिलांजलि देकर स्वतंत्रता का वरण किया। यह अद्‌भुत साहस था। मारवाड़ जैसी विशाल रियासत में मेड़ता के जागीरदार की पुत्री और मेवाड़ के राणा परिवार में ब्याही जाने वाली मीरा ने मारवाड़ की झूठी प्रतिष्ठा की परवाह नहीं की और न मेवाड़ के छद्‌म नैतिकता की।''

भक्ति की अलख जगाने वाली मीरा आजीवन भक्ति के लिए संघर्षशील रहीं। उनके संघर्ष को व्याख्यायित करते हुए डा. सुमन राजे ने लिखा है–''मध्ययुगीन साहित्य में मीरा का जीवन और साहित्य नारी–विद्रोह का रचनात्मक आगाज है।''

वर्तमान समय में भी धर्म के क्षेत्र में महिलाओं को बराबर का दर्जा हासिल नहीं है। आज की नारियों के लिए भी मीरा का संघर्ष प्रेरणास्त्रोत है। मीरा की भक्ति के सम्बन्ध में भी विभिन्न मत हैं– डॉ. विद्यानिवास मिश्र की धारणा है– ''मीरा का विद्रोह साधन है साध्य नहीं। इनका साध्य ऐसे भाव की प्राप्ति में है जो समस्त दुविधाओं, द्वैतों और भेदों से ऊपर उठा दे, सर्वात्मभाव में प्रतिष्ठित कर दे। नाभादास के युग से आज तक उनके संघर्ष को इस रूप में देखना चाहते हैं।''

वे सभी मीरा को जानते भी हैं और पहचानते भी हैं, किन्तु उनके विद्रोह को, उनके साहस को कृष्ण प्रेम में विनियुक्त बतलाकर उनके व्यक्तित्व के तेज का ही सफाया कर डालते हैं।

श्री माधवहाड़ा कहते हैं– '' अपने समय की पितृसत्ता और राजसत्ता के विरूद्ध अपने विद्रोह को समाज को स्वीकार्य बनाने के लिए ही मीरा भक्ति को माध्यम बनाती हैं।'' भक्ति के लिए प्रेमिका के ही भाव का कबीर ने भी वरण किया था। इसका मतलब कबीर भी यह समझते थे कि स्त्री का आदर्श प्रेम संसार में सब कुछ दिला सकता है। वही रूपक मीरा ने भी चुना। भक्ति को लेकर अपने विशिष्ट भाव बोध के कारण मीरा ने स्त्रियों के लिए भक्ति का नया मार्ग प्रशस्त किया।

मीरा जैसी तेजस्वी स्त्री को भक्तिकाल की भक्तों की मुख्य धारा भी पचा न सकी। इसका बोध इस बात से होता है कि जब मीरा चैतन्य सम्प्रदाय के जीव गोस्वामी से मिलना चाहती थीं तो अध्यात्मवाद का दम्भ भरने वाले जीव गोस्वामी को मीरा सन्त या भक्त नहीं दिखी, अपितु साढ़े तीन हाथ की मादा देह मात्र दिखी थीं। जिस मादा देह से प्रसूत होने के बावजूद मध्यकाल की पूरी भक्तमण्डली भयभीत दिखी है कि कहीं यह हमारे भीतर कामोन्माद न जगा दे या कहीं ब्रह्मचर्य के इमेज को ध्वस्त न कर दे। जिसके कारण जीव गोस्वामी ने मीरा से मिलने से इन्कार कर दिया। तब मीरा ने भी करारा जवाब दिया– ''मैं तो समझती थी कि कृष्ण ही एक मात्र पुरुष हैं, सारे जीव स्त्री रूप जो हैं। अब यह दूसरा पुरुष कौन पैदा हो गया है? इस उत्तर ने जीव गोस्वामी को हिला कर रख दिया। लज्जित होकर उन्हें मीरा से मिलना पड़ा। मीरा की भक्ति से जीव गोस्वामी बहुत प्रभावित भी हुए।

मीरा का व्यक्ति के रूप में संघर्ष अहम चीज है। जिसे आत्मकथात्मक शैली में अपने पदों में उन्होंने प्रचुर मात्रा में उल्लिखित किया है। प्रो. विश्वनाथ त्रिपाठी का मत है– ''मीरा का विषपान.......... मध्यकालीन नारी स्वाधीनता के लिए संघर्ष है और अमृत उस संघर्ष से प्राप्त तोष है। विष मीरा का लौकिक यथार्थ है और अमृत उनके भावजगत का परमार्थ।''

मीरा का विद्रोह बौद्धकालीन थेरियों की तरह व्यक्तिगत है लेकिन उसका प्रभाव व्यापक है। थेरी गाथाओं में भी सास और ननद पितृसत्ता के हथियार के रूप में वर्णित हैं। मीरा के यहाँ भी यह दर्द है। मीरा उस दर्द से ऊपर उठकर उसका प्रतिकार करती हैं और स्त्रियों के लिए भक्ति का मार्ग प्रशस्त करती हैं। वह यह सिद्ध करती हैं कि स्त्री को भी अधिकार है कि वह किसकी भक्ति करे, कैसे करे। इसको चुनने के लिए नारी स्वतंत्र है।

मीराबाई के काव्य की भाषा सामान्यतः राजस्थानी मिश्रित ब्रज है। उनके पदों में गुजराती भाषा का भी पुट है। खड़ी बोली और पंजाबी भाषा का प्रभाव उनके पदों में परिलक्षित होता है। संगीत एवं छन्द विधान की दृष्टि से भी मीरा का काव्य उच्चकोटि का है। विभिन्न राग–रागिनियों में उनके पद आबद्ध हैं। उनका काव्य भावना

प्रधान अधिक है। भावों की गहराई, संवेगों की तरलता से आप्लावित उनके पद भक्ति का मार्ग प्रशस्त करते हैं तथा स्त्री चेतना को झकझोरते भी हैं। माधवहाड़ा कहते हैं— मध्यकालीन सामन्ती व्यवस्था और पितृसत्तात्मक व्यवस्था और विधि निषेधों के अधीन अपने लैंगिक नियमन और दमन के विरूद्ध मीरा के आजीवन संघर्ष में भक्ति की भूमिका एक युक्ति या हथियार से ज्यादा नहीं है। विडम्बना यह है कि उसकी निर्मिति और प्रचारित पहचान में स्त्री मनुष्य के रूप में किया गया उसका यह संघर्ष तो हमेशा हाशिए पर रहा है और बतौर हथियार के रूप में ली गयी भक्ति सर्वोपरि हो गयी है।''

सामंती ढ़ाचे में 'परिवार' जैसी संस्था को ठुकराना, शादी के प्रति अस्वीकार को अभिव्यक्त करना, अपने मन की अनुभूतियों को सबसे अधिक महत्व देना, समाज की बनी—बनाई परम्परागत व्यवस्था को ध्वस्त करना, नारी की स्वतंत्र अस्मिता की खोज का पथ है। जिस पर चलकर नारी अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व को निर्मित करना चाहती है। डा. राम विलास शर्मा ने लिखा है— ''मीरा के विद्रोह में तीव्रतम उद्वेग है, इसमें धैर्य का अभाव है। वह कृत्रिम नैतिकता की सीमाओं को एकबारगी ही तोड़ देना चाहती हैं।''

मीरा कहती हैं— ''**मीरा गिरधर हाथ बिकानी, लोग कहै बिगरी।''**

सामंती व्यवस्था हो या अन्य व्यवस्था, प्रत्येक जगह नारी का लज्जाभाव ही उसका सबसे बड़ा शत्रु है। मीरा कहती हैं—

सखी री लाज बैरिन भई।

साधारण स्त्रियों के द्वारा लिखा जाना, मन की बात व्यक्त करना संभव न था। जो कुछ राजघराने की कुछ शिक्षित स्त्रियाँ थीं या साधु सन्तों की संगत में रहती थीं, वे ही अपने विचारों को व्यक्त कर पाईं। उनमें उनके मन की छटपटाहट अभिव्यक्त हुई है।

डा. मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं— ''मीरा का विद्रोह एक विकल्पहीन व्यवस्था में अपनी स्वतंत्रता के लिए खोज का संघर्ष है। उनको विकल्प की खोज के संकल्प की शक्ति भक्ति से मिली है। यह भक्ति आन्दोलन का क्रान्तिकारी महत्व है। मीरा की कविता में सामंती समाज और संस्कृति की जकड़न से बेचैन स्त्री—स्वर की मुखर अभिव्यक्ति है। उनकी स्वतंत्रता की आंकाक्षा जितनी आध्यात्मिक है, उतनी ही सामाजिक भी है। मीरा का जीवन संघर्ष, उनके प्रेम का विद्रोही स्वभाव और उनकी कविता में स्त्री—स्वर की सामाजिक सजगता भक्ति आन्दोलन की एक बड़ी उपलब्धि हैं।''

मीरा ने अपने पदों में उन्मुक्त भाव से अपने मन की पीड़ा की अभिव्यक्ति की है। सदियों से दबी—कुचली स्त्री के मन की पीड़ा को वाणी दी है। किसी भी सामाजिक वर्जना को स्वीकार न करके स्त्री के लिए भक्ति के नवीन मार्ग की उद्भावना की है।

संदर्भ—सूची

1. डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृ. 250—252
2. डॉ. शिव कुमार शर्मा, हिन्दी साहित्य, युग और प्रवृत्तियाँ, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 306—307
3. डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त, साहित्यिक निबंध, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, पृ. 683—684
4. मैनेजर पाण्डेय, भक्ति आन्दोलन और सूरदास का काव्य, वाणी प्रकाशन, पृ. 43
5. भक्ति आन्दोलन : इतिहास और संस्कृति, पृ. 299
6. माधवहाड़ा : पचरंग चोला पहर सखी री, वाणी प्रकाशन, पृ. 133—134

*****

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 40-45

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

कालजयी कवि 'जयशंकर प्रसाद' के साहित्य में मानवीय भावना

*शशि कपूर**

भूमिका

आज के इस आधुनिक युग में साहित्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसका मतलब यह नहीं है; कि इसके पहले इसका महत्त्व नहीं था किन्तु सामाजिक परिवेश के इस परिवर्तित युग में इसकी अति आवश्यकता हुई है। साहित्य के अलावा कोई भी ऐसा साधन या मार्ग नहीं उपलब्ध होता है जिससे समाज को नयी दिशा मिल सके। कहा भी गया है– 'साहित्य समाज का दर्पण है।'

साहित्य में मानवीय भावनाओं का जिक्र न हो तो साहित्य का कोई विशेष महत्त्व नहीं होता है। आज का युग विज्ञान का युग है। अतिवैज्ञानिकता होने के कारण हम देखते हैं कि व्यक्ति का व्यक्ति से अलगाव होता जा रहा है; जिसके कारण मानवीय मूल्यों में ह्रास होता दिखाई पड़ रहा है।

अतः साहित्य की महत्ता इसी में है कि वह इन मूल्यों की रक्षा करे तथा व्यक्ति के परस्पर अलगाव की प्रवृत्ति को रोके। साहित्य ही मानवता की भावना को उद्‌बुद्ध करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मनुष्य का परम् कर्तव्य है कि साहित्य से अपना लगाव रखे जिससे वह (मनुष्य) समाज या राष्ट्र में मानवीय मूल्यों को धारण कर अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दे सके। श्रीभर्तृहरि द्वारा विरचित 'नीतिशतकम्' में साहित्य के सम्बन्ध में कहा भी गया है कि ''साहित्य, संगीत (गायन, वादन, नृत्य) और कला से रहित मनुष्य पूँछ और सींग से रहित साक्षात् पशु ही है, वह तृण को न खाकर भी जो जीवित रहता है, यह पशुओं का परम सौभाग्य है।''

''साहित्य सङ्गीतकलाविहीनाः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः।
तृणं न खादन्नपि जीवमानस्तद्भागधेयं परमं पशूनाम् ।।''[1]

प्रसाद जी एवं उनके साहित्य का सामान्य परिचय

महाकवि '**जयशंकर प्रसाद**' जी का जन्म काशी के '**गोवर्धन सराय**' मुहल्ले में '**सुंघनी साहु**' नाम से प्रसिद्ध एक वैभवशाली परिवार में सन् 1889 ई0 को हुआ था। इनका परिवार धन–धान्य से भरा हुआ था। जिसमें किसी भी चीज की कोई कमी नहीं थी। इनके परिवार की आस्था शिव जी के प्रति रहा है। इनके पिता जी का नाम '**देवी प्रसाद**' था। इनके पिता जी उदार प्रवृत्ति के एक कुशल व्यापारी थे। जिनका काशी में बहुत सम्मान था। साहित्य के प्रति प्रसाद जी की प्रतिभा बचपन से ही दिखाई देने लगती है प्रसाद जी की शिक्षा नियमित रूप से सातवीं तक ही हो पाती है। क्वींस कॉलेज में सातवीं तक पढ़ने के बाद इनकी शिक्षा घर पर ही सम्पन्न होती है। इसका कारण यह है कि प्रसाद जी अभी बहुत छोटे ही थे कि इनके पिता जी की मृत्यु हो जाती है। पिता के बाद उनकी माता का भी देहान्त हो जाता है। अब तक प्रसाद जी की अवस्था लगभग 15 वर्ष की हुयी होती है। माता जी की मृत्यु के बाद पिता तुल्य बड़े भाई '**शंभूरत्न**' जी की भी असमय मृत्यु हो जाती है जिससे घर की समस्त जिम्मेदारियाँ प्रसाद जी पर आ पड़ती हैं।

* *शोधार्थी (हिन्दी विभाग), वीर बहादुर सिंह पूर्वाञ्चल विश्वविद्यालय, जौनपुर, उ. प्र.*

प्रसाद जी को तीन विवाह करने पड़े जिसमें उनकी तीसरी पत्नी के माध्यम से एक पुत्ररत्न की प्राप्ति होती है। प्रसाद जी के गुरु का नाम **'मोहनीलाल गुप्त'** था जिन्हें **'रसमय सिद्ध'** कहा जाता था। प्रसाद जी ने 12 वर्ष की अवस्था में ही उनको एक सवैया लिखकर सुनाया –

> ''**हारे सुरेश, रमेस, घनेस, गनेसहू शेष न पावत पारे।**
> **पारे हैं कोटिक पातकी पुंज ''कलाधर'' ताहि छिनो लिखि तारे।**
> **तारेन की गिनती सम नाहिं सुजेते तरे प्रभु पापी बिचारे।**
> **चारे चले न बिरंचिहू के जो दयालु ह्वै शंकर नेकु निहारे।**''[2]

यह सवैया प्रसाद जी के कलाधर उपनाम से छपी थी । प्रसाद जी अपनी कवित्व शक्ति का परिचय देते हुये एक बार **अँखिया अब तो हरजाई भई**' समस्या की तत्काल पूर्ति कर दिया था।

1909 ई0 में प्रसाद जी ने **'इन्दु'** नामक पत्रिका का प्रकाशन किया था। इस पत्रिका का सम्पादन उनके भांजे **'अम्बिका प्रसाद गुप्त'** करते थे। यह पत्रिका 1927 ई0 तक प्रकाशित होती रही। प्रसाद जी में कर्मठता, लगन और सहनशीलता विद्यमान थी। इसी के चलते प्रसाद जी ने अपने जीवन को बहुत कुछ स्तर तक मजबूती प्रदान किया। कुछ समय तक आते–आते प्रसाद जी एक गम्भीर बीमारी से ग्रसित हो गये जो अन्ततः **15 नवम्बर, 1937** को स्वर्ग सिधार गये।

प्रसाद जी की रचनाएँ निम्नलिखित हैं–

काव्य संग्रह–चित्राधार (1918), प्रेमपथिक (1913), करुणालय (1913), झरना (1918), आँसू (1925), लहर (1933), कामायनी (1935)।

कहानी संग्रह–छाया, प्रतिध्वनि, आकाशदीप, आँधी, इन्द्रजाल।

नाटक–उर्वशी, (चम्पूकाव्य), सज्जन, प्रायश्चित, कल्याणी परिणय, करुणालय, राज्यश्री, विशाख, अजातशत्रु, जनमेजय का नाग यज्ञ, कामना, स्कन्दगुप्त, एक घूँट, चन्द्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी, अग्निमित्र (अपूर्ण)।

निबन्ध–काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध।

मानवीय भावना– प्रसाद साहित्य में मानवीय भावनाओं का दर्शन हमें उनके लगभग प्रत्येक विधा में होता है, चाहे हम उनके काव्य का अवलोकन करें या गद्य की विभिन्न विधाओं जैसे नाटक, कहानी उपन्यास आदि का। हम सभी में उनकी मानवीय भावना का अवलोकन करते हैं। प्रसाद जी के स्वयं का विचार है**–''दो प्यार करने वाले हृदयों के बीच स्वर्गीय ज्योति का निवास होता है।**''[3] वे इस सम्बन्ध में आगे और कहते हैं कि–'' **दो दिनों के जीवन में मनुष्य, मनुष्य को स्नेह नहीं करता तो किसके लिए उत्पन्न हुआ है।**''[4] मानवीयता से सम्बन्धित हमें उनका एक और कथन दृष्टिगत होता है जिसमें वे कहते हैं कि– **''मानव हृदय की मौलिक भावना है– स्नेह।' मनुष्यता का वास्तविक पक्ष वह है, जहाँ वर्ण, धर्म और देश को भूलकर मनुष्य, मनुष्य को प्यार करता है।''**[5]

अतः हम देखते हैं कि उनका यही विचार है कि मनुष्य का मनुष्य से आपस में सौहार्द बना रहे जिसमें प्रत्येक मनुष्य सुखी एवं समृद्ध हो और अपने जीवन में प्राप्त आनन्द को ग्रहण कर सके। इसमें सभी को अपनी जाति विशेष हो या धर्म विशेष अथवा देश की सीमित भावभूमि हो इससे ऊपर उठकर विश्व प्रेममय हो जाना है।

हमारा भारत देश धन्य है जहाँ पर अनेक महापुरुषों ने मानव को मानव से स्नेह करने सम्बन्धी विचारों को प्रसारित कर समाज को प्रेम के सूत्र से बांधने का कार्य किया है। इन महापुरुषों ने देश की संकुचित भावना से ऊपर उठकर समूचे विश्व को प्रेम के सूत्र में बांधने का कार्य किया है। जहाँ तक प्रसाद साहित्य की बात है हमें सर्वप्रथम उनके काव्यों में ही दृष्टिपात करना समीचीन मालूम होता है। काव्यों में प्रेमपथिक से लेकर कामायनी तक किसी न किसी रूप में मानवीय भावनाओं का दर्शन होता है। प्रसाद जी का मानवीय सम्बन्धी जो विचार है उसमें न तो **'रोमांटिक फुलिशनेस'**[6] की भावना है न तो **'उच्छृंखल कामाचार'**[7] ही है। यहाँ पर तो केवल आत्मा के विस्तार की भावना है।

'**प्रेमपथिक**' में '**पथिक**' से '**तापसी**' की वार्तालाप में भी मानवीय भावना ही दृष्टिगोचर होती है, जिसमें तापसी द्वारा पथिक से रात रुकने तक का निवेदन दिखाई पड़ता है–**''सुनो, भद्र पथिक! अब रात हो गयी है, पथ चलने का समय नहीं पर्ण कुटीर पवित्र तुम्हारा ही है, कुछ विश्राम करो, फल, जल, आसन सभी मिलेगा जो प्रस्तुत है मेरे पास और तुम्हारी शान्ति न कोई भंग करेगा तृण भर भी। आत्मकथा हो मुझे सुनाने योग्य तो न वंचित करना सौम्य अतिथि को पाकर फिर यह निशा सहज में बीतेगी हाँ प्रभात होते ही अपने पथ पर तुम लग जाओगे और दु:खिनी यहीं अकेली ज्यों–की त्यों रह जावेगी।''**[8] यहाँ पर तापसी के हृदय में मानवीय भावना के दृष्टिकोण को जाग्रत हुआ पाते हैं जिसमें वह पथिक से उसके आत्मकथा को सुनने के लिये आग्रह करती हुयी दिखायी पड़ती है। वह हर संभव उसके मदद के लिये भी तत्पर है जिसमें खाने के लिये जो भी उसके पास है वह उसे प्रस्तुत करना चाहती है और रात्रि में ठहरने का भी उचित प्रबन्ध करती है।

प्रसाद साहित्य में मानवीय भावनाओं को प्रकृति के माध्यम से भी दर्शाया गया है। प्रकृति के संसर्ग से मनुष्य स्व की संकुचित विचार को रोक सकता है। वह अपने सौन्दर्य बोध का संस्कार करके ही अपनी उन्नति कर सकता है। हम देखते हैं कि समस्त राष्ट्र और विश्व में आपसी सद्‌भाव, साम्य तथा सह अस्तित्व के कम होने का प्रमुख कारण है कि लोगों का आपस में लगाव का कम होना है। इसको प्रसाद जी जैसे महानकवि ने महसूस किया और अपने साहित्य में समाविष्ट कर विभिन्न पात्रों के द्वारा आपस में स्नेह की डोर से बांधने का भरसक प्रयास भी किया है।

'**नन्ददुलारे बाजपेयी**' जी ने '**हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी**' के अन्तर्गत प्रसाद जी के साहित्य में मानवीय भावनाओं के सम्बन्ध में विचार व्यक्त करते हुए लिखा है– ''**प्रसाद जी मनुष्यों के और मानवीय भावनाओं के कवि हैं। शेष प्रकृति यदि उनके लिये चैतन्य है, तो भी मनुष्य सापेक्ष्य है। यह विकास–भूमि यदि संकीर्ण है, तो भी मनुष्यता के प्रति तीव्र आकर्षण से भरी हुयी है। आँसू में प्रसाद जी ने यह निश्चित रीति से प्रकट कर दिया है कि मानुषीय–मिलन के इंगितों पर वे विराट् प्रकृति को भी साज सजाकर नाच नचा सकते हैं। यह शेष प्रकृति पर मनुष्यता की विजय का शंखनाद है! कवि जयशंकर प्रसाद का प्रकर्ष यहीं पर है। यही प्रसाद जी प्रसाद जी हैं।''**[9]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्रसाद जी मनुष्य एवं मानवीय भावनाओं के विराट् कवि हैं जो उनकी रचनाओं में स्पष्टतः दिखाई देता है। '**आँसू**' रचना के अन्तर्गत प्रसाद जी ने मानवीय विरह की तीव्र अभिव्यक्ति के लिये प्रकृति को भी उसी के भावनाओं में समुद्‌भूत कर दिया है। आँसू का एक छन्द प्रस्तुत है जिसमें कवि के मस्तक में अत्यधिक पीड़ा स्मृति के रूप में विद्यमान है जो विरह के इस असहनीय समय में '**आँसू**' बनकर वर्षा के जल के रूप में बरस जाना चाहता है –

''जो घनीभूत पीड़ा थी
मस्तक में स्मृति–सी छायी
दुर्दिन में आँसू बनकर
वह आज बरसने आयी।''[10]

यहाँ पर प्रसाद जी द्वारा मानवीय विरह की अभिव्यक्ति के अन्तर्गत प्रकृति का भी समुचित प्रयोग किया गया है; जो इस छन्द में मुखरित हुआ है। प्रसाद साहित्य के अन्तर्गत हम मानवीय भावना को उनकी रचना '**कामायनी**' के अन्तर्गत '**श्रद्धा सर्ग**' में भी देख सकते हैं जिसमें मनु चिन्तित रहते हैं कि सभी वस्तुओं का विनाश होना सम्भव है तथा जिसका मैं स्वयं भागीदार रह चुका हूँ। इस अनुभव को महशूस कर चुका हूँ। मनु का कथन द्रष्टव्य है–

''**मैं एक अभागा व्यक्ति हूँ जिसके जीवन का कोई निर्दिष्ट लक्ष्य नहीं है। भाग्य मुझसे जो कराये वही करना होगा, और सच तो यह है कि प्राणी सब ओर से विवश है। संसार में कुछ भी तो स्थायी नहीं। मैंने अपनी आँखों ऐश्वर्य के शव पर विनाश का क्रूर नृत्य देखा है। मुझे निश्चय हो गया है कि जीवन का अन्त सदैव घोर निराशा में होता है।''**[11]

इस अवसाद ग्रस्त मनु को श्रद्धा ही एक अवलम्ब के रूप में मिलती जो उनको ढांढस बंधाने का कार्य करती है। श्रद्धा मनु को दुःख के विषय से परिचित कराती है और इस प्रकार अपने वक्तव्य को रखती है–

''**परिस्थितियों के चक्र में पिसकर कभी–कभी ऐसी अशुभ भावनाओं का उत्पन्न होना स्वाभाविक है; पर इन्हें पोषित करना अनुचित है। तुम्हारा अतीत दुःखमय रहा, यह सत्य है; पर तुम उसी प्रकार के भविष्य की व्यर्थ कल्पना किस आधार पर करते हो? वह सुखमय हो सकता है। शक्तिशाली हो विजयी बनो।**''[12]

इस कथन में श्रद्धा मनु को दुःख, मानव को मानव के निकट लाने वाला बतायी है। यह दुःख ईश्वर प्रदत्त है जो अति रहस्यमय है। इसलिये मनुष्य को सुख एवं दुःख दोनों को सहर्ष स्वीकार करना चाहिए। यदि केवल सुख ही सुख मनुष्य के जीवन को प्राप्त हो जाये तो भी मनुष्य अति सुख से व्यथित हो जाता है। इस प्रकार श्रद्धा मनु को मानवीयता का पाठ पढ़ाती हुयी प्रस्तुत हुयी है। श्रद्धा के संसर्ग में आकर अन्ततः कामायनी में इड़ा भी संसृति सेवा में लग जाती है।

मानवीय भावनाओं का दर्शन हम प्रसाद कृति '**लहर**' के अन्तर्गत कविता '**अशोक की चिन्ता**' में पाते हैं जिसमें सम्राट अशोक के हृदय में परिवर्तन होना भी कहीं न कहीं उनके हृदय में मानवीयता का भाव जागृत हुआ दिखाई पड़ता है। जिसमें कलिंग के भयंकर नरसंहार से व्यथित हो वे चिन्ताग्रस्त होकर विरक्त हो जाते हैं। उनके लिये अब विजय भी पराजय की भांति लगती है। इस कविता के एक अंश को हम देख सकते हैं जिसमें अत्यधिक पीड़ा की अभिव्यक्त हुयी है–

''यह महादम्भ का दानव–
पीकर अनङ्ग का आसव–
कर चुका महाभीषण रव,
सुख दे प्राणी को मानव
तज विजय पराजय का कुढंग।''[13]

इस प्रकार इस कविता के अन्तर्गत देखते हैं कि कलिंग के भीषण नर संहार के फलस्वरूप जो रूदन ध्वनित हुआ, है वह सम्राट अशोक के हृदय में परिवर्तन ला देता है, जिससे उनका हृदय द्रवीभूत हो जाता है। कलिंग के ऊपर विजय प्राप्त करने के बाद सम्राट अशोक का मन यह सब दृश्य देखकर अत्यंत पीड़ित हो जाता है। सम्राट अशोक अपने मनुष्यता को स्पष्ट करते हुये कहते हैं–कि हे मानव! तुम्हारा यही धर्म कि प्राणी को सुख प्रदान करना और यह पराजय का बुरा ढंग है, संहारक पद्धति है, यह लालसा है, इनका त्याग कर दे।

इस प्रकार सम्राट अशोक के मन में प्राणी को सुख देने का जो भाव जागृत हुआ है उससे यह स्पष्ट होता है कि उनके अन्दर मानवीय भावना का समावेश हुआ है।

वैसे भी हमें वर्तमान समय में मानवीय भावना के रूप का ह्रास हुआ दिखाई पड़ता है। हम कहीं यदि यात्रा करने, शैक्षिक भ्रमण करने निकलते हैं तो देखते हैं कि कोई ऐसा व्यक्ति जो देखने में कुरूप है पास में आ जाय या बगल में बैठ जाय तो हम उसे घृणा की दृष्टि से देखने लगते हैं। वहीं दूसरी ओर हम देखते हैं कि व्यक्ति जानवरों को भी बहुत प्यार से पालते हैं दुलारते पुचकारते हैं किन्तु ऐसे मनुष्यों से अपने को बहुत दूर रखना पसन्द करते हैं। आखिरकार वह भी मनुष्य ही तो है। इसका उदाहरण हमें अनेक स्थानों पर मिल जाते हैं जैसे – अस्पतालों के अन्तर्गत आने वाले बीमार व्यक्ति, स्कूलों, कालेजों में पढ़ने वाले बहुत से विद्यार्थी इसी प्रकार बड़े–बड़े प्रतिष्ठानों, इत्यादि स्थानों पर कामगार मजदूर आदि। इनके अतिरिक्त कम या अधिकांशतः लगभग सभी नागरिक इस उपेक्षा के शिकार हैं।

हम देखते हैं व्यक्ति थोड़ी–थोड़ी बात में झगड़ा कर लेते हैं तथा धमकियाँ देते हुए आपस में चाकू बन्दूक को निकालकर मारने हेतु उद्धृत हो जाते हैं। कहीं–कहीं तो खून ही कर डालते हैं। इसका प्रमुख कारण भी यही हो सकता है कि अब व्यक्ति का व्यक्ति के अन्दर से मानवीय भावना का रूप समाप्त होने लगा है जिससे ऐसा कदम उठाने में वे हिचकिचाते नहीं हैं।

प्रसाद जी ने अपने विभिन्न कहानियों में भी मानवीय भावना का समावेश किया है। जिसमें एक कहानी '**भिखारिन**' भी है। इस कहानी में '**निर्मल**' पात्र जो बालक है उसी के अन्दर मानवीय भावना का समावेश दिखाई पड़ता है। वह '**भिखारिन**' के मांगने पर अपनी '**माता**' से उसको कुछ देने के लिये आग्रह करता है, किन्तु उसकी माँ पैसे देने को तैयार नहीं होती है। निर्मल के अन्दर उत्सुकता जागृत होती है कि वह भिखारिन क्यों भीख मांग रही है। इसलिये वह भिखारिन से ही पूछ बैठता है। इन दोनों के संवादों को इस प्रकार देखा जा सकता है–

''निर्मल ने पूछा–''तुम भीख क्यों मांगती हो?'' भिखारिन के पोटली के चावल फटे कपड़े के छिद्र से गिर रहे थे उन्हें संभालते हुये उसने कहा बाबू जी पेट के लिये।'' निर्मल ने कहा–''नौकरी क्यों नहीं करती? मां इसे अपने यहाँ क्यों नहीं रख लेती? धनिया तो प्रायः अपने यहाँ आती भी नहीं।''

माता ने गम्भीरता से कहा–''रख लो। कौन जाति है, कैसी है, जाना न सुना, बस रख लो।''

निर्मल ने कहा–''मां दरिद्रों की तो एक ही जाति होती है।''[14]

इन संवादों के अध्ययन से हमें यह पता चलता है कि निर्मल तथा उसकी माता के विचारों में बहुत अन्तर है। वह भिखारिन को न तो कुछ देती है और न ही उसको अपने यहाँ रखने को तैयार ही होती है।

अतः हम देखते हैं कि प्रसाद जी ने निर्मल के माध्यम से इस कहानी के अन्तर्गत मानवीय भावना का समावेश किया है। प्रसाद जी ने अपनी बहुत सी कहानियों के पात्र के माध्यम से मानवीय भावना की अभिव्यक्ति प्रदान की है जिसके अन्तर्गत एक कहानी '**मधुआ**' में भी '**शराबी**' पात्र बालक '**मधुआ**' के प्रति सहृदय हो जाता है तथा अपने अन्दर भी बदलाव लाता है। अतः प्रसाद जी ने अपनी कहानियों के माध्यम से भी मानवीय भावना को उजागर करने का प्रयत्न किया है।

मानवीय भावना की एक झलक हम प्रसाद जी के नाटकों के अन्तर्गत भी देख सकते हैं। उनके एक नाटक '**अजातशत्रु**' को ही देखते हैं जिसमें एक स्त्री पात्र जिसका नाम '**श्यामा**' है। उसकी मृत्यु हो जाती है। इसमें एक पात्र '**आनंद**' भी है जो गौतम से वहाँ से तुरन्त हटने के लिए कहता है जिस पर गौतम हटने के बजाय उस स्त्री की सहायता हेतु आनन्द से कहते हैं कि उसे उठाओ। इस नाटक में उनकी संवाद योजना को इस प्रकार देख सकते हैं।

''आनन्द–यथार्थ है प्रभु (श्यामा के शव को देखकर) अरे यह क्या! चलिये गुरुदेव! यहाँ से शीघ्र हट चलिये। देखिए, अभी यहाँ कोई कांड घटित हुआ है।

गौतम–अरे, यह तो कोई स्त्री है, उठाओ आनन्द! इसे सहायता की आवश्यकता है।

आनन्द–तथागत आपके प्रतिद्वन्दी इससे बड़ा लाभ उठावेंगे। यह मृतक स्त्री विहार में ले जाकर क्या आप कलंकित होना चाहते हैं।

गौतम–क्या करुणा का आदेश कलंक के डर से भूल जाओगे? यदि हम लोगों की सेवा से वह कष्ट से मुक्त हो गयी तब? और मैं निश्चयपूर्वक कहता हूँ कि यह मरी नहीं है। आनन्द, विलम्ब न करो। यदि ये यों ही पड़ी रही, तब तो विहार पीछे ही है। उस अपवाद से हम लोग कहाँ बचेंगे?''[15]

इस नाटक के अन्तर्गत प्रसाद जी ने गौतम के माध्यम से मानवीयता का संदेश दिया है जिसमे गौतम के मन में श्यामा के प्रति करुणा एवं उसकी उपचार हेतु विचार जागृत हुयी है जो मानवीय भावना के अन्तर्गत ही कही जायेगी। प्रसाद जी ने मानवीय भावना का समावेश बहुत ही शालीनता के साथ पात्रों के अन्तर्गत किया है।

अन्त में हम निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि प्रसाद जी के साहित्य में मानवीय भावना को स्पष्टतः देखा जा सकता है चाहे उनकी पद्य की रचनाओं में देखें या गद्य की विभिन्न विधाओं जैसे नाटक, कहानी, यहाँ तक उपन्यासों के अन्तर्गत भी मानवीय भावनाओं का समावेश किया हुआ पाते हैं। इन विधाओं के अन्तर्गत विभिन्न पात्रों के माध्यम से मानवीय भावना का रूप प्रस्फुटित हुआ है। पात्रों में जैसे उनके उपन्यास के अन्तर्गत '**तितली**' नामक उपन्यास में '**बाबारामनाथ**' का चरित्र है तथा नाटकों में '**जनमेजय का नाग यज्ञ**' में '**व्यास**' एवं '**श्रीकृष्ण**' का चरित्र है। '**विशाख**' के अन्तर्गत '**प्रेमानंद**' इसी प्रकार '**अजातशत्रु**' नाटक में '**गौतम**' आदि के आदर्श चरित्र

के माध्यम से मानवीय भावना का समावेश किया गया है। इसी तरह उनके स्त्री पात्रों पर भी दृष्टिपात करें तो पाते हैं कि '**श्रद्धा**', '**मल्लिका**', '**देवसेना**', '**तितली**', '**मालविका**' आदि के माध्यम से भी मानवीय भावना को जागृत किया गया है।

अतः प्रसाद जी के साहित्य में आदर्श मानवीय भावना का पुट विद्यमान है जो समूचे राष्ट्र को एकता के सूत्र में बांधने की प्रबल सामर्थ्य रखता है।

संदर्भ–सूची

1. भर्तृहरि : नीतिशतकम्, भवदीय प्रकाशन, प्र. सं., पृ. 19
2. डॉ. सत्यप्रकाश मिश्र : प्रसाद का सम्पूर्ण काव्य, (चित्राधार) लोकभारती प्रकाशन, च. सं. 2013, पृ. 2
3. प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित : 'प्रसाद' समग्र, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, प्र. सं. 2006, पृ. 177
4. वही : पृ. 177
5. वही : पृ. 177
6. वही : पृ. 177
7. वही : पृ. 177
8. डॉ. सत्यप्रकाश मिश्र : प्रसाद का सम्पूर्ण काव्य (प्रेमपथिक), लोकभारती प्रकाशन, च. सं. 2013, पृ. 89
9. नन्ददुलारे बाजपेयी : हिन्दी सीहित्य बीसवीं शताब्दी, लोकभारती प्रकाशन, सं. 2010, पृ. 103
10. जयशंकर प्रसाद : आँसू , लोकभारती प्रकाशन, सं. 2015, पृ. 14
11. विश्वम्भर मानव : कामायनी मूलपाठ एवं टीका, लोकभारती प्रकाशन, सं. 2005, पृ. 55
12. वही, पृ. 55
13. डॉ. सत्यप्रकाश मिश्र : प्रसाद का सम्पूर्ण काव्य, (लहर) लोकभारती प्रकाशन, च. सं. 2013, पृ. 372
14. चारु सपरा : जयशंकर प्रसाद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, न्यू साधना पॉकेट बुक्स, पृ. 159, 160
15. डॉ. सत्यप्रकाश मिश्र : प्रसाद का सम्पूर्ण नाटक एवं एकांकी, लोकभारती प्रकाशन, च. सं. 2013, पृ. 258

*****

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 46-49

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

मध्यकालीन काव्य में नारी चेतना

*डॉ. रतन कुमारी वर्मा**

साहित्य और सत्ता दोनों एक–दूसरे के प्रतिस्पर्धी हैं। कभी साहित्य आगे निकलने का दावा करता है, तो कभी सत्ता। मुंशी प्रेमचन्द ने 1936 के लखनऊ के प्रगतिशील लेखक संघ के अधिवेशन में कहा था–''साहित्य राजनीति के आगे चलने वाली मशाल है'' यानी राजनीति साहित्य से प्रेरणा ले सकती है लेकिन राजनीति के पास ऐसा कुछ नहीं है जिससे साहित्य प्रेरणा ले। इसी सन्दर्भ में अमरकान्त जी का 21 सितम्बर, 2011 को अमर उजाला में प्रकाशित कथन महत्वपूर्ण है–''साहित्य का आधार सच्चाई है, जबकि राजनीति में अनेक दाँवपेंच है। साहित्य में राजनीति नहीं की जा सकती, राजनीति चाहे तो साहित्य का सहारा ले सकती है।''

इन उद्धरणों के के परिप्रेक्ष्य में यह समझा जा सकता है कि राजनीति के पास सत्ता है और साहित्य को सत्ता से टकराना पड़ता है। आदर्श शासन साहित्य और साहित्यकार का आदर व सम्मान करता है। लेकिन यह जरूरी नहीं कि सभी शासन साहित्य और साहित्यकार की विचारधाराओं का सम्मान करें। वह भी जब साहित्यकार की विचारधारा सत्ता की विचारधारा से मेल न खाती हो। दूसरी स्थिति यह है कि जब साहित्यकार सत्ता के ढाँचे में ढलकर लिखता है तब उसमें मौलिकता का अभाव पाया जाता है। इस दृष्टिकोण से जब मध्यकालीन काव्य की पड़ताल की जाती है, तो साहित्य और सत्ता का सम्बन्ध एक–दूसरे से टकराता हुआ दिखाई पड़ता है। साहित्य और सत्ता का सम्बन्ध ठीक–ठाक नहीं था। सत्ता के पटल पर तुगलक वंश, सैय्यद वंश, लोधी वंश, मुगल शासकों का साम्राज्य था। इन शासकों का शासन इस्लाम का पक्षधर तथा हिन्दू धर्म का विरोधी था। ऐसी परिस्थिति में संतो का ध्यान ईश्वर पर केन्द्रित था। ईश भक्ति के माध्यम से जनता में समन्वय की भावना जाग्रत करना चाहते थे। इसकी चिन्ता सबसे अधिक कबीर के काल में दिखाई पड़ती है। जायसी, सूर और तुलसी के यहाँ भी समाज को लेकर बहुत चिन्ता है। लेकिन उस चिन्ता में नारी का पक्ष न के बराबर है। समाज की चिन्ता थी, राष्ट्र के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाली नारी के प्रति इन संतों का क्या दृष्टिकोण था, यह समझना बहुत जरूरी है।

सन्त कवियों ने नारी को माया का प्रतीक माना है। उनके विश्वास के अनुसार कनक और कामिनी ये दोनों दुर्गम घाटियाँ हैं। कबीर कहते हैं–

नारी की झाईं पड़त अन्धा होत भुजंग।
कबिरा तिनकी कौन गति नित नारी के संग।

कबीर ने एक उदाहरण भुजंग यानी सर्प का लिया और उसके ब्याज से नारी की निंदा की। लेकिन उन्हीं कबीर ने सती एवं प्रतिव्रता नारियों की मुक्त कंठ से प्रशंसा की–

पतिव्रता मैली भली, काली कुचित कुरूप।
पतिव्रता के रूप पर, वारों कोटि सरूप।।

लगता है पतिव्रता का आदर्श उनकी साधना के निकट पड़ता था। सती में एक के प्रति आसक्ति, शेष के प्रति विरक्ति, असीम प्रेम, त्याग, समर्पण, साहस आदि भी जो भावनायें हैं, उनसे वे प्रभावित थे। उन्होंने नारी के कामिनी रूप को माया माना है, और माया को महाठगिनी मानकर निन्दा की है। जायसी के 'पद्मावत' में परमात्मा के प्रतीक

---

* *एसोशिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, जगत तारन गर्ल्स पी.जी. कालेज, इलाहाबाद*

के रूप में रानी पद्मावती को उच्च स्थान प्रदान किया गया है। विरहिणी नारी नागमती के माध्यम से सामान्य नारी की बिरह–वेदना को वाणी दी गयी है। सिंघलदीप में पानी भरने आने वाली स्त्रियों के शारीरिक सौन्दर्य का वर्णन जायसी ने किया है।

पानि भरै आवहिं पनिहारी, रूप सरूप पदुमिनी नारी।
पदुम गंध तिन्ह संग बसाही, भँवर लाग तिन्ह संग फिराहीं।

उनकी कटि सिंहनी के समान, मृगनयनी, हंसगामिनी, कोकिलबानी, मेघ की भाँति सिर से पेट तक लम्बे बाल, दाँत बिजली की तरह चमकीले, सुन्दर रूप वाली पद्मिनी जाति की स्त्रियों के सौन्दर्य का वर्णन जायसी ने किया है।

पद्मावत में वेश्या नारियों का भी वर्णन उपलब्ध होता है–

पुनि सो सिंगार हाट धनि देसा। कइ सिंगार बैठी तहे बेसा।
मुख तँबोर तन चीन कुसुंभी, कानन्ह कनक जड़ाऊ खुंभी।

सिंहल का शृंगार हाट तो धन्य है ही, जहाँ गार करके वेश्यायें बैठी रहती हैं। उनके मुख में पान और शरीर पर कुसुमी रंग की साड़ी है। कानों में स्वर्ण खुंभी, हाथों मे वीणा है, जिससे मृग भी मोहित हो जाते हैं। फिर मनुष्य का क्या कहना। वे वेश्यायें इन्द्रजाल से मन को हर लेती हैं, जब तक गाँठ में पैसा रहता है। जब खत्म हो जाता है, तब अपरिचित की भाँति उठकर चल देती हैं।

मालिनों का वर्णन भी उपलब्ध होता है–

लै लै फूल बैठे फुलहारी, पान अपूरब धरे सँवारी।

फूल लेकर फूल बेचनें वाली मालिनें बैठी रहती है। राजभवन के रनिवास में पद्मिनी जाति की सोलह हजार रानियाँ थीं। उनमें चम्पावती जो रूप में उत्तम है, वह पद्मावती की रूप ज्योति की छाया है। अर्थात् गर्भ में पद्मावती के होने के कारण चम्पावती अधिक सुन्दर है। विधि के विधान को मिटाया नहीं जा सकता। सिंघल दीप की प्रतिष्ठा तभी बढ़ी जब परमात्मा ने ऐसा दीपक पद्मावती के रूप में उस स्थान पर उत्पन्न किया। यह कन्या सिंघलदीप में उत्पन्न हुई और जम्बूदीप में लोकलीला करेगी।

एक दिवस पून्यों तिथि आई। मानसरोदक चली अन्हाई।
पदुमावति सब सखी बोलाई। जनु फुलुवरि सबै चलि आई।।

वे सभी ऐसे लग रही थीं। मानों पुष्प की वाटिका चली आयी हो। पूर्णिमा की तिथि पर जब सखियाँ पद्मावति के बुलाने पर स्नान करने मे लिये आईं। जहॉ रानी पद्मावती के अद्वितीय सौन्दर्य का वर्णन है। स्त्री–भेद के अन्तर्गत चार प्रकार की स्त्रियों का वर्णन उपलब्ध होता है– हस्तिनी, सिंहनी, चित्रिणी और पद्मिनी स्त्री। हस्तिनी को हाथी के समान भारी बताया गया है। सिंघनी को सिंह के स्वभाव वाली मांसाहारी, नख से वाण जैसा आघात करने वाली के रूप में चित्रित किया गया है। चित्रिणी नारी को प्रेम में अत्यन्त निपुण बताया गया है। सदैव प्रसन्न रहने वाली, सदैव, शृंगार करने वाली के रूप में वर्णित किया गया है। कहने का तात्पर्य यह कि जायसी के साहित्य में भी नारी की स्वतंत्र सत्ता की स्वीकृति नहीं है। तुलसीदास जी ने कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा, मंथरा, रावण की पत्नी मन्दोदरी, बालि की पत्नी तारा, जानकी का भिन्न–भिन्न रूप में वर्णन किया है। जानकी के प्रति कहते हैं :–

जनक सुता जग जननि जानकी, अतिसय प्रिय करूनानिधान की।
ताके जुग पद कमल मनावऊँ। जासु कष्पा निरमल मति पावऊँ।।

बालकाण्ड–18–4

दासी मंथरा का चित्रण सर्व विदित है कि निन्दनीय रूप में प्रस्तुत किया है–

नामु मंथरा मंदमति चेरी कैकेई केरि। अजसु पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि।

अयोध्या 1–12

रानी कैकेयी का कुटिल चित्रण है। मन्त्री सुमन्त की पत्नी, गुरु वशिष्ट की पत्नी अरून्धती और भी चतुर स्त्रियाँ सीता को सीख देती हैं कि तुमको तो बनवास दिया नहीं है इसलिये जो ससुर, गुरु और सासु कहें, तुम तो वही करो।

कहने का तात्पर्य तुलसीदास जी ने भी स्त्री को अज्ञाकारी के रूप में ही चित्रित किया है। उसे मर्यादा का पालन करना है, बड़े लोगो की आज्ञा माननी है। उसका भी स्वयं कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। गलती हो जाने पर निन्दा का शिकार बनना पड़ता है। प्रायश्चित करने का या आत्मप्रक्षालन करने का कोई अवसर नारी को नहीं मिलता।

सूरदास ने राधा, रूक्मणी, यशोदा, ग्वालिनें आदि का जो चित्रण किया है, उसमें जहाँ प्रेम का सुन्दर चित्रण है, वहीं भ्रमरगीत के माध्यम से गोपियों को वाग्वैदग्ध्य में निपुण चित्रित किया गया है। कहने का तात्पर्य यह कि नारियों के सौन्दर्य वर्णन के साथ उनकी बुद्धिमता को भी स्वीकार किया गया है। योग को लेकर गोपियाँ जो तर्क प्रस्तुत करती हैं, उससे उनकी बुद्धिमत्ता का परिचय मिलता है। कम से कम स्त्रियाँ तर्क करने का साहस करती तो दिखती हैं।

यह तो रहा कि साहित्यकारों में नारी को किस रूप में देखा और उनका वर्णन किस रूप में किया है। मध्यकाल में कुछ महत्वपूर्ण नारियों का भी उल्लेख मिलता है जो विद्वान थीं, बुद्धिमान थीं और जिन्होंने रचनायें की हैं। मध्यकाल में संस्कृत फारसी के माध्यम से भी लेखन करने वाली स्त्रियाँ का उल्लेख मिलता है जिनमें बाबर की पुत्रियाँ गुलबदन बेगम, गुलरूख बेगम, नूरजहाँ, जहाँआरा, जेबुन्निसा मुगल घराने की कवयित्रियाँ फारसी में लेखन करती थीं। हिन्दू राजघराने की संस्कृत कवयित्रियों में–गौरी, तिरूमलाम्बा, देवकुमारिका, मधुरवाणी, राम भद्राम्बा, गंगा देवी आदि का उल्लेख प्राप्त होता है। इन कवयित्रियों का वर्णन पति, भाई, पुत्र की महिमा में डूबा हुआ है। स्वतन्त्र स्त्रीत्व की छाप नहीं है। चारणियों में–झींगा, पद्मा, चम्पा दे, रानी रणधरी डिंगल में रचना करती हैं। लेकिन रणभूमि में न जाकर रनिवासों के इर्द–गिर्द ही रचना चक्कर काटती हैं। शेख, सुजान राय, प्रवीण राय, रूपमति, सांई, चंदसखी, गंगा स्त्री, यमुना स्त्री, माधवा, ताज, रत्नावली भी काव्यरचना में निपुण थीं। सन्त कवयित्रियों में उमा, महदम्बा, इन्द्रामती, मुक्ताबाई, चरणदास की शिष्याओं–दयाबाई एवं सहजोबाई का भी उल्लेख प्राप्त होता है। इसके अलावा कृष्णावती, गबरीबाई, आनन्दीबाई, महारानी, वृषभानुकुँवरि, जुगलप्रिया, बाघेली, विष्णुप्रसाद कंवरि, प्रताप कुंवरिबाई चन्द्रकला, बख्तकुंवरि, रामप्रिया का भी संक्षित विवरण प्राप्त होता है। इन कवयित्रियों की रचनाओं में स्त्री की स्वतंत्र पहचान नहीं दिखाई देती है। मीरा का आज तक जो चित्रण या उल्लेख प्राप्त होता है चाहे वह सिनेमा हो, साहित्य हो या लोकश्रुति परमपरा, सभी भक्ति की दुनिया में प्रेम, समर्पण व माधुर्य की तीव्रता मिसाल के तौर पर ही हुआ है।

डॉ. सुमन राजे हिन्दी सहित्य का आधा इतिहास, पृ.सं. 148 पर उल्लेख करती हैं– ''मध्ययुगीन साहित्य में मीरा का जीवन और साहित्य नारी– विद्रोह का रचनात्मक आगाज है।, ''हिन्दी साहि़त्य में हजार सालों के इतिहास में जिस तरह कबीर अकेले खड़े हैं, उसी तरह मीरा भी हैं। बल्कि मीरा का संघर्ष कहीं कबीर के संघर्ष से भी कठिन प्रतीत होता है। कारण– पहले तो मीरा स्त्री, फिर राजघराने की स्त्री, ऊपर से कुलवधू, राजपरम्परा, कुल मर्यादा तोड़ने का संघर्ष। सामाजिक पितृसत्ता से संघर्ष, संस्थागत धर्म की पितृसत्ता से संघर्ष। सबको धता बताकर अपनी शर्त पर जिन्दगी जीने का प्रचण्ड दुस्साहस करने वाली मीरा ने नारी जीवन पर आरोपित सर्वग्रासी, सर्वाच्धादी संरचना 'पत्नीत्व' के विधि निषेधों को पग–पग पर अस्वीकार किया। विधवा होने पर बिधवा के झूठे सच के परखच्चे उड़ा दिये। कदाचित् मीरा को यह बोध था कोई स्त्री विधवा होती नहीं, बनाई जाती है। वैधव्य एक काल्पनिक दुःख है जो स्त्री पर थोपकर उसे आजीवन दुःखी रहने को धर्म ठहराया जाता है। विवाह की पितृसत्तात्मक धारणा को चुनौती देती हुई कहती हैं–

गिरधर गास्याँ, सती न होस्याँ।

प्रो0 मैनेजर पाण्डेय ने कहा है –''मीरा का जीवन और काव्य उस काल में अन्य भक्त कवियों की स्त्री सम्बन्धी मान्यताओं का प्रतिकार है और प्रत्युत्तर भी। पत्नीत्व व मातृत्व मे धेरे से बाहर स्त्री की किसी चहलकदमी को या

उड़ान को प्रतिबन्धित करने वाली, यानी इससे इतर स्त्रियाँ की किसी वैकल्पिक धारणा की अवधारणा को कुचल डालने वाली, खानदानी या कुलवन्ती नारी के मिथ को तार–तार कर देने वाली मीरा स्त्री के स्वतन्त्र अस्तित्व के लिए अकेले संघर्ष करती हैं। यह सोचा जा सकता है कि यदि वर्तमान काल के शासकों के काल में स्वतंत्र रूप से लिखने वाले साहित्यकारों को किस तरह प्रताड़ना का शिकार होना पड़ता है। आजादी मिलने के बाद चाहे किसी भी पार्टी की सरकार रही हो। तो जिस समय हम पराधीन थे। ऐसी पराधीनता के काल में कैसी रचनायें संभव हो सकती हैं। वह भी जब स्त्री के बारे मे कोई कुछ भी सुनने को तैयार न था। समाज में नारी के लिए हर जगह निषेध ही निषेध था। अगर उसके पास कुछ था तो केवल कर्त्तव्य। अधिकार नाम की चीज उसके पास नहीं थी, न ही धर्म की स्वतत्रता थी, न ही शिक्षा का अधिकार मिल पाता था। उसको अपने जीवन के विषय में किसी भी प्रकार की स्वतन्त्रता नहीं थी। नारी की आजादी को पाने का मार्ग मीरा ने प्रशस्त किया। मीरा संधर्ष की बेमिसाल मिसाल बन गईं। मध्यकालीन काव्य के क्षितिज पर मीरा एक चमकते सितारे की तरह हैं, जहाँ से स्त्री को संघर्ष की ऊर्जा और साहस मिलता है। मीरा ने संघर्षों के द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि नारी में अभूतपूर्व शक्ति है। जरूरत है उसको जाग्रत करने की। जिस दिन नारी स्वयं में जाग जाती है वह अपने अधिकार को पूरा न सही, अंशतः तो हासिल कर ही लेती है। आज भी नारी समान अधिकार के लिए संघर्ष ही कर रही हैं। वर्तमान काल के साहित्य में भी स्त्री की यह आवाज मुखरित हो रही है।

संदर्भ–सूची

1. डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास
2. डॉ. सुमन राजे, हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास
3. गणपतिचन्द्र गुप्त, साहित्यिक निबंध
4. हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर
5. जायसी, पद्मावत
6. डॉ. शिवकुमार शर्मा, हिन्दी साहित्य, युग और प्रवृतियाँ
7. मैनेजर पाण्डे, भक्ति आन्दोलन और सूरदास का काव्य
8. तुलसीदास, रामचरितमानस

*****

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 50-52

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

इंशानी रिश्तों की खोज में नासिरा शर्मा की कहानियाँ

*डॉ. विनोद कुमार विद्यार्थी**

की वह सच्चाईयाँ हैं जो मेरी अनुभूति से नहीं बल्कि यथार्थ की जमीन से उपजी है। जिसमें जरूरत के अनुसार कुछ कल्पना और मेरे अहसास का मिश्रण है। कहानियों में बयान स्थितियों ने मुझे बेचैन जरूर किया और एक सवाल भी सामने रखा कि इतना कुछ प्रयास करने के बावजूद परिवर्तन क्यों नहीं आता? यह सवाल अपनी जगह जितना अहम है उतनी यह हकीकत भी कि बढ़ती आबादी के साथ पैदा हुए नये इंसान नई समस्याओं के साथ जीवन में प्रवेश करते हैं और समाज के स्तर पर नई कहानियों को जन्म देते हैं।"[1]

नासिरा शर्मा की कहानियों में "इंसान' एक ऐसा बुनियादी मुद्दा बनकर उभरता हैय जिसके चारो तरफ राजनीति, अर्थव्यवस्था, धर्मशास्त्र, कानून व्यवस्था, समाज परिवार इत्यादि विश्व स्तर पर जवाबदेह नजर आते हैं। मानवीय रिश्ता विकास और उन्नति पर प्रश्न–चिन्ह लगाता हुआ समय का वह चेहरा सामने लाता है, जिसमें इंसान पूरी तरह लहूलुहान नजर आता है। आखिर यह मानवीय समाज शतरंज का कौन–सा बाजी लगातार खेलना चाहता है, और जीत का कौन–सा पदक प्राप्त करना चाहता है। इनकी कहानियों में इंसानी जीवन की आँच भी है और आस भी कि स्वयं इंसान अपने प्रति हो रहे अत्याचारों और शोषण का रूख बदलेगा।"[2]

बकौल नासिरा "ये कहानियाँ केवल उस जन–समुदाय की संवेदनाओं और वेदनाओं की धड़कनें हैं जो धरती से जुड़ा आशा और निराशा का संघर्षमय सफर तय कर रहा है। समाज में संवेदना का निरंतर शुष्क होते जाना, प्रेम का भाव स्थायी रूप से किसी रिश्ते में न ठहर पाने की खीज और घबराहट भरी जिजीविषा कि कल क्या होगा? इंसान के सोच और शरीर दोनों को दुर्बल बना रहा है।"[3]

उपर्युक्त उद्धरण नासिरा शर्मा के अपनी कहानियों के प्रति उनकी दृष्टि, अपेक्षा और संभावनाओं को रेखांकित करते हैं।

अपनी कहानियों के माध्यम से लेखिका ने इंसानी रिश्तों की खोज की है। उन इंसानी रिश्तों की जो समाज के धरातल पर कायम होते हैं और वास्तविक परिस्थितियों के थोड़ा–बहुत बदलने से भी प्रभावित होते हैं। वे इस बात की खोज करते हैं कि एक दी हुई सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियों में, एक परिवेश में मानवीय संबंधों की क्या स्थिति है? और एक ही सामाजिक–आर्थिक परिस्थिति में जी रहे लोगों की स्तरीयता के अनुकूल इंसानी रिश्तों की क्या बनावट है? उनकी भावनाओं को उनकी विभिन्न कहानी संकलन के कुछ कहानियों के आधार पर देखा–परखा–चखा जा सकता है। लेखिका की कहानियों पर एक नज़र डालना उनकी मानसिक संरचना को स्पष्ट करने के लिए अनिवार्य है।

'मिस्त्र की मम्मी' कहानी के 'कुरूष' (पात्र) की मान्यता है कि "सही जिंदगी तो वह है जो गमों की खाईयों और संघर्षों के सुरंग से गुजरती है।"[4] जबकि 'योता' बहुत सोच–विचार करने के बाद 'कुरूष' के बजाय अपने बाप की राय का महत्व देकर एक अमीर जादे से शादी कर लेती है। वह 'अपने फैसले से संतुष्ट ही नहीं खुश भी थी।"[5] पर "अब वो देवों के किले में कैद शहजादी थी, जो न हँस सकती है न रो सकती है। सिर्फ मुस्कुरा सकती है।"[6] कुरूष, योता पर अपनी टिप्पणी के माध्यम से उच्चवर्ग की वास्तविकता को रेखांकित करता है–"उस घर में कुछ अच्छे बच्चे सज जाएँ।" यहाँ सजावट के अन्य सामानों की तरह बच्चे एक समान होते हैं। उनकी दृष्टि में योता बच्चे के लिए आई है एक पराये मर्द के पास। इस बात से कुरूष आहत होकर कह उठता है–"मेरे दिल का वह

* *हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली*

नासिरा शर्मा की कहानियाँ यथार्थ की धरती पर बोई एक खेती है। उनकी कहानियों एवं रचना प्रक्रियाओं का अपना यथार्थ है। वे स्वयं अपनी 'बुतखाना' कहानी संग्रह के 'दो शब्द' में लिखती हैं कि "मेरी कहानियाँ समाज

नरम कोना जिसमें तुम थी, जख्मी हो गया है।"[7] कहानी उच्चवर्ग की मानसिकता, उसकी विडंबनापूर्ण स्थिति और उसमें मानवीय भावनाओं के अभाव की भयानक स्थिति को अभिव्यक्त करती है।

'पतझड़ का फूल' की 'अनहित' इस व्यवस्था के समक्ष एक सवाल बनकर खड़ी है। उसके सक्रिय हस्तक्षेप को भोगती हुई। उसे अपनी स्थिति का पूरा पता है–"कोई कब्र ही खाली नहीं है कि वह दफनाई जाए। ऊपर पेड़ पर बेशुमार गिद्ध बैठे हैं।[8] नासिरा शर्मा की कहानी 'मुट्ठी भर धूप' लगभग एक तरह की ही कहानियाँ हैं। वतन छोड़कर रोटी के लिए परदेश में भटक रहे विजय और रेखा को जिस अपनेपन की खोज है, इंसानी हमदर्दी की खोज है, वह उन्हें ईरान में मिलती है। रोटी का रिश्ता जो उन्हें ईरान ले जाता है, एक बहुत बड़ा रिश्ता होने के बाद भी इंसानी हमदर्दी और अपनेपन के रिश्ते से ज्यादा बड़ा नहीं है, और यह रिश्ता बहुत व्यापक है, राष्ट्रीयता की सीमा को पार कर जाता है–"इतना प्यार इतना सत्कार बहुत दिनों बाद घर में बैठकर खाना अच्छा लगता है।"[9] और रेखा ऐसी ही हमदर्दी पर सोचती है– "यही क्या कम था इस अजनवी धरती पर, इस दौड़ती–भागती मशीनी जिंदगी में।"[10] इस कहानी में इंसानी हमदर्दी की छुवन रिश्तों को पिघलाती है।

"शामी कागज़" शामी कागज़ की 'पाशा' लोगों की हमदर्दी नहीं चाहती। कालीन और पलंगों वाले घर में लोगों की निरपेक्ष सहानुभूति उसे छू नहीं पाती। सबको अपनी और अपने संसार की फिक्र है। "भौ की प्लांकिंग और नाखून की पॉलिशिंग के लिए ब्यूटी पार्लर जाने की चिंता और हेयर ड्राई करवाने की चिंता के बीच पाशा के दुःख के लिए किसके दिल में जगह है ?"[11] इस समाज में मानवीय भावना कहा है? इसलिए पाशा को सहानुभूति नहीं चाहिए जो सहानुभूति इंसानी जज्बात से बरी हो। "मोहब्बत और हमदर्दी का फर्क तो तुम जानते हो ना महमूद?[12] पाशा पूछती है–"महमूद आज के बाद मेरा गम बाँटने की कोशिश मत करना–यह गम ऐसा नहीं है जो खुशी से बदला जा सके। हमारा तुम्हारे ऊपर मेहरबान होने का मतलब है कि मैं अपने जिस्म से मोहसिन का लम्स मिटा दूँ। हर वह स्पर्श जो मुझे जीना सिखा रहा है, उसे पोछ डालूँ। जब उसे दिल और दिमाग से मिटा नहीं सकती तो फिर जिस्म से उसे क्या मिटाऊँ, ऐसी क्या मजबूरी?"[13] कोई जरूरी है कि एक बार जो हुई वो जिंदगी में दुहराया जाए?

'तलाश' कहानी उन नौजवानों की तलाश करती है जो व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष में हिस्सा लेते हैं और उसके दमन के क्रमशः शिकार होते चले जाते हैं। इसकी प्रतिक्रिया खीझ और गुस्से की तीव्रता में होती है। "बंदर की तरह जमाने की धुन पर नाचो। उसके लुत्फ उठाओ। नाले में पड़ी दूरबीन से उन इलाकों को देखो जहाँ रोटी केवल सपना बन गई है।"[14] 'उकाब' कहानी में मोहसिन का दोस्त जिंदगी की कैद खुशबू को लोगों तक पहुँचाना चाहता है पर पहुँचा नहीं पाता और सोचता है। "आखिर इस धरोहर को जालिम सफ्फाक 'उकाब' से किस तरह बचाकर इंसानों की बस्ती तक पहुँचाऊँ।"[15]

'कातीब' कहानी में इस टेक्नोलॉजी और मशीनी दौर में पुराने फन और कलाएँ किस तरह खत्म हो रही है और कातीब जिनको समाज का दुःख–दर्द समझने वाला, उसकी अक्कासी अपने फन में करने वाला समझा जाता है वह भी इस खुदगर्जी के दौर में इन गरीबों का शोषण करते हैं।

"मैं फनकार हूँ, खुदा के वजूद को कागज पर उभारता हूँ। जब लफ्जों का जामा उन्हें पहनाता हूँ तब लोग उसे पढ़ते हैं और मैं उसी खुदा के पैदा किए बंदों की दिमागी तस्वीर कागज पर उतारता हूँ फिर, थकान का, मायूसी का अहसास मुझे क्यों घेरता है? शायद यह मेरी अपनी कमजोरी है, अपने को सही न पहचानने की। इसी कमी से यह दुःख मुझे दबोचता है और, अकरम मियाँ छत की दीवार पर लटके छोटे से आईने के सामने खड़े हो बाल सँवारने लगे, जिसमें जीने की उमंग का Hkj i jw i Ske FkkA߳[16]

नसिरा शर्मा की कुछ कहानियाँ पात्रों और घटनाओं के माध्यम से प्रेम के अहसास को जिंदा रखने वाली कहानियाँ हैं। "कहते हैं, प्रेम जितना देता नहीं, उतना ले लेता है। वह बाँधता नहीं है, मन और तन दोनों की जंजीरों को शिथिल कर देता है। फिर मुक्त हो जाता है इंसान।"[17] लेखिका ने इंसानी प्रेम की कोमल संवेदना को अपनी कहानियों में सरल अभिव्यक्ति दी है।

'सिक्का' कहानी में एकमात्र पात्र 'स्त्री' जो प्रेम को एक अजर–अमर अहसास मानती है। इसलिए उसका सारा प्रयास और समर्पण उस अहसास को पुख्ता बनाए और जिलाए रखने में है–"मेरी झोली खाली कब थी? उसमें

इश्क का सिक्का मौजूद था मगर उसे भुनाने का फन मुझे नहीं आता था, अहसास की बेलें फुलों से भर गईं थी, मेरे लिए इश्क सिर्फ इश्क था जिसे पाकर दुनिया भी कदमों पर झुक जाती है और इंसान अपने को बादशाह समझने लगता है।"[18] उनकी कहानियों में 'खुशबू का रंग', 'शामी कागज', 'आबे–तौबा', 'बंद दरवाजा', 'सिक्का', 'दूसरा ताजमहल', और 'खामोश अतिशकदा' सभी प्रेम के लौकिक और अलौकिक स्वरूप को रेखांकित करते हैं।

कहानी संग्रह **'इसांनी नस्ल'** की पहली कहानी 'असल बात' से शुरू होती है जो हिन्दू–मुस्लिम दंगे को प्रस्तुत करती है। लेखिका कहना चाहती है कि "रोटी में कितनी ताकत होती है, जब चाहती है बाँट देती है और जब चाहती है एक कर देती है।"[19] इसी प्रकार 'अपराध' कहानी भी रिटायरमेंट के बाद के अकेलेपन, अंतर्विरोध, संस्कारों के खोखलेपन की कहानी है। कहानी अंतिम अवस्था तक आते–आते एक नया मोड़ ले लेती है। वह अकेलापन, स्वनिरीक्षण की प्रक्रिया द्वारा दूर हो जाता है। अपने को बनाए रखने की जिजीविषा प्रदान करती है। वस्तुतः यह कहानी विसंगतियों में नये मूल्यों की तलाश है।

"इंसानी नस्ल' में जाति, धर्म, भाषा से इत्तर इंसानी जज्बात की चिंता मिलती है। भौतिक विकास के इस युग में इन्सानियत का विकास भी जरूरी है और यह विकास खुले दिमाग से ही संभव है। इस विकास के लिए प्रेम का ठोस आधार अनिवार्य है। नफरत के जज्बात से आजाद होकर ही प्रेम किया जा सकता है।"20

नासिरा शर्मा की कहानियाँ एक ही समाज में समानांतर चल रही जिंदगियों के प्रेम, टकराव तथा उनके अपने अंतर्विरोधों की कहानियाँ हैं, जो मानवीय संबंधों की स्थापना के लिए कशमशाती हैं और जाति–धर्म के कुंठित अंधकार में खुले विचारों की ज्योति बन हृदय को आलोकित करती है।

संदर्भ–सूची

1. ललित शुक्ल (सं.), नासिरा शर्मा : शब्द एवं संवेदना की मनोभूमि, पृ. 162
2. नासिरा शर्मा, बुतखाना (कहानी संग्रह)
3. नासिरा शर्मा, शामी कागज (कहानी संग्रह) पृ. 80–97
4. वही, पृ. 83
5. नासिरा शर्मा, 'मिस्त्र की मम्मी' कहानी, पृ. 20–31
6. वही, पृ. 20–31
7. वही, पृ. 20–31
8. नासिरा शर्मा, पतझड़ का फूल (कहानी संग्रह–शामी कागज), पृ. 45
9. नासिरा शर्मा, 'परिन्दे' (कहानी), पृ. 62–72
10. वही, पृ. 62–72
11. नासिरा शर्मा, शामी कागज, पृ. 80–97
12. वही,
13. वही, पृ. 97
14. नासिरा शर्मा, 'तलाश' कहानी ('शामी काग़ज' संग्रह से), पृ. 140
15. नासिरा शर्मा, 'उकाब' कहानी ('शामी काग़ज' संग्रह से), पृ. 174
16. नासिरा शर्मा, कातीब (शामी कागज संग्रह से), पृ. 86
17. ललित शुक्ल (सं.), नासिरा शर्मा : शब्द एवं संवेदना की मनोभूमि, पृ. 137
18. नासिरा शर्मा, 'सिक्का' (कहानी संग्रह पत्थर गली से), पृ. 168
19. नासिरा शर्मा, 'असली बात' (कहानी संग्रह–इंसानी नस्ल)
20. ललित शुक्ल (सं.), नासिरा शर्मा : शब्द एवं संवंदना की मनोभूमि, पृ. 226

*****

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 53-57

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के काव्य में राष्ट्रीय-चेतना

*श्रेया सिंह**

राष्ट्रीय चेतना का अर्थ राष्ट्र को सदैव प्रगति, विकसित और उन्नत बनाने की सतत् चेष्टा से है। बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' जी आधुनिक युग के उन मूर्धन्य कवियों में से हैं, जिनकी रचनाओं में राष्ट्रीय भावना का उल्लास प्रभूत मात्रा में मिलता है। 'नवीन' जी के काव्य से ज्ञात होता है कि उन्होंने अपने देश के अतीत से प्राप्त विरासत पर गर्व किया। वर्तमान का मूल्यांकन किया और भविष्य में भारतवर्ष के लिए कई सपने बुने। उनकी यह बाते स्पष्ट रूप से बताती है कि नवीन जी को अपने राष्ट्र से कितना लगाव था। 'नवीन' जी ने अतीत का गौरव गान किया है तथा अपने देश की दयनीय स्थिति के प्रति भी इन्होंने संवेदना प्रकट की है। गरीब एवं शोषित व्यक्तियों की पीड़ा एवं व्यथा का वर्णन 'नवीन' जी के काव्य में इतना संवेदनाशील ढंग से किया गया है कि जिसे पढ़कर कोई भी भावुक और क्रोधित हो जाए–

''लपट चाटते जूठे पत्ते जिस दिन देखा मैंने नर को,
उस दिन सोचा क्यों ना लगा दूँ, आग आज दुनिया भर को।''

राष्ट्रीयता को अपने 'जीवन आदर्श' के रूप में स्वीकार कर नवीन जी ने जनमानस को प्रेरणा दी, यही कारण है कि हिन्दी साहित्य में 'नवीन' जी ने विशेष स्थान प्राप्त किया। राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लेने के कारण आरंभिक काल में नवीन जी की राष्ट्रीय चेतना से ओत–प्रोत कई काव्य का सृजन किया। जिनमें 'कुंकुम', 'प्रलयंकर', 'क्वासी' प्रमुख थी। राष्ट्रसेवा के द्वारा मानवीय मूल्य या मानवता को उजागर कर पाश्विक प्रवृत्तियों का समूल नाश करने का अथक प्रयास 'नवीन' जी ने अपनी रचनाओं द्वारा किया है। नवीन जी कुशल कवि के साथ–साथ कुशल वक्ता भी थे। राष्ट्र कवि रामधारी सिंह 'दिनकर' जी नवीन जी लिए लिखते है–''जब उस नर शार्दुल के बोलने की बारी आती है, तो बादल में दरारें पड़ जाती हैं, छतें चरमराने लगती हैं और सत्य का प्रकाश खुलकर अपने स्वाभाविक रूप में सामने आ जाता।''

1939 में 'नवीन' जी द्वारा लिखा गया काव्य संकलन कुंकुम में देश की जागती हुई चेतना को और जागृत करने का सफल प्रयास किया गया। अंग्रेजों के क्रूर अत्याचार से भारतीय जनता अत्यधिक परेशान हो चुकी थी। 'नवीन' की राष्ट्रीयता बौद्धिक न होकर आन्तरिक और भावात्मक है। यही कारण है कि देश की स्वतंत्रता को परतंत्रता की बेड़ियों में जकड़ा देखकर वे आक्रोशित होकर हुँकार कर उठते हैं। उनके सहज रूप से उनका मन विप्लव और विद्रोह का गीत गा उठता है–

''कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ,
जिससे उथल–पुथल मच जाए।
एक हिलोर इधर से आए,
एक हिलोर उधर से आए।''

जब बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' जी अपनी स्नातक की पढ़ाई पूरी कर रहे थे, उसी समय देश में विभिन्न प्रकार से हलचल मची थी। 'रोलट एक्ट' (1919), भारत में अंगेजी हुकूमत द्वारा पारित हो गया, जिसे 'काला' कानून बोला

* *शोध छात्रा, हिन्दी विभाग*

गया। इसके पश्चात् क्रमशः जलियावाला बाग काण्ड (1919), खिलाफत आन्दोलन (1919–22), असहयोग आन्दोलन (1920), सत्याग्रह आन्दोलन (1923), साइमन कमीशन (1928), मेरठ षड्यंत्र केस (1929), डाँडी कूँच (1930), गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट (1936) आदि महत्त्वपूर्ण गतिविधियां देश में चल रही थी। जिनका सबसे कुशल नेतृत्व गांधी जी द्वारा किया जा रहा था। गाँधी जी का संकेत पाते ही सारे देश में विरोधी आन्दोलनों की एक आँधी आ गई। अंग्रेज सरकार की लाठी–गोलियाँ भी अन्धाधुन्ध बरसने लगी। विदेशी बहिष्कार और विदेशी माल का दाह, सर्व धर्म समन्वय और विशेषकर हिन्दू–मुस्लिम एकता के लिए प्रचार इनके द्वारा आरम्भ किए गए। 'नवीन' जी की 'गांधीवाद' के प्रति अटूट आस्था थी। अहिंसा, सत्य, करुणा, बन्धुत्व आदि मूल्यों का गहरा प्रभाव 'नवीन' जी पर रहा गांधी जी ऐसे विराट व्यक्तित्व वाले व्यक्ति थे, जिन्होंने भारतीयों को सही दिशा निर्देश दिया और आजादी के मूल अर्थ को लोगों का समझाया। यही बात गांधीजी को सामान्य मनुष्य होकर भी विशेष बनाती है। 'नवीन' जी, गांधी के सिद्धान्त व आन्दोलनों से अत्यन्त प्रभावित थे और उन्होंने भी सभी आन्दोलनों में बढ़ कर हिस्सा लिया। 'नवीन' जी अपने जीवन काल में कई बार जेल गए, लेकिन जेल में भी अपनी लेखनी से लोगों को राष्ट्र के प्रति जागृत करने की चेष्टा उनकी थोड़ी भी कम नहीं हुई। उन्होंने अपने राष्ट्र की आन्दोलन तथा लेखनी दोनों से ही सेवा की। 'नवीन' जी ने अपने काव्य संग्रह 'कुंकुम' में गांधी का संक्षिप्त परिचय देते हुए लिखा है–

''तुम जैसा पथ–दर्शक पाकर मानवता यह धन्य हुई।
नर में नारायण की झाँकी यहां विशेष अनन्य हुई।''

राष्ट्रीय चेतना राष्ट्र की प्रगति का मूलमंत्र है। किसी भी राष्ट्र रूपी वृक्ष की छाया में अनेक पंथ धर्म और भाषाएं पल्लवित एवं पुष्पित होती है किन्तु व्यक्ति की मूल भावना और सांस्कृतिक विरासत एक ही होगी। राष्ट्र धर्म की रक्षा तत्कालीन समय की मांग थी। राष्ट्र धर्म राजनीतिक एकता का नहीं बल्कि भावनाओं और संस्कारों की एकता का प्रतीक होता है। सांस्कृतिक एकता राष्ट्र का मूल तत्व है। संस्कृति के प्रति उच्चतम भक्तिभाव ही राष्ट्रीयता का आधार है। 'नवीन' जी अपने काव्य के माध्यम से लोगों को यह बताना चहते थे कि जब सूर्य का उदय होता है, तो किस प्रकार अन्धकार मिट जाता है, उसी प्रकार तुम भी अपने जीवन में एक नया उजाला अर्थात् पराधीनता रूपी रात को समाप्त करों। अंग्रेजों को बता दो कि, जिस देश में अंग्रेज अपना शासन चला रहे हैं, यह देश वास्तविका रूप से हमारा है और अंग्रेजो की भारत में रहने की अवधि समाप्त हो चली है। 'आज कल हिन्दुस्तान हमारा है' 'नवीन' जी द्वारा लिखी गई कविता से इसी बात का बोध होता है –

''कोटि–कोटि कण्ठों से निकली आज यही स्वर धारा है,
भारतवर्ष हमारा है यह हिन्दुस्तान हमारा है।
कई बार षिरजी है हम ने कई क्रांतिया बड़ी–बड़ी,
इतिहासों ने किया सदा ही अतिशय मान हमारा है।
भारतवर्ष हमारा है यह हिन्दुस्तान हमारा है।।''

आजादी से पूर्व जहाँ एक तरफ देश अंग्रेजों की गुलामी से जकड़ा हुआ था, वही इस युग में विभिन्न प्रकार की अन्य समस्याएँ भी विद्यमान थी, जैसे कि सामाजिक अधःपतन उदाहरण के लिए अनाचार, अशिक्षा, वर्णाश्रम की अव्यवस्था, अछूतों और स्त्रियों की हीन अवस्था। विदेशी संस्कृति के प्रति लोगो की घृणा तो थी, लेकिन इसका बड़े पैमाने पर विरोध नहीं हो पा रहा था।

इसी समय साहित्यकारों ने अपनी कविता, लेखों, गजलों, कहानी, निबंधों, नाटकों इत्यादि के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना की सुप्तधारा को नई दिशा दी और राष्ट्र में एक नई चेतना फैलाई कविता का लक्ष्य होता है कि वह राष्ट्र को उसके प्रत्यक्ष जीवन से अवगत कराकर शासन की करतूतों की पहचान करा कर उससे संघर्ष करने की प्रेरणा दे। स्वतंत्रता के यज्ञ में कवियों ने अपनी काव्य रूपी रस की आहुति देकर राष्ट्रीय कविता के ओजस्वी स्वरों की गूँज के द्वारा देश–प्रेम की भावना को और मजबूत किया। सदियों की गुलामी से उनके मन की व्यथा बहुत ज्यादा बढ़ गई थी। जनता में यह भावना भली–भाँति आ चुकी थी, कि गुलामी भारत के लिए सबसे बड़ा

अभिशाप है। इस गुलामी के विरूद्ध संघर्ष करना अत्यन्त आवश्यक था। इस युग में भारतमाता की दासत्वक श्रृंखलाओं को तोड़ना ही एकमात्र लक्ष्य था। स्वतंत्रता के उत्थान की झलक 'नवीन' जी के 'प्रलयंकर' नामक काव्य संग्रह के 'क्रांति' नामक रचना में मिलती है–

''शोक कहाँ? वेदना कहाँ? मिटने का उल्लास यहाँ,
मोह उठा सब पाप कटा, अब रहा न जीवन त्रास यहाँ।''
''आओ क्रांति बलाएँ लेलूँ,
अनाहुत आगई भली।
वास करो मेरे घर– आंगनय
बिचरो मेरी गली–गली।''

राष्ट्र शब्द से 'नवीन' जी खास प्रभावित थें। इस शब्द का सिर्फ 'नवीन' जी के जीवन में ही नहीं, सभी के जीवन में सबसे महत्वपूर्ण स्थान होता है, क्योंकि राष्ट्र से हमारी पहचान जुड़ी होती है। प्राणी जगत में राष्ट्र के प्रति स्वाभाविक लगाव होता है, क्योंकि जिस धरती का अन्न–जल ग्रहण कर के हम बड़े हुए हैं, उस पर गर्व करना स्वाभाविक है। वह भूमि हमारी माँ है और हम उसकी संतानें हैं, यह भावना हमें सुखद अनुभूति देती है। अपनी मातृभूमि के लिए और अंग्रेजों को भारत से भगाने के लिए क्रांतियां की गईं, जिसके कारण अंग्रेज शासकों द्वारा हजारों भारतीयों को जेल में डाला जा रहा था। 'नवीन' जी ने भी क्रांति का आह्वान किया था, उन्हें भी जेल में डाला गया। अपने से अधिक अन्य भारतीयों जेल के कैदियों को देखकर मन दुःख से चीत्कार उठता था, जिसका उन्होंने अपने काव्य में पूर्ण रूप से चित्रण किया है। मातृभूमि के चरणों में सर्वस्व न्यौछावर करना ही देशभक्तों का कार्य है। स्वतंत्रता की देवी रक्त की प्यासी है। बिना लहूदान के फल की प्राप्ति सम्भव नही। 'नवीन–जी नौ वर्ष तक जेल में रहे और वाराणसी, नैनी, बरेली इत्यादि जेलों में इन्होंने यातना सही। जेल में लिखी गई इन्हीं इरादों से 'क्वासी' काव्य संग्रह के 'फागुन' नामक कविता अत्यधिक प्रभावशाली है–

''कोल्हू में जीवन के कण–कण
तेल–तेल हो जाते हैं क्षण–क्षण।
प्रतिदिन चक्की के धर्ममर में
पिस जाता गायन का निस्वण।''

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' जी की राष्ट्रीय चेतना से युक्त रचनाओं में ओज गुण की प्रधानता है। गेयता 'नवीन' जी के काव्य की प्रमुख विशेषता है। वस्तुतः 'नवीन–जी की राष्ट्रीयता और शिल्प चेतना पर जितना भी कहा जाए, वह कम ही है। मेरे विचार से इस की सीमा का निर्धारण करना बहुत ही मुश्किल है। वह एक बहुआयामी प्रतिभा के धनी व्यक्ति थे। सबसे बड़ी विशेषता इस बात में है कि 'नवीन' जी एक अच्छे इंसान थे। 'नवीन' जी ने अपनी प्राथमिकता में राष्ट्र को सर्वप्रथम रखा और सदैव सच्चे राष्ट्रभक्त के रूप में तत्पर रहे। आज के संदर्भ में नवीन जी की राष्ट्रीय भावना से ओत–प्रोत कविताएं हमारे लिए सम्बल का कार्य कर सकती हैं, क्योंकि लोंगो के दिलों से राष्ट्रीयता के भाव विलुप्त होते दिखाई दे रहे हैं। वर्ग, जाति, वर्ण, संप्रदाय और प्रान्तीयता की भावना प्रबल होती जा रही है। परंपरा और युग धर्म के बीच अन्तर दिखाई पड़ने लगा है। ऐसे माहौल में 'नवीन' जी की राष्ट्रीय ओजस्वी वाणी बार–बार कानों से टकराकर कुछ सोचने के लिए विवश कर रही है। समय आ गया है कि हम 'नवीन' जी की भावनाओं का अनुकरण करें और राष्ट्र में व्याप्त कुरीतियों और विभिन्न विषमताओं को दर करके प्रेम और सद्भावना की गंगा बहा सकें। जिससे 'नवीन' जी की भारत माँ के लिए लिखी गई पंक्तियों को सार्थकता प्रदान किया जा सके–

''एक धाम तुम, एक नाम तुम, एक बान तुम,

एक प्राण है तुम,
एक रागमय, इक इति–गतिमय, सर्व–उदय के गेय गान हे तुम,
श्रेय–प्रेम, साधनापूर्ण तुम, मानवता के नव विहान हेतु,
स्वरोदक का अर्ध्य चढ़ाकर करो प्रात का सन्ध्या–वन्दन।''

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. दुबे, लक्ष्मीनारायण, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' : व्यक्ति एवं काव्य, पृ. 191, हिन्दुस्तान एकेडमी, इलाहाबाद, 1964.
2. मिश्र, भवानी प्रसाद, आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', पृ. 23 राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 1967
3. चतुर्वेदी, नरेशचन्द्र, बालकृष्ण 'नवीन' काव्य रचना वली, पृ. 17, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2011
4. दुबे, लक्ष्मीनारायण, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' गद्य रचनावली, पृ. 17, साहित्य वाणी, इलाहाबाद, 2006
5. त्रिपाठी, विष्णु, पत्रकारिता युग के निर्माता बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', पृ. 24, प्रभात प्रकाशन दिल्ली, 2008

*****

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 57-59

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

जीवन मूल्यों के विकास में शिक्षा की भूमिका

*डॉ. सुषमा सिंह**

मानव के विकास में शिक्षा पूर्णतः सहायक और पथ–प्रदर्शक रही है। शिक्षा मनुष्य की अज्ञानता रूपी अंधेरे को दूर कर के सूर्य के प्रकाश के समान अक्षय ज्ञान राशि के प्रकाश से पूरित करती है। जीवन मूल्यों का विकास शिक्षा द्वारा ही संभव है। शिक्षा जो मनुष्य के सामाजिक व्यवहारिक और मानसिक विकास से परि मार्जित कर के एक सुसंस्कार नागरिक बनाती है। शिक्षा के क्षेत्र में गुरु के महत्व को प्राचीन काल से ही स्वीकार किया जा रहा है। वह ईश्वर के तुल्य था। क्योंकि जीवन मूल्यों को सही माने में स्थापित करने वाला गुरु ही था। उसका जीवन शिष्य के लिए एक आदर्श था।

गुरुरब्रह्मा गरुर विष्णु गुरुर देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात्परब्रह्मा तस्मै श्री गुरुवे नमः।।

आज विकास की आंधी ने जीवन मूल्यों को बिखेर दिया है। मनुष्य की मनुष्यता समाप्त हो गई है। न कोई संवेदना, न कोई वेदना, न कोई आदर्श, न कोई रिश्ते। क्या होता जा रहा है समाज को मनुष्य से हम पशुवत होते जा रहे हैं। केवल अपने लिए ही जीते हैं, अपने लिए ही सोचते हैं। शिक्षा स्वयं में परिपूर्ण कल्पना है परन्तु आज के संदर्भ में शिक्षा की स्थिति पर विचार करना अति आवश्यक है। गुरु शिष्य के सम्बन्ध आधुनिक परंपराओं में बदल चुके हैं। जहां गुरु दायित्व को बोध भूल गया है, वहीं शिष्य में कर्तव्य बोध समाप्त हो गया है। आज आवश्यकता है जीवन मूल्यों को समझने की, मानवीय गुणों को विकसित करने की, यदि व्यक्ति में मानवीय गुण आ जाते हैं तो सामाजिक गुणों को स्वयं आत्मसात् कर लेता है। वह विश्व निर्माण का भाव 'शरद आलोक' की 'ज्ञान का दीप जलाते चलो' कविता में दिखाई देता है।

सबसे बड़ा मानव–धर्म है,
जीवन में सबसे बड़ा कर्म है,
न कोई छोटा–बड़ा है यहां,
सभी बराबर यही मर्म है।
पग–पग में बिछे कांटे जहां,
रास्ते से उनको हटाते चलो।
छाया अंधेरा देखो जहां,
ज्ञान के दीपक जलाते चलो।

(शरद आलोक)

भूमंडलीकरण के दौर में हमारे सामने अनेक प्रकार की आवश्यकताओं के साथ–साथ समस्याएं दस्तक दे रही हैं, इसने उच्च शिक्षा की आत्मा के साथ छेड़छाड़ प्रारंभ कर दिया है। व्यवसाय, प्रबंधन, कम्प्यूटर, चिकित्सा आदि से सम्बन्धित विभिन्न पाठ्यक्रम, पत्राचार पाठ्यक्रम और इनसे जुड़ी व्यवसायिकता ने शिक्षा की आंतरिक एवं बाह्य संरचना को बदल दिया है। अंग्रेजी भाषा के महत्व एवं तकनीक क्षेत्रों की बढ़ोत्तरी ने मानवीय गुणों को पूर्णतया प्रभावित किया है। मानवता का मूल लक्ष्य है, संसार के सभी जीवों के कष्ट को मिटाना। मानव हृदय में व्यथित,

* *एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, टी.डी.पी.जी. कॉलेज, जौनपुर*

पीड़ित के लिए सहानुभूति एवं व्यथा की भावना का रहना। संसार को सुखी और प्रसन्न देखना, मानव की आर्थिक, सामाजिक, शारीरिक तथा आध्यात्मिक सभी दशाओं को सुधारने के लिए प्रयत्न करना। मानवता के संदेश के लिए कवि ने लिखा है–

वृक्ष कबहुँ न फल भखै, नदी न संचय नीर।

परमारथ के कारने साधुन धरा शरीर।

मूल्य विहीन जीवन आज के बढ़ते तनाव का कारण है, क्योंकि मूल्यों के बिना व्यक्ति भीतर से खोखले हो जाता है जीवन में श्रेष्ठ एवं उच्च मूल्य न होने के कारण उसकी अपनी आंतरिक शक्ति कम होती जा रही है और मनुष्य चिंताओं के जाल में फंसकर छटपटा रहा है। मनुष्य स्वार्थ मनुष्य को मूल्य विहीन बना रहा है। जब मनुष्य जीवन–मूल्यों को आत्मसात करता है, तो उसकी आत्मा का उत्थान होता है। तुलसीदास जी ने रामचरित मानस में कहा है–

परहित सरिस धर्म नहिं भाई।

पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।

प्राचीन काल से ही शिक्षा को भारतवर्ष में अज्ञानता रूपी तंतुओं से मुक्त कराने का प्रमुख साधन माना जाता है। यहां की संस्कृति में कभी भी शिक्षा को केवल बाह्य जीवन को संवारने का साधन नहीं माना है, अपितु भारतीय शिक्षा परंपरा हमेशा से मूल्य पर जोर देती रही है। सामान्य भाषा में कहें तो मूल्य वह सब कुछ है जो हमें एक सुखी जीवन जीने में सहायता प्रदान करता है। सामान्यतः प्रेम, सहिष्णुता, शांति, सत्य, अहिंसा उचित व्यवहार इत्यादि मानवीय मूल्यों के अंतर्गत आते हैं। एक असीम ऊर्जा का संचार करते हुए प्रसाद जी ने कामायनी में लिखा है–

डरो मत अरे अमृत संतान, अग्रसर है मंगलम वृद्धि ।

पूर्ण आकर्षण जीवन केन्द्र, खींची आवेगी सकल समृद्धि।।

(कामायनी द्वितीय संस्करण–117)

उच्च शिक्षा के अंतर्गत देश और विश्व मानव की आवश्यकताओं के अनुरूप उच्च–शिक्षा की व्यवस्था ही आदर्श–शिक्षा की व्यवस्था कही जाएगी। उसमें स्वयं और स्वावलंबन की भावना का अभाव होगा तो, वह उच्च शिक्षा एक देशी और अधुरी बनकर रह जाएगी। उच्च शिक्षा को धर्मोन्माद उग्रवाद, बर्बर आतंकवाद की वर्तमान परिदृश्य से भी संघर्ष करना होगा। एक समरस संतुलित एवं सह अस्तित्वशील मानव नागरिक ही आज की समूची शिक्षा व्यवस्था का लक्ष्य है जो शिक्षा मनुष्य को मनुष्यता से विमुख कर रही हो, जिसमें दिग्भ्रमित मानवता को सही मार्ग दिखाने की क्षमता ना हो, जो मानव के अंतःकरण में प्रविष्ट होकर मर्म बिंदुओं को स्पर्श करने में असमर्थ हो, जो नागरिकों के दलित स्वाभिमान को उद्दीप्त करने में असमर्थ हो, जो मानसिक गुलामी की ग्रंथियों में जकड़ी हो, उसका कोई जीवन में महत्व नहीं होता है। आज गांव से लेकर नगर तक लोग, असंतोष और कुंठा में जी रहे हैं। जीवन के संस्कार और सामाजिक संबंधों का लोपन हो रहा है। उसका मूल कारण आज का युवा वर्ग कम परिश्रम में अधिक से अधिक पाने की चाहत बढ़ाते जा रहे है। समाज में फैली स्वार्थ परक मानसिकता, दिशाहीन, राजनीति, जाति, धर्म के अलगाव निरंतर मानव मूल्यों का ह्रास में सहायक बन रही है। यहां तक कि महापरुषों के योगदान की कथाओं का कोई मतलब नहीं रह गया है। बौद्धिक विलोपन और संवेदना सुनीता की स्थिति में वह यंत्रवत् होते जा रहे हैं। ऐसे समय में उच्च शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका हो जाती है। उनकी प्रकृति और रूझानों को ध्यान देते हुए, सकारात्मक सोच बनाने की कोशिश की जाती है। दृढ़ संकल्पों के साथ शिक्षक छात्र के जीवन मार्ग को परिवर्तित करता है। माता–पिता के बाद शिक्षक हित छात्र के अंदर देश प्रेम, सेवा, समर्पण सहयोग का भाव भरता है। छात्र के अंदर जगत में व्याप्त अनन्य शक्तियों का उपयोग मानव कल्याण के लिए हो और मानवता सदा के लिए विजयी होने का भाव हो–उच्च शिक्षा के मूल संदेश को प्रसाद जी ने कामायनी में लिखा है–

शक्ति के विद्युत् कण जो व्याप्त विकल बिखरे हैं जो निरूपाय,

समन्वय उनका करें समस्त विजयिनी मानवता हो जाय।

(कायामनी)

प्राचीन भारतीय गुरुकुल परंपरा में शिक्षा नीति का निर्धारण 'सर्वभूत हितेरताः' को आधार बना कर किया गया था और उसका उद्देश्य था अब विद्या को संस्कार आदि दुर्गुणों से मुक्त करना 'सा विद्या या विमुक्तये'। इसी उदात्त शिक्षा नीति के कारण तत्कालीन समाज चतुर्दिक विकास की पराकाष्ठा को प्राप्त था। जिस शिक्षा के प्रभाव से संस्कारित होकर श्रीराम एवं भरत ने अयोध्या के राज सिंहासन को ठुकरा दिया। श्रीकृष्ण ने विश्व कल्याण के लिए गीता का उपदेश दिया। शिक्षा की उपयोगिता सर्वकालिक और सार्वदेशिक होती है। आज उसी शिक्षा नीति को अपनाना होगा। सत्ता के लिए जो नंगा नाच हो रहा है, भ्रष्टाचार में लगे लोग शत्रु के साथ मिलकर विदेशों में भी गोपनीय सूचना दे देते हैं। उनके हृदय में अशिक्षा और अज्ञानता के कारण देश भक्ति का भाव अंकुरित नहीं होता है।

शिक्षा की व्याख्या करते हुए गांधी जी ने कहा–

'शिक्षा से मेरा आशय बालक और मनुष्य के शरीर आत्मा एवं मन के सर्वोत्कृष्ट एवं सर्वांगीण विकास से है। शिक्षक शिक्षा–केंन्द्र का महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व है वह छात्रों में आदर्श, विश्वास, निश्चयात्मक भावों को पूर्णतः विकसित करता है।' स्वयं में भी उसे विचारों की शक्ति गहनता, संयम और अध्यापना की उपयुक्तता व योग्यता होनी चाहिए। वह उत्तम विधियों और उच्चतम प्राप्ति की खोज में लगातार लगा रहा है। उसका जीवन विकास प्रक्रिया में से एक है। ऐसे अध्यापकों के कार्यों में स्पष्टता, ताजगी और तर्कशक्ति होती है, जो उसके विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करती है। मानवता के विरूद्ध समस्त ऐसी शक्तियां जो उपनिवेशात्मक जातिय भेद, संकुचित राष्ट्रीयता, अंतर्द्वन्द्व की स्थिति के विरूद्ध दृढ़ आवाज उठानी चाहिए। शिक्षक संबंध में न जाने कितने आदर्श वाक्य कहे गए हैं लेकिन यथार्थ में उनके साथ क्या व्यवहार हो रहा है यह समझने योग्य है। प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक इतनी विशंगतियाँ हैं कि शिक्षक अध्यापन कार्य से उदासीन हो जाता है। शिक्षा के मूल उद्देश्य की प्राप्ति नहीं हो पाती है। आज की शिक्षा–शिक्षक, शिक्षार्थी, शासन, प्रशासन अभिभावक समाज सभी की सोच विचार और समाज में परिवर्तन की आवश्यकता है, तभी श्रेष्ठ नागरिकों का निर्माण संभव हो सकेगा। भारतीय शिक्षा नीति में मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाया गया है। सभी के लिए शिक्षा के अंतर्गत विभिन्न कार्यक्रम बनाए गए हैं। उच्च शिक्षा का उद्देश्य सही मायने में पाठ्यक्रम के साथ मानवीय गुणों का संचार कर ना भी है। इस प्रकार से जीवन मूल्यों के विकास में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

संदर्भ–ग्रंथ

1. हिन्दी साहित्य इतिहास प्रवृत्यात्मक अध्ययन डॉक्टर जगदीश गुप्त।
2. तरूणमित्र, शिक्षा विशेषांक स्मारिका 2000–2001
3. मूल्य विमर्श–जनवरी जून 2011
4. मोहन दास करमचन्द गांधी, हरिजन, 31.07.1993
5. मोहन दास करमचन्द गांधी, सत्य के प्रयोग।

*****

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, 60-65

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

नागार्जुन के काव्य में जनवादी चेतना

*विनोद कुमार**

काव्य मानव जीवन का अभिन्न अंग है। काव्य व्यापक है, काव्य सूक्ष्म है, अतः काव्य को किसी लक्षण विशेष में बाँधना बहुत कठिन कार्य है। प्राचीनकाल से लेकर अर्वाचीन काल तक काव्य के स्वरूप एवं उसके परिभाषाओं को एक सूत्र में बांधने का प्रयास किया गया। परन्तु उसका विकासशील रूप लक्षणों, नियमों, सिद्धान्तों व परिभाषाओं की सीमा के बाहर ही परिलक्षित जान पड़ता है। कहीं उसका कोई अवयव छूट जाता है तो कहीं उसकी प्रभावशीलता की विशेषता नष्ट हो जाती है। काव्य की अधिव्यापकता का मूर्त्त प्रमाण तो यही है कि विश्व के सम्पूर्ण देशों और अनेकानेक जातियों में शुरू से ही काव्य किसी न किसी रूप में विद्यमान है, किसी देश जाति अथवा युग का काव्य सम्पूर्ण मानवता एवं मानवीय मूल्यों को प्रभावित करने की शक्ति प्रदान करता है। अतः राष्ट्र, जाति, वर्ग की तुच्छ संकीर्ण मानसिकता को ऊपर उठाते हुए सम्पूर्ण मानवता की भावना के विकास के लिए काव्य एक उत्तम साधन है, विद्वता और राज्य अतुलनीय है, राजा को तो अपने राज्य में ही सम्मान मिलता है। पर विद्वान का सर्वत्र सम्मान होता है। काव्य सम्पूर्ण मानवता की अमूल्य निधि है।

''विद्वत्वं च नृपत्वं च
न एव तुल्ये कदाचन
स्वदेशे पूज्यते राजा
विद्वान् सर्वत्र पूज्यते''।।[1]

काव्य वाह्य जगत के साथ–साथ हमारे आन्तरिक मानस पट का भी चित्र प्रस्तुत करता है। काव्य हमारे जीवन को हमेशा नव्य प्रेरणाएँ देता रहता है। अतः काव्य का हमारे जीवन में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

मानव जीवन में उपयोगी होने के अतिरिक्त काव्य का महत्त्व तब बढ़ जाता है, जब विश्वबन्धुत्व को एक सूत्र में बाँधने का मूल मंत्र देता है।

नागार्जुन सामान्य परिचय

आधुनिक हिन्दी काव्य के इतिहास में बाबा नागार्जुन प्रगतिवाद के शलाका पुरुष हैं। उनका व्यक्तित्व और कृतित्व मानव जीवन की एकरूपता, समन्वय, का देदीप्यमान निदर्शना है। नागार्जुन जी मध्यकालीन संतों में महान समाज सुधारक कबीरदास जी से तुलनीय हैं। कवि ने अपने जीवन में जो अनुभव किया जो प्रत्यक्ष देखा वे उसको बेझिझक बेबाक कह दिया इसका मूल कारण कवि का स्वयं विपन्न संघर्षमय जीवन की गहन दृष्टि है। वे एक निम्नवर्गीय कृषक परिवार में पैदा हुए और काल के गाल से बार–बार टकराते और गिर–गिर कर बार–बार उठते रहे।

नागार्जुन प्रगतिवाद के प्रतिनिधि कवि हैं। उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से प्रगतिवादी काव्यधारा को सार्थक दिशा प्रदान की। कवि मार्क्सवादी जीवन दर्शन के अनुरूप ही मानव जीवन का मूल्यांकन एवं उसकी व्याख्या करता है। नागार्जुन का वास्तविक नाम वैद्यनाथ मिश्र है, परन्तु अपने वाह्य व्यक्तित्व में 'बाबा' यात्री के रूप में परिलक्षित होते हैं, पर बाबा नागार्जुन के नाम से अधिक लब्ध प्रतिष्ठित रहे हैं। संस्कृत भाषा के रचनाकार

* *शोधार्थी (हिन्दी विभाग), वीर बहादुर सिंह पूर्वाञ्चल विश्वविद्यालय, जौनपुर, उ. प्र.*

के रूप में नागार्जुन जी को 'चाणक्य' उपनाम प्राप्त होता है। वैद्यनाथ मिश्र के राजनीतिक संगी साथी उनको 'नागा' बाबा कहकर पुकारते थे।

नागार्जुन जी का जन्म 1911 ई0 में हुआ, परन्तु उनके बड़े सुपुत्र शोभाकान्त जी अनेक तर्क देकर सन् 1913 ई0 में उनका जन्म होना मानते हैं। घर की आर्थिक स्थिति ठीक न होने से माता उमा देवी जी पिता गोकुल मिश्र को छोड़कर मायके चली गयी थीं। इस प्रकार नागार्जुन का जन्म अपने ननिहाल में बिहार में मधुबनी जनपद के 'सतलखा' गांव में हुआ था। परन्तु अनूँठी बात यह है कि कवि नागार्जुन स्वयं का जन्म स्थान दरभंगा जिले के तरौनी गांव को मानते हैं –

''याद आता है मुझे वह अपना तरउनी ग्राम,
याद आती लीचियाँ वे आम,
याद आते मुझे मिथिला के रूचिर भूभाग,
याद आते धान''।।[2]

आधुनिक सुधीजन हिन्दी जगत् के शिरमौर्य नागार्जुन का ग्राम 'तरउनी' को ही मानते हैं।

नागार्जुन का कविता संसार

बाबा नागार्जुन 'यात्री' के नाम से विश्वविख्यात हैं, परन्तु विचित्र बात यह है कि उन्होंने पद्य लेखन का श्रीगणेश आदि भाषाओं की जननी संस्कृत और बंगला में कविताएँ लिखकर किया था। उनकी पहली प्रकाशित कविता मैथिली बोली में लिखित एक गीत है, जो 'मिथिला' नामक पत्रिका में मुद्रित था। लाहौर से प्रकाशित होने वाले विश्वबन्धु में प्रकाशित 'राम के प्रति' सन् 1934 ई0 में आयी, जो खड़ी बोली में उनकी हिंदी की प्रथम कविता है। वैद्यनाथ मिश्र जी के बड़े पुत्र शोभाकान्त जी ने अपने पिता जी के सम्पूर्ण कविता– संसार के बारे में रचनावली एवं रचनावली के दो भाग किये।

नागार्जुन ने समय–समय पर प्रत्येक विषय सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सम–सामयिकी, घटना प्रसंग, व्यक्ति विचार आदि पर सैकड़ों कविताएँ लिखी हैं, जो विश्वबन्धु, 'सरस्वती', 'प्रभाकर', विशालभारत, साप्ताहिक हिन्दुस्तान आदि सभी प्रमुख समकालीन पत्र पत्रिकाओं में छपती रहीं। प्रारम्भ में नागार्जुन यात्री के नाम से लिखते थे, परन्तु बाद में नागार्जुन उपनाम से लिखने लगे थे। नागार्जुन जी का पहला काव्य संग्रह 'युगधारा' है, जो सन् 1953 ई0 में जनसेवा प्रकाशन, इलाहाबाद से मुद्रित किया गया था।

शोभाकान्त जी ने रचनावली नामक ग्रन्थ की भूमिका में लिखा है कि– 'हिन्दी में तेरह काव्य संग्रह प्रकाशित है। इसके अलावा छः बुकलेट प्रकाशित हुई थी। मैथिल कविताओं के दो संग्रह है। बंगला कविताओं का एक संग्रह देवनागरी लिप्यान्तर सहित छप चुका है।'

नागार्जुन जी की महत्त्वपूर्ण रचनाएँ इस प्रकार हैं–

1. युगधारा–1953
2. सतरंगे पंखो वाली–1959
3. प्यासी पथरीली आँखें–1962
4. भस्मांकुर–1971
5. तालाब की मछलियाँ–1974
6. तुमने कहा था–1980
7. खिचड़ी विप्लव देखा मैंने–1981
8. ऐसा क्या कह दिया मैंने–1982
9. पुरानी जूतियों का कोरस–1983
10. रत्नगर्भा–1984

11. इस गुब्बारे की छाया में–1990
12. भूल जाओ पुराने सपने–1994

जनवादी चेतना का स्वरूप

जनवादी चेतना सम्पूर्ण विश्व के समस्त महान साहित्यकारों की रचनाओं में परिलक्षित होती है। साहित्यकार इस चेतना को किसी न किसी प्रसंग में स्थान देते हुए आमजनमानस में स्फूर्ति साहस एवं परोपकारी भावनाओं को आरोपित करने का साहस करता है। प्राचीन महाकाव्य रामायण एवं विशालतम् महाकाव्य महाभारत आदि ग्रन्थों में जनवादी चेतना दृष्टिगोचर होती है। ये कवि जनता के शुभचिंतक बनकर लोगों की आशा–निराशा, संघर्ष का वर्णन करते हुए उन्हें विकास के पथ पर आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करते हैं।

जनवाद का अर्थ

लोकतन्त्र, जनतन्त्र, गणतन्त्र को ही जनवाद कहा जाता है। जनवाद शब्द अंग्रेजी के डेमोक्रेसी शब्द का हिन्दी पर्याय है। हिन्दी में इसके लिए प्रजातंत्र, जनतंत्र आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है। डेमोक्रेसी शब्द ग्रीक भाषा के दो शब्दों DEMOS और KRATIEN से बना है DEMOS का अर्थ 'जनता' और KRATIEN का अर्थ 'जनता का शासन' इस प्रकार इसका शाब्दिक अर्थ हुआ जनता का शासन जिसमें जनता ही महत्त्वपूर्ण होती है। सच्चे अर्थो में हिन्दी में पहली बार आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद, मानवतावाद को प्रगतिवाद आदि के अन्तर्गत शामिल किया। जनवादी चेतना को सर्वप्रथम प्रकाश में लाने का श्रेय उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंद जी को जाता है। मुंशी प्रेमचंद के बाद जनवादी चेतना को परिमार्जित एवं विकसित रूप अपने साहित्य में प्रस्तुत करने का स्तुत्य कार्य जनवादी कवि नागार्जुन जी ने किया। संक्षेप में कहा जा सकता है कि जनसामान्य की भावनाओं का शोषितों, पीड़ितों, दलितों, किसानों, मजदूरों की समस्याओं का यथार्थ अंकन जिस साहित्य में होता है सच्चे अर्थों में वह साहित्य जनवादी साहित्य है।

नागार्जुन के काव्य में जनवादी चेतना

नागार्जुन जनकवि हैं। राष्ट्रकवि की अभिलाषा ने उन्हें कभी सम्मोहित नहीं किया। इतना कहा जा सकता है कि उनकी काव्य चेतना राष्ट्रीयता का अर्थ और स्वरूप देश की बदलती हुई आबोहवा या परिस्थितियों के साथ ही परिवर्तित होती रही है। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के अधीन 14 अगस्त, 1947 तक राष्ट्रीयता का जो स्वरूप था, वही 15 अगस्त, 1947 से नहीं रहा। पराधीनता के इस देश में, देश की स्वतन्त्रता राष्ट्रीयता का प्रमुख आयाम रही थी, परन्तु स्वातन्त्र समय में देश की मुक्ति के बाद जनता की ओर ध्यान दिया गया परन्तु सफलीभूत नहीं हुआ। हालाँकि राष्ट्र के नाम शंखनाद करने वाले कवियों ने राष्ट्रीयता के इस आयाम में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान ईमानदारी से नहीं दिया। वो तो दूध से व्याकुल बिलखते बच्चों के लिए पारलौकिक स्वर्ग को लूटने की अभिलाषा में उर्वशी आदि अप्सराओं में उलझ गये। इन कवियों में जनशक्ति व जनता जनार्दन का विश्वास न रहा। कवि नागार्जुन राष्ट्र और जनता में कोई अन्तर नहीं समझते उनका मानना है कि राष्ट्र की स्वतन्त्रता जनता की स्वतन्त्रता शोषक शोषित दमन से है। राष्ट्र की शक्ति का मूलाधार जनता की शक्ति ही है। परन्तु आज की राष्ट्रीयता का मूल अर्थ यही है। कवि यह भी समझता है कि देश को नव्य उपनिवेशवाद के चंगुल से मुक्त करना आधुनिक राष्ट्रीयता का एक रूप है। नव्य उपनिवेशवादी रक्त पिपासुओं को उद्‌बोधित कर कवि अपनी कविता 'कैसा लगेगा तुम्हें' में कहता है कि–

> **''कैसा लगेगा तुम्हें।**
> **जंगली सुअर यदि उधम मचाएँ**
> **तहस–नहस कर डालें फसलें**
> **देखकर पदमर्दित उत्कट सुरभिवाली दुधिया बालें।**
> **देखकर भूलुंठित कुचली कनक मंजरियाँ**
> **इक टूक हो यदि हृदय लोक लक्ष्मी का**
> **कैसा लगेगा तुम्हें''।**[3]

हमारा आज का समाज भुखमरी, बेकारी, अकाल, दारिद्रता, मँहगाई, सूदखोरी, अशिक्षा, भ्रष्टाचार से बहुत पीड़ित है। परन्तु हमारे इसी समाज में एक ऐसा वर्ग है जो आरामपसंद सुख–सुविधा व संसाधनों से लैश है। यही अन्तर्द्वन्द्व असमानता का सामाजिक यथार्थ है। कवि नागार्जुन की कविताएँ इन सभी परिदृश्य को बड़ी निर्भीकता और निर्ममता से व्यक्त करती है। नागार्जुन की काव्य चेतना इस सत्य के इस रूप को भी पूरी तल्लीनता के साथ आत्मसात कर लेती है। मार्क्सवादी विचारधारा से तादात्म्य स्थापित करें तो नागार्जुन वर्ग संघर्ष के महान कवि ठहरते हैं। कवि का यह संघर्ष सामाजिक रूपान्तर की दशा तक शोषितों दलितों की विजय तक ही नहीं रुकता बल्कि वैज्ञानिक विचारधारा के समाजवाद की स्थापना तक सफलीभूत करना है। कवि 'शासन की बंदूक' नामक कविता में कहता है कि –

''खड़ी हो गयी चाँपकर कंकालों की हूक
नभ में विपुल विराट सी शासन की बंदूक
उस हिटलरी गुमान पर सभी रहे हैं थूक
जिसमें कानीं हो गई शासन की बंदूक''।[4]

समाज का शायद ही कोई ऐसा पक्ष होगा जहाँ उनकी दृष्टि न गयी हो। सामाजिक विषमता शोषण, भ्रष्टाचार आदि पर उनका व्यंग्य प्रहार उनकी प्रखर सामाजिकता का परिचायक है। इससे सम्बन्धित नागार्जुन जी की बहुत सारी कविताएँ उल्लेखनीय हैं। 'प्रेत का बयान' उनकी एक अति प्रसिद्ध व्यंग्यात्मक कविता है। यमराज के समक्ष एक प्रेत खड़ा है। यमराज कड़ककर पूछते हैं। सच–सच बतला! कैसे मरा तू? भूख से, अकाल से, बुखार से, कालाजार से! पेचिस, बदहजमी, प्लेग, महामारी से किन्तु भूख नाम हो कोई जिनका ऐसी किसी व्याधि का पता नहीं हमको कवि 'प्रेत का बयान' नामक कविता में कहता है कि –

''वह भाई वाह!
तो तुम भूख से नहीं मरे?
हद से ज्यादा डालकर जोर
होकर कठोर
प्रेत फिर बोला
अचरज की बात है
यकीन नहीं आता है मेरी बात पर आपको?
कीजिए न कीजिए आप चाहे विश्वास!''[5]

नागार्जुन सच्चे अर्थों में एक आधुनिक कवि हैं। आधुनिक राष्ट्र के नवनिर्माण के लिए देश को पूँजीवादी साम्राज्यवाद के नागपाश से स्वतन्त्र करना है और दलित शोषित मजदूर को पूँजीवादी सामन्ती शोषण से मुक्त करना अपरिहार्य है। यह राष्ट्र की राजनैतिक आधुनिकता है। इसलिए राजनीतिक दृष्टि से देखा जाय तो इस तत्त्व की अनुगूंज उनके काव्य में प्रतिध्वनित होती है। आज राष्ट्र की सांस्कृतिक चेतना का अवमूल्यन हो रहा है। इसका मूल कारण पूँजीवादी एवं सामंतवादी व्यवस्था है। मेरे हिसाब से इसका मूल कारण मानव के द्वारा मानव के शोषण से उत्पन्न अवमूल्यन है। समाज के इस अन्तर्द्वन्द्व व अन्तर्विरोध को दूर करना महाकवि नागार्जुन की प्राथमिकता रही। पूँजीवादी समाज की शिक्षा पद्धति में किस प्रकार संस्कृति का और नये मानव का नव निर्माण हो रहा है। 'मास्टर' नामक कविता में कवि ने बताया है –

''घुन खाये शहतीरों पर की बारहखड़ी विधाता बाँचे
फटी भीत है छत चूती है आले पर विसतुइया नाचे
बरसाकर बेबस बच्चों पर मिनट–मिनट में पाँच तमाचे
दुखरन मास्टर गढ़ते रहते किसी तरह आदम के साँचे''।[6]

नागार्जुन के सरोकार अंततः 'जन' से ही सानिध्य होते हैं मनसा वाचा कर्मणा से उन्होंने अनेक बार यह प्रमाणित करने का प्रयास किया कि वे जनकवि हैं साहित्य साधना करने वाला कवि यदि भाषा–विलास भवन में बैठकर भाषा के साथ दुर्व्यवहार करेगा तो वह अपने समय और आम जनमानस का जनकवि कैसे हो सकता है। जनकवि और कवि में अन्तर को भी नागार्जुन पहले अपने जीवन में उतारते हैं फिर रचना के माध्यम से उजागर करते हैं। महाकवि गोर्की को प्रणाम करता हुआ अपनी कविता–'भारतीय जनकवि का प्रणाम' नामक कविता में कवि कहता हैं कि–

''दरअसल 'सर्वहारा–गल्प' का
तुम्हीं से हुआ था श्री गणेश
निकला था वह आदि–काव्य
तुम्हारी ही लेखनी की नोक से
जुझारु श्रमिकों के अभियान का
देखे उसी बुढ़िया ने पहले–पहल
अपने आस–पास, नई पीढ़ी के अन्दर
विश्व क्रांति, विश्व शांति, विश्व कल्याण।
माँ कि प्रतिमा में तुम्हीं ने तो भरे थे प्राण!
गोर्की मख़ीम!''[7]

नागार्जुन जीवन भर साहित्य के माध्यम से आमजनता की सेवा में रत रहे। आजादी से पहले और बाद के जनान्दोलन में खुलकर हिस्सा लिया और लम्बी–लम्बी जेल यात्राओं के कष्ट को भी सहा। सम्पूर्ण देश को उसकी सांस्कृतिक, आर्थिक, भौगोलिक और जातीय संस्कृतियों की विशिष्टताओं के साथ तादात्म्य स्थापित किया।

नागार्जुन का रचना संसार एक वैविध्य भरी व्यापकता लिये हुए है। उनके अनेक कविताएँ पत्र उनके व्यापकत्व जन सर्म्पक की गवाही देते है परन्तु इस विराट लेखन की चिंता का विषय एक ही है– एक अपार दुःख जो आमजनता व मानवता से एकाकार होने की मंगलकामना जनान्दोलित किसानों, शोषितों एवं वंचितों की नियति से एकाकार होने की समुचित बेचैनी। अपने समय और समाज में सक्रिय राजनीतिक दमन आर्थिक शोषण और सांस्कृतिक ठहराव के विरूद्ध हस्तक्षेप की सार्थक भूमिका कविता ही उनके कवि कर्म का एक मात्र उद्देश्य सार्थक होता है। वास्तविकता को निरपेक्ष ढंग से प्रस्तुत कर देना ही उन्हें स्वीकार्य नहीं है वे यथोचित रूप से सर्वहारा वर्ग के संघर्ष की चेतना को शामिल करने के पक्षधर हैं। कविता हो या कहानी उपन्यास उनकी दूरगामी दृष्टि हमेशा अन्तर्विरोध पर रहती है। मुख्य अन्तर्विरोध की रोशनी में ही वे अनुभव की बारीक से बारीक परतों को उकेरते हुए प्रचारित प्रसारित भी करते हैं।

कवि की अनेक लम्बी कविताओं में से एक 'हरिजनगाथा' कई दृष्टियों से अति महत्त्वपूर्ण है। पहले तो इसलिए कि यह कविता बिहार राज्य में हुए एक सामूहिक हरिजन की नृशंस घटना से उपजी है। जो हमारा ध्यान अति प्राचीनतम् भारतीय समाज की वर्ण व्यवस्था और ऊँच–नीच जाति–पाँति के नृशंस द्वेषों को चित्रित करती है। कई बरसों के साथ रहते चलते आने के तदुपरांत स्वतन्त्रता और प्रजातांत्रिक समाज के कदाचारों पर चिंता और क्षोभ से भरी हुई है। अपर हरिजनों और दलितों के प्रति उच्च जातियों के अमानवीय आचरणों का बयान करती है, परन्तु कविता यहीं तक नहीं रुकती वह तो हरिजनों को संगठित कर उच्च जातियों की हिंसा का बदला हिंसा के रास्ते पर चलते हुए चुकाने की ओर प्रेरित करती है। इसका भाव यही है कि यह कविता दलितों के भावी संगठनों और क्रूर उच्च जातियों के हिंसा के विरूद्ध तैयार होने वाली दलितों की हिंसक सेनाओं के सपनों से भरी हुई है। नागार्जुन मार्क्सवादी और मार्क्सवाद को अपने जीवन का मूल ध्येय व उपलब्धि मानते हैं, परन्तु उनकी यथार्थोन्मुखी भावनाएं मार्क्सवाद के दबाव से उत्पन्न नहीं होती है। बल्कि मनुष्य और समाज के अन्त सम्बन्ध की भावनाओं से विकसित होती है। निश्चय ही महाकवि नागार्जुन जी ने मानव और समाज के अन्तःसम्बन्ध को समझने के लिए मार्क्सवाद की सुव्यवस्थित वैज्ञानिक शैली का प्रयोग किया है। इस शैली प्राप्त दृष्टि और समझ ने नागार्जुन के कविता को अद्वितीय शक्ति प्रदान की है। 'अकाल और उसके बाद' नामक कविता में उन्होंने कहा है कि –

''कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोयी उनके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त
कौए ने खुजलाई पाँखे कई दिनों के बाद।''[8]

नागार्जुन ने सामाजिक मानव के दैनिक जीवन की अनेक घटनाओं के बीच अनेक प्रकार की सामाजिक शक्तियों की धारा प्रवाह को देखा है। उन्होंने उस सामाजिक मानव के संघर्षों को व्यापकत्व रूप में चित्रित किया है। अस्तित्ववादी कवियों में मानव और समाज के मध्य स्वार्थपरता के टकराहट की खाईं की खोज की गयी। इसलिए वे मानव के विपन्नता को वास्तविक रूप में समझ नहीं पाये, इसीलिए विपन्नता से मुक्ति की राह खोज पाने का तो उनके सामने प्रश्न ही नहीं उठता। नागार्जुन जी व्यक्ति को यथार्थवादी दृष्टिकोण से देखने का सफलीभूत प्रयास करते हैं। वे मनुष्य के शोषण को बर्दास्त नहीं कर सकते है और उस शोषण के जो उत्तरदायी कारक है, उन पर व्यंग्य बांण का तीखा प्रहार भी करते हैं। यही कारण है कि व्यंग्य कविताएँ नागार्जुन जी की आन्तरिक संस्कार सी बन गयी है। नागार्जुन का व्यंग्य बहुमुखी है। समाज के विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण उन्होंने किया। सामाजिक विषमता, शोषण अत्याचार, भ्रष्टाचार आदि पर उनका तीखा प्रहार उनके सामाजिक चेतना का परिचायक है। इस प्रखर सामाजिक चेतना का परिवेश काव्य में कवि की वस्तुवादी मानसिकता का परिचायक बन जाती है। 'आओं रानी हम ढोएँगे पालकी' में कवि कहता है कि–

''आओ रानी हम ढोएँगे पालकी
यही हुई है राय जवाहरलाल की
रफू करेंगे फटे पुराने जाल की
यही हुई है राय जवाहरलाल की
आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी!''[9]

निष्कर्ष–आधुनिक हिन्दी काव्य के इतिहास में नागार्जुन जीवन और सृजन की एकरूपता, महान व्यक्तित्व और कृतित्व की एकरूपता तथा सैद्धान्तिक व्यवहार के समन्वय के एक ज्वलन्त उदाहरण हैं। कवि मार्क्सवादी विचारधारा के छाया तले अपनी कवित्व की ज्योति जलाने का निरन्तर वा अथक प्रयास किया। नागार्जुन जी साहित्य को जनता के जीवन संघर्ष का अभिन्न अंग मानते हैं। समाज से, समाज के संघर्ष से उसके स्वर्णिम भविष्य के नवनिर्माण प्रयत्नों से अपनी प्रतिबद्धता दुहरायी है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि नागार्जुन वर्ग संघर्ष के कवि हैं। उनका यह संघर्ष जीवन और चेतना दोनों ही स्तरों पर जनवादी चेतना की विचारधारा को लेकर आगे बढ़ती है।

संदर्भ–सूची

1. सुभाषितरत्नानि (नीतिशतक), पृ. 23
2. 'सिंदूर तिलकित भाल', नागार्जुन रचनावली भाग–एक, पृ. 42
3. 'कैसे लगेगा तुम्हें', नागार्जुन रचनावली भाग–एक, पृ. 295
4. नागार्जुन, 'शासन की बंदूक', प्रतिनिधि कविताएँ, पृ. 104
5. नागार्जुन, 'प्रेत का बयान', प्रतिनिधि कविताएँ, पृ. 94
6. नागार्जुन, 'मास्टर' कविता, पृ. 98
7. 'भारतीय जन कवि का प्रणाम', नागार्जुन रचनावली, भाग–2, पृ. 16
8. 'अकाल और उसके बाद', नागार्जुन, पृ. 98
9. नागार्जुन, 'आओ रानी हम ढोएँगे पालकी', प्रतिनिधि कविताएँ, पृ. 101

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908
Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 66-69
General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

सुभद्रा कुमारी चौहान के काव्य कौशल में राष्ट्रीय चेतना

*डॉ. धर्मेन्द्र कुमार**

आधुनिक काल में सुभद्रा कुमारी चौहान आजादी की अलख जगाती हुई राष्ट्रीय चेतना की एक सजग कवयित्री रही हैं। इनकी कविता "झांसी की रानी" को सुनकर आज भी हम लोग राष्ट्रीय भावना से हर्षित हो उठते हैं। गजानन माघव मुक्तिबोघ तो इनके काव्य को हिन्दी में बेजोड़ मानते है तभी तो यह शौर्यगीत आज भी जन–जन की आवाज में गूंज रहा हैं–

सिंहासन हिल उठे राजवंशों ने भृकुटीतानी थी।
बूढ़े भारत में भी आई फिर से नयी जवानी थी।
गुम हुई आजादी की कीमत सबने पहचानी थी।
दूर फिरंगी को करने की कीमत सबने मन मे ठानी थी।
चमक उठी सन सत्तावन में, वह तलवार पुरानी थी।
बुंदेले हरबोलों के मुहँ हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी।

यही नहीं उन्होंने अपने प्राणों की चिंता किये बिना 'प्रथम सत्याग्रही' होने का परिचय दिया। उन्होनें अंग्रेजों की सत्ता को कभी नहीं स्वीकार किया अनेक यातनाएँ सहने के बाद भी अपने को कमजोर नहीं माना। वह अपने बलिदान से देश को एक नई मिशाल दी–

इससे भी सुन्दर समाधियाँ, हम जग में हैं पाते।
जिनकी गाथा पर निशीथ में, क्षुद्र जंतु ही गाते।
पर कवियों की अमर गिरा में, उसकी अरिम कहानी।
स्नेह और श्रद्धा से गाती है वीरों की बानी।।

सुभद्राजी की कविताओं में राष्ट्रप्रेम और राष्ट्रवाद उभर कर आया है। यह खुद राष्ट्रीय विचार धारा के साथ गांधी जी से प्रभावित थी। "झांसी की रानी" रचना महाजीवन की जीवन गाथा है 'जलियावाला बाग' हत्याकाण्ड की नृशंस हत्या पर इनका करूण क्रनदन किस प्रकार देखने को मिलता है–

आओ प्रिय ऋतुराज, किन्तु धीरे से आना।
यह है शोक स्थान, यहाँ मत शोर मचाना।
कोमल बालक मरे यहाँ गोली खा–खा कर।
कलियाँ उनके लिए चढ़ाना थोड़ी सी लाकर।।

वह देश के लिए एक आदर्श इनकी कविता में समरसता के होते हुए भी राष्ट्रीय चेतना की झलक इन पंक्तियों में देखने को मिलती हैः–

---

* *सहायक आचार्य (हिन्दी विभाग), श्री अग्रसेन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मऊरानीपुर, झाँसी*

उठो सोने वालो सवेरा हुआ है।
वतन के फकीरों के फेरा हुआ है।

"झांसी की रानी" कविता में बुन्देलखण्ड की ओजपूर्ण शक्ति का पूरा एहसास होता है। रानी ने अंगेजी हुकूमत के सामने अपने शौर्य से किसी को नतमस्तक नहीं होने दिया, तभी तो उनको, उनकी मर्दानगी को भारतीय इतिहास के पन्नों में स्वर्णिम अक्षरों से अंकित किया गया है। उनके कृत्य कार्यों को हम देशवासी कैसे भुला पायेगें। स्वयं सुभद्रा जी लिखती हैं–

आओ रानी याद रखें ये कृतज्ञ भारतवासी।
यह तेरा बलिदान जगा वेग स्वतंत्रता अविनासी।
होवे चुप इतिहास, लगे सच्चाई को चाहे फाँसी।
हो मदमाती विजय, मिटा दे गोले से चाहे।
झांसी तेरा स्मारक तू ही होगी।
तू खुद अमिट अविनासी थी।।

उनका राष्ट्रीयता से सीधा सरोकार था तभी तो वह महिलाओं में भी चेतना जगाने का कार्य करती हैं। इसीलिए वह स्त्रियों को भी कहना नहीं भूलती–

सबल पुरुष यदि भीरू बनें, तो हमकों दे वरदान सखी।
अबलाएं उठ पड़े देश में करें युद्ध घमासान सखी।
पंद्रह कोटि असहयोगनियाँ, दहला दें ब्रहमांड सखी।
भारत लक्ष्मी लौटाने को रच दे लंका काण्ड सखी।।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में वीरों के उत्साह बढ़ाने में कविता सशक्त माध्यम रही है। इन कविताओं ने राष्ट्रीय एकता पर बल देते हुए, जाति–धर्म की भावना से मुक्त स्वाधीनता का ऐसा शंखनाद किया कि अंग्रेजों की जड़ें हिल गई क्योंकि अंग्रेजों की बर्बरता और दुर्व्यवहार से देश के राजा और नबाब परेशान हो गये थे। सुभद्रा जी ने बहुत ही मर्मस्पर्शी ढंग से अपनी कविता में इस प्रकार किया है–

रानी रोई रनिवासों में बेगम गम में भी बेजार।
उनके गहने कपडे बिकते थे, कलकत्ते के बाजार।।
सरे आम नीलाम छापते थे, अंग्रेजों के अखवार।
नागपुर के जेवर ले लो, लखनऊ के लो नौ लख हार।।

सुभद्रा जी की राष्ट्रीयता की प्रेरणा स्रोत वीरांगना लक्ष्मीबाई थी। वह उनकी वीरता–शौर्य का यशोगान बड़े साहस के साथ अपनी कविताओं में किया है। स्वतंत्रता की प्रबल अभिलाषा उनके अन्दर थी। वे कहती हैं–

जय स्वतंत्रिनी भारत माँ
यों कह कर मुकुट लगाने दो।
हमें नहीं इस भूमण्डल को
माँ पर बलि–बलि जाने दो।।

वह अपनी रचनाओं में सत्याग्रह, हिंसक दंगे, जेल आदि को अंकित करती हैं उन्होंने अपनी ''जलियाँवाला बाग में बंसत'' कविता में उन निहत्थे अमर सपूतों के उपर अंग्रेजी हुकूमत की बर्बरता को इस प्रकार व्यक्त किया है–

तड़प–तड़प कर वृद्ध मरे हैं गोली खाकर।
शुष्क पुष्प कुछ कहाँ गिरा देना तुम जाकर।।

यह सब करना, किन्तु तुम धीरे से आना।
यह हैं शोक स्थान यहाँ न शोर मचाना।।

उनके मन में लक्ष्मीबाई के प्रति अपार श्रद्धा रही है। स्वाधीनता संग्राम के दिनों ''झाँसी की रानी'' कविता देश में राष्ट्रीयता का स्वर फूँकने में पूरी तरह सफल रही है। स्वंय सुभ्रदा जी उनकी समाधि के विषय मे कहती हैं–

इस समाधि में छिपी हुई है एक राख की ढेरी।
जलकर जिसने स्वतन्त्रता की, दिव्य आरती फेरी।।
यह समाधि यह लधु समाधि है, झाँसी की रानी।
अंतिम लीला स्थली यही हैं, लक्ष्मी मरदानी की।।
यही कही पर विखर गई वह, भग्न विजय माला सी।
उसके फूल यहाँ संचित है, है यह स्मृति शाला सी।।
सहे वार पर वार अंत तक, लड़ी वीर बाला सी।
आहुति सी गिर चढ़ी चिता पर, चमक उठी ज्वाला सी।।
बढ़ जाता है, मान वीर का रण में बलि होने से।
मूल्यवती होती सोने की भस्म, यथा सोने से।।
रानी से भी अधिक हमें अब, यह समाधि प्यारी।
यहाँ निहित है स्वतंत्रता की, आशा की चिनगारी।।

अंग्रेजी शासन की हर नीतियों से जनमानस आहत था उन्होंने सभी में नवीन ऊर्जा और शक्ति का संचार करने का कार्य किया क्योंकि आजादी की चिनगारी के समय राजा से रंक तक सभी दासता का दंश झेल रहे थे। उस चिनगारी को सुभद्रा जी ने बड़े सुन्दर शब्दों में उकेरा है–

महलों ने आग, झोपड़ों ने ज्वाला सुलगायी थी।
यह स्वतंत्रता की चिनगारी अन्तरम में आयी थी।
झाँसी चेती, दिल्ली चेता, लखनऊ लपटें छायी थी।
मेरठ, कानपुर, पटना ने भारी धूम मचायी थी।
जबलपुर, कोलहापुर, में भी कुछ हलचल उकसानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुँह, हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मरदानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

रानी लक्ष्मीबाई की बहादुर सखियों 'काना और मन्दरा' आदि ने भी अपना खूब कौशल दिखाया था। वह उनको अधिकार सम्पन्न बनाने की पक्षधार थी। उनके विषय में सुभद्रा जी ने इस प्रकार वर्णन किया है–

विजय मिली पर अंग्रेजों की फिर सोना घिर आयी थी।
अबके जनरल स्मिथ सन्मुख था, उसने मुँह की खायी थी।
काना और मन्दरा सखियाँ रानी के संग आयी थी।
युद्ध क्षेत्र में उन दोनों ने भारी मार मचायी थी।।

स्वतंत्रता की इस ज्वाला में उनके साथ कदम से कदम मिलाकर जिन्होनें अपने राष्ट्र के लिए कुर्बानी दी थी उन वीर क्रान्तिकारियों के विषय में सुभद्रा जी बंया अपने काव्य के माध्यम से करती है–

इस स्वतंत्रता– महायज्ञ में कई वीखर भाये काम।
नाना, घुन्घूपंत, ताँतिया, चतुर अजीमुल्ला सरनाम।
अहमद शाह मौलवी, ठाकुर कुवर सिंह, सैनिक अभिराम।

भारत के इतिहास गगन में अमर रहेंगे जिनके नाम।
लेकिन आज जुर्म कहलाती, उनकी जो कुर्बानी थीं।

कुल मिलाकर बुन्देलखण्ड के जनमानस में राष्ट्रीयता की भावना कूट–कूट कर भरी थी। इनकी कविता ने हजारों युवकों को राष्ट्रीय आन्दोलन में कूदने के लिए प्रेरित किया। इनकी रचनाएँ समाज के लिए प्रेरक है जो सभी में राष्ट्रीय चेतना को भर देती है। सुभद्रा जी कविता–झाँसी की रानी, जलियांवाला बाग में बसंत, राखी, विजयादशमी, मातृ मंदिर, वेंकुंज, स्वदेश के प्रति, मत जाओ, विस्मृति की स्मृति, वीरों का कैसा हो बंसत, सेनानी का स्वागत, झाँसी की रानी की समाधि पर लोहे को पानी कर देना आदि राष्ट्रीय चेतना से ओत प्रोत है कवयित्री का कर्म प्रधान जीवन इस बात का प्रमाण है, साथ ही अपनी ओज पूर्ण कविताओं के लिए सुभद्रा जी साहित्य जगत में सदैव अमर रहेंगी। यही उनके कविता का मूल उत्स है। सुभद्रा जी ने अपनी कविताओं में जिस कुशलता के साथ ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तथा राष्ट्रीय भावनाओं को तात्कालिक सन्दर्भों से जोड़ा था इसी से उनकी काव्य कुशलता एवं प्रतिभा का परिचय मिला है।

संदर्भ–सूची

1. विश्वम्भर मानव, आधुनिक कवि, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
2. डॉ. प्रतीक मिश्र, सुभद्रा कुमारी चौहान, उ.प्र. हिन्दी संस्थान, लखनऊ।
3. सुभद्रा कुमारी चौहान, मुकुल तथा अन्य कविता, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद।
4. डॉ. सुमन राजे, हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।

*****

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 70-77

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

समय से मुठभेड़ करती 'धूमिल' और पंजाबी कवि 'पाश' की कविताओं का तुलनात्मक अध्ययन

*आत्माराम**

'धूमिल' और पंजाबी तथा हिन्दी–साहित्य के मर्मज्ञ कवि 'पाश' जन–वेदना के कवि हैं। काल की दृष्टि से सुदामा पाण्डेय 'धूमिल' और पंजाबी कवि अवतार सिंह 'पाश' समकालीन कवि हैं, जिन्होंने आज़ादी के पश्चात के भारतीय परिवेश की दुर्धर स्थितियों का समयक् अन्वेषण प्रस्तुत किया है। सुदामा पाण्डेय 'धूमिल' का जीवन लगभग 34 वर्ष का था (9 नवम्बर, 1936 से 10 फरवरी 1975), वहीं अवतार सिंह संधू 'पाश' (9 सितम्बर 1950 से 23 मार्च 1988) लगभग 37 वर्ष तक जीवित रहे। समय की नब्ज़ को पकड़ने वाले हिन्दी कवि धूमिल ने 'संसद से सड़क तक' (1972), 'कल सुनना मुझे' (1977), 'सुदामा पाण्डेय का प्रजातंत्र' इत्यादि तीन काव्य–संग्रहों के माध्यम से और जनता–जनार्दन की आवाज़ रहे 'पाश' ने 'लोह कथा' (1970), 'उड्डदे बाजाँ मगर' (1974), 'साड़े समियाँ विच' (1978), 'खिल्लरे होए वर्के' (1989) इत्यादि चार काव्य–संग्रहों के द्वारा सामयिक यथार्थ को मुखरित किया।

देर तक समय की गर्द के नीचे दबे रहने से थोड़ी देर का प्रज्वलित होना अधिक श्रेयस्कर होता है के अर्थ को ध्वनित करती संस्कृत की उक्ति 'क्वचित् प्रज्ज्वलितं श्रेयः न च धूमायित चिरम्' के अनुरूप इन दोनों कवियों का जीवनकाल छोटा मगर साहित्यिक उपलब्धियों से भरपूर रहा। संख्या में कम होने पर भी धूमिल और पाश के साहित्य की छाप भारत ही नहीं बल्कि विश्व साहित्य में भी बहुत गहरी है। इसी कारण हिन्दी और पंजाबी साहित्य से संबंधित होते हुए भी वे आज विश्व साहित्य की धरोहर बन गए हैं। धूमिल और पाश का काव्य आज हिन्दी, पंजाबी और अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त अन्य भाषाओं में न केवल अनूदित हो रहा है बल्कि अपनी नवीन और अंगारी विचारधारा के लिए चर्चा का विषय भी बन रहा है। धूमिल और पाश की कविता की विचारधारा और काव्य–संवेदना के चिंतन–बिंदुओं को निम्नलिखित तुलनात्मक पक्षों के परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकित–विश्लेषित किया जा सकता है–

साम्य

क्रांतिकारी विचारधारा : अपने छोटे से जीवनकाल और साहित्यिक सफर के बावजूद समय की विद्रूपताओं से मुठभेड़ करती अपनी कविताओं के कारण धूमिल और पाश दोनों ही संघर्षशील जनता में नए प्राण फूँक गए। उन्होंने सामाजिक असमानता व वर्ग विशमता का डटकर विरोध किया। उनके काव्य में जमीनी सच और अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए क्रांतिकारी विचारधारा का संदेश मिलता है। शोषण आधारित व्यवस्था में बदलाव के लिए धूमिल और पाश खुलकर हिंसा का समर्थन करते हैं और क्रांति को ही समस्या का हल बतलाते हैं। पाश के शब्दों में–

"कुछ नहीं, बस युद्ध ही इस घोड़े की लगाम बन सकेगा।
बस युद्ध ही इस घोड़े की लगाम बन सकेगा।"[1]

धूमिल भी शोषण के खात्मे के लिए हिंसा का समर्थन करता हुआ जनता को क्रांति के लिए प्रेरित करता है–

* *शोध छात्र (हिन्दी विभाग), गुरुनानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर*

"अब वक्त आ गया है कि तुम उठो
और अपनी ऊब को आकार दो"[2]

देश प्रेम : पाश की कविताओं में देश–प्रेम की भावना प्रबल रूप से उभरकर सामने आई है। पाश के अनुसार 'भारत' शब्द जहाँ भी इस्तेमाल किया जाता है वहाँ दूसरे शब्द अपनी अर्थवत्ता खो देते हैं–

"भारत–मेरे सम्मान का सबसे महान शब्द
जहाँ कहीं भी प्रयोग किया जाए
बाकी सभी शब्द अर्थहीन हो जाते हैं।"[3]

इसी तरह धूमिल के लिए अपने देश भारत की सम्पन्नता व स्वतंत्रता से बढ़कर कुछ भी नहीं है –

"अन्य लोगों की तरह
मैं इतना कृतघ्न नहीं कि उस ज़मीन को धिक्कार दूँ
जिस पर मेरा जन्म खड़ा है/मेर लिए मेरा देश–
जितना बड़ा है : उतना बड़ा है।"[4]

भ्रष्ट राजनीति और नेताओं पर व्यंग्य : भ्रष्ट नेताओं ने आज़ादी के बाद देश और देश की जनता को लूटने में कोई कसर नहीं छोड़ी। इसलिए धूमिल और पाश दोनों ने अपनी कविताओं के केन्द में मुख्यतः भ्रष्ट राजनीति और नेताओं को रखा है और स्वातंत्र्योत्तर देश की दुर्दशा और लोगों की अकिंचनता के लिए इनको जिम्मेदार ठहराते हुए अपने तीक्ष्ण शब्दबाणों का निशाना बनाया है। वस्तुतः राजनीति ने मानवीयता को ही समाप्त कर दिया है। समाज में जो गुण्डा है, चरित्रहीन है, भ्रष्ट है, पैसे वाला है, वही राजनीति रूपी व्यवसाय में निवेश करता है। राजनीति में आने के बाद कुर्सी के लिए हर वह काम किया जाता है जो समाज की दृष्टि में अनैतिक व भ्रष्ट है। इसलिए धूमिल कहता है कि–

"चरित्रहीनता
मंत्रियों की कुर्सियों में तबदील हो चुकी है।"[5]

पाश लोगों को नेताओं के अत्याचारों से परिचित करवाते हुए 'उड़ते हुए बाजों के पीछे' शीर्षक कविता में लिखता है कि–

"उड़ गए हैं बाज चोंचों में लेकर
हमारी चैन से एक पल बिता सकने की खाहिश
दोस्तो, अब चला जाए
उड़ते हुए बाजों के पीछे...।"[6]

लोकतांत्रिक अव्यवस्था पर आक्रोश : लोकतंत्र का अर्थ होता है लोगों का अपना शासन। परन्तु भारत में लोकतंत्र के नाम पर कुछ राजनीतिक गुण्डे शासन की बागडोर अपने हाथ में लिए हुए हैं और सत्ता की शक्ति का प्रयोग अपने निजी हितों के संधान हेतु कर रहे हैं। अतः धूमिल और पाश ने लोकतंत्र के नाम पर चलाए जा रहे इस भ्रष्ट व्यवस्थातंत्र को अपने व्यंग्य बाणों का निशाना बनाया है। पाश लोकतंत्र की आड़ में चलाए जा रहे जंगलतंत्र की ख़बर लेता हुआ कहता है–

"इसका जो भी नाम है–गुंडों की सल्तनत का
मैं इसका नागरिक होने पर थूकता हूँ।"[7]

वहीं धूमिल का कहना है कि जनतंत्र देश की जनता की आँखों पर पट्टी बाँधकर उन्हें धोखे में रखने का नुस्खा मात्र है। वास्तव में देश को पूँजीपतियों के हाथों बेचा जा रहा है। भारत में जनतंत्र जो 1947 में शेर बनकर दहाड़ा था आज अपनी अंतिम साँसें गिन रहा है–

"सिर कटे मुर्गे की तरह फड़कते हुए/जनतंत्र में
सुबह/सिर्फ, चमकते हुए रंगों की चालबाजी है।"[8]

अथवा

"न कोई प्रजा है/न कोई तन्त्र है/यह आदमी के खिलाफ
आदमी का खुलासा/षड्यंत्र है।"[9]

वास्तव में दोनों कवि अपनी कविताओं के द्वारा लोकतंत्र की आड़ लेकर चलाए जा रहे गुण्डाराज की पोल खोलकर रख देते हैं।

मार्क्सवादी विचारधारा का पोषण : धूमिल और पाश दोनों ही मार्क्सवादी विचारधारा के समर्थक कवि हैं और द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद को समाज और मानव–जाति के विकास का मूल कारण मानते हैं। पाश के अनुसार रूस और चीन में गरजने वाला मार्क्सवादी शेर जब दिल्ली की सड़कों पर आया तो मिमियाने लगा। अर्थात उन्हें देश में समाजवाद के लागू न होने का दुख है जो इन शब्दों में व्यक्त होता है –

"मार्क्स का सिंह–जैसा सिर/दिल्ली की भूल–भुलैयों में मिमियाता फिरता
हमने ही देखना था/मेरे यारो, यह कुफ्र हमारे ही समय में होना था।"[10]

धूमिल मार्क्सवादी विचारधारा के अनुरूप वर्गहीन और शोषण रहित समाज की स्थापना के लिए मिमयाने के स्थान पर दहाड़ने की बात करता है–

"तनो/अकड़ो
अमरबेलि की तरह मत जियो
जड़ पकड़ो।"[11]

इस तरह धूमिल और पाश दोनों का मानना है कि अपने अधिकारों को माँगकर नहीं बल्कि शोषकों से लड़कर ही प्राप्त किया जा सकता है।

यथार्थवादी दृष्टिकोण : पाश और धूमिल आम जनजीवन की संवेदनाओं और उनके यथार्थ से जुड़े कवि हैं। इनकी कविताओं का कथ्य उस घिनौनी राजनीति और समाज की तस्वीर पेश करता है जिससे भारत की सामान्य जनता हर–रोज दो–चार होती है। अर्थात समाज और राजनीति का नग्न दुनियावी यथार्थ इनकी कविताओं में स्थान पाता है। भारतीय समाज के कटु यथार्थ को बखान करता हुआ पाश कहता है –

"कोई भी पुलिस नहीं खोज पाएगी इस साजिश की जगह
क्योंकि ट्यूबे सिर्फ राजधानी में जगमगाती हैं
और खेतों, खानों व भट्ठों का भारत बहुत अँधेरा है।"[12]

धूमिल भारतीय न्याय–प्रणाली और संविधान को अमीरों, पूँजीपतियों और राजनीतिज्ञों के हाथ की कठपुतली मानता है, क्योंकि आम लोगों के हाथों से न्याय हमेशा दूर ही रहता है। इसलिए ही–

"एक ही संविधान के नीचे/भूख से रियाती हुई फैली हथेली का नाम
दया है/और भूख में/तनी हुई मुट्ठी का नाम/नक्सलबाड़ी है।"[13]

बुद्धिजीवी वर्ग की सुविधाभोगी प्रवृत्ति और विलासता पर व्यंग्य : धूमिल शोषणचक्र से मुक्ति के लिए बुद्धिजीवी वर्ग का अपने कर्म के प्रति कर्तव्यनिष्ठ होना आवश्यक मानता है। परन्तु वह देखता है कि बुद्धिजीवी वर्ग सुविधाभोगी होकर अपने कर्म–पथ से भटक गया है। वह धन के लालच में शोषकों का साथ देने लगा है। यथा–

"मैंने हरेक को आवाज दी है/हरेक का दरवाजा खटखटाया है
मगर बेकार... मैंने जिसकी पूँछ/उठायी है, उसको मादा/पाया है।"[14]

बुद्धिजीवी वर्ग जानता है कि अगर उसने परिस्थितियों को बदलने के लिए संघर्ष का रास्ता अपनाया तो उसे अपनी सारी सुख–सुविधाओं से हाथ धोना पड़ेगा व शोषक वर्ग के विरोध का सामना भी करना पड़ेगा। अतः वह चंद टुच्ची सुविधाओं और विलासिता के लालच में विद्रोह करने से मना कर देता है। इसलिए धूमिल को कहना पड़ता है कि –

"सबसे अच्छे मस्तिष्क / आराम कुर्सी पर / चित्त पड़े हैं।"[15]

पाश भी बुद्धिजीवी वर्ग की विलासिता और पैसे के पीछे भागने की प्रवृत्ति पर व्यंग्य करता हुआ कहता है कि–

"आप जानते हैं– / अदालतों, बस अड्डों और पार्कों में
सौ–सौ के नोट घूमते फिरते हैं / जो डायरियाँ लिखते, चित्र खींचते
और रिपोर्टें भरते हैं।"[16]

कविता संबंधी विचार : पाश और धूमिल की कविताओं में जिस भ्रष्ट राजनीति और विसंगतिपूर्ण समाज का चित्रण हुआ है, उसकी गंदगी को साफ करके शोषण रहित समाज की स्थापना के लिए दोनों कवि ऐसी कविता का विरोध करते हैं जो आम लोगों के जीवन और उसकी समस्याओं की जगह कल्पनालोक में विचरण करती हुई केवल मनोरंजन का कार्य करती है या महिबूब की छाती के गीतों से उनकी वासनाओं को भड़काती है। ऐसी कविताओं और उनके कवियों के बारे में धूमिल का विचार है कि–

"जब इससे न चोली बन सकती है / न चोंगा / तब आपै कहौ
इस ससुरी कविता को / जंगल से जनता तक / ढोने से क्या होगा?"[17]

इसी तरह कविता की सीमाओं की ओर संकेत करता हुआ पाश कहता है कि–

"मसलों की बात दोस्तों, कुछ ऐसी होती है
कि कविता बिल्कुल नाकाफी होती है।"[18]

वस्तुत : उनके इन विचारों का कारण स्पष्ट है कि आजकल ज्यादातर कवि ऐसी कविताएँ लिख रहे हैं जो समाज और आम आदमी के जीवन और उसकी राजनीति के यथार्थ से कोसों दूर होती जा रही हैं।

साम्प्रदायिकता का विरोध : धूमिल और पाश की कविताओं में साम्प्रदायिकता का खुलकर विरोध हुआ है। धूमिल जानता है कि आज सत्ता की कुर्सी पर जमें रहने का सबसे बड़ा हथियार साम्प्रदायिकता में नीहित है। नेता धर्म, जाति, क्षेत्र के आधार पर जनता को आपस में लड़ाकर साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देते हैं व खुद राजनीतिक रोटियाँ सेकते रहते हैं। अतः नेताओं की सत्ता की ललक ने देश को साम्प्रदायिकता के बारूद के ढेर पर बिठा दिया है। धूमिल के शब्दों में –

"यह मेरा देश है... / यह मेरा देश है...
हिमालय से लेकर हिंद महासागर तक
फैला हुआ / जली हुई मिट्टी का ढेर है
जहाँ हर तीसरी जुबान का मतलब
नफरत है / साजिश है / अन्धेर है।"[19]

पाश साम्प्रदायिक ताकतों के द्वारा मौत का तांडव करने के बाद सुनसान आंगन में चढ़े चांद को सबसे खतरनाक मानता हुआ कहता है–

"सबसे खतरनाक होता है / मुर्दा शांति से भर जाना
न होना तड़प का सब सहन कर जाना / घर से निकलना काम पर
और काम से लौटकर घर आना / सबसे खतरनाक होता है
हमारे सपनों का मर जाना।"[20]

इस तरह दोनों कवि साम्प्रदायिक भावना से ऊपर उठकर राजनीतिक षड्यंत्रों को समझने के लिए प्रेरित करते हैं।

भूख और गरीबी की प्रताड़ना : धूमिल और पाश अकाल, भुखमरी और गरीबी का प्रमुख कारण नेताओं और पूँजीपतियों के द्वारा की जाने वाली कालाबाज़ारी तथा भ्रष्टाचार और अनाज की राजनीति को मानते हैं। धूमिल का मानना है कि भूख और गरीबी न तो अकाल के कारण है और न ही आबादी के कारण, बल्कि जनता की आँखों पर पट्टी बाँधकर उसे घास के खेत में छोड़ देने के कारण है। अकाल और भुखमरी के शोषणचक्र को बनाए रखने के लिए रोटी की राजनीति से पर्दा उठाता हुआ कवि कहता है–

"एक आदमी/रोटी बेलता है/एक आदमी रोटी खाता है
एक तीसरा आदमी भी है/जो न रोटी बेलता है, न रोटी खाता है
वह सिर्फ रोटी से खेलता है/मैं पूछता हूँ–
'यह तीसरा आदमी कौन है'?/मेरे देश की संसद मौन है।"[21]

इसी तरह पाश भारतीय किसान की गरीबी और बदहाली का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है–

"आज का दिन शायद करमू की सूखती जा रही धरती पर उगा है
जिसकी खुरली पर बँधे बैल को/रात में सरकारी साँड मार गया था।"[22]

इस तरह धूमिल और पाश भूख और गरीबी के यथार्थ कारणों की छानबीन करते हुए सत्ता और भ्रष्ट राजनेताओं को इसके लिए जिम्मेदार मानते हैं।

शोषकों के प्रति आक्रोश : धूमिल और पाश ने शोषकों के चेहरे का नकाब नोचकर उनकी शोषण वृत्ति की धज्जियाँ उड़ाई हैं। शोषक चाहें समाज का बड़ा पूँजीपति वर्ग हो या राजनीति का कोई मसीहा, सभी को इनके आक्रोश का सामना करना पड़ा है। पाश ने बड़ी ही निडरता के साथ तत्कालीन प्रधानमंत्री के अत्याचारों की बखिया उधेड़कर रख दी है–

"गां नहीं मिलदी, वच्छा नहीं झल्लदी, गां नूं निआणा पा लउ/(बई)
वोटां लै के इंदरा मुक्कर गई पट्टे दे विच बिठा लउ/बई
इंदरा ने साड़ी गल्ल नहीं सुणनी डांगी लाग चढ़ा लउ/(बई)
कट्ठे होके करीए हल्ला हाकम लंमे पा लउ
जुल्म दी जड़ बड्ढणी दातीयां तेज़ करा लउ/जुल्म दी जड़ बड्ढणीं।"[23]

इसी तरह धूमिल का कथन है कि भूखा आदमी पूँजीपतियों और अमीरों को गाली के समान लगता है। क्योंकि–

"जिसके पास थाली है/हर भूखा आदमी
उसके लिए सबसे भद्दी/गाली है।"[24]

कविता में सच्च कहने के खतरों के प्रति चेतना : धूमिल और पाश की कविताएँ आम जनता की आवाज हैं। परंतु साथ ही धूमिल और पाश भ्रष्ट नेताओं और शोषकों के खिलाफ आवाज़ बुलंद करने और उनका सज्जनता का नकाब नोचने के खतरों से भी परिचित हैं। धूमिल कहता है कि उसने जैसे ही शोषकों का यथार्थ चेहरा बेनकाब किया तो वह उतनी देर तक ही सुरक्षित रह सकता है जितनी देर तक–

"कीमा होने से पहले
कसाई के ठीहे और तनी हुई गँडास के बीच
बोटी सुरक्षित है।"[25]

पाश को तो शोषकों के विरुद्ध लिखने के कारण भ्रष्ट राजनीति और आतंकवाद का शिकार भी होना पड़ा। उनके अपने गाँव में ही आतंकवादियों के द्वारा उनका कत्ल कर दिया गया। इस खतरे के बारे में उन्होंने अपनी मौत से बहुत पहले दी कविता में इस तरह लिखा था–

"मेरे पास तीर अब कागज़ के हैं/जो पाँच साल में एक ही चलता है
और जिसके वह लगता है वह पानी नहीं/मेरा लहू माँगता है।"[26]

नारी की दुर्दशा का चित्रण : धूमिल और पाश ने कहीं भी अपनी कविताओं में काम या वासना की वकालत या रोमानी पक्षधरता नहीं की। इनकी कविताओं में आए औरतों के प्रसंग में तो कामुकता के प्रति गहरी वितृष्णा व्यंजित होती है। हाँ नारी की समाज में निम्नतर दशा के कारणों की छानबीन अवश्य की गई है। धूमिल कहता है कि–

"वह कौन–सा प्रजातांत्रिक नुस्खा है/कि जिस उम्र में
मेरी माँ का चेहरा/झुर्रियों की झोली बन गया है
उसी उम्र की मेरे पड़ोस की महिला/के चेहरे पर
मेरी प्रेमिका के चेहरे–सा/लोच है।"[27]

तो पाश भी नारी की दुर्दशा की यथार्थ तस्वीर पेश करता हुआ कहता है–

"चिड़ियों का चंबा उड़कर कहीं नहीं जाएगा
ऐसे ही कहीं इधर–उधर बाँधों से घास खोदेगा
रूखी मिस्सी रोटियाँ ढोएगा/और मैली चुनरियाँ भिगोकर
लूओं से झुलसे चेहरों पर फिराएगा।"[28]

आज़ादी से मोहभंग : आज़ादी से पहले भारतीय जनता को सुनहरे भविष्य के जो स्वप्न दिखाए गए थे वे आज़ादी मिलने के कुछ वर्षों के बाद ही टूटकर बिखरने लगे। आज़ादी के इन्हीं स्वप्नों से मोहभंग की अभिव्यक्ति पाश और धूमिल को समय की नब्ज़ को पकड़ने वाला कवि बनाकर प्रस्तुत करती है। इसीलिए पाश सत्ता की कुर्सियों पर बैठे गुण्डों की सल्तनत का नागरिक नहीं बनना चाहता –

"इसका जो भी नाम है–गुंडों की सल्तनत का
मैं इसका नागरिक होने पर थूकता हूँ।"[29]

वहीं देश को आज़ादी मिलने के बीस वर्ष पश्चात भी धूमिल को आज़ादी का अर्थ सार्थक होता नज़र नहीं आता तो वह प्रश्न करता है कि–

"क्या आज़ादी सिर्फ तीन थके हुए रंगों का नाम है
जिन्हें एक पहिया ढोता है/या इसका कोई खास मतलब होता है?"[30]

देश को आज़ादी मिलने के पश्चात भी देश की जनता पूँजीपतियों और भ्रष्ट राजनीति के आगे लाचार नज़र आती है। इसलिए आज़ादी प्राप्ति की खुशी की बजाय आज़ादी से मोहभंग की स्थिति दोनों कवियों की कविताओं में साफ देखी जा सकती है।

वैषम्य : तुलनात्मक अध्ययन के सबसे महत्वपूर्ण पक्ष साम्य के साथ–साथ धूमिल और पाश की कविताओं में संवेदना और विचारात्मक धरातल पर वैषम्य भी देखने को मिलता है। पाश भ्रष्ट राजनीति और देश की अव्यवस्था व दुर्दशा का चित्रण करता हुआ उम्मीद करता है कि आने वाला समय सामान्य जनता का होगा–

"सोने की सवेर जब आएगी ओ साथी
अंबर नाचेगा धरती गाएगी ओ साथी।"[31]

इसके विपरीत धूमिल समाज और राजनीति के कटु यथार्थ और विसंगतियों के बीच कल्पना के आशावादी पुष्प नहीं खिलाता। पाष जहाँ शोषण आधारित राजनीतिक व्यवस्था में बदलाव के लिए युद्ध और हिंसा का खुलकर समर्थन करता है वहीं धूमिल के मन का द्वन्द्व उसे अभी भी अंतिम क्रांति और निर्णायक युद्ध की इजाजत देता प्रतीत नहीं होता। इसीलिए वह कहता है–

"सचमुच मजबूरी है/लेकिन ज़िन्दा रहने के लिए
पालतू होना जरूरी है।"[32]

पाश का सम्पूर्ण काव्य पंजाबी परिवेश को धारण किए हुए है और पंजाबी भाषा में लिखा गया है। इसके विपरीत धूमिल के काव्य में सम्पूर्ण भारतीय परिवेश उभरकर सामने आता है और उन्होंने अपनी कविता–लेखन के लिए हिन्दी भाषा का प्रयोग किया है। धूमिल लोगों की निम्नतर दशा के लिए अनपढ़ता को सबसे बड़ा कारण मानता है–

"तुम अपढ़ थे/गँवार थे
सीधे इतने की बस/दो और दो चार थे।"[33]

इसके विपरीत पाश अपनी कविताओं में अशिक्षा की बात नहीं करता। धूमिल ने हमारी राष्ट्रीय भाषा हिन्दी की अस्मिता को आज़ादी के कुछ समय पश्चात ही पहचान लिया था और अपनी खिन्नता प्रकट करते हुए कहा था–

"यह जानकर की तुम्हारी मातृभाषा/उस महरी की तरह है
जो महाजन के साथ रात भर/सोने के लिए एक साड़ी पर राज़ी है।"[34]

पाश अपनी कविताओं में कहीं भी मातृभाषा हिन्दी या पंजाबी भाषा की बात नहीं करता। इससे स्पष्ट होता है कि धूमिल की काव्य–दृष्टि और क्षेत्र–विस्तार पंजाबी कवि पाश की तुलना में विस्तृत और व्यापक फलक लिए हुए है वहीं पाश अपनी कविताओं के द्वारा पंजाबी जीवन और संवेदनाओं से जुड़ा हुआ कवि है।

भाषा : धूमिल हिन्दी भाषा का कवि है तो पाश ने अपनी काव्य–रचना के लिए पंजाबी भाषा का प्रयोग किया है। धूमिल और पाश ने अपने काव्य के माध्यम से जीवन के कटु यथार्थ को वाणी दी है जिसके कारण उनकी कविताओं में प्रमुखतः व्यंग्यात्मक स्वर मुखरित हुआ है। अतः दोनों कवियों की भाषा तलवार की तरह तेज और तीर के समान नुकीली है जो पाठक की संवेदना को गहराई तक झकझोरने की क्षमता रखती है। भाषा में सपाटबयानी के साथ आम जनजीवन में प्रचलित साधारण शब्दों का प्रयोग इनकी कविताओं को और भी सम्प्रेषणीय बनाकर प्रस्तुत करता है। भ्रष्ट सत्ता और राजनीति की बखिया उधेड़ने के क्रम में कहीं–कहीं इनकी भाषा में अश्लीलता का समावेश भी हो जाता है जो व्यंजनात्मक आक्रोश को गहराने का काम करता है। पाश जीवन की निराशावादी स्थितियों को गहराने के लिए पहली माहवारी के प्रतीक का प्रयोग करता है–

"हर रोज़ सहज ही काम खनक उठते हैं/और सारी धरती कान बन जाती है
उस कुँवारी की तरह/आसमान जैसे नयन/जो मूँदकर/सुनती है
सहज–सहज टपकता/पहले मासिक धर्म का दर्द।"[35]

इसी तरह धूमिल कविता के लिए स्त्री की उपमा का प्रयोग करता हुआ कहता है कि–

"हर लड़की/तीसरे गर्भपात के बाद/धर्मशाला हो जाती है और कविता
हर तीसरे पाठ के बाद/नहीं, वहां अब कोई अर्थ खोजना व्यर्थ है।"[36]

इस तरह धूमिल और पाश की काव्य–भाषा में आक्रोश का तीव्र स्वर देखने को मिलता है जो कविता में एक नई स्फूर्ति और ताजगी पैदा करता है।

अंत में कहना होगा कि धूमिल और पाश का काव्य समय की नब्ज़ को पकड़कर उसके साथ आमने–सामने की मुठभेड़ करने की क्षमता से परिपूर्ण है। पाश का काव्य जहाँ कृषक और ग्रामीण जीवन का प्रामाणिक अनुभव प्रस्तुत करता है वहीं धूमिल की काव्य संवेदना ग्रामीण जीवन के साथ–साथ शहरी परिवेश को भी सम्मिलित करती है। सामाजिक व राजनीतिक सरोकार दोनों कवियों की कविताओं की केन्द्रीय विषय–वस्तु है और इसी धरातल के इर्द–गिर्द उनकी कविता आकार लेती हुई छद्म परिवेश से लोहा लेने का कार्य करती है। इनकी कविताओं में सर्वहारा वर्ग और मेहनतकश जनता की आत्मा बोलती है। इसीलिए मोचीराम, बीरू बकरियाँ, चिड़ियाँ दा चम्बा जैसे साधारण लोग इनकी कविताओं में नायक बनकर आते हैं।

समग्र रूप में कहें तो धूमिल और पाश अपनी कविताओं के माध्यम से आज़ादी के बाद के मोहभंग, भ्रष्ट राजनीति और लोकतांत्रिक अव्यवस्था का कच्चा चिट्ठा पेश करते हैं। इनकी कविताओं का आक्रामक तेवर और व्यंग्यदार भाषा समय की साजिश के खिलाफ मुठभेड़ करती प्रतीत होती है। इनकी कविताओं में परंपरा, सभ्यता,

सुरुचि, शालीनता और भद्रता का विरोध किया गया है, क्योंकि इन सबकी आड़ में जो घिनौना खेल चलता है उसे पाश और धूमिल दोनों ही पहचानते हैं। इस विरोध के कारण ही इनकी कविताओं में भ्रष्ट राजनीति, व्यवस्था विरोध, मार्क्सवादी विचारधारा, शोषण रहित समाज की स्थापना के लिए अमन की जगह संघर्ष और जिंदगी के लिए मौत को गले लगा लेने का इश्क देखने को मिलता है। अतः कहना होगा कि धूमिल की कविता में आग और राग का जो तीव्र शब्दनाद सुनाई देता है वह पाश की कविताओं में अपने पूर्ण शबाब पर पहुँच जाता है।

संदर्भ–सूची

1. चमनलाल (संपा. एवं अनुवादक), पाश, सम्पूर्ण कविताएँ, पंचकूला : आधार प्रकाशन, 2002, पृ. 155
2. धूमिल, संसद से सड़क तक, दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2009, पृ. 113
3. चमनलाल (संपा. एवं अनुवादक), पाश, सम्पूर्ण कविताएँ, पंचकूला : आधार प्रकाशन, 2002, पृ. 37
4. धूमिल, कल सुनना मुझे, वाराणसी : युगबोध प्रकाशन, 1977, पृ. 13
5. धूमिल, संसद से सड़क तक, (दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2009), पृ. 43
6. चमनलाल (संपा. एवं अनुवादक), पाश, सम्पूर्ण कविताएँ, पंचकूला : आधार प्रकाशन, 2002, पृ. 75
7. वही, पृ. 199
8. धूमिल, संसद से सड़क तक, दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2009, पृ. 13
9. धूमिल, सुदामा पाण्डेय का प्रजातंत्र, नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 1998, पृ. 21
10. चमनलाल (संपा. एवं अनुवादक), पाश, सम्पूर्ण कविताएँ, पंचकूला : आधार प्रकाशन, 2002, पृ. 181
11. धूमिल, संसद से सड़क तक, दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2009, पृ. 48
12. चमनलाल (संपा. एवं अनुवादक), पाश, सम्पूर्ण कविताएँ, पंचकूला : आधार प्रकाशन, 2002, पृ. 199
13. धूमिल, संसद से सड़क तक, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2009, पृ. 127
14. वही, पृ. 126
15. धूमिल, कल सुनना मुझे, वाराणसी : युगबोध प्रकाशन, 1977, पृ. 30
16. चमनलाल (संपा. एवं अनुवादक), पाश, सम्पूर्ण कविताएँ, पंचकूला : आधार प्रकाशन, 2002, पृ. 42
17. धूमिल, संसद से सड़क तक, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2009, पृ. 62
18. चमनलाल (संपा. एवं अनुवादक), पाश, सम्पूर्ण कविताएँ, पंचकूला : आधार प्रकाशन, 2002, पृ. 128
19. धूमिल, संसद से सड़क तक, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2009, पृ. 104
20. चमनलाल (संपा. एवं अनुवादक), पाश, सम्पूर्ण कविताएँ, पंचकूला : आधार प्रकाशन, 2002, पृ. 200
21. धूमिल, कल सुनना मुझे, वाराणसी : युगबोध प्रकाशन, 1977, पृ. 33
22. चमनलाल (संपा. एवं अनुवादक), पाश, सम्पूर्ण कविताएँ, पंचकूला : आधार प्रकाशन, 2002, पृ. 143
23. चमनलाल (संपा. एवं अनुवादक), पाश, सम्पूर्ण कविताएँ, पंचकूला : आधार प्रकाशन, 2002, पृ. 262
24. धूमिल, संसद से सड़क तक, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2009, पृ. 106
25. वही, पृ. 86
26. चमनलाल (संपा. एवं अनुवादक), पाश, सम्पूर्ण कविताएँ, पंचकूला : आधार प्रकाशन, 2002, पृ. 164
27. धूमिल, संसद से सड़क तक, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2009, पृ. 17–18
28. चमनलाल (संपा. एवं अनुवादक), पाश, सम्पूर्ण कविताएँ, पंचकूला : आधार प्रकाशन, 2002, पृ. 147
29. वही, पृ. 199
30. धूमिल, संसद से सड़क तक, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2009, पृ. 10
31. चमनलाल (संपा. एवं अनुवादक), पाश, सम्पूर्ण कविताएँ, पंचकूला : आधार प्रकाशन, 2002, पृ. 114
32. धूमिल, संसद से सड़क तक, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2009, पृ. 57
33. वही, पृ. 46
34. वही, पृ. 13
35. चमनलाल (संपा. एवं अनुवादक), पाश, सम्पूर्ण कविताएँ, पंचकूला : आधार प्रकाशन, 2002, पृ. 124
36. धूमिल, संसद से सड़क तक, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2009, पृ. 7

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 78-81

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

संजीव के उपन्यासों की भाषा

*धर्मेन्द्र कुमार**

संजीव 21वीं सदी के हिन्दी उपन्यासकारों में महत्त्वपूर्ण स्थान के अधिकारी हैं। प्रायः इनके उपन्यासों के सामाजिक अथवा जनवादी पक्ष की ही बात होती है और भाषिक पक्ष को गौण कर दिया जाता है। विषयवस्तु की नवीनता को लेकर चर्चा में बने रहने वाले संजीव भाषा–प्रयोग की दृष्टि से भी अनूठे रचनाकार हैं। इनके उपन्यासों की भाषा स्वाभाविक, प्रसंगानुकूल और स्थानीयता के पुट से परिपूर्ण है। संजीव ज़मीन से जुड़े हिन्दी के ऐसे उपन्यासकार हैं जिनकी भाषा भी ज़मीनी और आम जनता से जुड़ी हुई है। शब्द–प्रयोग और वाक्य–विन्यास का वैशिष्ट्य इनके कई उपन्यासों में द्रष्टव्य है। इनके अब तक कुल 12 उपन्यास प्रकाशित हैं–1. किसनगढ़ के अहेरी (1981 ई.), 'अहेर' शीर्षक से 2020 ई. 2. सर्कस (1984 ई.), 3. सावधान! नीचे आग है (1986 ई.), 4. धार (1990 ई.), 5. पाँव तले की दूब (1995 ई.), 6. जंगल जहाँ शुरू होता है (2000 ई.), 7. सूत्रधार (2003 ई.), 8. आकाश चम्पा (2008 ई.), 9. रानी की सराय (2008 ई.), 10. रह गईं दिशाएँ इसी पार (2011 ई.) 11.फाँस (2015 ई.), 12. प्रत्यंचा (2019 ई.)। अपने प्रथम उपन्यास 'अहेर' से लेकर सद्य प्रकाशित 'प्रत्यंचा' तक की यात्रा में उपन्यासकार ने भाषिक दृष्टि से हिन्दी के सुधी पाठकों, शोधार्थियों एवं विद्वतजनों का ध्यान आकृष्ट किया है। इनके उपन्यासों की भाषा को निम्नलिखित उपशीर्षकों के अन्तर्गत समझा जा सकता है।

भावानुकूल एवं प्रसंगानुकूल शब्द–प्रयोग

भावानुकूल एवं प्रसंगानुकूल शब्द–प्रयोग किसी भी रचनाकार की रचना की प्राथमिक विशेषता है। संजीव इस दृष्टि से दृष्टि–सम्पन्न उपन्यासकार हैं। शब्द–प्रयोग को लेकर अत्यंत सचेत रहने वाले संजीव प्रसंग–भाव विशेष का ध्यान सूक्ष्मता से रखते हैं। इनका बेहद पठनीय उपन्यास 'अहेर' धर्मयुग के संपादक और प्रख्यात साहित्यकार डॉ. धर्मवीर भारती को भावानुकूल–प्रसंगानुकूल शब्द–प्रयोग के कारण ही अत्यंत प्रिय था। डॉ. भारती के शब्दों में ''मैं जितनी ही बार पढ़ता हूँ, यह उपन्यास मुझे उतना ही और भी अच्छा लगने लगता है।'' अवधी भाषा के शब्दों का जीवंत प्रयोग इस उपन्यास में कई स्थलों पर द्रष्टव्य है। किसनगढ़ जैसे अंचल का चित्रण करते हुए उपन्यासकार की भाषा आंचलिक हो उठती है–''दद्‌दा तब जवान थे। ऊ भादों का अन्हरिया पाख था। नदी में बाढ़ थी–वैसी बाढ़ हमने अपनी जिन्दगी में नाहीं देखा। बड़े–बड़े पेड़ बहे जात रहे। पेड़ छानने की लालच में दद्‌दा नाव किनारे लगाकर टोह ले रहे थे कि एकाएक देवता लोग चढ़ि गए नाव पर–झपाक! झपाक! कहा 'नाव खोलो''।[1] इसी प्रकार, 'सर्कस' उपन्यास में सन्धू दी समाज–देश की व्यवस्था पर आक्रोश प्रकट करती हुई खीझ उठती हैं–''आपने सर्कस में हॉर्स जगलिंग देखी होगी। अब हम आपको ट्रेन जगलिंग दिखाते हैं। स्पीडोमीटर आप नहीं पढ़ पा रहे होंगे। मैं आपकी सहायता करती हूँ। काँटा सौ के निशाने को छू रहा है। ट्रेन की छत पर चिपके हज़ारों आदमियों को देखकर आप घबड़ा गए! अभी तो गूलर की कीटों की तरह अन्दर ठुँसे हज़ारों लोगों को आपने देखा ही नहीं। बारह बोगियों में दस पैसेवालों के लिए, दो कंगालों के लिए। इसी रफ़्तार पर खोमचेवाला बम्फर से लटके आदमियों के बगल से एक बोगी से दूसरी बोगी में घूम रहा है। बगल से कोई बड़े लोगों की गाड़ी गुज़री और कुकुकु एक्सीडेंट कुकु उठिए नहीं, सर्कस में रोज़ सैकड़ों आदिवासी औरतें, ग़रीब, हरिजन, मज़दूर मरते–मिटते रहते हैं।''[2]

* *सहायक प्रोफेसर (हिन्दी विभाग), राम जयपाल महाविद्यालय, छपरा, सारण (बिहार)*

कहावतें एवं मुहावरें

स्थान विशेष के आधार पर प्रचलित कहावतों एवं मुहावरों का प्रयोग संजीव के 'सावधान! नीचे आग है', 'सूत्रधार', 'धार', 'जंगल जहाँ शुरू होता है' आदि उपन्यासों में देखा जा सकता है। 'सावधान! नीचे आग है' उपन्यास में 'मत चूको चौहान,' 'महफ़िल गुलज़ार रखना', 'घों–घों चों–चों,' 'बरगलाना', 'लात के देवता बात से नहीं मानते', 'ग़रीब का जोरु गाँव भर की भौजाई' आदि कहावतें–मुहावरें सहज द्रष्टव्य हैं।[3] इसी प्रकार,'जंगल जहाँ शुरु होता है' उपन्यास में बहुतायत मात्रा में प्रयुक्त कहावतें एवं मुहावरे हैं–'मुर्गा बोलना', 'खटिया तोड़ना', 'हक्का–बक्का रहना','बोरिया–बिस्तर गोल', 'साँप सूँघ जाना', 'नीयत डोलना' इत्यादि। 'सूत्रधार' उपन्यास में भी कहावतों–मुहावरों का भरपूर प्रयोग हुआ है, जिसके कारण उपन्यास की भाषा प्रभावशाली बन पड़ी है। दृष्टांत प्रस्तुत है–'हाथ–पाँव ठंडा होना', 'कलेजा काँपना', 'मुँह लाल होना', 'लाज से गड़ना', 'बकार फूटना'[5] आदि।

स्थानीय लोक गीतों का प्रयोग

स्थानीय लोक गीतों का उपयोग संजीव के हर उपन्यास की अपनी विशेषता है। संजीव के उपन्यासों का यह वैशिष्ट्य उन्हें आंचलिक उपन्यासकारों की श्रेणी में ला खड़ा करता है। भोजपुरी के शेक्सपीयर माने जाने वाले भिखारी ठाकुर के जीवन पर आधारित उपन्यास 'सूत्रधार' में यह तत्व सर्वाधिक दृष्टिगोचर होता है। उदाहरण प्रस्तुत है–

> **''किरिन भीतरे परातवा–ए सजनी!**
> **पिया गइलन कलकतवा–ए सजनी**
> **गोड़वा में जूता नइखे, सिखा पर छतवा–ए सजनी**
> **कइसे चलिहन रहलवा–ए सजनी**
> **सोचत–सोचत बीतत बाटे दिन रतवा,ए सजनी!''[6]**

आदिवासी जीवन एवं समाज पर केन्द्रित उपन्यासों यथा 'जंगल जहाँ शुरु होता है', 'धार' और 'पाँव तले की दूब' में भी यथास्थान आदिवासी संस्कृति के चित्रण के क्रम में थारु, संथाली लोकगीत कई स्थलों पर सहज देखे जा सकते हैं। 'धार' उपन्यास में जनखदान प्रारंभ होने पर नायिका मैना पारंपरिक संथाली लोकगीत औरतों के साथ मिलकर गाती है–

> **''लेयाड गाड़ा धारे रे, हमन हमन दारे**
> **काहाउ आकान पेड़ा नाइ,वाहा थारे थारे**
> **वाहा लागि हायरे मने,जिंउग आखान थारे।''[7]**

(बारहों महीने पानी से भरे रहने वाले छोटे–से नाले के बगल के फूलवाले पेड़ में जगह–जगह फूल खिले हैं रे शिशु! फूल बगीचे में है और शिशु है दूर। फूल के लिए आतुर है शिशु।) संथाल आदिवासियों एवं झारखण्ड आंदोलन पर केन्द्रित उपन्यास 'पाँव तले की दूब' में भी संजीव ने संथाली लोकगीतों को भरपूर स्वर दिया है। उपन्यास के नायक 'सुदीप्त' अथवा 'बिजली साहब' के आवास पर संथाली आदिवासी लड़के गाते हैं–

> **''हो–हो–हो–हो तेञ लाडणयेन,**
> **कोयेक–कोयेक तेञ मोकायेन।**
> **हायरे आदिवासी बोयहा**
> **मित घाव हो वाऊ पे गोङ लेत।''**

(पुकारते–पुकारते मैं थक गया और देखते–देखते मैं निराश हो गया, फिर भी ऐ आदिवासी भाई, एक बार भी तुमने मेरी आवाज़ न सुनी।) 'जंगल जहाँ शुरु होता है' में आदिवासी थारु जन–जीवन और संस्कृति के चित्रण के क्रम में उनके द्वारा गाये जाने वाले लोकगीतों की झलक मिलती है। हमेशा अभाव और पीड़ा में जीवन बसर करने वाली यह जनजाति अपने गीतों में जीवन का सारा दर्द भूल जाती है–

''के जइहें हाजीपुर, के जइहें पटना,
से के जइहें...
अरे के जइहें अरे बेतिया नौकरिया,
के जइहे..?
..
बाबा जइहें हाजीपुर, भइया जइहें पटना,
भइया जइहें पटना
से सइहाँ जइहें उहे बेतिया नौकरिया
सइहाँ जइहें..''[9]

मराठी–हिन्दी के संधिस्थल पर खड़ा उपन्यास 'फाँस', जो हमारे देश में किसानों की आत्महत्या पर केन्द्रित है, में भी मराठी औरतों और शिबू की बेटी छोटी द्वारा विवाह के अवसर पर मराठी लोकगीत गाया जाता है–

''रे रे लुयो रे रेला रेला
कुड़का पीटे रामीन गुडा पियो–पियो
बाबान लोते माँ दिशे हल्यो ले
कुड़का पीटे रामीन गुडा पियो–पियो
बाबन लोनु तीर्थ किरो हल्यो ले...''[10]

कथ्य के अनुरूप वाक्य–विन्यास

वाक्य–विन्यास की दृष्टि से संजीव के उपन्यास बेजोड़ हैं। देशकाल, वातावरण और कथ्य के अनुरूप ही संजीव के उपन्यासों की वाक्य–संरचना सहज द्रष्टव्य है। स्थानीय बोलियों और भाषा की गहरी पकड़ उपन्यासकार की है। 'सावधान! नीचे आग है' और 'धार' जैसे कोयलांचल पर केन्द्रित उपन्यासों में स्थानीय आदतों, भाव–भंगिमा वाले शब्दों, यहाँ तक कि प्रेम और गाली जैसे भावों के प्रकटन के लिए शब्द और वाक्य हैं तो दूसरी ओर 'जंगल जहाँ शुरु होता है' और 'पाँव तले की दूब' जैसे जनजातियों पर केन्द्रित उपन्यासों में बोली–बानी भी स्थानीयता के रंग में रंगी होती है। 'सूत्रधार' में तो उपन्यास की भाषा ही भोजपुरी हो उठती है। उदाहरण प्रस्तुत है–''घर आए तो देखा, ओसारे में कोई सोया पड़ा है। बहोर उनको अकेले में लिवा गए, बोले,''सोहार के चानी सिंह हैं।

''का बात बा? पानी–वानी पूछा गया?''
''हाँ।''
''भोजन–पानी का इन्तजाम है?''
''पूड़ी–तरकारी।...वैसे दही–चूड़ा भी है।''
''इनको हुआ का है?'' शीलानाथ ने पूछा।''[11]

सृष्टि और संहार, जीवन और मृत्यु जैसे विषयों पर मनुष्य की नियति से साक्षात्कार करता संजीव का उपन्यास 'रह गईं दिशाएँ इसी पार' वैज्ञानिक खोजों पर केन्द्रित है। इस उपन्यास की भाषा और वाक्य–प्रयोग में भी वैज्ञानिकता देखी जा सकती है।

उपसंहार

इस प्रकार, उपर्युक्त विवेचना के आधार पर स्पष्ट है कि भावों और प्रसंगों अनुकूल शब्द–प्रयोग, कथ्यानुरूप वाक्य–विन्यास, कहावतें–मुहावरें, स्थानीय लोक गीत, बोली–बानी आदि विभिन्न दृष्टियों से संजीव के उपन्यासों की भाषा समृद्ध है। इनके उपन्यासों की सशक्त भाषिक अभिव्यक्ति ही इन्हें समर्थ रचनाकार की श्रेणी में ला खड़ी

करती है। संजीव के उपन्यासों की भाषा पर बहुत कम बात हुई है परंतु इस क्षेत्र में काफ़ी शोध की गुंजाइश है ताकि नये तथ्य और निष्कर्ष निकलकर सामने आ सकें।

संदर्भ–सूची

1. संजीव : किसनगढ़ के अहेरी, मीनाक्षी पुस्तक मंदिर, दिल्ली, 1981, पुनर्प्रकाशन 'अहेर' शीर्षक से राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, 2020, पृ. 15
2. संजीव : सर्कस, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, 1984, पृ. 199–200
3. संजीव : सावधान! नीचे आग है, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, 1986, पृ. 20, 42
4. संजीव : जंगल जहाँ शुरु होता है, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, 2000, पृ. 7, 26, 28, 65, 214
5. संजीव : सूत्रधार, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, 2003, पृ. 21, 29, 30, 288
6. वही, पृ. 77
7. संजीव : धार, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, 1990, पृ. 154
8. संजीव : पाँव तले की दूब, वाग्देवी प्रकाशन बीकानेर, संस्करण–1995, पृ. 37
9. संजीव : जंगल जहाँ शुरु होता है, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा0लि0, नई दिल्ली, 2000, पृ. 17
10. संजीव : फाँस, वाणी प्रकाशन, 2015, पृ. 240
11. संजीव : सूत्रधार, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, 2003, पृ. 245

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 82-84

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

आधुनिक हिन्दी साहित्य के आलोचक : डॉ. रामविलाश शर्मा

श्री युगल सिंह राजपूत डॉ. स्नेहलता निर्मलकर***

सारांश–रामचंद्र शुक्ल के बाद डॉ. रामविलास शर्मा ही एक ऐसे आलोचक के रूप स्थापित होते है, जो भाषा साहित्य और समाज को एक साथ रखकर मूल्यांकन करते हैं। उनकी आलोचना प्रक्रिया में केवल साहित्य ही नहीं होता, बल्कि वे समाज, अर्थ राजनीति, इतिहास को एक साथ लेकर साहित्य का मूल्यांकन करते है। अन्य आलोचकों की तरह उन्होंने किसी रचनाकार का मूल्यांकन केवल लेखकीय कौशल को जाँचने के लिये नहीं किया है, बल्कि उनके मूल्यांकन की कसौटी यह होती है कि उस रचनाकार ने अपने समय के साथ कितना न्याय किया है। इतिहास की समस्याओं से जूझना मानों उनकी पहली प्रतिज्ञा हो। वे भारतीय की हर समस्या का निदान खोजने में जुटे रहे।

प्रस्तावना : प्रगतिशील विचारक और आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में एक ऐसे समीक्षक हैं जिन्होंने मार्क्सवादी दृष्टि और यथार्थवादी–चिंतन के द्वारा हिन्दी समीक्षा को कलावाद के बन्धनों से मुक्त किया है और साथ ही साहित्य की सामाजिक महत्ता व्यक्त करके हिन्दी के साहित्यकारों के सम्मुख नवीन सृजनात्मक दृष्टि को प्रस्तुत किया है। डॉ. रामविलास शर्मा भारत में मार्क्सवादी साहित्य चिंतन और समालोचन के आरंभकर्ता ही नहीं, उसके सिरमौर भी माने गये हैं। इन्हें डॉ. रामविलास शर्मा ने आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के बाद हिन्दी के सबसे बड़े जातीय समालोचक माना है। इतना ही नहीं डॉ. रामविलास शर्मा हिन्दी भाषी प्रदेश के साहित्य, समाज, संस्कृति और इतिहास की प्रगतिशील परम्परा के मूर्तिमान जीवंत रूप में आज हिन्दी पाठकों के सम्मुख उपस्थित है। डॉ. रामविलास शर्मा स्वयं आज विश्व के सम्मुख हिन्दी भाषी जनता की एक अपराजेय शक्ति के रूप उभर आये हैं उनके द्वारा दीर्घ समय से की जा रही अथक साधना और दृढ़ आस्था ही अनेक इस अजेय व्यक्तित्व का आधार है। डॉ. नत्थन सिंह के अनुसार ''इस कलियुग में डॉ. रामविलास शर्मा सतयुगी व्यक्ति हैं। उनके मन में न तो किसी के प्रति द्वेष है और न किसी से घृणा। वह व्यक्ति के उस कथन अथवा कर्म का विरोध करते हैं जो सत्य पर पर्दा डालता है, जो मनुष्य को मनुष्यता के स्तर से नीचे ढकेलता है।''

जीवन परिचय : उन्नाव जिला के उच्चगाँव सानी में 10 अक्टूबर, 1912 को जन्में डॉ. रामविलास शर्मा ने लखनऊ विश्वविद्यालय से अंग्रेजी में एम.ए तथा पी–एच. डी. की उपाधि प्राप्त की (सन् 1938 में) सन् 1938 से आप अध्यापन क्षेत्र मे आ गये। 1943 से 1974 तक आपने बलवंत राजपूत कालेज, आगरा में अंग्रेजी विभाग में कार्य किया और अंग्रेजी विभाग के अध्यक्ष रहे। इसके बाद कुछ समय तक कन्हैयालाल माणिक मुंशी हिन्दी विद्यापीठ, आगरा में निर्देशक पद पर रहे। मार्च 2000 में विलीन हो गये।

डॉ. रामविलास शर्मा की कृतियाँ : रामविलास शर्मा जी निरंतर सृजन की ओर उन्नमुख रहे। अपनी सुदीर्घ लेखन यात्रा में उन्होंने लगभग 100 महत्वपूर्ण पुस्तकों का सृजन किया जिसमें ''गाँधी, आंबेडकर, लोहिया और भारतीय इतिहास की समस्याएँ, भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश, निराला की साहित्य साधना, महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नव जागरण, पश्चिमी एशिया और ऋग्वेद भारत में अंग्रेजी और मार्क्सवाद भारतीय साहित्य और हिन्दी जाति के साहित्य की अवधारणा, भारतेन्दु युग, भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी जैसी अनेक रचनाएँ शामिल हैं।''

** एम-फिल. शोध छात्र (हिन्दी विभाग), डॉ. सी.वी. रमन विश्वविद्यालय, कोटा बिलासपुर*

*** सहायक प्राध्यापिका (हिन्दी विभाग), डॉ. सी.वी. रमन विश्वविद्यालय, कोटा बिलासपुर*

साहित्यिक जीवन : डॉ. रामविलास शर्मा का साहित्यिक जीवन का आरंभ 1933 से होता है जब सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के संपर्क में आये। 1934 में उन्होंने 'निराला पर एक आलोचनात्मक आलेख लिखा, जो उनका पहला आलोचनात्मक लेख था। यह आलेख उस समय की चर्चित पत्रिका चाँद में प्रकाशित हुआ। इसके बाद वे निरंतर सृजन की ओर उन्मुख रहे। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के बाद डॉ. रामविलास शर्मा ही एक ऐसे आलोचक के रूप में स्थापित होते हैं जो भाषा साहित्य और समाज को एक साथ रखकर मूल्यांकन करते हैं। उनकी आलोचना प्रक्रिया में केवल साहित्य ही नहीं होता, बल्कि वे समाज, अर्थ, राजनीति, इतिहास को एक साथ लेकर साहित्य का मूल्यांकन करते हैं। अन्य आलोचकों की तरह उन्होंने किसी रचनाकार का मूल्यांकन केवल लेखकीय कौशल को जाँचने के लिये नहीं किया है, बल्कि उनके मूल्यांकन की कसौटी यह होती है कि उस रचनाकार ने अपने समय के साथ कितना न्याय किया है।

मार्क्सवादी दृष्टि से : डॉ. रामविलास शर्मा मार्क्सवादी दृष्टि से भारतीय संदर्भों का मूल्यांकन करते हैं, लेकिन वे इन मूल्यों पर स्वयं तो गौरव करते ही हैं, साथ ही अपने पाठकों को निरंतर बताते हैं कि भाषा और साहित्य तथा चिंतन की दृष्टि से भारत अत्यंत प्राचीन राष्ट्र है। वे अंग्रेजों द्वारा लिखवाए गए भारतीय इतिहास को एक षड्यंत्र मानते हैं। उनका कहना है कि यदि भारत के इतिहास का सही–सही मूल्यांकन करना है तो हमें अपने प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन करना होगा अंग्रेजों ने जान–बूझकर भारतीय इतिहास को नष्ट किया है। ऐसा करके ही वे इस महान राष्ट्र पर राज कर सकते थे। भारत में व्याप्त जाति, धर्म के अलगाव का जितना गहरा प्रकटीकरण अंग्रेजों के आने के बाद होता है, उतना गहरा प्रभाव पहले के इतिहास में मौजूद नहीं है। समाज को बांटकर ही अंग्रेज इस महान राष्ट्र पर शासन कर सकते थे और उन्होंने वही किया भी है। डॉ. शर्मा ने प्रगतिशीलशब्द को सापेक्ष अर्थ का बोधक माना है क्योंकि कोई भी घटना किसी अन्य की तुलना में ही प्रगतिशील शब्द का व्यवहार करना असंभव मानते हैं। अतः हम यहाँ पर प्रगतिशील और प्रगतिशील शब्दों के प्रयोग के संदर्भ में व्याप्त विवाद में न पड़कर हिन्दी साहित्येतिहास के विकासक्रम में पाये जाने वाले प्रगतिशील तत्वों की खोज करने वाली सामाजिक दृष्टि और विश्लेषण की पद्धति को प्रगतिशील समीक्षा मानकर चल रहे है। हिन्दी की प्रगतिशील समीक्षा का विवेचनात्मक अध्ययन करने के लिए आवश्यक है कि सबसे पहले मार्क्सवाद का भारतीय समाज और बुद्धिजीवियों में वैचारिक चेतना के रूप में प्रवेश और उसके विकास की पृष्ठभूमि को जान लें।

हिन्दी साहित्य में मार्क्सवादी विचारधारा का प्रवेश : सन् 1917 की रूसी क्रांति में समाजवादी विचारध ाारा की विजय के समय तक मार्क्सवादी विचारों का प्रवेश भारतीय समाज में हो चुका था। इस विचारधारा के प्रभाव स्वरूप भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में गरमदल का उदय हुआ जिसका प्रमाण हमें 1917 में प्रकाशित ''रूस से सबक'' ''अभ्युदय'' इलाहाबाद से प्रकाशित अखबार के लेखों से मिलता है। भारतीय समाज में मार्क्सवादी विचारों से उत्पन्न होने वाली चेतना पर अंकुश लगाने के लिए ब्रिटिश सरकार ने कम्युनिस्ट साहित्य के प्रकाशन पर प्रतिबन्ध लगाया परन्तु रूसी क्रांति की उपलब्धियाँ भारतीय जनता की दृष्टि से ओझल नहीं रह सकी, ब्रिटिश सरकार भारतीय समाज में रूसी क्रांति से उत्पन्न चेतना को सही रूप में देख रही थी इसका प्रमाण मांटेग्यू और वायसराय चेम्सफोर्ट द्वारा 1918 में प्रकाशित रिपोर्ट में स्वीकृत इस बात से मिलता है–''रूस की क्रांति और इसकी शुरूआत को भारत में निरंकुशता पर विजय समझा गया, इसने भारतीय राजनीतिक आकांक्षाओं को प्रेरणा दी है।''

निष्कर्ष : डॉ. रामविलास शर्मा हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में मन–वचन, कर्म की साभ्यता में विश्वास रखने वाले सत्मार्गी, संघर्षशील, और जुझारू समीक्षक हैं। उनमें गहन अध्ययनशीलता और असीमित ज्ञान–निधि होने के साथ–साथ ज्ञानार्जन की कामना, प्रखर बुद्धि, तीव्र ग्रहण शक्ति और सुक्ष्मदर्शी दृष्टि भी मिलती है। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में मार्क्सवादी विचारधारा से सम्बद्ध गंभीर साहित्य के समृद्धकर्ता एवं गहन विचारों के प्रस्तोता के रूप में प्रगतिशील समीक्षा के आधार स्तम्भ और मूर्धन्य आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा का व्यक्तित्व, कृतित्व सुविख्यात रहा है। वर्तमान युग समीक्षा का युग है। समीक्षा के क्षेत्र में विभिन्न विचारधाराओं, पद्धतियों और दृष्टिकोणों का प्रचलन है। प्रत्येक पद्धति का अपना पृथक महत्व रहा है किन्तु अधिक सार्थक समीक्षा–दृष्टि या पद्धति वह रही है जो समाज से जुड़कर जन–पक्षधरता स्वीकार कर उसके दुःख की अभिव्यक्ति को विश्लेषित कर उस साहित्यिक कृति का सही मूल्यांकन प्रस्तुत करती है।

संदर्भ–सूची

1. माधवे प्रभाकर (1988), हिन्दी आलोचना : अतीत और वर्तमान, हिन्दुस्तानी अकादमी
2. मिश्र, शिवकुमार (1987), आलोचना के प्रगतिशील आयाम, पंचशील प्रकाशन, जयपुर
3. नवल, नन्दकिशोर (1981), हिन्दी आलोचना का विकास, राजकमल प्रकाशन
4. पाण्डेय, मैनेजर (1995), साहित्य और इतिहास दृष्टि, अरूणोदय प्रकाशन, दिल्ली
5. रामबृक्ष (1989), आलोचक रामविलास शर्मा, साम्य पुस्तिका, अबिकापुर
6. सिंह, कुँवरपाल (1985), साहित्य समीक्षा और मार्क्सवादी चेतना, पी हाऊस, दिल्ली
7. सिंह, नत्थन (1984), आलोचक रामविलास शर्मा, विभूति प्रकाशन, दिल्ली
8. तिवारी, विश्वनाथ प्रसाद (1985), रामविलास शर्मा, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
9. त्रिपाठी (1992), हिन्दी आलोचना, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
10. वर्मा, जनेश्वर (1974), हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना, ग्रंथम प्रकाशन, कानपुर

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 85-86

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

इक्कीसवीं सदी और रेणु का नारी विषयक दृष्टिकोण

*बसन्त पाल**

फणीश्वरनाथ 'रेणु' प्रेमचन्दोत्तर युग के उपन्यासकार माने जाते हैं, यों तो उनकी प्रतिष्ठा एक आंचलिक उपन्यासकार के रूप में मानी जाती है, किन्तु उनके कथा साहित्य में केवल अंचल विशेष का वर्णन नहीं किया गया है अपितु उनकी आंचलिकता प्रेमचन्द की तरह सर्वभारतीय आंचलिकता है। रेणु के नारी पात्रों का चरित्र विश्लेषण करने के क्रम में हम पायेंगे कि प्रत्येक स्त्री का अपना अस्तिव और अपनी वैयक्तिकता तथा मौलिकता होती है। रेणु के नारी चरित्रों का मूल स्वर प्रेम है, जो निश्छल एवं उदात्त है। कुछ को छोड़कर रेणु की नायिकाएँ इसी रूप में है। ये नायिकाएँ, नायक के जीवन में पड़ी शुष्कता, अस्त–व्यस्ता अथवा विखरी राहों को सँवारा है।

इसी तरह 'मैला आँचल' रेणु की वह कृति है, जिसने उपन्यास कला को एक नई ऊँचाई देकर लेखक को बहुचर्चित और प्रसिद्ध बनाया। मैला आँचल की नायिका कमली विश्वनाथ प्रसाद की इकलौती पुत्री है। कमला का उपन्यास में जो रूप दिखाई पड़ता है वह उसका प्रेमिका का रूप है। कमली के जीवन की विसंगतियाँ उसे मानसिक पीड़ा देती है। इसी मानसिक पीड़ा की वजह से कमली 'हिस्टिरिया' का शिकार होती है। ऐसे में मेरीगंज के डॉक्टर प्रशान्त का आगमन उसका सौभाग्य बन जाता है, जिससे उसके जीवन का नया अध्याय शुरू होता है।

'मैला आँचल' की कोठारिन लक्ष्मी दासिन के पिता महंत राम गुसाई के साथ हैजा में दिवंगत होते है। फलतः वह मठ में नियुक्त सेवादास की दासी होती है। नियति और दुर्भाग्य के साथ लक्ष्मी अपने बचपन में ही झूठी साधुता के दंभ में दबी महंत की वासना का शिकार होती है। इस प्रकार धर्म–अधर्म, नैतिकता–अनैतिकता के द्वन्द्व के बीच सुलझने का प्रयास करती है। सही तरह से अपना रास्ता निर्धारित न कर पाने के कारण भीतर की छिपी संवेदना बलदेव और डॉक्टर जैसे पुरुषों के बीच अन्दर ही अन्दर रहती है। पर रामदास जैसे पिशाच, नरभक्षी वासना ग्रस्त पुरुषों की पिटाई तक भी कर देती है।

'परती परिकथा' की पात्र गीता, जो जितेन्द्रनाथ की माँ और शिवेन्द्र की पत्नी है। उसके व्यक्तित्व का पूरा परिचय सुरपतिराय के पास उपलब्ध पुरानी पाण्डुलिपियों–जैसी चीजों से प्राप्त होता है। यदि गीता के चरित्र को समग्र रूप से देखा जाय तो यह आभास ही नहीं होता है कि वह परानपुर की रानी माँ को सौत समझती हैं। सचमुच वह धर्म बहन के साथ जिया है। वह उसके पुत्र को केवल कोख भर नहीं दे पायी है, षेश मातृत्व के दुलार और प्यार से उसके पुत्र को नहलाती रही है।

पल्टूबाबू रोड' की नायिका है बिजली, जो पल्टूबाबू के इषारे पर लट्टूबाबू का पूरा कारोबार बिजली की तरह चलाती है। व्यापार, व्यापार ही होता है। इसी व्यापार के चक्कर में पड़कर बिजली संवेदनहीन हो जाती है। वह भूल जाती है कि वह एक स्त्री है और उसकी भी कुछ मान–मर्यादा है। वह हर चीज को व्यापार की भाँति लाभ और हानि से जोड़कर अपने नारीत्व का भी उपयोग उसी में करती है।

'रेणु' की एक छोटी सी कृति है 'दीर्घतपा'। जो दफ्तरों में काम करने वाली औरतों की जिन्दगी पर आधारित है। इसकी नायिका है बेलागुप्त। देश सेवा का व्रत लिए, घर–परिवार त्यागर बाहर आयी बेला को पता चलता है कि 'भैया जी' के मुखौटे में वस्तुतः राष्ट्र भक्त से लगने वाले लोगों की नियत कितनी वासनामयी और लुटेरी है। इससे यह मालूम होता है कि नारी जीवन के प्रेम और आदर्श का दंभ भरने वाले कब अमानवीयता की हद

* *शोधार्थी (हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग), लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, उ. प्र.*

पर आ जाते हैं, कहा नहीं जा सकता। इसी दुनियाँ का शिकार बेलागुप्त भी हो गयी। उसका पूरा जीवन जमाने के भेड़िये और शिकारियों से बचने और बचाने में ही समाप्त हो गया।

इसी तरह से 'तीसरी कसम' की नायिका है हीराबाई। जो एक नर्तकी है। धन–दौलत, नाम और यश सब कुछ उसके कदमों में है, परन्तु उसका निजत्व नहीं है उसके पास। गाड़ीवान हीरावन के निश्छल प्रेम में उसका निजत्व जगता है। नौटंकी जब समाप्त होती है तो सभी उसके साथ स्टेशन जाते हैं, परन्तु उसकी निगाहें हीरामन को ही ढूँढती हैं। हीरामन से विदा लेते हुए वह कहती है ''तुम्हारा जी बहुत छोटा हो गया है। क्यों मीता? मगर मैं क्या करूँ? तुम्ही ने कहा था न–महुआ घटवारिन को सौदागर ने खरीद लिया था–मैं बिक चुकी हूँ।'' यद्यपि सांसारिक रूप से अपने प्रेम को नहीं पा पाती, परन्तु, उसका प्रेम अधूरा सा नहीं लगता एक प्रकार से प्रेम ने अपना अर्थ पा लिया है वहाँ।

इस प्रकार से 'रेणु' के नारी पात्रों का चरित्र विश्लेषण करने के क्रम में हम पायेंगे कि मानवीय जीवन के प्रेम और आदर्श का सपना देखने वाली स्त्री को कई जगह अमानवीय दुनियाँ का शिकार होना पड़ता है। आज भी यही अमानवीय विद्रूपताएँ विद्यमान हैं। समाज के प्रत्येक जगह पर इनसे रूबरू होना पड़ता है। 'रेणु' जी के नारी पात्रों को देखते हुए हम कह सकते हैं कि उन्होंने नारियों के संबन्ध में पूर्ण दृष्टि का परिचय दिया है।

संदर्भ–सूची

1. भारत यायावर, रेणु रचनावली (संपादक), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. भारत यायावर, रेणु का जीवन, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली।
3. डॉ0 राम चन्द्र तिवारी, हिन्दी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी।
4. परिषद पत्रिका, फणीश्वरनाथ 'रेणु' विशेषांक, विहार–राष्ट्रभाषा–परिषद, पटना।
5. आजकल, फणीश्वरनाथ 'रेणु' पर विशेष, अप्रैल 2016, सूचना भवन लोदी रोड, नई दिल्ली।

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 87-89

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

हिन्दी साहित्य में संत रविदास की साहित्यिक रचनाओं पर आधारित ''शोध-पत्रों'' के शीर्षक

*डॉ. लालबहादुर सिंह**

संत रैदास की मध्यकालीन रचनाओं में सामाजिक सरोकर की रचना

मध्यकालीन भारतीय धर्म साधना द्वारा गृहीत प्रभाव के मूल दो स्त्रोत हैं–पहली भारतीय साधनाओं पर अपनी ही जमीन ही की चिन्ता धाराओं का एक दूसरे पर प्रभाव तथा दूसरा इस्लाम आक्रमण और उसकी धर्म साधना के परिणामस्वरूप पड़ने वाला प्रभाव, हम यहां दूसरे पक्ष पर ही विचार करना अधिक उपयुक्त समझते हैं–किसी भी व्यक्ति, समाज, या धर्म पर प्रभाव पड़ता है, इसकी अत्यन्त धीमी और गुप्त होती है, तथा प्रभाव सदैव दो रूपों में पड़ता है, एक तो हमारे जानने में और दूसरे अनजान में, जानने में, जानने में पड़ने वाले प्रभाव के लिए हम जानबूझ कर प्रभावित होते हैं, उसकी अच्छाइयों व सच्चाईयों के प्रति आकर्षित होते हैं। प्रभावी द्वारा बलपूर्वक भी प्रभावित किए जा सकते हैं किन्तु बिना किसी दबाव के पड़ने वाला प्रभाव ही असली स्वरूप होता है, जिसका प्रभाव आवश्यक नहीं जो अच्छाइयों के लिए ही बुरा प्रभाव भी प्रभाव ही है जिसे हम कुप्रभाव कहते हैं।

मध्यकालीन धर्म साधना में इस्लाम का व्यापक प्रभाव परिलक्षित होता है। हम जानते हैं, कि नाथों, सिद्धों की साधनात्मक परम्परा से प्रभावित होकर संत साधना का आगे विकास हुई। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में जिन दिनों निगुर्ण भक्ति साहित्य का वीजारोपण हुआ उन दिनों अनेक उथल पुथल के बाद भारतीय जनता का स्तर भेद प्रायः स्थिर और दृढ़ हो चुका था। मोटे तौर पर हम चौदहवीं शताब्दी में इस नवीन साधना का वीजारोपण कर सकते हैं। ''मध्यकालीन धर्म साधक बहुत कुछ पढ़े–लिखे नहीं थे उन्होंने जन–जीवन के अनुभव, भ्रमण तथा साधु संतों के सत्संग से अधिक सीखा था। इनमें से बहुतों के कोई दीक्षा गुरु भी नहीं थे। किन्तु उन्होंने जिसकी शिक्षा को अपनी पथ प्रदर्शक माना उसके प्रति वे पर्याप्त आदरमय और कृतज्ञ थे। संतों की वाणी में सतसंग तथा गुरु को पर्याप्त महत्व दिया गया है। व्यक्तिगत जीवन में पवित्रता तो साधकों की साधना का मूल मंत्र था उचित रहनी ईश्वराभिमुख गुणों का विकास तथा अवगुणों का परित्याग जैसे साधना के मुख्य चक्र थे।''

ऊपर वर्णित विकास क्रम को दृष्टिगत किए बिना सामाजिक सरोकार की रचना प्रक्रिया की प्रवृत्ति और परिवेश को समझकर हृदयंगम करना प्रायः कठिन व असम्भव है। इस काल में धर्म साधनों की बाढ़–सी आ गायी थी और ग्राह्य साधनाओं के अन्तर्गत कुछ साधनाएं भी प्रवेश पा गयी थी, धर्माचरण के नाम पर मिथ्याचार और व्यभिचार तक चलने तक लग गया। जिसके परिणामस्वरूप ज्ञान चर्चा की आड़ में पाखण्ड को आश्रय मिलने लगा और समाज में एक प्रकार की अराजकता फैल गई। वाह्याडम्बर तथा कर्मकाण्डों के प्रति व्यंग्य किए जाने लगे। ऐसी विषम परिस्थितियों में गुरु गोरखनाथ के वाह्य साधनों को गौण समझ कर मन की शुद्धता और आचरण की शुद्धता पर अधिक बल देना उचित समझा गया। नाथ पंथियों सिद्धों बौद्धों, योगियों की बानी में हृदय के प्राकृतिक, भावों में भक्ति प्रेम आदि का कोई स्थान न था। शास्त्रज्ञ विद्वानों पर इनकी वाणी का प्रभाव रंच मात्र भी न पड़ा और

* *सहायक प्राध्यापक (हिन्दी विभाग), शासकीय महाविद्यालय. सिहावल, जिला सीधी (म.प.)*

वे ब्रह्म सूत्र उपनिषदों ''मध्यकालीन धर्म साधक बहुत कुछ पढ़े–लिखे नहीं थे उन्होंने जन जीवन के अनुभव भ्रमण तथा साधु संतों के सत्संग से अधिक सीखा था। इनमें से बहुतों के कोई दीक्षा गुरु भी नहीं थे। किन्तु उन्होंने जिसकी शिक्षा को अपनी पथ प्रदर्शक माना उनके प्रति वे पर्याप्त आदरमय और कृतज्ञ थे। संतों की वाणी में सतसंग तथा गुरु को पर्याप्त महत्व दिया गया है। व्यक्तिगत जीवन में पवित्रता तो साधकों की साधना का मूल मंत्र था उचित रहनी ईश्वराभिमुख गुणों का विकास तथा अवगुणों का परित्याग जैसे साधना के मुख्य चक्र थे। ऊपर वर्णित विकास क्रम को दृष्टिगत किए बिना सामाजिक सरोकार की रचना प्रक्रिया की प्रवृत्ति और परिवेश को समझकर हृदयंगम करना प्रायः कठिन व असम्भव है। इस काल में धर्म साधनों की बाढ़–सी आ गयी थी और ग्राह्य साधनों के अन्तर्गत कुछ साधनाएं भी प्रवेश पा गयी थी, धर्माचरण के नाम पर मिथ्याचार और व्यभिचार तक चलने तक लग गया। जिसके परिणामस्वरूप ज्ञान चर्चा की आड़ में पाखण्ड को आश्रय मिलने लगा और समाज में एक प्रकार की अराजकता फैल गई। वाह्याडम्बर तथा कर्मकाण्डों के प्रति व्यंग्य किए जाने लगे। ऐसी विषम परिस्थितियों में गुरु गोरखनाथ के वाह्य साधनों को गौण समझ कर मन की शुद्धता और आचरण की शुद्धता पर अधिक बल देना उचित समझा गया। नाथ पंथियों सिद्धों बौद्धों, योगियों की बानी में हृदय के प्राकृतिक भावों में भक्ति प्रेम आदि का कोई स्थान न था। शास्त्रज्ञ विद्वानों पर इनकी वाणी रंच मात्र भी न पड़ा और वे ब्रह्मसूत्र, उपनिषदों उन्हीं द्वारा किया गया, उनका ध्येय कर्म को उस पतन के रास्ते से निकालकर प्रकृति धर्म के खुले क्षेत्र में लाना नहीं था अपितु एकाएक किनारे ढकेलना था।

''बज्रयानी सिद्वों एवं नाथपंथी योगीयों ने जनमानस की विचारधारा को आत्म–कल्याण एवं लोक कल्याण के सच्चे कर्मों की ओर ले जाने के बदले उस कर्म क्षेत्र से हटाने में ही लग गए। इनकी बानी तो गूढ़ रहस्य और सिद्धि लेकर उठी ही थी, अपनी रहस्य धर्मिता की धाक जमान के लिए बाह्य जगत की बातें छोंड़ के भीतर के कोंढों की बात बाताया करते थे। भक्ति प्रेम आदि हृदय के भावों का उनकी अतःसाधना में कोई स्थान ना था क्योंकि उनके द्वारा ईश्वर को प्राप्त करना सबके लिए सुलभ कहा जा सकता है।''

''बज्रयानी सिद्धों का प्रभाव अशिक्षित जनता या अर्धशिक्षित जनता पर इनकी वानियों का प्रभाव पड़ा क्योंकि वे सच्चे शुभ कर्मों के मार्ग से तथा भगवत् भक्ति की स्वाभाविक हृदय पद्धति से हटकर अनेक प्रकार के मन्त्र–तन्त्र और उपचारों में उलझो और उसका विश्वास अलौकिक सिद्धियों पर जा जमा, इसी अवस्था की ओर लक्ष्य करके गोस्वामी तुलीदास जी ने कहा था–

''गोरख जगायो जोग, भगति भगायो लोग।''

यानि वेद शास्त्र के ज्ञाता एवं विद्वानों पर सिद्वों और जोगियों की वानी का कोई प्रभाव नहीं पड़ा वे इधर–उधर अपना कार्य करते जा रहे थे वे पिड़ितों के शास्त्रार्थ भी होते थे, दार्शनिक खण्डन–मंडन के ग्रथ भी लिखते थे। विशेष चर्चा वेदान्त की थी, ब्रह्मसूत्रों, उपनिषदों व गीता पर आस्थाओं की परम्परा चली जिससे परम्परागत भक्ति मार्ग के सिद्धान्त पक्ष का कई रूपों में नूतन विकास हुआ।''

बज्रयानी के सिद्धों व नाथपंथी योगियों के अनुयायी अधिकतम निम्न जाति के लोग थे जिसका प्रभाव जाति–पांति की व्यवस्था से उनका सन्तोष स्वभाविक था। इस सम्प्रदाय के योगी अधिकतर रहस्यमयी बातें सुनाकर व करामत दिखाकर अपनी सिद्धी की धाक सामान्य जनता पर जमाए हुए थे वे सामान्य जनता को ऐसी बातें बताकर भड़काया करते थे, कि वेदशास्त्र के अध्ययन से क्या होता है, पूजा अर्चना की विधियां व्यर्थ है, ईश्वर तो प्रत्येक घट के भीतर होता है, हिन्दू और मुसलमान दोनों भाई–भाई हैं, उनके लिए साधना का मार्ग भी एक है, जातिवाद तो मिथ्या है। इसके पहले के दो–तीन सौ वर्षों में भारतीय धर्म साधना के क्षेत्र में काफी उथल–पुथल हुई थी। मुसलमानों के आने के बाद कई ऐसे धार्मिक सम्प्रदाय थे जो आक्रान्ताओं को अपना ऋणकर्ता मानकर इस्लाम को स्वीकर करते जा रहे थे। बड़ी तेजी से देश में साम्प्रदायिक परिवर्तन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गयी थी।

इसका मुख्य कारण था वर्णाश्रम मूलक ब्राह्मण धर्म की कट्टरता इस्लाम के आक्रमण के कारण की हिन्दू धर्म को अधिक जकड़ जाना पड़ा जो वेदानुयायी थे उन्हें तो वे अपने में जकड़ लिया, किन्तु जो वेद विरोधी थे और नीची जातियों से आए थे उन्हें हिन्दू धर्म ने स्वीकार नहीं किया, उधर इस्लाम ऐसे लोगों को अपने में मिलाने के लिए उदारपूर्वक हाथ बढ़ा रहा था। हिन्दू धर्म की कट्टरता, उपेक्षा तथा भ्रमित भावना की निराशा के कारण ऐसे लोगों का मार्ग प्रशस्त था। ब्राहाण और शूद्र के झगड़े ने हिन्दुओं को मुस्लिम होने के लिए बाध्य किया। कबीर और दादू जैसे लोग हिन्दू से नव मुस्लिम हो गए थे। इस्लाम वैदिक धर्म से विरक्त और सामाजिक धरातल पर हिन्दू मुस्लिम दोनों साधनाओं और धर्मों को समभूमि पर लाने का प्रयास कर रहे लोगों को अच्छा लगा। इस्लाम को तैयार जमीन मिल गई। अनेक वेद वाह्य सम्प्रदाय मुसलमान हो गये और उन्होंने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया। यह स्वीकृति इसलिए सम्भव हो सकी की परिवर्तन करने वाले धर्म सम्प्रदाय के लोगों में इस्लाम के अपने आचारों, विचारों और साधना की अनुरूपता दिखाई पड़ी। इस्लाम को भी लोकप्रिय होने में उन्हीं सम्प्रदायों में सरलता हुई जो पूर्णतः भारतीय होकर भी उसके मेल में थे।

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908
Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 90-94
General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

उत्कट अनुभव एवं उद्वेग का उघाटन : समकालीन हिन्दी कविता में समाज-बोध

*डॉ. कृपा किन्जलकम्**

आम–जन के समान साहित्यिक भी सामाजिक प्राणी है। समाज के अन्य सदस्यों की भांति ही जिस समाज में वह रहता है, उसकी समस्याएं उसे भी आंदोलित करती हैं। परन्तु साहित्यिक अन्य सामाजिक सदस्यों से इतर अत्यन्त संवेदनशील व सजग होता है, इसीलिए अपनी संवेदनाओं को वह मार्मिक अभिव्यक्ति प्रदान करता है, जिसे साहित्य कहते हैं। प्रत्येक युग का साहित्य स्वयुगीन समाज से ही निःसृत होता है।

साहित्य व समाज के आपसी सम्बन्धों का उल्लेख हमें संस्कृत साहित्य से ही मिलता है। संस्कृत साहित्याचार्य मम्मट ने अपने काव्य–प्रयोजन के अन्तर्गत वैयक्तिक, लौकिक आध्यात्मिक प्रयोजनों के साथ–साथ सामाजिक प्रयोजन की ओर भी संकेत किया है[1]–

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परिनिर्वृतये, कान्तासम्मितयोपदेशयुजे।।[2]

बालकृष्ण भट्ट ने भी साहित्य को जन समूह का विकास माना है।[3] आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भी साहित्य को सामाजिक विकास का सशक्त कारक स्वीकारा है। प्रेमचन्द्र ने भी साहित्य को देशभक्ति व राजनीति के पीछे चलने वाली सचाई के स्थान पर समाज के आगे चलने वाली मशाल माना है।[4] आचार्य शुक्ल ने साहित्य को "जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब कहा है।"[5] जनता की चितवृत्ति सामाजिक राजनीतिक परिस्थिति से प्रभावित होती हैं। सामाजिक परिस्थितियों से साहित्य की अर्न्तवस्तु व रूप दोनों प्रभावित होते है।[6]

आचार्य शुक्ल की चित्तवृत्ति को संवेदन कहते हुए प्रो. राम स्वरूप चतुर्वेदी ने साहित्य के विकास में जीवन मूल्यों, जातीय भाषा, सांस्कृतिक सम्पृक्त सन्दर्भों को महत्त्वपूर्ण स्वीकृत कर समाज–बोध व सामाजिक सम्बन्धों को ही प्रमुखता दी है।[7]

जहाँ तक हिन्दी कविता का प्रश्न है तो हिन्दी काव्य साहित्य में सामाजिकता का बीज आदि काल से ही विद्यमान है। सिद्ध–नाथ साहित्य, जैन साहित्य, अमीर खुसरों की रचनाओं, अद्दामाण, विद्यापति आदि की कविताओं में सामाजिक दृष्टि सहज सुलभ है। इसी प्रकार भक्तिकाल, रीतिकाल एवं आधुनिक काल में भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग तथा छायावादी युग के कवि–रचनाकारों की रचनाओं में भी सामाजिकता या समाज बोध शनैः–शनैः मुखर होता गया है।

चूँकि सामाजिकता, हिन्दी साहित्य की महत्वपूर्ण प्रवृत्ति रही है तथा यह छायावादोत्तर समकालीन हिन्दी कविता में और भी अधिक स्पष्टता के उपस्थित होती है। बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार **"अज्ञेय"** की रचनाएं आरम्भ में कवि–व्यक्तित्व अन्वेषण, मनोविश्लेषणवादी अन्तःचेतना के खोजकर्ता के रूप में ही सीमित थी। समाज में व्याप्त खोखली सभ्यता के सन्दर्भ में व्यंग्य करते हुए अज्ञेय कहते हैं कि, "सांप तुम सभ्य तो हुए नहीं, नगर में बसना भी तुम्हे नहीं आया।" साथ ही "नदी के द्वीप" में द्वीपका व्यक्तित्व भी समाज के ही सापेक्ष है। अज्ञेय की

* *असिस्टेण्ट प्रोफेसर (हिन्दी विभाग), ईश्वर शरण डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद*

व्यष्टि चेतना समष्टि समर्पित है। समाज निरपेक्ष व्यक्तित्व निरर्थक है। अज्ञेय की कविता में वैयक्तिक चेतना सामाजिक चेतना में पर्यवसित हुई है। इस सन्दर्भ में "यह द्वीप अकेला" की निम्न पंक्तियाँ विशेष रूप द्रष्टव्य है–

यह दीप अकेला स्नेह भरा,
है गर्व भरा मदमाता
पर इसको भी पंक्ति दे दो,
यह अद्वितीय यह मेरा, मैं स्वयं में विसर्जित है।[8]

शमशेर बहादुर सिंह छायावादोत्तर समकालीन हिन्दी कविता में सवेदनशील कवि है। "ये शाम है" शीर्षक कविता में ग्वालियर की एक शाम का भाव–चित्र है। जिसमें मजदूरों के एक जुलूस पर गोली चलाने की घटना के माध्यम से कवि की सामाजिक चेतना उभरती है :

वह शाम है/कि आसमान है पके हुए अनाज का
उपर उठी लहू भरी दरातियाँ/कि आग है।[9]

शमशेर ने स्वयं भी "कुछ और कविताएँ" की भूमिका सामाजिका के संदर्भ में लिखा है कि, "कविता में सामाजिक अनुभूति काव्य पक्ष के अन्तर्गत ही महत्वपूर्ण हो सकती है।"[10]

मुक्तिबोध जटिल संवेदना, यथार्थ बोध विसंगति बोध एवं चेतन– व्यक्तित्वांतरण के कवि हैं। उनकी "ब्रह्मराक्षस" कविता का मूल कथ्य है कि समाज के प्रति तथाकथित बौद्धिकों का योगदान क्या है? जो तथाकथित बौद्धिक समाज को कुछ नहीं दे पाते वहीं ब्रह्मराक्षस है। "चम्बल की घाटी" में व्यवस्था विरोध, अराजकता विरोध का मुख्य स्वर है। "अंधेरे में" कविता में जो क्रांति है वह जनक्रांति है जो कि पूर्णतया सामूहिक एवं सामाजिक है :

मकानों की छत से/गाडर कूद पड़े धाम से
भयानक वेग से चल पड़े हवा में/गगन में नाच
रही कक्का की लाठी
यहाँ तक कि बच्चे की बेंच भी उठती है/तेजी से
लहराती घूमती हवा में/स्लेट पट्टी/अब बदला है,
युग वाकई।[11]

केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिवादियों में कवि–हृदय है। प्रगतिवादियों के समक्ष अग्रवाल जी प्रकृति चित्रण में अन्यतम है। केदार जी के यहाँ प्रकृति अपने सामान्य सामाजिक रूप में है। "पंख और पतवार" में अग्रवाल जी नारी के नृत्य भावबोध द्वारा व्यष्टि समष्टि के अंतर को बाँटते हैं :

दिक् बोध है/तुम्हारी देह का आलिंगन
तरंगित है/तुम्हारी कला केलि में
समय के सागर की/अथाह मनीषा
तुम हो अब व्यष्टि और समष्टि की
वरेण्य नृत्यांगना[12]

धरती शीर्षक कविता में कृषक–श्रमिकों का शब्द बिम्ब विशेष रूप में उत्कृष्ट है :

जो बैलों के कंधो पर/बरसात–घाम में
जुआ भाग्य का रख देता है।
जोत डालता है मिट्टी को, पाँस डालकर।
यह धरती है उस किसान की...[13]

साथ ही केदार जी सपना जनवादी सरकार की स्थापना में निहित था। वे सच्चे अर्थों में जनवादी है। आजादी के पहले तथा बाद की स्थितियों का दस्तावेज उनकी कविताओं में मिलता है।[14]

नागार्जुन हिन्दी के बहुचर्चित कवि रहे हैं। नागार्जुन दीनहीन जनता के प्रबल पैरोकार, षोशण विरोधी रचनाकार है। नागार्जुन की रचनाओं का मुख्य आधार सामाजिक विद्रूपता, राजनीतिक, लोकतांत्रिक क्षरण एवं तात्कालिक घटनाएं रही हैं। सांस्कृतिक मूल्यों की उदार समावेषिता ने नागार्जुन जैसे धुम्मकड़ से काल–यात्रा भी करायी है और वे उसकी अनुकूलता और प्रतिकूलता का दूसरे के मुकाबले सार्थक इस्तेमाल करते हैं। मसलन मंत्र कविता में मंत्र का इस्तेमाल नवीन अर्थ योजना के माध्यम से शोषण और क्रूरता का जीवंत खाका खींचने में हुआ है।[15]

"मंत्र कविता" में वे सामाजिक राजनैतिक विसंगतियों पर लिखते हैं :

ओ अष्ट धातुओं की ईटों के भट्टे
ओ महामहिम, महामहो, उल्लू के पट्ठे
ओ दुर्गा, दुर्गा तारा, तारा, तारा
ओ इसी पेट के अंदर समा जाए सर्वहारा।।[16]

हरिजन गाथा में बाबा सामाजिक विसंगति पर कटाक्ष करते है :

ऐसा तो कभी नहीं हुआ था कि
हरिजन माताएँ अपने भ्रूणों के जनकों को
खो चुकी हों एक पैषाचिक दुष्कांड में
ऐसा तो कभी नहीं हुआ था।[17]

समकालीन हिन्दी कविता के महत्वपूर्ण कवि है, त्रिलोचन। त्रिलोचन लोक जीवन को निकट से पहचानते हैं। जनता की संघर्षशीलता और उसका सम्मान बार–बार उनकी रचनाओं में प्रकट होता है। मजदूर, खेतिहार, किसान और लोकांचल के ग्रामीण परिवेश को अपनी कविता हिस्सा बनाया। श्रम की महत्ता के साथ–साथ प्रकृति का चटख रंग उनकी कविताओं में व्यक्त हुआ है। संवेगात्मक गहराई में ईमानदारी और प्रमाणिकता ही नहीं, स्थिरता और दृढ़ता भी है।[18] सीधी सरल भाषा को अपनी विशिष्ट प्रयोगविधि द्वारा सशक्त काव्य निर्मिति, आपकी निजी विशेषता है। आपकी रचनाओं में सामाजिक परिवेश परिधि की भाँति है जो कि सर्वत्र व्याप्त है :

जब तुम किसी बड़े या छोटे कारखाने में
कभी काम करते हो
किसी पद पर तब
मैं तुम्हारे इस काम का मतलब खूब जानता हूँ
और यह भी जानता हूँ– मानव सभ्यता
तुम्हारे ही खुरदरे हाथों में नया रूप पाती हैं[19]

समकालीन कवियों में रघुबीर सहाय की कविताएँ नितान्त यथार्थवादी है। अपनी कविताओं के माध्यम से उन्होंने सामाजिक राजनैतिक अर्न्तविरोधों को बड़ी ही संजीदगी से उकेरा है। रघुवीर सहाय की "आत्महत्या के विरूद्ध" कविता 6–7वें दशक के सामाजिक राजनीतिक मोहभंग की कविता है :

"दूर! राजधानी से कोई कस्बा दोपहर के बाद छटपटाता है/एक फटा कोट एक हिलती चौकी एक लालटेन/दोनों, बाप–मिस्तरी, बीस बरस का नर्टन/दोनों पहले से जानते हैं पेंच की भरी हुई चूड़ियाँ/नेहरू युग के औजारों को मुसद्दी लाल की सबसे बड़ी देन"[20]

रघुवीर सहाय के उक्त उद्धरण में फटा कोट, बाप मिस्तरी, मुसद्दील लाल जैसे आम जन के शब्द प्रयुक्त हुए हैं जो कि अपनी अर्थ संभावनाओं में आम न होकर गूढ़ गंभीर हैं। आम जन की बोल–चाल का सम्प्रेषण के लिए यह प्रयोग नई कविता और रघुवीर सहाय की विशिष्ट उपलब्धि है।[21]

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की कविता अनुभव की तीव्रता और उद्वेग की कविता है। सर्वेश्वर की प्रगतिशील कवि दृष्टि में मानवीय संवेदना व समाज केन्द्र में हैं। आम आदमी भी रोटी–कपड़ा और मकान की समस्या से परेशान है। सभी राजनीतिक दलों में गरीबी हटाओ–गरीबी हटाओ की होड़ अद्यतन लगी है। गरीबी हटाने वालों के इस छद्म नारे का वास्तविक चित्र सर्वेश्वर जी खींचते हैं :

गरीबी हटाओं सुनते ही/वे कब्रिस्तान की
ओर लपके और मुर्दों पर पड़ी चादर उतारने लगे/
जो गंदी व पुरानी थी/फिर वे नई चादर लेने चले
गए जब वे लौटकर आए तो मुर्दों की जगह गिद्ध
बैठे थे।[22]

वस्तुतः नयी कविता की पहचान जहाँ से बनना शुरू होती है वे सर्वेश्वर की कविताएं ही है।[23]

धूमिल समकालीन कविता में प्रबल विरोध, प्रतिरोध व संघर्ष के कवि है। धूमिल का उदय धूमकेतु की तरह होता है। जिसमें अग्नि भी है, धुआँ भी है। धुआँ आधुनिकता है और अग्नि प्रगतिशील चेतना भी है।[24] भारतीय समाज, लोकतंत्र, राजनीतिक व्यवस्था पर जो आवरण है, उसे अनावृत्त करने का प्रयास उन्होंने अपनी रचनाधर्मिता के माध्यम से किया है। "संसद से सड़क तक" रचना में वे भारतीय लोकतंत्र के खोखलेपन को उजागर करते हुए वे लिखते हैं :

उसको समझा दिया है यहाँ/ऐसा जनतंत्र है जिसमें जिन्दा रहने के लिए घोड़े और घास को एक जैसी छूट है[25]

धूमिल संसद में राष्ट्रीय नीति निर्माणकर्ताओं की पोल खोलते हैं :

वे सब के सब/तिजोरियों के/दुभाषिए हैं, वे वकील हैं/ वैज्ञानिक हैं/ अध्यापक हैं/ नेता हैं/ दार्शनिक हैं/ लेखक हैं/कवि हैं/कलाकार हैं यानी कि कानून की भाषा बोलता हुआ अपराधियों का एक संयुक्त परिवार है।[26]

केदार सिंह कथ्य और शिल्प दोनों स्तर पर जमीन से जुड़े कवि हैं। प्रकृति और लोक जीवन के साथ–साथ सामाजिक तनाव भी आपकी रचनाओं में परिलक्षित होता है। युगीन वैषम्य को सीधे–सीधे दर्शाते हुए वे लिखते हैं–

पर सच तो यह है
कि यहाँ या कहीं भी फर्क नहीं पड़ता
तुमने जहाँ लिखा है प्यार
वहाँ लिख दो सड़क
फर्क नहीं पड़ता
मेरे युग का मुहावरा है :
फर्क नहीं पड़ता।[27]

आपकी रचनाओं में सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा भी विद्यमान है :

मुझे आदमी का सड़क पार करना/
हमेषा अच्छा लगता है/क्योंकि इस तरह/
एक उम्मीद सी होती है/कि दुनियां जो इस
तरफ है/शायद उससे कुछ बेहतर हो/सड़क के
उस तरफ।[28]

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि समस्त हिन्दी काव्य हिन्दी के समान ही समकालीन हिन्दी कविता में भी सामाजिकता प्रबल रूप से उपस्थित है। परन्तु समकालीन हिन्दी कविता का सामाजिक सरोकार पूर्ववर्ती कविता के अपेक्षा कहीं अधिक धारधार, तीखा–तल्ख है जो कि कटु अति यथार्थवादी है, साथ ही यह सामाजिकता अपने

साथ–साथ राजनैतिक परिस्थितियों, सामाजिक लोकतांत्रिक विडंबनाओं, विसंगति और विद्रूपता को सम्पृक्त करे हुए हैं।

संदर्भ–सूची

1. काव्य शास्त्र : भगीरथ मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, पृ. 31, संस्करण 1998
2. काव्य प्रकाश : आचार्य मम्मट : आचार्य विश्वेश्वर टीका : पृ. 1.2
3. निबन्ध निलय : सं. डॉ. सत्येन्द्र, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, पृ. 109, संस्करण 2001
4. उपरिवत् पृ. 122
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, अशोक प्रकाशन नई दिल्ली पृ. 1, संस्करण 1996
6. साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका : मैनेजर पाण्डेय पृ. 74–75 हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़, 1989
7. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास : रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोक भारती प्रकाषन इलाहाबाद, पृ. 10, संस्करण 1996
8. "यह द्वीप अकेला" : अज्ञेय प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999
9. "ये शाम है" : शमशेर बहादुर सिंह प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003
10. नई कविता : कुछ साक्ष्य : रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 89, 1998
11. "अंधेरे में" कविता : मुक्तिबोध प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005
12. पंख और पतवार : केदारनाथ अग्रवाल प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001
13. "धरती" कविता : केदारनाथ अग्रवाल प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001
14. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास : बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृ. 415, संस्करण 2012
15. कवि परम्परा : तुलसी से त्रिलोचन : प्रभाकर क्षोत्रिय, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन नई दिल्ली, पृ. 155, संस्करण 2006
16. "मंत्र कविता" : नागार्जुन प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009
17. "हरिजन गाथा" कविता : नागार्जुन प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009
18. आजकल सितम्बर 2010 अंक : महावीर अग्रवाल का लेख
19. मैं तुम कविता : त्रिलोचन प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001
20. "आत्म हत्या के विरूद्ध" कविता : रघुवीर सहाय प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003
21. हिन्दी काव्य संवेदना का विकास : रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, पृ. 293, 2003
22. "तीसरा सप्तक" : सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : कविता–भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2009
23. नई कविता कुछ साक्ष्य : रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद प0 सं0 16, संस्करण 1998
24. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास : बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 451, संस्करण 2012
25. "संसद से सड़क" : धूमिल–www.kavitakosh.org
26. उपरिवत्
27. "फर्क नहीं पड़ता" कविता : केदारनाथ सिंह–www.kavitakosh.org
28. "उस आदमी को देखो" कविता : केदारनाथ सिंह–www.kavitakosh.org

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 95-99

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

आदिवासी हिन्दी उपन्यासों में चित्रित नक्सलवाद की समस्या

('आमचो बस्तर', 'ग्लोबल गाँव के देवता' और 'मरंग गोडा नीलकंठ हुआ' उपन्यासों के विशेष संदर्भ में)

*डॉ. संजय नाइनवाड**

भारत में नक्सलवाद की अवधारणा 70 के दशक में आयी। 1967 में पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग जिले के नक्सलवाड़ी गाँव का एक आदिवासी किसान अदालत के दिए फैसले के आदेश पर अपनी जमीन जोतेने के लिए गया परंतु जिस जमींदार के कब्जे में किसान की जमीन थी उसने न्यायालय के आदेश को धत्ता बताकर जमीन किसान को देने से इंकार किया। और जमीन जोतने आए किसान की नौकरों के हाथों पीटाई की। इस घटना से बौखलाए किसानों ने चारू मुजूमदार, कानु सान्याल और जंगल संथाल की अगुवाई में जमींदारों के कब्जे की जमीनें छीनने का सशस्त्र संघर्ष छेड़ दिया। नक्सलवाड़ी गाँव से यह आंदोलन शुरू होकर तमाम देश में फैला इस कारण इस संघर्ष को नक्सलवाद नाम से जाना जाता है। और ''इस विचारधारा को मानने वाले नक्सलवादी कहे जाने लगे। फलतः इस लाइन पर चलने वाले लोग नक्सली और इनका राजनीतिक दर्शन तथा राजनीतिक लाइन नक्सलवाद का नाम पा गया।''[1] नक्सलवाडी आंदोलन के दौरान बहुत कुछ घटित हुआ था। बौखलाए किसानों ने जमींदारों के कब्जे के धान्य के कोठारों को लुटा, जमीन के कागजात जला दिए, जमींदारों की हत्याएँ की गईं, जिन–जिन जमींदारों ने किसानों की जमीनों पर अवैध रूप से कब्जा किया था, उन्हें गाँववालों ने अपने कब्जे में कर लिया।

चारू मुजूमदार नक्सलवाड़ी आंदोलन के प्रणेता थे। वे चीनी कम्युनिस्ट नेता माओ–त्से–तुंग से काफी प्रभावित थे। उनका मानना था कि भारतीय मजदूरों और किसानों की दुर्दशा के लिए सरकारी नीतियाँ जिम्मेदार हैं। जिसकी वजह से उच्च वर्गों का शासनतंत्र और फलस्वरूप कृषितंत्र पर वर्चस्व स्थापित हुआ है। ऐसी न्यायहीन अत्याचारी व्यवस्था के वर्चस्व को मात्र सशस्त्र क्रांति से ही खत्म किया जा सकता है। इसी विचार से प्रेरित होकर 1967 में कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों की अखिल भारतीय समन्वय समिति गठित हुई थी। और चारू मुजूमदार ने औपचारिक रूप से कम्युनिस्ट पार्टी से अलग होकर सरकार के विरोध में भूमिगत होकर सशस्त्र लडाई का आगाज किया। परंतु 1971 में भीतरी कलह एवं विद्रोह के चलते और चारू मुजुमदार की मृत्यु के बाद यह आंदोलन कईं धडों में विभाजित होकर अपने मूल लक्ष्य से विचलित हुआ। नतीजा आंदोलन को विकृतियों ने ग्रस लिया। वर्तमान में नक्सलवाद ने जो शक्ल अख्तियार की है वह 1967 के नक्सलवाड़ी आंदोलन से मेल नहीं खाती। ये आज की सच्चाई है। इसकी अनुभूति बस्तर को केंद्र में रख कर लिखा गया उपन्यास 'आमचो बस्तर' पढ़ने से होती है।

नक्सलवाद से बस्तर का प्रत्यक्ष संबंध 1974 में आता है। इसके पहले बस्तर में नक्सलवाद की मौजूदगी नहीं थी। 1974 में छत्तीसगढ के भोपालपट्टनम में डकैती की तीन घटनाएँ घटीं जो बस्तर में नक्सलवाद की आरंभिक घटनाएँ थीं। उन दिनों बस्तर से सटे आंध्र प्रदेश में नक्सली धड़े सक्रिय थे। वहाँ कोंडापल्ली सीतारमैया सशस्त्र संघर्ष में लगे हुए थे। उन्हें पुलिस से बचने के लिए घने वनों में आश्रय आवश्यकता थी। अतः उन्होंने 80 के दशक

* *सहायक प्राध्यापक (हिन्दी विभाग), एस.बी. झाडबुके महाविद्यालय, बार्शी, जि. सोलापुर (महाराष्ट्र)*

में पाँच से सात सदस्यों को अलग–अलग गुटों में बाँटकर चार दल दक्षिणी तेलंगाना, एक दल महाराष्ट्र के गढ़चिरौली तथा अन्य दो दलों को बस्तर में भेज दिया। बस्तर तीन राज्यों की सीमा से सटा घने जंगलों से घीरा इलाका है। जो नक्सलियों को स्थिर होने, उनके संपर्क एवं संगठन की दृष्टि से सुविधाजनक था। सरकार की विकास नीतियाँ बनाने वाले प्रशासनिक अमले द्वारा इरादतन आदिवासी इलाकों को विकास से दूर रखने की नीति का नक्सलियों ने लाभ उठाते हुए अपनी जडें बस्तर में जमायीं।

असल में बस्तर में नक्सलवाद किसी आंदोलन, शोषण या अपने आप से पैदा हुए गुस्से से पैदा नहीं हुआ था। पर आज रोटी–कपडा–मकान–पानी–बीजली–सड़क जैसे मुद्दों को ही बस्तर में नक्सलवाद के पनपने के कारण बताया जाता है, जो कि सच नहीं है। शुरूआत में नक्सलियों ने आदिवासियों को अपनी ओर आकर्षित करने, उनकी सहानुभूति प्राप्त करने और अपनी जड़ें मजबूत करने के लिए बाँस से लेकर तेंदूपत्ता जैसे जंगलों के उत्पादों की सही मजदूरी दिए जाने की माँग उठाई। ठेकेदारों को गाँववालों के सामने ही पीटा। विश्व बैंक द्वारा पाईन के पड़ लगाने के प्रोजेक्ट का विरोध किया। इन जैसी चीजों ने आदिवासियों में नक्सली उनके रहनुमा हैं ऐसी भावना निर्मित हुई। उपन्यास का एक पात्र मलकाम शैलेश से कहता है, ''ये मोटे–मोटे काम हैं जो बस्तर में नक्सली अभियान की शुरूआत में किए गए...बस्तर के आदिवासियों को अपने साथ जोड़ने के लिए उठाए गए शुरूआती जरूरी कदम थे। अब तो अस्सी का दशक बीत चुका है। मुझे इन उंगली पर गिनायी गयी घटनाओं के अलावा बताओ बस्तर में अढ़सठ से लेकर आज तक नक्सलियों ने किस मजदूर या किसान आंदोलन की अगुवाई की है?''[2]

उपन्यास में इस तथ्य को भी उजागर किया है कि बस्तर में आदिवासियों के नक्सलवाद की ओर आकृष्ट होने के मूल में बस्तर का विकास से कटे रहना और बस्तर की पीछड़ेपन की समस्या भी सहायक रही है। मरकाम इस पर जल भूनभूनाता हुआ शैलेश से कहता है, ''सरकार बस्तर को आदिवासी संस्कृति, सभ्यता और परिवेश की सुरक्षा के नाम पर संरक्षित क्षेत्र घोषित किए हुए है। अबुझमाड़ के इलाके में सन सत्तर के दशक में एक कलेक्टर ने यह कहकर वहाँ बन रही सड़क का विरोध किया कि इससे आदिवासी संस्कृति नष्ट हो जाएगी। सरकार ने अबुझमाड़ को संरक्षित इलाका बना दिया। आज भी यदि वहाँ जाना हो तो कलेक्टर की अनुमति लेनी पड़ती है। उपर से सरकार बस्तर में कोई परियोजना उद्योग–व्यवसाय शुरू करने में रुचि नहीं दिखाती। बस्तर में अंधाधुंध औद्योगिकरण की आवश्यकता नहीं है परंतु कुछ परियोजनाएँ शुरू होनी चाहिए। यदि विकास नहीं होगा, रोजगार नहीं रहेगा तो नक्सलवादी फैलते रहेंगे।...विकास और रोजगार की एक उम्मीद जगी नहीं कि बस्तर के मसीहा बन कर महानगरों से विरोध के स्वर फूट पडते हैं।''[3]

बस्तर में व्यवस्था, जमींदार, कारखानदार व ठेकेदारों की प्रताड़ना से तंग आकर भी कईं आदिवासी नक्सलवाद का रूख कर चुके हैं। उपन्यास का ठुरलू ऐसा ही एक पात्र है जिसकी प्रेमिका बोदी से बैलाडिला खदान के ठेकेदार का मुंशी बहला फूसला कर अनौतिक संबंध स्थापित करता है। ठुरलू जब देखता है कि बोदी के साथ मुंशी ने जबरदस्ती यौन संबंध बनाएँ हैं तो वह गुस्से में आकर उसकी हत्या कर देता है। पुलिस से बचने के लिए फिर वह बदहवास होकर जंगल का रुख करता है। जंगल में जाकर वह जंगल का ही हो जाता है। उपन्यास का पात्र मरकाम कहता है, ''ठुरलु का नक्सलवादी हो जाना परिस्थितियों का परिणाम है, किसी विचारधारा का नहीं। दादा लोगों को बस्तर में अपने–आप को मजबूत करने के लिए ठुरलू जैसे और लोग चाहिए। इस तरह की घटनाओं ने बागी और डाकू भी बहुत पौदा किए हैं।''[4]

असल में राह भटके व अपने मूल लक्ष्य से विचलित हुए नक्सलियों को आम आदिवासियों के सुख–दुःख से कोई सरोकार नहीं है। उपन्यास में चित्रण है कि छत्तीसगढ़ के नक्सल प्रभावित इलाके में सरकार द्वारा चुनाव आयोजित किए थे। परंतु पीपुल्स वार ग्रुप ने चुनाव पर बहिष्कार की धमकी दी थी। बावजूद इसके चुनाव हुए। चुनाव संपन्न कराने के बाद निर्वाचन दल के लौटते समय नक्सलियों ने बारूदी सुरंग के विस्फोट से निर्वाचन दल के टीम की जीप को उड़ा दिया। विस्फोट में इंसानी लाशें टुकडों–टुकडों में छितरा गईं। जीप के परखच्चे उड़ गए। उपन्यास में सवाल उठाया गया है कि इस तरह का खून–खराबा किसलिए? क्या एक सरकारी क्लर्क सर्वहारा की सत्ता के स्वप्न के राह का रोड़ा बन गया था? क्या वह बहुराष्ट्रीय कंपनियों और पूंजीपतियों के एजेंट की तरह

जंगल के अंदरूनी इलाकों में प्रविष्ट हुआ था? या मतपत्र के बक्सों को ले जाने का मतलब यह है कि सरकार का पिट्ठू हो जाना जिसके लिए नक्सलियों ने मौत का प्रबंध कर रखा है? या क्लर्क होने के नाते उस व्यक्ति का जल–जंगल–जमीन से हक उठ चुका है? क्या सरकारी कर्मी को मौत के घाट उतार कर दिल्ली हिल गयी? क्या क्रांतियाँ ऐसी होती हैं? सच तो यह है कि बस्तर में नक्सलियों ने सपाट परिभाषा गढ़ी हुई है,''जो उनके फरमान के साथ नहीं वह उनका दुश्मन। यहाँ किसी तरह के भ्रम की या रहम की गुंजाईश नहीं है। क्रांति कर रहे हैं इसलिए राह में आने वाले सभी कीट–पतंग मसलने और गाजर–मूली उखाड फेंकने की उन्हें स्वतंत्रता है।''[5] मरकाम और शैलेश के वार्तालाप से पता चलता है कि हालिया दौर में जिस तरह का नक्सलवाद बस्तर में फैल रहा है वह बंदूख की नोंक पर बदलाव की बात करता है। तेंदूपत्ता नीति पर, इमली की कीमत को लेकर या ठेकेदारों को धमकाकर दादा लोग जो माहौल बना रहे हैं वह तरीका आंदोलन नहीं है। बंदूख के साये में लाए गए बदलाव आंदोलन होते नहीं होते। ''बस्तर में कार्यरत नक्सली दलम के कमांडर एवं डिप्टी कमांडर आंध्र प्रदेश और महाराष्ट्र के हैं। ये संगठन भय और प्रलोभन दोनों स्तरों पर कार्य करते हैं...नक्सललियों द्वारा आयोजित की जाने वाली जन अदालतों के जरिए नक्सल विरोधी ग्रामीणों के विरूद्ध दंडात्मक कार्यवाही की जाती है। यह जुर्माना, अंगभंग, सामाजिक प्रताडना से लेकर मृत्युदंड तक होता है।''[6]

उपन्यास पढ़ते समय संदर्भ मिलते हैं कि पीपुल्स वार ग्रुप तथा उसकी सहयोगी संस्थाओं ने खदानों एवं परियोजनाओं पर चल रहे कार्यों को असंभव कर रखा है। नक्सली–ठेकेदारों से जबरन वसूली, अंदरूनी सार्वजनिक निर्माण कार्यों पर नियंत्रण, वनोपज तथा लकड़ी कटाई से संबंधित कार्यों में अपना हिस्सा रखना, सरपंचों से रुपए वसूलना, व्यापारियों से धनराशी वसूलना जैसी सूचनाएँ मिलती हैं। साथ ही नक्सलियों का तथाकथित साम्यवाद भी सवाल खड़ा करता है। बस्तर में नक्सलियों के रूप में बंदूक ताने पीटी करते और लाल सलाम चीखते वे लोग हैं जिनसे मिट्टी ने मुँह मोड़ लिया है। वहाँ अब मांदर की थाप पर गीत गाते लोग सुनाई नहीं देंगे बल्कि साम्राज्यवाद के विरोध के गीत सुने जा सकते हैं। इन गीतों में जीवन नहीं है, मस्ती नहीं है, बस्तरीयापन नहीं है। आज बस्तर में नक्सलियों के तथाकथित नेतृत्व को बड़ा समर्थन नहीं है। जितना कभी गुंडाधुर, प्रवीरचंद्र या बिहारीदास को हुआ करता था। इन नक्सलियों के सशस्त्र विद्रोह को हलबा विद्रोह से लेकर भूमकाल तक किसी भी सशस्त्र विद्रोह के दसवें हिस्से के समतूल्य भी नहीं माना जा सकता। असल में आदिवासी कभी अकारण शस्त्र नहीं उठाते। उनके हर आंदोलन के मुद्दे रहे हैं। बस्तर को अपनी मांगे रखने के लिए किसी आयातित संस्था अथवा विचारधारा की आवश्यकता नहीं है। नक्सलियों का यह दावा कि वे आदिवासियों के हक की लड़ाई लड़ रहे हैं, भ्रमित करने वाला है। असल में नक्सलियों को बस्तर की आदिम परंपराओं से कोई वास्ता नहीं है। यहाँ वर्तमान में चल रहे माओवाद में न बस्तर के संस्कार हैं और न ही नक्सली रणनीतिकारों को बस्तर की आदिम संस्कृति व परंपराओं की बुनियादी समझ। बस्तर में अब नक्सलवाद शब्द हाशिए पर चला गया है। वहाँ अब नक्सलवाद के स्थान पर माओवाद शब्द का प्रादुर्भाव हुआ है। उपन्यास के मरकाम को बस्तर के माओवाद में वह साम्य नहीं दिखता जो माओ के अपने संघर्ष व भारत में माओवादियों की गतिविधियों में हो। माओ जिस चीन के लिए लड़ रहे थे वह चार देशों का उपनिवेश था। माओ ने मार्क्स–लेनिन के दर्शन को रौद्र रूप देकर सशस्त्र क्रांति के सहारे विदेशी दमनकारियों व देसी गद्दारों के खिलाफ क्रांति की मशाल जलायी थी। इसके विपरित भारत में माओवाद किसी विदेशी सत्ता के खिलाफ युद्ध नहीं है, उपनिवेश होने की छटपटाहट इस सशस्त्र विद्रोह में नहीं प्रतीत होती। ये एक तरह का गृहयुद्ध है। जिसमें देश, समाज व आदिवासियों की हानि है। बस्तर का माओवाद असल में माओवाद है ही नहीं। अपने ही देश, समाज व बांधवों से लड़ना माओवाद कैसे हो सकता है?

झारखंड को केंद्र में रखकर लिखे उपन्यास 'ग्लोबल गाँव के देवता' में भी आदिवासियों का व्यवस्था के साथ चल रहा आंदोलन और संघर्ष चित्रित हुआ है। पर मुख्यधारा इसे नक्सलवाद से जोड़ती है। अलबत्ता इसे नक्सलवाद नहीं कहा जा सकता। जो लोग यहाँ के आदिवासियों के आंदोलन को नक्सलवाद कह कर संबोधित करते हैं, असल में उन्हें नक्सलवाद की पूरी समझ ही नहीं है। आदिवासियों द्वारा झारखंड में चलाया जा रहा संघर्ष उनकी अपनी जल, जंगल, जमीन और अस्मिता को बचाए रखने का संघर्ष है। झारखंड में विकास के नाम पर आदिवासियों को उजाड़ने की निरंतर प्रक्रिया चल रही है। झारखंड में बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ आकर कल कारखाने

खोल रही हैं। सरकार के साथ एमओयू साइन कर बड़ी–बड़ी योजनाएँ चला रही हैं। सरकार भी इन कंपनियों को लुभाने के लिए तरह तरह के प्रलोभन दे रही हैं। सरकार कारखानों को शुरू करने के लिए बड़े पैमाने पर आदिवासियों की भूमि अधिग्रहित कर रही है। उनके गाँवों को उजाड़ रही है। नतीजा आदिवासी भूमिहीन और बेघर होकर अपने जल–जंगल–जमीन–समाज–संकृति से से कट रहा है। भूमि अधिग्रहण के दौरान आदिवासियों से वादे किए जाते हैं कि उन्हें दूसरी जगह जमीन दी जाएगी, कारखानों में रोजगार दिया जाएगा, उनके लिए अगल से कॉलोनियाँ बसाई जाएगी, बच्चों के लिए स्कुल खोले जाएँगे। पर इनमें से कोई वादा न सरकार पूरा करती है और न कंपनी। इस तरह व्यवस्था से छले, सताए, तंग आए आदिवासी सड़क पर उतर आते हैं तो उन्हें विकास विरोधी, उग्रवादी, असामाजिक कहा जाता है। यही नहीं उन पर नक्सली जैसा शब्द भी थोपा जाता है।

उपन्यास में कथित भेड़ियों के अभयारण्य के नाम पर छलावे से सखुआपाट और पाथरपाट इलाके के आदिवासियों को उनके गाँव और जमीन से उजाड़ने की योजना बनाने का वर्णन है। इसलिए सरकार के वन विभाग द्वारा खतियान में दर्ज सैंतीस वन गावों को खाली कराने का नोटिस दिया जाता है। वन विभाग द्वारा अधिग्रहित जमीन की कंटीली तारों से घेराबंदी का काम सरकार द्वारा वेदांग जौसी बहुराष्ट्रीय कंपनी को दिया जाता है। वेदांग जैसी बड़ी कंपनी ने इतने छोटे काम में हाथ कैसे डाला यह सोचने की बात है। असल में बहुत वर्षों से इस इलाके से बॉक्साइट बाहर न भेजकर यहाँ कारखाना खोलने की बात चल रही थी और वेदांग शायद उसी टोह में इस इलाके में आ रहा था। सभी सैंतीस गाँवों के बाशिंदे मिलकर भेड़िया अभ्यारण्य के नाम पर आदिवासियों को उजाड़ने के षड्यंत्र का विरोध करने के लिए लालचन असूर के नेतृत्व में संघर्ष समिति बनाकर जनता कर्फ्यू लगाकर इलाके में पुलिस प्रशासन का आना जाना बंद कर देते हैं। आंदोलकों द्वारा सखुआ के पेडों को काटकर सड़कें बंद कर दी जाती हैं। इलाके में खदान बंद, काम बंद, बॉक्साइट की ढुलाई बंद। हालांकि यह विरोध शांतिकामी था। परंतु विरोध को दबाने के लिए पाथरपाट पुलिस चौकी में सशस्त्र बल के जवान बुलाए जाते हैं। पहले तो विरोध करने वाले लोगों के साथ मारपीट की जाती है। परंतु संघर्ष समिति की अगुवाई में चल रहा आंदोलन और आंदोलनकारी पीछे हटने के लिए तैयार नहीं थे। चौकी के सामने ही धरना देकर बौठे और लोगों को संबोधित करते आदिवासियों को देख कर पुलिस बौखला जाती है। दोनों गुटों में आपसी झड़प होती है। निहत्थे आदिवासियों पर पहले से ही योजना बनाएँ पुलिस फायरिंग करती है। इसमें छह आदिवासियों की मौतें होती हैं। घटना को दबाने के लिए पुलिस पूरी कोशिशें करतें दिखाई देती है। इस घटना को लेकर अखबार के तीसरे पेज पर खबर कुछ यूँ छपी–'पाथरपाट में हुई पुलिस मुठभेड़ में छह नक्सली मारे गए। मारे गए नक्सलियों में कुख्यात एरिया कमांडर बालचन भी शामिल। फिर बालचन के नृशंस कारनामों का विवरण। किस एस.पी., दरोगा की हत्याओं और किन–किन बैंक डकैतियों में वह शामिल रहा था। एकदम आँखों देखा विवरण। अंत में इस बात का भी उल्लेख था कि भागते समय नक्सली लाशें उठा ले गए। पुलिस फोर्स लाशों की तलाश कर रही है।''[7] सरकार द्वारा इस तरह की जघन्य कारवाई करना और गोदी मीडिया का ऐसी खबरें नियोजनबद्ध रीति से में छापना आदिवासियों की छवि धूमिल करने और उनके विरोध में माहौल निर्मित करने की साजिश है।

'मरंग गोडा नीलकंठ हुआ' उपन्यास के माध्यम से भी माओवाद को समझ जा सकता है। उपन्यास में आए संदर्भों की माने तो नक्सलबाड़ी आंदोलन के कुछ वर्ष पूर्व ही माओवादियों ने कैमूर की पहाडियों से अपना काम आरंभ कर दिया था। और दुर्गम पहाडियों तथा जंगलों के रास्ते उन्होंने झारखंड में प्रवेश किया था। ये माओवादी पहाड़ जंगल को अपनी शरणस्थली बनाते हैं और समतल क्षेत्र में आक्रमण के बाद जंगलों–गुफाओं में पनाह लेते हैं। उपन्यासकार के अनुसार ''उन लोगों ने वन क्षेत्रों के माध्यम से झारखंड, बिहार, बंगाल, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़ और उड़ीसा के कालाहांडी क्षेत्र से लेकर आंध्र प्रदेश तक अपना साम्राज्य फैला लिया और उन मार्गों से आम लोगों और पुलिस प्रशासन की दृष्टि से ओझल रहते हुए विचरण करते हैं। ...वे अलग राज्य की मांग नहीं करते बल्कि सत्ता के बुनियादी चरित्र को बदलना चाहते हैं। उन्हें भरोसा है कि हथियारों के बल पर लगातार मुक्त क्षेत्र का विस्तार करते जाएँगे और एक दिन अपनी सत्ता कायम करेंगे।''[8] उपन्यास पढ़ते समय हम अवगत हो जाते हैं कि झारखंड में पनपा नक्सलवाद यहाँ की विषम परिस्थितियों का प्रतिफलन है। सरकार ने 1951 से 1990 के बीच विकास के नाम पर देश में लगभग 85 लाख आदिवासियों को उजाड़ा है। उजाड़े गए आदिवासियों में से अब तक

तीन चौथाई का पुनर्वास तक नहीं हो पाया है। रोजगार तो बहुत दूर की बात है, सरकारें आदिवासियों को जीवन–यापन की न्यूनतम सुविधाएँ तक नहीं दे सकी हैं। आदिवासियों के विकास के लिए जो कुछ थोड़ी बहुत राशि सरकार द्वारा भेजी जाती है उसकी लूट को आदिवासी खुलेआम देखते हैं। आज सरकार ने आदिवासियों को वन और उनके वनाधिकार से बेदखल कर दिया है। वन विभाग के अधिकारी और जंगल माफियाओं को आदिवासियों के हक के जंगल की कीमती लकड़ी अवैधरीति से बेचने की छूट हैं। लेकिन आदिवासी अपने इस्तेमाल के लिए या पेट भराई के लिए छोटे–मोटे पेड़ों को काटते हैं तो उन्हें वन विभाग झूठे मुकदमें में फंसाकर हवालात में बंद कर देता है। कईं बार जंगल माफियाओं की करतूत को वनविभाग आदिवासियों के माथे मढ़ कर उन्हें अपराधी सिद्ध करता है। और जो कुछ आदिवासी बेहद दुर्गम पहाड़ी इलाकों में बसे होने के कारण गरीबी की मार नहीं झेल पाए उन्होंने हथियार उठाए। ''ऐसे में जब एमसीसी के सदस्यों ने आकर उनकी भावनाओं को सहलाया, उन्हें तमाम समस्याओं से उबारने का भरोसा दिलाया तो वे उनकी तरफ झुक गए। देखते ही देखते उनके साथ सैंकड़ों युवक–युवतियों का जत्था खडा हो गया।''[9]

आजादी के बाद भी देश का आदिवासी इलाका हाशिए पर धकेला गया। उनके साथ न्याय नहीं हुआ। नतीजा उग्रवाद, माओवाद और नक्सलवाद फैलता गया। और यहां के आदिवासी इलाकों में 2001 से नक्सली घटनाएँ घट रही हैं। नक्सलवाद को रोकने के लिए बुनियादी कदम उठाने जरूरी हैं। आदिवासियों को विकास का लाभ समय रहते ही मिलना चाहिए। बाहरी लोग आदिवासी इलाकों में लाकर स्थापित हो रहे हैं और आर्थिक रूप से ताकतवर बनते जा रहे हैं। आदिवासियों के जल, जंगल जमीन की लूट ऐसे बाहरी लोगों की ओर से हो रही है। सरकार विकास और परियोजनाओं के नाम पर आदिवासी इलाकों की जमीनें अधिग्रहित कर रही हैं। लेकिन आदिवासियों को इसका कोई लाभ नहीं मिल रहा है। और सबसे महत्वूपर्ण बात भारतीय संविधान के समानता के तत्व का पालन करते हुए आदिवासियों तक विकास की गंगा पहुंचती तो नक्सली घटनाएँ रुकतीं और स्थितियाँ इतनी विकट नहीं होतीं।

संदर्भ–सूची

1. लालेंद्र कुमार कुंदन, नक्सलवाद : उद्भव और विकास, क्लासिकल पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली, प्र.सं. 2010, पृ. 9
2. राजीव रंजन प्रसाद, आमचो बस्तर, यश पब्लिकेशंस, नवीन शहादरा, दिल्ली, प्र.सं. पृ. 69
3. वही, पृ. 109
4. वही, पृ. 116
5. वही, पृ. 134
6. वही, पृ. 285
7. रणेंद्र, ग्लोबल गाँव के देवता, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, द्वि सं. 2010, पृ. 228
8. महुआ माजी, मरंग गोडा नीलकंठ हुआ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं 2012, पृ. 337
9. वही, पृ. 337

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 100-105

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

महान समन्वयवादी : गुरु नानकदेव

*डॉ. ईश्वर पवार**

गुरु नानकदेव अपने समय के सजग एवं जागृत कवि तथा समाज सुधारक थे। उन्होंने तत्कालीन परिस्थिति का गंभीरता से अध्ययन किया था और उनका यहीं उद्घोष था 'सरबत दा भला' अर्थात सब का भला हो। जिसे पढ़कर वैदिक धारा का वह अमर सूत्र 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की याद आना लाजमी है। नानकदेव का समय आतंक एवं क्रूर आक्रमणों से भरा था। महमुद गजनवी, मुहम्मद गौरी और बाबर के आतंकवादी आक्रमण से तत्कालीन हिंदुस्तान अत्यंत भयभीत एवं त्रस्त था। बाबर की क्रूरता देखकर नानक देव को यह कहना पड़ा –

"पाप की जंत्र लै काबल हु धाइया जोरी मंगे दानु वै लालो
सरमु धरमु दुइ छपि खलोए कुडु फिरे परधानु वै लालो।"[1]

नानक ने अपने शिष्य लालों को संबोधित करते हुए 'पाप की बारात' का यह रूपक बांधकर हमें तत्कालीन परिवेश से परिचित कराया है। गुरु नानकदेव कहते हैं–'बलपूर्वक कन्या से विवाह करने के लिए बाबर पाप की बारात लेकर काबुल से चला। शर्म तथा धर्म दोनों इस संसार से उठ गए हैं, झूठ सेना के अगले भाग में आगे बढ़ रहा है। लोग कत्ल के गीत गाते हैं तथा अपने शरीर पर खूनी केसर का लेप कर रहे हैं।

नानकदेव ने इस भयावह आतंक से खुरासान की रक्षा करने तथा हिंदुस्तान पर किसी यम की भाँति चले आने वाले मुगलों की विनाशलीला का जिक्र करते हुए ईश्वर की आलोचना की है। नानकदेव के अनुसार हिंदुस्तान की रखवाली करनेवाला अब कोई नहीं है इसलिए वे लिखते हैं –

"खुरासान खसमान की आ हिनदुसतानु डराइआ।
आपै दोसु न देइ करता जमु करि मुगल चढ़ाइया।।
एति मार पइ करणालै ते की दरदु न आइया।
करता तू सभना सोई।।
जे सकता सकते कउ मारे ता मनि रोसु न होई।
सकता सीहु मारे पै को खसमै सा पुरसाई।।
रतन बिगाडी बिगोए कुर्ती मुइआ सार न काई।"[2]

अपनी और एक रचना के माध्यम से नानकदेव ने तत्कालीन हिंदु महिलाओं की दुर्दशा का जो वर्णन किया है वह शब्दशः शरीर पर रोंगटे खड़े करता है। एमनाबाद में हुए भीषण संहार का वर्णन वे इन शब्दों में करते हैं जो कवित्व की दृष्टि से निहायत उच्च कोटि का है –

"जिन सिरि सोहनि पटीआ माँगी पाइ संधूर
ते सिर काती मुंनी अन्हि गल बिचि आवै धूड़ि ।।
महला अंदरि होदीआ हुणि बहणि न मिलन्ह हदुरि ।।
जदहु सीआ वीआहीआ लोडे सोहनि पासि।
हीडोली चड़ि आईआ दंड खंड कीति रासि।।

* *शोध निर्देशक एवं अध्यक्ष हिन्दी अनुसंधान केन्द्र चां.ता. बोरा महाविद्यालय, शिरुर, पुणे*

उपरहु पाणीं वारीऐ झले झिमकनि पासिं।
इकु लखु लहन्हि बहिठीआ लखु लहन्हि खडीआ।
गरी छुहारे खांदीआ माणन्हि सेजीआ।।
तिन्ह गालि सिलका पाईआ तुटन्हि मोतसरीआ।।
अगो जे दे चेतीए तो काइतु मिलै सजाइ।
साहाँ सूरति गवाईआ रंगि तमासै चाइ।।
बाबरवाणी फिरि गई कुइरू न रोटी खाइ।।[3]

नारी दुर्दशा का वर्णन करते हुए गुरु नानकदेव ने कहा है—'जिन स्त्रियों के सिर की माँग में टट्टियाँ थीं और मांग सिंदूर से सुशोभित हुआ करती थीं उनके सिर के बालों को कैंची से काट दिया गया अतः धूल उड़—उड़ कर उनके गले तक पहुँचती हैं।' नानकदेव ने केवल हिंदू ही नहीं अपितु मुस्लिमों में प्रचलित रूढ़ियों के विरूद्ध आवाज उठाई है नानकदेव अपने समय कठोर समाज सुधारक ही नहीं थे अपितु समाज में जो अनुचित चल रहा है उसके खिलाफ आवाज उठाने की उनके पास अपरंपार क्षमता भी थी। उन्होंने कई स्थानों पर आवाज उठाते समय यह नहीं देखा कि सामने कौन है? और वे किसकी आलोचना कर रहे हैं? इसलिए शवरक्षण—वगर्हणा के खिलाफ आवाज बुलंद करते हुए उन्होने लिखा था —

मिटी मुसलमान की पेडै पड कुम्हियार।
घडि भांडे इटा की आ जलदी करे पुकार।।
जलि जलि शेवै बपुड़ी झड़ि—झड़ि प्रवाहि अंगियार।।''[4]

इन पंक्तियों के माध्यम से उन्होंने अभूतपूर्व साहस का परिचय दिया है। कहा जाता है कि सातवें गुरु हरिराय को जब औरंगजेब ने इन पंक्तियों का अर्थ जानने के लिए तलब किया व उन्होंने अपने पुत्र रामराय को भेज दिया और डर के कारण रामराय ने 'मुसलमान' के स्थान पर 'बेइमान' शब्द का प्रयोग किया तब हरिराय ने इनको सदा के लिए त्याग दिया। क्योंकि सिखों की महान परंपरा सत्य एवं शौर्य की रही हैं, असत्य और कायरता की नहीं।

नानकदेव का निम्न पद बाबर के प्रति माना जाता है। कुछ समीक्षक इसे बाबर का स्तुतिपरण पद मानते हैं लेकिन हमारी अवधारणा के अनुसार यह मेल नहीं खाता क्योंकि नानकदेव वे कई स्थानों पर बाबर की कठोर आलोचना की है और वहीं नानक बाबर की स्तुति करेंगे यह बात ठीक प्रतीत नहीं होती। 'पृथ्वीपति' विष्णु का अवतार है यह अवधारणा हमारे मन में इस कदर बस गई है कि उससे मुक्त होना हमारे लिए असंभव ही नहीं बल्कि नामुमकिन भी है। राजा और ईश्वर दोनों को समान दृष्टी से देखने की परंपरा हिंदुस्तान में प्राचीन काल से हैं और आज भी हम अपनी इसी अवधारणा से मुक्त नहीं हो सके हैं।

''भउ तेरा भाँग खलडो मेरा चीतु। मैं देवाना भइआ अतीतु।।
कर कासा दरसन की भूख मैं दरि मागउ नीतानीत।।
तब दरसन की करउ समाइ। मैं दर मागतु भीखिया पाइ।।
केसरि कुसुम गिरगै मै हरणा सरब सरीरी चढ़ना।
चंदन भगता जोति इनेही सरबे परमलु करणा।।
घिअ पट मांडा कहै न कोइ। एता भगतु वरन महि होइ।।
तेरे नामि निबे रहे लिव लाइ। नानक तिन दरि भीखिआ पाइ।।[5]

बाबर के क्रूर आक्रमण से तत्कालीन हिंदू समाज आतंकित था और इसलिए नानकदेव बाबर का समर्थन करेंगे यह बात समीचीन नहीं लगती। इस पद की इतनी विस्तार से चर्चा इसलिए की है कि अक्सर इससे नानकदेव पर विभूतिपूजा का इल्जाम लगाया जा सकता है। नानकदेव को अपनी धरती से केवल न लगाव था बल्कि प्रेम भी था और इसी कारण आगे ऐसी पीढ़ियों का निर्माण हुआ जिन्होंने इस महादेश के लिए कुर्बानी दी है और मौत के डर से उनके कदम डगमगाए नहीं। हमारी दृष्टि से यह ईश्वर की स्तुति ही है।

नानकदेव ने अपनी काव्यधारा के माध्यम से तत्कालीन नारी दुर्दशा को जो वर्णन किया है वह अपने आप में अनूठा है और उसकी किसी अन्य कवि की काव्यधारा के साथ तुलना भी नहीं की जा सकती और एक स्थान पर नानकदेव की वाणी देखिए जो स्त्री विमर्श की वकालत करती है और वह भी सशक्त ढंग से –

भंडि जमीए भंडि निमोए भंडि मंगणु वीआहु।
भंडहु होय दोसती भंडहु चलै राहु।।
भंडु मुआ भंड भालिए भंडि होवे वंधानु।
सो किउ मंदा आखीए जितु जंमहि राजान।।
भंडहु ही भंडु उपजै भंडे वाघु न कोई।
ननक भंडै वाहरा एकौ सच्चा सोई।।[6]

नानकदेव ने नारी महत्ता मुक्त की से प्रतिपादित की है। उनके अनुसार स्त्री ही आदिशक्ति है जिससे इस संसार का निर्माण होता है। स्त्री से ही सभी निर्माण होते हैं और अंत में स्त्री ही इस दुनिया का मूलाधार है। इस सृष्टि के रचैता एक मात्र ईश्वर हैं जो स्त्री से उत्पन्न नहीं हुआ है।

नानकदेव का धर्म दर्शन करमखण्ड, धरमखण्ड, गियानखंण्ड, करमखण्ड और सचखण्ड में विभाजित है। आज कल सिख पंथ को हिंदु धर्म से अलग मानने का पुरजोर प्रयास किया जा रहा है किंतु नानकदेव का दर्शन भारतीय दर्शन परंपरा से भिन्न नहीं है। नानकदेव ओम अथवा प्रणव को सर्वाधिक महत्व प्रदान करते हुए लिखते हैं –

''ओअंकारि ब्रह्मा उतपति। ओअंकारि कीया जिनि चिति।।''[7]

नानकदेव की विचारधारा के अनुसार ईश्वर एक है और वह सत्य है। उसी ईश्वर ने निर्गुण से सगुण को साकार किया है। निर्गुण का गुणगान करना आसान है किंतु उससे मन में कई प्रकार की भ्रांतियाँ निर्माण हो सकती हैं इसकारण मनुष्य ने सगुण साकार की उपासना करना अधिक उचित माना है और सगुण तथा निर्गुण दोनों का कर्ता एकमात्र ईश्वर है और इसलिए नानकदेव ने कहा भी है –

'अविगतो निरमाइलु उपजै, निरगुण ते सरगुण धीआ।'[8]

परमात्मा की आज्ञा के बगैर एक पेड़ का पत्ता भी नहीं हिलता इस वाणी से हम सभी परिचित हैं। बिलकुल इसी तर्ज पर नानकदेव ने कहा है –

''हुकमैं अंदरि सभु को बाहरी हुक्म न कोई
नानक हुक्में जो बुझें, त हउमैं कहै न कोई।''[9]

नानकदेव के अनुसार सभी जीवजंतुओं में ईश्वर रहते हैं। परमात्मा की उस दिव्य ज्योति से यह संपूर्ण जगत आलोकित होता है इसलिए हर जीव में ईश्वर का निवास निहित है। नानकदेव कहते हैं –

''सब माहि जोति जोति है सोई। जिसदै चानणि सभ महि जानणु होई।।''[10]

नानकदेव का मानवतावाद का दायरा कबीर की तुलना में कही अधिक विशाल है। नानकदेव के निम्न पदों पर गीता का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है–

''देही अंदरि नामु निवासी आपे करता है अविनासी
ना जीऊ मरै, न मारिआ जाई, करि देखै सबदि रजाई रे।''[11]

इस पद के माध्यम से आत्मा की अमरता पर नानकदेव ने रोशनी डाली है और एक पद में नानकदेव कहते हैं–

''ना जीऊ मरै न, न डूबै तरै।''[12]

नानकदेव की काव्यधारा में सगुण–निर्गुण यह विवाद तथा खण्डन मण्डन पर अधिक बल नहीं है। इसलिए हमने कहा कि नानकदेव महान समन्वयवादी थे।

नानकदेव का यह मानवतावाद का संदेश केवल हिंदुओं को ही नहीं बल्कि मुस्लिम जनमानस को भी उनकी और खींचने लगा। पाखंड और अंध विश्वास यह केवल हिंदू धर्म में ही व्याप्त नहीं है बल्कि संसार का कोई भी

मजहब इससे आजाद नही है इसलिए उनकी ओर हिंदु और मुस्लिम दोनों भी आकर्षित हुए हैं इसमें कोई अचरज की बात नहीं है। निम्न पंक्तियों से नानकदेव के मानवतावाद का परिचय होता है जो संपूर्ण वैश्विक स्तर पर अपने आप में अनूठा एवं निराला है।

नासदीय सुक्त (ऋग्वेद 10/129) का नानकदेव पर भी प्रभाव परिलक्षित होता है। जल से सृष्टि का निर्माण होता है इस मत को कुरआन, बाइबल ने भी मान्यता दी है और लोकमान्य तिलक इसे विश्व का सर्वश्रेष्ठ दर्शन मानते हैं। श्रीकृष्ण, सरहपा, कबीर से लेकर महाकवि प्रसाद तक सभी इस विचार से प्रभावित हैं जिसे कोई नकार नहीं सकता। नानकदेव ने अपने उपर होने वाले नासदीय सुक्त के प्रभाव को इस तरह से स्पष्ट किया है–

"अरबद नरबद धधकास, धरणि न गगना हुकमु अपारा।
न दिनु रैनि न चंदु न सुरजु, सुन समाधि लगाइदा।।
खाणी न बाणी पउणुन पाणी, ओपति खपतिण आवणजाणी।
खंड पताल सपत नहीं सागर नदी न नीरू बहाइदा।।
न तदि सुरगु मधु पइताला, दोजखू भिसतु नही खैकाला।
नरकु सुरगु नही जमणु मरण ना को आइ न जाइदा।।
ब्रह्मा बिसनु महेसु न कोई, अवरू न दीसै एको सोई।
नारि पुरखु नही जाति न जनमा ना को दुखु सुखु पाइदा।।[13]

ऋग्वेद के नासदीय सुक्त की अमिट छाप नानकदेव की प्रस्तुत रचना पर दिखाई देती है–

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं। नासीद्रजो नो व्योमा परो यत् ।।
किमावरीव कुह कस्य शर्शन्नम्भः। किमासीद् गहनं गभीरम् ।।
न मृत्यूरासीद् अमृतं न तर्हि। न रात्रया अह्न आसीत् प्रकेतः।।
आनीदवातं स्वधया तदेकं। तस्माव्दान्यन्न परः किं चनास।।
तम आसीत्तमसा गूलह्मग्रे। अप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्त। तपसस्तन्महिना जायतैकम्।।
कामस्तग्रे समवर्तताधि। मनसोरेतः समवर्तताधि।।
मनसोरेतः प्रथमं यदासीत्।
सतो बंन्धुमसति निरविन्दन। हृदि प्रतीश्या कवयो मनीशा ।।
तिरष्चीनो विततो रश्मिरेशामधः। स्विदासीदुपरि स्विदासीत्।।
रैतोधा आसन्महिमान आसन्त्स्वघा। अवस्तात्प्रयतिः परस्तात्।।
को अद्धा वेद क इह प्रवोचत्। कृत आजाता कुत इयं विसृष्टिः।।
अर्वाग देवा अस्य विसर्जनेन। अया को वेद यत आबभूव ।।
इयं विसृष्टिर्यत आ बभूव। यदि वादधे यदि व न।।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो। अंगवेद यदिवा न वेद।।[14]

महात्मा बसवेश्वर की तरह गुरु नानकदेव ने भी वर्णव्यवस्था की आलोचना की है। इतना ही नहीं बचपन में जब उन्हें यज्ञोपवित संस्कार करने के लिए कहा गया तब उन्होंने इसे स्पष्ट शब्दों में नकार दिया और जातीय वर्णव्यवस्था के खिलाफ अपनी आवाज बुलंद की। इतना ही नहीं उन्होंने यह भी कहा की मैं सदैव नीच एवं निम्न जाति से सदैव सरोकार रखता हूँ। मुझे उच्चवर्ण से कोई लेनदेन नहीं है बल्कि मैं सदैव उनका साथ दूँगा जिनका साथ कोई नहीं देता। इसलिए उन्होंने लिखा भी है –

''नीचा अंदरि नीच जाति नीची हूँ अति नीचु।
नानक तिनकै संगि साथि वडिआ सिउ किआ रसि।।''[15]

इस बात से हम सब परिचित हैं कि पहले वर्णव्यवस्था नहीं थीं और जाति कर्म पर निर्धारित होती थी। अर्थात मनुष्य का व्यवसाय उसकी जाति को सुनिश्चित करता था। स्वयं: भगवान श्रीकृष्ण भगवत्गीता में कहते हैं –

''चातुर्वर्ण्य मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्।।''[16]

यह बात अलग है कि वर्तमान परिप्रेक्ष्य के कुछ विचारक इसका गलत अर्थ लगाते हुए श्रीकृष्ण को गुनाहगार साबित करने की कोशिश करते हैं किंतु वह बात अलग है। जातियता पर चोट करते हुए गुरु नानकदेव ने कहा है –

''जाणुहु जाति न पुछ कहु जाती, आगे जाति न है।''[17]

स्त्री विमर्श यह शब्द भले ही आधुनिक है किंतु नानकदेव की वाणी स्त्री को पुरुष से भी अधिक ऊँचा स्थान प्रदान करती है। स्त्री पुरुष दोनों समान है और उन्हें समान धरातल मिलना वाजिब है। आमतौर पर आज हम देखते हैं कि घर में शौचालय नहीं है इसलिए नारी को अपने पति का घर छोड़ना पड़ता है और यह बहस का मुद्दा बन जाता है। प्रियंका भारती इसकी मिसाल है।

स्त्री की महिमा गाते हुए स्त्री को पुरुष के बराबर अधिकार मिलने चाहिए इस बात की तसदीक करते हुए उन्होंने कहा था–

''सभ उपज सो इक बूंद सो सभ एक समान।
जिन सेविआ तिनि पाइआ मान।।''[18]

नानकदेव भ्रमणशील व्यक्ति रहे। केवल हिंदुस्तान ही नहीं बल्कि एशिया के अन्य स्थानों की भी उन्होंने कई बार यात्राएँ की थीं जिसका असर उनकी भाषा पर हुआ है। अपने परिप्रेक्ष्य का अत्यंत गंभीरता से अध्ययन करते हुए उन्होंने तत्कालीन सामाजिक रुढ़ि एवं कुप्रथाओं पर निर्मम प्रहार किया हैं। किंतु ऐसा करने समय उन्होंने किसी का ह्रदय नहीं तोड़ा यह नानकवाणी की सबसे बड़ी विशेषता है।

नानकदेव के अनुसार सत्य की प्राप्ति मनुष्य की सबसे बड़ी मंजिल है। बाह्य दिखावे से ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती क्योंकि इसके लिए मन की आँखें खुली रखना आवश्यक है। मानव ईश्वर को प्राप्त कर सकता बशर्ते उसका अंतकरण शुद्ध, पवित्र एवं निर्मल हो। इसलिए उन्होंने लिखा भी है –

''दीवा मेरा एकु नामु दुखु विचि पाइआ तेल
उनि चानणि उहु सोखिआ चुका सिऊ मेल।''[19]

परमात्मा की संकल्पना को स्पष्ट करते हुए नानकदेव कहते हैं कि ईश्वर एक है और कल्पनातीत है। उसे केवल गुरु के माध्यम से ही प्राप्त किया जा सकता है। अर्थात सद्गुरु की कृपा के सिवा ईश्वर प्राप्ति संभव नहीं हैं। ईश्वर प्राप्ती के लिए सद्गुरु के शरण में जाना अति आवश्यक है और गुरुकृपा के द्वारा ही ईश्वर के पास हम जा सकते हैं। इस कारण गुरु नानकदेव ने लिखा है –

''ओंकार, सतिनामु करता पुरखु निरभऊ निरवैर।
अकाल मुरति अजूनी सैभं प्रसादि।।''[20]

गुरु नानकदेव ने यज्ञोपवित अर्थात जनेऊ पहनने से इन्कार किया था यह बात हम सब जानते हैं। जो ब्रह्म को जानता है वह ब्राह्मण हैं यह यह ब्राह्मण शब्द की परिभाषा है। इसलिए कुपित होकर नानकदेव कहते हैं–

''बेतगा आपे वतै। वटि धार्ग अवरा थतै।।
लैभाडि करे विआहु। कठि कागलु दसे राहु।।
सुमि वेख हु लोका एहु विडाणु। मनि अंधा नाउ सुजाणु।।''[21]

उपरोक्त बात से अचरज नहीं होता क्योंकि नामदेव, कबीर सहित तुलसी ने भी उन ब्राह्मणों की आलोचना की हैं जो प्रवाह पतित एवं पथभ्रष्ट हुए हैं। जनेऊ के कारण ब्राह्मणों में अहंकार बढ़ जाता था और इसी कारण ब्राह्मण वर्ग आलोचना का शिकार हुआ था। नानकदेव की वाणी में भी यहीं स्वर उभरते हैं। इनके संदर्भ में नानकदेव का स्वर और भी कड़ा हो जाता है और इसलिए वे कहते हैं –

''पडी ए जैसी आरजा पडीअहि जेते सास।
नानक लेखै इक गल होरू हउमै झाखणा झाख।।''[22]

निष्कर्ष—संत नामदेव द्वारा प्रचलित संत परंपरा में नानकदेव का स्थान सर्वोपरि है। भले ही वे कबीर से प्रभावित हैं लेकिन अनमें और कबीर में समानताओं की अपेक्षा मतभिन्नता अधिक है। संत परंपरा में कबीर, रैदास, मलूकदास, दादूदयाल और सुंदरदास आदि आते हैं लेकिन नानकदेव में जो विषय भिन्नता विद्यमान है जो इन कवियों में नहीं है।

नानकदेव का मानवतावाद अत्यंत विशाल है जो समुचे विश्व को व्याप्त करता है। निर्गुण भक्ति का समर्थन करते हुए नानकदेव ने सगुण भक्ति का खंडन नहीं किया है। अधिक भक्त कवियों की तरह उन्होंने सगुण भक्ति के मनपुत गीत गाए हैं। उनमें विषय विविधता मिलती है और इस कारण उन्होंने तत्कालीन समाजमानस पर अपनी एक अमीट छाप छोड़ी है। इतना ही नहीं नानकदेव ने अपने समवर्ती कवियों के साथ परवर्ती कवियों को भी प्रेरित किया है। 'सरबत दा भला' अर्धात 'सब का भला हो' यह उनकी अवधारणा थीं जिससे संपूर्ण समाज प्रभावित हुआ है।

ईश्वर प्राप्ति की तीव्र प्यास, सजीव युद्धवर्णन, समकालीन परिवेश चित्रण, स्त्री एवं दलित विमर्श, भक्ति भावना, रहस्यवाद आदि बातों से नानकदेव का काव्य परिपूर्ण है और परवर्ती कवियों साथ उन्होंने सिख गुरु परंपरा पर अपनी जो छाप छोड़ी है वह आज भी कायम है और काल के कराल हाथ इसे मिटा नहीं सके हैं।

इस देश की लिए बलिदान देने वाली और आजादी के लिए अपना सर्वस्व निछावर करने वाली पीढ़ियों के निर्माण का श्रेय गुरु नानकदेव को ही जाता है। उन्हें यह श्रेय देने के लिए मन में जरा भी दुविधा नहीं है। उन्होंने न केवल देशभक्तों की फौज का निर्माण किया बल्कि बलवान और सशक्त हिंदुस्तान की निर्मिती के लिए अपना योगदान दिया है। अंत में हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि नानकदेव अपने समय के सशक्त हस्ताक्षर थे। जिन्होंने अपना उत्तरदायित्व निभाते हुए एक ऐसे राष्ट्र का निर्माण किया जो आज भी विद्यमान है।

संदर्भ–संकेत

1. मिश्र, रामप्रसाद, प्रमुख संत कवि, पृ. 87
2. वही, पृ. 87.
3. वही, पृ. 87–88
4. वही, पृ. 85
5. वही, पृ. 85
6. वही, पृ. 89–90
7. वही, पृ. 76
8. मिश्र, जयराम (सं.), नानकवाणी, पृ. 55
9. वही, पृ. 55
10. मिश्र, रामप्रसाद, प्रमुख संत कवि, पृ. 82
11. वही, पृ. 79
12. वही, पृ. 79
13. वही, पृ. 87
14. नासदीय सुक्त ऋग्वेद 10/129
15. डॉ. भारिया सुरेश, संत कवि नानक, पृ. 31
16. श्रीमद्भगवतगीता, 4/13
17. रागु आसा महला 1 सबद
18. महला 1 आसा पृ. 454 एवं महला 1 जपु. पृ. 2
19. महला 1 आसा पृ. 358
20. मिश्र जयराम (सं.), नानकवाणी, पृ. 54
21. महला 1 आसा पृ. 471
22. डॉ. भारिया सुरेश, संत कवि नानक, पृ. 56

* * * * *

.

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 106-111

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

मधु कांकरिया के 'सूखते चिनार' में आतंकवादी दानव का कहर

*डॉ. किरण ग्रोवर**

पूरी दुनिया में आज यदि कोई शब्द सबसे अधिक पढ़ने और सुनने को मिलता है तो वह है–आतंकवाद यानी टेररिज़्म! ऐसा लगता है कि सोते जागते, उठते बैठते, हर समय दुनिया भर के सत्ताधारियों को आतंकवाद का भूत सताता रहता है। किसी भी व्यवस्था को बदलने की चाहत रखने वाले लोग जब मुख्य या एकमात्र रणनीति के रूप में आतंक का इस्तेमाल करते हैं तो उसे आतंकवाद कहते हैं। 21वीं सदी में आतंकवाद की समस्या एकल समाज की नहीं अपितु अखिल समाज, सम्पूर्ण देश व पूरे विश्व की ज्वलंत समस्या बन चुका है जिसका हम भारत में लगभग पाँच दशकों से अधिक समय से सामना कर रहे हैं। आतंकवाद के भयावहता से कौन नहीं परिचित है। यह वर्तमान युग में मानवता के लिए आपदा के रूप में उभरा है यहां तक कि यह दीमक की तरह मानव की संवेदनाओं को निगल रहा है और समाज मूकदर्शक बन शक्तिहीन और निस्सहाय बन चुका है। वास्तव में आतंकवाद का अभिप्राय उन आपराधिक कृत्यों से है, जो किसी राज्य के प्रति विमुख हों जिनका उद्देश्य जनमानस में भय उत्पन्न करना हो। आतंकवाद सामाजिक समूहों एवं राजनीतिक शक्तियों के बीच संघर्ष है, कहने का तात्पर्य है कि चंद स्वार्थी संगठनों ने अपने उद्देश्य की पूर्ति हेतु हिंसा को अपना माध्यम बनाया है। आतंकवाद व्यापक जनता की शक्ति की बजाये मुट्ठीभर क्रान्तिकारियों की वीरता, कुर्बानी के जज़्बे और हथियारों की ताकत पर अधिक भरोसा करते हैं। आतंकवाद क्रान्ति के विकास पथ को एक सीधी रेखा के रूप में देखता है। भगत सिंह ने अपने आख़िरी दस्तावेज़ में क्रान्तिकारी कार्यक्रम का नया मसविदा पेश करते हुए आतंकवाद की जो आलोचना प्रस्तुत की वह आज भी प्रासंगिक है–'आतंकवाद हमारे समाज में क्रान्तिकारी चिन्तन के पकड़ के अभाव की अभिव्यक्ति है या एक पछतावा। इसी तरह अपनी असफलता का स्वीकार भी। सभी देशों में इसका इतिहास असफलता का इतिहास है। फ्रांस, रूस, जर्मनी में, बाल्कन देशों में, स्पेन में हर जगह इसकी यही कहानी हैं। इसकी पराजय के बीज इसके भीतर ही होते हैं।' वास्तव में आतंकवाद क्रान्तियों की पराजय से उपजी निराशा की देन है। आतंकवाद की धारा तब मजबूत बनकर उभरती है जब क्रान्तियों की पराजय का दौर होता है, शोषकवर्गों को जब मनमानी छूट होती है, जब क्रान्ति की लहर पर प्रतिक्रान्ति की लहर हावी होती है।[1]

आतंकवाद से पूरा विश्व त्रस्त है,एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को इस प्रकार आमदा हो चुका है कि क्या बूढ़े, क्या बच्चे, आज हर कोई आतंकवाद के चंगुल में फंसा हुआ है। पेशावर में स्कूली बच्चों की हत्या, पेरिस में खतरनाक हमला, मुम्बई में होटल ताज पर हमला, मास्को के मैट्रो स्टेशन पर हमला, सोचि ओलम्पिक खेलों में आत्मघाती हमला, वोल्गोग्राद के रेलवे स्टेशन पर बम धमाका, जर्मनी में ट्रक द्वारा लोगों को रौंदा जाना, भारत की संसद पर हमला, पठानकोट व उड़ी हमले जैसी खौफनाक वारदात को अन्जाम देना, बोको हरम द्वारा महिलाओं को अगवा कर बलात्कार की घटना, अफगानिस्तान व ईराक में तालिबानी आतंक, वर्ल्ड टेड टॉवर को हवाई हमले में उड़ाने की घटना हो आज आतंकवाद एक भयावह समस्या बन गया है।[2] यह मानने में कोई हर्ज़ नहीं कि दुनिया में किसी भी प्रकार का आतंकवाद हो तो उसके तार कहीं से धार्मिक कट्टरता से जुड़े होते हैं, सारा पैसा, हथियार और अपनी जान लुटाने वाले लोग सब धर्म को अफीम के नशे की तरह मानते हैं। दूसरे धर्म की कट्टरता का खुलकर विरोध करना और अपने धर्म की कट्टरता की वजह से फैलते आतंक को तर्क देकर सही ठहराना आतंकवाद का

* *एसोसिएट प्रो., स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, डी.ए.वी. कॉलेज, अबोहर*

समर्थन करना ही है।[3] सवाल उठता है कि आतंकवाद की उपज कहां होती है, इसे खाद कहां से मिलती है। आतंकवाद का सम्बन्ध इन्सान के संस्कारों से है, किसी धर्म या किसी जाति से नहीं। संस्कार का मतलब है जो आदतें हम दिन प्रतिदिन करते हैं उनकी छाप दिमाग पर बन जाती है और साइबर युग में आसानी से उभर आती है। आतंकवादी हमले न केवल ज़िन्दगी छीनते हैं बल्कि स्वास्थ्य और लोगों की उम्मीदों का भी क़त्ल कर देते हैं तथा साथ ही भौतिक तथ्यों, रहन–सहन, आवास, खेती, पुल, जलसंसाधन, अस्पताल और बाकी तथ्यों को भी बिगाड़ देते हैं।[4] खेती की ज़मीन ज़हरीली हो जाती है, सड़कों व गलियों में माइन्स लगा दिये जाते हैं, इस तरह के हमलों का सीधा अर्थ यह होता है कि लोगों को खाना भी नसीब नहीं होगा, पानी पीने लायक नहीं होगा, इमारतें टूटी–फूटी होंगी, स्वास्थ्य सुविधाएं दूभर हो जायेंगी और शत्रुता की समाप्ति के बाद भी लोगों की ज़िन्दगी दयनीय होगी, यह हालात मानवता के लिए चिन्तनीय व शोचनीय है।[5]

विष्व के महापुरुषों ने अपनी अपनी संस्कृति को सर्वोत्कृष्ट रखने का प्रयत्न किया था ,जिसमें भारत ने विश्वगुरु की उपाधि भी धारण की लेकिन आज समग्र जगत एक ऐसी बीमारी का शिकार हो रहा है जिसकी समाप्ति अत्यन्त दुश्कर है। यह बीमारी लाइलाज है और वैश्विक महामारी का रूप ले चुकी है। 16 नवम्बर, 2016 को 'इन्स्टीच्यूट फॉर इकानोमिक्स एण्ड पीस' ने वैश्विक आतंकवाद सूचकांक–2016 प्रकाशित किया जिसमें कुल 165 हताहतों की संख्या, सम्पति का नुकसान तथा आतंकवाद के मनोवैज्ञानिक प्रभाव का विश्लेषण किया था जिसमें शीर्ष पांच देशों में क्रमशः ईराक प्रथम, अफगानिस्तान द्वितीय, नाईजीरिया तृतीय, पाकिस्तान चतुर्थ, सीरिया पांचवें स्थान पर है। सूचकांक में भारत 8वें स्थान पर और विश्व के अन्य विकसित देशों में ब्रिटेन को 34वां, फ्रांस कां 29वां, रुस को 30वां, अमेरिका को 36वां तथा जर्मनी को 41वां स्थान प्राप्त हुआ।[6]

आज विश्व का शायद ही कोई ऐसा देश हो, जिसने किसी न किसी रूप में आतंक का प्रहार न झेला हो। अविकसित एवं विकासशील देश तो आतंकवाद के निशाने पर हैं। आतंकवाद कई प्रकार का होता है–

राष्ट्रीय आतंकवाद का संबंध राष्ट्रीय, जातीय अथवा धार्मिक आदि समूहों के साथ होता है। आयरिश रिपब्लिकन आर्मी और फिलिस्तीन लिबरेशन ऑर्गेनाइजेशन आदि।

धार्मिक आतंकवाद का क्षेत्र बहुत ही व्यापक है। अलकायदा, फिलिस्तीनी सुन्नी समूह, लेबनानी शिया समूह, हेजबुल्लाह आदि इसी श्रेणी के प्रमुख आतंकवादी संगठन हैं।

वामपंथी आतंकवाद में पूँजीवादी व्यवस्था का विनाश कर समाजवादी व्यवस्था को स्थापित करना होता है। बादेर–मिनहॉफ समूह (जर्मनी), जापानी रेड आर्मी, रेड ब्रिगेड (इटली) एवं विदरमैन समूह (अमेरिका) आदि वामपंथी श्रेणी में शामिल हैं।

दक्षिणपंथी आतंकवादी समूह उदारवादी लोकतंत्र एवं खुले समाज के विरुद्ध होते हैं।

राज्य–प्रायोजित आतंकवाद में एक देश अपने कट्टरपंथियों को उकसाकर अपनी विदेश नीति के तहत किसी दूसरे देश के विरुद्ध आतंकी कार्यवाही करता है।

साइबर आतंकवादी सूचना प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल कर सामान्य नागरिकों को निशाना बनाया जाता है। बैंक फ्रॉड, करेंसी का आदान–प्रदान, वेबसाइट का हाइजैक आदि कई प्रकार की गतिविधियाँ इसका अभिप्रेत हैं।

जैविक आतंकवाद में किसी व्यक्ति, समाज या राष्ट्र को क्षति पहुँचाने के लिए जैविक, रासायनिक और नाभिकीय हथियारों का इस्तेमाल।

पर्यावरण संबंधी आतंकवाद में उद्योग आदि में आर्थिक नुकसान पहुँचाने के प्रयास होते हैं। संरक्षित वन–प्रजातियों एवं पशु–पक्षियों को भी इसमें निशाना बनाया जाता है।

परमाणविक आतंकवाद में परमाणविक पदार्थों से आतंकी गतिविधियों को अंजाम देना।

सांस्कृतिक आतंकवाद गरीब और लाचार देशों की सांस्कृतिक विरासतों को मिटाकर अपने अनुकूल बनाना सांस्कृतिक आतंकवाद का उद्देश्य होता है।

राजनीतिक आतंकवाद में राजनीतिक उद्देश्य के लिए किसी समुदाय को डराने के लिए हिंसक आपराधिक व्यवहार करना।

अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद किसी संगठन द्वारा व्यापक अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक देशों में किसी एक समानता या उद्देश्य को ध्यान में रखकर आतंकवादी कार्यवाही करना।

उपर्युक्त आतंकवाद के प्रकारों के साथ साथ लिंग आधारित आतंकवाद, अभिजातवादी आतंकवाद, दलित चेतनावादी आतंकवाद, क्षेत्रीय पृथक्तावादी आतंकवाद, साम्प्रदायिक आतंकवाद, जातीय आतंकवाद, जेहादी आतंकवाद, विस्तारवादी आतंकवाद से लेकर प्रायोजित आतंकवाद तक शामिल हैं। संसार का कोई भी देश ऐसा नहीं जो आतंकवाद की पीड़ा से न गुज़रा न हो। भूमण्डलीकरण के दायरे के साथ ही आतंकवाद का दायरा भी विस्तशत होता गया, आज यह सुरसा के मुंह की तरह विभिन्न रूपों में फैल रहा है। वस्तुतः आतंकवाद एक ऐसा सिद्धान्त है जो भय या त्रास के माध्यम से अपने लक्ष्य की पूर्ति करने में विश्वास रखता है।[7] नवयुवकों में तीव्र आक्रोश की प्रवृत्ति, सामाजिक व्यवस्था में विद्यमान आपाधापी, शिक्षित बेरोजगारी, नशीले पदार्थों का व्यसन, आर्थिक असमानता, सामाजिक बहिष्कार, अवैध शास्त्र निर्माण व भण्डार, चुनावी राजनीति, शिक्षण संस्थाओं में नैतिक शिक्षा का अभाव, नस्लीय अल्पसंख्यकों का दमन, जनजातीयवाद, जनसंख्या वृद्धि जैसी समस्याएं देश में आतंकवादी प्रवृत्ति को बढ़ावा देती है।

समाज और साहित्य एक दूसरे के पूरक होते हैं। साहित्य रचना सामाजिक व्यवस्था के अनुसार ही विनिर्मित होती है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है, इसलिए कुछ सामाजिक व्यवस्थाओं का सामना करना पड़ता है। समाज में स्थित इन व्यवस्थाओं में जातीय, नैतिक, शैक्षणिक आदि सामाजिक व्यवस्थाएं शामिल होती हैं, इन सामाजिक व्यवस्थाओं का जिक्र न करने से साहित्य रचना अधूरी रह जाती है।[8] तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था से प्रभावित होकर साहित्यकार अपनी रचनाओं की सृष्टि करता है। समाज की सारी व्यवस्थाओं को साहित्यकार सांकेतिक रूप में अपनी रचनाओं में समेट कर रचना क्षेत्र को समृद्ध करता रहता है। साहित्य की अनेक विधाएँ हैं, इन विधाओं में उपन्यास अपने आप में महत्त्वपूर्ण है। समाज में घटित घटनाओं का अत्यन्त सजग बोध उपन्यास के द्वारा मिलता है। उपन्यास जीवन का वैज्ञानिक व दार्शनिक अध्ययन है। जीवन इस सजग बोध व बोध वृत्ति से मनुष्य की चेतना व्यापक हो जाती है।[9] उपन्यासकार निःशंक होकर समाज के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त करता है।

महिला कथाकारों में मधु कांकरिया की रचनाओं में विचार व संवेदना की नवीनता मिलती है। समाज में व्याप्त ज्वलन्त समस्याओं यथा अपसंस्कृति, महानगर की घुटन व असुरक्षा के बीच युवाओं में बढ़ती नशे की आदत, लालबती इलाकों की पीड़ा पर मधु कांकरिया ने अपनी लेखनी चलाई है। मधु कांकरिया के उपन्यासों में यथा खुले गगन के सितारे, सलाम आखिरी, पता खोर, सेज पर संस्कृत, सूखते चिनार, कहानी संग्रहों में बीतते हुए और अंत में ईसु, चिड़िया ऐसे मरती है, भरी दोपहरी के अंधेरे, युद्ध और बुद्ध आदि मुख्य हैं। कांकरिया जी को कथाक्रम पुरस्कार 2008, हेमचन्द्र स्मृति साहित्य सम्मान 2009, समाज गौरव सम्मान 2009, विजय वर्मा कथा सम्मान 2012 से सम्मानित किया जा चुका है।

आतंकवाद गतिरोध, जड़ता, पराजय और प्रतिक्रिया के घुटन भरे दौरों में एक ही साथ निराशा और जिजीवषा भरे विद्रोह की ही अभिव्यक्ति होती है। मधु कांकरिया ने दीमक की तरह मानव की संवेदनाओं को निगलने वाले आतंकवाद को मानवीय आपदा के रूप में उभारा है। सामाजिक समूहों एवं राजनीतिक शक्तियों के बीच संघर्ष की दास्तान सुनाने वाली आतंकवादी गतिविधियों को प्रत्यक्ष रूप में देखा, परखा व अभिव्यक्त किया है। मधु कांकरिया ने 'सूखते चिनार' उपन्यास में जम्मू–कश्मीर में जारी आतंकवाद का ऐसा प्रतिपादन किया है, वर्तमान परिवेश में समाज को इसने विगलित कर दिया है कि उसका दुष्प्रभाव समाज के प्रत्येक वर्ग पर है। अबोध और अनजान बच्चों को आतंकवादी गतिविधियों में पूर्ण रूप से संलग्न किया जा रहा है। शिक्षा ग्रहण करने की आयु में उनके हाथों में बंदूक थमा दी जाती है। पेट की आग बुझाने के लिए व्यक्ति बड़े से बड़ा अपराध करने को तत्पर हो जाता है। जब व्यक्ति छोटी–छोटी ज़रूरतें पूरी नहीं कर पाता तो वह गुनाह का रास्ता अपनाता है। जहाँ तक कि बच्चे भी इसकी चपेट में आ जाते हैं। विवेच्य उपन्यास में कश्मीर के लोगों की बदहाली का चित्र रूपायित किया है जो रोगटें खड़े कर देने वाला है ''उस बच्चे के पास से निकला एक करोड़ का चरस, पर उसे पता नहीं था। उसे तो सिर्फ मिलने थे 100 रुपये, इस पार से उस पार जाने के।''[10] जिन बच्चों को देश का भविष्य माना जाता है, उनका खुद का भविष्य अंधकार में है। मासूम बच्चे जो इतने गम्भीर अपराधों में संलिप्त हो गये हैं, उन्हें

इस अपराध की गम्भीरता का तनिक भी एहसास नहीं है। कुछ पैसों के लोभ में बच्चे इस व्यवसाय में शामिल हो जाते हैं। लेखिका अर्थाभाव के कारणों को स्पष्ट तो करती है साथ ही इस देश की आर्थिक व्यवस्था पर चोट करते हुए कहती है–''इस देश में अभी भी 223 करोड़ लोग भूखे सोते हैं। बाल श्रमिक बढ़ रहे हैं। गाँव उजड़ रहे हैं। आदिवासी विस्थापित हो रहे हैं। कन्या भ्रूणहत्याएँ बढ़ रही हैं। करोड़ों लोगों की प्रति व्यक्ति आय महज 20 रुपये प्रतिदिन है। यदि खुशहाली होती तो माओवादी नहीं बढ़ते। भूखा आदमी ही उठाता है गन।''[11] आतंकवाद की जड़ें इतनी मजबूत हो गयी हैं और इसका प्रभाव इतना दुःखद है कि बच्चे बचपन से ही बेरहम खेल खेल रहे हैं।

कश्मीर के लोगों का रवैया विवेच्य उपन्यास में हिन्दुओं के प्रति नकारात्मक प्रतीत होता है। कश्मीर में स्थानांतरण होने के बाद उपन्यास का पात्र सन्दीप वहाँ पर अजनबीपन की स्थिति को अनुभव करता है। हिन्दू होते हुए भी उसे अपनी पहचान छिपानी पड़ती है। वह सन्दीप से मोहम्मद अजहर बन जाता है। इस उपन्यास में सिद्धार्थ जब अपने भाई सन्दीप से मिलने बेस कैम्प आता है तो वह यह सुनकर आश्चर्यचकित रह जाता है कि चेरीवाला सन्दीप को अजहर साहब कहकर बुलाता है। सिद्धार्थ द्वारा सन्दीप को पूछने पर कि आखिर क्या कारण है कि उसे अपनी पहचान छिपानी पड़ी तो इस सन्दर्भ में सन्दीप का कथन है –"सुरक्षा की दृष्टि से जरूरी है, स्थानीय लोग जैसे फल वाले, सब्जी वाले, राशन वाला, केसर चेरी बेचने वाले, यहाँ तक किश्शॉल–कालीन बेचने वाले भी मुझे मुसलमान यानि मोहम्मद अजहर समझें, हिन्दू नहीं क्योंकि हमें गाँव के चप्पे–चप्पे की जानकारी रखनी होती है। कौन आया? कौन गया? कौन किससे मिलता है। किस घर से आतंकवादी निकला? किसके तार जुड़े हैं आतंकियों से। किस घर में कितने लोग हैं? कौन क्या करता है? किसकी अन्दरूनी हालत कैसी है? किसके यहाँ नया पैसा आया। नया बच्चा आया तो इसके लिए जरूरी है कि हम इनके बीच पानी के बीच मछली की तरह घुल–मिल जाएं। अब यहाँ के जबर्दस्त एंटी वातावरण में यह कैसे सम्भव है।"[12] सन्दीप को वहाँ पर रह रहे स्थानीय लोगों से गोपनीय सूचना प्राप्त करने के लिए अपना नाम बदलना पड़ता है।

लेखिका आतंकवाद का कारण आर्थिक अभाव मानती है ज़मील ऐसा ही पात्र है जो आर्थिक अभाव के चलते आतंकवादी बन जाता है,''ज़मील ने भी जानलेवा भूखमरी और ज़िन्दगी की ज़िल्लत से तंग आकर उठा ली गन और अब वह भी थिरक रहा है आतंकवाद की ताल पर।''[13] सेना के जवान ज़मील के परिवार वालों को धमकाते ताकि वह उन्हें ज़मील के विषय में सूचना दें। इस उपन्यास में मेजर सन्दीप का जमील की माँ से उसके विषय में कहना –"देखो, ज़मील को ते देर–सबेर मरना ही है, पर तुम चाहो तो अपने बाकी दोनों बच्चों की तबाही को बचा सकती हो। देखो हमीद को, उसकी छाती की हड्डियाँ निकल चुकी हैं, लगभग पागल ही हो चुका है यह देखकर लगता है जैसे सालों से बीमार हो। कहीं ऐसा न हो कि ज़मील भी न बचे और बाकी बच्चे भी जीवन के काबिल न रहें।"[14] आखिरकार ज़मील की माँ को विवश होकर मेजर सन्दीप को ज़मील के विषय में सच बताना पड़ता है कि ज़मील घर आ रहा है। जब जमील अपने परिवारवालों से मिलने आता है तो सेना के जवान उसे अपनी गोलियों का निशाना बना लेता है। ज़मील की लाश को देखकर उसकी माँ स्वयं को कोसती है कि वह कैसी माँ है जिसने अपने ही हाथों अपने बच्चे को मरवा डाला। वह इन शब्दों में अपने दुःख को व्यक्त करती है –"नहीं वह नहीं मरा, मैंने ही मरवा डाला उसे। वह तो अपने घर अपने अम्मी से मिलने आया था और मैंने...।"[15] मां का ममत्व आतंकवाद की चपेट में विलीन हो जाता है।

आतंकवादियों के लिए घाटी के किसी भी घर में घुसकर खाना बनाने का आदेश देना और उस घर की महिलाओं के साथ बलात्कार करना सामान्य बात है। इस उपन्यास की रूबीना को पुरुष की इसी प्रवृत्ति का शिकार होना पड़ता है उसके साथ उसके अपने ही भाई के मित्र बलात्कार करते हैं इस विषय में रूबीना का कहना है –"कुछ सप्ताह में तहखाना बनकर तैयार हो गया।...एक दोपहर मैं जैसे ही स्कूल से लौटी तो हमीद ने मुझसे कहा, पाँच आदमियों का खाना बना दे ...मुझ पर बिजली गिरी। आखिरकार पाँव पटकता हुआ वह बाहर से खाना लाने चला गया। मैं पढ़ने में ध्यान लगाने लगी कि तभी किसी ने पीछे से मेरे मुँह में रूमाल ठूँस दिया। मुझे चार बलिष्ठ हाथों ने पकड़ा और घसीटते हुए मुझे नीचे तहखाने ले गये और वहाँ बारी–बारी से...।"[16] जमील के आतंकवादी गतिविधियों का गंभीर परिणाम उसके समक्ष आता है। एक ओर उसकी मृत्यु सैनिकों के हाथों होती है और दूसरी ओर उसकी बहिन रूबीना का बलात्कार आतंकवादियों द्वारा होता है और उसका छोटा भाई हमीद और बहन

रूबीना आतंकवादियों को कारण देने के आरोप में बंदी बना लिए जाते हैं– "पुलिस ज़मील के धर आ धमकती, वहां अड्डा मारती, सिगरेट के छल्ले उड़ाती, उसकी जवान बहन रूबीना को घूरती, गन्दे–गन्दे मजाक करती भद्दे इशारे करती है।"[17] ज़मील को पकड़वाने के बाद भी उसके परिवारवालों की यातनाएँ खत्म नहीं होती। पहले सेना उसके घर में अड्डा जमाए रहती थी और बाद में उनका घर आतंकवादियों के लिए सुरक्षित शरणस्थल बन जाता है क्योंकि अपने ही बेटे को सैनिकों के हवाले कर ज़मील के परिवारजन सेना और पुलिस की दृष्टि में अच्छे साबित हो चुके थे इसलिए आतंकवादी इसका फायदा उठाने से नहीं चूकते और कभी–कभी खाना खाने के बहाने तो कभी शरण लेने के लिए–"अब यह घर आतंकियों के लिए जन्नत है सुरक्षित है और निरापद भी है कि जिस घर ने आगे बढ़कर अपने लाड़ले को आर्मी के सुपुर्द किया क्या खाकर वह आतंकियों को पनाह देगी।"[18] ज़मील की मृत्यु के उपरान्त उसका भाई हमीद आतंकवादियों को अपने घर में शरण देता है उसके अनुसार ''पुलिस को ज़रा भी शक नहीं होगा और यूँ भी गाहे–बगाहे आतंकी हमारे यहाँ आकर ठहरकर हमें परेशान कर ही रहे थे, क्या हर्ज़ यदि साथ में नियुक्ति रूप से कुछ पैसे भी हाथ में आ जाएँ। भूख के पास न धैर्य होता है न विवेक। मैंने देखा भूख आदमी से बड़ी थी। भूख पाताल से गहरी थी। भूख सूर्य से भी तेज़ थी जिसका सामना यथार्थ की आग में झुलसा हमीद नहीं कर सका।''[19] पैसा पाने के लिए वे दोनों भाई–बहन कानून की नज़र में गुनाहगार बन जाते हैं। आतंकियों के लिए वे तयखाना बनवाते हैं और वही आतंकी रूबीना और हमीद के जीवन नष्ट होने का कारण बनते हैं। गुनाहगार पैदा नहीं होते बल्कि बना दिए जाते हैं जिसकी ज़िम्मेदार परिस्थितियाँ हैं जो व्यक्ति का पथ भ्रष्ट कर जीवन को अंधेरे की ओर धकेल देता है।

व्यवस्था व्यक्ति को इतनी संवेदनहीन बना देती है कि वह मानवीय मूल्यों को विस्मृत कर अमानवीय कार्य करने के लिए विवश हो जाता है। आतंकवादियों के रहने के लिए गुप्त स्थान की खोज करना, पासपोर्ट और वीजा आदि बनवाने के लिए पारिवारिक पृष्ठभूमि की नकाब ओढ़ कर महिलाओं की मदद से आतंकवादी अपने अभियान में सफल हो रहे हैं। विवेच्य उपन्यास में आतंकवादी गतिविधियों में स्त्रियों की भूमिका को रेखांकित किया गया है। उपन्यास में कोई भी ऐसी महिला पात्र नहीं है जो किसी घटना के लिए उत्तरदायी हो। नताशा नाम की पात्र मेजर सन्दीप से अपनी गाड़ी में बिठा कर आगे तक छोड़ने के लिए प्रार्थना करती है। बाद में मेजर सन्दीप को बी.एस.एफ. के जवानों से पता चलता है कि वह एक खतरनाक आतंकवादी महिला थी। बहुत सी आतंकवादी महिलाएँ आर्मी के जवानों को अपने प्रेम के झूठे जाल में फाँस कर उन्हें मरवा देती हैं। ये आतंकवादी महिलाएँ सैनिकों को अकेले में किसी गुप्त स्थान पर बुलाती हैं और धोखे से मार देती हैं। कुछ आतंकवादी महिलाएँ सैनिकों पर झूठा बलात्कार का आरोप लगाकर उन्हें सजा दिलवा देती हैं।

आतंकवाद के विरुद्ध सरकार और सेना की नीति कई दशकों से हिंसा और आतंक जैसी गम्भीर समस्याओं का सामना कर रही है। आतंकवाद के विरुद्ध प्रभावी कार्यवाही हेतु भारत सरकार ने 1985 में कानून बनाया था जिसका नाम था– 'आतंकवादी एवं विध्वंसक गतिविधि रोकथाम एक्ट' जिसे 'टाडा' के नाम से भी जाना जाता है। इसके अतिरिक्त सन् 1990 में गृह मंत्रालय के अन्तर्गत राष्ट्रीय राइफल्स की स्थापना की गई। इसका उद्देश्य जम्मू– कश्मीर में फैले आतंकवाद को जड़ से उखाड़ना है। विवेच्य उपन्यास में सैनिक का इस विषय में सिद्धार्थ से कहना है–"सर जी आतंकवादियों की ही तरह फौज को भी अपनी तरह की दहशत फैलाकर रखनी होती है नहीं तो आप और हम चल नहीं सकते इन सड़कों पर।"[20] विवेच्य उपन्यास में कमांडिंग अफसर कर्नल केदार आप्टे आतंकवाद पर नियंत्रण हेतु कुछ सुझाव सैनिकों को देते हैं। सुरक्षा बलों के प्रयत्नों से उग्रवाद की विभीषिका का परित्याग से सफल परिणाम प्राप्त हुए हैं। कश्मीर में आतंकवाद पर नियन्त्रण करने हेतु भारत सरकार को निम्न कदम उठाने चाहिएँ :–

1 केन्द्र सरकार को कश्मीर पर अपनी ढुलमुल नीति को छोड़ना पड़ेगा।

2 आतंकवाद और राष्ट्रीय सुरक्षा जैसे विषयों पर राजनीतिक दलों का एकमत होना।

3. आतंकवाद विरोधी कार्यक्रमों से जुड़ा स्थानीय प्रशासन, पुलिस प्रशासन, सेना और अर्द्ध सैनिक बलों के जवानों में आपस में समन्वय स्थापित होना चाहिए।

4. आतंकवाद से पीड़ित प्रत्येक परिवार को सरकार आर्थिक सहायता दे।
5. सरकार को राष्ट्रहित सर्वोच्च रखते हुए तुष्टिकरण की नीति से बचना चाहिए।
6. आतंक के प्रायोजक देशों पर अन्तर्राष्ट्रीय दबाव डलवाना।
7. आतंकवादियों के वित्तीय साधनों को घटाना व आतंकवादियों को कड़ी सजा दिलाना।

आतंकवाद आज भारतीय समाज के लिए अभिशाप बन चुका है जोकि हमें अराजकता के गर्त धकेल रहा हैं। सतर्कता, सुरक्षा और परस्पर सहयोग आतंकवाद उन्मूलन की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। विदेश मंत्रालय को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आतंकवाद से मुकाबला करने के लिए एक विभाग का गठन होना चाहिए। आतंकवाद से सम्बन्धित मामलों में राष्ट्रपति से रहम की गुहार की प्रक्रिया को खत्म किया जाना चाहिए। आतंकवाद की समाप्ति के लिए छात्रों के मानसिक व नैतिक उत्थान हेतु शिक्षा के क्षेत्र में परिवर्तन किये जाने चाहिए। मधु कांकरिया ने 'सूखते चिनार' उपन्यास में भूमण्डलीकरण के दायरे के साथ ही आतंकवाद का दायरा सुरसा की तरह विभिन्न रूपों में फैल रहा है, इस अव्यवस्था को रोकने के लिए सुरक्षा एजेंसियों को दमन नीति से पर उठकर जनता से भी सहयोग लिया जाये ताकि आतंकवादी दानव के कहर से देश व विदेश को बचाया जा सके।

सन्दर्भ–ग्रन्थ

1. BehtarLife.com.htm आतंकवाद–एक विश्वव्यापी समस्या
2. आतंकवाद का धर्म या धर्म का आतंकवाद! आखिर क्या है सच.htm
3. बलबीर राणा 'अडिग' रचनाकार. htm, आतंकवाद के प्रति सतर्कता, जागरूकता और क्रियान्वयन।
4. आतंकवाद जन्मता है हिंसा और क्रूरता के संस्कारों से. htm
5. ऐसे फैलता है आतंकवाद–चौथी दुनिया. htm
6. वैश्विक आतंकवाद एक लाइलाज बीमारी–चौपाल_Chaupal.htm
7. भारत में आतंकवाद_Terrorism in India in Hindi.htm
8. नन्दकिशोर आचार्य, सर्जक का मन, पृ. 54
9. मैनेजर पाण्डेय, शब्द और कर्म, पृ. 37
10. मधु कांकरिया, सूखते चिनार, भारतीय ज्ञानोदय पीठ,नई दिल्ली, पृ. 80
11. वही, पृ. 53
12. वही, पृ. 45
13. वही, पृ. 101
14. वही, पृ. 19
15. वही, पृ. 23
16. वही पृ. 115
17. वही पृ. 132–33
18. वही पृ. 98
19. वही, पृ. 132
20. वही पृ. 34

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 112-113

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

त्रिलोचन : जीवन संघर्ष एवं यथार्थ परक विसंगतियाँ

कमलेन्द्र कुमार सतनामी* डॉ. आशुतोष कुमार द्विवेदी **

सारांश–*त्रिलोचन किंवदन्ती पुरुश है एवं संघर्ष को जीने वाले कवि हैं। उन्होंने अपनी कविताओं में घटनाओं की जगह मूल्यों को स्थान दिया है। वे निराला की तरह आभाव में रहकर फटेहाल जीवन व्यतीत करने वाले कवि हैं। त्रिलोचन ने अपनी कविता में हो रहे सामाजिक शोषण को देखकर शोषक वर्ग के प्रति संघर्ष एवं शोषितों के प्रति मुक्ति का स्वर उठाया है। जिसमें उन्होंने सर्वहारा वर्ग को प्रमुख स्थान दिया।*

मूल शब्द– स्वभाव, बल्कि, असाधारणता।

प्रस्तावना–त्रिलोचन किंवदन्ती पुरुष है। ऐसा नागार्जुन का कहना है कि त्रिलोचन किंवदन्ती पुरुष हैं। निराला के बाद सबसे अधिक किस्से त्रिलोचन के बारे में कहे व सुने गये हैं। वे अपने बारे में किस्से सुनकर या तो चुप रहते हैं या मुस्करा देते हैं, जैसे उन किस्सों से उनका कोई सम्बन्ध ही न हो। अपने बारे में ऐसी तटस्थता, लेकिन दूसरों की गहरी चिन्ता उनका यह स्वभाव उनके बाहर से साधारण दिखने वाले उनके व्यक्तित्व की आन्तरिक असाधारणता का प्रमाण है।

संघर्ष का दूसरा नाम त्रिलोचन है, समाज में हर वर्ग जिसमें साहित्य भी अछूता नहीं हैं केवल संघर्ष करता दिखाई दे रहा है, लेकिन त्रिलोचन की वह संज्ञा है। सुविधाजीवी कवियों के शब्द अघाए आदमी की डकार होते हैं। लेकिन त्रिलोचन की कविता में शब्द आँखों से टपकने वाली लहू की बूँदें हैं। त्रिलोचन का यथार्थवाद दूसरे कवियों के यथार्थवाद से अलग है। उनमें न तो झूठी भावुकता है न काल्पनिक संघर्ष और न ही झूठा आशावाद, बल्कि उनकी आस्था तो जनशक्ति में है, उनमें संघर्ष के प्रति आवाहन है, मुक्ति आन्दोलन के गीत है, लेकिन सोच समझकर चलना होगा। उनकी कविता के मुख्य स्वर प्रस्तुत है –

''भाव उन्हीं का सबका है जो थे आभावमय।
पर आभाव से दबे नहीं, जागे स्वभावमय।।''[1]

''त्रिलोचन घटनाओं के कवि नही हैं। वे मूल्यों के कवि हैं। उनकी कविता में सामाजिक–राजनीतिक घटनाओं का चित्रण वर्णन बहुत कम है, मानव जीवन की दशाओं और अनुभवों की अभिव्यक्ति अधिक है। त्रिलोचन की कविता हमारे सामने एक महत्वपूर्ण सवाल रखती है कि आज हम जिन परिस्थितियों का सामना कर रहे हैं, उसमें कौन सी कविता सार्थक भूमिका निभा सकती है? आज कल जनता की चेतना पर लगातार संचार माध्यमों का हमला बढ़ रहा है, उनकी अनुभूति कल्पना और सोच को एक खास ढाँचे में ढालने की कोशिश हो रही है। यहाँ मनुष्य लोहा, कोयला आदि की तरह एक संसाधन मान लिया गया है, ऐसी स्थिति में सबसे पहले उस कविता की जरूरत हैं जो पाठकों को प्रगतिशील जीवन मूल्यों के प्रति सचेत करें और उनकी रक्षा के लिए संघर्ष में आस्था जागे। इसलिए आज त्रिलोचन की कविता विशेष प्रासंगिक हो गयी है।''[2]

त्रिलोचन ने तो आजीवन संघर्ष किया। उनकी कविता का महत्वपूर्ण पहलू संघर्ष एवं श्रम हैं। त्रिलोचन स्वयं कहते है–''मुझमें जीवन की लय जागी। मैं धरती का अनुरागी।''[3]

**** शोधार्थी (हिन्दी विभाग), अपधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)***
***** शोध निर्देशक, प्रो. (हिन्दी विभाग), शासकीय कन्या महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)***

चीर भरा पाजामा, तट, लट कर गले से दे दों वाला कुर्ता पहनने वाला कवि स्वयं भी है और समस्त सर्वहारा वर्ग भी है। ''जो भूखा–दूखा है। नंगा! अनजान है।' किन्तु यह श्रम जीवी अपने श्रम के बलबूते पर जी रहा है।''[4]

त्रिलोचन के जीवन की पूँजी उनकी संघर्षशील चेतना में ही निहित है। जिसकी आँखें घोर आर्थिक संकट एवं अभाव के बीच खुली हो, वह भला आराम एवं चैन का जीवन कैसे बिता सकता है?

त्रिलोचन चिन्तन प्रधान कवि हैं इसलिए उनकी कविताओं में जीवन के स्वस्थ्य एवं सबलरूप पर विशेष बल दिया गया है। उनमें सर्वोदय की भावना प्रधान है, वे दलितों, किसानों, मजदूरों और श्रमजीवियों के पक्षधर हैं। कालमार्क्स के साम्यवादी जीवन दर्शन पर उनकी अटूट आस्था है। इसलिए वे पूँजीपतियों के विरूद्ध हैं। उनकी वैयक्तिक कविताओं में भी लोक जीवन की अमिट छाप है। उनका विचार है कि भाग्यवाद मानव के लिए बिल्कुल उचित नहीं है। मनुष्य को आघातों पर घबराना नहीं चाहिए, क्योंकि आघातों से जीवन अधिक विकसित होता है और कुछ बातों से गति आती है।

''नहीं मनुष्योचित है, यो प्रारब्धवास से,
कुछ भी होता नहीं, अगर और से कीना,
रखोगे तो क्या पाओगे, खेत खाद से,
उर्वर होता है, जीवन भी आघातों से,
विकसित होता है, बढ़ता है उत्पातों से।''[5]

निष्कर्ष–इस प्रकार त्रिलोचन के जीवन संघर्ष के नए–नए पड़ाओं का विस्तार करते हुए उनके जीवन संघर्ष एवं विसंगतियाँ जो उन्होंने जिया आभावों में रहकर उन घटनाओं का चित्रण जो उनके जीवन संघर्ष की कहानी है, त्रिलोचन के काव्यों का जो मर्म जो उन्होंने जिया, उनके एक मार्क्सवादी विचारधाराओं का उद्‌घाटन करती है। त्रिलोचन का चिंतन लोगों का हो रहा शोषण एवं शोषित वर्ग के लोगों में उपजता भाग्यवाद के प्रति बेहद चिंतनीय है। उनकी कविताओं में मुक्ति का स्वर है।

संदर्भ–सूची

1. मैनेजर पाण्डेय, हिन्दी कविता का अतीत और वर्तमान, पृ. 111
2. मैनेजर पाण्डेय, हिन्दी कविता का अतीत और वर्तमान, पृ. 112
3. मैनेजर पाण्डेय, हिन्दी कविता का अतीत और वर्तमान, पृ. 120
4. जनपद के कवि त्रिलोचन, पृ. 104
5. अनकहनी भी कुछ कहनी, पृ. 14

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 114-119

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य में संवेदना

*मो. वारिस**

नई कविता के अंतर्गत समाज और साहित्य में जो परिवर्तन हुआ, उसे सन 1930 के आस–पास नये आयामों के अंतर्गत नवीन–नवीन परिस्थितियों को रेखांकित किया जा सकता है। भारतीय समाज में जिन परिस्थितियों एवं घटनाओं ने साहित्य को प्रभावित किया उनमें से आधुनिक साहित्यकार के लिए औद्योगिकीकरण पाश्चात्य विचारधारा के प्रभाव में नवीन जीवन मूल्यों की स्थापना प्रमुख है । साथ–साथ प्रगतिशील चेतना और मानवतावादी दर्शन से विभिन्न संस्कृतियों के संघर्ष और पाश्चात्य सभ्यता के विकास के कारण अनेक प्रकार की असंगतियाँ और विसंगतियाँ भी विचारणीय हैं, विशेषकर पाश्चात्य देशों में ब्रिटेन में 'नई कविता' का प्रारम्भ 1930 में कुछ नए कवियों द्वारा New Signature के नाम से हुआ । इसी प्रकार New Story के नाम से 'नई कहानी' का भी प्रवर्तन कुछ नए कथाकारों द्वारा हुआ। इन दोनों प्रकार के साहित्यकारों ने जो कुछ योगदान दिया उसमें आधुनिक नई संवेदना मिलती है। पाश्चात्य में नई कहानी और कविता का जो आन्दोलन चला भारत में इसका एक रूप एक दशक के बाद प्रथम 'तार सप्तक' के कवियों के द्वारा नई कविता के आन्दोलन से माना जाता है। हमने इन कविताओं में आधुनिक संवेदना के रूपों का अनुभव किया है। वैसे तो संवेदना कई अर्थों में प्रयुक्त होती हैं, साधारणतय इसे सहानुभूति के अर्थ में लिया जाता है। मनोविज्ञान में इसका अर्थ ज्ञान या ज्ञानेन्द्रियों का अनुभव है। हिंदी साहित्य कोश में–"संवेदना उत्तेजना के सम्बन्ध में देह रचना की सर्वप्रथम प्रक्रिया है जिसमें हमें वातावरण की ज्ञानोपलब्धि होती है। संवेदना हमारे मन की वस्तु विशेष का बोध न होकर उसके गुणों का बोध होता है।"[1]

कविता आस–पास फैले संसार की सच्ची तस्वीर है। आस–पास के परिवेश से एक संवेदनशील कवि आँखें नहीं मूंद सकता। उसके प्रति एक भाव हमारे मन में रहता है और यही भाव हमें प्रतिक्रियात्मक दृष्टिकोण से जोड़ता है। स्वतंत्रता के पश्चात् नई कविता के आन्दोलन ने अपना निश्चित स्वरूप स्थापित किया। स्वतंत्रता के बाद समाज में विघटन के ह्रास की स्थितियाँ बहुत ही स्पष्ट रूप से अंकित मिलती हैं। वह मूल्यगत परिवर्तन हिंदी के साहित्यकारों के काव्य में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इस परिवर्तन में दो समस्याएँ मुख्य रूप से देखने को मिलती हैं। प्रथम, व्यक्तिगत विघटन के सन्दर्भ में जिसमें आत्महत्या, मद्यपान, चरित्र स्खलन, पारिवारिक तनाव, विवाह संस्था में दरार, सम्बन्ध विच्छेद, नैतिक भ्रटाचार, बेकारी और व्यापार नीति के कारण सम्बन्धों में टूटन तथा प्रदूषण जैसी समस्याएं प्रमुख हैं। द्वितीय एकाकीपन की अनुभूति और अजनबीपन जैसी समस्याएँ हैं।

सन 1931 में होशंगाबाद में जन्में द्वितीय 'तार सप्तक' के कवि 'भवानीप्रसाद मिश्र' के काव्य में संवेदना को प्रखर रूप से देखा जा सकता है, इसलिए इन्हें 'सहजता का कवि' एवं 'कविता का गाँधी' कहा जाता है। इनके प्रमुख काव्य संग्रह 'गीत फरोश', 'चकित है दुःख', 'अंधेरी कविताएं', 'गाँधी पंचशती', 'बुनी हुई रस्सी', 'खुशबू के शिलालेख', 'व्यक्तिगत', 'परिवर्तन जिये', 'इदम् न मम', 'त्रिकाल संध्या', 'अंतर्गत', 'अनाम तुम आते हो', 'मानसरोवर के दिन', 'सम्प्रति', 'नीली रेखा तक', 'तूस की आग' एवं 'कालजयी' आदि हैं जिसमें संवेदना को भिन्न–भिन्न रूपों में देखा जा सकता है।

सामाजिक विषमता की अनुभूति तथा एकाकीपन इन समस्याओं के कारण नए कवियों ने अपनी व्यक्तिगत अनुभूति के आधार पर आधुनिक संवेदनाओं को व्यक्त किया है। 'भवानीप्रसाद मिश्र' के काव्य में भी इन्हीं संवेदनाओं को वाणी मिली है, लेकिन वे सामाजिक सरोकारों से जुड़े होने के कारण कुंठा, घुटन, टूटन, संत्रास, हिंसा, संकट

* *शोधार्थी (हिन्दी विभाग), अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़*

बोध एवं आत्मविश्वास हीनता के शिकार नहीं हुए हैं बल्कि उनका ध्यान सामाजिक विषमता की ओर अधिक गया है। ये सामाजिक विषमताएँ असहनीय हैं इसलिए वे भविष्य में भेदभाव को मिटाने में विश्वास रखते हुए भी दुखी होने लगते हैं। संवेदना के इस रूप को इस प्रकार अपने काव्य में व्यक्त किया है–"एक दिन होगी प्रलय/मिट जायेगें नीलाभ नियम भी/क्यों नहीं रह सकते हम परस्पर/फूल आकाश की तरह/यह नहीं हो सकता/और शायद इसी का रोना है।"[2] कवि अकेलेपन में दुखी भी होता है लेकिन अकेलेपन में उसके व्यक्तित्व के विकास की संभावनाएँ भी हैं। यह अकेलापन अनास्था का प्रतीक नहीं आस्था का प्रतीक है, लेकिन फिर भी उसमें टूटन तो महसूस होती है। तभी 'भवानीप्रसाद मिश्र' कहते हैं–"यह महफिल नहीं/अकेलापन मेरा है/यही मेरा विस्तार है/यह मेरा घेरा है/इसमें बाधा आती है/तो लगता है, टूट गया कुछ/कोई और आ जाता है तो लगता/पीछे छूट गया कुछ।"[3]

कभी–कभी राजनीतिक चेतना का संवेदनशील रूप अंधकार और निराशा के रूप में उमड़ा है, लेकिन कवि का मन विद्रोह करने के लिए तत्पर हो उठता है। निरर्थकता की भावना और इस बेहुदेपन की स्थिति का सटीक चित्रण करते हुए 'भवानीप्रसाद मिश्र' कहते हैं–"रात भर पिसोगे/पारे में उठाओगे/किसे दोगे अज्ञेय, बेशक अपना/रक्तहीन, प्राणहीन यह झूठा, सपना।"[4] इंदिरा गाँधी के द्वारा आपातकालीन स्थिति की घोषणा कवि को 'त्रिकाल संध्या' कविता लिखने के लिए विवश कर देती है। जहाँ हिंसा जनता के खून को सड़कों पर बहा देती है, और वह कवि के लिए मरण का त्यौहार बन जाती है। इस मरण त्यौहार के समाचार से कवि और सम्पूर्ण जनता अकेलेपन की अनुभूति से जूझती है। यह दुःख झेलना अधिक ईमानदारी का एहसास दिलाता है, जिससे बचने के लिए कवि कोई दीवार, रक्षक के रूप में नहीं रचना चाहता और कहता है–"हमारे मन का एक हिस्सा/अभी गोली खाकर मर गया/यह समाचार मुझे और तुम्हें/एक तरह से अकेला कर गया/मगर इस दुःख से हम बचना नहीं चाहते/ऐसी कोई दीवार/रचना नहीं चाहते।"[5] कहीं–कहीं कवि अधिक विषमता स्वरूप विघटन की स्थिति का अत्याधिक संवेदनशील चित्रण प्रस्तुत करता है और ग्रामीण जीवन के लोगों की दयनीय स्थिति उसकी अनुभूति का अंग बन जाती है– "गाँव इसमें झोपड़ी है घर नहीं है/झोपड़ी की पटकियां है दर नहीं है/धूल उड़ती है धुएं से दम घुटा है/मानवों के हाथ से मानव लुटा है।"[6] संवेदनशील काव्य अनुभव के आधार पर लिखा जाता है। अनुभव सभी को होते हैं कहीं वे व्यक्ति को दबाते हैं कहीं घेरते हैं और कहीं अकेला करके छोड़ देते हैं। कवि के शब्दों में–"यों यह अकेला रह जाना अनुभवों का राजा है मगर जो इस अनुभव को अपने अकेलेपन में समझ नहीं पाता और समझ कर रंगों, रेखाओं, शब्दों, स्वरों या किसी और ढंग से उसे ठीक–ठीक लिख नहीं पाता वह अकेले ही रह जाता है। इतना ही नहीं, किसी के अकेलेपन को चाह पाने पर भी बांट नहीं पाता।"[7] 'बुनी हुयी रस्सी' की प्रथम कविता बिखरे हुए एकाकी अनुभवों को रेशों की तरह एकत्र करने का प्रयास मात्र है। व्यक्तिगत अनुभव कवि की अनुभूति एवं एकाकी संवेदना का केन्द्रीय बिंदु है। यथा–

"कविता को
बिखरा कर देखने से
सिवा रेशों के क्या दिखाता है
लिखने वाला तो
हर बिखरे अनुभव के रेशों को
समेट कर लिखता है ।"[8]

कवि का विश्वास है कि मैं कविता नहीं लिखता कविता मुझे लिखती है। गहराई से सोचने पर यह कहा जा सकता कि अनुभव की अभिव्यक्ति का प्रयत्न न होकर अनुभव करने की एक प्रक्रिया है। कविता लिखने का उद्देश्य अनुभूति के माध्यम से जानना हो गया है क्योंकि, अनुभूति का सम्बन्ध भावना से न होकर बोध से होता है और कविता बोधगम्य रूप है। तभी तो कवि 'मिश्र' जी का कथन है कि "कविता लिखते समय मेरा मन ही नहीं समूचा अस्तित्व शब्दों से ध्वनित होने वाली झंकार से कांपता रहता है। ये झंकारें कभी अकेली अकेली बजती है, कभी समवेत होकर समुदायों में, इसलिए मैं कविता के संदर्भ में अपने को शब्दों की रौ में बहने वाला कोई व्यक्ति सोचता हूँ ।"[9] ...इन्हीं स्थितियों में चाहे–अनचाहे कवि की सही चयन करने की स्वतंत्रता संकट ग्रस्त दिखायी देती है यदि

हम स्वतंत्र हैं तो हमें अपने मन के अनुकूल स्थिति को चुनने का अधिकार भी होना चाहिये। लेकिन कवि का संवेदनशील मन यहाँ सब कुछ देखने सुनने के लिए विवश है–"मगर फिर भी अंधी आँखों बहरे कान/हमें सब कुछ देखने सुनना पड़ता है/गलत देखे–सुने में से/बेकाम का ही सही/कुछ चुनना पड़ता है।"[10]

भवानीप्रसाद मिश्र' अपने अकेलेपन को उत्सव मानते हैं । इस अकेलेपन में पड़ जाने से भीतर–बाहर सब जगह गूंगा हो जाना या समुदायों के अनुकरण में जुट जाना मुश्किल है। जो अपनेपन को जितना ठीक रूप दे पाता है, रूप देकर बाहर रख देता है, जिन्दगी के अनंत अभिव्यक्ति प्रकारों में से एक या एकाधिक किन्हीं माध्यमों के द्वारा उसे सामने परोस पाता है। वह अकेलेपन को नहीं परोसता है, 'भवानीप्रसाद मिश्र' ने इसी उत्सव को परोसा है, उनका अकेलापन 'बुनी हुई रस्सी' में अनुभव की पूरी तस्वीर बनकर उभरा है इस संवेदनशील रूप को निम्नलिखित पंक्तियों में देखिए– "कोई सागर नहीं अकेलापन/न वन है। एक मन है अकेलापन/जिसे समझा जा सकता है/आर–पार जाया जा सकता है जिसके दिन सौ बार।"[11] अकेलेपन की अनुभूति हवा में नहीं होती, सख्त और ठोस यथार्थ धरती पर होती है। इसमें पहले षरीर आता है फिर मन बुद्धि तभी प्राण और देश काल से अतीत होकर इसे अनुभव कहते हैं। उस गंध की संवेदना देखिए जो ज्येष्ठ की तपी धरती से अषाढ़ के प्रथम मेघ के बरसने से उठती है–

"एक बादल पराग
तुम्हारा अकेला पन
जो बरसेगा अगर पूरे मन से
तो गंध उठेगी वैसी
जैसी जेठ की तपी धरती से उठती है
आषाढ़ के बरसे।"[12]

कवि का विश्वास है कि अकेलेपन का अभिनय नहीं होता, दिखावा नहीं होता, इससे तो मन का सौन्दर्य खामोशी के साथ चकित होकर अंधेरे की आत्मा को सींचता है और उस समय फूल प्रफुटित होते हैं और लगता है कि मन के आसमान में तारे टूट रहे हो और एक आभा से अंजानी लकीरें खिंच–खिंच जाती हैं। इस प्रकार अंधेरे का स्वप्न निखर जाता है– "सरूप सध जाता है/हम छाया का अकेलेपन में/निखर आता है रूप अंधेरे का अगर हो गये हो तुम/ठीक–ठीक अकेले।"[13] पारिवारिक आत्मीयता और त्यौहार कैसे भारतीय मानस को उल्लसित करते हैं यह जानना है तो 'घर की याद' नामक कविता के स्वर में आत्मीयता का अनुभव प्राप्त करना चाहिए "एक भी शब्द कठिन नहीं सबका जाना पहचाना' सबके अनुभव का हिस्सा, पानी का गिरना कवि मिश्र की आवाज में कुछ ज्यादा लगता है और कुछ ज्यादा सराबोर करता जो अनुभव हमारा दैनंदिन है, सुपरचित है, वह सदैव बात–चीत करती हमारी अनुभूति में रजिस्टर नहीं हो पता। यह 'भवानी प्रसाद मिश्र' की पहली कविता बात–चीत करती घरेलू आवाज में गहरे तत्व उद्देलित करता है, क्योंकि भवानी प्रसाद मिश्र के शब्द केवल शब्द नहीं उनके पीछे संवेदना की गहरी आद्रता होती है।"[14] घर की याद' नामक कविता में 'भवानी प्रसाद मिश्र' ने पारिवारिक आत्मीयता को बड़े ही संवेदनशील ढंग से व्यक्त किया है–

"पिता जी जिनको बुढ़ापा
एक क्षण भी नहीं व्याप
रो पड़े होगें बराबर
पाँचवे का नाम लेकर पाँचवा मैं हूँ अभागा
है सजीले हरे सावन
है कि मेरे पुण्य पावन
तुम बरस लो वे न बरसें
पाँचवे को वे न तरसें ।"[15]

भवानीप्रसाद मिश्र' प्रकृति में रमण करते हुए कविता का सृजन करते हैं प्रकृति के विभिन्न रूपों के साथ उनका आत्मिक सम्बन्ध है। कवि के आस–पास जो जीवन लहरा रहा है एवं तरंगित हो रहा है उसे अनुभव करके जब

उसके बीच प्रदूषण देखता है तो उसका कवि मन तनाव से भर जाता है, वह आस्था और प्रेम की बात करते हुए प्राकृतिक उपादानों को नष्ट किए जाने के फलस्वरूप पर्यावरण का संकट अनुभव करने लगता है। जड़, चेतन, जीव और प्रकृति सब विनाश के कगार पर खड़े दिखाई देते है, शोषण बुद्धि ने सब कुछ प्राणहीन कर दिया है, बढते हुए प्रदूषण से 'मिश्र जी' क्षुब्ध हैं, और उनकी भाषा व्यंगात्मक तेवर ग्रहण करने लगती है–"ऋतुएं अगर आती भी यहाँ/तो वे शोर में/अपने गीत क्या खा कर गातीं/इसलिए अच्छा ही है/कि प्रकृति यहाँ नहीं बची/ऋतु और प्रकृति हीनता में/पले यह शहर काट रहे हैं/चीजों के बीच अपनी शाम।"[16]

पर्यावरण प्रदूषित रूप मनुष्य की हिंसावृत्ति के कारण है। 'जंगल और शेर' नामक कविता में शिकार की भावना से जो पर्यावरण में असंतुलन बढ़ता जा रहा है। उसको सबसे पहले 'भवानीप्रसाद मिश्र' ने अनुभव किया। प्रदूषण से सम्बन्धित हिंदी कविता में सर्वप्रथम प्रयास है। 'शेर' को सम्बोधित करते हुए कवि ने कहा है–"वे सब के सब हत्यारें हैं/वे दूर बैठ कर मरेंगे/वे तुम से कैसे हारेंगे।"[17] 'शेर' को लगता है कि इस हत्यारे रूप में कोई तर्क नहीं है और वह कहने लगता है कि "वे मुझको खाते नहीं कभी/फिर क्यों मारेंगे मुझको अभी।"[18] लेकिन 'भवानीप्रसाद मिश्र' 'शेर' को सतर्क करते हैं–"ये भूखे नहीं प्यासे हैं/वैसे ये अच्छे खासे हैं/है वाह–वाह कि प्यार इन्हें/ये शूर कहे जायेंगे और कुछ को मन भाएंगे तब/है चमड़े की अभिलाषा इन्हें।"[19] इस प्रकार की कविताओं में 'भवानीप्रसाद मिश्र' जैसे संवेदनशील कवि की आंतरिक और बाह्य वातावरण से प्राप्त यथार्थ काव्यानुभूति है, लेकिन कवि का अकेलापन' अंधेरापन, और उनका शांत एवं श्रमित अंतर्मन उजाले का विरोधी नहीं है उनका मन और प्राण उजाले की अंतिम किरण को पीना चाहता है और कामना करता है कि सूरज के डूबने पर भी उसकी लालिमा परिव्याप्त रहे–"डूबे जब मेरा सूरज/तो छाई रहे उसकी लाली/शाम के बाद भी दो चार पहर/उजाले की आखिरी किरण तक/पिए मेरा मन मेरा प्राण।"[20] कवि ने सामाजिक और व्यक्तिगत क्षेत्र में विषमता, निराशा और निस्वार्थता की अनुभूतियों का चित्रण किया है, लेकिन आस्थावादी प्रवृति सहारा नहीं छोड़ती है। सामाजिक आदर्शों का विघटन वे दुखी मन से देखते हैं लेकिन जीवन संघर्ष से पलायन तब भी नही करते यद्धपि उनके जीवन में ऐसे पल भी आए जिनमें खालीपन और निरर्थकता की अनुभूति उभरी है ऐसी स्थिति में जीवन व्यर्थ लगने लगता है जिसका चित्रण निम्न पंक्तियों में किया है–"बाजार भी ऐसे/सन्नाटा है जैसे बहरे के लिए/मेंहदी जैसे निरर्थक है चेहरे के लिए/ऐसी हो गई है जिन्दगी/खाली और खस्ता मेरे नजदीक।"[21]

जीवन संध्या में वे मृत्यु की वास्तविकता को बड़ी गहराई से अनुभव कर अपने विचार प्रकट करते हैं जो अत्यन्त सम्वेदनशील है–"शक नहीं है इसमें/कि जिन्दगी निक्कमी बहुत लम्बी समझो/आदमी काफी हद तक/निकम्मा होने लगता है/बहुत हुआ सत्तर के बाद/अपने काम का भी शायद/रह जाता हो/सूरज से लेकर शून्य तक।"[22] इस सबके पीछे 'मिश्र' जी मृत्यु को कठोर सत्य मानते हैं और युवा अवस्था भी विवश होकर जीवन संध्या और मृत्यु की ओर उन्मुख हो जाती है। इसकी संवेदना निम्नलिखित पंक्तियों में बहुत गहरे अर्थ के साथ प्रकट की है– "दोपहरी तक पहुँचते–पहुँचते/मुरझा जाता है जो वह कैसा भोर है/क्या/कुल मिलाकर जीवन का मुहँ/मृत्यु की ओर है।"[23]

नयी कविता का प्रवर्तन स्वतंत्रता की उन परिस्थितियों में हुआ जब आजादी की लड़ाई के दिनों में जो लोग गांधीजी के साथ थे और वही गाँधी युग के आदर्शों और लक्ष्यों को भुला बैठे थे लेकिन आजादी के बाद तो कवि बहुत खुश था लेकिन आजादी का मिलना, गाँधी जी की हत्या और भारतीय जनता की विषम समस्याएं कवि की चिंताएं बन गयीं इसलिए वह आजादी के मिलने पर अंध उल्लास के सागर में डूबा नहीं बल्कि नेताओं द्वारा जनता का शोषण होते देख 'मेरे नेता' नामक कविता रचकर मोहभंग के राजनीतिक संदर्भ को विशेष रूप से उठाया है। नेता यहाँ भावना का शोषण करता है, कवि की राष्ट्रीय चेतना का स्वर मानव से जोड़ने के सन्दर्भ में अनुगुंजित किया गया है। किसान के माध्यम से गाँव के जीवन के यथार्थ को चित्रित करने में 'भवानीप्रसाद मिश्र' सफल कवि माने जा सकते हैं। नेता देश की स्वतंत्रता की आवाज उठता है और देश के महत्त्व का गान करता है। नेता को यह भी पता नहीं है कि देश की जनता का क्या हाल है, स्वाधीनता संग्राम किसके लिए है। वह तो केवल भारत माता का काल्पनिक चित्र प्रस्तुत करता है लेकिन किसान तो नेता का हाथ पकड़ कर भारत माता के वास्तविक दर्शन करना चाहता है "मेरा हाथ पकड़ लो नेता/माँ के दर्शन तुम्हें कराऊँ/मेरी बात सुनो तो नेता/मेरे साथ चलो तो बलि जाऊँ।"[24] स्वतन्त्रता प्राप्त करने से पूर्व ही भारतीय किसान मोहभंग की स्थिति को संवेदना के रूप में ग्रहण

करता है। वह नेता को किसान की आँखों से भूखी भारत माता को देखने के लिए कहता है। मोहभंग की कितनी गहरी संवेदना निम्न पंक्तियों में मिलती है–"मेरी शस्य श्यामला माँ के/बेटे भूख लिए बैठे है/कभी संजीवन मूर मिली थी/अब तो जहर पिए बैठे हैं।"[25] स्वतंत्रता के पश्चात् नयी व्यवस्थाओं की संभावनाएं अंकुरित हुई लेकिन, साथ ही उनका पतन भी होता रहा। जन आन्दोलन के नारे तो गूंजे लेकिन अपने ही परिवेश में उनका बिखराव देखने को मिला। सम्पूर्ण नवीन राजनीतिक चेतनाएं और संस्कृति प्रतिफलों के बीच विश्व व्यापार तंत्र नए मूल्यों का विघटन करता हुआ और स्वस्थ परम्पराओं को तहस–नहस करता हुआ अनेक चौराहों का निर्माण कर रहा है, जिनके चारों तरफ प्रत्येक देश का मनुश्य विष्व बाजार में खड़ा हुआ स्तंभित है। वह बार–बार व्यापार नीति को हानि–लाभ के आधर पर बनता चला जाता है। इसे हम विष्व मानवता नहीं कहेंगे यह एकायामी भूमंडलीकरण है। विश्व व्यापार निति ने मनुश्य की नैतिक स्वतंत्रता पर आक्रमण किया है। इस आक्रामक स्थितियों का प्रभाव हमारे समाज पर भी व्यापार नीति के रूप में पड़ता है। जनता या समाज को प्राणों की बलि देने के लिए उकसाया जाता है, लेकिन हमारे नेता आक्रामक देशों के साथ व्यापार नीति सम्बन्धी समझौता कर लेते हैं तभी समाज में आपाधापी, जिसकी लाठी उसकी भैंस और सशक्त व्यक्ति के साथ लेंन–देन का सम्बन्ध चुनाव के समय बड़ी भारी रकमें पाने के लोभ और नेताओं का आश्वासन, सब–कुछ व्यापार नीति के पल्ले में तुलता दिखाई देता है। यही कारण है कि आज भाई–भाई' माता–पिता और पुत्र, बहन–भाई और पत्नी के बीच भी व्यापार नीति अपना कर चमत्कार दिखा रही है इसी संवेदना को 'भवानीप्रसाद मिश्र' ने 'गीत फरोश' नामक कविता में क्रय–विक्रय के माध्यम से उद्घाटित किया है– "जी हाँ हुजूर मैं गीत बेचता हूँ/जी, पहले कुछ दिन शर्म जगी मुझको/पर बाद–बाद में अक्ल जगी मुझको/जी, लोगों ने तो बेच दिए ईमान/जी, आप ना हो सुनकर ज्यादा हैरान।"[26]

भवानीप्रसाद मिश्र' को जब व्यवस्था विरोधी कविताएं लिखने के अपराध में उत्तर प्रदेश सरकार ने उन्हें पुरस्कार से वंचित कर दिया तो उन्होंने कहा कि–"मैंने अपनी चेतना और भावना को व्यक्त किया है और आगे भी करता रहूँगा। मेरी रचना सरकार या समालोचक की इच्छा पर कभी नहीं चलती, उसकी अपनी प्रकृति है अपना स्वभाव है।"[27] इस कथन से उनकी रचना प्रक्रिया के सम्पूर्ण चरित्र को समझा जा सकता है। 'मिश्र जी' ने 'आप और दो कौड़ी का आदमी' नामक कविता में सत्ता के नैतिक चरित्र का भंडाफोड़ करते हुए इसी व्यापार नीति पर प्रकाश डालता है–"हाँ ऐसे लोग भी हैं/जिनकी कीमत/दो कौड़ी की नहीं है/जो आपकी गाड़ी के पहिये के नीचे की धूल हैं/जो बहुत हुआ तो आपके जूतों के नीचे के/कुचले हुए फूल हैं।"[28]

दूसरे महायुद्ध के बाद अफ्रीका, एशिया और दक्षिण पूर्व एशिया के सभी देश प्रारम्भ में प्रजातंत्र प्रणाली को अपनाकर अंत में अधिनायकवाद के लिए समर्पित हो गये हैं। केवल भारत ही एक ऐसा देश है जो सभी बाधाओं के बावजूद प्रजातंत्र को अपनाए हुए है। आपातकालीन स्थिति में अधिनायकवाद का संकट आया था उस समय की त्रासदी स्थिति का चित्रण 'मिश्र जी' की कविताओं में मिलता है–"बहुत नहीं थे सिर्फ चार कौए थे काले/उन्होंने तय किया कि सारे उड़ने वाले/उस ढंग से उड़ें, रुकें, खाएं और गायें/वे जिसको त्यौहार कहें सब उसे मनायें।"[29] बर्फ में यातनाएं सहता हुआ भारतीय सैनिक दूसरे विपक्षी सैनिक से लड़ता है तो लाचार होकर ही लड़ता है। वीरता का दंभ लेकर नहीं क्योंकि लड़ने वाले शत्रु पक्ष के सैनिक से लड़ते हैं और एक त्रासदी पैदा कर देते हैं, क्योंकि मृत्यु दोनों में से एक की होनी ही है यह एक लाचारी है। 'मिश्र जी' एक सैनिक का चित्रण इसी त्रासदी का अनुभव करते हुए लिखते हैं–"तुम युद्ध से खींचे जाकर अनास्तार्त्व के अमृत से सीचे जाकर/बर्फ में ले जाकर गड़ा दिए गये हो/तुम्हारे जैसे अन्य से लड़ा दिए गये हो।"[31]

वे त्रासदी की इस स्थिति में संघर्ष से विमुख नहीं हैं इसलिए उनकी कविताओं में त्रासदी का चित्रण तो है लेकिन वे अपने टूटने एवं विखरने को अधिक महत्त्व नहीं देते हैं और संघर्ष को जीवन का मूल्य मानते हैं तभी कवि इसके लिए विवश हो पड़ा है कि शहर अपनी ही मौत का सपना देख रहा है, चिंताएं सर्वत्र जलती दिखायी दे रही है। सभी वशीभूत हो रहे हैं और बच्चे स्वयं अपनी कब्र खोद रहे हैं। कहीं कोई करुण स्वर संवेदना नहीं उभरती और मानवीय मूल्यों पर हमारा ध्यान केन्द्रित भी नहीं होता यहाँ तक कि सम्पूर्ण मानवता त्रासदी का आघात सह रही है वे लिखते हैं "चारों तरफ चिताएं जल रही हैं/सायं सन्न हवाएं चल रही हैं/होते जा रहें हैं राख की ढेरी/बूढ़े और जवान/बच्चे अपनी कब्र खोद रहे हैं/और बैठे रहे हैं जा जाकर/अपनी खोदी हुयी कब्रों पर/अपनी खोदी हुई मिट्टी/अपने ऊपर समेत रहे हैं/और फिर उनमें लेट रहे हैं।"[31]

स्पष्ट है मिश्र जी का काव्य संवेदना से भरा पड़ा है। दूसरे शब्दों में कहे तो मिश्र जी की संवेदना ने ही काव्य का रूप ले लिया है ।

संदर्भ–सूची

1. 'हिंदी साहित्य कोश' भाग–1, धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञान मण्डल लिमिटेड, वाराणसी, पृ. 863
2. 'अंधेरी कविताएँ', भवानी प्रसाद मिश्र, आर्य प्रकाशन मण्डल, गाँधीनगर दिल्ली, तृतीय संस्करण, 1997, पृ. 30
3. 'चकित है दुयख', भवानी प्रसाद मिश्र, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 3
4. 'त्रिकाल संध्या', भवानी प्रसाद मिश्र, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, चतुर्थ संस्करण, 2000, पृ. 17
5. 'गीत फरोश', भवानी प्रसाद मिश्र, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2000, पृ. 34
6. 'बुनी हुई रस्सी', भवानी प्रसाद मिश्र, आर्य प्रकाशन मण्डल, गांधीनगर दिल्ली, तृतीय संस्करण, 2011, पृ. 37
7. 'बुनी हुई रस्सी', भवानी प्रसाद मिश्र, पष्ठ सं० फ्लेष पृष्ट से
8. वही, पृ. 17
9. वही, पृ. 7
10. वही, पृ. 24
11. वही, पृ. 41
12. वही, पृ. 41
13. वही, पृ. 44
14. 'कविता से क्रांति थोड़ी मुश्किल चीज है', लेख कांति कुमार जैन, पत्रिका समकालीन सृजन, सं० लक्ष्मण केडिया, पृ. 216–217
15. 'गीत फरोश', भवानी प्रसाद मिश्र, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2000, पृ. 129–133
16. वही, पृ. 211
17. 'गाँधी पंचशती', भवानी प्रसाद मिश्र, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 21
18. वही, पृ. 21
19. वही, पृ. 21
20. 'बुनी हुई रस्सी', भवानी प्रसाद मिश्र, आर्य प्रकाशन मण्डल, गांधीनगर दिल्ली, तृतीय संस्करण, 2011 पृ. 45
21. 'चकित है दुरूख', भवानी प्रसाद मिश्र, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 76
22. 'अनाम तुम आते हो', भवानी प्रसाद मिश्र, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 58
23. इद न मम', भवानी प्रसाद मिश्र, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 82
24. 'गीत फरोश', भवानी प्रसाद मिश्र, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2000, पृ. 56–57
25. वही, पृ. 56
26. वही, पृ. 166
27. 'दिनमान', 6 फरवरी 1983, पृ. 46
28. गीत फरोश', भवानी प्रसाद मिश्र, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2000, पृ. 167
29. 'गाँधी पंचशती', भवानी प्रसाद मिश्र, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 46
30. 'बुनी हुई रस्सी', भवानी प्रसाद मिश्र, आर्य प्रकाशन मण्डल, गांधीनगर दिल्ली, तृतीय संस्करण, 2011 पृ. 116
31. वही, पृ. 117

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 120-123

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

सूफी साहित्य का संवेदनात्मक परिचय

*दुर्गा प्रसाद**

व्युत्पत्ति के दृष्टिकोण से देखा जाए तो 'सूफी' शब्द को लेकर विद्वत्‌जन में प्रायः मतभेद है। उदाहरणार्थ, सूफ शब्द से व्युत्पन्न सूफी शब्द को मानने वाले विद्वान विचारक यह मानने के पक्ष में हैं कि ऊन को कुछ विशेष संत–महात्मा शरीर पर धारण करते थे, जिस कारण ऐसे संत–फकीरों का नाम सूफी दिया गया। विचारकों का एक समूह यह मानने के पक्ष में है कि 'सूफा' शब्द से सूफी शब्द का प्रचलन हुआ। सूफा का अर्थ 'चबूतरा' माना जाता है। किन्तु कुछ विद्वान 'सोफिया' शब्द से 'सूफी' शब्द की व्युत्पत्ति मानते हैं। सोफिया का अर्थ विद्या होता है; तो कुछ विद्वान विचारक 'सफा' शब्द से 'सूफी' शब्द की व्युत्पत्ति मानने के पक्ष में हैं। 'सफा' का अर्थ, निर्मल अर्थात् पवित्र माना जाता है।

कुल मिलाकर, विद्वान–विचारकों में यह मत है कि 'सूफी' शब्द का आविर्भाव एक ऐसे समाज–सुधारक, संन्यासी और फकीर के लिए किया गया, जो लौकिक सौंदर्य तथा अलौकिक सौंदर्य में सेतु का कार्य किये, लगभग सर्वमान्य अवधारणा है। 'सूफी' शब्द के मूल में वह सौंदर्य–चेतना प्रतिभाशित होती है, जो 'इश्क–मिजाजी' से होते हुए 'इश्क–हकीकी' का साक्षात्कार कराती है। 'इश्क–मिजाजी' अर्थात् लौकिक प्रेम से होते हुए 'इश्क–हकीकी' आर्थात् परमतत्त्व तक की यात्रा का बोध सूफी साहित्य में पाया जाता है। इस यात्रा का मूल उद्‌देश्य परमतत्त्व के सौंदर्य का बोध होना जान पड़ता है।

सूफी के विविध संप्रदाय : चिश्ती संप्रदाय : भारतवर्ष में चिश्ती संप्रदाय का महत्त्व निर्विवाद रूप से स्वीकृत है। विद्वानों में प्रायः आम सहमति बन चुकी है कि चिश्ती संप्रदाय के प्रवर्त्तक के रूप में 'ख्वाजा मुईनुद्‌दीन चिश्ती' का नाम बड़े ही आदर के साथ लिया जाता है। ख्वाजा मुईनुद्‌दीन चिश्ती के जन्म वर्ष एवं जन्मस्थान के विषय में ऐसा कहा एवं सुना जाता है कि आपका जन्म 1142 ई. में सीस्तान के संजर शहर में हुआ। आप अनेक ऐसे स्थलों की यात्राएँ कीं, जिनका महत्त्व आज भी उल्लेखनीय है। जैसे–मक्का, मदीना, खुरासान। परिणामस्वरूप एक–दूसरे की भाषा, समाज एवं संस्कृति के विषय में परिचित हुए। इसी क्रम में कुछ संत–फकीरों से भी वैचारिक एवं व्यावहारिक संबंध निर्मित हुआ होगा। ऐसा माना जाता है कि आप यात्राओं के क्रम में गजनी और फिर दिल्ली आए। विपुल ज्ञान–भंडार के कारण तत्कालीन राज–प्रशासन आपका स्वागत करने के लिए निर्णय लिया एवं आपसे दिल्ली रहने के लिए अनुरोध किया किन्तु राज–प्रशासन के इस आग्रह को इन्होंने नहीं स्वीकार किया। जैसा कि माना जाता है जीवन के उत्तरार्द्ध में वे अजमेर गए और जीवन के अंतिम समय तक आप अजमेर ही रहे। सूफी संतों में इनका नाम अग्रगण्य है।

सुहरवर्दी संप्रदाय : विद्वान–विचारकों का एक जखीरा (समूह) यह मानने के पक्ष में है कि भारत में सर्वप्रथम सूफियों का प्रवेश इसी संप्रदाय के द्वारा हुआ। इस मत के प्रबल समर्थक ख्वाजा हसन निजामी जैसे विद्वान है। इस संप्रदाय के प्रवर्त्तन का श्रेय किनको दिया जाय, इसको लेकर भी मतभेद है। जैसे शिहाबुद्‌दीन सुहरावर्दी या जियाउद्‌दीन अथवा जियाउद्‌दीन के पिता अबुल नजीब का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है।

भारतवर्ष में सुहरावर्दी संप्रदाय का प्रवर्त्तन बहाउद्‌दीन जकारिया के द्वारा प्रवर्त्तित माना जाता है। हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास में डॉ. रामकुमार वर्मा यह मत स्पष्ट करते हैं कि ''भारत में सर्वप्रथम इस

* *शोधार्थी (हिन्दी विभाग), पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय*

संप्रदाय को प्रचारित करने का श्रेय सैयद जलालुद्दी सुर्खपोश (1199 ई. से 1291 ई.) को है, जो बुखारा में उत्पन्न हुए और स्थायी रूप से ऊंच (सिन्ध) में रहे।''[1] डॉ. रामकुमार वर्मा के इस मत से इतना अवश्य स्पष्ट होता है कि यह संप्रदाय भारतवर्ष के अनेक स्थानों, जैसे–सिंध, गुजरात, पंजाब में प्रचारित एवं प्रचलित हुआ। जलालुद्दीन तबरीजी, सैयद जलालुद्दीन मख्दूमे, जहानियाँ, बुरहानुद्दीन, कुतुबे आलम जैसे महान संत–फकीरों के द्वारा बंगाल, सिंध, बिहार, गुजरात में इस संप्रदाय का व्यापक प्रचार–प्रसार हुआ। संप्रदाय के अपने सौंदर्याकर्षण के कारण अनेक राजा भी इस संप्रदाय में दीक्षित हुए। शेख शहाबुद्दीन सुहरावर्दी के द्वारा बहाउद्दीन जकरिया को भारत भेजा गया और ये लोग भारत आकर अनेक स्थलों का भ्रमण करते हुए अपने इस संप्रदाय को आगे बढ़ाया।

अध्ययन के क्रम में यह बात प्रमुख रूप से स्पष्ट हुई कि बेशरा सुहरावर्दियों की वैचारिक पृष्ठभूमि जिन महानुभावों द्वारा निर्मित हुई; उनमें सैयद जलालुद्दीन सुर्खपोश शाहमीर का नाम सबसे पहले आता है। बुखारा के निवासी होते हुए आप सिंध को अपने मत के प्रचार–प्रसार के लिए चयनित किया। इस संप्रदाय के प्रमुख संतों में बहाउद्दीन जकरिया का नाम समादर के साथ लिया जाता है। कहा जाता है कि ये बाबा फरीद के शुभचिंतक थे। सुहरावर्दिया संप्रदाय के दीक्षित फकीरों में शेख कुतुबन का नाम लिया जाता है।

बेशरा सुहरावर्दियों की वैचारिकी के प्रवर्त्तन का श्रेय सैयद जलालुद्दीन सुर्खपोश को दिया जाता है।

कादरी संप्रदाय : इस संप्रदाय के प्रवर्त्तन का श्रेय अबुल कादिर अल् जीलानी को दिया जाता है। मुहम्मद गौस को भारत के संदर्भ में प्रवर्त्तन का मुखिया माना जाता है। आज भी इनका नाम सादर लिया जाता है। सिकंदर लोदी, जो दिल्ली का सुल्तान था, वह भी मुहम्मद गौस के विचारों का अनुयायी था। इस संप्रदाय में आस्था रखने वाले लोगों में भावोन्मेष की प्रधानता थी। कादरी संप्रदाय के उपसंप्रदाय के रूप में रजाकिया और वहाबिया इन दो नामों की चर्चा प्रायः की जाती है। शेखमीर मुहम्मद दाराशिकोह से दीक्षित थे। कादरी संप्रदाय से संबंधित 'कुमेशिया' शाखा का बंगाल में ज्यादा प्रचार–प्रसार हुआ।

नक्शबंदी संप्रदाय : व्यापक प्रतिष्ठा के कारण इस संप्रदाय का महत्त्व ज्यादा है। विशेष रूप से इस संप्रदाय का प्रवर्त्तन ख्वाजा उवैदुल्ला ने किया है, जबकि साधारणतः इस संप्रदाय के प्रवर्त्तक के रूप में बहाउद्दीन नक्शबंद का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। यह संप्रदाय व्यापक प्रचार–प्रसार के कारण न केवल भारत में बल्कि टर्की, चीन में भी अपनी पहचान एवं अपनी मान्यताओं के बल के कारण पहचाना जाता है। ख्वाजा बाकी बिल्लाह बेरंग के भारत आगमन के बाद यह संप्रदाय और भी अधिक प्रसारित हुआ। प्रभाव–विस्तार के दृष्टिकोण से देखा जाए तो अहमद फारूकी का नाम भारत के संदर्भ में ससम्मान लिया जाता हैं यह संप्रदाय जहाँगीर के शासन–काल में ज्यादा प्रचरित हुआ किन्तु जनसामान्य में इस संप्रदाय की तरफ आकर्षण का व्यापक प्रभाव देखने के लिए नहीं मिलता है। यहाँ तक कहा जाता है कि इस संप्रदाय का प्रभाव अन्य संप्रदायों की अपेक्षा अति न्यून था।

शत्तारी संप्रदाय : यह संप्रदाय सूफी संप्रदायों में प्रमुख या विशेष माना जाता है। भारत के संदर्भ में ऐसा कहा या माना जाता है कि यह संप्रदाय फारस के शेख अब्दुल्ला शत्तारी द्वारा अभिसिंचित हुआ। मुहम्मद गौस को इस संप्रदाय के प्रमुख संत के रूप में जाना जाता है। बहुश्रुत है कि सूफी कवि मंझन के गुरु आप थे और हुमायूँ के शासन–काल को आपने देखा भी था। मुगल बादशाह इस संप्रदाय को बड़े तहजीब से देखते थे। 'मैं हूँ' और 'मैं एक हूँ' जैसे सिद्धांतों को मानने वाले इस संप्रदाय के कुछ विद्वान 'फना' की अवस्था को स्वीकार नहीं करते हैं।

मदारी संप्रदाय : शाह मदार बदीउद्दीन ने भारत में इस संप्रदाय का प्रवर्त्तन किया। ऐसा माना जाता है कि यह संप्रदाय 'उवैसी' संप्रदाय के सिद्धांतों को आगे बढ़ाया। उत्तर भारत विशेष रूप से उत्तर प्रदेश में 16वीं शती में इसका व्यापक प्रचार–प्रसार हुआ।

शाह मदार भारत के मूल निवासी नहीं माने जाते हैं। अजमेर में आप कुछ समय रहकर इस संप्रदाय के विस्तार करने में अपने योगदान दिया।

उवैसी, कलंदरी, मालमती, मेहदवी जैसे संप्रदाय भी सूफी मत का अनुगमन करते हैं। महत्त्व के दृष्टिकोण से कहा जाता है कि ये संप्रदाय अपना प्रभाव न्यून रखते थे।

साहित्य समाज एवं गैर समाज की मूल संवेदना को मनुष्य के मन–मस्तिष्क की चेतना तक प्रभावित तो करता ही है, साथ ही 'प्रेम' के मार्ग पर चलने के लिए सभी को प्रेरित भी करता है। प्रेममय समाज में, विशेष बात यह भी है कि गैर सामाजिक तत्त्व भी सामाजिक संरचना के साथ समाज, संस्कृति जैसे सकारात्मक तत्त्व भी समाज को ऊर्ध्व गति प्रदान कर समाज के स्वस्थ निर्माण में अपना सहयोग प्रदान करते हैं। प्रेम के आदान–प्रदान के माध्यम से परस्पर शांति, सौहार्द, अमन, बंधुत्व जैसे मूलतत्त्व हृदय को आह्लादित करने वाले गुण स्वयमेव संपूर्ण समाज के संपूर्ण विकास में अनुस्यूत होते हैं।

प्रेम को सूफी साहित्य की आत्मा कहा जा सकता है। प्रेम जैसे सेतु पर ही आत्मा और परमात्मा का मिलन संभव हो सकता है।

ईश्वर का सान्निध्य प्राप्त करने के लिए सूफी–कवियों में अर्थात् इनके हृदय में व्याकुलता का अनुभव व्याप्त होता है और जितनी गहन तल्लीनता के साथ हृदय–पक्ष का झुकाव ईश्वर की प्राप्ति के लिए होता है उसे उतना ही ईश्वर के साहचर्य का सुयोग प्राप्त होता है। भौतिक जगत या लौकिक प्रेम की संरचना में सूफी साहित्यकार (कवि) उस अनादि शक्ति अर्थात् परंब्रह्म के रहस्य के प्रति रीझता है और उस परमतत्त्व को प्राप्त करने की चेष्टा करता है।

भाषिक संरचना के दृष्टिकोण से यदि देखा जाए तो सूफी साहित्य में साधक एवं सामान्य–दोनों प्रमुख रूप से परंतत्त्व का अवगाहन कर सकते हैं। अर्थ की अभिव्यक्ति और हृदय की अनुभूति अपने–अपने संस्कार एवं लक्ष्य के अनुसार लोग प्राप्त करते हैं। सामान्यतः सूफी साहित्य की लिपि फारसी है। कुछ आलोचक–विद्वान फारसी से हिन्दी (अवधी) में अपनी संवेदनशीलता के अनुसार लिप्यांतरण किया। इससे इतना तो अवश्य ज्ञात होता है कि काव्य–परंपरा के प्रभाव के दृष्टिकोण से फारसी में साहित्य का ऐसा पुट सुख–आनंद की अनुभूति प्रदान करता है। फारसी काव्य की परंपरा का प्रभाव व्यापक स्तर पर दिखाई देता है। अपने सौंदर्य के कारण सुदूर प्रांत तक सहृदय व्यक्तियों को यह साहित्य प्रभावित करता रहा है। जब यह बात सामने उभरकर आती है कि हिन्दी सूफी साहित्य में कुछ ऐसे काव्य–स्थल भी हैं, जहाँ पर गणना (गिनती) बड़े व्यौरे के साथ प्रस्तुत है, वहाँ से पाठक या श्रोता ऊबने लगता है। किन्तु ध्यान देने की बात है कि फारसी काव्य परंपरा में वस्तुओं का नाम लेकर उसका सांगोपांग वर्णन किया जाता है। साहित्य की परंपरा में इस व्यौरेवार वर्णन को अतिशयोक्ति नहीं माना जाना चाहिए। प्राकृतिक घटक का वर्णन यदि किया जाए तो उससे कवि की सहृदयता की पहचान होती है। कवि का हृदय–पक्ष प्रकृति के नाना रूपों में इतना अधिक रचा–बचा होता है कि वह छोटे–से–छोटे प्राकृतिक घटक को भी अपने साहित्य का हिस्सा बनाता है।

किसी भी धर्म का उद्‌भव या जन्म किसी निश्चित समय–सीमा में नहीं होता है। धर्म के बुनियादी तत्त्व कुछ–न–कुछ किसी–न–किसी मात्रा में धर्म के जन्म–सन् से पहले अवश्य विद्यमान होते हैं। इसलाम के जन्म या उद्‌भव को किसी सन्–शताब्दी में बाँधना दुरूह है। जिसे 'धर्म' कहा जाता है वह दरअसल अनुभूति, व्यवहार–आचरण का ही परिणाम होता हैं धर्म अर्थात् इन सबको आचरण या सदाचरण के द्वारा अभिव्यक्त करना माना जा सकता है।

सामाजिक संरचना के घटकों को संगठित–नियोजित करने का एक माध्यम धर्म भी है। धर्म अलग–अलग हो सकते हैं, रास्ते अलग–अलग हो सकते हैं किन्तु परमात्मा या परमतत्त्व सबका एक ही है। वह परमलक्ष्य या परमतत्त्व है–प्रेम एवं आनंद का सर्वोन्मुखी विकास। इसी को प्राप्त करने एवं प्रसार के उद्‌देश्य के लिए अपने–अपने स्तर से साधन जुटाया (एकत्रित) किया जाता है। प्रतीक–समय के रूप में विद्वान–विचारकों द्वारा यह मान लिया जाता है कि इसलाम का जन्म हजरत मुहम्मद साहब के द्वारा अरब में हुआ। प्रश्न है कि 'मुसलमानों के आक्रमण के तुरंत बाद से ही सूफी साधकों का यहाँ आना–जाना प्रारंभ हो गया'[2] तो दोनों की प्रवृत्तियाँ अलग ही नहीं, विपरीत भी हैं। क्योंकि एक तरफ आक्रमणकारी मुसलमान अपने साम्राज्य का विस्तार करने के उद्‌देश्य से अरब

की तरफ से आ रहे हैं तो उसी रास्ते सूफी साधक प्रेम, त्याग, आनंद का पैगाम लेकर भारत आ रहे हैं। यह कहने में कोई हर्ज नहीं है कि आक्रमणकारी मुसलमान एक तरफ व्यवसाय फैलाना चाहते थे और दूसरी तरफ शायद धर्म (इसलाम) का भी प्रसार करना चाहते रहे हों। लेकिन ऐसा करना किसी तानाशाही प्रवृत्ति से कम नहीं है जो कि सूफी मत में त्याज्य है।

संदर्भ–ग्रंथ

1. श्रीरामपूजन तिवारी, सूफीमत : साधना और साहित्य, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी
2. डॉ. रामकुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास

सहायक ग्रंथ :

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास : नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
2. डॉ. रामकुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. 304
3. श्री रामपूजन तिवारी : सूफीमत, साहित्य और साधना, पृ. 404

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 124-126

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

मराठी भाषी छात्रों का हिन्दी अध्ययन : समस्याएँ एवं समाधान

*डॉ. संजय भाऊ साहब दवंगे**

भाषा वह साधन है जिसके माध्यम से व्यक्ति एक–दूसरे के साथ संपर्क कर लेता है। अपने विचार, भाव, अभिव्यक्ति के लिए मनुष्य भाषा का प्रयोग करता है। भारत एक विशाल भू–प्रदेश से बना देश है। भारत के विविध प्रदेशों में विविध भाषाएँ बोली जाती है। इसी कारण भारत को बहुभाषी देश भी कहा जाता है। 'चार कोस पर बदले पानी, आठ कोस पर बानी' इस उक्ति के अनुसार भारत में असंख्य भाषाएँ, बोलियाँ एवं उपबोलियों का प्रयोग होता है। परंतु यह भाषिक विविधता होने पर भी सभी प्रदेशों को, देश को एकता के सूत्र में पिरोने का काम हिंदी भाषा ने किया है। इसी कारण इसे 14 सिंतबर, 1949 को राजभाषा का स्थान प्राप्त हुआ।

महाराष्ट्र जैसे अहिंदी भाषी प्रदेश में अनेक छात्र हिंदी का अध्ययन कर रहे है परंतु इन छात्रों की प्रथम भाषा या मातृभाषा मराठी होने से इन्हें हिंदी अध्ययन में अनेक समस्याएँ आती हैं, वे समस्याएँ निम्नलिखित हैं–

हिंदी भाषा की लिपि देवनागरी है। एक ध्वनि के लिए एक ही सांकेतिक चिह्न यह देवनागरी लिपि की विशेषता है। भाषा का लिखित और मौखिक रूप होता है। लेखन कार्य करते समय योग्य सांकेतिक चिह्न का प्रयोग न करने से वर्तनी संबंधी समस्या निर्माण होती है। मातृभाषा के प्रभाव के कारण भी छात्रों को अध्ययन करते समय वर्तनीगत कमियाँ महसूस होती हैं। जैसे–

शुद्ध	**अशुद्ध**	**शुद्ध**	**अशुद्ध**	**शुद्ध**	**अशुद्ध**
निरोग –	नीरोग	नमस्कार –	नमस्कार	आशीष –	आसीस
अपना –	आपना	बरात –	बारात	त्योहार –	त्यौहार
भूख –	भूक	वाणी –	बाणी	ज्येष्ठ –	जेष्ठ
दुनिया –	दुनियाँ	स्वर्गीय –	स्वगीर्य	ज्ञान –	ग्यान

मराठी और हिंदी दोनों भाषा का जन्म संस्कृत से हुआ है लेकिन दोनों भाषाओं में उच्चारण में भिन्नता है। इस कारण मराठी भाषी छात्र को हिंदी अध्ययन में अनेक समस्याएँ आती है। जैसे कमळ–कमल, टाळी–ताली, सतरा–सत्रह।

विविध कारणों से छात्र–छात्राओं को हमेशा पत्रलेखन करना पढता है। पत्रलेखन के सही ज्ञान न होने से विद्यार्थीयों को अनेक समस्याएँ आती हैं। प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर पत्रलेखन न समझने से महाविद्यालयीन स्तर पर भी पत्रलेखन के विषय उन्हें कठिन लगते हैं। परिणामतः छात्र हिंदी विषय से डरते है। प्राथमिक या माध्यमिक शिक्षा में महाराष्ट्र के विद्यार्थीयों को हिंदी भाषा का ज्ञान न होने से पत्रलेखन में शब्द, प्रारूप, आदि की समस्याएँ आती हैं।

कुछ अध्यापक विद्यार्थीयों को पत्रलेखन में पत्रों के विविध विषय, प्रकार, प्रति, प्रेषक आदि ठिक तरह से नहीं समझाते। इसे कहाँ लिखने हैं इसका प्रात्यक्षिक करके नहीं बताते। इस कारण भी विद्यार्थीयों को पत्रलेखन में समस्या आती है।

* *के.जे. सोमैया महाविद्यालय, कोपरगाँव*

संभाषण यह भाषा का प्रमुख तत्व है। संभाषण के बिना भाषा सीखना व्यर्थ है। महाराष्ट्र यह अहिंदी भाषी प्रदेश होने से यहाँ के छात्र–छात्राओं को हिंदी संभाषण में अनेक समस्याएँ आती हैं। छात्र संभाषण करते समय वाक्य में मराठी शब्द का प्रयोग करते हैं। संभाषण करते समय शब्द का उच्चारण स्पष्ट और सही नहीं करते। उन्हें हिंदी संभाषण के नियम का ज्ञान नहीं है। उच्चारण के समय मात्रा, आघात पर ध्यान नहीं देते। बल का अपसरण होने से अनेक गलतियाँ होती है। जैसे संगमनेर–संगनमेर।

हिन्दी में संभाषण करते समय छात्र के मन में हिन्दी के प्रति डर होने से एक दूसरे के साथ मराठी में बोलते हैं।

महाराष्ट्र में हिंदी भाषा के प्रति हास्यास्पद दृष्टि से देखा जाता है। इस कारण छात्र–छात्राएँ हिंदी अध्ययन से दूर भागते हैं। मराठी के ऐसे अनेक शब्द हैं। जिसका हिंदी शब्द उच्चारण हास्यास्पद है। जैसे ऊस–गन्ना, भोपळा–कद्दु, सिगरेट–श्वेत दंडिका।

महाराष्ट्र में रहनेवाले लोगों को अपनी मातृभाषा मराठी पर गर्व है। इसी कारण दूसरी भाषा के हो रहे आक्रमण को यहाँ के लोग सह नहीं पाते। महाराष्ट्र में हिंदी भाषी लोगो का विरोध किया जाता है। जैसे–महाराष्ट्र में महाराष्ट्र नवनिर्माण सेना इस पक्ष ने सन 2008–09 में हुए रेल भरती के समय हिंदी भाषी विद्यार्थीयों का विरोध किया, उनके साथ मारपीट की, हिंदी में लिखी गई दुकान की पाटियाँ को तोड़ दिया। इन सभी घटनाओं का परिणाम छात्रों के मन पर होता है। और छात्र भी हिंदी भाषा की ओर प्रांतवाद की दृष्टि से देखते हैं।

भाषा रोजगार का साधन है। आज प्रत्येक छात्र के सामने नौकरी की समस्या खड़ी है। बड़ी–बड़ी उपाधियाँ लेकर भी जल्दी नौकरी नहीं मिलती है। जिस भाषा में रोजगार के अवसर अधिक है उस भाषा की ओर छात्रों का झुकाव अधिक हैं। हिंदी राष्ट्रभाषा होने पर भी महाराष्ट्र जैसे अहिंदी प्रदेशों में हिंदी भाषा में रोजगार के अवसर कम है। इस कारण छात्र और पालक भी चिंतीत हैं। हिंदी की तूलना में अंग्रेजी भाषा में छोटी–बड़ी अनेक नौकरीयाँ तुरंत मिलती हैं। इसी कारण छात्र हिंदी अध्ययन करने से कतराते हैं।

जिन हिंदी भाषी प्रदेशों की प्रथम भाषा हिंदी हैं, वहाँ के अनेक युवक महाराष्ट्र जैसे अहिंदी भाषा प्रदेशों में आकर नौकरी करते हैं। जो भी काम मिलेगा करने के लिए तैयार होते हैं। बिहार, उत्तरप्रदेश के अनेक युवक महाराष्ट्र के मुंबई, नाशिक आदि शहरों में आकर काम करते हैं। उन युवकों को देखकर, उनकी स्थिति को देखकर यहाँ के छात्र भी हिंदी के प्रति निराशा की दृष्टि से देखते हैं।

हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा हैं। हिंदी भाषा में लिखित साहित्य विपुल मात्रा में उपलब्ध है। आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक अनेक साहित्यकारो ने विविध विषयों पर लेखन कार्य करके हिंदी साहित्य को समृद्ध किया है। हिंदी साहित्यकारों ने लिखित अनेक रचनाओं का फिल्माकंन हुआ है। फिल्म निर्माता ने मीडिया के माध्यम से उस फिल्म का विज्ञापन करके जनमानस में उसे पहुँचा दिया है। परंतु जिन रचनाओं पर वह फिल्म बनाई गई उस रचना की उपेक्षा होती है। अगर उस फिल्म के साथ–साथ रचना का भी विज्ञापन किया गया तो छात्र उस रचना के प्रति आकर्षित होंगे। रचना को पढ़ने की छात्र की रुचि जागृत होगी। परंतु फिल्म–निर्मिति के बावजूद साहित्यिक ग्रंथों की उपेक्षा के कारण छात्र उस रचना के प्रति अनभिज्ञ रह जाते हैं।

विद्यार्थीयों के व्यक्तित्व का उनके गुणों का सर्वांगीण विकास करने में पाठ्यक्रम प्रमुख भूमिका निभाता है। पाठ्यक्रम छात्र और अध्यापक को जोड़नेवाला सेतु है। प्रात्यक्षिकों का संबध प्रत्यक्ष क्रिया से होता है। प्रत्यक्ष क्रिया व्दारा मिला ज्ञान अधिक होता है। पाठ्यक्रमों में आजकल बैंक तथा सरकारी कार्यलय से संबधित पत्रलेखन होता है। कक्षा में छात्र पत्रलेखन की उपरी जानकारी हासिल करते हैं। परंतु जब वे बैंक या कार्यालय में पत्रलेखन करने जाते हैं, तब उन्हें अनेक समस्याएँ आती हैं। इसलिए पाठ्यक्रमों में इस संबधी प्रत्यक्ष भेंट का समावेश होना चाहिए। इसके लिए कुछ अंक भी रखने चाहिए।

माध्यमिक तथा उच्च माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रम में साक्षात्कार लेखन यह विषय होता है। कक्षा में छात्र किसी रचनाकार, विद्वान व्यक्ति के साक्षात्कार का अध्ययन करते हैं। परंतु उससे उन्हें संपूर्ण ज्ञान नहीं मिलता। हिंदी पाठ्यक्रमों में अगर प्रत्यक्ष साक्षात्कार अनिवार्य किया जाए तो विद्यार्थी किसी हिंदी प्रेमी रचनाकार, विद्वान से मिलकर हिंदी विषय के प्रति आकर्षित होंगे। भेंटवार्ता या साक्षात्कार ऐसे लेखकों के हों जो महाराष्ट्र के हो

और जो हिंदी में लिखते हैं। जिससे छात्रों को कुछ प्रेरणा मिलेगी। इसका अभाव होने से छात्र हिंदी के प्रति उदासिनता की नजर से देखते हैं।

महाराष्ट्र में स्कूल, महाविद्यालयों में हिंदी अध्ययन करने वाले अधिकतर छात्र मराठी भाषिक होते हैं। मराठी भाषा का प्रभाव उन पर अधिक होने से हिंदी बोलते समय वे अधिकतर मराठी शब्दों का प्रयोग करते हुए नजर आते हैं। भाषण देते समय यह बात स्पष्ट दिखाई देती है। हिंदी पाठ्यक्रमों में मौखिकी अनिवार्य होने से छात्रों को पढ़ते या बोलते समय मदद होगी। महाविद्यालयीन स्तर पर प्रथम वर्ष वाणिज्य हिंदी में मौखिकी परीक्षा अनिवार्य है। वह प्रथम वर्ष, द्वितीय वर्ष, तृतीय वर्ष कला हिंदी विषय में भी अनिवार्य होनी चाहिए।

महाराष्ट्र में अनेक ऐसे छात्र हैं। जो ग्रामीण भागों में, आँचलों में, पहाड़ी क्षेत्रों में रहते हैं। जहाँ आज भी शिक्षा की सुविधा नहीं है। इन कारणों से या आर्थिक परिस्थिति के कारण यहाँ के अनेक छात्र दूरस्थ शिक्षा से अपनी पढ़ाई पूरी करते हैं उसे हम बहिस्थ छात्र भी कहते हैं। ऐसे दूरस्थ शिक्षा प्राप्त करनेवाले छात्रों के अध्ययनार्थ जो पाठ्यक्रम होता है उस पाठ्यक्रम के पुस्तकों का अध्ययन करने के लिए उनके सामने कोई मार्गदर्शक नहीं होता। मार्गदर्शक की कमी के कारण छात्र अपनी समझ और क्षमता के अनुसार पाठ्यक्रम का अध्ययन करता है। इस कारण उनके सामने अनेक प्रकार की समस्याओं की निर्मित होती हैं।

छात्रों को संगणकीय ज्ञान होना आज के समय की माँग है। इसलिए हिंदी पाठ्यक्रमों में संगणक की जानकारी, उसका प्रयोग आदि का समावेश होना आवश्यक हैं। दृश्य–श्रव्य साधनों में किसी रचना के रूपांतर, फिल्मांकन तथा हिंदी गीतों की कॅसेट्स, सीडीज का प्रयोग होना चाहिए। जिससे विद्यार्थी संगणकीय अध्ययन की तरफ आकर्षित होंगे। गीतों को सुनने से उच्चारण की समस्या दूर होगी। उदाहरण लता मंगेशकर मराठी भाषिक होने पर भी उनके गीतों में मराठी उच्चारण का प्रभाव कहीं भी दिखाई नहीं देता। ऐसे गीत सुनने से उच्चारण में सुधार होगा।

संदर्भ–सूची

1. दूर–शिक्षण सामग्री स्रोत :
2. डॉ. शोभा पवार (निंबालकर), स्वरूप, संभावनाएँ एवं समस्याएँ
3. डॉ. बलभिमराज गोरे, हिंदी भाषा, लिपि व साहित्य
4. डॉ. अंबादास देशमुख, समान स्रोत और भिन्न वर्तनी : शब्दावली
5. डॉ. जयश्री शुक्ला / डॉ. राजेश चतुर्वेदी, हिंदी संघर्ष और आयाम
6. डॉ. विश्वनाथ भालेराव, भाषावाद
7. डॉ. कल्पना शर्मा, राजभाषा कार्यान्वयन समस्याएँ एवं निदान
8. डॉ. माधव सोनटक्के / डॉ. हनुमंत पाटील, साहित्य का अध्ययन–अध्यापन
9. महाराष्ट्र हिंदी परिषद का 17, 20वाँ अधिवेशन : उपलब्धि
10. डॉ. शैलेजा माहेश्वरी, सीमांत प्रदेश को हिन्दी प्रदेय

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 127-130

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

हिन्दी कहानी : परम्परा और पृष्ठभूमि

*डॉ. राम किंकर पाण्डेय**

हमारे यहाँ कहानी की लिखित और मौखिक दोनों परम्पराएँ विद्यमान हैं। उपनिषदों की रूपक कथाओं, महाभारत के उपाख्यानों, रामायण की कहानियों, बौद्धों की जातक कथाओं और फिर पौराणिक देवी–देवताओं के चतुर्दिक बुनी गई रोचक कथाओं का अपूर्व भंडार हमारे यहाँ मौजूद है। बाद में इसी कथा–परंपरा का विकास 'वासवदत्ता', 'कादम्बरी', 'दशकुमार चरित्र', आदि की लम्बी कहानियों और पंचतंत्र, हितोपदेश, बेताल पच्चीसी, सिंहासन–बत्तीसी, शुक सप्तति, कथासरित्सागर और भोज प्रबन्ध आदि की छोटी–छोटी कहानियों में हुआ। हिन्दी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल से पूर्व अधिकांशतः पद्य में और कभी–कभी गद्य में उक्त कहानियों की परंपरा विद्यमान रही और बाद में इसी परंपरा का स्वाभाविक विकास आधुनिक कहानी के रूप में हुआ या नहीं यह एक विवादास्पद प्रश्न है। लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि आधुनिक काल में कहानी के लिए अनुकूल जमीन हमारे यहाँ तैयार थी। जिस पर आगे चलकर हिन्दी कहानी की भव्य और विशाल इमारत तैयार हुई।

यद्यपि हिन्दी कहानी की परंपरा के बीज हमारे यहाँ मौजूद थे लेकिन जैसा कि डॉ. हरदयाल का कहना है– ''इसमें कोई संदेह की बात नहीं कि आधुनिक काल में कहानी के लिए अनुकूल भूमि हमारे यहाँ तैयार थी लेकिन पश्चिम में कहानी (शार्ट स्टारी) के जो प्रतिमान निर्धारित किए गए और जिनके आधार पर हमने कहानी के संबंध में निर्णय करना प्रारंभ किया वे पश्चिम से आए थे और वैसी कहानियाँ लिखने की प्रेरणा भी पश्चिम से ही आई थी, यद्यपि से प्रेरणा का माध्यम बंगला में लिखी जाने वाली 'गल्पें बनी थी।''[1]

हिन्दी में आधुनिक ढंग की कहानियों के प्रारंभ और हिन्दी की पहली कहानी को लेकिन काफी विवाद है। हिन्दी कहानी के कुछ इतिहासकारों ने 'रानी केतकी की कहानीं' (1803 ई.) या राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द रचित राजा भोज का सपना (1886 ई.) या भारतेंदु युग में रचित कथात्मक निबंधों–राधाचरण गोस्वामी कृत यमलोक की यात्रा, भारतेंदु कृत एक अद्‌भुत अपूर्व स्वप्न आदि को हिन्दी की पहली कहानियाँ घोषित किया है। सरस्वती के प्रारंभिक वर्षों में कुछ मौलिक कहानियाँ प्रकाशित हुई जिनकी सूची आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी अपने हिंदी साहित्य का इतिहास में दी है जो इस प्रकार है –

1. इन्दुमती (किशोरी लाल गोस्वामी) सं. 1957
2. गुलबहार (किशोरी लाल गोस्वामी) सं. 1959
3. प्लेग की चुड़ैल (मास्टर भगवानदास, मिरजापुर) सं. 1959
4. ग्यारह वर्ष का समय (रामचंद्र शुक्ल)सं. 1960
5. पंडित और पंडितानी (गिरिजा दत्त वाजपेयी) सं. 1960
6. दुलाई वाली (बंग महिला) सं. 1964

उपरोक्त कहानियों में से हिन्दी की पहली कहानी कौन सी होगी इस पर विचार करते हुए आचार्य शुक्ल ने मार्मिकता की दृष्टि से भाव प्रधान तीन कहानियों को विचारणीय माना–इन्दुमती, ग्यारह वर्ष का समय और दुलाई वाली। पहली कहानी के संबंध में उनका मानना है कि ''यदि इंदुमती किसी बंगला कहानी की छाया नहीं है तो

* *सहायक प्राध्यापक (हिन्दी विभाग), शा. लाहिड़ी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चिरमिरी, कोरिया, छ.ग.*

यही हिन्दी की पहली मौलिक कहानी ठहरती है। उसके उपरांत ग्यारह वर्ष का समय, फिर दुलाई वाली का नंबर आता है।'' बाद के अनुसंधानों में यह सिद्ध हुआ कि इंदुमती किसी बंगला कहानी की छाया नहीं है किन्तु उस पर शेक्सपियर के नाटक 'टेम्पेस्ट' की छाया भी मौजूद है। सरस्वती में प्रकाशित उक्त प्रारंभिक कहानियों पर विचार करते हुए डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल का कहना है–''यहाँ यह भी स्पष्ट है कि इन समस्त प्रयोगों से निर्मित कोई भी कहानी शिल्पविधि की दृष्टि से हिन्दी की मौलिक कहानी नहीं कही जा सकती, क्योंकि इन कहानियों में से कुछ भावपक्ष की दृष्टि से छायानुवाद है, भावानुवाद है, और शेष कलापक्ष की दृष्टि से कहानी नहीं है, लेकिन यह अवश्य है कि इन प्रयोगात्मक कहानियों में से प्रायः अधिक कहानियों अपने लक्ष्य की ओर अवश्यमेव प्रेरित है। यही कारण है कि वस्तुतः इन्हीं की प्रेरणा और भाव शक्ति के फलस्वरूप शीघ्र ही सरस्वती के तीसरे ही वर्ष मौलिक हिन्दी कहानी का आरम्भ हुआ शिल्प–विधि की दृष्टि से हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी है, रामचन्द्र शुक्ल कृत ग्यारह वर्ष का समय।''[2] हिन्दी की पहली कहानी को लेकर इधर बाद के वर्षों में कुछ और अनुसंधान हुए जिसमें 1968 ई. में श्री देवी प्रसाद वर्मा ने हिन्दी की पहली मौलिक कहानी के रूप में एक नया दावा प्रस्तुत किया। उनके अनुसार हिन्दी की पहली मौलिक मौलिक कहानी माधवराव सप्रे रचित 'एक टोकरी भर मिट्टी' है जो कि सन् 1901 ई. में उन्ही के पत्र छत्तीसगढ़ मित्र में प्रकाशित हुई थी। हालांकि इस कहानी को भी हिन्दी की पहली मौलिक कहानी के रूप में स्वीकार करने में वही आपत्ति है जो इन्दुमती को लेकर है। यह कहानी फिरदौसी के शाहनामा की एक कथा 'नौशेरवाँ का इंसाफ' पर आधारित है। कुल मिलाकर हम देखें तो आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की कहानी 'ग्यारह वर्ष का समय' (1903 ई.) ही हमारी नजर में हिन्दी की पहली मौलिक कहानी है। यद्यपि कि इस कहानी की मौलिकता और आधुनिकता के संबंध में किसी को कोई संदेह नहीं है फिर भी इसे हिन्दी की पहली मौलिक कहानी स्वीकार करने में कई बड़े आलोचकों की असहमति अवश्य है। इस संबंध में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कहना है–''यह कहानी आधुनिकता के लक्षणों से युक्त अवश्य थी और किशोरी लाल जी की पूर्व प्रकाशित दोनों कहानियों से श्रेष्ठ थी, फिर भी दुलाई वाली में जैसा निखार है वैसा इसमें नही है।''

बीसवीं सदी के दूसरे दशक में हम हिन्दी कहानी का मजबूत विकास देख सकते है इस दौरान कई महत्वपूर्ण कहानियां प्रकाश में आई। इन्दु पत्रिका के पहले वर्ष में जयशंकर प्रसाद की पहली कहानी 'ग्राम' (1911ई.) प्रकाशित हुई। इसी साल इसी पत्रिका में जी.पी. श्रीवास्तव की पहली हास्य कहानी छपी थी। इस युग के एक बड़े कहानीकार चंद्रधर शर्मा गुलेरी की पहली कहानी 1911 ई. में भारत मित्र में 'सुखी जीवन' शीर्षक से प्रकाशित हुई। 1913 ई. में राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह की कहानी 'कानो में कंगना' और विश्वंभरनाथ 'जिज्जा' की 'परदेशी' नामक कहानी इंदु में प्रकाशित हुई। 1914 में आचार्य चतुरसेन शास्त्री की पहली कहानी 'गृहलक्ष्मी' छपी इसी समय विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक की कहानियाँ भी छप रही थीं। सरस्वती में मुंशी प्रेमचंद की पहली कहानी 'सौत' वर्ष 1915 ई. में छपी, 'पंचपरमेश्वर' और 'सज्जनता का दंड' 1916 ई. में 'ईश्वरीय न्याय' और दुर्गा का मंदिर 1917 ई. में प्रकाशित हुई। पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी की 'झलमला' 1916 ई. में और बाल कृष्ण शर्मा नवीन की संतू 1918 ई. में सरस्वती में प्रकाशित हुई। सरस्वती में ही 1920 ई. में सुदर्शन की पहली कहानी प्रकाशित हुई इससे पहले 1915 ई. में चंद्रधर शर्मा गुलेरी की अमर कथा 'उसने कहा था' प्रकाशित हो चुकी थी। इस तरह हम देखते हैं कि बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक तक आते–आते हिन्दी कहानी विकास के नये सोपान गढ़ रही थी। आने वाले दस वर्षों में हिन्दी कहानी के वस्तु और रूप में बहुत परिवर्तन हुआ, जिसे लक्षित करते हुये डॉ. रामचंद्र तिवारी लिखते हैं–''सन् 1925 ई. तक हिन्दी कहानियों की दो स्पष्ट धाराएँ परिलक्षित होने लगी। प्रथम धारा यथार्थवादी दृष्टिकोण को स्पर्श करती हुई जीवन के व्यावहारिक पक्ष को लेकर विकसित हुई। इस धारा के अन्तर्गत प्रेमचंद, सुदर्शन, विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक, ज्वाला दत्त शर्मा, तथा चन्द्रधर शर्मा गुलेरी प्रमुख है। दूसरी धारा के अंतर्गत जयशंकर प्रसाद, चंडी प्रसाद हृदयेश तथा राजा राधिकारमण सिंह प्रमुख है।

प्रेमचंद और जयशंकर प्रसाद इस युग के महत्वपूर्ण कहानीकार हैं। प्रसाद की 'छाया' संग्रह की अधिकांश कहानियाँ दूसरे दशक के प्रारंभ में लिखी गईं। इस संग्रह की कहानियाँ प्रसादजी के कथाशिल्प का प्रारंभिक चरण था जो विकसित होता हुआ आकाशदीप, पुरस्कार, गुण्डा, व्रतभंग, मधुआ इत्यादि कहानियों में दिखता है। प्रसाद की कहानियों की केन्द्रीय वस्तु प्रेम है। प्रेमचंद ने अपनी कहानियों के माध्यम से कहानी का एक नया परिरूप प्रस्तुत

किया प्रेमचंद्र की कहानी कला पर विचार करते हुए डॉ. हरदयाल लिखते हैं–''प्रेमचंद ने अपनी कहानियों के माध्यम से कहानी का एक नया परिरूप प्रस्तुत किया यह परिरूप घटना प्रधान वर्णनात्मक कहानी का था जिसमें संयोगों का कुशलतापूर्वक उपयोग किया गया था। प्रेमचंद की कहानियों का शिल्प आदि, मध्य और अंत में सुनिश्चित क्रमवाली कहानी का शिल्प था। उनकी वर्णन शैली पर एक ओर तिलस्मी किस्सों की वर्णन शैली का प्रभाव था तो दूसरी ओर भारतीय लोक कथाओं की वर्णन शैली का इसलिए घटनात्मक स्तर पर भी उनमें रोचकता है। वे पाठक में जिज्ञासा जगाती है, और उसे बराबर बताएँ रखती हैं।''[3]

प्रेमचंद युग के अंतिम चरण में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कथाकार के रूप में जैनेन्द्र उल्लेखनीय है। जैनेन्द्र की कहानियों में एक अलग शिल्प और कथा का रूप मिलता है। उनकी कहानियाँ अपनी सामग्री सीधे जीवन से लेती हैं, कोरी कल्पना से या पुस्तकों में से पढ़ हुए तरीकों से नहीं लेती हैं। उनमें एक अलग तरह स्वभाविकता और जीवनता है। जैनेन्द्र की कहानियों पर चर्चा करते हुए डॉ0 रामचंद्र तिवारी ने लिखा है–''जैनेन्द्र की कहानियों में चरित्र वैशिष्ट्य, मानसिक द्वन्द्व, स्त्री–पुरुष के सम्बंधो को लेकर सूक्ष्म एवं गहन स्तरों का स्पर्श अवसाद और करूणा की अन्तस्तल को स्पर्श करने वाली एक स्निग्ध धारा, राष्ट्रीयता और क्रांति–भावना, मानवेतर प्राणियों के प्रति सहानुभूति, नैतिक प्रश्नों, के प्रति गम्भीर शंकाएं, दार्शनिक ऊहापोह, प्रतीक–योजना, संकेत और रहस्य सभी कुछ मिल जाता है।''[4] ''यशपाल इस युग के समर्थ कहानीकार है जिन्होंने मुख्यतः सामाजिक यथार्थ को मार्क्सवादी दृष्टिकोण से एक के बाद एक सशक्त कहानियाँ लिखी है। उन्होंने समाज के परम्परागत मूल्यों और रूढ़ीयों के विरुद्व व्यंग्य और मुक्ति के हथियारों से तीखे प्रहार किए। जिस निर्भीकता से उन्होने अंग्रेजी राज्य के खिलाफ 'साग' जैसी कहानियाँ लिखी उसी निर्भीकता से धर्म और पुरानी नैतिक मान्यताओं के विरूद्व 'मन की लगाम', 'धर्म की रक्षा', 'प्रतिष्ठा का बोझ, 'दूसरी नाक' इत्यादि।''[5]

अज्ञेय हिन्दी के प्रमुख मनोवैज्ञानिक कहानीकारों में हैं, उनकी कहानियों में हम जैनेन्द्र की परम्परा का विकास देख सकते हैं। विपथगा परंपरा, कोठरी की बात, शरणार्थी, जयदोल, अमरवल्लरी, ये तेरे प्रतिरूप उनकी प्रमुख कहानी संग्रह हैं। इलाचंद्र जोशी और उपेंद्रनाथ अश्क इस युग के प्रमुख कहानकारों में से हैं। उपर्युक्त लेखकों के अतिरिक्त प्रेमचंद युग के अंतिम चरण में कहानी के क्षेत्र में आने वाले और प्रेमचंद के बाद अपना प्रभाव–विस्तार करने वाले लेखकों में सर्वश्री भगवती प्रसाद वाजपेयी, भगवती चरण वर्मा, अमृतलाल नागर, विष्णु प्रभाकर, द्विजेन्द्रनाथ मिश्र निर्गुण आदि उल्लेखनीय हैं। इस युग की महिला लेखिकाओं में उषादेवी मित्रा, हेमवती देवी, सत्यवती मलिक और कमला चौधरी का नाम है जिन्होंने अपनी निजी विशेषताओं के साथ घरेलू जीवन की बहुरंगी झाँकियाँ प्रस्तुत की हैं ।

प्रेमचन्दोत्तर कहानी का युग कहानी में एक क्रांति लेकर आया अक्टूबर 1938 में कहानी नाम की पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ हुआ जो 1942 तक लगातार प्रकाशित होती रही। सन् 1954 ई. में कहानी के पुनः प्रकाशन के साथ जो वक्तव्य सामने आया उसमें कहा गया था–''आज के हिन्दीभाषी के जीवन की विविधता और समस्याओं की जटिलता के हर पहलू को हिन्दी कहानी ने अपने में आवेष्टित कर लिया है। शिल्प–सौन्दर्य और विषय–वस्तु दोनों ही में आज की हिन्दी कहानी बारह वर्ष पहले की हिन्दी कहानी से कहीं आगे है।''[6] इस आगे की कहानी को रचने और समृद्व करने मे जिन कथाकारों ने योग दिया है। उनमें मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, मार्कण्डेय, फणीश्वरनाथ रेणु, धर्मवीर भारती हरिशंकर परसाई भैरव प्रसाद गुप्त, डॉ0 लक्ष्मीनारायण लाल, अमरकान्त, अमृतराय, विष्णु प्रभाकर, चन्द्रकिरण सौनरिक्सा, भीष्म साहनी, उषा प्रियवंदा, मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, शिवप्रसाद सिंह, शैलेश मटियानी, कृष्ण बलदेव वैद, निर्मल वर्मा, ज्ञानरंजन आदि प्रमुख हैं। सन् 1954 ई. से आगे की कहानी सन् 1960 ई. तक आते–आते नई कहानी बन गई। रमेश बक्षी ने नई कहानी के संबंध में लिखा है कि ''नई कहानी एक ओर यदि सही अनुभूति को सही–सही ढंग से ग्रहण करना है तो दूसरी ओर सार्थक अभिव्यक्ति को कलात्मक मोड़ देना भी है। नई कहानी ने सबसे पहले जैनेद्र यशपाल छाप साँचों को अस्वीकारा है। इसलिए उसका स्वरूप परम्परा का विकास नहीं, परंपरा का विरोध है।''

नई कहानी में परंपरा का विरोध वस्तु और संवेदना के धरातल पर उतना मुखर नही था जितना शिल्प के स्तर पर था। छठें दशक में फली–फूली इस कहानी में शिल्पगत वैविध्य बहुत अधिक है। रमेश बक्षी के ही शब्दों में

''नई कहानी का शिल्प मन्नू और अमरकांत की कहानियों सा कभी सीधा–सादा हो जाता है, कभी सर्वेश्वर और रघुवीर सहाय की कहानियों सा चित्र भाषा युक्त कभी निर्मल वर्मा की कहानियों का–सा सर्वथा विदेशी कभी रेणु की कहानियों सा सर्वथा देशी, कभी श्रीकांत वर्मा की कहानियों सा शैलीहीन कभी राजकमल की कहानियों सा शैलीगस्त।'' नई कहानी की प्रतिष्ठा के साथ ही उसका विरोध भी प्रारंभ हो गया, कहने के लिए तो यह विरोध नई कहानी की जड़ता को तोड़ने ओर नए जीवन संदर्भ को व्यक्त करने के लिए आरम्भ किया गया था किन्तु वास्तव में यह विरोध अपने को प्रतिष्ठित करने और परम्परागत सारे मूल्यों को अस्वीकार कर घोर निराशा और खण्डित मनःस्थितियों के चित्रण को महत्व देने के प्रयत्न में सामने आया था। यहीं से अकहानी, साठोत्तरी कहानी, सचेतन कहानी, समांतर कहानी, जनवादी कहानी आदि कहानी आंदोलनों का सूत्रपात होता है। इन कहानी आंदोलनों से हिन्दी कहानी का एक नया स्वरूप सामने आता है जो बहुरंगी, खुरदरा और यथार्थ से भरा हुआ है। इसी के साथ स्त्री विमर्श और दलित विमर्श का यथार्थ भी हमारे सामने आता है जिसमें स्त्रियाँ और दलित कथा के केद्र में आते हैं। स्त्री कथाकारों में शिवानी, कृष्णा सोबती, उषा, प्रियंवदा, मालती जोशी, राजी सेठ, कृष्णा अग्निहोत्री, मंजुल भगत, मृदुला गर्ग, चंद्रकांता, ममता कालिया, सुधा अरोड़ा, सूर्यबाला, मेहरूनिशा परवेज, मणिका मोहनी, इंदुबाली आदि प्रमुख है।

समकालीन हिन्दी कहानी का परिदृश्य अपनी परवर्ती कहानियों से एकदम अलग है। हिन्दी कहानी अब प्रेमचंद युग से बहुत आगे निकल चुकी है। प्रेमचंद के बाद जैनेद्र, इलाचंद्र जोशी, यशपाल, अश्क, अज्ञेय आदि लेखकों ने उसे नई जमीन दी थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद अनेक आंदोलनों के दौर से गुजरती हुई अब यह यथार्थ से सीधा टकराने में समर्थ है। अब उसकी कथा भूमि बेहद उर्वर और पर्याप्त विस्तृत हो गई है। गाँव, नगर, अंचल, क्षेत्र, आदिवासी, स्त्री–दलित, अल्पसंख्यक सभी के जीवन प्रवाह को वह अपने में समाहित कर चुकी है। आज की कहानी पर टिप्पणी करते हुए डॉ. रामचंद्र तिवारी लिखते हैं–''आज का कहानीकार जानता है कि औद्योगिक सभ्यता, पूंजीवादी संस्कृति और यंत्रीकरण के बढ़ते प्रभाव और दबाव के बीच मानवीय संवेदना और मूल्यों की रक्षा करने का उसका दायित्व आसान नहीं रह गया है। वह यह भी जानता है कि न तो मात्र अनुभव को प्रामाणिक मानने से बात बनने वाली है, न विचारधारा विशेष के प्रति विवेकहीन प्रतिबद्वता से। मनुष्य की जिंदगी में जिस तेजी से परिवर्तन हो रहे हैं और जिस गति से वह बदल रही है, उसे पकड़ना खेल नहीं है। मानवता के प्रति अखंड आस्था, समृद्ध–विवेक, यथार्थ के सीधे साक्षात्कार, रचनादृष्टि की निर्मलता तथा अपनी समृद्व परम्परा की सीमा में आधुनिकता के स्वीकार से ही कुछ हो सकेगा नवीनता की झोंक में किसी भी दिशा में विवेकहीन बढ़ाव या अपनी पहचान खेकर आयातित रचना–दृष्टि को आयात करने का गर्व अन्त में व्यर्थ सिद्व होगा। अपने अनुभव और ज्ञान की इस पूँजी के बल पर आगे बढ़ते हुए कहानीकार के हाथों कहानी का भविष्य सुरक्षित है।''[7]

संदर्भ–सूची

1. डॉ0 हरदयाल, हिन्दी कहानी विविध आयाम, वाणी प्रकाशन, दिल्ली पृ. 18
2. डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल हिन्दी कहानियों की शिल्प विधि का विकास, पृ. 57
3. डॉ0 हरदयाल, हिन्दी कहानी परम्परा और प्रगति, वाणी प्रकाशन, दिल्ली पृ. 22–23
4. डॉ0 रामचंद्र तिवारी, हिन्दी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाणारसी, पृ. 37
5. राजेन्द्र यादव, कहानी स्वरूप और संवेदना, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 34
6. कहानी, जनवरी 1954
7. डॉ0 रामचंद्र तिवारी, हिन्दी गद्य विकास, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, पृ. 44

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 131-134

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

हिन्दी साहित्य में सामाजिक यथार्थ की अवधारणा

*मनोज कुमार एम. जी.**

भूमिका–कल्पना के अम्बर में विचरता हुआ साहित्यकार विहग ऊब सा चला था। विश्राम के लिए उसकी दृष्टि उपयुक्त धरती के अन्वेषण में प्रवृत हुयी। शीघ्र ही उसने अपने अभीष्ट को भाप भी लिया। वहाँ उसने पाया कि विश्व में सदा कोमिल–कूंजन के स्वर ही नहीं सुनाई पड़ते अपितु एक समय पतझर भी आता है। यदि एक ओर वैभव की क्रोध में सुख किलकता है तो दूसरी ओर बेबसी के दामन में निर्धनता के आँसू भी सिमटे रहते हैं। साहित्यकार को लगा कि जैसे उसका आजतक का सृजन एवं मूल्यांकन दोनों व्यर्थ थे। उसने निश्चय किया कि अब वह वही लिखेगा जो दिखाई देगा, उसकी साधना का केन्द्र बिन्दु कल्पना का अम्बर नहीं, यथार्थ की विविधतामयी धरती होगी। उसका यही निश्चय कालान्तर में एक वाद विशेष की पृष्ठभूमि बना। जिसका नाम था–'यथार्थवाद'।

साहित्यकार मानव जीवन एवं समाज का संपूर्ण वास्तविक चित्र उपस्थित करता है। जिन्दगी से प्राप्त कच्चे माल को रचनाकार रूपाकार देते हुये लेखक अपने अनुभवों को छोड़ नहीं सकता परन्तु सब अनुभव रचना का आकार न लेकर केवल उसे झकझोरने वाले स्थायी व अमिट छाप छोड़ने वाले विशिष्ट अनुभव वही आकार लेते हैं। परन्तु अनुभव यथार्थ से दूर है ऐसा नहीं कहा जा सकता।

यथार्थ अर्थ–हिन्दी साहित्य में यथार्थ वाद का शब्द Realism का प्रतिरूप है। यथार्थ शब्द यथा + अर्थ के रूप में विशेषण धातु से मिलता है। यथार्थ शब्द मतलब शुद्ध, नियत, विश्वसनीय, अचूक, सत्य, सच्चा, निश्चित पवित्र, शब्दों से पर्यायवाची होता है। जो अपने अर्थ, आशय, उद्देश्य, भाव आदि के ठीक अनुरूप हो, सत्य पूर्वक वास्तविकता यथार्थ होने की अवस्था है। यथार्थ में चिंता न होना चाहिए। जीवन की सच्चाइयां भी होनी चाहिए। कामिल बुल्के के ''अंग्रेजी हिन्दी कोश' के अनुसार ''यथार्थ, वास्तविकता, असलियत, यथार्थता, सच्चाई, यथार्थवादिता, यथार्थ सत्ता, यथार्थ तत्व है।'' श्री परशुराम गुवाल के अनुसार ''नवीन वैज्ञानिक प्रगति ने दर्शन को शुद्ध यथार्थवादी प्रेरणाएँ और अध्ययन के यथार्थवादी आयाम दिए। आधुनिक युग की अनेक चिंतन धाराओं में आदर्शवाद या प्रत्ययवाद और यथार्थवाद की विशेष चर्चा है।''[1]

यथार्थ की प्रकृति–ऐतिहासिक दृष्टि से यथार्थ की प्रकृति साहित्य में यथार्थवाद का आगमन के बाद का आंदोलन है। साहित्य में यथार्थ के प्रभाव से साहित्यकार ने समाज के पिछड़े दीन दलित दुखियों का ही वर्णन साहित्य में उत्सुक दिखायी देते हैं। वास्तव में यथार्थवाद और प्रकृति के अन्तर्गत पनपने वाली ही एक रचना प्रवृत्ति है। प्रवृत्ति कल्पनाशीलता को नकार कर केवल सामने मौजूद तथ्य को प्रस्तुत करता है। यथार्थवाद को पूर्णरूपेण समझने के लिए यथार्थ के विभिन्न प्रकारों का प्राकृतिक अधिनियम स्पष्ट हो जाता है।

यथार्थवाद साहित्य में स्थूल रूप से प्रकृति रचनाएँ प्रकृति–प्रेम का वर्णन करती है। प्रकृतिवाद के अंतर्गत प्रकृति का यथार्थवादी चेतना प्रत्यक्ष रूप उन कलाकारों द्वारा प्रतिपादित मानव को प्रकृत रूप अंकित करना चाहते हैं।

सामान्यतः प्रकृत और प्रकृति में कुछ तथ्यात्मक अन्तर है। प्रकृति से सम्बन्धित, जैसा है वैसा जिसमें कोई बनावट नहीं, सहज, स्वाभाविक, वास्तविक वहीं प्रकृति से हम सीखे–सीधे कुदरत को जानते हैं। दूसरे रूप में वस्तु या व्यक्ति का मूल गुण, स्वभाव, भौतिक जगत की वे सब वस्तुएँ, घटनाएँ और शक्तियाँ जो हमें अपने मूल रूप में देखने को मिलती हैं।

* *शोध-छात्र (हिन्दी अध्ययन विभाग), मानस गंगोत्री मैसूर विश्वविद्यालय, मैसूर*

पश्चिमी उपन्यास का यथार्थवाद से गहरा सम्बन्ध है। वहाँ उसके दो रूप हैं–दृष्टिकोणगत और पद्धतिगत। दृष्टिकोण के संदर्भ में उसे मिथकवाद, परिवेशवाद, अस्तित्ववाद तथा काल्पनिकता के विरुद्ध प्रस्तुत किया गया। पद्धति के संदर्भ में चरित्र, स्थिति तथा अभिव्यक्त व्यावहारिक जीवन का वर्णन उसकी यथातथ्यता के सदृश करने की चेष्टा की गयी। ऐसा कहा जा सकता है कि यथार्थवाद एक प्रदत्त काल तथा स्थान में एक व्यक्ति या सामाजिक समूह की ऐन्द्रिक सौंदर्यबोधात्मक क्रियात्मकता के परिवर्तन तथा सीमा को अभिव्यंजित करता है।

जहाँ तक हिन्दी उपन्यास की बात है, इसका सम्बन्ध पश्चिम के साथ मुख्यतः यथार्थवाद से स्थापित करने की चेष्टा की जाती रही है। जीवन की जटिलता, वैषम्य संघर्ष आदि का सम्बन्ध निश्चय ही यथार्थ से यथार्थवाद से नहीं। पश्चिम ने यथार्थ के स्थान पर यथार्थवाद को ग्रहण किया है, वह भी उसके मूल अर्थ प्रकृति पर ध्यान दिये बिना। यह विडम्बना ही है कि हिन्दी साहित्य में यथार्थ को तत्व रूप में नहीं रहने देकर उसे वाद का रूप देते हुए दुराग्रह की सीमा तक खींचा गया।

यथार्थ और यथार्थवाद–दर्शनशास्त्र में आदर्शवाद एवं प्रकृतिवाद की भाँति यथार्थवाद भी एक प्राचीन विचारधारा है। यथार्थ और यथार्थवाद को लेकर कुछ लोगों की अवधारणा है कि दोनों अलग–अलग न होकर एक ही हैं। यथार्थवाद का उद्‌भव उन्नीसवीं शताब्दी में स्वच्छंदतावाद एवं आदर्शवाद के विरोधी अर्थों और विज्ञान के विकास के कारण हुआ। जीवन की सच्ची अनुभूति यथार्थ है, पर इसका कलात्मक अभिव्यक्तिकरण यथार्थवाद है। यथार्थवाद हृदय की वस्तु है, और यथार्थ उसका मूल स्रोत। यथार्थवाद दो शब्दों के सम्मिश्रण से बना है 'यथार्थ + वाद।' यथार्थ का सामान्य अर्थ है 'जो है' और वाद का अर्थ है सिद्धान्त, अनुकरण करना या उसी मार्ग पर चलना। इस प्रकार इसका अर्थ यह निकलता है कि जो वस्तु जैसी है, उसका उसी रूप में वर्णन करना यथार्थवाद है।

यथार्थवाद का अंग्रेजी शब्द रियलइज्म का यथार्थ माना जाता है और रियलइज्म शब्द ग्रीक भाषा के 'Res' शब्द से बना है जिसका अर्थ होता है–वस्तु। 'वस्तु सम्बन्धि' या वास्तविक अर्थात् यथार्थ और रियलइज्म शब्द का अर्थ हुआ–यथार्थवाद। ''यथार्थवाद का प्रमुख गुण अवतारवाद का खण्डन है। वह मानव एवं उसके मस्तिष्क को इस संसृत को क्रियाकलापों एवं व्यवसायों में सन्निहित करने उन्हें उनका उचित स्थान प्रधान करता है। यह एक ओर तो भौतिक को आदर्शवादी संस्पर्श से मुक्त करता है और दूसरी ओर उन्हें चेतन जीवन का आधार प्रस्तुत करता है। यथार्थवाद मस्तिष्क को ऐन्द्रजालिक विद्रूपताओं से मुक्त करता है और इसके मूल्यों की रक्षा करता है।''[2]

डॉ. धीरज भाई वणकर के अनुसार–''यथार्थवाद में न तो विचारों को महत्व दिया जाता है और न व्यवहारवादियों की भाँति अनुभव पर ही विशेष महत्व दिया जाता है, बल्कि मनुष्य का अनुभव स्वतंत्र न होकर बाह्य पदार्थों के प्रति प्रतिक्रिया निर्धारित यथार्थवाद को लेकर उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द जी की जो अवधारणा है वह इस प्रकार की है–

''यथार्थवाद चरित्रों को पाठक के सामने उनके यथार्थ नग्न रूप में रख देता है, उसे इससे कुछ मतलब नहीं कि सच्चरित्रता का परिणाम बुरा होता है या कुचरित्रता का परिणाम अच्छा। उसके चरित्र अपनी कमजोरियां और खूबियां दिखाते हुए अपनी जीवनलीला समाप्त करते हैं और चूंकि संसार में सदैव नेकी का फल नेक और बदी का फल बद नहीं होता, बल्कि उसके विपरीत हुआ करता है, नेक आदमी धक्के खाते हैं, यातनाएं सहते हैं, मुसीबतें झेलते हैं, अपमानित होते हैं। उनको नेकी का फल उल्टा मिलता है। प्रकृति का नियम विचित्र है।''[3]

उपरोक्त विश्लेषण के माध्यम से हम यह कह सकते हैं कि यथार्थ वह है जो नित्य प्रति हमारे सम्मुख घटित होता है जिसमें पाप–पुण्य, सुख–दुःख की छांव मिलती है, जो स्वप्रवृत्त है वह यथार्थ के रचनाकार के लिए दूर देश का सपना लगने लगता है। अतः यथार्थवादी साहित्य में वस्तु के दोनों पक्ष गुण–अवगुण, सुंदर–असुंदर का समावेश अनिवार्य माना गया है। सत्य के सत्य, सुंदर को सुंदर मानना ही यथार्थवाद है।

यथार्थ के विभिन्न रूप : सामाजिक यथार्थ–साहित्य में सामाजिक यथार्थ एक शैली है। साहित्य समाज का दर्पण है। प्रत्येक समाज में सामाजिक मूल्य पाए जाते हैं। समाज में घटित होने वाली घटना साहित्य के माध्यम से साकार रूप धारण करती है। साहित्य में यथार्थ का सम्बन्ध जीवन दर्शन से है, और जीवन दर्शन पूर्णतः जीवन मूल्यों पर आधारित होता है। आज का साहित्यकार समाज में रहकर भोगे हुए यथार्थ का चित्रण समाज से भिन्न होकर नहीं कर सकता। इसलिए साहित्यकार अपने साहित्य के अंतर्गत समाज के मूल्यों को अंकित करता है। सामाजिक यथार्थ से तात्पर्य आज प्रचलित शब्दों में मनुष्य द्वारा की गई सामान्य विचारों के सच्चे चित्रण

से लिया जाता है। ज्ञान शब्द का कोष में सामाजिक शब्द का अर्थ 'समाज सम्बन्धी' समाज में पाये जाने वाला आदि से लिया गया है। उसी शब्द कोष में यथार्थ का अर्थ सत्य प्रकट, उचित आदि दिया गया है। इन दोनों अर्थ मिलकर समाज में घटित होने वाली सच्ची घटनाओं का यथार्थ चित्रण ही 'सामाजिक यथार्थ' कहलाता है।

'प्रेमचन्द जी ने सामाजिक यथार्थ को चित्रित करते हुए 'शतरंज के खिलाड़ी' कहानी में लिखा है—''तुम्हें निगोड़ी शतरंज इतनी प्यारी है। चाहे कोई मर ही जाय, पर उठने का नाम नहीं लेते। नौज कोई तुम जैसा आदमी हो। यह सामाजिक यथार्थ की स्थिति का स्पष्टीकरण हो जाता है।''[4]

''डॉ. रामदरश मिश्र ने साहित्य में अभिव्यक्त सामाजिक यथार्थ के बारे में कहा है—''यह निर्विवाद सत्य है कि साहित्य मानव समाज की यथार्थ समस्याओं, आकांक्षाओं, विचारों, भावों और कार्यों का चित्र है। वह यथार्थ चित्रण द्वारा ही मानव मत में यह विश्वास पैदा करते हैं कि वह जो कुछ कह रहा है वह उसी की दुनिया की बात है। मनुष्य उसमें अपना सच्चा रूप देखकर हंसता है, रोना है, अपने संवेदनाओं का विस्तार करता है, अपनी समस्याओं का हल ढूंढता है।''[5]

सामाजिक यथार्थ से ही साहित्य में अभिरुचि पैदा होती है, क्योंकि साहित्य का प्रयोजन किसी भी सच्चाई का वास्तविक तौर पर चित्रण करना होता है। सामाजिक यथार्थ का चित्र अंकित करने वाला रचनाकार अपनी रचना में मानव के रागात्मक सम्बन्ध की व्यंजना भी करता है। इस प्रकार प्रयोग की कसौटी पर खरा उतरने वाला पदार्थ ही यथार्थ है। जहां प्राणी मात्र का मिलन ही साहित्य है। यही सामाजिकता है। इस सामाजिक यथार्थ का रूपांतर करने वाले अनेक तत्व हैं, ये सामाजिक यथार्थ का चित्रण प्रस्तुत करता है।

राजनीतिक यथार्थ—समाज और राजनीति का अपना विशिष्ट सम्बन्ध है। राजनीति मनुष्य में किसी भावना के प्रति लगाव पैदा कराती है। राजनीति का प्रादुर्भाव समाज के विकास के साथ हुआ। राजनीति के द्वारा समाज का कल्याण संभव होता है। प्रत्येक देश की काल विशेष में कतिपय विशेष राजनीतिक प्रवृत्तियां प्रमुख होती हैं। राजनीतिक यथार्थ राजनीति में अनेक प्रकार के नियमों का निर्माण होता है। ये सभी नियम समाज के राजनीतिक यथार्थ के नियम ही हैं। स्वातंत्र्य पूर्व में राजनीतिक यथार्थ एक विशिष्ट आन्दोलन के रूप में राष्ट्रीयता की भावना परिवर्तन में अपना योगदान देता है।

डॉ0 पुष्पपाल सिंह के अनुसार राजनीतिक यथार्थ इस प्रकार प्रस्तुत करता है—''आज का लेखन राजनीतिक को अपने लेखन से अलग करके इसलिए नहीं देख सकता क्योंकि उसके जीवन यथार्थ की स्थितियों को गढ़ने में राजनीति का बहुत बड़ा हाथ है। इसलिए राजनीतिक जीवन के छलद्म को कथा साहित्य में अभिव्यक्त मिली है।''

मनोवैज्ञानिक यथार्थ—मनोविश्लेषण के जन्मदाता सिगमंड फ्रायड हैं। फ्रायड के विचारानुसार जन्म से ही काम वृत्ति कार्यरत होती है, वह हमें जीवन में प्रेरणा देती है। फ्रायड ने प्रमुख रूप से मन के दो भेद माने हैं जैसे अचेतन मन और सचेतन मन। अचेतन मन का परिणाम सचेतन मन से अधिक होता है इसलिए कोई भी व्यक्ति बुरी बातों की ओर जल्दी से आकर्षित हो जाता है। फिर भी प्रयास से हम अचेतन मन पर सचेतन मन द्वारा नियंत्रण कर सकते हैं। इस ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हुए डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने लिखा है—''साधारण स्वस्थ जीवन में दमित वासनाएं और कुंठाएं अपने को व्यक्त करने का प्रयत्न करती रहती हैं, परन्तु आदर्श अहं (सुपरइगो) द्वारा निर्मित प्रतिरोध के कारण ये अपने स्वाभाविक रूप में व्यक्त नहीं हो पातीं।'' अरस्तू नामक मनोवैज्ञानिक ने सर्वप्रथम अपने ग्रंथों में युवा और वृद्धावस्था की भावनाओं को जाग्रत और सुप्त अवस्थाओं तथा स्मृति और प्रज्ञा की प्रतिक्रियाओं एवं रहस्यात्मक अनुभूतियों का विश्लेषण किया है।

मनुष्य के होने वाले कार्य—व्यापारों को लेकर ही नहीं, बल्कि उसके विचारों को लेकर वहाँ उपस्थित किये गये चित्र मानव जीवन के यथार्थ चित्र कहे जा सकते हैं। मनोविज्ञान का अर्थ होता है मन का विज्ञान अर्थात् विज्ञान की वह शाखा जिसमें मानव मन के स्वरूप और कार्य व्यापारों का सूक्ष्म अध्ययन किया जाता है। फ्रायड के अनुसार मानव की वास्तविक परिस्थितियों का ज्ञान कर लेना ही वास्तविक यथार्थ है। ज्ञान का आरम्भ तो मानव मन के अंदर पलने वाले क्रिया—कलापों के अध्ययन से आरम्भ होता है। फ्रायड ने मानव मन के तीन भेद बताये चेतन, अर्धचेतन और अचेतन। इसी को विकसित कर इदं, अहं और आदर्श अहं नाम दिया।

इदं–'मानस के जन्मजात नैसर्गिक पक्ष को इदं कहते हैं। इदं व्यक्ति के अस्तित्व की प्रेरक शक्तियों का मूल प्रेरक का भंडार है, ये प्रवृत्तियाँ, विशेष इच्छाओं का रूप लेकर परिवेश की ओर उन्मुख होती हैं और इस प्रकार चेतन मन को प्रभावित करती हैं। इदं में किसी प्रकार का संघटन या व्यवस्था नहीं। यह यथार्थ से पूर्ण उदासीन है और केवल सुखेच्छा से परिचालित होता है। इदं प्रबल उत्तेजनाओं का अव्यवस्थित रूप है–इसके लिए शुभाशुभ नैतिक–अनैतिक आदि मूल्यों का अस्तित्व नहीं व्यक्ति की जन्मजात सुखेच्छा की तृप्ति ही इसका मात्र काम है।

अहं (इगो)–अहं शब्द का दार्शनिक दृष्टि से अर्थ व्यावहारिक अविद्या से सीमित अनात्मा से एकीकृत आत्मा है, जो मैंया मेरे की भावना उत्पन्न करती है फ्रायड के मनोविज्ञान में काम वृत्ति, संघर्ष दमन और अवरोध महत्वपूर्ण है।

''अहं संसार और 'इदं' के बीच मध्यस्थ का कार्य करता है। यह इदं की मौलिक प्रवृत्तियों को संसार के यथार्थ के अनुरूप और संसार को 'इदं' की वासनाओं के अनुकूल बनाने का प्रयास करता है।''

निष्कर्ष–निष्कर्ष के रूप में फलित हाता है कि यथार्थवाद एक व्यापक क्षेत्रीय विचारधारा है। पाश्चात्यज्ञान विज्ञान एवं दर्शन से इसका आविर्भाव हुआ है। यह सत्य का वस्तनिष्ठ चित्रण होता है जिसमें लेखक का काम यथार्थ को ईमानदारी तथा सच्चाई के साथ उजागर करना होता है। समाज में जो कुछ वास्तविक है, जैसे है वैसे ही चित्रण जब किसी साहित्यिक कृति में होता है, तब वह यथार्थ कहा जाता है। इसका सम्बन्ध ज्ञान–विज्ञान की अनेक शाखाओं से है। एक यथार्थवादी कलाकार मानव जीवन और मानव समाज के आदर्श मूल्यों और कल्पित स्वरूप की उपेक्षा करके अपनी कलाकृति में केवल वास्तविकता पर ही बल देता है।

संदर्भ–सूची

1. श्री परशुराम शुक् : हिन्दी साहित्य का निबन्धात्मक इतिहास, 1996, पृ. 263
2. डॉ. त्रिभुवन सिंह : हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद।
3. डॉ. धीरज भाई वणकर : कमलेश्वर का कहानी साहित्य और सामाजिक यथार्थ, पृ. 83
4. सत्यकाम विद्यालंकार : आठ श्रेष्ठ कहानियाँ, पृ 9
5. डॉ. रामदरश मिश्र : साहित्य : सदर्भ और मूल्य, सं. 1961, पृ. 14
6. डॉ. पुष्पपाल सिंह : समकालीन कहानी : युगबोध का संदर्भ, सं. 1986, पृ. 99
7. डॉ. त्रिभुवन सिंह : हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृ. 47

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 135-138

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

अनुवाद का समाज समाजशास्त्र और भाषा व्यवस्था

*डॉ. विजय कुमार रोडे**

अनुवाद के समाजशास्त्र से संबंधित कुछ कहने से पूर्व मस्तिष्क में दो प्रश्न उपस्थित हो रहे हैं–पहला यह कि विश्व में सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और भाषायी भिन्नता न होती तो क्या अनुवाद जैसी कोई प्रक्रिया अस्तित्व में आती? दूसरा प्रश्न यह कि मानव मस्तिष्क में जिज्ञासा और महत्वाकांक्षारूपी तंतु विद्यमान न होता तो भी क्या मनुष्य अनुवाद कला को विकसित करता? इन दोनों प्रश्नों के जवाब 'ना' ही हैं। अतः वैश्विक मानवीय व्यवस्था की विविधता तथा शब्द संवादों की भिन्नता ने अनुवाद प्रक्रिया को आविष्कृत किया, ऐसा कहना गलत न होगा।

मानवीय सामाजिक व्यवस्था से स्वतंत्र अनुवाद का अपना कोई न महत्व है, न अस्तित्व। मनुष्य की भाषा, संस्कृति सभ्यता, कृषि व्यवस्था, भौगोलिक परिवेश आदि अनेक पहलुओं से समाज बनता है। परंतु इन सभी में मनुष्य के लिए भाषा अत्यधिक महत्वपूर्ण रही है। आदिम युग से मनुष्य की जो बुनियादी आवश्यकताएँ रही है उनमें एक 'भाषा' भी है। मनुष्य का विवेक जैसे–जैसे विकसित होता गया, भाषा भी विकसित होती गयी। वर्तमान में वैश्विक स्तर पर देखें तो पाएंगे कि जो समाज विकसित है, उसकी भाषा भी विकासत है। और जो भाषा विकसित है, उसका समाज भी विकसित है। अतः समाजशास्त्र चाहे साहित्य का हो अथवा अनुवाद का दोनों के लिए शब्द और भाषा की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। बतौर मैनेजर पाण्डेय के शब्दों में ''साहित्य के समाजशास्त्र में समाज से लेखक के संबंध उसकी सामाजिक स्थिति, जीविका, आश्रय और इन सबसे प्रभावित होनेवाली मानसिकता का अध्ययन होता है।''[1] इसी प्रकार साहित्य के समाजशास्त्र के प्रति फ्रान्स के रोबेर एस्कार्पी की राय है कि 'लेखक पुस्तक और पाठक के अंतः संबंध की जानकारी से ही समाज में साहित्य और साहित्यकार की वास्तविक स्थिति मालूम होती है।' इसी प्रकार डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे जी अनुवाद के समाजशास्त्र की संकल्पना को स्पष्ट करते हुए कहते हैं– ''जब मैं अनुवाद प्रक्रिया का संबंध इस देश की मानसिकता से और यह मानसिकता जिस वर्णव्यवस्था से बनी है, उससे जोडता हूँ, तब मेरे सम्मुख एक पूरी परंपरा होती है। एक ऐसी परंपरा जो श्रेष्ठता–कनिष्ठता की श्रेणी में आबद्ध है। इस कारण यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि क्या अनुवाद मात्र एक भाषिक प्रक्रिया है अथवा एक सांस्कृतिक प्रक्रिया है? सृजनात्मक लेखन का संबंध जिस प्रकार समकालीन व्यवस्था के साथ होता है– उस काल की आर्थिक राजनीतिक, धार्मिक परिस्थिति के साथ होता है, ठिक उसी प्रकार का संबंध अनुवाद प्रक्रिया का भी होता है।''[2] जाहिर है साहित्य को भी और अनुवाद को भी सामाजिक व्यवस्था के तानों–बानों से होकर गुजरना होता है। महत्वपूर्ण बात यह भी है कि विश्व के जिस समाज में स्वतंत्रता, समता और जिज्ञासा के तत्व पाए गए हैं, वहाँ अनुवाद कार्य प्रथम आरंभ हुआ है।

साहित्य और अनुवाद का आकलन उससे जुड़े समाज की भाषा व्यवस्था को ठिक–ठिक समझे बिना किया नहीं जा सकता। मानवीय सामाजिक व्यवस्था से स्वतंत्र अनुवाद का अपना न महत्व है न अस्तित्व। इसका एक अच्छा उदाहरण देना चाहुंगा। मराठी के विख्यात कवि नामदेव ढसाल ने नाटककार विजय तेंदुलकर को 'गोलपिठा' इस काव्य संकलन के लिए प्रस्तावना लिखने का आग्रह किया था। परंतु इच्छा न होते हुए भी विजय तेंडूलकर ने प्रस्तावना लिखने हेतु 'गोलपिठा' को स्वीकार किया। परंतु जब उन्होंने कविताएँ पढ़ी तब अधिकांश कविताओं के शब्द (रायरंदी हाडूक, बिंदाचिंदा, कंट्रीच्या मसाल्याची मलभोर मलय, गुपची शिगा, डेडाळे, डल्ली, सल्ली, बोटी, गुडसे, डीलबोळ आदि) इनका आशय उनकी समझ के बाहर के था। उन्होंने कभी ऐसी दुनियां देखी ही नहीं थी। तब 'गोलपिठा' में संकलित कविता के शब्द, भाषा, आशय, संदर्भ आदि को समझने के लिए विजय तेंदुलकर ने

* *सहयोगी (हिन्दी विभाग), सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय, पुणे-7*

नामदेव ढसाल से कहा– 'नामदेव, मुझे तुम्हारी दुनियां देखनी है।' तत्पश्चात नामदेव ढसाल विजय तेंदुलकर को मुंबई स्थित कामाठीपूरा की दुनियां बताते हैं, जहाँ रहकर नामदेव ढसाल ने अपनी कविताओं का सृजन किया था। उस दुनियां से परिचित होने के बाद ही विजय तेंदुलकर 'गोलपिठा' की प्रस्तावना लिखते हैं। तात्पर्य यह कि रचना का आकलन कर्ता या अनुवादक को रचना में निहित समग्र संदर्भों से परिचित होने की आवश्यकता होती है। बिना आकलन के न अर्थ ग्रहण किया जा सकता है न अनुवाद।

हिब्रु से लैटिन में 'बाइबल' का अनुवाद करनेवाले संत जेरोम के अनुवाद के प्रति दो अलग–अलग दृष्टिकोण थे– ''बाइबल का अनुवाद करते समय उन्होंने उसे मूलनिष्ठ बनाया है, क्योंकि उनका ऐसा विचार था कि इस पावन ग्रंथ के एक–एक शब्द का महत्व है, यहाँ तक की शब्दों के क्रम का भी महत्व है।''[3] दूसरी ओर अपने अन्य अनुवादों के विषय में उन्होंने कहा है– ''मैंने एक–एक शब्द का नहीं बल्कि एक–एक विचार का अनुवाद किया है।''[4] उपरोक्त दोनों उदाहरणों से इस बात का ज्ञान होता है कि समाज और साहित्य की भाषायी व्यवस्था की संपूर्ण बारिकियां समझे बिना अनुवादक के लिए अनुवाद की राह आसान नहीं होती।

सन् 1940 के दशक में अनुवाद अध्ययन की दिशा में भाषा के महत्व को अधोरेखित किया गया। फर्निनंड द सास्युर ने भाषा संबंधी स्थापनाओं को दर्शाते हुए कहा–''सारा ज्ञान भाषा से संरचित है और भाषा से बाहर कुछ नहीं है। अनुवाद भाषा का ही खेल है।''[5] अतः एक सामाजिक व्यवस्था से दूसरी सामाजिक व्यवस्था में प्रवेश करने के लिए भाषा सेतू की अनिवार्यता अनुवाद के द्वारा ही होती है।

भारत देश में जितनी सामाजिक, सांस्कृतिक और भाषायी विविधता है उतनी विविधता विश्व के अन्य किसी देश में नहीं है। मनुष्य की सामाजिक विविधता को साहित्य की अनेक विधाओं के द्वारा समेटने का प्रयास होता रहा है। सामाजिक विविधताओं को सृजनात्मक लेखन के द्वारा लेखक जब व्यक्त करता है, तब बहुत बार उसमें प्रादेषिकता, आँचलिकता, जाति विशेष का संदर्भ, भाषा, बोलियाँ, शब्द, मुहावरे तथा लोकोक्तियां अनायास ही आती है। इन साहित्यिक विविधता को संपूर्ण रूप से अवगत कराने की क्षमता अनुवादक के पास होनी चाहिए। विशेषकर प्रत्येक समाज में भाषा तथा बोलियों के प्रयोग की स्थितियाँ भिन्न होती है। रिति–रिवाज तथा जीवन पद्धति के अनुसार व्यवहार में शब्द पाए जाते हैं। ऐसी स्थिति में अनुवादक को स्रोत भाषा तथा लक्ष्य भाषा के शब्द–व्यवस्था की समरसता का परिपूर्ण ज्ञान होने की आवश्यकता होती है। यदि ऐसा नहीं होता है तो स्रोत भाषा में लिखी रचना के भाव, आशय, अर्थ आदि गंभीरतापूर्वक और परिपूर्णता के साथ लक्ष्य भाषा में आने की संभावना कम होती है। अतः अनुवादक को स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा की सामाजिक व्यवस्था का ज्ञान आवश्यक है। ''वास्तव में अनुवादक मूल पाठ के कथ्य का समग्र रूप से अंतरण भाषांतरण और सांस्कृतिक अंतरण करने के लिए अनेक सार्थक विकल्पों का चयन करता है। अनुवाद कार्य के दौरान अनुवादक को दोनों भाषाओं संरचना, प्रकृति, व्याकरण, पर्याय, शैलीगत अंतर, सामाजिक–सांस्कृतिक तत्व आदि संबंधी कई प्रकार की समस्याओं–सीमाओं का सामना भी करना पड़ता है।''[6] अर्थात् अनुवादक को सामाजिक, सांस्कृतिक प्रकृति का आकलन होना आवश्यक है।

किसी भी राष्ट्र की भाषा व्यवस्था पर निर्भर करता है कि वहाँ अनुवाद कार्य की कितनी आवश्यकता है। जिस देश में जितनी भाषायी विविधता होगी वहाँ अनुवाद कार्य की उतनीही आवश्यकता होगी। ''भारत बहुभाषी और बहुसांस्कृतिक राष्ट्र है। भारत की यह बहुभाषिकता, एक शक्ति के रूप में अपनी पहचान सदियों से बनाए हुए हैं। अतः अनुवाद की सृजनात्मक भूमिका का महत्व तो है ही, इसकी प्रासंगिकता को भी नकारा नहीं जा सकता।''[7] विश्वभर में ज्ञान–विज्ञान की चेतना से मानवीय ज्ञानात्मक और भावात्मक संवेदना को अनुवाद ने बदला है। अनुवाद से मिलनेवाले ज्ञान से समाजशास्त्र को एक देश की सीमा से निकालकर दूसरे देश तक पहुँचाया है। वास्तव में अनुवाद कार्य ने सामाजिक चेतना में परिवर्तन की प्रक्रिया को जीवंत बनाने में उल्लेखनीय योगदान दिया है। वैचारिक आदान–प्रदान की चेतना से सामाजिक वैचारिकता के लिए भूमि तैयार करता अनुवाद का महत्वपूर्ण कार्य रहा है।''[8] इस आदान–प्रदान के कार्य में भाषा की अपनी भूमिका अद्भूत रही है। क्योंकि ''भाषाएँ अनुवाद के माध्यम से जीवंतता प्राप्त करती है और सृजन–प्रक्रिया को एक मजबूत आधार प्रदान करती है। इससे न केवल हमारा वर्तमान अनुवाद–कर्म और साहित्य मजबूत होता है बल्कि वैश्विक साहित्य के अनुवाद और अध्ययन से भविष्य में होनेवाली सभी साहित्यिक गतिविधियों को एक नई दिशा भी मिलती है। जाहिर है अनुवाद कार्य भाषाओं के सांस्कृतिक मेल–मिलाप और वैश्विक साहित्य के स्वरूप के पाने में सहायक साबित होता है।''[9] वर्तमान में

अनुवाद की दिशा में व्यापक और विस्तिर्ण रूप में कार्य देखा जा सकता है। साहित्यिक क्षेत्र में अनुवादकों के द्वारा विभिन्न रचनाओं के अनुवादों के लिए विशेष शाब्दिक और भाषायी जिम्मेदारियों को गहराईयों से समझने की आवश्यकता होती है। क्योंकि ''अनुवादक केवल ग्रंथों का अनुवाद ही नहीं करते वे उन अनुवादों के माध्यम से विभिन्न समाजों को, संस्कृतियों को जोड़ने का काम भी करते हैं। कोई भी श्रेष्ठ रचना अपने मूल देश, काल और वातावरण के साथ दूसरी भाषा में अवतरित होती है, सुयोग्य अनुवाद के कारण अनुवाद केवल शब्द के स्थान पर शब्द रखने की कला न होकर वह सर्वश्रेष्ठ सामाजिक तथा सांस्कृतिक कौशल है।''[10]

'एक भाषिक अनुवाद या रूपांतरण की योग्यता मातृभाषा की क्षमता या ज्ञान का अपरिहार्य अंग माना जाता है। इसलिए मातृभाषा अथवा प्रथम भाषा शिक्षण में इसका महत्वपूर्ण स्थान रहता है, तथा भाव–पल्लवन, संक्षेपण, व्याख्या, विवेचन आदि के रूप में हम एक भाषिक रूपांतरण का ही कार्य करते है।' अतः 'अनुवाद को मूलतः भाषिक प्रक्रिया और भाषा–कौशल के रूप में माना जाता है, जिसके मूल में एक भाषिक अभिव्यक्ति के दूसरी भाषिक अभिव्यक्ति के रूपांतरण और भाषांतरण की बात रहती है।' ''जब हम स्रोत और लक्ष्य भाषा के विषय में निश्चय कर चुके होते हैं तथा स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा विषयक निर्णय सदैव इन भाषाओं के सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक महत्व के आधार के साथ–साथ देश की आर्थिक तथा राजनैतिक व्यवस्था आदि की दृष्टि के अनुसार होते हैं। आशय यह कि अनुवाद का महत्व एक ओर विशुद्ध शास्त्रीय दृष्टि से है, दूसरी ओर उसका महत्व सामाजिक, सांस्कृतिक और शैक्षिक दृष्टि से भी है। अर्थात् अनुवाद–सिद्धांत और अनुवाद–प्रक्रिया अपने–आप में भाषा विज्ञान और मनोविज्ञान के अध्ययन के क्षेत्र तो हैं ही किसी देश–विशेष के भाषिक–यथार्थ में विभिन्न भाषाओं के स्वरूपात्मक तथा प्रकार्यात्मक विकास, अर्थात् भाषा के स्वरूप के साथ उसके सामाजिक, सांस्कृतिक, व्यावसायिक तथा शैक्षिक प्रयोग की स्थिति की दृष्टि से अनुवाद एक वास्तविक समस्या के रूप में मूर्त होता है। इसलिए भारतीय बहुभाषिक संदर्भ में हिंदी अनुवाद का जहाँ व्यापक सामाजिक, सांस्कृतिक तथा शैक्षिक महत्व है वहीं वह आधुनिक भारतीय भाषाओं संस्कृत आदि प्राचीन भारतीय भाषाओं तथा अंग्रेजी आदि आधुनिक विकसित विदेशी भाषाओं के संदर्भ में एक विशिष्ट भाषा वैज्ञानिक प्रक्रिया भी है, और परंपरा भी।''[11]

अनुवाद की सांस्कृतिक और भाषिक विविधता पर डॉ. परिमळा अम्बेकर जी का मत है कि– ''अनुवाद करने के संदर्भ में अनुवादक की अनुभूति निस्संदेह ही विविधता की रही है क्योंकि अनुवाद की प्रक्रिया ही दो भिन्न भाषा के पलड़ों में, अभिव्यक्ति संवेदना या विचारों को सही अनुपात में तोलना होता है। और इस प्रक्रिया में वह भाषा और संवेदना के हिसाब से पलड़ों के वजन की विविधता का अनुभव करता है। इस सानुपातिक प्रक्रिया की अत्यंत सूक्ष्म और आत्मिय पक्ष ही अनुवादक के सम्मुख प्रस्तुत अनुवाद की सांस्कृतिक और भाषिक विविधता की अनुभूति है। अनुवादक अपनी इस विशिष्ट अनुभूति के बतौर ही उभय भाषा और उसमें अभिव्यक्त संवेदना और विचारों के पलड़ों को सही अनुपात में तौलकर पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करने के लिए अपनी ओर से जोड़–तोड़ करते जाता है। मेरी दृष्टि में यह जोड़–तोड़ का हिसाब ही भाषिक और सांस्कृतिक विविधता का प्रमाण है।''[12] अतः यह कहा जा सकता है कि अनुवाद के लिए भाषायी समन्वय बनाने के लिए शब्दों का जोड़ना और तोड़ना आवश्यक होता है।

अनुवादक को लक्ष्य भाषा और स्रोत भाषा के सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेष की परिपूर्ण जानकारी होना आवश्यक है। ''प्रत्येक भाषा का एक साहित्यिक स्तर होता है और उसका आँचलिक लोकभाषा का स्तर। अलग–अलग अंचलों में एक ही भाषा के भिन्न–भिन्न रूप मिलते हैं जिन्हें आंचलिक प्रयोग (Slangs) भदेस भाषा के नाम से अभिहित किया जाता है। भाषा शास्त्रियों के अनुसार शब्द एक तरह के प्रतीक हैं जो बाह्य जगत की स्थूल वस्तुओं तथा सूक्ष्म जगत सूक्ष्म भावनाओं को व्यक्त करते हैं। स्थान, काल और कार्य के आधार पर ये प्रतीक भिन्न अर्थ का द्योतन करते हैं।''[13] अतः अनुवादक को आँचलिक भाषा और शब्द परिवर्तन की भी जानकारी होना आवश्यक होता है। ''हर भाषा में अपनी आँचलिक विशेषताएं होती हैं। अलग–अलग बोलियों का होना भी शब्द–भंडार को बढ़ा देता है। ग्रामीण साहित्य भी इस शब्द–भंडार से आपूरित है।''[14] अर्थात् अनुवाद प्रक्रिया में शब्दों की भूमिका भी महत्वपूर्ण होती हैं। अतः यह कहना गलत न होगा कि 'भारत की वर्तमान भाषायी स्थिति के संदर्भ में तो अनुवाद का महत्व और भी बढ़ जाता है। आज भारत में आयी हुई भाषायी चेतना के फलस्वरूप क्षेत्रीय भाषाओं के विकास का द्वार खुल गया है। प्रत्येक भाषा समूदाय की यह तीव्र इच्छा है कि उसकी भाषा

समृद्ध एवं सक्षम बने लेकिन किसी भी भारतीय भाषा के लिए यह संभव नहीं है कि उसमें संपूर्ण ज्ञान–विज्ञान भौतिक रूप में उपलब्ध हो सके, इसलिए प्रत्येक भारतीय भाषा को अनुवाद का सहारा तो लेना ही पड़ेगा।

भारत की बहुभाषिकता और बहुसांस्कृतिकता को लेकर लेखक, समीक्षक प्रभाकर श्रोत्रीय ने अनुवाद को लेकर एक चिंता यह जतायी थी कि 'देश में इतनी बड़ी भाषायी और साहित्यिक विविधता होने के बावजूद भारत में एक भी अनुवाद विश्वविद्यालय नहीं है।' यदि वह होता तो वर्तमान में बड़ी तादाद में भारतीय साहित्य का अनुवाद विभिन्न भाषाओं में किया जाता और भारतीय संस्कृति, समाज अखंड और अधिक समन्वयवादी बनने में सहायता मिलती। परंतु आज भी भारतीय भाषाओं में लिखे साहित्य का पर्याप्त अनुवाद नहीं हो रहा है। हालात चाहे जो हो, आज भी अनुवाद ने भारतीय सामाजिक भिन्नता को बनाए रखा, जोड़कर रखा। इसके लिए शब्द और भाषा का अनुवाद क्षेत्र में अत्यधिक महत्व रहा है।

शब्द की सत्ता, महत्ता चाहे साहित्य के लिए हो या अनुवाद के लिए हो, वह सदा ही अक्षुण्ण रही है। समाज और साहित्य के लिए शब्द की सार्थकता पर मराठी के कवि संत तुकाराम ने कहा है–

'आम्हा घरी धन शब्दांचीच रत्ने
शब्दांचीच शस्त्रे यत्न करू
शब्दचि आमुच्या जीवाचे जीवन
शब्द वाटू धन जनलोकां
तुका म्हणे पाहा
शब्दचि हा देव
शब्देचि गौरव पूजा करू'

(हमारे घर में शब्दों के रत्न ही धन है, शब्द ही हमारे शस्त्र है, शब्द ही हमारे जीवन की शक्तियां, धन के रूप में शब्दों को ही हम बांटे, तुकाराम कहे, शब्द ही ईश्वर, शब्द की ही पूजा करें)

संदर्भ–सूची

1. प्रो. मैनेजर पाण्डेय, साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, पृ. 20
2. परिमळा अंबेकर (सं.), हीरक पृ. 136, 137
3. शंभुनाथ (सं.), हिंदी साहित्य ज्ञान कोष, पृ. 188
4. शंभुनाथ (सं.), हिंदी साहित्य ज्ञान कोष, पृ. 188
5. शंभुनाथ (सं.), हिंदी साहित्य ज्ञान कोष, पृ. 193
6. शंभुनाथ (सं.), हिंदी साहित्य ज्ञान कोष, पृ. 202
7. कृष्णकुमार गोस्वामी, अनुवाद विज्ञान की भूमिका, पृ. 488
8. कृष्णकुमार गोस्वामी, अनुवाद विज्ञान की भूमिका, पृ. 488
9. पूरनचंद टंडन (सं.), अनुवाद (पत्रिका) जुलाई–सित. 2016, पृ. 62
10. डॉ. मुरलीधर शहा, अनुवाद विज्ञान, पृ. 47
11. कृष्णकुमार गोस्वामी, अनुवाद : विविध आयाम, पृ. 9
12. आलोचना (पत्रिका) अक्टू–दिसंबर 2004 जून–मार्च 2005, पृ. 189
13. सत्यदेव मिश्र, अनुवाद समस्याएं और समाधान, पृ. 120
14. कैलाशचंद्र भाटिया, भारतीय भाषाएं और हिंदी अनुवाद समस्या–समाधान, पृ. 56

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 139-141

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

अमरकांत : पात्र परिचय

*प्रेम नारायण द्विवेदी**

पात्र के चरित्र का विकास कहानी की घटनाओं के आधार पर होता है। जैसे–जैसे घटनाओं का विकास या सूक्ष्मातिसूक्ष्म दृष्टि होती जाती है वैसे–वैसे पात्र के चरित्र का विकास होता जाता है। घटनाओं का विकास कल्पना पर तथा कल्पना का विकास आत्मानुभूतियों पर निर्भर होता है।

विकास क्रम के आधार पर देखें तो पात्रों के विकास हेतु व कहानियों की सरलतम अभिव्यक्ति हेतु सर्वप्रथम पौराणिक फिर ऐतिहासिक, सामाजिक तथा अब व्यक्तिवादी कहानियों का विकास होता जा रहा है और समाज में घटित–घटनाओं के आधार पर उनके चरित्र को प्रतिबिम्बित किया गया है। ये चरित ही हमारे सामने त्याग अथवा बलिदान की मूर्ति पेश करते हैं। इसी क्रम में लेखकों ने अपने–अपने दृष्टिकोण के आधार पर पात्र योजना किया है, जो तमाम कठिनाईयों का सामना करते हुए भी हमें अपनी सफलता का जयघोष कराने की कोशिश किया है। इसी क्रम में हम अमरकांत जी को रख सकते हैं। आपके पात्रों की विशेषताएँ हमें अतिसूक्ष्मता से दृष्टिपात करने के लिए उत्साहित करती हैं।

चरित्र की कल्पना को ध्यान देने हेतु अमरकांत की निम्नलिखित स्वीकारोक्ति ध्यान देने योग्य है ''हमारे मन में आदर्श की कल्पना होती है। हर आदमी के पास होती है और जब हम उस आदर्श तक पहुंचने की कोशिश करते हैं– ''कल्पना में भी, यथार्थ में भी, तो हमें बहुत–सी बाधाओं का सामना करना पड़ता है। कभी चरित्र के स्तर पर तो कभी स्थिति के स्तर पर हमारे समाज में आदमी पूरी तरह चेतनशील भी नहीं बन सकता और कहीं–कहीं तो उसकी स्थिति जानवर से भी बदतर हो जाती है। इसीलिए हमारा मस्तिष्क सोचने के लिए मजबूर हो जाता है कि चेतना है कि नहीं है। दोनों स्थितियों के बीच से गुजरता है।''[1]

अमरकांत के पात्र योजना की कोशिश पर डॉ0 विश्वनाथ त्रिपाठी ने लिखा है 'जिंदगी और जोंक' का 'रजुआ' एक ऐसा पात्र है, जिसमें गरीब, लाचार और परिस्थितियों का मारा हुआ पर संघर्षरत पात्र का चित्रण किया गया है। ''घीसू और माधव'' का सजातीय पात्र जिंदगी और जोंक का रजुआ है। वह अपना ब्रह्मास्त्र छोड़ेगा चाहे मैं। बरई हूँ, बरई हूँ बरई हूँ। उसे नाराज दुःखी करना इस मानवीय व्यवस्था के बस में नहीं है।[2]

रजुआ से प्रभावित होकर दूधनाथ सिंह ने लिखा है कि ''ऐसी किसी घटना पर आश्चर्य नहीं होना चाहिए, जिसमें कोई रजुआ बिना चोरी की सजा पाता है। शोषण के लिए गोपाल से गोपाल सिंह बन जाता है। या स्वार्थपूर्ति के लिए प्राकृतिक प्रकोप के कारण निरर्थक हो जाने पर मानवीय करूणा और संवेदना से वंचित हो जाता है सहज मानवीय भावनाओं के उद्रेक में उपहास का विषय बन जाता है। ऐसे समाज में यह आश्चर्य जनक नहीं होना चाहिए कि उन्हें आदमी की तरह जीने का अवसर नहीं मिल पाता जो भीख नहीं माँगना चाहते, बल्कि कुछ सार्थक करके जीवित रहना चाहते है।''[3]

मूस की दीनता व्यक्तिवादिता, कातरता तथा हीनता बोध सभी उस व्यवस्था के द्वारा दिया गया है। समाज से कुछ ऐसा प्राप्त नहीं हुआ है जिस पर उसे गर्व हो। अमरकांत जी ने 'मूस' के समाने परवतिया के व्यवहार के प्रति लिखा है कि ''मूस ने कभी भी परवतिया को ऐसी–वैसी जबान न कही थी। वह क्या करती है और क्या बोलती है इसके सम्बन्ध में उसने कभी सोचा भी न था। वह जैसा खाना देती वह सिर झुकाकर खा लेता और डाँटती

* *शोधार्थी (हिन्दी विभाग), बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी, उ.प्र.*

फटकारती तो चूप–चाप सुन लेता। उसकी गाय भी मैं हूं और उसकी भैंस भी मैं हूँ। वह इतना दबा–दबा रहता की परवतिया उससे दो शब्द मीठा बोलना भी जरूरी नहीं समझती। वह सदा —————————————— कभी मूस तबियत भारी होने के कारण न जाने की इच्छा जाहिर करता तो कहती है देखती हूँ, बड़ी मोटाइनी छा गयी है।''[4]

अमरकांत जी के पात्र शारीरिक साज–सज्जा पर विशेष ध्यान देते हैं। इसलिए आपने लिखा है ''मूस को जीवन'' में पहली बार अपनी शक्ति और पुरुषत्व का अहसास हुआ था। एक जवान, सुन्दर गुणी और नखरीली औरत उस पर लट्टू है, इस भावना ने झकझोर और गुदगुदा कर उसमें अनन्त शक्तियाँ जगा दीं। वह अब साफ–सुथरा रहने की कोशिश करता, अधपकी मूँछों को तेल से तर करता और उनको अक्सर ऐंठता रहता। वह अब अपना पुरुषत्व प्रदर्शित करने के लिए लालायित रहने लगा।''[5]

अमरकान्त जी ने 'मूस' में परवतिया के माध्यम से शहर के व्यभिचार को उजागर किया है। यथा–''उसकी यहाँ तक प्रसिद्धि थी कि उसने आवारा औरतों को बीड़ी वाले बन्ने मिया, टूक वाले चौबे जी और गाँव पर बाल–बच्चों को छोड़कर शहर में छुट्टा रहने वाले बाबुओं के पास पहुँचा–पहुँचाकर काफी पैसे बनाये थे।''[6]

अपने पात्रों में रोमांस भी उजागर करने में अमरकान्त जी कम नहीं थे। उन्होंने 'असमर्थ हिलता हाथ' में नायिका मीना से कहलवाया है कि वो सामाजिक व्यवस्था के सम्मुख हारी हुई महसूस करती है। मीना ने घोर निराशा से भरकर दिलीप के पास पत्र लिखा था ''आप आज से यही समझिए कि मीना मर गयी, उससे कोई परिचय नहीं था।''[7]

आगे अमरकांत जी ने 'दोपहर का भोजन' कहानी में 'सिद्धेश्वरी' का चरित्र भी बहुत महत्वपूर्ण है। सिद्धेश्वरी का चरित्र–चित्रण अमरकांत ने कहानी की शुरूआत से की है। वे लिखते है– ''सिद्धेश्वरी ने खाना बनाने के बाद चूल्हें को बुझा दिया और दोनों घुटनों के बीच सिर रखकर शायद पैर की उंगुलियों या जमीन पर चलते चीटे–चीटियों को देख रही थी। खाली पानी उसके कलेजे में लग गया और वह हाय राम कहकर जमीन पर लेट गयी।''[8]

समय के साथ अमरकान्त की कहानियों के घटना क्रम तथा पात्र–चरित्र में अंतर को व्यक्त किया गया है। अपने 'मछुआ' कहानी में सीता देवी के चरित्र द्वारा प्रस्तुत किया गया है। जिसके विषय में अमरकान्त ने लिखा है कि–''नीरजा अपनी माँ के कड़े अनुशासन में रहकर पढ़ने–लिखने के अलावा पुस्तकों पर कवर चढ़ाती, कमरे को सजाती, पर्दों और तकियों के गिलाफ को बदलती, दीवारों पर नए चित्र, कैलेंडर टांगती और घूमने–टहलने और मनोरंजन के नाम पर बस्ती की शिक्षित नव–विवाहिता बहुओं को सिलाई–कढ़ाई आदि के नए–नए गुण सिखाती।''[9]

अमरकान्त जी ने 'बहादुर' तथा 'जिंदगी और जोंक'' के रजुआ के नौकर की जिंदगी अनेकों यातनाओं के साथ जीने के लिए अभीसप्त किया है। उनकी न कोई फरमाईस रहती और न ही कभी गर्जन–तर्जन रहती। बस! यूं ही पेट के खातिर सभी यातनाओं को झेल जाते हैं। परन्तु चोरी का झूठा आरोप लगा दिया जाता है जिसको मिटाने के लिए दुस्साहस नहीं कर सके और अन्ततः घर के बाहर चले जाते।

'डिप्टी कलक्टरी' में अमरकान्त ने शकलदीप बाबू को एक कल्पना का सहारा दिया है और यही वजह है कि शकलदीप बाबू अपनी पत्नी से कहते हैं कि–''हाँ देखिए जहाँ एक से एक धुरन्धर लड़के पहुँचते हैं, सबसे तो बीस मिनट ही इण्टरव्यू होता है, पर इनसे पूरे पचास मिनट। अगर नहीं लेना होता तो पचास मिनट तक तंग करने की क्या जरूरत थी, पाँच–दस मिनट में पूँछताछ करके...।''[10]

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि अमरकान्त की प्रगतिशीलता ने विचार को भी समयानुसार परिवर्तित करने की कोशिश की है। आपके पात्र चयन की बात करें तो इसकी प्रशंसा जितनी की जाये। उतनी ही कम है। एक तरफ आपके शोषित वर्ग के पात्र–रजुआ, बहादुर, दूबर आदि का वर्णन किया है तो दूसरी तरफ शोषक वर्ग के

कोशल, शिवनाथ बाबू आदि अनेक पात्रों के माध्यम से नौकर मालिक, अमीर–गरीब, शोषक– पोषक आदि का वर्णन किया गया है।

अतः यह कह सकते हैं कि अमरकांत का चरित–चित्रण बहुत ही प्रगतिशील विचारों के साथ सराहनीयता को कायम रखा है।

संदर्भ–सूची

1. साक्षात्कार, जुलाई–अगस्त 1989
2. अमरकांत, वर्ष–1, पृ. 122
3. अमरकांत, वर्ष–1, पृ. 233
4. अमरकांत, वर्ष–1, पृ. 175
5. अमरकांत, वर्ष–1, पृ. 177
6. अमरकांत, वर्ष–1, पृ. 176
7. कालिया, रवीन्द्र, अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दूसरा संस्करण, 2016, पृ. 370
8. कालिया, रवीन्द्र, अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दूसरा संस्करण, 2016, पृ. 62
9. कालिया, रवीन्द्र, अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दूसरा संस्करण, 2016, पृ. 62
10. कालिया, रवीन्द्र, अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दूसरा संस्करण, 2016, पृ. 100

*****

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 142-146

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

रोजगार के क्षेत्र में हिन्दी

*डॉ. दिलीप कुमार अवस्थी**

सारांश–भारतवर्ष विविधताओं से भरा देश है। यहाँ पर सदैव सुनने को मिलता है ''कोश–कोश में बानी बदले, कोश–कोश में पानी'' प्रत्येक राज्य की अपनी महती भूमिका है। पूर्वोत्तर हो या दक्षिण सभी लोग अपनी क्षेत्रीय भाषा को अच्छी तरह से समझते हैं और उसको भी आत्मसात किये हुये हैं। इसके बावजूद इन सभी को एक माले के धागे के रूप में हिन्दी ही है जो सभी को एकता के सूत्र में बांधे हुये है। हिन्दी भाषा में वह शक्ति और सामर्थ्य है कि जो कि देश के प्रत्येक नागरिक में आन–मान एवं शासन को बनाये रखती है। हिन्दी देश की राजभाषा तो है ही आज के दौर में इसमें रोजगार के अवसरों की कोई कमी नहीं है। इसमें हम अपनी प्रतिभा के द्वारा या शैक्षिक योग्यता को बढ़ाकर हम अपने सुनहरे भविष्य को बुलंदियों तक ले जा सकते हैं।

वर्तमान में कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं है जहाँ पर हिन्दी को महती उपलब्धियाँ न मिल रही हैं। आज प्रशासनिक क्षेत्र में भी बहुत से लोग हिन्दी को भाषा के रूप में चयन कर अपनी प्रतिभा का लोहा मनवाते रहते हैं। भाषा के महत्व को इसी बात से समझा जा सकता है कि भारत के संविधान के अनुच्छे 343(1) में देवनागरी लिपि में हिन्दी को संघ की राजभाषा घोषित किया गया है। वैश्वीकरण और वर्तमान में अन्य देशों से बढ़ते हुए भारतीय कदम इस बात का पुख्ता प्रमाण दे रहे हैं कि हिन्दी भाषा में ही अपार सम्भावनायें हैं। विश्व के अनेकों देशों में हिन्दी को पठन–पाठन के लिए एक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान है। विदेशों में हिन्दी को प्रोत्साहन देने के लिए हिन्दी शिक्षण केन्द्रों की स्थापना की गयी है। विदेशी छात्रा हिन्दी को लोकप्रिय एवं सरलता से सीखने योग्य भारतीय भाषा मानते हैं।

वर्तमान में हिन्दी सर्वाधिक उपयुक्त रोजगारपरक भाषा के रूप में मानी जाती है। हिन्दी राष्ट्रीय हो या अन्तर्राष्ट्रीय हर स्तर पर रोजगारपरक भाषा के रूप में अपनी पहचान बनाये हुए है। अस्सी–नब्बे के दशक के बाद से तकनीकि क्रांति से भारत में बहुराष्ट्रीय कम्पनी का आगमन प्रारम्भ हो गया जिसके बाद से मोबाइल–कम्प्यूटर जैसी तकनीकि उपकरण ने अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया है। इन सभी स्थानों पर अंग्रेजी का ही बोलबाला था। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि हमारी भाषा का अब अस्तित्व ही खतरे में हो जायेगा परन्तु ऐसा नहीं हुआ। धीरे–धीरे देश के नागरिकों ने अपनी भाषा को मजबूती प्रदान करने एवं विदेशों की नजर में अपनी उपस्थिति को बहुत ही कुशलता के साथ रखा। कम्प्यूटर तथा मोबाइल के लिए हिन्दी भाषा का प्रयोग उनकी अथक मेहनत के ही परिणामस्वरूप सर्वाधिक सरल एवं उपयुक्त भाषा के रूप में अपनी पहचान बनायी। मीडिया क्षेत्र में विदेशियों के अस्तित्व वाले अनेकों हिन्दी चैनल आज देश में आधार स्तम्भ के रूप में खड़े हैं। एक विशेष प्रकार की होड़ हो रही है कि भारतवर्ष में अपनी उपस्थिति रखनी है तो हम सभी को हिन्दी भाषा को जानना और समझना होगा साथ ही साथ हिन्दी में रोजगार की अपार सम्भावनायें बनाये रखनी होगी। विश्व के किसी भी देश को आपत्ति करनी है तो कुशल मस्तिष्क भारत से ही लेना होता है। विश्व का कोई ऐसा देश नहीं है जहाँ पर हिन्दी के माध्यम से रोजगार प्राप्त न हो रहा है। विदेशी लोग भी चाहते हैं कि भारतीय संस्कृति और भारतीयता को यदि हमें समझना है तो हमें भारतवर्ष में रहकर रोजगार करना होगा। शुद्ध अन्तरण से इस काल में यदि हम सब लगेंगे तो यह भाषा विश्व की धुरी के रूप में अपनी उपस्थिति दर्ज करायेगी और विश्व गुरु के रूप दिखायी देगी।

* *प्रधानाचार्य, माध्यमिक शिक्षा, उत्तर प्रदेश*

अन्ततः यह कह सकते हैं कि विश्व की हिन्दी ही एक मात्र ऐसी वैज्ञानिक भाषा है जो सम्पूर्ण विश्व में अपनी उपस्थिति दर्ज करती है। आज यह उपयुक्त रोजगारपरक भाषा बनी हुयी है और आने वाले वर्षों में अपनी उपस्थिति को दृढ़ता के साथ स्थिरता प्रदान करती रहेगी।

हिन्दी संवैधानिक भाषा के रूप में भारत में सबसे अधिक बोली और समझी जाने वाली भाषा है। भारतीय संविधान में हिन्दी राजभाषा के रूप में जानी जाती है। चीन के बाद यह विश्व में सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा है। यह भाषा भारत में सर्वाधिक रोजगार प्रदान करने में सक्षम भाषा है। केन्द्र सरकार, राज्य सरकारों के विभिन्न विभागों में हिन्दी में ही काम–काज अनिवार्य है। अतः केन्द्र तथा राज्य सरकारों के विभिन्न विभागों और इकाईयों में हिन्दी अधिकारी, हिन्दी अनुवादक हिन्दी सहायक, प्रबंधक (राजभाषा) जैसे विभिन्न पदों की भरमार है। निजी टी0वी0 और रेडियो चैनलों की शुरूआत और स्थापित पत्रिकाओं, समाचारपत्रों के हिन्दी रूपान्तरण आने से रोजगारों के अवसरों में कई गुना की वृद्धि हुयी है। हिन्दी मीडिया के क्षेत्र में सम्पादकों, संवाददाताओं, रिपोर्टरों, न्यूज रीडर्स, उपसम्पादकों, प्रूफ रीडरों, रेडियो जॉकी, एंकर्स आदि की बहुत आवश्यकता होती है।

हिन्दी में रोजगार की इच्छा रखने वालों के लिए पत्रकारिता, जनसंचार में डिग्री, डिप्लोमा के साथ–साथ हिन्दी में अकादमिक योग्यता रखना महत्वपूर्ण है। कोई व्यक्ति रेडियो, टी0वी0, सिनेमा के लिए स्क्रिप्ट राइटर, डॉयलॉग राइटर, गीत के रूप में भी काम कर सकता है। इस क्षेत्र में प्राकृतिक और कलात्मक रूप में सृजनात्मक लेखन आवश्यक होता है। लेकिन किसी व्यक्ति के लेखन के स्टाइल में सृजनात्मक लेखन में डिग्री या डिप्लोमा निश्चत तौर पर लेखन क्षेत्र में आत्मविश्वास लाकर लेखनी को निखार सकता है। इसमें प्रमुख अन्तर्राष्ट्रीय लेखकों के कार्यों का हिन्दी में अनुवाद तथा हिन्दी लेखकों की रचनाओं का अंग्रेजी और अन्य विदेशी भाषाओं में अनुवाद कार्य करना भी सम्मिलित होता है। फिल्मों की स्क्रिप्टरों, विज्ञापनों को हिन्दी तथा अंग्रेजी में अनुवाद करने का कार्य होता है।

हिन्दी अनुवादक के क्षेत्र में द्विभाषी दक्षता होना आवश्यक है। कोई व्यक्ति एक स्वतंत्र अनुवादक के तौर पर अपनी आजीविका संचालित कर सकता है और खुद की अनुवाद फर्म स्थापित कर अनेकों हिन्दी प्रेमियों को रोजगार प्रदान कर सकता है तथा बहुत से पेशेवर अनुवादकों को रोज़गार उपलब्ध होता है। विदेशी एजेंसियों से भी अनुवाद परियोजनाओं के अवसर प्राप्त होते हैं। यह कार्य आसानी से इण्टरनेट के जरिये प्राप्त होता है। विश्वभर में सिस्ट्रॉन, एसडीएल इन्टरनेशनल, डेट्रायर ट्रांसलेशन ब्यूरो, प्रोज आदि असीमित संख्या में भाषा कम्पनियां हैं। इनमें बहुत ज्यादातर भाषायी उन्मुख कम्पनियाँ हैं जो कि बहुभाषी सेवायें उपलब्ध कराती हैं। इनमें से एक हिन्दी भाषा भी है। अन्य कम्पनियाँ इन कम्पनियों से अनुबंध के आधार पर भाषा सेवायें प्रदान कराती है। सामान्यतः इन फर्मों में रोज़गार के अवसर स्थाई या स्वतंत्र अनुवादकों तथा भाशान्तरकारों के रूप में उपलब्ध है।

हिन्दी अनुवादक व राजभाषा सहायक की भर्तियाँ कर्मचारी चयन आयोग भारत सरकार द्वारा की जाती है। जिन्हें भारत सरकार के कार्यालयों या विभागों में तथा मंत्रालयों में नियुक्ति प्रदान की जाती है। इसके अतिरिक्त रेलवे भर्ती बोर्ड भी रेल मंत्रालय या क्षेत्रीय कार्यालयों में राजभाषा सहायक के पदों के योग्य उम्मीदवारों के लिए आवेदन आमंत्रित किये जाते हैं। संसद (लोकसभा एवं राज्यसभा) में राजभाषा सहायक की परीक्षा का आयोजन संयुक्त भर्ती प्रकोष्ठ द्वारा किया जाता है। ऐसे उम्मीदवार जिन्होंने किसी भी मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय से परास्नातक (हिन्दी) में उत्तीर्ण हो साथ ही स्नातक पर अंग्रेजी विषय लिया हो अर्थात् हिन्दी तथा अंग्रेजी स्नातक एवं परास्नातक में योग्यताधारी उम्मीदवार हिन्दी अनुवादक और राजभाषा सहायक की योग्यता रखते हैं हिन्दी तथा अंग्रेजी की गरिमा को बढ़ावा देने और प्रयोग को बढ़ाने के लिए भारत सरकार निरन्तर प्रयास कर रही है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ऐसे पाठ्यक्रमों का अनुसंधान करते हुये विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालयों को वित्तीय सहायता प्रदान कर रहा है। महात्मा गांधी अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय वर्धा, हैदराबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय हैदराबाद, हिन्दी विभाग पुणे विश्वविद्यालय पुणे, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा चेन्नई, हैदराबाद, धारवाड़, शिक्षा विभाग मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय नई दिल्ली, केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो, राजभाषा विभाग, भारत सरकार आदि समस्यायें सम्बन्धित पाठ्यक्रमों का आयोजन करती है।

राष्ट्रीयकृत बैंकों में राजभाषा अधिकारियों की भर्ती बैंकिंग कार्मिक चयन संस्थान द्वारा की पाती है। राष्ट्रीयकृत बैंकों में राजभाषा अधिकारी के पद पर कम से कम तीन वर्ष का अनुभव प्राप्त अधिकारियों का चयन भारतीय स्टेट बैंक, नाबार्ड, भारतीय रिजर्व बैंक में किया जाता है। बैंक में राजभाषा अधिकारी की भर्ती हेतु बैंकिंग कार्मिक चयन संस्थान द्वारा विशेषज्ञ अधिकारियों की भर्ती के अधीन संयुक्त लिखित परीक्षा द्वारा राजभाषा अधिकारियों का चयन किया जाता है।

बैंकिंग क्षेत्र में हिन्दी का चलन लगातार बढ़ रहा है। अब बैंक सोच रहे हैं कि हमें यदि सामान्य नागरिकों तक बैंकिंग व्यवस्था पहुंचानी है और बैंक से जन सामान्य को जोड़ना है तो अपने कार्य पद्धति की भाषा हिन्दी को लाना होगा। बदलते वित्तीय परिवेश में हम जन सामान्य की भाषा हिन्दी में सभी को बैंक की सम्पूर्ण योजनाओं के विषय में जानकारी दें। भारत गाँव में बसता है। आज बैंकिंग या अन्य वित्तीय व्यवसाय में प्रतिस्पर्धा है, चुनौती है, आगे बढ़ने की होड़ है। ऐसे में हिन्दी का महत्व अधिक बढ़ रहा है। हमारी अर्थव्यवस्था की मजबूती आज इस बात पर निर्भर कर रही है। जितना अधिक ग्रामीण बैंकिंग पर जोर दिया जायेगा उससे उतना ही अधिक बढ़ने की सम्भावनायें हैं। आज सभी सरकारी और प्राइवेट बैंक बीमा कम्पनी में भी प्रयोग में आने वाली सारी सामग्री, दस्तावेजी काम हिन्दी में हो रहा है। विदेशी बैंक भी एक स्तर तक हिन्दी का प्रयोग कर रहे हैं।

आजादी के वर्षों बाद भी हमारा अधिकांश कार्य अंग्रेजी में हो रहा है जबकि सर्वाधिक प्रयुक्त भाषा हिन्दी है। जो सरल एवं वैज्ञानिक भाषा है। हिन्दी राष्ट्रीय गौरव का प्रतीक और अस्मिता का प्रतीक ही नहीं भारत की आत्मा की आवाज है। यही आवाज बैंकिंग एवं वित्तीय व्यवस्था में हिन्दी की महत्ता को समझते हुए उसका लगातार प्रयोग हो रहा है जब सूचना प्रौद्योगिकी को अपने अन्दर आत्मसात करेंगे तो यह तकनीकि बाधाओं को पार कर अपनी मंजिल पर पहुँच जायेगी जब भी वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग द्वारा अपने घर या कार्यालय में बैठकर कार्यों के सम्पादन की समीक्षा करते हैं तो अधिकांश वार्ता हिन्दी में ही होती है। आज कम्प्यूटर उपभोक्ता के कामकाज से लेकर डाटा बेस तक में हिन्दी पूरी तरह उपलब्ध है। आज घर बैठे हिन्दी भाषा का चयन करके मोबाइल लैपटॉप पर बैलेन्स, स्टेटमेन्ट देखकर नेट बैंकिंग के माध्यम से बैंकिंग करते हैं।

पत्रकारिता ऐसा क्षेत्र है जिसमें रोजगार के अपार सम्भावनायें हैं। इसीलिए युवाओं को सामान्य कोर्स के बजाय पत्रकारिता जैसे प्रोफेसनल कोर्स की ओर ज्यादा रूझान हो गया है। यह कैरियर के साथ–साथ अभिव्यक्ति का बेहतर माध्यम है। वर्तमान समय में समाचार पत्रों व न्यूज चैनलों की बढ़ती संख्या से युवाओं के लिए रोजगार की सम्भावनायें ज्यादा हो गयी हैं। मीडिया हर व्यक्ति से जुड़ा सशक्त माध्यम है। लगातार हिन्दी मीडिया में चैनलों की संख्या लगातार बढ़ रही है। युवाओं में समचार पत्रों, पत्रिकाओं, न्यूज चैनल्स आदि में रोजगार के अनेक अवसर मिल रहे हैं। फील्ड में रिपोर्टिंग, प्रेस फोटोग्राफर, सम्पादकीय विभाग में उप सम्पादक, कॉपी राइटर, उद्घोषक के रूप में कार्य कर रहे हैं। पत्रकारिता की पढ़ाई करने के बाद आपको न्यूज एजेंसी, न्यूज वेबसाइट, प्रोडक्शन हाउस, प्राइवेट और सरकारी न्यूज चैनल, प्रसार भारती, पब्लिकेशन डिजाइन, फिल्म मेकिंग में रोजगार के अवसर मिल रहे हैं। आप चाहें तो स्वतंत्र पत्रकारिता भी कर सकते हैं।

हिन्दी का अध्ययन करने वालों के बीच अध्यापन एक पारम्परिक कैरियर विकल्प के रूप में प्रसिद्ध है। यहाँ उच्च शिक्षण संस्थाओं से लेकर प्राथमिक स्तर तक शिक्षण के अवसर योग्यतानुसार उपलब्ध रहते हैं। यह व्यवसाय बहुत ही सुरक्षित तथा महिलाओं में सर्वाधिक उपयुक्त एवं प्रचलित है। हिन्दी विषय में परास्नातक करने के उपरांत समय–समय पर आयोजित होने वाली राष्ट्रीय पात्रता परीक्षा में सम्मिलित हुआ जा सकता है। इसमें अधिकतम अंक प्राप्त करने वाले उम्मीदवारों को जूनियर रिसर्च फेलोशिप प्रदान की जाती है। जिसके माध्यम से शोध कार्य करने वाले छात्रों को प्रतिमाह छात्रवृत्ति प्रदान की जाती है एवं वही छात्र आगे चलकर महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में शिक्षण कार्य के लिए नियुक्त होते हैं। हिन्दी विषय में परास्नातक छात्र केन्द्रीय विद्यालयों एवं राज्य के माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षक बनते हैं। जिन छात्रों ने स्नातक के साथ बी0एड0 किया है वे सभी छात्र भी अध्यापक बनकर अपनी जीविकोपार्जन में लगकर देश के लिए उच्चतम आदर्श वाले नागरिकों का निर्माण करते हैं।

हिन्दी के छात्रों को रेडियो जॉकी और समाचार वाचक के रूप में शानदार कैरियर प्रारम्भ करते हैं। रेडियो जॉकी ऐसा कैरियर है जिसमें आपकी आवाज देश दुनिया में सुनी जाती है। आल इण्डिया रेडियो पर प्रस्तोता अमीन

सायानी का वे अंदाज़ ''जी हाँ भाइयों और बहनों'' हम आज तक नहीं भूल पाये हैं। आज भी रेडियो मिर्ची पर आर जे नवेद हमेशा ट्रेडिंग में रहता है। बच्चा–बच्चा इस नाम से परिचित है। यह तो मात्र एक उदाहरण ही है। ऐसी बहुत सी प्रतिमायें हैं जो इस क्षेत्र में अपनी शोहरद की बुलंदियों को छू रही है। यदि आप भी भाषा पर अच्छी पकड़ रखते हैं, आवाज अच्छी है और आप में श्रोताओं का मनोरंजन करने की क्षमता है तो यह एक बेहतरीन कैरियर है। इसी मिलता–जुलता काम समाचार वाचक का है। इसमें आपको दर्शकों के मनोरंजन करने की चिंता नहीं है बस आपको अपनी सधी हुयी प्रतिभाशाली आवाज में समाचार पढ़ना है और देश–विदेश की घटनाओं की जानकारी देनी है। इससे सम्बन्धित कोई प्रोफेशनल कोर्स कर लेने से काम मिलने में आसानी होती है।

रचनात्मक लेखन के क्षेत्र में जाने वालों के पास दो विकल्प होते हैं। पहला स्वतंत्र लेखन दूसरा फिल्म, टी0वी0, रेडियो आदि संस्थाओं में काम करते हुये लेखन। हालांकि दोनों में कोई अन्तर नहीं है। दोनों ही रूप में आप काम एक ही करते हैं। कुछ लोग किसी संस्था के नियमों और शर्तों में बंधकर काम करना कम पसंद करते हैं। उनके लिए स्वतंत्र लेखन बेहतर विकल्प है। आप प्रारम्भ से किसी भी संस्था से जुड़ सकते हैं और अनुभव हो जान के बाद नौकरी छोड़कर स्वतंत्र लेखन करते रहेते हैं। इस माध्यम से आप घर बैठे काम करते हुये भी पैसा कमा सकते हैं। ब्लॉग लेखन भी इन्हीं विकल्पों का एक शानदार उदाहरण है। इस क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा के साथ कैरियर का सुनहरा अवसर है। आप अपनी पसंद का कोई विषय चुनकर इसकी शुरूआत कर सकते हैं और धैर्य के साथ मेहनत करते हुये और साथियों के परस्पर सहयोग से सफलता प्राप्त कर सकते हैं। अच्छी खबर, हैप्पी हिन्दी, साहित्य शिल्प आदि कुछ ऐसे ब्लॉग हैं जिन्होंने हिन्दी ब्लागिंग में नया कीर्तिमान स्थापित किया है।

जिस तेजी से दुनिया आधुनिकता की दौड़ में प्रतिभाग कर अपने आपको श्रेष्ठ सिद्ध करने का प्रयास कर रही है वहीं डिजिटल क्षेत्र में हिन्दी भाषा से जुड़े कई एप मोबाइल और एंड्राइड पर उपलब्ध हैं। यहाँ तक कि टी0वी0 कार्यक्रमों में सबसे अधिक टीआरपी जुटाने वाले कार्यक्रम हिन्दी भाषा में संचालित हो रहे हैं। समय के साथ जो भाषायी परिवर्तन दिखाई दे रहा है उसे पूर्ण करने के लिए विश्वविद्यालयों में अनेकों पाठ्यक्रम चलाये जा रहे हैं इस ग्लोबल और डिजिटल की दुनिया में हिन्दी भाषा अपनी भूमिका को उसी रेस में श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए हमारे साइबर दुनिया के वैज्ञानिक अपनी भाषा को श्रेष्ठ और पूर्ण बनाने में लगे हुये हैं। गूगल का आभार है जिसने हिन्दी के कम्प्यूटर प्रयोग को लगातार उपभोक्ताओं के लिए सरल बनाने का काम किया है। आज हिन्दी के अनेकों फॉन्ट माईक्रोसाफ्ट उपलब्ध करवा रहा है। यूनीकोड जैसे फॉन्ट और गूगल द्वारा उपलब्ध करवाया जा रहे भाषा इनपुट टूल्स ने समय के अनुसार हिन्दी के संचार को बाधित नहीं होने दिया है। भारतीय हिन्दी फिल्मों में भी टेक्नोलोजी का प्रयोग बढ़ने से फिल्में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बहुत ही देखी और समझी जा रही है। आज दुनिया के बाजार में भारतीय बाजार ने अपनी ओर आकर्षित किया है। अनुवाद, शिक्षा, पत्रकारिता, बैंकिंग, विज्ञापन सिनेमा विदेशी खानपान आदि सभी क्षेत्रों में हिन्दी प्रेमियों के लिए रोजगर की अनन्त सम्भावनायें हैं। हिन्दी में अनेकों ब्लॉग, ऑनलाइन साहित्य, पत्र–पत्रिकायें, फेसबुक, ट्विटर आदि हमारे रोजमर्रा के जीवन का मूल आधार बन गया है।

वर्तमान समय में हिन्दी की अनेकों वेबसाइट उपलब्ध हैं। विभिन्न हिन्दी पत्र–पत्रिकाओं के पोर्टल एवं ब्लॉग लिखने में रोजगार की सम्भावनायें उपलब्ध हैं। डोमेस्टिक कॉल सेन्टर्स में हिन्दी भाषा के आधार पर नौकरी प्राप्त हो रही है। टेली–कम्युनिकेशन में भी हिन्दी की महती भूमिका है। हिन्दी सॉफ्टवेयर्स की जरूरत के मद्देनजर अब हिन्दी भाषी छात्रों को भी अनेकों अवसर उपलब्ध हो रहे हैं। प्रतियोगी परीक्षाओं में हिन्दी भाषा की मुख्य भूमिका प्रतीत हो रही है। बैंक, न्यायिक सेवा, प्रशासनिक सेवा से लेकर राज्य सरकारों की नौकरियों तथा भारत सरकार की नौकरियों में भी अपार सम्भावनायें दिखायी देती हैं। वहीं बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ भी अपने देश के नागरिकों को हिन्दी पढ़ने के लिए प्रोत्साहित कर रही है।

वर्तमान समय में हिन्दी रोजगार की भाषा बनती जा रही है। इस बात पर तनिक भी संकोच नहीं किया जा सकता है। हिन्दी राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी एक विशेष पहचान बनाये रखती है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के आगमन ने तकनीकि क्षेत्र में एक विशेष प्रकार की क्रान्ति आयी है। इस क्रांति ने भाषा की बाध को तोड़कर हिन्दी में अधिकतर कार्य करने के लिए बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को मजबूर कर दिया है। इसलिए जिस देश का

लगभग सत्तर प्रतिशत से ज्यादा मनुष्य गाँव में बसता है वहाँ भी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने अपनी पहुँच बना ली है। तकनीकी वस्तुओं का प्रचलन अधिक हो रहा है। कम्प्यूटर मोबाइल जैसे तकनीकि उपकरण ने आज अपना वर्चस्व स्थापित कर रखा है। इन सब कार्यों में अंग्रेजी भाषा की भरमार थी। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि हिन्दी या भारत की अन्य भाषायें अपने अस्तित्व पर पड़ने वाले संकट के बादल मंडरा रहे हैं लेकिन ऐसा हुआ नहीं हिन्दी के तेल प्रकाश ने अन्य भाषाओं को अपने में समाहित कर लिया ओर अन्य सभी विदेशी भाषायें हिन्दी की छाया में अपना अस्तित्व बचाने में लग गयीं। गूगल ने हिन्दी के महत्व को समझा और हिन्दी भाषा में अपनी समस्त सामग्रियों को परिवर्तित किया। माइक्रोसॉफ्ट कम्प्यूटर के निर्माण के समय हिन्दी को पूरा महत्व देती है और हिन्दी फॉन्ट की उपलब्धता आज बेहद आसान हो गयी है। अनेकों वेबसाइटें अपना पूरा कन्टेन्ट हिन्दी में उपलब्ध कर रही हैं। यू–ट्यूब पर हिन्दी छायी हुयी है। अनेकों चैनलों की लोकप्रियता का आधार हिन्दी ही है इसके अतिरिक्त अनेक ऑनलाइन शैक्षणिक वेबसाइटें बनी हैं जिनका मूल कार्य शिक्षण बन गया है।

हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है जिसे पूरा विश्व आसानी से समझता और प्रयोग कर रहा है। हिन्दी पूरे विश्व में सर्वाधिक बोली जाने वाली प्रमुख भाषा है। पूरे विश्व में इसे समझने वाली जनसंख्या लगभग एक अरब से ज्यादा है। इसमें रोजगार की अपार संभावनायें हैं क्योंकि जनसामान्य की भाषा का तकनीकि के साथ प्रयोग करने से जनसामान्य भी आसानी से इसे प्रयोग करने में सफलता हासिल किये हुए है और यह भाषा भारतवर्ष में रोजगार प्राप्ति के लिए प्रमुख भाषा बनी हुयी है।

अन्ततः कह सकते हैं कि विश्वभर में हिन्दी भाषा में लगातार बढ़ते प्रयोग और प्रभाव ने हिन्दी में रोजगार की संभावनाओं के अनगिनत द्वार खोल दिये हैं और यह भविष्य में और अधिक रोजगारपरक होगी ऐसी उम्मीद है। आप अपनी रुचि, योग्यता और क्षमता के अनुसार अपना क्षेत्र चुनकर अपना भविष्य संवार सकते हैं। आज विश्व का कोई भी ऐसा देश नहीं है जो यह प्रयास न कर रहा हो कि हिन्दी पढ़कर उनके नागरिक रोजगार की अपार सम्भावनाओं में शामिल न हो। भारतीय बाजार की उपलब्धता ने तो विदेशी नागरिकों को हिन्दी पढ़ने के लिए मजबूर कर दिया है। यदि उन्हें रोजगार तथा अपनी पहचान बनाये रखना है तो हिन्दी के माध्यम से ही रोजगार प्राप्त होगा। इसीलिए पूरा विश्व हिन्दी भाषा की तरफ अपने नागरिकों को प्रेरित कर रहा है। अतः स्वयंसिद्ध है कि हिन्दी भाषा में रोजगार की अन्ततः सम्भावनायें हैं।

सन्दर्भ–सूची

1. विजय शंकर पाण्डेय, हिन्दी में रोजगार
2. डॉ0 हरीश, हिन्दी दिवस विशेषांक
3. हिन्दी रोजगार की सम्भावनाओं से भरपूर, हिन्दुस्तान समाचार–पत्र
4. हिन्दी हैं हम लेख, इन्टरनेट
5. अनेकों हिन्दी समाचार पत्रों से संग्रहित सामग्री।

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 147-150

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

भारतीय साहित्य में पर्यावरण संरक्षण

*सुदीप पाण्डेय**

पृथ्वी माता दुःखी हैं, और पिता आकाश कुपित। समूचा सौर मण्डल रोष में है। भूमण्डल का ताप बढ़ा है। लोभी मनुष्य ने क्षिति, जल, पावक, गगन और समीर को प्रदूषित किया है। वनस्पतियाँ रो रही हैं, वन–उपवनकट रहे हैं, कीट–पतंगे और तितलियाँ गायब हो रहे हैं। गौरैया ओझल हो रही है। सावन भादों रस वर्षा नहीं लाते, मार्गशीर्ष और फागुन महकते हुए नहीं उमंगते। ऋतुराज वसंत भी उदास– हताश है। मधुमास मधुमय नहीं रह गया। गंगा सहित सभी नदियाँ प्रदूषित हैं। यमुना कचरा पेटी बना दी गई है। सरस्वती पहले ही नाराज होकर अन्तर्ध्यान हो गयी। विकास का औद्योगिक मॉडल प्रकृति और मनुष्यता का विनाश लेकर आया है। प्रकृति का हिंसक शोषण और भोग ही यूरोपीय–अमेरिका दृष्टि है। प्रकृति से संघर्ष ही उनके विकास का मूल–मंत्र है, ऐसी भोगवादी सोच और सभ्यता के चलते ही आज विश्व पर संकट है, प्राणिजगत, मनुष्य, मनुष्यता और पृथ्वी के अस्तित्व पर भी। पर्यावरण संकट का मूल कारण पश्चिम की लोभी औद्योगिक सभ्यता है।

पर्यावरण पर विश्व समुदाय की चिंतन–यात्रा : यूरोप में 1890 के दशक में पर्यावरण की चिन्ता सतह पर आई। 1902 में यूरोपीय देशों ने एक अन्तर्राष्ट्रीय शपथ पत्र पर हस्ताक्षर किये। छिटपुट विचार–विमर्श चले, फिर 1948 में International Union For Consurvation Of Nature And Natural Resources की स्थापना हुई।

वनस्पति शास्त्री ऑस्टिन ने पर्यावरण के पाँच घटक बताये–**पदार्थ, परिस्थिति, ऊर्जा, प्राणी** और **समय**। यहाँ पदार्थ में मिट्टी और जल, परिस्थिति में ताप और प्रकाश और ऊर्जा में वायु व गुरुत्वाकर्षण माने गये। सन् 1954 ई0 में डोर्नमिर ने **मिट्टी, हवा, पानी, आग, ताप, प्रकाश** और **जीव–जन्तु** को पर्यावरण के घटक बताया। यूरोपीय विद्वान यूँ ही हाथ पैर मार रहे थे। उन्होंने भारतीय चिन्तन के पाँच महाभूतों–**पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि** और **आकाश** पर ध्यान नहीं दिया। ध्वनि का मूल आकाश व वायु है और ताप व प्रकाश अग्नि के रहस्य हैं। सन् 1972 ई0 में संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (यू0एन0ई0पी0) बना। इसका मूल उद्देश्य था जनजागरण और प्राकृतिक आपदाओं की पूर्व सूचना देना। सन् 1992 ई0 में पर्यावरण और विकास पर आयोजित संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन द्वारा पर्यावरण प्रबन्धन से जुड़ा **'कार्यक्रम–21'** जारी किया गया। सन् 1993 ई0 में सतत् विकास आयोग बना। सन् 2000 ई0 में पेरिस में 'अर्थ चार्टर कमीशन' में विश्व के ढेर सारे वैज्ञानिक तीन दिन बैठे। दो दिन के विचार मंथन के उपरान्त 21 सूत्र खोजे गये। तीसरे दिन भारतीय प्रतिनिधि मण्डल ने अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त की चर्चा की। अथर्ववेद में पर्यावरण संरक्षण के सारे सूक्त हैं (क्या यह विडम्बना नहीं है अथर्ववेद के देश भारत में तो वेदों की चर्चा करना भी साम्प्रदायिकता है।) बहरहाल सन् 2005 ई0 में संयुक्त राष्ट्र का **'सहस्राब्दि पर्यावरण आकलन'** जारी हुआ। 95 देशों के 1360 विद्वानों द्वारा किये गये विचार–मंथन से ये तथ्य उभरे–धरती के अस्तित्व को खतरा है, भूगर्भ जल स्तर नीचे गये है, 12 प्रतिशत पक्षी, 25 प्रतिशत स्तनपायी और एक तिहाई मेढ़क नष्टप्राय हैं, वनस्पति जगत की भी तमाम प्रजातियाँ लुप्त हो रही हैं, आदि–आदि।

माता पृथ्वी, पिता आकाश : इस तरह हम कह सकते हैं कि केवल पिछले 125 वर्ष से ही पर्यावरण ने अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय का ध्यान आकृष्ट किया है, बढ़ते प्रदूषण से वैश्विक समुदाय की बेचैनी भी केवल पिछले 50 वर्ष से ही घनी हुई है। लेकिन भारत में तो ऋग्वैदिक काल से ही धरती माता और आकाश पिता माने गये हैं।

* *शोध छात्र, वीर बहादुर सिंह विश्वविद्यालय, जौनपुर (उ.प्र.)*

नदियाँ, वनस्पतियाँ माताएँ और देवियाँ हैं। हमारे पूर्वज समूची प्रकृति को देव–स्वरूप देखते थे। हम जानते थे कि शान्ति आनन्दमूलक और अशान्ति दुःखदायी होती हैं। इसीलिए हम इस कल्याण मंत्र का सामूहिक पाठ करते हैं–

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चित् दुःख भाग्भवेत्।।

यजुर्वेद में एक लोकप्रिय मंत्र में समूचे पर्यावरण को ही शान्तिमय बनाने की स्तुति है। यह मंत्र द्युलोक, अंतरिक्ष, पृथ्वी, जल, वनस्पतियों, आदि से की जा रही शान्ति की भावप्रवण प्रार्थना है।

ऊँ द्यौ शांतिरन्तरिक्षः ऊँ शांतिः पृथ्वी शान्तिरापः शान्तिरौषधयः। शान्ति वनस्तयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वः ऊँ शान्तिः, शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिःरेधि। ऊँ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

अपने हर शुभाशुभ कार्य/अनुष्ठान में हिन्दू परिवारों में यह प्रार्थना लगातार जारी है।

यजुर्वेद के 63 श्लोक वाले इस पृथ्वी सूक्त में ही भारतीय मनीषा यह उद्घोष करती हैं–

माता पृथ्वी पुत्रोऽहं पृथिव्याः।

वृहदारण्यकोपनिषद् (अध्याय 2, ब्रह्माण्ड 5)

में महर्षि याज्ञवल्क्य देवी मैत्रेयी को समझाते हुए कहते हैं **इयं पृथ्वी सर्वेशां भूतानां मध्वस्यै पृथिव्यै सर्वाणि भूतानि मधुः**–यह पृथ्वी सभी भूतों (मूल तत्वों) का मधु (सार) है और सब भूत इस पृथ्वी के मधु हैं। इसी क्रम में महर्षि एक–एक करके अग्नि, वायु, आदित्य, दिशा, चन्द्र, विद्युत मेघ और आकाश को तथा धर्म व सत्य को भी सब भूतों का मधु तथा सभी भूतों को इनका मधु घोषित करते हैं।

प्रकृति के नियम : ऋग्वेद के अनुसार, प्रकृति की सभी शक्तियाँ एक सुनिश्चित विधान में चलती हैं। वैदिक भाषा में इसे **'ऋत'** कहा गया। जो ऋतु है, वह सत्य है, **ऋत और सत्य का अनुसरण धर्म है।** प्रजापति इसीलिए **'सत्यधर्मा'** हैं। ऋत नियमों (के पालन) से प्रकषति की विराट शक्ति है। वे भी **'ऋतस्यक्षत्ता'** हैं। अग्नि ऋत–सत्य के प्रकाशक **'ऋतस्य दीदिवं'** हैं। नदियाँ भी **ऋतावरी** हैं। नियमानुसार बहती हैं। ऋत नियम का धारण करना धर्म है। तेजस्वी सूर्य भी **'धर्मणा'** हैं। सविता द्युलोक, अंतरिक्ष और पृथ्वी को **'स्वाय धर्मणे'**– अपने धर्म के कारण प्रकाश से भरते हैं। प्रकृति की समस्त शक्तियाँ नियमबद्ध हैं तो मनुष्य का आचरण भी नियमबद्ध होना चाहिए।

जीवन का सर्वप्रमुख स्रोत : जल : पृथ्वी के बाद पर्यावरण का मुख्य घटक है–जल। ऋग्वेद में जल को विश्व को जन्म देने वाली श्रेष्ठ माँ कहा गया– **मातष्तमा विषस्य स्थातुर्जगतो अनित्री (6.50.7)।** जल हमारे जीवन का आधार है। ऋग्वेद की ऋचाओं में निर्देश है–

'हे यज्ञप्रेमियों! हम सब जल को प्रतिष्ठा दें (10.31.14)।'

मंत्रदृष्टा (ऋषि) के अनुसार : 'जल प्रवाह सदा अंतरिक्ष से आते हैं, वे जल–माताएं–देवियाँ हम सबकी रक्षा करें। (10.49.1)'

'जो दिव्य जल (आपो दिव्या) आकाश से आते हैं, नदियों में प्रवाहित हैं, जो खोद कर (कूप आदि से) प्राप्त होते हैं, जो स्वयं प्रवाहित, शुचिता लाते हैं, वे जल–माताएँ हम सबकी रक्षा करें (10.49.2)।'

(4 मंत्रों के इस सूक्त के हर मंत्र के अंत में आता है **'आपो देवीरिह मामवन्तु।'** वे जल देवियाँ हमारी रक्षा करें।)

ऋग्वेद में जल को आचमन करने पर पवित्र करने वाला, सेवन करने पर जीवन व पोषण कारक बताया गया है। जल को सूर्य का निकटस्थ व श्रेष्ठतम भिषक–वैद्य भी बताया गया है। वेदों में जल की बहुत महिमा वर्णित है। देवों, पितरों तक अपनी श्रद्धा, स्तुति आदि पहुँचाने का भी साधन है जल।

स्मृतियों में जल–संरक्षण को महानपुण्य बताया गया है। वृहस्पति के अनुसार नया जलाशय बनवाने या पुराने को संरक्षण देने वाले का कुल मिलाकर उद्धार होता है। पाराशर ने जल दूषित करने वाले को कुत्ते की योनि आवंटित की है। भले ही वह अन्यथा कितना भी पुण्यात्मा व विद्वान ब्राह्मण ही क्यों न हो!

आधुनिक सभ्यता में जल को माता या दिव्यतापूर्ण घटक मानने और जानने की परम्परा ही समाप्त हो गयी है।

प्राण अर्थात् वायु : वायु भी पर्यावरण का एक ही महत्वपूर्ण घट है। वेदों के अनुसार देवताओं का भी प्राण वायु ही है। **'आत्मा देवानां (10.10.168.4)'** वायु को प्रत्यक्ष देव, प्रत्यक्ष ब्रह्म कहा गया है।

'नमस्ते वायो, त्वमेव प्रत्यक्ष ब्रह्मसि, त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि। तन्मामवतु। (19.9.6)'

ऋग्वेद का यही मन्त्र यजुर्वेद (36.9), अथर्ववेद (19.9.6) व तैत्तरीय उपनिषद् में भी आया है। बिना किसी परिवर्तन के।

नमो ब्रह्मणे। नमस्त वायो। त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि। ऋतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु। तद्वक्तारमवतु। अवतु माम। अवतु वक्तारम्। ऊँ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।। (तैत्तरीय उपनिषद् प्रथम अनुवाक)

कहते हैं कि वायु ही सभी भुवनों में प्रवेश करता हुआ प्रत्येक रूप–रूप में प्रतिरूप होता है–**वायुर्थेको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो वभूवः।** सभी जीवों में प्राण की सत्ता है। प्राण वस्तुतः वायु है। मनुष्य पाँच तत्वों से बनता है। मृत्यु के उपरान्त सभी तत्व अपने–अपने मूल में लौट जाते हैं। ऋग्वेद (10.16.3) में स्तुति हैः **'तेरी आँखें सूर्य में मिल जायें और आत्मा वायु में।'** तैत्तरीय उपनिषद् में कहा गया–अग्नि तत्व अग्नि में जाए और प्राण तत्व वायु में– **भुव इति वायौ।** वशिष्ठ के सूक्तों में इन्हें अति प्राचीन भी बताया गया है।

वायु (मरुत) वर्षणशील मेघों के भीतन गर्जनशील हैं(1.166.1), गतिशील मरुद्गण भूमि पर दूर–दूर तक जल बरसाते हैं, वे सबके मित्र हैं (1.167.4), वे मनुष्यों को अन्न पोषण देते हैं (1.169.3)। भारत का भावबोध गहरा है। वायु जगत का स्पंदन है, प्राण है। वैदिक संस्कृति के उत्तराधिकारी होने के बावजूद, पाश्चात्य (यूरोपीय– अमेरिकी) सभ्यता के प्रभाव में हम देवस्वरूप वायु को प्रदूषित करते हैं।

वायुशोधक हैं वृक्ष। तुलसी, पीपल, वटवृक्ष आदि पेड़ों की पूजा के तत्व वन संरक्षण से जुड़े हैं। गाँवों में आज भी वृक्ष लगाना पुण्य व काटना पाप है। हवन कर्म केवल रूढ़िगत कर्मकाण्ड नहीं अपितु हमारे प्रकृति प्रेम की अभिव्यक्ति व वातायनर शुद्धि की आकांक्षा है। हवन में मंत्रों द्वारा हव्य–भाग समुद्र, अंतरिक्ष, सूर्य, वरुण, पृथ्वी, सोमादिक वनस्पतियों व छन्दस आदि को अर्पित किये जाते हैं। यहाँ छन्दस् पर्यावरण का ही पर्यायवाची है।

ध्वनि प्रदूषण से मनुष्य तनावग्रस्त है। प्रीतिपूर्ण वार्तालाप का ध्वनिस्तर 20 डेसीबिल (ध्वनितीव्रता का एकक), जोरदार बहस का 60, मिक्सी का 85, मोटर साइकिल का 90, जीप/कार का 95–100, वायुयान 105–110 बताया जाता है। कुछ नगरों के औसत ध्वनि स्तर इस प्रकार हैं राजधानी दिल्ली 80–150, कोलकाता 80–147, मुम्बई 71–105, लेकिन लखनऊ का 70–80 है। सभी शहरों का ध्वनि स्तर सामान्य (50–60 डेसीबिल) से अधिक है। इसका मनुष्य की श्रवणशक्ति पर बुरा प्रभाव पड़ा है। परिवहन साधनों व अंधाधुन्ध मशीनीकरण के कारण प्राणलेवा कोलाहल है। यही स्थिति वायु प्रदूषण की है। तमाम गैसों के उत्सर्जन से धरती आकाश (अंतरिक्ष) के बीच स्थित ओजोन परत को खतरा है। अराजक खनन के कारण पृथ्वी घायल है। रेडियोधर्मी विकिरण ने अंतरिक्ष को भी आहत किया है।

भूमण्डलीय ताप सहित सम्पूर्ण पर्यावरण पर तमाम अंतर्राष्ट्रीय बैठकें/समझौते हुए हैं, 'लेकिन विकास के बहाने' ताकतवर राष्ट्र इन पर अमल नहीं करते। विश्व मानवता के सामने जीवन–मरण का प्रश्न है। भारत की संस्कृति में पर्यावरण संरक्षण के सारे सूत्र हैं। वैदिक परम्परा और संस्कृति का विज्ञान लेकर भारत को ही विश्व का नेतृत्व करना चाहिये।

सन्दर्भ–सूची

1. कलाम, ए0पी0जे0 (2007), शिक्षकों को रोल मॉडल बनाना चाहिए, नई दिल्ली : अमर उजाला।
2. गोयल, एम0के0 (2008), पर्यावरण शिक्षा, आगरा : अग्रवाल पब्लिकेशन।
3. कुमार, ए0 (2007), स्मृति वृक्षारोपण एक समाधान, प्रौढ़ शिक्षा जर्नल।
4. अखण्ड ज्योति (2007), आध्यात्मिक आन्दोलन ही पूर्ण आजादी लायेगा, अखण्ड ज्योति संस्थान।
5. शर्मा, आर0के0 (2012), पर्यावरण प्रशासन एवं मानव पारिस्थितिकी, जयपुर : राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी।
6. वर्मा, जी0एस0 (2004), पर्यावरण अध्ययन, मेरठ : इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाऊस।
7. सक्सेना, के0के0, एवं त्यागी, आर0के0 (2006), पर्यावरण शिक्षा एवं आपदा प्रबन्धन, बुलन्दशहर : अखिल प्रिंटिंग प्रेस।

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 151-155

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

धूमिल की कविताओं में बिम्ब एवं प्रतीक विधान

*अविनाश कुमार सिंह**

धूमिल की कविताओं में बिम्ब एवं प्रतीक योजना अद्वितीय है, जो उन्हें उनके समकालीनों में महत्वपूर्ण स्थान पर प्रतिष्ठित करती है। 'शहर में सूर्यास्त' कविता के बिम्ब अवलोकनीय है जो मार्मिकता एवं व्यंजकता की दृष्टि से बेजोड़ हैं। इसकी प्रारम्भिक पंक्तियों में प्रयुक्त विम्ब की बानगी लीजिए, जहाँ कवि ने 'सूर्यास्त के शहर' को 'अधजले शब्दों के ढेर' के रूप में अंकित किया है और जहाँ आत्मीयता 'जले हुए कागज की वह तस्वीर है जो छूते ही राख हो जाती है।" इसी प्रकार कवि ने 'इस देश के बातूनी दिमाग में किसी विदेशी भाषा का सूर्यास्त सुलगते हुए अंकित' किया है। कवि के ही शब्दों में 'लाल–हरी झंडियाँ जो कल तक शिखरों पर फहरा रही थी, वक्त की निचली सतहों में उतर कर स्याह हो गई हैं और चरित्रहीनता मंत्रियों की कुर्सी में तब्दील हो चुकी है।' इस प्रकार कवि ने तत्कालीन भारत के चरित्र को बिम्बों में प्रस्तुत किया है। बिम्ब की भाषा में नवीनता, जीवन्तता एवं ताजापन विद्यमान है। कविता की अन्तिम पंक्ति में प्रयुक्त बिम्ब इस प्रकार है–

"जनतंत्र
जिसकी रोज सैकड़ों बार हत्या होती है
और हर बार
वह भेड़िए की जुबान पर जिन्दा है।"[1]

इस बिम्ब में जनतंत्र को मानवीकृत किया गया है जिसकी प्रतिदिन सैकड़ों बार हत्या होती है तथा हत्या करने वाले समाज में 'भेड़िए' के रूप में फैले हुए इन्सान हैं। इन्हीं हिंसक पशुरूपी मानवों की जुबान पर 'जनतंत्र' जीवित है। यहाँ भेड़िए को हिंसक एवं शोषक आदमी के शक प्रतीक रूप में अंकित किया गया है। बिम्ब में गहरे अर्थ की व्यंजना 'भेड़िए' के प्रयोग द्वारा सम्भव हुई है।

जनकवि धूमिल का 39 वर्षीय अल्पकालीन जीवन गरीबी एवं भुखमरी के अनुभवों का जीवन रहा है। अपनी 'मकान' शीर्षक कविता में उन्होंने गरीबों के मकानों की बदतर स्थितियों के अनेक बिम्ब अंकित किये हैं, जिनमें से एक मकान का बिम्ब इस प्रकार है–

"जिनके आँगन में धूप कभी नहीं आती
जिनके सण्डास घरों में खाँसी
किवाड़ों का काम करती है।
जहाँ बूढ़े
खाना खां चुकने के बाद अन्धे हो जाते हैं
जवान लड़कियाँ अंधेरा पकड़ लेती हैं।"[2]

सन् 1966–70 के बीच भारत के निम्न–मध्यवर्गीय लोगों के घरों की स्थिति कमोवेश ऐसे ही थी। उनके आँगन में धूप कभी नहीं आती थी, सण्डासघरों में किवाड़ नहीं थे। खाना खाने के पश्चात् घर के सदस्य अंधेरे में सो जाया करते थे। तत्कालीन घरों के ये बिम्ब गरीबों एवं भुखमरों के नारकीय जीवन का भाव–चित्र उभारने में सर्वथा सफल है।

* *सहायक अध्यापक, इण्टर कॉलेज, सरसेना, सचुई, मऊ (उ.प्र.)*

'पतझड़' शीर्षक कविता में प्रमुख रूप से तीन बिम्बों का प्रस्तुतीकरण हुआ है। प्रथम बिम्ब कवि के दशक की समूची युवा पीढ़ी की भूख से सम्बन्धित है, दूसरा बिम्ब समकालीन कविता के खोखलेपन को उभारता एवं उजागर करता है और तीसरा बिम्ब नवयुवकों की बेरोजगारी के चित्र उभारता है। कवि रोजगार–दफ्तर से गुजरते हुए नव जवान को यह साफ–साफ कहते सुना है–

"इस देश की मिट्टी में
अपने जाँगर का सुख तलाशना
अन्धी लड़की की आँखों में
उससे सहवास का सुख तलाशना है।"[3]

इस यौन बिम्ब के व्यंग्यार्थ को समझे बिना कविता के मर्म को नहीं समझा जा सकता। कवि के अनुसार इस देश में अपने 'जाँगर" अर्थात् काम करने की क्षमता से मिलने वाला सुख तलाशना वैसे ही व्यर्थ है जैसे अन्धी लड़की की आँखों में उससे सहवास का सुख तलाशना व्यर्थ है। अन्धी लड़की की आँखों में सहवास का सुख नहीं मिल सकता, सहवास का सुख तो तभी मिलेगा जबकि लड़की सनेत्र हो क्योंकि तभी दोनों अर्थात् लड़का तथा लड़की परस्पर आँखों की भाषा को पढ़ सकेंगे और दोनों को साहचर्य–सुख प्राप्त होगा। वैसे ही युवा पीढ़ी को जब रोजगार मिलेगा तभी वह अपनी कार्यक्षमता का सदुपयोग करके परिश्रम जन्य सुख प्राप्त करेगा। यहाँ कवि का कदाचित् आशय यह है कि इस देश में बेहद बेरोजगारी है। रोजगार के अभाव में युवा पीढ़ी अपने 'जाँगर' का प्रयोग नहीं कर पा रही है। परिणामस्वरूप उसे अपने परिश्रम का सुख नहीं मिल रहा है। इस यौन–बिम्ब के द्वारा गाँव के अक्खड़ कवि धूमिल ने अपनी बात को व्यंग्यात्मकता, आक्रामात्मकता एवं प्रखरता के साथ प्रस्तुत करने में सफल हुआ है। यौन–बिम्ब के द्वारा कामुकता या वासना का प्रस्तुतीकरण कवि का लक्ष्य कदापि नहीं है।

'कवि 1970' शीर्षक कविता में कवि ने समकालीन कविता को अनेक कोणों से देखने–परखने का प्रयास किया है। कविता का प्रथम अनुच्छेद तत्कालीन काव्य–विषय–'भुखमरी' का बिम्ब प्रस्तुत करता है–

"इस वक्त जबकि कान नहीं सुनते हैं कविताएँ
कविता पेट से सुनी जा रही हैं, आदमी
गजल नहीं गा रहा है, गजल
आदमी को गा रही है।"[4]

सुनने का कार्य कानों का है, किन्तु कान कविताएँ नहीं सुन रहे हैं, कविताएँ इस समय पेट से सुनी जा रही हैं अर्थात् इस समय लोगों के पेट में भूख है। अस्तु, कविता का विषय 'भूख' को बनाया जाना चाहिए। इसी प्रकार गजल गाने का काम आदमी का है, किन्तु आदमी 'गजल' नहीं गा रहा है, वरन् इस समय 'गजल' आदमी को या यों कहें कि भूखे एवं गरीब आदमी को गा रही है। तात्पर्य यह है कि समकालीन कविता का वर्ण्य–विषय है–भूखा और गरीब आदमी। इस बिम्ब में दृश्य–मयता एवं श्रव्यता का मिला–जुला रूप प्राप्त होता है। बिम्ब में सरल शब्दों में द्वारा गंभीर अर्थ की व्यंजना हुई है।

इसी कविता में एक अन्य बिम्ब के माध्यम से कवि की आर्थिक जर्जरता का यथार्थ चित्र इन शब्दों में खींचा गया है–

"मैं चुपचाप उठकर रसोईघर में जाता हूँ
और पूछता हूँ– 'क्या हो रहा है'
यह जानते हुए भी कि कई दिनों बाद
भूख का जायजा बदलने के लिए
आज कुम्हड़े की सब्जी पक रही है।"[5]

यहाँ कई दिनों बाद कवि के रसोई घर में कुम्हड़े की सब्जी का पकना' उसकी दयनीय आर्थिक स्थिति का मार्मिक बिम्ब उभारता हैं। अग्रिम पंक्तियों में कवि की गरीबी का बिम्ब और अधिक मार्मिक एवं यथार्थ है। यथा–

"पत्नी का उदास और पीला चेहरा
मुझे आदत सा झाँकता है
उसकी फटी हुई साड़ी से झाँकती हुई पीठ पर
खिड़की से बाहर खड़े पेड़ की
वहशत चमक रही है।"[6]

उपर्युक्त बिम्ब में 'पत्नी का उदार और पीला चेहरा' तथा 'फटी हुई साड़ी से झाँकती हुई पीठ' वाक्यांश कवि की गरीबी के दयनीय चित्र मार्मिकता के साथ उभारने में पूर्णरूपेण सफल एवं सक्षम हुए हैं। ध्यातव्य है कि कवि की गरीबी के प्रस्तुतीकरण में तत्कालीन सभी गरीब लोगों की गरीबी एवं दयनीय स्थिति का समावेश है।

कवि जिस सामाजिक और राजनीतिक परिवेश में जीता है, वह कविता में झलकता है। धूमिल की सन् 1960 एवं 70 के बीच की कविताओं में तत्कालीन समाज एवं राजनीति के प्रतिबिम्ब स्पष्ट परिलक्षित होते हैं। 'मुनासिब काररवाई' शीर्षक रचना इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। कवि को विचार में आज के भारतीय समाज में व्याप्त आर्थिक विपन्नता, भ्रष्टाचार एवं अत्याचार जैसी बुराईयों की जड़ नेताओं की बदनीयती एवं धनलोलुपता है। वे किस प्रकार से अपने लोगों को पक्षपातपूर्ण ढंग से धन कमाने में सहायता करते हैं, उसका भाव–संगुम्फित–बिम्ब अधोलिखित पंक्तियों में प्राप्त होता है–

"तुम्हारे जिगरी दोस्त की कमर
वक्त से पहले ही झुक गई है
उसके लिए–
बढ़ई की आरी और बसूले से
लड़ना फिजूल है।
क्योंकि गलत होने की जड़
न बढ़ई के बसूले में
और न आरी में है।
बल्कि इस समझदारी में है
कि वित्त मंत्री की ऐनक का
कौन सा शीशा कितना मोटा है;
और विपक्ष की बेंच पर बैठे हुए
नेता के भाईयों के नाम
सस्ते गल्ले की कितनी दुकानों का
कोटा है।
और जो चरित्रहीन है
उसकी रसोई में पकने वाला चावल
कितना महीन है।"[7]

इस उद्धरण की प्रथम दो पंक्तियों में 'समय से पहले ही' लोगों की कमर झुक जाने की समस्याओं को बिम्ब के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। तीसरी पंक्ति से लेकर सातवीं पंक्ति तक इस समस्या की जड़ तलाशने के बिम्ब अंकित हैं। कवि की दृष्टि में समय से पहले ही लोगों के अस्वस्थ, दुर्बल एवं बृद्ध हो जाने की समस्या के लिए घड़ीसाज या बढ़ई जैसे सामान्य लोग दोषी नहीं हैं; वरन् इस समस्या या गलती के लिए दोषी हैं–तथाकथित राजनेता। उद्धरण के उत्तरांश में इन नेताओं की बदनीयती तथा धनलोलुपता के यथार्थ एवं जीवन्त बिम्ब अंकित हैं। "वित्त मंत्री की ऐनक का मोटा शीशा" बिम्ब में उनकी धन संग्रह करने की लिप्सा का भाव व्यंजित है। इसी

प्रकार "विपक्ष की बेंच पर बैठे हुए नेता के भाईयों के नाम सस्ते गल्ले की कितनी दुकानों का कोटा है", बिम्ब के द्वारा विपक्षी नेताओं की पक्षपातपूर्ण नीति एवं अपने सगे–सम्बन्धियों को लूट की छूट दिये जाने की नीयत पर करारा व्यंग्यात्मक प्रहार किया गया है। "जो चरित्रहीन है, उसकी रसोई में पकने वाला चावल कितना महीन है"– बिम्ब के माध्यम से चरित्रहीनों द्वारा जनता को लूटे जाने का व्यंग्यात्मक प्रहार है। उपर्युक्त उद्धरण में काव्य–भाषा एवं बिम्ब का परस्पर अपृथकतव्य दृष्टव्य है। काव्य–भाषा में बिम्ब अनुस्यूत हो गये हैं। बिम्बों की जीवन्तता, मार्मिकता एवं व्यंग्यतात्मकता उच्च कोटि की है।

"मुनासिब कार्यवाई" षीर्शक रचना में कवि ने 'कविता क्या है' के उत्तर में कविता का इस प्रकार बिम्ब प्रस्तुत किया है–

शब्दों की अदालत में
मुजरिम के कठघरे में खड़े बेकसूर आदमी का
हलफनामा है।"[8]

सम्वादात्मक शैली में प्रश्नोत्तर के माध्यम से कवि ने कविता पर किये जाने वाले आक्षेपों को निराधार एवं असत्य सिद्ध करने के लिए किसी न्यायाधीश की अदालत का बिम्ब उभारा है, जहाँ अभियुक्त के कठघरे में कोई निरपराध आदमी खड़ा है जो अपने निरपराध होने का शपथपत्र प्रस्तुत कर रहा है। इसी प्रकार समकालीन बेकसूर कवि 'शब्दों की अदालत में मुजरिम के कठघरे में' अपराधी के रूप में खड़ा है। जिसकी निरपराधिता का शपथपत्र है– उसकी कविता। अर्थात् उसकी कविता को पढ़ने से कविता पर लगाये जाने वाले सभी आक्षेप असत्य सिद्ध होते हैं क्योंकि यह कविता सत्य का ही चित्रण कर रही है। इस बिम्ब में प्रयुक्त 'अदालत', मुजरिम, बेकसूर और हलफनामा जैसे शब्द कचहरी से सम्बन्धित हैं जो कवि के जीवनकाल के मुकदमों की अधिकता का संकेत देते हैं। इन शब्दों का काव्यात्मक प्रयोग दृष्टव्य है, जिनके कारण बिम्ब सजीव, जीवन्त एवं प्रभावशाली बन गया है।

'भाषा की रात' शीर्षक कविता की अधोलिखित पंक्तियों में भाषा की लड़ाई के नारों, जुलूसों तथा भीड़ के रूप में बिम्बित किया गया है। यथा–

"नारों के पीछे
चीजों का नाटक बनाती हुई
भीड़ में
किसी बेशऊर आदमी का
बैरंग पुतला
चिट्‌ख–चिट्‌ख जल रहा है,
उसकी राख
फुटपाथ पर पड़े भिखारी के
खाली कटोरे में
गिर रही है।"[9]

उपर्युक्त उदाहरण में दृश्य एवं श्रव्य बिम्ब का मिला–जुला रूप मिलता है। "चीजों का नाटक बनाती हुई भीड़", "बेशऊर आदमी का बैरंग पुतला", "फुटपाथ पर पड़ा भिखारी" एवं उसका "खाली कटोरा" इत्यादि बिम्ब साक्षात् नेत्रों के समक्ष प्रत्यक्ष होने के कारण इस बिम्ब को दृश्य–बिम्ब की श्रेणी में रखा जा सकता है, और "चिट्‌ख–चिट्‌ख" जलना श्रव्य–बिम्ब के अन्तर्गत माना जायेगा क्योंकि ध्वनि का सम्बन्ध कर्णेन्द्रियों से है। यह बिम्ब दीर्घ है, किन्तु सरल एवं सहज शब्दावली में प्रस्तुत है। बिम्ब में गतिशीलता तथा जीवन्तता विद्यमान है।

एक अन्य बिम्ब की बानगी प्रस्तुत है–जिसमें व्यापारी वर्ग की मानसिकता का प्रत्यक्षीकरण सम्भव हुआ है। इस वर्ग के लिए भाषाई समस्या, भुखमरी एवं गरीबी जैसे मुद्‌दों से कोई सरोकार नहीं है। इसीलिए तो "भाड़े की भीड़ के अन्धे जुनून पर उसे कोई एतराज नहीं है", तथा वह इस भीड़ पर हंस रहा है। यथा–

"और वो देखो–
वह निहाल–तोंदियल
कैसा मगन है
हुचुर–हुचुर हँस रहा है
भाड़े की भीड़ के अन्धे जुनून पर
उसे, कतई, एतराज नहीं है।"[10]

दृश्यता तथा श्रव्यता का मिला–जुला रूप इस बिम्ब में प्रत्यक्ष परिलक्षित है। 'निहाल–तोंदियल' और 'भाड़े की भीड़ का अन्धा जुनून' में दृश्य–बिम्ब तथा 'हुचुर–हुचुर हँसना' में श्रव्य बिम्ब का प्रस्तुतीकरण किया गया है। बिम्ब की भाषा व्यंग्यात्मक एवं मार्मिक है। बिम्ब प्रभावशाली तथा जीवन्त बन पड़ा है।

कवि ने देश की भाषा की हत्या करने का ठीकरा नेताओं पर फोड़ा है। अत्यन्त आक्रोश एवं आक्रामक तेवर के साथ अधोलिखित पंक्तियों में उसने नेताओं के सम्बन्ध में जो बिम्ब प्रस्तुत किए हैं, उनकी बानगी ली जा सकती है–

"हाय! जो असली कसाई है
उसकी निगाह में
तुम्हारा यह तमिल–दुख
मेरी इस भोजपुरी–पीड़ा का
भाई है।
भाषा उस तिकड़मी दरिन्दे का कौर है
जो सड़क पर और है
संसद में और है।"[11]

उपरिलिखित उद्धरण में नेताओं के दो बिम्ब प्रस्तुत हैं। प्रथमतः तो उन्हें 'असली कसाई' के रूप में बिम्बित किया गया है। जिस प्रकार असली कसाई भेंड़–बकरियों एवं गाय–भैंसों इत्यादि का निर्दयतापूर्वक बध करता है वैसे ही ये नेता लोग निर्ममता के साथ तमिल, भोजपुरी इत्यादि प्रान्तीय भाशाओं की हत्या करते हैं। द्वितीय बिम्ब में नेताओं को 'तिकडमी दरिन्दे' के रूप में अंकित किया गया है जो भाषा को कौर की तरह निगले ले रहे हैं। उद्धरण की अन्तिम दो पंक्तियों में नेताओं के दोहरे व्यक्तित्व एवं चरित्र को उद्घाटित किया गया है जो संसद में और है तथा सड़क पर और है। इस बिम्ब के निर्माण में जनभाषा की शब्दावली का सार्थक एवं काव्यात्मक प्रयोग दृष्टव्य है, जिसमें प्रचलित उर्दू शब्दों की बहुलता है। भाषा सशक्त एवं प्रखर है तथा शैली आक्रामक एवं प्रहारात्मक है। इन कारणों से बिम्ब बड़ा ही प्रभावशाली बन गया है।

धूमिल की बिम्ब एवं प्रतीक योजना बेजोड़ है। इनकी कविताओं में बिम्ब निर्माण प्रक्रिया, उनकी विशिष्टिताओं, शक्तियों तथा प्रभावों को विवेचित–विश्लेषित एवं व्याख्यायित करने का यत्किंचित प्रयास यहाँ किया गया है।

संदर्भ–सूची

1. 'शहर में सूर्यास्त', पृ. 44
2. 'मकान', पृ. 50
3. 'पतझड़', पृ. 60
4, 5, 6. 'कवि 1970', शीर्षक रचना, पृ. 61, 64
7,8. 'मुनासिब काररवाई', पृ. 84, 85
9, 10, 11. 'भाषा की रात', पृ. 87, 95, 96

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 156-159

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

डॉ. शिवप्रसाद सिंह के उपन्यासों में स्त्रियों की धार्मिक स्थिति

*विजय कुमार वर्मा**

धर्म समाज का अभिन्न अंग है। धार्मिक आस्था मानव के जन्म से शुरू होती है और मृत्यु के बाद समाप्त होती है। धर्म मनुष्य की आस्था पर निर्भर करता है। धर्म मानवता का दूसरा नाम है, कोई धर्म किसी दूसरे धर्म से घृणा करना नहीं सिखाता है। अशोक के बारहवें शिला में इस बात का जिक्र मिलता है कि हमें किसी के धर्म कि निन्दा नहीं करनी चाहिए इससे हमारे धर्म की अवनति होती है। शिवप्रसाद सिंह समाज में धर्म को आवश्यक बताते हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों में स्त्रियों की धार्मिक स्थिति पर प्रकाश डाला है अर्थात् अपनी धार्मिक विचारधारा को पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है।

ईश्वर की दृष्टि में नारी एक विलक्षण अद्भुत तत्त्व है जिसके बिना एक अनुपम सृष्टि की कल्पना व्यर्थ है। पुरुष की अपेक्षा 'स्त्री' शब्द एक शक्ति मूलक सत्ता की ओर संकेत करता है। पुरुष का रास्ता ही स्त्री से होकर गुजरता है, स्त्री के बिना पुरुष की कल्पना करना दिन में तारे देखने जैसा है। जो कि प्रत्येक दशा में असम्भव है।

लोगों ने तो स्त्री को एक मात्र वासना की पूर्ति एवं विलासिता की वस्तु माना है। किन्तु भारतीय स्त्रियों की अपनी एक अलग पहचान है। वे अपने पवित्र चरित्र के कारण पूज्य देवी के रूप में स्थापित हैं। मनुस्मृति में स्त्री के सन्दर्भ में आया है–

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तन्त्र देवता' अर्थात् जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है वहाँ देवता का वास होता है। वर्तमान समय में स्त्री अबला नहीं बल्कि सबला है।

हिन्दू धर्म में भारतीय नारियों का स्थान आज भी उच्च है। वेदों में स्त्री ही माता के रूप में पूजित हैं। मातृदेवो भव की लोकोत्तर आदर्श गरिमा की प्रतिष्ठा भारतीय स्त्रियों में ही दिखलाई पड़ती है। सृष्टि का मूल कारण माया है जो स्त्री का ही दूसरा नाम है।

वैदिक सहित्य में स्त्री को उच्च स्थान प्रदान किया गया है। समस्त वेदों का उद्भव जिस गायत्री से हुआ वह भी स्त्री का ही प्रतीक है। 'त्वमेव माता च पिता त्वमेव' इस प्रर्थाना में भी स्त्री को पहले रखा गया है। प्रत्येक दषा में स्त्री संरक्षणीय है। इसलिए नहीं कि शक्तिहीन है, अपितु वह पूज्यनीय, वन्दनीय मूल्यवान रत्न हैं। इसी कारण से वह सर्वदा रक्षणीय हैं, पिता, पति तथा पुत्र उसकी प्रत्येक अवस्था में संरक्षक होते हैं जिस घर में स्त्रियों का आदर सम्मान होता है वह घर स्वर्ग के समान होता है। वह अबला नहीं पूर्ण सबला है, जिसे दुर्गा कहा जाता है उसकी पूजा शक्ति के रूप में होती है। "या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।"

जिस घर में माता या गृहिणी न हो, उस घर को छोड़कर जंगल में रहना चाहिए।

"यस्य माता गृहे नास्ति गृहिणी व सुशासिता।
अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारव्यं तथा गृहम्।।"[1]

डॉ० शिवप्रसाद सिंह के उपन्यासों में स्त्रियों की धार्मिक स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। जैसे 'अलग–अगल वैतरणी' उपन्यास का एक उदाहरण इस प्रकार है–"राम नवमी को करैता के देवी धाम पर मेला लगा है। देवी कुण्ड़ के चारों कगारों पर आदमी मन्दिर के इर्द–गिर्द आदमी चौतरफा फूटने वाले रास्तों पर आदमी सर्वत्र आदमी ही आदमी इनमें मर्द कम औरतें और बच्चे ज्यादा हैं। चाहे जिस धार्मिक स्थल पर मेला लगता हो वहाँ स्त्रियों और

* *शोध छात्र, हिन्दी विभाग, डी.ए.वी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, आजमगढ़*

बच्चों की संख्या अधिक होती है क्योंकि महिलाएँ धार्मिक प्रवृत्ति की होती हैं। वे धर्म के चलते ऐसे स्थलों पर पहुँचती हैं क्योंकि धर्म में उनकी आस्था पुरुषों से अधिक होती है बच्चे अपनी माता के साथ मौजमस्ती के लिए चल पड़ते हैं। स्त्रियाँ ज्यादातर रंगीन सड़ियों में लिपटी साज श्रृंगार किये माथे पर अंगूठे के बराबर निशान का बुंदा लगाये कलाइयों में चूंड़ियाँ गहने झमकाती, भीड़ में एक दूसरे का साथ छूटने की आशंका से परेशान हैं। कोई धार्मिक कार्य हो जैसे मुण्डन, जनेऊ, व्रत उपवास उसमें स्त्रियाँ बढ़–चढ़ कर भाग लेती थी।

करैता मेले की शुहरत और बड़पप्न का एक कारण 'असकामिनी' देवी का प्रताप भी था।"[2] गोगई उपधिया 'असकामनी' का अर्थ आकाशगामनी बताते हैं। यह कोई साधारण देवी नहीं, बल्कि यह अष्टभुजा हैं। यह वहीं अष्टभुजा हैं जो कंस ने देवकी की पुत्री को पत्थर पर पटका तो वह आकाश में उड़कर चली गयी और वहीं से बोली कि मुझे क्यों मारता है बेवकूफ तुझे मारने वाला गोकुल में जन्म ले चुका है। इसलिए वे आकाशगामिनी कहलायी वही हैं ये देवी। जैपाल सिंह के पिता के समय का मन्दिर जो देवी भगवती को समर्पित है। माता भगवती की दोनों आँखे सोने की बनी है। आरती पूजा का सम्पूर्ण साज सामान नया लिया गया। क्योंकि इसी वर्ष करैता के जमींदार की सौभाग्यवती पत्नी की कोख से जैपाल का जन्म हुआ। देवी के इस प्रताप की कहानी चौतरफा फैल गयी और प्रत्येक वर्ष रामनवमी के अवसर पर बाँझ और निपूती औरतों की भीड़ इक्ट्ठी होने लगीं। कम से कम पच्चीस–तीस महिलाएँ रैभानपुर की रही होंगीं। एक ठकुराइन हमसे बोली माई कि पियरी ले जायेंगे हमने कहा "ई तो पुजारी की होती है, बड़ी कमसिन उमर थी। देखने में खूबसूरत थी। हँसकर बोली माई का परसाद अंग पर नहीं डालूँगी पुजारी जी तो मनोकामना कैसे पूरेगी?"[3] पुजारी जी ने कहा ले जाओ डालो अंग पर मैंने मन ही मन भुनभुनाया कि माई का प्रसाद पहनकर करो लसड़–फसड़ और मनोकामना पूरा करो। पूरे देहात से चार–पाँच सौ महिला बाँझ तो आयी ही रही होंगी, भगवती के चौखट पर माथा पटक–पटककर बेटवा माँगती रहीं, पर हमने भी माता जी से प्रार्थना की कि इनका दरवाजा बन्द ही रखियेगा क्योंकि जो आ गये हैं उन्हीं के खाने को नहीं मिलता इनका क्या होगा।

हलपर्वरी धार्मिक पर्व है, जिसमें महिलायें हल जोतती हैं और हल खींचती हैं नारी पृथ्वी माता की बेटी है। सीता है। उन्हें हल में जोता जाय यह तकलीफ देखकर पृथ्वी माता की आँखें काहे नहीं आँसुओं से भर जायेंगी, बरसात नहीं हो रही है, सृष्टि बदल रही है। अब यदि औरतें हल जोतेंगी, तो खेत में दाना–पानी लेकर कौन जायेगा? मर्द, ऐसी अनरीत? पर इतने पर भी तो भगवान नहीं सुनते। 'हलपर्वरी' मनाकर हल रुक जाता है। सोमारू की पत्नी चिल्लाती है– टिमला। टिमला। अरे टिमला। बाबू टीमल सिंह बुजुर्ग हैं इस धार्मिक पर्व पर पानी पहुँचाने का काम उन्हीं को करना पड़ता था। औरतें वहाँ उनकी बड़ी दुर्गति करती थी। इस बार टीमल सिंह अस्वस्थ थे इसलिए यह कार्य दयाल महराज को करना पड़ा। "दयलवा! दयलव!! बुलुवा, बुलुवा!!" मची चिल्लाहट सोमारू–बो भौजी दहाड़ती चली जा रही थी, आये मालिक पहुँचे सरकार!!"[4] चिल्लाते हुए दयालय महराज एक हाथ में पानी दूसरे में बेसन की रोटी वाली गठरी लटकाये सिवान की ओर दौड़े, इतनी देर क्यों हुई दयाल महराज वे दाना–पानी रख ही रहे थे कि समारू–बो ने खींचकर एक पैना उनकी पीठ पर जमा दिया। किसी तरह एक दो पैने और खाये तब वे भागकर जान बचाये। अब वे समारू–बो को जहाँ देखते हाथ जोड़कर खड़े हो जाते हैं। इस प्रकार लेखक शिवप्रसाद सिंह इन कार्यों में स्त्रियों की सहभागिता को दिखाकर उनकी धार्मिक स्थिति को अपने उपन्यासों में व्यक्त किया है।

'गली आगे मुड़ती है' उपन्यास का कथानक काशी को केन्द्र में रखकर की गयी है। इसमें काशी का वास्तविक रूप और असली रंग उभरकर सामने आया है। इसे मन्दिरों का शहर कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगा क्योंकि काशी की गलियों में किसी न किसी देवी या देवता के मन्दिर के दर्शन होते हैं, जहाँ इस उपन्यास की स्त्री पात्र धार्मिक कार्यों में बढ़–चढ़कर भाग लेती हैं।

धार्मिक विश्वास उपन्यास की मुख्य विषय–वस्तु है। अन्य भारतीय नगरों की भाँति बनारस की संस्कृति का आधार धर्मिक है। बाबा–विश्वनाथ की नगरी सभी संस्कृतियों को एकाकार कर दिया है। उपन्यासकार को विभिन्न संस्कृतियों का समन्वय करने में लेखक को अद्भुत सफलता मिली है। हिन्दुओं में रामलीला, बंगालियों में दुर्गापूजा और गुजरातियों में गरबा नृत्य की योजना....तभी मण्ड़प में बारह गुजराती लड़कियों करीब–करीब एक ही लम्बाई की सभी सिन्दूरी साड़ी और उसी रंग के गहरे बादामी रंग का ब्लाउज पहने सिर पर मेंडुर में गरबी रखे मण्डप

में दाखिल हुई उनके आगे–आगे किरण थी। वह वास्तव में केसरिया रंग की साड़ी पहनकर मीरा जैसी लग रही है। किरण का भी वही ड्रेस था, केवल अन्तर इतना था कि उसने गरबी के स्थान पर अपने सिर पर हजारों छिद्रों वाला कोरेला गरबा धारण किये हुई थी।

एक अन्य उपन्यास में धार्मिक विश्वास के साथ अन्ध विश्वास भी महिलाओं पर हावी होता नजर आ रहा है। एक रूढ़ि के अनुसार एक महिला को मार्गशीर्ष तृतीया को यक्षपूजा के अमृतपान चखने से वंश वृद्धि होती है। पण्ड़ित ने कहा "अब तुम उदम्बर की शाखा को पकड़कर खड़ी हो जाओ। ...मैं पुत्र–कामना से यक्षराज की पूजा करती हूँ, वे मेरे मनोरथ पूर्ण करें।"[5] यहाँ एक महिला द्वारा दूसरी महिला के अंक भरने के लिए कर्मकाण्ड, करवाती है, जिससे उनकी धार्मिक स्थिति सूचित होती है। धार्मिक कर्मकाण्ड वर्तमान समय में उतने ही प्रचलित हैं, जितने मध्यकाल में थे। पूजा–पाठ कराकर स्वर्ग दिलाना, गंगा स्नान से पापों की मुक्ति कहाँ सम्भव है, किन्तु हमारा धर्मांध समाज उन्हीं कुरीतियों पर डटा हुआ है। आज मौनी अमावस्या के दिन पूजन करके जो लोग पुण्य पाना चाहते हैं, वह तब तक नहीं मिलेगा जब तक आप कम से कम दस कार्षापण प्रदान न करें "अरे माता जी मंगलसूत्र को ही दे दीजिए और अपनी मनौती का पुण्य लाभ तो पा लीजिए"।[6] पूजा–पाठ, नहावन व्रत आदि कार्यों में महिलायें अधिक से अधिक भाग लेती हैं, जो उनकी धार्मिक स्थिति को सूचित करती हैं।

धर्म के नाम पर स्त्रियों की बदतर स्थिति भी सूचित होती है जैसे लड़कियों को पकड़कर उन्हें धन्धा करने के लिए मजबूर करने, सरे बाजार किसी सुन्दर कलाकार नर्तकी कन्या की शक्ति व अधिकार के बल पर उनकी इज्जत लूटने जैसे तमाम घटनाएँ सामान्य हो गयी। इसी तरह वज्रयानियों द्वारा चक्रार्चन साधना के लिए सुन्दर सुशील लड़कियों का अपहरण करके, उन्हें भैरवी बनाकर अलग–अलग साधना के नाम पर खुले यौन शोषण की तरफ प्रेरित करना आदि के वर्णन आते हैं।

उपन्यास में वर्णित श्री माँ धर्म की आधार भूमि हैं वह ऐसी महिला हैं, जो पुरुष की नृशंसता के होते हुए भी स्त्री अहमान्यता से पूर्ण हैं। इस प्रकार स्त्रियों को धर्म की आड़ में वेश्या वृत्ति के धन्धे करवाना निम्न स्थिति की सूचक है।

शैलूश उपन्यास में मखदूमबाबा और दुर्गा–काली दोनों की पूजा स्त्री–पुरुषों द्वारा होती थी, किन्तु महिलाएँ इसमें अग्रणी थी, लेखक ने इस बंजारे समुदाय को हिन्दू–मुस्लिम एकता का प्रतिनिधि बनाकर उसका नेतृत्व किया है। इस कबील में हिन्दू भी होते हैं मुसलमान भी। हमारे कबीले के स्त्री–पुरुष दुर्गा–काली की पूजा करते हैं और बहराइच के अकबरपुर गाँव के पीर मखदूम को भी। हमारी शादियाँ तक हिन्दू और मुस्लमानों के बीच होती हैं।

शैलूश उपन्यास की नायिका सावित्री जो प्रबुद्ध और बुद्धिजीवी है वैज्ञानिक सोंच वाली है वह भी कहीं न कहीं इसमें आस्था रखती है और कर्मकाण्ड की गिरफ्त में है। "तभी तो सारस्वत के शुभ और कल्याण के लिए काले धागे में लटकी सोने की ताबीज देती है जो नथिया बंजारिन के नाम की है। सारस्वत जैसा पढ़ा–लिखा अफसर उसे धारण भी करता है।"[7]

वास्तव में मुस्लिम और हिन्दू धर्म का आदि स्रोत एक ही है मानव के क्रिया–कलापों और आवश्यकता अनुसार हम उसे विभिन्न धर्मों में दीक्षित करते हैं। सभी धर्मों का एक मात्र लक्ष्य है–मानवीयता का विकास–धर्मों की रूढ़, जर्जर, कुरूप परम्पराओं के विरोध की, न कि धर्म के विनाश की।

वैश्वानर उपन्यास में कुछ उद्धरण आये हैं जो स्त्रियों की धार्मिक स्थिति को सूचित करते हैं। इस उपन्यास में कर्मकाण्ड हावी होता नजर आ रहा है जहाँ देवी–देवताओं को प्रसन्न करने के लिए नर–बलि तथा पशुबलि दोनों आवश्यक मानते हैं इस बलि में स्त्री–पुरुष दोनों सम्मिलित होते थे। यज्ञ में प्रयुक्त मांस का हव्य प्रसाद के रूप में गोधा तथा विश्वारा भी स्वेच्छा से स्वीकार करती हैं। पास के घने वन में भीष्मचण्ड़ी देवी का मन्दिर है यहाँ अकाल वृद्ध केश कम्बली नर–बलि से देवी की साधना करता है।

ऋषि कुमारिकायें विश्वारा गोधा, वाचवनकी मांस प्रसाद भक्षण करती हैं। महावन के पास मुण्ड़ा बस्ती में तक्मा रोग से छुटकारा दिलाने के लिए ताम्रचूड़ बध अनिवार्य बताया गया है। 'वैश्वार' की सभी जातियों के स्त्री–पुरुषों में धार्मिक विश्वास कूट–कूट कर भरा है। आर्यों में यज्ञ द्वारा दैवीय शक्तियों को प्रसन्न करने का प्रचलन है। अग्निहोत्र प्रतिदिन वैश्वानर की साधना में नित्य अग्निहोत्र करता है। गोधा, विश्वारा, गार्गी वाचवनकी कौशिक

विश्वामित्र की गायत्री यज्ञशाला में सवितृतेजः साधना में भाग लेती हैं, जिससे नगरवासियों को तक्मा रोग से मुक्ति मिल सके।

शास्त्र–चिन्तन स्त्री–पुरुष दोनों कर सकते हैं गोधा, विश्ववारा तथा गार्गी तीनों शास्त्रचिन्तन तथा गायत्री चिन्तनरत है। मुण्डा जनों का समूह गान उनकी इष्ट नन्दादेवी को खुश करने की लिए किया जाता है, स्त्रियाँ घाघरा पहनती हैं, पुरुष लगोंटी बाँधते हैं, ताली–बजाकर घेरे में घूमते हैं। "नन्दा देवी नन्दा देवी। फूल चढ़े की पाती, आइना हो है महामाता देह जोहला हाथी,"[8] पूजा का यह विचित्र ढंग भी स्त्रियों की धार्मिक स्थिति को सूचित करता था। उपन्यासकार डॉ० शिवप्रसाद सिंह अपने उपन्यासों में स्त्रियों की धार्मिक स्थिति पर प्रकाश डाला है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि डॉ० शिवप्रसाद सिंह ने उपन्यासों में स्त्रियों की धार्मिक स्थिति को उजागर किया है। किन–किन क्षेत्रों में शारीरिक व मानसिक शोशण होता है। उन्होंने गहराई से उस पर विचार–विमर्ष किया है। उन्होंने अपने उपन्यासों के माध्यम से स्त्रियों की स्थिति पर प्रकाश डाला है। जिससे लोगों के विचार बदल सके। वर्तमान युग में स्त्रियाँ जब असुरक्षित हैं तब उन्हें अपनी सुरक्षा खुद करनी पड़ेगी अर्थात् आत्मनिर्भर बनना पड़ेगा। स्त्रियों को अपनी सुरक्षा के लिए कानूनी अधिकार का प्रयोग करना चाहिए। बलात्कारी कभी–कभी सजा से बच जाता है। लेकिन जिस दिन स्त्रियाँ हथियार स्वयं अपने बचाव के लिए उठा लेंगी, तब उस दिन उसे कोई नहीं बचा सकता।

सन्दर्भ–सूची

1. ब्रह्मवैवर्त्तपुराण श्री कृष्ण जन्मखण्ड 113/6–8 (स्त्री विमर्श) महादेवी वर्मा सम्पादक डॉ० ऊषामिश्रा प्रकाशन सचिव हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद प्रकाशन, वर्ष 2009 संस्करण प्रथम, पृ. 10.
2. सिंह, डॉ० शिवप्रसाद सिंह, 'अलग–अगल वैतरणी', लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2014, द्वितीय संस्करण 2016 पृ. 16.
3. वही, पृ. 18.
4. वही, पृ. 25.
5. सिंह, डॉ० शिवप्रसाद, 'नीलाचाँद', वाणी प्रकाशन नई दिल्ली संस्करण 2004, पृ. 308.
6. पाण्डेय, आनन्द कुमार, 'वैतरणी से वैश्वानर तक की यात्रा', विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, प्रथम संस्करण 2006, पृ. 97.
7. वही, पृ. 124.
8. सिंह, डॉ० शिवप्रसाद, 'वैश्वानर', वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1996, द्वितीय संस्करण 2004, पृ.71.

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 160-164

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

प्रेमचन्द की दलित विषयक कहानियाँ और हमारा समय

*अनिरुद्ध कुमार यादव**

दलित विमर्श आज के युग का एक ज्वलंत मुद्दा है। दलित साहित्य को लेकर आज जो विमर्श हो रहा है मैं धीरे–धीरे एक आंदोलन का रूप लेता जा रहा है। दलित विमर्श के इस दौर में दलित शब्द के अर्थ को लेकर सर्वमान्य मान्यता नहीं है। दलित कौन है? क्या अस्पृश्य समझी जाने वाली जातियां दलित है? क्या निम्न स्तर पर जीवन यापन (आर्थिक विपन्नता) करने वाला वर्ग दलित है? या फिर जिसका दलन–शोषण किया गया वह दलित है? कँवल भारतीय लिखते हैं– ''दलित वह है जिस पर अस्पृश्यता का नियम लागू किया गया है। जिसे कठोर और गंदे काम करने के लिए बाध्य किया गया है। जिसे शिक्षा ग्रहण करने और स्वतंत्र व्यवसाय करने से मना किया गया है और जिस पर स्वर्णों ने सामाजिक निर्योग्यताओं की संहिता लागू की, वही और वही दलित है और इसके अंतर्गत वही जातियां आती हैं, जिन्हें अनुसूचित जातियां कहा जाता है।''[1] स्पष्ट है कि भारती जी का इस कथन का दृष्टिकोण सामाजिक है, परंतु अन्य दृष्टिकोण आर्थिक भी हो सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि दलित शब्द आज भी विवेचित और विश्लेषित करने की अपेक्षा रखता है।

दलित विमर्श के केंद्र में दलित समस्या है। दलित समस्या से तात्पर्य दलितों के सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं से है। क्या आज का दलित विमर्श इन व्यापक समस्याओं को लेकर चल पा रहा है? क्या कारण है कि कोई दलित विमर्शक दलित स्त्री नहीं है? इन सवालों से टकराते हुए आज के दलित विमर्श पर चिंतन, मनन, की आवश्यकता है। आज के साहित्य में दलित विमर्श की दो धाराएं दिखाई देती हैं। पहली धारा स्वयं दलित जातियों में जन्मे लेखकों की है जिसके पास अनुभूतियों का विशाल भंडार है, इनका मानना है–जाके पैर न फटी बिवाई उ क्या जाने पीर पराई। भोगे गए यथार्थ को अधिक संवेदना के साथ व्यक्त किया जा सकता है। इसलिए वास्तविक अर्थों में इन्हीं के द्वारा रचित साहित्य दलित साहित्य है। दूसरा वर्ग गैर दलित लेखकों का है जो सहानुभूति पर कल्पना और गहरी मानवीय संवेदना के आधार पर शोषितों का चित्रण करते हैं।

दलित विमर्शक दलित अस्मिता की बात करते हैं। दलितों को मनुष्य के स्तर पर समान– दृष्टि से देखने को कहते हैं। अस्पृश्यता, जाति–पांति, भेदभाव, आर्थिक शोषण, धार्मिक शोषण आदि को बनाए रखने वाली व्यवस्था के प्रति विद्रोह का स्वर दिखाई देता है। जहां एक वर्ग के चिंतकों का मानना है कि दलितों के साथ जो अत्याचार हुआ उनका बदला लेना चाहिए। वहीं चिंतकों का एक दूसरा वर्ग यह मानता है कि दलितों के सामाजिक स्तर पर सुधार करने से दलितों की स्थिति में सुधार हो जाएगा। एक तीसरा वर्ग भी है, जो रंग भूमि की प्रतियां जलाता है, परंतु यह वर्ग लगभग नगण्य है। दलितों की मुक्ति पर बात करते समय यह ध्यान में रखना चाहिए कि उनकी सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक आदि मुक्तियाँ एक–दूसरे से इस कदर संपृक्त हैं कि इन्हें अलग–अलग नहीं किया जा सकता। इसलिए दलित मुक्ति के लिए जरूरी है कि समग्रता में विमर्श को बढ़ाया जाए।

दलित साहित्य का वैचारिक आधार है डॉक्टर अंबेडकर का जीवन संघर्ष, ज्योतिबा फूले तथा महात्मा बुद्ध का दर्शन, उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि है। सभी दलित रचनाकार इस बिंदु पर एकमत हैं कि ज्योतिबा फूले ने स्वयं क्रियाशील रहकर सामंती मूल्यों और सामाजिक गुलामी के विरोध का स्वर तेज किया था। ब्राह्मणवादी सोच और वर्चस्व के विरोध में उन्होंने आंदोलन खड़ा किया था। महात्मा फुले ने 1873 ई. में 'सत्यशोधक समाज' की स्थापना की और इसी वर्ष उनकी क्रांतिकारी पुस्तक 'गुलामगीरी' प्रकाशित हुई। वे शूद्रों, अति शूद्रों और स्त्रियों का अज्ञान दूर करके गुलामी की जंजीरें तोड़ना चाहते थे। यही कारण है कि जहां दलित रचना कारों ने ज्योतिबा फुले को अपना विशिष्ट विचारक माना वहीं डॉ आंबेडकर अपना शक्ति पुंज स्वीकार किया।

डॉक्टर अंबेडकर ने दलितों के अधिकार को लेकर 1927 में सार्वजनिक तालाब से पानी लेने को लेकर महाड़ में क्रांतिकारी लड़ाई लड़ी। यह वह लड़ाई थी जिसमें दलितों ने इतिहास रचा था। इसका विस्तृत वर्णन 'अछुतों का विद्रोह' में मिलता है। इस घटना से दलितों को अपने अधिकार के प्रति सचेत किया। 1927 में महाड़ में अछूतों का सम्मेलन हुआ जिसमें मनुस्मृति को जला दिया गया। यह मनुवादी व्यवस्था के प्रति विद्रोह का स्वर था। नासिक के 'काला राम मंदिर' में अछूतों का प्रवेश–निषिद्ध था। डॉक्टर अंबेडकर ने मंदिर–प्रवेश के अधिकार को लेकर लड़ाई लड़ी।

सामाजिक और धार्मिक सत्याग्रह के बाद डॉक्टर अंबेडकर ने दलित आंदोलन को राजनीतिक आयाम दिया। उन्होंने सत्ता में दलितों की भागीदारी की मांग की। गोलमेज सम्मेलन में दलित प्रतिनिधि के रूप में गए और जोरदार शब्दों मे ंदलित पक्ष रखा। इसके साथ ही हिंदुओं से पृथक मानते हुए दलितों के पृथक राजनीतिक अधिकारों की मांग की। इसी को आधार बनाकर कालांतर में कई राजनीतिक दल (दलित संगठन) स्थापित हुए। गांधीजी उनके इन विचार से सहमत नहीं हुए और इसके विरोध में आमरण अनशन किया। फलतः दोनों पक्षों में 1932 में समझौता हुआ। (पूना–पैक्ट) इसमें दलितों को संयुक्त निर्वाचन तथा सत्ता में प्रतिनिधित्व का अधिकार मिल गया। इसी से प्रभावित होकर गांधीजी ने 1932 में 'हरिजन सेवा संघ' की स्थापना किया तथा अछूतोद्धार का आंदोलन चलाया। जबकि गांधीजी वर्ण व्यवस्था में विश्वास रखते हैं। यह बात समझ में नहीं आती। खैर... आज के दलित लेखक डॉ. अम्बेडकर को अपना स्रोत मानते हैं। बाबासाहब ने जाति–व्यवस्था का विरोध, धार्मिक मान्यताओं पर चोट, समानता, समता एवं बन्धुत्व आदि की चेतना पैदा की वह आज भी विद्यमान है।

अब हम मूल प्रश्न प्रेमचंद की दलित विषयक कहानियों की ओर आते हैं। अगर आज के दलित विमर्श के दृष्टिकोण से देखें तो प्रेमचंद दलित लेखक नहीं हैं। परंतु वे दलित संवेदना को बहुत गहराई के साथ चित्रित करते हैं।

''हिंदी के जिस गैर दलित लेखक ने सबसे अधिक प्रभावशाली दलित कहानियों की रचना की है, वह हैं, प्रेमचंद।''[2] प्रेमचंद अपनी कहानियों में अस्पृश्यता, भेदभाव, जातिप्रथा, दलित अस्मिता, अछूत समस्या, आदि को बड़े ही मनोवैज्ञानिक, वस्तुगत तथा संवेदनात्मक ढंग से व्यक्त किया है। प्रेमचंद की दलित विषयक कहानियों में दलित चेतना को ढूंढना तथा उनकी आज के समय में प्रासंगिकता पर विचार करना ही हमारा विषय है। हम प्रेमचंद की कुछ दलित विषयक कहानियों पर बात करेंगे।

'ठाकुर का कुआं' 1932 ई. में लिखित कहानी है। ठाकुर का कुआं में चित्रित घटना, मात्र एक घटना या प्रसंग नहीं हैं, यह दलित जीवन की त्रासदी की अभिव्यक्ति है। यह त्रासदी जाति प्रथा एवं छुआछूत के कारण है। कंवल भारती इसे अस्पृश्य त्रासदी की कहानी मानते हैं। जो उचित प्रतीत होता है। अछूत होने के कारण जोखू को पानी जैसी बुनियादी जरूरत पूरी नहीं होती। ''घर पहुंचकर देखा कि जोखू लोटा मुंह से लगाये वहीं मैला–गंदा पानी पी रहा है।'' अछुतों की दयनीय दशा, उनकी निम्न सामाजिक व्यवस्था और सवर्णों का आतंक इस पंक्ति में झलकता है। ''हाथ–पांव तुड़वा आएगी और कुछ ना होगा। बैठ चुपके से।'' प्रेमचंद ऐसे ही कई प्रसंगों में अछूतों के जीवन की वास्तविकता को वाणी देते हैं। प्रेमचंद की कहानियों पर यह आरोप लगाया जाता है कि उनके पात्र आत्मास्वीकृति की अवस्था में रहते हैं। विद्रोह नहीं करते। उनको इस पंक्ति पर गौर फरमाना चाहिए। ''गंगी का विद्रोही दिल रिवाजी पाबंदीयों और मजबूरियों पर चोंटे करने लगा–हम क्यों नीच हैं और क्यों ऊँच हैं?'' गंगी का विद्रोह समाज की व्यवस्था के प्रति है जो उन्हें ऊँच और नीच बना दिया है। प्रेमचंद की इस कहानी पर अंबेडकर के महाड़ आंदोलन (1927) का प्रभाव माना जाता है। इस कहानी में स्त्री के वर्गगत और जातिगत शोषण का भी चित्रण है। प्रेमचंद उसी समय यह महसूस कर चुके थे कि दलित की जो स्थिति है उसका एक कारण उनकी अज्ञानता भी है। ''परंतु यह जानती थी कि पानी को उबाल देने से उसकी खराबी जाती रहती है।'' आज के समय में भी गांवों में अज्ञानता, छुआछूत, अछूत जातियों का हर प्रकार शोषण हो रहा है।

'कफन' (1935) कहानी सर्वाधिक विवाद के घेरे में रही। कंवल भारती, ओम प्रकाश वाल्मीकि, श्यौराज सिंह बेचैन सरीके विद्वानों का मत है कि कफ़न दलित विद्रोही कहानी है। इसमें चित्रित घीसू–माधव व्यवहारिक रूप

में इतना अमानवीय नहीं हो सकता जबकि सदानंद, डॉक्टर महीप सिंह आदि विद्वानों का मत है कि यह दलित विरोधी कहानी नहीं है कफन पर यह आरोप है कि यह भी दिह्युमनाइजेषन की कहानी है। यह बात सही प्रतीत नहीं होती है। घीसू और माधव विघटित चेतना और विमानवीय करण के उदाहरण हैं। जैसा कि मार्क्स का मानना है कि इसी विघटित चेतना तथा विमानवीय करण से कुछ चेतना का विकास होता है जिससे विद्रोह का स्वर फूटता है। इसलिए घीसू और माधव को अमानवीय चित्रण करना यह दर्शाता है कि उन्हें इस अवस्था में पहुँचाने का कार्य व्यवस्था कर रही है और वे इसी व्यवस्था के प्रति विद्रोह करते हैं। विद्रोह का यह स्वर अंतर्निहित है। इसी को मद्देनजर रखते हुए वीर भारत तलवार ने कफ़न को हमारी सभ्यता की सबसे कड़ी आलोचना की कहानी मानते हैं।

कफन एक बहुस्तरीय कहानी है इसलिए पात्र घीसू–माधव भी बहुस्तरीय हैं। एक घीसू–माधव हैं जो जाति के चमार है भूमि हीन हैं, मजदूर हैं, वे देख रहे हैं की जी तोड़ मेहनत करने वाले भी ढंग से नहीं जी पा रही हैं, उनके लिए पेट भरना भी मुहाल है। इसलिए वे निकम्मे और कामचोर हैं। घीसू–माधव की कामचोरी, कामचोरी ना थी। अल्पतम मजदूरी के लिए अल्पतम काम के अघोशित नारे पर चलने वाला संघर्ष था।

दूसरे की घीसू–माधव वे हैं जो दर्द से छटपटाती थी बुधिया से बेपरवाह आलू खा रहे हैं। वे बेपरवाह अमानवीयता के नाते नहीं, असहायता के कारण थे। बेपरवाह होने को विवश थे। क्योंकि इसके अतिरिक्त उनके पास दूसरा रास्ता ना था। इसके अतिरिक्त दोनों का आलू खाना और बुधिया का दर्द से छटपटाना एक दृश्य भर नहीं है। एक रूपक भी है। अपने श्रम से समाज का पेट भरने वाला हिस्सा दर्द से छटपटा रहा है और बैठकबाजों की मंडली के सदस्य बेपरवाह उसका भोग कर रहे हैं।

तीसरे घीसू–माधव वे हैं, जो कफन का पैसा मिलने पर कफन न खरीदकर शराब और पुड़ियाँ खाते हैं इसके पश्चात् घीसू–माधव के बीच में जो संवाद होता है, उसमें जबरदस्त किस्म का अपराध बोध और कर्तव्य बोध का मिश्रित भाव जागता है। "जो वहाँ हम लोगों से पूछें कि हमें कफन क्यों नहीं दिया तो क्या कहोगे?"... "माधव को विश्वास ना आया। बोला कौन देगा? रुपए तो तुमने चट कर दिए। वह तो मुझसे पूछेगी। उसकी मांग में सिंदूर मैंने डाला था। "ध्यान रहे कि यही माधव–घीसू आलू के चक्कर में दर्द से तड़पती बुधिया के पास नहीं गए।

1. "वह न बैकुंठ जाएगी... मंदिरों में जल चढ़ाते हैं।"
2. "कैसा बुरा रिवाज... उसे मरने पर नया कफन चाहिए।"
3. "कफन लाश के साथ जल जाता है और क्या रखा रहता है? यही 5 रुपये मिलते तो दवा दारू कर लेते।"

घीसू और माधव के संवाद समाज के वास्तविक स्वरूप को सामने लाते हैं। वे समाज में व्याप्त रीति–रिवाज, अंधविश्वास, शोषण आदि को मूल्य निर्णय देते नजर आते हैं। इसलिए कफन को दलित विरोधी कहानी कहना उचित प्रतीत नहीं होता।

सद्गति (1930) की प्रशंसा ओम प्रकाश वाल्मीकि करते हैं। सद्गति को नामवर सिंह पुरोहित के अत्याचार की कहानी कहते हैं। इस कहानी में प्रेम चंद दलित जीवन के यथार्थ को दिखाने में सफलता हासिल की है। एक चमार की ब्राह्मण भक्ति की पराकाष्ठा और एक ब्राह्मण की अस्पृश्यता की, क्रूरता की पराकाष्ठा दोनों ही चीजें कहानी में उद्वेलित करती हैं। उदाहरण–

1. "आग की बड़ी सी चिंगारी दुःखी के सिर पर पड़ी। जल्दी से पीछे हट कर सिर के झोटे देने लगा। उसने मन में कहा– 'यह एक पवित्र ब्राह्मण के घर को अपवित्र करने का फल है। ...पांव गल–गल कर गिरने लगे।"
2. "तुम्हें...। चमार हो, धोबी हो, पासी हो, मुह उठाये घर में चले आए। हिंदू का घर ना हुआ, कोई सराय हुई। कह दो दाढ़ी जार से चला जाए।"
3. "दुखी सोचने लगा, बाबा ने यह गांठ कहां रख छोड़ी थी कि फाढ़े नहीं फटती। "इसी गांठ को चीरते–चीरते दुखी मर जाता है। नामवर सिंह का मानना है कि लकड़ी की गांठ हिंदू धर्म की जहरीली जाति–व्यवस्था की गांठ है। अंत में प्रेमचंद कहते हैं–"जीवनभर की भक्ति और निष्ठा का यही पुरस्कार है।" यह गहरा दर्द से भरा व्यंग है।

दूध का दाम (1934) कहानी पाठक को भी तर तक भेदने वाली, प्रेमचंद की चेतना और कला का विलक्षण उदाहरण है। प्रेमचंद इस कहानी में यह दिखाते हैं कि अछूत के दूध से कोई गुरेज नहीं है, लेकिन उसकी देह से है। इस कहानी में दलित समाज के भयावह यथार्थ को प्रस्तुत करते समय पशुवत जीवन परिस्थितियों को जोड़कर देखते हैं अथवा समानांतर पशु–जीवन को कल्पित कर एक तरह की समानता लक्षित करते हैं।" दोनों एक ही खाना खाते हैं, एक ही टाट पर सोते तबीयत भी दोनों की एक सी थी। "प्रेमचंद मंगल और टामी के बीच एक दोस्ताना कायम करते हैं।" आगे क्या किया जाय टॉमी? टॉमी ने कूं–कूं करके शायद यही कहा–इस तरह का अपमान तो जिंदगी भर सहना है।" यह दलित जीवन की बहुत बड़ी सच्चाई है।

मंगल का यह कहना–"मैं बराबर घोड़ा ही रहूँगा, की सवारी भी करूंगा।" व्यवस्था में परिवर्तन की मांग है, जो कि आज के दलित लेखकों की भी मांग है। इस कहानी में भी अस्पृश्यता की झलक दिखाई देती है। आज के समय में भी भंगी जैसी जाति के साथ वैसा ही व्यवहार किया जाता है जैसा कि प्रेमचंद ने दिखाया है। इसलिए इस कहानी की प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है।

मंदिर (1927) प्रेमचंद की एक मार्मिक कहानी है। महत्वपूर्ण बात यह है कि जब भारत में दलितों के मंदिर प्रवेश का आंदोलन शुरू भी नहीं हुआ था। उससे पूर्व प्रेमचंद का दलितों के मंदिर प्रवेश के प्रश्न को उठाया। निसंदेह एक प्रगतिशील चेतना थी। अछूतों को ईश्वर के घर प्रवेश की इजाजत नहीं है। पुजारी चढ़ावे का पैसा ले सकता है, लेकिन मंदिर में उसे जाने नहीं देता, क्योंकि वह एक चमारिन है। दलित लेखकों का आरोप रहा है कि प्रेमचंद संघर्षरत दलित नायकों के स्थान पर स्थितियों के गुलाम पात्रों को सृजित करते हैं। प्रेमचंद स्थितियों के चित्रण तथा संवेदनात्मक जीवन संदर्भों के बिंबात्मक विनियोग द्वारा परिवर्तन तथा संघर्ष की चेतना को इस प्रकार वाणी देते हैं जो कहानी को अपने अंतिम निष्कर्षों में मुक्ति कामी बनाती है।" मेरे छू लेने से ठाकुरजी को छूत लग गई? पारस को छू कर लोहा सोना हो जाता है, पारस लोहा नहीं हो सकता। मेरे छूने से ठाकुर अपवित्र हो जाएंगे। मुझे बनाया तो छूत नहीं लगी?" इस कथन में जहाँ एक तरफ धर्म के ठेकेदारों द्वारा प्रचारित गलत धार्मिक मान्यता की आलोचना है वहीं इस भेदभाव को मान्यता देने वाले समाज की भी। जबकि दोनों उसी परमात्मा के द्वारा बनाए गए हैं। फिर भी छूत–अछूत क्यों?

गुल्ली–डंडा (1933) आत्म वाची शैली में लिखी गई कहानी है। इस कहानी में स्वदेशी खेल के माध्यम से निम्नवर्ग के प्रति उच्च वर्ग की भावना और अछूत–छूत के मनोभाव को बहुत सजीव रूप में चित्रित किया गया है।" लड़का दौरा हुआ गया और एक क्षण में एक पांच हाथ काले देव को साथ लिए आता दिखाई दिया। मैं दूर ही से पहचान गया। उसकी ओर लपकना चाहता था कि उसके गले से लिपट जाऊं, पर कुछ सोच कर रह गया। बोला–कहो गया, मुझे पहचानते हो?"

गुल्ली डंडा की पूरी बुनावट में सामंती और पूंजीवादी दृष्टि के अस्पष्ट संकेत बिखरे पड़े हैं। प्रेमचंद पूंजीवादी समाज में दलितों के दोहरे शोषण से उत्पन्न सामाजिक और मानसिक स्थिति का संकेत करते हैं।

'सौभाग्य के कोड़े' कहानी में प्रेमचंद की प्रगतिशील दृष्टि का पता चलता है। प्रेमचंद बहुत पहले ही इस तथ्य को समझ चुके थे कि दलितों की स्थिति में बिना शिक्षा के सुधार नहीं हो सकता। जो आज दलितों की स्थिति में सुधार के लिए आवश्यक है। नथुआ भंगी है, वह घर में झाड़ू लगाने जाता है। एक दिन वह मेम साहब के बिस्तर पर लेट गया। जिसके कारण उसको बहुत पीटा गया। यहाँ पर दलितों पर हो रहे अत्याचार को दिखाया गया है। कालांतर में वही नथुवा शिक्षा प्राप्त कर एक धनवान व्यक्ति बन जाता है। जिसके कारण उसकी जाति छुप जाती है और भोला नाथ की पुत्री के साथ उसका विवाह हो जाता है। यहाँ पर प्रेमचंद यह लक्षित करते हैं कि, शिक्षा प्राप्त करने से दलितों की आर्थिक स्थिति और सामाजिक स्थिति में सुधार हो सकता है। कंवल भारती भी ऐसा मानते हैं।

प्रेमचंद ने दलितों के असह्य दुख–पीड़ा, निर्मम उत्पीड़न और अमानवीय शोषण का जितना विशद् चित्रण अपनी कहानियों में किया है उतना बहुत ही कम लेखकों ने किया। उनकी कहानियाँ दलित मुक्ति के रास्ते की तलाश

के लिए पाठक को बेचैन तथा व्याकुल करती हैं। अतः प्रेमचंद दलितों की संवेदना से बहुत गहरे स्तर पर जुड़े थे। प्रेमचंद के द्वारा दलितों के विषय में उठाई गई समस्याओं में कुछ आज भी उसी रूप में विद्यमान हैं। इसलिए आज के समय में भी प्रेमचंद की प्रासंगिकता बनी हुई है। इस प्रकार प्रेमचंद की दलित कहानियाँ दलित विमर्श की कहानियाँ भले ना हो, परंतु दलित चेतना एवं संवेदना से गहरे स्तर पर जुड़ती हैं।

सन्दर्भ–सूची

1. घास वाली, संकलन–राजीव रंजन गिरि
2. सरयू धारा, अंक–25
3. दलित विमर्श की भूमिका–कंवलभारती
4. मेरा दलित चिंतन– डॉ. एन. सिंह
5. दलित चेतना–रमणिका गुप्ता
6. दलित जन उभार
7. आधुनिकता के आईने में दलित–अभय कुमार दूबे
8. दलित साहित्य की अवधारणा–कंवल भारती
9. भारतीय दलित साहित्य : परिपेक्ष्य–पुन्नी सिंह
10. सामंत का मुंशी– डॉ. धर्मवीर

पाद–टिप्पणी

1. नया ज्ञानोदय, दिसंबर 2006 पृ. 161
2. दलित साहित्य की अवधारणा और प्रेमचंद, संपादक–सदानंद शाही, पृ. 531

* * * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 165-170

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

उत्तर आधुनिकता और समकालीन हिन्दी आलोचना

*सत्य प्रकाश सिंह**

अस्मितामूलक 'हासियों' ने समकालीन साहित्यिक परिदृश्य में 'केन्द्रीयता' हासिल कर ली है। कविता, कहानी, उपन्यास से लेकर आलोचना तक का, प्रायः अधिकांश 'हासियों का विमर्श कर रहा है। भागेदारी के अस्मितामूलक द्वन्द्व और संघर्ष केन्द्रीय हो गए हैं, और साथ ही अब तक 'केंद्र' बने रहे समाज–निर्माण एवं परिवर्तन के वैचारिक–बौद्धिक 'नजरिये' (खासकर मार्क्सवाद से जुड़े आलोचनात्मक नजरिये) सिरे से अप्रासंगिक घोषित किये जा रहे हैं। लेकिन डॉ. बली सिंह के अनुसार, इसका अर्थ यह कतई नहीं है, कि ऐसे में इन विमर्शों और अस्मिताओं के उभार को किसी प्रकार के 'षड्यंत्र' के रूप में देखा जाये, अपितु भागेदारी के ये 'अस्मितामूलक द्वन्द और संघर्ष' भूमंडलीकरण के प्रभाव से 'उत्पन्न नए तरह के अंतर्विरोध' हैं, जिन्हें नजरंदाज करना अब बड़ी भूल होगी।

जहाँ तक सवाल उन बड़े प्रश्नों और नजरियों का है जो समाज में एक परिवर्तनकारी और निर्माणक 'भूमिका' को मुख्य मानकर चलते रहे हैं, उनके संदिग्ध या अप्रासंगिक करार दिए जाने को तो चिंता के तौर पर लिया जाना वाजिब है, लेकिन इसके लिए पूरी तरह से अस्मिता विमर्शों को ही जिम्मेदार मान लिया जाना ही सही नजरिया नहीं कहा जा सकता। इसकी कुछ जिम्मेदारी तो उन वैचारिक अवधारणाओं की भी बनती है, जो लम्बे समय तक आलोचना का 'केंद्र' बनी रही हैं। उतर–आधुनिक अस्मिता विमर्शों ने कुछ ऐसे 'नजरियों' और 'दृष्टियों' को जन्मा है, जिनसे अपने समय और समाज को और भी ज्यादा लोकतान्त्रिक तरीके से देखने की वैचारिक तमीज आज पैदा हुई है। राजनीतिक तौर पर एक लोकतान्त्रिक देश में रहने का मतलब यह कतई नहीं कि सामाजिक–पारिवारिक 'जीवन' में भी लोकतांत्रिकता को हासिल किया जा चुका हो। स्त्री, दलित, आदिवासी, मुस्लिम आदि नजरियों ने हमारे सामाजिक–आर्थिक जीवन और राष्ट्रीय–वैचारिक जीवन में समाई हुई अलोकतान्त्रिकताओं और प्रभुतावादी प्रवृतियों को सामने ला खड़ा किया है। स्त्री द्वारा नागरिक हकों की मांग करते ही सामाजिक–पारिवारिक संस्थाओं का 'पुरुष' उभर आता है। दलित द्वारा नागरिक अधिकार मांगते ही, राज्य का 'सवर्णपन' मुखर हो उठता है। आदिवासियों ने जैसे ही सवाल आरम्भ किये, वैसे ही राष्ट्रीय विकास की "विचारधारा" चरमराने लगी और 'राष्ट्रीय व्यक्तित्व' अपने हिंसक रूप के साथ सामने आ खड़ा हुआ। और आज मुस्लिम व्यक्ति से नागरिक आधिकारों का छिनना तो 'राष्ट्रीय' तर्क–सा बन गया है। ऐसे में अस्मितामूलक विमर्शों की लोकतान्त्रिक चेतना और विचार के विस्तार में भूमिका को सिरे से नजरंदाज़ कर देना सही नजरिया नहीं कहा जा सकता। जबकि हमें मालूम है कि इन सवालों के प्रति एक 'टालने' वाला रवैया अभी हाल तक भी 'केन्द्रीय' विचारों और प्रयासों में साफ–साफ दिखता रहा है। फिर से वही भूल समकालीन हिंदी आलोचना, और खासकर वामपंथी–जनवादी आलोचना को नहीं दोहरानी चाहिए।

विचारों का कोई मुकम्मल इतिहास तो अभी तक लिखा नहीं गया है, लेकिन ऐसा अगर कभी भी होगा तब मालूम पड़ेगा कि 'व्यक्ति' या 'समाज' को अलग–अलग केंद्र मान कर चलने वाले विचारों में भी ऐसे 'हासिये' बरकरार रहे, जिन्हें 'संबोधित' ही नहीं किया गया। उत्तर–आधुनिकता ने एक चोट यहीं की है। डॉ. बली सिंह के शब्दों में "सोच के धरातल पर वह अस्मिताओं की बहुलता की बात करते हुए और अस्मिताओं की गैर–बराबरी को उजागर करते हुए विभिन्न अस्मिताओं के महत्त्व की पहचान कराती है और इस तरह यह लोकतान्त्रिक संसार के विस्तार में सहायक बनती है।"[1] अस्मितामूलक विमर्शों के इस पक्ष को नजर अंदाज करना क्या सही होगा? नहीं। लेकिन आलोचकीय जिम्मेदारी यहीं, इस महत्त्व को स्वीकार अन्यथा, जो होगा उसका उदाहरण हिंदी की पिछली आलोचना में बखूबी उपलब्ध हैं। वो उदाहरण है, व्यक्ति और समाज को लेकर चली वो बहस जो अंतिम तौर पर

कभी सुलझाई ही नहीं जा सकी। व्यक्ति की निजता और उसका आत्म–संबोधन प्रगतिशील आलोचना में जिस तरह से 'एड्रेस' हुआ है उसे बताने की आवश्यकता नहीं है। एक असहजता और इसके विरुद्ध आक्रामकता हम निरंतर देखते हैं। कई दफा इस हद तक भी देखते हैं कि वो सिर्फ अनावश्यक ही नहीं अपितु कुछ–कुछ 'नकली' भी लगने लगती है। व्यक्ति के समक्ष समाज पर अतिरिक्त बल समाज के केंद्र से व्यक्ति को अपदस्त कर देता है, और इससे समाज केन्द्रित विचारों में व्यक्ति की निजताओं, आत्म–संबोधनों और अस्तित्वमूलक तनावों और द्वंद्वों का एक भारी–भरकम हासिया निर्मित हो जाता है। समाज का 'व्यक्ति–सन्दर्भ' हासियाकृत हो जाता है। दलित–स्त्री आत्मकथात्मक लेखन भी तो वस्तुतः समाज के व्यक्ति सन्दर्भ को ही रचता साहित्य है। अतः वो भी हासिया होने के लिए अभिशप्त रहा है। तो कहने का अभिप्राय सिर्फ इतना है कि समाज का व्यक्ति सन्दर्भ सिर्फ उतने को ही नहीं मान लिया जाना चाहिए था, जितने को अज्ञेय जी ने लिखा और रचा था। बल्कि समाज के व्यक्ति सन्दर्भ को ज्यादा गंभीरता से लिए जाने की आवश्यकता थी। लेकिन इसी के साथ तस्वीर दूसरी तरफ भी कम निराशाजनक नहीं रही है। यह भी ध्यान रखा जाना जरूरी है, कि ऐसे विचार जो समाज के समक्ष व्यक्ति को 'केंद्र मान कर चले हैं, हासिया कम बड़ा वहां भी नहीं बना है। व्यक्ति का सामाजिक–सन्दर्भ वहां पूरी तरह से गायब रहा है। ऐसे में उसके आत्म–संबोधनों और निजता के सवालों ने 'निरपेक्षता' ले ली है। इस लम्बी चली बहस से समकालीन हिंदी आलोचना को सही दिषा और सबक लेने की जरूरत है।

ऐसे में आज के इस उत्तर–आधुनिक दौर में जहां व्यक्ति ही नहीं अपितु समाज भी केंद्र से अपदस्त हुआ है और बाजार ने केन्द्रीयता हड़प ली है, जरूरी है कि व्यक्ति और समाज को लेकर चली अबतक की आलोचकीय बहसों और झड़पों को दुबारा उलट–पलट कर देखा जाये। 'उत्तर–आधुनिकता और समकालीन हिंदी आलोचना' पुस्तक पिछले पांच दशकों की हिंदी आलोचना को इसके प्रमुख आलोचकों के माध्यम से समकालीन प्रश्नों और अपरिहार्यताओं के सन्दर्भ में एक तरह से उलट–पुलट कर देखने का ही काम करती है। शिवकुमार मिश्र, रामविलास शर्मा, नामवर सिंह, देवीशंकर अवस्थी, मैनेजर पांडे, निर्मला जैन, नित्यानंद तिवारी, विश्वनाथ त्रिपाठी, चंचल चौहान, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, परमानद श्रीवास्तव आदि आलोचकों के साथ ही गोविन्द प्रसाद, द्वारिका प्रसाद चारुमित्र, कर्मेंदु शिशिर, जबरीमल्ल पारख आदि अनेक समकालीन आलोचकों पर पुस्तक में विचार किया गया है। लेकिन इसे उपरोक्त आलोचकों का मूल्यांकन–पुनर्मूल्यांकन आदि नहीं समझना चाहिए। अपितु जैसा कि पहले कहा गया है कि पुस्तक समकालीन उत्तर–आधुनिक समय और भूमंडलीकृत होते समाज में वैचारिक–आलोचनात्मक हस्तक्षेप की संभावनाओं को अपना मुख्य सरोकार बनाती है। अपने समय में वैचारिक हस्तक्षेप के 'माध्यमों' की तलास करती है और यह तलास ही है, जो 'परंपरा' को फिर से देखे जाने का आग्रह करती है। वस्तुतः डॉ. बली सिंह की मूल चिंता ही समकालीन उत्तर–आधुनिक परिदृश्य में 'आलोचनात्मक' हस्तक्षेपों के लिए ठोस वैचारिक आधारों को तलाश करना है। यही कारण है, कि वो यह चिंता तो व्यक्त करते हैं कि समकालीन हिंदी आलोचना का परिदृश्य कोई बहुत 'उत्साह' पैदा करने वाला नहीं है, लेकिन यह चिंता निराशा की तरफ नहीं ले जाती अपितु वो इसे समकालीन वैचारिक और सांस्कृतिक माहौल के साथ में रख कर देखने की और समझने की जरूरत को रेखांकित करती है।

आलोचक नामवर सिंह पर लिखा गया लेख इस सन्दर्भ में एक महत्वपूर्ण लेख कहा जा सकता है। 'इधर के नामवर' नाम से लिखा गया यह लेख असल में 'इधर' की वामपंथी आलोचना के लिए एक जरूरी लेख है। किसी भी विचार के सामने 'रचनात्मक' बने रहने की अनिवार्यताएं हुआ करती हैं, जिनके आभाव में उस विचार की जन 'उपस्थिति' बुरी तरह से प्रभावित होती है। डॉ. बली सिंह ने नामवर जी के माध्यम से इस चुनौती को रेखांकित करने की चेष्टा की है। उत्तर–आधुनिकता और भूमंडलीकरण ने नागरिक सामाजिक जीवन में किन नयी जीवन स्थितियों और अवस्थितियों का निर्माण किया है, इसकी समझ के बगैर आज बात नहीं हो सकती है। नामवर जी के ही शब्दों में, यही कारण है कि हिंदी में हम इनका कोई अच्छा 'क्रिटीक' प्रस्तुत नहीं कर पा रहे हैं। वो कहते हैं, "नयी सच्चाई का आपको ज्ञान ही नहीं है, तो विकल्प कहाँ से लायेंगे"[2]

इसके लिए सबसे पहले जरूरी है भूमंडलीकरण और उत्तर–आधुनिक वैचारिकी के समाजार्थिक और सांस्कृतिक फलितार्थों की वस्तुस्थितियों का अनुसंधानात्मक सामना करना और यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि ये सामना, तब तक नहीं हो सकता जब तक समाज के मूल और मुख्य अंतर्विरोधों के साथ भूमंडलीकरण

के फलितार्थों से उपजे अंतर्विरोधों की संगती नहीं हासिल कर ली जाती। सिर्फ मुख्य अंतर्विरोधों पर ही बात करने से चलने वाला नहीं है, ठीक वैसे ही जैसे सिर्फ भूमंडलीकरण और उत्तर–आधुनिकता के फलस्वरूप उपजे अस्मितामूलक अंतर्विरोधों पर ही बात करना सही रस्ते ले जाने वाला तरीका नहीं है।। डॉ. बली सिंह के अनुसार, आज के समकालीन 'आलोचक' को समाज के मुख्य और अन्य अंतर्विरोधों की सही समझ होनी चाहिए। उन्हीं के शब्दों में "हाँसिए के दायरे में जहाँ तक साधारण आदमी के संघर्ष और सरोकार हैं वहां तक वह वर्गीय संघर्ष और सरोकार का ही विस्तार है। उसके सवाल और उसकी चिन्ताएं वास्तव में वर्गीय सवालों और चिंताओं से बाहर नहीं हैं। इसके आलावा शेष संघर्ष और सवाल तो 'अवर्गीय संघर्ष' के हैं, चाहे वह पागलों का हो या कैदियों का, बच्चों का हो या बूढों का, स्त्रियों का हो या दलितों का, आदिवासियों का हो या अल्पसंख्यकों का, लोक–संस्कृति का हो या वर्चस्व की संस्कृति का अथवा पर्यावरण का।"

डॉ. बली सिंह के अनुसार आज भूमंडलीकरण के इस दौर में यही वे 'अवर्गीय' "सवाल और चिन्ताएं हैं अथवा अन्य अंतर्विरोध हैं जिन्होंने आज की आलोचना का अधिकांश घेर लिया है।" 'उत्तर आधुनिकता और समकालीन हिंदी आलोचना' पुस्तक रेखांकित करती है, कि 'हासिया' कह भर देना काफी नहीं है, बल्कि उसकी समाज–आर्थिक पहचान भी जरूरी है। समाज के मूल अंतर्विरोधों के साथ उसके 'संबंधों' की पहचान भी जरूरी है। स्त्री प्रश्न जिस 'पुरुषवाद' को रेखांकित करता है, वो सिर्फ "सोच–समझ" के स्तर की चीज़ नहीं है, उलटे हमारे सामाजिक–आर्थिक, सांस्कृतिक और मूल्यबोधक जीवन को रूप देने, और नियंत्रित करने वाली वो एक अहम् संस्था है। जब तक उस संस्था के बुनियादी आधारों को खारिज कर, लैंगिक समानता के प्रति संवेदनशील नए आधारों को नहीं विकसित किया जायेगा तब तक स्त्री 'अस्मितामूलक सवालों' का अनुत्तरित बने रहना तय है। इसी प्रकार दलित–प्रश्न भी गहरे रूप में समाजार्थिक प्रश्न है। सिर्फ 'अस्मिता' या उसके माध्यम से हासिल की जा रही 'निरपेक्षता' में हासियाकृत प्रश्नों का कोई समाधान प्रस्तावित नहीं किया जा सकता और कहने की कोई जरूरत नहीं रह जाती कि असल सवाल तो समाधान अर्जित करना ही है। समाधान को गढ़ने और उसे अर्जित करने में जो फर्क होता है, उसी फर्क को समकालीन आलोचना में हासिल करने की आवश्यकता को डॉ. बली सिंह रेखांकित करते हैं। क्योंकि फर्क तो होता है। इसीलिए जितना बल अस्मिताओं के 'स्वयात्तीकरण' पर दिया जा रहा है, उतना इस बात पर नहीं कि 'उत्तर–आधुनिकता के इस दौर में तरह–तरह के विमर्शों के उभार और कला के क्षेत्र में इस बढ़ते अलगाव की वजह से किसानों और मजदूरों की बात करने वाले रचनाकारों यानी जन कवियों की उपेक्षा ही हो रही है।' यह उपेक्षा सिर्फ समाज के मूल वर्गों और उनके रचनाकारों की ही उपेक्षा नहीं है, अपितु समाज के मूल–प्रश्नों और अंतर्विरोधों की भी उपेक्षा है।

हालाँकि ऐसा सिर्फ अस्मिता–विमर्शों के उभार के ही चलते नहीं हुआ है। डॉ. बली सिंह स्वयं इसके आर्थिक–राजनीतिक सन्दर्भों को रेखांकित करते हुए कहते हैं, "जब भारतीय राजनीति और समाज में किसान gkf'k , i j pykx; krksfQj fdl ku dsxhr xkusokys O;fä dkHkhoghgJ gksrksdksÃ cM+hckr ugÈ किसान और गाँव समकालीन राष्ट्रीय–सरोकारों से गायब हो गए हैं, तो स्वाभाविक ही है, कि समकालीन साहित्यिक और सांस्कृतिक गतिविधिओं का भी उनसे वास्ता कमजोर हो चला है। लेकिन साथ ही इसमें एक निर्णायक भूमिका 'नब्बे' के बाद तेजी के साथ उभरे मध्यवर्गीय रचनाकारों ने भी निभायी है। समकालीन 'साहित्यिक–सांस्कृतिक मंच पर उनके प्रभुत्व ने साहित्य की अंतर्वस्तु और उसके उद्देश्य को ही बदल डाला है'।

ऐसे में आज भूमंडलीकरण के फलस्वरूप जन्में अस्मितामूलक अंतर्विरोधों और विसंगत कर दिए गए कृषक–मजदूर जनता से जुड़े वर्गीय अंतर्विरोधों, दोनों के समाधान अर्जित करने के लिए भूमंडलीकृत यथार्थ और उसे देखने–समझने वाली उत्तर–आधुनिक अवधारणाओं की सही समझ हासिल करनी होगी। उन अवधारणाओं में निहित भावी मंतव्यों और निहितार्थों को रेखांकित किये जाने की आवश्यकता है। वस्तुतः उत्तर आधुनिकता ने सिर्फ अस्मिता मूलक द्वंद्वों का रेखांकन ही नहीं किया है अपितु यथार्थ को देखने के नजरिये में भी एक भारी बदलाव पैदा कर दिया है। असल में उत्तर आधुनिकता समाज और मानव–समस्याओं को देखने का एक 'नया' नजरिया प्रस्तुत करती है। यह जो 'नया' है, वो एकवचन में न होकर असल में बहुवचन में है। अर्थात समाज और मानव समस्याओं को देखने की कोई एक प्रयुक्ति और नजर नहीं, अपितु उसे एकाधिक नजरों से देखा जा सकता है। ऐसे में कहने की कतई आवश्यकता नहीं रह जाती कि, देखा गया समाज, मानव, और उसकी समस्याएं एक ही

नहीं रह जाती। उनके इतने अर्थ उभर आते हैं कि किसी एक अर्थ को अंतिम नहीं माना जा सकता। यहीं उत्तर–आधुनिक दृश्टि ने यथार्थ को परस्पर विरोधी ही नहीं अपितु सामानांतर पाठों की संभावनाओं से भर दिया है। यह यथार्थ की एक नई स्थिति है, जिसे समझा जाना चाहिए। क्योंकि यथार्थ की यह समझ 'समस्याओं' को किसी सामूहिक समाधान की दिषा में ले जाने से रोकती है। वो समस्याओं के 'सामुदायिक' पाठ का निर्माण करती है। स्त्री, दलित, आदिवासी ही नहीं अपितु अन्य भाशाई और क्षेत्रीय अस्मिताओं की समस्याएँ, सामाजिक ढांचे और संरचना की समस्याएँ होने की बजाय, विषिश्ट सामुदायिक पहचान की अपनी समस्याएँ हो जाती हैं। इसे समझा जाना जरूरी है कि उत्तर आधुनिकता ने समाज के स्थान पर समुदाय को स्थापित करने का काम किया है। भूमंडलीकरण ने सामाजिक अर्थ–तंत्र को बाजार में और सामाजिक चेतना को समुदाय–बोध में ढालने का काम किया है। इस जटिलता को खोले बगैर उत्तर–आधुनिक पाठक से 'कम्युनिकेषन' स्थापित कर पाना संभव नहीं होगा। इस सन्दर्भ में रामविलास जी का हिंदी–जाति को लेकर किया गया भाशा चिंतन देखा जा सकता है।

हिंदी–जाति की जिस अवधारणा को रामविलास जी ने लम्बी साहित्य साधना के माध्यम से उकेरा था, उसे हिंदी क्षेत्र की बोलियाँ ही स्वीकार करने को तैयार नहीं है। खासकर भोजपुरी, मैथली, बुंदेली या फिर बघेली भाशा–भाशी क्षेत्रों में उभरे अस्मितापरक स्वरों को देखा जा सकता है। कहने की जरूरत नहीं कि इन उभरते हुए स्वरों को हिंदी जाति की एकता को खंडित करने की मंषा के तौर पर ही देखा जाता रहा है, लेकिन अब और नहीं देखा जा सकता। डॉ. बली सिंह रेखांकित करते हैं कि, "रामविलास जी एक ओर लोक भाशाओँ को महत्त्व देते हैं। तो दूसरी ओर एक भाशाई इकाई या जाति कोकृ."4लेकिन "वे अधिक तरजीह जातीयता को देते हैं जिसमें अनेक लोक भाशाओँ का विलय हो जाता है। यानि वे बहुलता की पहचान तो करते हैं पर एक जातीयता के केंद्र की तरफ बढ़ जाते हैं।"5 और जैसे ही केंद्र हिंदी–जाति होती है, "लोक भाशाओँ की अस्मिता को हिंदी जाति की यह अवधारणा निगल जाती है।"6 यानि लोकभाशाओं के अपने अस्तित्व और अस्मिता को हिंदी जाति की यह अवधारणा संबोधित नहीं करती। इसी के साथ ही हिंदी जाति की यह भाशिक अवधारणा आज भूमंडलीकरण के फलस्वरूप आरम्भ हुए लोकभाशाओं के संहार को भी संबोधित नहीं कर पाती। डॉ. बली सिंह लिखते है, "आज के भूमंडलीकरण के दौर में, इस पूंजीवादी विकास के दौर में लोक दृ उसकी भाशा और उसकी संस्कृति समेत दृ समाप्त हो रहा है। आज की हिंदी कविता में उसको संरक्षित करने पर बहुत बल है। अभी सरकारी आंकड़ा आया है कि भारत में 250 भाशाएं समाप्त हो गयी हैं। यानि ये भाशा समूह (संस्कृति) ख़त्म हो गए। इनकी अस्मिता ख़त्म हो गयी।"7 ऐसे में बिना इन स्थितियों और संहारों को संबोधित किये, हिंदी–जाति की एकता का यह केंद्र या फिर ऐसे ही अन्य दूसरे भी, कितने 'व्यापक' यथार्थ को बिम्बित–प्रतिबिंबित करते रह सकते हैं, क्या कहने की जरूरत रह जाती है?

समकालीन अस्मिता विमर्षो का बल इसी तर्क पर पारंपरिक 'केन्द्रों' के नकार और स्थगन पर है। पारंपरिक 'केंद्र' अस्मितापरक 'उप–केन्द्रों' का प्रतिनिधित्व ही नहीं करते, इसे अस्मिता विमर्षकार बारम्बार रेखांकित करते हैं। कहने की आवष्यकता नहीं है, कि समकालीन वामपंथी–जनवादी हिंदी आलोचना के लिए यह उहापोह की स्थिति है। लेकिन डॉ. बली सिंह की आलोचना इससे बचकर नहीं निकलना चाहती। वो अस्मिता विमर्षकारों की असहमतियों का सामना करना चाहती है। आलोचना में लोकतान्त्रिक होना चाहती है। लेकिन सवालों के साथ। डॉ. बली सिंह रेखांकित करते हैं कि ऐसा नहीं है कि सवाल सिर्फ अस्मिता विमर्ष ने ही समकालीन वामपंथी–जनवादी आलोचना के सामने खड़े किये हों, अपितु गौर से देखें तो दिखाई पड़ेगा कि सवाल तो खुद अस्मिता विमर्षों के सम्मुख भी खड़े हुए हैं जिन्हें बिनसुल्झाये तो अस्मिता विमर्ष का नजरिया भी आगे नहीं बढ़ सकता। और वो सवाल है सामूहिक मुक्ति के स्वप्नों के साथ अस्मितापरक 'उप–मुक्तियों' का वैचारिक सम्बन्ध क्या है। सामाजिक–राश्ट्रीय बदलावों की जगह सिर्फ 'भागेदारियों' पर बल आखिर क्यों है? क्या भागेदारी व्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तन उपस्थित कर सकती है। साथ ही यह भी कि सामाजिक–सांस्कृतिक पक्षों के साथ ही आर्थिक विशमता को भी चर्चा में ले आने के प्रति इतना 'असहजता से भरा' रवैया अस्मिता विमर्षों में सामान्यतः एक–सा क्यों दीखता है। 'मुक्ति' और 'समाधान' को लेकर अस्मिता विमर्षों के नजरिये में 'स्वभाव' की यह समानता प्रष्न तो खड़ी करती है।

यही कारण है कि डॉ. बली सिंह समकालीन हिंदी आलोचना को अस्मितामूलक विमर्षो के द्वारा रेखांकित और प्रस्तुत द्वंद्वों और संघर्शों को 'एकान्तवादी' नजरिये से देखने की बजाय उन्हें भूमंडलीकृत होती अर्थव्यस्था के

आलोक में भी देखने की जरूरत को प्रस्तुत करते हैं। ऐसा इसलिए भी है क्योंकि 'अस्मिताओं का उभार' और आर्थिक–भूमंडलीकरण का आरम्भ भारत में एक साथ ही होता है। दोनों को आज पच्चीस वर्श हो गए हैं। इससे अस्मिता विमर्षों के अपने 'केन्द्रों' को भी देखना और समझना आसान हो जायेगा और उनके उन वैचारिक 'आग्रहों' को परिप्रेक्ष में देखा जा सकेगा, जिनका गहरा सम्बन्ध आर्थिक और राजनीतिक सवालों के साथ है। उदहारण के लिए गेल ओमवेट भूमंडलीकरण को दलितों के लिए फायदेमंद मानती हैं, वहीँ आदिवासी वैचारिक का सारा बल 'आदिवासी कौन' पर है। ऐसे में एक बात तो समझ में आती है कि अस्मिता विमर्षों के 'केंद्र' मूलतः 'गैर–आर्थिक' स्वभाव वाले केंद्र हैं। इन्हें आर्थिक परिप्रेक्ष देना समकालीन हिंदी आलोचना के सामने आज सबसे बड़ी जरूरत है।

डॉ. बली सिंह रेखांकित करते हैं कि आज की केन्द्रीय षक्ति क्योंकि बाजारवाद यानि भूमंडलीकृत अर्थ–तंत्र है, तो तमाम केंद्र–हीनता के बावजूद 'केंद्र' तो मौजूद है। 'आलोचना' केंद्र को नजरंदाज नहीं कर सकती है। यहीं इस बात को समझना होगा कि जिसे हम उत्तर–आधुनिक वैचारिकी के तौर पर जानते हैं, वो जिन 'विकल्पों' की प्रस्तावना करती है वे इस केंद्र को उजागर नहीं होने देते। आखिर कैसे? क्या इसका एक बड़ा कारण इन अस्मिता विमर्षों का मूलतः 'गैर–आर्थिक' स्वभाव का होना नहीं है। वस्तुतः उत्तर आधुनिकता यथार्थ की जो समझ प्रदान करती है, वो समझ ही अपने स्वाभाव में गैर–आर्थिक और केंद्र–हीनता की समझ है। अस्मिता–विमर्षों पर यथार्थ की इस उत्तर–आधुनिक समझ का गहरा प्रभाव है। इसीलिए अस्मिता–विमर्ष विकल्प पर नहीं, विकल्पों पर बात करना ज्यादा पसंद करते हैं। हालाँकि डॉ. बली सिंह रेखांकित करते हैं कि बात सिर्फ इतनी ही नहीं है, अपितु उत्तर–आधुनिकता और उसके वैचारिक प्रभाव में अस्मिता विमर्ष भी तमाम विकल्पों को तो प्रस्तुत करते हैं लेकिन वर्गीय विकल्पों को नजर अंदाज कर जाते हैं। यहाँ उनका वर्गीय सवालों को लेकर (दुर) 'आग्रह' देखा जा सकता है। डॉ. बली सिंह लिखते हैं, "मार्क्सवाद का विकल्प सामने आते ही विकल्पों की सम्भावना की प्रतिज्ञा याद ही नहीं रहती"8

समकालीन हिंदी आलोचना, आलोचना के अपने दायित्व से मुंह नहीं मोड़ सकती। आलोचना का अपना 'स्वभाव' ही है, केंद्र का निर्माण करना। आलोचना को अनिवार्यतः केंद्र बनाने ही होते हैं। और यह काम वो अपने समय के मूल अंतर्विरोधों की सही समझ को रेखांकित कर करती है। आज समकालीन आलोचना के सामने चुनौती 'केंद्र निर्मिती' के अपने दायित्व को लेकर ही है। और कहने की आवष्यकता नहीं रह जाती की केंद्र–निर्मिती का यह कार्य जितना भूमंडलीकृत अर्थव्यवस्था के फलितार्थों को समझने की मांग करता है, उतना ही जड़ जमा चुके उपभोगतावादी 'सांस्कृतिक' और सौंदर्यबोधी–मूल्यों की भी समझ की मांग करता है। उत्तर–आधुनिकता ने समाज, व्यक्ति और अर्थव्यवस्था के त्रिकोण में उपस्थित यथार्थ के राजनीतिक 'केंद्र' को जिस चालाकी के साथ परावर्तित करने का कार्य किया है, उससे वैचारिक जिरह समकालीन आलोचना के लिए अनिवार्य है। इसके अभाव में आलोचना न तो समकालीन साहित्यिक लेखन का कोई 'पाठ' प्रस्तुत कर पायेगी, और न ही कोई प्रभावी विकल्प।

इसके लिए जरूरी है कि समकालीन आलोचना को खांचो और धड़ों में बटे साहित्य और साहित्यकारों को उन्हीं 'अस्मितापरक' आधारों पर अब और देखने की बजाय, समकालीन साहित्यिक रचनाधर्मिता के तौर पर देखने की जरूरत है। यथार्थ को खंड–खंड अस्मिताओं के रूप में देखने की जगह, यथार्थ को उसकी बहुस्तरीयता और समग्रता में देखने की आवष्यकता है। उसे उसके तमाम रूपों और स्वरों के साथ रचने और रेखांकित करने की आवष्यकता है। इसके लिए जरूरी है कि भूमंडलीकृत अर्थ–तंत्र के 'केंद' कोर्पोरेट–समूह को केंद्र बनाया जाये। क्योंकि इसी रास्ते से न केवल अस्मितामूलक अवधारणाओं को 'परिप्रेक्ष्य' दिया जा सकेगा, अपितु पारंपरिक आलोचनात्मक इतिहास का केंद्र बनी रही केन्द्रीय 'अवधारणाओं' को भी विकसित और रचनात्मक बनाया जा सकेगा। उन्हें अपने ही 'हासियों' को स्वर और षब्द देने लायक बनाया जा सकेगा।

उत्तर आधुनिकता ने जिन भी उप–केन्द्रों' की प्रस्तावना की है, वे सभी उप–केंद्र, 'केंद्र' की सापेक्षता लिए हुए हैं, समाज के सन्दर्भ और केंद्र के बगैर इन 'उप–केंद्रों' की कोई निर्मिती ही संभव नहीं है। स्त्री–दलित आदि उप–केंद्र समाज की संरचनात्मक बनावट की अपनी निर्मिती हैं। ऐसे में आलोचना को 'उप–केन्द्रों' को अंतिम वैचारिक केंद्र मानकर चलने की बजाये, अपने समाज–सन्दर्भ के केंद्र को ही असल में जिन्दा बनाये रखने की आवष्यकता है। समाज की 'संरचना' को केंद्र बनाये रखने की आवष्यकता है। क्योंकि समाज ही लक्ष्य हो सकता

है, समुदाय का भी और सामुदायिक अस्मिता का भी। इसे समझौते की तरह देखने की जरूरत नहीं है, अपितु समाज और समुदाय दोनों को 'संरचनात्मक' बनावट में देखने के नजरिये को उभारने के तौर पर देखने की जरूरत है। जिन्हें हम अस्मितापरक पहचानें या सामुदायिक अस्मिता कहते हैं क्या उनके संरचनात्मक विन्यास को देखने की आवष्यकता नहीं है? क्या यह समझ बना ली गयी है, कि समाज की संरचना से समुदायों की संरचना का कोई सम्बन्ध नहीं है, अगर हाँ, तो यह समझ गलत है। समुदायों की अपनी संरचना में भी समाज की संरचना ही है। लेकिन इसके लिए समाज और उसके समुदायों को वर्गीयता में देखने की जरूरत है, जिसके प्रति एक गहरा नकार अस्मिता और उत्तर–आधुनिक वैचारिकी में उपस्थित है। इसी से अस्मिता–विमर्शों की समाजार्थिक संरचना और निहितार्थों के कुछ दूसरे पक्ष भी प्रकट हो सकेंगे। वे दूसरे पक्ष, जिनका गहरा सम्बन्ध जहाँ एक तरफ सन 90 'के बाद उभरे मध्यवर्ग–उच्च–मध्यवर्ग के साथ है, वहीं दूसरी ओर जाति–अस्मिता की गोलबंदी से जुड़े नए–पुराने राजनीतिक प्रभु–वर्ग की महत्वाकांक्षाओं के साथ है। मोहनदास नैमिशराय ने 'अपने–अपने पिंजरे' में इसका अच्छा रेखांकन किया है। फणीश्वरनाथ रेणु की एक कहानी है, 'कपड़घर', जो अस्मिता के 'नेतृत्व' की वर्गीयता को रेखांकित करते हुए, उसके सत्ता में बदलने की कहानी है। अर्थात, जिसे दलन और अवहेलनाओं की शिकार अस्मिता के रूप में पहचाना गया, उसके सत्ता में बदलने की कहानी। और इसे सत्तात्मक बदलाव देने का कार्य जो करता है, वो 'समुदाय' का आमजन नहीं अपितु खासजन है। जब अस्मिताओं का नेतृत्व खास' के हाथों में है तो स्वाभाविक ही है कि समुदाय और समाज के जो वर्गीय सवाल और तनाव हैं, 'आम' और खास के बीच के, उनकी अभिव्यक्ति इन अस्मिताओं में न हो। उलटे अस्मिता के 'एकता' उस वर्गीय विषमता को ढांपने का ही कार्य करेगी। इसे रेणु ने रेखांकित किया था। आज उत्तर–आधुनिकता ने साहित्य और विचार की वर्गीयता को पर जो अघात किया है, उसकी भूमिका अस्मिताओं के 'नेतृत्व' की अपनी समाजार्थिक भूमिका ने ही तय की है। 'उत्तर आधुनिकता और समकालीन हिंदी आलोचना' पुस्तक में संकलित 'हिंदी आलोचना का समकालीन परिदृश्य : सन्दर्भ उत्तर आधुनिकता' लेख महत्वपूर्ण है। चंचल चौहान को 'कोट' करते हुए, लिखते हैं, "उत्तर आधुनिकतावादी विमर्श वर्गों के अस्तित्व को ही नकारता हुआ वर्गीय संस्कृति का भी निषेध करता है। संस्कृति भी अब वर्गीय संस्कृति नहीं है, वह मास कल्चर बन गयी है। जब वर्गों का ही अस्तित्व नहीं है तो भला उससे मुतालिक विचारधारा का क्या काम।"[9] 'उत्तर आधुनिकता और समकालीन हिंदी आलोचना' पुस्तक जोर देकर रेखांकित करती है कि जब तक समाज में वर्गीय विशमता और अंतर्विरोध बने रहेंगे, साहित्यिक–सांस्कृतिक लेखन कर्म को वर्गीय नजरिये से देखते रहना जरूरी है।

अस्मिता–विमर्शों का मूल स्वर अगर वर्गों के नकार पर है, तो इसका अर्थ यह नहीं हो सकता कि इसे तथ्य मानकर आगे बढ़ जाया जाये। उलटे इससे अस्मिता विमर्शों की वर्गीयता को और जोर देकर रेखांकित किये जाने की आवश्यकता पैदा होती है। 'उत्तर आधुनिकता और समकालीन हिंदी आलोचना' पुस्तक अपने समूचे विन्यास में इसे संभव करने की चेष्टा करती है। आलोचना केंद्र निर्मित करने के अपने मूल स्वभाव को नहीं भूल सकती, यह रेखांकित करते हुए 'पुस्तक' समकालीन हिंदी आलोचना में एक जरूरी हस्तक्षेप को संभव बनाती है। आशा और उम्मीद के स्वप्नों को अब भी संभव बताती है।

संदर्भ–सूची

1. उत्तर आधुनिकता और हिंदी आलोचना, बली सिंह, पृ. 45
2. उत्तर आधुनिकता और हिंदी आलोचना, बली सिंह, पृ. 4
3. उत्तर आधुनिकता और हिंदी आलोचना, बली सिंह, पृ. 58
4. उत्तर आधुनिकता और हिंदी आलोचना, बली सिंह, पृ. 49
5. उत्तर आधुनिकता और हिंदी आलोचना, बली सिंह, पृ. 50
6. वही
7. वही
8. उत्तर आधुनिकता और हिंदी आलोचना, बली सिंह, पृ. 68
9. उत्तर आधुनिकता और हिंदी आलोचना, चंचल चौहान, पृ. 78

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 171-174

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

लोकतांत्रिक मूल्य, विज्ञापन और आज की हिन्दी कविता

*उमेश कुमार विश्वकर्मा**

कविता उतनी ही प्राचीन है, जितनी यह सृष्टि।... सृष्टा जब सृष्टि की कल्पना की तो वह एक कविता थी"[1] अर्थात सृष्टि की रचना कविता के रूप में हुई। कविता ही पहली बार सृष्टि के रूप में वर्णित हुई और सृष्टि का स्वरूप कविता के रूप में निर्धारित हुआ। ऐसा कहा जा सकता है। जीवन की उत्पत्ति में कविता के मूल सिद्धांत को प्राप्त करना ठीक वैसे ही था जैसे किसी सुंदर बच्चे का जन्म लेना। जिसमें मन की पवित्रता और बुद्धि की कोमलता को स्थान मिला। अर्थात कविता ने जब से मानव जीवन में प्रवेश किया तब से वह सृष्टि का प्रारंभ ही था। वह मानव जीवन में रस, स्वप्न, प्रेम, करुणा, दया और ममता का विस्तार होता है। क्योंकि मानव जीवन का स्वरूप बदलता रहा है। इसलिए मानव जीवन के प्रारंभिक काल से ही राजनीति ने भी किसी रूप में मानव समाज में अपनी जगह बना ली थी। ऐसा कहा जा सकता है कि राजनीति का प्रथम स्वरूप लोकतंत्रवादी था। जनता का हित साधन करना है उसका मूल लक्ष्य था। जैसे–जैसे मानव सभ्यताओं का विकास होता चला गया ठीक उसी गति से राजनीति में छल, प्रपंच और अनीति का बोलबाला होता गया। राजनीति में राज भी रहा और नीति भी रही लेकिन धीरे–धीरे नीति जनता से दूर होती गई और लोग स्वार्थ के वश में अपने आप को पाने लगे। राजनीति एक ऐसा अखाड़ा बन गई जिसमें जनकल्याण के नाम पर छल होने लगे। तब से राजनीति का स्वरूप विकृत हो गया। ऐसा कहा जा सकता है। बीसवीं शताब्दी में विभिन्न राजनीतिक विचलन और लोकतंत्र के आगमन ने राजनीति को एक नया आकाश दिया। वही कविता को भी एक नया आकाश मिला।

"यह संयोग की बात नहीं है कि क्रांति के दौ में संसद, सोवियत पंचायत, सामंती समाज की प्रतिनिधि संस्थाओं को लोकतांत्रिक संस्थाओं में रूपांतरित किया गया था। लेकिन बाजार पूंजीवाद के वर्तमान दौर में ताकत के खेल ने उन संस्थाओं को विकृत और हास्यास्पद बना दिया है। लोकतंत्र को सभी जगह उससे लाभ उठाने वाले सत्ताधारियों ने ही विकृत और हास्यास्पद बनाया है। यह प्रक्रिया विभिन्न समाजों में भी चालू है। और भूमंडलीय स्तर पर भी ताकत के द्वारा लोकतंत्र की पहचान में लोक (या जनता) की इच्छा का प्रश्न है? हो जाता है। फौजी और सत्ताएं निर्णय करती हैं।"[2]

कविता में लोकतांत्रिक शक्तियों को विकसित करने का यह दौर रहा है और हम इस दौर की हिंदी कविता को देखते हैं तो तमाम बड़े और छोटे कवियों ने राजनीति के विकृत रूप को व्यापक रूप से जनता के समक्ष लाकर रख दिया है और यह सूचित किया है कि राजनीति में वही पुरानी स्वच्छता और समाज को निर्मित करने का विकास होना चाहिए। जनता की शक्ति और लड़ने पर, कवि मलय कहते हैं कि, यथा : "समय की शाण पर चढ़ा हुआ रक्त की चिथड़ाती बूँदें असंख्य झरती हुई दिपती हैं खर्र–खर्र ध्वनि में समाहित षब्द बीजों के लिए रीढ़ से रेखाएँ तीर–सी खिंचती हैं अँकुराया हौसला बढ़ता है हवाओं में लहर कर साथ चलता है इस पूरी गति में अपने को पछीटते आता हूँ बीतता आता हूँ इस ज्योतित भाषा के काग़ज़ की तलाश में खुद को ही पूरा पा जाने को समय से झगड़ता हूँ शाण पर चढ़ा हुआ।"[3] राजनीति जब विकृत हो जाती है तो निश्चय ही जनता को अपनी कमर कसनी पड़ती है। ऐसे ही नहीं एक बार नागार्जुन ने लिखा कि–'सिंहासन खाली करो कि जनता आती है'।

21वीं सदी के भारतीय समाज में कविता अपनी पहचान बना ली है जिससे कोई अछूता नहीं है आज का भारतीय समाज एक ऐसा समाज बनता चला जा रहा है जो शहरों की ओर अग्रसर है गांव से बाहर निकलकर शहरों की ओर बढ़ता चला जा रहा है शहरों में लोग इसलिए बढ़ते हैं क्योंकि उनकी आवश्यकता की वस्तु वहां

* *शोध छात्र, हिन्दी विभाग, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा, म.प्र.*

पर उपलब्ध होती है आज की कविता हमें यहां बताती है कि गांवों में रह रहे लोगों और शहर में रह रहे लोगों में क्या अंतर है कविता ही समाज का दर्पण है सामाजिक मुद्दों को एक आयामी सफर देने का कार्य कविता करती है कविता अनेक प्रकार की कुरीतियों को दूर करती है भूमंडलीकरण का समय है लोग वहीं पर दिया क्यों जलाते हैं जहां पर रोशनी होती है एक समाज के लिए प्रश्न चिन्ह है जो व्यक्ति जितना ही बड़ा है वह उतना ही बड़ा होता जाता है जो जितना छोटा है उतना ही छोटा हो रहा है ।

अनेक साहित्यकारों ने आलोक धन्वा, राजेश जोशी, केदारनाथ सिंह, मंगलेश डबराल, निर्मला पुतुल, ,विनोद विश्वकर्मा आज की कविताएं कहीं ना कहीं हमें प्रभावित करती हैं और यह संदेश देती हैं की भारतीय समाज कि शहरों में लोग किस तरह से अपनी जिजीविषा यापन कर रहे हैं किस तरह से वे व्यवहारिक जीवन जी रहे हैं इन सब का जिक्र आज के साहित्यकार लेखनी से करने का प्रयास करते हैं। 21वीं सदी में जो शहरों में संभावनाएं दिखाई देती हैं वह हमें यह बताती है कि हमारा समाज किस तरफ जा रहा है क्या स्थित है शहरों में आज बड़ी–बड़ी इमारतें बनती चली जा रही है लोग एक दूसरे को भूलते चले जाते हैं एक दूसरे से संपर्क नहीं करते अपने आप में ही मस्त रहते हैं 21वीं सदी के साहित्यकार 'लालटू' की कविता 'शहर' यह स्पष्ट करती है कि शहर में लोग किस तरह रहते हैं–"कोई यह शोर बंद करवाए,/शहर मोतियों से सजा है,/ओ मुझे क्यों चुभती है मेरे नाखून बढ़ चले हैं/वक्त आ गया है कि मैं पंजे गा? सकूं /मेरे अंदर से यह कैसा धुंआ/सड़कों पर जगमगाती रोशनी को ढंक लेने को आतुर है/यह कैसी उम्मीदों के परचम लहरा रहे उन सब को कोई चुप करवाएं/उठेगा शोर आगे तो वह महाकाल का होगा/मेरी प्यास की चिंघाड होगी/मेरे आकाओं और उन सब के आका उस घोर अंधेरे का शोर होगा/वह इस शहर को कोई तैयार करो कि यहां का हर शख्स अंधेरे वक्तों का स्वागत करे/अब सभी कविताएं लय विहीन होगी/कोई नहीं उच्चारेगा प्यार..."[4]

भारतीय समाज का बदलता परिदृश्य आज हमें संसार की हर परिस्थितियों का सामना करते हैं और यह भूमंडलीकरण ही हमें शहरों की ओर जाने का प्रयास कर आता है जिस तरह से मनुष्य अपनी आवश्यकताओं के लिए आगे बढ़ता चला जा रहा है और नैतिक दायित्वों भूलता चला जाता है उससे स्पष्ट होता है कि गति मिली और यह गति रह रहे लोगों पर क्या प्रभाव डालती हैं। समाज के जो गरीब तबके के लोग हैं वह गांवों में ही निवास करते हैं अपनी जीवनी गांवों तक ही सीमित रखते हैं क्योंकि शहरों में पूंजीपतियों का अड्डा है जिनके पास पैसे हैं वह शहरों में जा रहे हैं और जो निर्धन वर्ग के लोग हैं वह गांवों में रहा करते हैं इन्हीं कारणों से हमारे समाज के बहु प्रतिष्ठित लोग शहरों में निवास करते हैं और वह स्पष्ट करते हैं कि निर्धन वर्ग के लोग शहरों में निवास नहीं कर सकते आज का जो साहित्यकार हैं सामाजिक विमर्श के साथ जोड़ा जाए कि वह समाज को एक नई गति दें जिसके फलस्वरूप समाज में रह रहे लोगों का भविष्य अच्छा हो। आज का साहित्यकार समाज को देखता है यहाँ रह रहे लोगों को यथार्थ पर जीवन जीने को प्रेरित करता है साहित्य समाज का दर्पण हो वह दर्पण वह आईना ऐसा आईना होता है जो सबका हित करने के लिए तत्पर होता है आज तेजी से शहरीकरण हो रहा है शहरों की ओर लोग अपना आशियाना बनाना चाहते हैं उतनी ही तेजी से मानवीय भावनाओं में भी बदलाव आता नजर आता है कारण है कि लोग व्यक्ति पर जीवन जीना अच्छा मानते हैं परिवार में कोई रहना नहीं चाहता है जिसके कारण समाज संस्कृति में बदलाव देखने को मिलता है हम जैसे अपने समाज को आप को 21वीं सदी की ओर ले जाते हैं वैसे ही देखते हैं कि कविता और समाज का क्या रिश्ता बनता चला जा रहा है मन में जो विचार आते हैं समाज को देखने के बाद उन विचारों को यथार्थ रूप में प्रकट करने का एक साहित्यकार प्रयास करता है वह साहित्यकार को अनेक प्रकार के डंस झेलने पड़ते हैं। कारण है की जिस व्यक्ति के खिलाफ जिस सत्तात्मक पुरुष के खिलाफ साहित्यकार लिखता है उसे अनेक प्रकार के कष्ट भी उठाने पड़ते हैं आज का साहित्यकार नागार्जुन नहीं है कबीर, नहीं है जो इतना फलक बढ़ा कर अपने विचार प्रकट कर सकें। भारतीय समाज को जो आईना दिखाने का कार्य नागार्जुन अपनी कविता के माध्यम से करते हैं वह आज के साहित्यकार करने का प्रयास करते हैं लेकिन कर नहीं पाते इंदिरागांधी, पंडित नेहरू के विचारों को जिस तरह से अपने कविता में समायोजन करने की बात करते हैं वह साहित्यकार दूसरा नहीं कर सकता जिस तरह से समाज के विभिन्न रूपों को रेणु ने किया है उसी तरह अन्य साहित्यकार नहीं कर सकता आज का साहित्यकार मार्क्सवादी तो है लेकिन अपने विचारों को यथार्थ परख रखने में डरता है। दिनेश कुशवाह ने कविताओं के से अनेक प्रकार रोपित करते हैं और वह स्पष्ट

करना चाहते हैं कि समाज में रह रहे लोगों को तनाओं का सामना करना पड़ता है किस प्रकार से उनके जीवन में भिन्न कष्ट आते हैं लेकिन वह अपने मानवीय मूल्यों को जीवित रखने के लिए शहरों की ओर ना जाकर गांवों में ही निवास करना पसंद करते हैं। भारतीय समाज तेजी से बदलता नजर आ रहा है कारण यह है कि शहर में हर संभावनाएं होती हैं और इसीलिए हर संभावनाओं को पाने के लिए लोग शहरों के लिए भागना शुरू कर दिए हैं कविता और शहर का संबंध कह रहा है एक साहित्यकार शहर में रहकर शहर की जीवनी को देखता है और उसे यथार्थ पर लिखने का प्रयास करता है इसीलिए हम कह सकते हैं की लोग वहीं पर दिया क्यों जलाते हैं जहां पर उजाला होता है।

हमारी संस्कृति खानपान जो तेजी से बदल रहा है। उसका कारण है विज्ञापनवाद, बाजारवाद। इन्हीं के कारण हम समाज से शहरों की ओर भागते हैं। शहरों में अनेक प्रकार के बुरे कार्यों में फंसते चले जाते हैं और उससे हम निकल नहीं पाते हैं। जिसके कारण हमारी जिंदगी अच्छी भी हो जाती है और बुरी भी हो जाती है। आज सामाजिकता का समय है। समाज में रह रहे लोगों को कष्टों का सामना करना पड़ता है। पर सत्ता पर बैठे लोगों कि जो आंखें हैं इतनी मजबूत है, उनका दिल इतना मजबूत है कि वह देखते तो है सामने वाले के कष्ट को लेकिन दूर करने का प्रयास नहीं करते, कारण यह है कि हमारे समाज के लोग एकल परिवार में जीना चाहते हैं। यह परिवार में नहीं रहना चाहते। जिसके कारण आज हम कहीं ना कहीं दूर होते नजर आते हैं। 21वीं सदी के इस दौर में विज्ञापनवादी एक ऐसा समय आ गया है, जहां वस्तुओं के साथ मनुष्य का भावनात्मक संबंध होता नजर आता है। उस्ताद कारीगर पूरी तरह से किसी वस्तु को निर्मित करता था और अपने निर्मित वस्तु को देखकर संतोष प्राप्त करता था। आज ऐसा नजर नहीं आता है। आज विज्ञापन ही सब कुछ करता है। कैसा सामान है, अच्छा, बुरा, उसको लोग नहीं देखते विज्ञापन में उसका प्रचार देखने के बाद हम लोग उसको खरीदना चाहते हैं। आज हम देखते हैं कि किसी प्रोडक्ट को ज्यादा से ज्यादा विक्रय करने विज्ञापन का सहारा लेते हैं।

इस दौर में विज्ञापन का ऐसा समय देखा जा रहा है कि श्रमिक वर्ग अभी भी इतना ही करता है। जितना पहले करता था। लेकिन उसे लाभ विज्ञापन के द्वारा से ही होता है। अशोक कुमार पांडे की कविता 'कहां होगी जगन की अम्मा?" में वाचक अंकल चिप्स के लिए ठुनकती बिटिया को देखकर अपने बचपन को याद करती है। जब वह जगन बड़ी अम्मा के भांजे की सौंधी सी महक से बेचैन हो लगती थी। हालांकि उस भुजा का कहीं कोई विज्ञापन नहीं था लेकिन..."मां का दूध और रक्त से मिला था स्वाद तमाम खुशियों से सबसे सम्मोहक थी उसकी खुशबू वही खाते–खाते पहले पहल पे, थे हमने डिब्बाबंद खाने और शीतल पेय के विज्ञापन अब कहां होगी जगन की अम्मा क्या कर रहे होंगे आजकल मोहल्ले भर के बच्चों की गलियों में मुस्कान भर देने वाले हाथ आत्महत्या के आखिरी विकल्प के पहले होती है अनेक भयावह संभावनाएं।"[5] आज का मनुष्य बाजार द्वारा नियंत्रित है और बाजार की दुनिया विज्ञापनों की दुनिया है। यहां हर खबर, हर घटना प्रायोजित होती है। किसी अग्निकांड की चीज को भी यहाँ प्रयोग की अपेक्षा रहती है। हर व्यक्ति विज्ञापन बाजार हमें ऐसे आकर्षक चीजों से लुभावने विज्ञापन देकर विज्ञापन की दुनिया में ले जाता है। जहां से हम नहीं निकल पाते हैं। आज जब अनेक नायक नायिका विज्ञापन से समाज को संदेश देती हैं कि वर्तमान परिदृश्य टेलीविजन पर आधारित है। और यह टेलीविजन हमारे संस्कृति सभ्यता को धीरे–धीरे कमजोर बनाता चला जा रहा है। संस्कृति पर विदेशी संस्कृत हावी होती जा रही है। यही कारण है कि हमदिन प्रतिदिन कहीं ना कहीं उसको संस्कृति को अपना रहे हैं, और यह पहचान की संस्कृति हमारे जीवन को अस्त–व्यस्त करती जा रही है। एक दृश्य में सामाजिक परिवर्तन विज्ञापनों के कारण भी हो रहा है। आज साबुन, शैंपू, कपड़े, चप्पल, जूते, आदि को विज्ञापन के द्वारा लोगों तक पहुंचा दिया जाता है।

विज्ञापन झूठे होते हैं, कुछ अच्छे होते हैं, नायक–नायिका हमें विज्ञापन देकर बाजार की ओर अग्रसर करते हैं। आज के परिदृष्य में 'अरुण देव'की कविता 'विज्ञापन और स्त्री' इन्हीं चीजों को रेखांकित करती है कि किस तरह से विज्ञापन आदमियों को देह तक बेचने को मजबूर कर देता है–"यह सुंदर देह आत्मविश्वास से भरी यह मुद्रा स्वास्थ्य की यह चपलता मैं तुम्हें बार–बार देखता हूं पर कुछ ही देर में तुम बेचने लगती हो घड़ी, कपड़े, कारें, एक सोफा तुम्हारे जैसा तो कभी नहीं हो सकता तुम्हारी आवाज तक में फंदे डाल दिए गए हैं हॉट में सब्जी बेचती है स्त्रियां इतिहास में इतनी चीजें इतनी बार बेची खरीदी जा चुकी है कि उसमें पहले विक्रेता का चेहरा नहीं दिखता अनाजों के अदल बदल में संभव है कि किसी स्त्री को ही सुझा हो विक्रय संभव हो इस धरती की पहली विक्रेता

कोई स्त्री हो जब तक यह व्यापार स्त्रियों के हाथों में रहा होगा हाट में समान ही दिखते होंगे यह मुनाफा नहीं था यह सभ्यता की सीढ़ियां थी सभी चीजों के सभी जगह उपलब्ध होने का एक उत्सव जहां रंग मिली आवाजों ने एक–दूसरे को पहचाना गान और कथाओं की बैठक की जमी स्वाद श्रृंगार और परिधान के आदान–प्रदान का मेला लगा।"[6] वर्तमान युग पूरी तरह से बाजार से नियंत्रित है। कबीर के समय में उनके सामने बाजार तथा घर का अंतर स्पष्ट था। विदेशों की वस्तुओं को यदि कोई व्यक्ति नहीं जानता है, तो उस वस्तु का विज्ञापन रेडियो, फिल्म, इंटरनेट, टेलीविजन आदि आदि के माध्यम से दिखाया जाता है। आजकल टेलीविजन में इस तरह के विज्ञापन आने लगे हैं। जिनके कारण हम उन विज्ञापनों को देखते हैं, और सीधा अपने घर तक लाने का प्रयास करते हैं। वर्तमान युग पूरी तरह से बाजार से नियंत्रित है। कैटरीना के समान, ऐश्वर्या राय, प्रियंका चोपड़ा, सुष्मिता सेन, सलमान खान, अजय देवगन, धोनी, आदि ने हम तक विज्ञापन को पहुंचाया है और इसी के कारण हम आज बाजार की ओर झुकते नजर आते हैं। वर्तमान समय विज्ञापन का समय है। इस समय में किसी भी वस्तु को ब्रांडेड बनाया जा सकता है। जिस वस्तु को बाजार में साधारण रूप में कोई नहीं देखता या नहीं खरीद था उसे अच्छा बनाया जाता है और उसे अच्छी कीमत पर बेचा जाता है। 'लीलाधर जगूड़ी' लिखते हैं–"वे हथियारों और संक्रामक रोगों को आतंक का दूत बनाकर "अपने सारे विज्ञापनों को खबर या फीचर में छपवा कर हत्या को हथियार के मुक्त विज्ञापन में बदलवाते हैं षड्यंत्र तो पहले ही फिट है तंत्र के मसाले में जीवन का मसला किस यंत्र से देखें।"[7] केवल अच्छी चीजों को हमारे आसपास पहुंचाया जाता है बल्कि वर्तमान युग में विज्ञापन ही व्यापार की कुंजी होने के कारण कुछ ऐसी चीजें का भी विज्ञापन किया जाता है जो हमारे उपयोग की नहीं होती। लेकिन उनको असली दिखाकर विज्ञापन के माध्यम विज्ञापनवाद की इस गलत प्रवृत्ति को समकालीन कविता में व्यापकता से लिया जा सकता है। इस युग के विस्तार और न्याय को स्थापित करने वाली कविता आज व्यापक रूप से इस तरह से मानव के साथ छल किया जा रहा है।

संदर्भ–सूची

1. 'समकालीनता और साहित्य', राजेश जोशी, प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली संस्करण 2015, पृ. 49
2. 'उत्तर आधुनिकता, कुलीनतावाद और समकालीन कविता', अजय तिवारी, प्रकाशक : नई किताब प्रकाशन दिल्ली, 2018, पृ. 43
3. मलय, कविता : शाण पर चढ़ा हुआ, http://kavitakosh.org
4. पाखी पत्रिका, संपादक प्रेम भारद्वाज, इंडिपेंडेंट मीडिया इनीशिएटिव सोसायटी नोएडा, उत्तर प्रदेश, अंक 8 मई, 2016, पृ. 411
5. कहां होगी जगन की अम्मा, अशोक कुमार पांडे, कथन दिसंबर 2007, पृ. 15
6. पाखी पत्रिका, संपादक प्रेम भारद्वाज, इंडिपेंडेंट मीडिया इनीशिएटिव सोसायटी नोएडा, उत्तर प्रदेश, अंक 8 मई, 2016, पृ. 44
7. खबरों का मुंह विज्ञापन से ढका है, लीलाधर जगूड़ी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृ. 106

* * * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 175-181

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

तमिल-भक्ति साहित्य की दीर्घ गौरवमयी परम्परा में रामलिंग (वल्लार)

*सी. मणिकण्ठन**

तमिल साहित्य की दीर्घ गौरवमयी परंपरा में सत्य, ज्ञान, आध्यात्मिक चेतना आदि के असंख्यह 'अनुभव' और चिंतन–संदर्भ उपलब्ध हैं। ईसा–पूर्व की रचनाओं 'पत्तुप्पट्टि' और 'एट्टुतोगै' में शिव, विष्णु तथा मुरुगन विषयक प्रचुर सामग्री है। ईसा की प्रथम शती का प्रसिद्ध तमिल ग्रंथ 'तिरुक्कुरल' मूलतः लौकिक विषयों धर्म (अरम्), अर्थ (पोरुल्) तथा काम (इनबम्) का काव्य है। इस कृति में भी संन्यासी के धर्म की व्याख्या है। प्राथमिकता गृहस्थ–जीवन एवं सामाजिक दायित्व (शासन–व्यवस्था आदि की है पर सत्य, सत्य ज्ञान, तप आदि विषयों को पर्याप्त महत्व दिया गया है। रहस्य–भावना और ज्ञान–विवेचन के अनेक वर्णन शिल्पदिकारम् और मणिमेखलै महाकाव्यों में उपलब्ध हैं। प्रकृति सौंदर्य, प्रेम–संबंधों के दुःख और सुख, पीड़ा और आनंद के चित्रण में जो जीवन–दर्शन झलक रहा है वह कहीं भी आध्यात्मिक उन्नयन को अस्वीकार नहीं करता। वैष्णव भक्त कवियों–अलवारों–की चिंतनधारा से अब हिंदी का पाठक भली–भाँति परिचित है। भूत्तु आलवार प्रभु के ज्योति रूप का उल्लेख करते हैं। नम्म्लवार, कुलशेखर आलवार, पेरियालवार, आण्डाभल, तोण्ड्र अडिप्पोरडि आलवार आदि वैष्णम भक्त कवियों के काव्य में गहन अनुभूति, भक्त के हृदय का अपार स्नेह, निष्छल भक्ति, अदम्य विश्वास द्वारा उन्नयन मार्ग पर अग्रसर आत्माओं की यात्रा का वर्णन है। शिव–भक्ति की विशाल परंपरा में कारक्काल अम्मयार, तिरुज्ञानसंबंध, तिरुनावुक्क रसु, सुंदरमूर्ति और माणिक्क कवाचकर आदि ने रहस्यवादी चिंतन और भक्ति–मार्ग को नवीन आयाम प्रदान किए। सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, दीनवत्सल, कृपानिधान प्रभु की शरण ग्रहण करके उसी के प्रेमानंद में अभिषिक्त, उसी के प्रेम में उल्लसित माणिक्कवाचकर तो पुनः–पुनः उन्हें 'ज्योति–पुंज' के रूप में स्मीरण करते हैं। ज्ञान संबंध और तिरुनावुक्कलरसु ने दुर्भिक्ष पीड़ित जनता की सेवा द्वारा जीव–कारुण्य के मूलमंत्र को व्यावहारिक रूप प्रदान किए। तिरुज्ञानसंबंध ब्रह्माण्ड में व्याप्त शिवत्व को 'तुम ज्योतियों का अंत हो, तुम ज्योति के भीतर ज्योति हो' कहते हैं। तिरुनावुक्कसु ने अपने शिव के रूप में मधु देखा, दूध की धारा देखी और अलौकिक प्रकाश के दर्शन किए। 'यह गृह दीप (अंतस् दीप) है जो (अज्ञान रूपी) अंधकार को नष्ट करता है। वह 'शब्द' के भीतर का प्रकाशमय दीप जिसमें ज्योति है, वह शिवभक्तों का दीप है जिसे सब भक्त देखते हैं। उनके काव्य में शिव 'कीर्तिमान वेदज्ञ हैं जो ज्योतिर्मय द्युलोक के निवासी हैं।'

शैव–भक्ति की इस परंपरा में तिरुमूलर का विशिष्टद योगदान है। साधना–प्रधान चिंतन के प्रवर्तक तिरुमूलर के तीन सहस्त्र पदों में शिव के प्रेममय रूप को प्रमुखता मिली। उनकी कृति द्वारा चर्या, क्रिया और योग के सोपानों का मार्ग तथा पति, पशु और पाश का अभेद स्पष्ट हुआ। सृष्टि के शिखर पर स्थित 'ईश की ज्योति', सृष्टि में व्याप्त 'नाद' और अनंत ब्रह्माण्ड में 'परम' के अनवरत नृत्य का परिचय और भी गहरा हुआ। इसी भाँति भक्ति, साहित्य, संगीत एवं चिंतन के अद्भुत समन्य रूप में अरुण गिरि नाथ का काव्य भक्तों के हृदय को आलोड़ित और निनादित कर गया। इनके काव्य में 'मानव करुणा' मानव–मात्र के कल्याण की भावना प्रचुर मात्रा में है। इस परंपरा में तायुमानवर नामक संत ने सृष्टि के कण–कण में व्याप्त प्राण तत्व की विस्तृत व्याख्या की। उनके अनुसार विश्व की समस्त मानव जाति, दार्शनिक अवधाराणाएँ, जड़ और चेतन ब्रह्माण्ड मूलतः एक ही तत्व हैं। एक तत्व की ही प्रधानता कहो या उसे जड़ या चेतन। इस विशाल भक्ति–ज्ञान की परंपरा के उपरांत रामलिंग स्वामी का आगमन

* *सहायक प्राध्यापक एवं अध्यक्ष (हिन्दी विभाग), डी.आर.बी.सी.सी.सी. हिन्दू महाविद्यालय, पट्टाभिराम, चेन्नै*

हुआ। राम लिंग ने इस विशद परंपरा को प्रभु कृपा से आत्मसात् कर सर्वव्यापक, सर्व नियंता स्रष्टा को सर्वत्र देख पाने की क्षमता प्राप्त की।

युग–बोध का प्रभाव सत्, चित्, अनंत कृपा शक्ति : अपने युग के समाज के विलासितापूर्वक आनंद–विहीन जीवन को रामलिंग स्वामी ने निकट से देखा था। मानव–हृदय में स्थित काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद आदि अंतःशत्रुओं के कारण त्रस्त मनुष्य को उन्होंने 'शांत समरस सन्मार्ग की दिशा प्रदान की। 'शान्ती' का अर्थ है योगांत, कलांत, नादांत, बोधांत, वेदांत और सिद्धांत। योगाभ्यास से चलकर सिद्धांत तक पहुँचकर साधक–भक्त 'निर्विकल्प् समाधि में अनुभव होने वाले अनिर्वचनीय शिवानंद की प्राप्ति कर सकता है। इनकी चिंतन धारा में प्रयुक्त कतिपय शब्दों का अर्थ जान लेने पर विषय को स्पंष्ट् करने में सुगमता होगी। 'चित् सभा' सत्य ज्ञान को समझना (विज्ञान) 'पोर्दृसभा' सत्यज्ञान को जानना और विश्लेषण में सक्षम होना (परा ज्ञान) समरस–सन्माार्ग सभा सत्यज्ञान की चरमावस्था, एकत्व में आनंदपूर्ण द्वैत की स्थिति (संज्ञान)। रामलिंग स्वामी इन तीनों स्थितियों को 'सत्यज्ञान वेलि सत्य–चेतन लोक कहते हैं। चिदंबरम्–ज्ञानाकाष, अरुल्वेलि कृपालोक य अरुट् पेरुम् जोति वेलि दृ अनंत कृपा ज्योति लोक शुद्ध शिव–वेलि सच्चिदानंद से ऐक्य् का शुद्धलोक, उभय अम्बलर–द्विस्तरीय अनंत आकाश आदि सभी शब्द इसी सत्य–ज्ञान स्तर के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं तो श्री अरविंद के अनुसार 'अतिमानस लोक' है प्रायोगिक रूप में भौंहों के मध्य में आज्ञा–चक्र को 'चित् सभा द्वार', 'चित् सभा अंग' अथवा 'चित् सभा' माना गया है। गंभीर आत्मज्ञान के लिए 'चित् सभा' ज्ञान सभा अथवा तिरु चित्तम्बंलम् (तिरु चिट्रम्ब लम्) ही स्वीकृत स्थल हैं।

राम लिंग स्वामी ने अपने 'अनुभव' पर आधृत कविताओं में जिन स्थितियों का वर्णन किया है। उनमें से कतिपय पर विचार करें तो हमें सत्, चित् एवं अनंत कृपा–रूप शक्ति के बिंब प्राप्त होते हैं। पूर्ण एवं सर्व व्याप्त उस 'एक तत्व की आनंदमय प्राप्ति का मार्ग स्पष्ट करते हुए उन्होंने देह के चार स्तर माने हैं–

1. अशुद्ध भूत कार्यादि देह
   (मांस, त्वचा, स्नायुमण्डल, अस्थि पंजर, रक्तमज्जा आदि।)
2. शुद्ध भूत कार्य देह
   (इसकी शुद्धता असीम है ।)
3. शुद्ध भूत कारण देह
   (देह का सूक्ष्मा रूप)
4. ज्ञान देह
   (शून्य् की भाँति अदृश्य, आकाश की भांति अग्राह्य)

कवि ने वर्णन किया कि पर तत्व ने उन्हें ज्ञान दिया कि आत्मा शरीरों में कैसे प्रवेश करती, आत्मा को शरीर से विलग कैसे किया जा सकता है और आत्मा से विलग हुए बिना कैसे रहा जा सकता है। प्रभु–कृपा से, उन्हें अज्ञान का पर्दा हटते ही सृष्टि की सृजन–प्रक्रिया का बोध हो गया।

श्री रामलिंग स्वामी का 'शांत–समरस–सन्मार्ग' समरसता की स्थिति है। 'अभ्यास रूप योग के द्वारा प्राप्त करने में असमर्थ होने पर सभी कर्म प्रभु–अर्पित करने का मार्ग गीता में वर्णित है। इसी संदर्भ में श्रीकृष्ण का कथन है–

अद्वेष् सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी।।

सब भूतों में द्वेश भाव से रहित (एवं) स्वार्थ–रहित सबका प्रेमी और हेतु रहित दयालु है ममता, अहंकार से रहित सुख–दुख में सम और क्षमावान् है (ऐसा भक्त–मुझे प्रिय है मद्भक्तः मे प्रियः)। सांसारिक सुखों से जो शारीरिक या मानसिक प्रसन्नता होती है, आत्मा का आनंद उसकी तुलना में अत्यंत उच्च स्तर का है। आध्यात्मिक आनंद से प्रेम, धैर्य, सत्य, पाविर्त्य, करुणा, दृढ़त्व आदि के गुणों की उपलब्धि तो होती ही है, परंतु 'शुद्ध–आनंद' चिरकाल तक स्थायी होता है। जिस परम तत्व ने इस सृष्टि के प्राणिमात्र को जन्म दिया है, संपूर्ण लोकों में जो व्याप्त है, उस अनंत प्रभु का अलौकिक आनंद प्राप्त करना और बिना किसी बाधा के देश–काल से अबाधित उसका आस्वादन इस मार्ग का उद्देश्य है।

शिव–भक्तों का सादर स्मरण

रामलिंग स्वामी ने अपने काव्य में तिरुज्ञानसंबंध, तिरुनावुक्कदर, सुंदर और माणिक्कवाचकर को अत्यंत आदर के साथ स्मरण किया है। तमिल शैव–भक्ति परंपरा में इन चार महान् चिंतक, संत कवियों का अविस्मरणीय योगदान है। 'अरुट् पेरुज्योति' अनंत कृपा ज्योति की साधना के मार्ग में अग्रसर वल्लार ने इन ज्ञानी संतों के काव्य और उसमें वर्णित अनुभवों को आत्मसात् किया। इन अनुभवों को आधार बनाकर वे नव्य–साधना का संधान करते रहे। तिरुज्ञानसंबंध तो उन्हें मार्गदर्शन देने के लिए प्रकट हुए थे। रामलिंग स्वामी जब शिवानुग्रह के लिए प्रयत्नरत थे, शिव स्वरूप के आदि–अंत का ज्ञान न पाकर, विचित्र दुविधा से ग्रस्त थे उस समय–

मेरे दुःख को, दुरित को, दुविधा को देख
द्रवित हुए तुम, हे ज्ञान सम्बन्ध गुरो!
स्वयं पधारे कृपा पूर्वक, अनुग्रह पूर्वक
कृपा–कटाक्ष किया इस दास पर,
चेताया यह कहकर अपने ही अंतस्
में देखो, सब कुछ होगा व्यक्त, आदि भी,
अंत भी, हस्तामलकवत्।'

तिरुनावुक्करसु के सेवा धर्म को, मंदिरों के परिसरों के परिमार्जन करने, कंधे पर फावड़ा लिए कंकर–पत्थर उठाने का कार्य करने आदि को सादर स्मरण करते हुए रामलिंग कहते हैं–

हे पुण्य स्वरूप! मेरे हृदय कमल पर आसीन
हे कलामय चन्द्र!
तुमसे सविनय प्रार्थना है! वरदान दो मुझे
हे करुणा और ज्ञान के अगाध सागर, वरदान दो
मैं तेरे पुनीत चरणों का ध्यान करूँ नित!

कवि सुंदर ने शिव के प्रति अपने एक गीत में कहा था–

'सरगम हो तुम, गीत के लक्ष्य हो, फल हो तुम
हे शिव तुम अमृत हो, मेरे मित्र हो।'

उस गीत को हृदय में गुनगुनाते हुए वल्लार सुन्दर के प्रति अपने एक पद में गा उठते हैं–

तुम्हारे इन शब्दों और उनके अर्थों की गहराई में
डूबता है जब यह दास, पूर्णरूप से द्रवित हो जाता अंतःकरण
सम्पूर्ण व्यक्तित्वा पिघल जाता निःशेष
शेष रह जाता है केवल आनन्द, आनन्द ही आनन्द!

माणिक्कवाचकर के गीतों में 'एक महान् आत्मा के अंतस् से उद्भुत निष्ठापूर्ण अभिव्यक्ति है' जो प्रत्येक प्राणी के हृदय के गहनतम गह्वर में पहुँचकर अद्भुत प्रभाव उत्पन्न करने में सक्षम है। ऐसे भक्त के प्रति रामलिंग ने श्रद्धाभावना व्यक्त करते हुए गाया–

वान्कलन्दि माणिक्कवाचक निन् वाचकत्तै
नान् कलन्दुं पाडुंकाल नरकरुपंचाट्रिनिले...

दैवी ज्योति में विलीन माणिक्कवाचक! (मूल)

जब मैं गाता हूँ तुम्हारे वचनों को,
मिलाकर अपने मन–प्राण से,
तब आता है इतना आनंद मानो

ईख का रस मिला हो, दूध मिला हो,
फल का रस मिला हो, साथ में
मेरी देह, मेरे प्राण मिले हों...
वह 'आत्मा' में व्याप्त होने वाला अखण्ड आनन्द
नहीं अघाता कभी मैं जिसे पीते हुए!

रामलिंग स्वामी का प्रसिद्ध नाम अरुट् प्रकाश अथवा संक्षेप में 'वल्लार' है। वल्लार द्वारा रचित पदों का संकलन 'तिरु अरुट्पा' 'अनुग्रहगीत' छः खण्डों में विभक्त है । 379 दशकों में समग्रतः 5818 पद हैं । पेरियपुराणम् के विषय में विख्यात है 'पिल्लैपत्ति पुराणम् पत्ति' इसमें तिरुज्ञानसम्बन्ध की जीवन–गाथा का विस्तार लगभग आधे ग्रंथ में है शेष अन्य संतों की गाथाएं हैं। इसी भाँति तिरुअरुट्पा के पहले पाँच खण्डों में कुल 235 दशकों में 3266 कविताएँ हैं और छठे खण्डों में 144 दशकों में 2552 कविताएँ संगृहीत हैं।

तिरुवडि दीक्षा–पाद दीक्षा

गुरु अथवा प्रभु द्वारा दी जाने वाली 'दीक्षा' आध्यात्मिक–मार्ग की एक प्राचीन परंपरा है। नेत्रों से कृपा–दृष्टि 'नेत्र–दीक्षा', स्पर्श द्वारा शिष्या को ज्ञान देना 'स्पर्श–दीक्षा' तथा मंत्र द्वारा ज्ञान 'मंत्र–दीक्षा' है। यदि गुरु अपने चरण शिष्या के शीश पर रखकर दीक्षा दें तो उस पाद–दीक्षा को 'तिरुवडि–दीक्षा' कहते हैं । तमिलनाडु के सातवीं शती के धार्मिक तथा सामाजिक इतिहास में महत्वपूर्ण योगदान करने वाले तिरुनावुक्करसु 'अप्पम' को नेल्लूण के शिव–मंदिर में शिव द्वारा उनके मस्तक पर अपने चरण–कमल का स्पर्श करवा कर उन्हें तिरुवडि दीक्षा देने का अंतःसाक्ष्या मिलता है । तिरुवैयारु में पाए गए एक पद में अप्पकर कहते हैं–'प्रकाशमान कमलापति और विष्णु दोनों ने मिलकर जिन चरणों की खोज की उन्हें आपने ही मेरे ऊपर रखा। ''नम्बि आरुर 'सुन्दर मूर्ति नायाब तिल्लैचिदम्बिरम् में शिव का सृष्टि–नृत्य देखने की मनोकामना लेकर तिरुवदिक पहुँचे और सिद्ध वट मठ में विश्राम कर रहे थे तो वहाँ उन्हें 'तिरुवडि दीक्षा' प्रदान की गई। गंगाधर शिव द्वारा दी गई इस दीक्षा का वर्णन उन्होंने अपने एक गीत में किया है। रामलिंग स्वामी की साधना–यात्रा में तिरुवडि–दीक्षा का उल्लेख मिलता है। यथा एक पद में वे कहते हैं–

निखिल ब्रह्माण्ड के विशिष्ट नायक
सबके पति नायकनाथ
दयानिधि सदैव तरुण!
कृपा करके धर दिए अपने स्वर्णिम चरण
मेरे शीश पर
और प्रदान किया नित्ये अमृत
हे पुण्य पुरुष! (तिरु अरुट्पा–5448)

एक अन्यय पद में प्रभु की अनंत कृपा का गुणगान करते हुए सिद्ध–भक्त कह उठता है–

विशद वेद और आगमों ने
किया सतत प्रयास दीर्घ काल तक
तुम्हें व्याख्यायित करने का!
पर उनकी पकड़ में नहीं आए लेश भी!
किंतु अपार दया है, असीम है कृपा तुम्हारी
भा गई तुम्हें मेरी वाणी
स्वीकार कर जिसे
धर दिए निज चरण मेरे शीश पर
कृपा पूर्वक! (तिरु अरुट्पा–4869)

अम्बपरनर्तित प्रभु की लीला है कि कभी वे 'सर्वशक्तिमान' बन जाते हैं, कभी 'प्रियतम' बन जाते हैं, कभी स्वयं वे 'मैं' का रूप धारण कर लेते हैं। ऐसे प्रभु ने 'तिरुवडि दीक्षा' प्रदान करने के उपक्रम में जब–

धर दिए चरण युगल प्रभु ने
मेरे मस्तक पर,
किया कृतार्थ कटाक्ष–वीक्षण से
मेरे मनोरथ किए पूर्ण! (तिरु अरुट्पा–4898)

फलतः तन्द्रातिमिर विनष्ट हो गया, प्रेमपूर्वक निखिल सुख प्रदान कर दिए तथा समस्त दुःख भस्मीभूत हो गए। ह्रदय में निवास करने वाले ये देवता, जो सृष्टि के प्रत्येन विषय का ज्ञान देते हैं, जो जननी–जनक समान हैं, अनुपमेय, अद्वितीय हैं और साधुजन के ह्रदय में निवास करने वाले हैं वे चित्सभा में शोभायमान परम ज्योति–

निज चरणकमल कृपा से
मेरे शीश पर धरने वाले देवता
मेरे ह्रदय में भर देते हैं माधुर्य! (तिरु अरुट्पा–3906)

इस स्थिति में साधक दिव्यता के स्त्रोत से संयुक्त हो जाता है। प्रभु अपने भक्त को दिव्य धाराओं से ऐसा सराबोर कर देते हैं कि उसका अंग–अंग दैवी–प्रकाश से प्रकाशमान हो जाता है। यह कृपा जीव द्वारा अपने स्वरूप को प्राप्त करना है। प्रपंच में पड़कर होने वाला जड़त्व समाप्त हो जाता है तथा उसके दिव्य–स्वरूप की पुनः प्रतिष्ठा हो जाती है। इस उच्चभूमि पर केवल प्रभु या आराध्य का ही ध्याान शेष रहता है। संत तुकाराम के शब्दों में–

ध्याइन तुझे रूप गाइन तुझे नाम। (तु. अ. गा.3369)

प्रभु के चरणों का स्पर्ष हो जाने के बाद तो भक्त 'आत्मज्ञान' से दीप्त हो जाता है। वह साधन–सम्बल–विहीन होने पर भी समर्थ हो जाता है। वह जान जाता है कि 'बिन च्यंता च्यंता करै, इहै प्रभु की बाणि। 'अनन्त जीव–जन्तुओं का पालन करने वाला प्रभु ही मेरा संरक्षक है। ह्रदय में यह भाव उदय होता है–

हे भगवान्!
तुमने अपार कृपा की है इस तुच्छ प्राणी पर,
अंधकार में टटोल रहा था मार्ग नादान–अनजान,
उबार लिया मुझे, सम्बल दिया
और किया ऐसा अनुग्रह
विद्या, कला, ज्ञान सब स्वतः सिद्ध हो गए
अनायास ही! (तिरु अरुट्पा–3053)

प्रभु जिसे एक बार अपना लेता है उसे 'अनायास ही' संपूर्ण ज्ञान अंतस् में दृष्मान हो जाता है। वह स्वयं उसके चैतन्य में बस जाता है–'किया निज अनुग्रह और दिखाई परम सत्य की स्थिति।' कुमार्ग से रक्षा, मतवाद के प्रपंच से बचाना, सत्य–सन्मार्ग के उत्कृष्ट पथ पर अग्रसर करना, जब विभ्रम में हो तो अंतर्यामी बनकर उस भ्रम को दूर करना उस परमपुरुष का दायित्व हो जाता है।

जाति, धर्म, सम्प्रादाय भेद का भ्रमजाल : भक्ति–मार्ग में अंध श्रद्धा के कारण इष्टदेव की इच्छा पर अत्यधिक निर्भर होकर व्यवहार में स्वावलम्बी न रहकर अपनी दुर्बलताओं और कर्म हीनता का दोष इष्टदेव पर लगाकर कुछ भक्त संतुष्ट हो जाते हैं। इष्टदेव के नाम–भेद के कारण भी यदाकदा पारस्परिक विद्वेष का विकास होता है। रामलिंग स्वामी के भक्ति–चिंतन में इस प्रकार की सम्भावनाओं का परिहार किया गया है। प्रेम और करुणा की अनंत शक्ति से युक्त अरुट्पेरुज्योति–अनन्त कृपा ज्योति के रूप में शिव तत्त्व की आराधना में बाह्य–आडम्बर को तनिक भी स्थान नहीं है। उन्होंने शरीर को परम तत्व का निवास–स्थान बनाकर आशा, विश्वास और निष्ठा की भावना को विकास प्रदान किया। जीव–कारुण्य् और प्रकृति संरक्षण के द्वारा लोक–संग्रह को महत्व मिला एवं जीव तथा प्रकृति के विनाश को अवरुद्ध करने के लिए नवीन सकारात्मक दृष्टि का विकास हुआ।

जिस मंच पर, जिस सभा में, 'नाथ' नृत्य करते हैं, वह अपरिमेय है—वाणी से, मन से, बुद्धि से, किसी भी दृष्टि से। फिर भी वे अत्यंत 'सरल, सहज है मिलन में' जब उस प्राणनाथ से मिलन होता है तो बाह्य मिलन शरीर को अनश्वर कर देता है और अंतर—मिलन तो वर्णनातीत है, जिसका बखान करने में वाणी असमर्थ हो जाती है। उस परम ज्योति के समक्ष 'महत्तम ज्ञान भी प्रणत है', वह कोटि भास्कर सम सुन्न मण्डल के ऊपर प्रकाशित होता है पर मण्डल और शिव—मण्डल में देदीप्यमान होता है। कवि वल्लार का ज्योति चिंतन 'अगवल्' में अद्भुत दृश्यों को साक्षात् रूप प्रदान करता है। 'अनुग्रह परम ज्योति' को धर्म मार्गों से कहीं ऊपर, सुन्न—मण्डल में अनुभव करता हुआ कवि उसके समक्ष सूर्य, चंद्र और अग्नि के प्रकाश को भी मंद होते देखता है—

तुरीय अवस्था : से भी उन्नत
सुख और परिपूर्ण आनन्द
प्रदान करने में है सक्षम
यह चित्सभा—ज्योतिदेव की। (तिरु अरुट्पा—4615)

मानव—मात्र के लिए एक 'सत्य—मार्ग' की प्रतिष्ठा) करने वाले कवि को उसके ज्योति देव ने समस्त भेदभाव के मिथ्या रूप को उजागर कर दिया था—

''आदि में ही—बहुत पूर्व ही जताया था तुमने
यह जाति—धर्म—सम्प्रदाय आदि
सब झूठ है, फरेब है, भ्रमजाल है
इनसे न भ्रमित हो, न चकित हो, भयभीत हो!'' (तिरु अरुट्पा—4615)

केवल तेजोद्दीप्त, जाजल्वमान सत्य'—ज्ञान के मार्ग को महत्व प्रदान करने वाला साधक—चिंतक कवि स्पष्ट करता है कि आत्म तत्त्व अनंत, अनादि, सत्य तत्त्व है। इस जड़ चेतन जगत् में और समस्त दृश्यमान अथवा अज्ञात ब्रह्माण्ड में उस परम सत्य का ही शासन है जिसे अनंत कृपा शक्ति—अरुट्परुज्योति कहा गया है। उसी का प्रदत्त ज्ञान वल्लार के लिए मार्ग स्पष्ट करता है—

मेरा सारा कुल, जाति और वर्ग
समाया है छियानवे अंगुल में
मेरे ही भीतर! (तिरु अरुट्पा—4615)

गुरु नानक कहते हैं—'जाणहु जोति न पूछहु जाती आगै जाति न हे' (आसा, सबद—3) अर्थात् जीवमात्र में परमात्मा की ज्योति समझो य जाति के सम्बन्ध में प्रश्न न करो, क्योंकि पहले किसी प्रकार की जाति नहीं थी। मानव—मानव के सम्बन्धों के बीच जाति, वर्ण, कुल आदि का अहंकार एक विशाल खाई खोद देता है। मानव—मात्र का स्रष्टा, नियामक, अपार करुणा का सागर है यह उसके लिए जातिगत, धर्मगत, वर्णगत भेद का कोई महत्त्व नहीं है।

ज्योति—नटराज ने कवि के अंतर्मन में व्याप्त होकर यह स्पष्ट कर दिया था कि—

जाति, धर्म रूपी अनेक मार्ग
जो बने हैं और
शास्त्र के कूड़े जो बने हैं
सत्य नहीं हैं... (तिरु अरुट्पा—5805)

उस 'प्राणों में बसे प्राणेश' को, 'शुद्ध शिव परिपूर्ण' को प्राप्त करने का मार्ग 'प्रेम' का मार्ग है, उसी से समरस सन्मार्ग की प्राप्ति होगी, उसी से चित्सभा में सत्य तत्वों का दर्शन होगा और उसे प्रेम द्वारा 'अंत में पाकर' आनंद की प्राप्ति होगी। रामलिंग स्वामी ने जनता पर होने वाले अत्याचार, शासन में व्याप्त दुराचार और स्वार्थ की भावना से युक्त धनी लोगों के जीवन को भी देखा, जाना और समझा अतः परहित में संलग्न जीव—करुणा की भावना, ईश—अनुभव से संपन्न लोगों द्वारा स्नेह, सद्भाव और करुणा की भावना से समाज—संचालन की कामना की—

विनष्ट हो जाए
करुणा विरहित जन का दुःशासन
स्थाापित हो जग में
जीव–कारुण्यो सम्पन्न
सन्मार्गियों का शासन
ईश–अनुभव से सम्पन्न जन
पाएँ सकल मनोरथ
परहित चाहने वालों की
जय हो, विजय हो। (तिरु अरुट्पा–5618)

इस संदर्भ में 'सब ऐक्य भाव से रहें, मिल–जुलकर' जैसे कथनों द्वारा वल्लार सामाजिक वैषम्य के स्थान पर पारस्परिक सहज–स्नेह और सद्भावपूर्ण सम्बन्धों को विशेष रूप से काम्य मानते हैं ।

सहायक ग्रंथ

1. वळ्ळुवरुम वळ्ळलारुम् कण्डर समुदायम, डॉ. म. इलंगोवन।
2. जोतिवशिढ यिल वल्लार, को. वन्मीगनाथन।
3. चिदम्बिरम रामलिंग सिद्धिवल्लागम् वैरत्न, सभापति।
4. कण्मूंडि वंशक्क एलाममण्मूडि पोग...।

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 182-188

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

उत्तर आधुनिक कहानी के विकास में भूमण्डलीकरण का महत्व

*डॉ. बबलू कुमार भट्ट**

भूमण्डलीकरण आज हर जगह चर्चा में है। आए दिन गरमागरम बहसें हो रही हैं जिसमें भाग लेने वाले अधिकतर वह दक्षिणपंथी, अपने अधकचरे अखबारी ज्ञान और पूर्वाग्रहों से लैस होकर अखाड़े में ताल ठोंककर दिखाई पड़ रहे हैं। लोगों का मानना है कि इस ससार ने भूमण्डलीकरण के साथ एक नए युग में प्रवेश किया है। जहाँ एक विश्व बाजार होगा जिसका उदय स्थानीय क्षेत्रीय और राष्ट्रीय बाजारों के विलय के परिणामस्वरूप होगा। शीतयुद्ध के जमाने में दुनिया का जो विभाजन हुआ था वह पूरी तरह मिट जायेगा, राष्ट्रीय सीमायें बेमानी हो जाएगी। धीरे–धीरे उनकी भूमिका समाप्त हो जायेगी। सूचना प्रौद्योगिकी के विकास के फलस्वरूप व्यक्ति निगम और राष्ट्र सारे विश्व में एक दूसरे से शीघ्रातिशीघ्र बना लेते हैं। भूमण्डलीकरण का प्रतीक 'वर्ल्ड वाइड वेब' है जो लोगों को हर प्रकार की विभिन्नताओं के बावजूद जोड़ती है। शीतयुद्ध के जमाने में दो प्रतिस्पर्धी केन्द्र व्हाइट हाउस और क्रेमलिन थे जिनके बीच हाटलाइन के जरिए संपर्क निरन्तर रहता है।

भूमण्डलीकरण के युग में इन्टरनेट के जरिए लोग एक दूसरे से जुड़ रहे हैं और अब दुनिया का कोई एक केन्द्र नहीं है जहाँ से गतिविधियों का संचालन और दिशा निर्देशन हो। दुनिया का कोई इंचार्ज भी नहीं है। क्या संसार उस स्थिति की ओर जा रहा है, जिसकी बात कभी मार्क्स ने की थी। भूमण्डलीकरण के समर्थकों का कहना है कि राज्य की सार्वभौमिकता को बाजार की शक्तियाँ निगल जायेगी। कहा जा रहा है कि लोग अधिक मानवीय, स्व–अनुशासित तथा समाज स्व–विनियमित हो जाएगा। समाज बहुजन हिताय बहुजन सुखाय नहीं बल्कि सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय का लक्ष्य प्राप्त कर लेगा। इस प्रकार महात्मा गाँधी का सर्वोदय का सपना साकार हो जाएगा। भूमण्डलीकरण ने जीवन मूल्यों तथा आचार–विचार को अपनाया है। यह अनायास नहीं है। न्यूयार्क टाइम्स मैगजीन (28 मार्च, 1999) में प्रकाशित 'ए मेनीफेस्टो फॉर दी फास्ट वर्ल्ड' में फ्रिडमैन ने लिखा है कि[1] 'हम चाहते हैं कि दुनिया हमारे नेतृत्व का अनुसरण करे एवं जनतंत्रीय एवं पूँजीवादी बन जाए'' उनकी इच्छा है कि शीतयुद्ध के जमाने में ठप्पों को भूला दें। आज न कोई प्रगतिशील है और न कोई प्रतिक्रियावादी। सब एक हैं जिन्हें सब भूमण्डलीकरण ने एक नई पहचान दी है। फ्रीडमैन के भारतीय संस्करण गुरचरण दास हैं जो एक अरसे तक बहुराष्ट्रीय निगम प्रक्टर एवं गैम्बल से जुड़े रहे हैं। उनका दावा है कि भूमण्डलीकरण पूँजीवाद बाजार का अन्तिम चरण है जो एक तरह से स्थायी रूप से हमेशा–हमेशा रहेगा। अब वर्ग संघर्ष के निए कोई स्थान नहीं है। इतिहास अब अपने अंतिम पड़ाव पर आ गया है। अब दुनिया और मानवजाति मूलभूत एकता के सूत्र में बँध जायेगी। युद्ध अतीत के विषय बन जायेंगे। फ्रिडमैन ने भी कहा है कि मैकडोनाल्ड के हैम्बर्गर खाने वाले दो देशों में कभी लड़ाई नहीं होती।

भूमण्डलीकरण के समर्थक उसके उदय को देखकर वैसे ही भावविभोर हैं जैसे ऋग्वेद कालीन आर्य उषा काल में होते थे। फ्रिडमैन अपनी पुस्तक री लेक्सस एवं दी आलिवट्री में कहते हैं कि[2] भूमण्डलीकरण के प्रति मेरी वही भावना है जो उषाकाल के प्रति है। गुरचरण दास तो स्वर्ग की झलक देखते हैं जिसे उनकी पुस्तक इंडिया अनबाउन्ड में देखा जा सकता है। आज सभी देशों में सामाजिक आर्थिक विषमता में वृद्धि हो रही है जिसमें भूमण्डलीकरण का प्रमुख हाथ है। अनेकानेक पुरानी औद्योगिक ईकाइयाँ बन्द होती जा रही हैं, रोजगार के अवसर

* *असिस्टेण्ट प्रोफेसर (हिन्दी विभाग), श्रीमती विमला देवी इन्स्टीट्यूट आफ एजूकेशन (एटा), उ. प्र.*

बढ़ने के बदले घटते जा रहे हैं। किसान मंदी से त्रस्त हैं। दुनिया भर में निरंतर हो रहे विरोध प्रदर्शन इन्हीं बातों को प्रतिबिंबित करते हैं। भूमण्डलीकरण इस प्रकार का आर्थिक बढ़ावा दे कि गरीबों का भला हो। बर्नन एलिस ने जो दुनिया के बड़े नियमों से जुड़े हैं सुप्रतिष्ठित पत्रिका दी न्यू स्टैट्समैन द्वारा आयोजित भाषण 'इण्टरप्राइज आर एक्स प्लाइटेशन कैन ग्लारेबल बिजनेस बी. ए. फोर्सफार गुड?[3] (11 जुलाई, 2001) इसी बात पर अपना सारा जोर लगाया है। उन्होंने चेतावनी दी है कि यदि निर्धनतर देश भूमण्डलीकरण के आर्थिक फायदों से वंचित रहे तो विश्व की स्थिति खतरनाक बनती जाएगी।

भूमण्डलीकरण के पहले आर्थिक समृद्धि का लाभ कमोवेश सभी वर्गों और समुदायों तथा देशों को मिलता था। आर्थिक समृद्धि उस समुद्री ज्वार की तरह थी जिसने छोटी बड़ी सभी जहाज ऊपर उठते थे। मगर अब वह स्थिति नहीं है। भूमण्डलीकरण के आर्थिक लाभ मुख्य रूप से थोड़े से देशों और लोगों को ही मिल पाते हैं। दुनिया के धनाढ्य लोग जड़ विहीन हैं। अपनी पूँजी की तरह जहाँ चाहते हैं चले जाते हैं। उनका किसी देश या स्थान विशेष से कोई लगाव नहीं है। यह जोर–शोर से कहा जा रहा है कि पूँजीवाद शाश्वत है। उसने विगतकाल में सभी चुनौतियों का सफलतापूर्ण मुकाबला किया। मार्क्सवाद और उसकी साम्यवाद अब निर्जीव हो गए हैं इसलिए वह अजातशत्रु की स्थिति में आ गया है। आप उसकी आलोचना कर सकते हैं। भूमण्डलीकरण की खामियाँ गिना सकते हैं, परन्तु न आपके पास और न ही किसी अन्य के पास उसका कोई विकल्प है। बर्नन एलिस ने अपने उपर्युक्त भाषण में बतलाया है कि निजी उद्यम यानि पूँजीवाद ही एकमात्र निर्विवाद इंजन है जो आर्थिक समृद्धि की गाड़ी को आगे ले जाने के साथ ही आर्थिक एवं सामाजिक बेहतरी ला सकता है। पिछली लगभग दो शताब्दियों के दौरान उसने मार्क्सवाद की भविष्यवाणियों और पूर्वानुमानों को झुठलाते हुए लोगों को निर्धन बनाए रखने के बदले उपभोक्ता बनाया है और जड़ता और अत्युत्पादन के चक्रव्यूह से निकलकर निरंतर समृद्धिशील बाजारों के माध्यम से अपना कायाकल्प कर लिया है।

किंतु माइकल हार्ट और अंतेनियो नेग्री उपर्युक्त विचारों से असहमत हैं और वे भूमण्डलीकरण के सभी दावों को ठुकरा देते हैं। उनका मानना है कि एक नई भूमण्डलीय व्यवस्था का निर्माण चल रहा है, जिसे पुराने ब्रिटिश, फ्रेन्च, रूसी या अमेरिकी साम्राज्यवाद के विश्लेषणों के आधार पर नहीं[4] समझा जा सकता है। नई व्यवस्था पर किसी राष्ट्रीय शक्ति का नियंत्रण नहीं है और न ही ऐसा कोई केन्द्र है जहाँ से उस पर निगाह रखी जाए और उसका संचालन एवं निर्देशन हो। अनेक अंतर्राष्ट्रीय और अधिराष्ट्रीय (सुप्रोनेशनल) संगठन संयुक्त रूप से भूमण्डलीकरण का संचालन और निर्देशन कर रहे हैं। इन संगठनों में जी–8 विश्व व्यापार संगठन, विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष शमिल है, अपने लेख 'व्हाइट दी प्रोटेस्टर्स इन जेनेवा बांट में रेखांकित किया है, राष्ट्रीय नहीं बल्कि अधिराष्ट्रीय शक्तियाँ आज के भूमण्डलीकरण को शामिल कर रही है। हार्ट और नेग्री को भूमण्डलीकरण के प्रति कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु वे पूँजीवादी भूमण्डलीकरण के वर्तमान के स्वरूप के खिलाफ हैं। वे न तो पृथकवादी हैं और न राष्ट्रवादी। वे दुनिया से भागकर किसी सांगरिला (स्वप्नलोक) में जाने की भी पक्षधर नहीं हैं। उनके अनुसार विरोध प्रर्दशन भी भूमण्डलीय हो गये हैं और न ही समय की सुई को एक वैकल्पिक भूमण्डलीकरण आन्दोलन के पक्षधर हैं। जो धनी और गरीब तथा शक्ति सम्पन्न और शक्तिहीन के बीच विषमताओं को मिलाए और आत्मनिर्णय की संभावनाओं का विस्तार करे।[5]

अगर हम आज के विश्व परिदृश्य पर नजर डालें और 1990 के दशक की स्थिति से तुलना करे तो अनेक भारी परिवर्तन नजर आयेंगे। राष्ट्र–राज्य कमजोर हो गए हैं सोवियत संघ का एक दशक पहले विघटन हो चुका है। पूर्वी यूरोप में समाजवाद अब कोई शक्ति नहीं रहा है, ट्रेड यूनियन काफी कमजोर हो गये हैं और लगता है कि मार्क्सवाद अपनी पूरी चमक एवं आर्कषण पूरा खो बैठा है। भूमण्डलीकरण के वर्तमान रूप के समर्थक अंतर्राष्ट्रीय एवं अधिराष्ट्रीय संगठन बड़ी शक्ति के रूप के समर्थक अंतर्राष्ट्रीय एवं अधिराष्ट्रीय संगठन बड़ी शक्ति के रूप में उभरे हैं। इसको देखते हुए यह कहा जा सकता है कि वर्तमान स्वरूप में भूमण्डलीकरण का विरोध समय और शक्ति को जाया करना है। विरोध करने वालों को घर जाकर आराम करना चाहिए और भूमण्डलीकरण की प्रक्रियाओं के साथ अपने को एकीकृत लिखकर लाभान्वित होना चाहिए। किन्तु हार्ट और नेग्री इस प्रस्थापना से असहमत हैं। वे सिएटल से लेकर जेनेवा की गलियों में उमड़े जन–समुद्र में भविष्य के बीज देखते हैं। 'इन

आन्दोलनों' की एक उल्लेखनीय चारित्रिक विशेषता उनकी विविधता है। श्रमिक संगठन वाले पर्यावरणवादियों, पुरोहितों और कम्युनिष्टों के साथ खड़े हैं। हम एक जनसमूह (मल्टीट्यूड) के उदय की शुरुआत को देख रहे हैं जो हम किसी एक ही पहचान से परिभाषित नहीं होती। हम उसकी बहुलता में समानता ढूँढ सकते हैं।' वे विरोध प्रदर्शनों को बाइबिल में उल्लिखित बहिर्गमन (एक्सोड्स) का प्रतीक मानते हैं।[6] हजारों वर्ष पहले मिस्र से छह लाख यहूदियों के पलायन से समझ में आ जाता है कि विरोध प्रदर्शनकारी भूमण्डलीकरण की वर्तमान भयावह स्थिति से अलग होकर एक नयी सामाजिक आर्थिक व्यवस्था का निर्माण करना चाहते हैं जहाँ कोई शोषण और उत्पीड़न नहीं होगा। वहाँ भूमण्डलीकरण होगा मगर उसका स्वरूप जनतांत्रिक और समतामूलक होगा।

वर्तमान पूँजीवादी भूमण्डलीकरण ने सदा सर्वदा के लिए अलविदा कहकर चैन की साँस ली थी फिर रंगमंच के बीचो–बीच ला खड़ा किया है। हार्ट और नेग्री पूँजीवाद के वर्तमान दौर को एम्पायर कहते हैं जिसका निर्माण द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद औपनिवेशिक व्यवस्था के पतन के साथ ही शुरू हुआ।[7] सोवियत संघ के विघटन ने उसके मार्ग का सबसे बड़ा अवरोध हटा दिया है और वह एकीकृत विश्व पूँजीवाद बाजार के रूप में सामने आया। 1990 के दशक के आरंभ में 'आर्थिक एवं सांस्कृतिक विनिमयों का अप्रतिरोध्य और अपरिर्वतनीय भूमण्डलीकरण आरम्भ हुआ।' इसके परिणामस्वरूप न केवल भूमण्डलीबाजार और उत्पादन के भूमण्डलीय परिपथों का उदय हुआ बल्कि 'एक भूमण्डलीय व्यवस्था, शासन के एक नए तर्कशास्त्र एवं ढाँचे संक्षेप में, सार्वभौमिकता के एक नए रूप का भी' जन्म हुआ। साम्राज्य (एम्पायर) वह कर्ता है जो इन भूमण्डलीय विनिमयों को प्रभावकारी रूप से विनियमित करता है। वह एक सार्वभौमिक शक्ति है जो विश्व को शासित करती है। साम्राज्य (एम्पायर) साम्राज्यवाद (एम्पीरियलिज्म) से इस महत्वपूर्ण अर्थ में भिन्न है कि यहाँ सत्ता का कोई प्रादेशिक केन्द्र नहीं है और न ही उसका सीमांकन निश्चित प्राकृतिक सरहदों और अवरोधों के आधार पर हुआ है। वह शासन का एक केन्द्र रहित और प्रदेश विहीन (डिटरिटोरियलाइजिंग) यंत्र है, जो उत्तरोत्तर संपूर्ण भूमंडल को अपनी विस्तारशील सीमाओं के अन्दर समेट लेता है।

1990 के दशक के अंत तक भूमण्डल को आमतौर पर पहली, दूसरी और तीसरी दुनिया में बाँटा जाता था। सोवियत संघ और समाजवादी खेमे के पतन के बाद दूसरी दुनिया समाप्त हो गई है। अब केवल पहली और तीसरी दुनिया का अस्तित्व है। मगर मार्के की बात है कि वे एक दूसरे से गूँथ गई है। नतीजा यह हुआ कि हम पहली दुनिया में तीसरी दुनिया और तीसरी दुनिया में पहली दुनिया को भी पाते हैं। ब्राजील इसका सर्वोत्तम उदाहरण है।

हार्ट एवं नेग्री नहीं मानते कि भूमण्डलीकरण की प्रक्रियाओं तथा नई विश्व व्यवस्था की बागडोर अमेरिका के हाथों में है। एक ओर उसके भक्तगण हैं तो उसकी प्रशस्ति में लगे हैं तो दूसरी ओर विरोधी हैं। (जिसमें अधिकतम वामपंथी हैं) जो उसे साम्राज्यवादी गिरोह का दादा बता रहे हैं, जिसका मुख्य कार्य सारी दुनिया का शोषण एवं उत्पीड़न करना है। हार्ट और नेग्री इन दोनों दृष्टिकोणों को गलत मानते हैं,[8] क्योंकि वे इस मान्यता पर आधारित है कि अमेरिका ने भूमण्डलीय शक्ति का वह चोंगा धारण कर लिया है जिसे बहुत दिनों तक ब्रिटेन और अन्य यूरोपीय राज्यों ने पहना था। अमेरिका के विरोधी उसे अत्यन्त दुर्धर्ष, अपरिष्कृत और बेईमान साम्राज्यवादी उत्पीड़न मानते हैं जो उसके पक्षधर उसके परोपकारी, व्यावहारिक और कुशल विश्वनेता बतलाते हैं।

हार्ट और नेग्री की बुनियादी धारणा है कि सार्वभौमिकता का एक नया साम्राज्यवादी रूप सामने आया है जो उपर्युक्त दोनों दृष्टिकोणों को गलत साबित करता है। उनके ही शब्दों में 'आज किसी भी साम्राज्यवादी परियोजना का केन्द्र न तो संयुक्त राज्य अमेरिका है और न ही कोई भी राष्ट्र विश्व नेता नहीं होगा जिस तरह से कभी आधुनिक यूरोपीय राष्ट्र थे।'[9]

हार्ट एवं नेग्री 'साम्राज्य शब्द का प्रयोग उस अर्थ में नहीं करते जिसमें हम ब्रिटिश रोमन, चीनी या मौर्य साम्राज्य की बात करते हैं 'साम्राज्य की उनकी अवधारणा की मूलभूत विशेषता यह है कि उसकी प्राकृतिक अथवा भौगोलिक सीमाएँ नहीं हैं। उसका दबदबा या आधिपत्य असीमित है। 'साम्राज्य' के बारे में चार बातें ध्यान देने की हैं, पहली साम्राज्य ऐसी राज प्रणाली की धारणा को लगकर चलता है जिसके अंतर्गत सारा भूमण्डल आता है और जो सारी दुनिया पर शासन करती है।[10] साम्राज्य के आधिपत्य की कोई प्राकृतिक अथवा भौगोलिक सीमाएं

नहीं होती। दूसरी लेखक द्वय 'साम्राज्य' की अवधारणा के रूप में नहीं प्रस्तुत करते हैं जिसका आविर्भाव विजय में हुआ हो। वे वस्तुतः साम्राज्य को ऐसी व्यवस्था के रूप में प्रस्तुत करते हैं। जो इतिहास को कारगर रूप से विराम देती है तथा वर्तमान परिस्थितियों को अनंतकाल के लिए स्थिर बना देती है।

इस रूप में साम्राज्य के पास उत्पीड़न और विध्वंस की इतनी अपार शक्तियाँ हैं जितनी मानव इतिहास में कभी सुनी–देखी नहीं गई हैं। इसके बावजूद हार्ट और नेग्री निराशावादी नहीं हैं क्योंकि 'साम्राज्य' की ओर संक्रमण और भूमण्डलीकरण की उसकी प्रक्रियायें मुक्ति की शक्तियों के लिए नई और शानदार संभावनाएँ प्रस्तुत करती हैं। यहाँ यह नहीं भूलना चाहिए कि भूमण्डलीकरण ही एकीकृत अथवा एकार्थक परिघटन नहीं है बल्कि उसमें बहुविध प्रक्रियाएँ शामिल हैं। मुक्ति की शक्तियों का कार्य इन प्रक्रियाओं का प्रतिरोध करना और उसके खिलाफ लड़ना ही नहीं बल्कि उन्हें पुर्नसंघटित और पुनर्निर्देशित करना है जिससे नए लक्ष्य प्राप्त हो सकें। साम्राज्य का पोषण करने वाली जनसमूह की सृजनात्मक शक्तियाँ एक साम्राज्य विरोधी सत्ता यानि भूमण्डलीय प्रवाहों तथा विनिमयों के एक वैकल्पिक संगठन का निर्माण भी अपने आप कर सकती हैं। हार्ट और नेग्री तीन कार्य प्रस्तुत करते हैं, पहला वे भूमण्डलीकरण के वर्तमान में गहराई से जाकर यह निष्कर्ष देते हैं कि इन्टरनेट की ही तरह उसका कोई केन्द्र नहीं है– वस्तुतः यह 'स्थानविहीन' है।

क्रान्तिकारियों द्वारा अपने हमलों का लक्ष्य बनाने के लिए 1789 में फ्रान्स में बैस्टिल और 1917 में रूस में विंटर पैलेस (शीत प्रसाद) था, परन्तु भूमण्डलीकरण की दुनियाँ में भावी क्रान्तिकारियों के लिए ऐसा कुछ भी तो नहीं है। उत्पीड़न एवं शोषण का कोई निश्चित प्रतीक नहीं है जिस पर निशाना साधा जाए।[11]

दूसरा औद्योगिक पूँजीवाद के युग के 'मजदूर वर्ग' अथवा 'सर्वहारा' को वे पुनर्परिभाषित करके जनसमूह (मल्टीट्यूड) के रूप में प्रस्तुत करते हैं जो नया विविधतापूर्ण और प्रबल है। अंततः वे मार्क्सवादी वामपंथी द्वारा 1980 के दशक से दिए जाने वाली इस फतवे को बचकाना मानते हैं कि पूँजीवाद जड़ता का शिकार है जो उसे उसके पतन की ओर ले जायेगा। उनका यह मानना है कि उत्तर–आधुनिक भूमण्डलीय अर्थव्यवस्था उतनी शक्तिशाली नहीं है जितना उसके पक्षधर बतलाते हैं जिस प्रकार मार्क्स ने साम्राजयवाद और कम्युनिस्ट की विस्तृत रूपरेखा देने से इंकार कर दिया उसी प्रकार वे जनतांत्रिक भूमण्डलीकरण की विस्तृत रूप रेखा प्रस्तुत नहीं करते क्योंकि अब तक दुनियाँ वर्तमान भूमण्डलीकरण की परिधि से बाहर नहीं आ पाई है। हाँ अगली व्यवस्था वर्तमान भूमण्डलीकरण के दुर्गुणों से रहित होगी।

वे भूमण्डलीकरण के वर्तमान दौर का विरोध कर रहे प्रदर्शनकारियों द्वारा स्थानीय मुद्दों को उठाने को गलत नहीं मानते। वे खुश हैं कि सतही तौर से असंबद्ध मुद्दों को लेकर वे एकजुट हो रहे हैं और अधिराष्ट्रीय संगठनों को अपना निशाना बना रहे हैं। इस प्रकार इस बात से सहमत दिख रही है कि भूमण्डलीकरण के वर्तमान रूप को उखाड़ फेंका जाय वे यह भी मानते हैं कि कल का सर्वहारा ही आज की नई परिस्थितियों में जनसमूह (मल्टीट्यूड) बनकर सामने आया है। मैकडोनाल्ड को दुनिया भर में फैले कर्मी इसमें हैं। यद्यपि 'साम्राज्य' के शोषण और उत्पीड़न को समझ पाना कठिन है फिर भी वह लोगों के बीच अधिकतम सहयोग और संबंध की संभावनाएँ पैदा करता है जो मुक्ति आन्दोलनों के लिए एक आवश्यक शर्त है। आज जब आर्थिक क्षेत्र में दूरगामी और जटिल परिवर्तन हो रहे हैं तब लेखकद्वय ने उत्पादन की शक्तियों और उत्पादन के संबंधों की मार्क्सवादी द्वन्द्वात्मकता पर विचार किया है कि अंकीकरण और भूमण्डलीकरण कैसे न सिर्फ उत्पादन की परिस्थितियों और हमारे सामाजिक अस्तित्व, हमारे रिवाजों और हमारे वैचारिक दृष्टिकोण एवं झुकाव को भी प्रभावित कर रहे हैं। उत्पादन की प्रतिक्रियाओं में क्रान्तिकारी परिवर्तन ने राजनीतिक क्रान्ति को जन्म दिया है।

आज भूमण्डलीकरण के युग में विजयी पूँजीवाद हमारे सामाजिक अस्तित्ववाद के रग–रग में बैठ गया और उसमें एक अभूतपूर्व गत्यात्मकता ला दी है। साथ ही उसमें सभी महत्वपूर्ण सामाजिक संबंधों को कमजोर करना आरम्भ किया है। जिससे सशक्त केन्द्रपसारी शक्तियाँ सक्रिय हो गयी हैं जिन्हें नियंत्रित कर पाना पूँजीवाद आज पहले की अपेक्षा कहीं अधिक पराजेय हो गया है। मार्क्स का पुराना सूत्र अब भी सही है। पूँजीवादी अपनी कब्र स्वयं खोदता है।[12] यह पुराना तथ्य अब बिल्कुल उजागर हो जाता है जब वे बतलाता है कि वर्तमान भूमण्डलीकरण

पूँजीवाद 'जनसमूह' को जन्म देता है जिसके साथ उसके विरोधाभास असमाधेय बन जाने की स्थिति में आ जायेंगे और फिर क्रान्ति पूँजीवाद की मौत की घंटी बजा देगी। इसके साथ ही जनतांत्रिक और मानवीय भूमण्डलीकरण, या यों कहें, कम्युनिज्म के निर्माण का अभिमान प्रारंभ होगा । उत्तर–आधुनिकतावादी इस सार तत्व को ग्रहण करने में अपनी असमर्थता के कारण 'सांस्कृतिक युद्धों' और क्षेत्रीय पहचान के लिए संघर्ष को भूमण्डलीकरण की मुख्य गतिविधियाँ मानते हैं। उसकी स्थापना का मुख्य विजय है लैंगिक, जातीय और धार्मिक सहिष्णुता वे बहुसांस्कृतिकता के सिद्धान्त का प्रचार करते हैं। वे आर्थिक तनावों को समझने की कुंजी मानते हैं। हार्ट और नेग्री भूमण्डलीय पूँजीवाद के प्रति वामपंथियों द्वारा अपनाए गए आम दृष्टिकोण को भी गलत मानते हैं। वामपंथियों की आम समझदारी है कि वे भूमण्डलीकरण द्वारा लगाई आग को बुझाने को उससे जो कुछ बचाया जा सके उसे बचाने में तत्पर हो। वे कल्याण राज्य की रक्षा में खड़े हैं। वामपंथ का यह दृष्टिकोण न सिर्फ उनके कठमुल्लेपन बल्कि भूमण्डलीकरण एवं अधीकरण के गतिविज्ञान को न समझ पाने को उजागर करता है।

पूँजीवाद के भूमण्डलीय दौर की ओर या यों कहें, पूँजीवाद के अन्तर्गत ही आधुनिकता से उत्तर–आधुनिकता की ओर संक्रमण के क्रम में अर्थव्यवस्था में फोर्डवाद से उत्तर–फोर्डवाद की ओर बदला हुआ है। यद्यपि श्रम को संपदा के उत्पादन का आधारशिला माना जाता है फिर भी पूँजीवाद के नए दौर में उसे राजनीतिक शक्ति से विहीन कर दिया गया है। आधुनिकता या औद्योगिक पूँजीवाद के काल में श्रम की राजनीतिक शक्ति का रहस्य था–उनका कारखानों में एकजुट होना तथा शक्तिशाली ट्रेड यूनियन और राजनीति से जुड़े ढाँचों के जरिए एक सूत्रबद्ध किया जाना। आज ये तीनों ढाँचे भूमण्डलीकरण ने नष्ट कर दिए हैं उन्हें कमजोर एवं प्रभावहीन बना दिए हैं। यही कारण है कि संगठित मजदूरों की जगह हम जन समूह को पाते हैं जो लगता है निराकार सर्वहारा का समूह है जो सामाजिक धरातल पर चींटी की तरह सहयोग एवं निरंतर सहकारिता के आधार पर संपदा का उत्पादन करता है।

भूमण्डलीय पूँजीवाद के वर्तमान दौर में अपनी अपार क्षमता के बावजूद मजदूरों की स्थिति नहीं सुधरी है आज भी श्रम को सचल पूँजी माना जाता है तथा उपर्युक्त ढाँचों के जरिए तुरंत स्थिर पूँजी से संबंद्ध कर देती है। आज के दौर में यह संबंध टूट गया है आधुनिकतम मजदूर को पूँजी द्वारा प्रदत्त श्रम के औजारों या स्थिर पूँजी की आवश्यकता नहीं है। आज स्थिर पूँजीवाद इस मजदूर के दिमाग में है। वह उन औजारों से काम करता है जिसे वह अपने साथ लेकर चलता है। यह आज के उत्पादक जीवन की अत्यंत आवश्यक परिघटना है। बिना विस्तार में गये हम कह सकते हैं कि आज श्रम रोजगार नहीं रहा। वह स्वतंत्र है और बेरोजगार या अनौपचारिक क्षेत्र में होते हुए भी वह संपदा का उत्पादन करता है।

आज श्रम निराकार और बौद्धिक बन गया है। जिससे वह कारखाने के अनुशासन से मुक्त हो गया है। इसके परिणामस्वरूप समसामयिक पूँजीवादी समाज में एक भूमण्डलीय, मूलभूत और युगान्तरकारी क्रान्ति की संभावना बढ़ गई है। आज पूँजीपति परजीवी बन गया है मगर मार्क्सवाद की शास्त्रीय दृष्टि से उसकी परजीविता वित्तीय पूँजीपति वाली नहीं है। वह एक परजीवी है क्योंकि वह कार्य प्रक्रिया की संरचना में हस्तक्षेप नहीं कर सकता।[13]

पहले काम करना पूँजी के कब्जे में रहने वाले और उसके द्वारा नियंत्रित औजारों से ही संभव था परन्तु आज स्थिति बदल गई है। अब औजार मजदूर के दिमाग में है जिस पर पूँजीपति का नियंत्रण नहीं है। यदि श्रम और श्रम के औजार दिमाग में हो तो दिमाग के पास सम्पदा सृजन का उच्चतम क्षमता होगी। संचार और सूचना के क्षेत्र में हुई क्रान्ति ने पूँजीपति के हस्तक्षेप और अनुशासन के बिना ही सहयोग पर आधारित उत्पादन संभव बना दिया है। वर्ग समाज के उदय के पहले जनसमूह था और फिर पूँजीवादी भूमण्डलीकरण के युग में उसका उदय हो रहा है तथा वर्चस्व बढ़ता जा रहा है। गुणात्मक दृष्टि से वर्तमान जनसमूह बौद्धिक दृष्टि से काफी ताकतवर है। उस पर कोई अपना दबदबा नहीं जमा सकता।

वर्तमान समय में जब सारी दुनियाँ में कम्युनिस्ट आत्मविश्वास खोये हुए नजर आती है तब नेग्री का यह कहना काफी तर्कपूर्ण है कि आज कम्युनिस्ट होना पहले की अपेक्षा कहीं अधिक तर्कसंगत लगता है।[14] आज बौद्धिक और गैर बौद्धिक दोनों प्रकार का श्रम एक साथ गूँथ गया है। उसकी शक्ति बढ़ने से कम्युनिस्ट का मनोबल ऊँचा होना चाहिए क्योंकि क्रान्ति की संभावनाएँ बढ़ रही हैं, साम्राज्य के युग में पुराने समय की केन्द्रीकृत सत्ता का

धीरे–धीरे ह्रास हो रहा है। अनियंत्रित सूचना तंत्र और पूँजीवादी राजसत्ता को कमजोर करना शुरू कर दिया है। दूसरी ओर अन्तर्राष्ट्रीय जनसमूह के पुराने राष्ट्रीय परिधि में सिमटे सर्वहारा का स्थान लेने के कारण जनतांत्रिक भूमण्डलीकरण के लिए संघर्ष करने वाली शक्तियाँ मजबूत हुई हैं। हार्ट और नेग्री ने वर्तमान भूमण्डलीय पूँजीवाद की कमजोरियों को रेखांकित किया है।

फॉरेन अफेयर्स (मई–जून 2001) में प्रकाशित जेम्स ऐडम्स के लेख 'वर्चुवल डिफेन्स' में एक मात्र महाशक्ति अमेरिका की कमजोरियाँ उजागर हो जाती हैं और लेखकद्वय की आशावादिता का यर्थाथ समाने आता है। पारंपरिक और आणविक दृष्टि तथा सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अपनी विशाल श्रेष्ठता के बावजूद उसकी कमजोरी बढ़ी है। वह साइबर हमलों से आतंकित है और उनसे बचाव का कोई कारगर तरीके अभी तक नहीं निकल पाये हैं। शीतयुद्ध के जमाने में खेल के कुछ नियम थे जिनका पालन दोनों खेमे करते थे किन्तु आज तो कुछ भी ऐसा नहीं है। सूचना युद्ध में कोई भी कहीं से कूद सकता है।

अंत में भूमण्डलीकरण ने इस इतिहास की धारा के आगे विराम लगाया है, और न ही वर्ग–संघर्ष तथा कम्युनिस्ट को दफनाया है। अब दुनिया पहले से अधिक खतरनाक जगह हो गई है। प्रो. पाण्डेय ने भूमण्डलीकरण के बारे में कहा कि भूमण्डलीकरण और कुछ नहीं बल्कि अमेरिकी पूँजी का उग्र भूमण्डलीकरण है[15] जिससे प्रकृति के विध्वंस की प्रक्रिया को इस हद तक बढ़ा दिया है कि पृथ्वी और मानवीय अस्तित्व पर खतरे के बादल मंडरा रहे हैं। प्रकृति साहित्य सृजन का एक प्रमुख आधार है। जिन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने हिमालय की बर्फीली चट्टानों को विज्ञापनों से रंग दिया उन्होंने महज पर्यावरण पर नहीं बल्कि भारतीयता पर भी चोट की है। क्योंकि कालीदास से लेकर नागार्जुन तक के काव्य में हिमालय भारतीयता का जीवन्त प्रतीक है। सांस्कृतिक साम्राज्यवाद और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद में कितना आत्मिक रिश्ता है। बाजारवाद एक मात्र बाजार की भाषा स्वीकार करता है जो भाषाओं की बहुलता को नष्ट करता है। उग्र बाजारवाद के चलते मातृभाषाएँ नष्ट हो रही हैं। एक आकलन के अनुसार 21वीं सदी बीतने तक संसार की 5 हजार में से महज लगभग ढाई हजार भाषाएँ ही जीवित बची रहेंगी। जिन लोकभाषाओं और मातृभाषाओं से मानक भाषाएँ अपनी जीवनशक्ति प्राप्त करती हैं उनका समाप्त होते जाना वास्तव में मानवीय होने की विशिष्ट पद्धतियों और सभ्यताओं की मृत्यु है।

भाषा साहित्य का आधार है जिसकी विपुलता को भूमण्डलीकरण नष्ट करता जा रहा है। भूमण्डलीकरण के दौर में एक धुर्त भाषा ने जन्म लिया है जो अभिव्यक्त करने से कहीं ज्यादा बाजारु नियत को छिपाने का काम करती है। भाषा की रक्षा के लिए संघर्ष किसी भी राजनीतिक संघर्ष से कम महत्वपूर्ण नहीं है। भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया मनुष्य की चेतना को बदल रही है। आज बाजार अपने विकल्प की सम्भावना नहीं छोड़ना चाहती है। वह विरोध को सहन नहीं कर सकता, सिर्फ सहमति चाहता है। वह मानव जीवन की सार्थकता की जगह सफलता को मानदंड के रूप में स्थापित करता है जिनके चलते ही सफलता की होड़ में रत मनुष्य सामाजिक संवेदनशीलता तथा परिवर्तन और बेहतर भविष्य की कल्पना से महरुम हो रहा है। साहित्य और संस्कृति को भूमण्डलीकरण से मिल रही चुनौतियों का सामना वह साहित्य नहीं कर सकता जो हज अपने एकाकीपन की व्याख्या करता है और पाठक को लाचार बनाता है। आज जरूरत है साहित्य विधाओं के स्वभाव और प्रयोजन को बदलने की और साथ ही रचना की कसौटियाँ भी बदली जानी चाहिए।

हिन्दी विभाग के अध्यक्ष प्रो. राजेन्द्र कुमार ने कहा कि भूमण्डलीकरण ने तो 'वसुधैव कुटुम्बकम' है और न ही 'अन्तर्राष्ट्रीयतावाद : 'अन्तर्राष्ट्रीयतावाद का नारा था दुनिया के 'श्रमजीवियों एक हों' जबकि भूमण्डलीकरण का नारा है 'दुनिया के शोषकों और पूँजीतियों एक हो। उन्होंने कहा कि अन्तर्राष्ट्रीयतावाद ने रंगभेद, नस्लभेद, संप्रदायभेद और राष्ट्रों के उग्र टकरावों को खत्म करके विराट मानव एकता का स्वप्न देख था जबकि भूमण्डलीकरण सारे भेदों को बढ़ाकर पूँजी की सत्ता और मुनाफाखोरी के राज को स्थापित करता है।[16]

प्रसिद्ध इतिहासकार प्रो. लालबहादुर वर्मा ने कहा कि भूमण्डलीकरण ने न केवल साहित्य में बल्कि विज्ञान, दर्शन इतिहास, सौन्दर्यशास्त्र तथा सबसे बढ़कर सृजनशीलता के सामने भयानक संकट उत्पन्न कर दिया है ।[17]

संदर्भ–सूची

1. गिरीश मिश्र, हंस, भूमण्डलीकरण एवं साम्यवाद की वापसी, नवम्बर 2001, पृ. 38
1. गिरीश मिश्र, हंस, भूमण्डलीकरण एवं साम्यवाद की वापसी, नवम्बर 2001, पृ. 39
2. गिरीश मिश्र, हंस, भूमण्डलीकरण एवं साम्यवाद की वापसी, नवम्बर 2001, पृ. 39
3. गिरीश मिश्र, हंस, भूमण्डलीकरण एवं साम्यवाद की वापसी, नवम्बर 2001, पृ. 39
4. गिरीश मिश्र, हंस, भूमण्डलीकरण एवं साम्यवाद की वापसी, नवम्बर 2001, पृ. 39
5. गिरीश मिश्र, हंस, भूमण्डलीकरण एवं साम्यवाद की वापसी, नवम्बर 2001, पृ. 39
6. गिरीश मिश्र, हंस, भूमण्डलीकरण एवं साम्यवाद की वापसी, नवम्बर 2001, पृ. 39
7. गिरीश मिश्र, हंस, भूमण्डलीकरण एवं साम्यवाद की वापसी, नवम्बर 2001, पृ. 40
8. गिरीश मिश्र, हंस, भूमण्डलीकरण एवं साम्यवाद की वापसी, नवम्बर 2001, पृ. 40
9. गिरीश मिश्र, हंस, भूमण्डलीकरण एवं साम्यवाद की वापसी, नवम्बर 2001, पृ. 40
10. गिरीश मिश्र, हंस, भूमण्डलीकरण एवं साम्यवाद की वापसी, नवम्बर 2001, पृ. 41
11. गिरीश मिश्र, हंस, भूमण्डलीकरण एवं साम्यवाद की वापसी, नवम्बर 2001, पृ. 41
12. गिरीश मिश्र, हंस, भूमण्डलीकरण एवं साम्यवाद की वापसी, नवम्बर 2001, पृ. 42
13. गिरीश मिश्र, हंस, भूमण्डलीकरण एवं साम्यवाद की वापसी, नवम्बर 2001, पृ. 42
14. गिरीश मिश्र, हंस, भूमण्डलीकरण एवं साम्यवाद की वापसी, नवम्बर 2001, पृ. 42
15. मैनेजर पांडेय, कथादेश, बाजारवाद एकमात्र बाजार की भाषा को स्वीकार करता है। जनवरी, 2003, पृ. 92
16. मैनेजर पांडेय, कथादेश, बाजारवाद एकमात्र बाजार की भाषा को स्वीकार करता है। जनवरी, 2003, पृ. 92
17. सुरेश पंडित, मीडिया विमर्श के बहाने हिन्दी पट्टी का रोग निदान, हंस, जुलाई, 2002, पृ. 86

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 189-192

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

भूमण्डलीकरण और समकालीन हिन्दी कहानी में लोक जीवन

शशिधर यादव प्रो. मीना यादव***

सोवियत संघ के पतन के पश्चात अमेरिका शक्तिशाली और पूँजीवादी शक्तियों का एकमात्र नेतृत्वकर्ता बनकर उभरा। भारत में भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया उसी समय प्रारम्भ हुई जब सन् 1991 ई0 में खाड़ी युद्ध के समय अभूतपूर्व भुगतान संकट उत्पन्न हो गया। भारत के पास मात्र दो हप्ते के आयात का विदेशी मुद्रा भण्डार बचा। इसी समय अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष ने अपनी शर्तों पर भारत को कर्ज देना स्वीकार किया। प्रसिद्ध समाजशास्त्री और विचारक प्रो. अभय कुमार दुबे के अनुसार ''भूमण्डलीकरण के दौर में भारत ने अपनी भागीदारी घोषणापूर्वक 1991 में दर्ज की जब विदेशी मुद्रा के संकट के कारण कांग्रेस की नरसिंहराव सरकार ने अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष से कर्ज लिया।''[1] अब भारत अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष और विश्व बैंक के निर्देश पर आर्थिक नीतियाँ बनाने के लिए बाध्य हुआ। ये नई आर्थिक नीतियाँ उदारीकरण के सिद्धान्तों पर आधारित थी जिसमें भारत के बाजार को सभी देशों के लिए खोल दिया गया तथा परम्परागत लाइसेन्स–परमिट युग की समाप्ति हो गयी।

शुरू में भूमण्डलीकरण के बारे में कहा गया कि यह 'वसुधैव कुटुम्बकम्' (अर्थात् सारी पृथ्वी एक परिवार की तरह है) की विचारधारा का समर्थक है। मुक्त व्यापार, मुक्त पूँजी प्रवाह, मुक्त विदेशी निवेश, मुक्त बाजार इसके प्रमुख लक्षण है। अर्थात भूमण्डलीकरण से सभी देशों को व्यापार और निवेश के समान अवसर मिलेंगे जबकि हुआ इसका उल्टा। डॉ0 माधवेन्द्र ने भूमण्डलीकरण पर विचार करते हुए ठीक ही लिखा है ''मूलतः भूमण्डलीकरण नये बाजार की वैश्विक तलाश थी जिसकी आवश्यकता उन विकसित राष्ट्रों को थी जिनके यहाँ अपने बाजार में मांग अत्यधिक कम हो गयी थी तथा बाजार में उपभोक्ता सामाग्री की अधिकता हो गयी थी। इसके लिए भारत जैसे तमाम देश उनकी निगाह में थे जिनकी आर्थिक स्थिति डाँवाडोल थी तथा जो उपनिवेशवाद से मुक्त होकर आगे बढ़ने की होड़ में शामिल थे।''[2] वस्तुतः सोवियत संघ के विघटन के बाद जब दुनिया एक ध्रुवीय हो गयी अमेरिका के नेतृत्व में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने दुनिया के खास तौर पर तीसरी दुनिया के बाजार पर कब्जा जमाना शुरू कर दिया तो इसे न्यायसंगत ठहराने के लिए भूण्डलीकरण जैसा आकर्षक नाम दिया गया। बाजार का इतिहास गवाह है कि वह मनुष्य के इतिहास से कम पुराना नहीं है लेकिन आज का बाजार पहले के बाजार से बहुत भिन्न बन चुका है। अब बाजार जरूरतें तैयार कर रहा है। बाजार अब पूँजी केन्द्रित हो चुके हैं। बड़े–बड़े औद्योगिक घराने व बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ अपने प्रोडक्ट को बेच लेने के लिए प्रायोजित तरीके से माहौल बनाते हैं। विज्ञापन और संचार माध्यमों के द्वारा उपभोक्तावादी सोच का मायाजाल फैलाया जा चुका है। प्रो0 सूरज पालीवाल के अनुसार– ''पूँजीवाद का उत्कर्ष ही भूमण्डलीकरण है, जिसमें बड़ी और बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ अपना जाल फैला रही हैं, उसमें सर्वमंगल की अवधारणा व्यर्थ है। पूँजीपति अपना हित पहले देखता है, वह अपना बाजार पहले तलाशता है और लोगों की इच्छा को अपनी तरफ मोड़ता है।[3] यह नया बाजार आवश्यकता पूर्ति का स्पेस ही उपलब्ध नहीं कराता बल्कि व्यक्ति के अन्दर उद्भूत लालसा का सृजन करता है। यहाँ उत्पादन जरूरत के अनुरूप नहीं है, पहले उत्पाद है, फिर उसके अनुरूप जरूरत सृजन का दबाव है। इस संदर्भ में डॉ0 सुमन राजे का कहना सही प्रतीत होता है कि ''बाजारवाद का काम लोगों की आवश्यकताएँ पैदा करना और फिर अन्य विकल्पों में अपने उत्पादन की श्रेष्ठता प्रतिपादित कर उनके लिए बाजार बनाना है।''[4]

* *बरेली कालेज, बरेली*

लगभग तीन दशक पहले भारत में आर्थिक सुधारों के नाम पर जिन नीतियों को लगू किया गया था उसके स्पष्ट परिणाम जीवन के हर क्षेत्र में दिखायी देने लगे हैं। प्रो0 अभय कुमार दुबे का मानना है कि, ''यह परिघटना इतनी व्यापक थी कि जीवन का कोई क्षेत्र अछूता नहीं रहा।''[5] समकालीन हिन्दी कथाकार की अभिरूचि यथार्थ को उसकी पूर्ण भयावहता और नग्नता में प्रस्तुत करने की रही है। वह भूमण्डलीकरण के पश्चात बदले हुए यथार्थ की अनछुई स्थितियों और अनदेखे क्षेत्रों की तल्ख सच्चाइयों को पूरी बेबाकी के साथ प्रस्तुत करता है। पहले की तुलना में आज यथार्थ कुछ ज्यादा ही उलझ गया है। प्रसिद्ध कथाकार और सम्पादक अखिलेश का विचार है कि ''आज का यथार्थ सरल नहीं रह गया है। एक यथार्थ की डोर बहुत सारी दूसरी सच्चाइयों से जुड गयी है। इसको दूसरे रूप में कहें तो आज का यथार्थ दुःस्वप्न से भी ज्यादा भयावह हो गया है। आपकी कल्पना पीछे छूट जाती है, यथार्थ उसके आगे बढ़ जाता है।''[6] इस प्रकार आज एक रैखिक यथार्थ का समय नहीं रह गया है। पंकज बिष्ट, संजय खाती, उदय प्रकाश, सुभाशचन्द्र कुशवाहा, शंकर, हरियश राय, जयनन्दन, पंकज मित्र, मनोज पाण्डेय, कैलाश बनवासी, सत्यनारायण पटेल, उमाशंकर चौधरी, प्रभात आदि कथाकारों की कहानियाँ इस जटिल यथार्थ की बखूबी शिनाख्त करती है।

पंकज विष्ट हिन्दी के पहले कथाकार है जिन्होंने सबसे पहले उपभोक्तावाद की आहटों को समझा और उसके प्रतिरोध में 'बच्चे गवाह नहीं हो सकते 'और' मोहन (दास) आखिर क्या हुआ' जैसी कहानियाँ लिखते हैं। 'बच्चे गवाह नहीं हो सकते' का कथानायक बिशनदत्त इस सत्य को जानता है कि उपभोक्तावाद लालसाओं का अनन्त जाल है जिसमें एक बार फँसने पर उबरने की कोई राह शेष नहीं रहती। लेकिन साथ ही वह यह भी जानता है कि उपभोक्ता संस्कृति ने समाज में इज्जत, मर्यादा, और आत्मसम्मान के जिन नए मानकों को गढ़ा है, वहाँ परम्परागत नैतिकता और संस्कार बेमानी हो जाते हैं। कुछ इसी भावबोध की संजय खाती की कहानी 'पिन्टी का साबुन' भी है। इस कहानी में दिखाया गया है कि उपभोक्ता सामग्री किस प्रकार विशिष्टता बोध पैदा करती है तथा उपभोक्ता उसकी रक्षा के लिए प्राण प्रण से लगा रहता है। इस कहानी में गोपिया को दौड़ के इनाम के रूप में साबुन मिलता है। उसके गाँव में किसी के पास साबुन नहीं है। हर किसी में इसकी लालसा है। परन्तु गोपिया किसी को साबुन हाथ लगाने नहीं देता, माँ को भी नहीं, बहन को तो पीट देता है। उपभोक्ता सामाग्री किस प्रकार व्यक्ति को विशिष्टता के अहं से भर देती है, वह इस कहानी में गोपिया के कथन से पता चलता है–''नीचे देखता तो अपना घर छोटा सा दिखाई देता, खिलौने जैसा और इजा बापू, काका, कुंती सारे लोग कैसे दिखायी देते? जैसे चींटीं जितने हो गये हों। मैं सारी दुनीया के ऊपर तैरता। सब कुछ मेरे नीचे। कोई मुझ तक पहुंच नहीं सकता था। साबुन से नहाकर उस दिन मुझे लगा था, किसी भी क्षण मैं उड़ने लगूँगा।''[7] इस कहानी में जहां एक ओर उपभोक्ता सामग्री के मारक प्रभाव को दर्शाया गया है, वहीं इसकी निस्सारता को भी। एक दिन जब बर्फबारी होती है तो पुआल में छुपाकर रखा गया साबुन गुलाबी कीचड़ का लोंदा–सा बन गया है। इसी प्रकार उदयप्रकाश 'पाल गोमरा का स्कूटर', 'दिल्ली की दीवार', मैंगोसिल' आदि कहानियों में भूमण्डलीकरण की जद में आए व्यक्तियों की दुर्दशा का वर्णन करती है। 'पालगोमरा का स्कूटर' कहानी बाजार के वर्चस्व के आगे बौने होते इंसानी वजूद को ही नहीं दिखाती वरन देह में तब्दील स्त्री अस्मिता के प्रति महत्वाकांक्षी स्त्री की स्वीकृति भी दिखाती है। रामगोपाल सक्सेना अपना नाम बदलकर (उलटकर) आधुनिक बन जाना चाहता है किन्तु नाम बदलना जितना आसान है अपने संस्कार, शख्सियत और तहजीब को बदलना उतना ही कठिन। बेशक घर के दरवाजे पर नया चमचमाता स्कूटर खड़ा करके वह अपने स्टेट्स को बाजार के मानदण्डों पर ले आया है। लेकिन मूलतः वह रामगोपाल सक्सेना है अपनी मार्यादाओं और सीमान्तों में बँधा हिन्दी अखबार का एक प्रूफ रीडर। यानी मूल्य पोषित नैतिकता का अघोषित वाहक। जाहिर है पल पल हजार रंग और कोण बदलते बाजार के साथ उसकी पटरी नहीं बैठ सकती। इसी प्रकार 'मैंगोसिल' कहानी उदारीकरण की आड़ में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के षड्यंत्र का उद्घाटन करती है। दरअसल नए अर्थतंत्र की जिसे विश्व बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय कोष की वैचारिकी उदारीकरण बताती है, मूल चिंता यही है कि पूँजीवादी उद्यम बचे रहे, बड़े घराने मजबूत हों और पूंजी का अगाध प्रवाह सारी दुनियाँ को इनके आखेट का स्थल बना सके।

नये बाजार तंत्र ने मनुष्य की गरिमा पर जैसा भयानक आघात किया है पंकज मित्र की कहानियाँ उसकी गवाह बनती हैं। ये कहानियाँ भूमण्डलीकरण के आगोश में गुम होते कस्बों के यथार्थ को व्यापक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करती है। नये बाजार के सर्वग्रासी प्रभाव ने पुराने मूल्यों को तहस–नहस कर दिया है। 'क्विजमास्टर' पारम्परिक मूल्यों से निरावृत्त होते व्यक्ति के अकेले पड़ते जाने की कहानी है। एक छोटे कस्बे के बड़े क्विजमास्टर का हश्र यह है कि अन्त में सिर्फ और सिर्फ उसका सात साल का लड़का मयंक ही उसे एक बड़ा 'क्विजमास्टर' समझता है, वर्ना उसे सलाह मिलती है–''पैसा कमाइये पैसा। बरेन है तो बरेन से कमाइये जो चीज आपके पास है उसी से कमाइये। अगल बगल देखते नहीं हैं का? जो है रख दीजिए बाजार में फटाक देनी उड़ जायेगा।''[8] भूमण्डलीकरण के बाद भारत में फैले अंधकार उसकी दहशत और आतंक का चित्रण उमाशंकर चौधरी की कहानियाँ करती हैं। उमाशंकर चौधरी की कहानियाँ की विशेषता है कि वह केवल अंधकार का चित्रण ही नहीं करते वरन उससे टकराने और मुठभेड़ की तस्वीर भी दिखते हैं। 'कट टू दिल्ली' कहानी में प्रधानमंत्री का प्रवेश न केवल लोकतन्त्र की विद्रूपताओं को उजागर करती है बल्कि पूँजी के सामने घुटने टेकने वाली व्यवस्था का पर्दाफाश भी करती है। सत्ता और पूंजी की साठ–गांठ को अथवा राजनीति की चालाकियों को बड़ी सफलता के साथ उन्होंने इस कहानी में उघाड़ा है। साथ ही हाशिए पर पड़े समाज की दुर्दशा और उस पर हो रहे शोषण का भी चित्रण किया है। इसी प्रकार कथाकार जयनन्दन उपभोक्तावादी संस्कृति में शहरी महानगरीय जीवन के उथल–पुथल से गुजरते हुए समय के संक्रमण को पकड़ने की पुरजोर कोशिश करते हैं। 'विश्व बाजार का ऊँट', 'सूखते स्रोत', 'घर फूँक तमाशा', 'आई. एस. ओ. 9000', 'प्रोटोकाल', 'मल्टीपरपज सर्विसेज', 'कोलाब्लूम–96' जैसी कहानियों में जयनन्दन अपसंस्कृति के खिलाफ खड़े ही नहीं दिखते अपितु संघर्षरत आम आदमी की चेतना को धार भी देते हैं। कारखानों में काम करने वाले लोगों को कभी मंदी के नाम पर तो कभी आधुनिकीकरण के नाम पर छँटाई होती रहती है। 'विश्व बाजार का उँट 'नामक कहानी में सकलदेव आधुनिकीकरण के नाम पर बंद हुई इकाई से निकाल दिये जाते हैं, तब वे कहते हैं–''हम काम करना चाहते हैं फिर भी हमारी दक्षता को नकारा एवं समयातीत घोषित क्यों किया जा रहा है।''[9] इसी प्रकार 'घर फूँक तमाशा' कहानी में टेकलाल का बेटा पूँछता है कि कारखाने क्यों बन्द हो रहे हैं, तब टेकलाल जबाब देता है–''इसका जबाब अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक और अमेरिका के सिवा इस देश में किसी के पास नहीं है।''[10] विश्व व्यापार का सदस्य बनने के बाद घरेलू नीतियों को बनाने के लिए भारत स्वतन्त्र नहीं रह गया वरन अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक उसकी नीतियों को प्रभावित कर रहे हैं।

भारत के बारे में कही गयी कोई बात तब तक अधूरी है जब तक उसमें गाँवों की बात न हो। आज भी भारत की साठ प्रतिशत से अधिक की आबादी गाँवों में रहती है। कभी महात्मा गांधी ने कहा था कि 'भारत की आत्मा गाँवों मे निवास करती है। किन्तु भूमण्डलीकरण के फलस्वरूप परिवर्तन जितनी तेजी से शहरों में आ रहा है उससे कहीं तेज गाँव और कस्बों में दिखाई पड़ता है। अब बाजार जनसंचार माध्यमों की सहायता से गांवों में भी अपनी पैठ बना चुका है। कैलाश बनवासी, सुभाषचन्द्र कुशवाहा, सत्यनारायण पटेल, महेश कटारे, जयनन्दन और एस0 आर0 हरनोट उन थोड़े से कथाकारों में शामिल हैं जिन्होंने भूमण्डलीकरण के बाद ग्रामीण परिवेश में आए परिवर्तनों को अपनी कहानियों में दिखाया है। कैलाश बनवासी की ''बाजार में रामधन'' कहानी भूमण्डलीकरण के दौर में एक किसान और बाजार की क्रूर निस्संगताओं के द्वन्दों को दर्शाती है। कभी हल बैल भारतीय किसानों की पहचान हुआ करते थे। 'बाजार में रामधन' कहानी के नायक रामधन को भी अपने बैलों से प्यार है। वह बैलों को अपने परिवार के सदस्य के रूप में तथा मान सम्मान का प्रतीक मानता है। परन्तु रामधन का छोटा भाई मुन्ना चाहता है कि बैलों को बेंच दिया जाय तथा खेती का काम ट्रैक्टर से करवाया जाय क्योंकि ट्रैक्टर से खेती हो सकती है। छोटे भाई की जिद पर वह बैलों को लेकर बाजार चला जाता है परन्तु बैलों को बिना बेचे वापस आ जाता है। रास्ते में रामधन बैलों से कहता है कि मैं तुम्हे किसी कीमत पर नहीं बेचता। इस पर बैल जवाब देते है–''बेंचना तो पड़ेगा एक दिन। आखिर तुम हमें कब तक बचाओगे रामधन? कब तक?''[11] इसी प्रकार कैलाश बनवासी' एक गाँव फुलझर' में दिखाते हैं कि आगे आने वाला समय किसानों और श्रमजीवी जनता के लिए कितना मुश्किल भरा होने वाला है। कैलाश बनवासी ने 'एक गाँव फुलझर' में एक गाँव की कथा कहने की कोशिश की है कि कैसे

एक गाँव जिसका नाम फुलझर है क्योंकि वहाँ हमेशा फूल झरते रहते थे, उसे शहरी पूँजीपति स्थानीय सहयोग से एक सूखे और बंजर मैदान में बदल डालते हैं, जहाँ खेतों पर रासायनिक स्लेग की जहरीली परत चढ़ गयी हैं– ''गाँव के बारे में कहा जाता था कि किसी जमाने में यहाँ खूब सारे फूलों के पेड़ थे। इतने कि हर समय उन पेड़ों से फूल झरते रहते थे और सारा गाँव उन फूलों की खुशबुओं से महकता रहता था। वहीं फूलझर गाँव वहाँ कहीं नहीं था। आसपास के जो खेत थे, बिल्कुल खाली पड़ें थे कोई तिनका तक नहीं उगा था, नियात पथरीले, जिन्हें किसी सफेद राख जैसी किसी पर्त ने ढंक रखा था और लगता था, ये बरसों से ऐसे ही पड़े है।''[12] इसी प्रकार सुभाषचन्द्र कुशवाहा की कहानियों में भूमण्डलीकरण के बाद बींसवी सदी के अन्त का रोता बिलखता भारत है। 'हाकिम सराय का आखिरी आदमी, ''होशियारी खटक रही है, 'तिलेसरी, 'भूख, 'नून तेल मोबाइल' आदि कहानियों में सुभाषचन्द्र कुशवाहा ने बदलते ग्रामीण भारत के यथार्थ का वर्णन किया है। सत्य नारायण पटेल की कहानियाँ' भेम का भेरू मांगता कुल्हाड़ी का ईमान, 'और लाल छींट वाली लूगडी का सपना' में बताया गया है कि बैल और किसान अब प्राकृतिक जीवन नही जी रहे वे यंत्रीकरण की सभ्यता की भेंट चढ गये हैं। मुक्त बाजार व्यवस्था ने किसान को मजदूर ओर खेती को 'कान्ट्रैक्ट फार्मिंग' में तब्दील कर दिया है। जयनन्दन ने अपनी 'छोटा किसान' कहानी में बताया है कि किन परिस्थितियों में कोई खेती छोड़ने को विवश हो जाता है। सरकार ने खेती किसानी से जुड़ी वस्तुओं पर दी जा रही सब्सिडी को या तो बहुत कम कर दिया है या बन्द कर दिया है। वस्तुतः विश्व व्यापार संगठन (WTO) का सदस्य बनते ही भारतीय खेती बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के कब्जे में चली गयी। सन 2001 से 2011 के बीच 77 लाख किसानों ने खेती छोड़ दी। पिछले वर्षों में लगभग तीन लाख किसानों ने आत्महत्या की है। ये आत्महत्याएँ ऐसे क्षेत्रों में केन्द्रित दिखाई देती है जहां कृषि का बड़े पैमाने पर व्यवसायीकरण हुआ है। अधिक उत्पादन की चाह में भारतीय किसान जैव संवर्धित, (जी0एम0) बीजों का प्रयोग कर रहे हैं। ये जैव संर्वधित (जी.एम.) बीज सामान्य बीजों से कई गुना मँहगे होते हैं। भारत के सीधे–सादे किसान कर्ज लेकर इन बीजों का प्रयोग कर रहे हैं और फसल खराब होने पर कर्ज अदा नहीं कर पाते अतः आत्महत्या कर रहे हैं। अनीता भारती की कहानी 'बीज बैंक 'इन्ही जी.एम. फसलों के दुश्चक्र में फंसे किसान की कहानी है।

भूमण्डलीकरण ने 'ट्रिकल डाउन थ्योरी' के नाम पर जो सब्जबाग दिखाए थे उसकी हकीकत सबके सामने आ चुकी है जिसमे अमीर और अमीर जबकि गरीब और गरीब होता जा रहा है। भूमण्डलीकरण के बाद जब हम आज के बदले हुए लोक को देखते है तो लगता है कि यह कोई भिन्न प्रकार का लोक है जिसे बाजार की आवश्यकताएँ संचालित कर रही हैं। इस बदले हुए लोक के विविधवर्णी और बहुपरतीय यथार्थ को व्यक्त करने में समकालीन हिन्दी कहानी पूर्णतः सक्षम है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अभय कुमार दुबे, भारत का भूमण्डलीकरण (2007) वाणी प्रकाशन, पृ. 44
2. डॉ. माधवेन्द्र, भूमण्डलीकरण एवं भारतीय किसानों की समस्याएँ : अभिनव कदम (पत्रिका) 27, पृ. 232
3. सूरज पालीवाल, हिन्दी में भूमण्डलीकरण का प्रभाव व प्रतिरोध (2008), शिल्पायन प्रकाशन, पृ. 23
4. सुमन राजे, कथाक्रम (पत्रिका), अप्रैल–जून 2007, पृ. 70
5. अभय कुमार दुबे, भारत का भूमण्डलीकरण (2007), वाणी प्रकाशन, पृ. 22
6. अखिलेश, अब एक रैखिक कथ्य व शिल्प पर्याप्त नहीं, वागर्थ (पत्रिका), मई 2006, पृ. 46
7. संजय खाती, पिंटी का साबुन (1996), किताबघर प्रकाशन, पृ. 10–11
8. पंकज मित्र, क्विजमास्टर, तद्भव (पत्रिका), पृ. 100
9. जयनन्दन, सेराज बैंड बाजा (2013), वाणी प्रकाशन, पृ. 66
10. वही, पृ. 30
11. कैलाश बनवासी, 'बाजार में रामधन' (2004), अंतिका प्रकाशन, पृ. 19
12. वही, पृ. 127

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 193-196

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

कुसुम अंसल के लेखन में नारी चिन्तन

*अनुराधा गौतम**

साठोत्तरी समय में हिंदी साहित्य की अनेक विधाओं के लेखन में महिला लेखिकाओं ने भी साहित्य सृजन में अपना अमूल्य योगदान दिया है। इन लेखिकाओं ने नारी जीवन के परिप्रेक्ष्य में अपने समय की परिस्थितियों का चित्रण किया है। 'जिनमें उशादेवी मित्रा, कृष्णा सोबती, शिवानी, उषाप्रियवंदा, शशि प्रभा शास्त्री, मेहरून्निसा परवेश, मन्नू भंडारी, निर्मला वाजपेयी, ममता कालिया, रजनी पणिकर, मालती परुलकर, कृष्णा अग्निहोत्री, क्रांति त्रिवेदी, कांता भारती, मंजुल भगत, निरूपमा सेवती, दीप्ती खंडेलवाल, सूर्य वाला, सुनीता जैन, मृदुला गर्ग, मालती जोशी, सुभाष शर्मा, प्रतिभा सक्सेना, बिन्दु सिन्हा, मृणाल पाण्डेय, प्रतिभा वर्मा, मणिका मोहिनी, ऊषा चौधरी, राजी सेठ, नाशिरा शर्मा, मैत्रेयी पुष्पा, इला डालमिया, कांचन साबरवाल, अलका सारावगी आदि'।[1] ने हिन्दी साहित्य जगत में नारी लेखन के, नारी मुक्ति आन्दोलन की दिशा में अपना विशिष्ट योगदान दिया है। इसी क्रम में कुसुम अंसल का लेखन भी इस दिशा में अति महत्वपूर्ण बन पड़ा है। जिन्होंने अपने रचना सृजन के माध्यम से नारी विधा को पाठकों के सम्मुख लाने का सफल प्रयास किया है।

इन महिला लेखिकाओं ने अपने लेखन में नारियों के सामाजिक दायित्व का निर्वाह, नये सामाजिक मूल्यों की प्रतिष्ठा, रूढ़ियों का बहिष्कार, जातीय भावनाओं के संदर्भ की चर्चा, विवाह विषयक बदलते दृष्टिकोण, प्रौढ़ अविवाहित युवतियों की स्थिति, विवाह पूर्व स्थापित यौन संबंधों से गर्भधारण, दहेज के कारण नारी जीवन की अभिशप्तता, विवाह प्रथा के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण, दांपत्य संबंधों में सडांधता, मर्जी के खिलाफ संपन्न वैवाहिक जीवन में उत्पन्न घुटनशीलता, शैक्षिक असमानता के कारण वैवाहिक जीवन में उत्पन्न बाधा, अंतर्जातीय विवाह के प्रति आकर्षण, बहुपत्नीत्व तथा अनमेल विवाह से उत्पन्न उपेक्षित दृष्टिकोण, विधवा विवाह का समर्थन, संबंध विच्छेद से निर्मित अकेलेपन की पीड़ा, पुनः विवाह का समर्थन, यौन संबंधों के तौर तरीकों की तलाश, प्रेम त्रिकोण का समर्थन, नारी देह विक्रय के खिलाफ हेय दृष्टि, संयुक्त परिवार की घुटनशीलता, नौकरी पेशा नारी का दफ्तरी माहौल में होने वाला शोषण, नारी का दैहिक, आर्थिक तथा सामाजिक स्तर पर होने वाला शोषण, अभावग्रस्त नारी की महत्वांकाक्षा के परिणामस्वरूप उसका होने वाला शोषण, पुरूष की स्वार्थी प्रवृत्ति आदि अनेक नारी जीवन के तथ्य देखने को मिलते हैं। 'इन्हीं तथ्यों पर इन लेखिकाओं ने अनुभूति और संवेदना के साथ चिंतन किया है और बदलती हुई नारी जीवन की दिशा और दशा को रेखांकित किया है। कुसुम अंसल भी इन्हीं तथ्यों के लेखन की साक्षी और समर्थित लेखिका हैं।'[2]

कुसुम अंसल ने उदास आंखें, नींव का पत्थर, उसकी पंचवटी, उस तक, अपनी अपनी यात्रा, एक और पंचवटी, रेखाकृति, तापसी, किस पछाता सच, राहां की भात, स्पीड ब्रेकर, पते बदलते हैं, श्रेष्ठ कहानियां इक्तीस कहानियां, जो कहा नहीं गया आदि–आदि रचनाओं के माध्यम से अपनी बहुमुखी प्रतिभा की पहचान कराते हुए नारी जीवन के विविध पहलुओं को चित्रित किया है।

इसी तरह उनकी कहानियों में भी महानगरीय नगरीय कस्बाई समाज जीवन की गहराई की थाह लेने की कोशिश की है। इसीलिए मानवीय यातनाओं एवं विडम्बनाओं का सजग चित्रण करने वाली कहानी लेखिका के रूप में उनकी पहचान बनी है। उनकी कहानियों में नारी जीवन से सम्बन्धित तथा नारी जीवन के अनेक विचारों की पुष्टि हुई है। उनके कथा साहित्य में चित्रित नारी जीवन की घुटन, नारी की प्रेम संकल्पना, नारी प्रतिशोध

** शोध छात्रा (हिन्दी विभाग), अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)*

की भावना, नारी का दांपत्य जीवन, नारी का स्वतंत्र अस्तित्व, उनके विवाहपूर्व और विवाहेत्तर अवैध यौन संबंध, उनकी कर्तव्यपरायणता, नौकरी पेशा वाली नारी की दयनीयता आदि संबंधी विचारों को उन्होंने चित्रित किया है। हम कह सकते हैं कि उनके कथा साहित्य में समसामयिक युगबोध करा देने वाली घटनाओं तथा विषयों को वाणी मिली है।

कुसुम अंसल की आत्मकथा में भी नारी जीवन की बहुतेरी अनुभूति, नारी जीवन के चढ़ाव उतार के साथ उन्होंने बचपन, विवाह उपरांत जीवन आदि को उजागर किया है इसके माध्यम से उन्होंने अपने समूचे अनुभव को अभिव्यंजित किया है। इस आत्मकथा में कुसुम अंसल की आत्मनिर्भरता, आत्मसम्मान, सादगी पूर्ण रहन–सहन विवाह संस्कार विषयक विचार, आधुनिक समाज प्रथा संबंधी विचार, जीवन की परिभाषा की संकल्पना स्वतंत्र अस्तित्व की खोज संबंधी विचार, पुरुष तथा नारी संबंधों के प्रति विचार यहाँ देखने को मिलता है।

उनकी इन रचनाओं में एक तरफ सामाजिक विडम्बनाओं पर प्रहार है तो दूसरी तरफ प्रेम के अनुभव को नयी विश्वसनीयता है। एक तरफ विवाह संस्था की प्रमाणित करती हैं कि उन्होंने तत्कालीन प्रश्नों से सार्वकालिक प्रश्नों की ओर अपनी यात्रा आरंभ की है। विषय–वैविध्य की दृष्टि से कुसुम जी ने जीवन के अनेक बिंदुओं को स्पर्श किया है। सामाजिक विडम्बनाओं पर खुलकर प्रहार किया है। प्रेम के अनुभव को नई विश्वसनीयता दी है। विवाह संस्था की एकसरसता को चुनौती दी है तथा विवाह के खोखलेपन को उजागर किया है। जीवन के प्रत्येक अनुभव को उन्होंने बड़ी ईमानदारी के साथ अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया है। नारी–जीवन की तमाम समस्याओं को आपने पूरी सहानुभूति और आत्मीयता के साथ अंकित किया है। साथ ही साथ सामाजिक नैतिकता के स्थान पर वैयक्तिक नैतिकता को अभिव्यक्त दी है। आज के युग में नारी के जीवन–मूल्यों में तेजी से परिवर्तन नारी–शिक्षा, नारी–जागरण, संविधान प्राप्त अधिकार, समकालीन राजा सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक स्थिति, पाश्चात्य विचारधाराएँ। संस्कृति आदि के कारण नारी–जीवन में बहुत परिवर्तन लक्षित होने लगे हैं। मूल्यों के प्रति अनास्था और नए मूल्यों के प्रति आस्था यह मानसिकता परिवर्तित जीवन मूल्यों की ओर संकेत करती है, लेकिन परंपरागत धारणाओं के न वह पूरी तरह ठुकरा पाती है और न ही पाश्चात्य आधुनिक धारणाओं को एक तरह अपना सकती है। अंतर्द्वन्द्व में फंसी इस नारी की स्थिति बड़ी सोचनीय है। प्रेम, यौन, नीति, अस्तित्व, मुक्ति आदि के प्रति परिवर्तित दृष्टिकोण उसमें बढ़ता जा रहा है। नैतिकता के नए मूल्यों को वह अपने जीवन में स्थान देती है। अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए समस्त नीति मूल्यों को तुकराना चाहती है। शोषणों से वह मुक्ति पाना चाहती है। पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के कारण उसके जीवन में विसंगतियों का निर्माण होने लगा है। आधुनिकता के नाम पर वह देह प्रदर्शन की होड़ में लगी रही है।

जीवन में इनकी अवस्थिति भौतिक, मानसिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, आध्यात्मिक आदि आधारों पर होती है। व्यावहारिक तौर पर पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव और अर्थतंत्र के बढ़ते शिकंजे के कारण भौतिक और आध्यात्मिक विकास की गति अवरुद्ध हुई है। इस अवरोध से सामाजिक मूल्यों में सहिष्णुता, सम्मान और नैतिकता के भाव का लोप होने लगा है किंतु स्वार्थ और स्वयं के प्रति आग्रह में वृद्धि हुई है। इस दौड़ में अधिकारों की मांग बढ़ी है, कर्तव्यों की प्रतिबद्धता न्यून हुई है। प्रतिस्पर्धा की यह चेतना नारी–पुरुष दोनों में बढ़ी है–फलतः मूल्यों के हास का संकट भी उत्पन्न होने लगा है। आवश्यकता इस बात की है कि जीवन को सहभागिता से आगे बढ़ाया जाय ताकि सामाजिक विकास की गति को नापा जा सके। आशारानी व्होरा ने इस स्थिति को स्पष्ट करते हुए लिखा है, 'जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नारी पुरुष की बराबरी उतनी जरूरी नहीं, जितनी कि दो भिन्न प्रवृत्तियों के योग्य संतुलन और पारस्परिक सहयोग से साझेदारी। अधिकारों के लिए संघर्ष और उनकी प्राप्ति के बीच की अवधि कम करने के लिए एक ही उपाय है नारी–पुरुष का सहकार अथवा इस अभियान में पुरुषों को साथ लेकर चलना। 'सामाजिक नवनिर्माण के लिए यह पहली शर्त है।'[3]

आधुनिक युग वास्तव में नारी–जागरण का युग है। इस युग में समाज–सुधारकों ने, कवियों ने, साहित्यकारों ने नारी के युगों–युगों से चल रहे। शोषण, अन्याय, अत्याचार एवं कैद से उसे मुक्ति दिलाने हेतु आवाज उठाई है। उन्होंने नारी–शिक्षा समता, अधिकार आदि बातों पर बल दिए। परंपरागत रुढियों, धार्मिक बंधन आदि के कारण जो नारी–शोषण होता आया है, उसके खिलाफ आवाज उठाई।

कुसुम अंसल के नींव का पत्थर 1976 में नारी पात्रों की घुटनशीलता के दर्शन होते हैं। भारतीय पुरुष प्रधान संस्कृति में नारी को गौण स्थान प्राप्त होने के कारण मजबूरी की बेड़ियों में अटकी की नारी घर–बाहर घुटन सीता का एहसास कर रही है। महानगरीय परिवेश में यह गोटन सीता अधिक की उम्र नजर आती रही है शिखा का यूरोप से अपने गांव दादी मां के पास आ जाना अपने घर की गौशाला में जाकर नौकर क्यों को घोड़े की मांग करना घुड़सवारी का उससे बड़ा चाव होना गांव के लोगों द्वारा दादी मां को डांट कर उसे शहरी पहनावा भैरव गांव में ना करने की सूचना देना इससे शिखा का दुखी होना मन की मन ही मन घुटती रहना है जब भाई भाभी के साथ वह विदेश में थी तो भाभी ने उसे गवार मानकर उसके बाल कटवाए पेंट शर्ट पहनने की आदत करवाई विदेश में भी परेशानी और गांव में भी परेशानी से वह कैंसिल बनकर कहती है–'काश मां होती अपनी बाहों के घेरे में उसे रखती, कोई हवा, कोई तो चार–पांच उसे छू न पाता। अकेले बैठ मां के लिए कितना रोई थी, वह और उस दिन भाभी ने ले जाकर उसी के लंबे–लंबे बाल कटवा दिए वह दबा कर रह गई।'[4] मन ही मन करती कि जैसा देश वैसा भेष करना चाहिए।

धन दौलत कीमती चीजों आदि के कारण नारी सुखी नहीं होती है। उसे तो पति का प्यार स्नेह ममतत्व की आवश्यकता होती है। पति अपने विचार के अनुरूप प्यार दे अपने प्रति पूछताछ करे। अपना ख्याल करे आदि की अपेक्षा नारी करती है। इसके लिए साध्वी भी अपवाद नहीं है वह कहती है–'यतीन ने सदा मुझे गलत समझा मैंने उससे हर तरह से समझौता करना चाहा पर वह मुझसे कभी भी इंप्रेस नहीं हुआ, वह सोचता था मुझे आवश्यकता से अधिक धन सुविधाएं देकर वह सारे शौक है पर मन से वह मुझे प्यार नहीं कर पाया और मैं घुटती गई।'[5] पति का प्रेम न मिलने के कारण यहां साध्वी की बढ़ती रही है।

कुसुम अंसल के अपनी अपनी यात्रा' उपन्यास की सुरेखा भी आत्मनिर्भर बनकर रहना चाहती है। वह स्वयं की जिम्मेदारी स्वयं उठाना चाहती है। वह अपना बोझ माता–पिता पर छोड़ना नहीं चाहती। सहेली की सहायता से मशहूर एडवोकेट के यहां काम करने की स्वीकृति देते हुए सूर्य सुलेखा के पिताजी भी सुरेखा स्वावलंबन का पाठ पढ़ाते हुए कहते हैं 'अब जमाना बदल गया है, हर लड़की को अपने पैरों पर खड़ा होना चाहिए।'[6]

कुसुम अंसल के श्रेष्ठ हिंदी कहानियां 1987 संग्रह की कुछ अनकहा कहानी में बुआ की घुटनशीलता पर चिंतन किया गया है। उसका बेटा जीवन की मृत्यु आगरा के हार्ड अटैक के कारण होती है। बुआ शादी के केवल 15 महीने बाद विधवा हो जाए हो गई थी और 5 महीने के जीवन को उन्होंने जैसे–तैसे पाल पाला था वह अतीत का स्मरण करते हुए वर्तमान स्थिति संबंधी सोचती है 'मौत से भी कठोर होता है मौत के बाद का सन्नाटा सन्नाटे को तोड़ता प्रिय जनों का रुदन स्वर मुर्छाएं और बिलाप'[7] यहां असमय विधवा बनी हुई बुआ की घुटन सी जिंदगी पर लेखिका ने चिंतन व्यक्त किया है।

कुसुम असल के स्पीड ब्रेकर कहानी संग्रह के स्पीड ब्रेकर कहानी में एक विवाहित नारी के नाते रोजमर्रा का काम निपटाने के कारण उसकी मानसिकता पर जो असर पड़ा है, इस पर सोचती हुई लेखिका कहती है कि–'मैं जमी हुई बर्फ नही हूँ मुझमें प्राप्त है, गति है। मेरी अपनी बात मुझे अजीब लगी थी। जी चाहा विद्रोह कर डालूं, सबसे बदला माँ–बाप से जिन्होंने जाने क्या सोचा, जहाँ जी चाहा व्याह किया, विद्रोह करूँ अपने आपसे जो बिना प्रतिवाद किए, हालात से समझौता किए सिर झुकाती चलती रही।'[8] ये नारियाँ अपनी पारिवारिक जिम्मेदारी उठाती है। परिवार के प्रति लगाव रखती है। फिर भी पारिवारिक जीवन से ऊबकर अपने स्वतंत्र अस्तित्व के प्रति सोचती है।

कुसुम जी के 'जो कहा नहीं गया आत्मकथा के तितलियों से पंचवटी तक अंश में आपके अवैध यौन संबंधों पर विचार है। समाज में अधिकतर लोग वासना के शिकार है। वे अपनी वासना की हवस के लिए भक्षक को ढूंढते हैं। 'मुझसे दोस्ती करेगीं आप–'मैंने आपको जब देखा, तो आप लगीं आप, आपका चलने का अंदाज मेरा जी चाहा आपको छूकर देखूं'।[9]

इसी तरह उनके काव्य संग्रह रेत और और कविता की नारी को महसूस होता है कि उसका जीवन रेगीस्तान की रेत के समान है। वह कहती है–

एकात्म उन पलों में कभी तो
रेगिस्तान जलमय हो प्यास बुझाता है,
कभी अग्निमय हो मुझे तपाता है[10]

यहाँ कविता में चित्रित नारी के संघर्षमयी जीवन की झाँकी मिलती है।

इस तरह हम कह सकते कि कुसुम अंसल के सृजन लेखन में नारियों के विचार प्रगतिवादी एवं सुधारवादी है। ये नारियों समाज का दु:ख मिटाने की दृष्टि से विचार करती हैं। सामाजिक असुविधा के कारण नई पीढ़ी का जीवन, भविष्य अंधकारमयी बन रहा है। यह उनकी धारणा है। ये नारियाँ सामाजिक सुख–सुविधा तथा खुशियों के दिनों का इंतजार करती हैं। वे नई पीढ़ी के भविष्यकालीन जीवन संबंधी चिंतित है। ये नारियाँ अपने विचारों का दान करना चाहती है, जिसे सुनकर जिंदगी की क्षतिपूर्ति नहीं होगी। इन कविताओं की नारियों ने जीवनमूल्य विघटन एवं जाति भेदा–भेद की पतितावस्था को देखकर तत्संबंधी विचार उठाए हैं। आजादी के बाद देश की त्रासदी, रिश्वतखोरी, घोटाले, अन्याय, अत्याचार, शोषण आदि का पर्दाफाश किया है। ये नारियाँ सुधारवादी दृष्टिकोण की हैं।

संदर्भ–सूची

1. डॉ. मोहनी शर्मा, हिन्दी उपन्यास और जीवन मूल्य, पराग प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1986
2. डॉ. आर. पी. भोसले, कुसुम अंसल के हिन्दी साहित्य में चित्रित स्त्री जीवन, पूजा पब्लिकेशन, कानपुर, 2012
3. भारतीय नारी अस्मिता और अधिकार, डॉ. सुदेश बत्रा, रचना प्रकाशन जयपुर, प्र.सं. 1968
4. नींव का पत्थर, कुसुम अंसल, स्टार पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1976
5. कुसुम अंसल, उसकी पंचवटी, हिन्दी बुक सेंटर, प्रकाशन नई दिल्ली, 1978
6. कुसुम अंसल, अपनी अपनी यात्रा, सरस्वती प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. 1981
7. कुसुम अंसल, श्रेष्ठ हिन्दी कहानियां, अभिव्यंजना प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1986
8. कुसुम अंसल, स्पीड ब्रेकर, स्टार प्रकाशन नई दिल्ली, 1978
9. कुसुम अंसल, जो कहा नहीं गया, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, 1966
10. कुसुम अंसल, मेरा होना, अभिव्यंजना प्रकाशन दिल्ली, 1968

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 197-199

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

साम्प्रदायिकता के आइने में मुस्लिम समाज

*डॉ. विजयन्ती**

शोध–सार : भारत विश्व में सदैव अपनी सांप्रदायिक एकता और अखण्डता के लिए प्रसिद्ध है। इसीलिए भारत को धर्म निरपेक्ष देश भी कहा जाता है। सभी धर्मों के लिए एकता की बात करने वाले देश में एक समुदाय ऐसा भी है जो आज़ादी के बाद कुछ–कुछ समय के अन्तराल पर सांप्रदायिकता का शिकार होता रहा है। वह है–मुस्लिम समुदाय।

स्वतंत्रता से पूर्व एक दौर ऐसा भी था जिसमें हिन्दू–मुस्लिम दोनों समुदाय एक–दूसरे के धर्म का सम्मान करते थे और तीज–त्यौहारों में तन–मन–धन से सम्मिलित होते थे। इतना ही नहीं देश की आज़ादी में जितना योगदान हिन्दुओं ने दिया उतना ही मुस्लिमों ने। उदाहरण के तौर पर अश्फाकुल्ला खान, डॉ० ज़ाकिर हुसैन, बहादुर शाह ज़फर आदि मुस्लिम स्वतंत्रता सेनानी थे। सन् 1947 को भारत स्वतंत्र हुआ और इसके साथ ही जन्म हुआ विभाजन की त्रासदी का। सत्ता के स्वार्थी जिन्ना और उसके चाटुकारों ने मुस्लिम देश तो अलग कर लिया लेकिन राष्ट्र के प्रेम के कारण जो मुस्लिम भारत में रह गए वो आज तक सांप्रदायिकता की समस्या से पीड़ित हो रहे हैं। मुस्लिम समुदाय के राष्ट्र–प्रेम को आशंकित दृष्टि से देखा जाता है। सामाजिक एकता और अखण्डता के स्तर पर दोनों धर्मों (हिन्दु और मुस्लिम) में अलगाव की स्थिति विद्यमान है। यही अलगाव की भयावह स्थिति समाज में किसी न किसी सांप्रदायिकता विशेष को उजागर करने का कारण बनती है।

भारतवर्ष में सांप्रदायिकता सदैव एक कालजयी कृति की भांति प्रशंसक रही है जिसका इतिहास बेशक पुराना हो लेकिन वर्तमान में इसकी छवि किसी–न–किसी सांप्रदायिक रूप में उभर ही आती है। यह सर्वविदित है कि भारत में शासकों ने अपनी सत्ता को स्थापित करने कि लिए यहाँ की जनता के साथ हर तरह के मानवीय–अमानवीय व्यवहार किया। उनके इस व्यवहार का भारतीय समाज पर व्यापक प्रभाव पड़ा। आक्रमणकारियों के अमानवीय व्यवहार द्वारा जिस पारस्परिक घृणा का उदय हुआ, उससे भारतवर्ष सदैव ग्रसित रहा है। इसी संदर्भ में दिनकर ने कहा है कि–"हिन्दू जन्मजात अहिंसक थे। अनेक धर्मों का स्वागत करते–करते वे धार्मिक मामलों में बहुत सहिष्णु हो गए थे। महमूद से पहले जो मुसलमान भारत आए थे, उन्हें यहाँ राजाओं ने प्रश्रय दिया। अगर कोई उनकी मस्जिद तोड़ता तो हिन्दू राजे अपराधियों को दण्ड देते थे तथा टूटी हुई मस्जिद की मरम्मत अपने पैसों से करा देते थे। जब मुस्लिम आक्रमण के साथ मंदिरों और मूर्तियों पर विपत्ति आई, हिन्दुओं का हृदय फट गया और वे इस्लाम से तभी जो भड़के सो अब तक भड़के हुए हैं।"[1] हिन्दु आबादी धर्म के नाम पर किए मुस्लिम शासकों द्वारा किए गए अत्याचारों से सदैव ग्रसित रही है। जिस कारण दोनों ही धर्मों के लोगों में आपसी वैमनस्य कायम था।

सन् 1600 ई० में अंग्रेज़ों का भारत में आगमन हुआ। अब भारत मुगलों की दासता से निकलकर अंग्रेज़ों के अधीन हो गया। अंग्रेज़ों ने भारतीय जनता की गरीबी का लाभ उठाया और उन्हें फौज में भर्ती किया। जातियों के विकास को रोका। ऐतिहासिक दृष्टि से सन् 1857 का स्वाधीनता संग्राम ब्रिटिश हुकुमत के विरूद्ध एक महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। जिसमें हिन्दू और मुस्लिम दोनों ने मिलकर यह संग्राम लड़ा। यहाँ जवाहरलाल नेहरू का मत है कि–"विद्रोह की भावना आम जनता में खासतौर से सामंतवादी सरदारों और उनके अनुयायियों में बढ़ रही थी। उच्च वर्ग के लोगों को इन विदेशियों की अकड़ उनका अपमानजनक व्यवहार बहुत अखरता था।"[2] परतंत्रता

* *शोधछात्रा, पोस्ट डॉक्टोरल फैलोशिप (हिन्दी विभाग), भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली*

की बेड़ियों से मुक्त होने के लिए दोनों ही धर्मों के लोगों ने अपना योगदान दिया। भारत अंग्रेज़ों से स्वतंत्र तो हुआ मगर अंग्रेज़ों की 'फूट डालो राज करो' की नीति ने हिन्दू–मुस्लिम भाईचारे को सदा के लिए समाप्त कर दिया। दोनों धर्मों के लोग एक–दूसरे के खून के प्यासे हो उठे। यह स्थिति संपूर्ण भारतवासियों के लिए शर्मसार थी और संपूर्ण भारत ने सांप्रदायिकता की चादर ओढ़ ली। इस सांप्रदायिकता का परिणाम भारत विभाजन के रूप में हुआ। सन् 1947 अगस्त माह में विभाजन के फलस्वरूप पाकिस्तान का जन्म हुआ। पाकिस्तान में आस्था रखने वाले उच्च वर्ग और मध्यम वर्ग के लोग विभाजन के बाद पाकिस्तान चले गए और निम्न वर्ग के मुसलमान तथा वे मुसलमान जिनकी भारत में आस्था थी, वो यहीं रह गए। मुस्लिम समाज की स्थिति को नासिरा शर्मा कृत 'ज़िन्दा मुहावरे' उपन्यास में भी दर्शाया गया है–"रहीमुद्दीन ने हुक्का गुड़गुड़ाते हुए बेटे की बात सुनकर कहा! "भूल मत करो, ज़मीन सबकी छिनेगी। जब मुल्क से जमींदारी खत्म हो रही है, तो इसका मतलब है, हर छोटा–बड़ा चाहे वह हम हों या कोई और बंटवारा मुल्क का हुआ है, हमारे इस गांव का नहीं? हमारा पुश्तैनी घर, खेत, रिश्तेदारी, बिरादरी, सब कुछ यहीं है। वह तो किसी ने नहीं छीना।"[3] भारत में रहने वाले मुसलमान अधिकतर धर्मांतरित थे। वे भारत को छोड़कर जाना नहीं चाहते थे। इसी संबंध में डॉ० ओमप्रकाश कहते हैं कि–हिन्दुस्तान में मुस्लिम आबादी का एक बड़ा हिस्सा मुसलमानों का था। अनेक परिवर्तनों से गुज़रने के बाद भी दोनों सम्प्रदाय सामाजिक स्तर पर समान नहीं हो पाए थे।"[4]

भारत में रह गए मुस्लिम समुदाय के लोगों को संदेह की दृष्टि से देखा जाने लगा। समाज के इन्हीं विषयों को मंजूर एहतेशम ने अपने उपन्यास 'सूखा बरगद' में चित्रित किया है–"सबसे बड़ा फर्क, "सुहेल ने व्यंग्य से हँसकर कहा था–तो यही है कि हिन्दू को यह साबित नहीं करना पड़ता कि उसका मुल्क हिन्दुस्तान है।"[5] साम्प्रदायिकता की जड़ें नष्ट होने की जगह और अधिक मज़बूत होने लगी। हिन्दुओं और मुसलमानों ने एक साथ स्वाधीनता संग्राम लड़ा परन्तु स्वाधीनता के समय वे एक साथ न रह सके। सांप्रदायिकता की भावना आम जनता के मन में पैठ कर गयी थी। सांप्रदायिकता की भावना उग्र होने लगी थी। इसी संबंध में नेहरू जी ने कहा था–"वे (संप्रदायवावदी) किसी गुज़रे ज़माने के अवशेष मात्र हैं, जिनकी जड़ें न तो अतीत में हैं और न तो वर्तमान में, वे बीच हवा में लटक रहे हैं, सोचने–समझने का तरीका बहुत खतरनाक है। यह दूसरों की तरफ़ ज़बरदस्त नफ़रत का तरीका है।"[6] नेहरू जी द्वारा कही गई बात सच निकली। विभाजन के दो वर्ष भी पूरे न हुए कि मुस्लिम लीग केरल में पुनः निर्मित हो गई। सन् 1960 तक पूरे भारत में मजलिसे मुशवरत, जमाते इस्लामी, कश्मीर मुक्ति मोर्चा, मुकद्दस ऐक्शन कमेटी, इत्तेहादुल मुसलमीन, उत्तर प्रदेश में डॉ० फरीदी का दल आदि अनेक सांप्रदायिक संगठन प्रादेशिक स्तर पर स्थापित हो गए। केरल में मुस्लिम लीग बन जाने पर भी भारतीय स्तर पर मुसलमानों का कोई मज़बूत संगठन न था। ऐसी स्थिति में वे शासकीय सरकार कांग्रेस की ओर झुकने को बाधित हुए और कांग्रेस सरकार ने भी इस अवसर का भरपूर लाभ उठाया। "मुल्ला मौलवियों के माध्यम से कांग्रेस ने मुसलमानों को अपने कब्ज़े में रखा पर उनके विकास की ओर ध्यान न दिया।"[7] सरकार ने मुस्लिम समुदाय का उपयोग वोट बैंक की तरह किया।

भारत में एक तरफ केरल में जन्मीं मुस्लिम लीग थी तो दूसरी ओर हिन्दू महासभा थी। जिसका नेतृत्व श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने किया। इसके अन्तर्गत हिन्दू राज्य के सपने को साकार करने और मुस्लिम आबादी को देश से बाहर निकालने या उसका भारतीयकरण कर उसे पालतू बनाने पर ज़ोर दिया। इस प्रकार की घोषणाओं से पुनः साम्प्रदायिकता का माहौल पनपने लगा। स्वतंत्रता के बाद प्रथम हिन्दू–मुस्लिम दंगा सन् 1961 में जबलपुर में हुआ। इसके बाद दंगों का सिलसिला–सा बन गया। सन् 1965 में भारत और पाकिस्तान के बीच युद्ध हुआ। इस युद्ध के कारण देश के निवासियों (हिन्दू–मुस्लिम) दोनों समुदायों को सांप्रदायिकता का सामना करना पड़ा। विभाजन के बाद डर, शक, नफरत, अविश्वास एवं तनाव की जो नींव पड़ी थी, उसे लेकर दोनों संप्रदाय भीतर तक प्रभावित हुए। सांप्रदायिक समस्याओं के कारण ही 20वीं शताब्दी के मध्य में भारत विभाजित हुआ। इस घटना से भारतीय जनजीवन का सामाजिक, राजनीति, आर्थिक, धार्मिक–सांस्कृतिक और मानवीय सभी पक्ष प्रभावित हुए।

सन् 1980 में इंदिरा गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस की सत्ता में पुनः वापसी हुई थी। हिन्दू लोगों की धार्मिक भावनाओं को अपने पक्ष में मोड़कर कांग्रेस जनता को अपने पक्ष में तैयार कर रही थी। इन्हीं चुनावी रणनीतियों के कारण भारत में हिन्दू–सिख सांप्रदायिकता का विकास हुआ और इंदिरा गांधी अपनी इसी खतरनाक राजनीति

के षड्यंत्र से बाबरी मस्जिद को नेस्तनाबूत कर दिया गया। जिसके बाद दोनों समुदाय बुरी तरह सांप्रदायिकता की आग में झुलस गए। इस आग को भड़काने में ना हिन्दू ना मुस्लिम संगठन पीछे रहे। इस्लाम खतरे में है या भारत में मुसलमानों का भविष्य असुरक्षित है। इस तरह की अफवाहें उड़ने लगी और दोनों ही समुदायों के मध्य कभी ना भरने वाली खाई खुद गई। जिसके बीज समाज में आज तक विद्यमान हैं। मुस्लिम समुदाय की पीड़ा को व्यक्त करते हुए डॉ० ओमप्रकाश सिंह व्यक्त करते हैं कि–"आज भी लगातार मुस्लिम जनता के दिमाग में यह बैठाया जा रहा है कि वे मुसलमान पहले हैं, भारतीय बाद में। यही कारण है कि वे भारतीयता से ज़्यादा मज़हब को तरज़ीह दे रहे हैं।"[10] आज भी सत्ताधारी असामाजिक तत्व हिन्दू और मुसलमान दोनों ही समुदाय के लोगों को आपस में लड़वाकर तमाशा देखते हैं। किन्तु दोनों समुदायों को विकसित करने या शिक्षित करने के विषय में ना तो कोई सोचता है ना कोई सोचना चाहता है। छोटे–छोटे सामाजिक विषय आज एक विकराल समस्या का रूप ले रहे हैं। वैश्विक स्तर पर हम बेशक एकता और अखण्डता की बात करते हों परन्तु अधिकतर हिन्दू, मुस्लिम के घर के खाने तक से परहेज़ करते हैं। भारतीय हिन्दू समाज की ऐसी स्थिति का चित्रण विष्णु प्रभाकर कृत 'निशिकांत' उपन्यास में भी देखने को मिलता है–"माँ ने समझाया, बेटा तुम मुसलमान हो, हम हिन्दू! हिन्दू, मुसलमान के घर का नहीं खाते।"[11] भारतीय समाज में छूआछूत की यह समस्याएँ आम बात हैं। इसी कारण हमारा समाज अलग–अलग धर्मों में विभाजित होकर रह गया है। यहाँ प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की पहचान एक इंसान के तौर पर नहीं बल्कि जाति, धर्म, गोत्र आदि के नाम पर करता है। यही विलगता भारतीय समाज की सबसे बड़ी विडम्बना है।

निष्कर्ष–आज स्वतंत्रता के इतने वर्ष बीतने के बाद भी हम सांप्रदायिकता के अंगारों से सुलग रहे हैं। हिन्दू–मुस्लिम वैमनस्य हमारी सोच का हिस्सा बन चुका है। आज़ादी के सत्तर वर्ष बाद भी देश में सांप्रदायिकता पूर्णतः समाप्त नहीं हो पाई है। जिससे मुस्लिम समाज आज तक पीड़ित है। भारत में मुस्लिम समाज आज भी दोयम दर्जे की स्थिति में है। मुस्लिम समुदाय को भारतीय सरकार बोट बैंक समझती है और चुनाव के समय इनका उपयोग करती है। अतः आज हमें ज़रूरत है दोनों समुदायों के आपसी वैमनस्य को दूर करने की जिससे भारतीय युवा पीढ़ी का भविष्य अवलोकित हो सके।

संदर्भ–सूची

1. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, उदयाचल प्रकाशन, पटना, 1962, पृ. 316
2. जवाहरलाल नेहरू, हिन्दुस्तान की कहानी, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, 1966, पृ. 307
3. नासिरा शर्मा, ज़िन्दा मुहावरे, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2010, पृ. 10
4. डॉ० ओमप्रकाश सिंह, प्रेमचन्दोत्तर कथा साहित्य और सांप्रदायिक समस्याएँ, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण–1998, पृ. 8, 9
5. मंज़ूर एहतेशाम, सूखा बरगद, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण–1986, पृ. 82
6. एम०एस० चाँद, राष्ट्रीय नेता और सांप्रदायिक समस्या, पंचशील प्रकाशन दिल्ली, 1988, पृ. 36
7. डॉ० ओमप्रकाश सिंह, प्रेमचन्दोत्तर कथा साहित्य और सांप्रदायिक समस्याएँ, पृ. 114
8. वही, पृ. 218
9. मुनीस रज़ा, 'रक्तबीज', हंस (पत्रिका), 2/36 अंसारी रोड, दरिया गंज, दिल्ली, अक्टूबर–1988, पृ. 14
10. डॉ० ओमप्रकाश सिंह, प्रेमचन्दोत्तर कथा साहित्य और सांप्रदायिक समसयाएँ, पृ. 218
11. विष्णु प्रभाकर, निशिकांत, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, संस्करण–1958, पृ. 60

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 200-203

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

''काशी की संस्कृति : 'काशी का अस्सी' के आइने में

*जूली**

भारतीय संस्कृति के निर्माण में काशी की संस्कृति का महत्त्वपूर्ण स्थान है। काशी की संस्कृति काशीनाथ सिंह के व्यक्तित्व के उन्नयन में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। डॉ० सिंह के कथा–साहित्य में काशी की संस्कृति जिस रूप में मिलती है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। कबीर से काशीनाथ सिंह तक इस संस्कृति की एक लम्बी परम्परा है। इस परम्परा का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि "कबीर के साथ हमारे पास बनारस स्वतः चला आता है, गो कि तुलसी भी वहीं थे, लेकिन बनारस उनके साथ नहीं मिलता है। हजारी प्रसाद द्विवेदी के साथ बनारस हमारे पास आता है। भारतेन्दु के साथ बनारस हमारे पास आता है। तो बनारस अक्खड़–फक्कड़ लोगों में ही क्यों मिलता है या यह कि अक्खड़–फक्कड़ ही बनारस की पहचान क्यों है? फिलहाल तो काशीनाथ सिंह इस परम्परा के जीवन वाहक है।"[1] काशी के सांस्कृतिक स्वरूप का प्रभाव काशीनाथ सिंह के कथा–साहित्य पर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

काशीनाथ सिंह ने काशी को मर्म को आत्मसात् किया है। उनके कथा–साहित्य में काशी के समाज एवं संस्कृति के उन समस्त पक्षों का चित्रण हुआ है, जो वहाँ के जन–सामान्य में प्रचलित है। काशी के लिए कहा गया है कि 'राँड़, साँड़, सीढ़ी, संन्यासी। इनसे बचे तो सेवे काशी।' अर्थात् बनारस का हो जाना आसान नहीं है। बनारस कड़ी परीक्षा लेता है तब जा कर कोई बनारस का हो पाता है। यह सच जितना 'काशी' नाम के एक शहर पर सटीक बैठता है, उतना ही 'काशी' नाम के उस व्यक्ति पर भी सटीक बैठता है, जिसे हिन्दी साहित्य काशीनाथ सिंह के नाम से जानता है। यदि आप काशी का होना चाहते हैं तो रांड़, साड़, सीढ़ी, संन्यासी से पार पाये बगैर काशी लाभ नहीं होने वाला। कहने का तात्पर्य है कि काशी का होने के लिए व्यक्ति को उस स्थान के साथ तादात्म्य स्थापित करना पड़ता है। काशीनाथ सिंह काशी के साथ तादात्म्य स्थापित करने में सफल होते हैं। इसकी पुष्टि उनका कथा–साहित्य करता है।

काशीनाथ सिंह काशी की वस्तुस्थिति का बड़ा ही सजीव चित्रण करते हैं। उन्होंने काशी के निवासियों के रहन–सहन तथा वेशभूषा का चित्रण बड़ी रोचकता से किया है। अस्सी पर रहने वाले लोगों का सांगोपांग परिचय काशीनाथ सिंह कुछ इस प्रकार देते हैं–

"कमर में गमछा, कन्धे पर लंगोट और बदन पर जनेऊ यह यूनिफार्म है अस्सी का। हालाँकि बम्बई दिल्ली के चलते कपड़े–लत्ते की दुनिया में काफी प्रदूषण आ गया है। पैंट–शर्ट, जींस, सफारी और भी जाने कैसी–कैसी हाई–फाई पोशाकें पहनने लगे हैं लोग, लेकिन तब जब नौकरी या जजमानी पर मुहल्ले के बाहर जाना हो, वरना प्रदूषण ने जनऊ या लंगोट का चाहे जो बिगाड़ा हो, गमछा अपनी जगह अडिग है।"[2]

तात्पर्य यह है कि काशीनाथ सिंह काशी की संस्कृति के उन सूक्ष्य पक्षों पर अपनी सजग दृष्टि रहे हुए हैं, जो बदलते समय के अनुसार बदल तो रही है, लेकिन अभी भी अपनी संवेदना को बनाये हुए है। काशी के विषय में अनेक प्रकार की दृष्टि साहित्य में मिलती है, लेकिन काशीनाथ सिंह के यहाँ अनोखा रूप दिखायी पड़ता है। 'बना रहे बनारस' के लेखक विश्वनाथ मुखर्जी के अनुसार– "एक बनारसी जो सही मायने में बनारसी है जिसके सीने में एक धड़कता दिल और इसी दिल में बनारसी होने का गर्व है, वह कभी बनारस के विरूद्ध कुछ सुनना या कहना पसन्द नहीं करेगा।"[3]

* *शोध छात्रा (हिन्दी विभाग), कूबा पी.जी. कालेज, दरियापुर, नेवादा, आजमगढ़*

काशी की संस्कृति में सत्यता के मूल्यों के प्रति एक अद्भूत जोश दिखायी देता है। यही आत्माभिमान नगरवासियों की विशेषता है जो प्रकारान्तर से बनारस का हर व्यक्ति अनुभव करता है। प्रो० चौथीराम यादव के अनुसार, "बनारस की इस संस्कृति के पीछे अनेक वर्षों का इतिहास है। सिद्धों–नाथों और कबीर आदि सन्तों की शक्तिशाली प्रतिसंस्कृति बनारस में औघड़ संस्कृति और लोक संस्कृति कही जाती है। अस्सी चौराहे की संस्कृति इसी औघड़ संस्कृति और लोक संस्कृति के मेल–मिलाप की संस्कृति है। दोनों में चोली–दामन का साथ है।"[4]

काशीनाथ सिंह ने अपने उपन्यास 'काशी का अस्सी' में बनारस का जो चित्र उपस्थित किया है, वह प्रशंसनीय है। डॉ० सिंह ने उपन्यास की संरचना में काशी के केन्द्रीय चरित्र को उभारने का प्रयास किया है। उनके लेखन में भाषा का जो गठन दिखाई पड़ता है, उसका प्रसार सम्पूर्ण उपन्यास पर दिखाई पड़ता है। काशी बाबा विश्वनाथ की नगरी है। समय के अनुसार बदलती दृष्टियों का प्रभाव भी काशी पर दृष्टिगत होता है। आधुनिकता का मूल्य किस प्रकार पूरे समय, समाज और सांस्कृतिक पक्षों को प्रभावित कर रहा है। उन सारी बातों को काशीनाथ सिंह ने अपने उपन्यास 'काशी का अस्सी' में यथार्थ रूप से चित्रित किया है। अस्सी के विषय में डॉ० सिंह लिखते हैं–

"शहर बनारस के दक्खिनी छोर पर भीड़–भाड़ वाली चाय की एक दुकान। इस दुकान में रात–दिन बहसों में उलझतें, लड़ते–झगड़ते गाली–गलौज करते कुछ स्वनामधन्य अखाड़िए बैठकबाज। न कभी उनकी बहसें खत्म होती हैं न सुबह शाम। जिन्हें आना हो आएँ, जाना हो जाएँ। इसी मुहल्ले और दुकान का 'लाइव शो' है, यह कृति उपन्यासों का उपन्यास और कथाओं की कथाएँ।"[5]

अतः काशी की सांस्कृतिक परम्परा की विरासत है। इसकी निरन्तरता आगे बढ़ते हुए विकसित हो रही मानवीय संस्कृति की परिचायक सिद्ध होगी। इस उपन्यास का पात्र अस्सी' उसी सजीवता के साथ उपस्थित होता है, जिस रूप में काशी का अस्सी विद्यमान है। यह रचनाकार की सफलता है कि वह पूरी संवेदना के साथ रचना का सृजनात्मक चित्रण करता है। काशीनाथ सिंह लिखते हैं–

"अब वह मुकम्मल उपन्यास आपके सामने हैं, जिसमें पाँच कथाएँ हैं और उन सभी कथाओं का केन्द्र भी अस्सी है। हर कथा के स्थान भी वही, पात्र भी वे ही, अपने असली और वास्तविक नामों के साथ अपनी बोली–वाणी और लहजों के साथ। हर राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दे पर इन पात्रों की बेमुरव्वत और लट्ठमार टिप्पणियाँ काशी की उस देशज और लोक परम्परा की याद दिलाती है, जिसके वारिस कबीर और भारतेन्दु थे।"[6]

काशी की संस्कृति के अद्भुत स्वरूप का चित्रण डॉ० सिंह ने इस प्रकार किया है–

"हर–हर महादेव के साथ 'भोसड़ी के' का नारा इसका सार्वजानिक अभिवादन है। चाहे होली का कवि–सम्मेलन हो चाहे कर्फ्यू खुलने के बाद पी०ए०सी और एस०एस०पी० की गाड़ी, चाहे कोई मन्त्री हो, चाहें गधे को दौड़ाता नंग–धड़ंग बच्चा, यहाँ तक कि जार्ज बुश या मार्गरेट थैचर या गोर्बाचोव चाहे जो आ जाये (काशी नरेश को छोड़कर) सबके लिए 'हर–हर महादेव के साथ 'भोसड़ी के' का जय–जयकार।"[7]

काशी की परम्परा में हर–हर महादेव एवं लोकजीवन में सरसता के साथ घुला–मिला व्यक्त 'भोसड़ी के' का अभिवादन है–उसका। काशीनाथ सिंह ने इस यथार्थ का हू–ब–हू चित्रण किया है। उन्होंने अपने समय के स्वच्छन्द वातावरण में अपने आत्मीयों के साथ जिये हुए मानवीय मूल्यों को रचनात्मक स्वरूप देने की कोशिश किया है। 'काशी का अस्सी' उपन्यास के 'देख तमाशा लकड़ी का' और 'सन्तों घर में झगरा भारी' में लेखक काशीनाथ सिंह ने पूरी जिन्दादिली के साथ नये मिजाज एवं मौलिक पहचान के साथ काशी की परम्परा एवं संस्कृति का चित्रण किया है।

"'भारतीय संस्कृति' के भाजपाई चरवाहों ने अस्सी की परम्परा के रखवालों से कहा कि होली का यह कवि–सम्मेलन नहीं होगा। अश्लील है, गन्दा है, फूहड़ है। इसे करना हो तो शहर से बाहर जाओ। गंगा के उस पार रेती पर! जहाँ कोई न सुने। अगर हुआ, तो गोली चल जायेगी, लाशें बिछ जाएँगी आदि–आदि।"[8]

इतना ही नहीं बल्कि होली त्यौहार काशी में पूरे जोशो–खरोश के साथ मनाया जाता है, यह एक प्रकार से काशी की सांस्कृतिक परम्परा का अंग है। "इधर यह हिन्दुओं के महान पर्व पर आयोजित होने वाला अकेला विश्व स्तर का सम्मेलन! जिसे देखने–सुनने के लिए आने वाले देश–विदेश के लाखों लोग। वीडियो–कैमरे और टेपरिकार्डर के साथ। सड़कें और गलियाँ जाम। यातायात ठप! लंका से लेकर शिवाला तक कहीं भी तिल रखने

की जगह नहीं और इन्तजार करते हैं महीनों तक मशक्कत और रियाज के बाद कविताएँ बनाने वाले कवि महाकवि चकाचक बनारसी से लेकर बद्रीविशाल और भुटेल गुरु तक।"[9]

लेखक को अपनी संस्कृति की पहचान गहरे स्तर तक है। इनकी रचना–प्रक्रिया में लोक संस्कृति और प्रति–संस्कृति का गंगा–जमुनी संगम है तो देश के वर्तमान स्वरूप में राजनीति की चारित्रिक गिरावट, जातिवाद का बढ़ावा, मुखौटों की राजनीति साम्प्रदायिकता इत्यादि का जो विकृत स्वरूप समाज में उभर रहा है, इन समस्त समस्याओं से दूर होने की कवायद काशीनाथ सिंह के कथा–साहित्य में दिखाई देता है।

काशीनाथ सिंह के कथा–साहित्य में काशी की संस्कृति का अद्‌भुत रूप प्रस्तुत किया गया है। तुलसी–घाट के निकट अस्सी चौराहा कबीर का वह बाजार है, जहाँ आज भी उसके आहवान् की अनुगूँज सुनाई पड़ती है– 'जो धर जारै आपनो चलै हमारे साथ।' घर–फूँक तमाशा देखने की मौज–मस्ती, जमाने को ठेंगे पर रखकर चलने की निर्भीकता, घर जोड़ने की माया से मुक्त फक्कड़ाना अन्दाज अस्सी चौराहे की मौलिक पहचान है। यह बेरोजगारों का रोजगार ऑफिस है, लेकिन इस बात की किसी को जानकारी नहीं है कि ये लोग बेरोजगार हैं। किसी को पता नहीं कि ये लोग अपनी जीविका या भरण–पोषण किस प्रकार करते हैं, लेकिन ये सभी शान के साथ जी रहे हैं। ऐसे में इनका जीवन और हंसमुख तथा प्रसन्नचित्त है। सिद्धों एवं नाथों के साथ ही साथ कबीर आदि सन्तों की शक्तिशाली प्रतिसंस्कृति काशी में औघड़ संस्कृति कही जाती है।

अस्सी चौराहे की संस्कृति इसी औघड़ संस्कृति और लोक संस्कृति के मेल–मिलाप की संस्कृति है। दोनों में चोली–दामन का सम्बन्ध है। चोली तो है चौराहे की होली और दामन है औघड़ संस्कृति से फूटता जोगीड़ा–कबीरा का लहराता स्वर। अप्पूघर में तानसेन मिठाईलाल के मधुर कण्ठ से फूटते उस स्वर को तो आपने पहचान ही लिया होगा–जोगीड़ा सारा। दुनिया जहान के लिए होगी यह अबूझ पहेली, चौराहे की जनता के लिए तो अपने घर की चीज है। भारतीय संस्कृति की परम्परा के विविध पक्षों को काशीनाथ सिंह ने अपने कथा–साहित्य में उद्‌घाटित किया है, लेकिन जैसा चित्रण काशी की संस्कृति के बारे में किया है, वैसा अन्य पक्षों का शायद नहीं है, डॉ० सिंह लिखते हैं–

"बीच–बीच में उलाहने सुनाई पड़ते थे सन्तों के–कि बन्धुवर जाने कब से कहाँ–कहाँ मराते घूम रहे हो, कभी इधर भी आओगे? दुनिया क्या से क्या होती जा रही है और तुम्हारा पता नहीं। इससे पहले कि अस्सी घाट मियामी (अमरीका का एक समुद्री तट) का आसामी हो जाये। इससे पहले कि घाट के विदेशी और चौराहे के 'स्वदेशी' देसी मुहल्ले की खाट खड़ी कर दे–आओं और देखों कि किस कदर 'गँड़ऊ गदर' मचा रहे हैं दड़बे के गदरहे।"[10]

अस्सी के कल्पद्रुम के विषय में डॉ० सिंह ने अत्यन्त सजीव ढंग से वर्णन किया है। उन्होंने अपने आस–पास घटित घटनाओं पर बड़ी पैनी दृष्टि रखते हैं। इस सूक्ष्म दृष्टि को प्रस्तुत उद्धरण के जरिये बखूबी समझा जा सकता है, द्रष्टव्य है–

"ये कल्पद्रुम के कुछ तिनके हैं कुछ झड़े कुछ सड़े कुख सूखे–बेलान। ऐसे जाने कितने तिनके हैं जो हवा में, अस्सी की हवा में उड़ते रहते हैं। वे कभी पकड़ में आते हैं कभी नहीं आते। मेरी भी पकड़ में नहीं आये थे, पहली बार जब मैं एक श्रद्धेय के चरण–स्पर्श के लिए झुका था। आधा ही झुक पाया था कि पण्डित जी पीछे हटते हुए मुस्कुराकर बोले 'बालक बस चरण ही छूना आचरण नहीं। वहाँ करंट है।' बात तब मेरी समझ में आयी, जब बगल में खड़े दूसरे पण्डित ने हँसते हुए कहा–'अब आ–चरण में कहाँ करंट? वह तो लत्ता हो चुका महाराज।"[11]

काशी की संस्कृति में कबीर का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है, उनके यहाँ हिन्दू–मुस्लिम का झगड़ा तत्कालीन शैवों एवं वैष्णवों के झगड़े तक ही सीमित नहीं रह जाता, बल्कि वह परम्परा के आर–पार इतिहास के झगड़े तक ही सीमित नहीं रह जाता, बल्कि वह परम्परा के आर–पार इतिहास के झगड़े तक का भी संकेत करता है। जिसे काशीनाथ सिंह ने अपने साहित्य में अभिव्यक्त किया है।

काशीनाथ सिंह ने कथा–साहित्य के लेखन में हमेशा इस बात का ध्यान रखा है कि किसी भी समय में होने वाले परिवर्तनों का प्रभाव साहित्य या समाज पर क्या पड़ता है और उस प्रभाव से समाज किस दिशा को प्राप्त करता है। इन समस्त प्रश्नों को वे हमेशा सजग दृष्टि से देखने का प्रयास करते हैं। डॉ० सिंह काशी के अस्सी पर होने वाले परिवर्तनों पर दृष्टि डालते हुए लिखते हैं–

"सन्तों जहाँ पानी वहाँ प्राणी! जहाँ घाट, वहीं हाट। इतिहास यही कहता है। इतिहास कहता है कि गंगा के गर्भ से पैदा हुआ है यह नगर? वह इसकी माँ है। माँ इसलिए है कि नगर की तीन चौथाई आबादी उसी के सहारे है। पण्डे, नाई, पुरोहित, धोबी, मल्लाह, मछुआरे, बढ़ई, माली, डोम, मेहतर, बिसाती, साधु, सन्त, भिखमंगे, गाइड, मालिशिये जाने कितने पेशे और कितनी जाति के लोग उसी के सहारे सदियों से जी खा रहे हैं। ये तो जी खा रहे हैं, लेकिन बची हुई एक चौथाई आबादी–जिसमें बालू और नहर और पुल और बाँधों के ठेकेदार इंजीनियर अफसर भी हैं और पर्यावरण, प्रदूषण और स्वच्छ गंगा अभियान की देसी–विदेशी सरकारी, गैर सरकारी संस्थाएँ भी इसे तबीयत से खा–पी रही हैं। जीने–खाने वाले दूसरे हैं और खाने–पीने वाले दूसरे, लेकिन ये आज की बाते हैं, की नहीं।"[12]

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि डॉ० काशीनाथ सिंह के कथा–साहित्य में सांस्कृतिक पक्षों के निर्माण में काशी की संस्कृति का महत्त्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि उनके लेखन में जिन सांस्कृतिक पक्षों को उभारा गया है, उसका सीधा सम्बन्ध काशी की संस्कृति से है। काशी की संस्कृति के बिना काशीनाथ सिंह का सांस्कृतिक विवरण अधूरा सा जान पड़ेगा। इसलिए उनके साहित्य में काशी की संस्कृति अर्थात् काशी के अस्सी का महत्त्वपूर्ण स्थान है और हिन्दी साहित्य में 'काशी का अस्सी' उपन्यास काशी के सांस्कृतिक आईने के रूप में प्रतिबिम्बित होता है।

संदर्भ–सूची

1. दुबे, मनीष (संपा.) काशी का कहन, पृ. 159–160.
2. सिंह, काशीनाथ–याद हो कि न हो, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण–1992, पृ. 157
3. मुखर्जी, विश्वनाथ, बना रहे बनारस, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, संस्करण–2009, पृ. 81
4. यादव, राजेन्द्र (संपां.) हंस, लेख–चौथीराम यादव, मार्च–1999, पृ. 37
5. सिंह, काशीनाथ–काशी का अस्सी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण–2004, (भूमिका से)।
6. वही (भूमिका से)।
7. वही, पृ. 11.
8. वही, पृ. 19.
9. वही, पृ. 19–20.
10. वही, पृ. 74.
11. वही, पृ. 74–75.
12. वही, पृ. 99.

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 204-208

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

स्त्री-जीवन : संघर्ष की 'महागाथा'

*ममता यादव**

*डॉ. अखिलेश कुमार शर्मा 'शास्त्री'***

नारी अस्मिता को लेकर समकालीन हिन्दी साहित्य में काफी कुछ लिखा जा रहा है। भौतिकवाद की प्रवृत्ति जैसे–जैसे मनुष्य जीवन पर हावी हो रही है, वैसे–वैसे नयी–नयी समस्याएं मनुष्य के सामने यक्ष प्रश्न बनकर खड़ी हो रही है। इसी दौर में नारी जीवन के कई उतार–चढ़ाव समकालीन समय में देखे जा सकते हैं। महिला रचनाकारों के साथ–साथ पुरुष रचनाकारों ने भी नारी चित्रण एवं उसकी भूमिका अनेक कहानियाँ तथा उपन्यासों की रचना की हैं। गरीब एवं अमीर घर की तथा शोषित एवं विद्रोही नारियाँ इन कहानियों में आई हैं। एक ओर नारी शोषण की शिकार होती हैं, तो वहीं दूसरी ओर शोषण के खिलाफ लड़ती हैं। एक ओर वह बाजारवाद से प्रभावित होकर धन की चाह में नैतिक–अनैतिक कर्मों को भूल रही है, तो दूसरी ओर वह अपने शील को बचाने के लिए स्त्री–लोलूप पुरुष मानसिकता के खिलाफ लड़ रही हैं। नारी ने सामाजिक उन्नति के लिए अपनी ओर से पुरजोर कोशिश की है। फिर भी समाज उसे उचित मान–सम्मान दिलाने के पक्ष में नहीं है।

प्रभा खेतान अपनी पुस्तक 'उपनिवेश में स्त्री : मुक्ति कामना की दस वार्ताएँ' की भूमिका में लिखती है–''स्त्री के अधिकारों की चर्चा करने पर पूछा जाता है, कि वह किस राष्ट्र की नागरिक है? उसका धर्म, उसकी जाति, उसका सम्प्रदाय क्या है? इन सवालों का जवाब यह है कि नारीवाद को राष्ट्रीय सीमा में बंद नहीं किया जा सकता।''[1]

आज से ही नहीं अनादि काल से भारतीय नारी पितृसत्तात्मक समाज में बंधिनी रही है। परंपरागत दृष्टि से स्त्री के प्रति व्यवस्था का रवैय्या निश्चित मानदण्डों, आदर्शों के नियत व्यवहारों से संचालित होता रहा है, जिसमें स्त्री को तयशुदा भूमिका में निर्धारित आदर्श, आचरण संहिता के अनुसार जीना पड़ा। पुरुष के अत्याचार एवं अन्याय को सहना उसकी नियति बन गयी। बचपन में पिता, युवावस्था में पति और बुढ़ापे में बेटों की अधीनता लंबे समय तक भौतिक, आर्थिक भावनात्मक, परावलंबन स्त्री जीवन का केन्द्रीय सत्य रहा है, लेकिन स्थिति हमेशा से ऐसी न थी। कुछ ऐतिहासिक तथ्य प्राप्त होते हैं, कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था से पूर्व आदिम कबीलाई व्यवस्था में कहीं–कहीं पर मातृसत्तात्मक समाज था, जिसमें स्त्री केवल पूज्य थी, समाज तथा परिवार की डोर उसके हाथ में थी। इस बात की पुष्टि उदाहरण के माध्यम से की जा सकती है–

''मैं नारी हूँ, पितृसत्तात्मक युग से मातृसत्तात्मक युग की नारी, जिसने वनों का शासन किया, जनों का निग्रह। तब मैं नितान्त नग्नावस्था में गिरी–शिखरों पर कुलांचें भरती थी, गुहा गहवरों में शयन करती थी, वन वृक्षों को अपाद मस्तक नाप लेती थी, तीव्र गतिका नदियों का अवगहन करती थी।''[2] इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है, कि स्त्री कितनी संघर्षशील थी।

मातृसत्तात्मक समाज के अंत को देखते हुए एग्लेंस ने कहा था– ''मातृसत्तात्मक से पितृसत्तात्मक समाज का अवतरण वास्तव में औरत जाति की सबसे बड़ी ऐतिहासिक हार थी।''[3] आज की स्थिति को मद्देनजर रखते हुए

* शोध छात्रा (हिन्दी विभाग), हिन्दू स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जमानियाँ, गाजीपुर

** एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष (हिन्दी विभाग), हिन्दू स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जमानियाँ, गाजीपुर

एग्लेंस का यह दृष्टान्त कि घर के अंदर तथा बहार पुरुष ने अपना अधिकार जमाया है तथा नारी को मिट्टी में मिला दिया है, नैतिकता और अनैतिकता के बंधन में जकड़ लिया है, सत्य ही सिद्ध होता है।

इसी प्रकार रामायण, महाभारत काल में महिलाओं का वर्णन विदुषियों के रूप में कम और तप, त्याग, नम्रता पति सेवा आदि गुणों से विभूषित गृहस्वामिनी के रूप में अधिक मिलता है। महाभारत काल में पाण्डवों द्वारा द्रौपदी को जुए में दांव पर लगा देना और रामायण काल में धोबी द्वारा सन्देह व्यक्त करने पर मर्यादा पुरुषोत्तम राम द्वारा सीता को बनवास देना यही सिद्ध करता है, कि पत्नी, पति की सम्पत्ति थी। वह अधिकार पूर्ण उसके साथ मनचाहा व्यवहार कर सकता था। महाभारत और रामायण काल के पश्चात् स्त्री की स्थिति में और अधिक गिरावट आने लगी।

बौद्ध काल में महात्मा बुद्ध भी नारी को संघ में दीक्षित कराने के पक्ष में नहीं थे। उनका कथन था–''नारी के प्रवेश से संघ की आयु क्षीण हो जाएगी। वह सहस्त्र वर्ष जीने के बदले पाँच वर्ष भी नहीं जिएगा।''[4]

इसलिए बौद्ध धर्म में प्रवेश पाने वाली भिक्षुणी के लिए भी कड़े नियम लागू किए गये थे। बाद में वज्रयानियों के समय में नारी का भोग्या रूप छोड़कर कोई अन्य रूप सामने नहीं आया।

जो लोग मध्ययुग को स्वर्णयुग कहते नहीं अघाते, वह शायद इस युग की 'स्त्री' की स्थिति से बेखबर हैं। 'सीमोन द बोऊवार' कहती है–''जिस सामंती प्रेम का वर्णन करते हुए साहित्य नहीं थकता, वह वास्तव में औरत कुण्ठा की कहानी है।''[5]

भगवतशरण उपाध्याय ने बड़े काव्यात्मक ढंग से उसकी स्थिति की ओर संकेत करते हुए लिखा है– ''कालान्तर में मैं उस युग में जन्मी जिसे इस देश के इतिहास में स्वर्ण युग कहते हैं। इस युग ने कला में, साहित्य में, शक्ति में, सज्जनता में, उन्नति की, और उन्नति कर आकाश छू लिया परन्तु, मेरे लिए बन्धन जैसे के तैसे बने रहे। मेरे लिए किसी प्रकार की सुविधा न हुई। मेरे लिए मनु ने जन्म लिया और फिर अपनी लेखनी से उन्होंने हमारे ललाट पर वज्र प्रहार किया। अनुलोम प्रतिलोम के शिकंजे मेरे भाग्य को जकड़ चुके थे और पुरुष को स्वार्थसाधक अवसर दे चुके थे।''[6] इस युग में भी व्यवस्था की शिकार नारी ही हुई।

हमारे जातीय सामूहिक अवचेतन में पुरुषों की श्रेष्ठता की यह धारणा इतनी अधिक रची बसी है कि, हम इससे अलग सोच ही नहीं सकते। इस संदर्भ में प्रभा खेतान का कथन है–''स्त्री पैदा होती है ठंडे उच्छवासों के बीच। उसकी पहली रूलाई सुनकर एक ही आवाज गूंज उठती है, बेटी आ गई। आज के युग में तो बेटी के पैदा होने की भी जरूरत नहीं क्योंकि स्केनिंग के द्वारा भ्रूण के सेक्स का निर्धारण गर्भावस्था में ही हो जाता है। यदि लड़की है, तो समाज की, परिवार की, पिता और बहुधा स्वयं गर्भ धारण करने वाली जननी की पहली प्रतिक्रिया है– हटाओ इसे, खत्म करो, दूसरी हुई तब भी किसी हाल में नहीं चाहिए। औरत बच्चा पैदा करने की मशीन के सिवा है ही क्या? क्या फर्क पड़ता है, फिर पेट रह जाएगा, तीसरी या चौथी बार कभी न कभी गर्भ में बेटा तो आएगा ही और यदि नहीं आया तो टेस्ट ट्यूब में लड़का पैदा करेंगे।''[7]

आज के युग में जहां शिक्षित लोगों के विचार ऐसे हो तो प्राचीन युग की स्थिति पर आंसू बहाना व्यर्थ है। तब पुरुष वर्चस्व था, जिसने धर्म का सहारा लेकर भय उत्पन्न किया था। प्रभा खेतान के शब्दों में– ''पितृसत्ता अपने आप को मजबूत करने के लिए पहले धर्म का सहारा लेती थी, आज विज्ञान का सहारा लेती है।''[8]

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में सुख–दुख का आवागमन बना रहता है, क्योंकि न सुख स्थायी है न दुख। परिवर्तन प्रकृति का अटल सत्य है। अतः एक जैसी परिस्थितियां सदैव नहीं बनी रहती। इसी प्रकार नारी कभी पर्दे में कैद थी, अनेक कुरीतियों और रूढ़ियों ने नारी के प्रति समाज का दृष्टिकोण बदलना प्रारम्भ हुआ। नारी को शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिला। शिक्षित होकर नारी में अपने अस्तित्व एवं अधिकारों के प्रति चेतना जागृत हुई। यह नारी जगत की अपार सहन शक्ति ही थी, जो दुखों को सहती रही और आशा के दीप को मन में जलाये अपने जीवन में उजाला होने की प्रतीक्षा करती रही। प्रत्येक प्राणी के जीवन में आस्था और आषावादी दृष्टिकोण हर मोड़ पर प्रेरणादायी होता है। नारी की आशावादी दृष्टि ने ही उसे आज कहाँ से कहाँ पहुँचा दिया। आज नारी आत्मनिर्भर होकर स्वतन्त्रतापूर्ण जीवन यापन कर रही है। वह अपने फैसले स्वयं कर रही है, और घर के बाहर तक की

जिम्मेदारी संभालती रही है। इसके बावजूद वह पुरुषों के अत्याचार, यौन शोषण, बलात्कार को सहने की क्षमता रखती है, और अपेक्षित परिवर्तन के लिए संघर्षशील एवं सक्रिय रहकर अपना भविष्य उज्ज्वल एवं अपेक्षाकृत अधिक सुखद बनाने का प्रयत्न करती है।

इस व्यवस्था का कमाल देखिए, कि इसने कितना लंबा जीवन पाया है, और आज जब व्यवस्थाओं के लिए खतरा खड़ा होता है, कि उनके गुलाम विरोध ही नहीं, विद्रोह पर उतारू हैं, तो उन्होंने अपना निजाम और भी कठोर तथा क्रूर बना दिया है। विदेशों में शिक्षा पाने और कमाने वाले सपूतों के पिताओं का वश चले तो वे स्त्री को भारतीय नियमावली को बमों से उड़ा दें। 'आदर्श बहू' के खंजर तो औरत पर रोज ही चलते हैं। समाज में स्त्री के लिए दरिंदगी का जो सिलसिला चला है, वह इसी डर का परिणाम है कि औरत उनके हाथ से निकल रही है। यहाँ हम यह कह कर मर्दों को माफी नहीं दे सकते कि वे अनपढ़, अशिक्षित या बेहाल, कंगाल हैं, जो औरत पर जुल्म करते हैं। नहीं, इनमें कोई भूखा–नंगा नहीं होता। मैत्रेयी जी का कथन है–

''तुम अपने हक मागोगी, जिसमें तुम्हारी आजादी होगी, कि तुम खुले आसमान के नीचे निकलोगी, तो हम तुम्हें रोकेंगे नहीं, तुम्हारा शिकार करेंगे, अपनी ताकत दिखाएंगे। फिर भी अगर तुम हमें पराजित करने की ठानोगी तो हम झुण्ड बाँधकर आयेंगे और तुम्हें धराशायी कर देंगे। औरत मर्द के लिए दहशत का विषय बने? धिक्कार है ऐसी मर्दानगी पर।''

हालिया समय में बलात्कार के बाद बेटियों को जिन्दा जलाने, और मारने की घटनाओं से देश स्तब्ध, उद्वेलित और मर्माहत है। इन घटनाओं से देश की आधी आबादी कही जाने वाली स्त्रियाँ दहशत में है। सरकार द्वारा यौन शोषण से जुड़े कानून में बदलाव के लिए कई समितियां गठित की गयी, और उनके सिफारिशों पर कानून में बदलाव किया है। मगर इसके बावजूद बेटियाँ दिन के उजाले में भी महफूज नहीं है। कड़े कानून के बाद भी बेटियों की अस्मत के लुटेरे हैवान आजाद हैं।

''यह घटनाएं महज कुछ शैतानों की दरिंदगी की बानगी नहीं है। यह सरकारी तंत्र और कानून–व्यवस्था की संवेदनहीनता की पराकाष्ठा और धज्जियां उड़ाने वाली हैं। सत्ता और समाज भले ही इन घटनाओं पर छाती पीटे, चीखें–चिल्लाएं या आंसू टपकाए, लेकिन सवाल जस का तस है कि इससे क्या फर्क पड़ता है? फर्क तो तब पड़ता जब अपराधियों के मन में कानून को लेकर खौफ पैदा होता। फर्क तब पड़ता जब नुमाइंदे बेटियों की सुरक्षा और सलामती की गारंटी देते और बेहतर कानून व्यवस्था का इंतजामात करते। फर्क तब पड़ता जब अदालतें गुनाहगारों को उनके किए की सजा देती। मगर ऐसा नहीं हो पा रहा है। मतलब साफ है कि सब कुछ औपचारिकता भर है। यही वजह है, कि देश में प्रतिदिन पाँच दर्जन से अधिक बच्चियों के साथ दुष्कर्म हो रहा है और सैकड़ों महिलाएं छेड़छाड़ का शिकार बन रही है। एक सच्चाई यह है कि अधिकांश महिलाएं लोक–लाज के कारण लोग मुकदमा दर्ज कराने से बचते हैं। यहाँ यह समझना होगा, कि जब तक यौन उत्पीड़न के मामले में शत–प्रतिशत गुनहगारों को सजा नहीं मिलेगी या कानून की धीमी चक्की तेज नहीं होगी, तब तक बेटियों पर अत्याचार का सिलसिला थमने वाला नहीं।''[9]

इससे यह स्पष्ट होता है कि उदार और संवेदनशील कहा जाने वाला यह भारतीय समाज अब पूरी तरह से निर्मम और संवेदनहीन बन चुका है। जो भारतीय संस्कृति कभी अपनी सहिष्णुता, सहृदयता, दयालुता, परोपकारिता और अपनत्व के लिए विश्वविख्यात थी, वह आज अपनी निर्ममता, हिंसा, दुष्कर्म और संवेदनहीनता से मानवीय रिश्तों और मूल्यों को तार–तार कर रही है। भारतीय समाज के लिए यह विडम्बना है कि देश में बेटियों की सुरक्षा के सैकड़ों कानून है, पुलिस प्रशासन हर कदम पर तैनात है, इसके बाद भी बेटियों पर अत्याचार रूकने का नाम नहीं ले रहा।

किसी दुष्कर्म पीड़िता बेटी की आत्मा की हृदयविदारक व्यथा को 'छोटू सिंह रावणा' ने अपने कुछ पक्तियों में कल्पना कर पिरोया है –

''ना पापा मैं लौट के आऊं
तेरे इस जहान में,

दुनियां सारी घूर के देखे
पग–पग पर हैवान है।
अब घर से निकलो बाहर
हैवान हिंद पर भारी है,
जिसकी पूजा की सदियों से
क्यूँ दहशत में वो नारी है?''

परम्परित मूल्य दुष्कर्मी पुरुष की की अपेक्ष पीड़िता को ही कटघरे में खड़ा करके उस पर अंगुलियाँ उठाते है, तथा पीड़ित स्त्री को ही चरित्रहीन नारी का खिताब देकर अन्धे कानून का परिचय दिया जाता है, डॉ. मधु संधु बदलते मूल्यों के संबंध में लिखती हैं–''बलात्कार कल भी होते थे, और आज इस दुष्कर्म के लिए पुरुष कटघरे में खड़ा है।''[10]

परम्परित मूल्यों के अनुसार पीड़िता का दो धारी तलवार से शिकार किया जाता है। एक ओर तो वह स्त्री दुष्कर्मी की वासनाओं का शिकार हो शारीरिक एवं मानसिक यातनाओं को झेलती हैं, वहीं दूसरी ओर पितृसत्तात्मक समाज की खूंखार मान्यताएं नारी को पूरी तरह से तोड़ डालती हैं, और वह आत्महत्या करने पर मजबूर हो जाती हैं।

डॉ. मधु संधु लिखती हैं–''बलात्कार नारी उत्पीड़न का क्रूरतम कृत्य है। काला पन्ना है, बलात्कार संबंधी कानूनी पड़ताल औरत को बार–बार उसी शर्मनाक त्रासदी में ढकेलती है।''[11]

कृष्णा सोबती लिखती हैं–''बलात्कार केवल कानून की दफा नहीं–मात्र रसभंग ही नहीं, छोटे बच्चे का अधकचरे का खेल भी नहीं; अमंगल लहर की वह टूटी आसंग स्थिति है, जिसे अपने चाहने से स्रोत तक लौटा लाना जन्म–जन्मान्तरों सा ही अनिश्चित है।''[12]

प्राचीन काल से लेकर आज तक के साहित्य, संस्कृति और समाज में नारी संबंधी विविध धारणाएं प्रचलित रही हैं। ये सारी धारणाएं पुरुष मानसिकता और दृष्टिकोण से निर्मित हैं। कही देवी मानकर–'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' कहकर उसकी पूजा की गयी है, तो कहीं पाप की खान–'द्वारं किमेकं नरकस्य नारी' और भोग की वस्तु समझकर उसको प्रताड़ित किया गया है। वास्तव में नारी न देवी है और न दानवी है, वह केवल मानवी है। किसी कवयित्री ने कहा है –

'नारी न देवी है,
न दासी है,
वह भी जीवन की अभिलाषी है।'

परन्तु नारी के मानवी रूप की हमेशा उपेक्षा की जाती है, और उसे केवल मादा के रूप में ही अधिक देखा गया है। संसार के सभी देशों में स्त्री सदैव अपेक्षा निंदा का पात्र बनकर रह गयी है। मानवीय गुणों की दृष्टि से विचार किया जाए तो पुरुष की तुलना में स्त्री अधिक मानवीय है। नारी की श्रेष्ठता को प्रतिपादित करते हुए महात्मा गाँधी ने कहा था–''स्त्री को अबला कहना उसका अपमान है। यदि शक्ति का अभिप्राय पाशविक शक्ति से है, तो स्त्री सचमुच पुरुष की अपेक्षा कम शक्तिशाली है। यदि शक्ति का मतलब नैतिक शक्ति से है, तो स्त्री पुरुष से कई गुना अधिक शक्तिमान है।'' इस दृष्टि से विचार करें तो मानवीय सभ्यता एवं संस्कृति के विकास में उसका स्थान पुरुष से भी ऊँचा है।

आज के युग की स्त्री को परंपरागत रूढ़ियों में बंधना पसंद नहीं है। क्योंकि, वह सतर्क बन गयी है, वह जानती है, परम्परा उनके पावों में बेड़ियाँ डालकर उन्हें गुलाम की जिन्दगी जीने के लिए मजबूर कर देगी। इसलिए वह अपनी बुद्धि तथा कार्यकुशलता से पुरुष वर्चस्व समाज की खोखली मान्यताओं को माननने से इन्कार करती हैं। स्त्री की गुलामीकरण से ही उसे उत्तराधिकार नहीं मिल सका। कानूनी प्रयास तो जारी है, लेकिन हमारे समाज की नैतिकता और लोकव्यवहार आड़े आता है। धार्मिक तथा सांस्कृतिक कारणों ने उसे अबला बनने पर मजबूर

किया है, लेकिन स्त्री की नैतिक तथा आर्थिक स्थिति उन्हें सबला बनने में सहयोग देती है। आज भी विवाह विधि में कन्यादान का अधिकार पिता को ही दिया जाता है, चाहे उसने अपनी संतान के पालन–पोषण में सहायता की हो या नहीं। परित्यक्ता या विधवा स्त्री को कन्यादान का अधिकार नहीं होता। स्त्री ने इस खोखली मानसिकता को पहचान लिया है, इसलिए वह उनसे टक्कर ले रही हैं।

निष्कर्षतः औरत ने संघर्ष स्वीकार लिया है, चट्टानों से टकराना जान लिया है, पूरी तरह से वर्तमान को जीना उसने सीख लिया है और भविष्य को अपने हाथों से संवारने का संकल्प ले लिया है, नई सदी की नारी की दुनिया में सबकुछ है, उस का घर, परिवार, नाते रिश्ते, समाज, संसार आदि। आज के समाज के लिए बेहतर होगा, कि वह नारी को अपना सहभागी, सहयोगी मानकर उसे आदर सम्मान दे, जिसकी वह हकदार है, अपनी चाह का परचम लिए वह जिस राह पर जाती है, वहां संघर्ष करते हुए राह में आयी हर चुनौती को स्वीकारती है, वह विमर्श की नई चुनौतियों से भिड़ती हुई नये आयाम पाने में सक्रिय हो रही है, वह एक बेहतर जिंदगी जीने का हल पा रही है। आज उसका बोया हुआ संघर्ष का बीज आने वाले कल में फलित होगा जो मर्द और औरत की सीमाओं का उलझते हुए उसके जीवन में बदलाव लाएगा।

सन्दर्भ–सूची

1. प्रभा खेतान, उपनिवेश में स्त्री कामना की दस वार्ताएं, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–2003, पृ. 16
2. भगवत शरण उपाध्याय, खून के छीटें; इतिहास के पन्नों पर, वाणी प्रकाशन, 2014, पृ. 9
3. सीमोन द बोऊवार; द सेकेण्ड सेक्स, पृ. 52
4. अमर ज्योति, महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारी दृष्टि, अन्नपूर्णा प्रकाशन।
5. सीमोन द बोऊवार; द सेकेण्ड सेक्स, पृ. 18
6. भगवत शरण उपाध्याय, खून के छीटें; इतिहास के पन्नों पर, वाणी प्रकाशन, पृ. 21
7. प्रभा खेतान, औरत : उत्तर कथा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–2003, पृ. 143
8. प्रभा खेतान, औरत : उत्तर कथा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–2003, पृ. 144
9. अरविन्द जयतिलक, जनसत्ता (संपादकीय), 5 दिसम्बर, 2019, पृ. 6
10. मधु संधु, कहानी का समाजशास्त्र, संवादन–प्राधिकृत–शोध पत्रिका, अमृतसर, गुरुनानक देव विश्वविद्यालय, पृ. 9
11. मधु संधु, कहानी का समाजशास्त्र, संवादन–प्राधिकृत–शोध पत्रिका, अमृतसर, गुरुनानक देव विश्वविद्यालय, पृ. 92
12. कृष्णा सोबती, सोबती एक सोहबत, राजकमल प्रकाशन–2014, पृ. 39

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 209-211

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

शैलूष : कबीलाई जीवन-संघर्ष का यथार्थ दस्तावेज

*सौरभ यादव**

*डॉ. अखिलेश कुमार शर्मा 'शास्त्री'***

डॉ० शिवप्रसाद सिंह का 'शैलूष' लोक–संस्कृति की पृष्ठभूमि पर सृजित एक सशक्त औपन्यासिक कृति है। नट जनजाति के जीवन–संघर्षों को लेखक ने परत–दर–परत उकेरकर 'शैलूष' उपन्यास में संजोया है। यायावरी जमीन में घटने वाली तमाम वाह्य शक्तियों के दबाव, अत्याचार, अन्याय और छल–कपट को लेखक ने अपने पात्रों के माध्यम से जीवित कर दिया है। "कबीलाई जीवन पर यह पहला हिन्दी उपन्यास परिवर्तन की दहलीज पर कथाक्रम को ले जाता है और ऊँच–नीच की हमारी ऐतिहासिक परिभाषाएं और मान्यताएँ 'शैलूष' में कदम–कदम पर सिर उठाती हैं।"[1]

'शैलूष' उपन्यास नट जनजाति के जीवन एवं संघर्षों का जीवन्त दस्तावेज है। नटों की आर्थिक विषमता, जीवन के अन्तर्विरोध, नई चेतना, संघर्ष, शारीरिक सम्बन्धों की जड़ता शोषण आदि विषयों का चित्रण इस उपन्यास में हुआ है। कथा की पृष्ठभूमि चन्दौली तहसील की रेवतीपुर गांव है। सरकारी परियोजनाओं के अन्तर्गत भूमिहीन नटों को चालीस एकड़ जमीन प्रदान की जाती है। गांव का जमीदार घूरफेकन तिवारी बड़े अजगर की भांति उनकी जमीन पर कुण्डली मारने का प्रयास करता है। जमीन बचाने हेतु नट सब्बों के नेतृत्व में घुरफेकन का जमकर विरोध करते हैं। लेखक ने ब्राह्मण कन्या सावित्री को नट जुड़ावन की प्रेमिका पत्नी बताकर तत्कालीन समय के लिए चुनौती भरा काम किया है। मानवतावादी दृष्टिकोण को अपनाने वाले पात्रों में सुरेन्द्र शुक्ल और कलेक्टर सारस्वत का नाम लिया जा सकता है।[2]

उपन्यास में कथानायिका ब्राह्मण कन्या सब्बो या सावित्री, गठीले बदन और कुश्ती के बादशाह जुड़ावन पर फिदा है। जुड़ावन ने उसे अपनी कबीलाई जिन्दगी की कठिनाइयां और संघर्षों से भी अवगत कराया, परन्तु वह तो उस पर सर्वात्मना समर्पित हो चुकी है, सावित्री चाची जुड़ावन चाचा के कंधे पर अपना मुंह रखकर बोली मैं पतिता बनकर जी लूंगी, लोगों की गालियां सह लूंगी, तुम्हारे प्रेम पर सब लुटा दूंगी, पर मैं बर्दाश्त नहीं कर सकती कि मेरे बेटे–बेटियों को लोग दोगला कहें। जुड़ावन चाचा ठठाकर हँसे, सुन सब्बो! हम नटों के पास सुगठित सुडौल शरीर ही नहीं है, बल्कि ब्राह्मण राजपूत बनिए आदि की सुन्दर कन्याओं को चुरा लेने की पुश्तैनी आदत भी है। मेरी माँ अगर सीधी सादी गन्दी नट्टिन होती तो तुम्हारे सामने यह भोला चेहरा भी न होता, जिस पर तुम दिलोजान से फिदा हो।"[3]

जुड़ावन सावित्री का आभार व्यक्त करते हुए कहता है, "लोग बाग कहते हैं कि परेम से भगवान मिलता है पर तुम्हारे लिए मैं दो जून के लिए रोटी भी नहीं जुटा पाया। लोग कहते हैं कि आज तक जाने कितनी छोकरियां नट–छैलों पर लट्टू हुईं और जाने कितने भंवरे नट कन्याओं पर मंडराते रहे पर सावित्री और जुड़ावन के परेम को कोई छू भी न सका।"[4]

सावित्री को अपने कबीले की आल्हा–ऊदल का वंशज मानने में कोई गलती नहीं दिखाई पड़ती, इसी के सहारे वह कबीले के परिवारों का सुख–चैन सुरक्षित महसूस करती है, वह कहती है–"मैं सत्ती मइया के साथ जुड़ी जुड़ावन और बसावन की झोपड़ियों से कभी बाहर नहीं गई। मैंने जुड़ावन को रोका भी नहीं। अगर वह अपने को सचमुच चन्देलों के सेनापति आल्हा और ऊदल का वंशज मानता है तो इसमें गलती क्या है? हर तथाकथित निचली कौम

* शोध छात्र (हिन्दी विभाग), हिन्दू स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जमानियाँ, गाजीपुर

** एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष (हिन्दी विभाग), हिन्दू स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जमानियाँ, गाजीपुर

अपने नाम के साथ सिंह, शर्मा, विश्वकर्मा, ठाकुर आदि लगाकर अपने अहम् को तुष्ट कर रही हैं तो मैं बनाफर कहने से इन्हें क्यों रोकूं। उसे अपने कबीले के साथ करतब दिखाकर आल्हा गाकर रोजी–रोटी ढूँढ़नी है, वह इस झोपड़ी में मेरे कारण अगर कैद रहता तो बहुत पहले यह कबीला बिला गया होता। जुड़ावन ने कहा कि मैं तुम्हें बन्दरिया की तरह इस गांव से उस गांव तक नचाना नहीं चाहता। मैंने बिना सोचे कह दिया कि तुम पहले अपना कबीला देखो, मेरी परवाह मत करो। मैं नहीं चाहती कि बेला, मूंगा और देविका को अपने पतियों और बच्चों को दाने–दाने के लिए छछनते हुए देखना पड़े।[5]

सावित्री ने नटों की इस बड़ी कमजोरी कि वे कल के बारे में सोचने की जहमत नहीं उठाते, की ओर संकेत करते हुए कहा, "तुम लोगों की सबसे बड़ी कमजोरी है कि तुम आगे के बारे में कुछ नहीं सोचते। अब वह सब जिसे तुम लोग धरती मइया कहते थे, जहां तुम्हारा कबीला डेरा डालता था, जहां तुम्हारी छोकरियाँ नहाती–धोती थी, जहां तुम्हारे गदेले गुल्ली डण्डा खेलते थे, जहां तुम्हारी भैंस चरती थीं, जहां तुम्हारे मुर्गे–मुर्गियाँ दाना चुगती थी, वह सब छिन जाएगा। तुम सोचते हो कि सोन पहड़ा पीली चट्टानों का ढेर है, पन्ना की पहाड़ियाँ हरे रंग की साड़ी में लिपटी सोनवा या उसी तरह की खूबसूरत परियाँ है, जिसे तुम खून की होली खेलकर उठा लाओगे, जैसे तुम्हारे आल्हा–ऊदल ने किया था। तुम लोग देख नहीं पा रहे हो, मूरखचन्दों कि यह सारा इलाका इस तरह बदल रहा है कि सीमेंट, चूना, कोयला, जस्ता, अलमुनियम के लिए ऐसी खुदाई होगी कि तुम्हारे जैसे आदिवासियों को पैर रखने की जगह नहीं मिलेगी।"[6]

सावित्री नट–कबीलों को सत्य की राह पर चलकर संस्कृति की मुख्यधारा से जुड़ कर सभ्य बनने का पाठ पढ़ाती रही, "सच के रास्ते चलकर जीने के लिए तूने क्या दिया इन्हें? सच है कि तू इन्हें जरायम पेशे से अलग करके संस्कृति की मुख्यधारा में शामिल होने का पाठ पढ़ाती रही, तूने यह जानते हुए कि रेवतीपुर तुम्हारी बड़ी बहन गायत्री की ससुराल है, तूने सौ एकड़ की बियाबन परती धरती पर नटों का झण्डा गाड़ दिया। तब यह परती इतनी मासूम नहीं थी कि लोग तेरे झण्डे के नीचे आसानी से आ जाते। अन्धविश्वास को तू लगातार कुरेद–कुरेद कर निकालती रही और उस दिन का इन्तजार करती रही कि नटों का घर हो, थोड़ी जमीन हो, ताकि वह सभ्यजन बन सके।[7]

जातीय जनजागृति का रूप भी 'शैलूष' उपन्यास में देखने को मिलता है, सावित्री कहती है, "सवाल यह है कि मैंने जात–पाँत पर लात मार दी इसलिए नहीं कि मैं जुड़ावन से सिर्फ प्रेम करती थी, बल्कि सोचती थी कि मेरे साथ वे तमाम लोग होंगे जो जात–पाँत के शिकंजे को तोड़ना चाहते हैं। क्या सुधाकर राजपूत सिर्फ इसलिए प्यारा और मासूम लगता है कि उसने रेवती जैसी ब्राह्मणी कन्या से प्यार किया, बल्कि इसलिए कि उसने जात–पाँत के शिकंजे तोड़कर उसे बाहर ले जाने की कोशिश की।" सावित्री ने नटों के जीवनोत्थान के लिए ही इतना बड़ा उत्सर्ग किया था, "मैं सोचती थी कि कुछ जमीन–जायदाद हो जाए तुम लोगों के पास तो इन दोनों को इतना पढ़ाऊंगी कि वे नटों जैसे नाम से घृणा करेंगे। भविष्य में जब कोई इनका नाम पूछेगा तो खुशी से भर जाएगा वह। बकुल और मुकुल का नाम सुनकर सोच भी नहीं पाएगा कि ये नट पुत्र हैं। ये लोगों के सामने अपना नाम बताकर लज्जित नहीं होंगे, जैसे पंक्तिपावन घुरफेकन को नाम बताते शर्म आती है।

सावित्री अच्छी तरह से समझती है कि आदिवासियों के उद्धारकर्त्ता ही उन्हें किस प्रकार लूटते हैं और आर्थिक दृष्टि से भी उनका शोषण करते हैं। इससे निबटने के लिए वह सच्चे हृदय से सामना करने की बात कहती है– "आदिवासियों के उद्धारकर्त्ता इन मासूम लोगों को किस तरह भरमाते हैं, मैं थोड़ा–थोड़ा समझने लगी हूँ। जुड़ावन को मैंने अपनाया था कि मैं नटों के माध्यम से भर, गौड़, खरवार आदि कबीलों से जुड़कर नरक में कीड़ों की तरह जिन्दगी बसर करने वालों का सही हाल जान सकती हूँ, गर मैं ब्राह्मणी होती तो गिरिजन, आदिवासी, शूद्र कोई भी मुझे पास नहीं आने देते। ये लोग तथाकथित सभ्य लोगों के खून को पहचानते हैं। तेंदू पत्ते के व्यापार करने वाले इन्हें किस तरह लूटते हैं, इनकी माँ बहनों को किस तरह फुसलाकर भ्रष्ट करते हैं, मैं उन नारियों से मिलती रही हूँ। यह सब रणनीति से नहीं होता, तुम्हारे दिल की सच्चाई से होता है। आज हमारा आदिवासी गरीब, गरीब से भी नीचे यानी दरिद्र होता जा रहा है।"[8] भूखे भेड़ियों से जो आदिवासियों को सभी प्रकार से लूट लेना चाहते हैं, सतर्क रहकर विरोध करने की यह जागरूकता अपूर्व है।

'शैलूष' उपन्यास के विषय में श्री दामोदर खड़से का यह कथन महत्वपूर्ण है, 'शैलूष' लोक संस्कृति की पृष्ठभूमि पर एक सशक्त औपन्यासिक कृति है। खानाबदोश नटों के जीवन के संघर्षों को लेखक ने परत–दर–परत उकेरकर

'शैलूष' में संजोया है। यायावरी जीवन में घटने वाली तमाम बाह्य शक्तियों के दबाव, अत्याचार, अन्याय और छल–कपट को लेखक ने अपने पात्रों के माध्यम से जीवन्त कर दिया है। जीवन की संवेदनाओं, सच्चाइयों और मानवीय संवेगों का सहज चित्रण भी उपन्यास में उभर कर सामने आया है। बनारस के निकटवर्ती कमालपुर और रेवतीपुर कथा के केन्द्र में है।"[9] 'शैलूष' उपन्यास के माध्यम से लेखक ने स्वातन्त्र्योत्तर इतिहास को सूक्ष्मता से स्पर्श किया है। विशमता, गरीबी, भावुक, आशावाद और उच्च वर्ग के लोगों की तिकड़म और चालाकियों का बयान किया है। यह उपन्यास उसकी पैनी दृष्टि, गहन चिंतन और सशक्त अभिव्यक्ति का प्रमाण है। नटों को कबीलाई जाति के रूप तक पहुँचाने में उनकी निम्न जातियाँ उपेक्षा, तिरस्कार की असंख्य परतों को उघाड़ने में उपन्यासकार ने तथाकथित कुलीन, उच्चजातीय ब्राह्मण तथा अन्य सामन्त वर्ग का जो मिला–जुला अत्याचार तथा अमानुशिक व्यवहार माना है। वह किसी विद्वेश का द्योतक न होकर नटों के जीवन की यथातथ्य झाँकी प्रस्तुत करने में सहयोगी सिद्ध हुआ है।

उपन्यास के विषय में शशिभूषण 'शीतांशु' जी का कथन है कि, "समकालीन भारत के परिदृश्य से परिचित नागरिक पाठकों को आज यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि अपने देश में 'कल के वही उपेक्षित' आज के अपेक्षित बने हुए हैं। चाहे वे 'नट' हों, चाहे हरिजन, दलित हों, डॉ० शिवप्रसाद जी की संवेदन–दृष्टि से बचकर नहीं निकल सकते। 'शैलूष' इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। अपनी इस कृति में डॉ० शिव प्रसाद जी ने जहां समाज में व्याप्त ऊँच–नीच जैसे वर्ग–भेद के यथार्थ को उजागर किया है, वहीं बनाफर कबीले से 'बनाफर राजपूत' और नट का साथ–साथ सम्बन्ध निर्दिष्ट किया है तथा आजादी के बाद के भारत में चालाकी और तिकड़म की शोषणपरक संस्कृति के बीच तड़पते इन बदकिस्मतों की व्यथा कथा का पर्दाफाश किया है।"[10]

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 'शैलूष' उपन्यास कबीलाई जीवन संघर्ष का यथार्थ दस्तावेज है। उपन्यास में आज के गांवों का जीवन–यथार्थ अपनी कुरूपता में साकार हुआ है। मानवीय संवेदना और मूल्य–दृष्टि के बिखरे हुए बिन्दुओं को संगठित करके नए जीवन का संचार करने वाले सावित्री जैसे पात्र भी इसमें हैं, जो नटों के उत्थान के लिए जीवनपर्यन्त संघर्ष करते हैं। इस उपन्यास में कबिलाई जीवन जीने वाले नट जनजाति के जीवन संघर्षों को उद्‌घाटित किया गया है। नटों के जीवन से गहरी सहानुभूति रखने के कारण लेखक ने उनके जीवन, आचार–विचार और संस्कृति का प्रामाणिक चित्र अंकित करने का प्रयत्न किया है। इसमें नटों के संघर्ष की धुरी सावित्री, जो एक ब्राह्मण कन्या है किन्तु जुड़ावन नामक युवक के साथ भागकर उसके जीवन से घुल–मिल जाती है और उनके जीवनवोत्थान के लिए संघर्ष करती है और उसमें एक हद तक सफल भी होती है। अतः यह उपन्यास दलितों और उपेक्षितों को वाणी देने वाला एक अप्रतिम उपन्यास है। इसे हिन्दी का पहला सकारात्मक या विधेयात्मक उपन्यास माना गया है। इसमें स्वत्व की संघर्ष गाथा लहूलुहान होने पर भी जारी रहती है। उपन्यास की भाषा पात्रानुकूल एवं संतुलित है। कथा, घटनाएं, पात्र एवं अन्य रूपों में उनकी भाषा सहज रूप एवं नाटकीय भंगिमा धारण करने में पूर्ण समर्थ है।

सन्दर्भ–सूची

1. सिंह, डॉ० शिवप्रसाद– 'शैलूष', नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, संस्करण 1996, पृ. (भूमिका)।
2. बन्ने, डॉ० पंडित, हिन्दी साहित्य में आदिवासी विमर्श, अमन प्रकाशन, कानपुर, संस्करण 2014
3. सिंह, डॉ० शिवप्रसाद, 'शैलूष', नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, संस्करण 1996, पृ. 4
4. वही, पृ. 9
5. वही, पृ. 71
6. वही, पृ. 91
7. वही, पृ. 129
8. वही, पृ. 51
9. अवस्थी, डॉ० अमित, डॉ० शिवप्रसाद सिंह का कथा साहित्य संवेदना और शिल्प, आशीष प्रकाशन, कानपुर, संस्करण 2011, पृ. 64
10. पाण्डेय, शशिभूषण 'शीतांशु'–शिवप्रसाद सिंह : स्रष्टा और सृष्टि, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1995, पृ. 497–498

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 212-214

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

वयं रक्षामः उपन्यास में आचार्य चतुरसेन शास्त्री की ऐतिहासिक दृष्टि

*मनोज कुमार सरोज**

*डॉ. अखिलेश कुमार शर्मा 'शास्त्री'***

ऐतिहासिक पौराणिक उपन्यास लेखकों में आचार्य चतुरसेन शास्त्री एक प्रमुख हस्ताक्षर हैं, जिन्होंने अपने उपन्यासों में इतिहास से अधिक इतिहासरस उत्पन्न करने का प्रयास किया है, इसलिए वे काल की परिधि की परवाह से परे हैं। 'वयं रक्षामः' आचार्य शास्त्री का एक प्रमुख उपन्यास है, जिसमें वेद, ब्राह्मण, स्मृति, पुराण आदि के साथ ही मिश्र, मेसोपोटामिया, बेबीलोन, पर्शिया, यूनान आदि देशों की पुरातन कथाओं के सम्मिलित साक्ष्य पर देव, दैत्य, दानव, मानव, यक्ष, गरुड़, वानर, महिष आदि प्रागैतिहासिक जातियों के जीवन एवं संस्कृति का काल्पनिक रूप खड़ा करके 'अतीत रस' की सृष्टि करते हैं। उपन्यास की भाषा शैली बाणभट्ट कृत 'कादम्बरी' की याद दिलाती है। इस उपन्यास का महत्व इतिहास की दृष्टि से तो है ही, 'अतीत–रस' की दृष्टि से भी बेजोड़ है। अतः आचार्य शास्त्री जी की यह ऐसी विलक्षण रचना है, जो अपना प्रतिमान स्वयं है।[1]

'वयं रक्षामः' उपन्यास में आचार्य शास्त्री जी ने रामकथा को एक नवीन दृष्टिकोण से देखा है। रामायण कालीन पृष्ठभूमि पर आधारित इस उपन्यास की अधिकाधिक कथा रावण के परिवार की है, जबकि हिन्दी साहित्य में राम परिवार का आश्रय लेकर ही अधिकतर उपन्यास लिखे गए हैं। बंग्ला कवि मधुसूदन दत्त के 'मेघनाथ वध' का प्रभाव भी इस उपन्यास में प्रत्यक्ष दृष्टिगत होता है, किन्तु दोनों का दृष्टिकोण बिल्कुल भिन्न है। 'इतिहास रस' तो इसमें केवल रंग ही है स्वाद तो 'अतीत रस' का है।

'वयं रक्षामः' उपन्यास में शास्त्री जी का दृष्टिकोण स्वच्छन्दतावादी है। स्वछन्दता की एक भावना स्त्री–पुरुष के रति–सम्बन्धों तथा भोजन आदि प्राग्वेद कालीन जातियों के सम्बन्ध में सर्वथा अकल्पित–अतार्किक स्थापनाएँ हैं, मुक्त सहवास है, विवसन विचरण है, हरण और पलायन है, शिश्नदेव की उपासना है, वैदिक–अवैदिक अश्रुत मिश्रण है। नर मांस का खुले बाजार में विक्रय हैं, नित्य है, मद है, उन्मुख–अनावृत्त यौवन है।[2]

आचार्य चतुरसेन शास्त्री जी ने आज के मानव को स्वच्छन्द दृष्टि देने के लिए उपन्यास में प्राग्वेद कालीन निवासियों को अलौकिक देवत्त्व की रज्जुओं से मुक्त कर, उनके नर रूप पर कथा प्रयोग किया है। उपन्यास में लेखक ने स्त्री–पुरुष के स्वच्छन्द रमण के अनेक प्रसंगों का मुक्त भाव से रस लेकर चित्रण किया है। उपन्यास में लेखक का दृष्टिकोण पूर्णतः स्वच्छन्दतावादी है। उनकी यह प्रवृत्ति 'वैशाली की नगरवधू' तथा 'सोमनाथ' में बीज रूप में थी, इस उपन्यास में प्रमुख हो गई है। स्वच्छन्दता की यह भावना स्त्री–पुरुष के रति सम्बन्धों तथा खान–पान के प्रश्न पर व्यक्त हुई है। अपनी स्वच्छन्दतावादी कल्पना को मूर्तिमान करने के लिए लेखक ने सुदूर अतीत के व्योम में उड़ान लगाई है। आज मनुष्य ने सभ्यता, संस्कृति की दीर्घयात्रा के परिणामस्वरूप स्वयं को अगणित निषेधों, वर्जनाओं ने घेर लिया है। आचार्य शास्त्री ने आज के मानव को स्वच्छन्द दृष्टि देने के लिए, उपन्यास में प्राग्वेदकालीन नर, नाग, दैत्य, दानव, आर्य, अनार्य आदि विविध, नृवंशों के जीवन को अलौकिक देवत्व

** शोध छात्र (हिन्दी विभाग), हिन्दू स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जमानियाँ, गाजीपुर*

*** एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष (हिन्दी विभाग), हिन्दू स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जमानियाँ, गाजीपुर*

के बन्धन से मुक्त करके मनुष्य रूप पर कथानक रचा है। उपन्यास में पात्रों द्वारा यौन अनन्यता की मान्यता का खण्डन उनके वचन एवं कर्म से कराया है। वे पात्र पशुओं की भांति स्वच्छन्द हैं। भोजन में भी उन्हें किसी प्रकार के मांस से अरुचि नहीं है। सब प्रकार के पशु–पक्षी का तथा नर का मांस भी उनका खाद्य है।

आचार्य शास्त्री जी ने अपनी स्वच्छन्दता सम्बन्धी मान्यताओं को उचित और भली–भाँति प्रस्तुत करने के लिए मानव जीवन के विकास की विशद् कल्पना की है। उन्होंने उपन्यास के पूर्वार्द्ध भाग के अधिकांश पौराणिक वृत्तों को बुद्धिसम्मत रूप देने तथा उन्हें भूगोल, इतिहास के विवरणों से रंगने पर व्यय किया है। उपन्यास का नायक रावण है। वह 'रक्ष–संस्कृति' की स्थापना कर उसके अन्तर्गत सभी जातियों के संगठन द्वारा देवताओं से संघर्ष करता है और विजयी होता है परन्तु राम से संघर्ष होने पर वह अन्ततोगत्वा पराजित होता है। 'वयं रक्षामः' में रावण को नायक बनाकर लेखक की सहानुभूति में मण्डित किया है। रावण भी अपने भाई और पुत्र की मृत्यु पर सामान्य नर की भाँति द्रवित होकर अश्रु प्रवाह करता दिखाया गया है। इस वर्णन से चतुरसेन शास्त्री जी की भावुकता का भी प्रमाण मिलता है।[3]

'वयं रक्षामः' उपन्यास को लेखक ने अतीत रस का उपन्यास माना है। अतीत रस से उनका तात्पर्य है, उस युग की कथावस्तु के आधार पर घटनाओं का चित्रण करना, जो इतिहास से भी पीछे प्रागैतिहासिक बन चुकी हैं। उन्होंने लिखा है, "अनहोने और सर्वथा अपरिचित तथ्य मेरे इस उपन्यास में हैं, जैसे आपका शिव मंदिर में जाकर शिवलिंग पूजन अश्लील नहीं है, उसी प्रकार मेरा शिश्नदेव भी अश्लील नहीं है, उसमें धर्म तत्त्व समावेशित है। फिर यह मेरा नहीं है, प्राचीन है, प्राचीनतम है, सनातन है। विश्व की देव–दैत्य, दानव–मानव आदि सभी जातियों का पूजन है। सत्य की व्याख्या साहित्यकार की निष्ठा है। उसी सत्य की प्रतिष्ठा में मुझे प्राग्वेद कालीन नृवंश जीवन पर प्रकाश डालना पड़ा। इसमें प्राग्वेदकालीन विविध नृवंशों के विस्मृत पुरातन रेखाचित्र हैं। धर्म के रंगीन चश्मे से देखकर जिन्हें अन्तरिक्ष का देवता मान लिया था, मैंने उन्हें नर रूप में इस उपन्यास में पाठक के समक्ष उपस्थित करने का साहस किया है।"[4]

आचार्य शास्त्री जी के इस उपन्यास में रामायणकाल की संस्कृति की झलक देखने को मिलती है, जैसे– रामायणकाल में अनेक नवीन संस्कृतियों की स्थापना हुई, प्रथम– अब तक चली आती हुई माह संज्ञक वंश परम्परा को त्याग पितृ मूलक वंश परम्परा स्थापित की। कुल–परम्परा को पितृ मूलक निश्चित करने में एक महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक परिवर्तन यह हुआ कि आर्यों में विवाह मर्यादा दृढ़बद्ध मूल हो गई और स्त्रियों के लिए पुरुष 'पति' या 'स्वामी' हो गए। उनके शरीर या जीवन की सम्पूर्ण सत्ता पर उसका अखण्ड एवं स्वतन्त्र अधिकार हो गया। यहां तक इस मर्यादा का रूप बना कि यदि वीर्य किसी अन्य पुरुष का अनुदान लिया हो तो भी संतति का पिता उस स्त्री का वह 'पति' ही माना जाएगा, जिससे उनका विवाह हो चुका है। अविवाहित स्त्रियों का पिता भी वही पति होगा। बहुत से ऋषियों ने तो वीर्य दान दिया, जिनमें दीर्घतमा, वशिष्ठ तथा अन्य कई वरिष्ठ ऋषियों ने भी अन्य राजाओं की पत्नियों को वीर्यदान दान दिया था। ऐसी सभी संतानें न माता की मानी गई ना वीर्यदाता पुरुष की। प्रत्युत् वे पुरुष की सन्तानें और उसी कुल गोत्र को चलाने वाली प्रसिद्ध हुई, जो उनकी माता का विवाहित पति एवं स्वामी था। इससे आर्य जाति को यह लाभ तो अवश्य हुआ कि वह एक संगठित जाति हो गई, परन्तु इससे और एक नई बात उपस्थित हो गई कि उनकी राज्य–सम्पत्ति आदि सब वैयक्ति होती गई और देखते–ही–देखते मानवों के महाराज्यों का विस्तार हो गया।

दूसरी महत्त्वपूर्ण संस्कृति आर्यकुलों में उत्पन्न हुई, वह भी उत्तराधिकार की। पिता की राज्य सम्पत्ति का निश्चित रूप से पुत्रों को ही उत्तराधिकार मिलता था, पुत्रियों को नहीं। इस प्रकार पुत्रियां पिता के कुल–गोत्र से वंचित कर दी गयीं। सम्पत्ति का सर्वार्थ में उत्तराधिकारी पुत्र था। इस प्रकार आर्यों का संगठन एक प्रकार से अस्त्रीक संगठन था। अर्थात् आर्यों की जाति में स्त्री की कहीं भी गणना नहीं थी। वह केवल पुरुष की पूरक थी। पति के लिए उसकी सम्पत्ति के उत्तराधिकारी को उत्पन्न करने के लिए वह विवाही जाती थीं। इसलिए विवाह में अब स्त्रियां पति का स्वेच्छा से वरण नहीं कर सकती थीं। वे पिता द्वारा दी जाती थी। इस सम्बन्ध में उनकी सहमति नहीं ली जाती थी, न उनकी रुचि और पसन्द का ही विचार किया जाता था। जिस प्रकार पति को

विवाहोपरान्त पत्नी पर पूर्ण अधिकार प्राप्त था, उसी प्रकार विवाह के पूर्व कन्या पर पिता की, परन्तु प्रमुख बात यह है कि पिता के सम्पत्ति में और पति के सम्पत्ति में उनका कुछ भी भाग नहीं होता था। अब वह कुलगोत्र के सम्पत्ति के सब अधिकारों से वंचित थी। जैसे–जैसे आर्यों की राज्यश्री बढ़ती गई, वैसे–वैसे विवाह के नियम भी रूढ़िवादी होते चले गए, जिनसे स्त्रियों की दशा एक प्रकार से दास्तां की सीमा को पहुंच गई। विवाह के समय उसे पति की आज्ञाकारिणी और अधीन रहने का वचन देना पड़ता था। स्वयंवर की प्रथा बड़े–बड़े आर्यकुलों में प्रचलित थी, परन्तु उसमें भी कन्या को अपनी पसन्द का पुरुष चुनने का अधिकार न था। पिता ही उस चुनाव की कोई शर्त रख देता था और शर्त को पूरा करने पर कन्या उसी को दे दी जाती थी। ऐसे स्वयंवरों में कन्या को 'वीर्य शुल्का' कहा जाता था। इसका अर्थ था, पराक्रम के मूल्य पर कन्या की खरीद अर्थात पराक्रम ही कन्या का मूल्य था, कुछ कुल कन्या के मूल्य भी लेते थे, सीता 'वीर्यशुल्का' थी। कई राजा अपनी कन्याएं पुरोहित को यज्ञ–दक्षिणा में दे दिया करते थे।

आचार्य शास्त्री जी कहते हैं, "'वयं रक्षामः' कहने भर को उपन्यास है, इसके द्वारा आज तक कभी मनुष्य की वाणी से न सुनी गयी बातें मैं सुनाने पर आमादा हूँ। व्याख्यायित तत्त्वों की विवेचना मुझे स्थान–स्थान पर करनी पड़ती है। मेरे लिए दूसरा मार्ग था ही नहीं। प्रत्येक तथ्य की सप्रमाण टीका बिना किए मैं अपना बचाव नहीं कर सकता था। अतः है 300 पृष्ठों से भी अधिक का भाष्य भी मुझे उपन्यास पर लिखना पड़ा है। अन्ततः मेरा परिमित ज्ञान इस अगाध इतिहास को सांगोपांग व्यक्त नहीं कर सकता था। संक्षेप में मैंने सब वेद–पुराण, दर्शन, ब्राह्मण और इतिहास के प्राप्त अवयवों को एक बड़ी सी गठरी में बांधकर इतिहास रस की एक डुबकी दे दी है। सबको इतिहास रस में रंग कर अतीत रस की नई स्थापना की है।[5]

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि इस उपन्यास का कथावस्तु या चरित्र–चित्रण के आधार पर समीक्षा न करके यदि भाषा और भाव के आधार पर की जाए, तो हम स्पष्टतः कह सकते हैं कि शास्त्री जी की यह उत्कृष्ट एवं विलक्षण रचना है। कथावस्तु प्राचीन तथ्यों या किंवदन्तियों पर केंद्रित है और उसको प्रमाण पुष्ट बनाने का यदि कहीं लेखक ने अपने भाष्य में प्रयास किया भी है तो वह सर्वथा मान्य नहीं हो सकता। यदि किसी युग का इतिवृत्त इस उपन्यास में होता तो उस युग के भाव–बोध और संवेदना के आधार पर कुछ निष्कर्ष निकालना सुगम होता, किन्तु वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। प्रायः ऐसे कथानक इस उपन्यास में ग्रन्थित हैं, जिनका कोई न तो इतिहास है और न कोई परम्परा ही। अतः शास्त्री जी ने इतिहास को ढाँचा मात्र मानकर उसमें अपनी प्रतिभा के द्वारा स्थिति परिवेश तथा घटनाक्रम को प्रस्तुत किया है।

सन्दर्भ–सूची

1. तिवारी, डॉ० रामचन्द्र, हिन्दी उपन्यास, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी संस्करण 2010, पृ. 101
2. कपूर, डॉ० सुभाकर, आचार्य चतुरसेन का कथा–साहित्य, लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ, संस्करण–1999, पृ. 192
3. विजयेंद्र स्नातक, चतुरसेन शास्त्री, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, संस्करण 2000, पृ. 40
4. वही, पृ 18–19
5. वही, पृ. 19

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 215-217

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

साठोत्तरी हिन्दी नाटकों में चित्रित नारी चेतना

*डॉ. ममता खाण्डाल**

प्रत्येक रचना युगीन परिवेश के प्रति लेखक की प्रतिक्रिया होती है। साहित्य परिवेश से अछूता नहीं रहता, इसलिए परिवेश–निरपेक्ष रचना असंभव है। प्रत्येक साहित्यकार अपने वर्तमान के प्रति उत्तरदायी और संवेदनशील होता है। उसकी रचना को समकालीन परिवेश से ही दिशा मिलती है। परम्परा के आलोक में वह कर्तव्य का निर्णय करता हैं वर्तमान का अनुभव उसमें विभिन्न प्रतिक्रियाएँ जगाती हैं, जिसका वह रचना में खुलासा करता है।

साठोत्तरी हिन्दी नाट्य–चेतना को समझने के लिए युगीन–चेतना समझना अत्यन्त आवश्यक है। अन्य विधाओं की भांति नाटक में भी परिवेश की मुख्य भूमिका है जो समकालीन नाटकों की विस्तश्त एवं गहरी जानकारी के लिए एक साधन मात्र है। स्वातंत्र्योत्तर काल में समाज के सभी पार्श्व में परिवर्तन प्रारम्भ हो गया था। ''मानव–जीवन की गतिविधियों और पद्धतियों में आमूल–चूल परिवर्तन हुआ। उस समय एक ओर राजनीति की उथल–पुथल से पूरे राष्ट्र में नई चेतना का स्फुरण हो रहा था। दूसरी ओर अंग्रेजी शिक्षा के भौतिकवादी सुखानुभव के प्रवाह में संवेदनाएँ आहत हो रही थीं। इस अवधि में विज्ञान के द्रुतवादी प्रसार ने मानव–मन और स्थितियों में परिवर्तन की पहल की। इससे समाज में नए मूल्य प्रतिष्ठित होने लगे।''[1] इस सामाजिक परिवर्तन ने साठोत्तर काल तक मानव–जीवन के विचार एवं सोच–समझ को प्रभावित किया। ऐसे परिवर्तित परिवेश में नाटककारों की एक नयी पीढ़ी सामने आयी, जिन्होंने समय की माँग के अनुसार नारी–जीवन के सभी पहलुओं का निरूपण किया।

मानव जीवन में नारी अनेक रिश्तों और नातों में बंधी हुई होती है। परिस्थितिनुसार उसके जीवन में परिवर्तन होता है और वह उसे स्वीकारती तथा अपने–आपको ढालती है। नारी के अभाव में मानव–जीवन शुष्क तथा अधूरा होता है। नारी संसार की जननी है। उसके कर्तव्य की व्यापक भूमि को देखते हुए शायद इसीलिए उसे घर की चारदीवारी के भीतर सीमित किया गया। लेकिन आधुनिक शिक्षा प्राप्ति के बाद उसका क्षेत्र विस्तृत होने लगा। शिक्षा, अर्थ, राजनीति आदि क्षेत्र में भाग लेने की वजह से नारी–जीवन का स्वरूप बदलने लगा। जैसे–जैसे उसका कार्य–क्षेत्र बढ़ता गया, वैसे–वैसे उसका जीवन विभिन्न कारणवश आत्मपीड़न, विसंगति, आत्मनिर्वासन, मानसिक तनाव, ऊब, टूटन, बिखराव, अनास्था, मोहभंग आदि से व्याप्त हो गया। महानगरों की सामाजिक, आर्थिक विकृतियाँ उभरकर आईं और राजनीतिक भ्रष्टाचार एवं स्वार्थांधता के कारण देश के निर्माण की गति में अवरोध आया। इन सब के कारण नारी, जो समाज और परिवार के बीच की इकाई है, उसके जीवन में काफी संघर्षपूर्ण समय आया। एक तरफ परम्परा और संस्कृति उस पर हावी होकर अपनी रक्षा की मांग करती थी तो दूसरी तरफ समय की पुकार के अनुसार शिक्षा उससे परिवर्तन की अपेक्षा रखती थी। इन सबसे जूझती, परम्परा और आधुनिकता के दोनों पाटों में पिसती, मानसिक कशमकश से पीड़ित अनजान दिशा की ओर बढ़ती नारी दोराहे पर खड़ी हो गई।

साठ के दशक के नाटकों में नारी की सामाजिक जिन्दगी में काफी परिवर्तन आया और विषय के नए क्षेत्रों को ग्रहण करते हुए नारी–संवेदना और चेतना के सभी कोनों को उभारने का प्रयास किया गया। मानव की सोच और शक्ति को विश्लेषित किया गया। पहले नारी अपने पति की हर कमी को बर्दाश्त करते हुए अपनी इच्छाओं का दमन कर लेती थी और अपने इस त्याग से पतिव्रता होने की उपाधि पाती थी। अब नारी इन पतिव्रत और

* *सहायक आचार्य (हिन्दी विभाग), राजस्थान केन्द्रीय विश्वविद्यालय, बांदरसिंदरी, किशनगढ़, अजमेर, राजस्थान*

सतीत्व की परम्परा को तोड़कर पुरुष की भांति मुक्त–जीवन व्यतीत कर रही है। मुद्राराक्षक के 'तिलचट्टा' में केशी अपने नामर्द पति से असंतुष्ट है और इसलिए अपनी इच्छाओं को पूरा करने के लिए परपुरुष से संबंध रखने में भी नहीं हिचकिचाती। गोविन्द चातक की 'काला मुँह' की केशी तथा शंकर शेश के 'पोस्टर' की चैती भी एक जागरूक नारी की पोषिका है। वे अशिक्षित होने के बावजूद इस बात के प्रति जागृत हैं कि अब तक गाँव के सेठों और ठेकेदारों द्वारा नारी पर जो भी अत्याचार होते थे, वह सब अन्याय था। इसलिए वह अपने साथ–साथ गाँव की अन्य स्त्रियों को भी इस बात का ज्ञान कराके उन्हें इसके विरूद्ध आवाज उठाने के लिए प्रेरित करती हैं। इस प्रकार अब तक समाज में चली आई रूढ़िग्रस्त एवं परंपरा, नारियों का ही वर्णन नाटक में होता है। लेकिन समय के साथ बदलते आए नारी के विचारों के अनुरूप ही नाटकों कथ्य में परिवर्तन किया गया।

जीवन परिवर्तनशील है और हर युग में मनुष्य के भावों–विचारों में परिवर्तन आता रहता है। प्रत्येक क्षेत्र की भाँति इस समय नारी का सामाजिक रूवरूप काफी विस्तृत हो गया। नारी को सार्थक और सजीव, प्राणवान अभिव्यक्ति देने के लिए समकालीन नाटककारों ने पूर्ण प्रयास किया हैं अब वह घर के अंदर और बाहर सभी कामों में पुरुषों के बराबर पात्र अदा करती है। उसे पारंपरिक बंधनों से मुक्ति मिल गई है जिससे उसके विचारों में भी काफी परिवर्तन हुआ है। अतः नारी को अपने पारंपरिक बंधनों से मुक्ति आधुनिक विचारों की देन है। विष्णु प्रभाकर के नाटक 'युगे–युगे क्रान्ति' की शारदा नारी की मुक्ति की घोषणा करती है–''स्त्रियाँ घर में रहने के लिए नहीं होती। वे दिन अब बदल गये क्या तुम नहीं जानते कि आदिशक्ति, महाचण्डी, महामाया, महाकाली ये सभी स्त्रियाँ थीं। इन्होंने ही अनाचारी दानवों को मारकर सृष्टि की रक्षा की थी। इसलिए अब हम घर नहीं जाएँगी।[2] इस प्रकार नारी अब तक अपनी कार्य–क्षमता से अनभिज्ञ थी और जब वह अपनी योग्यता को जान गई तो पीछे नहीं हटी।

जब नारी ने शिक्षा के क्षेत्र में पदार्पण किया तो वह बाहर की दुनिया के लोगों के संपर्क में आई, जिससे उसके विचारों में काफी बदलाव आया। इस परिवर्तन का ही परिणाम है कि अब नारी किसी भी रूढ़िगत निर्णय को सिर झुकाकर स्वीकार नहीं कर लेती है। 'नए हाथ' की शालिनी युरोप घूमकर आई है। वहाँ नारी की स्वतंत्र स्थिति देखकर और उससे प्रभावित होकर वह भी नारी स्वतन्त्रता के पक्ष में है। स्वतन्त्रता की इन्हीं भावनाओं के कारण आधुनिक नारी ने रूढ़ियों एवं प्राचीन मान्यताओं का विरोध किया है। 'युगे–युगे क्रान्ति' में शारदा सिर से पल्ला उतर जाने पर पिता द्वारा पीट दिए जाने के कारण हमेशा के लिए रूढ़ियों की विरोधिनी बन जाती है। वह कहती है– ''रहा होगा कभी किसी युग में सिर ढँकना अच्छी बात, रहा होगा कभी नारी का घर की चारदीवारी में बन्द रहना अच्छा, लेकिन आज इन बातों की कोई जरूरत नहीं है। यह रूढ़ियाँ हम स्वीकार नहीं करेंगे।''[3] मन्नु भण्डारी कृत 'बिना दिवारों के घर' की शोभा अपने पति अजित से स्वतंत्रता की माँग करती है–''इस घर की चारदिवारों से परे भी मेरा अपना कोई अस्तित्व है, व्यक्तित्व है।''[4]

व्यक्तित्व के प्रति जागरूकता और स्वतंत्रता की आकांक्षा ने नारी को शिक्षा एवं आर्थिक आत्मनिर्भरता की ओर प्रेरित किया है। नौकरी कर के आर्थिक निर्भरता प्राप्त करने के कारण नारी में आत्मसम्मान, स्वाभिमान तथा व्यक्तित्व में जागरूकता आई। विवाहित और अविवाहित नारियाँ अलग–अलग कारणों से नौकरी करती हैं। अविवाहित नारी के लिए नौकरी अपना आत्मनिर्भरता का परिचायक है जिसके द्वारा वह मनचाहा प्रति प्राप्त कर लेती है। 'रातरानी' की सुन्दरम् रेडियो में प्रोग्राम एक्जक्यूटिव की नौकरी करने के कारण मनचाहा विवाह करने में सफल हो जाती है। 'बड़े खिलाड़ी' की सुजला, विराज के साथ विवाह को इसलिए असंभव मानती है क्योंकि वह आत्मनिर्भर नहीं है। महँगाई बढ़ी तो व्यक्ति की आवश्यकताएँ बढ़ी, इससे जीवन–स्तर ऊँचा करने की स्पर्धा तीव्र हुई। महानगरों की स्थिति तो इतनी बिगड़ गई है कि मात्र पुरुष की आमदनी पर सारे शौक पूरे नहीं हो सकते और न ही जरूरतें पूरी होती हैं। 'बिना दिवारों के घर' की शोभा तथा 'आधे–अधूरे' की सावित्री पति की आर्थिक असफलताओं से विवश होकर नौकरी करती है। दूसरी तरफ 'रात रानी' की कुन्तल पति के दबाव और दाम्पत्य जीवन को विघटित होने से बचाने के लिए अपना इच्छा के विरूद्ध नौकरी करती है। और उसका यह निर्णय एक गहरे और आंतरिक संघर्ष के बाद एक व्यावहारिक रूप लेता है।

आज के वातावरण में स्त्री–पुरुष स्वतंत्र होकर बिना किसी बन्धन के जीना चाहते हैं। 'नए हाथ' की शालिनी, नारी की दासता के विरूद्ध आवाज उठाते हुए अजय प्रताप से कहती है– ''अपनी समाज में पत्नी दासी की तरह

होती है। मैं किसी की गुलामी नहीं कर सकती। भगवान ने स्वतंत्र पैदा किया है, फिर क्यों जानबूझ कर जंजीरों में पड़ूँ।''[5]

जो पत्नी नौकरी करती है वह चाहती है कि जस तरह घर की आर्थिक स्थिति को संभालने में वह मदद करती है उसी तरह पति भी घर के कामों में हाथ बटाँए।[6] उसे केवल घर की नौकरानी न मानकर उसके बाहरी व्यक्तित्व का भी मान्यता दी जाए। साथ के दशक तक आते–आते नाटकों में नारी के आत्मविश्वास में कोई कमी नहीं रहती है, वह पुरुष की ही भाँति आत्मविश्वासी बनने लगती है। साधरणतया पुरुष स्त्री को तरह–तरह के नाम से पुकारते हैं। कभी–कभी उनके लिए अपशब्द का भी प्रयोग करते हैं। स्त्री के मन में अगर पति के लिए इस प्रकार के विचार आते भी हैं तो वह कभी उसे व्यक्त नहीं करती, किन्तु आज की नारी पुरुष के समान ही अपने विचारों को व्यक्त करती है– ''मैं केवल देवयानी जैसी लगती हूँ और किसी जैसी लग ही नहीं सकती। (चाय पीती हैं) लेकिन तुम एकदम पराम्परागत, दकियानूस सिरपिटे हसबंड यानी पानी की तरह लगने लगे हो''[7] एक अन्य स्थान पर देवयानी साधन से कहती है– ''याद रखो साधन देवयानी वहाँ लौट कर कभी नहीं जाती, जहाँ से उठकर वह आती है।''[8]

आज की नारी विवाह को एक जन्म–जन्मांतर का बंधन नहीं बल्कि एक समझौता या मैत्री संबंध मानती है। 'युगे–युगे क्रान्ति' की रीता का कथ्य उपक्रम विचार–सा ही है। उसका कथन है– ''मेरा मन उसके साथ रहने को करता है। मैं रहती हूँ। जब तक हम एक–दूसरे को प्रेम कर सकेंगे, रहेंगे। नहीं कर सकेंगे तो अलग हो जाएँगे।''[9] इस प्रकार स्त्री अपनी इच्छानुसार विवाह करती है और छोड़ देती है। ऐसे बहुत कम परिवार हैं, जिन में पति–पत्नी के बीच तनाव न हो। पति अपने अहं के कारण पत्नी को तुच्छ समझता है और हीनता से ग्रस्त अपनी मानसिक विकृति का शिकार हो जाता है। विवाह के कुछ दिनों बाद ही पति–पत्नी में मतभेद प्रारंभ हो जाता है। उनकी यह बहस तलाक तक पहुँच जाती है। मादा कैक्टस, बिना दिवारों के घर, आधे–अधूरे, रातरानी आदि नाटक दाम्पत्य जीवन विशयक विसंवादिता और टूटन को रेखांकित करते हैं।

इस प्रकार साठोत्तरी हिन्दी नाटक युगीन चेतना का प्रतिनिधित्व करता है तथा नारी जीवन के सभी पहलुओं की अभिव्यक्ति का प्रामाणिक दस्तावेज प्रस्तुत करता है। इसमें व्यक्ति, समाज ओर सामाजिक संस्थाओं के टूटन, विघटन, खोखलेपन के दर्शन होते हैं। नारी में अपने व्यक्तित्व को व्यक्त करने की इच्छा, उसकी आर्थिक स्वतंत्रता ने उसे समाज में एक निर्दिष्ट स्थान दिया है।

सन्दर्भ–सूची

1. विजयकान्त धर दूबे, साठोत्तर हिन्दी नाटक : मूल्य अस्मिता की खेज, पृ. 55
2. विष्णु प्रभाकर, युगे–युगे क्रान्ति, पृ. 37–38
3. विष्णु प्रभाकर, युगे–युगे क्रान्ति, पृ. 33
4. मन्नु भण्डारी, बिना दिवारों के घर, पृ. 45
5. मन्नु भण्डारी, नए हाथ, पृ. 25
6. रमेश बक्षी, देवयानी का कहना है, पृ. 20
7. रमेश बक्षी, देवयानी का कहना है, पृ. 28
8. रमेश बक्षी, देवयानी का कहना है, पृ. 115
9. विष्णु प्रभाकर, युगे–युगे क्रान्ति, पृ. 68

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 218-221

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

मय्यादास की माड़ी उपन्यास का मूल्यांकन : सामन्ती मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में

*श्याम बहादुर**

सामंतवाद एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें सामंत भूमि का असली मालिक होता है जिसके लाभ के लिए भूदास बिना किसी मुआवजे के बेगारी करते हैं। यह दास–स्वामित्व प्रथा और पूँजीवादी व्यवस्था के बीच की कड़ी है। जिस प्रकार आदिम साम्यवादी व्यवस्था के गर्भ से दास–स्वामित्व का उदय हुआ उसी प्रकार दास–स्वामित्व व्यवस्था के गर्भ से सामंतवादी व्यवस्था का उदय हुआ। सामंतवादी व्यवस्था का विकास अलग–अलग देशों में अलग–अलग समय पर हुआ। यूरोपीय उपनिवेशवादियों की विस्तारवादी नीति के कारण एशिया और अफ्रीका में सामंती सम्बन्ध बहुत लम्बे समय तक बने रहे। लेकिन 17वीं सदी में सामन्ती व्यवस्था अन्त की ओर बढ़ने लगा जिसका प्रमुख कारण नई पूँजीवादी व्यवस्था का आरम्भ था। सामंती व्यवस्था में भूमि जो उत्पादन का बुनियादी साधन थी, इस पर सामन्तों का पूर्ण एकाधिकार था। यह उत्पादन प्रणाली उनकी सम्पत्ति का असली स्रोत भी था। सामंत लोग किसानों का अबाध शोषण करके आमदनी की मोटी रकम इकट्ठा करते थे। किसानों का अबाध शोषण होने के कारण वे पूर्णतः सामंतों पर आश्रित हो गए। सामंती समाज में आर्थिक असमानता के साथ–साथ सामाजिक असमानता भी बढ़ी जिसमें जाँति–पाँति, छुआछूत, ऊँच–नीच, किसानों की समस्या तो थी ही, इसके अलावा सामंती समाज में स्त्रियों को भी दहेज–प्रथा, सती–प्रथा, बाल–विवाह, स्वतन्त्रता, समानता, सम्पत्ति, शिक्षा आदि के अधिकारों से वंचित रखा गया था जो उनकी मुख्य समस्या थी। समाज में उन्हें सिर्फ भोग की वस्तु समझा जाता था। इन्हीं सामाजिक असमानताओं को प्रेमचन्द ने पहली बार अपने कथा साहित्य में उठाया जिसकी छाप हम भीष्म साहनी के भी कथा साहित्य पर पाते हैं।

'मय्यादास की माड़ी' उपन्यास उस कालखंड की कथा है, जब पंजाब की धरती से सिख अमलदारी के खंभे उखड़ रहे थे और ब्रिटिश साम्राज्यवाद अपनी हुकूमत को विस्तार दे रहा था। यह वह समय है जब परम्परागत विश्वासों और आस्थाओं को धक्का पहुँच रहा है। औद्योगिक क्रान्ति का उभार धीरे–धीरे भारत के उनीदे आकाश पर फैल रहा है और लोग हैरत के साथ अपने हाथों से कुछ छूटता हुआ और सामने के चित्रपट पर कुछ बदलता हुआ देख रहे हैं। 'मय्यादास की माड़ी' सामन्तवाद की ढपोरशंखिया शान के बनने बिगड़ने की कहानी है। पूँजी के विस्तार और छल की कहानी है। देशभक्ति के ठाठे मारते जज्बे और पीठ में घोपें छुरे की कहानी है। औरत के दर्द, गहरे अंधकार और जागने की सुगबुगाहट की कहानी है। नये तकनीक की पताका और धड़धड़ाती मशीन की कहानी है। पीढ़ियों की जड़ता और बदलाव की कहानी है।''[1]

'मय्यादास की माड़ी' उपन्यास में 'माड़ी' सामन्ती मूल्यों का प्रतीक है। इसी 'माड़ी' का मालिक दीवान धनपतराय अपनी सामन्ती ठाट–बाट के लिए जाना जाता है। जिसके बारे में इन उद्धरणों से समझ सकते हैं– ''माड़ी के बाहर चबूतरे पर, बड़े मेहराबदार फाटक के बाई ओर 'माड़ी' का मालिक दीवान धनपतराय आरामकुर्सी पर दोनों टाँगे ऊपर चढ़ाए बैठा था, और हाथ में गुड़गुड़ी उठाए हल्के–हल्के कश ले रहा था, जबकि चबूतरे के सामने गली में, बिरादरी का बूढ़ा पुरोहित दीवान जी की हाँ–में–हाँ मिलाता हुआ, 'सत बचन, सत बचन महाराज' कहे जा रहा

* *शोध छात्र (हिन्दी विभाग), काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी*

था। दीवान धनपत जिस ढंग से कुर्सी पर दोनों पाँव चढ़ाकर बैठा था, उसी से उसके बड़प्पन का अंदाज़ हो जाना चाहिए। कस्बे में दीवान धनपत अपने सनकी स्वभाव के लिए मशहूर था। अब तो वह बूढ़ा हो चला था, पर जब जवान था तभी से उसका नाम कस्बेवालों ने 'सनकी दीवान' डाल रखा था। दीवानों की बिरादरी में यही एक आदमी था जो आज भी पीले रंग का अँगरखा पहनता था, और जिस पर केसरी रंग की पगड़ी, जबकि अँगरखे का चलन कस्बे में अंग्रेजों की अमलदारी कायम होने के साथ खत्म हो गया था और केसरी रंग की पगड़ी केवल ब्याह–शादी के वक्त सिर पर बाँधी जाती थी।''[2]

सामंती समाज में स्त्रियों पर पुरुषों का नियंत्रण सदैव से रहा है जिसका उद्धरण 'मय्यादास की माड़ी' उपन्यास में देखने को मिलता है जब मंसाराम की बेटी की शादी में दीवान धनपतराय अपने अपमान का बदला लेने के लिए एक गहरी चाल चलता है। वह मंसाराम के सामने यह शर्त रखता है कि तुम्हारी बेटी को तभी विदा कराकर ले जाएंगे, जब तक इस घर से एक और लड़की की शादी 'माड़ी' के लड़के के साथ नहीं हो जाएगी। इसलिए बारात मंसाराम के घर न रूककर गाँव के बाहर एक टीले पर रूकती है जहाँ वे इस इन्तजार में रहते हैं कि मालिक मंसाराम दूसरी लड़की की शादी का बुलावा भेजेंगे। इसी इन्तजार में लोग टीले पर मनोरंजन करने के लिए मनचले लड़कों के समूह को डंबा मार खेल खेलने के लिए कहते हैं जिसमें दूल्हा भी शरीक होता है और डंबे को तान कर घूसा मारता है तभी उसका मित्र बालमुकुन्द दूल्हें की पीठ थपथपाते हुए कहता है– ''तू तो छिपा रुस्तम है, ओए!'' बालमुकुन्द ने दूल्हे की पीठ थपथपाते हुए कहा, ''तेरे में सचमुच बड़ा दम है। घरवाली को काबू में रखेगा।''[3]

उपन्यास में सामंती मूल्यों का शिकार हरनारायण की विधवा बेटी बीराँवली की तेरह साल की लड़की होती है, जब उसकी शादी पुरोहित रामदास की चालाकी से दीवान धनपतराय के पागल बेटे कल्ले से हो जाती है– ''सायत निकल जाने में सचमुच गिने–चुने क्षण ही रह गए थे, जब पुरोहित रामदास सहसा अपने आसन से उठा, कदम बढ़ाता हुआ मंडप के बाहर निकला और झट–से आगे बढ़कर एक खेलती बच्ची को, जो कुछेक सहेलियों के साथ मंडप के किनारे खड़ी विवाह का कौतुक देखे जा रही थी, झपटकर उठा लाया और मंडप में लाकर खारों पर बिठा दिया, और उसी क्षण आसन पर बैठकर विवाह के मंत्र पढ़ने लगा! इस तरह दीवान धनपत के रोगी बेटे का विवाह, हरनारायण की विधवा बेटी बीराँवली की बारह–तेरह बरस की पुत्री रूक्मणी के साथ सम्पन्न हुआ, जो कस्बे के इतिहास में दसियों साल तक चर्चा का विषय बना रहा।''[4]

उपन्यास में सिख अमलदारी को समाप्त कर अंग्रेजों ने नई अमलदारी व्यवस्था लागू की जिसका प्रमुख लक्ष्य किसानों से अधिक से अधिक लगान वसूल करना था। अंग्रेज इस नई अमलदारी व्यवस्था को आगे बढ़ाने के लिए सामंत धनपतराय को जिम्मेदारी देते हैं जो मनमाफिक किसानों पर लगान लागू कर वसूलने का काम करता है। उदाहरणार्थ ''अब तक तो मुखिया जिंस ले लेता था, ना? अब वह जिंस नहीं लेगा, अब वह लगान की रकम नगद वसूल करेगा। एक बात पहले तो खेत की उपज का अंदाज लगाकर लगान मुकर्रर कर दिया जाता था, अब पूरा हिसाब लगाकर लगान लगाया जाएगा, समझे? पहले, खेत कट जाने पर लगान दिया जाता था, (लगान के रूप में जिंस दी जाती थी), अब खेत कटाई से पहले ही लगान का भुगतान करना होगा। पहले सारा गाँव मिलकर, सांझी भुगतान करता था, अब हर हल जोतने वाला किसान अपनी–अपनी ज़मीन पर खुद भुगतान करेगा।''[5]

दीवान धनपतराय द्वारा किसानों पर तय किए गए लगान उचित समय पर न मिलने के कारण वह अपने आदमियों के द्वारा किसानों पर अत्याचार करता है। उदाहरणार्थ– ''तख़्त पर बैठे दोनों मुनीमों की पीठ मुजारों की ओर थी। तख़्त के सामने एक मुजारा हाथ बाँधे खड़ा था और दीवान धनपत के सामने गिड़गिड़ा रहा था–

''नहीं माई–बाप, नहीं हुजूर!''

दीवान ने मुँह में से गुड़गुड़ी निकाली, ''कब चुकता करेगा?'' फिर दीवान सहसा ही भौंडी जबान में चिल्लाकर बोला, ''चाढ़ों पिंज इस सूर दे पुत्तर नूँ, हरामजादा! मैं पूछता कुछ हूँ, जबाब कुछ देता है।'' चार हट्टे–कट्टे आदमी, जो अभी तक जाने कहाँ खड़े थे, दीवान के चिल्लाने पर सामने आ गए और किसान गिड़गिड़ाने लगा–

''रहम करो, रहम करो माई–बाप...''

दीवान धनपत ने गुड़गुड़ी की नली फिर से मुह में डाल ली थी और निश्चित होकर बैठ गया था।

मुजारा अभी भी हाथ बाँधे ज़मीन पर बैठा था। उन चार आदमियों में से एक ने आगे झुककर उसे कुर्ते के गलमे से पकड़ लिया और उठाकर खड़ा कर दिया। देखते–ही–देखते दूसरे आदमी ने उसके मुँह पर घूँसा मारा, और फिर ताबड़–तोड़ तीन–चार चाँटे जड़ दिए। जाट के लिए यह सब इतनी तेज से हो गया कि वह बदहवास–सा थप्पड़ और घूँसे खाए जा रहा था। उसके पाँव, एक बार जो उखड़े तो जम नहीं पाए। जबड़े पर पहला घूसा पड़ने पर ही उसकी आँखे टेढ़ी हो गई थीं और चेहरा ज़र्द पीला पड़ गया था। तभी उसके मुँह में से जोर का बिकड़ाट निकला और वह जमीन पर गिरकर दीवान की ओर रेंगता हुआ बिलबिलाने लगा।''[6]

उपन्यास में सामंती समाज के लोगों द्वारा और सेठ, साहूकारों द्वारा अपने से नीची जाति वालों के प्रति वर्ग–भेद, छुआछूत, ऊँच–नीच जैसी भावना देखने को मिलती है– ''भंगी, चूड़ा–चमार भी इसी गाड़ी में बैठेगा। ऊँची जात का आदमी भी उसी में बैठेगा और रईस–साहूकार भी उसी में बैठेगा! नेम धरम भी कोई चीज़ है या नहीं? साहूकार भी उसी में और उसका देनदार भी उसी में! मोची–नाई भी उसी में! सेठ–साहूकार की क्या रह जाएगी? इधर वह बैठा है और उसके सामने कोई कुंभी–तेली बैठा है!'' किसी को यह बात भी अटपटी लगने लगी थी कि एक ही रफ्तार पर चलती हुई गाड़ी सेठ–साहूकार को भी अपने ठिकाने उतनी ही देर में पहुँचाएगी, जितनी देर में भंगी–चमार को। इसमें सेठ–साहूकार की क्या रह जाएगी? सोचने वाली बात है। जो आदमी घोड़े की सवारी करता है, वह भी उसी वक्त सरगोधा पहुँचे, और भंगी–चमार भी उसी वक्त पहुँचे। फिर तो बड़े–छोटे की तमीज़ ही नहीं रह जाएगी।''[7]

सामन्ती समाज में स्त्रियों को शिक्षा के अधिकार से वंचितकर घर की चहारदीवारी में कैद रखा जाता था। अगर वह गलती से भी घर के बाहर निकल आती थी तो आफत आ जाती थी। रुक्मणी को दीवान धनपतराय का मझला बेटा इसी सामंती मूल्यों के दायरे में रखना चाहता था, लेकिन रुक्मणी सामंती मूल्यों को चुनौती देती हुई अपनी शिक्षा और स्वतंत्रता के लिए 'माड़ी' से बाहर निकलती है। रुक्मणी के इस कदम से मझला नाराज होकर कल्ले से कहता है–''ओ कल्ले, सुन रहा है या नहीं?'' मझले ने पहले से भी ज्यादा ऊँची आवाज में कल्ले को पुकारा और आगे बढ़कर ज़ोर से दरवाज़े पर लात जमा दी, ''घरवाली को सँभालकर रख अगर कभी बाहर निकली तो मुझसे बुरा कोई नहीं होगा।'' ''कल्ले! ओ कल्ले!! कानों में तेल डालकर सो रहा है? अगर तेरी घरवाली ने घर के बाहर कदम रखा तो मुझसे बुरा कोई नहीं होगा'' अपने घर की औरतों को बेपर्द नहीं होने देंगे। हमारी भाभी हरजाई नहीं है।''[8] मझले को गुस्से में देखकर रामजवाया आग्रह पूर्वक पूछता है– ''बात क्या है? हमसे पूछते हो, बात क्या है?'' मझले ने पहले की तरह आवेश में कहा, ''हमसे क्या पूछते हो, कल्ले से पूछो।'' फिर बड़ी आहत और क्षुब्ध आवाज में बोला, ''कल्ले की घरवाली स्कूल में नाम लिखवा आई है। हमारे मुँह पर कालख पोत आई है।''[9]

सामंती मूल्यों को बचाए रखने वालों के लिए रुक्मणी के इस कदम से उनकी झूठी शान और इज्जत जाती हुई दिखाई देती है– ''दीवानों की बहू अब मुँह उघाड़कर स्कूल जाएगी?'' बालमुकुंद आवेश में चिल्लाने लगा। ''हम यह बेशर्मी नहीं होने देंगे। हम मर नहीं गए हैं। हमारी बहू–बेटियों पर कोई आँख उठाकर तो देखे। मैं आँख फोड़ दूँगा।'' इज्जतदार घरों की बेटियाँ अब बेपर्द होंगी?'' बालमुकुन्द, मानो रामजवाया को संबोधन करते हुए, फिर से चिल्लाया। मंझले को लगा जैसे मुहल्ले के लोगों ने उसका समर्थन किया है, कि माड़ी की बहू का मुँह उघाड़कर स्कूल में जाना किसी को भी पसन्द नहीं। इससे वह पहले से भी ज्यादा माड़ी का नैतिक मर्यादाओं पर बल देने लगा– ''हमसे यह लच्चरपना नहीं देखा जा सकता। कस्बे में हमारे ख़ानदान की साख है, इज्जत–आबरू है। इसे हम मिट्टी में नहीं मिलने देंगे।''[10]

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि भीष्म साहनी ने 'मय्यादास की माड़ी' उपन्यास में सामन्ती मूल्यों का चित्रण बखूबी किया है जिसमें वर्गभेद, छूआछूत, ऊँच–नीच, बाल–विवाह, स्त्रियों की स्वतंत्रता, उनकी शिक्षा और किसानों की समस्या जैसी सामाजिक व आर्थिक समस्याएँ इस कथा के केन्द्रीय विषय हैं।

सन्दर्भ–सूची

1. सर्वमित्रा सुरजन अक्षरपर्व पत्रिका (भीष्म साहनी विशेषांक) जून 2015, पृ. 100
2. भीष्म साहनी, मय्यादास की माड़ी, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण, वर्ष 2008, पृ. 9–10
3. वही, पृ. 54
4. वही, पृ. 68–69
5. वही, पृ. 150
6. वही, पृ. 227–228
7. वही, पृ. 176
8. वही, पृ. 238–239
9. वही, पृ. 239
10. वही, पृ. 239–241

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 222-226

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

बाणभट्ट की आत्मकथा एक परिचय

*डॉ. पल्लवी**

''बाणभट्ट की आत्मकथा'' आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास है। इसकी रचना सन् 1946 ई0 में हुई। इस उपन्यास में 20 उच्छ्वास हैं। औपन्यासिक कौशल के साधन के रूप में उपन्यासारम्भ से पूर्व 'कथामुख' तथा बाद में 'उपसंहार' लिखा गया है। यह 314 पृष्ठों का मध्यकालीन उपन्यास है।''[1] इसकी कथावस्तु सातवीं शताब्दी अर्थात् हर्षकालीन भारतीय समाज पर आधारित है। यह रचना न केवल ऐतिहासिक दृष्टि से अभिनव प्रयास है, बल्कि शिल्प की दृष्टि से भी इसका विशेष महत्त्व है। उपन्यासकार ने अपनी अद्भुत कल्पना–शक्ति और रचनात्मक प्रतिभा के बल पर इस उपन्यास की घटनाओं का सृजन इस ढंग से किया है कि वह मध्यकालीन ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की पुनर्सृष्टि करने में पूर्णरूप से सफल रही है।

'बाणभट्ट की आत्मकथा' उपन्यास संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् एवं साहित्यकार बाणभट्ट के जीवन पर आधारित है। उनका वास्तविक नाम 'दक्षभट्ट' था। ''इसमें लेखक ने दक्षभट्ट जिसे आवारा होने के कारण लोग 'बण्ड' कहने लग गये थे, के घर से भाग जाने से लेकर महाराज हर्षवर्द्धन के सभा पण्डित बन जाने तक की कथा कही है।''[2] बाणभट्ट का जन्म प्रसिद्ध वात्स्यायन ब्राह्मण वंश में हुआ था। उसके पिता का नाम चित्रभानु भट्ट था। वे विद्याभ्यासी प्रकाण्ड पण्डित थे, जिसके कारण उनके घर में पठन–पाठन का वातावरण शुरू से ही रहा। कहा जाता है कि, ''इनके घर में आये हुए विद्यार्थी भी शुक–सारिकाओं (तोता–मैना) से डरते थे कि कहीं वे हमारी गलती न पकड़ लें। सरस्वती का सचमुच इन पर वरद हस्त था।''[3]

बाणभट्ट को असमय ही अपने माता और पिता दोनों का वियोग सहना पड़ा। माता बचपन में ही और पिता चौदह वर्ष की आयु में बाण को निस्सहाय छोड़कर परलोक चले गये। माता और पिता के स्नेह से वंचित बाणभट्ट आवारा, गप्पी, अस्थिरचित और घुमक्कड़ बन गया। बाण के शब्दों में– ''ऐसे ही कृती पिता का मैं पुत्र था–जन्म का आवारा, गप्पी, अस्थिरचित्त और घुमक्कड़।''[4] बाण के इसी आवारा और घुमक्कड़ प्रवृत्ति के कारण लोग उसे 'बण्ड' अर्थात् पूँछ–कटा बैल कहते थे। बाद में यही 'बण्ड' शब्द संस्कार पाकर बाण बना और आगे चलकर यही शब्द 'बाणभट्ट' बन गया। इस सम्बन्ध में बाणभट्ट का कथन है– ''इसी को बाद में संस्कृत शब्द 'बाण' द्वारा संस्कार करके मैंने इस नाम की कुछ इज्जत बढ़ा ली। भट्ट तो लोगों ने और बाद में जोड़ा। वैसे मेरा असली नाम दक्ष था।''[5]

उडुपति बाणभट्ट के चचेरे भाई थे, जिन्होंने बाणभट्ट को माता और पिता दोनों का स्नेह दिया। लेकिन वे भी बाण की आवारा और घुमक्कड़ प्रवृत्ति को न सुधार सके। घर से भागकर वह कभी इस जनपद तो कभी उस जनपद में घूमता रहा। इस भटकान में वह ''कभी नट बनता, कभी पुतलियों का नाच दिखाता, कभी नाट्य मण्डली संगठित करता और कभी पुराण–वाचक बनकर जनपदों को धोखा देता रहा; सारांश, कोई कर्म छोड़ा नहीं।''[6] इसी घूमने के क्रम में बाणभट्ट की मुलाकात उज्जयिनी में निपुणिका से हुई। वह बाणभट्ट के नाटक में अभिनय करने के लिए आयी थी। विवाह के एक वर्ष के बाद ही वह विधवा हो गयी थी। नाटक–मण्डली में शामिल होने के बाद वह बाणभट्ट के प्रति आसक्त थी, लेकिन बाणभट्ट के मन में अपने प्रति उपेक्षा देखकर वह सह न सकी और नाटक–मण्डली छोड़कर भाग गयी। निपुणिका के चले जाने के बाद बाणभट्ट नाटक–मण्डली भंगकर निपुणिका की तलाश में निकल पड़ा।

* *लूकरगंज, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश*

वर्षों भटकते–भटकते बाणभट्ट एक दिन स्थाण्वीश्वर (थानेसर) नगर पहुँचा। स्थाण्वीश्वर (थानेसर) महाराजा हर्षवर्द्धन की राजधानी थी। वहाँ के नगरवासियों से पता चला कि महाराज श्री हर्षवर्द्धन के छोटे भाई कुमार कृष्णवर्द्धन के घर पुत्र–जन्म हुआ है कि आज उसका नामकरण संस्कार होने जा रहा है। बाणभट्ट के मन में विचार आया कि, ''क्यों न कुमार कृष्णवर्द्धन के पुत्र–जन्म के अवसर पर बधाई दे आऊँ। आशीर्वाद देना तो ब्राह्मण का धर्म है, कर्त्तव्य है, पेशा है।''[7] वह आगे सोचता है कि, ''अपनी लम्पटता की बदनामी को हमेशा के लिए धो दूँगा। आज मैं कुमार कृष्णवर्द्धन से मित्रता करूँगा और दस दिन के भीतर ही महाराजाधिराज का भी कृपा–पात्र बन जाऊँगा। फिर मेरा गृह यज्ञधूम की कालिमा से दिशाओं को धवल बना देगा। फिर मेरे द्वारा पर वेद–मन्त्रों का उच्चारण करती हुई शुक्र–सारिकाएँ बटुकजनों को पद–पद पर टोका करेंगी। मैं अब वात्स्यायन वंश का कलंक कदापि न रहूँगा।''[8]

बाणभट्ट अपने इन्हीं विचारों में खोया हुआ आगे बढ़ रहा था। इसी समय एक क्षीण कोमल कण्ठ ने पुकारा– ''भट्ट, ओ भट्ट, इधर देखो, मुझे पहचानते हो?''[9] निपुणिका की आवाज सुनकर बाणभट्ट चौंक पड़ा। निपुणिका ने उसे बताया कि नाटक–मण्डली छोड़ने के बाद वह कुछ दिन इधर–उधर भटकती रही और उसके बाद स्थाण्वीश्वर में पान बेचने लगी। इसके अलावा वह मौखरि–वंश के छोटे महाराज (जो उस समय आश्रय पाये हुए थे) के यहाँ महल में भी काम करने चली जाया करती थी। निपुणिका से बाणभट्ट को पता चला है कि मौखरि–वंश के छोटे महाराज कृष्णवर्द्धन अपनी वासना के लिए अन्तःपुर में एक राजकुमारी को कैद करके रखा है। वह राजकुमारी देवमन्दिर के समान पवित्र एवं अकलुश है। ''भट्ट, वह अशोक–वन की सीता है, तुम उसका उद्धार करके अपना जीवन सार्थक करो।''[10]

नारी के शरीर को देवमन्दिर सदृश माननेवाला बाणभट्ट निपुणिका की सहायता से उस राजकुमारी का उद्धार करता है। ''कालान्तर में भट्टिनी के द्वारा बाण को यह ज्ञात हुआ कि वह तुवरमिलिन्द की कन्या है।''[11] देवपुत्र तुवरमिलिन्द से बाणभट्ट की मुलाकात पहले ही हो चुकी थी। बाणभट्ट भट्टिनी के बन्दी बनने से लेकर उसके उद्धार तक की सारी कहानी तुवरमिलिन्द को बताता है। आचार्य सुगतभद्र और कुमार कृष्णवर्द्धन की सहायता से बाणभट्ट देवपुत्र नन्दिनी अर्थात् भट्टिनी को मगध ले जाने में सफल होता है। इसके लिए उन्हें कुछ मौखरि वीरों की सहायता लेनी पड़ी और उन्हीं के संरक्षण में उन्होंने नौका द्वारा गंगा नदी की जल–यात्रा की।

''जब नौकाएँ चरणाद्रि–दुर्ग के पास पहुँचीं, तब आभीर सामन्त ईश्वरसेन ने उन्हें पकड़ना चाहा। विग्रहवर्मा के नेतृत्व में नौकाओं के साथ आये मौखरि सैनिकों और ईश्वरसेन के सैनिकों के बीच युद्ध छिड़ गया। भट्टिनी गंगा में कूद पड़ी। पीछे निपुणिका कूदी और फिर उन्हें बचाने बाण।''[12] बाणभट्ट सबसे पहले भट्टिनी को बचाता है और उसे महामाया के पास छोड़कर स्वयं निपुणिका की खोज में निकल पड़ता है। रास्ते में उसे एक नयी विपत्ति का सामना करना पड़ता है। कुछ दूर चलने के बाद बाण को एक दल नृत्य और गान करता हुआ मिलता है। उस दल के एक युवक से बाण को पता चलता है कि गंगा व महासरयू के संगम पर वज्रतीर्थ है, वहाँ देवी की पूजा होती है। उसका सरदार लोरिकदेव है। युवक ने यह बताया कि वज्रतीर्थ की देवी का दर्शन रात्रि में निषिद्ध है रात्रि में केवल साधक लोग ही वहाँ जाते हैं, गृहस्थ का वहाँ जाना वर्जित है। परन्तु बाण उस युवक की बातों की उपेक्षा करके रात्रि में ही उस देवी का दर्शन करने निकल पड़ता है। वहाँ उसकी मुलाकात साधक अघोरघण्ट और साधिका चण्डमण्डना से होती है। वे दोनों मिलकर बाणभट्ट की बलि देनेवाले ही होते हैं कि भट्टिनी तथा निपुणिका के साथ महामाया वहाँ पहुँचकर बाण के प्राणों की रक्षा करती है और उसे अघोर भैरव के पास ले जाती है।

तान्त्रिक अभिचार के कारण बाणभट्ट तीन दिनों तक और निपुणिका कई दिनों तक बेहोश रहती है। महामाया उन्हें संज्ञाहीन अवस्था में ही भद्रेश्वर–दुर्ग के आभीर सामन्त लोरिकदेव के घर ले जाती है। स्वस्थ होने पर बाणभट्ट को कुमार कृष्णवर्द्धन का पत्र मिला, कुमार कृष्णवर्द्धन के निमन्त्रण मिलने पर बाणभट्ट भट्टिनी और निपुणिका को वहीं लोरिकदेव के घर छोड़कर स्वयं स्थाण्वीश्वर की ओर चल पड़ता है। कुमार कृष्ण की सहायता से बाण महाराज हर्षवर्द्धन के राजकवि के पद पर नियुक्त होता है और सम्राट के साथ ताम्बूल वीटक पाने का उसे सौभाग्य भी मिलता है। ''वहाँ उसकी भेंट कवि धावक तथा निपुणिका की सखी सुचरिता से हुई, जो

स्थाण्वीश्वर में निन्द्य एवं उपेक्षित जीवन बिताती हुई वेंकटेश भट्ट के नये धर्म में दीक्षित हो पुनः अपने संन्यासी पति विरतिवज्र को पति रूप में प्राप्त करके गृहस्थाश्रम में लौट आने के कारण ढोंगी पण्डित वसुमति के संकेत पर उसके चेले नगर–श्रेष्ठि धनदत्त द्वारा लगाये गये आरोपों के कारण राज्य द्वारा बन्दिनी बना ली गयी थी। जिससे वह गृहस्थाश्रम में आने के पूर्व मुक्त समझी गयी थी।''[13] इस प्रकार बाणभट्ट ने विरतिवज्र और सुचरिता को बन्दीगृह से मुक्त करके गृहस्थ जीवन में प्रवेश कराया।

इसके बाद बाणभट्ट का आभार सामन्त लोरिकदेव एवं भट्टिनी को महाराजा एवं राजश्री का सन्देश देने के लिए भद्रेश्वर दुर्ग जाना पड़ा। बाणभट्ट ने पहले लोरिकदेव को सम्राट का पत्र दिया और इसके बाद भट्टिनी को राजश्री का निमन्त्रण पत्र पहुँचाया। पत्र पढ़कर भट्टिनी उदास हो गयी और अपना निर्णय देते हुए बोली– ''मुझे अवधूतपाद की शरण में ले चलना। वे न हों तो मैं सुचरिता के घर रहूँगी। अथवा जहाँ कहीं भी तुम्हें उचित जान पड़े। परन्तु मैं मौखरियों या कान्यकुब्जेश्वर के राजवंश का आतिथ्य स्वीकार नहीं कर सकती।''[14] इधर महाराज का पत्र पढ़कर लोरिकदेव को यह मालूम हुआ कि भट्टिनी तुवरमिलिन्द की कन्या है। उन्होंने उसकी सुरक्षा का भार अपने ऊपर ले लिया। किन्तु महाराज के द्वारा दिये गये सम्मान को उन्होंने ठुकरा दिया। महाराज चाहते थे कि लोरिकदेव पूर्व और गंगा के उत्तरस्थ प्रदेशों के सामन्त बनें। किन्तु लोरिकदेव ने सामन्त बनना स्वीकार नहीं किया और न मित्र बनना ही।

उधर भट्टिनी को भी किसी मौखरि का अतिथि बनना स्वीकार ना था, किन्तु बाद में लोरिकदेव के एक सहस्र मल्ल सेना को लेकर स्वतन्त्र रानी के रूप में स्थाण्वीश्वर जाने के लिए तैयार हो गयी। लोरिकदेव ने कहा– ''मैंने अपने दस सहस्र मल्ल भट्टिनी की सेवा के लिए दे दिये हैं। वे उन्हें चाहे जिस प्रकार सेवा में नियुक्त कर सकती है।''[15]

भट्टिनी लोरिकददेव के अनुरोध का स्वीकार करके एक सहस्र सैनिकों के साथ स्वतन्त्र रानी के रूप में स्कन्धावार की ओर चल पड़ती है। स्कन्धावार स्थाण्वीश्वर से लगभग एक कोस की दूरी पर स्थित था। महाराज कृष्णवर्द्धन स्वागत के लिए स्वयं उपस्थित थे। बाणभट्ट, निपुणिका और भट्टिनी के साथ स्थाण्वीश्वर लौट आये जहाँ उनको सम्मानित किया गया। बाणभट्ट ने महाराज हर्षवर्द्धन के स्वागत के उपलक्ष्य में उनके द्वारा ही लिखित नाटिका रत्नावली का मंचन किया। बाणभट्ट ने स्वयं राजा का, प्रसिद्ध नर्तकी चारुस्मिता ने रत्नावली का, निपुणिका ने वासवदत्ता का और धावक ने विदूषक का जीवन्त अभिनय किया। इस अभिनय के साथ ही निपुणिका के जीवन का सचमुच अभिनय समाप्त हो गया और ज्यों ही भरत–वाक्य समाप्त हुआ त्यों ही दूसरी ओर निपुणिका की ऐहिकलीला भी समाप्त हो गयी।[16] ''अन्तिम दृश्य में जब उसने राजा (बाण) का हाथ रत्नावली (चारुस्मिता) के हाथ में दिया तो वह सिर से पैर तक सिहर गयी और पछाड़ खाकर गिर गयी।''[17] बाण कहता है– ''नागरजन जब साधु–साधु की आनन्द–ध्वनि से दिगन्तर कँपा रहे थे, उस समय यवनिका (पर्दे) का अन्तराल में निपुणिका के प्राण निकल रहे थे।''[18] वह आगे कहता है कि, ''अभिनय करके जिसे पाया था, अभिनय करके ही उसे खो दिया।''[19]

निपुणिका के अन्त्येष्टि क्रिया को बाणभट्ट ने स्वयं सम्पन्न किया। निपुणिका से बिछुड़ने के बाद बाणभट्ट को भट्टिनी से भी दूर जाना पड़ा। आचार्य भर्वुपाद ने बाणभट्ट को पुरुषपुर में तब तक रहने की आज्ञा दी, जब तक वहाँ पूरी तरह शान्ति व सुव्यवस्था कायम न हो जाये। बाणभट्ट पुरुषपुर की ओर चल पड़ता है। बाण को जाता देख भट्टिनी कहती है–''जल्दी ही लौटना।''[20] भट्टिनी की बात को सुनकर बाण ने कातर कण्ठ के वाष्प–रुद्र वाक्य को प्रयत्नपूर्वक दबा लिया। लेकिन अन्तरात्मा के अतल से कोई चिल्ला उठा–''फिर क्या मिलना होगा?''[21]

''इसी स्थान पर अपने समस्त प्रभावों के साथ उपन्यास की कथा समाप्त हो जाती है। उपन्यासकार ने अनेक प्रसंगों की सहायता से कथावस्तु का निर्माण इतने कौशलपूर्वक किया है, उसने हमें एक ऐसी प्रशस्त भूमि दे दी है, जिसमें हर्षकालीन भारत के समस्त सामाजिक आचार–विचार, राजनैतिक उलट–फेर, धार्मिक आन्दोलन, जनता में व्याप्त अनेक मता–मतान्तर एवं विश्वास तथा कला और संस्कृति आदि सिमटकर आ गयी है।''[22]

स्पष्ट है कि द्विवेदी जी ने इस उपन्यास में एक ओर जहाँ सातवीं शताब्दी अर्थात् हर्षकालीन भारतीय समाज को आधार बनाया है, वहीं दूसरी ओर अपनी असीम कल्पना–शक्ति का परिचय देते हुए सप्तम शताब्दी के परिप्रेक्ष्य में आधुनिक जन–जीवन को भी अत्यंन्त जीवन्त ढंग से प्रस्तुत किया है। अर्थात् अतीत के में उपन्यासकार का निर्भय

प्रवेश न तो उसे अभिभूत करता है और न स्तब्ध, बल्कि तिमिराच्छन्न कुहासे को बेधकर उसे और अधिक आकर्षक और चमकदार बनाकर वर्तमान की मूल्यवत्ता के साथ जोड़ते हुए उसे प्रासंगिक बना देना ही उपन्यासकार की तीसरी आँख का करिश्मा है।''[23]

बाणभट्ट की आत्मरक्षा ऐतिहासिक उपन्यासों में एक सफल अभिनव प्रयोग है।[24] इसमें एक ऐसे ऐतिहासिक व्यक्ति की जीवन–गाथा का वर्णन है, जिन्होंने संस्कृत की अमर कृति 'कादम्बरी' और 'हर्षचरित' की रचना की है, लेकिन यह शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास नहीं है, इसमें लेखक ने अपनी अद्भुत कल्पना–शक्ति के बल पर कथा–विन्यास को और भी अधिक रोचक बना दिया है। द्विवेदी जी ने उपन्यास के कथामुख भाग में आस्ट्रियन महिला मिस केथराइन (दीदी) की चर्चा इस ढंग से किया है कि उपन्यास की मौलिकता पर भी सन्देह होने लगता है। पाठक इसे लेखक की मौलिक कृति न मानकर 'बाणभट्ट की आत्मकथा' का हिन्दी अनुवाद समझने लगते हैं कि क्योंकि व्योमकेश शास्त्री (द्विवेदी जी ने अत्यन्त विश्वसनीय ढंग से दीदी द्वारा शोणनद के दोनों किनारों की पैदल यात्रा तथा इस दो सौ मील की पैदल यात्रा में कागज के एक बड़े पुलिन्दे के रूप में प्राप्त पाण्डुलिपि की चर्चा की है।) ''भारत छोड़ते समय दीदी की स्वीकृति भी लेखक (व्योमकेश शास्त्री) को प्रकाशनार्थ मिल जाती है और वह उपन्यास के अन्त में दीदी के स्वदेश से भेजे हुए पत्र का भी उल्लेख करना नहीं भूलता जिससे पाठकों के मन में सन्देह के लिए पर्याप्त भूमि मिल जाती है। उपन्यास के जिस प्रसंग से पाठकों के मन में सन्देह की पुष्टि होती है वहीं कुछ बातें ऐसी हैं, जिन्हें ध्यानपूर्वक समझ लेने पर भ्रम का निवारण भी हो जाता है।''[25] इस भ्रम के निवारण के लिए ही उपन्यास के अन्त में दीदी के शब्दों में उपन्यासकार का पाठकों से स्वयं निवेदन है कि– ''आत्मकथा के बारे में तूने एक बड़ी गलती की है। तूने उसे अपने कथामुख में इस प्रकार प्रदर्शित किया है, मानो यह 'आटो–बायोग्राफी' हो। बाणभट्ट केवल भारत में ही नहीं पैदा होते। आस्ट्रियन में जिस नवीन बाणभट्ट का आर्विर्भाव हुआ था, वह कौन था। हाय, दीदी ने क्या हम लोगों के अज्ञात अपने उसी कवि प्रेमी की आँखों से अपने को देखने का प्रयत्न किया था।[26] उपन्यास के इन प्रसंगों से भ्रम का पूर्णतः निवारण हो जाता है और सन्देह के लिए कोई अवकाश ही नहीं रह जाता है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने इस उपन्यास में भारतीय संस्कृति और प्राचीन परम्पराओं का चित्रण अत्यन्त पाण्डित्यपूर्ण ढंग से किया है। ऐतिहासिक उपन्यासकार अपने दायित्वों को भूलकर प्रायः ऐतिहासिक तथ्यों की ही चर्चा में लगे रहते हैं, जिसकी निस्सारता को द्विवेदी जी ने भली–भाँति परखा है और यही कारण है कि उनका यह उपन्यास उपर्युक्त दोषों से मुक्त रह पाया है। उपन्यासकार ने इतिहास का केवल सहारा भर लिया है, पर उसने कल्पित घटनाओं को इस ढंग से प्रस्तुत किया है कि उनका इतिहास से कहीं विरोध नहीं होने पाता है।[27]

उपन्यासकार की कल्पना कोरी कल्पना नहीं है, क्योंकि उन्होंने तत्कालीन ग्रन्थों की सहायता से उसे अत्यन्त तर्कपूर्ण ढंग से प्रमाणित बना दिया है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' उपन्यास मुख्य रूप से 'हर्षचरित' और 'कादम्बरी' पर आधारित है। कुछ विषय रत्नावली नाटिका, कुमारसम्भव, मेघदूत, नागानन्द, विक्रमोर्वशीय, महाभारत, मृच्छकटिक, रघुवंश, नाट्यशास्त्र, अभिलषितार्थ, चिन्तामणि कामसूत्र, मालती माधव, यतः शतक, वृहत–संहिता और मिलिन्द प्रश्न नामक ग्रन्थों से लिये गये हैं। इन ग्रन्थों की सहायता से प्राप्त विषयों का उपयोग प्रायः सामाजिक आचार–विचार, आनन्दोत्सव तथा प्राकृतिक चित्रण आदि वर्णित प्रसंगों को सजीव बनाने के लिए किया गया है। उक्त ग्रन्थों में भारतीय संस्कृति तथा परम्पराओं का जो आदर्श देखने को मिलता है, उसका पूर्ण जीवन्त चित्र हमें 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में मिल जायेगा।[28]

अतः इस प्रकार हम देखते हैं कि, ''डॉ0 द्विवेदी जी ने अपनी मौलिक प्रतिभा, भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के गम्भीर अध्ययन एवं परिष्कृत लेखन–शैली तीनों का सुन्दर समन्वय इस रचना के रूप में प्रस्तुत किया है।''[29]

सन्दर्भ–सूची

1. डॉ. श्रीमती उमा मिश्रा, हजारीप्रसाद द्विवेदी का उपन्यास साहित्य : एक अनुशीलन, पृ. 21
2. डॉ. त्रिभुवन सिंह, ऐतिहासिक उपन्यास की सीमा और बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ. 32
3. प्रो. लक्ष्मणदत्त गौतम, बाणभट्ट की आत्मकथा : विमर्श और व्याख्या, पृ. 26
4. हजारीप्रसाद द्विवेदी, बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ. 11
5. उपर्युक्त, पृ. 12
6. उपर्युक्त, पृ. 12
7. उपर्युक्त, पृ. 14
8. उपर्युक्त, पृ. 14
9. उपर्युक्त, पृ. 15
10. उपर्युक्त, पृ. 24
11. राजकवि, हजारीप्रसाद द्विवेदी के ऐतिहासिक उपन्यास, पृ. 59
12. डॉ. हरदयाल, आधुनिक हिन्दी उपन्यास उपशीर्षक–बाणभट्ट की आत्मकथा : हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ. 114
13. डॉ. त्रिभुवन सिंह, ऐतिहासिक उपन्यास की सीमा और बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ. 34
14. हजारीप्रसाद द्विवेदी, बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ. 178
15. उपर्युक्त, पृ. 19
16. प्रो. लक्ष्मणदास गौतम, बाणभुट्ट की आत्मकथा : विमर्ष और व्याख्या, पृ. 52
17. हजारीप्रसाद द्विवेदी, बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ. 228
18. उपर्युक्त, पृ. 227–228
19. उपर्युक्त, पृ. 228
20. उपर्युक्त, पृ. 232
21. डॉ. त्रिभुवन सिंह, उपन्यासकार आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ. 60
22. डॉ. चौथीराम यादव, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का साहित्य, पृ. 25
23. डॉ. सत्यपाल चुघ, ऐतिहासिक उपन्यास, पृ. 162
24. डॉ. त्रिभुवन सिंह, उपन्यासकार आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ. 51
25. हजारीप्रसाद द्विवेदी, बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ. 234
26. डॉ. त्रिभुवन सिंह, उपन्यासकार आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ. 52
27. उपर्युक्त, पृ. 52
28. राजकवि, हजारीप्रसाद द्विवेदी के ऐतिहासिक उपन्यास, पृ. 57
29. डॉ. चौथीराम यादव, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का साहित्य, पृ. 39

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 227-232

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

दलित समाज का स्वरूप

*विजय लक्ष्मी**

शोध–सार

भारतीय समाज की संरचना वर्ण आधारित होती है। वहाँ वर्णव्यवस्था के बुनियादी ढाँचे पर आधारित संरचना अपने जटिल रूप में विद्यमान है। इसी जाति व्यवस्था पर हिन्दू समाज की आधारभूत प्रणाली टिकी है। जिसकी जड़ें धार्मिक व्यवस्था से गहरे जुड़ी हैं। वर्ण और वर्ग के इसी भेद के चलते अभावग्रस्त विशिष्ट वर्ग का निर्माण हुआ जिसे हम 'दलित' समाज के रूप में जानते हैं।

धर्म से प्रारंभ होने वाले भेदभाव ने प्रत्येक क्षेत्र में, वह चाहे धार्मिक हो या सामाजिक, राजनीतिक हो या आर्थिक, दलित समाज के लोगों की मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति की राह में अड़चने पैदा की हैं। उन्हें मौलिक अधिकारों से वंचित रखा गया है। दलित समाज के उत्थान का पथ संकुचित किया है। बेहद अफसोसजनक बात है कि पुरातन समय से वर्तमान तक हमें दलित समाज की स्थिति में खास बदलाव कम ही दृष्टिगोचर होते हैं।

भूमिका

दलित समाज के उदय का स्वरूप वर्णव्यवस्था में निहित है। भारतीय समाज की वर्णव्यवस्था, धर्मोपिनिषदों पर आधारित है। इसके अनुसार दलित समाज का अभ्युदय, धर्म ग्रंथों के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य नामक तीन वर्णों की सेवा करने हेतु हुआ है। इसी भेदभाव से ग्रसित व्यवस्था ने दलित समाज के लोगों को लंबे काल तक षोशण सहने हेतु विवश कर दिया। दलित समाज के विकास के नाम पर दोहरे मापदण्ड निर्धारित किए गए। यही वजह है कि समाज के निचले दर्जे का माना जाने वाला यह समाज प्राचीन से वर्तमान तक अपने अधिकारों के लिए संघर्षरत है। उसके संघर्ष की यह प्रक्रिया हर क्षेत्र में विद्यमान रही है। दलित समाज के उत्थान व आत्मनिर्भरता बढ़ाने हेतु सरकार द्वारा विभिन्न योजनाएं बनाई जाती रही हैं। परन्तु यथार्थ के धरातल पर अधिकतर खोखली सिद्ध होती है। उनमें दलितों हेतु उच्च शिक्षा व्यवस्था हो या रोजगार के समान अवसर देना, या फिर आरक्षित रिक्तियों को भरना, भूमि पर कृषि करने के अवसर प्रदान करना इत्यादि समस्त धरातलों पर स्वावलंबन व विकास की अवधारणा धराशायी होती प्रतीत हुई है।

भारतीय समाज का ढाँचा वर्णव्यवस्था केंद्रित है। भारतीय धर्मग्रंथों के अनुसार मनुष्य की उत्पत्ति ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नामक चार वर्णों के आधार पर हुई है। प्राचीन ग्रंथ 'ऋग्देव' के अनुसार–

"ब्राह्मणोअस्य मुखमासीद बाहूराजन्यः कृतः।
अरू तदस्य यद वैश्यः पदभ्याम् शूद्रोअजायता।।"[1]

(ऋग्देव : 10–90–1)

अर्थात् ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण, बाहु से राजन्य, जांघ से वैश्य तथा पैरों से शूद्रों का आविर्भाव हुआ।

उपर्युक्त सूक्त को वर्णव्यवस्था को स्थापित करने वाले प्रारंभिक सूत्र के रूप में माना गया है।

इसी के आधार पर वर्णव्यवस्था का प्रारंभ हुआ। जिसके अन्तर्गत ब्राह्मण का कार्य वेदों का अध्ययन करना, क्षत्रिय का कार्य राज्य का संरक्षण, वैश्य का कार्य करना तथा शूद्र का कार्य सेवा करना तय कर दिया गया।

* *शोध छात्रा, पोस्ट डॉक्टोरल फैलोशिप (हिन्दी विभाग), भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली*

विभिन्न धर्मग्रंथ 'ऋग्वेद संहिता', 'महाभारत', 'गीता' और 'मनुस्मृति' समस्त ग्रंथ शूद्र विरोधी मान्यताओं से भरे पड़े हैं। हिन्दू धर्मग्रंथ 'मनुस्मृति' के अनुसार–

"एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्।
एतेषामये वर्णानां शुश्रूषामनसूयया।।"[2]

(मनुस्मृति : प्रथम अध्याय, श्लोक–93)

अर्थात् भगवान ने शूद्र वर्ण के लोगों के लिए एक ही कर्त्तव्य–कर्म निर्धारित किया है। वह है– निर्द्वन्द्व तथा निर्विकार (ईर्ष्या तथा द्वेषभाव से सर्वथा मुक्त होकर) भाव से तीनों ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य वर्णों की सेवा करना।

वैदिक काल में मनुष्य की जाति कर्म के आधार पर तय थी। मध्यपाषाण काल और नवपाषाण काल में मनुष्यों ने अपनी बुद्धि के बल पर अनेक साधनों का आविष्कार किया। स्वयं को श्रेष्ठ दिखाने के एवज में सामाजिक विषमता, भेदवभाव लोगों में बढ़ते गए। उन्होंने समाज का सर्वप्रथम कार्य के अनुसार विभाजन किया।

परिणामस्वरूप विविध प्रकार के शिल्प, व्यवस्था करने वाले लोगों की जाति का निर्धारण कर दिया गया। जाति का यही प्रारूप वर्तमान समय में भी विद्यमान है। उदाहरणस्वरूप दर्जी, बुनकर, कुम्हार, जुलाहे, रंगरेज, काष्ठकार, धातु शिल्पकार, लौहकार, स्वर्णकार, मछुआर, चर्मकार इत्यादि के रूप में भारतीय समाज में देखने को मिलते हैं।

भारत में पुनः नवमी शताब्दी में विदेशियों के रूप में मुगलों, पठानों, तुर्कों का आगमन हुआ। जिनका समाज संगठित था। इनमें वर्ण और जाति का नामोनिशान का था। ये लोग देश के लोगों को हिन्दू कहने लगे। सिन्धु नदी के उत्तर में उनका राज्य था और वे यहाँ दक्षिण से आए थे।

भारत में पुनः नवमी शताब्दी में विदेशियों के रूप में मुगलों, पठानों, तुर्कों का आगमन हुआ। जिनका समाज संगठित था। इनमें वर्ण और जाति का नामोनिशान न था। ये लोग देश के लोगों को हिन्दू कहने लगे। सिन्धु नदी के उत्तर में उनका राज्य था और वे यहाँ दक्षिण से आए थे।

संपूर्ण भारत के विषय में यह कथन सत्य प्रतीत हुआ है कि कोई भी हिन्दू राज पूरे भारत पर राज स्थापित नहीं कर पाया। कारण इसका यह है कि हिन्दू समुदाय राष्ट्र के प्रति सचेत न होकर विभिन्न वर्णों में विभक्त रहा है।

दीर्घकाल से एक सशक्त व टिकाऊ केन्द्रीय राज्य सत्ता के अभाव में हिन्दू धर्म व समाज में समयानुसार सुधार कार्य न हो सके। परिणामतः कट्टरता एवं कर्मकाण्डों में वृद्धि हुई। कुरीतियाँ बढ़ गई। इस अन्धकार के दौर से उभारने हेतु भक्ति आन्दोलन की शुरूआत हुई मध्यकाल से सन्तों की क्रियाशील परंपरा रही है। "ग्यारहवीं सदी के आचार्य रामानुज के काफी शिष्य अछूत जाति से संबंधित थे। जिन्होंने अछूतों के लिए मठों और मंदिरों के द्वार खोले। रामानन्द, कबीर, नानक, चोखामेला, रैदास, धन्ना, नामदेव चैतन्य तुकाराम और रामकृष्ण परमहंस dsuke fo'kšk : i ls mYys[kuh; gSA[3]

जातिगत भेदभाव और छूआछूत के खिलाफ विभिन्न आंदोलन उल्लेखनीय रहे हैं। महाराष्ट्र से लेकर दक्षिण भारत में ब्राह्मण विरोध तीव्र रहा। महाराष्ट्र में आयोजित फुले ने 'सत्यशोधक समाज' (1873) की स्थापना कर जातिभेद को खुली चुनौती दी। पूजा में अछूतों के लिए सर्वप्रथम विद्यालय (1843) की स्थापना की। मद्रास में बी. पंतलू और वेंकटरमन ने जातिवाद के विरोध में आवाज उठाई।

अस्पृश्य व अन्य सामाजिक बुराईयों के विरोध में व्यापक जागृति 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में पाश्चात्य शिक्षा व संस्कृति के प्रभावस्वरूप हुई। उदारवादी लैकिक शिक्षा, औद्योगिक विकास, संचार एवं आवागमन के साधनों का तेजी से विकास हुआ। तत्पश्चात् ऊँच–नीच के सामाजिक भेदभाव के स्थान पर स्वतंत्रता व समानता पर आधारित प्रजातांत्रिक मूल्यों को बल मिला। परिणामस्वरूप दलित समाज में नवजागरण की लहर पैदा हुई।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तराद्ध से भारत में राष्ट्रीय आंदोलन का प्रसार हुआ। जिसने देशव्यापी रूप धारण कर लिया। बीसवीं सदी के आरंभ में श्री नारायण गुरु स्वामी ने दलितों की मुक्ति हेतु 'एक जाति एक धर्म एक ईश्वर

के सिद्धान्त' पर नए धर्म की स्थापना की। उसके उपरान्त रामस्वामी नायकर ने 'सेल्फ रिस्पेक्ट मूवमेंट' चलाया और ब्राह्मण पुरोहित की जगह अपने पुरोहित रखने की बात की। द्रविण 'आंदोलन' तमिलनाडु में अब्राह्मण आंदोलन का चरम रूप था।

पाश्चात्य सामाजों से प्राप्त आर्थिक सहायता के आधार पर मिशनरियों ने पिछड़े क्षेत्रों में शिक्षा, दवा, दारू व अन्य आवश्यक सुविधाओं के माध्यम से दलितों को ईसाई धर्म की ओर आकृष्ट किया। पर धर्म परिवर्तन से दलितों की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आया।

अंग्रेजी शासनकाल में जातिवादी मानसिकता से दलित समाज के लोगों को कुछ राहत अवश्य मिली। शिक्षा व नौकरी के क्षेत्र में दलित समाज के लोग आगे आए। इतिहास का अध्ययन करने के बाद हमें यह जानने को मिलता है कि दलित समाज के लोगों ने 'चमार रेजिमेंट' के अन्तर्गत ब्रिटिश शासनकाल में बड़ी बहादुरी से अपनी सेवाएं दी। "ब्रिटिश भारतीय सेना में द्वितीय विश्वयुद्व (1939–1945) के दौरान जब सैनिकों की कमी महसूस की गई। इसी समय 'चमार रेजिमेंट' के गठन का ख्याल अंग्रेजों को आया। भारत की जनसंख्या में वे महत्वपूर्ण स्थान रखते थे।"[4]

चमार रेजिमेंट की बहादुरी के सम्मुख जापान को अपने लडाकू सैनिकों को पीछे हटाना पड़ा। जापानी फौज 31 डिवीजन के कमांडर मेजर जनरल सारो ने 31 मई को स्वयं लिये गए निर्णय में लिखा कि "हम दो महीने तक अपने पूरे साहस और लगन के साथ यह लड़ाई लड़ते रहे और हमने मनुष्य की संपूर्ण सहनशक्ति और धैर्य की सीमाओं को परख लिया कि आज दुःखद आंसू बहाने की बजाय हम कोहिमा को छोड़ते हैं।"[5]

देश आजाद होने के बाद दलित समाज जातिवादी मानसिकता से ग्रस्त प्रशासकों की दोगली नीतियों का शिकार होने से न बच सका। जो समाज में निचले दर्जे पर मानी जाने वाली जातियों पर अपने षड्यंत्रों तथा कूटनीतियों के माध्यम से वर्चस्व स्थापित रखने के पक्षधर थे। आलोचक सुल्तान सिंह के शब्दों में "चमार रेजिमेंट के दलित सिपाही यह भूल गए थे कि उन्हें सवर्णों ने नहीं अंग्रेजों ने सैनिक बनाया है। उन्होंने एक अच्छा कार्य सुभाषचंद्र बोस द्वारा बनाई गई 'इंडियन नेशनल आर्मी' में मिलकर किया था। परंतु अंग्रेज सरकार को यह कैसे अच्छा लगता। अतः सरकार ने इस रेजिमेंट को डिसबैंड कर दिया। सन् 1947 में भारत चमार रेजिमेंट के सिपाहियों के प्रयासों की वजह से आजाद हो गया। परन्तु भारत के प्रशासकों ने चमार रेजिमेंट को पुनः खड़ा नहीं होने दिया।"[6] इसे उनके साथ किया गया अन्याय ही माना जाएगा।

सन् 1920 से डॉ. अम्बेडकर का भारतीय राजनीति के फलक पर उदय हुआ। उनके रूप में पहली बार कोई ऐसा व्यक्ति सामने आया जिसने सदियों से उत्पीडित वर्ग के हितों की सफलतापूर्वक वकालत की। उन्होंने आजीवन दलित समाज के लोगों को उनके सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा आर्थिक अधिकार दिलाने हेतु संघर्ष किया। उन्होंने कहा कि "जाति व्यवस्था कोई शाश्वत या ईश्वरीय नियम नहीं है। यह स्वार्थी तत्वों द्वारा जो शक्तिशाली व अधिकार संपन्न थे और जो दूसरे पर अपनी दासता थोपने में समर्थ थे, बनाया गया नियम है। यह उच्च कहे जाने वाले कुछ सीमित लोगों के हाथों की तलवार है जो बहुसंख्यक पर उनके राजनैतिक व प्रशासनिक वर्चस्व को बनाये रखती है। जाति सामाजिक संकीर्णता और मानसिक बीमारी का सूचक है। यह सामाजिक संरचना का सबसे बड़ा दोष है।"[7]

डॉ. अम्बेडकर ने 20 मार्च, 1927 को 'चोदार तालाब' से पानी लेने हेतु 'महार सत्याग्रह' आंदोलन का नेतृत्व किया जाति के विरोध में 'मनुस्मृति' दहन की। मंदिरों में अछूतों को प्रवेश दिलाने हेतु अम्बा देवी मंदिर प्रवेश, अमरावती (1927), ठाकुर मंदिर प्रवेश (1927), गणपति प्रांगण प्रवेश (1930)–आंदोलनों का सफलतापूर्वक नेतृत्व किया।

डॉ. अम्बेडकर ने दलितों को सामाजिक, आर्थिक, एवं राजनीतिक अधिकारों की दिलाने हेतु 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' (1924) 'समता सैनिक दल' (1927) डिप्रेस्ड क्लास एजुकेशन सोसायटी (1928), 'इडिपेंडेंट लेबर पार्टी' (1936), जैसे संगठनों को आवाज प्रदान की।

डॉ. अम्बेडकर ने सन् 1937 में 'खोती प्रणाली' और 'महार वतन प्रणाली' के विरूद्ध जनसंघर्ष किया। जिन्होंने गरीब दलितों की नाक में दम किया हुआ था। उन्होंने 1938 में ट्रेड डिस्प्यूट्स बिल का विरोध किया। इसके उपरान्त 'शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन' (1942) और पीपुल्स एजुकेशन सोसाइटी (1945) का गठन भी किया।

डॉ. अम्बेडकर ने दलितों के कारण सामंती प्रवृत्ति के हिंदुओं से बढ़ती हुई दूरी को दरकिनार करते हुए 'पृथक निर्वाचन प्रणाली' की मांग की। उन्हें दलितों के लिए 'आरक्षण' व 'विशेष सुविधाओं की व्यवस्था' को स्वीकार करते हुए 'गाँधी से समझौता' (1932) करना पड़ा। आगे चलकर 1951 में उन्होंने कानून मंत्री के रूप में शपथ ली। संविधान सभी की प्रारूप समिति के अध्यक्ष बने। उन्होंने 'हिन्दू कोड बिल' के कारण नेहरू से मतभेद के चलते मंत्री पद से स्तीफा दे दिया और सन् 1956 में 'बौद्ध धर्म' स्वीकार कर लिया। उनका विश्वास था कि "यही एक मात्रा ऐसा धर्म है जो व्यक्ति को चिंतन और व्यवहार की पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान करता है। जो मानव को सामाजिक, आध्यात्मिक एवं मानसिक दासता से मुक्ति प्रदान करता है।"[8]

दलितों द्वारा बौद्ध धर्म अपनाकर उसी में समस्त समस्याओं का समाधान देखने की अविरल परंपरा वर्तमान तक जारी है। अब दलित समाज यह समझ चुका है कि धर्म ही शोषण का मूल रहा है।

धर्म की आड़ में दलित समाज के लोगों का दोहरा शोषण किया जाता है। हिंदी दलित औपन्यासिक कृतियों के माध्यम से ज्ञात होता है कि प्राचीन से धर्म के नाम पर अनेक ढकोसलों द्वारा दलित समाज को अपमानित किया जाता रहा है। उनसे पैसा व सम्मान भाव दोनों छीन लिये जाते हैं। 'जस तस भई सबेर' उपन्यास का दलित किसान हंसा धार्मिक कर्मकाण्ड हेतु गाँव के चौधरी देवीपाल से कर्जा लेता है और देवीपाल पुजारी हरसन्ना की मदद से हँसा की पत्नी को ईश्वर कोप से डराकर वासना का शिकार बनाता है। उसके द्वारा विरोध करने पर वह कहता है—"पगली तू क्यों गालियाँ बक रही है? क्या हो गया है तुझे? अरी देव प्रसाद खाने के उपरान्त तुझ पर सचमुच देवता सवार हो गये थे। तू स्वयं सोना चाहती थी।"[9]

यही नहीं दलित समाज के लोगों से 'बेगार' करायी जाती है। उन्हें उनका पारिश्रमिक भी नहीं दिया जाता। उन्हें बँधुआ मजदूर बनने पर विवश किया जाता है। 'थमेगा नहीं विद्रोह' उपन्यास में नन्दू गूजर को खेत में बिना पैसों के काम करने से मना कर देने पर दरियाव के बड़े भाई को गालियाँ सुननी व पिटाई सहने को मिलती है—"तैने गूजर पै हाथ उठायौ है। जिंदौ न जाँडूगौ तो। अब देखूँगौ कूण तोहै बचावैगौ।"[10] उसके बदले में तुरंत उसकी माँ को खेतों में मुफ्त में काम करने के लिए जाना पड़ता है।

हिन्दी दलित उपन्यासों में यह जानने व समझने को मिलता है कि दलित समाज की स्त्रियों का जीवन अत्याचारों से भरा है। फिर वह मानसिक हो या शारीरिक। उनका कोई मान नहीं है। वे दोहरी गुलामी की शिकार बनने को विवश, दिखाई पड़ती है। फिर वह 'छप्पर' उपन्यास की कमला हो, 'जस तस भई सबेर' उपन्यास की रामरती, सन्नो, धुसिया व सुनहरी हो या 'मिट्टी की सौगंध' उपन्यास की शीला हो—समस्त दलित स्त्रियों ने जाति उत्पीड़न को जीवनपर्यन्त सहा ही नहीं बल्कि उन्हें इस वीभत्सतापूर्ण सामाजिक असमानता हेतु अपने प्राण भी देने पड़े। उनके बच्चों को भी नहीं बख्शा गया। विभिन्न दलित औपन्यासिक कृतियों के माध्यम से यह बात उजागर होकर सामने आती है कि दलित समाज को शिक्षा, समानता रोजगार के अवसरों, से वंचित रखकर उन्हें हाशिए पर पहुँचा दिया जाता है। विरोध करने पर उनकी हत्या कर दी जाती है। वर्तमान परिदृश्य में घटित विभिन्न प्रकार की क्रूर एवं निंदनीय घटनाएं इसका जीवन्त साक्ष्य हैं।

भारतीय समाज का वर्णव्यवस्था आधरित ढांचा इस तरह का है कि दलित व्यक्ति की बस्ती को गाँव से बाहर, अलग बसाया जाता है। उस बस्ती में जाति आधारित अलग–अलग मोहल्ले होते हैं। जिनमें "कायस्थों के मोहल्ले को 'कैथवाड़' एवं जाटवों के मोहल्ले को 'जटवाड़ा' तथा मेहतरों के मोहल्ले को 'मेहतर मोहल्ला' कहा जाता था।"[11]

दलित समाज के व्यक्ति की मृत्यु होने पर उसके लिए अलग शमशान निर्धारित है। मृतक सौनपाल को संबोधित करते हुए ताऊ मथुरा कहते हैं—

"मर कै बी हम तौ आदमी कहाँ रहे, जाटव रहे, जाटव या कोणे में और बाल्मीकि ओकुवा सू बड़ी दूर के कौणौं में। खाती और नाईन को कोई कौणौं ही ना है, सो कहीं बी अपण मरेन नै फूंक देवैं हैं। ले स्त्रियाँ किन जाटव और वाल्मीकिन सू फेर बी दूरा मर कै बी आदमी कहाँ बण सकैं हैं हम।"[12]

'हिडिम्ब' उपन्यास के माध्यम से पता चलता है कि स्कूलों के अध्यापक चंद रुपयों के लिए किस प्रकार विद्यालय में पढ़ने वाले गरीब बच्चों का शोषण करते हैं। बात सामने आने के डर से उनकी हत्या तक करने से

नहीं चूकते। 'हिडिम्ब' उपन्यास में कक्षा 2 का अध्यापक गाँव के ठेकेदार के साथ मिलकर कक्षा 2 में पढ़ने वाले कांसी को पीट–पीटकर मार डालता है। कहीं वह उसके द्वारा अफीम के खेतों में बच्चों से बनवाई जाने वाली भांग की गोलियों का सच उजागर कर दे।

हिन्दी दलित उपन्यासों में चित्रित हुआ है कि 'छूआछूत' के कारण छोटे बच्चों को भी नहीं बख्शा जाना। कक्षा 2 की छात्रा रमिया द्वारा पानी की बल्टी छू देने पर स्कूल का मास्टर आग बबूला होकर कहता है– "अरे। तू कौन है? बाल्टी छू दी। बगुली वाले डंडे को गर्दन में फँसाकर टीकाधारी मास्टर ने उसे अपने ओर खींचा और तड़ातड़ दो झापड़ जड़ दिए।"[13]

इस समस्या से ग्रसित होने में उच्च शिक्षण संस्थान भी पीछे नहीं हैं। रमिया की सहेली शमी को सीनियर लड़की डाँटते हुए बोलती है–

"तुम अपने साथ एक एस.सी. लड़की को सुलाती हो।

क्यों क्या हुआ।

बताऊँगी तुम्हें बाद में बहुत शिक्षा देने वाली हो।"[14]

बात यहीं तक सीमित नहीं। जातिवादी मानसिकता से शिक्षित, अशिक्षित सभी लोग ग्रसित हैं। इसमें प्रशासन भी पीछे नहीं है। वर्तमान में प्रशासन ने उत्तर प्रदेश के सहारनपुर जिले में दलितों के संहार हेतु सक्रिय दबंगों की रोकथाम करने के बजाय इस सिलसिले में "लाठी डंडों से लैस पुलिस प्रशासन ने सभी जगह 'भीम आर्मी' के युवाओं पर लाठी चार्ज किया। अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम 1989 के तहत हमलावर सभी ठाकुरों पर पुलिस ने एफ.आई.आर. तक दर्ज नहीं की। दलितों पर 'भीम आर्मी' से जुड़े होने की वजह से धारा 302 लगाई गई।"[15]

वर्तमान संदर्भों में 'मॉब लिचिंग' की बढ़ती घटनाओं के कारण झूठे आरोपों में दलित व गरीब स्त्री और पुरुषों को फँसाकर उनके साथ मारपीट और अंततः हत्या कर दी जाती है। ताकि दलित समाज के लोग दहशत के साये में जियें। यह कहना अतिश्योक्ति न होगा कि दलितों के मामले में समाज आज भी वहीं है जैसा पहले कभी हुआ करता था। दलित समाज की स्थिति में सुधार लाने हेतु दलित राजनेता भी लाचार नजर आते हैं। राजनेता रामदास अठावल के अनुसार–"इन्हें नौकरी दे दो, पैसा दे दो, गाड़ी दे दो लेकिन सत्ता मत दो।"[16]

निष्कर्ष–दलित समाज की सदियों पुरानी प्रताड़ना वर्तमान परिदृश्य में भी जीवित है। वर्णव्यवस्था आधारित जातिगत संरचना की भारतीय समाज में गहरी पैठ है। भारतीय समाज को जातिगत मानसिकता से बाहर निकलकर समानता व भाईचारे को जमीनी स्तर पर अपनाने की आवश्यकता है। इसी के अभाव में दलित समाज आज तक अत्याचारों का शिकार है। लगातार अपराधिक आँकड़ों में हो रही वृद्धि इस बात को पुष्टी करती है। समस्त दलित साहित्य इस समस्या पर गहराई एवं सजीवता से रोशनी डालता है। औपन्यासिक धरातल पर दलित समाज के सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा आर्थिक क्षेत्रों से संबंधित विभिन्न विडम्बनाओं का सजीवांकन हुआ है। सुधारात्मक और पर कहा जाए तो सरकार को और समाज को दलितों के प्रति अधिक गंभीर होने की जरूरत है। साथ ही अपनी दोगुली मानसिकता एवं व्यवहार में भी परिवर्तन लाना लाजिमी है। तभी संविधान निर्मित स्वतंत्रता, समानता तथा बंधुत्व की अवधारणा को सही मायने में हासिल कर सकेंगे।

सन्दर्भ–सूची

1. जियालाल कम्बेज, ऋग्वेद संहिता : भाग–1, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण–2004, सूक्त–91.
2. हरगोविन्द शास्त्री, मनुस्मृति : चौखम्भा संस्कृत सीरिज वाराणसी, संस्करण–1965, प्रथम अध्याय, श्लोक–93.
3. भारतीय दलित समस्याएं एवं समाधान–डॉ. रामगोपाल सिंह, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ, अकादमी, भोपाल संस्करण–2011, पृ. 68.
4. सुल्तान सिंह, चमार रेजिमेंट और अनुसूचित जातियों की सेना में भागीदारी, गौतम बुक सेंटर, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2012, पृ. 48.

5. वही, पृ. 61.
6. वही, पृ. 47.
7. डॉ. रामगोपाल सिंह, भारतीय दलित समस्याएं एवं समाधान, पृ. 33.
8. वही, पृ. 77.
9. सत्य प्रकाश, जस तस भई सबेर–कामना प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण–1998, पृ. 113.
10. उमराव सिंह जाटव, थमेगा नहीं विद्रोह–वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण–2008, पृ. 300.
11. वही, पृ. 10.
12. वही, पृ. 12.
13. कावेरी, मिस रमिया, आकाश पब्लिकेशंस, दिल्ली, संस्करण–2007, पृ. 7.
14. वही, पृ. 90.
15. सहारनपुर में दलितों पर कातिलाना हमले–सुमेधा बौद्ध, हाशिए की आवाज, जुलाई 2017, पृ. 21.
16. भारत के राजनेता–द मार्जिनलाइज्ड पब्लिकेशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण–2017, पृ. 26.

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 233-244

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

बाणभट्ट की आत्मकथा में स्त्री-चरित्र शिल्प

*डॉ. पल्लवी**

बाणभट्ट की आत्मकथा में स्त्री चरित्र–शिल्प पर विचार करने से पूर्व स्त्री के सम्बन्ध में द्विवेदी जी के मन्तव्य को समझना अत्यन्त आवश्यक है। ''नारी के प्रति द्विवेदी जी की दृष्टि दार्शनिक दृष्टि है। वे नारी को शक्तिरूपा मानते हैं। उनके अनुसार पुरुष ने नारी को ठीक–ठीक समझने की कोशिश नहीं की अन्यथा दुःख और यातना का यह भवसागर सूख गया होता। पुरुष नारी को नगण्य समझकर उसकी उपेक्षा करता है, पर वह नहीं समझता कि नारी के सहयोग के बिना उसका पुरुषार्थ बंजर है। द्विवेदी जी गृहस्थ जीवन के समर्थक हैं और नारीहीन तपस्या को संसार की सबसे बड़ी भूल मानते हैं।''[1] नारी महिमा का गुणगान और उसका आत्मोत्थान द्विवेदी जी के उपन्यासों की रचना का मुख्य उद्देश्य है।

भारतीय संस्कृति के पुरोधा आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने स्त्री को गौरवमय पद प्रदान किया है। उनकी नारियाँ सदैव आदर्श मानवी से देवी के महान् पद की ओर अग्रसर होती है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' की भट्टिनी स्त्री जाति की आदर्श है, जिसके सम्पर्क में आकर बाणभट्ट मनुष्यता से देवत्व की ओर अग्रगमन करता है। 'निपुणिका' एक ऐसी स्त्री पात्र है, जिसके माध्यम से द्विवेदी जी ने नारी के आत्मबलिदान का एक अद्भुत रूप प्रस्तुत किया है। यह प्रेम के सात्त्विक रूप की चरम उत्कर्ष है।

द्विवेदी जी की दृष्टि में नारी–उद्धार करना ही साहित्यकारों का मुख्य कर्त्तव्य है। वे नारी को भौतिक रूप से आत्मनिर्भरता दिलाने की वकालत नहीं करते। वे तो उसे तप, योग, सेवा, संयम के उच्च भारतीय आदर्शों से समन्वित देखना चाहते हैं। वे नारी को पद्मिनी, सीता, अनसूया और गार्गी बनाना चाहते हैं।

द्विवेदी जी के स्त्री चरित्र–शिल्प के सम्बन्ध में डॉ. नामवर सिंह लिखते हैं– ''उनके उपन्यासों में प्रायः एक पतिता नारी के प्रति सहानुभूति जमाकर उसके उद्धार का चित्रण मिलता है।''[2] 'बाणभट्ट की आत्मकथा' की अपहृता राजपुत्री भट्टिनी और घर से भागी हुई अबला नारी निपुणिका। इन दोनों के माध्यम से द्विवेदी जी ने नारी–हृदय की समग्र पीड़ा को चित्रित किया है। इन नारियों की पीड़ा केवल उनकी पीड़ा नहीं है, बल्कि समस्त नारी–जाति की पीड़ा है। डॉ. शैल रस्तोगी के शब्दों में– ''निपुणिका और भट्टिनी के हृदय की पीड़ा का जो चित्र द्विवेदी जी ने प्रस्तुत किया है, वह बड़ा सजीव है। नारी–हृदय की सम्पूर्ण वेदना उसके चरित्र में साकार हो उठी है। उनकी नारी की पीड़ा चिरन्तन पीड़ा है, जो पुरातन होते हुए भी नूतन है।''[3]

''मुक्त करो नारी को मानव! चिर बन्दिनि नारी को।
युग युग की बर्बर कारा से, जननि सखी प्यारी को।।''[4]

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने इस उपन्यास में एक ओर जहाँ नारी को चारित्रिक उत्कर्ष प्रदान किया है, वहीं दूसरी ओर नारी के प्रति पुरुष को स्वस्थ दृष्टि प्रदान करते हैं, जिससे वह नारी को केवल शृंगार का आलम्बन न मानकर उससे आगे बढ़कर श्रद्धा–विश्वासमयी मानने लगे। ''इस प्रकार इन उपन्यासों में नारी–कल्याण के साथ मानव–मात्र के आत्यन्तिक कल्याण की पावन भावना की अभिव्यक्ति हुई है।''[5]

की उपज हैं, जिनके द्वारा वह हर्षकालीन भारत का एक सजीव सामाजिक रोमांस उपस्थित करने में सफल हो सका है। कार्य–विस्तार एवं महानता की दृष्टि से बाणभट्ट के पश्चात् उपन्यास का सबसे महत्त्वपूर्ण चरित्र

* *लूकरगंज, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश*

निपुणिका है, पर प्रभाव की दृष्टि से भट्टिनी का स्थान अत्यन्त महत्त्व का है जिसके कारण ही 'बाणभट्ट की आत्मकथा' का बाणभट्ट, बाणभट्ट हो सका है।''[6]

भट्टिनी आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की अद्भुत कल्पना की प्रसून है। ''उपन्यासकार ने भट्टिनी को विषम समर विजयी तुवरमिलिन्द की एकमात्र नयनतारा राजनन्दिनी के रूप में उपस्थित किया है, जिससे आत्मगौरव, निष्चय की दृढ़ता तथा उदात्त भावों के प्रति निष्ठा का समावेश उसके चरित्र में जातीय संस्कार के रूप में ही आ गये हैं। भट्टिनी के रूप में उपन्यासकार ने नारी आदर्शों को मूर्तिमान कर दिया है। वह कमल से भी कोमल, चाँदनी से भी पावन, नवनीत से भी तरल, सागर से भी गम्भीर और हिमालय से भी दृढ़ चरित्रवाली नारी है।''[7]

भट्टिनी का सम्पूर्ण जीवन करूणा की गाथा है। बचपन में ही माता का साथ छूट गया। ''त्रेता की सीता भी पिता की गोद में पली और यह सातवीं शताब्दी की सीता चन्द्रदीधिति भी।''[8] वह अशोक वन की एक ऐसी अभागी सीता है, जिसे न तो पुष्पवाटिका में राम मिले और न वह दुल्हन बनकर अवध ही आयी। उसे न जाने किस अपराध की इतनी बड़ी सजा मिली कि उसका सम्पूर्ण जीवन दुःखों के अगाध सागर में डूब गया। अपने सम्बन्ध में वह निपुणिका को बताती है– ''जिस दिन नगरहार के मार्ग में प्रत्यन्त दस्युओं ने मुझ पर आक्रमण किया था उस दिन चुने हुए दो सौ विश्वस्त सेवक मेरी पालकी के साथ थे। पितामह के समान पूज्य और प्रबल पराक्रान्त आदित्यसेन का विश्वासभाजक सेवक धीर नापित मेरे साथ था। डाकुओं ने अचानक आक्रमण किया था। धीर अन्त तक मेरे ऊपर छत्र की भाँति छाया रहा। तक उनके शरीर में एक बूँद भी रक्त बचा था, तब तक किसी दस्यु को उन्होंने मेरी पालकी के पास नहीं आने दिया। गरहार से पुरुषपुर, पुरुषपुर से जालन्धर और फिर न जाने कहाँ–कहाँ मुझे दस्युओं के साथ घूमना पड़ा और अन्त में स्थाण्वीश्वर के छोटे राजकुल में आश्रय मिला। माता से मैंने बौद्ध दुःखवाद का भाव पाया है और पिता से भागवत अनुकम्पा का। मेरे ऊपर महावराह की करुणा है। यही एक मात्र सुख है और इसी करुणा ने मुझे तुमसे और भट्ट से मिलाया है। मैं सब–कुछ भूल जाने की साधना कर रही हूँ। पिता से क्या मिलना होगा? महावराह ही जानें हम क्यों चिन्ता करें?''[9]

चन्द्रदीधिति (भट्टिनी) का प्रथम दर्शन तृतीय उच्छ्वास में एक बन्दिनी के रूप में होता है, जो स्थाण्वीश्वर के छोटे राजकुल में कैद है और रो–रोकर अपना जीवन व्यतीत कर रही है। ''निपुणिका उस राजबाला को 'भट्टिनी' कहती है। अन्तःपुर की परिचारिकाएँ रानी को इसी प्रकार सम्बोधित करती हैं।''[10] बन्दीगृह में ही निपुणिका भट्टिनी को भट्ट से मिलवाती है। भट्ट भट्टिनी के अद्भुत सौन्दर्य को देखकर मुग्ध हो जाता है और उसके रूप का वर्णन करते हुए कहता है–''उसको देखकर अत्यन्त पतित व्यक्ति के हृदय में भी भक्ति उत्पन्न हुए बिना नहीं रह सकती। उसके सारे शरीर से स्वच्छ कान्ति प्रवाहित हो रही थी। अत्यन्त धवल प्रभापुंज से उसका शरीर एक प्रकार ढका हुआ–सा ही जान पड़ता था, मानो वह स्फटिक गृह में आबद्ध हो, या दुग्ध–सलिल में निगम्न हो, या विमल चीनांशुक से समावृत हो, या दर्पण में प्रतिबिम्बित हो, या शरद्कालीन मेघपुंज में अन्तरित चन्द्रकला हो।''[11]

भट्टिनी के सौन्दर्य में अद्भुत आकर्षण है। ''उनका सौन्दर्य जयशंकर प्रसाद की श्रद्धा के समान हृदय की अनुकृति बाह्य उदार है। उसका दर्शन भक्तिभाव को जगाने वाला और वासना को धोने वाला है।''[12] ''मानो विधाता ने शंख से खोदकर, मुक्ता से खींचकर, मृणाल से सँवारकर चन्द्रकिरणों के कूर्चक से प्रक्षालित कर, सुधाचूर्ण से धोकर, रजत–रज से पोंछकर कुटज, कुन्द और सिन्धुवार पुष्पों की धवज कान्ति से सजाकर ही उसका निर्माण किया था।''[13] उसके व्यक्तित्व में एक अजीब–सा सम्मोहन है, जिसके प्रथम दर्शन से ही भट्ट आत्मविस्मृत हो जाता है।

बाणभट्ट से मिलकर भट्टिनी निश्चित हो जाती है क्योंकि उसे भट्ट पर पूरा विश्वास था। उधर भट्ट भाट्टिनी के दुःख को देखकर द्रवित हो उठता है और अपने प्राणों की परवाह किये बिना भट्टिनी को उस बन्दीगृह से मुक्त करता है।

''संयम, मर्यादा, आदर्श एवं सारल्य का अद्भुत संयोग हमें भट्टिनी के चरित्र में दिखायी पड़ता है। बाणभट्ट के प्रति भट्टिनी में सहज स्वाभाविक आकर्षण है।''[14] महामाया से बातचीत करने के दौरान वह कहती है–''मैंने प्रथम बार अनुभव किया कि मेरे भीतर एक देवता है, जो आराधक के अभाव में मुरझाया हुआ छिपा बैठा है। मैंने

प्रथम बार अनुभव किया कि भगवान् ने नारी बनाकर मुझे धन्य किया है, मैं अपनी सार्थकता पहचान गयी। माँ भट्ट इस पृथ्वी के पारिजात हैं, इस भवसागर के पुण्डरीक हैं, इस कण्टकमय भुवन के मनोहर कुसुम हैं।''[15]

एक स्थल पर वह बाणभट्ट से कहती है–''तुम इस आर्यावर्त्त के द्वितीय कालिदास हो। इतना कह लेने के बाद भट्टिनी ने अचानक अपने को रोक लिया, मानो, जितना कहना चाहिए, उससे अधिक कह गयी हो, मानो जहाँ रुक जाना उचित था, उससे बहुत दूर आगे बढ़ गयी हो। फिर उनका मुख कुछ लाल भी हो गया। बड़े–बड़े खंजन शावक से चपल नयन झुक गये और अधरोष्ठों का मन्द स्मित जल्दी–जल्दी भीतर भाग जाने की चेष्टा करने लगा। लेकिन भट्टिनी का आनन्द छिपाया नहीं जा सका। रह–रहकर कपोल–पालि विकसित हो उठती थी और नयन–कोरक विस्फारित हो उठते थे। भट्टिनी का मुख आनन्द व्रीड़ा और मन्द स्मित से मनोहर हो उठा।''[16]

वज्रतीर्थ में जब भट्ट सम्मोहन अभिचार से अचेत हो जाता है, तब भट्टिनी व्याकुल हो उठती है। वह अपने–आपको विघ्नरूपा समझकर ग्लानि महसूस करती है। बाण के प्रति उसकी चिन्ता उसके चेहरे पर स्पष्ट दिखायी देती है। भट्टिनी के हृदय में बाण के प्रति स्नेह है, किन्तु सीमातीत है। ''संयम के कारण ऐसे पुरुष के सम्पर्क में अकेले रहने पर भी भट्टिनी कहीं भी अपनी मर्यादा का उल्लंघन करती नहीं जान पड़ती। अत्यन्त सरल एवं संकोची स्वभाव की नारी होते हुए भी जब कभी भट्टिनी मुखर हो जाती है, तो भट्ट को उपदेश देते समय उसके आदेश स्वरूप के भी दर्शन हो जाते हैं।''[17]

भट्टिनी नारियों के लिए आदर्शस्वरूप है। भट्ट भट्टिनी को देवी मानता है किन्तु भट्टिनी अपने–आपको साधारण नारी मानती है। उसका शरीर हाड़–मांस का बना है, उसका हृदय भी मानवीय भावनाओं से भरा हुआ है। भट्टिनी बाणभट्ट को डाँटते हुए कहती है– 'यह क्या बालकों की भाँति उत्तरल भाव है, भट्ट! मैं देवी नहीं हूँ। हाड़ मांस की नारी हूँ। मैं विघ्नस्वरूपा हूँ परन्तु मैं जानती हूँ कि मेरा विघ्न–रूप होना ही विश्व का परित्राण है। तुम्हीं ने मुझे यह ज्ञान दिया है भट्ट और तुम्हीं उसे भुलवाने को प्रारोचित कर रहे हो? मैं हूँ चन्द्रदीधिति सौ–सौ बालिकाओं के समान एक सामान्य बालिका। मैं हूँ तुम्हारी भट्टिनी।''[18] भट्टिनी के इन शब्दों से उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व अपने यथार्थ रूप में प्रकट हो जाता है। भट्ट के प्रति उनका प्रेम, उसकी व्याकुलता, उसकी तड़प सभी मनोभाव इन शब्दों के माध्यम से व्यक्त हो जाते हैं। निपुणिका भट्टिनी के अन्तर्मन के इन भावनाओं को अच्छी तरह समझती है। भट्टिनी, निपुणिका और भट्ट तीनों के हृदय में एक–दूसरे के प्रति प्रेम की धारा प्रवाहित होती रहती है। पर तीनों का प्रेम कभी भी मुखरित नहीं हो पाता है।

'भट्टिनी का जीवन आत्मोन्मुखी है। वह प्रेरणामयी है, स्वाभिमानिनी है। उनके व्यक्तित्व में निर्भीकता, दृढ़ता, कृतज्ञता, सहिष्णुता, संयम और साहस के साथ–साथ नारी सुलभ कोमलता और पावन–प्रेम आदि देव–दुर्लभ गुण हैं। वह सागर–सी गम्भीर और हिमगिरि–सी अजेय है! उनका स्वाभिमान क्षमा करना भी जानता है। स्थाण्वीश्वर के लम्पट शरण्य राजा से उन्हें घृणा है। वह कुमार कृष्णवर्द्धन पर अविश्वास करती है। उन्हें कुमार कृष्णवर्द्धन को सहायता स्वीकार नहीं है।''[19] वह बाण से कहतीं है– ''मैं स्थाण्वीश्वर के राजवंष से घृणा करती हूँ। राजवंश से सम्बद्ध किसी व्यक्ति का आश्रय पाने से पहले मैं यमराज का आश्रय ग्रहण करुँगी।''[20] किन्तु बाद में परिस्थिति परिवर्तन हो जाने के बाद वह बाण से कहती है– ''यदि स्थाण्वीश्वर चलना ही है तो चलो।''[21] बाण के आग्रह पर वह कुमार कृष्णवर्द्धन के निमन्त्रण को स्वीकार करके भद्रेश्वर से स्थाण्वीश्वर लौट जाती है।

अन्त में, निपुणिका की मृत्यु ने भट्टिनी के पूरे अस्तित्व को झकझोरकर रख दिया। वह अपने–आप को अत्यन्त विवष महसूस करती है। जब भट्ट पुरुषपुर जाने लगता है, तब वह कहती है– ''जल्दी लौटना''[22] किन्तु ''फिर क्या मिलना होगा''[23] यह प्रश्न बनकर ही रह जाता है। भट्ट को पाकर भी वह उसे नहीं पा पाती है। उसका प्रेम असफल रह जाता है।

बाणभट्ट के जाने के बाद विरह की पीड़ा और स्मृतियों का भण्डार ही उसकी संचित सम्पत्ति है, जिसके सहारे उसे अपना जीवन व्यतीत करना है। ''विधाता ने मानों उसे दुःख के सागर में डूबने और माँझी को भी ले डूबने के लिए रचा है। वह जिसका साथ पाती है, वही मध्यमार्ग में छोड़कर चल देता है। माता, पिता, निपुणिका और बाण सभी तो उससे बिछुड़े हैं। यहाँ तक कि लेखक ने भी उसका अधूरा अंकन किया और उसे अधर में लटकाकर छोड़ दिया है। वह नियति के थपेड़े झेलने को विवश है।''[24]

''भट्टिनी प्रेम की निर्धूम ज्योति, सौन्दर्य की आगार, कलाकार की प्रेरणा एवं मानवता की जीवन्त प्रतिमा है, वह सागर के गहरे तल में छुपा हुआ ऐसा मोती है, जिसकी थाह वही पा सकता है जो गहरे पानी में पैठ सके।''[25] ''नारी सुलभ ईर्ष्या, द्वेष तथा इच्छा और उत्कण्ठा के लिए भट्टिनी के चरित्र में कोई स्थान नहीं, क्योंकि उसने इन दुर्बलताओं को संयम की शिला से दबा रखा है।''[26]

निष्कर्षतः कहा जाता है कि, ''भारतीय संस्कृति परम्परा की भूमिका में भट्टिनी जीवन्त नारी आदर्श की एक मोहक कल्पना है।''[27]

भट्टिनी की तरह निपुणिका भी आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की अनोखी सृष्टि है। ''निपुणिका के रूप में उपन्यासकार ने भारतीय नारी के आत्म–बलिदान की अपूर्व कथा कही है। लेखक भौतिक शरीर से ऊपर उठकर आदर्शों एवं गुणों के आधार पर नारी तत्त्व की कल्पना करता है, जिसे उसने निपुणिका के रूप में मूर्तिमान् करने का प्रयत्न किया है।''[28]

''निपुणिका आजकल की उन जातियों में से एक सन्तान है, जो किसी 'समय अस्पृश्य समझी जाती थी परन्तु जिनके पूर्व–पुरुषों को सौभाग्यवश गुप्त सम्राटों की नौकरी मिल गयी थी। नौकरी मिलने से उनकी सामाजिक मर्यादा कुछ ऊपर उठ गयी। वे आजकल अपने को पवित्र वैश्य–वंश में गिनने लगे हैं और ब्राह्मण–क्षत्रियों में प्रचलित प्रथाओं का अनुकरण करने लगी है।''[29] निपुणिका का विवाह अल्पायु में ही एक कादम्बिक वैश्व के साथ हुआ था, किन्तु एक वर्ष के बाद ही वह विधवा हो गयी। विधवा होने के बाद से अनेक दुःख झेलने पड़े और उन्हीं दुःखों से तंग आकर उसने अपना पतिगृह त्याग दिया। 15–16 वर्ष की अवस्था में घर से भाग जाना, अपने सतीत्व की रक्षा करना और इतना ही नहीं, इस वैलासिक समाज में अपनी रोजी–रोटी की व्यवस्था करना बड़े साहस का कार्य है। इस सुकुमार अवस्था में न जाने किस मर्मान्तक दुःख ने इस बालिका को ऐसा साहसिक कार्य करने को उद्बुद्ध किया।

निपुणिका पति के घर से भागकर उज्जयिनी पहुँचती है। वहाँ उसकी मुलाकात बाण से होती है। उन दिनों बाण एक नाटक–मण्डली का सूत्रधार था। उसने निपुणिका को भी अपनी नाटक–मण्डली में सम्मिलित कर लिया। ''निपुणिका बहुत सुन्दर नहीं थी, परन्तु उसकी सबसे बड़ी चारुता–सम्पत्ति उसकी आँखें और अँगुलियाँ ही थीं।'[30] अभिनय की कला से बिलकुल अनजान निपुणिका अपनी कुशाग्र बुद्धि से शीघ्र ही सफल अभिनेत्री बन जाती है।

''निपुणिका को 'बाणभट्ट' ऐसे अनोखे पुरुष का साहचर्य मिलता है, जो स्त्री–शरीर को देव–मन्दिर के समान पवित्र समझता है। यह अनुभव निपुणिका के लिए नितान्त नवीन था, जिससे वह प्राण–प्रण से भट्ट के प्रति अनुरक्त हो जाती है।''[31] एक दिन बाणभट्ट उज्जयिनी के परमभट्टारक की उपस्थिति में नाटक का आयोजन करता है। उसमें निपुणिका के अभिनय कौशल को देखकर वह विमुग्ध हो उठता है। निपुणिका का नृत्य देखकर बाण को मालविकाग्निमित्र की मालविका की याद आ जाती है। वह हँसते हुए कालिदास का एक श्लोक पढ़ता है। ''निपुणिका संस्कृत नहीं जानती थी, उसने क्या जाने क्या समझा। उसके अधरों पर जरा–सी स्मित–रेखा प्रकट हो आयी और कुछ देर के लिए उसकी आँखें झुक गयीं।''[32]

निपुणिका के अभिनय से प्रसन्न होकर बाण उसे बधाई देना चाहता है। उधर निपुणिका बाण को अपने मन–मन्दिर का देवता मानकर उसके प्रति समर्पण का भाव रखती है। बाण को प्रसन्न देखकर उसे लगा कि आज उसकी जीत होने वाली है, आज वह अपने प्यार अर्थात् बाण को पा लेगी। किन्तु नारी–देह को देव–मन्दिर माननेवाला बाण निपुणिका के हृदय की बात को भाँप लेता है और हँसते हुए वहाँ से चला जाता है बाण के हृदय में भी निपुणिका के लिए प्रेम था, लेकिन निपुणिका की तरह प्रेम को स्वीकारने का साहस उसमें नहीं था।

''निपुणिका के व्यक्तित्व का सबसे कोमल और सशक्त पक्ष है– बाण से प्रणय। वह बाण को हृदय से चाहती थी, पर बाण की उपेक्षा ने उसे विदीर्ण कर दिया।''[33] नारी का सबसे बड़ा अपमान पुरुष की उपेक्षा है। बाण के हृदय में अपने प्रति उपेक्षा देखकर निपुणिका व्याकुल हो उठती है और उसी रात वहाँ से भागकर पुनः अज्ञात, अलक्ष्य की ओर आगे बढ़ती है। रास्ते में उसकी मुलाकात एक ज्योतिष से होती है, जो उसे बाण के बारे में बताता है– ''वह बड़ा यशस्वी कवि होगा, परन्तु कोई रचना समाप्त नहीं कर सकेगा। जिस दिन वह कविता लिखने बैठेगा,

उस दिन से उसकी आयु क्षीण होने लगेगी। वह उनके बाद सहस्र दिन तक जीवित रह सकेगा। उससे कह देना कि किसी जीवित व्यक्ति के नाम पर काव्य न लिखे।''[34]

छह वर्षों की लम्बी अवधि के बाद स्थाण्वीश्वर में निपुणिका की मुलाकात पुनः बाण से होती है। वह बाण को अपने नाटक–मण्डली छोड़कर भाग आने के बारे में बताती है–''हाँ भट्ट, मेरे भाग आने का कारण तुम्हीं हो, परन्तु दोष तुम्हारा नहीं है। निर्दय, तुमने बहुत बार बताया था कि तुम नारी–देह को देव–मन्दिर के समान पवित्र मानते हो, पर एक बार भी तुमने समझा होता कि यह मन्दिर हाड़– मांस का है, ईंट–चूने का नहीं। जिस क्षण मैं अपना सर्वस्व लेकर इस आशा से तुम्हारी ओर बढ़ी थी कि तुम उसे स्वीकार कर लोगे, उसी समय तुमने मेरी आशा को धूलिसात् कर दिया। उस दिन मेरा निश्चित विश्वास हो गया कि तुम जड़–पाषाण–पिण्ड हो, तुम्हारे भीतर न देवता है, न पशु है, है एक अडिग जड़ता। मैं इसीलिए वहाँ ठहर नहीं सकी। जीवन में मैंने उसके बाद बहुत दुःख झेले हैं, पर उस क्षण–भर के प्रत्याख्यान के समान कष्ट मुझे कभी नहीं हुआ।''[35]

निपुणिका स्थाण्वीश्वर में पान बेचती है लेकिन यहाँ उसके पान कम और मुस्कान अधिक बिकती थी। निपुणिका के हृदय में बाण के प्रति जो प्रेम था, वह अब भक्ति में बदल गया है। वह बाण से कहती है– ''छह वर्षों तक इस कुटिल दुनिया में असहाय मारी–मारी फिरी और अब मेरा मोह भक्ति के रूप में बदल गया है।''[36] निपुणिका बाण को अपना देवता मानती है और उसके हित की कामना करती है वह स्वयं पाप की कीचड़ में धँसी रहे, लेकिन अपने देवता को वह इस पाप के कीचड़ से दूर रखना चाहती है। यही कारण है कि जब बाण उसके दुकान पर अधिक देर तक ठहरता है तो वह उससे कहती है– ''भट्ट, मुझे किसी बात का पछतावा नहीं है। मैं जो हूँ इसके सिवा और कुछ भी नहीं हो सकती थी। परन्तु तुम जो कुछ हो उससे कहीं श्रेष्ठ हो सकते हो। इसीलिए कहती हूँ, तुम यहाँ मत रूको।''[37] इसी स्थल पर निपुणिका बाण को अशोक वन की सीता भट्टिनी का उद्धार करने को कहती है– ''तुम न आते तो भी मुझे तो यह करना ही था। बोलो भट्ट, तुम यह काम कर सकोगे? तुम असुर–गृह में आबद्ध लक्ष्मी का उद्धार करने का साहस रखते हो? मदिरा के पंक में डूबी हुई कामधेनु को उबारना चाहते हो।''[38] वह आगे कहती है– ''भट्ट वह अशोक वन की सीता है, तुम उद्धार करके अपना जीवन सार्थक करो।''[39]

मौखरि–वंश के छोटे राजकुल में कैद भट्टिनी का उद्धार निपुणिका ने जिस साहस और चतुराई के साथ किया वह अद्भुत है। वह भट्टिनी और बाण के साथ चण्डीमण्डप में रात बिताती है और कुमार कृष्णवर्द्धन की मदद से दस विश्वस्त सैनिकों के संरक्षण में वह बाण और भट्टिनी के साथ गंगा नदी पार करती है। त्रिवेणी पार करके नौका जब चरणाद्रि–दुर्ग के पास पहुँचती है, तो उसी समय आभीर सामन्त ईश्वरसेन के सैनिकों का आक्रमण होता है। जिससे घबड़ाकर पहले भट्टिनी और बाद में निपुणिका गंगा नदी में कूद पड़ती है। निपुणिका के निर्देश से ही बाण पहले भट्टिनी को बचाता है और उसे महामाया के पास छोड़कर निपुणिका की खोज में निकल पड़ता है। निपुणिका को खोजते–खोजते बाण वज्रतीर्थ पहुँचता है, जहाँ उसे बलिदान देने के लिए विवश किया जाता है, लेकिन निपुणिका अपने अपूर्व साहस का परिचय देते हुए बाण को बचाती है और उसके बाद वह भट्टिनी और बाण के साथ भ्रदेश्वर दुर्ग चली जाती है।

कुमार कृष्णवर्द्धन के कहने पर बाण स्थाण्वीश्वर जाता है और वहाँ महाराज हर्षवर्द्धन का सभापण्डित नियुक्त होता है। बाण पुनः स्थाण्वीश्वर से भद्रेश्वर दुर्ग लौट आता है। निपुणिका बाण पर नाराज होती है, क्योंकि बाण भट्टिनी के लिए राज्यश्री के पत्र का वहन करता है। वह कहती है–''धिक्कार है भट्ट, तुम कैसे भट्टिनी का अपमान करने पर राजी हो गये। कान्यकुब्ज का लम्पट शरण्य राजा क्या भट्टिनी के सेवक को अपना सभासद बनाने की स्पर्द्धा रखता है? जिस बुद्धि ने तुम्हें मौखरियों की रानी का निमन्त्रण ढोने को उत्साहित किया।''[40] भट्टिनी के अनुरोध पर बाण निपुणिका को सौरभद्र के शिव सिद्धायतन ले जाता है। वहाँ जाकर निपुणिका की मानसिक दशा में सुधार होता है और वे सब पुनः भद्रेश्वर दुर्ग लौट आते हैं, वहाँ आकर बाण को कुमार का पत्र मिलता है, जिसमें भट्टिनी को स्थाण्वीश्वर लाने का आग्रह था। लोरिकदेव के सैनिकों की सहायता से भट्टिनी और निपुणिका स्थाण्वीश्वर पहुँचती है। वहाँ बाण महाराजाधिराज द्वारा लिखित नाटिका 'रत्नावली' के मंचन का

आयोजन करता है। नाटिका में अभिनय करने के प्रसंग में जब बाण निपुणिका से पूछता है कि क्या तुम कुशलतापूर्वक अभिनय कर सकोगी तो निपुणिका कहती है– ''अभिनय ही तो कर रही हूँ, जो वास्तव है, उसको दबाना और जो अवास्तव है, उसका आचरण करना– यही तो अभिनय है। सारा जीवन यही अभिनय किया है।''[41] निपुणिका शिक्षित तो नहीं थी, लेकिन दुनिया को समझने की शक्ति उसमें थी। अपने अभावग्रस्त जीवन से उसने अनुभव ग्रहण किये थे।

'रत्नावली' नाटिका में बाण ने राजा का, प्रसिद्ध नर्तकी चारुस्मिता ने रत्नावली का और स्वयं निपुणिका ने वासवदत्ता का जीवन्त अभिनय किया। निपुणिका के चरित्र का उत्कर्ष उपन्यास के अन्त में देखने को मिलता है। ''नरलोक से किन्नर लोक तक एक ही रागात्मिक वृत्ति की चरम परिणति यहाँ होती है, जहाँ 'रत्नावली' नाटिका का अभिनय करते–करते निपुणिका अपने ही हाथ से अपने प्रेमी का हाथ रत्नावली के हाथ में थमाकर अपने पार्थिव शरीर को त्याग देती है।''[42] इस स्थल पर वह नारियों के लिए आदर्श स्थापित करती है। यही उसके व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशिष्टता है, अलौकिकता है। निपुणिका अपनी इच्छाओं, आकांक्षाओं का दमन कर दूसरों की खुशियों के लिए जीती रही। वह बाण से कहती है– ''मैंने कुछ भी नहीं रखा, अपना सब–कुछ तुम्हें दे दिया और भट्टिनी को भी दे दिया।''[43]

निपुणिका एक आदर्श नारी थी। ''भीतर–ही–भीतर घुटकर निपुणिका ने अपने प्राण दे दिये, उसने अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं को किसी दूसरे के मार्ग में बाधक नहीं होने दिया। यही भारतीय नारी के जीवन का पूज्य आदर्श है, जिसके कारण ही निपुणिका अपने को बाणभट्ट की प्रियतमा, भक्त, गुरु, हितैषिणी तथा रक्षिका सब–कुछ समझती रही और बाणभट्ट भी उसे वह स्थान देता रहा।''[44]

इस प्रकार निपुणिका ''अन्त में वासवदत्ता का अभिनय करते–करते बाणभट्ट का मार्ग निष्कण्टक करती हुई, प्रेम की दो दिशाओं को एक करती हुई, त्याग की प्रतीक, वेदना और परिताप का पुंज, अपने नारीत्व को सार्थक कर गयी, बाणभट्ट को मुक्त कर गयी, अपने–आपको उत्सर्ग कर गयी।''[45] ''बाण ने अभिनय करके जिसे पाया था, अभिनय करके ही उसे खो दिया।''[46]

निपुणिका प्रेम और साहस की प्रतिमूर्ति है। उसने स्वयं कहा है कि उसने अनेक घाटों का पानी पिया है, इसलिए कोई भी कार्य करने में उसे कोई घबराहट अथवा संकोच नहीं होता है। निपुणिका का साहस केवल अपने तक ही सीमित नहीं है, बल्कि वह दूसरों की मदद के लिए भी सदैव समर्पित भाव में तैयार रहती है– चाहे वह भट्टिनी का उद्धार हो या चण्डीमण्डप में अपने–आप को दाँव पर लगाकर भट्टिनी के रहने के लिए व्यवस्था करना हो, या वज्रतीर्थ में अघोर घण्ट तथा चण्डमण्डना के हाथों से बाण को बलि से बचाना या इन सबसे बढ़कर भट्टिनी की रक्षा के लिए गंगा नदी में कूद पड़ना तथा अपने प्राणों की परवाह न करते हुए बाण को भट्टिनी का बचाने की की आदेश देना एक आदर्श नारी का ही कार्य है। उसका सम्पूर्ण जीवन संघर्षों की गाथा है। आत्मोत्सर्ग उसके जीवन का एकमात्र उद्देश्य है। वह साधनों की जगह साध्य को अधिक महत्त्व देती है। एक साधारण पान बेचने वाली स्त्री अशोक वन की सीता भट्टिनी के उद्धार का दृढ़ संकल्प करती है और सफल भी होती है। उसके अदम्य साहस को देखकर माता भैरवी कहती है– ''अद्भुत शक्ति है निपुणिका की नाड़ियों में एक बात बताऊँ, बेटी निपुणिका महामायास्वरूपा है, उसे सामान्य नारी न समझ।''[47]

''जहाँ कहीं अपने–आपको खपा देने, अपने–आपको उत्सर्ग करने की भावना प्रधान है, वही नारी है। जहाँ कहीं दुःख–सुख की लाख–लाख धाराओं में अपने को दलित द्राक्षा के समान निचोड़कर दूसरे को तृप्त करने की भावना प्रबल है, वही नारी तत्त्व है या शास्त्रीय भाषा में कहना हो तो 'शक्ति–तत्त्व' है।''[48] निपुणिका का निर्माण दूसरों के कल्याण के लिए हुआ है, दूसरों की सुख–सुविधा के लिए हुआ है उसकी अपनी न तो कोई इच्छा है और न आवश्यकता। उसने अपने जीवन में केवल देना सीखा है, प्रतिदान की इच्छा उसके मन में कभी उत्पन्न ही नहीं हुई।

अतः स्पष्ट है कि, ''प्रेम के जिस उच्च आदर्श की कल्पना लेखक ने निपुणिका को माध्यम बनाकर की है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।''[49] निपुणिका के सन्दर्भ में नर्तकी चारुस्मिता ने ठीक ही कहा है– ''निपुणिका स्त्री जाति का शृंगार थी, सतीत्व की मर्यादा थी, हमारी जैसी उन्मार्गगामिनी नारियों की मार्गदर्शिका थी।''[50]

'महामाया' उपन्यास की गौण पात्र होते हुए भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। या यूं कह सकते हैं कि वह प्रासंगिक कथा की नायिका है। ''आर्य वाभ्रव्य के साक्ष्य के आधार पर भैरवी महामाया एक अपहृता बालिका थी, जिन्हें बलपूर्वक धूतों ने छल से मौखरि वंश के राजा ग्रहवर्मा की रानी बना दिया था। राजा ग्रहवर्मा से विवाह होने के पूर्व ही महामाया का वाग्दान हो चुका था। जिनसे 'महामाया' का वाग्दान हुआ था, वे और कोई नहीं उपन्यास के अद्‌भुत व्यक्ति अथवा पात्र अघोर–भैरव ही है।''[51]

महामाया प्रेम और सतीत्व की प्रतिमूर्ति है। जिसको उसने अपने मन से वरण किया, उसी को वह अपना पति मानती है। ''जाल में विद्ध कपोतिनी–सी भीत व्याकुल महामाया राजगृह को कारागृह मानती है तथा मुक्ति के लिए यत्नरत है।''[52] वह ग्रहवर्मा के राजगृह को त्यागकर अपने संन्यासी पति अघोरभैरव के पास जाना चाहती है। वह ग्रहवर्मा से स्पष्ट कहती है–''मैं तुम्हारी पत्नी नहीं हूँ। जिस पुरुष को मेरे पिता ने मेरा वाग्दान किया था, मैं उसी की पत्नी हूँ।''[53]

उधर, अपने प्रियतमा महामाया के अपहरण के बाद अघोरभैरव ने वियोग में आकर संन्यास ग्रहण कर लिया। महामाया भी अघोरभैरव की तरह संन्यासिनी बनना चाहती है। वह राजगरु के कंचुकी वाभ्रव्य के सामने अपना दुःख व्यक्त करते हुए कहती है–''आर्य वाभ्रव्य! मैंने संसार त्याग दिया है। मेरा मन अन्तःपुर के बाहर चला गया है, शरीर भीतर रही भी तो क्या, न रहा भी तो क्या।''[54] ''इस प्रकार महामाया ने अपने सच्चे प्रेम के लिए दृढ़तापूर्वक राजा ग्रहवर्मा का तिरस्कार कर दिया, उन्होंने अपने को मिटाकर अपने वाग्दत्तापति को प्राप्त किया और नारी धर्म एवं सतीत्व–रक्षा के हेतु मायारूपी राजवैभव को तृणवत् फेंक दिया।''[55]

महामाया को राजगृह में अनेक यातनाएँ सहनी पड़ीं, जिसके कारण उसके मन में राज्यशक्ति और सामन्ती वैभव के प्रति आक्रोश का भाव था। अपने हृदय के इसी आक्रोश को वह अक्सर आने पर व्यक्त करती है। उसकी ''वाणी साक्षात् भैरवी रूपा है। जब वह बोलती है तो ऐसा लगता है जैसे उसके जीवन का सारा संचित तप शब्दों में फूट–फूटकर निकल रहा हो। महामाया भरैवी की वाणी जब भी आर्यावर्त्त में गूँजी तभी उसने जन–सर्मद की विचारधारा को इसी प्रकार मोड़ दिया जैसे नदी बह जाने पर जल की धारा अपना मोड़ बदल लेती है, लेकिन उसकी वाणी आर्यावर्त्त के लिए केवल मंगल के लिए ही गूँजी, अमंगल के लिए नहीं। उस समय कान्यकुब्ज शासन में धार्मिक विद्वेश और सम्पूर्ण आर्यावर्त्त में राजनैतिक व्यवस्था का बोलबाला था। ऐसे समय में महामाया ने अपनी अन्तर्मुखी साधना को लोकमंगल के लिए बहिर्मुख किया और भटके हुए जन–जीवन को सद्‌मार्ग दिखाया।''[56]

महामाया वादसभा को सम्बोधित करते हुए कहती है– ''आर्य सभासदो, मेरी ओर देखो। मैं तुम्हारे देश की लाख–लाख अवमानित, लांछित और अकारण दण्डित बेटियों में से एक हूँ। कौन नहीं जानता कि इस घृणित व्यवसाय के प्रधान आश्रय सामन्तों और राजाओं के अन्तःपुर हैं?''[57] वह आगे कहती है–''अमृत के पुत्रों, धर्म की रक्षा अनुनय–विनय से नहीं होती, शास्त्रवाक्यों की संगति लगाने से नहीं होती, वह होती है अपने को मिटा देने से। न्याय के लिए प्राण देना सीखो, सत्य के लिए प्राण देना सीखो, धर्म के लिए प्राण देना सीखो। अमृत के पुत्रों, मृत्यु का भय माया है।''[58] इस प्रकार वह अत्याचारों के विरूद्ध जनमत को तैयार करने के लिए सदैव तत्पर रहती है।

महामाया त्याग, प्रेम और ममता की प्रतिमा है। उसके हृदय में माता की तरह ममता भरी हुई है। गंगा में डूबने के बाद किनारे पर पड़े भट्ट और भट्टिनी के प्रति उसका व्यवहार देखकर उसके ममतापूर्ण मातृ हृदय का परिचय मिलता है। एक स्थल पर वह वज्रतीर्थ के अघोरघण्ट के हाथों बलि होते हुए बाणभट्ट की रक्षा करती है और उसे सम्मोहन के भयंकर प्रभाव से मुक्त करती है। महामाया के इसी ममतामयी रूप को देखकर बाण उसे अपनी माता मानता है। बाण के शब्दों में– ''आनन्द भैरव के इशारे पर उन्होंने मेरा मस्तक स्पर्श किया। मुझे ऐसा लगा कि मानो अमृत तूलिका से किसी ने मेरे सारे शरीर को विलिप्त कर दिया हो। आनन्द–भैरवी ने मेरा सिर धीरे–धीरे अपने उत्संग में लिया। मेरी सारी जड़िमा क्षण–भर में विलुप्त हो गयी। आनन्द भैरवी ने मन्द स्मितपूर्वक मेरे नयनों और कपोल प्रान्तों को अपने अमृत हाथों से पोंछ दिया। मेरी आँखें खुल गयीं तब भी मेरा मस्तक भैरवी की गोद में था। उनकी आँखों में मातृ–स्नेह झलक रहा था।''[59]

महामाया ने योगमाया के सिद्धान्त और व्यवहार दोनों पक्षों पर गहन चिन्तन कर उस पर विमर्श कर उसका निष्कर्ष भी निकाला था। उनकी दृष्टि में स्त्री का सत्य और पुरुष का सत्य विरोधी नहीं है, बल्कि एक–दूसरे का पूरक है। उनका कहना है– ''पुरुष वस्तु विच्छिन्न भावरूप सत्य में आनन्द का साक्षात्कार करता है, स्त्री वस्तु–परिगृहीत रूप में रस पाती है। पुरुष निसंग है, स्त्री आसक्त, पुरुष निर्द्वन्द्व है, स्त्री द्वन्द्वोमुखी, पुरुष मुक्त है, स्त्री बद्ध। पुरुष स्त्री को शक्ति समझकर ही पूर्ण हो सकता है, पर स्त्री स्त्री को शक्ति समझकर अधूरी रह जाती है।''[60] वह आगे कहती है– ''स्त्री प्रकृति है। वत्स, उसकी सफलता पुरुष को बाँधने में है, किन्तु सार्थकता पुरुष की मुक्ति में है।''[61]

महामाया भट्टिनी को नारी–जीवन का महत्त्व समझाती है। उनकी दृष्टि में नारी–पिण्ड की अपेक्षा नारी–तत्त्व का अधिक महत्त्व है। वह बाण से कहती है– ''जहाँ कहीं अपने–आपको खपा देने की भावना प्रधान है, वही नारी है। जहाँ कहीं दुःख–सुख की लाख–लाख धाराओं में अपने को दलित द्राक्षा के समान निचोड़कर दूसरे को तृप्त करने की भावना प्रबल है, वही नारी तत्त्व है या शास्त्रीय भाषा में कहना हो तो 'शक्ति तत्त्व' है। हाँ रे, नारी निषेधरूपा है। वह आनन्द को लुटाने आती, आनन्द–भोग के लिए नहीं आती।''[62]

अतः स्पष्ट है कि महामाया नारी सुलभ श्रेष्ठ गुणों का भण्डार है। उसमें परोपकार और राष्ट्रीयता की भावना भरी हुई है। वह एक ओर जहाँ भट्टिनी को नारी जीवन का सच बताती है, वज्रतीर्थ के अघोरघण्ट के हाथों बलि देते हुए बाणभट्ट को बचाती है, भट्ट और भट्टिनी दोनों को माता का प्यार देती है, वहीं दूसरी ओर अपनी राष्ट्रीयता का परिचय देते हुए दस्युओं से देश की रक्षा के लिए जनता में उत्साह जगाती है और उसमें सैन्य संगठन के लिए प्रेरणा प्रदान करती है। इस प्रकार वह अपने राष्ट्रीयता और परोपकारमय निःस्वार्थ जीवन का परिचय देती है।

इसके अलावा ''महामाया के चरित्र निर्माण से उपन्यासकार को कथा–विस्तार के अनेक बिखरे सूत्रों को सम्बद्ध करने का उपयुक्त अवसर भी मिला है, जिसके द्वारा वह अपने वर्णन की स्वाभाविकता की रक्षा कर सका है।''[63]

'बाणभट्ट की आत्मकथा' में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने नारी–जीवन की अन्तर्व्यथा को बखूबी दर्शाया है। महामाया की तरह सुचरिता भी नारी आदर्श की प्रतिमा है। उसके जन्म और जननी का परिचय उपन्यासकार ने नहीं दिया है, किन्तु उसके विवाह की चर्चा उन्होंने की है। उसका विवाह बाल्यावस्था में ही कर दिया गया। ससुराल आने के पूर्व ही उसके श्वसुर का देहान्त हो गया। कुछ दिनों के बाद उसका पति भी विरक्त होकर घर छोड़कर संन्यासी बन गया। उस समय सुचरिता अत्यन्त अबोध थी। सास से उसे माँ से भी अधिक प्यार मिला।

सुचरिता अपने जीवन की व्यथा बाण को बताते हुए कहती है– ''मेरा बालकपन मेरी बेसुधी में ही बीत गया। न तो मुझे अपनी माता का स्मरण है, न पिता का ही, अत्यन्त कच्ची उम्र में ही विवाह करके मेरे अभिभावकों ने यथाशीघ्र अपना कर्त्तव्य भार हल्का कर लिया था। श्वसुर–कुल में मैं केवल अपनी सास को ही जानती हूँ। श्वसुर मेरे आने के पहले परलोक सिधार चुके थे और मेरे आने के थोड़े ही दिन बाद पतिदेवता मोक्ष की चिन्ता में प्रव्रजित हो गये। मैं इतनी अबोध थी कि इन घटनाओं का कोई मतलब ही नहीं समझ सकी। सास ने अपने हृदय का समूचा स्नेह उँड़ेलकर मुझे पाला।''[64]

सुचरिता अपने पति के लौट आने की प्रतीक्षा में दिन काटती रहती है। पुत्र वियोग से व्याकुल होकर सुचरिता की सास एक दिन अपने एकलौते पुत्र को ढूँढ़ने के लिए देशाटन के लिए निकल पड़ती है। रास्ते में उसकी भेंट बाणभट्टा से होती है, जो सुचरिता को देखकर उसे अखण्ड सौभाग्यवती होने की बात कहता है। वह कहता है– ''तू अखण्ड सौभाग्यवती है देवि!''[65] बाण की बातों को सुनकर सुचरिता और माँ दोनों के हृदय में आशा की किरण उत्पन्न होती है।

इसी प्रकार तीर्थयात्रा करते हुए वे दोनों एक बार चित्रकूट के एक सरोवर में स्नान करने के लिए गयीं, वहाँ पर संयोगवश उसकी भेंट विरतिवज्र से होती है। माँ अपने बेटे को नहीं पहचान पाती है, किन्तु सुचरिता ने जब विरतिवज्र को देख उसे लगा कि आज उसकी प्रतीक्षा पूरी हो गयी। इस प्रकार माँ–बेटे और पति–पत्नी का मिलाप हुआ। लेकिन विरतिवज्र के हृदय में परिवार की अपेक्षा धर्म का आवरण अधिक गहरा था। इसलिए वह सुचरिता

को इस शर्त पर स्वीकारता है कि वह उसी की धर्म–साधना बनकर नहीं बल्कि धर्म–साधक बनकर रहेगी। सुचरिता ने अपने वचन का पालन किया और वैष्णव तन्त्र की सच्ची साधिका बनकर जनकल्याण में लग गयी।

जिसका ''परिणाम यह हुआ कि बौद्धधर्म से जनता की आस्था उठने लगी और उसका नया धर्म जनता के दिलों में बसने लगा। राजधर्म को ऐसी चोट लगते दुख बौद्धधर्म के आचार्यों एवं राजकीय अधिकारियों ने एक झूठा षड्यन्त्र रचकर सुचरिता एवं विरतिवज्र को बन्दी बना लिया।''[66]

सुचरिता को नारायण पर अटूट विश्वास था। वह अपने जीवन के सभी सुख–दुःख नारायण के चरणों में समर्पित कर देती है। बन्दीगृह में जब बाण उससे मिलने आता है, तो वह कहती है– ''मुझे तो जो भी दुःख या सुख मिलेगा, उसी से अपने नारायण की पूजा करूँगी। यह हथकड़ी भी उन्हीं को अर्ध्यरूप में उपहृत है, आर्य।''[67]

सुचरिता निपुणिका की प्रियसखी थी। सुचरिता और विरतिवज्र के बन्दी बन जाने के खबर से जनता में आक्रोश का भाव था। बाण ने उचित समय पर आकर उन दोनों को बन्दी गृह से मुक्त कर दिया नहीं तो धार्मिक अशान्ति उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार बाण की मदद से अन्ततोगत्वा सुचरिता अपने पति के साथ गृहस्थाश्रम में पुनः प्रवष्टि हो जाती है।

''निपुणिका की प्रियसखी सुचरिता की भी स्थिति कुछ महामाया जैसी ही है। अन्तर केवल इतना ही है कि महामाया छल से किये हुए विवाहित पति का तिरस्कार कर अपने वास्तविक पति को संन्यासी के रूप में प्राप्त कर स्वयं संन्यासिनी हो जाती है और सुचरिता अपने खोये हुए वास्तविक पति को वियोगाग्नि में जल–भुनकर जो बाद में संन्यासी हो गया था, उसे पाकर पुनः गृहस्थी बसा लेती है। उसका निर्माण कर उपन्यासकार ने सच्चे प्रेम की शक्ति का परिचय पाठकों को कराया है।''[68]

सुचरिता स्त्री–पति के लिए आदर्श है। वह स्त्री–जाति के सभी श्रेष्ठ गुणों का प्रतिनिधित्व करती है। उसके पातिव्रत्य, सतीत्व एवं कठोर तपस्या का ही शुभ फल था कि उसका पति उसे मिल गया और वह फिर से गृहस्थ जीवन व्यतीत करने लगी। यह सब उसके अटूट विश्वास और दृढ़ प्रतिज्ञा का ही परिणाम है। जिस प्रकार वह अपने पति की प्रतीक्षा अविचलित भाव से करती रही, वह किसी कठोर तपस्या से कम नहीं है और इस तपस्या में वह सफल भी रही। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि सुचरिता उत्तम प्रेम का आदर्ष है।

बाणभट्ट के यह शब्द सुचरिता के चरित्र को बखूबी रेखांकित करते हैं– ''तुम सार्थक हो, देवि! तुम्हारा शरीर और मन सार्थक है, तुम्हारा ज्ञान और वाणी सार्थक है, सबसे बढ़कर तुम्हारा प्रेम सार्थक है। तुमको प्रणाम करके भवसागर में निर्लक्ष्य बहनेवाले अकर्मा जीव भी सार्थक होंगे। तुम सतीत्व की मर्यादा हो, पातिव्रत्य की पराकाष्ठा हो, स्त्री–धर्म का अलंकार हो।''[69]

'बाणभट्ट की आत्मकथा' में मुख्य नारी–पात्रों के अतिरिक्त अनेक प्रासंगिक नारी–पात्र भी हैं, जो चरित्र–चित्रण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। यद्यपि उपन्यास में उसके जीवन का चित्रण आंशिक रूप से हुआ है, किन्तु वह भी उपन्यास को गरिमा प्रदान करते हैं। इनमें मुख्य हैं– चारुस्मिता और मदनश्री।

चारुस्मिता के चरित्र का वर्णन उपन्यास में बहुत कम हुआ है, किन्तु उपन्यास में उसके चरित्र का एक विशेष महत्त्व है। वह स्थाण्वीश्वर की सबसे सुन्दर और कुशल राजनर्तकी है। शहर में उसका बड़ा सम्मान है। वह स्थाण्वीश्वर में होने वाले सभी सामाजिक उत्सवों, महोत्सव में शामिल होती है। उसे मयूर नृत्य और पद्मनृत्य में महारत हासिल थी, जिसे देखने के लिए जनता उमड़ पड़ती थी।

चारूस्मिता नगर की लक्ष्मी, शोभा की खानि, कला की स्त्रोतस्विनी, परमशील गुणन्विता गणिका[70] थी। ''नागरिकों के मन में गणिका के प्रति इस प्रकार का आदर युक्त भाव स्पष्टतः प्रमाण है कि तत्कालीन समाज अबला को अत्यन्त आदर की दृष्टि से देखता था। सामन्ती समाज की यह प्रमुख विशेषता रही है, जिसके प्रमाण हमें पूर्ववर्ती क्षत्रिय संस्कृति में भी प्राप्त हो जाते हैं। मौर्यकाल में भी नर्तकियों को विशेष आदर की दृष्टि से देखा जाता था। उसका रथ (प्रधान राजनर्तकी) जिन गलियों से होकर अभिवादन के लिए रुक जाया करते थे, नगर की जनता पुश्प–मालाओं से उसका स्वागत करती थी। कला के सम्मान की यह परम्परा चारुस्मिता के रूप में किसी–न–किसी प्रकार हर्षकालीन भारत तक भी सुरक्षित थी।''[71]

चारुस्मिता निपुणिका का बड़ा सम्मान करती थी। निपुणिका की मृत्यु पर कहे गये उसके ये शब्द अत्यन्त मार्मिक हैं–"चलो आर्य, इस नश्वर जगत् में यही एक शाश्वत सत्य है। निपुणिका स्त्री–जाति का शृंगार थी, सतीत्व की मर्यादा थी, हमारी जैसी उन्मार्गगामिनी नारियों की मार्गदर्शिका थी।"[72] वह आगे कहती है– "दुनिया केवल प्रस्तर प्रतिमाओं पर जान देती है।"[73]

इस प्रकार चारुस्मिता के सुसंस्कृत भावों और नारी जनोचित कोमलता को उपन्यासकार ने अत्यन्त स्वाभाविक ढंग से प्रस्तुत किया है और इस कार्य में उन्हें पूर्ण सफलता भी मिली है।

चारुस्मिता की तरह मदनश्री भी इस उपन्यास की गौण किन्तु महत्त्वपूर्ण पात्र है। उज्जयिनी की नगरवधू मदनश्री रूप और गुण दोनों में निपुण थी। कुशल नर्तकी होने के साथ–साथ वह चित्रकला का भी ज्ञान रखती थी। "उसमें कुल–कन्या का–सा शील था और कवि की–सी प्रतिभा।"[74]

निपुणिका भट्ट की नाटक मण्डली को छोड़कर मदनश्री के महल में ही आश्रय पाती है। मदनश्री बाणभट्ट से अत्यन्त प्रभावित थी। उसे अपने सौन्दर्य पर गर्व था। एक बार वह बाण पर अपने सौन्दर्य का सम्मोहन–तीर चलाने जाती है, किन्तु वह असफल होती है। भट्ट के संयम और दृढ़ चरित्र को देखकर वह चकित रह जाती है। "उसने जीवन में पहली बार ऐसा पुरुष देखा था, जो स्त्री का सम्मान करता है, पर तलवा नहीं चाटता।"[75] यद्यपि मदनश्री का प्रसंग उपन्यास में बहुत कम आया है, पर जितना आया है वह अत्यन्त आकर्षक रूप में है।

सन्दर्भ–सूची

1. भारतीय साहित्य के निर्माता : हजारीप्रसाद द्विवेदी, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, पृ. 52
2. साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 17 जून, 1979
3. डॉ. शैल रस्तोगी, हिन्दी उपन्यासों में नारी, पृ. 189–90
4. सुमित्रानन्दन पन्त, युगवाणी
5. डॉ. हरिशंकर शर्मा, हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में नारी, पृ. 222
6. डॉ. त्रिभुवन सिंह, उपन्यासकार आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ. 92
7. उपर्युक्त, पृ. 93–94
8. डॉ. हरिशंकर शर्मा, हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में नारी, पृ. 50
9. हजारीप्रसाद द्विवेदी, बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ. 80–89
10. उपर्युक्त, पृ.38
11. उपर्युक्त, पृ. 29
12. डॉ. हरिशंकर शर्मा, हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में नारी, पृ. 53
13. हजारीप्रसाद द्विवेदी, बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ. 29
14. डॉ. त्रिभुवन सिंह, हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृ. 290
15. हजारीप्रसाद द्विवेदी, बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ. 111
16. उपर्युक्त, पृ. 90
17. डॉ. त्रिभुवन सिंह, उपन्यासकार आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ. 94
18. हजारीप्रसाद द्विवेदी, बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ. 125
19. डॉ. हरिशंकर शर्मा, हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में नारी, पृ. 55
20. उपर्युक्त
21. उपर्युक्त, पृ. 201

22. उपर्युक्त, पृ. 232
23. उपर्युक्त, पृ. 232
24. डॉ. हरिशंकर शर्मा, हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में नारी, पृ. 36
25. प्रो. लक्ष्मण दत्त गौतम, बाणभट्ट की आत्मकथा : विमर्ष और व्याख्या, पृ. 125
26. डॉ. त्रिभुवन सिंह, उपन्यासकार आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ. 94
27. उपर्युक्त, पृ. 94
28. उपर्युक्त पृ. 94
29. हजारी प्रसाद द्विवेदी, बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ. 15–16
30. उपर्युक्त, पृ. 16
31. डॉ0 त्रिभुवन सिंह, उपन्यासकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. 95
32. हजारीप्रसाद द्विवेदी, बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ.–19
33. डॉ. उमा मिश्रा, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी का उपन्यास साहित्य एक अनुशीलन, पृ. 178
34. हजारीप्रसाद द्विवेदी, बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ 98–99
35. उपर्युक्त, पृ. 19
36. उपर्युक्त, पृ. 19
37. उपर्युक्त, पृ. 19–20
38. उपर्युक्त, पृ. 22
39. उपर्युक्त, पृ. 24
40. उपर्युक्त, पृ. 175
41. उपर्युक्त, पृ. 215
42. प्रो. लक्ष्मण दत्त गौतम, बाणभट्ट की आत्मकथा : विमर्श और व्याख्या, पृ. 135
43. हजारीप्रसाद द्विवेदी, बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ. 229
44. डॉ0 त्रिभुवन सिंह, उपन्यासकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. 97
45. सुरेशचन्द्र त्रिवेदी एवं विष्णु प्रसाद जानी, बाणभट्ट की आत्मकथा : एक अध्ययन, पृ. 56
46. हजारी प्रसाद द्विवेदी, बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ. 228
47. उपर्युक्त, पृ. 118
48. उपर्युक्त, पृ. 120
49. डॉ. त्रिभुवन सिंह, हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृ. 293
50. हजारीप्रसाद द्विवेदी, बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ. 228
51. डॉ. त्रिभुवन सिंह, उपन्यासकार आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ. 97
52. डॉ. हरिशंकर शर्मा, हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में नारी, पृ. 56
53. हजारीप्रसाद द्विवेदी, बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ. 220
54. उपर्युक्त, पृ. 219
55. डॉ. त्रिभुवन सिंह, उपन्यासकार आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ. 98
56. प्रो. लक्ष्मण दत्त गौतम, बाणभट्ट की आत्मकथा : विमर्श और व्याख्या, पृ. 138
57. हजारी प्रसाद द्विवेदी, बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ. 155

58. उपर्युक्त, पृ. 156
59. उपर्युक्त, पृ. 69–70
60. उपर्युक्त, पृ. 71
61. उपर्युक्त, पृ. 71
62. उपर्युक्त, पृ. 120
63. डॉ. त्रिभुवन सिंह, उपन्यासकार आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ. 98
64. हजारी प्रसाद द्विवेदी, बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ. 161–162
65. उपर्युक्त, पृ. 162
66. प्रो0 लक्ष्मण दत्त गौतम, बाणभट्ट की आत्मकथा : विमर्श और व्याख्या, पृ. 145
67. हजारीप्रसाद द्विवेदी, बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ. 170
68. डॉ0 त्रिभुवन सिंह, उपन्यासकार आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ. 98
69. हजारीप्रसाद द्विवेदी, बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ. 172
70. उपर्युक्त, पृ. 84
71. डॉ. त्रिभुवन सिंह, उपन्यासकार आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ. 99
72. हजारीप्रसाद द्विवेदी, बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ. 228
73. उपर्युक्त, पृ. 228
74. उपर्युक्त, पृ. 96
75. उपर्युक्त, पृ. 97

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 245-249

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

भारतीय राष्ट्रवाद और छायावाद

*संजीव कुमार पाण्डेय**

भारत में राष्ट्रवाद की चेतना 19वीं सदी से बलवती होने लगी और बीसवीं सदी इसके उत्थान और उत्कर्ष का काल बना। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद जब पूरी दुनियाँ में मानवीय संघर्ष घृणा, नफरत, राष्ट्रों के बीच वैमनस्यता की शुरूआत होने लगी या यो कहे आपसी संघर्ष राष्ट्रों के बीच भौगोलिक सीमाओं को लेकर जो संघर्ष हुआ, उसमें अगर कोई विजित रहा तो वह था–घृणा, द्वेष, ईर्ष्या और हथियारों का प्रदर्शन। इस विश्वयुद्ध से व्यापक जन धन की हानि हुई। जिसमें क्या मनुष्य, क्या पशु–पक्षी, क्या वनस्पतियाँ सबने अपना ही नुकसान किया। 1914 से 1918 ई0 तक यह युद्ध चला। 1915 ई0 में भारतीय राष्ट्रवाद के क्षितिज पर गाँधी का प्रवेश होता है। गाँधी ने विश्वयुद्ध की विभीषिका को आँखों के सामने देखा और छायावादी कवियों में व्यापक जन–धन जैविक, अजैविक, मानव मानवेतर की सुरक्षा उसके अस्तित्व को लेकर चिंतित हो उठे उनमें व्यक्ति की गरिमा उसकी प्रतिष्ठा, मानवता, वैश्विक मानवता जैसी अवधारणाएं पनपने लगी।

डॉ0 नगेन्द्र छायावाद का आरम्भ 1918 ई0 से मानते हैं और 1938 ई0 तक इसके समापन की तिथि बताते हैं। साथ ही यह भी जोड़ते हैं कि इन दोनों सीमाओं का आधार वर्ष यही है। भले ही इसके आस–पास दो चार पहले या दो चार साल की रचनाएं होती हैं और इसलिए दोनों छोरों को दो–चार साल इधर–उधर सरकाया जा सकता है। इधर प्रो0 सूर्यप्रसाद दीक्षित ने 'छायावाद : सौ वर्ष' 2018 में प्रकाशित की। डॉ0 नगेन्द्र की तिथि माने तो यह ठीक सौ साल पर प्रकाशित हुई पुस्तक है। इस पुस्तक में पहला शीर्षक छायावाद– सही पहचान रखा हैं जिसमें छायावाद की उत्पत्ति और उसकी सीमा परक पहचान बताई है। इसमें इन्होंने यह बताया कि प्रसाद ने छाया शीर्षक कहानी 1912 में प्रस्तुत किया और जीवन के अंतम चरण में प्रलय की छाया नाम से अंतिम कविता लिखा।

छायावाद की परिभाषा में प्रसाद ने कुंतक के वक्रोक्ति आनंदवर्धन के ध्वनि संप्रदाय का सहारा लिया। नामवर सिंह तो छायावाद का आरम्भ 1920 ई0 में मानते हैं। उन्होंने लिखा– 'छायावाद' संज्ञा का प्रचलन हो चुका था। मुकुटधर पाण्डेय ने 1920 ई0 की जुलाई, सितम्बर, नवंबर और दिसंबर की श्रीशारदा (जबलपुर) में 'हिंदी में छायावाद' शीर्षक से चार निबंधों की एक लेखमाला छपवाई थी।''[1]

अब यदि भारतीय राष्ट्रवाद और युगीन परिवेश को देखा जए तो यह पता चलता है कि प्रथम विश्वयुद्ध का तात्कालीन कारण आष्ट्रिया के सिंहासन के उत्तराधिकारी आर्चडयूक, फर्डिनेड और उनकी पत्नी का वध 18 जून, 1914 को शेराजेओ से हुई थी। एक माह आष्ट्रिया ने सर्विया के विरुद्ध युद्ध घोषित किया। रूस, फ्रांस, बिट्रेन ने सर्विया की सहायता की और जर्मनी ने आष्ट्रिया के इस युद्ध में 37 देशों ने भाग लिया और चौहत्तर हजार भारतीय सैनिकों ने प्राणों की आहुति दी थी। इतनी बड़ी संख्या में भारतीयों का मारा जाना, भारतीय जनता, राष्ट्रवादी नेता और कवियों के हृदय को मंथन और विश्लेषण करने पर विवश कर दिया। इधर 1919 ई0 में जलियावाला बाग की त्रासदी ने व्यापक असुरक्षा की भावना को विकसित की इस त्रासदी से व्यथित गाँधी जी ने असहयोग आन्दोलन की घोषण की उन्हें लगा कि हमारे असहयोग से अंग्रेजी हुकूमत को सोचने पर विवश करेगा। इधर भारतीय मनीषियों और चिंतकों ने मानव मूल्यों और चिंताओं पर ध्यान करना केन्द्रित किया। विवेकानंद का नव हिन्दूवाद (नव्य वेदान्त) की अवधारणा को निराला ने आत्मसात् किया। उनकी सोच थी कि एक

* *शोध छात्र (हिन्दी एवं भाषा विज्ञान विभाग), रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)*

दूसरे का सम्मान और सेवाभाव का होना अखण्ड मानवतावाद है। मानवतावाद प्रकाशवाद की वह नदी है जो सीमित से असीमित की ओर ले जाती है। महात्मा बुद्ध ने अहिंसा की जो अजश्रधारा प्रवाहित की वह बौद्धों की करूणा नाम से लोकप्रिय रही जिनमें कल्पना और भावुकता को पर्याप्त स्थान मिलता है। महादेवी इसी भावुकता और करुणा को लेकर आगे बढ़ती हैं–''छायावादी कवियों ने अनुभव किया कि देश की जनता को जीवित और जाग्रत रखने के लिए उसमें मानवीय रागात्मक बोध और सौन्दर्य बोध का सम्मिश्रण करना होगा। इसके लिए उन्होंने प्रकृति को अपना विषय बनाया और समूची संवेदना के साथ मानुषभाव का सन्देश दिया। प्रसाद जी ने वर्जनाओं की चिन्ता न करके प्रेम सौन्दर्य का मुक्त चित्रण किया। निराला जी ने मानवीय प्रणय के पीछे राजगद्दी त्याग देने वाले एडवर्ड अष्टम की सराहना में कविता लिखी। छायावादी कवियों में राष्ट्रीय चेतना के साथ ही विश्व दृष्टि का भी परिविस्तार किया और इस प्रकार एक बड़े व्यापक धरातल पर अपने काव्यान्दोलन का मंगलारम्भ किया। इतना विशद् आयाम छायावाद के पूर्व या परवर्ती दूसरी किसी काव्य प्रवृत्ति के साथ नहीं दिखाई देता है।''[2]

महर्षि अरविंद ने ही सर्वप्रथम घोषणा कि मानव संसारिकता में रहकर दैवी शक्ति प्राप्त कर सकता है। वे मानते हैं कि मानव भौतिक जीवन व्यतीत करते हुए तथा अन्य मानवों की सेवा करते हुए अपने मानस को अतिमानस तथा स्वयं को अति मानव में परिवर्तित कर सकता है। पंत ने इसी चेतना को प्रकृति में भी खोजने का प्रयास किया जिसे अन्तस चेतना भी कहते हैं। अरविन्द का दर्शन अन्तस्चेतना दर्शन है।

भारतीय संस्कृति आध्यात्मिकता की विधात्री रही है, जहाँ कश्मीर से कन्याकुमारी तक अनेक धार्मिक सम्प्रदाय विकसित हुए, हमारे यहाँ सद्दर्शन के अतिरिक्त बौद्ध, जैन, चार्वाक् जैसे नास्तिक समप्रदाय भी विकसित हुए। कश्मीर में भी शैवदर्शन का विकास हुआ जिसका मूल ग्रंथ वसुगुप्त कृत शिव सूक्त है। यह एक अद्वैत दर्शन है। इसमें 36 तत्व और चार अंग हैं। जिसमें कम, कुल, स्पंद और प्रत्यभिज्ञ आते हैं। प्रत्यभिज्ञ शब्द का तात्पर्य है। साधक अपनी पूर्व ज्ञात वस्तु को पुनः जान ले इस अवस्था में साधक को अनिर्वचनीय आनंद की अनुभूति होती है। प्रसाद ने जिस अखण्ड आनंद की चर्चा की वह इसी प्रत्यभिज्ञ या प्रत्यभिज्ञा दर्शन (त्रिक दर्शन) का प्रभाव है। ''प्रसाद ने कैलाश धाम या आनंद लोक बसाया उनका यूटोपिया, चित्राधार में संकलित प्रेमराज्य से आरम्भ होता है। फिर वे 'प्रेमपथिक' में एक आनंदनगर की कल्पना करते है। कामना में वे विवेक राज्य स्थापित करते हैं, और कामायनी में उसे आनंद लोक का नाम देते हैं। प्रेम विवेक और आनंद का यह त्रिकोण श्रद्धा, इड़ा और मनु का कथालोक है।''[3]

भारत में जिस ज्ञान विज्ञान यंत्र और तकनीकि का प्रचार–प्रसार हो रहा था। उस यंत्र और तकनीकि ने मानव की संवेदनाओं का क्षरण कर दिया था। यांत्रिक सभ्यता और संवेदनशीलता में व्याघात है। क्योंकि अतिबौद्धिकता यांत्रिकता की ओर ले जाती है। इसीलिए पूँजीवादी व्यवस्था के क्रोड़ में पनपी भौतिक सभ्यता का निषेध करते हुए इन छायावादियों ने नैसर्गिक आश्रम व्यवस्था अर्थात् प्राकृतिक जीवन की कामना की। ''बुद्धि के अतिरेक से बचते हुए मानवीय संवेदना को सुरक्षित रखने और समाज को अति यांत्रिकता प्रेरित विमानवीकरण से बचाये रखने की साहित्यिक चेष्टा आधुनिक युग में पहली बार छायावाद में दिखाई पड़ता है।''[4]

देश में राष्ट्रवाद के निमित्त व्यापक जनसंघर्ष शुरू हुआ जिसमें क्रांतिकारी राष्ट्रवाद भी प्रमुख कारक था। इसमें पचीस करोड़ भारतीयों के पचास करोड हाथ को एक साथ लगाकर ब्रिटिश हुकूमत को उखाड़ फेकने का आह्वान किया। परिणामतः बड़ी संख्या में लोग क्रांतिकारी राष्ट्रवाद की ओर झुके लेकिन छायावाद ने मनुष्य को अपना प्रतिपाद्य बनाया। ''पौराणिकता का निषेध करते हुए मानवीय शक्ति की सही पहचान जिसमें न पाशविक वृत्तियों की पुष्टि हो और न अतिमानवता की कल्पना, वहीं छायावाद का वर्ण्य विषय है।''[4] ...छायावादी कविता ने जीवन के उदात्तीकरण का संदेश दिया है। श्रद्धा ने कहा था–

''पशु से यदि हम कुछ ऊँचे हैं।
तो भव जलनिधि के बने सेतु।।''[5] *(कामायनी)*

प्रसाद ने 'उज्ज्वल नवमानवता' का सपना देखा था।

1927 ई0 में भारत में साइमन कमीशन की घोषणा हुई और 1928 ई0 में भारत में इसका व्यापक विरोध शुरू हुआ। 1929 ई0 के लाहौर अधिवेशन में पूर्ण स्वराज का प्रस्ताव पास किया गया, और भारतीय तिरंगे को फहराया

गया। गाँधी इरविन के बावजूद पुनः शुरू होता है क्योंकि इस सविनय अवज्ञा आन्दोलन में नमक कानून तोड़ना ही प्रधान था। यह आन्दोलन ग्रामीण क्षेत्र से शहरी क्षेत्र की ओर तीव्रगति से विकसित हुआ। 1934 ई0 में गाँधी ने कांग्रेस छोड़कर हरिजन यात्रा शुरू की। जिसमें आमजन को भारतीय राष्ट्रीय आन्दोन से जोड़ना था। यही कारण है कि इस आन्दोलन में गाँधी ही नहीं आम जनता को भी व्यापक लोकप्रियता मिली। अब यह आन्दोलन देश के व्यापक परिवेश को आत्मसात करते हुए जन—जीवन से जुड़ता है। शायद गाँधी के अहिंसा और सत्य पर आधारित असहयोग आन्दोलन में बड़ी संख्या में कवियों में आकर्षण पैदा किया। ''इसयुग के राष्ट्रीय—सांस्कृतिक काव्य में दो भावनाएँ पूरी शक्ति के साथ व्यक्त हुईं। एक ओर तो कवियों ने भारत की आंतरिक विसंगतियों और विषमताओं को दूर करने के लिए देश का आह्वान किया और दूसरी ओर जनता को विदेशी शासन से मुक्ति पाने के लिए स्वाधीनता संग्राम में कूद पड़ने की प्रेरणा दी। माखनलाल चतुर्वेदी, रामनरेश त्रिपाठी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' और सुभद्रा कुमारी चौहान ने केवल राष्ट्रप्रेम को ही मुखरित नहीं किया, अपितु उन्होंने स्वयं देश की आजादी की लड़ाई में भाग भी लिया। फलस्वरूप उनकी देशप्रेम की कविताओं में अनुभूति की सच्चाई और आवेश दिखाई देता है। उदाहरणार्थ— माखनलाल चतुर्वेदी ने 'कैदी और कोकिला' शीर्षक कविता में अपनी अनुभूति को ही एक उच्चतर और लोक सामान्य भावभूमि के स्तर पर व्यक्त करने का प्रयास किया—

''क्या ? देख न सकती ज़ंजीरों का गहना?
हथकड़ियों क्यों ? यह ब्रिटिश राज्य का गहना,
कोल्हू का चर्रक चूं ? जीवन की तान,
गिट्टी पर लिक्खे अंगुलियों ने गान ?
हूँ मोट खींचता लगा पेट पर जुआ,
खाली करता हूँ ब्रिटिश अकड़ का कुआँ।।''[6]

धीरे—धीरे भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन और छायावादी कविता एक दूसरे की पूरक बन गई, क्योंकि जो काम राजनीति के क्षेत्र में राष्ट्रीय नेताकर रहे थे, वही काम साहित्य के क्षेत्र में छायावादी कवि कर रहे थे। इन कवियों ने यह बताने का प्रयास किया है कि प्रत्येक व्यक्ति में असीम ऊर्जा और अक्षय शक्ति की निधि है। वह उसे पहचाने और आत्मविश्वास के साथ संघर्ष के लिए तत्पर हो जाएँ बालकृष्ण शर्मा नवीन ने अपनी हुँकार से चिरदोहित और भिखमंगे भारत को जगाने का प्रयास किया—

''ओ भिखमंगे, अरे पराजित, ओ मजलूम, अरे चिरदोहित
तू अखंड भंडार शक्ति का, जाग अरे निद्रा—सम्मोहित!
प्राणो को तड़पाने वाली हुंकारों से जल थल भर दे,
अंगारों के अंबारों में अपना ज्वलित पलीता धर दे।।''[7]

भारत की भौगोलिक सीमा आध्यात्मिकता की पूंजी है। जिसमें अपने अंक में आध्यात्मिक मनीषियों को दुलार दिया, परिशिष्ट किया और उन्हें उदात्त बनाने में प्रमुख भूमिका निभाई। ये कवि मनीषियों को राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रेरक के रूप में स्थापित करते हैं। इनका दृष्टिकोण विश्वास और आस्था पैदा करने के लिए था। सियाराम शरण गुप्त की बाबू कविता इसका प्रमुख उदाहरण है—

''प्राप्त इसे दूर के अतल से
सत्य हरिश्चन्द्र की उटलता
लब्ध इसे ताराग्रह मंडल से
श्री प्रह्लाद की अनन्त भक्ति—समुज्ज्वलता,
कुद्ध कुरुक्षेत्र के समर में।''[8]

और निराला की दिल्ली कविता देश की दुर्दशा के चित्रण के साथ गम्भीर प्रभाव की अभिव्यक्ति करती है—

क्या यह वही देश है।
भीमार्जुन आदि का कीर्ति क्षेत्र

चिरकुमार भीष्म की पताका ब्रह्मचर्य–दीप्त
उड़ती है आज भी जहाँ के वायुमण्डल में
उज्ज्वल अधीर और चिरनवीन?
श्रीमुख से कृष्ण के सुना था जहाँ भारत ने
गीता गीत सिंहनाथ।''[9]

भारतीय आध्यात्मिकता और सामाजिकता का समन्वय मानव के बहुमुखी विकास के लिए आवश्यक है। इस हेतु रामनरेश त्रिपाठी ने सत्य का बड़ी मार्मिकता के साथ प्रतिपादन किया है–

''तू खोजता मुझे था जब कुंज और वन में।
तू खोजता मुझे था दीन के वतन में।।
तू आह बन किसी की मुझको पुकारता था
मैं था तुझे बुलाता संगीत में भजन में
मेरे लिए खड़ा था दुखियों के द्वार पर तू!
मैं बाट जोहता था तेरी किसी चमन में।
बन कर किसी के आँसू मेरे लिए बहा तू
मैं देखता तुझे था माशूक के बदन में।''[10]

कभी–कभी तो ऐसा दिखता है कि कवि राष्ट्रीय आन्दोलन के नेताओं को एक सशक्त आन्दोलन छेड़ने की प्रेरणा दे रहा है। क्योंकि प्रसाद के मनु और निराला के राम के हताश मनोस्थिति कमोवेश मिलती जुलती है। कामायनी में श्रद्धा मनु से कहती है–

शक्ति के विद्युत कण जो व्यस्त
विकल बिखरे है हो निरुपाय

समन्वय उनका करे समस्त विजयिनी मानवता हो जाय। तो राम की शक्तिपूजा में जाम्बवान राम को परामर्श देते हैं–

शक्ति की करो मौलिक कल्पना, करो पूजन।
छोड़ दो समर जब तक न सिद्धि हो रघुनंदन।।

स्पष्ट है कि ये पौराणिक कथा तो मनु या राम के लिए है, लेकिन इसका व्यंजनार्थ देखा जाए तो यह गाँधी के लिए है। गाँधी ने कांग्रेस से अलग होकर स्वयं को अन्यमनस्क की स्थिति में देखा। कवियों की यह प्रेरणा ही थी कि ये कवि गाँधी को स्वतः स्फूर्त, नेतृत्व विहीन, व्यापक भारत के बालू से आन्दोलन चलाने हेतु प्रेरित करते हैं, इसका परिणाम 1942 ई0 का भारत छोड़ो आन्दोलन हुआ जो सामूहिक राष्ट्रीय मन और कवि के व्यक्तित्व का ही परिणाम था जहाँ राम पुरुषोत्तम नवीन बने वहीं गाँधी राष्ट्रपिता कहलायें। राम की शक्तिपूजा का अंतिम पंक्ति–

''होगी जय, होगी जय, हे पुरुषोत्तम नवीन।
कह महाशक्ति राम के वन्दन में हुईं लीन।।

यह निष्कर्ष था जो भारत छोड़ो आन्दोलन के पाँच वर्ष के भीतर ही देश को आजादी दिलाता है।

रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लि खा– ''महाशक्ति का राम के वदन में लीन हो जाना आत्मशक्ति के विकास की ही व्यंजना देता है। शक्ति अपने से बाहर कही नहीं, अपने ही अन्दर है, केवल उसे जाग्रत और विकसित करना है और यह प्रक्रिया अपने में मौलिक है, विशिष्ट है। इसी संदर्भ में शक्ति की मौलिक कल्पना करने में क्षय राम को संबोधित करते हुए उन्हें 'नवीन' पुरुषोत्तम कहा गया है। श्रद्धा सर्ग की अंतिम पंक्तियों में शक्ति और विजय का जो संदेश है– विजयिनी मानवता हो जाय' वह यहाँ दूसरे कथा–वृत्त के बीच से फूटता है।''[11]

इन तथ्यों से स्पष्ट होता है कि भारतीय राष्ट्रवाद के समानता छायावादी कविता का विकसित हो रहा था। राष्ट्रीय आन्दोलन ने छायावादियों को कथ्य प्रदान किया और इन कवियों ने राष्ट्रीय नेताओं को आन्दोलन को चलाने के लिए ऊर्जा दी, प्रेरणा दी, आत्मशक्ति दी और अतीत के प्रसंगों को लेकर वर्तमान भावभूमि को निर्गत कर भविष्य के संमार्ग और सफलता का सूत्र प्रदान किया।

संदर्भ–सूची

1. नामवर सिंह, छायावाद, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, इक्कीसवाँ संस्करण 2019, पृ. 11
2. छायावाद सौ साल, प्रो0 सूर्यप्रसाद दीक्षित, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2018, पृ. 29–30,
3. वही, पृ. 46
4. वही, पृ. 48
5. वही, पृ. 48–49
6. (संपा.) डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 519
7. वही, पृ. 520
8. वही, पृ. 520
9. वही, पृ. 520
10. पं. रामनरेश त्रिपाठी ग्रन्थावली, भाग–1, संपा0 आनंद कुमार त्रिपाठी, हिन्दी मन्दिर सुल्तानपुर, उ.प्र., दूसरा संस्करण, 2007, पृ. 197
11. रामस्वरूप चतुर्वेदी, प्रसाद, निराला, अज्ञेय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण–2014, पृ. 15

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 250-253

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

कृष्णा अग्निहोत्री कृत उपन्यास 'कौन नहीं है अपराधी' में नारी संघर्ष

*अनुराधा कुमारी**

शोध सारांश : *विमर्श को चिंतन मनन की प्रक्रिया के रूप में समझा जा सकता है और जब इस चिंतन, मनन के केंद्र में नारी व् उसकी स्थिति आ गई तो यह नारी–विमर्श में परिवर्तित हो गया। वास्तव में नारी विमर्श किसी प्रकार की बहस का मुद्दा नहीं है। यह तो नारी जाग्रति और उसके अधिकारों के लिए है। नारी–विमर्श शब्द की उत्पत्ति इन दोनों शब्दों के योग से हुई है। अतः यह स्पष्ट ही है की इसमें नारी चिंतन, उत्पीड़न, शोषण, संघर्ष, मुक्ति की चाह, सशक्तिकरण शामिल है। नारी की स्थिति चिंता का विषय रही है जब उस पर गहन चिंतन आरम्भ हुआ तो नारी विमर्श उभर कर सामने आया। रथ के दो पहियों की भांति नर–नारी का जीवन समान महत्वपूर्ण है परन्तु जब नारी को हीन दृष्टि से देख सम्मानजनक महत्वपूर्ण स्थान न मिला तो नारी को प्रतिष्ठित स्थान दिलाने का कार्य नारी–विमर्श ने किया*

Keywords *: कृष्णा अग्निहोत्री, नारी–विमर्श, उपन्यास, कौन नहीं अपराधी, नारी संघर्ष।*

विस्तार : हिन्दी साहित्य में एक सुपरिचित और प्रतिष्ठित नाम है 'कृष्णा अग्निहोत्री' जिन्होंने अपने साहित्य में समाज के चिरशोषित वर्ग नारी को सार्थक अभिव्यक्ति प्रदान की है। उन्होंने कहानियों और उपन्यासों दोनों पर ही अपनी कलम चलाई और हर रचना के केन्द्र में नारी को ही चुना है। कृष्णा अग्निहोत्री अपने उपन्यासों के माध्यम से न केवल पाठकों और आलोचकों को, स्थितियों की, विद्रूपता दिखा कर चौंका देती हैं बल्कि, उन्हें सोचने और विचारने के लिए भी मजबूर कर देती हैं। यदि इन्हें शोषित महिलाओं की बेबाक प्रवक्ता कहा जाए तो ये बिल्कुल भी असंगत नहीं होगा। दिनेश द्विवेदी आपके सम्बन्ध में लिखते हैं–''पुरुष के सामन्ती और भोगवादी केक्टसी नज़रिये से चुभी और बिंधी हुई समर्पित नारी की मूक चीत्कार को यदि किसी ने अपने सशक्त कथानकों और fr y fey k nsssoky h l eL; kvksl sQä fd ; k gS rksog g&—".kk v fXugks=hA''[1] यह पूर्णतः सत्य भी है क्योंकि कृष्णा अग्निहोत्री की रचनाओं के केन्द्र में नारी ही है।

नारी चाहे किसी भी वर्ग की हो अमीर–गरीब, चाहे कितनी भी पढ़ी लिखी हो या अनपढ़, चाहे घरेलू हो या फिर कामकाजी, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। उनका प्रत्येक स्तर पर शोषण ही होता रहा है। इसी कटु सत्य को आधार बनाकर कृष्णा अग्निहोत्री बार–बार पाठकों के सामने पेश करती हैं तभी उनकी रचना की कथावस्तु के केन्द्र में नारी ही रहती है। उनका ऐसा ही एक उपन्यास है 'कौन नहीं अपराधी' जिसके केन्द्र में फिर से नारी को रखा गया है। इस उपन्यास की भूमिका में कृष्णा अग्निहोत्री स्वीकार करती हुई कहती है–"जी हां, पुनः मैनें 'नारी' को इस उपन्यास का प्रमुख पात्र बनाने की हिम्मत जुटायी है, क्योंकि सच्चाई यह है कि जितनी सूक्ष्मता से मैं उनके अन्दर प्रवेश कर सकती हूँ उतनी सहजता से अन्यत्र नहीं।"[2] वास्तव में नारी जीवन से जुड़ी हुई समस्याएँ अनन्त हैं जिनका अन्त होता नज़र नहीं आता और उन्हें समाज के समक्ष रखना भी अत्यन्त आवश्यक है तथा समाज के प्रत्येक तबके से यह प्रश्न करता है कि आखिर नारी की ऐसी स्थिति के लिए अपराधी कौन नहीं है? अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति इस अपराध में शामिल है चाहे वो नारी ही क्यों न हो, जो ऐसी नियति को स्वीकार करती है। परन्तु इसके बावजूद भी समाज में ऐसी नारियाँ

* *शोध छात्र (हिन्दी विभाग), पंजाब विवविद्यालय, चंडीगढ़*

मौजूद है जो संघर्ष करती हैं और अपनी स्थिति को बदलने के लिए प्रयत्नशील हैं। "जाहिर है– पहचान की लड़ाई तो उसे स्वयं ही लड़नी है, अपनी शक्ति प्रज्ज्वलित कर विरासत में जो उसे कमजोर निरीह अबला के अलंकरण मिले हैं उन्हें उतर फेंक कर। पुरुष ने उसे पहनाये ही इसी उद्देश्य से थे की वह गौ बनी खूँटें से बंधी उसे ही vkSj mruh ghvi uhl kFkZr kl eFkZkeku yS[3] इस उपन्यास में ऐसे ही पात्र को लिया गया है जिसमें अनेक गुण विद्यमान हैं, बावजूद इसके उसे समाज का चौतरफा शोषण सहना पड़ता है। कृष्णा अग्निहोत्री ने इस पात्र के चरित्र के सभी पहलू पाठकों के सम्मुख रखकर सचमुच में एक जीवंत पात्र की संकल्पना की है। यह पात्र कहीं न कहीं समाज की नग्न सच्चाई को भी पाठकों के समक्ष पेश करता है कि समाज एक पति परित्यक्ता स्त्री के साथ कैसे पेश आता है। इस उपन्यास की नायिका का नाम सीमा है। सीमा की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए 'डॉ. बालाजी श्रीपती भुरे' अपनी पुस्तक 'कृष्णा अग्निहोत्री के उपन्यासों में नारी' के अन्तर्गत लिखते हैं–''पुरुष वर्चस्व ने जब चाहा नारी को बाँधा, जब चाहा छोड़ दिया। जीवनसंगिनी बनाया और कुछ क्षणों के बाद परित्यक्ता का खिताब दे डाला। झोली में एक बच्ची का उत्तरदायित्व डाला और विदेश भाग गये।''[4] इस अचानक से आई स्थिति के कारण सीमा का सारा जीवन संघर्षों से घिर जाता है।

सीमा जो कि इस उपन्यास की नायिका है लेखिका ने उसके अन्दर अनेक गुण दिखाए हैं। वह एक सम्माननीय व्यक्तित्व की स्वामिनी है तो साथ ही अनेक मानवीय गुणों से भरपूर है। उसके हृदय में सभी के लिए स्नेह और दयाभाव है, परन्तु उसके जीवन की कटुता तो देखो कि बचपन से ही उसकी माँ और बहन रीमा उसके साथ बस सौतेला व्यवहार ही करते रहे। कभी–कभी तो उसे लगता भी है कि यह शायद उसकी सगी माँ नहीं अपितु सौतेली है। परन्तु फिर भी उसने ऐसे ख्याल को अपने मन पर कभी हावी नहीं होने दिया। सीमा का विवाह जल्दी हो गया और कुछ समय पश्चात् ही उसने बेटी को जन्म दिया। जिसका नाम उम्मी रखा गया। बेटी के जन्म के पश्चात् बिना किसी कारण के सीमा का पति उसे छोड़ कर विदेश चला जाता है। इस पर भी उसकी बहन रीमा ताना कसती हुई कहती है–"भाई सबको अपनी समस्याएँ सुलझानी पड़ती है। आप जानो, मैं तो इतना जानती हूँ कि पत्नी में दमखम हो तो पति हाथ से बाहर नहीं जा सकता है।''[5] इतना सुनते ही सीमा सकते में आ जाती है कि– क्या यह उसकी सगी बहन है जिसे उसकी हल्की सी भी चिंता नहीं। सीमा अपनी नन्हीं सी बेटी को लेकर किराए का कमरा लेकर रहने लगती है और उसका जीवन संघर्षों से भर जाता है। सीमा डेकोरेटर का काम आरम्भ करती हुई अपनी बेटी को एम. ए. करवाने के बाद एक शिक्षिका बनाती है। सीमा के माध्यम से कामकाज़ी महिलाओं की समस्याओं की ओर भी ध्यान आकर्षित किया गया है।

नारी को समाज में अपना स्थान बनाने के लिए अत्यन्त संघर्ष करना पड़ रहा है। मुख्यतः समाज में उसका शोषण करने वाले लोग ही अधिक मिलते है। चाहे यह शोषण शारीरिक स्तर पर हो या मानसिक धरातल पर। उम्मी जोकि अपने नंपुसक पति द्वारा छली जाती है वह उसे प्रत्येक कदम पर मानसिक और शारीरिक पीड़ा पहुँचाकर संतोष प्राप्त पाता है। लेखिका पति द्वारा छली गई उम्मी की पीड़ा को व्यक्त करती हुई कहती है–"क्या आज बिस्तर पर घटित उसके इस आहत तन व मन की कोई साक्षी समाज को सौंपी जा सकती है? उसके इस घाव से रिसते रक्त को कोई देख सकता है? एक बन्द कमरे में बीते ऐसे कलुषित नकारें क्षणों का किसे निर्णायक होना चाहिए, भोक्ता या श्रोता को?''[6] उम्मी जो घर से बाहर नौकरी करे और वहाँ भी अनेक समस्याओं से संघर्ष करे उसे ही घर आकर पति की मार सहनी पड़ती है। उम्मी बिना वजह अपने पति की मार सहन करती है। नासिर शर्मा भी मानती हैं कि–"आज जो लड़ाई है वह अधिकारों की लड़ाई है। मेरी राय में महिला समाज अपने अधिकारों के बारें में विस्तार से सोचें, विश्व में जहां भी महिलाओं पर अत्याचार हो रहें हैं हमें उन पर प्रतिक्रिया करनी चाहिए।"[7] तथा कथित उपन्यास के माध्यम से कृष्णा अग्निहोत्री ने भी इस ओर इशारा किया है कि ये लड़ाई नारी को स्वयं लड़नी होगी। तभी लेखिका ने उसमें परिवर्तन दिखाया और उम्मी अपने पति का विरोध करती हुई कहती है–"तुमने मेरे हाथों में अदृश्य बेड़ियाँ डाल रखी है, अब मैं इन्हें सह नहीं सकूँगी। अच्छी तरह समझ रही हूँ कि इन्हें मुझे ही काटना पड़ेगा। मैं कोई चाभी का खिलौना नहीं जिसे तुम जब चाहो चलाओ, फेंको और तोड़ डालो समझे।''[8] उम्मी के भीतर यहीं से विद्रोह की चेतना का उन्मेष होता हुआ दिखाई देता है।

उपन्यास के माध्यम से कृष्णा अग्निहोत्री ने समाज की ऐसी स्त्रियों को संघर्ष के मैदान में उतारा है जो पति परित्यक्ता हैं, समाज द्वारा शोषित हैं या पति द्वारा प्रताड़ित हैं अथवा जिनके पति नपुंसक हैं। मध्यवर्ग की उम्मी हो या फिर उच्च वर्ग की सरिता, हिन्दु समाज की शुभा हो या मुस्लिम धर्म की आसफा या ईसाई महिला कमला। सभी किसी न किसी तरह की त्रासदी को भोगने के लिए विवश है। उपन्यास की एक पात्र है–विमला। जिसका बॉस उसका शारीरिक शोषण करता है और विद्रोह करने पर धमकी देता हुआ कहता है–"यदि विमला मेरे साथ खुशी से रहो तो तुम्हें धन भी मिलेगा और प्रमोशन भी। यदि मुँह खोलोगी तो तुम्हारे मुँह पर तेजाब फिंकवा दूँगा।"[9] विमला उसकी धमकी से डरती नहीं है बल्कि जीवन में उससे कभी न मिलने का निर्णय लेते हुए नौकरी छोड़ कर विवाह कर लेती है।

यह उपन्यास मात्र सीमा की ही गाथा नहीं है अपितु चार पीढ़ियों की गाथा है जिसमें सबसे पहली पीढ़ी सीमा की माँ है। दूसरी पीढ़ी सीमा और उसकी बहन रीमा। तीसरी पीढ़ी के अन्तर्गत सीमा की बेटी उम्मी और रीमा की बेटी रवीना। चौथी पीढ़ी में उम्मी की बेटी अंशु शामिल है। ये पीढ़ियाँ किसी भी आयुवर्ग की हो पर जीवनयापन के लिए संघर्ष प्रत्येक पीढ़ी को करना पड़ता है। इनके संघर्षों के कारण यह उपन्यास केवल नारी मुक्ति तक ही सीमित नहीं अपितु इसमें राजनीतिक भ्रष्टाचार, व्यवस्था की कुरूपता का भी चित्रण किया गया है। ईसाई धर्म की कमला की बेटी महिमा का उसके मौसेरे भाई द्वारा बलात्कार किया गया, यही नहीं इस के बाद वो अपने चार दोस्तों से भी उसका बलात्कार करवाता है कि कहीं वो अपना मुँह न खोल दे। इस जघन्य हत्याकाण्ड को भ्रष्ट व्यवस्था की वजह से भुला दिया गया। लेखिका कहती है–"पचासी लाख रुपयों के मोह में प्रांत की पुलिस 'महिमा कांड' भूल गयी। धीरे से वह चैकीदार भी गायब हो गया और गुड्डू के अपराध की फाइल न जाने थाने के किस शैल्फ में ऐसे चिपकी की ढूँढने पर भी नहीं मिली।"[10] ऐसे भ्रष्ट तन्त्र से न्याय के लिए एक अकेली महिला कब तक अपना संघर्ष जारी रख सकती है?

उपन्यास में एक विशिष्ट पात्र रीमा है जो कि सीमा की छोटी बहन है। सीमा से वह बचपन से ही ईर्ष्या करती है। कहीं न कहीं उसमें अपने आपको अधिक श्रेष्ठ दिखाने की चाह है। परिवार वालों के विरोध करने के बावजूद भी वो असगर नाम के मुस्लिम युवक से विवाह कर विदेश चली जाती है। जब भी भारत आती है तो अपनी अमीरी का रौब सबके ऊपर झाड़ती है। ऊपर से दिखने में सीमा जितनी संयत और सफल वैवाहिक जीवन वाली लगती है भीतर से वो उतनी ही उलझी और परेशान है। परन्तु वह फिर भी समस्याओं से निपटती हुई उन्हें सुलझाती है। रीमा के पति का पहला विवाह हो चुका है और पहली पत्नी से बच्चे भी है। रीमा को यह बात बहुत बाद में पता चलती है और वो साफ शब्दों में असगर से कह देती है कि मैं यह बिल्कुल सहन नहीं कर सकती। जब असगर अपनी पहली पत्नी और उसकी बेटी की वजह से भारत आकर बसना चाहता है तो रीमा तीव्र विरोध करती हुई अपनी माँ से कहती है–"मैं कैसे एकाएक सब छोड़कर यहाँ रोने आ जाऊँ। प्लान करना पड़ता है, अपनी जड़ें उखाड़ने के लिए जब तक इनका यह सिलसिला जारी रहेगा, मैं वापस नहीं आ सकूँगी।"[11] रीमा के अंदर संघर्षों से लड़ने की जुझारू प्रवृत्ति नजर आती है।

उपन्यास के अन्य पात्रों के माध्यम से नारी स्वावलम्बन को भी उजागर किया गया है। एक ऐसा ही पात्र है–शांति, जो कि सीमा की कामवाली बाई है और एक निम्न परिवार से है। उसका पति शराबी है और रोज रात को शराब पीकर उसे मारता है। शांति अनपढ़ है परन्तु कर्मठ है। वो जो भी मेहनत करके कमा के लाती है उसे उसका पति छीन कर शराब पी जाता है। सीमा शांति का साथ देती है और उसे समझाती है कि उसे हार नहीं माननी चाहिए बल्कि अपने पति का डटकर मुकाबला करना चाहिए। सीमा की बातों से ही प्रभावित होकर शांति, संघर्ष करती हुई अपने पति को लच्छन सुधारने के लिए कहती है। वह सीमा को इस बारे में बताती है–"कह दिया है लच्छन सुधार ले, वरना घर में भी ताला डाल दूँगी। दे किराया और खोल ताला।"[12] नारी को संघर्ष से यदि मुक्ति चाहिए तो उसका मुख्य आधार नारी का आर्थिक स्वालंबन ही है।

सरिता एक समाज सेविका है जो कि उच्च वर्ग से सम्बन्ध रखती है। अपने पति के पैसे और प्रेमी की पहुँच के कारण वो नगरपालिका चुनाव जीत जाती है। परन्तु नगर की भलाई के लिए वो कोई भी उचित निर्णय नहीं ले सकती क्योंकि एक तरफ उसका पति कुछ कहता है और दूसरी तरफ उसका प्रेमी सूरजभान कुछ और करवाना

चाहता है। उसका जीवन इन दोनों के कारण अनेक संघर्षों में फंस कर रह जाता है। जब वह नगर सुधार के लिए कार्य करना चाहती तो उसका विरोधी 'पालीवाल' सरिता और सुरजभान के बेहूदा चित्र अखबार में प्रकाशित करवा देता है। यदि किसी औरत को कमजोर करना हो तो सबसे पहला हथियार उसका चरित्र हनन करना है और यही कार्य पालीवाल करता है। इस पर टिप्पणी करते हुए सरिता सीमा से कहती है–''मै मानती हूँ कि सूरजभान मुझे पसन्द करते हैं लेकिन मै वेश्या नही हूं कि सारे नेताओं का बिस्तर गरम करूंगी।''[13] जब सरिता अधिक विद्रोह करती है तो संदिग्ध अवस्था में अधजली हुई लाश उसी के घर में मिलती है। कुछ लोग कहते है कि सरिता ने आत्महत्या कर ली तो कुछ लोग दबी हुई आवाज में कहते है कि सरिता की हत्या कर दी गई।

नारी विमर्श की दृष्टि से उपरोक्त विवरण के आधार पर यह स्पष्ट है कि 'कौन नही अपराधी' उपन्यास नारी संघर्ष की अभिव्यक्ति है। नारी बचपन से ही संघर्ष करना आरम्भ करती है और इस समाज में उसे आयुपर्यन्त संघर्ष ही करना पड़ता है। इस तथ्य को लेखिका ने अनेक पात्रों के संघर्षमयी जीवन से दर्शाया है, शोषण होने के पश्चात भी उसमें संघर्ष की हिम्मत और असंगत के प्रति रोष है। स्त्री को स्वयं सक्षम बनना होगा। इस संदर्भ में रमणिका गुप्ता लिखती हैं–"स्त्रियां स्वयं सक्षम बने और कानूनों का उपयोग करें। झूठी इज्जत, बर्बर और गैर जिम्मेदार परिवार व जड़ समाज की प्रतिष्ठा की भावना को अपने मन से निकाले बिना या इन संस्थाओं को ध्वस्त किए बिना, एक ऐसा नया समाज नहीं बन सकता, जहाँ स्त्री भी एक मनुष्य समझी जाए।''[14] यह सत्य भी है कि नारी को अपनी स्थिति सुधारने के लिए स्वयं ही प्रयास करना होगा। समाज में प्रचलित रूढ़ मानसिकता, पितृसत्तात्मक व्यवस्था, अंधविश्वासों, गल चुके रीति–रिवाजों के द्वारा नारी शोषण की जो प्रक्रिया चलती आ रही है, उससे भी नारी को स्वतंत्रता दिला कर स्वयं का अस्तित्व कायम करने में सहायता करना नारी विमर्श का लक्ष्य है।

सन्दर्भ–सूची

1. गीते, नीहार, कृष्णा अग्निहोत्री सम्पूर्ण साहित्य का मूल्यांकन, अमन प्रकाशन, कानपुर, पृ. 45
2. अग्निहोत्री, कृष्णा, कौन नहीं अपराधी, अमन प्रकाशन, कानपुर, पृ. 7
3. मुद्‌गल, चित्रा, तहखानों में बंद अक्स, नई दिल्ली, कल्याणी शिक्षा परिषद्, पृ. 98
4. भुरे, बालाजी श्रीपति, कृष्णा अग्निहोत्री के उपन्यासों में नारी, कानपुर, शैलजा प्रकाशन, पृ. 118
5. अग्निहोत्री, कृष्णा, कौन नही अपराधी, कानपुर, अमन प्रकाशन, पृ. 29
6. वही, पृ. 51
7. शर्मा, नासिर, औरत के लिए औरत, नई दिल्लीः सामयिक प्रकाशन, पृ. 22
8. अग्निहोत्री, कृष्णा, कौन नही अपराधी, कानपुर, अमन प्रकाशन, पृ. 65
9. वही, पृ. 251
10. वही, पृ. 237
11. वही, पृ. 211
12. वही, पृ. 240
13. वही, पृ. 291
14. गुप्ता, रमणिका, स्त्री मुक्ति संघर्ष और इतिहास, नई दिल्ली, सामयिक प्रकाशन, पृ. 1

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 254-258

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

हिन्दी कहानियों में महिला मानवाधिकार

*मनोज कुमार राघव**

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मानवाधिकारों का इतिहास लगभग 3260 ईसा पूर्व पुराना है। मानवाधिकारों के केन्द्र में 'मनुष्य मानवता का मूल्य है' विचार प्रतिस्थापित है। थामस पेन द्वारा प्रयुक्त 'मानव अधिकार' शब्द 'पुरुषों के अधिकार' का अनुवाद था, किन्तु अब इसके इसमें महिला-पुरुष दोनों सम्मिलित हैं।

अंग्रेजी लेखिका व दार्शनिक मैरी वालस्टोनक्राफ्ट 'इंडिकेशन ऑफ द राईट्स ऑफ वीमेन' लिखकर महिला मानवाधिकारों की पुरोधा बन गईं। कालान्तर में जॉन स्टुअर्ट मिल, फ्रेडरिक एंगेल्स, एलेग्जेंड्रा जैसे विचारकों ने इस परम्परा को समृद्ध किया।

28 फरवरी, 1909 को अमेरका की शोसलिस्ट पार्टी द्वारा प्रथम महिला दिवस मनाने का उल्लेख मिलता है। इस दिवस की अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता-प्राप्ति में जर्मन समाजवादी विचारक लुइस जेइट्स, क्लारा जेट्किन प्रारंभिक प्रस्तावों में गिनी जाती हैं। बीसवीं सदी के प्रारम्भ में एमिली पेनखस्ट को महिला मानवाधिकार के हन्दर्भ में नायिका का दर्जा दिया जा सकता है।

एक महिला के नज़रिए से आधुनिक समाज के अन्तर्विरोधों को साहित्य के माध्यम से रेखांकित करने वालों में अँग्रेजी लेखिका वर्जीनिया वुल्फ उल्लेखनीय है। निस्सन्देह फ्रांसीसी दार्शनिक सिमोन द बोउआर की 'द सेकेंड सेक्स' पुस्तक महिलाओं के मानवाधिकारों के सन्दर्भ में माल के पत्थर की हैसियत रखती है। इसी सन्दर्भ में कैरोल हैनिश के 'निजी ही राजनीतिक है' निष्कर्ष की भी अपनी महत्ता है। अन्ततः संयुक्त राष्ट्र महासभा ने वर्ष 1975 को 'अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष' घोषित कर महिला मानवाधिकारों को सार्वभौमिकता मान्यता दी। 1 सितम्बर, 1995 में बीजिंग (चीन) में आयोजित चतुर्थ विश्व महिला सम्मेलन में 'विश्व को महिलाओं की दृष्टि से देखो' का आह्वान किया गया एवं बीजिंग घोषणा के 14वें बिन्दु में उद्घोषित किया गया था कि 'महिलाओं के अधिकार मानव अधिकार हैं।'

बीसवीं सदी के पहले-दूसरे दशक में भारतीय हिन्दी साहित्य में भी महिला मानवाधिकारों की अनुगूँज ध्वनित होने लगी थी। भवदेव पाण्डेय लिखते हैं कि "हालाँकि सदी के प्रारंभिक दो दशकों में महिलाओं द्वारा लिखी कहानियाँ शिल्प-विधान की दृष्टि से अवश्य उपेक्षणीय थीं, परन्तु उनमें कुछ मुद्दे इस कदर गौरतलब है कि उनकी उपेक्षा करना आलोचना और इतिहास को पुरुषवादी समाज का प्रवक्ता स्थापित करना था। उन कहानियों में नारियों के प्रति मर्दों की नाइंसाफी, बलात्कार वृत्ति, परिवार में दासी की तरह बने रहने की नियति, अशिक्षित बने रहने की मजबूरियों और इन्हीं प्रकार की दूसरी समस्याओं के सवाल उठाए गये थे। वह बेहद पिछड़े शिल्प की लिखी हितोपदेशिनी-वृत्ति की कहानियाँ भी पुरुष समाज के चेहरों पर प्रश्नचिह्न की तरह उभरी हुई थीं।"[1] अर्थात् भारतीय कहानी विधा अपने प्रस्थान बिन्दु से ही महिलाओं के मानवाधिकारों के प्रति सचेत रही है। प्रेमचंद ने भी 1914 में ही हिन्दू समाज में स्त्रियों की गौण स्थिति, छुआछूत की दूषित मनोवृत्ति, किसानों की दुर्दशा, जमींदारों के अत्याचार आदि को अपनी कहानियों का वर्ण्य-विषय बनाना प्रारम्भ कर दिया था।

यह कहना समीचीन होगा कि प्रत्येक कहानी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से मानवाधिकारों से सम्बन्धित होती हैं। कहानी विधा की आरंभिक अवस्था में ही चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' ने 'उसने कहा था' जैसी अविस्मरणीय कहानी लिखकर इस विधा का गौरव बढ़ाया। प्रेमचन्द के समकालीन जयशंकर प्रसाद का भी हिन्दी कहानी के विकास में ऐतिहासिक अवदान है। प्रेमचन्द के आगमन से तो हिन्दी कहानी का क्षितिज ही बहुरंगी हो उठा। इनकी कहानियों के विषयों में अद्वितीय विविधता दृष्टिगत होती है। कथा–सम्राट प्रेमचन्द ने 'बेटों वाली विधवा' कहानी में संयुक्त हिन्दू परिवार में पति की सम्पत्ति में पत्नी के कानूनी अधिकार का सवाल उठाया है। 'मिस पद्मा' कहानी में लिव-इन-रिलेशनशिप की समस्या को चित्रित किया गया है एवं बताया गया है कि इसमें अक्सर स्त्री ही छली जाती है। इसी प्रकार 'विध्वंस' कहानी में भनगी के मानवाधिकारों का हनन चित्रित किया गया है।

* *असिस्टेण्ट प्रोफेसर (हिन्दी विभाग), गवर्नमेण्ट पी.जी. कॉलेज, देवली, टोंक*

मुंशी प्रेमचन्द की कहानियों में न केवर तत्कालीन समय व समाज का चित्रण प्राप्य है, बल्कि वर्तमान में प्रचलित सभी तथाकथित विमर्शों के बीज भी विद्यमान हैं। इनकी कहानियाँ महिला मानवाधिकारों की ही नहीं वरने मानव अधिकारों के प्रति जागरूकता विकसित करती हैं। प्रेमचन्द की कहानियाँ उद्घोष करती हैं कि हर मनुष्य का, हर मजदूर का मानवाधिकार होता है। ना केवल मनुष्य का, बल्कि पशु का भी। प्रेमचन्द न केवल मनुष्यों के, बल्कि पशु-पक्षियों के अधिकारों के भी प्रवक्ता थे। प्रेमचन्द ने जिन मुद्दों को अपने कथा साहित्य में उठाया है व आज भी प्रासंगिक हैं। महिला मानवाधिकारों पर कहानी लेखन कर आज अनेक पुरुष व महिला कहानीकार ख्याति प्राप्त कर रहे हैं, किन्तु निस्सन्देह प्रेमचन्द मानवाधिकारों के पुरोधा कहानीकार हैं। यदि मानवाधिकारों को कहानियों का प्रमुख केन्द्रबिन्दु न मानें तो प्रेमचन्द द्वारा प्रशस्त सामाजिक यथार्थवाद को यशपाल, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', अमृतराय, भैरव प्रसाद गुप्त, रांगेय राघव आदि ने अपनी कहानियों में विकसित किया। यहाँ यशपाल की लिखी 'करवा का चौथ' कहानी का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा। इस कहानी में पति की प्रताड़ना से तंग और क्षुब्ध पत्नी करवा चौथ के व्रत पर भूखे रहने की अपेक्षा रोटी खा लेती है और पति के पीटने पर चिल्लाते हुए कहती है–'मार ले जितना मारना हो, मैंने कौन सा तेरे लिए व्रत किया है'। अत्याचारी पति के प्रति यह विद्रोह नारीवाद या स्त्री विमर्श या महिला मानवाधिकार का उदाहरण माना जा सकता है। प्रेमचन्द परम्परा से अलग जयशंकर प्रसाद द्वारा वैयक्तिक भावों, संवेदनाओं और अन्तर्द्वन्द्वों को जैनेंद्र, अज्ञेय, इलाचंद्र जोशी आदि ने अपनी मनोवैज्ञानिक कहानियों में विकसित किया।

बीसवीं सदी के छठवें से आठवें दशक के अन्त तक हिन्दी कहानी के क्षितिज पर अनेक कहानी आन्दोलन उदय एवं अस्त हुए। इन आन्दोलनों के बीच भी कहानी अपना स्वतंत्र सृजनशील रूप सजाती सँवारती रही। बीसवीं सदी के अंतिम दशक में आकर ही हिन्दी कहानी तथाकथित आन्दोलनों और विचारधाराओं से स्वतन्त्र होती प्रतीत होती हैं। बीसवीं सदी के अंतिम दशक की हिन्दी कहानी ने परम्परा और आधुनिकता के संक्रमण काल में समाज के यथार्थ को पहचानकर शब्दबद्ध करने की चुनौती हुबहू स्वीकार की। हिन्दी कहानी ने इस दशक के भारतीय समाज में व्याप्त सांप्रदायिकता, सामाजिक न्याय, जातिवाद, दलित चेतना, खगोलीकरण, उदारीकरण, बाजारवाद, उपभोक्तावाद, मानवाधिकार, स्त्री विमर्श, कम्प्यूटर सूचना क्रांति आदि से जुड़ी चुनौतियों और प्रश्नों की गहरी जाँच-परख की। मानवाधिकारों के एक विशिष्ट आयाम महिला मानवाधिकारों के यथार्थ की स्थूल रूप में ही नहीं, सूक्ष्म रूप में भी हिन्दी कहानीकार गहन पड़ताल कर रहे हैं।

स्त्री एवं स्त्री से जुड़े विषय हमेशा हिन्दी कहानी के प्रमुख सरोकारों में सम्मिलित रहे हैं। हिन्दी कहानीकार लगातार स्त्री से जुड़ी विभिन्न समस्याओं पर कलम चलाते रहे हैं। नारीवादी आन्दोलनों, सरकारी गैर-सरकारी संगठनों, आरक्षण व कानूनी प्रावधानों के आलोक में लगातार बदलती परिस्थितियों में स्त्री की वेदना की पहचान करने का प्रयास हिन्दी कहानीकारों द्वारा किया गया है। जैसे कहानीकारों में शिवमूर्ति उल्लेखनीय कहे जा सकते हैं। उनके 'केशर-कस्तूरी' कहानी संग्रह की सबसे चित्रत कहानी 'त्रिया चरित्तर' है। यह एक छोटे से गाँव में रहने वाली संघर्षशील युवती विमली की कहानी है। विमली के साथ उसका श्वसुर बलात्कार करता है एवं विमली असलियत बयान कर देने पर वह पंचायत के सामने उस पर यह आरोप लगवा देता है कि इमली ने अपने पति के जीवित रहते हुए भूतपूर्व प्रेमी के साथ जानबूझकर यह कुकृत्य किया। फलतः दण्डस्वरूप विमली के ललाट को शरेआम गर्म करछुल से दागा जाता है। शिवमूर्ति की एक अन्य कहानी 'कसाईवाड़ा' में गाँव के परधान जी और लीडर जी सनीचरी नाम की गाँव की ही एक महिला की बेबसी और लाटारी के साथ कुटिल राजनीतिक खेल खेलते हैं। 'तिरिया चरित्तर' की विमली और 'कसाईवाड़ा' की सनीचरी के बाद शिवमूर्ति 'अकालदंड' नामक कहानी में मानो स्त्रियों के शोषण का परिणाम प्रदर्शित करते हैं। शोषक पक्ष के प्रतिनिधि सिकरेटरी बाबू महेशा शुरजी के शरीर पर घात लगाए रहते हैं। लगातार उत्पीड़न और बेबशी से तंग आकर एक दिन सुरजी हँसिए से सिगरेटरी बाबू का लिंगोच्छेदन कर डालती है। 'अकालदंड' कहानी प्रकारान्तर से इंगित करती है कि महिलाओं के अधिकारों को लम्बे समय तक अनदेशा नहीं किया जा सकता।

महिला उत्पीड़न पर लिखी अरुण प्रकाश की 'काहीन नहीं' श्रेष्ठ कहानी है। इसमें सवित्तरी और देवो मलिक की प्रेमकथा का कुरणिक अन्त गर्भवती सवित्तरी के पेट पर राम अवतार के कूदने से एवं इसके बाद गला घोंटकर सवित्तरी की लाश को गंडक नदी में बहा देने से होता है। स्वयं प्रकाश की लम्बी कहानी 'बलि' में पिछड़े ग्रामीण अंचल की एक ऐसी लड़की की कथा है जो साहब के बँगले पर घरेलू काम करती है और अपने शोषण के कारण धीरे-धीरे बँगलेवासियों के प्रति शत्रु भाव विकसित करने लगती है। लड़की साइकिल सीखने, नाइट क्लास में पढ़ने और नौकरी करने के सपने देखने लगती है। लेकिन लड़की की पड़ोस के नौकर से बढ़ती नजदीकियों के चलते साहब और साहब की बीवी सतर्क हो जाते हैं और ऊँच-नीच होने के भय से लड़की को उसके पिता के साथ वापस गाँव भेज देते हैं। गाँव में लड़की की शादी जबरन व निठल्ले व्यक्ति से करवा दी

जाती है। अंततः लड़की आत्महत्या कर लेती है। स्वयं प्रकाश की यह कहानी सहज-स्वाभाविक दृष्टिगत होती सामाजिक व्यवस्था में स्त्री के अनदेखे-अप्रत्यक्ष शोषण को प्रकट करती है।

मैत्रेयी पुष्पा की कुछ कहानियों में स्त्री की वेदना और यातना को प्रचलित स्वरूप से अलग प्रस्तुत किया गया है। मैत्रेयी पुष्पा की कहानी के कतिपय स्त्री पात्र अपने शोषण और उत्पीड़न पर अपना प्रतिरोध अलग-अलग ढंग से व्यक्त करते हैं। मैत्रेयी पुष्पा की 'गोमा हँसती है' कहानी में गोमा अपने बेमेल विवाह की विवशता का प्रतिकार बलि सिंह से विवाहेत्तर सम्बन्ध बनाकर करती है, ताकि वह परिवार और विवाह दोनों ही संस्थाओं का इंद्रजाल उनके भीतर रहकर छिन्न-भिन्न कर सके। मैत्रेयी पुष्पा की ही लिखी 'राय प्रवमई' कहानी स्त्री की वेदना, यातना और उत्पीड़न की परतों को ऐतिहासिक सन्दर्भों में अभिव्यक्त करती है। बकौल वीरेन्द्र यादव 'राय प्रवीण' कहानी में ''किस्सागोई, प्रेमगाथा और समसामयिक सन्दर्भ एक साथ गुंफित होते दीखते हैं। एक साथ कई स्तरों पर चलने वाली यह कहानी नारी दासता व प्रतिरोध का जटिल व मार्मिक आख्यान है। शील, सतीत्व, पतिव्रता तथा स्त्री-धर्म सरीखे सनातन मूल्यों के छद्म को उधेड़ती यह कहानी युगों-युगों से नारी शोषण की दास्तान को अद्यतन सन्दर्भों के साथ उद्घाटित करती है।''[2]

ममता कालिया की 'बोलने वाली औरत' कहानी में एक ऐसी बहू की स्थिति दर्शाई गई है जो पति सास एवं ससुर के निर्देशों को सुन-सुनकर कुंठाग्रस्त हो जाती है क्योंकि अगर वह उन सलाहों-निर्देशों पर प्रतिक्रिया व्यक्त करेगी तो उस पर बोलने वाली औरत का आक्षेप लगा दिया जायेगा। यह कहानी सीधे-सीधे नारी के अभिव्यक्ति के मानवाधिकार हन को रेखांकित करती है। चित्रा मुद्गल को 'प्रेतयोनि' कहानी में स्त्री के स्त्री होने से भयभीत होने की विडंबना है। किसी टैक्सी चालक द्वारा अनिता के बलात्कार की झूठी खबर फैल जाने पर अनिता स्वयं खबर का खण्डन करती है एवं अपने माता-पिता को भी अपनी पवित्रता का विश्वास दिलाती है फिर भी माता-पिता के मन में भय के संदेह के भाव बने रहते हैं तथा अनिता भी भय व तनावग्रस्त हो स्त्री योनि को प्रेतयोनि मानकर घर में ही कैद हो जाने को विवश हो जाती है।

कमल कुमार की कहानी 'अन्तयात्रा' भ्रूण हत्या के माध्यम से महिला मानवाधिकारों को प्रतिबिम्बित करती है। सविता के गर्भ में लड़की होने का पता चलने पर पति व सास उसे गर्भपात हेतु विवश करते हैं। सविता भ्रूण हत्या के विचार से ही सिहर जाती है। वह भरसक प्रतिरोध करती है, किन्तु उसकी एक नहीं सुनी जाती। कितनी बड़ी बिडम्बना है कि स्त्री को स्वयं की मर्जी से स्वयं की सन्तान को जन्म देना भी नसीब नहीं। अन्ततः गर्भपात के बाद पता चलता है कि भ्रूण लड़की का नहीं, लड़के का था। कहानी सविता, पति व सास के माध्यम से स्त्री, पुरुष व मानवाधिकारों के अलग-अलग अर्थों व सन्दर्भों को रूपायित करती है। गीतांजलिश्री की 'बेलपत्र' कहानी अंर्तधार्मिक विवाह के प्रसंग के माध्यम से प्रश्न उठाती है कि धर्मांतरण स्त्री को ही क्यों करना चाहिए? हमेशा परिवार और समाज के पाटों के बीच स्त्री को ही क्यों पिसना पड़ता है?

कुछ कहानीकार पति-पत्नी के काम-सम्बन्धों और इन्हीं के बहाने पत्नी के दैहिक शोषण को चित्रित करती कहानियों में सूक्ष्म स्तर पर महिला मानवाधिकार के हनन को साहसिक व संतुलित रूप से रेखांकित करने का प्रयास कर रहे हैं। शिशिर पाण्डेय की 'बीती हुई शाम का सुख' कहानी में पति-पत्नी के बीच अद्भुत सुखदायक सहज-स्वाभाविक काम-सम्बन्ध अति के कारण स्त्री के लिए यातना और वितृष्णा का कारण बन जाते हैं। यह कहानी रेखांकित करती है कि स्त्री के लिए कुछ सन्दर्भों में 'हाँ' या 'ना' कहना भी उसके शोषण व उत्पीड़न के कारक हैं। कुछ विशेष परिस्थितियों में स्त्री की 'हाँ' और 'ना' भी उसके मानवाधिकारों की रक्षा के बजाय उसका हन ही साबित होती हैं। शरद सिंह की कहानी 'कृपया शांत रहिए' में कहानीकार महिला मानवाधिकार से जुड़ा एक अनछुआ आयाम उजागर करते हैं। पुरुषों के लिए लघुशंका का स्थान चुनना शायद ही कभी कोई समस्या रही होगी किन्तु सार्वजनिक स्थानों पर स्त्री के लिए यही बात एक बड़ी समस्या बन जाती है। अंततः यह बात भी महिला गरिमा से जुड़कर महिला मानवाधिकार का प्रश्न बन जाती है।

स्त्री विमर्श के माध्यम से महिला मानवाधिकारों की आवाज उठाने वाले कहानीकारों में उर्मिला शिरीष का नाम लिया जा सकता है। उनकी 'एम. एल. सी' कहानी इस बात का जीवंत दस्तावेज है। कहानी की नायिका खेंरून अपने देवर द्वारा किसी घरेलू बात पर मारी-पीटी जाने पर उसके खिलाफ बलात्कार का झूठा केस दर्ज करवाने थाने पहुँच जाती है। देवर की मारपीट को वह इज्जत, अभिमान व अधिकार का प्रश्न बना लेती है। यहाँ तक कि वह दरोगा को रुपयों की और डॉक्टर को शरीर की रिश्वत देने को भी तैयार है। डॉक्टर समझ जाता है कि ''बाहरी चोटों से ज्यादा घायल वह भीतरी चोटों से थी, उसकी आत्मा...उसका मन...उसका हृदय जवाब माँग रहा था...कि अगर वह देह है, तो उसका सौदा करने वाला कोई और कैसे हो

सकता है? और अगर वह इंसान है...तो उसका अपमान क्यों होना चाहिए...जबकि वह घर चलाती है...कमाती है...कमाने वाले पुरुषों का जो रुतबा और मान होता है, वह उसका क्यों नहीं होना चाहिए? उसकी देह से तरता-कतरा बहता खून और बूँद-बूँद टपकता पसीना...इस बात की गवाही दे रहा था कि वह दूसरों की अधिकार लिप्सा के खिलाफ खड़ी है।''[3]

अमरीक सिंह दीप की कहानी 'यह मिथक नहीं' की सावित्री अपने नर पिशाच पति शतराम की शराबखोरी व मारपीट से तंग है। फिर भी मेननजाइटिस के कारण मौत के मुँह में जाते सतराम की वह तन-मन-धन से सेवा करके उसे बचा लाती है। स्वस्थ होने के नौ-दस महीने बाद ही सतराम सावित्री को बेरहमी से पीट-पीटकर मरणासन्न कर देता है। जहाँ एक ओर सावित्री सतराम को पति मात्र होने के कारण पारंपरिक मान देती है, वहीं दूसरी ओर उसके पशुतापूर्ण व्यवहार के कारण वह उससे असीमित घृणा भी करती है। किन्तु सावित्री की पति के प्रति घृणा सभी पुरुषों के प्रति घृणा में नहीं बदल पाती है। वह सभी पुरुषों को एक जैसा नहीं मानती। वह परिवार के संकटकाल में सदा सहायक समीर बाबू का बहुत सम्मान करती है। अंततः सावित्री का मन परम्पराओं से विद्रोह कर उठता है, उसे अपने अधिकारों का स्मरण हो जाता है। सवित्री परिवर्तित भंगिमा में मन की बात कह उठती है कि ''जानते हो समीर बाबू, आज सुबह जब यह नासपीटा मुझे बेरहमी से कूट रहा था मैं क्या सोच रही थी कि बीमारी की बेला अगर मैंने इसे मर जाने दिया होता तो अच्छा था।''[4]

अनीता गोपेश की कहानी 'एक औरत कई कहानियाँ'' की मधूलिका दी भाई-भाभी-पुत्र के होते भी अकेले रहना तय करती है, यद्यपि जिजीविषा से भरपूर मधूलिका में पारिवारिकता व रिश्तों के लिए बहुत ललक है। लेकिन पति से तलाक के कारण वह इकलौते पुत्र के विरह-विमुख हो जाने की अपराधिनी बन जाती है। विश्व साहित्य की अध्येता विजय शर्मा के शब्दों में ''अकेली स्त्री होने के कारण उन्हें तरह-तरह के फतवे दिये जाते थे, यह सारे फतवे सारी की सारी परिभाषाएँ, सब यौनिकता से जुड़े होते। कभी उन्हें फ्लर्ट कहा जाता, कभी लेस्बियन, तो कभी हिप्पोक्रेट।''[5]

अपर्णा मनोज की कहानी ''पेनेलोपी का रोजनामचा'' बेटी और माँ के सम्बन्धों के माध्यम से महिला मानवाधिकारों की बात करती है। इस कहानी में दो बेटियों के पिता प्रतिभासम्पन्न पत्नी को उसके विवाह पूर्व सम्बन्धों के लिए कभी माफ नहीं कर पाते हैं। अनीता गोपेश व अपर्णा मनोज की कहानियाँ रेखांकित करती हैं कि जब जब भी स्त्री ने अपने लिए जीना चाहा है, तब तब उसकी आत्मा लहूलुहान हुई है।

उषा महाजन की कहानी 'पुल' में स्त्री-पुरुष में समता की आकांक्षी स्त्री को पुरुष एक 'चीज' या मात्र 'देह' के रूप में देखता है। इस कहानी में विद्या का पति बिशन सुखी जीवन बिताने के लिए अपनी पत्नी को सोमेश को उपहारस्वरूप दे देता है। यहाँ प्रश्न उठता है कि क्या ऐसी परिस्थितियों में महिला मानवाधिकार प्राप्त किये जा सकते हैं? ऐसी ही कहानी है अखिलेश की 'यशगान' कहानी में छैलबिहारी नौकरी के बदले अपने दोस्त भोला और परमू को अपनी प्रेमिका सरोज को भी सौंपने को तैयार है। कहानी की तेजतरार्र महिला नेता मीरा यादव भी पार्टी मुखिया के कमरे में रंडी, हरामजादी और सुअरी संबोधन से नवाजी जाती है। महिला मानवाधिकारों का यथार्थ दर्शाता कहानी का एक राजनेता पात्र राजदेव मिश्र कहता है, ''हम लोगों के लिए राजनीति जीवनसंगिनी है और पत्नी रखैल।''[6]

शशिप्रभा शास्त्री की कहानी 'गंध' पुरुष समाज की दोहरी नैतिकता पर आक्रोश व्यक्त करती है। कहानी की आक्रोशित नायिका यह सोचने के लिए विवश है कि–''स्त्रियों के लिए पुरुष वेश्यालय क्यों नहीं हुए जहाँ वे भी स्वतंत्रता से जा सकें।''[7]

चित्रा मुद्गल की कहानी 'रानी माँ' का चबूतरा की गुलाबी बच्चों के लालन-पालन के लिए कठोर परिश्रम करने वाली स्वावलंबी स्त्री है। रात के समय जब वह काम पर जाती है तो लोग उसे गलत नजर से देखते हैं। गुलाबी की तरह स्वावलंबी बनकर जीना स्त्री का अधिकार है, पर स्त्री इससे वंचित है। हुस्न तबस्सुम निहा की कहानी 'ये बेवफाइयाँ' कहानी में पति बड़ी उम्र में पहुँचकर एक युवा स्त्री से दूसरा निकाह कर लेता है और पहली पत्नी को मार पीटकर मायके भेज देता है। वही पति अब अपनी पहली पत्नी से फिर निकाह करना चाहता है। ऐसी स्थिति में पहली पत्नी प्रश्न उठाती है कि ''क्या समझा जाना चाहिए कि औरत की इच्छा-अनिच्छा का कोई अर्थ नहीं है? क्या मर्द होना इसी को कहते हैं कि वह जब चाहे औरत के अधिकारों को छीन ले।''[8]

महिला मानवाधिकारों के प्रति आशंकित पितृशत्ता के प्रतिनिधियों के मन में एक प्रश्न स्थाई रूप से विद्यमान रहता है कि आखिर मानवाधिकारों के माध्यम से स्त्री चाहती क्या है? क्या वह समस्त पुरुषों को गुलाम बनाकर अपनी मातृसत्ता कायम करना चाहती है या फिर वह तानाशाह बनकर निर्बाध विलास में आकंठ निमग्न होना चाहती है? इस सन्दर्भ में प्रभा खेतान का यह कथन उद्धृत करना समीचीन होगा कि ''स्त्री न स्वयं गुलाम रहना चाहती है, न ही पुरुष को गुलाम बनाना चाहती है। स्त्री चाहती है मानवीय अधिकार।''[9]

वस्तुतः स्त्री की दोयम दर्जे की स्थिति विकसित, अर्धविकसित, विकासशील, अर्द्धविकासशील व अविकसित देशों में लगभग एक सामन ही है। पितृसत्तात्मक सत्ताओं द्वारा उनके मानसिक अनुकूलन की प्रक्रिया भी सभी देशों में लगभग एक सी ही है। यहाँ तक कि मातृसत्तात्मक समाज में भी उनकी स्थिति को आदर्श नहीं कहा जा सकता है। शोषण, दमन, लैंगिकता, अधिकारविहीनता से लड़ने के लिए लेखन एक अच्छा हथियार है। परिवार, समाज व संसार न तो केवल पुरुषों के बल पर संचालित हो सकता है और न ही केवल महिलाओं के बल पर। पारस्परिक सम्मान, समझ व जागरूकता से ही यह उक्ति सच हो सकती है कि महिलाओं के अधिकार ही मानव अधिकार हैं।

सन्दर्भ-सूची

1. भवदेव पांडेय : हिन्दी कहानी का पहला दशक, 2006, पृ. 48
2. नीरज खरे : बीसवीं सदी के अन्त में हिन्दी कहानी, 2004, पृ. 68
3. राजेन्द्र यादव (सं.) : हंस, नवंबर, 2009, पृ. 87
4. वही, पृ. 81
5. आलोक श्रीवास्तव (सं.) : अहा! जिन्दगी, मार्च, 2016, पृ. 21
6. किशन कालजयी (सं.) : संवेद, जुलाई, 2017, पृ. 161
7. इंदुशेखर तत्पुरुष (सं.) : मधुमती, जून, 2017, पृ. 16
8. मंजू चतुर्वेदी : हिन्दी साहित्य विमर्श, 2018, पृ. 24
9. इंदुशेखर तत्पुरुष (सं.) : मधुमती, जून, 2017, पृ. 17

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 259-262

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

प्रेमचन्द की कहानियों पर महात्मा गाँधी के स्त्री विषयक चिन्तन का प्रभाव

*सीमा कुमारी**

सन् 1915 के आते-आते भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के स्वरूप में व्यापक परिवर्तन देखने को मिलता है। ब्रिटिश साम्राज्यवादी शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष करने या यों कहिए कि स्वराज्य प्राप्ति हेतु इस दौर के समाज सुधारकों (डॉ. एनीबेसेंट, ज्योतिबा फुले एवं सावित्रीबाई फुले), महान चिन्तकों (रविन्द्रनाथ टैगोर), भारतीय राजनीति की धुरी कहे जाने वाले (पण्डित जवाहर लाल नेहरू, डॉ. भीमराव अंबेडकर), महान् साहित्यकारों (महावीर प्रसाद द्विवेदी, रामचन्द्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानन्दन पन्त, महादेवी वर्मा) द्वारा भारतीयों को सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं भाषायी रूप से संगठित करने पर अत्यधिक बल दिया जाने लगा।

उल्लेखनीय है कि बीसवीं सदी की भारतीय राजनीति, समाज, भाषा, दर्शन, संस्कृति, साहित्य इत्यादि मानवीय सरोकारों को यदि किसी व्यक्तितेव ने सर्वाधिक रूप से प्रभावित किया है तो निश्चित रूप से महात्मा गाँधी ही हैं, जिन्होंने जनसामान्य को अपने चिन्तन का विषय बनाया। गाँधीजी का सामाजिक एवं राजनीति के अग्रदूत के रूप में महत्वपूर्ण स्थान है। तत्कालीन भारत की राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृति गतिविधियों, आन्दोलनों में उनकी प्रभावशाली भूमिका रही। उन्होंने तद्युगीन भारतीय जनमानस को एक ऐसा जीवन-दर्शन दिया जिसमें सत्य, अहिंसा, क्षमा, दया, सर्वधर्म समभाव, त्याग अद्‌भुत मनोबल शक्ति अन्तर्निहित हो। वे ऐसी शैक्षिक व्यवस्था के समर्थक थे, जो भौतिकवादी पद्धति पर आधारित न होकर आध्यात्मवादी पद्धति पर केन्द्रित हो।

सन् 1920 से 1948 के कालखण्ड में लिखे गये अनेक भारतीय भाषाओं के साहित्य पर किसी न किसी रूप में महात्मा गाँधी का प्रभाव अवश्य दिखाई देता है। हिन्दी भाषा भी उनमें से एक है। इस भाषा के कवियों व लेखकों की रचनाओं पर गाँधीजी के प्रभाव को सहज ही देखा जा सकता है। इस प्रार मेरे शोध-पत्र के विषय के रूप में हिन्दी के कई साहित्यकार हो सकते हैं किन्तु लेख की सीमा को ध्यान में रखते हुए केवल हिन्दी के एक बड़े कथाकार प्रेमचन्द को केन्द्र में रखकर अपनी बात रखने की मेरी कोशिश होगी क्योंकि उस दौर के साहित्यकारों में वे एक महत्वपूर्ण हस्ताक्षर रहे हैं, जिनके साहित्य पर गाँधी जी का व्यापक प्रभाव दिखाई देता है। इस सन्दर्भ में डॉ. नगेन्द्र के मत को उद्धृत करना अत्यन्त समीचीन जान पड़ता है, जिन्होंने हिन्दी साहित्य पर महात्मा गाँधी के बाह्य एवं आतन्तरिक व्यक्तित्व के प्रभाव को रेखांकित किया है। उन्होंने अपने लेख 'हिन्दी साहित्य पर महात्मा गाँधी का प्रभाव' में लिखा है–''गाँधी का प्रभाव हिन्दी साहित्य पर प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों रीतियों से पड़ा। प्रत्यक्ष के माध्यम थे–

(क) व्यक्तित्व और व्यक्तिगत उपलब्धियाँ,

(ख) नैतिक आदर्श,

(ग) सामाजिक, राजनीतिक सिद्धान्त एवं कार्यक्रम।

अप्रत्यक्ष प्रभाव का संधान दो प्रकार से किया जा सकता है–

1. जीवन और साहित्य के मूल्यों की नवीन व्याख्या के रूप में

2. जीवन और साहित्य में लक्षित क्रिया-प्रतिक्रिया के रूप में।''[1]

* *पी-एच. डी. (हिन्दी), अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़*

कहना न होगा कि 20वीं सदी की राजनीति में जो स्थान गाँधी जी का था, साहित्य में वही स्थान प्रेमचन्द का। वे गाँधी जी के समकालीन थे। देश की सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं के प्रति दोनों की चिन्ता समान थी। एक ने उनका विरोध अपने कलम से किया तो दूसरे ने सत्याग्रह से। राजनीति के क्षेत्र में गाँधी का आगमन सन् 1916 में हुआ और साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचन्द का 1901 ई. में उन्होंने अपने समाज-सुधार आन्दोलन के माध्यम से भारतीय जनसामान्य की समस्याओं को पुरजोर ढंग से उठाया है। वे सदैव समाज के कमजोर वर्ग के पक्ष में दिखाई देते हैं और स्वाधीनता संग्राम, हिन्दू-मुस्लिम एकता, अछूतोद्धार, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार, स्वदेशी का प्रचार, नारी जागरण आदि सभी पहलुओं के प्रति आवाज बुलन्द करते हैं। इन सभी समस्याओं की अनुगूँज प्रेमचन्द के साहित्य में कहीं न कहीं अवश्य सुनाई देती है।

आलोच्य विषय–'महात्मा गाँधी के व्यक्तित्व का प्रेमचन्द कृत कहानियों की स्त्री-पात्र पर प्रभाव' के आलोक में प्रेमचन्द की स्त्री-पात्र का अध्ययन करना इस शोद आलेख का मुख्य ध्येय रहेगा। अध्ययन की इस कड़ी में महात्मा गाँधी द्वारा चलाए गये स्वतंत्रता आन्दोलनों में भारतीय महिलाओं की भागीदारी को प्रेमचन्द की कहानियों के माध्यम से समझने का प्रयास भी किया जायेगा।

कोई भी राष्ट्र विकास के उच्च सोपान तक तभी पहुँच सकता है, जब उस देश के प्रत्येक नागरिक का मनसा, वाचा, कर्मणा, सहयोग प्राप्त हो। सन् 1915 में महात्मा गाँधी ने भारतीय राजनीतिक परिदृश्य में जब पदार्पण किया, तो राजस्व की नींव समझी जाने वाली अनिवार्य वस्तु 'पूर्ण सहभागिता' की कमी का अनुभव करते हुए यह माना कि राष्ट्रव्यापी स्वदेशी आन्दोलनों में महिलाओं की भूमिका नगण्य है और यदि देश का विकास करना है तो स्त्रियों को भी पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चलना होगा। उन्होंने यह अनुभव किया कि यदि महिलाओं को समाज की मुख्य धारा में लाना है तो उन्हें शिक्षित करने के साथ-साथ आत्मनिर्भर भी बनाना होगा। स्त्री-शिक्षा के सम्बन्ध में उनके विचार कितने क्रांतिकारी हैं, इसका अनुमान उनके एक वक्तव्य से स्पष्ट हो जायेगा। "यदि एक पुरुष को पढ़ाओगे तो एक व्यक्ति शिक्षित होगा और यदि एक स्त्री को पढ़ाओगे तो पूरा परिवार शिक्षित होगा।"[2] उनकी दृष्टि में शिक्षा से अभिप्राय मात्र अक्षर-ज्ञान से नहीं था। वे शिक्षा को "सा विद्याया विमुक्तये" के रूप में देखते थे। अर्थात् शिक्षा से यहाँ आशय केवल आध्यात्मिक शिक्षा से नहीं है, न विमुक्ति से आशय मृत्यु के उपरान्त मोक्ष से है। ज्ञान में वह समस्त प्रशिक्षण समाहित है जो मानव जाति की सेवा के लिए उपयोगी है, और विमुक्ति का अर्थ है, वर्तमान जीवन की भी सभी प्रकार की पराधीनताओं से मुक्ति।

जब गाँधीजी के शिक्षा सम्बन्धी विचारों को केन्द्र में रखकर प्रेमचन्द की कहानियों का विश्लेषण करते हैं तो यह स्पष्ट होता है कि उनकी कहानियों की कई ऐसी स्त्री-पात्र हैं, जो शिक्षा के माध्यम से परिवार, समाज व राष्ट्रोन्नति में अपना महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। इस सन्दर्भ में 'जेल' की मृदुला, 'आहुति' की रूपमणि इत्यादि स्त्रियों को देखा जा सकता है। 'आहुति' कहानी की रूपमणि के माध्यम से प्रेमचन्द ने उपाधि आधारित ज्ञान की अपेक्षा मानवीय परिष्कार, नैतिक मूल्य आधारित शिक्षा पर अत्यधिक बल दिया है–"क्या डिग्री ले लेने से आदमी का जीवन सफल हो जाता है? सारा ज्ञान पुस्तकों में ही भरा हुआ है? मैं समझती हूँ, संसार और चरित्र का जितना अनुभव विश्वंभर को दो सालों में हो जायेगा, उतना दर्शन और कानून की पोथियों से तुम्हें दो सौ वर्षों में भी न होगा।"[3]

दरअसल महात्मा गाँधी नारी-शक्ति को बखूबी पहचानते थे। अफ्रीकी प्रवास के दौरान उन्होंने वहाँ की महिलाओं को सत्याग्रही आन्दोलन में सक्रियता से भाग लेते हुए देखा था। अस्तु, वे चाहते थे कि भारतवासियों द्वारा ब्रिटिश साम्राज्यवादी शक्तियों के विरुद्ध चलाये जाने वाले सत्याग्रही आन्दोलनों में महिलाएँ भी सक्रियता से भाग लें। उनके प्रति गाँधी की सकारात्मक दृष्टि का परिणाम यह हुआ कि उन्हीं के द्वारा चलाये जाने वाले राष्ट्रव्यापी स्वदेशी आन्दोलनों में शहीर एवं ग्रामीम महिलाओं ने राजनीतिक नेतृत्व प्राप्त कर विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार और स्वदेशी के प्रचार-प्रसार में योगदान देना आरम्भ कर दिया।

महात्मा गाँधी की ही भाँति महिलाओं के प्रति प्रेमचन्द की दृष्टि सकारात्मक व प्रगतिशील थी। उनका भी यही मानना था कि स्वराज्य प्राप्ति के लिए महिलाओं का सक्रिय होना उतना ही आवश्यक है जितना कि पुरुषों का। यही कारण है कि उनके द्वारा लिखी 'जेल', 'समर-यात्र', 'जुलूस', 'मैकू', 'शराब की दुकान', 'पत्नी से पति' इत्यादि कहानियों में शराबबंदी, विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार, कपड़ों की दुकान पर किपेटिंग और उस समय निकलने वाले जुलूसों में स्त्रियों की सक्रियता भी दिखाई देती है। इस सन्दर्भ में 'शराब की दुकान' नामक कहानी से एक उद्धरण दृष्टव्य है जिसमें उन्होंने भारतीय राजनीति में स्वदेशी वस्तुओं के प्रचार-प्रसार में महिलाओं की सक्रिय भूमिका का उल्लेख किया है–"मिसिज सक्सेना ने इधर एक साल से कांग्रेस के कामों में भाग लेना शरू कर दिया था और कांग्रेस कमेटी ने अपना मेंबर चुन लिया था। वे शरीफ़ घरानों में जाकर स्वदेशी और खद्दर का प्रचार करती थीं।"[4]

जैसा कि ऊपर यह कहा जा चुका है कि महात्मा गाँधी नारी शक्ति को पहचानते थे। वे उसे त्याग, बलिदान, विनयशील एवं धैर्य की प्रतिमूर्ति समझते थे उनका विश्वास था कि 'स्त्री त्याग की मूर्ति है। जब वह कोई चीज शुद्ध और सही भावना से करती है तो पहाड़ को हिला देती है।''[5] इसलिए वे तत्कालीन भारतीय समाज में व्याप्त नशा-खोरी को दूर करने में महिलाओं की भूमिका को अत्यन्त महत्वपूर्ण समझते थे। यही कारण है कि उन्होंने शराबबंदी आन्दोलन में भाग लेने के लिए उनसे आह्वान किया। साधना आर्य, निवेदिता मेनन तथा जिनी लोकनीता इस प्रकार के सामाजिक सुधार आन्दोलनों में महिलाओं की भूमिका सम्बन्धी महात्मा गाँधी द्वारा लिये गये निर्णयों को दूसरे नजरिये से देखते हैं। उन्होंने अपने लेख 'गाँधीजी और महिलाएँ' में यह बताया है कि गाँधी जी पुरुषों द्वारा शराब की दुकान पर जाने को उनकी पत्नियों के निजी जीवन से सम्बन्ध करके देखते थे। साथ ही वे महिलाओं को अपने स्वभाव के अनुकूल अर्थात् अहिंसा का पालन करने वाली एवं सहनशील शक्ति सम्पन्न मानते थे। उन्होंने एक सन्दर्भ में लिखा है–

''उनकी सोच थी कि उनके पतियों का इन दुकानों पर जाना, नशीली वस्तुओं का सेवन करना उनके निजी जीवन से जुड़ा मिलता है। दूसरे यह शुद्धता और नैतिकता से जुड़े होने के कारण उनके स्वभाव के अनुकूल था। गाँधी जी को लगता था कि उनकी अहिंसा की लड़ाई में उनकी विचारधारा के ज्यादा नजदीक हैं क्योंकि उसमें ज्यादा पीड़ा सहना शामिल है और महिलाओं से ज्यादा बेहतर शील और श्रेष्ठ पीड़ा कौन सह सकता है।''[6]

प्रेमचन्द और महात्मा गाँधी दोनों ही यह चाहते थे कि वर्ग और संस्कृति की परिधि के बाहर महिलाओं का दायरा व्यापक हो किन्तु समाज का एक तबका ऐसा भी था कि उनके द्वारा महिलाओं की राष्ट्रव्यापी आन्दोलनों में भागीदारी का समर्थन किये जाने से अप्रसन्न तो था ही, उनकी सफलताओं पर संदेह भी प्रकट करता था। इस सन्दर्भ में प्रेमचन्द की 'शराब की दुकान' कहानी से ही एक और उदाहरण दृष्टव्य है–''मिसिज सक्सेना ने व्यंग्य भाव से कहा, (तो क्या आपका विचार है कि कोई ऐसा जमाना भी आयेगा, जब शराबी लोग विनय और शील के पुतले बन जाएँगे) यह दशा तो हमेशा ही रहेगी। आखिर महात्मा जी ने कुछ समझकर ही तो औरतों को यह काम सौंपा है।''[7]

गाँधीजी द्वारा तत्कालीन भारतीय महिलाओं की सामाजिक एवं राष्ट्रव्यापी आन्दोलनों में भागीदारी सुनिश्चित किये जाने पर उनके स्वभाव में गुणात्मक परिवर्तन दिखायी देता है। प्रेमचन्द की ऐसी न जाने कितनी ही कहानियाँ हैं, जिनमें महिलाओं द्वारा तमाम पारिवारिक एवं सामाजिक बन्धनों को तोड़कर बड़े-बड़े जुलूसों में सक्रिय भागीदारी और नेतृत्व-कौशल का उल्लेख तो मिलता ही है, साथ ही निर्भीक एवं आत्मबल से युक्त संघर्षशील स्त्री की छवि के दर्शन भी होते हैं। 'जेल' कहानी एक ऐसी नारी की छवि प्रस्तुत करती है, जो न केवल स्वार्थ और खून पर टिकी हुई ब्रिटिश हुकूमत का पुरजोर विरोध करती है, अपितु आवश्यकता पड़ने पर अपनी गिरफ्तारियाँ भी सहज भाव से दे देती है। इस कहानी की मृदुला एक ऐसी क्रांतिकारी महिला है जो हुकूमत का अन्त करने के विरोध में जेल भी जाती है–''लोग कहते हैं, जुलूस निकालने से क्या होता है? इससे यह सिद्ध होता है कि हम जीवित हैं और मैदान से हटे नहीं हैं। हमें अपने हार न मानने वाले आत्माभिमान का प्रमाण देना था। हमें यह दिखाना था कि हम गोलियों और अत्याचार से भयभीत होकर अपने लक्ष्य से हटने वाले नहीं और हम उस व्यवस्था का अन्त करके रहेंगे, जिसका आधार स्वार्थपरता और खून पर है।''[8]

महात्मा गाँधी पूर्ण स्वतंत्रता अर्थात् सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं आध्यात्मिक स्वतंत्रता के प्रबल समर्थक थे। वे अपने अभिभाषणों में एस बात पर हमेशा बल देते थे कि आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक रूप से गुलाम हिन्दुस्तान को सच्चा स्वराज्य तभी प्राप्त हो सकता है, जब उसकी अपनी सम्प्रभुता हो, देश के प्रत्येक नागरिक आर्थिकरूप से सक्षम हों, सबको सामाजिक न्याय मिले तथा धार्मिक स्वतंत्रता सभी को प्राप्त हो।

प्रेमचन्द भी भारत की तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्था से असंतुष्ट थे। 'आहुति' कहानी की रूपमणि के माध्यम से स्वराज्य के स्वरूप पर अपना विचार कुछ इन शब्दों में प्रकट किया है–''रूपमणि ने आवेश से कहा, (अगर स्वराज आने पर भी सम्पत्ति का यही प्रभुत्व रहे और पढ़ा-लिखा समाज यों ही स्वार्थांध बना रहे तो मैं कहूँगी, ऐसे स्वराज्य का न आना ही अच्छा है। अंग्रेजी महाजनों की धन-लोलुपता और शिक्षितों का स्वहित ही आज हमें पीसे डाल रहा है। जिन बुराइयों को दूर करने के लिए आज हम प्राणों को हथेली पर लिये हुए हैं, उन्हीं बुराइयों को क्या प्रजा इसलिए सिर चढ़ायेगी! कि वह विदेशी नहीं स्वदेशी है कम से कम मेरे लिये तो यह स्वराज्य का अर्थ नहीं है कि जॉन की जगह गोविंद बैठ जाये। समाज में ऐसी व्यवस्था देखना चाहती हूँ, जहाँ विषमता को आश्रय न मिल सके।''[9]

इस उद्धरण के माध्यम से तद्युगीन भारतीय समाज की ऐसी शिक्षित स्त्री का चरित्र हमारे सामने उभरकर आता है, जिसके विचारों में प्रगतिशीलता है, एक आदर्श राष्ट्र का भावी स्वरूप है। एक ऐसा राष्ट्र जिसमें, न तो स्वार्थपरता का कोई स्थान होना

चाहिए और न ही आर्थिक विषमता होनी चाहिए। लेखक ने स्वराज्य सम्बन्धी विचारों को एक स्त्री के माध्यम से प्रकट करवाने के साथ ही यह संदेश देने की कोशिश की है कि भारतीय महिलाएँ भी पुरुषों की भाँति एक मानव संसाधन के रूप में अपना बहुमूल्य योग दे सकती हैं।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि महात्मा गाँधी के विचारों का प्रभाव निःसन्देह प्रेमचन्द की कहानियों की स्त्री-पात्रों पर व्यापाक ह्रप से दिखाई देता है। गाँधी जी और प्रेमचन्द दोनों ही स्त्री शिक्षा के न केवल प्रबल समर्थक थे, बल्कि उसे आर्थिक रूप से सम्पन्न भी देखना चाहते थे। सामाजिक समानता के लिए पुरुष और स्त्री के मध्य लैंगिक भेदभाव के सदैव खिलाफ थे। उन्होंने इस बात पर अत्यधिक बल दिया कि बिना स्त्री के पूर्ण भागीदारी के राष्ट्र का सम्पूर्ण विकास हो ही नहीं सकता।

सन्दर्भ-सूची

1. डॉ. सुमन जैन द्वारा सम्पादित पुस्तक 'गाँधी विचार और साहित्य' में संकलित डॉ. नगेन्द्र के लेख 'हिन्दी साहित्य पर गाँधी का प्रभाव' से उद्धृत, पृ. 273, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2010.
2. गाँधी विचार : यंग इण्डियन पत्रिका, वर्ष 4, अंक 2 से उद्धृत।
3. http://www.hindisamay.com/933/1/
4. 'जेल', मानसरोवर (भाग 7), पृ. 7.
5. प्रेमचन्द : साहित्य में गाँधीवाद और प्रगतिवाद, (लेख) रामजी तिवारी।
6. नारीवादी राजनीति, संघर्ष और मुद्दे, पृ. 169, लता सिंह के लेख 'राष्ट्रीय आन्दोलन में महिलाओं की भूमिका के सवाल' से उद्धृत, संपा. साधना आर्य, निवेदिता मेनन, जिनी लोकनीता, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2016.
7. शराब की दुकान : मानसरोवर (भाग-7), पृ. 17.
8. 'जेल', मानसरोवर (भाग 7), पृ. 7.
9. http://www.hindisamay.com/content/933/1/

(क) मूल ग्रन्थ

मानसरोवर, भाग-7, प्रेमचन्द, सुमित प्रकाशन, इलाहाबाद।

(ख) सहायक ग्रन्थ-सूची

1. 'गाँधी विचार और साहित्य', संपा. डॉ. सुमन जैन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2010.
2. नारीवादी राजनीति, संघर्ष और मुद्दे, संपा. साधना आर्य, निवेदिता मेनन, जिनी लोकनीता, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2016.

(ग) लेख सूची

'प्रेमचन्द : साहित्य में गाँधीवाद और प्रगतिवाद', रामजी तिवारी।

(घ) वेबसाइट

1. http://www.hindisamay.com/content/933/1/

* * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 263-265

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

सिन्धी भाषा का ऐतिहासिक महत्व

*डॉ. नीरज बाजपेयी**

प्राचीन भारत का एक क्षेत्र, जो सिन्धु नही के किनारे स्थित था, सिन्ध प्रदेश कहा जाता है। इस प्रदेश के बारे में महाभारत तथा हरिवंश पुराण में उल्लेख प्राप्त होता है। इस प्रदेश की स्थापना राजा शिवि के पुत्र वृषदर्भ द्वारा की गई। मीरचन्दानी द्वारा लिखित पुस्तक 'ग्लिमसेज आफ एन्शियन्ट सिन्ध' में इस बात का उल्लेख मिलता है कि संस्थापक राजा वृषदर्भ के नाम पर ही सिन्ध प्रदेश की राजधानी व-षदर्भपुर कहलायी, यहाँ के निवासियों को सैन्धव कहा जाता था।

सिन्ध के इतिहास को समझाने का एक महत्वपूर्ण स्रोत अली अहमद कृत चचनामा है जिसे सिन्धी भाषा में चचनामों कहा जाता है। इस पुस्तक में चच राजवंश के इतिहास तथा सिन्ध पर अरबों की विजय का उल्लेख मिलता है। चच राजवंश द्वारा सिन्ध पर राय राजवंश के पश्चात् शासन किया गया। चचनामा को फतहनामा सिन्ध तथा तारीख-उल-हिन्द बस सिन्द भी कहा जाता है। मनन अहमद आसिफ के अनुसार यह आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ तथा बाद में मोहम्मद बिन कासिम द्वारा सिन्ध पर विजय का उल्लेख करने वाली प्रसिद्ध पुस्तक है। भारत में इस्लाम का उदय वर्णित करने वाला यह महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्रोत है।

सिन्धी भारत के पश्चिमी क्षेत्रों विशेषकर गुजरात तथा पाकिस्तान के सिन्ध प्रान्त में बोली जाने वाली प्रमुख भाषा है। यह आर्य भाषाओं से सम्मिलित भाषा है जो संस्कृत से गहनता से सम्बन्धित है। इसके सत्तर प्रतिशत शब्द संस्कृत भाषा से लिए गये हैं। सिन्धी भाषा सिन्धी भाषा सिन्ध प्रदेश की प्रमुख आर्य भाषा है जिसका सम्बन्ध पैशाची नाम की प्राकृत तथा ब्राउच नाम की अपभ्रंश से जोड़ा जाता है। इन नामों के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि सिन्धी भाषा आर्यो के पूर्व से ही विद्यमान थी जिसके अनार्य तत्व पश्चात्वर्ती समय से आर्यो के प्रभाव से महत्वहीन हो गये।

सिन्धी के पश्चिमी में बलौनी, उत्तर में लँहदी, पूरब में मारवाड़ी और दक्षिण में गुजराती का क्षेत्र है। इस्लामी शासन काल के दौरान लँहदी भाषी क्षेत्र सिन्ध तथा मुल्तान एकल प्रान्त था। 1843 से 1936 के बीच सिन्ध बम्बई का एक क्षेत्र होने के कारण इसका गुजराती से गहरा सम्बन्ध रहा। भारत विभाजन के पश्चात् सिन्धी भाषा को पाकिस्तान में जहाँ नस्तालिक लिपि अरबी लिपि में लिखा जाता है वहीं भारत में इसे देवनागरी तथा नस्तालिक दोनों लिपियों में लिखा जाता है। सिन्ध को तीन भौगोलिक क्षेत्रों के आधार पर समझा जा सकता है–

1. सिरो (शिरो भाग)
2. क्विोली (बीच का भाग)
3. लाड (संस्कृत : लाट प्रदेश बराबर नीचे का)

उत्तरी सिन्ध के खैरपुर, दादू, लाडकावा तथा जेकलाबाद जिलों में सिरो की बोली सिराइकी कही जाती है। इन क्षेत्रों में जाट तथा बलोच जातियों की अधिकता है। इसी कारण इसे बरीचिकी तथा जतिकी भी कहते हैं।

क्विोली सिन्ध की साहित्यिक तथा सामान्य भाषा है जो मीरपुर खाश और उसके आसपास बोली जाती है। दक्षिण में कराची तथा हैदराबाद जिलों की बोली लाडी है। सिन्धी भाषा लगभग ढाई करोड़ लोगों के द्वारा बोली जाने वाली भाषा है जिसे भारत तथा पाकिस्तान दोनों देशों में अधिकारिक भाषा के रूप में स्वीकार किया गया है।

सिन्धी साहित्य–प्रारंभिक सिन्धी साहित्य काव्य के रूप में प्राप्त होता है। इसका सम्बन्ध साम्प्रदायिकता मुक्त सूफी का विषय रहा है। सिन्धी कविताएँ ईश्वर को परमपिता तथा मनुष्यों के बीच बन्धुता की भावना से ओतप्रोत रही। अँग्रेजी शासनकाल से पूर्व ये कविताएँ दोहे तथा श्लोक के रूप में रही हैं। लेकिन बाद में ये कविताएँ अँग्रेजी सासन की चाटुकारिता, गजलों रुबाइयों

* *प्राचार्य, रामकृष्ण परमहंस पी.जी. कालेज, कैसरगंज, बहराइच*

व मसनवियों में परिवर्तित होती गईं। कुछ कविताएँ मर्सिय व कसीदे के रूप में भी प्राप्त होती हैं। विगत सौ वर्षों से प्राप्त सिन्धी काव्य शनैः-शनैः साम्प्रदायिकता युक्त हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य और संकीर्ण दृष्टिकोण पर आधारित होता गया। सिन्ध का पाकिस्तान का अभिन्न अंग बनने के कारण भाषायी असहिष्णुता का बल मिला। सिन्धी भाषा की प्रथम रचना 1312 में रचित दोदेचनेसर है सिजमें भूमगर के सिहांसन के लिए दोदे तथा चनेसर दो भाइयों के युद्ध का वर्णन मिलता है।

18वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध को सिन्धी भाषा का स्वर्णकाल कहा जाता है। इस काल में शाहइनायत, शाहलतीफ, मोहम्मद जमान, पीरमोहम्मदबका, जैसे सुप्रसिद्ध सुफी कवि हुए जिन्होंने सिन्धी काव्य को नई विधाओं, नये छन्दों व अभिनव दर्शन से सजाया। सिन्धी मसनवियों तथा काफियों के रूप में तसब्बुक का भारतीयकरण इसी समय से हुआ। शाहइनायत ने भोमलमेघर, लीनाचनेसर जैसे किस्से के अतिरिक्त प्रकृति कलात्मक वर्णन करते हुए मुक्तक दहे और सुर लिखे। शाह लतीफ (1689-1752) सिन्धी भाषा के लोकप्रिय तथा सुप्रसिद्ध कवि रहे। उन्होंने सिन्धी भाषा व साहित्य को नई शैली, नये विचारों और विषयों से समुन्नत किया। उनके द्वारा रचित रिसालों सिन्धी भाषा की अमूल्य धरोहर है। जिसमें एक तरफ प्रबन्धात्मक कथाएँ हैं तो मुक्तक कविताएँ भी हैं, वर्णनात्मक छन्द हैं तो भावपूर्ण गीत भी हैं, प्रम की कोमल अभिव्यक्ति है तो युद्ध का हृदयविदारक चित्रण भी है। इसमें हिन्दू वेदान्तों तथा इस्लामी तसव्वक का अद्भुत समन्वय है। इसमें लौकिक तत्वों के माध्यम से अलौकिकता के दर्शन होते हैं। इसी प्रकार सिन्धी भाषा के विद्वान कवि ख्वाजा मोहम्मद जमान के 84 दोहे भी प्राप्त हैं जिसमें उन्होंने अपने सज्जन के प्रति अनन्य भक्ति के भाव प्रकट किये हैं।

टालपुरी शिया नवाबों के शासन काल 1783-1843 में हिन्दी साहित्य ने नया कलेवर प्राप्त किया। अब तक जो प्रेम कथाएँ खण्ड के रूप में लिखी जाती थीं अब पूरी दास्तानें लिखी जाने लगीं। दोहों का स्थान गजलें लेने लगीं। काफियों, कसीदों व मर्सियों की अधिकता होने लगी। इस युग के सर्वाधिक लोकप्रिय कवि सचल सपमस्त (1739-1826) थे जिनकी मधुर गीतियों व रसीली काफियाँ आज भी सम्मान से स्मरण की जाती हैं। हफीज का मोमल राना तथा हाजी अब्दुल्लाह का लैला मजनू लोकप्रिय किस्से रहे हैं। साबित अली शाह के मर्सियो आज भी मुहर्रम में गाये जाते हैं।

हिन्दू कवियों में दीवान दलपत राय (मृत्यु 1841) और साभी (1743-1850) जिनका पूरा नाम चैन राय था वेदान्ती कवि थे। तत्कालीन अन्य कवियों में साहबडना, अलीगौहर, करमउल्लाह, फतहमुहम्मद, नबी बख्श विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

ब्रिटिश शासन काल (1843-1947) इस काल में सिन्धी भाषा स्वच्छंदता तथा विविधता से परिपूर्ण रही जिसमें मौलिकता का अभाव होता गया। सिन्धी काव्य लेखन तो अधिक रहा लेकिन इसका सम्बन्ध सिन्धी जनता से टूटता गया और स्तर गिरता गया। सिन्धी लेखन पर पश्चिमी प्रभाव बढ़ता गया। भारत विभाजन के पश्चात् जो सिन्धी रचनाएँ भारत में लिखी गई उन पर बँगला तथा हिन्दी का विशेष प्रभाव रहा। पुरानी विधा के सूफी कवि कादर बख्श बेदिल (1814-1873) ने किस्से तथा बाई बैत तथा सुर जैसे मुक्तक लिखे। प्रेममार्गी कवि हमलफकीर लिगारी ने सिरायकी तथा बिचौली में अपने काव्य की रचना की। लागरी मूलतः पंजाब के थे जो बाद में खैरपुर आकर बस गये। निका हीर राझे का किस्सा आज भी प्रसिद्ध है। शैयद महमूद शाह का काफिया, छन्दों तथा परम्पराओं को अपनाते हुए सिन्धी भाषा में लैला मजनू, यूसुफ जुलेखा, शीरी फरहाद की कथाएँ लिखी। जहाँ नूर मोहम्मद तथा मोहम्मद हासिम ने हिजो (निदात्मक कविताएँ) लिखीं वहीं कलीच बेग और अब्दुल हुसैन ने कसीदे (प्रशस्तियाँ) लिखीं। कलीच बेग (मृत्यु 1929) ने उमर खय्याम का सिन्धी पद्य का अनुवाद किया। नवाब मीर हसन अली खाँ (1824-1909) ने फिरोदौसी के शाहनामा के आधार पर शाह नाम सिन्ध की रचना की।

मौलिक सिन्धी काव्य—मौलिक सिन्धी कवि शम्भुददीन बुलबुल का मौलिक काव्य में वही स्थान है जो उर्दू में अकबर इलाहाबादी का है। इन्होंने एक तरफ पश्चिमी सभ्यता पर व्यंग्यात्मक चोट करता लेखन प्रस्तुत किया वहीं दूसरी तरफ खूबसूरत गजलें भी लिखीं। आँसुओं के बादशाह गुलाम शाह की कविताएँ जहाँ करुणा से सोराबर हैं, वहीं हैदर बख्श जतोई की रचनाएँ देशभक्ति से परिपूर्ण हैं। सिन्ध नदी पर लिखित उनकी कविता बहुत प्रसिद्ध हुई। लेखराज अजील का लेखन प्रकृति प्रेरित रहा। वहीं मास्टर किशन चन्द्र बेबस (मृत्यु 1947) स्वाभाविक लेखन के जादूगर रहे। स्वाभाविक भाषा में लिखी उनकी दो कविता संग्रह शीरी शीर और गंगाजू लहरू लोकप्रिय रही। जीवित सिन्ध कवियों में सुप्रसिद्ध कवि शेख अय्याज हैं जिनके गीत बागी नामक संग्रह में प्रकाशित हैं। इस प्रकार सिन्धी काव्य इन्द्रधनुषी विधाओं से परिपूर्ण रहा।

गद्य लेखन—सिन्धी साहित्य में 1902 से पूर्व का कोई नाटक उपलब्ध नहीं है। पश्चातवर्ती समय में शेक्सपियर विभिन्न नाटकों, महाभारत तथा रामायण की घटनाओं पर आधारित नाटकों का सिन्धी स्वरूप उपलब्ध होता है। शाह लतीफ की कविता पर आधारित लाल चन्द्र अमरदीनमूल द्वारा लिखा गया उम्र मारुऊ सबसे सफल नाटक माना जाता है। कवि कलीच बेग का खुर्शीद नाटक, उसाणी का बदनसीबघरी प्रहसन लोकप्रिय रहे। वर्तमान में मंघाराम मलकाणी प्रसिद्ध हिन्दी नाटककार हैं। जिन्होंने विभिन्न

सामाजिक विषयों पर एकांकी व नाटक लिखे हैं। आपने निबन्ध लेखक तथा कवि के रूप में भी प्रसिद्धि प्राप्त की है। अधिकांश गद्य साहित्य अनुवादित रूप से प्राप्त है। मौलिक गद्य लेखकों में मिर्जा कलीच बेग और कौन्दौमल चन्दनमल का उल्लेख होता है। मिर्जा कलीच बेग ने लगभग दो सौ पुस्तकों की रचना की। सिन्धी जीवन पर आधारित उनका प्रसिद्ध उपन्यास जीनत सिन्धी भाषा का प्रथम मौलिक उपन्यास है। प्रीतमदास कृति अजीबभेट, आसानन्द कृत शायर, भोजराज कृत दादाश्याम (आत्मकथात्मक) तथा नारायण भंभाडी का विधवा उल्लेखनीय है। वर्तमान में सुन्दरी उत्तम चंदानी, आनन्द गोलबाणी, (कथाकार), परमानन्द मेवाराम (निबंधकार) लुत्पउल्लाह कुरैशी, लालचन्द अमरदानूमल, केवलराम सलामतराय, अडवाणी तथा परसराम सिन्धी बाषा के आधुनिक शैलीकारों में गिने जाते हैं।

इस प्रकार प्राचीन भारत से लेकर ब्रिटिश शानकाल तक एवं स्वतन्त्र भारत के इतिहास में सिन्धी भाषा सिन्धी साहित्याकाश को अपनी इन्द्रधमुषी विधाओं से अपना महत्वपूर्ण परचम लहराते हुए समाज में विभिन्न समयों में अपने अस्तित्व का मार्ग प्रशस्त करती रही है।

सन्दर्भ-सूची

1. ग्लिमसेज आफ एन्शियन्ट सिन्ध : मीरचन्दानी
2. दोदेचनेसर रचना : सिन्धी भाषा, 1312 में रचित।
3. शाह लतीफ की कविताएँ (1689-1752 तक)
4. रिसालोशाह लतीफ कृत
5. 84 दोहाज : ख्वाजा मोहम्मद जमाल रचित।
6. मोमल राना हपीज कृत तथा लैला मजनू हाजी अब्दुल्लाकृत सरभरण
7. शाहनामा : फिरदौसकृत
8. किस्से : कादर बख्श बेदिल (1814-1873)
9. कविता सिन्ध नदी : हैदर बख्श जतोई
10. कविता संग्रह : शीरी शीर और गंगाजू
11. जीनत उपन्यास : मिर्जा कलीच बेग कृत।

* * * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 266-267

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

भारत के पूर्वोत्तर राज्यों में हिन्दी शिक्षण की दशा एवं दिशा : एक अवलोकन

*दुर्गा प्रसाद**

भारत सांस्कृतिक बाहुल्य क्षेत्र है। यहाँ पर अनेक बोलियाँ एवं अनेक भाषाएँ अस्तित्व में पाई जाती हैं। भाषा, समाज एवं संस्कृति जैसे महत्वपूर्ण तत्वों को एक-दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता है। समाज से भाषा का निर्माण होता है और परिपक्व भाषा से संस्कृति का निर्माण संभव है।

भारत के पूर्वोत्तर राज्यों में सिक्किम को मिलाकर कुल आठ राज्य हैं, जिनमें कोई एक भाषा विकसित नहीं हुआ है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इस परिस्थिति में हिन्दी भाषा व देवनागरी लिपि के व्यापक प्रसार की पृष्ठभूमि में ये क्षेत्र अत्यधिक सुविधासम्पन्न हैं। किन्तु इसके लिए पहले युवा-वर्ग को तैयार होना पड़ेगा, क्योंकि युवा-वर्ग के पास ऊर्जा एवं शक्ति व्यापक रूप से विद्यमान है। सिके लिए इन पूर्वोत्तर राज्यों में प्राथमिक स्तर के होते हुए विश्वविद्यालय स्तर तक हिन्दी के पाठ्यक्रम को समुचित रूप से विस्तार देना होगा।

पाठ्यक्रम सीखने एवं सिखाने की प्रक्रिया का एक धारदार माध्यम है। पाठ्यक्रम का विस्तारित स्वरूप ऐसा होना चाहिए जो प्रतियोगी परीक्षाओं में भी अपना योगदान सुनिश्चित कर सकें। इसके लिए यह भी आवश्यक है कि विद्यार्थी, शोधार्थी एवं शिक्षक-प्रशिक्षक के लिए पाठ्यक्रम बोझ न हो। पाठ्यक्रम में प्रत्येक सेमेस्टर में एक प्रश्न-पत्र भाषा का अनिवार्य रूप से हो जिससे कि विद्यार्थी एवं शिक्षक-प्रशिक्षक अपने नित व्यवहार में शुद्ध हिन्दी भाषा का बेहिचक प्रयोग करने में सिद्धहस्त हो सके। इससे भाषा तो परिपक्व होगी ही; साथ ही, व्यक्तित्व, समाज और संस्कृति का भी बेहतर विकास संभव है।

हिन्दी-इतर क्षेत्रों में हिन्दी डिप्लोमा कार्यक्रम की भी शुरुआत होनी चाहिए। यह फुलटाइम और पार्ट टाइम दोनों स्वरूपों में होना चाहिए। इससे न केवल दो भाषाओं का आपसी मेलजोल बढ़ेगा बल्कि समाज और संस्कृति भी एक-दूसरे के समीप आएँगे। ऐसा करने से हिन्दी इतर क्षेत्रों में हिन्दी बोलने-समझने पर बाहरी लोगों के साथ ही स्थानीय लोगों को भी रोजगार के अवसर प्राप्त हो सकेंगे। हिन्दी इतर क्षेत्रों में हिन्दी भाषा के प्रति एक स्वस्थ प्रतिस्पर्धा का भाव भी जागृत हो सकेगा इससे हिन्दी भाषा एवं साहित्य का विकास सुनिश्चित हो सकता है। प्राथमिक स्तर से लेकर विश्वविद्यालय का हिन्दी विभाग में हिन्दी भाषा एवं साहित्य का पाठ्यक्रम सुनियोजित ढंग से बनाना होगा।

पाठ्यक्रम के शिक्षण के लिए सिद्धहस्त शिक्षक-शिक्षिकाओं को नियुक्त करना होगा। विशेष तौर पर जो लोकतांत्रिक मूल्य और शिक्षा में विश्वास करते हैं। वाद-संवाद युक्त पाठ्यक्रम एवं टीचर्स होने चाहिए। हिन्दी इतर शिक्षण कार्यक्रम की रूपरेखा को सफल बनाने के लिए संवाद-कौशल का होना अत्यन्त आवश्यक है। इसलिए टीचर को संवाद-कौशल पर विशेष ध्यान देना होगा। जिससे कि लगभग हर विद्यार्थी, टीचर की बात को ध्यान से आत्मसात् कर सके।

पूर्वोत्तर क्षेत्र ने प्रहरी एवं सेतु दोनों का कार्य किया है। यह क्षेत्र हिन्दी-पट्टी से कम महत्वपूर्ण एवं कम संवेदनशील नहीं है। लेकिन क्या कारण रहा कि पूर्वोत्तर राज्यों में उत्तर भारत की अपेक्षा हिन्दी का विस्तार अति न्यून रहा? पूर्वोत्तर में सैकड़ों बोलियाँ बोली जाती हैं लेकिन इन बोलियों के सामने पूर्वोत्तर में हिन्दी बौनी क्यों है? अतीत के गर्भ की पृष्ठभूमि में और वर्तमान के परिदृश्य में इन सवालों से पीछा नहीं छुट सकता है। शिक्षित समाज एवं संस्कृति का यह परम दायित्व है कि हिन्दी जैसी व्यावहारिक भाषा का प्रयोग व्यापक स्तर पर हो। यदि ऐसा हुआ तो अगली पीढ़ी उत्तरदायित्व सँभाल सकती है और भारत के पूर्वोत्तर राज्यों में भी उत्तर भारत की तह ही हिन्दी समझी, बोली एवं लिखी जा सकती है। आशा एवं विश्वास का अद्भुत संचार

* *शोधार्थी (हिन्दी विभाग), पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग, मेघालय*

इसलिए भी है कि यहाँ प्राकृतिक संपदा का विशाल भण्डार है। यदि पूर्वोत्तर राज्यों को पर्यटन के दृष्टिकोण से भी देखा जाये तो यह क्षेत्र काफी समृद्धशाली है। इस कारण यहाँ पर हिन्दी का व्यापक प्रचार एवं प्रसार और भी अधिक संभव है।

अब भारत के पूर्वोत्तर राज्य के समाज, संस्कृति एवं भाषा का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

असम–इस राज्य में प्रमुख रूप से असमिया भाषा का व्यवहार होता है। साथ ही, यहाँ मंगोलियन, इंडो-ईरानी, इंडो-बर्मीज, तिब्बती-बर्मी औदि भाषा, समाज और संस्कृति का भी प्रचलन है। असम की कला-कौशल, संगीत एवं नृत्य जैसे सांस्कृतिक तत्व भी अत्यन्त समृद्ध हैं। वस्तु-निर्माण, बाँस की वस्तुओं के विनिर्माण में भी असम के लोग सिद्धहस्त हैं। असम का नृत्य एवं संगीत पूरी दुनिया में प्रसिद्ध है। एक सन्दर्भ में इस बात की पुष्टि हो सकता है–कामरूप के सम्राट भास्कर वर्मन के द्वारा अनेक चित्रपट्टिकाएँ एवं कलाकृतियाँ मध्यदेश के राजा हर्षवर्धन को भेंटस्वरूप प्रदान की गई थीं। असम के लोग दुनिया के किसी भी हिस्से में हों; वह बिहू त्योहार का लुत्फ जरूर उठाते हैं। साल में बीहू तीन बार पूरे हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। पहला मकर संक्रान्ति के अवसर पर यानि जनवरी के मध्य महीना में। इसे माघी बीहू भी कहते हैं एवं भोगाली भी कहा जाता है। भोगाली का हिन्दी में अनुवाद होता है–पानी। कार्तिक महानी यानि अक्कूटबर में कंगाली बीहू मनाया जाता है। कंगाली का मतलब गरीबी होती है। यह तब मनाया जाता है जब पुराने अनाज समाप्त हो चुके होते हैं और नये अनाज घर में नहीं होते हैं। और, तीसरा बीहू बैसाख यानि अप्रैल महानी में मनाया जाता है। इसे बोहागी या रोंगाली बीहू कहते हैं। यहाँ का बोडो नृत्य बहुत ही प्रसिद्ध है।

मेघालय–सांस्कृतिक एवं भाषायी दृष्टिकोण से मेघालय अत्यन्त समृद्ध राज्य है। यहाँ पर प्रमुख रूप से तीन बोलियाँ बोली जाती हैं–खासी, जयंतिया एवं गारो। यह राज्य प्राकृतिक संपदा से अतिविशाल है। वैसे भी इसे मेघ का घर कहा जाता है। यहाँ ठ्डंडी, गर्मी एवं बारिश–तीनों मौसम का संगम प्रत्येक दिन देखने के लिए मिल सकता है। पर्याटन के दृष्टिकोण से भी मेघालय अत्यन्त समृद्ध है। यह मातृसत्तात्मक राज्य है। यहाँ पर छोटी बेटी पूरी सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी होती है और परिवार के वृद्ध एवं बालक की जिम्मेदारी का निर्वहन करना उसके ही ऊपर होता है।

नागालैण्ड–यह लगभग पहाड़ी क्षेत्र है। यहाँ पर यात्रा करना कम साहस का काम नहीं है। नग शब्द संस्कृति भाषा का शब्द है जिसका अर्थ पहाड़ होता है। यह राज्य अपने कोहिमा वार के कारण भी जाना जाता है। पूर्वोत्तर का यह वह स्थान है, जहाँ पर 1944 ई. यानि द्वितीय विश्वयुद्ध के समय जापानी सेना को रोक दिया गया था। अन्ततः जापानी सेना को हार का ही सामना करना पड़ा था। इसीलिए इसे पूर्व का स्टालिन गार्ड भी कहते हैं। यह राज्य भी मेघालय की तरह ही इसाई बहुल है। इस राज्य में प्रायः अँग्रेजी का व्यवहार होता है। लेकिन हिन्दी शिक्षण-प्रशिक्षण के लिए यह क्षेत्र काफी उर्वर है।

मिजोरम–इस पीर्वोत्तर राज्य में सभी के पास मकान हैं। यहाँ साक्षरता की दर 95.68 प्रतिशत है जो केरल से कुछ ही कम है। यहाँ 21 बड़ी पहाड़ियाँ हैं। यह क्षेत्र भी हिन्दी के लि काफी उर्वर है।

त्रिपुरा–महामाया त्रिपुर सुन्दरी की भूमि त्रिपुरा तीन ओर से बांग्लादेश की सीमाओं से घिरा है। आज का जो त्रिपुरा राज्य है वह त्रिपुरी राज्य का भाग है। इस राज्य का जिक्र रामायण, महाभारत से होते हुए अशोक के अभिलेख में भी मिलता है। यहाँ पत्थरों की मूर्तियाँ अत्यन्त सुन्दरता के साथ पायी जाती हैं। इस राज्य का परिधान भी अत्यन्त आकर्षक है। यहाँ शिव की मूर्तियाँ ज्यादा पाई जाती हैं।

मणिपुर–मणिपुर की 60 प्रतिशत अबादी मेइतेई-प्रांगल जनजाति की है परन्तु आश्चर्य यह होता है कि इस राज्य की कुल भूमि का 10 प्रतिशत भाग ही उनके अधीन है बाकी नागा, कुकी, जोमिस आदि गुटों की आबादी इस राज्य की कुल आबादी का 40 प्रतिशत है किन्तु जमीन के स्वामी छोटे समुदाय वाले हैं। मणिपुर अनेक नामों से पुकारा जाता रहा है–जैसे मेइतेई से जुड़े नाम मेइत्राबाक, मेइत्रीलेपीपाक आदि। मणिपुर अत्यन्त समृद्ध संस्कृति वाला राज्य है। यहाँ हिन्दू धर्म का प्राबल्य है। यहाँ पर मैदानी क्षेत्रों के लोग प्रायः कृष्ण-भक्ति करते हैं। यहाँ का मणिपुरी नृत्य दुनिया के अधिकांश हिस्सों में जाना जाता है।

सिक्किम–इस राज्य में बौद्ध धर्म का प्रभाव व्यापक स्तर पर पाया जाता है। उत्तर-पूर्व भारत का यह अकेला नेपाली बहुल राज्य है। यहाँ की मुख्य्र सम्पर्क भाषा नेपाली है। इसके साथ ही अन्य भाषाएँ भी अस्तित्व में हैं। जैसे–भटिया, तमांग, नेवारी, गपरुंग, शेरपा आदि। सिक्किम, गोवा के बाद भारत का सबसे छोटा राज्य है। और आबादी के स्तर पर भी यह सभी राज्यों से कमतर है। पारंपरिक गुंपा नृत्य यहाँ का अत्यधिक प्रसिद्ध है।

अरुणाचल प्रदेश–इस राज्य की भाषा एवं संस्कृति बहुत विशाल है। यहाँ भाषा एवं संस्कृति में भिन्नता पाई जाती है। न्यूनाधिक मात्रा में हिन्दी का प्रयोग यहाँ देखने को मिलता है। यह राज्य हिन्दी के लिए अत्यन्त उर्वर सिद्ध हो सकता है।

* * * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 268-270

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

लोक भाषा अवधी में श्रीराम

*रेशमा त्रिपाठी**

लोक भाषा अवधी हिन्दी क्षेत्र की एक उपभाषा है यह नेपाल राष्ट्र के लुम्बिनी राप्ती प्रांत से लेकर, उत्तर प्रदेश के अवध क्षेत्र लखनऊ, रायबरेली, सुल्तानपुर, जौनपुर, प्रतापगढ़, प्रयागराज जैसे 22 नगरों में बोली जाने वाली लोक भाषा है जिसे गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में अयोध्या को 'अवधपुरी' कहा है जिसका पुराना नाम है कौशल।

गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित श्रीरामचरितमानस एक ऐसा अनुपम ग्रन्थ हैं जिसका अध्यात्मकी दृष्टि से कोई तुलना नहीं कर सकता। संपूर्ण महाकाव्य में सात खंड एवं लगभग 12 हजार चौपाइयाँ, दोहा, सोरठा, छंद तथा श्लोक हैं। इस महाकाव्य में प्रति कांड के आरंभ में संस्कृत भाषा में मंगलाचरण होता है जो कि तुलसीदास जी को संस्कृत का प्रकांड पंडित सिद्ध करता है और इसी मानस की रामकथा भारत के जातीय कथा के रूप में क्षेत्रीय बोली में स्वीकार की जाती है। अवध क्षेत्र के श्रीराम का चरित्र पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम के रूप माना जाता है जो अवध नरेश के राजा दशरथ के पुत्र हैं और यहीं राम भारत के जन-जन के मन में बसी हुई कथा की सरस धारा में कोई बाधा उत्पन्न नहीं करते हैं ऐसा माना जाता है कि जब तक इस वसुंधरा पर पर्वत मालाएं नदी झरनों आदि का अस्तित्व विद्यमान रहेगा तब तक यह अवध के राम महाकाव्य रामचरितमानस के नायक अपना यश पाते रहेंगे।

यावद स्थास्मन्ति गियरः सरितरचमही तले।
रावत रामायण कथा, लोकेषु प्रचारयति॥ – (वा. रा. 12/36/11)

इसी परम्परा के रूप में बाल्मीकि रामायण कथा का भी ना केवल भारतीय भाषान्तर संस्करण हैं अपितु विदेशी भाषाओं एवं अन्य भाषाओं में भी इसके अनुवाद उपलब्ध हैं जैसे भारत में कंबन रामायण, कृतिवास रामायण, भानु-भक्त रामायण, माधव कालिन्दी रामायण आनन्द रामायण, वरैव रामायण इत्यादि अनेक रामायण के ग्रन्थ उपलब्ध हैं। किन्तु लोक भाषा अवधप्रांत में गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित रामचरित मानस जो कि अवधी भाषा में लिखित हैं इसे भला कौन नहीं जानता। इसे लोक भाषा का महाकाव्य कहना न्याय संगत नहीं होगा क्योंकि आज के हिन्दी भाषा क्षेत्र की धर्म परायण जनता इसको अपनी मातृ लिपि में उच्चारण करके कृतकृत्य होती हैं। उदाहरण के तौर पर-लोकसभा में जनजातियों के प्रतिनिधि के रूप में स्थापित नेता रामविलास पासवान ने भरे सदन में चर्चा के दौरान भारतीय जनता पार्टी के नेता अटलबिहारी वाजपेयी वा लालकृष्ण आडवाणी की तरफ इशारा करते हुए कहा था कि आपके राम कहाँ हैं हमारे पास तो अटल हैं आपके साथ तो लल्ला हैं राम तो रामविलास के साथ हैं। यह बात भले ही राजनीतक संदर्भ में कही गयी हो किन्तु इस बात में निहितार्थ छिपा हुआ हैं। इसमें कोई संदेह नहीं। यदि देखा जाए तो अवधी लोकभाषा के राम गीत, संगीत, नृत्य, औरतों द्वारा रची जाने वाली विवाह गीत, सोहर, भजन लोकगीत सब में बसे हुए राम हैं लेखिका रेशमा त्रिपाठी लिखती हैं–

छंद हो छोटे
अतुलित अलौकिक
आनंद लूट लो
ना लो कभी विराम
सब मेंबसे हैं राम॥''

यह कहना गलत नहीं होगा कि जहाँ साहित्यिक स्थापना अमरत्व का सोपान है और अवध प्रांत के 'राम का अमरत्व लोक स्थापना है अवध के राम लोकप्रतिनिधि हैं, जनप्रतिनिधि हैं और साहित्य लोक मान्यताओं के पीछे-पीछे चलता है राम के परिप्रेक्ष्य में। लोकवासी लोककथा, लोकगीत, लोक गाथाओं में राम की स्थापना के संदर्भ में ऐसे अनेक विषय हैं जहाँ राम योगी भेष में जब वन जाते हैं, तो अवध क्षेत्र की स्त्रियाँ अपने भजन में राम के प्रति किस तरह से प्रेम भाव प्रकट करती हैं–

* *शोधार्थी (हिन्दी विभाग), अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा, मध्य प्रदेश*

चौदहा बरिसवा के दिन कब ओरैइहैय
बतावा जननी राम,कबलें वन से आईहैय
पतझड़ बनवा,कोयलिया न बोलय,
फुलवा न फुलैय, भांवरवा न डोलैय
उजरी नगरी राम काबलें बासईहैय।
बातावा जननी राम कबलें वन से आइहैय।

इस तरह के गीतों पर चिंतन करने से राम एकाग्र भाव का दर्शन होता है तो कि अवधी के राम की रामलीला है। अवधी में रामलीलागान प्रसिद्ध नाट्यमंचन है जो कि उत्तरकांड का एक सूत्र लोकमानस में श्रीराम की व्यापकता सिद्ध करता है–

राम अनंत अनंत गुन, अमित कथा विस्तार।
सुनि आचरनु न मानिहहिं, जिन्ह के विमल विचार।।

रामचरितमानस मार्मिक कथा के रूप में व्यक्त होने वाला पात्र हैं जो जीवन के पल प्रतिपल के संदर्भ में भाव विह्वल होकर झूम-झूम कर आनंद लेने वाले भावों के हृदय स्पर्श रूप में बसे हुए हैं वह अवधी के राम भाषा तथा संपूर्णता में देखे जाने वाले हैं यह कहना गलत नहीं होगा कि अवध भारतीय संस्कृति का मुकुट है और अवधि के राम चंदन के हार के समान है। यही कबीर की भावना और तुलसी की आत्म भावना है जो कि अवधी भाषा को हिन्दी साहित्य में विशिष्ट स्थान दिलाती हैं। इस भूमंडलीकरण के इस दौर में ग्राम में जीवन और यहाँ की संस्कृति में बहुत बदलाव हुआ किन्तु राम के परिदृश्य में आज भी स्त्रियाँ अपने पितासे लोकगीतों और गीतों के माध्यम से अपनी पसंद नापसंद को खुलकर कहती हैं। जैसे–

अम्मा करदें नौकरियां संग ब्याह।
हल जोता बालम नाही भाए रे।।

हिन्दी साहित्य की काव्य धाराओं की दृष्टि से देखें तो स्पष्ट होता है कि हिन्दी साहित्य में अवधी की रचनात्मकता मध्य काल में हुई। जो कि काव्य परंपरा बनी प्रारंभ में। अवधी की रचना विशेषकर ईश्वर की रचनाओं में मिलती हैं जैसे कि भरत मिलाप की पंक्ति है–

अस कहि भरथ परें मुनि चरना, उपजा प्रेम जाइ नहिं बरना।
रोवहिं भरय नयन झारिलाई, राम उङ्गाई बहिुरि उरलाई।।

स्पष्ट है कि अवधी का विकास मध्य काल में हुआ। शताब्दी के प्रवर्तक माने जाने वाले हैं रामानन्द जी लिखते हैं–

आरती कीजै हनुमान लला की।
दुष्ट दलनरघुनाथ कला की।
जाक बल से गिरिवर कांपे।
भूत पिसाच निकट नहिं तांके।।

वहीं अष्टछाप कवि अयोध्या की शोभा के वर्णन में लिखते हैं–

अवधपुरी की शोभा जैसी। कहि न सकै सेष श्रुति तैसी।।

कहा जा सकता है कि अवधी भाषा का परिचय राम के बिना संभव नहीं हो सकता है इसलिए राम की प्रासंगिकता के संदर्भ कभी भी अछूते नहीं रहे हैं बस कभी कभी लोगों के राम दशरथ के राम से अलग होते हैं। क्योंकि वे निर्गुण ब्रह्म के पोषक होते हैं किन्तु अवधी के माध्यम से कवियों ने राम को एक न्यायाधीश के रूप में स्थापित कर जीवन और जगत् में व्याप्त जड़ता, रुढ़ियों, अंधविश्वासों को नष्ट कर धार्मिक सामाजिक चेतना का संचार करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। क्योंकि लोग भाषा में ही अभिव्यक्ति का समावेश होता है इसलिए सामान्यतः प्रांत की भाषा की अनुकूलता बदलती रहती हैं और अभिव्यक्ति का समावेश होता है इसलिए सामान्यतः प्रांत की भाषा की अनुकूलता बदलती रहती है और सामाजिक विसंगितयों पर चोट करते हुए जीवन की नश्वरता आदि का बोध कराते समय जटिलता के रूप में प्रतीत होती हैं, वहीं आराधना करते समय उसमें एक अद्भुत शांति का शोर दिखाई देता है। भाषा के रूप में हर व्यक्ति विशेष के अंतरात्मा में एक विशेष स्थान रखती है और सामान्य बोलचाल में व्यावहारिक मार्गदर्शन में या उदाहरण के रूप में लोगों के रूप में रीति-रिवाजों में, कहीं ना कहीं विद्यमान होती है जैसे–हे राम !, कसम श्री राम की, कैसे करी राम, अब का कोई राम, मुंह में राम बगल में छुरी, धैर्य धरो श्रीराम के जैसे इत्यादि। तरह के व्यक्ति के प्रत्यक्ष/अप्रत्यक्ष रूप से राम विचरण करते रहते हैं जिसकी किसी के साथ तुलना नहीं की जा सकती हैं। मान्यता है कि दशरथ के राम भगवान विष्णु के अवतार थे किन्तु फिर भी वह स्थान प्राप्त नहीं हुआ उन्हें जो लोक भाषा में जो राम

को प्राप्त हैं या राम शब्दों को प्राप्त है। यही लोग भाषा के अनन्त रूपी राम हैं जो धरा से लेकर मोक्ष के द्वार तक का सफर हर व्यक्ति विशेष के साथ में करते हैं यही इनकी प्रासंगिकता का मुख्य केन्द्र बिन्दु है जो तुलसीदास की रामचरितमानस की भाषा अवधी में है कुछ लोग गीतों के माध्यम से राम की महिमा का गुणगान अन्य रूपों में देख कर, सुनकर, समझकर लिखते वे व्यक्त करते हैं। जैसे कि डॉ. कुमार विश्वास अपने अपने राम का कार्यक्रम में अधिकतर ग्रुप में राम शब्द की परिभाषा अवधी के राम के रूप में ही है किन्तु मानव के अपने-अपने एवं प्रेम के कारण अलग-अलग राम हैं जबकि राम को लगभग एक रूप में भाषा के रूप में जाना जाता है। वह है अवधी–

ठुमुक ठुमुक चले रामचन्द्र बाजे उनकै पैजनिया।
किलकि-किलकि उठत धाय गिरत भूमि पलट जाए।
मात गोद लेत दशरथ की रानियां...॥

इस प्रकार यदि हम लोग भाषा के अवधी के भजन में देखे तो–

बाजे ताल शहनाई हमारे मन रामापर बसी गवाही।
चारों तरफ से देवता खड़े हैं
बिचवा में फुलवा चढ़ाई
हमार मन रामा पर बसी गवा हो...॥

गाँव की स्त्रियों के द्वारा पूजन, शादी, विवाह आदि में संगीत के माध्यम से राम को हम सकारात्मक और नकारात्मक दोनों रूप में देख सकते हैं, जैसे सोहर गीत–

सांझे दहिवाजमायाऊ, सबरे उठी मारेउ हो...।

देवी गीत हैं–

श्री रामचन्द्र सीता वनवास जा रहे हैं...।

नृत्य गीत हैं–

खूब गुछी राम मेरे कंगन में मोतियां
कहाँ पायाऊं कंगन कहां पायऊमोतियां
कहाँ पायाऊ हो दिल लगनाबलमवा...॥

इत्यादि तरह के बीतों में राम विद्यमान मिलते हैं सामान्यतः अनुभूति ही राम हैं। जो हवा रूपी अदृश्य चित्रांकन में महसूस होने वाली ध्वनि, ध्यान और स्पर्शराम हैं जो जन-जन के हर शतक के रूप में विद्यमान हैं यही अवधी लोकभाषा में राम की प्रासंगिकता को सिद्ध करती हैं। जिसने अब तक सरचना को जीवांत रखा, कवि की कल्पना को दर्पण दिया साधारण मनुष्य को शीर्ष स्थान की ख्याति में उपमा की प्रतिपूर्ति भी हैं इसी मिथक कल्पना के संदर्भ में डॉ. विजेन्द्र ने भारतीय मिथक कोष ग्रन्थ में लिखा है कि–साहित्य सृजन में सत्य और कल्पना के अतिरिक्त जो तत्व सक्रिय रहते हैं उनमें पूर्वकथा, आद्विम्ब, फेंटेसी का मुख्य स्थान हैं पुराणकथा, पुरातत्व कथा या देव कथा मेरी कोरी कल्पना पर आधारित न होकर लोकानुभूति से संश्लिष्ट एक ऐसी कथा होती है जो अलौकिकता का संदेश देती है। राम शब्द अंधकार में प्रकाश की ओर ले जाने वाली वही शक्ति रूपी ज्योति है जो मानव को स्वयं सत्य से परिचित कराती है। क्योंकि राम आदर्श पुरुष के रूप में स्थापित हैं वह स्वयं में क्या थे? क्या नहीं। इसके भाव कैसे रहे होंगे? इस पर विचार न करके अब तक मात्र राम के कर्म, व्यवहार, कर्तव्य, त्याग आदि पर ही लेखन कार्य किया गया। चर्चा/परिचर्चा की गई और शोध कार्य भी किये गये। लोकभाषा का मानना है कि राम के चरित्र पर्व पर बहुत कुछ कहना निरर्थक सिद्ध होगा अतः साहित्य के उपवन में अवधी लोकभाषा एक महत्वपूर्ण वृक्ष के रूप में अपनी आँखों से जिसका लोकनायक राम है और जिसका निवास क्षेत्र अवधी है। वही लोकभाषा का राम है।''

संदर्भ-सूची

1. जनसेवा स्वयं शोध शिक्षा संस्थान, उत्तर प्रदेश उम्मेष पत्रिका, अंक नवम्बर, 2017 से अप्रैल, 2018।
2. लोकभाषा अवधी में श्रीराम (अयोध्या शोध संस्थान प्रथम संस्करण, 2016), संपादक डॉ. योगेन्द्र प्रताप सिंह।
3. द हिन्दू में प्रकाशित लेख (दशहरा पर्व 2017) के संदर्भ में।

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 271-276

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

समकालीन हिन्दी कविता में अभिव्यक्त स्त्री का यथार्थ

धर्मराज यादव डॉ. चन्द्रभान सिंह यादव***

युगीन यथार्थ के परिप्रेक्ष्य में देखें तो समकालीन हिन्दी कविता में स्त्री से जुड़े यथार्थ का कैनवस सर्वाधिक विस्तृत है। यूं तो स्त्री संवेदना हर युग में केन्द्र में रही है। रहे भी क्यों न मानव-जीवन की एक धुरी जो है–स्त्री। हिन्दी कविता के समकालीन दायरे में स्त्री-संवेदना बाजार व पुरुषवादी सामाजिक व्यवस्था से जूझती नजर आती है। विगत पच्चीस वर्षों में हिन्दी कविता में अभूतपूर्व स्त्रीवादी लेखन और रचना-दृष्टि की सक्रियता की आहट सुनायी पड़ रही है। सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में उससे जुड़ी संस्थाओं तथा यथास्थितिवादी हितों में टकराव स्वाभाविक है। औद्योगिक क्रांति, प्रौद्योगिकी के विकास, महानगरीकरण, नये कानूनों की उपस्थिति, जनसंचार-क्रांति, वोट बैंक की जरूरत, बाजारवाद, वैश्वीकरण तथा उपभोक्तावाद इत्यादि अनेक घटकों के कारण वैयक्तिक एवं पारिवारिक विघटन तीव्रतर हो गया है। पश्चिम में स्त्रीवादी आंदोलन की शुरुआत जॉन स्टुअर्ट मिल की पुस्तक 'अ सब्जेक्शन ऑफ वुमैन' (1869) से हो चुकी थी। सन् 1942 में वर्जीनिया वुल्फ की 'ए रूम ऑफ वन्स ओन' तथा सन् 1949 में सिमोन द वोऊवार की पुस्तक 'द सेकेण्ड सैक्स' का प्रकाशन हुआ, जिसमें स्त्री-सम्बन्धी संवेदनशील मुद्दों पर विचार करते हुए स्त्री को दूसरा दर्जा दिये जाने वाली विचारधारा का जोरदार खंडन किया गया। अमेरिका, इंग्लैण्ड तथा फ्रांस आदि पश्चिमी देशों में विकसित स्त्रीवादी दृष्टि ने पूरे विश्व का ध्यान आकर्षित किया। स्त्री की पुरुष के समान भागीदारी, कामकाजी स्त्री का परिवार में दोहरा योगदान, कला-विज्ञान, तकनीकि तथा खेल जगत में स्त्री की अभूतपूर्व अनेक उपलब्धियों ने स्त्री से जुड़े तमाम मुद्दों, चिन्ताओं तथा समस्याओं के सार्थक समाधान ढूँढ़ने के लिए एक नई आधारभूमि तैयार की है।

उत्तर-आधुनिक परिदृश्य में साहित्य में स्त्री के प्रति चिन्ता व सरोकार विस्तृत फलक पर अभिव्यक्त हुए हैं और स्त्रीवादी-चिंतन पूर्णतया आधुनिक चेतना से लैस हैं। स्त्री क्या सोचती है, जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण, उसकी आकांक्षाएँ व अपेक्षाएँ उसका जीवन उद्देश्य तथा जीवन के विभिन्न पक्षों पर उसके विचारों का विश्लेषण आज के युग की अनिवार्यता है। प्रसिद्ध संपादक व विचारक राजेन्द्र यादव के शब्दों में– "सच्चाई यह है कि सत्ता के केन्द्रों के टूटने या वैकल्पिक केन्द्रों के उभरने का युग है। सुरक्षित और संगठित धार्मिक-राजनैतिक केन्द्रों द्वारा हाशिए पर धकेल दिए गए अल्पसंख्यक, दलित, पिछड़े हुए और स्त्रियाँ अलग-अलग केन्द्र बनकर अब इस तरह सामने आ रहे हैं कि अनदेखा करना संभव नहीं रह गया है। सबसे जटिल और संश्लिष्ट स्थिति स्त्री उभार की है।"[1] समय की इस अनिवार्यता को साहित्य ने विस्तृत फलक प्रदान किया है। समकालीन साहित्य में स्त्री रचनाकारों की संवेदनशील अभिव्यक्ति एवं साहसिक आत्म-स्वीकृतियाँ कई मायनों में चौंकाने वाली हैं। उन्होंने स्त्री होने के नाते जिस गहराई एवं सूक्ष्मता से स्त्री जीवन की व्यथा, जरूरतों, अधिकारों एवं माँगों पर विचार किया है, वह पुरुष रचनाकारों की तुलना में कहीं अधिक सूक्ष्म एवं प्रामाणिक है। यही कारण है कि स्त्री रचनाकारों ने साहित्य की विभिन्न विधाओं में स्त्री-विमर्श को व्यापक धरातल प्रदान किया है।

संचार-क्रान्ति पाश्चात्य संस्कृति के अभाव, उपनिवेशवादी संस्कृति, बाजारवाद, भूमंडलीकरण व आर्थिक-सामाजिक दबावों के कारण भारतीय सांस्कृतिक जगत् में उठा-पटक हुई है, उसके केन्द्र में स्त्री है। उपभोक्तावादी संस्कृति के फलस्वरूप स्त्री का वस्तु के रूप में परिणत होना, उसके प्रति बीमार, भद्दी व अश्लील धारणाएँ हमारी संस्कृति के मुँह पर करारी चोट है। बाजार के आकर्षण और धन के प्रलोभन की आड़ में अच्छा-बुरा, उचित-अनुचित बड़ी आसानी से छिप जाता है। मध्यमवर्गीय अति सुविधाभोगी जीवन जीने की ललक ने इस प्रवृत्ति को इस कदर बढ़ावा दिया है मानो स्त्री की अस्मिता और उसके जीवन के कटु सत्यों से किसी को कोई वास्ता नहीं है, लेकिन आधुनिकता के नाम पर संस्कृति को तार-तार करती इन परिस्थितियों और

** शोधार्थी (हिन्दी विभाग), के. जी.के. महाविद्यालय, सम्बध, एम.जे.पी. रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली*

** * हिन्दी विभाग, के. जी.के. महाविद्यालय, सम्बद्ध एम.जे.पी. रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली*

चुनौतियों ने सचेत व जागरूक कर नारी के मन व मस्तिष्क को पूरी तरह से प्रभावित किया है। आज की स्त्री की दबंग व निर्भीक भूमिका ने हर क्षेत्र में पुरुष को चौंकाया हैं आज तक अपने अधिकारों के प्रति उदासीन, दंभित स्त्री आज अपने विरुद्ध किये जा रहे हर किस्म के छोटे-बड़े षड्यंत्रों के खिलाफ भिड़ने को तैयार है। स्त्री-विमर्शवादी स्त्री-रचनाकारों ने अपनी मध्यपूर्ण कृतियों के माध्यम से साहित्य-जगत में भी एक चुनौती की तरह उभर रही है। सुधीश पचौरी के शब्दों में ''विज्ञापन में अपनी त्वचा के बारे में स्वयं को मोहित, दर्शकों को सम्मोहित करती हुई, दहेज की माँग से भिड़ जाने वाली लड़कियाँ... बलात्कारियों के खिलाफ बोल उठना और ऐसे अनेक अनन्त दैनिक दृश्य व सूचनाएँ जहाँ और होने का विशिष्ट दबा हुआ अनुभव भाषा में व्यवहार में आने लगा है तो भाषा के साहित्येतिहास के नर-संसार में खलबली सी मच गयी है।''[2] संभवतः 'खलबली' का यह अहसास आलोचनीय मुद्रा में है। समाज में स्त्री के पक्ष में परिवर्तन के लिए तैयार जान पड़ता है, विशेषतः मध्यवर्गीय समाज।

हिन्दी कविता में पिछले पच्चीस वर्षो से स्त्री-विमर्श साहित्य के केन्द्र में उभरकर प्रस्तुत हो रहा है। समकालीन कविता के क्षेत्र में कई ऐसे कवयित्रियाँ सामने आई हैं, जिनकी नारी जीवन से जुड़े विभिन्न मुद्दों के प्रति गहन परख व सूक्ष्म-दृष्टि के अतिरिक्त भाषा के प्रति सजगता सहज ही प्रभावित करती है। स्वतंत्रता के बाद कविता के क्षेत्र में स्त्री-विमर्शवादी स्वर बड़े संवेदनशील एवं व्यापक स्तर पर सुनाई देता हैं। इस दृष्टि से अनामिका, कात्यायनी, गगन गिल, तेजी ग्रोवर, अर्चना वर्मा, सविता सिंह, निर्मला गर्ग, नीलेश रघुवंशी, रंजना श्रीवास्तव, वाजदा खान इत्यादि नाम उल्लेखनीय हैं। इन सब स्त्री रचनाकारों ने नव-संस्कृतिवाद की व्यवस्था में नारी की स्थिति, स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की टकराहट, परम्परा व आधुनिकता से उपजे द्वंद्व, नारी द्वारा स्वयं की अस्मिता की तलाश तथा यथास्थिति के अनेक संकटों को सूक्ष्मता से अनुभव कर काव्य में अभिव्यक्ति दी है।

समकालीन हिन्दी कविता में स्त्री की पीड़ा एवं व्यथा को व्यापक स्तर पर अभिव्यक्ति मिल है। सदियों से चली आ रही रूढ़ परम्पराओं, पितृसत्तात्मक नैतिक प्रतिमानों तथा पुरुष प्रधान भारतीय समाज में सदियों से दमिल, शोषित व संघर्षरत स्त्री आज भी उस दमन चक्र से पूरी तरह मुक्त नहीं हो पायी है। आधुनिकता के फलस्वरूप अपने अस्तित्व के प्रति सजग व सचेत स्त्री को घर-परिवार तथा बाहर हर स्तर पर पुरुष के वर्चस्व का सामना करना पड़ता है। पुरुष प्रधान समाज द्वारा सताई गई स्त्री को दबी व मुखर पीड़ा स्त्री रचनाकारों ने पूरी संवेदनशीलता से प्रस्तुत किया है। सविता सिंह, गगन गिल, अनामिका, कात्यायनी, अर्चना वर्मा, नीलेश रघुवंशी, सुमन केशरी, वाजदा खान, वर्तिका नंदा, राजुला शाह की कविताओं में स्त्री पीड़ा का मर्म कई स्तरों पर उभरा है।

गगन गिल ने स्त्री की पीड़ा को पूरी भयावहता से उभारा है। ऐसी कविताओं का मर्म जहाँ एक ओर हृदय को कचोटता है, वहीं दूसरी ओर चेतना के मर्म के उपचार के प्रति संचालित भी करता है। एक दिन लौटेगी लड़की कविता में गगन गिल ने नारी की पीड़ा का चित्रण इस प्रकार किया है–

''एक दिन लौटेगी लड़की
हथेली पर जीभ लेकर
हाथ होगा उसका लहू से लथपथ
मुँह से टपका लहू कपड़ों में सूखा हुआ
फिर धीरे-धीरे मुँह उसका आदी हो जायेगा
कपड़ों के खुशनुमा रंग उसके चेहरे पर लौटेंगे
सोचेगी नहीं वह भूलकर भी
अपनी हथेली के बारे में, जीभ के बारे में
क्योंकि लड़की कुछ नहीं सोचेगी
और इस तरह हर दहशत से परे होगी
या कहें कि दहशत के बीचो बीच
लड़की में कुछ नहीं काँपेगा
ऐसा कुछ भी नहीं, जिसे धड़कता हुआ कह सकें।''[3]

सदियों से पुरुष की प्रताड़ना सहती स्त्री आज की कवयित्रियों की चिन्ता का प्रमुख विषय बना है। स्त्री आज भी शारीरिक और मानसिक प्रताड़ना सहने के लिए शापित है। 'नहीं हो सकता तेरा भला' कविता में कात्यायनी ने स्त्री की इसी मानसिक प्रताड़ना को शब्दबद्ध किया है–

'बेवकूफ जाहिल औरत
कोई ऐसा करेगा तेरा भला
अमृता शेरगिल का तूने
नाम तक नहीं सुना
हे ईश्वर !
मुझे ऐसी औरत क्यों नहीं दी
जिसका कुछ तो भला किया जा सकता...
यह औरत तो सिर्फ भात रांध सकती है
और
बच्चे जन सकती है।
इसे भला कैसे मुक्त किया जा सकता है?''[4]

अनामिका ने 'दरवाजा' कविता में स्त्री की पीड़ा को इस प्रकार अभिव्यक्ति दी है–

मैं एक दरवाजा थी
मुझे जितना पीटा गया
मैं उतना खुलती गयी
खुदा ने कलम रख दी
और कहा
'औरत है' उसने यह गलत नहीं कहा।''[5]

स्त्री की इस पीड़ा व व्यथा के लिए जिम्मेदार परम्परागत रुढ़ियाँ, स्त्री को एक बंधी-बंधायी लकीर पर जीने के लिए विवश करती सामाजिक-व्यवस्था, पितृसत्ता तथा पुरुष सत्ता को चुनौती देती समकालीन कवयित्रियों ने इन सब पहलुओं की बारीकी से जाँच-पड़ताल कर उन्हें पूरी तरह नकारने का साहसिक कदम उठाया है। सविता सिंह ने अपनी कविता 'नमन करूँ छोटी बेटियों को' में किस तरह का रोष प्रकट किया है, दृष्टव्य है–

'नमन करूँ इस देश को
जहाँ मार दी जाती हैं हर रोज
जहाँ एक औरत का जीवित रहना
एक चमत्कार की तरह है।
नमन करूँ उस माँ को
अपनी बेटियों को जनती हुई जो
रोती है 'अब क्या होगा इनका ईश्वर
इस संसार में
नमन करूँ उस पिता को
जो देता है जीवन बेटियों को
अपनी हड्डियों-रक्त-मज्जा से
बनाता है उनका शरीर
फिर कागज की नावों की तरह

बहा आता है उन्हें जीवन के अथाह जल में।।
नमन करूँ उन छोटी बेटियों को
जो जी लेती हैं जैसे-तैसे मिला यह जीवन
हो लेती हैं पार कागज की नौकाएँ होते हुए भी
डूबती हैं कई
कई गल भी जाती हैं बीच में ही
कुछ लगती है पार
खतरनाक इस गहरे जलाशयों के।।[6]

चारों तरफ से घिरी विभीषिकाओं से अवगत होकर, अपना रास्ता खुद खोजने की दायित्वपूर्ण सक्रियता स्त्री के जीवन-दर्शन में समा जाती है।

एक स्त्री की मजबूरी को एक कविता में उकेरती हुई आगे नलेश रघुवंशी लिखती हैं–

''लड़की जो घर की उजास है
हो जायेगी एक दिन खामोश नदी।
खामोशी से करेगी सारे कामकाज
चाल में से उसकी नहीं होगी नृत्य की थिरकन
पाँव भारी होंगे पर थिरकेंगे कभी नहीं
यगों-युगों क रखेगी पाँव धीरे-धीरे
धरतीपर चलते धरती के बारे में कभी नहीं
सोचे लड़की।''[7]

एक लड़की के स्वप्न, आकाँक्षा कैसे कुलाँचे मारते हैं, और देखते-देखते वे स्वप्न व व आकाँक्षा तास के पत्ते की तरह भरभरा पड़ते हैं, यह देखने-समझने वाली बात है।

उपभोक्तावादी और बाजारवादी संस्कृति के बढ़ते वर्चस्व के कारण स्त्री का वस्तु के रूप में परिवर्तन होना उसके अस्तित्व के साथ बहुत बड़ा खिलवाड़ है। इस बाजारवादी संस्कृति के केन्द्र में 'स्त्री की देह' है और इस देह का प्रयोग पुरुष को कामुक वृत्ति व कुण्ठाओं की दृष्टि के लिए जा रहा है। आज टी. बी., सिनेमा, विज्ञापन, फैशन, परेड, इत्यादि में हर जगह नारी देह का व्यावसायिक प्रदर्शन हो रहा है। मध्यवर्गीय अति सुविधाभोगी जीवन शैली की लालसा ने आधुनिक स्त्री को इस अर्थ तंत्र में बुरी तरह उलझा दिया है। ऐसे में स्त्री की लड़ाई स्वयं उसके अपने आर्थिक चक्र से मुक्त होने के खिलाफ है। जाने माने आलोचक सुधीश पचौरी के अनुसार–''यहाँ दोहरा संकट बन रहा है। एक ओर स्त्री कर्म क्षेत्र और उपभोक्ता क्षेत्र दोनों में मर्द की निरंकुश दुनिया को विचलित कर रही है तो दूसरी ओर ऐसा लगता है कि वह स्वयं उपभोक्ता वस्तु बनती जा रही है। और फिर एक लड़ाई इस उपभोक्तावाद से बनती है, यानि कि एक झगड़ा स्त्री का स्त्री के उत्तर-युग से भी होना है।[8] इस तरह के युग-प्रभाव अर्थात् बाजार प्रेरित विज्ञापन के आगोश में लिपटी स्त्री की पीड़ा को रंजना श्रीवास्तव ने अपनी कविता 'विज्ञापन की रुलाई' में अभिव्यक्ति की है–

''उसके रोने को
हँसने की तरह देखते हैं सब
अभाव के चेहरे पर
हसी का विज्ञापन हैं
वह हसी के बारे में
बहुत कुछ जानना चाहता है
जैसे बच्चे

जानना चाहते हैं
देश के बारे में,
गाँधी के बारे में।''[9]

खबर मीडिया के संजाल व उसकी दुनिया का प्रभाव समकालीन हिन्दी कविता में खूब देखा जा सकता है। रंजना श्रीवास्तव ने अपनी एक कविता 'यह खबर झुनझुना है' में खबरों में स्त्री विषय को उत्तेजित करके प्रस्तुत किया है–

यह एक रेप केस का
लाइव टेलीकास्ट है
उत्तेजना है, भीड़ है
आवाजें हैं, पुलिस है
सबूत हैं, गवाह हैं।
आरोप-प्रत्यारोप है
माफी है और ससजा की
दरख्वास्त भी
यह खबर एक झुनझुना है
जिसे सब
अपने-अपने तरीके से
बजा रहे हैं।
मीडिया, पत्रकार, राजनीतिज्ञ
पर कोई इस खबर के
दुख के भीतर नहीं है
कोई वहाँ नहीं है
जहाँ लावा पिघल रहा है।''[10]

भारतीय समाज में निम्न वर्ग जिसे अपना रोल मॉडल मानता है, वह मध्यम वर्ग है, और मध्य वर्ग के लिए उच्च वर्ग गंतव्य बनता जा रहा है। इसी वर्ग-संक्रमण की प्रक्रिया में विज्ञापन जगत ऊपरी तौर पर एक साथ सभी में परिवर्तन लाता है। यह संसार मुट्ठी भर लोगों का होता है जिसमें अनुकरणीय समझे जाते हैं–फिल्म सितारे, धारावाहिक के आकर्षक चरित्र तथा कुछ धनाढ्य एवं प्रसिद्ध हस्तियाँ। उनके हाथों में नारी 'नारी' न रहकर देह मात्र बन जाती है। सौंदर्य मंडित देह, भीड़ को खींचने वाली देह, फिल्मों को हिट करने वाली अर्थात् मुनाफा कमाकर देने वाली देह तथा अंग प्रदर्शन से बाजार में टिकी रहने वाली देह। अर्थतंत्र पुरुष के हाथ हैं तथा उनकी इच्छा ही अभिनेत्रियों की भूमिका तय करती है। इसकी परिणति होती है–'कांडचिंग'। यह मर्दवादी यथार्थ है, जो स्त्री को मुक्त दिखाकर अपना स्वार्थ साधता है। रेखा कस्तवार के शब्दों में–''देह की क्रांति ने स्त्री के सारे विकल्प उसके पक्ष में ही नहीं सौंपे हैं। देह के स्वामित्व और देह की छवि से पैसा कमाने की स्त्री की आकांक्षा को बाजार ने अपने हित में भुनाया है। स्त्री की इस स्वतंत्रता को सेक्स उद्योग ने हाथों-हाथ लपक लिया और स्त्री फिर खेल बन गयी। पुरुष ने 'पौरूशीय बदलों' के लिए उसकी 'देह' का 'विषकन्या' की तरह इस्तेमाल किया और 'हमदाद' जैसी रचनाओं का जन्म हुआ। स्त्री सेक्स शोषण का औजार बनी रही, कुछ रूप बदलकर।''[11]

आत्म-स्वीकृति और आत्म-सम्मान की लड़ाई यहाँ एक मुकाम निर्मित करती हैं। पराधीन जीवन भी खुद को जानने-समझने के लिए तैयार है। विपरीत हालात में भी अपने 'स्व' को पहचान कर चलना खुद की माँग है। खुद महसूस किये गये पलों में जीना, भावुक क्षणों में मन के साथ गुनगुनाना स्त्रियों की फितरत होती है। लेकिन इस फितरत पर हमेशा संकट का साया रहा है। अनामिका के शब्दों में–

हँसती हुई दीखती हैं वे
हर ओर

टी.वी. में,
सारे मुखपृष्ठों,
चौराहों पर
पिटकर भी निकलती हो घर से
जाहिर नहीं होने देती।
नये जमाने का घूंघट
हँसी है शायद
सबके मुँह पर है यह
एक नये ड्रेस कोड के तहत।[12]

इस प्रकार समकालीन हिन्दी कविता में स्त्रीवादी-आवाज अत्यन्त मुखरित होकर अपनी पक्षधरता के साथ उपस्थित है। यह प्रमाणित करता है कि समकालीन भारतीय समाज का एक महत्वपूर्ण पक्ष हिन्दी कविता में उपस्थित है और अपनी अमिट छाप छोड़ रहा है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. राकेश कुमार : नारीवादी विमर्श, पृ. 197
2. उपर्युक्त, पृ. 142
3. गगन गिल : एक दिन लौटेगी लड़की, पृ. 28
4. कात्यायनी : पृ. 36
5. अनामिका : कविता में औरत, पृ. 84
6. सविता सिंह : पचास कविताएँ, पृ. 27-28
7. नीलेश रघुवंशी : घर निकासी, पृ. 20
8. राकेश कुमार : नारीवादी विमर्श, पृ. 160
9. रंजना श्रीवास्तव : तनिक ठहरो समुद्र, पृ. 42
10. उपर्युक्त, पृ. 13
11. सं. गिरिराज किशोर : स्त्री के लिए जगह, पृ. 117
12. अनामिका : बीजाक्षरा, पृ. 132

** * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 277-279

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

अमरकांत के उपन्यास में वर्ग संघर्ष के सामाजिक पक्ष

*लोकेश एम.**

सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत समाज में रहने वाले व्यक्तियों के आपस में जो तनाव पूर्ण सम्बन्ध होते हैं या उनके बीच घटने वाली संघर्षपूर्ण स्थिति को स्थान दिया गया है। अमरकांत के उपन्यासों में वर्ग संघर्ष का सामाजिक पक्ष को देखते हुए समाज में व्याप्त विविध परिस्थितियाँ जो समाज का ताना-बाना बुनती हैं जिनमें सामाजिक सम्मान, नैतिक महत्व, नारी संघर्ष, जातियता तथा प्रेम सम्बन्धी भावना, अनमोल विवाह आदि इन्हीं मुख्य बिन्दुओं के माध्यम से अमरकांत के उपन्यासों में चित्रित सामाजिक परिदृश्य को समझा जा सकता है।

1. सामाजिक सम्मान या प्रतिष्ठा : मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह समाज में रहकर समाज के रीति-रिवाज के अनुसार चलना पड़ता है। तभी उसे समाज में सम्मान या प्रतिष्ठा दी जाती है। अतः यों कहा जा सकता है कि- एक कार्य करते वक्त वह दस बार सोचता है कि इसे लोग क्या कहेंगे, की चिंता अधिक होती है।''[1]

अमरकांत जी का उपन्यास सूखा पत्ता का नायक कृष्ण और उर्मिला दोनों में प्रेमांकुर होकर शादी करना चाहते हैं लेकिन दोनों परिवार वाले विरोध व्यक्त करते हैं। जैसे उर्मिला के पिता गंगाधारी बाबू कहते हैं कि- ''पर यह शादी नहीं हो सकती, वह बोले इसका मुझे सबसे बड़ा दुःख रहेगा। मैं समाज को नहीं छोड़ सकता, इससे लड़ने की अभी मुझमें ताकत नहीं है।''[2] मतलब समाज से डरता को दर्शाया गया है। इसी तरह अपनी सामाजिक सम्बन्ध, बंधन और वैयक्तिक परिवार बंधनों में समाज को ही प्रमुख स्थान है।

''हम बहुत पिछड़े हुए लोग हैं, बहुत गिरे हुए। हम जमाने के साथ नहीं चल सकते।''[3] ''आकाश पंक्षी'' नामक उपन्यास में झूठी शान और मर्यादा के कारण रवि और हेमा का विवाह नहीं हो पाता है। यह सम्बन्ध दिखावा, झूठी शान, जाति बंधन के आगे हार मान लेता है।

साथ में आत्महत्या बोल के डराते भी हैं- ''देख बेटी अपनी घर अपनी जाति, अपना धन सबसे अच्छी चीज होती है, अगर तूने हमारा कहना नहीं माना और अपनी तबियत से कोई काम किया तो मैं और बड़े सरकार जहर खाकर जान दे देंगे क्योंकि इज्जत गवांकर जिन्दा रहने से कोई फायदा नहीं है।''[4] अंत में अनिवार्यतः हेमा को घुटनभरी जिन्दगी जीने के लिए विवश कर दिया जाता है, उसकी सारी खुशियाँ, भावनाएँ, सपने सब जाति खानदान की इज्जत के नाम पर टूट जाते हैं।

2. नैतिक महत्व : नैतिकता मानव मूल्यों की वह व्यवस्था है जो अधिक से अधिक मानव को समाज में सही रास्ते पर जाने के लिए मजबूर करती है। समाज में व्यक्ति के अच्छे-बुरे गुणावगुणों को नैतिक मापदण्ड द्वारा मूल्यांकित किया जाता है।

अमरकांत के उपन्यासों में नैतिक-अनैतिक दोनों वातावरण का चित्रण है। समाज समय के साथ-साथ बदलता रहता है। आज सम्बन्धों की पवित्रता मूल्यहीन और आदर्शयुक्त नहीं है। आज शहरीकरण के कारण गाँव में भी बिखराव नजर आती है। ''ग्राम सेविका'' उपन्यास में विशुनपुर गाँव के ग्राम प्रधान विचित्र नारायण दुबे दमयंती को बेटी संबोनधकर भी गुण्डों की काल्पनिक कहानी सुनाकर उसे अपनी हवस का शिकार बनाना चाहता है। उसी तरह 'सुन्ना पाण्डे की पतोह' उपन्यास में जहाँ स्त्री सुरक्षा देनी थी वहीं उसका शोषण उसके ननद से। यहाँ नारी ही नारी पर शोषण करने के लिए प्रेरित है- राजलक्ष्मी की सास अपने पति से चाहती है कि वह बहू के साथ शारीरिक सुख उठाए। इसलिए अपने पति से कहती है, ''अरे जाइए न आप भी बहती गंगा में हाथ धो आइए।''[5] मानवीय संवेदनाओं को समेटकर संरक्षण करने वाली नारी की ऐसी मानसिकता समाज के लिए मारक ही है। इसी तरह ''सूखा पत्ता'' उपन्यास और एक खास विषय है कि मनमोहन का कृष्ण के साथ समलैंगिक प्यार उसके मानसिक विकृति और कुंठा को व्यक्त करता है। यह बदलती मानसिकता व आधुनिक समाज जीवन का परिणाम है।

* *शांध छात्र, हिन्दी अध्ययन और संशोधन विभाग, मैसूर विश्वविद्यालय, मानसगंगोत्री, मैसूर-06*

इन उपन्यासों में समाज में फैली हुई चारित्रिक पतन, वासनाग्रस्त मानसिकता, कायरता, लालच, कामुकता, आदर्शहीन व्यक्तित्व आदि समाज विरोधी चित्रण के साथ समाजोपयोगी, आदर्शमय पात्र का भी चित्रण हुआ है। इस तरह इनकी उपन्यासों में नैतिक और अनैतिक दोनों पक्ष देखने को मिलती हैं।

3. नारी संघर्ष : मानव जीवन में स्त्री की अपनी ही एक महत्वपूर्ण भूमिका है। नारी के बिना यह जीवन अधूरा रह जाता है। ऐसे नारी की स्थिति उनका शोषण, आर्थिक परिस्थितियों में नारी की स्थिति असहाय व विवश नारी की स्थिति, प्रगतिशील तथा सामाजिक कार्यों में योगदान देने वाली ऐसे नारी जीवन में विविध पहलुओं को अमरकांत जी बहुत गहराई के साथ चित्रित करते हैं। सुन्नर पाण्डेय की पतोह उपन्यास के माध्यम से राजलक्ष्मी नामक पात्र द्वारा हर एक घर में स्त्री चार दीवारों से भीतर कैसे टकराकर जी रही है इसका यथार्थ पात्र राजलक्ष्मी है। पति मरने के बाद राजलक्ष्मी सास से बहुत परेशानी सह लेती है, ज्यादा होने पर वहाँ से अनजान राह पर निकल पड़ी और शहर जाकर अपनी आजीविका के लिए घर-घर खाना बनाने का काम करने लग जाती है। हर एक घर के अन्दर तरह-तरह के शोषण से नारी व्यथित थी। उसकी स्थिति अत्यन्त दयनीय है। उस परिवार में चाहे कितना भी धन क्यों न हो पर वहाँ की स्त्रियाँ शोषण का शिकार हैं। उनकी आशा आकांक्षा के अनुसार कोई कार्य नहीं होता और न वे हिसाब से मन पसंद कार्य कर सकती थीं। सभी पुरुष के आज्ञा का विरोध नहीं कर सकती थीं-''अनेक तरह के लोगों के यहाँ उसने काम किया। कोई नेता था, कोई अफसर, कोई व्यवसायी, कोई अध्यापक और कोई क्लर्क और हर जगह लगभग एक ही दृश्य था। जो कुछ ऊपर से दिखाई देता था उसका दूसरा रूप भीतर देखने में आता।''[6] इससे बढ़कर और क्या उदाहरण देना चाहिए कि स्त्री का संघर्ष समझने के लिए यहाँ लेखक स्त्री का आदर्शरूप तथा प्रगतिशील दृष्टिकोण, आदि नारी के विविध संघर्षपूर्ण जीवन के साथ-साथ लड़ते जैसे लघु उपन्यास के माध्यम से वे स्त्रियों को संगठित होकर अधिकारों के लिए लड़ने के भी पक्षधर दिखाई पड़ते हैं।

4. जातियता और प्रेम सम्बन्धी भावना : स्वतंत्रता मिलने के बाद भी भारतीय समाज में जाति के विषय में अभी भी बहुत पीछे है। भारतीय अर्थव्यवस्था का सबसे बड़ा दोष है छुआछूत, ऊँच-नीच, इसे तोड़ने के लिए आज शिक्षित वर्ग थोड़ा बहुत इसके खिलाफ में है, फिर भी पूरी तरह से हटा नहीं सका।

आकाश पक्षी उपन्यास में यह जाति भेद एक आम बात की तरह कहा गया है जैसे ऊँच-नीच का भेद जब से इंसान है तभी से है इसको कोई मिटा नहीं सकता। ऊँचे जाति के लोग अपने अनुकूल जाति को इस्तेमाल करते हैं शान शौकत तथा उच्चता का प्रदर्शन करने के लिए अपने को ऊँची जाति में स्थान रखते हैं, लेकिन अपने मौज मस्ती के लिए कोई जाति का बंधन नहीं मानते, शिक्षित होते-होते लोग जाति विषय लेकर द्वंद्व मनःस्थिति में पड़ जाते हैं। बाद में जाति का विरोध भी करते हैं जैसे-'सूखा पत्ता' उपन्यास में कृष्ण जातीयता विषय लेकर कहता है-''जाति एक सामाजिक ढकोसला है, अपने झूठे अहंकार का कमजोर किला। कुछ साधन सम्पन्न लोगों ने कमजोरों को दबाना चाहा और इसके लिए उसकी सीमाएँ निश्चित कर दीं। इस संसार में दो ही जातियाँ हैं, एक अच्छे लोगों की और दूसरे बुरे लोगों की, एक साधन सम्पन्न लोगों की और दूसरी साधन विहीन लोगों की। क्या ब्राह्मण जाति में एक से एक कमीने, बदमाश, व्यभिचारी और लुच्चे नहीं भरे हैं? क्या और दूसरी जातियों में अच्छे लोग नहीं हैं? क्या यह सच नहीं है कि ऊँची कही जाने वाली जातियों के लोग छिपकर कुकर्म करते हैं और फिर अपने को श्रेष्ठ समझते हैं?''[7] अंततः जातिभेद ऊँच-नीच भाव को मिटाने के लिए यहाँ के पात्र जागृत हो जाते हैं।

प्रेम एक मानसिक प्रक्रिया और प्राकृतिक नियम भी है। समाज में प्रेम के लिए विशिष्ट स्थान भी है विरोध भी है। सामाजिक व्यवस्था में प्रेम सम्बन्ध को माँ-बाप या समाज से बहुत कम महत्व होता है। अपने जाति से ही शादी करना है क्योंकि उन्हें लगता है कि प्रेम विवाह से उनका कुल-मर्यादा कलंकित हो जाएगा। यह डर उन्हें सदैव बना रहता है। सूखा पत्ता उपन्यास में कृष्ण और उर्मिला एक दूसरे से प्रेम कर विवाह करने के लिए घर में प्रस्ताव रखें तो उर्मिला के पिता कृष्ण से इस प्रकार कहता है कि-'' इससे मेरा खानदान चौपट हो जायेगा'' वह आगे कहता है कि ''उर्मिला से तुम्हारी शादी भी कर देता हूँ तो जानते हो मेरी दो छोटी लड़कियों की क्या हालत होगी?''[8]

''आकाश पक्षी'' उपन्यास में प्रेम विवाह का विरोध किया गया है। इज्जत और समाज के डर के मारे प्रेम को त्याग देते हैं। लेकिन 'बीच की दीवार' उपन्यास में इसके विपरीत मोहन और दीप्ति एक दूसरे से इतना प्रेम करते हैं कि अंत में समाज

परिवार सब भूल और छोड़कर दूर जाकर शादी कर लेते हैं। साथ ही अमरकांत के उपन्यास में अन्तरजातीय विवाह और अनमेल विवाह ज्यादा तर देखने को मिलता है, लेकिन समाज प्रतिष्ठा का भय दिखाकर उनके सम्बन्धों को तोड़ा जाता है।

5. पारिवारिक व्यवस्था : परिवार समाज का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण इकाई है। परिवार के बिना समाज नहीं होता। इंसान का जीवन यहीं से निर्माण और यहीं खत्म होता है। परिवार से व्यक्ति का इतना जुड़ाव रहता है कि उसका आरंभिक संस्कार रीति-रिवाज आदि को यहीं से अपनाता है। व्यक्तित्व निर्माण में परिवार का योगदान महत्वपूर्ण है। परिवार सामाजिक संगठन का मूल आधार स्तंभ है। भारत के शुरुआती दिनों में संयुक्त परिवार को देखा जा सकता है लेकिन विकासक्रम संयुक्त परिवार विघटन होकर विभक्त कुटुम्ब बन गया है। इसके कारण आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, लोगों की मानसिकता आदि है।

परिवार में मुख्यतः पति-पत्नी होते हैं उसी को दांपत्य कहते हैं। इन दोनों के सहयोग से ही परिवार चलता है। अमरकांत के उपन्यासों में पति-पत्नी के सम्बन्धों का वर्णन प्रमुख रूप से देखने को मिलता है। सहयोग के साथ-साथ कहीं-कहीं बिखराव भी ज्यादा हो रही है। ''इन्हीं हथियारों से'' उपन्यास में पत्नी-पति को बहुत सहयोग देती है। आर्थिक संकट में भी घर को संभालती है। वह एक आदर्श परम्परा, संस्कृति को पालन करने वाली नारी है। उसके पति झुल्लन पाण्डेय साथ में नहीं रहता। उसे आजीवन उनके वापस लौट आने का इंतजार करनी पड़ती है। विश्वास था कि उसका पति एक न एक दिन जरूर वापस आयेगा ही। वह पति व्रत धर्म का पूर्ण निर्वाह करती है। आजकल पति-पत्नी के सम्बन्धों के टूटने का मुख्य कारण है पति या पत्नी किसी दूसरे के साथ सम्बन्ध बना लेना।'' इन्हीं हथियारों से ''उपन्यास में दामोदर का सम्बन्ध भगजोगिनी से है। कोई भी पुरुष या स्त्री दूसरे के साथ सम्बन्ध रखना पसन्द नहीं करता, अगर रखे तो परिवार विघटन या डिवोर्स आदि दुष्परिणाम हो जाता है।

इस तरह सामाजिक व्यवस्था में परिवार, परिवार के भीतर पत्नी-पति दांपत्य जीवन और प्रेम विवाह, अनमेल विवाह, नारी संघर्ष आदि समाज में कहीं न कहीं होता रहता है लेकिन आजकल शिक्षा समझ के कारण थोड़ा बहुत कम नजर आ रहा है फिर भी यह सब न होना चाहिए। अमरकांत जी ने अपने इन उपन्यासों के जरिये सामाजिक कुरीतियों, अंधविश्वास, सामाजिक विघटन के कारण तत्व और उसके समाधान, परिवर्तन को भी दिखाकर समाज को आदर्श दिशा में ले जाने का मार्गदर्शन देते हैं।

सन्दर्भ-सूची

1. अर्जुन चव्हाण (1995), राजेन्द्र यादव के उपन्यासों में मध्यवर्गीय जीवन, पृ. 104
2. अमरकांत, सूखा पत्ता, पृ. 187
3. वही, पृ. 186
4. अमरकांत, आकाश पंक्षी, पृ. 207
5. अमरकांत, सुन्नर पाण्डेय की पतोह, पृ. 26
6. वही, पृ. 46
7. 'सूखा पत्ता', पृ. 176
8. वही, पृ. 187

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 280-282

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

अमरीक सिंह दीप की कहानियों में व्यक्त सामाजिक चेतना

हरिजन प्रकाश यमनप्पा *

अमरीक सिंह दीप जी का जन्म 5 अगस्त, 1942 (कानपुर) उत्तर प्रदेश में हुआ। आपके पिता का नाम स्वर्गीय सरदार तारा सिंह था और माता का नाम स्वर्गीय श्रीमती दलीप कौर था। स्वभाव से बहुत भावुक और संवेदनशील हैं। आपका एकमात्र सपना है, दुनिया को सुंदर बनाना, दुनिया से कुरूपता को नष्ट करना। आपके इसके लिए सतत कार्यरत रहे हैं।

आपका जन्म एक ऐसे परिवार में हुआ, जो एक निम्न आय वाला वित्तीय परिवार था। पिताजी कामगार थे। सरकारी नौकरी करते थे। वेतन कम था, आप आठ भाई थे। आपके लालन-पालन और पढ़ाई के लिए उनकी तनख्वाह पर्याप्त नहीं थी। इसलिए आप बमुश्किल हाईस्कूल तक ही पढ़ पाये। आपको हिन्दी, पंजाबी के अनिश्चित अंग्रेजी भाषा का भी ज्ञान है। लिखने की प्रेरणा लगातार साहित्य पढ़ने से मिली है और आप अपना गुरु हिन्दी साहित्य के पुरोधा और हंस पत्रिका के सम्पादन 'राजेंद्र यादव जी' को मानते हैं।

पुरस्कार : 'कथा भाषा' द्वारा आयोजित अखिल भारतीय, सर्वभाषा कहानी प्रतियोगिता में 'बेस्ट वर्कर' कहानी प्रथम पुरस्कार से पुरस्कृत।

कहानी के अखिल भारतीय कार्यक्रम 'संगमन' के पिछले 15 वर्षों से आयोजक मंडल के सदस्य हैं।

सामाजिक संदर्भ : समाज के संदर्भ में प्रो. मैकाइवर ने कहा है कि-''समाज का अर्थ मानव द्वारा स्थापित ऐसे सम्बन्धों से है, जिन्हें स्थापित करने के लिए उसे विवश होना पड़ता है।''

व्यक्ति से परिवार और परिवार से समाज बनता है। व्यक्ति जितना अपने आप में महत्वपूर्ण है, उससे कई अधिक समाज महत्वपूर्ण है। व्यक्ति का अस्तित्व समाज से ही होता है। व्यक्ति और समाज दोनों एक दूसरे के पूरक होते हैं। न ही व्यक्ति के बिना समाज बन सकता है और न ही समाज के बिना व्यक्ति। व्यक्ति जैसा होता है, वैसा ही समाज होता है। व्यक्ति की विचारधारा ही समाज की दिशा को तय करता है और समाज ही मानव को अपने कर्तव्यों से अवगत करता है और इसे अवगत कराने का सबसे बड़ा माध्यम साहित्य होता है। इसके माध्यम से ही लेखक पाठक वर्ग के सामने विभिन्न संदर्भों को प्रस्तुत करता है। ऐसे में 'अमरीक सिंह दीप' जी ने अपने कहानियों में व्याप्त विभिन्न मुद्दों को अपने कहानियों के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

अमरीक सिंह दीप की रचनाएँ

1. कहाँ जायेगा सिद्धार्थ : प्रमुख कहानी 'कहाँ जायेगा सिद्धार्थ' साम्प्रदायिकता के विरुद्ध लिखी गयी, एक सशक्त कहानी है जिसमें कहानी का नायक अल्पसंख्यक समुदाय का है, और उसकी कट्टरता की हद तक धार्मिक अधेड़ पत्नी ही जवान बच्चों की माँ होने के बावजूद भी नायक से पुनः माँ बनने के लिए दबाव डालती है। वह इसलिए की गुरुद्वारे में पंजाब प्रांत से आये उसके धर्म उपदेशकों ने अपने सब धर्मावलम्बियों को कहा है कि इन दंगों में हमारे सम्प्रदाय के हर व्यक्ति का फर्ज है कि वह ज्यादा से ज्यादा बच्चे पैदा कर इस जनहानि की क्षति पूर्ति करे। पर नायक इसका विरोध करता है कहता है, ''तुम जिसे धर्म कह रही हो, मैं उसे धर्मतंत्र की सम्प्रदायिकता संकीर्णता मानता हूँ और मुझे इस संकीर्णता से घृणा है, नफरत है, एलर्जी है।''

2. कालाहाण्डी : प्रमुख कहानी 'कालाहाण्डी' का सारतत्व है, कालाहाण्डी (उड़ीसा) में वर्षों से चल रहे दुर्भिक्ष से वहाँ

* *शोध छात्र, हिन्दी अध्ययन और संशोधन विभाग, मैसूर विश्वविद्यालय, मानसगंगोत्री, मैसूर-06*

के गरीबों की ऐसी स्थिति हो गयी है कि वहाँ की गरीब स्त्रियाँ भोजन में जूठन तक बटोर कर अपने परिवार का पेट पालने पर विवश हैं और अपने देह तक समर्पित कर देने पर विवश हैं। वहाँ की गरीबी इस कदर है कि, कहानी में उक्त इस वाक्य से पता चलता है कि, ''उधर आपके देखने लायक कुछ नहीं है अंकल, सूखे खेत, मिट्टी के झोपड़े, गंदे लोग, मक्खियाँ मच्छर, बीमारी, टोटल नर्क है।'' बहुत ही क्रूरता से भरी गरीबी को हम इस कहानी के द्वारा देख सकते हैं।

3. चाँदनी हूँ मैं : 'चाँदनी हूँ मैं' इस कहानी का सारतत्व यह है, प्रेम चन्द्रमा की चाँदनी की तरह एक कोमल अमूर्त एहसास है। हथेलियाँ खोलकर रखो तो यह हथेली पर आता है और अगर इसे मुट्ठी में बंद करने की कोशिश करो तो अलोप हो जाता है। अर्थात् प्रेम बन्धन नहीं, हमेशा मुक्त रहना पसंद करता है। 'चाँदनी हूँ मैं' एक प्रेम कहानी है। प्रेम का एहसास है, अमूर्त चांदनी की तरह, अगर उसे पकड़ने का प्रयास किया जाये तो यह अलोप हो जाता है। मुक्त रखा जाये तो इंसान को अपने कोमल प्रकाश से अच्छी तरह रखता है।

4. सिर फोड़ती चिड़िया : इस कहानी का सारतत्व यह है कि, पढ़ी लिखी लड़की को माँ-बाप अमानत समझते हैं, इंसान नहीं और उसके वर का चयन जातिगत आधार पर बिना उसकी सहमति के कर देते हैं। जबकि लड़की व्यक्ति के तौर पर खुद को स्थापित कर अपना मनचाहा जीवन जीना चाहती है। माँ-बाप की इसी विद्रोह के कारण नायिका लड़ती है। यहाँ नायिका बिना डरे अपने हक को माँग रही है-वह कहती है-''क्या समझ रखा है आप लोगों ने मुझे? भेड़, बकरी, या गाय? किस बात का पचास हजार रुपये दे रहे हैं आप उन्हें? एक बार कान खोलकर सुन लीजिए आप सब। मैं इन्सान हूँ, इन्सान कोई बेची या खरीदी जाने वाली वस्तु नहीं। मुझे बेचने या खरीदने का अधिकार किसी को नहीं।'' या नायिका का शिक्षित होने पर ही वह अपना विरोध प्रस्तुत कर पा रही है और शिक्षा ही ऐसा साधन है, जो सबको अपना हक दिला सकता है।

5. काली बिल्ली : 'काली बिल्ली' कहानी में बाल विवाह की समस्या को दिखाने का प्रयास किया गया है। इस कहानी के जरिए 'अमरीक सिंह दीप' जी, यह बताने का प्रयास किये हैं कि, बाल-विवाह पर कानून बना देने से यह प्रथा खत्म होगी, जरूरत है स्त्री शिक्षा और गरीबों की गरीबी दूर करने की। जब तक समाज में रोटी, कपड़ा, मकान की समस्या नहीं सुलझेगी, जब तक गरीबों को शिक्षा नहीं मिलती तब तक यह समस्या वैसे ही होगी।

6. एक कोई और : 'एक कोई और' कहानी के माध्यम से अमरीक सिंह दीप जी ने बताने की कोशिश की है कि, हर इंसान में दो इंसान मौजूद होते हैं। एक वह जो दुनियादारी में फँसा और घर के झमेलों में उलझा रहता है और दूसरा वह जो घर के झमेलों से मुक्त होकर अपना मनचाहा जीवन जीना चाहता है।

7. वनपाखी : इस कहानी के माध्यम से अमरीक सिंह दीप जी ने प्रेमकथा को व्यक्त किया है। यह एक प्रेमकथा पर आधारित कहानी है। दाम्पत्य में देह दाल-भात होती है, सहज और सुलभ लेकिन प्रेम में देह अनायास ही आती है। वह पूजा में प्राप्त प्रसाद की तरह लेकिन हमेशा नहीं। यहाँ नायक उत्सुक होकर कहता है-''मद्दी क्या हम फिर से घर-घर नहीं खेल सकते? तब तो हम चारपाईयाँ खड़ी कर उन पर खेस-चादरे डालकर झूठमूठ का घर-घर खेला करते थे। आज इतना बड़ा पक्का-पुख्ता छत और दीवारों वाला घर है हमारे पास लेकिन इस घर में अब कोई घर-घर खेलने वाला नहीं रहा।'' इस वाक्य से पता चलता है कि बहुत दिनों बाद वे मिले हैं, और नायक-नायिका फिर से प्रेम बंधन में बंधना चाहते हैं।

8. यह मिथक नहीं : इस कहानी की नायिका 'सावित्री' को उसका पति 'सतराम' निरंतर मारता रहता है, एक बार सतराम के भीषण रूप से बीमार हो जाने पर अपने आदर्श पति धर्म का निर्वहन करते हुए सावित्री अपने पति को मौत के मुँह से बाहर निकाल लाती है। ठीक हो जाने के कुछ माह बाद सतराम फिर सावित्री की बुरी तरह से पिटाई करता है। सावित्री समीर बाबू से कहती है कि-''जानते हो समीर बाबू आज सुबह जब यह नासपीटा मुझे बेरहमी से कूट रहा था, तो मैं क्या सोच रही थी, कि बीमारी के बखत अगर मैंने इसे मर जाने दिया होता तो अच्छा था...।'' इसमें पता चलता है कि स्त्री की मानसिकता बदल रही है, पर पुरुष की नहीं। पुरुष सत्ता स्त्री प्रताड़ना करना चाहता है। इसका उदाहरण-सावित्री की स्थिति से पता चलता है कि उसकी मानसिकता परिवर्तित होती है।

निष्कर्ष : हम कह सकते हैं कि किसी रचनाकार को जानना है तो उसके रचनाओं के द्वारा जाना जा सकता है। उनकी रचनाएँ हमें उनके जीवन से परिचय कराती हैं। 'अमरीक सिंह दीप' की रचनाएँ भी इसी प्रकार की हैं। उन्होंने गरीबी, प्रेम, स्त्री

शिक्षा, विद्रोह आदि इन सभी रचनाओं को पाठक के सामने बताया है।

'अमरीक सिंह दीप' की कहानियों में स्त्री की पीड़ा है, दलित अल्पसंख्यक की समस्याएँ हैं, धर्म के पाखंड पर प्रहार है, कामगार श्रमिक वर्ग की व्यथा है। गरीबी और मध्यवर्ग के रोजमर्रा के जीवन से जूझती मुसीबतों का आख्यान है। दीपजी की सभी कहानियाँ अपने कलेवर में बहुत आधुनिक हैं। आधुनिकता का आशय सिर्फ देह विमर्श नहीं है, जिसे आज प्रगतिशीलता का पर्याय मान लिया गया है। आधुनिकता का आशय सोच से है, घिसीपिटी परम्पराओं से लड़ाई में है, स्त्री की अस्मिता से जुड़े सवालों से है। साम्प्रदायिकता पर चोट करने से है, धर्म के पाखंड पर प्रहार करने से है और दीपजी की हर कहानी ऐसे ही किसी मुददे को उठाती है। चाहे वह 'तीर्थाटन' कहानी की विधवा सुदेश हो या ''सिर फोड़ती चिड़िया'' की विवाह संस्था पर प्रश्न उठाती 'अनन्या' हो, या साम्प्रदायिकता से जूझना 'कहाँ जाएगा सिद्धार्थ'' का पात्र हो। सब समाज से तीखे सवालों के साथ हमारे समक्ष खड़े हो जाते हैं, और सोचने पर मजबूर कर देते हैं।

सन्दर्भ-सूची

अमरीक सिंह दीप : चुनी हुई कहानियाँ

1. अमरीक सिंह दीप : कहा जाएगा सिद्धार्थ, पृ. 47
2. अमरीक सिंह दीप : कालाहाण्डी, पृ. 101
3. अमरीक सिंह दीप : सिर फोड़ती चिड़ियाँ, पृ. 146
4. अमरीक सिंह दीप : वनपाखी, पृ. 144
5. अमरीक सिंह दीप : यह मिथक नहीं, पृ. 26

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 383-386

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

मध्ययुगीन सामाजिक चेतना

*डॉ. मन्जू कोगियाल**

सारांश–समाज मानव का एक प्राकृतिक संगठन है। जो एक परिर्वतनीय और गतिशील प्रक्रिया है। मानव सामाजिक प्राणी होने के नाते समाज से पृथक नहीं रह सकता। मनुष्य समाज में रहता है। समाज की प्रत्येक स्थिति तथा घटना से वह समान रूप से प्रभावित होता है। व्यक्ति के व्यक्तित्व पर तत्कालीन परिस्थियों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। मनुष्य के विकास में समाज की अहम भूमिका होती है। सामाजिक विद्रुपताओं, रूढ़ियों तथा परम्पराओं से उसका जीवन अवरूद्व हो जाता है। मानव को सभी जीवधारियों से श्रेष्ठ माना गया है। वह विभिन्न परिवेश में रह कर वहां के जीवन मूल्यों को ग्रहण करता है। जीवनमूल्य व्यक्ति को समाज में जीवन जीने की सर्थकता बताता है। ''प्राचीन काल से ही भारतीय समाज ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के समाज में विभाजित रहा है। व्यक्ति जन्म से नहीं कर्म से महान होता है। विश्व का प्रत्येक समाज वर्ण में विभाजित है। भारतीय समाज में प्राचीनकाल से ही धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चार पुरुषार्थों का महत्व रहा है।'' चेतना इस चराचर जगत में व्याप्त वह शक्ति है जो उन्हें निर्जीव और जड़ वस्तुओं से पृथक करती है और उन्हें चैतन्यमय बनाकर सजीव सिद्व करती है।

बीज शब्द–चेतना, सामाजिक चेतना, वर्णव्यवस्था, पुरुषार्थ, मध्यकाल का समाज, मध्यकालीन चेतना, नारी अस्मिता, भक्ति आन्दोलन।

चेतना–इस संसार का सृजन जड़ व चेतन दो पदार्थों से मिलकर हुआ है। इनमें से चेतन वह तत्व है, जो उसे जड़ और निर्जीव पदार्थों से पृथक कर सजीव व चैतन्यमय बनाता है। शब्द "चेतना" बुद्धि, ज्ञान, मनोवृत्ति, स्मृति, सुधि, चेतना, होश, संज्ञा, समझना एवं विचारना आदि अर्थों में प्रयुक्त होता है। अंग्रेजी में चेतना शब्द का समानार्थी शब्द 'कांशसनेश' है, जो मस्तिष्क की जागृतावस्था किसी वस्तु के विषय में ज्ञान, जानकारी अथवा विचारों को द्योतित करता है। किसी आन्तरिक मनोवैज्ञानिक अथवा आध्यात्मिक तथ्य के प्रति आंतरिक ज्ञान की प्राप्ति 'चेतना' है। किसी बाह्य पदार्थ को आंतरिक रूप में ग्रहण करना चेतना है। विचारों, दृष्टिकोणों एवं भावनाओं का वह समूह जिसके प्रति वर्ग, समूह या व्यक्ति एक समय अथवा काल विशेष में जागरूक हो उसे 'चेतना' के अन्तर्गत लिया जा सकता है।

प्रो0 पारेख नेहा ने अपनी पुस्तक में 'चेतना' शब्द को कुछ इस प्रकार व्याख्यायित किया है– शब्द 'चेतना' की व्युत्पत्ति 'चित्त' धातु से हुई है, जिसका सामान्य अर्थ 'मन' है। अतः 'चेतना' का शाब्दिक अर्थ है– चित्त का विशेष भाव या चित्त की विशेष अनुभूति। चेतना शब्द मूलतः मनोविज्ञान का शब्द है।"[1] राजपाल हिन्दी शब्दकोश' में चेतना का अर्थ दिया गया है– "1. होश में आना, 2. सावधान होना, 3. सोच समझकर ध्यान देना।''[2] 'शिक्षक हिन्दी शब्द कोश' में चेतना का अर्थ– "1. होश में आना, 2. सावधान होना, 3. सोच समझकर ध्यान देना''[3] 'आधुनिक हिन्दी शब्द कोश' में चेतना का अर्थ इस प्रकार लिखा है– "मन की वह वृत्ति जो जीवन को अंतर और बाह्य का ज्ञान करती है। वह स्थिति जो प्राणी के चेतन होने का प्रमाण देती है। संवेदना, संज्ञा, ज्ञान, प्रतिबोध, सजीवता, बुद्धिमता, तर्कता, शक्ति चेतस।''[4] 'भाषा शब्दकोश' में चेतना का अर्थ दिया है– "बुद्धि, मनोवृत्ति, स्मृति (ज्ञानात्मक), सुधि, चेतनता, होश (चेत + ना प्रत्यय) संज्ञा में होना, होश में आना, सावधान या चौकस होना, विचारना, समझना "तब न चेतना केवला जब ढिग लागी बेर।''[5] 'बृहद् हिन्दी कोश' में चेतना से तात्पर्य है– "चैतन्य, ज्ञान, होश, याद बुद्धि,

* *असिस्टेण्ट प्रोफेसर, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मालदेवता, रायपुर, देहरादून (उत्तराखण्ड)*

चेत, जीवन शक्ति, जीवन, बुद्धि विवेक से काम लेना, सोचना, विचारना।''[6] 'नालन्दा विशाल शब्द सागर' में चेतना शब्द का अर्थ दिया है– "1. बुद्धि 2. मनोवृत्ति, 3. ज्ञानात्मक मनोवृत्ति, 4. स्मृति, सुधि, 5. चेतना, संज्ञा, होश।''[7] 'हिन्दी साहित्य कोश' में चेतना का अर्थ इस प्रकार दिया गया है– "चेतना मानस की प्रमुख विशेषता है, अर्थात् वस्तुओं, विषयों व्यवहारों का ज्ञान। चेतना की परिभाषा कठिन है, परन्तु इसका वर्णन हो सकता है। चेतना की प्रमुख विशेषता है, निरन्तर परिवर्तनशीलता अथवा प्रवाह। इस प्रवाह के साथ–साथ विभिन्न अवस्थाओं में एक अविछिन्न एकता और साहचर्य। चेतना का प्रभाव हमारे अनुभव वैचित्य से प्रमाणित होता है और चेतना की अविच्छिन एकता और व्यक्ति से विभिन्न विषयों की अलग–अलग समय पर चेतना होने पर हम सदा यह भी अनुभव करते हैं कि मैंने अमुक वस्तु देखी थी, यदि हमारी चेतना अखंड और अविच्छिन्न न होती तो यह अनुभव हमें न होता। लेकिन यह अखण्डता और अविच्छिन्नता साहचर्य से सम्भव होती है। विभिन्न मानसिक प्रक्रियाओं में साहचर्य (अथवा आसंग) के द्वारा इतना घनिष्ठ बन जाती है। मानसिक संघर्ष, अत्याधिक दमन और भावात्मक आघातों से साहचर्य नष्ट भी होते जाते हैं और तब चेतना भी बिखरी–बिखरी सी हो जाती है। क्या व्यक्ति की खंडित चेतना में साहचर्य नष्ट होने की अनेक मात्रा हो सकती हैं? यदि कम मात्रा में हो तो कोई विशेष व्यवहार, कोई मानसिक क्रिया सम्पूर्ण चेतना से वियोजित हो जाती है, परन्तु व्यक्ति के लिए गम्भीर समस्या नहीं उठती। यदि अधिक मात्रा में हो तो बहुव्यक्ति खंडित व्यक्तित्व आदि रोग हो जाते हैं।''[8]

शब्द 'चेतना' का उपयोग प्रायः मनोवैज्ञानिक अर्थ में ही होता है, परन्तु कभी–कभी इसका प्रयोग दार्शनिक अर्थ में भी हो सकता है। विज्ञानवादी और प्रत्ययवादी दार्शनिक चेतना या विज्ञान को शाश्वत और एक मात्र सत्ता मानते हैं। इस अर्थ में 'चेतना' शब्द 'आत्मा' का समानार्थक हो जाता है। परन्तु साहित्य में और दर्शन में भी इस अर्थ में प्रायः 'चेतन्य' शब्द का उपयोग किया जाता है। चेतना शब्द सामान्य वैज्ञानिक अर्थ में ही अधिक होता है।

इस प्रकार चेतना शब्द के कोशगत अर्थ को देखने व समझने से स्पष्ट हो जाता है कि यह शब्द व्यक्ति को जगाने, होश में लाने, सावधान करने, चैतन्यमय होने तथा जागृति के अर्थ में प्रयुक्त होता है। शब्द 'चेतना' को विभिन्न विद्वानों ने परिभाषित किया है। डॉ. रामप्रसाद त्रिपाठी ने 'चेतना' को कुछ इस प्रकार परिभाषित किया है कि– "बोध या चेतना स्वयं को अपने आस–पास के वातावरण को समझने तथा उसकी बातों का मूल्यांकन करने की शक्ति का नाम है।"[9]

'चेतना' को और सूक्ष्म तरीके से व्यक्त करते हुए डॉ. पारेख नेहा लिखती हैं कि– "मानव बुद्धि प्रधान एवं संवेदनशील प्राणी है। उसे अगर कोई मच्छर भी काट लेता है तो उसकी संवेदना होते ही मानव का हाथ उसे मसल देने के लिए तुरंत आगे बढ़ता है। इस संवेदना और उसके बाद जो शक्ति मानव में कार्यरत रहती है, वही चेतना है।"[10] 'चेतना' के सन्दर्भ में अर्चना जैन का मत है कि– "चेतना सभी प्रकार के मानसिक अनुभवों का संग्रहालय है।"[11]

चेतना ही वह एक मात्र माध्यम है, जो व्यक्ति को हर उस कार्य अथवा घटना से अवगत करती है जो उसके लिए हानिप्रद तथा लाभदायक है। उसे सावधान रहने का कार्य यही चेतना करती है। चेतना ही मनुष्य को आगे बढ़ने तथा अपने अधिकारों को प्राप्त करने में एक सजग प्रहरी का कार्य करती है। बिना चेतना के मुनष्य का व्यक्तित्व सुसुप्त रहता है।

सामाजिक चेतना–सामाजिकता व्यक्तिगत नहीं समष्टिगत है। वह एक प्रगतिशील तत्व है। उसमें विहित विकासशील तत्वों के सम्बंध में निश्चित मत स्थापित करना अत्यंत कठिन हो जाता है। अतः इस तरह के परस्पर विरोध ा तथा भिन्नता में भी एक समन्वय भाव जाग्रत कर सामाजिक चेतना निर्माण की जाती है। समाज में विविधता भले ही हो, परन्तु एक विशिष्ट भू–भाग में रहने वाले जन समुदाय में सामाजिक समष्टिगत भाव विद्यमान रहना आवश्यक है। सभी समुदाय संगठित होकर एक अखण्ड समाज का रूप धारण करते हैं। अतः समाज में सभी तत्वों को समानता के स्थान पर उनका आपसी समन्वय और उन सबमें रहने वाली अंतश्चेतना ही सही अर्थों में **सामाजिक चेतना** कहलाती है। ''सामाजिक चेतना में समष्टिगत के अभ्युदय की प्रेरणा विद्यमान होती है। समाज के लिए जनसमुदाय के मन में जाग्रत भाव शक्तिशाली प्रेरणा और इनको संचालित करने वाली अंतश्चेतना का दूसरा नाम सामाजिक चेतना है।''

स्वरूप एवं परिभाषाएं–साहित्य एवं समाज एक दूसरे के पूरक रहे हैं। समाज में जो भी घटित होगा, साहित्य उन घटित और अघटित घटनाओं से प्रभावित होता है। हर काल का साहित्य अपने–अपने समाज की

उपज होता है। सामाजिक चेतना की विभिन्न विद्वानों द्वारा विभिन्न परिभाषाएं दी गयी है। समाजसुधारकों ने भी अनेक रूपों में व्याख्या की है। सामाजिक चेतना के संदर्भ में डॉ0 काशीनाथ लिखते है कि'' यदि मनुष्य की जागरूक मानसिक स्थिति चेतना कहलाती है तो समाज के प्रति उसकी जागरूक मानसिकता ही सामाजिक चेतना है।''[12] वह आगे लिखते हैं– ''समाज को गहराई से देखने परखने की उसकी सामाजिक चेतना के कारण ही उसे उसका समाज अत्यंत ही सरल और सजीव दिखाई देता है।जिससे उसकी रचना भी सरस बन पड़ती है।''[13] इसी विषय में रत्नाकर पांडेय का मत दृष्टव्य है कि–''जब कोई नवीन विचारधारा समाज में प्रवेश करती है और निश्चय सुधार के लक्ष्य की ओर अग्रसर होती है, तो सामाजिक विचारधारा जाग्रत होती है। इसी जाग्रती को सामाजिक चेतना कहा जाता है।''[14] उपरोक्त परिभाषाओं से यही अर्थ व्यंजित होता है कि सामाजिक व्यवस्था में अज्ञान और अंधकार से पीड़ित शोषितों के प्रति सहानुभूति व्यक्त करते हुए शोषण व्यवस्था के विरूद्व जाग्रत होकर जो आवाज उठाता है। उसे सामाजिक चेतना कहा जाता है।

मध्यकालीन सामाजिक चेतना

''जगत में किसी भी विचारधारा का उदय और विकास निरालंब और निरपेक्ष नहीं होता। उसकी अपनी एक अलग पृष्ठभूमि होती है। उसके उदय और विकास की प्रेरक परिस्थितियां, प्रवृत्तियां और परम्पराएं भी पृथक ही होती है।'' मध्यकाल की सामाजिक संरचना सामंती ढांचे पर आधारित थी। सामंत वर्ग प्रभु वर्ग था। मध्यकाल के विषय में डॉ0 सतीश चन्द्र लिखते है कि–''मध्यकाल के सामन्त वर्ग के लक्षण कुछ इस प्रकार थे– उच्च कुल में जन्म, भूमि से वंशानुगत संबंध, राजकीय सेवा में उच्चनपद, खास तरह की संहिता, खास जीवन शैली, वीरता, परम्परागत विद्या की पृष्ठभूमि आदि ।''[15] मध्यकाल की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना भक्ति आन्दोलन है। मध्ययुग में सारा समाज भक्तिमय हो गया था। इस आन्दोलन के मूल में भी तत्कालीन सामाजिक विसंगतियां विद्यामान थी। इसी प्रसंग पर प्रकाश डालते हुए डॉ0 शिवप्रसाद शुक्ल लिखते हैं कि ''भक्तिआन्दोलन का स्वरूप मूलतः ब्राह्मणवाद, वर्णवाद और सामंतवाद विरोधी है। वह अधम से अधम व्यक्ति को आधार भाव की तन्मयता, तीव्रता एवं आत्म–समर्पण है। अगर ये गुण किसी व्यक्ति में हैं तो वह चाहे ब्राह्ममण हो या चांडाल, हिंदू हो या मुसलमान भगवद् भक्ति का पात्र है। भक्तिआन्दोलन उस व्यवस्था का विरोध करता है जो मनुष्य–मनुष्य में जाति, वर्ण, धर्म सम्प्रदाय, आचार–विचार के आधार पर भेदभाव करता है। कुल मिलाकर भक्ति आन्दोलन का स्वरूप मानवतावादी है।''[16]

मध्यकाल की सामाजिक व्यवस्था में इस प्रकार की विभिन्नताओं के फलस्वरूप जो वर्ग इन विरोधों को सहता आ रहा था, उनमें एक जागरण तथा चेतना की लहर फूट पड़ती है। वह लहर थी– भगवद् भक्ति की। तद्युगीन घटनाओं व परिस्थितियों ने उस समय के जनमानस को इस ओर बढ़ने को प्रेरित किया। राष्ट्र छिन्न– भिन्न हो रहा था, और देश की एकता क्षीड़ हो रही थी। ऐसे समय में कुछ विद्वान, साहित्यकारों, कवियों और लेखकसों ने 'भक्तिरस' से परिपूर्ण रचनाओं को सृजित कर हताश व निराश जनता में आशा का संचार किया। इनमें कबीर, रैदास, नामदेव , मीराबाई, सूर , तुलसीदास सशक्त प्रमाण है।'' मध्यकाल में दलित, शूद्र, और नारियां अपनी अस्मिता को समझें। इसका प्रमाण समग्र निर्गुण भक्तिकाव्य के कृष्ण भक्ति काव्य है। समूचे भारतवर्ष में भक्ति आन्दोलन का आर्विभाव मध्ययुगीन चेतना का ही एक प्रमाण है। इनके काल के विषय में डॉ0 ज्योति व्यास लिखती है कि ''मध्यकाल धार्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक पद–दलन की प्रतिक्रिया का काल है। इसी काल में अनेक भक्त ऐसे भी हुए, जो भक्ति में आत्मविभोर होकर स्वंय भी निराशा में आशावादी रहे और दूसरों को भी आशावान बनाये रखा। मन,वचन,कर्म की एकता पर आधारित उनका चिंतन, संदेश और क्रियात्मक जीवन जन–मानस का कंठहार बन गया।''[17]

''यह युग धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक सभी प्रकार की समस्याओं से घिरा था। भारतीय संस्कृति को विकृत अधोमुखी वृत्तियों से बचाकर जीवित और जागृत रखने की बहुत बड़ी चुनौति संतों एवं भक्तों के सामने थी। जिसे स्वीकारते हुए संत एवं भक्त कवि युग के आलोक स्तंभ बने रहे जिनमें संत रैदास का नाम आदर के साथ लिया जाता है।''[18]

मध्यकाल में वर्णव्यवस्था जटिलतर हो गयी थी। समाज का ढाँचा छिन्न–भिन्न हो चुका था। भारत में ब्राह्मणवादी समाज ने यहाँ की निम्न जातियों को इस प्रकार पद–दलित किया कि वह मानवीय धरातल पर खड़े

होने की कल्पना ही नही कर सकते थे। जिसका लाभ विदेशियों ने उठाया। समाज की इन्हीं विसंगतियों को दूर करने के लिए तत्कालीन कवियों एवं लेखकों ने अपनी वाणी के माध्यम से लोक जनमानस में चेतना का संचार किया। उन्हें जीवन की सही दिशा दिखा कर उनके पथ प्रदर्शक बनें। यही कारण है कि कबीर दास जी को कवि के साथ समाजसुधारक भी कहा जाता है। ''चूँकि साहित्य युग की समसामयिक जीवन का दर्पण होता है। कवि की संवेदनाओं से संपृक्त उसकी अभिव्यक्ति युग को प्रतिबिंबित करने में सार्थक सिद्व होती है। यदि कवि समय और अपने समाज के प्रति ईमानदार रहा हो तब तो यह अभिव्यक्ति एकदम सत्य और प्रभावोत्पादक होती है।

निष्कर्ष–सामाजिक चेतना की दृष्टि से मध्यकाल एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस युग में समाज में अनेक विद्रुपताएं विद्यमान थी। समाज का ढांचा छिन्न–भिन्न हो गया था। सामाजिक परिस्थितियों में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ है। हिंदु–मुस्लिम संस्कृति में आदान–प्रदान हुआ। एक ही परिवार के कुछ व्यक्ति हिंदू बने कुछ मुसलमान बन गए। उस समय तक हिंदू–मुसलमानों में परस्पर विवाह हो जाते थे, किन्तु शनैः–शनैः जाति–पांति के बन्धन कठोर होते जा रहे थे। इस लिए मध्ययुगीन संत कवियों ने भी इन कठोर नियमों के विरूद्व समाज को जागरूक करने का प्रयास किया। इस क्षेत्र में कबीरदास का दृष्टिकोण बड़ा क्रांतिकारी रहा है। उन्होंने बड़ी निर्भीकता से जातीय विषमताओं की ओर संकेत किया है–

''ऊंचे कुल का जनमिया, जो करनी ऊंच न होय,
सुबरन कलस सुरै भरया, साधु निंदा सोय।''

कबीर के साथ–साथ अन्य मध्य कालीन भक्त कवियों ने भी अपने अपने तरीके से इन चीजों का विरोध किया है। हिंदी साहित्य के इतिहास में संवत् 1700 से 1900 तक के कालखण्ड को मध्यकाल के नाम से अभिहित किया जाता है। जब भारत में मुगलों का शासन था, मुगलों के वैभव–विलास और विजय वृत्तांत के अनेक उदाहरण मिलते हैं। मध्य युग में समाज सामंतवादी पद्धति पर आधारित था। दिल्ली के अनुकरण पर छोटे–छोटे राजाओं में भी वैभव विलास की प्रवृत्ति आ गयी थी। निम्न वर्ग का जीवन सदा की भांति उपेक्षित था। उनकी आर्थिक स्थिति भी अच्छी नहीं थी। इस काल में स्त्रियों की सामाजिक दशा भी दयनीय थी। वह मात्र पुरुष की सम्पत्ति तथा भोग्या मात्र थी। किसी भी कन्या का अपहरण करना अभिजात वर्ग के लिए सामान्य बात थी। फलस्वरूप अल्पायु में ही लड़कियों का विवाह प्रचलित हो गया।

सन्दर्भ–सूची

1. डॉ0 पारेख नेहा, ऊषा प्रियंवदा के उपन्यासों में सामाजिक चेतना, पृ. 87
2. हरदेव बाहरी, राजपाल हिंदी शब्दकोश, पृ. 45
3. हरदेव बाहरी, शिक्षक हिंदी शब्दकोश, 130
4. गोविन्द चातक, आधुनिक हिंदी शब्द कोश, पृ. 21
5. रमाशंकर शुक्ल, रसाल भाषा शब्दकोश, पृ. 589
6. धीरेन्द्र वर्मा, वृहद हिंदी शब्दकोश, 35
7. श्री नवल, नालन्दा विशाल शब्दसागर, पृ. 42
8. धीरेन्द्र वर्मा, हिंदी साहित्य कोश, पृ. 24
9. डॉ. रमा प्रसाद त्रिपाठी
10. डॉ. पारेख नेहा, ऊषा प्रियंवदा के उपन्यासों में सामाजिक चेतना, पृ. 88
11. डॉ. अर्चना जैन, प्रेमचन्द साहित्य में सामाजिक चेतना, पृ. 16
12. डॉ. काशी नाथ सिंह, बचन साहित्य और संत साहित्य का समाजशास्त्र, पृ. 19
13. वही, पृ. 19
14. रत्नाकर पाण्डेय, हिंदी साहित्य में सामाजिक चेतना, 15
15. डॉ. सतीश चन्द्र, इण्डियन सोसाइटी हिस्टोरिकल प्रोविंगस, पृ. 248
16. शिवप्रसाद शुक्ल, मध्यकालीन भक्तिकाव्य के वैचारिक सरोकार, पृ. 10
17. डॉ. ज्योति व्यास, प्रेमचन्द साहित्य के उद्देश्य, पृ. 24
18. वही, पृ. 27

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

History : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 287-289

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

उत्तर प्रदेश के फतेहपुर जिले में नवपाषाणकालीन स्थल

*डी. के. चौहान**

फतेहपुर जनपद (26⁰ 16′31″–250 26′18″ उत्तर : 80⁰ 16′ 15–81⁰ 21′36″पूर्व)[1] उत्तर प्रदेश में गंगा–यमुना द्वाबा में इलाहाबाद तथा कानपुर जनपदों के मध्य स्थित होने के कारण पुरातात्विक शोध की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उत्तर में गंगा नदी इस जनपद को रायबरेली एवं उन्नाव जिलों से पृथक करती है। दक्षिण में यमुना नदी इसे बांदा जिले की विन्ध्य पर्वत श्रृंखलाओं से जोड़ती है। प्रयाग से मथुरा जाने वाला प्राचीन स्थल मार्ग इस जनपद के मध्य से गुजरता था। फतेहपुर में पाषाणकालीन स्थलों की सम्भावना इसलिए भी प्रबल हो जाती है कि व्दाब की उपजाऊ भूमि, वनों एवं नदियों के तटों पर खाद्य सामग्री प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थी। इसीलिए पाषाणकालीन मानव ने यहाँ आकर्षित होकर अपना आवास बनाया होगा।

फतेहपुर जनपद के दक्षिण में बाँदा जिले में कई स्थलों से 18वीं शताब्दी में श्री कुकबर्न तथा श्री थियोबाल्ड ने नवपाषाण कालीन उपकरणों की खोज की थी।[2] विगत दो दशकों में बाँदा जनपद में बिरियारी, पहरा, भीखमपुर, पुरावाजोन्थवारा आदि स्थलों से नवपाषाण कालीन उपकरण प्राप्त हुए हैं।[3] फतेहपुर जनपद के उत्तर में उन्नाव[4] तथा पूर्व में इलाहाबाद[5] जनपदों में भी कई स्थलों से नवपाषाण कालीन उपकरण प्रकाश में आये हैं। फतेहपुर जनपद के चतुर्दिक नवपाषाण कालीन उपकरण प्राप्त होने से इस जनपद में नवपाषाण कालीन स्थल मिलने की सम्भावना प्रबल हो जाती है। विगत दो वर्षों में फतेहपुर जनपद से भी नवपाषाण कालीन उपकरण प्रकाश में आये हैं।[6] पुरातात्विक सर्वेक्षण क्रम में खागा तहसील के कई स्थलों से नवपाषाण कालीन उपकरणों की खोज हुई है, जो इस जनपद की प्राचीनता निर्विवाद रूप से नवपाषाणकाल तक सिद्ध करती है। प्रस्तुत लेख में नवपाषाण कालीन स्थलों की प्रागैतिहासिक महत्ता को उद्घाटित करने वाली पुरा सामग्री का मात्र संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किया जा रहा है।

नवबस्ता–बेगाँव– यह स्थल खागा तहसील के 16 किलोमीटर उत्तर–पूर्व दिशा में गंगा नदी के दक्षिण तट पर अवस्थित है। यहाँ प्राचीन टीले से कुल त्रिभुजाकार नवपाषाण कालीन कुल्हाड़ियाँ प्राप्त हुई हैं, जिनका औसत आकार 8 X 8.5 सेंटीमीटर है तथा वे काले रंग के बसाल्ट पाषाण पर निर्मित हैं। यहाँ ताम्र–प्रस्तरकालीन काले एवं लाल मृद्भाण्ड, मध्यकालीन मृद्भाण्ड, मुगलकालीन ग्लेजड मृद्भाण्ड, पाषाण–मूर्तियाँ फतेहपुर नगर के टाउन हाल में संग्रहीत हैं।

ब्राह्मण टोला– यह स्थल खागा स्टेशन से एक किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यहाँ से कुल 8 त्रिभुजाकार नवपाषाण कालीन कुल्हाड़ियाँ प्राप्त हुई हैं। यह कुल्हाड़ियाँ द्वितल हैं तथा उनके किनारे तेज धार वाले हैं। उपकरणों में विशेष प्रकार की चमक है, जो घर्षण से उत्पन्न की गई है। पाषाण उपकरणों वाले का औसत 5 X 8 सेंटीमीटर से 21 X 8 सेंटीमीटर के मध्य है। 4 उपकरण अर्द्धनिर्मित हैं। यहाँ से 200 मीटर की दूरी पर एक प्राचीन टीले के अवशेष मिले हैं। जिसके निकट मध्यकालीन खण्डित पाषाण प्रतिमाएँ यत्र–तत्र बिखरी हैं।

बुढ़वन– यह स्थल खागा शहर से 7 किलोमीटर पूर्व स्थित है। यहाँ भी नवपाषाण कालीन उपकरण देखे गए हैं। प्रमुख औजारों में बसाल्ट पाषाण पर निर्मित त्रिभुजाकार कुल्हाड़ियाँ हैं, जिनका आकार औसतन 25 X 9 सेंटीमीटर है। यहाँ कुल पाँच कुल्हाड़ियाँ प्राप्त हुई हैं। यहाँ एन0बी0पी0 मृद्भाण्ड, शुंग–कुषाण कालीन पकी

* *ए. एस. एस. एम., लखनऊ*

मिट्टी की प्रतिमाएँ तथा गुप्तकालीन पाषाण प्रतिमाएँ भी उपलब्ध हैं। इस स्थल से 1/2 किलोमीटर दूरी पर मझिलगों नामक स्थल से एक तृतीय शताब्दी ई0 का एकमुखी शिवलिंग प्रकाश में आया है, जिसके पादुका भाग पर नागों का ब्राह्मी लिपि का एक अभिलेख उत्कीर्ण है।

कुकरी– यह स्थान शहर से 4 किलोमीटर पश्चिम दिशा में है। यहाँ 3 त्रिभुजाकार कुल्हाड़ियाँ देखी गई हैं, ft udk vkdkj 6 X 8 सेंटीमीटर है। यहाँ मध्यकालीन पाषाण प्रतिमाएँ भी देखी गई हैं।

कुकरा– यह स्थल खागा तहसील से 5 किलोमीटर पश्चिम तथा कुकरी से 1 किलोमीटर पश्चिम दिशा में स्थित है। यहाँ भी नवपाषाण कालीन उपकरण मिले हैं। उपकरणों का आकार 6 X 8 सेंटीमीटर है तथा वे बसाल्ट पर निर्मित हैं। यहाँ एक प्राचीन टीले पर कुषाण कालीन पकी मिट्टी की मूर्तियाँ तथा मध्यकालीन मन्दिर के स्तम्भ खण्ड भी प्रकाश में आए हैं। यह स्थल दो ओर से एक गोखुर झील से घिरा है।

भरखना– यह स्थल खागा शहर से 7 किलोमीटर पश्चिम दिशा में स्थित है। यहाँ कुल 2 नवपाषाण कालीन उपकरण देखे गए हैं। इस प्रकार के उपकरणों को अर्द्धनिर्मित उपकरणों की श्रेणी में रखा जा सकता है। फतेहपुर जनपद से प्राप्त नवपाषाण कालीन उपकरण छुटपुट तथा कम संख्या में प्राप्त हुए हैं। इस कारण नवपाषाण काल की संस्कृति का मूल आवास स्थल ज्ञात नहीं हो सका तथा इन उपकरणों को स्तरीकरण से से सम्बन्धित नहीं किया जा सकता है। यहाँ का नवपाषाण कालीन मानव घुमन्तु प्रकृति का रहा होगा। यहाँ से प्राप्त अर्द्धनिर्मित उपकरण इस बात का संकेत करते हैं कि यदि भविष्य में इस क्षेत्र में व्यापक पुरातात्विक अनुसंधान कार्य किया जाय। अनेक प्रयोगकर्ताओं के मूल आवास स्थलों का भी पता लग सकता है। इस जनपद में पाषाण खण्ड उपलब्ध नहीं हैं। इसलिए यह सम्भावना है कि फतेहपुर जनपद का नवपाषाण कालीन मानव पाषाण खण्डों को बाँदा जिले के विन्ध्य पर्वत क्षेत्र से लाता रहा होगा तथा उसने कुछ समय तक अस्थाई रूप से यहाँ की प्राचीन गोखुर झीलों एवं नदियों के तटों पर अपना आवास बनाया होगा। नवपाषाण कालीन मानव का मुख्य खाद्य पदार्थ जानवरों का मांस, मछली, कंदमूल, फल तथा कृषि द्वारा उत्पन्न अन्न रहा होगा जो उसे यहाँ सरलता से उपलब्ध था।

फतेहपुर जनपद के पूर्व में इलाहाबाद जनपद की मेजा तहसील के महगड़ा एवं कोलडिहवा स्थलों के उत्खनन से भी नवपाषाण कालीन उपकरण प्रकाश में आए हैं। किन्तु उनका आकार चतुर्भुजाकार तथा फतेहपुर जनपद के उपकरणों से भिन्न है। यहाँ से प्राप्त उपकरण बाँदा जिले में विरयानी बदौसा तथा जोंधवारा आदि स्थलों से मिले उपकरणों से मेल खाते हैं।[7] फतेहपुर जनपद से मिले नवपाषाण कालीन उपकरणों के समान गंगाघाटी में उन्नाव[8], प्रतापगढ़[9] तथा हमीरपुर[10] जनपदों से भी प्राप्त हुए हैं। उन्नाव तथा प्रतापगढ़ में भी पाषाण खण्ड उपलब्ध नहीं है। इसलिए मेरा सुझाव है कि बाँदा के नवपाषाण कालीन मानव ने गंगा घाटी के फतेहपुर, प्रतापगढ़ एवं उन्नाव जनपदों के द्वाबा क्षेत्र में आकर कुछ समय तक अस्थाई रूप से अपना आवास बनाया था तथा बाँदा व हमीरपुर से इन क्षेत्र में किसी प्रकार का मौसमी आगमन होता रहा होगा। यहाँ की गोखुर झीलों ने बाँदा, हमीरपुर के घुमन्तु नवपाषाण कालीन मानव को आकर्षित किया होगा।

बी0डी0 कृष्णस्वामी ने बाँदा जनपद की नवपाषाण कालीन संस्कृति को प्रारम्भिक काल का माना है। वे इसे पूर्वी भारत की नवपाषाण कालीन संस्कृति वर्ग में रखने के पक्ष में है।[11] फतेहपुर की नवपाषाण कालीन संस्कृति बाँदा से साम्य रखती है। इसलिए इसे भी नवपाषाण कालीन काल के प्रारम्भिक चरण का मानकर पूर्वी भारतीय समूह में रख सकते हैं तथा इनकी तिथि 2500 ई0पू0 से 2000 ई0पू0 के मध्य निर्धारित कर सकते हैं। पूर्वी भारत की नवपाषाण कालीन संस्कृति के मुख्य स्थलों से उत्खनन द्वारा आयताकार तथा त्रिभुजाकार दोनों प्रकार की कुल्हाड़ियाँ प्राप्त हुई हैं। मेरा विचार है कि पूर्वी भारत का नवपाषाण कालीन घुमन्तु मानव गंगाघाटी में दो समूहों में आया था। एक समूह कोल्डिहवा तथा महगड़ा की संस्कृति का निर्माता था तथा दूसरा समूह बाँदा तथा फतेहपुर की संस्कृति से सम्बन्धित था। इसी कारण इन क्षेत्रों से प्राप्त उपकरणों की बनावट में भिन्नता है। इस प्रकार लघु आकार एवं नुकीली मुठिया वाली कुल्हाड़ियाँ बुन्देलखण्ड में विभिन्न स्थलों से भी प्रकाश में आई हैं। उनका सम्बन्ध मध्य एवं पश्चिमी भारत की नवपाषाण–ताम्राश्म युगीन संस्कृति से है। नवपाषाण युगीन मानव ने उपकरण निर्माण के साथ ही कृषि तथा पशुपालन भी सीख लिया था। तत्कालीन कृषि अथवा पशुपालन सम्बन्धी कोई

पुरातात्विक साक्ष्य अभी तक फतेहपुर जनपद से प्रकाश में नहीं आया है। अतएव इस जनपद में नवपाषाण कालीन संस्कृति का अस्तित्व सिद्ध करने एवं उसकी तिथि निर्धारण हेतु विस्तृत पुरातात्विक सर्वेक्षण एवं उत्खनन की अत्यन्त आवश्यकता है।

संदर्भ–सूची

1. नोट्स ऑन सम इम्प्लीमेंट फ्राम द खसी हिल्स एण्ड द बाँदा एण्ड डिस्ट्रिक्स, जे0ए0एस0 X एल0 (कलकत्ता, 1878), पृ. 133–143

   थियोबाल्ड डब्लू 'सेल्टन फाउण्ड इन द बुन्देलखण्ड' प्रोसिडिंग ऑफ द एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल वा एल 11, 1862, पृ. 211

   स्मिथ, बी0ए0, 'पिगमी पिलिंट', इण्डिया एंटीक्वेरी, 1966, पृ. 185–95
2. पंत, पी0सी0, 'समलिथिक टूल इंडस्ट्रीज ऑफ बाँदा', भारती, नं0 2, सम्पादित नारायण ए.के., वाराणसी, 1964, पृ. 27, शर्मा, जी0आर0, इण्डियान आर्कियोलॉजी ए रिव्यु, 1955–56, नई दिल्ली, पृ. 4, पाण्डेय, जयनारायण, इण्डियन आर्कयालॉजी ए रिव्यु, 1968–69, नई दिल्ली, पृ. 37
3. शुक्ल, एस0के0, 'नियोलिथिक बेमेन्ट ऑफ गंगा वेली कल्चर' इलाहाबाद, 1980, अप्रकाशित शोधपत्र इलाहाबाद में नवम्बर–दिसम्बर 1980 में इण्डियन आर्कयोलॉजी सोसाइटी के सेमिनार में पढ़ा गया।
4. शर्मा, जी.आर. द्वारा सम्पादित टू प्री हिस्ट्री, इलाहाबाद, 1982, पृ. 109, इलाहाबाद जनपद में पंचोभ, महगड़ा, कोल्डिहवा से नवपाषाण उपकरण प्राप्त हुए।
5. 'नियोलिथिक वीमन फाउण्ड इन फतेहपुर', टाइम्स ऑफ इण्डिया, अंग्रेजी दैनिक, दिल्ली 30 जुलाई, 1981, पृ. 5
6. शर्मा, जी.आर., फ्राम हन्टिंग एण्ड फूड गेदरिंग टू डोमिस्टीकेशन ऑफ प्लांट्स एण्ड एनिमल्स : बिगनिंग ऑफ एग्रीकल्चर, इलाहाबाद, 1980, पृ. 200
7. देखिए क्रम संख्या 2
8. देखिए क्रम संख्या 3
9. देवप्रकाश शर्मा, रजिस्ट्रीकरण अधिकारी, इलाहाबाद ने सूचित किया है कि उन्होंने सन् 1978 में प्रतापगढ़ जिले के अशडी, अशोधपुर आदि स्थलों से नियोलिथ उपकरणों की खोज की है। श्री जे.एन. पाल ने अपने शोधपत्र में भी मध्य पाषाणकाल की संस्कृति के अन्त में नवपाषाण संस्कृति का उल्लेख किया है। देखिए पाल, जे.एन. 'फ्राम इपीपैलियोलिथिक टू मेसोलिथिक कल्चर इन गंगा वेली' अप्रकाशित शोधपत्र 1981 में वाल्टेयर में इण्डियन प्री हिस्टारिक सेमिनार में प्रस्तुत।
10. रामेश्वर सिंह, पेलियोलिथिक इण्डस्ट्रीज ऑफ नार्थ बुन्देलखण्ड, अप्रकाशित पी–एच.डी. शोध ग्रन्थ 1965 को डेक्कन कॉलेज पूना में प्रस्तुत।
11. कृष्णास्वामी, बी.डी., ऐशिएण्ट इण्डिया नं0 16, दिल्ली।

* * * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

History : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 290-293

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

उराँव जनजाति एवं भुईंहरी व्यवस्था

*डॉ. जयप्रकाश**

सरकारी अभिलेखों, पुस्तकों, सामान्य तथा अन्य संदर्भों में आज कुडुख जनजाति उराँव नाम से उल्लिखित हैं। "कुडुख जनजाति कुडुख से "उरावँ" किन परिस्थितियों में कब, किस प्रकार हो गई आज भी अनिश्चित है।"[1] भिन्न–भिन्न विद्वानों ने अपने अटकलों एवं पूर्वाग्रहों के आधार पर "उराँव" नामकरण के भिन्न–भिन्न सिद्धांत प्रतिपादित किए हैं। "सामान्यतः नृशास्त्रियों एवं अन्य यूरोपीय लेखकों का विचार है कि कुडुख जनजाति को "उराँव" नाम दिया गया। आरोप लगाने वालों ने मात्र अपने पूर्वाग्रहों को महत्व दिया, ऐतिहासिक तथ्यों या तार्किकता को आधार नहीं माना।"[2]

भूईंहर शब्द को छोटानागपुर कास्तकारी अधिनियम में परिभाषित नहीं किया गया है, बल्कि भूईंहरी भूमि के सम्बन्ध में कुछ प्रावधानों का समावेश किया गया है। एस. सी. रॉय ने अपनी पुस्तक "द उराँव ऑफ छोटानागपुर" में भूईंहर शब्द को परिभाषित करने का प्रयास किया है। उनके अनुसार छोटानागपुर के पठार में जब उराँवों का आगमन हुआ और साथ–ही–साथ गाँवों का भी निर्माण शुरू हुआ। "ये उराँव परिवार के लोग प्रारम्भ में जंगलों को साफ कर खेती योग्य भूमि तैयार किये और साथ ही साथ रहने के लिए घरों का भी निर्माण किया। गाँवों के ये संस्थापक परिवार जो जंगलों को साफ कर खेती योग्य भूमि तैयार किये इन्हीं संस्थापक परिवारों को भूईंहर के नाम से जाता है।"[3] इनके द्वारा खेती योग्य तैयार किये गये भूमि को 'भूईंहरी भूमि' कहते हैं।

प्रारंभिक अवस्था में ये परिवार सामूहिक रूप से खेती का कार्य किया करते थे और कालान्तर में इसी भूमि को परिवार के बीच बाँट कर खेती करने की प्रथा प्रचलित हुई। इस कारण भूईहरी भूमि का वर्गीकरण दो भागों में हो गया। "भूईहरी भूमि का वह भाग जो भूईहरी परिवार को व्यक्तिगत अधिकार में रहा बाद में उसे बकास्त भूईहरी के नाम से जाना गया। लेकिन इसके अतरिक्त भुईंहरी भूमी का वह भाग जो भुईंहरी खुँट की पूजा या गाँव के भूत की पूजा के लिए उपयोग में लाया गया। उनको कई नामों से जाना जाता है।"[4] दूसरे वर्ग की भूईहरी भूमि में निम्न प्रकार की भूमि आती है–

1. भूईहरी पहनई, 2. भूईंहरी महतोवाई, 3. भूईंहरी दालीकटारी, 4. भूईहरी भूतखेता, 5. भूईहरी पनभरा, 6. भूईहरी मुण्डाई।

"उराँव जाति के लोगों का ऐसा विश्वास है कि अदृश्य शक्तियाँ इस संसार को संचालित करती है। इन शक्तियों का पूजा किया जाना आवश्यक है। जंगल को साफ करने के क्रम में ये शक्तियाँ प्रताड़ित करती है, जिनके लिए निश्चित अवधि में बलिदान किया जाना आवश्यक हैं इस बलिदान के लिए सामूहिक रूप से और व्यक्तिगत रूप से पूजा की आवश्यकता है। ये अदृश्य शक्तियाँ या भूत किसी उराँव भूईंहर परिवार के खानदान का स्थापित भूत हो सकता है, जिसकी पूजा उसी खूंट के द्वारा किया जाता है। यह पूजा पाक्षिक या वार्षिक हो सकता है।"[5]

उराँव समाज में कई तरह के भूतों की पूजा की जाती है। "खूंट भूत के अतिरिक्त कई अन्य तरह के भूत भी है, इन्हे भी उचित मान्यता दी गई है।"[6] उराँव समाज में इन भूतों की पूजा–अर्चना के द्वारा समाज को व्यस्थित करने की व्यवस्था है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि गाँव के अन्दर होने वाले रोग या प्राकृतिक आपदा का

* *(इतिहास विभाग) मगध विश्वविद्यालय, बोधगया (बिहार)*

कारण ये भूत ही है। इन भूतों को खुश करने एवं उनकी उचित पूजा व्यवस्था का भार भूईंहरी परिवार के किसी खूँट को दी जाती है।" पूजा का यह कार्य जो सम्पादित करता है उसे पाहन कहते हैं।"[7] "दूसरी ओर उराँव जाति के सामाजिक व्यवस्था को व्यवस्थित करने का भार जिस भूईंहरी परिवार पर होता है, उसे महतो कहते हैं।"[8] यही कारण है कि लोग बोलचाल के भाषा में कहते हैं कि "पाहन गाँव बनाता है, महतो गाँव चलाता है।"

उराँव समाज का सामाजिक जीवन धार्मिक मान्यताओं पर आधारित है। महतो और पाहन सामूहिक रूप से सामाजिक व्यवस्था एवं धार्मिक अनुष्ठानों का संस्थापक एवं व्यवस्थापक होते हैं। इसलिए उनका उराँव समाज में उच्च स्थान है। गाँवों के निर्माण के पश्चात् भूईंहर परिवार के अतिरिक्त अन्य उराँव जाति के लोग भी एक गाँव से दूसरे गाँव में जाकर बसने लगे। ऐसा आवागमन कई कारणों से हुआ। पुराना राँची जिला के पश्चिमी भाग में उराँवों ने मुण्डाओं पर आधिपत्य स्थापित किया, लेकिन उन मुण्डाओं में से भूईंहरी परिवार के मुण्डा आज भी यथावत् है। उदाहरणस्वरूप– श्री एस. सी. रॉय ने बेड़ों थाना के मसियातू, भैंसादोन, चपाडीह का उल्लेख किया है। इन गाँवों में आज भी मुण्डा परिवार से ही पाहन एवं महतो चुने जाने की व्यवस्था है, जबकि ये सारे गाँव उराँव बाहुल्य क्षेत्र हैं।

सामाजिक व्यवस्था में गाँव का पाहन धार्मिक प्रमुख है। पाहन को किसी–किसी गाँव में बैगा भी कहा जाता है। पाहन का चुनाव अधिकांश गाँवों में भूईंहरी परिवार से ही होता है। चुनाव के लिए दो तरह की विधि मुख्य रूप से अपनायी जाती है जिसे पैरेंगा या पाईगोटी कहते हैं। अधिकांश गाँवों में पैरेंगा पद्धति ही प्रचलित है। इसके अन्तर्गत पाहन का चुनाव तीन वर्षों के लिए किया जाता है। इस पद्धति में सूप चलाने की व्यवस्था और यह चमत्कारी सूप जिस भूईंहर परिवार के घर में प्रवेश करता है वही पाहन नियुक्त किया जाता है। किसी–किसी गाँव में "महदनिया भूत"[9] की पूजा के लिए अलग पाहन की व्यवस्था है, जिसे महदनिया पाहन कहते हैं। थोड़े से गाँव में पहनई वंशानुगत होता है। इस व्यवस्था में पाहन का लड़का ही पाहन चुना जाता है। मुण्डाओं में विशेष कर पहनई वंशानुगत देखा गया है।

पाहन को गाँव के कई भूतों की पूजा करनी होती है। इन सभी भूतों में चालों पंचों (सरना, बढ़िया), दरहा और देशवाली प्रमुख है। पहनई काम करने के लिए गाँव में उसे विशेष भूमि आवंटित होती जिसे पहनई भूमि कहते है। यह भूमि हस्तांतरित नहीं किया जा सकता है। इस भूमि की पवित्रता गाँव के सभी लोग स्वीकार करते हैं। जमींदारी प्रथा लागू होने के बाद भी पुराने जमींदारों द्वारा इस भूमि के स्थापित महत्व को यथावत् रखा गया था। स्थानीय जमीनदारों द्वारा इस भूमि पर किसी प्रकार का कर या लगान नहीं लगता था। पाहन अपने इस पहनई भूमि के अतिरिक्त गैरही भूमि पर भी आधिपत्य रखता है, जिसे साधारण बोल–चाल की भाषा में मरदाना खेत या भूताहा खेत कहते है। इस प्रकार के भूमि का अन्तरण नहीं किया जा सकता है और न ही ये भूमि किसी व्यक्ति विशेष की रैयती भूमि हो सकती है।

महतो गाँव का प्रमुख होता है। सामाजिक व्यवस्था को संचालित करने में इसका प्रमुख हाथ है। किसी–किसी गाँव में महतो एवं पाहन का कार्य एक ही व्यक्ति करता है। महतो का चुनाव गाँव के अखरा में सभी ग्रामीणों के समक्ष की जाती है। गाँव का जमींदर महतो चुनें जाने पर उन्हें पगड़ी दिया करता था। वास्तव में महतो गाँव प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता है। महतो पद की मान्यता सभी को स्वीकार होती है। जमींदारी प्रथा के समय किसी–किसी गाँव में गाँव के महतो के अतिरिक्त जमींदार का अलग से नियुक्त किया गया महतो भी कार्य करता था। महतो का भी चुनाव भूईंहर खूंट से ही किया जाता है। महतो, पाहन के साथ विचार–विमर्श कर सामाजिक व्यवस्था को संचालित करता है। जमींदारी प्रथा के पूर्व परती भूमि की बन्दोबस्ती एवं गैरही भूमि की बन्दोबस्ती महतो और पाहन के सलाह से ही की जाती थी । इस प्रकार महतो का सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक व्यवस्था को स्थापित करने का महत्व पूर्ण कार्य था।

पनभरा पाहन के सहायक के रूप में कार्य करता है। "सभी धार्मिक अनुष्ठानों एवं पूजा–पाठ के समय इसकी उपस्थिति अनिवार्य होती है। सरना पूजा के समय पूजा की सम्पूर्ण सामग्री की व्यवस्था एवं उसे सरना स्थल तक ले जाने का भार पनभरा पर होता है। इसके इस कार्य के लिए अलग से भूमि आवंटित रहती है जिसे पनभरा खेत कहते हैं। यह भूमि भी भूईहरी भूमि का ही अंश होता है।"[10]

उराँव गाँवों में कहीं–कहीं छोटानागपुर महाराज की ओर से एक प्रतिनिधि नियुक्त करने की व्यवस्था थी। "यह व्यक्ति वास्तव में महाराज का नौकर हुआ करता था और साथ ही उराँव समाज का संदेशवाहक भी होता था।"[11] गाँव में इसे जतरा, परहा एवं अखरा मे होने वाले सामूहिक नष्त्य को संचालित करवाने एवं उराँव लड़के एवं लड़कियों को नृत्य में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करने का भी दायित्व दिया गया था। "इस कार्य के लिए उसे महाराजा की ओर से नौकराना भूमि प्राप्त था। यह भूमि भूईंहरी भूमि के अन्तर्गत नहीं आती थी।"[12] पिछले दो सर्वे के दौरान ऐसा देखा गया कि भूईंहरी भूमि का अन्तरण काफी अधिक मात्रा में हुआ है। ऐसे अन्तरण को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता हैः–

(क) एक भूईंहरी परिवार से दूसरे खूँट के भुईंहरी परिवार के बीच का अन्तरण।

(ख) भूईंहरदार से गैर–भुईंहरदार के बीच का अन्तरण।

प्रारंभ में ऐसे दोनों ही अन्तरण को गैर–कानूनी घोषित किया गया। लेकिन डिवीजनल सर्वे के दौरान "क" में दिये गये अन्तरण को वैध मानते हुए खेवट का निर्माण किया गया। जबकि दूसरे वर्ग के अन्तरण को अवैध मानते हुए बेआएनी बकब्जे 14 की प्रविष्ट मन्तव्य कॉलम में की गयी थी। 1 जनवरी, 1908 के पूर्व भुईंहरी भूमि के अन्तरण पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं था। बाबू रखाल दास हलधर के देख–रेख में जो भूईंहरी रजिस्टर तैयार किया गया था उसे एक्ट ऑफ 1879 में मान्यता प्राप्त नहीं थी और न ही इस अधिनियम के अन्तर्गत भूईंहरी शब्द को परिभाषित किया गया थां। परिणामस्वरूप 1869 से लेकर छोटानागपुर कास्तकारी अधिनियम के लागू होने के पूर्व तक भूईंहरी भूमि की नीलामी एवं खरीद–बिक्री होती रही। पहली बार छोटानागपुर कास्तकारी अधिनियम 1908 की धारा–47 एवं 48 के अन्तर्गत प्रतिबन्धात्मक प्रावधान लाये गये । इन प्रवाधानों के अन्तर्गत किसी भी न्यायालय को यह अधिकर नहीं था कि भूईंहरी भूमि किसी न्यायिक आदेश के आलोक में नीलाम की जा सकती थी। 1908 के छोटानागपुर कास्तकारी अधिनियम की धारा–48 (इ) के अन्तर्गत यह प्रावधान लाया गया था कि यदि भूईंहरी परिवार का कोई व्यक्ति भूईंहरी भूमि या उसके किसी टुकड़े का अन्तरण लीज द्वारा करता हैं तो वैसे लीजधारी को भूईंहरी भूमि पर कैमी हक प्राप्त नहीं होगा।

1938 में छोटानागपुर कास्तकारी अधिनियम के अन्तर्गत व्यापक संशोधन किये गये। 1938 के संशोधन अधिनियम की घारा–11 के द्वारा धारा–48 के प्रावधानों को सम्पूर्ण रूप से बदल दिया गया और इस संशोधित प्रावधानों के उपधारा–4 के अन्तर्गत भईंहरी भूमि को वापस करने का अधिकर उपायुक्त के अनुमति से दी गयी। संशोधन अधिनियम 1938 की धारा–12 द्वारा नये प्रावधान 48 ए को लागू किया गया जिसके अन्तर्गत पूर्व के अधिनियम को और व्यापक एवं मजबूत किया गया।

कोई भी भूईंहरदार जिसकी भूमि छोटानागपुर कास्तकारी अधिनियम के प्रावधानों के प्रतिकूल अन्तरित की गयी है वह 12 वर्ष के अन्दर उपायुक्त के न्यायालय में भू–वापसी के लिए आवेदन कर सकता है। उपायुक्त सुनवाई के पश्चात् भू–वापसी आदेश पारित कर सकते है। 1947 के संशोधन अधिनियम में किसी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं किया गया। अनुसूचित क्षेत्र विनियम 1969 के अन्तर्गत भी भूईंहरी भूमि को अलग रखा गया। 1977 में माननीय उच्च न्यायालय के प्रकाशित फैसला हरख साव बनाम दुखन पाहन के फैसले में यह व्यवस्था दी गयी कि भूईंहरी भूमि की भू–वापसी धारा–71 ए0 के अन्तर्गत नहीं की जा सकती है। इस आदेश के बाद छोटानागपुर कास्तकारी अधिनियम में 1986 में संशोधन किया गया और भूईंहरी भूमि के भू–वापसी का प्रावधान धारा–71 ए, के अन्तर्गत लाया गया। लेकिन 1986 का संशोधन अधिनियम भूतलक्षी प्रभाव से लागू नहीं है।

पिछले दो सर्वे के अन्तर्गत भुईंहरी भमि के सम्बन्ध में अलग खेवट तैयार किया गया है। जिसे देखने से यह स्पष्ट होता है कि भूईंहरदारों को भी अन्य मध्यवर्तियों की तरह अंकित किया गया है। "छोटानागपुर कास्तकारी अधिनियम की धारा–5 के अन्तर्गत मध्यवर्ती के ही श्रेणी में रखा गया है। जबकि मुण्डारी खूंटकटीदार को इस श्रेणी से अलग कर दिया गया है। इन प्रावधानों के कारण कई भूईंहरदार अपने को जमींदार समझते हुए कास्तकारी अधिनियम के प्रावधानों के प्रतिकूल भूईंहरी भूमि की बन्दोबस्ती कर दी है। जबकि भुईंहरी भूमि का अन्तरण प्रतिबंधित था और 1938 के संशोधन अधिनियम आने के बाद बिना उपायुक्त के अनुमति के इसका अन्तरण नहीं

किया जा सकता था। इन प्रावधानों से परस्पर विरोधाभास होता है। जिसके कारण अनभिज्ञता के कारण भूईंहरी भूमि का अन्तरण कई बार भूतखेता, डालीकटारी, पहनई जो गाँव के भूतपूजा की भूमि थी। उनका अन्तरण व्यक्तिगत रूप से या न्यायालय के द्वारा पारित आदेश के आलोक में अन्तरित किया गया। ए.आई.आर. 1946 पटना पृ. 207 के एक प्रकाशित फैसले में यह स्पष्ट निर्णय दिया गया था कि जो भूईंहरी भूमि ग्रामीण समुदाय के अधिकार में है। उसे भूमि का अन्तरण पाहन या महतो क्षरा नहीं किया जा सकता हैं और न पाहन या महतो द्वारा ऐसे भूमि का स्थायी बन्दोबस्ती, रैयतों के साथ की जा सकती है।"[14]

छोटानागपुर कास्तकारी अधिनियम की धारा–18 के अन्तर्गत भूईंहरदारों को सेटल्ड रैयत कहा गया है। "भूईंहरदार अपनी भूईंहरी भूमि के लिए टेन्यूर होल्डर समझा जाएगा। जबकि भूईंहरी भूमि के अतिरिक्त रैयती भूमि धारित होगी उसके लिए भूईंहरदार को रैयत समझा जायेगा। इन प्रावधानों से यह बात स्पष्ट होता है कि "मरजर" का सिद्धान्त भूईंहरदारों पर लागू नहीं होता है। एक ही समय में भूईंहरदार किसी गाँव विशेष में रैयत और भूईंहरदार दोनों का अस्तित्व रख सकता है।"[14]

भूईंहरी भूमि की एक विशेषता यह है कि "उत्तराधिकारी में हमेशा ही यह भूमि पुरुष उत्तराधिकारी की ओर जायेगा। भूईंहरी भूमि किसी भी परिस्थिति में लड़की उत्तराधिकारी की ओर नहीं जाएगा. चाहे उस लड़की के पति को अन्तिम भूईंहरदार के द्वारा घरदामाद ही क्यों न बनाया गया हो। घरदामाद को केवल रैयती भूमि ही उत्तराधिकार में प्राप्त होगी।"[15] भूईंहरी भूमि हमेशा भूईंहरी खूंट के नजदीकी भैयाद में सन्निहित होगा। उराँव परम्परा के अनुसार ऐसी मान्यताओं का कारण यह है कि भूईंहरी खूंट में पड़ने वाले भूतों की पूजा केवल भूईंहर खूंट के पुरुष ही कर सकते हैं।

संदर्भ–सूची

1. एस. सी. राय, द उराँव ऑफ छोटानागपुर, क्राउन पब्लिकेशन, राँची, 2004, पृ. 10
2. डॉ0 विकाश रंजन कुमार, झारखंड के उराँव जनजाति के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक विकास (1793–1947) : एक ऐतिहासिक विश्लेषण, अप्रकाशित शोध प्रबंध, पटना विश्वविद्यालय, पटना, 2007, पृ. 2
3. एस. सी. राय, द उराँव ऑफ छोटानागपुर, क्राउन पब्लिकेशन, राँची, 2004, पृ. 69
4. दिवाकर मिंज, उराँव समाज एवं लोकाचार, राँची, 2004, पृ. 60
5. दिवाकर मिंज, उराँव समाज एवं लोकाचार, राँची, 2004, पृ. 65
6. कुमार सुरेश सिंह, बिरसा मुंडा और उनका आंदोलन, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2003, पृ. 186
7. एस. सी. राय, द मुंडाज एण्ड देयर कंट्री, क्राउन पब्लिकेशन, राँची, 1984, पृ. 14
8. एस. सी. राय, द उराँव ऑफ छोटानागपुर, क्राउन पब्लिकेशन, राँची, 2004, पृ. 72
9. एस. सी. राय, द उराँव ऑफ छोटानागपुर, क्राउन पब्लिकेशन, राँची, 2004, पृ. 73–74
10. एस. सी. राय, द उराँव ऑफ छोटानागपुर, क्राउन पब्लिकेशन, राँची, 2004, पृ. 74–75
11. एस. सी. राय, द उराँव ऑफ छोटानागपुर, क्राउन पब्लिकेशन, राँची, 2004, पृ. 74–75
12. दिवाकर मिंज, मुंडा एवं उराँव का धार्मिक इतिहास, ओरियंट पब्लिकेशन, नयी दिल्ली, 1996, पृ. 212
13. डॉ. अनिल कुमार, झारखण्ड में मुंडा का आर्थिक इतिहास, जानकी प्रकाशन, पटना, 2002, पृ. 1776–180.
14. एस. सी. राय, द उराँव ऑफ छोटानागपुर, क्राउन पब्लिकेशन, राँची, 2004, पृ. 68–69
15. एस. सी. राय, द उराँव ऑफ छोटानागपुर, क्राउन पब्लिकेशन, राँची, 2004, पृ. 229

* * * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

History : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 294-299

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

प्राचीन भारत में सामाजिक गतिशीलता के प्रवर्तक

*डॉ. विमलेश कुमार पाण्डेय**

वसुन्धरा पर जीवन–यापन कर रहे सृष्टि के समस्त जीवों में मनुष्य की प्रकृति के प्रमुख अंश के रूप में गौरवपूर्ण प्रतिष्ठा है, अतएव वह और उसका समाज प्रकृति के शाश्वत प्रमुख लक्षण परिवर्तन से अत्यधिक प्रभावित होने के कारण सर्वथा परिवर्तनशील रहा है। परिवर्तनशीलता प्रथाओं, रीतियों आदि के स्वरूप एवं कार्यों की बदलती अवस्थाओं में परिलक्षित होता है। इसकी गति विभिन्न समाजों में भिन्न–भिन्न होती है।

व्यक्ति एवं समुदाय के एक सामाजिक स्थिति से दूसरी सामाजिक स्थिति में स्थानान्तरण अथवा परिवर्तन को सामाजिक गतिशीलता की संज्ञा दी जाती है।[1] व्यापक सन्दर्भों में किसी व्यक्ति अथवा सामाजिक स्तर की आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति में आने वाला कोई भी महत्वपूर्ण संचालन सामाजिक गतिशीलता स्वीकृत की जानी चाहिए[2], जिसमें व्यक्ति एवं समुदाय के अतिरिक्त परिवार का भी संचालन अभिप्रेत है।

सामाजिक परिवर्तन मानव–जीवन की मान्य रीतियों के परिवर्तन को कहा जाता है, जो भौगोलिक दशाओं, सांस्कृतिक साधनों, जनसंख्या के सिद्धान्तों अथवा आविष्कारों के माध्यम से होते हैं। लोगों की कार्य करने की अथवा विचार करने की पद्धतियों में परिवर्तन को भी सामाजिक परिवर्तन अथवा गतिशीलता कहा जा सकता है। व्यक्ति का जीवन भी बचपन, जवानी, बुढ़ापा और अन्ततः मृत्यु के रूप में परिवर्तित होता रहता है। इसी प्रकार व्यक्ति के समाज का रूपान्तरण भी वन्यता, स्थाई जीवन, कृषि अवस्था एवं औद्योगिक अवस्था में होता है। मानव का विकास जब बालक से युवावस्था में होता है, तो उसमें निश्चित जैविक एवं मनोवैज्ञानिक परिवर्तन होते हैं। जब कोई समाज पशु चारण अवस्था से औद्योगिक अवस्था में परिवर्तित होता है तो उसे ही सामाजिक विकास कहा जाता है। विकास हेतु कदाचित जानबूझकर निश्चित दिशा की ओर परिवर्तन लाए जाते हैं, यथा– गाँव के विकास के लिए सामुदायिक विकास योजनाएं। विरोध के बावजूद परिवर्तन को रोका नहीं जा सकता। मानव की आवश्यकता, इच्छा एवं परिस्थितियों में परिवर्तन होने पर सामाजिक परिवर्तन होते हैं। मानव कदाचित परिवर्तित परिस्थिति से अनुकूलन हेतु परिवर्तन का इन्तजार तक करता है।

सृष्टि के ऊशाकाल में जब मानव यायावर था, भुभुक्षा एवं सुरक्षा उसका मुख्य प्रतिपाद्य था, उस समय अविकसित परिवार की अवधारणा का विकास, ऋग्वैदिक स्वीकार किया जाता है जो कालान्तर में कृषिगत आविष्कारों द्वारा हुआ। महाकाव्य युगीन कृषि आर्थिक जीवन का प्रमुख आधार बना। बौद्ध युग कृषि कार्य एवं ग्राम्य जीवन की आर्थिक व्यवस्था का प्रमुख पथ–प्रदर्शक माना गया।

छठी शताब्दी ई०पू० में प्रस्फुटित धार्मिक उत्क्रान्ति का प्रभाव व्यष्टि एवं समष्टि जीवन के प्रत्येक क्षेत्रों में परिलक्षित होता है। स्वतः स्फूर्त धार्मिक स्वतन्त्रता ने आर्थिक स्वतन्त्रता के अनेक आयामों के परे औद्योगिक एवं व्यावसायिक श्रेणी संगठनों के विकास का मार्ग प्रशस्त किया। स्वतन्त्र एवं क्रियाशील संस्था के रूप में इन संस्थाओं (श्रेणियों) समाज एवं देश को समय–समय पर गतिशीलता एवं प्रेरणा प्रदान की, जिसके फलस्वरूप राष्ट्र का भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नयन हुआ।[3] तद्जन्य वैचारिक एवं व्यावहारिक सिद्धान्तों के प्रयोगों, विविध वैदेशिक जातियों के आक्रमणों तथा उनके द्वारा भारतीय संस्कृति के सामंजस्य एवं सात्मीकरण के फलस्वरूप सृजित सामाजिक गतिशीलता एवं सांस्कृतिक परम्पराओं को भौतिक एवं आर्थिक कारकों ने अतिशय प्रभावित किया।[4]

* *एसोसिएट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, सल्तनत बहादुर पी.जी. कालेज, बदलापुर, जौनपुर*

वस्तु अथवा वैचारिक परिवर्तन काल सापेक्ष प्रविधियों के परिवर्तन में लक्षित होता है। प्राचीन काल से ही प्रौद्योगिकी के माध्यम से सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन की प्रक्रिया में वैकासिक नैरन्तर्य देखा जा सकता है। पाषाण युगीन मानव, सामाजिक स्थितियों एवं आर्थिक प्रक्रियाओं के मध्य प्रथमतः आखेटक तदनन्तर अन्न संग्राहक एवं कालक्रमेण खाद्योत्पादक होने का गौरव अर्जित कर सका। कृषि उपकरणों के आविष्कार, उन्नत कृषि कर्म, सिंचन क्षमता के विकास के फलस्वरूप तत्युगीन मानव ने जिस परिवर्तन को प्रस्तुत किया, प्रतिद्वन्द्विता के माध्यम से अंगीकार किया, परिवर्तन का एक अभिनव रूप माना गया, जिसे वर्तमान के सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन का चरम कहा जा रहा है।

प्राचीन भारत में सैन्धव संस्कृति के पूर्व से ही जन सन्निवेश एवं ग्रामों के विकास का सूत्रपात हो चुका था। इस समय नई एवं पुरानी जातियों (देशज एवं वैदेशिक) द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में विस्तार करके ग्राम्य बस्तियों को व्यवस्थित एवं विकसित किया जा रहा था। मानव समाज का इतिहास उत्पादन साधनों का इतिहास है, जो विभिन्न समाजों में भिन्नता के साथ विकसित हुआ है। आदिम मानव के 'झुण्डों' के स्थान पर 'कुलों' का विकास हुआ, जिसमें वर्ग भेद नहीं था तथा उत्पादन के साधनों पर सबका समान अधिकार था। उत्पादन शक्ति के विकास के फलस्वरूप मानव ने कृषि एवं पशुपालन को अपनाया।

सर्वांगीण विकास की मानव प्रवृत्ति एवं परिवर्तनों के क्रम में जीवन–यापन करने का अभ्यासी जन–मन, शान्ति–स्नेह, सद्भाव के माध्यम से प्रगति के पथ पर अग्रसर विश्व मानवता की अक्षुण्ण परम्परा की संरक्षा में सर्वथा तत्पर सामाजिक गत्यात्मकता की प्रक्रिया वैदिक सामाजिक संरचना से ही प्रादुर्भूत है, जिसके प्रवर्तक राजनीतिक आर्थिक, औद्योगिक, धार्मिक, शैक्षिक एवं सांस्कृतिक आयामों ने इसे प्रभावित किया।

राजनीतिक कारकों ने सामाजिक कायापलट से गतिशीलता को अतिशय प्रभावित किया। अभिनव शासक वंशों की जाति–धर्म ने ऐसी परिस्थितियाँ सृजित कीं, जिसके फलस्वरूप समाज के सबसे निचले स्तर के व्यक्तियों के भी अपने आर्थिक समुदाय बन गए।[5] विभिन्न वाह्य एवं आन्तरिक कारणों से वर्णों के पूर्व निर्धारित अनुक्रम एवं विधि नियमों की व्यवस्था में अनेक विपर्यय उत्पन्न हो गए थे।[6] ब्राह्मणों की सर्वोच्चता आधातित हुई और वे अपेक्षाकृत हीन व्यवसायियों से संलग्न होने लगे। क्षत्रिय वर्ग में अपने को ब्राह्मणों से श्रेष्ठ समझने की मानसिकता का उद्रेग बढ़ने लगा, द्विजों एवं शूद्रों के मध्य भेद कम होने लगे।[7] अवन्ति, अर्बुद मालवा, मतिपुर एवं सिन्धु क्षेत्र पर शूद्र राजा होने लगे, उन्हें अश्वमेघ यज्ञ भी करने के अधिकार प्राप्त हो गए।[8] राजनीतिक भूमिदान परम्परा ने भी सामाजिक गत्यात्मकता को प्रभावित किया।[9]

सामाजिक अनुक्रम के निर्धारण हेतु अर्थोपार्जन महत्वपूर्ण था, अतः प्रत्येक व्यक्ति एतदर्थ प्रयत्नशील हुआ। यही नहीं, धनवान राष्ट्र के प्रमुख अंग माने जाते थे, अतः भौतिक एवं आर्थिक समृद्धि ने भारतीय समाज को ऊर्ध्वमुखी गतिशीलता हेतु प्रवृत्त किया। प्राकृतिक संसाधनों के प्रचुर प्रयोग की प्रतिद्वन्द्विता ने व्यवसायगत कार्याधारित समायोजन की प्रक्रिया को तीव्रता प्रदान की, फलस्वरूप नूतन जातियों का उद्भव, अन्तर्वर्ण एवं अन्तर्जातीय वैवाहिक सम्बन्ध, जात्युत्कर्ष एवं जात्यपकर्ष आदि के विनिर्मित नियमों द्वारा सामाजिक संस्तरण में गतिशीलता आती गई।[10]

समाज में प्रचलित अनुलोम/प्रतिलोम विवाह क्रमशः ऊर्ध्वमुखी एवं अधोमुखी गतिशीलता के प्रवर्तक हैं। इन विवाहों के साहित्यिक/पुरातात्विक प्रमाणों के आधार पर तत्युगीन वास्तविक सामाजिक स्थिति का सहज ही आकलन किया जा सकता है। वैवाहिक सम्बन्धों द्वारा उत्कर्ष एवं अपकर्ष की सामाजिक गत्यात्मकता का विचार भी कम महत्वपूर्ण नहीं था, जो कालान्तर में व्यावसायिक कारक भी बन जाता था, यथा– यदि कन्या का विवाह उससे उच्च जाति में होता था तो उसकी सातवीं पीढ़ी में जाति का उत्कर्ष होता था, किन्तु यदि आपात्काल में किसी निम्नतर जाति के कर्म को अपना कर आपत्काल की समाप्ति के अनन्तर भी न छोड़ने पर वह पाँचवीं अथवा सातवीं पीढ़ी में जाने पर उसी जाति का हो जाता था। इस पर इतिहासकारों का सुझाव है कि सामाजिक गतिशीलता के द्विपक्षीय अध्ययन–जाति में परिवर्तन के बिना सामाजिक स्थिति में परिवर्तन तथा जातीय परिवर्तन सहित सामाजिक स्थिति के परिवर्तन स्वीकार किया जाए।[11] प्रतीत होता है कि ऐसी घटनाएं समाज में वास्तविक रूपेण प्रचलित रही होंगी तथा प्रच्छन्न रूप में ऐसा होता रहा होगा।[12]

स्वधर्म (अपने वर्ण–धर्म) का पालन न करने वाले उच्च वर्णीय व्यक्ति अगले जन्म में निम्न वर्ण में जन्म लेकर अपकर्ष को तथा वर्ण–धर्म का पालन करने वाले शूद्र भी अपने शुभाचरणों द्वारा उत्कर्ष को प्राप्त करने का विचार भी सामाजिक गत्यात्मकता के अधोमुखी एवं ऊर्ध्वमुखी रूप माने जाने चाहिए।

व्यवसाय के चयन का आधार परम्परागत जाति–धर्म के अनुसार न होकर परिस्थितिजन्य हो गया। कार्याधारित समायोजन की समस्या समन्वय एवं सांस्कृतिक संस्तरण के द्वारा सुलझ गए और वैदेशिक आक्रान्ताओं, मिश्रित नूतन गतिहीन जातियों को भारतीय सामाजिक गत्यात्मकता में निमज्जित होना पड़ा। इससे सामाजिक परिवर्तन में सातत्य एवं सातत्य में परिवर्तन की प्रक्रिया अपनी रचनाधर्मिता के साथ प्रस्फुटित हुई।

सामाजिक परिवर्तन से धर्म भी अपरिवर्तित न रह सका। पारम्परिक धार्मिक व्यवस्था के अभिनव आयाम ने हीन वर्ग को भी धार्मिक अधिकारों की प्राप्ति के माध्यम से उत्कर्ष का अवसर प्रदान किया। उन्हें यज्ञों के सम्पादन के अधिकार प्राप्त हुए।[13] भारत आने वाली वैदेशिक राजनीतिक शक्तियों ने भी उदारता का परिचय देते हुए भारतीय धर्म भावना के प्रति संवेदनशीलता का परिचय दिया, जिसे हम उनके भारतीयकरण में देखते हैं। उनके द्वारा भारतीय देवी–देवताओं, धार्मिक विश्वासों एवं सम्प्रदायों के प्रति आस्था व्यक्त करके न केवल अपने उद्देश्य– भारतीय समाज में सम्मानजनक स्थान पाना आदि को प्राप्त किया गया, अपितु समष्टि विषयक ऊर्ध्वमुखी सामाजिक गत्यात्मकता को प्रश्रय दिया गया। भारतीय देव मण्डल में आर्थिक पक्ष को दृढ़ता प्रदान करने वाली देवी लक्ष्मी की विवृत परम्पराएं सामाजिक जीवन को सम्मिलित करती दृष्टिगोचर होती है। प्रत्येक व्यक्ति उनकी कृपा का आकाँक्षी बनने हेतु तत्पर था। महाभारत में राजा को श्रीमन्तो (धनाढ्यों) का नित्य अनुपालन और भोजन वस्त्रादि द्वारा सत्कार करने को निर्देशित किया गया है, क्योंकि वे समस्त प्राणियों में प्रधान एवं राष्ट्र के प्रमुख अंग है। इस मत के अनुसार धनाढ्य हो जाने पर व्यक्ति राज्य प्राप्ति का आकाँक्षी हो जाता है तथा राज्य प्राप्ति के अनन्तर वह देवत्व और अन्ततः इन्द्रपद का अभिलाषी हो जाता है।[14]

सामाजिक प्रक्रियाओं एवं उनकी गतिशील दशाओं के निर्धारण में आर्थिक क्रियाकलापों की महती भूमिका होती है। धनैश्वर्य सम्बन्धी जिस किसी भी पदार्थ की अभिलाषा मानव अपनी मनोवांछाओं की अभिपूर्ति हेतु करता है अथवा जिन आयामों, उपायों, श्रम अथवा पदार्थों के विनिमय माध्यम से जिस फल की आशा एवं अपेक्षा रखता है, सामान्यतया वे सभी 'अर्थ' की परिधि में ग्रहीत है, जिसकी आधारशिला पर सम्पूर्ण सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एंव भौतिक गतिविधियाँ अवलम्बित होती हैं। प्राचीन भारत में 'वार्त्ता' (कृषि, पशुपालन एवं वाणिज्य) से विकास का मार्ग प्रशस्त होता था, जिससे प्रादुर्भूत आर्थिक विकास के फलस्वरूप व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र के उन्नयन का मार्ग प्रशस्त हुआ।

अधिसंख्या में व्यावसायिक वर्गों के उदय, तीव्र व्यापारिक गतिविधियों एवं नगरीकरण की प्रक्रिया ने समसामयिक जनजीवन में अर्थ को केन्द्र बना दिया। निर्धन व्यक्ति धन की खोज में कुछ भी करने एवं कहीं भी जाने को तैयार थे। सद्धर्म पुण्डरीक की एक कथा में एक धनी व्यक्ति की सेवा में सभी वर्णों के लोग तत्पर दिखाई पड़ते हैं। पतंजलि भी बिना प्रयास के अतिशीघ्रता से धनी हो जाने की लोगों की प्रवृत्ति का उल्लेख करते हैं, जो आर्थिक ग्रामोन्नयन के इस युग का स्वाभाविक परिणाम थी। धन लिप्सा ने कतिपय व्यक्तियों को अपराधों की ओर भी उन्मुख किया था। कदाचित सामाजिक गत्यात्मकता में अर्थ की युग्मित भूमिका थी। एक और धन की लालसा ने व्यक्ति को आपराधिक प्रवृत्ति की ओर प्रवृत्त किया और समाज में निन्दा का पात्र बना दिया तो दूसरी ओर कतिपय दीनहीन वर्गीय, किन्तु समृद्ध लोग सम्मान के अधिकारी बने।[15]

सामाजिक गत्यात्मकता के निर्धारण में कदाचित शिक्षा के योगदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता। वास्तव में परिवर्तन एवं शिक्षा के स्वरूप में गतिशील सम्बन्ध होता है। प्रत्येक समाज अपनी आवश्यकतानुसार शिक्षा को विकसित करता है, जो सामाजिक परिवर्तनों को स्वीकार करती हुई गतिशील होकर अपनी जीवन्तता को बनाए रखती है। शिक्षित व्यक्ति न केवल धर्मपरायण होते थे, अपितु मानवीय गरिमा से युक्त होकर चिन्तन, चरित्र एवं व्यवहार से मानवोचित व्यक्ति एवं विकास के क्रियाकलापों द्वारा स्वयं परिवार एवं राष्ट्र के उन्नयन में सहभागी होते थे। हीन समुदायों के लोगों द्वारा शिक्षा प्राप्त कर अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा में वृद्धि हेतु यत्न किए जाते रहे होंगे। साहित्यिक साक्ष्यों में ऐसे उल्लेख विवृत मिलते हैं जिनमें शूद्र वेद एवं दर्शन में पारंगत होते थे।[16]

आर्थिक जीवन के उन्नयन में कृषि, पशुपालन एवं वाणिज्य सदृश्य वृत्तियों का योग था। समवेत रूप में ये व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र के उन्नयन हेतु महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुए। प्रौद्योगिकी के माध्यम से सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन की प्रक्रिया निरन्तर विकासोन्मुख दृष्टिगत होती है। कृषि उपकरणों का आविष्कार, उन्नत कृषिकर्म एवं सिंचाई क्षमता को विकसित कर जनसमुदाय प्रौद्योगिकी विकास एवं परिवर्तन एवं आधुनिकता के उच्च शिखर पर पहुँचने को लालायित हुआ। कृषि के प्रत्येक स्तर से सम्बन्धित संस्कारों से स्वयंमेव सिद्ध हो जाता है कि कृषि ग्राम्य जीवन की अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार थी। ग्रामों की कृषि योग्य भूमि में भी किसानों की व्यक्तिगत पट्टियाँ होती थी।[17] ऐसे भूमिपति स्वयं कृषि करते थे तथा कृषिकार्य में सहयोग हेतु कर्मकार (मजदूर) रखते थे। गाँगेय परिक्षेत्र में धान की खेती ने आर्थिक समृद्धिकरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। कृषि में अन्न के अतिरिक्त औषधियाँ (वनस्पतियाँ) भी पैदा की जाती थीं। तत्कालीन कृषकों द्वारा कृषिकर्म में विकसित विधाओं एवं लौह तकनीक का प्रयोग कर कृषि क्षेत्र का अपेक्षाकृत विस्तार किया गया। कृषि कार्यों ने मानव को स्थायित्व एवं समाज को नई दिशा दी। फलतः कृषि उद्योग विकसित हुए।[18] भारत में नई कृषि मूलक अर्थव्यवस्था के विस्तार, लौह तकनीक के व्यापक प्रचलन एवं खेती के नए औजार एवं उपकरणों के प्रयोग से कृषक आवश्यकता से अधिक अनाज पैदा करने लगे।[19] कृषि कार्यों में पशुओं की उपयोगिता बढ़ने के कारण पशुपालन पर जोर दिया जाने लगा तथा यज्ञों में उनकी बलि दिए जाने के विरुद्ध जन सामान्य में आक्रोश उत्पन्न होने लगे। भोजन, सवारी, रखवाली, सुरक्षा, सूचना–सम्प्रेषण मनोरंजन आदि के संसाधनों के रूप में पशुपालन (पशु–पक्षी) महत्त्वपूर्ण होता गया, जिनका उपयोग आर्थिक संसाधनों के रूप में किया जाता रहा।[20] उत्पादन अधिशेष के फलस्वरूप नगरीकरण की प्रक्रिया तीव्रतर हो गई। नगरों का अस्तित्व एवं महत्त्व उसके शिल्प में निहित होती थी। शिल्पसंघ भी बनने लगे। पशुपालन युग के उपरान्त कृषि युग में आर्थिक विकास का स्वरूप विकसित हुआ, जो विस्तृत क्षेत्र सिद्ध हुआ। इसमें छोटे–छोटे कारोबार, अनेक कुटीर उद्योग धन्धों एवं व्यावसायिक वर्गों का भी विकास हुआ।[21] कृषि के अधिशेष उत्पादन के फलस्वरूप अस्तित्त्ववान बस्तियों ने ग्रामों का निर्माण किया, जिनका नगर के रूप में विकास गणतन्त्रों एवं राजतन्त्रों के काल में दिखायी देता है।

नागर जीवन के अनन्तर व्यापार भी विशाल स्तर पर प्रारम्भ हुआ।[22] इनमें वस्त्र, तैल, चर्म आदि का आन्तरिक एवं बाह्य व्यापार प्रमुख है।[23] कपास, तिलहन उत्पादों से परिचित होने का अभिप्राय मानव के तकनीकी रूप से विकसित होने का प्रतीक था।[24]

कृषि युग के अनन्तर औद्योगिक क्रान्ति के युग ने आर्थिक विकास को समृद्ध बनाया। औद्योगिक विकास ने विभिन्न क्षेत्रों में आर्थिक परिवर्तनों को बहुआयामी बना दिया। तकनीकी विकास में वैज्ञानिक विकास की उपलब्धियों को समाज के सबसे अन्तिम जन (ग्रामीण) तक सुलभ कराने में महत्वपूर्ण योगदान किया। धात्विक औजारों के प्रचलन से मानव की उत्पादन क्षमता में अतिशय वृद्धि हुई। श्रम की आवश्यकता ने मानव को पशुपालन हेतु प्रेरित किया। परिष्कृत तकनीकी प्रयोग के बल पर मनुष्य कृषि क्षेत्र के विस्तार में संलग्न हुआ और वह अविकसित तथा गैर आबाद क्षेत्रों को विकसित करता गया।[25] शिल्पों के विकास के फलस्वरूप नगरों का विकास हुआ। ग्राम एवं नगरों में निवास करने वालों की गत्यात्मकता में अन्तर आने लगा।

लौह तकनीक के आविष्कार एवं प्रयोग ने लोगों के भौतिक जीवन को प्रभावित किया। कृषि संस्कृति का विस्तार होने से आवश्यकताओं की पूर्ति में गतिशीलता आई। मकान, गाड़ी एवं नाव बनाना आसान हो गया। सुविकसित लौह औजारों के प्रयोग से कृषि में श्रम का बोझ हल्का हुआ, जिससे मिले अवकाश में मानव धर्म, दर्शन एवं संस्कृति विषयक मीमांसा में संलग्न हुआ।[26]

प्रौद्योगिकी के कारण समाजार्थिक परिवर्तन की प्रक्रिया भी निरन्तर विकासोन्मुखी रही है। ऐतिहासिक दृष्टि से गत, आगत एवं अनागत के दिक् एवं काल में प्रौद्योगिकीय परिवर्तन होता रहता है। वैज्ञानिक आविष्कारों के फलस्वरूप गतिशीलता में वृद्धि, जातीय कठोरता में शैथिल्य, संयुक्त परिवार प्रणाली में विघटन आदि का विकास हुआ।[27] कृषि के क्षेत्र में प्रयुक्त नूतन प्रविधियों ने सामाजिक सम्बन्धों, लोगों के दृष्टिकोणों एवं मनोवृत्तियों में पर्याप्त बदलाव किया है। अब ग्रामीण क्षेत्रों में भी सम्बन्धों में घनिष्ठता और आत्मीयता के स्थान पर औपचारिकता एवं कृत्रिमता की वृद्धि परिलक्षित होने लगी।[28]

शैक्षिक सक्रियता से उद्भूत सांस्कृतिक मूल्यों का भी अप्रतिम योगदान है, जो प्रत्यक्ष पदार्थों के सुधार एवं अप्रत्यक्ष गुणों के साधन द्वारा संस्कारित होकर संस्कृति का रूप ग्रहण करते हैं। ये मूल्य मानवीय चेतना के निर्देशक और उन्नायकमान होते हैं, जिन्हें साधने में मनुष्य को अपनी चेतना को स्वयमेव गढ़ना पड़ता है अर्थात् प्रत्येक मानवीय प्रकृति आदर्श एवं व्यवहार, आध्यात्मिक एवं भौतिक जीवन विधाओं में से किसी अंश को प्रमुख मानकर एक साध्य–साधन व्यवस्था को व्यक्त करती है। अतः वह धर्म का मूल बिन्दु है। धर्म ही उसे पशुओं से विलग करता है। इतना ही नहीं, धर्म ही राजा को स्थिरता देता है।[29] मानव का कवित्व भाव, भक्ति भाव, नर से नारायण होने का भाव आदि उसे नैतिक मूल्यों के प्रति सजग बनाते हैं, जिनकी दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक व्याख्या विभिन्न मानसिक स्तर पर की जाती है। जन सामान्य के सामाजिक जीवन का आदर्श दर्शन के द्वारा संसार में ज्ञान की वृद्धि करना था, जिससे दुःख का निवारण सम्भव हुआ। वसुधैव कुटुम्बकम, यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते रमन्ते तत्र देवता, स्वधर्म पालन, अगम्या गमन एवं पतित संगति, पातक–विचार, परोपकार, दान, माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्या, बहुजन हिताय बहुजन सुखाय, आनो भद्रा क्रतवोयन्तु विश्वतः, कृण्वन्तो विश्वमार्यम् निषेध तथा अकरणीय के सिद्धान्त, धर्म–अधर्म, नीति–अनीति, प्रायश्चित्त, वयं राष्ट्रे जागृयाम पुराहिता आदि के स्वर्णिम जीवन मूल्य एवं आदर्श द्वारा भारतीय समाज ने वैश्विक स्तर पर ग्रहणशीलता की उद्घोषणा को चरितार्थ कर सामंजस्य एवं सात्मीकरण की प्रवृत्ति द्वारा इनसे तादात्म्य स्थापित करने का अथक प्रयास किया। इन वाह्य सांस्कृतिक क्रियाकलापों और जीवन–मूल्यों द्वारा सामाजिक परिवर्तन एवं ग्रामोन्नयन का मार्ग प्रशस्त हुआ।

संदर्भ–सूची

1. सोरोकिन, पी.ए.; सोशल एण्ड कल्चरल मोबिलिटी, लन्दन 1959, पृ. 133.
2. काक्सन, ए०पी०एम० एवं जोंस, सी०एल०; (सम्पादक) सोशल मोबिलिटी इंग्लैंड 1975, पृ. 21–22.
3. मिश्र, जयशंकर; प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पटना 1995; शर्मा, आर०एस० प्राचीन भारत में नगरों का पतन, पृ. 659.
4. दिनकर, रामधारी सिंह; संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद 2000 (जवाहरलाल नेहरू की प्रस्तावना)।
5. ओझा, ए०पी०; प्राचीन भारत में सामाजिक स्तरीकरण, इलाहाबाद 1992, पृ. 54–57 एवं 88–89; यादव, सुरेंद्र सिंह; प्राचीन भारत में व्यावसायिक समूह एवं शिल्प, अध्ययन प्रकाशन नई दिल्ली; पान्थरी, राघवेन्द्र; भारत में सामाजिक परिवर्तन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली; राज, भारती; प्राचीन भारत में गतिशीलता का अध्ययन, इलाहाबाद 1985, पृ. 115; प्रसाद, सर्जुन; गंगा के मैदान में लौह प्रौद्योगिकी का विकास, मानक पब्लिशिंग, नई दिल्ली।
6. यादव, वी०एन०एस०; सम एस्पेक्ट्स आफ चेंजिंग सोशल ऑर्डर इन इण्डिया, पृ. 75.
7. पाण्डेय, विमलेश कुमार; सामाजिक स्तरीकरण के बदलते आयाम; प्राचीन भारत में सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन (सम्पादक) पाण्डेय, अजय कुमार; प्रतिभा प्रकाशन, नई दिल्ली 2008, पृ. 80–82.
8. शर्मा, आर०एस०; शूद्राज इन ऐन्सियण्ट इण्डिया, नई दिल्ली 1980, पृ. 268–69; पार्जिटर, एफ०ई०; पुराण टेक्स्ट ऑफ द डायनेस्टीज आफ कलि एज, पृ. 55; वाटर्स, टी०; ऑन युवान च्वांग ट्रैवेल्स इन इण्डिया; (सम्पादक) रीज डेविड्स एण्ड बुशेल, लन्दन 1904, जिल्द 2, पृ. 250–52.
9. मजूमदार, डी०एन०; रेसेज एण्ड कल्चर्स ऑफ इण्डिया, बम्बई 1958, पृ. 285–90; शर्मा, आर०एस०; प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं सामाजिक संरचनाएं, नई दिल्ली, पृ. 95–98.
10. उपर्युक्त; काणे, पी०वी०; धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, लखनऊ 1973, पृ. 125.
11. राय, जयमल; रूरल अर्बन इकोनामी एण्ड सोशल चेंजेज इन ऐन्सियण्ट इण्डिया, वाराणसी 1974, पृ. 392.
12. राज, भारती; उपर्युक्त, पृ. 148–49
13. याज्ञवल्क्य० 1.121; विष्णु० 57.16; पराषर० 11.22.25; महा० 12.60.36, 39–43.

14. महा० 12.88.29—30; धनिनः पूज्येन्नित्यम्।
15. राज, भारती; वही।
16. मुखोपाध्याय, सुजीत कुमार; वज्रसूची (सम्पादक) शान्तिनिकेतन 1960.
17. राव, रजवन्त; प्राचीन भारत में धर्म एवं राजनीति, इलाहाबाद 1995, पृ. 93.
18. शर्मा, रामशरण; उपर्युक्त।
19. मैती, एस०के०; इकोनामिक लाइफ इन नार्दन इण्डिया, 1970, पृ. 97—98.
20. गोपाल, लल्लन जी; द इकोनॉमिक लाइफ इन नार्दन इण्डिया, दिल्ली, 1989.
21. समद्दर, ए०एन०; इकोनामिक कण्डीशन्स इन एन्सियण्ट इण्डिया, कोलकाता 1966.
22. मैक्स बेवर; थियरी ऑफ सोशल एण्ड इकोनामिक ऑर्गनाइजेशन, लन्दन 1947.
23. घोषाल, यू०एन०; कण्ट्रीब्यूशन टू द हिस्ट्री ऑफ हिन्दू रेवेन्यू सिस्टम, कलकत्ता 1929.
24. सरकार, डी०सी०; लैण्ड सिस्टम एण्ड फ्यूडलिज्म इन एन्सियण्ट इण्डिया कोलकाता 1966.
25. चौधरी, आर०के०; प्राचीन भारत का आर्थिक इतिहास, पटना 1986, पृ. 19.
26. वही, पृ. 24; यादव, वी०एन०एस०; सोसायटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इण्डिया, बम्बई 1980.
27. सिंह, योगेन्द्र; मॉडर्नाइजेशन आफ इण्डियन ट्रेडीशन, जयपुर 1994; पान्थरी, राघवेन्द्र; वही।
28. दोषी, एस०एल० एवं जैन, पी०सी०; भारतीय समाज संरचना एवं परिवर्तन, नई दिल्ली 2002; राज, भारती; वही।
29. राममूर्ति, पी०; द प्रॉब्लम्स ऑफ इण्डियन पॉलिटी, पृ. 147; ओझा, ए०पी०; वही।

* * * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

History : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 300-302

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

बौद्ध धर्म का अद्वितीय चीनी भिक्षु फह्यान

*डॉ. उमेश कुमार**

प्राचीन काल में ईसा से पूर्व ही धर्म, कला, नीति, सभ्यता एवं संस्कृति के क्षेत्र में भारत की ख्याति विदेशों में फैल चुकी थी। यही कारण है कि भारत सदैव विदेशियों के आकर्षण का केन्द्र बना रहा है। चौथी शताब्दी में बौद्ध धर्म से आकर्षित होकर चीनी यात्री फाह्यान अपने तीन अन्य भिक्षु साथियों के साथ भारत आया। उसके यहाँ आने का प्रमुख उद्देश्य बौद्ध धर्म के आधारभूत ग्रन्थ त्रिपिटक में से एक 'विनयपिटक' को ढूंढना था। वह प्रथम चीनी यात्री था, जिसने अपने धर्मयात्रा एवं यात्रा–वृत्तांतों को लिपिबद्ध कर इतिहास में अमरत्व को प्राप्त किया और बौद्ध धर्म का अद्वितीय अध्येता और बहुचर्चित चीनी भिक्षु होने की ख्याति अर्जित किया।

फाह्यान चीन में बौद्ध विनय की दुरावस्था देखकर अत्यन्त खिन्न था, जिसके कारण अनेक मित्रों के साथ भारत आकर विनय–नियमों को ले जाने का उसने संकल्प किया। चीन के चंगन नामक स्थान से प्रस्थान करने के बाद यात्रा करता हुआ वह तनहुआंग आया। यहाँ के राज्यपाल ने उसे गोबी रेगिस्तान को पार करने के लिए आवश्यक सहायता प्रदान की।

फाह्यान ने मध्य एशिया में जिन राज्यों की यात्रा की उनमें उसने भारतीय संस्कृति का प्रसार देखा। उसने बौद्ध धर्म के बारे में लिखा कि लोब प्रान्त से पश्चिम की ओर चलने पर, जितनी जातियाँ मिलीं, वो सब बौद्ध धर्म को जो भारतीय धर्म है मानती हैं। महायान सम्प्रदाय के भिक्षु यहाँ पर प्रवासित हैं। वह आगे लिखता है कि लोप–नोर के दक्षिण में शन–शन प्रदेश में हीनयान सम्प्रदाय के चार हजार भिक्षु हैं और साधारण जनता भारतीय धर्म को ही कुछ परिवर्तन के साथ अनुसरण करती है। इस स्थान से पश्चिम में चलकर जो राष्ट्र मिलते हैं वे भी इसी प्रकार के हैं, जो अपने गृह का त्याग कर श्रमण और श्रमणेर बन गए हैं, वे सब भारतीय ग्रन्थों और भारत में बोली जाने वाली भाषाओं का अध्ययन करते हैं।[1]

खोतन उन दिनों एक समृद्ध नगर था और बौद्ध संस्कृति का महान् केन्द्र बना हुआ था। चीनी यात्री वहाँ के भिक्षुओं और विहार में बुद्ध अनुशासन देख अत्यन्त प्रसन्न हुआ। यहाँ महायान के अनेक सहस्त्र भिक्षु निवास करते थे। इस देश के राजा ने फाह्यान और उसके साथियों को विशाल और आरामप्रद 'गोमती– विहार' में निवास दिया। इस विहार का अनुशासन परिपूर्ण था। "एक घण्टे की आवाज पर तीन हजार भिक्षु भोजन के लिए एकत्र हो जाते हैं। जब वे विहार की भोजनशाला में प्रवेश करते हैं, तो उस समय उनका व्यवहार गम्भीर और शिष्टतापूर्ण होता है। नियमित क्रम में वे बैठ जाते हैं। सब मौन रहते हैं, उनके बर्तनों की भी कोई खनखनाहट नहीं होती, अधिक भोजन यदि वे परोसवाना चाहते हैं, तो परोसने वालों को वे बुलाते नहीं, बल्कि अपने हाथों से केवल संकेत कर देते हैं।"

फाह्यान के कुछ साथी खोतन से काशगर की ओर बढ़ गए, परन्तु फाह्यान और उसके कुछ अन्य साथी खोतन में तीन महीने और ठहर गए। ताकि मूर्तियों के प्रभावशाली जुलूस को देख सकें। इस जुलूस में (हीनयान सम्प्रदाय को छोड़कर) चौदह विहारों के भिक्षु भाग लेते थे, जिसमें गोमती विहार के भिक्षुओं का प्रथम स्थान होता था। राजा और उसके दरबार के लोग ही नहीं बल्कि रानियाँ भी इस समारोह में सम्मिलित होती थीं। खोतान नगर से 'सात या आठ' 'ली' (एक 'ली' करीब एक तिहाई मील के बराबर होता है) पश्चिम में राजा के द्वारा निर्मित 'नवीन विहार'

* *असिस्टेन्ट प्रोफेसर, इतिहास, अकराँव महाविद्यालय, शादियाबाद, गाजीपुर*

स्थित था, जो 250 फुट ऊँचा था और जिसके बनवाने में 80 वर्ष लगे थे। खोतन में रथ–महोत्सव को देखने के बाद फाह्यान काशगर को चल दिया, जहाँ वह तीन मास में पहुँचा। काशगर में उसने वहाँ के राजा द्वारा बनवाई गई 'पंच–परिषद्' को देखा। यह परिषद् प्रति पांचवें वर्ष बुलवायी जाती थी। काशगर के सम्बन्ध में फाह्यान ने लिखा है, "इस देश में भगवान् बुद्ध का एक पीकदान है यह पत्थर का बना हुआ है और उनके भिक्षा–पात्र के रंग का है। भगवान बुद्ध का एक दन्त धातू भी यहाँ है, जिसके ऊपर यहाँ के लोगों ने एक स्तूप का निर्माण किया है।"[2]

बालोर–संघ पर्वत–श्रेणी के किनारे–किनारे सिन्धु नदी को प्रथम बार पार करने के भयानक दृश्य का फाह्यान ने वर्णन किया है। चट्टानों की सीढ़ियों की सहायता से पार करने के बाद उसने इस नदी को रस्सियों के बने पुल से पार किया था। इसके बाद फाह्यान उद्यान पहुँचा जो उस समय बौद्ध–धर्म का एक समृद्ध केन्द्र था। इसके बाद दक्षिण दिशा में चलकर फाह्यान गांधार और तक्षशिला में आया। पेशावर में उसने कनिष्क के द्वारा निर्मित स्तूप को देखा जिसकी अतुलनीय विशालता का उसने वर्णन किया है।

पेशावर से आगे चलकर फाह्यान नगरहार (हद्दा) आया। इस समय तक उसके सब साथी उसे छोड़ चुके थे। नगरहार में एक स्तूप था जो भगवान् बुद्ध की खोपड़ी की हड्डी के ऊपर बनवाया गया था। नगरहार के दक्षिण में आधे योजन की दूरी पर फाहियान ने एक गुफा देखी जिसमें लोगों के कथनानुसार भगवान बुद्ध अपनी छाया छोड़ गए थे "चारों ओर के देशों के अनेक राजाओं ने कुशल चित्रकारों को उसका रेखा–चित्र खींचने के लिए भेजा है, परन्तु कोई उसका ऐसा चित्र नहीं बना सका।" नगरहार के पड़ोस के अन्य कई स्थानों का भी वर्णन फाह्यान ने किया है।

सफेद कोह को पार करने के बाद फाह्यान ने अफगानिस्तान में प्रवेश किया। यहाँ उस समय महायान और हीनयान सम्प्रदायों के तीन हजार भिक्षु रहते थे। बन्नू में भिक्षुओं की इतनी ही संख्या थी, परन्तु वे सब हीनयान सम्प्रदाय के थे।[3]

फाह्यान ने भारत में पंजाब के मार्ग से प्रवेश किया। बुद्ध भूमि को देखकर वह अत्यन्त गदगद हो गया था। पंजाब की सारस्वत भूमि को पार करता चीनी यात्री मथुरा में पहुँचा था, जहाँ बौद्ध धर्म बहुत ही लोकप्रिय था। उसने वहाँ अनेक भिक्षु बौद्ध धर्म की चर्चा करते देखे। बौद्ध मन्दिर देखें। जनता और राजा दोनों ही धर्म का आदर करते थे। यही हालत पूरे पश्चिमोत्तर भारत की थी।

इसके बाद फाह्यान ने क्रमशः संकाश्य, कन्नौज और साकेत या अयोध्या की यात्रा की। श्रावस्ती, कपिलवस्तु, वैशाली और पाटलिपुत्र भी वह गया। मगध देश की फाह्यान ने बड़ी प्रशंसा की ही। उसने लिखा है, "मध्य मण्डल के सब देशों में मगध में ही सबसे अधिक विशाल नगर और कस्बे हैं। इसके आदमी बड़े धनवान और समृद्ध हैं और हृदय की उदारता तथा अपने पड़ोसियों के प्रति कर्तव्य–पालन में एक दूसरे के प्रति स्पर्धा करते हैं।" मगध के निवासियों को भी मूर्तियों के जुलूस निकालते फाह्यान ने देखा था। उसने वहाँ के दातत्य औषधालयों की भी बड़ी प्रशंसापूर्वक उल्लेख किया है।

वाराणसी से फाह्यान पाटलिपुत्र लौट आया। फाह्यान ने तीन वर्ष संस्कृत (या पालि) लिखने और बोलने के सीखने में तथा विनय की प्रतिलिपि करने में बिताए। फिर वह चम्पा होता हुआ तमलुक (ताम्रलिप्ति) चला गया और वहाँ भी उसने दो वर्ष सूत्रों की अनुलिपि करने तथा मूर्तियों के चित्र खींचने में बिताए।

एक बड़े व्यापारिक जहाज में बैठकर फाह्यान तमलुक से सिंहल के लिए चल दिया, जहाँ वह चौदह दिन में पहुँचा। सिंहल में फाहियान दो वर्ष तक ठहरा और इस बीच वह चीन में अज्ञान संस्कृत ग्रन्थों का संग्रह और उनकी अनुलिपि करता रहा। सिंहल में निवास करते समय फाह्यान को अपने घर की बुरी तरह याद आने लगी। चीन से चलकर उसे कई वर्ष हो गए थे। उसके कुछ साथी पीछे रह गए थे या मर गए थे। वह अकेलापन अनुभव कर रहा था। एक दिन जब एक व्यापारी को उसने अनुरागपुर के अभयगिरी विहार में भगवान बुद्ध की मूर्ति के सामने श्वेत रेशम से बने एक चीनी पंखे को अर्पित करते देखा तो वह अपनी भावनाओं को रोक नहीं सका और उसकी आँखों में आँसू आ गए। फाह्यान ने सिंहल के विहारों दन्तधातु–महोत्सव, मिहिन्तले और सामान्यतः सिंहली बौद्ध–धर्म का एक आकर्षक चित्र हमें दिया है।[4]

''सिंहल से पूनः एक बड़े व्यापारिक जहाज में बैठकर फाह्यान अपने देश चीन की ओर चल पड़ा। रास्ते में दो दिन की यात्रा करने के बाद एक बड़ा तूफान आया जो तेरह दिन तक चलता रहा। एक बार तो यहाँ तक नौबत आई कि फाह्यान को भय होने लगा कि कहीं नाविक उसकी पुस्तकों और मूर्तियों को समुद्र में न फेंक दें, परन्तु सौभाग्यवश ऐसा नहीं हुआ। जहाज में एक छेद का पता लगा जिसे एक टापू के पास बन्द कर दिया गया। इसके बाद एक और भयंकर तूफान आया, परन्तु 10 दिन की यात्रा के बाद फाह्यान का जहाज सुरक्षित रूप से जावा पहुँच गया। यहाँ फाह्यान उतर गया और पाँच महीने तक इसी द्वीप में ठहरा। इस समय जावा में ब्राह्मण–धर्म समृद्ध अवस्था में था और बौद्ध–धर्म की अवस्था संतोषजनक नहीं थी। एक दूसरे व्यापारिक जहाज में बैठकर और उतनी ही भयंकर यात्रा करने के बाद फाह्यान चीन के चिंग–चाउ नामक स्थान में पहुँचा जहाँ एक जाड़ा और एक गर्मी बिताने के बाद वह चीन की राजधानी नानकिंग में पहुँचा और जिन सूत्रों और विनय को भारत से ले गया था उन्हें धर्म–गुरुओं को उसने अर्पित कर दिया।

फाह्यान ने चीन के चंगन प्रान्त से भारत के मध्य–देश तक की यात्रा में छः वर्ष बिताए। छः वर्ष तक ही वह भारत में ठहरा। उसके बाद तीन वर्ष में वह चिंग–चाउ पहुँचा। करीब तीस देशों के बीच में होकर वह अपनी यात्रा से गुजरा।

उसने अपने व्यक्तिगत जीवन को महत्व नहीं दिया और न उसके बारे में कभी सोचा। गहन कान्तारों और पर्वत–श्रेणियों को उसने पार किया और भयंकर समुद्री यात्राएँ कीं। केवल इस उद्देष्य के लिए कि वह अपने देश के लोगों को बौद्ध धर्म का संदेश सुना सके। त्रिरत्न के अनुभव से उसकी रक्षा हुई और संकट के क्षणों में वह बचा लिया गया। जिन अनुभवों के बीच होकर वह गुजरा, उनका विवरण उसने बांस के फलकों और रेशम पर इसलिए लिखा कि सौम्य पाठक भी इस सूचना में अपने भाग को प्राप्त कर सकें।[5]

फाह्यान ने भारत में घूमकर बौद्ध तीर्थों को देखा। भिन्न–भिन्न निकायों के विनयों पर अध्ययन किया। भिक्षुओं के नियमों को देखा। कुछ समय बंगाल में रहा। यात्रा के चौदह वर्ष व्यतीत करके ताम्रलिप्ति; तमलुक जिला मिदनापुर से जलयान पर सवार होकर सिंहल; श्रीलंका को प्रस्थान किया। उस समय श्रीलंका के महाविहार तथा अभयगिरी विहार में क्रमशः तीन हजार व चार हजार बौद्ध भिक्षु रह रहे थे। चीनी यात्री ने वहाँ यही शासकों के विनय पिटक तथा संस्कृत की दीर्घागम, संयुक्तागम और संयुक्त संचय पिटक को प्राप्त किया। ''भ्रमण कर वह जावा पहुंचा। वहां पांच महीने रुक कर वह स्वदेश वापस लौट गया। जहाँ राजा और प्रजा ने उसका बहुत स्वागत किया। उसने अपना शेष जीवन दक्षिणी चीनी के बौद्ध विहारों में विनय पिटक का प्रचार करने में बिताया। 86 वर्ष की आयु में उसका देहावसान हुआ।''

संदर्भ–सूची

1. के०ए० नीलकण्ठ शास्त्री, चीनी यात्री, पृ. 182
2. वही, पृ. 183–84
3. वही, पृ. 185–86
4. वही, पृ. 187
5. डॉ० श्रीमती जमुना लाल, भारत और विदेशों में बौद्ध धर्म प्रसारक, पृ. 148

* * * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

History : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 303-305

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

पुण्य की पराकाष्ठा-अश्वमेध यज्ञ

*डॉ. विमलेश कुमार पाण्डेय**

वैदिक साहित्य में गाय के अनन्तर उपयोगिता की दृष्टि से अश्व का स्थान था। अश्व सुख एवं समृद्धि के प्रतीक थे। विद्वानों का अभिमत है कि पुराकाल में अश्व का वध होता था क्योंकि मात्र गाय के लिए ही 'अह्न्या' (न मारने योग्य) शब्द का अनेकशः प्रयोग हुआ है।[1] अश्व–वध भी विशिष्ट अवसरों पर ही हुआ करते थे। संहिताओं एवं ब्राह्मणों के समय में अश्वमेध–यज्ञ का प्रचलन हुआ, जिसमें अश्व वध अपरिहार्य अंग बन गया।

अश्वमेध यज्ञ का महत्व–सभी यज्ञों में अश्वमेध–यज्ञ का अप्रतिम स्थान था। ब्राह्मण ग्रन्थों, पुराणों तथा श्रोत ग्रन्थों, पुराणों तथा श्रोतसूत्रों सूत्रों में ब्रह्महत्या को पाप की चरम परिणति एवं अश्वमेध–यज्ञ को पुण्य की पराकाष्ठा के रूप में निदर्शन प्राप्त होता है।[2] एवं अन्य दुष्कृत्यों के प्रायश्चित के निमित्त अश्वमेध–यज्ञ सम्पादित करने पड़े।[3] मनु–दुहिता इला को अश्वमेध–यज्ञ के प्रताप से ही पुरुष रूप में परिवर्तित किया गया।[4] निःसन्तान दशरथ को वशिष्ठादि ऋषियों द्वारा अश्वमेध–यज्ञ सम्पादन का सुझाव दिया गया था, जिससे उनकी अभीष्ट–सिद्धि हुई।[5] अपनी महत्ता के कारण अश्वमेध यज्ञ का स्थान राजसूय, गवामयन, आप्तोर्याम, अग्न्याधेय आदि अन्य श्रोत यज्ञों में सर्वोपरि था।

यज्ञ–सम्पादन विधि–इस महायज्ञ के सम्पादन में विपुल साहस एवं सम्पत्ति तथा समय का होना अपरिहार्य था। फलतः प्रतापी राजा ही इसके अनुष्ठान का संकल्प कर सकते थे।[6] बौधायन श्रोतसूत्र मात्र विश्वविजयी शासक को ही इसे सम्पादित करने की अनुमति प्रदान करते हैं। यदि असमर्थ व्यक्ति अश्वमेध का अनुष्ठान करता है तो तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार वह दुःख भोगता है तथा असफल होता है।[7] आपस्तम्ब धर्मसूत्र तो मात्र सार्वभौम शासन द्वारा ही अश्वमेध यज्ञ करने की व्यवस्था की पक्षधर है।[8] इस महायज्ञ की विधि में कुछ गड़बड़ी होने से करने वाले का ही नाश अवश्यम्भावी है।[9] अश्वमेध का घोड़ा शस्त्रास्त्र सज्जित 100 युवराजों, 100 श्रेष्ठ व्यक्तियों, 100 वीरपुरुषों तथा 100 सारथियों आदि के संरक्षकत्व में भ्रमण करता है। उसके सफलतापूर्वक प्रत्यावर्तन पर यज्ञ सफल होता है।[10]

स्पष्ट है कि प्रबल शक्ति वाले राजा ही इसे पूरा कर सकते थे। विशेष प्रयोजनों के अतिरिक्त महत्वाकांक्षी राजा द्वारा अपनी सर्वोच्चता सिद्ध करने तथा अपना प्रभुत्व स्थापित करने हेतु भी अश्वमेध यज्ञ किये जाते थे। कदाचित् महान विजय के उपलक्ष्य में भी विजयी नरेशों द्वारा सार्वभौमत्व प्रदर्शन हेतु यह महायज्ञ रच जाता था। महाराजा श्रीराम ने लंका विजय तथा युधिष्ठिर कौरव–विजय के अनन्तर अश्वमेध किया था।

प्राचीन अश्वमेध यज्ञी–प्राचीन साहित्य के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि एकाधिक अश्वमेध करने वाले भी थे। शतपथ ब्राह्मण दुष्यन्त पुत्र भरत द्वारा 133 अश्वमेध का उल्लेख करता है।[11] आगे अन्य स्थल पर भरत को ही सहस्राधिक अश्वमेध करने वाला कहा गया है।[12] रामायण में श्रीराम के 10,000 अश्वमेध यज्ञों का उल्लेख उपलब्ध होता है।[13] विष्णु पुराण में उशना द्वारा 10 अश्वमेध करने का उल्लेख है।[14] 100 या 99 यज्ञों के करने वालों के कई उदाहरण हैं। 99 यज्ञों तक इन्द्र को विशेष आपत्ति नहीं होती थी किन्तु सौवें के समय अपना पद छिन जाने के डर से वे विघ्न उपस्थित करते थे और उस यज्ञ के पूरा न होने देने का यथाशक्ति प्रयत्न करते थे। सागर, पृथु आदि के यज्ञों के सम्पादन में विघ्न डालने के वर्णन पुराणों में सुरक्षित हैं।[15] यद्यपि वे सम्राट द्वारा शत या शताधिक यज्ञों का सम्पादन दुष्कर प्रतीत होता है तथापि बिल्कुल असम्भव नहीं। श्रीराम, पृथु, भरत आदि के

* *एसोसिएट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, सल्तनत बहादुर पी.जी. कालेज, बदलापुर, जौनपुर*

काल में अल्पसंख्यक एवं छोटे राज्य थे, किन्तु उनमें से कुछ शक्तिशाली अवश्य रहे होंगे।[16] उन्हें प्रथम बार विजित कर प्रभुत्व स्थापित करने में श्रम अवश्य करना पड़ा होगा किन्तु बाद में अल्पांश ही अवरोध रहा होगा और यज्ञ का अश्व निर्विघ्न भ्रमण कर लौट आता होगा। अतः एक ही वर्ष में कदाचित दो या दो से अधिक अश्वमेध यज्ञों का हो जाना असंभव नहीं प्रतीत होता। श्रीराम के 10000 यज्ञों के प्रति सन्देह अवश्य हो सकता है किन्तु 11000 वर्ष राज्य करने के आधार पर संभव है उस समय शताधिक यज्ञ किये रहे हों।

पश्चद्वर्ती अश्वमेध–यज्ञी–जनमेजय द्वापर युग के अन्तिम यज्ञकर्ता थे, जिसका समय लगभग 1340 ई. पू. निश्चित होता है। जनमेजय के उपरान्त दीर्घकाल तक यह परम्परा विश्रृंखलित–सी रही।[17] जनमेजय के अनुनय–विनय पर ऋषियों द्वारा कलियुग में कश्यप गोत्रीय सेनापति पुष्यमित्र द्वारा पुनः यज्ञ किये जाने का आश्वासन प्राप्त हुआ।[18] यहां सेनापति पुष्यमित्र शुंग से अभिप्राय है जिसने दो अश्वमेध यज्ञ किया था।[19] नगरी शिलालेख के अनुसार जनमेजय के लगीाग 1100 वर्ष बाद गजमान पुत्र सर्वतात् ने अश्वमेध–यज्ञ किया था। अतः सर्वतात् का यज्ञ पुष्यमित्र शुंग से पूर्व हुआ।[20] पुष्यमित्रों के पश्चात् सातवाहन शातकर्णि प्रथम ने दो, उत्तरी भारत में भारशिव नरेशों ने 10 तथा उनके सम्बन्धी वाकाटक प्रवरसेन ने चार अश्वमेध यज्ञ किये थे। गुप्त शासकों समुद्रगुप्त[21] तथा कुमारगुप्त ने दो–दो अश्वमेध–यज्ञ किये। कतिपय विद्वान चन्द्रगुप्त द्वितीय को भी अश्वमेध यज्ञ सम्पादन का श्रेय देते हैं।[22] उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिण भारत में अधिक अश्वमेध यज्ञ हुये। शातकर्णि के अनन्तर इक्ष्वाकुवंशीय चान्तमूल प्रथम ने एक अश्वमेध यज्ञ किया। शालंकायनवंशीय देवधर्म तथा कदम्बवंशीय कृष्णवर्मन प्रथम ने एक–एक यज्ञ किया। लगभग 500 ई. में पुलकेशिन प्रथम ने भी यज्ञ किया। विष्णुदण्डिन वंश के माधववर्मन जनाश्रय के लेखों से ज्ञात होता है कि उसने ग्यारह अश्वमेध यज्ञ तथा 1000 अग्निष्टोम यज्ञ किए। इसका समय छठीं शताब्दी का मध्य भाग निश्चित किया जाता है। इसके उपरान्त उत्तर एवं दक्षिण भारत में अश्वमेध यज्ञ परम्परा 1200 वर्षों तक विश्रृंखलित रही। लगभग 1640 ई. में जयपुर के शासक जयसिंह ने अश्वमेध यज्ञ किया जो संभवतः अन्तिम अश्वमेध–यज्ञ था।[23]

तृतीय शती ई. पू. से लेकर ई. छठीं शती तक के यज्ञ–विधान की समानता के दर्शन तत्युगीन साहित्य, शिलालेखों एवं ताम्रपत्रों में प्राप्त होता है। महत्ता की दृष्टि से इस काल में यज्ञों ने अपनी अस्मिता यथावत् रखी। हरिवंश पुराण में इस यज्ञ के सम्पादन में तेजस्वी देव या ब्राह्मण के सफल होने का उल्लेख है।[24] भवभूति तो इस यज्ञ को विश्वविजयी क्षत्रियों की र्स्वश्रष्ठता का प्रत्यक्ष प्रमाण मानते हैं।[25] अलबरुनी भी लिखता है कि इस यज्ञ को सर्वाधिक शक्तिशाली राजा ही कर सकता है।[26] कालान्तर में अश्वमेध की महत्ता घटने के कारण इसे छोटे–मोटे शासक भी करने लगे, किन्तु विद्वानों की यह बात असंगत सिद्ध हुई।[27] इतिहास से सिद्ध होता है कि अश्वमेध–यज्ञी अधिकांश सम्राट महाराजाधिराज, जनाश्रय पृथ्वी बल्लभ आदि उपाधियां धारण करते थे, जिससे उनके प्रभुत्व की बात सुस्पष्ट हो जाती है। 18वीं शती में जयपुर के शासक जयसिंह अपने अन्तिम काल में पूर्ण स्वाधीन थे तथा उनकी प्रभुता आस–पास के सर्वाधिक शासक मानते थे। उनका यज्ञ 1739–1744 के मध्य किसी समय सम्पन्न हुआ होगा, जब उनकी शक्ति सबसे प्रबल थी। सम्भवतः यज्ञ विधियों में बाद में न्यूनाधिक परिवर्तन कर दिया गया हो, परन्तु यज्ञ का मूल उत्स वही रहा, जो ब्राह्मण और श्रोत ग्रन्थों में वर्णित है।

उपनिषदों के ही समय से अहिंसा के प्रचार के कारण श्रोत धर्म की उपेक्षा होने लगी। बौद्ध एवं जैन धर्मों द्वारा वैदिक धर्म एवं यज्ञों के विरुद्ध आन्दोलन चला। गीता में भी वैदिक यज्ञों के प्रति विरोध के आख्यान आये हैं। ब्राह्मण धर्म की पुनर्स्थापना पर यज्ञों का प्रचार कुछ बढ़ा, किन्तु स्मार्त धर्म के पदार्पण के कारण यज्ञों के प्रति उदासीनता बढ़ी और पांचवीं शती से पौराणिक धर्म की प्रबलता के साथ ही अश्वमेधादि वैदिक यज्ञों का ह्रास होने लगा, और कुछ काल बाद ही अश्वमेध–यज्ञ का होना बन्द हो गया।

सन्दर्भ–सूची

1. ऋग्वेद, 1/18/3, 7/18/23, अर्थवेद, 3/15/8 आदि हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, पृ. 109
2. विष्णु पुर अंश–2, अध्याय 8, श्लोक 18
3. शतपथ ब्राह्मण, 13, 5, 4, 1, वायु पुराण, 93, 22, 25
4. रामायण उत्तरकाण्ड सर्ग 90 श्लोक, 11–19

5. वही, बालक सर्ग, 8, 14, 8, 12, 15, 1
6. वही, वही, श्लोक 16
7. 3, 8, 94
8. 20, 1, 1
9. रामायण बाल काण्ड सर्ग 8 श्लोक 17—18
10. शतपथ ब्राह्मण, 13, 4, 25, महाभारत 14, 74—84
11. वही, 13, 3, 5, 11
12. वही, 13, 3, 5, 13
13. उत्तर काण्ड, अध्याय 99
14. 4, 12, 8
15. वामन पुराण अध्याय 78, श्रीमद्भागवत स्कन्ध 4, अध्याय 16
16. रामायण तथा महाभारत
17. वही,
18. हरिवंश पुराण भविष्य पर्व, 2, 28
19. वही, तथा महाभारत, 2, 4, 23
20. एपिग्राफिया इण्डिका भाग 20, पृ. 54—58
21. मध्य कालीन भारतीय संस्कृति, पृ. 16
22. समुद्रगुप्त के अश्वमेध यज्ञ के घोड़े की प्रतिकृति लखनऊ संग्रहालय में सुरक्षित है।
23. इण्डियन हिस्टारिका क्वाटर्ली (1927), पृ. 725
24. कर्नल टॉड 'राजस्थान' द्वितीय संस्करण 328—321 इण्डियन कल्चर भाग 3, पृ. 373 ज. इं. हि. पृ. 15, 364 पूना ओरियण्टल भाग 2,166
25. भविष्य पर्व, 2, 28
26. उत्तर रामचरितम्, चतुर्थ अंक
27. अलबरूनीज इण्डिया भाग, 2, पृ. 139
28. इण्डियन कल्चर भाग—1, 114—5; 137; भाग 2, 140—41

* * * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

History : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 306-308

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

प्राचीन भारतीय साहित्य में श्रेणियों का स्वरूप एवं कार्य

*शरद कुमार गुप्ता**

प्राचीन भारत में विभिन्न व्यवसायियों एवं शिल्पियों ने अपने–अपने व्यवसाय एवं शिल्प की उन्नति एवं सुरक्षा के लिए आर्थिक संगठन की संरचना की थी, जिसे प्राचीन भारतीय साहित्य में 'श्रेणी' की संज्ञा दी गयी है। 'श्रेणी' आर्थिक व्यवस्था में संलग्न लोगों का एक लघु जनतन्त्रात्मक संगठन था, जिसमें तत्कालीन भिन्न–भिन्न व्यापारिक समूहों का प्रतिनिधित्व था। प्राचीन भारतीय साहित्य के अनेक स्थलों पर इन श्रेणियों को गण, पूग, व्रात, नैगम आदि शब्दों से सम्बोधित किया गया है।

प्राचीन भारत की अर्थ–व्यवस्था का विकास होने पर कालक्रमानुसार विभिन्न शिल्पों और उद्योगों का विशिष्टीकरण प्रारम्भ हुआ तथा व्यापार और वाणिज्य में सहकारिता व आपसी सहयोग की आवश्यकता के महत्व को समझा गया। परिणामतः 'श्रेणी संगठनों' के रूप में आर्थिक जनतान्त्रिक संगठनों का आविर्भाव हुआ। प्राचीन भारतीय साहित्य से इन संगठनों तथा इनके कार्यों के सम्बन्ध में आशातीत ज्ञान प्राप्त होता है।

श्रेणी संगठन जैसी आर्थिक संस्थाओं का उदय वैदिककाल में ही हो चुका था, क्योंकि वैदिक ऋचाओं में अनेक स्थलों पर 'गण' शब्द का प्रयोग हुआ, जो किसी एक शिल्प या व्यवसाय में संलग्न वैश्यों के 'गण' प्रमुख के आशय में प्रयुक्त है। ऋग्वेद में ही 'पणि' शब्द का अभिधान है जो सम्भवतः व्यापारियों के लिए ही प्रयुक्त हुआ है। 'पणि' सम्भवतः सुरक्षा को अवधान में प्रकाशित कर 'समूहों' में व्यापार के लिए विभिन्न स्थलों पर जाया करते थे जो अपनी व्यापारिक वस्तुओं एवं स्वयं की सुरक्षा के लिए सैनिक भी रखते थे। अतः अनुमान लगाया जा सकता है कि 'गण' एवं 'पणि' के रूप में श्रेणियों का उदय ऋग्वैदिक आदिम व्यापारियों के साथ ही हो चुका था।[1]

ऐसा प्रतीत होता है कि व्यापार और उद्योगों के तीव्र विकास के कारण सुनियोजित उत्पादन एवं उनके समुचित वितरण सम्बन्धी अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न हुईं, जिनके समाधान के लिए अनेक व्यवसायिक संगठनों का विकास अनिवार्य हो गया और ईसा की पूर्ववर्ती शताब्दियों में इनकी संख्या बढ़ती गयी तथा इन्हें श्रेणी, गण, पूग, व्रात, निगम, नैगम आदि शब्दों से सम्बोधित किया जाने लगा।

मौर्यकालीन कौटिल्य के अर्थशास्त्र में 'श्रेणी' के संगठनात्मक स्वरूप को रेखांकित किया गया है। अर्थशास्त्र में एक स्थल पर उल्लिखित है कि 'अक्षपटलाध्यक्ष' को नियमित रूप से निर्धारित राजकीय पंजिकाओं में 'श्रेणी' (निगम) की प्रथाओं, विधानों, वस्तुओं के आदान–प्रदान सम्बन्धी सूचनाओं को लिपिबद्ध करना चाहिए। अर्थशास्त्र में ही एक स्थल पर 'श्रेणी संगठन' के आयुक्त अथवा मंत्री का उल्लेख है, जिसकी नियुक्ति शुल्क एकत्रित करने के लिए की जाती थी। ऐसा प्रतीत होता है कि मौर्यकाल तक आते–आते श्रेणियों का संगठनात्मक स्वरूप अत्यन्त व्यापक हो गया था तथा विभिन्न कार्यों के सम्पादन के लिए अलग–अलग अधिकारियों का अस्तित्व था। एक आदर्श नगर में व्यवसायिक एवं व्यापारिक श्रेणियों से प्राप्त 'कर' राजकीय आय के महत्वपूर्ण स्रोत बन गये थे तथा श्रेणियों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो गया था। इसलिए श्रेणियों पर राज्य कठोर नियन्त्रण स्थापित करके अपने व्यक्तिगत हितों के लिए इनका प्रयोग करता था।[2]

श्रेणी संगठन के कार्यों को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए एक कार्यकारिणी का गठन किया जाता था, जिसका प्रमुख श्रेष्ठिन, श्रेष्ठी, जेट्ठक, प्रमुख आदि नामों से पुकारा जाता था। इस संघ प्रमुख का चयन श्रेणी

* *शोध छात्र, प्राचीन इतिहास विभाग, राष्ट्रीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जमुहाई, जौनपुर*

संगठन के सदस्यों द्वारा किया जाता था। गुप्तकाल में सार्थवाह तथा कुलिक शब्द भी इन्हीं के लिए प्रयुक्त किया गया है। इस पद पर उसी व्यक्ति का चयन किया जाता था जो वेदों का ज्ञाता, ईमानदार, योग्य, संयमी, कार्यकुशल एवं उच्च परिवार का हो। 'श्रेणी संगठन' के इस कार्यकारिणी की 'गोष्ठी' तथा उसके सदस्यों को 'गोष्ठीक' कहा जाता था।[3] गोष्ठी का एक अध्यक्ष होता था जिसे संघापति, संघाधिपति अथवा श्रेष्ठिन कहा जाता था। श्रेष्ठि अथवा अध्यक्ष की सहायता के लिए दो, तीन या पाँच प्रबन्धकारी होते थे।[4] श्रेणी की वास्तविक शक्ति उनके कार्यकारिणी में निहित थी तथा श्रेणियों के अधिकारी अपने अधिकारिक रूप में व्यक्तिगत सदस्यों के ऊपर अपना अत्यधिक प्रभाव रखते थे। इस कार्यकारिणी द्वारा श्रेणी के सदस्यों को उनके प्रमुख के निर्देशों एवं आदेशों का अनुपालन करने के लिए कुछ नियमों का प्रतिपादन किया गया था। यदि कोई सदस्य संगठन के विधानों के विरुद्ध कार्य करता था तो अन्य सदस्य उसकी निन्दा करते हुए प्रमुख की सहमति पर उन्हें श्रेणी से बहिष्कृत कर सकते थे। जो सदस्य अनावश्यक किसी सदस्य की निन्दा अथवा कार्यों की उपेक्षा करते थे उन पर 'चार कनिष्क' या छः सुवर्ण का दण्ड देने का अधिकार था। नारदस्मृति में कहा गया है कि श्रेणी की कार्यकारिणी अपने सदस्यों को जो भी आदेश अथवा दण्ड दे, उसका पालन करवाना राजा का कर्तव्य है, क्योंकि श्रेणियों के सुचारु संचालन के लिए इसकी व्यवस्था की गयी है।[5] श्रेणी के कार्यकारिणी की प्रायः बैठकें होती रहती थीं, जिसमें संगठन एवं सदस्यों से सम्बन्धित समस्याओं का निराकरण किया जाता था। जब किसी गम्भीर समस्या पर वैमत्य उत्पन्न होता था तो दो, तीन या पाँच कार्यचिन्तकों की एक उपसमिति का गठन होता था, जिसका निर्णय सबको मान्य होता था। श्रेणी के सदस्य कार्यों के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होते थे। इन सदस्यों की सभा को वीर मित्रोदय में 'समुदाय' कहा गया है।

श्रेणी संगठन की कार्यकारिणी में अध्यक्ष और सदस्य के अतिरिक्त कर्मचारी भी नियुक्त होते थे, जो इनके कार्यों में सहायता करते थे। बौद्ध ग्रन्थ विनयपिटक में भण्डागारिक नामक कर्मचारी का उल्लेख है, जो सम्भवतः निर्मित वस्तुओं को एकत्रित करते थे तथा निर्माण के समय उसकी रक्षा और निरीक्षण करते थे।[6] अर्थशास्त्र के अनुसार शुल्क एकत्रित करने के लिए तीन आयुक्त नियुक्त किये जाते थे। इसी प्रकार के अन्य कर्मचारी भी नियुक्त होते रहे होंगे।

श्रेणियों का लोकतान्त्रिक आधार पर अपना पृथक विधान होता था, जिसके अनुरूप वे कार्य करती थीं किन्तु विशेष परिस्थितियों में राजा उनके विधान में हस्तक्षेप कर सकता था। संगठन के नियमों में वैधानिक शक्ति थी, जिसका अनुमोदन राजा तथा शासन द्वारा किया जाता था। लक्ष्मीधर के अनुसार श्रेणियों के कुछ अनुबन्ध का भी अधिकार था जो सभी सदस्यों को ज्ञात होते थे।[7] इन श्रेणियों का अलग–अलग कार्यालय भी होता था। जहाँ उपस्थित होकर संगठन सम्बन्धी विचार–विमर्श किये जाते थे। कुछ ऐसे उदाहरण भी प्राप्त हो हैं, जिनसे श्रेणियों द्वारा व्यक्तिगत सिक्के चलाने के अधिकार का बोध होता है।

श्रेणियों के कार्य–प्राचीन भारतीय समाज में श्रेणियाँ व्यापार और वाणिज्य के साथ–साथ अन्य कार्यों का भी सम्पादन करती थीं। विश्रामगृह, कुण्ड और अगीचे तथा अन्य विभिन्न प्रकार के कार्य श्रेणियों द्वारा किये जाते थे। दीन–हीन व्यक्तियों के सहायतार्थ अनेक जनकल्याणकारी कार्यों के साथ–साथ श्रेणियाँ न्यायालय के रूप में भी कार्य करती थीं। वस्तुतः श्रेणियों द्वारा किये जाने वाले कार्यों को निम्नलिखित रूप में समझा जा सकता है।

आर्थिक कार्य–श्रेणियों का प्रमुख कार्य आर्थिक उपादानों से ही सम्बन्धित था। चूँकि एक विशेष प्रकार के व्यवसाय से यह संघ सम्बन्धित होता था। इसलिए अपनी–अपनी श्रेणी के व्यवसाय को सम्पादित करने के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था श्रेणियों द्वारा की जाती थी। इसके लिए सबसे निपुण एवं बुद्धिमान व्यवसायी या शिल्पी के यहाँ व्यापारिक एवं अन्य गतिविधियों को सीखने के लिए लोगों को भेजा जाता था। जब कोई व्यक्ति अपने कार्यों में पूर्णतः निपुण हो जाता था तब उसे संघ द्वारा ऋण के रूप में पर्याप्त आर्थिक सहायता देकर स्वतन्त्र व्यवसाय का अवसर प्रदान किया जाता था।

आर्थिक संगठन से सम्बद्ध होने के कारण वाणिज्य का कार्य भी श्रेणियाँ ही करती थीं। इनके सदस्य एवं कुछ आम जनसमुदाय श्रेणियों के पास धन जमा करने या ऋण प्राप्त करने जाते थे। ऋण जमानत, विश्वास अथवा

गवाह के लिखित दायित्व पर दिया जाता था। ये अनेक प्रकार के होते थे, जैसे– स्थायी, चल, भोग्य, समयबद्ध, ऐच्छिक आदि।[8] ऋण से कई प्रकार के ब्याज का प्राविधान था। जैसे–कायिक, कालिक (समयबद्ध), चक्रवृद्धि, शिखावृद्धि आदि। ब्याज की राशि भिन्न–भिन्न होती थी। ऋण के लेन–देन में ऋण–पत्र या भोग पत्र का प्रयोग होता था। ऋण देने वाले को 'महाजन' (बैंकर) कहा जाता था। अभिलेखों के अनुसार इनको सदस्य तथा साक्षी रखने का अधिकार था। ये 'पंचकुलक' के सदस्य होते थे।[9]

धार्मिक प्रधानता के कारण प्रायः धर्मार्थ लोग श्रेणियों में धन जमा करते थे और उससे प्राप्त ब्याज के द्वारा धार्मिक कार्यों का सम्पादन करते थे। ऐसे अनेक अभिलेख प्राप्त होते हैं जिसमें धर्मार्थ धन जमा करने का उल्लेख है। देवविष्णु नामक ब्राह्मण ने तैलप श्रेणी में कुछ धन जमा किया था, जिसके ब्याज से एक सूर्य मन्दिर में दीप जलाने के लिए तेल का प्रबन्ध किया जाता थ।

सामाजिक कार्य–श्रेणियों द्वारा विभिन्न प्रकार के सामाजिक कार्य भी किये जाते थे। यह निर्धन व्यक्तियों को उनके सामाजिक दायित्वों के निर्वहन हेतु सहायता प्रदान करती थीं। जैसे– जन्म, विवाह, अन्त्येष्टि आदि। सामाजिक भवनों के निर्माण तथा जीर्णोद्धार में भी श्रेणियाँ सहयोग करती थीं। मन्दसौर के रेशम बुनकर श्रेणी ने सूर्य का भव्य मन्दिर बनवाया था तथा बाद में उसका जीर्णोद्धार भी करवाया था। कभी–कभी जनकल्याण के लिए सामूहिक यज्ञ का आयोजन भी श्रेणियों द्वारा कराया जाता था।

वैधानिक एवं न्यायिक कार्य–विभिन्न श्रेणियों को अपने सदस्यों के लिए नियम बनाने का अधिकार था। गौतम ने कृषकों, व्यापारियों, चरवाहों, ऋण देने वालों एवं शिल्पियों के श्रेणी का उल्लेख किया है, जिन्हें अपने सदस्यों के लिए नियम बनाने का अधिकार था।[10] श्रेणियों के साक्ष्य की न्यायालय में अधिक प्रधानता थी। अपनी–अपनी श्रेणियों के सदस्यों के विवादों का निपटारा श्रेणियाँ स्वयं करती थीं। इसके लिए समितियाँ बनायी जाती थीं जो न्यायालय का कार्य करती थीं। अपराध सिद्ध होने वाले सदस्यों को दण्ड देने का अधिकार भी इन्हें था। जब इन समितियों द्वारा कोई निर्णय ले पाना कठिन होता था तब विवाद राजा के न्यायालय में जाता था।

इस प्रकार प्राचीन भारतीय साहित्य में आर्थिक–व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण अंग श्रेणियों का संगठनात्मक स्वरूप था, जो विभिन्न कालों में अलग–अलग रूप से प्राचीन भारतीय राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक व्यवस्था को प्रभावित करती रही है।

संदर्भ–सूची

1. बलदेव उपाध्याय, वैदिक साहित्य और संस्कृति, पृ. 508
2. अर्थशास्त्र 2/21
3. समस्त गोष्ठिक समुदाय समन्वितेन श्रीमालवंश विभूषणः श्रेष्ठि यशोदेव सुतेन (ए०इ०, जि०–11, पृ. 53.)
4. बृहस्पतिस्मृति 17, 9
5. नारदस्मृति, 10, 2, 3, 6
6. विनयपिटक, 2/176
7. स्मृतिचन्द्रिका, 2, 223
8. बृहस्पतिस्मृति, 11, 17
9. शुक्रनीति, 4, 44–45
10. गौतमधर्मसूत्र, 11, 21

* * * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908
History : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 309-310
General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

स्मृतिकालीन मंत्रिमण्डलीय व्यवस्था

*मनोज कुमार यादव**

आधुनिक राजव्यवस्था के अन्तर्गत केन्द्रीय शासन के विभाग में राजा या राष्ट्रपति, केन्द्रीय व्यवस्थापिका मंत्रिमण्डल विभागों के अध्यक्ष और केन्द्रीय शासन के कार्यालय का समावेश होता है। परन्तु प्राचीन काल की शासन व्यवस्था में प्रशासन और मंत्रिमण्डलीय स्वरूप का वर्तमान व्यवस्था से तुलनात्मक अध्ययन करने पर यह बात स्पष्ट होती है कि मंत्रिमण्डलीय व्यवस्था की जड़ें श्रुति ग्रंथों तथा स्मृति ग्रंथों से ही प्रारम्भ होती हैं।

प्राचीन भारतीय आचार्यों ने मंत्रिमण्डल को राजव्यवस्था का अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग माना है। मनु का कथन है कि –

अपि यत्सुकरं कर्म तदप्यकेन दुष्करम्।
विशेषतोऽसहायेन विंनु राज्यं महोदयम्।।[1]

अर्थात् सुकर कार्य भी एक आदमी के अकेले होने से दुष्कर हो जाता है। फिर राज्य जैसे महान् कार्य को बिना मंत्रियों की सहायता से चलाना कैसे सम्भव है। शुक्र का कथन है कि योग्य राजा सब बातें नहीं समझ सकता है। अलग–अलग व्यक्तियों में बुद्धि एवं वैभव अलग–अलग होता है। अतः राज्य की अभिवृद्धि चाहने वाला राजा योग्य मंत्रियों को चुने अन्यथा राज्य का पतन निश्चित है। उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि हिन्दू विधान शास्त्री मंत्रिमण्डल को राज्य का अविच्छेद अंग मानते हैं। अगर स्मृतियों के पूर्व की बात करें तो ऋग्वेद और अथर्ववेद में राजा के मंत्रियों का उल्लेख नहीं है न उल्लेख का कोई प्रयोजन ही है परन्तु यजुर्वेद की संहिता और ब्राह्मण ग्रंथों में राज्य के कुछ उच्च अधिकारियों का उल्लेख है। यह 'रत्नी' कहे जाते थे और सम्भवतः राज्य परिषद् के सदस्य थे। वैदिक काल में रत्निपरिषद् में पटरानी, युवराज, राजन्य आदि राजा के सम्बन्धी, अक्षवाप, क्षत्ता आदि दरबारी और सेनानी, सूत, संग्रहीता और रथकार आदि प्रमुख अधिकारी शामिल रहते थे। परन्तु धर्मशास्त्रों और नीतिशास्त्रों से पता चलता है कि रत्नी का स्थान एक और प्रभावशाली संस्था ने ले लिया था। यह 'मंत्री' या 'अमात्य' अथवा सचिव परिषद् थे। अब हमें देखना है कि मंत्री मण्डल में कितने सदस्य होते थे। मनु के अनुसार –

आष्ठाना मंत्रिणा मध्ये मंत्रं राजोपधारयेत्।[2]

अर्थात् मंत्रियों की संख्या 7 या 8 होनी चाहिए। अलग–अलग धर्मशास्त्रों तथा महाकाव्यों में मंत्रियों की संख्या निर्धारित करते समय आचार्यों की दृष्टि विभिन्न राज्यों पर थी। इसलिए मनु और कौटिल्य इस बात से एकमत हैं कि प्रत्येक राज्य की आवश्यकता अलग–अलग होती है। इसलिए उस राज्य के आवश्यकतानुसार उसके मंत्रियों की संख्या निश्चित की जानी चाहिए और यदि उसका कार्य क्षेत्र सीमित है तो चार से पांच मंत्रियों से ही काम चल जाएगा।

शुक्र की मंत्री सूची में दूसरा स्थान प्रतिनिधि का है। इसका काम राजा की अनुपस्थिति में उसके नाम से कार्य करना था। परन्तु मनु प्रतिनिधि को नहीं प्रधानमंत्री को ही राजा का स्थान ग्रहण करने को कहते हैं।[3] इसके साथ ही अगर हम मंत्री परिषद् की बात करें तो राज्यशास्त्र के ग्रंथों या उत्कीर्ण लेखकों में 'मंत्रीपरिषद्' की कार्यप्रणाली का पूरा–पूरा ज्ञान प्राप्त नहीं होता। सामान्यतः मंत्रीपरिषद् की बैठक राजा के अध्यक्षता में होती थी। कहा भी गया है कि मंत्रियों की राय अपनी राय से भिन्न होने की दशा में राजा क्रोध न करें। मनु की सलाह है कि राजा मंत्रियों

* *शोध छात्र, प्राचीन इतिहास विभाग, राष्ट्रीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जमुहाई, जौनपुर*

से सामूहिक और अलग–अलग दोनों प्रकार से मंत्रणा करें।[4] सम्भव है कि अन्य मंत्रियों के सामने कोई मंत्री अपनी स्पष्ट राय देने में संकोच न करें। इसीलिए अलग–अलग मंत्रणा करने की राय दी गई है। शुक्र यह शंका व्यक्त करते हैं कि राजा की अनुपस्थिति में मंत्री बहुधा सच्ची और राजा को बुरी लगने वाले राय प्रकट करने में हिचक सकते हैं। इसलिए वे यह राय देते हैं कि मंत्री अपना–अपना मत सहप्रमाण लिखकर राजा के पास भेज दे।

अगर मंत्रियों की नियुक्ति और योग्यता सम्बन्धी बात की जाए तो यथासम्भव मंत्रियों के पुत्र या वंश के अन्य लोगों को मंत्रियों की नियुक्ति के समय प्रधानता दी जाती थी। स्मृतियाँ मंत्रियों के चुनाव में ब्राह्मण को प्रधानता देती हैं। व्यवहार में इस पर कहाँ तक अमल किया जाता था यह ज्ञात नहीं है। प्राप्त लेखों में सामान्यतः मंत्रियों की जाति का उल्लेख नहीं किया गया है, पर अधिक सम्भावना है कि मंत्रियों में सभी जातियों और सभी वर्गों के सदस्य होते थे। महाभारत के अनुसार राजकीय परिषद् में ब्राह्मण केवल 4 होते थे जबकि क्षत्रियों की संख्या 8, वैश्यों की संख्या 21 और शूद्रों की संख्या 3 होती थी। शुक्र का कथन है कि जाति और कुल विवाह के समय ही पूछना चाहिए, मंत्रियों का चुनाव करते समय नहीं।[5]

मंत्रियों के नियुक्ति का प्रावधान वर्तमान व्यवस्था से कुछ भिन्न था। अगर भारत के परिप्रेक्ष्य में बात किया जाए तो वर्तमान व्यवस्था में है कि मंत्रियों की नियुक्ति प्रधानमंत्री की सलाह पर राष्ट्रपति करेगा परन्तु प्राचीन समय में मंत्रियों की नियुक्ति राजा करते थे। प्राचीन भारत में ऐसी कोई केन्द्रीय प्रतिनिधि सभा नहीं थी, जिसके प्रति मंत्री जिम्मेदार होते हैं। अतः प्रत्यक्ष रूप से मंत्री राजा के प्रति जिम्मेदार थे और अप्रत्यक्ष रूप से जनता के प्रति। मंत्रियों के शक्ति और प्रभाव की बात की जाए तो वह उनके व्यक्तित्व पर निर्भर करता था। उन्हें किसी लोभ प्रतिनिधि संस्था के समर्थन या वैधानिक बल का सहारा न था।

अनेक प्रमाणों से यह ज्ञात होता है कि मंत्रिमण्डल का राज्य कार्यभार पर प्रायः अच्छा प्रभाव पड़ता था और वैधानिक तौर पर जनता के प्रति उत्तरदायी न होने पर भी मंत्रिमण्डल अपनी शक्तिभर प्रजा के हित साधन का प्रयत्न करता था।

सन्दर्भ–सूची

1. मनुस्मृति 810 मल्होत्रा लिस
2. मनुस्मृति 12.05
3. मनुस्मृति 7.141
4. मनुस्मृति 8.7 आवन
5. शुक्र 3 दशमलव 54–5

* * * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

History : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 311-313

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

बौद्ध धर्म के उच्च नैतिक आदर्श तथा उनकी प्रासंगिकता

*संतोष कुमार**

छठी शताब्दी ईसा पूर्व वैदिककालीन समाज में अनेक प्रकार की विसंगतियाँ उत्पन्न हो गई थीं। वैदिक धर्म के मूल सिद्धान्तों का पतन हो गया और कर्मकाण्डों का आडम्बर बढ़ता जा रहा था। पहले से चली आ रही वर्ण व्यवस्था के स्थान पर अब जाति व्यवस्था अपने रूप में आ गई थी। धार्मिक जीवन में कर्मकाण्डों और पुरोहितों का हस्तक्षेप बढ़ता जा रहा था। बिना पुरोहितों के किसी भी प्रकार का धार्मिक क्रियाकलाप कर पाना सम्भव नहीं था। यज्ञों में प्राप्त होने वाली धन सम्पदा के लालच में आकर पुरोहित वर्ग कर्मकाण्डों को बढ़ावा देता था। प्रमुख बात तो यह है कि जो पुरोहित वर्ग दूसरों को नैतिकता का पाठ पढ़ाता था, वह स्वयं विलासिता का जीवन बिताता था। स्त्रियों की सामाजिक दशा में अवनति हो गई थी। समाज में व्याप्त विसंगतियों के फलस्वरूप लोगों का नैतिक पतन तीव्र गति से होता जा रहा था। तथागत बुद्ध ने समाज में व्याप्त विभिन्न प्रकार की कुरीतियों के खिलाफ आवाज उठाई और कहा कि सत्य और परमार्थ ज्ञान के क्षेत्र में पुरोहितों की कोई आवश्यकता नहीं है। शील, समाधि, प्रज्ञा का अनुसरण करके व्यक्ति स्वयं निर्वाण प्राप्त कर सकता है। महात्मा बुद्ध वैदिक कर्मकाण्डों को व्यर्थ समझते थे। उनका कहना था कि कर्मकाण्डों में जो अंधविश्वास है उससे व्यक्ति का नैतिक पतन होता है। अंध ाविश्वासों के बजाय उन्होंने योग्यता तर्क बुद्धि और विवेक का आश्रय लेकर धार्मिक एवं दार्शनिक प्रश्नों का निर्णय लिया और यही संदेश अपने अनुयायियों को भी दिया।

बौद्ध धर्म में नैतिक मूल्यों को प्रमुखता से समावेशित किया गया है। किसी व्यक्ति के आन्तरिक मैल को दूर करके उसे स्वच्छ बनाना इस धर्म का मुख्य उद्देश्य है। इस क्षेत्र का सर्वोच्च उद्देश्य (साध्य) बहुजन का हित, बहुजन का सुख, लोक पर अनुकम्पा और सभी मनुष्यों का हित व सुख है। मानव का कल्याण और सुख ही इसका केन्द्र बिन्दु है। मानव–जीवन की सभी समस्याओं को नष्ट करना ही तथागत की प्रमुख समस्या थी इसलिए बुद्ध ने तत्कालीन समाज में व्याप्त वैदिक मान्यताओं, जैसे–यज्ञ, बलि, जाती आदि को स्वीकार नहीं किया। उनका मानना था कि इन सबसे मनुष्य का शोषण होता है। उन्होंने इस प्रकार के नैतिक मूल्यों की स्थापना किया, जिससे समाज में शोषण और अन्याय समाप्त हो और स्वतंत्रता, समानता और बंधुता की सम्भावना स्थापित हो। किसी भी समाज के निर्धारण में वहाँ व्याप्त धर्म में जो नैतिक मूल्य होते हैं वह उस समाज में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्धारण करते हैं। समाज में व्याप्त परम्पराओं को यदि सही नैतिक मूल्यों द्वारा निर्देशित नहीं किया जाता है तो वह समाज का कल्याण नहीं कर सकती। तथागत बुद्ध ने तत्कालीन समाज में व्याप्त बुराइयों को नैतिक मूल्यों में सुधार करके दूर करने का उपाय किया।

बुद्ध ने वैदिक कालीन समाज में व्याप्त दर्शन के विरोध में तर्क दिया। उनका मानना था कि जहाँ मनुष्य कर्म करने के लिए स्वतंत्र है वहीं उसका उत्तरदायित्व समाप्त हो जाता है। अतः बुद्ध ने समाज को ऐसा नीतिशास्त्र दिया जिसमें आत्मा, ईश्वर आदि काल्पनिक बातों के लिए कोई स्थान नहीं है। तथागत के अनुसार मनुष्य कर्म करने के लिए स्वतंत्र है और सभी कर्मों का उत्तरदायित्व कार्य करने वाले की है न कि किसी दूसरे की। इसलिए नैतिक मार्ग पर आगे बढ़ने और उसका अनुशीलन करने के लिए मनुष्य स्वतंत्र है। इस संदर्भ में बुद्ध का कहना है–"जो अपने ही आपको प्रेरित करेगा, अपने ही आपको संलग्न करेगा, वह अपने ही द्वारा रक्षित स्मृतिवान भिक्खु सुख से विहार करेगा।"[1] बुद्ध ने आगे कहा– "मनुष्य अपना स्वामी आप है, अपने आप ही अपनी गति है, इसलिए अपने को संयमी बनाये, जैसे सुन्दर घोड़े को बनिया संयत करता है।"[2] इस प्रकार बुद्ध मनुष्य को अनुशीलन करने

* *शोध छात्र, प्राचीन इतिहास विभाग, राष्ट्रीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जमुहाई, जौनपुर*

के लिए स्वतंत्र कर देते हैं, जिसका अनुशीलन करके समाज अपने सर्वोच्च साध्य 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' की प्राप्ति कर सकता है। बुद्ध के धर्म का प्रारम्भ ही पंचशील से होता है पंचशील बौद्ध धर्म का मूल आधार है। जिसके प्रथम शील में ही मनुष्य हिंसा से विरत हो जाता है, दूसरे शील में चोरी से विरत हो जाता है, तीसरे शील में व्यभिचार से विरत हो जाता है, चौथे शील में झूठ बोलने से विरत हो जाता है और पाँचवें शील में मादक द्रव्यों से विरत होने की बात कही गई है।

महात्मा बुद्ध ने दुःख को आर्य सत्य मानते हुए उसे दूर करने के लिए आर्य आष्टांगिक मार्ग में निम्नलिखित मूल्यों का प्रतिपादन किया, जिसका अनुशीलन करके मनुष्य दुःखों को दूर कर सकता है।

1. **सम्यक् दृष्टि**—वास्तविक स्वरूप पर ध्यान देना।
2. **सम्यक् संकल्प**—हिंसा द्वेष से मुक्त विचार।
3. **सम्यक् वाक**—कटु वचन न बोलना।
4. **सम्यक् कर्मान्त**—सत् कर्मों का अनुसरण करना।
5. **सम्यक् आजीव**—सदाचार पूर्ण जीवन जीना। जिसके अन्तर्गत "बुद्ध ने हथियार व्यापार, मनुष्य व्यापार, मांस व्यापार, मध्य व्यापार, विश व्यापार आदि का निषेध बताया है।[3]
6. **सम्यक् व्यायाम**—विवेकपूर्ण जीवन जीना।
7. **सम्यक् स्मृति**—मिथ्या धारणा त्यागना।
8. **सम्यक् समाधि**—मन तथा चित्त की एकाग्रता के लिए ध्यान तथा योग को अपनाना। "चित्त की एकाग्रता को समाधि कहते हैं।"[4]

बुद्ध ने आर्य आष्टांगिक मार्गों के अनुपालन के साथ—साथ नैतिक जीवन बिताने का उपदेश दिया। नैतिक जीवन बिताने हेतु उन्होंने दस शीलों के पालन का उपदेश दिया था —1. सत्य 2. अहिंसा 3. अस्तेय 4. अपरिग्रह 5. ब्रह्मचर्य, 6. दोपहर के बाद भोजन न करना 7. आरामप्रद बिस्तर पर न सोना 8. व्यभिचार न करना 9. मद्यपान न करना 10. आभूषणों एवं कीमती वस्तुओं को त्यागना।

बुद्ध का दर्शन नैतिक मूल्यों पर निर्भर करता है, क्योंकि बुद्ध का दर्शन ईश्वर और आत्मा का खण्डन करता है, जिसके कारण बुद्ध के नैतिक मूल्यों का स्रोत ईश्वर और आत्मा न होकर मनुष्य और उसका समाज है। इसलिए बौद्ध दर्शन का सर्वोच्च साध्य मानव कल्याण है। बुद्ध ने महामंगल सुत्त और धार्मिक सुत्त में गृहस्थ के कर्तव्यों का वर्णन किया, जो नैतिक मूल्यों पर निर्भर करते हैं। बुद्ध कहते हैं कि "मूर्खों की संगति न करना, बुद्धिमानी की संगति करना और पूज्यों की पूजा करना ही उत्तम मंगल है।"[5] "धर्म से माता—पिता का पोषण करें और किसी धार्मिक व्यापार में अपने आपको लगायें।"[6] "सब प्रकार के असत्य भाषण को त्याग दें।"[7]

संन्यासी बनकर गौतम बुद्ध ने अपने आपको आत्मा और परमात्मा के निरर्थक विवादों में फंसाने के अपेक्षा समाज के कल्याण की ओर अधिक ध्यान दिया। उनके उपदेश मानव के दुःख एवं पीड़ा से मुक्त के माध्यम बने साथ ही साथ सामाजिक एवं सांसारिक समस्याओं के समाधान के प्रेरक बने जो जीवों को सुन्दर बनाने व मानवीय मूल्यों को लोकचित्त में संचारित करने में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। यही कारण है कि उनकी बात लोगों के समझ में सहज रूप से आने लगी। महात्मा बुद्ध ने मध्यमवर्ग अपनाते हुए हिंसा युक्त 10 शीलों का प्रचार किया तो लोगों ने उनकी बातों से स्वयं को सहज ही जोड़ दिया। तथागत के अनुसार "मनुष्य में काम, लोभ, द्वेष, हिंसा, चंचलता, उच्छृंखलता, अकर्मण्यता, आलस्य आदि प्रवृत्तियों का उपशमन अपेक्षित है।"[8] गौतम बुद्ध ने बौद्ध धर्म का प्रवर्तन किया और अत्यन्त कुशलता से बौद्ध भिक्षुओं को संगठित किया और लोकतांत्रिक रूप से उनमें एकता की भावना का विकास किया। इनका अहिंसा एवं करुणा का सिद्धान्त इतना लुभावना था कि सम्राट अशोक ने बौद्ध मत स्वीकार कर लिया और युद्ध पर रोक लगा दी। आज भी इस धर्म की मानवतावादी, बुद्धिवादी और जनवादी परिकल्पनाओं को नकारा नहीं जा सकता है और इसके माध्यम से भेद—भावों से भरी व्यवस्था पर जोरदार प्रहार किया जा सकता है। यह धर्म आज भी दुःखी, पीड़ित एवं अशांत मानवता को शांति प्रदान कर सकता है। ऊँच—नीच, भेदभाव, जातिवाद पर प्रहार करते हुए यह लोगों के मन में धार्मिक एकता का विकास कर रहा है।

महात्मा बुद्ध सामाजिक क्रान्ति के शिखर पुरुष थे। उनका दर्शन अहिंसा और करुणा का ही दर्शन नहीं, बल्कि क्रान्ति का दर्शन है। उन्होंने केवल धर्म तीर्थ का ही प्रवर्तन नहीं किया, बल्कि एक उन्नत और स्वस्थ समाज के

लिए नये मूल्य–मानक गढ़े। बुद्ध ने कहा पुण्य करने में जल्दी करो, कहीं पाप पुण्य का विश्वास ही न खो दे। सामाजिक क्रान्ति के सन्दर्भ में जो उनका अवदान है। उसे उजागर करना वर्तमान युग की बड़ी अपेक्षा है। ऐसा करके ही हम एक स्वस्थ समाज का निर्माण कर सकेंगे। आज समाज में नैतिक एवं मानवीय मूल्य या तो प्रदूषित होते चले जा रहे हैं अथवा मूल्यों का अवमूल्यन होकर पराभव को प्राप्त हो रहे हैं। इस भयंकर स्थिति से बचने के लिए यह जरूरी है बुद्ध के नैतिक मूल्यों का अनुशीलन किया जाए तभी समाज में मानवीय मूल्यों के शासन की स्थापना की जा सकती है। मूल्यों के अवमूल्यन के कारण भारतीय समाज की स्थिति के सुधार हेतु बुद्ध के नैतिक मूल्यों की प्रासंगिकता एवं आवश्यकता है।

आज भारतीय समाज सामाजिक बुराइयों का पिटारा बन चुका है। भारतीय समाज में अभी भी जातिवाद के कारण छुआछूत, भेदभाव, ऊँच–नीच की भावना व्याप्त है। इस कारण यह भावना स्वतंत्रता, समानता, मातृभाव और न्याय के मार्ग में बहुत बड़े व्यवधान हैं। आज भारत में अनैतिकता का बोलबाला है। चारों ओर भ्रष्टाचार, हिंसा, चोरी, डकैती, व्यभिचार और बलात्कार व्याप्त है। जीवन का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं जो अनैतिकता से अछूता रह गया हो। नैतिकता का स्थल समझे जाने वाले स्थान जैसे विद्यालय और मन्दिर भी भ्रष्टाचार, व्यभिचार और बलात्कारों में लिप्त हो चुके हैं। भारत में आज व्यक्तिगत, जातिगत और राजनीतिक आदि कारणों से मातृभाव के स्थान पर शत्रुता, वैमनस्यता, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा आदि पाए जाते हैं, जिसके कारण समाज में अशांति व्याप्त है। इस स्थिति से बचने के लिए और अनैतिकता मैं वृद्धि को रोकने के लिए तथा नैतिकता में वृद्धि करने के लिए आज हमें बुद्ध के नैतिक मूल्यों का अनुसरण करना प्रासंगिक।

संदर्भ–सूची

1. धम्मपद 20 भिक्खु वग्ग
2. धम्मपद 21 भिक्खु वग्ग
3. मज्झिम निकाय 5
4. मज्झिम निकाय 1/5/4
5. सुत्तनिकाय 2, महा मंगल सुत्त
6. सुत्तनिकाय 5
7. सुत्तनिकाय 28, धम्मिक सुत्त
8. जयशंकर मिश्र, प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, पृ. 835.

* * * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

History : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 314-317

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में इलाहाबाद की भूमिका

*सिद्धार्थ सिंह**

गंगा–यमुना के मध्य का भू–भाग दोआब की संज्ञा से अभिहित किया जाता रहा है। इस भू–भाग में इलाहाबाद, कौशाम्बी, फतेहपुर और कानपुर जिले के मध्यस्थ भाग को विशेष रूप से समझा जा सकता है। इनमें भी इलाहाबाद और कौशाम्बी में गंगा–यमुना के बीच का भाग दोआब नाम से परिचित होता रहा है। दोआब क्षेत्र में चायल मंझनपुर और सिराथू इन तीन तहसीलों का विशेष महत्त्व माना जा सकता है। द्वाबा की संसदीय सीट के रूप में भी चायल को विशेष स्थान दिया गया है। कौशाम्बी जनपद पूर्व में इलाहाबाद का पश्चिमी भाग हुआ करता था। इलाहाबाद के ही पश्चिमी क्षेत्र को कौशाम्बी के रूप में स्थापित किया गया। यह कौशाम्बी क्षेत्र ही 'दोआब' के नाम से जाना जाता है।

'इलाहाबाद' अतीत में 'प्रयाग' के नाम से सर्वविदित था और इसकी गौरव–गरिमा सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रसारित थी। वत्सदेश की राजधानी के रूप में यह क्षेत्र अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना गया है। वत्सराज उदयन जैसे महान प्रतापी राजा ने कौशाम्बी (प्रयाग) को अपनी राजधानी बनाया। महात्मा गौतम बुद्ध भी का भी यहाँ पर आगमन हुआ था। ऐतिहासिक दृष्टि से ऐसे महत्त्वपूर्ण सलि पर यह कहना समीचीन लगता है कि स्वातन्त्र्य समर में भी इस भू–भाग का एक विशेष योगदान था। निःसन्देह दोआब की यह धरती स्वतन्त्रता आन्दोलन में भी अपनी अग्रणी भूमिका अदा करती रही। "1857 में मेरठ से उठी हुई चिंगारी इलाहाबाद तक आते–आते एक शोले का स्वरूप धारण कर चुकी थी। मौलवी लियाकत अली के नेतृत्व में वह शोला इस प्रकार से धधक उठा जिसकी लपटें इलाहाबाद क्या समूचे उत्तर प्रदेश में व्याप्त होने लगी। वह वीर स्वतन्त्रता सेनानी मौलवी लियाकत अली इसी द्वाबा का निवासी थी। वर्तमान इलाहाबाद से लगभग 25 कि०मी० की दूरी पर पश्चिम में बसे महगाँव के वे रहने वाले थे। इन्होंने अंग्रेजों के खिलाफ आजादी का जो बिगुल फूँका उसकी गूँज गाँव–गिराँव और यहाँ तक कि बड़े–बड़े शहरों और कस्बों में भी फेलने लगी।"[1]

द्वाबा का यह वीर सेनानी अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध बगावत कर बहादुरशाह के नेतृत्व में इलाहाबाद स्थित खुसरोबाग में अपने आपको गवर्नर घोषित कर दिया और अपने क्षणि शासन सत्ता में मिर्जापुर से लूटे हुए खजाने को बचाकर कर्नल नील का सामना करते हुए कानपुर की ओर चला गया। अंग्रेजों की निगाह इस बहादुर स्वतन्त्रता सेनानी पर टिक गयी और वे इसके कारनामों को प्रतिपल नजर रखने लगे। द्वाबा में चायल, भरवारी, करारी, मंझनपुर, अथरबन जैसे कस्बों में तथा समसाबाद, शहजादपुर आदि ग्रामीण क्षेत्रों में लोग अंग्रेजों के विरुद्ध एकत्रित होने लगे और उनकी क्रूरता तथा मनमानी सत्ता को रोकने का हर प्रयत्न करने लगे। घुरबल यमुना के तट पर बसे गाँव के निवासी धावन सिंह अपने क्षेत्र में स्वतन्त्रता आन्दोलन का नेतृत्व कर रहे थे। उसने अथरबन के अपने किले को बहुत से उत्साही मित्रों को आन्दोलन में भाग लेने के लिए आकर्षित किया, किन्तु मंझनपुर के राजभक्त मुंसिफ द्वारा उसकी कार्यवाहियों को काफी हद तक सीमित कर दिया गया। मौलवी लियाकत अली की प्रेरणा से पूरे द्वाबा क्षेत्र में स्वतन्त्रता सेनानियों की भीड़ लग गयी। समदाबाद, रसूलपुर, सुलेमसराय, छीतपुर, मिनराजपुर शेरपुर, कसिया, भरवारी, मूरतगंज, सिराथू, करारी, दारानगर ये समस्त स्थल स्वतन्त्रता सेनानियों से परिपूर्ण थे। जगह–जगह पर इन्हें सम्बोधित किया गया और अंग्रेजों के विरुद्ध आन्दोलन छेड़ने हेतु तत्पर किया गया। ग्रामीण क्षेत्रों से सैनिकों के लिए रसद सामग्री और अस्त्र–शस्त्र भी एकत्रित किये जाने लगे। इस आन्दोलन की सबसे बड़ी विषेशता थी कि हिन्दू व मुसलमान दोनों साथ–साथ मिलकर अंग्रेजों के विरुद्ध संगठित होकर सामना करने लगे। इन सबका परिणाम यह हुआ कि इलाहाबाद में कम्पनी पर अंग्रेजों का कब्जा समाप्त हो गया और वे घबरा गये।

* *शोध छात्र, इतिहास विभाग, वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर*

कर्नल नील के आगमन पर एक बार पुनः अंग्रेजों की सैन्य शक्ति सबल हो उठी और उसने खूनी बर्बरता और नृशंस हत्यायें शुरू कर दी। जीवित लोगों को फाँसी पर लटकाने एवं बस्तियों को जला देने जैसे क्रूर करतूतों ने अंग्रेजों के विरुद्ध खुला विद्रोह प्रारम्भ कर दिया। इलाहाबाद में जगह–जगह पर लूट–पाट, आगजनी, हत्याएँ और निरपराध लोगों को फाँसी पर लटकाया जाने लगा। उनके घर जलाये गये और तमाम बस्तियों को उजाड़कर वहाँ के निवासियों को कुछ को जलाया, कुछ को मारा और कुछ को फाँसी पर लटकाया। इलाहाबाद अंग्रेजों की क्रूरता से थर्रा गया और प्रतिक्रिया स्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों में विद्रोह के स्वर उभरने लगें।

इलाहाबाद में सिविल लाइन का क्षेत्र जिसे उत्तर प्रदेश का गौरव माना जाता रहा, "उसके विषय में अंग्रेज इतिहास कार जार्ज वीकर्स ने अपने 'नैरेटिव ऑफ इण्डियन रिवोल्ट में लिखा है कि इस सिविल लाइन क्षेत्र की स्थापना 1858 में की गयी। उस समय यहाँ पर विद्यमान आठ गाँवों को जलाकर राख कर दिया गया, उनकी जमीनें हड़प ली गयी। उनको बिना मुआवजा दिये अपने अधीन कर लिया गया। महिलाओं को भी अपमानित किया गया। उन सभी सामर्थ्यवान् व्यक्तियों को या तो गोली मार दी गयी या उन्हें फाँसी पर लटका दिया गया। कुछ को जलती हुई बस्तियों में झोंक दिया गया और जो लोग जान बचाकर भागना चाहते थे, उन्हें भी गोली मार दी जाती थी। कर्नल नील की क्रूरता की बात दास्ता आज भी हर भारतीय के भीतर जोश उत्पन्न कर देती है और उस आततायी की क्रूरता पर खून खौला दिया करती है।"[2]

द्वाबा का क्षेत्र कृषि की दृष्टि से भी अत्यन्त उपजाऊ और उर्वरा भूमि के लिए महत्त्वपूर्ण माना जाता रहा है। किसानों का यह क्षेत्र पूर्ण रुप से खेती पर अवलम्बित था। चायल परगना स्वतन्त्रता सेनानियों का केन्द्र बिन्दु बना। इस आन्दोलन में हिन्दू व मुसलमान बराबरी के हिस्सेदार हुए। द्वाबा में किसान आन्दोलन भी स्वतन्त्रता संग्राम में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान रखता है। पं० जवाहर लाल नेहरू 1957 में गाँव में जाकर किसानों से मिले और उनकी पीड़ा से अवगत हुए। आगे चलकर जन सहयोग से एक स्मारक का निर्माण करवाया गया। इलाहाबाद नगर पालिका द्वारा सन् 1997 में इसका जीर्णोद्धार भी करवाया गया।

वस्तुतः 1857 की क्रान्ति का ज्वालामुखी ऐतिहासिक नगर इलाहाबाद तथा आस–पास के गाँवों में फूटा, पर यह अल्पकालीन ही रहा। फिर भी जिस प्रकार से लोगों ने अंग्रेजों के खिलाफ जंग लड़ी और बलिदान दिया, वह इतिहास में स्वर्णाक्षरों में दर्ज है। इलाहाबाद में क्रान्ति की चिंगारी को प्रयाग के पंड़ों ने भी हवा दी थी, लेकिन जनता ने अपना नेतृत्व मौलाना लियाकत अली को सौंपा। इस स्वतन्त्रता सेनानी ने ऐतिहासिक खुसरोबाग को स्वतन्त्र इलाहाबाद का मुख्यालय बनाया। खुसरों बाग मुगल सम्राट जहाँगीर के पुत्र शहजादा खुसरो द्वारा बनावाया गया था। इस विशाल बाग के अमरूद विश्व प्रसिद्ध हैं। मौलाना लियाकत अलील को चायल के जागीरदारों और जनता का भरपूर सहयोग मिला। बहादुर शाह जफर तथा बिरजिस कद्र ने इन्हें इलाहाबाद का गवर्नर घोषित किया था। बिरजिस कद्र की मुहरवाली घोषणा को शहर में जारी कर लियाकत अली ने लोगों से अंग्रेजों को देश से बाहर निकालने की अपील की। उन्होंने अपने भरोसेमन्द हरकारों की सहायता से इलाहाबाद के क्रान्ति की सूचना दिल्ली भिजवायी, बेगम हजरत महल समेत अन्य बड़े क्रान्ति नायकों के सम्पर्क में थे। मौलाना ने शासन थामते ही तहसीलदार, कोतवाल और अन्य अफसरों की नियुक्ति कर नगर में शान्ति स्थापना का प्रयास किया।

मेरठ की क्रान्ति की सूचना 12 मई को ही इलाहाबाद पहुँच गयी थी। उस समय इलाहाबाद के किले में यूरोपियन सिपाही या अधिकारी नहीं थे। कुल 200 सिक्ख सैनिक ही किले की रक्षा में लगे थे। उत्तर–पश्चिम प्रान्तों की सुरक्षा के लिए इलाहाबाद किला अंग्रेजों की शक्ति का मुख्य केन्द्र था और वहाँ बड़ी मात्रा में गोलाबारूद का भण्डार भी था। अगर आजादी के सिपाही इस किले पर अधिकार कर लेते तो शायद संघर्ष की तस्वीर ही बदल जाती। इलाहाबाद में तमाम खबरें जनमानस को झंकृत करती रही और यहाँ असली क्रान्ति का सूत्रपात 6 जून, 1857 को हुआ, तब तक कई अंग्रेज अधिकारी यहाँ पहुँच गये थे। उस दिन बागी सैनिकों ने अंग्रेज अफसरों पर हमला बोल कई अंग्रेजों को मौत के घाट उतार दिया, लेकिन 107 अंग्रेज सैनिक जान बचाकर किले में छिपने में सफल रहे। उस समय इलाहाबाद में छठी रेजीमेंट, देशी पलटन और फिरोजपुर रेजीमेंट, सिक्ख दस्तों का पड़ाव था।

इलाहाबाद में क्रान्ति को दबाने के लिए अंग्रेजों ने प्रतापगढ़ से सेना भेजी, पर 5 जून, 1857 को बनारस के क्रान्तिकारी भी यहाँ पहुँच गये और समसाबाद में साफीखान मेवाती के घर पर एक पंचायत जुटी। इसमें तय किया

गया कि सैनिक और जनता एक ही दिन क्रान्ति की ज्वाला जलाएँ, किन्तु इसी बीच अंग्रेज सेनाधिकारी सतर्क हो गये और उन्होंने किले की हर हाल में रक्षा करने की रणनीति बनायी। "अंग्रेजों ने बागी हवाओं के आधार पर खतरे की आशंका भाँपकर बनारस से आने वाले क्रान्तिकारियों को रोकने के लिए देशी पलटन की दो टुकड़ियाँ और दो तोपें दारागंज के करीब नाव के पुल पर तैनात कर दी गयी थी। किले का तोपों को बनारस की ओर से आने वाली सड़क पर मोड़ दिया गया था। नगर रक्षा में अलोपीबाग में देशी सवारों की दो टुकड़ियाँ तैनात थी, जबकि किले में 65 तोपची 400 सिक्ख सवार और पैदल तैनात कर दिये गये थे, उसी समय दारागंज के पंड़ों ने इन सैनिकों को बगावत के लिए ललकारा। अंग्रेजों को इसकी आहट मिली तो उन्होंने सैनिकों को प्रलोभन देकर 6 जून की रात 9 बजे तोषों को किले में ले जाने का आदेश दे दिया, लेकिन सैनिकों ने बगावत का फैसला ले लिया था। वे तोपों को छावनी में ले गये, जहाँ से वे अंग्रेजों पर गोले दागने शुरू कर दिये गये।[3]

इस घटना ने इलाहाबाद में बगावत का रूप ले लिया। हालात काबू में लाने के लिए दो सेनाधिकारी और सहायता के लिए देशी पलटन को आदेश मिला, पर सैनिकों ने क्रान्तिकारियों के खिलाफ हथियार उठाने से मना कर दिया और वे उनके साथ हो गये। अलोपीबाग के सैनिकों ने लेफ्टीनेंट अलेक्जेंडर को गोली मार दी, पर लेफ्टीनेंट हावर्ड जान बचाकर किले की ओर भागा। इसके बाद दोनों पलटनों के अधिकतर यूरोपीय अधिकारी मार दिये गये और अफसरों के बंगले जला दिये गये, किन्तु इस घटना से अधिकारियों को और सतर्क कर दिया। ऐसा माना जाता है कि अगर उस समय सिक्ख सैनिक भी आन्दोलन की इस धारा में शामिल हो गये होते तो इलाहाबाद का किला भी क्रान्तिवीरों के कब्जे में आ जाता। वैसे तो अंग्रेजों की रणनीति को देखते हुए बागी भी सजग ही थे और उन्होंने दारागंज और किले के नजदीक की सुरक्षा चौकी पर कब्जा कर लिया। यही नहीं पूरा नगर बगावत की चपेट में आ गया। तीस लाख रुपये का खजाना भी उनके कब्जे में आ गया। बागी नेताओं ने जेल से बन्दियों को मुक्त करा दिया और तार की लाइनें भी काटवी।

7 जून, 1857 को शहर की कोतवाली पर क्रान्ति का झण्डा फहराने लगा। नगर में जुलूस निकाला जाने लगा और आस–पास के गाँवों समेत हर ओर बगावत का बिगुल बज गया। तत्कालीन स्थिति का सर जॉन इस प्रकार वर्णन करते हैं, "इलाहाबाद में न केवल गंगापार बल्कि द्वाबा क्षेत्र की ग्रामीण जनता ने विद्रोह कर दिया। कोई मनुष्य नहीं बचा था जो हमारे खिलाफ न हो।" इलाहाबाद में क्रान्ति की खबर पाने के बाद अंग्रेजों ने 11 जून को कर्नल नील जैसे क्रूर अधिकारी को इस क्रान्ति के दमन के लिए इलाहाबाद रवाना किया। कर्नल नील ने इलाहाबाद किले से मोर्चा संभाला, उसकी सेना काफी बड़ी थी, जिसमें अधिकतर गोरे, सिक्ख और मद्रासी सिपाही थे। 12 जून को नील ने दारागंज के नाव के पुल पर कब्जा किया, जबकि 13 जून को झूँसी में भी क्रान्ति को दबा दिया गया। 15 जून को मुट्ठीगंज और कीडगंज पर अधिकार करने के बाद 17 जून को खूसरोबाग भी अंग्रेजों के हाथ लग गया। 17 जून को ही मजिस्ट्रेट एम०एच० कार्ट ने कोतवाली पर पुनः कब्जा कर लिया। 18 जून का दिन इलाहाबाद ही नहीं भारतीय क्रान्तिकारियों के लिए काले दिन सा रहा, इस दिन छावनी, दरिया बाद, सैदाबाद तथा रसूलपुर में क्रान्तिकारियों को भारी यातनायें दी गयी। इसी दिन इलाहाबाद पर अंग्रेजों का दोबारा अधिकार हो गया। चौक (जी०टी० रोड) पर नीम के पेड़ पर कर्नल नील ने 800 लोगों को फाँसी पर लटका दिया। जो लोग शहर छोड़कर नावों से भाग रहे थे, उनको भी गोली मार दी गयी। आस–पास के गाँवों में विकराल अग्निकाण्ड हुआ। स्वयं जार्ज कैमपवेल ने नील कारनामों की निन्दा करते हुए लिखा है, "इलाहाबाद में नील ने जो कुछ किया वह कत्लेआम से बढ़कर था, ऐसी यातनाएँ भारतवासियों ने कभी किसी को नहीं दी।"[4]

इलाहाबाद के निवासी और जाने–माने इतिहासकार व राजनेता विश्वम्भर नाथ पाण्डेय लिखते हैं, "हर संदिग्ध को गिरफ्तार कर उसे कठोर दण्ड दिया गया। नीला ने जो नरसंहार किया उसके आगे जलियावाला बाग काण्ड भी कम था। केवल तीन घण्टे चालीस मिनट में कोतवाली के पास नीम के पेड़ पर ही 634 लोगों को फाँसी दी गयी। सैनिकों ने जिसपर शक किया उसे गोली से उड़ा दिया गया। चारों तरफ भारी तबाही मची थी। नील क्रान्तिकारियों को गाड़ी में बिठाकर किसी पेड़ के पास ले जाता था और उनकी गर्दन में फाँसी का फन्दा डलवा देता था, फिर गाड़ी हटा दी जाती थी। इलाहाबाद के नर संहार में औरतों, बूढ़े लोगों और बच्चों तक को मारा गया, जिन्हें फाँसी दी गयी, उनकी लाशें कई दिनों तक पेड़ों पर लटकती रही। महान क्रान्तिकारी चन्द्रशेखर आजाद

को समर्पित बाग (कम्पनी बाग) का कूँआ लाशों से पट गया था। समय के थपेड़े ने दुनिया बदल दी है, पर नील के अत्याचारों के गवाह के रूप में एक नीम का पेड़ अभी भी बचा हुआ है।"[5]

अतः कर्नल नील की अमानवीय बर्बरता ने क्रूरता की सारी हदें पार कर दी। सिविल लाइन्स एरिया में आठ गाँव बसे थे, जिसे अंग्रेजों ने पूरी तरह समाप्त कर दिया। कई दिनों तक बैलगाड़ियों पर लाशें ढोई गयीं। लोगों को घरों से निकाल–निकाल कर फाँसी पर चढ़ा दिया गया। इस विषय में कर्नल हैरलाक ने भी लिखा है कि, "इस कृत्य के बाद ही कर्नल नील पर ब्रिटेन में मुकद्मा चलाया गया था।" 1857 में इलाहाबाद में चल रहे जन विद्रोह में एक और क्रान्तिकारी हनुमान पण्डित का नाम आता है। उनसे अंग्रेज सरकार इतना डरती थी कि हनुमान पण्डित को अंग्रेज शैतान कहते थे और उनके जिन्दा या मुर्दा पकड़े जाने पर उस समय 500 रुपये ईनाम रखा गया था। उधर सालों बाद मौलवी लियाकत अली को अंग्रेजों ने मुम्बई में गिरफ्तार कर लिया और मुकद्मा चलाया। बाद में उन्हें काला–पानी भेज दिया गया।

इलाहाबाद के स्वतन्त्रता संग्राम सेनानियों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण नाम मौलवी लियाकत अली है, जिन्होंने इलाहाबाद में क्रान्ति की ज्वाला भड़काई थी। मौलवी लियाकत अली के विद्रोह से अंग्रेजों ने उनपर महारानी एलिजाबेथ और ईस्ट इण्डिया कम्पनी सरकार के विरुद्ध बगावत करने का मुकद्मा चलाया। अपने बहस के दौरान लियाकत अली ने जवाब दिया था। "मैं फाँसी या सजा के डर से झूठ नहीं बोलूँगा। मैंने अंग्रेजों को मारने का कोई भी मौका नहीं गँवाया और जनता को अंग्रेजों के खिलाफ बगावत करने के लिए भी भड़काया भी, किन्तु मैंने निर्दोष सैकड़ों अंग्रेजों महिलाओं तथा बच्चों की जानें भी बचायी हैं, जिसमें मिसेज बैनेट का भी परिवार है।"[6] मुकद्में में 24 जुलाई, 1872 को सेसन जज द्वारा उन्हें आजीवन कारावास की सजा दी गयी और उन्हें अंडमान में फाँसी दी गयी, वहीं उनकी कब्र आज भी विद्यमान है। द्वाबा का यह बीर बहादुर योद्धा हमेशा–हमेशा के लिए स्मरणीय बना रहेगा, और देश उन्हें श्रद्धा–सुमन अर्पित करता रहेगा।

अतः इलाहाबाद में क्रान्ति की ज्वाला अल्पजीवी होने के बाद भी मौलाना लियाकत अली के नेतृत्व में इलाहाबाद के वीरों ने अंग्रेजी हुकूमत का डटकर मुकाबला किया। मौलाना लियाकत अली को जब गोरों की तैयारियों की पुख्ता खबर लगी तो उन्होंने अपने साथियों से विचार–विमर्श कर आगे की लड़ाई की तैयारी को परिजनों व करीबी सहयोगियों के साथ कानपुर में नाना सहेब के पास चले गये। अंग्रेजों ने उनकी गिरफ्तारी पर पाँच हजार रुपये ईनाम रखा, लेकिन मौलाना दक्षिण होते हुए मुंबई पहुँच गये, जहाँ उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और अंडमान की जेल में भेज दिया गया। उन्हें आजीवन कारावास की सजा मिली थी और जीवन के अन्तिम दिन उन्होंने वहीं बिताये और उनकी मौत भी वहीं हुई। उनकी मजार कालापानी में ही बनी है। मौलाना लियाकत अली के परिजनों के कुछ लोग आज भी महगाँव में रहते हैं। अतः मौलाना लियाकत अली असाधारण योग्यता व क्षमता वाले व्यक्ति थे, उन्होंने मजबूत व्यूह रचना के साथ इलाहाबाद किले पर कब्जा करने का प्रयास किया था, किन्तु सफल न हो सके। मुगल सम्राट अकबर ने 1583 में संगम के तट पर इस किले का निर्माण कराया, यही किला 1857 में अंग्रेजों का मजबूत ठिकाना साबित हुआ। यह किला 1798 में अवध के नवाब ने अंग्रेजों को सौंपा था। अंग्रेजों ने किले को अपना शस्त्रागार और सैनिक केन्द्र बनाया। अगर यह किला बागियों के हाथ में आ गया होता तो शायद इलाहाबाद ही नहीं अवध की क्रान्ति का एक नया इतिहास लिखा जाता, किन्तु होना तो कुछ और ही था।

सन्दर्भ–सूची

1. त्रिपाठी, डॉ० राजेन्द्र 'रसराज'–संस्कृत ग्रन्थों में कौशाम्बी : अतीत एवं वर्तमान, टी० बालाजी पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद संस्करण–2017, पृ. 202
2. वही, पृ. 204
3. पाण्डे, बी०एन०, इलाहाबाद : रेट्रोस्पेक्ट एण्ड प्रॉस्पेक्ट, पृ. 21–22
4. इलाहाबाद डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, 1909, वाल्यूम, xxiii, पृ. 183
5. 1857 जनक्रान्ति ब्लाग, लेख–अरविन्द कुमार सिंह, 24 अगस्त 2008
6. वही।

* * * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908
History : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 318-323
General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

पूर्व मध्यकालीन उत्तर भारत में भू-स्वामित्व का स्वरूप : बिहार व बंगाल के विशेष संदर्भ में

*बृजेश यादव**

प्राचीन व मध्यकालीन भारत में भू–स्वामित्व सम्बन्धी अधिकारों के प्रश्न पर विद्वानों में मतैक्य का सदैव अभाव देखने को मिला है। कृषि योग्य भूमि के स्वामित्व के विषय में विद्वानों में तीन मत है। कुछ विद्वान कहते हैं कि प्रत्येक भूमिखण्ड का स्वामी वह किसान होता था जो उस पर खेती करता था अर्थात् वैयक्तिक स्वामित्व का समर्थन करते हैं। कुछ अन्य विद्वानों का मानना है कि खेतों के स्वामी ग्राम के सभी निवासी होते थे अर्थात् सामुदायिक स्वामित्व का समर्थन करते हैं। जबकि विद्वानों के एक वर्ग का मानना है कि भारत में सदा से ही भूमि का स्वामी वह शासक होता था जो उस पर राज्य करता था अर्थात् राजकीय भू–स्वामित्व का समर्थन करते हैं।

राजकीय भू–स्वामित्व का समर्थन करने वाले विद्वानों में साम्राज्यवादी इतिहासकारों का वर्ग सम्मिलित है, जो अंग्रेजों द्वारा बनाये गये भूमि सम्बन्धी कानूनों को सही ठहराने के लिए ऐसे विचारों का समर्थन कर रहे थे जिससे उनके साम्राज्यवादी हितों की रक्षा हो सके। इस सिद्धान्त के समर्थन में विन्सेंट स्मिथ ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया' में लिखा कि ''भारत के देशी कानून में खेती के जमीन को हमेशा राजा की सम्पत्ति माना जाता रहा है।''[1] इस साम्राज्यवादी दृष्टिकोण की प्रतिक्रिया स्वरूप राष्ट्रवादी इतिहास लेखन की शुरूआत हुई जिसमें काशी प्रसाद जायसवाल तथा पी0एन0 बनर्जी जैसे विद्वान अग्रणी थे। काशी प्रसाद जायसवाल[2] ने अपनी प्रसिद्ध कृति 'हिन्दू पॉलिटी' तथा पी0एन0 बनर्जी[3] ने अपनी पुस्तक 'पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन एन्सियंट इण्डिया' में साम्राज्यवादी अवधारणा, जिनका मानना था कि प्राचीन भारत में सम्पूर्ण भूमि पर राजा का स्वामित्व था, का खण्डन किया और भूमि पर वैयक्तिक स्वामित्व को सिद्ध करने का प्रयास किया। कुछ विद्वानों यथा आर0सी0 मजूमदार आदि सामूहिक भू–स्वामित्व का भी समर्थन करते हैं। परन्तु मूल विवाद राजकीय और वैयक्तिक भू–स्वामित्व के मध्य का है। क्योंकि सामुदायिक भू–स्वामित्व के सम्बन्ध में यह संकल्पना थी कि यह उस सयम विद्यमान था जब राजा का अधिकार नहीं था और कबीलाई सामूहिक जीवन था।

पूर्व मध्यकाल में भू–स्वामित्व सम्बन्धी पूर्ववर्ती नियमों एवं परम्पराओं में पर्याप्त बदलाव आ गया था। ग्रामीण अर्थव्यवस्था के महत्व में वृद्धि हुयी और कृषि उत्पादन ही राजाओं व सामंतों की शक्ति के आधार तथा सर्वप्रमुख संसाधन हो गये। पूर्व मध्यकालीन बिहार तथा बंगाल के अभिलेखों तथा विधिक ग्रन्थों आदि से इस क्षेत्र के भूमि व्यवस्था पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। प्रारम्भ में भूमि पर पूरे कबीले का स्वामित्व समझा जाता था। रामशरण शर्मा का मत है कि भूमिखण्ड का स्वामी ऋग्वैदिक काल में व्यक्ति विशेष न होकर पूरा कबीला होता था। इसलिए केवल विश् (वंश) की अनुमति से ही कोई व्यक्ति भूमिखण्ड को अन्य को दे सकता था। इसका अर्थ यह है कि उस समय तक भूमि का स्वामी विश् होती थी न कि व्यक्ति विशेष। जिस प्रदेश में बौद्ध धर्म का उदय हुआ वहाँ ग्राम के समुदाय कृषि योग्य खेती के स्वामी माने जाते थे।[4] स्ट्रेबो के अनुसार संभवतः पंजाब में कुछ कबीलों के परिवार मिलकर खेती करते थे। जब फसल कट जाती थी तो प्रत्येक अपने वर्ष भर के निर्वाह के लिये कुछ अनाज ले जाता था। परन्तु अर्थशास्त्र में सामुदायिक स्वामित्व का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है।

* *शोध छात्र, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद*

बंगाल के पाँचवीं तथा छठीं शती ईस्वी के ताम्र–लेखों से ज्ञात होता है कि जब कोई व्यक्ति भूमिखण्ड खरीद कर दान में देना चाहता था तो उसे प्रार्थना पत्र देना ही होता था साथ ही ग्राम वृद्धों को भी प्रार्थना पत्र देना होता था। एक अभिलेख में लिखा है कि बिक्री मूल्य का छठां भाग सरकार को मिलेगा। इसका स्पष्ट अर्थ है कि इस भूमि पर सरकार का स्वामित्व नहीं था। ब्रिकी मूल्य का 5–6 भाग ग्राम सभा को मिलता था जो इस बात का सूचक है कि ग्राम सभा इन भूमि खण्डों की स्वामिनी होती थी। आर0जी0 बसाक के अनुसार भूमि का स्वामी गाँव होता। यदि राजा गाँव का स्वामी होता तो उसे दान देने के लिए प्रजा के प्रतिनिधियों की अनुमति लेने की क्या आवश्यकता थी। बसाक के अनुसार[5] बिक्री का 5–6 भाग ग्राम सभा को मिलता था। आर0सी0 मजूमदार और ए0एस0 अल्तेकर बसाक के मत का समर्थन करते हैं। आर0सी0 मजूमदार के अनुसार ग्राम सभाएँ गाँव की भूमि की वास्तविक स्वामिनी होती थी और वे ही गाँव की ओर से पूरा राजस्व सरकार को देने के लिए उत्तरदायी होती थी। यदि किसी भूमि खण्ड का स्वामी अपना कर नहीं देता था तो वह भूमि खण्ड ग्राम सभा का हो जाता था। वह उस भूमि को बेचकर सरकार का भू–राजस्व चुका देती थी।[6] अल्तेकर के अनुसार भूमि खण्डों के स्वामी व्यक्ति विशेष या परिवार होते थे। राज्य गाँव की कृषि योग्य भूमि का स्वामी नहीं होता था।[7] प्रारम्भ में भूमि पर पूरे कबीले का स्वामित्व समझा जाता था। रामारण शर्मा का मत है कि ऋग्वैदिक काल के प्रारम्भ में कबीले के नेता को राजा कहा जाता था। इसलिए उसके लिए 'गोप' और 'गोपति' शब्द प्रयुक्त हुए हैं उसे भूपति नहीं कहा गया है।

कुछ विद्वानों ने भूमि पर व्यक्तिगत स्वामित्व का समर्थन करते हैं जिसमें राष्ट्रवादी इतिहासकार विशेष रूप से सम्मिलित हैं जैसे–काशी प्रसाद जायसवाल[8] तथा पी0एन0 बनर्जी[9] आदि। कुछ अभिलेखों में भूमि पर व्यक्तिगत स्वामित्व के प्रमाण भी मिलते हैं। अनेक अभिलेखों में राजा द्वारा किसी व्यक्ति से भूमि खरीदने का उल्लेख मिलता है। उड़ीसा राज्य के एक दान पत्र में हरितवर्मा द्वारा एक अग्रहण के स्वामी से एक भू–खण्ड खरीदकर दान देने का उल्लेख है। अभिलेख में उल्लिखित क्षेत्रपति, क्षेत्रस, उर्वरस आदि शब्द व्यक्तिगत स्वामित्व के ही सूचक है। रामशरण शर्मा का मानना है कि पूर्व मध्यकाल तक भूमि का जितना कुछ सामुदायिक अधिकार शेष रह गया, उसकी जड़ें राजकीय तथा व्यक्तिगत अधिकारों के विकास के कारण खोखली पड़ गयी। राजकीय तथा व्यक्तिगत अधिकारों के विकास की प्रक्रिया की साक्षी इस काल के धर्मशास्त्र और भूमि अनुदान पत्र दोनों हैं। कात्यायन के अनुसार राजा भू–स्वामी है और इसलिए उपज की एक चौथाई का अधिकार है।[10] फिर भी वह स्वीकार करता है कि चूँकि मनुश्य भूमि पर रहते हैं, इसलिए उन्हें उनका स्वामी कहा जाता है। इस प्रकार उसने भूमि के राजकीय स्वामित्व के अपने सिद्धान्त में सामान्य जनों के स्वामित्व के लिए भी गुंजाइश छोड़ दी है।

पूर्व मध्यकालीन बिहार व बंगाल में भूमि पर राजकीय स्वामित्व के समर्थन में भी पर्याप्त स्रोत मिलते हैं। मैती का मानना है कि अभिलेखों में राजा के दानाज्ञा के बाद भी सीमा का भय होता था। यहाँ राज्य क्षेत्र का उल्लेख राजकीय स्वामित्व का बोधक है। कुछ अभिलेखों में राजा की अपनी भूमि तथा दूसरों द्वारा उपयोग में लायी गयी भूमि के दान का वर्णन है, जिसमें भूमि के दान ग्रहीता को उसको विक्रय करने, बंधक रखने अथवा दान देने का अधिकार है। रामशरण शर्मा[11] का विचार है कि जो लोग प्राचीन भारत में भूमि पर राजकीय स्वामित्व का अस्तित्व सिद्ध करने की कोशिश करते हैं, वे अपनी स्थापना के पक्ष में दिए गए प्रमाणों को प्राचीन काल और मध्यकाल दोनों पर लागू कर देते हैं। इस बात की ओर इनका ध्यान ही नहीं जाता है कि जिन ग्रन्थों में भूमि सम्बन्धी राजकीय अधिकारों पर बल दिया गया है, उनमें से अधिकांश पूर्व मध्यकाल की कृतियाँ हैं। राजकीय स्वामित्व का सिद्धान्त स्पष्ट शब्दों में सबसे पहले उत्तर गुप्तकाल के स्मृतिकार कात्यायन ने प्रतिपादित किया। उसके अनुसार राजा भू–स्वामी है और इसलिए उपज की एक चौथाई का अधिकारी है।[12] पूर्व मध्यकाल के अनुदान पत्रों से यह स्पष्ट है कि राजा का गाँव की भूमि पर कई विशेषाधिकार होते थे। दान देते समय राजा इन विशेषाधिकारों को दान पाने वालों को दे देता था जैसे कि पाल और सेन राजाओं के अनुदान पत्रों में घास, चारागाह, गाँव के पेड़, तालाब, नमक आदि का उल्लेख है। इन पर राजा का स्वामित्व था अनुदान देने के बाद इन पर दान पाने वाले का अधिकार हो गया। रामशरण शर्मा[13] का मत है कि पाँचवीं शताब्दी से सामान्य जन अपनी जमीन काश्तकारों को पट्टे पर दे सकते थे, फिर भी राजा भूमि पर अपना सर्वोच्च अधिकार का प्रयोग कर सकता था। गुप्तकाल और गुप्तोत्तर काल में चीनी यात्री फाहियान और ह्वेनसांग ने अपने–अपने विवरणों में लिखा है कि भूमि राजा की थी।[14]

संभव है कि विभिन्न राजाओं के अधीन वास्तविक स्थिति में अन्तर पड़ता रहा हो, किन्तु इसमें संदेह नहीं है कि पूर्व–मध्यकाल में भूमि पर राजकीय स्वामित्व का सैद्धान्तिक पक्ष प्रबल था। नारद स्मृति के टीकाकार असहाय द्वारा नारद स्मृति में आये 'नरेन्द्र धन' शब्द की व्याख्या से यह लगता है कि कृषकों का अपनी जमीनों पर स्वामित्व दुर्बल पड़ गया था। मेधातिथि ने भी राजा के भूस्वामित्व को स्वीकार किया है तथापि कुछ श्लोकों की टीकाओं में उन्होंने कृषक के स्वामित्व के भी पक्ष में अपना मत व्यक्त किया है। लक्ष्मीधर ने नारदस्मृति के एक श्लोक को उद्धृत करते हुए राजा के भूस्वामित्व का समर्थन किया है। सिद्धर्षि सूरि तथा देवण्णभट्ट ने राजा को भूमि का सर्वोच्च स्वामी बताया है। शुक्र ने सभी वनों तथा मीताक्षरा में गोचर को राजा माना गया है। इसके व्याख्याकारों ने कहा है कि पार्क, रत्न, औषधि जो किसी को भी उसके जीवन काल तक के लिए दी गयी हो उसे भी राजा की आज्ञा के बिना, विक्रय, दान तथा बंधक नहीं रखा जा सकता है। आसाम के एक अभिलेख में चारागाह और खानों को राजा के अधिकार में बताया गया है।

पूर्व मध्यकाल में एक और महत्वपूर्ण आर्थिक परिवर्तन भूमिदान तथा उसे उत्पन्न सामन्ती व्यवस्था के रूप में देखने को मिलता है जिसके कारण भू–धारण पद्धति में एक नयी प्रकार के व्यवस्था का प्रारम्भ होता है। सामन्तवाद का व्यापक प्रभाव बिहार व बंगाल में देखने को मिलता है। इस काल के शासकों ने धार्मिक संस्थाओं एवं ब्राह्मणों को भूमि और ग्राम दान दिया। कुछ अभिलेखों से ज्ञात होता है कि गाँवों के साथ उन गाँवों के किसानों और कारीगरों को भी सामूहिक रूप से अनुदान ग्राहियों को दे दिया गया। दान प्राप्त करने वाले व्यक्ति या संस्थायें गाँव के चारागाह, पेड़, झील और नमक के खानों के स्वामी हो जाते थे। इस प्रकार इस काल के कृषि योग्य भूमि पर राजा और किसान के बीच सामन्तों का अधिकार हो गया। बंगाल में पालों और सेनों के शासन काल में ग्राम अनुदान देने का अभिलेखीय साक्ष्य मिलता है। पाल शासक विग्रह पाल तृतीय व मदनपाल ने ब्राह्मणों को ग्राम दान दिए थे। ईश्वरघोष ने, जो शायद विग्रहपाल तृतीय का सामंत था। दक्षिण बंगाल में चंदावर के किसी ब्राह्मण को एक गाँव दिया। एक अन्य पाल सामन्त भोजवर्मन ने पूर्वी बंगाल में 11वीं शदी के अन्त में अथवा 12वीं शदी के प्रारम्भ में किसी समय एक पुरोहित को एक भू–क्षेत्र अनुदान स्वरूप दिया। बंगाल के सेन शासकों ने धार्मिक प्रयोजनों से ग्राम दान करते रहे। एक अनुदान पत्र में लक्ष्मण सेन ने उत्तरी बंगाल में एक गाँव दान दिया और साथ ही चार गाँवों में जमीन के कुछ टुकड़े भी दिए।

बिहार में पुरोहित और मंदिरों को पहले की ही तरह खूब ग्राम अनुदान मिलते रहे, यद्यपि अभी तक मिथिला के कर्णातों ने नालन्दा व विक्रमशिला जैसे मठों और बिहारों के अनेकानेक गाँवों का उपभोग करते रहे। 11वीं व 12वीं सदियों के भूमि अनुदानों में ग्रहिताओं को जमीन और उसकी अन्य सम्पदायें स्वायत्त करने में और भी सहायता मिली। अब ग्रहिताओं को दिए गए अधिकारों और रियायतों की सीमायें बहुत बढ़ गयी और गाँव के प्रायः सारे साधन–सम्पदा पर उनको अधिकार दिया गया। गोचर भूमि, आम और मधूक के वृक्ष, जलाशय, वन प्रदेश, परती जमीन, उपजाऊ जमीन आदि तो भोगी को पूर्ववत् सौंप ही दी जाती थी लेकिन अब इनमें कुछ और भी चीजें जुड़ गई थी। उदाहरण के लिये पूर्वी बंगाल के भूमि–अनुदानों में सुपारी और नारियल के पेड़ लगभग निरपवाद रूप से ही ग्रहिताओं को दिये जाते थे।

रामशरण शर्मा[15] का मानना है कि ईस्वी सन् की प्रारम्भिक सदियों से लेकर बारहवीं शताब्दी तक भूमिस्वत्व पर प्रकाश डालने वाले धर्मशास्त्रों में जो सामग्री मिलती है, उसमें सामुदायिक अधिकारों का हल्का सा आभास मात्र है। किन्तु राजकीय और वैयक्तिक अधिकारों को उसमें उत्तरोत्तर अधिकाधिक समर्थन दिया गया है। यद्यपि ये दोनों प्रकार के अधिकार परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं। वैयक्तिक भूस्वामित्व के सिद्धान्त के कारण अनुदानभोगी किसानों के हाथ पट्टे पर अपनी जमीन लगा सके और राजकीय भूस्वामित्व के सिद्धान्त के कारण राजा लोग पुरोहितों और मंदिरों, सामंतों और राज्याधिकारियों को सेवा के बदले अनुदान में भूमि दे सके।

अतः भूमि पर स्पष्ट रूप से राजा और व्यक्ति दोनों का अधिकार होता था। राजा सर्वाधिकारी होने के अधिकार के कारण तथा व्यक्ति भू–स्वामित्व होने के कारण भूमि पर अधिकार रखते थे।

वनों को काटकर भूमि को कृषि योग्य बनाने का और जोतों का विस्तार कर लेने का उल्लेख न केवल साहित्य में बल्कि अभिलेखों में भी मिलता है। अधिकतर जोतें तो संभवतः छोटी होती थी, जिनका काम अकेले या पुत्रों

की सहायता से सँभाला जाता था। परन्तु ऐसे बड़े–बड़े फर्मों का भी उल्लेख है, जिनका प्रबंध ब्राह्मण संभालते थे। कृषि का कार्य सामाजिक दृष्टि से न तो प्रतिष्ठा का था और न ही कलंक का। हांलाकि धर्मशास्त्रों में और बौद्ध ग्रंथों में भी कृषि और व्यापार के दो पेशे वैश्य वर्ग के लिए रखे गए थे। इन धंधों को करने वाले ब्राह्मण शायद अपनी स्थिति से नीचे गिर गए हों परन्तु ब्राह्मण किसान प्राचीन भारत के आर्थिक जीवन में एक वास्तविक तथ्य था। वह बहुधा अन्य धंधे भी जैसे कि गाय और बकरी पालना, व्यापार यहाँ तक कि लकड़ी फाड़ने का काम भी करता था। राज्य कृषि को प्रोत्साहन देता था और स्मृतियों ने कृषि उपकरणों बांधो, मूलों, फलों और फूलों को नष्ट करने या किसी प्रकार नुकसान पहुँचाने के लिए एक सौ पण के भारी जुर्माने का विधान किया है। किंतु नालियों में जल के प्रवाह में बाधा डालने के लिए अपेक्षाकृत कम जुर्माना लगाया जाता था। अपने खेतों की उपेक्षा करने वाले और उन्हें ऊसर छोड़ देने वाले किसानों पर भी जुर्माना लगाया जाता था। इसके विपरीत जो व्यक्ति बंजर भूमि को कृषि योग्य बना लेता था या किसी ऐसे खेत पर खेती करता था, जिस पर उसका स्वामी खेती नहीं कर सकता था, उसे सात या आठ वर्ष तक उस खेत की ऊपज का एक अष्टमांश से भी कम भाग निकाल देने के बाद अपने पास रखने का हक होता था।[16] बिहार तथा बंगाल की समृद्धि का एक अन्य कारण फसलोत्पादन के लिए पर्याप्त मात्रा में उपजाऊ भूमि की उपलब्धता थी। बंगाल तथा बिहार की अधिकांश कृषि योग्य भूमि नदियों द्वारा बहाकर लाई गयी बारीक जलोढ़ मृदा से बनी थी। यह सस्योत्पादन के लिए सर्वोत्तम थी।

बैग्राम ताम्रपत्र[17] से ज्ञात होता है कि पुस्तपाल नामक कर्मचारी का यह उत्तरदायित्व होता था कि वह सुनिश्चित करे कि उसके क्षेत्र में कहाँ पर राजकीय स्वामित्व के अन्तर्गत कितनी भूमि परती या बंजर पड़ी हुयी है। इस प्रकार की बंजर भूमि को समुदय–वाह्य, आद्यस्तम्ब खिल, अकिंचित्प्रतिकर कहा गया है। ऐसी भूमि को राज्य बिना किसी प्रकार का कर लेकर बेंच देता था। इससे राज्य को कोई हानि नहीं होती थी, क्योंकि इस प्रकार की भूमि अनुत्पादक होने के कारण राज्य के लिए किसी प्रकार का लाभ नहीं दे सकती। किंतु इस प्रकार की बंजर भूमि को बिना कर लिए बेचने में भी राज्य का लाभ होता था क्योंकि इससे जन सन्निवेश का भी विस्तार होता था। और भूमि खरीदने वाले अपने परिश्रम से उसे उत्पादन योग्य बना सकते थे। इस प्रकार की भूमि पर स्वामित्व स्थापित करने वाले का कोई विरोधी भी नहीं होता था। बैग्राम ताम्रपत्र[18] से ज्ञात होता है कि उस समय बंगाल में भूमि की कीमत दो दीनार कुल्यवाप थी जो कि बहुत कम थी। गुप्त कालीन लेखों मे हम यह पाते हैं कि निरन्तर एक ही तरह की और एक ही क्षेत्रफल के भूमीखण्ड की कीमत क्रमशः 2, 2 1/2, 3, 3 1/3 व 4 दीनार तक मिलता है। यह स्थिति इस बात को प्रदर्शित करती है कि धीरे–धीरे इन स्वर्ण सिक्कों की शुद्ध धातु में मिलावट का प्रतिशत ज्यादा होता गया जिसके कारण क्रमशः मुद्राओं की कीमत कम होती गयी। यह भी संभव है कि एक ही समय में अलग–अलग भूमि की कीमत आज के समान उस समय भी अलग–अलग रही हो। इस संबंध में दो अन्य तथ्य भी उल्लेखनीय है– प्रथम, अनिवासीत भूमि की कीमत कम थी किन्तु पहले से आबाद भूमि की कीमत अपेक्षाकृत अधिक थी; द्वितीय, समय के अन्तराल के साथ–साथ आबादी में वृद्धि होती गयी, जिसके परिणामस्वरूप भूमि की कीमत भी बढ़ती गयी।

बैग्राम ताम्रपत्र,[19] पहाड़पुर ताम्रपत्र,[20] कुलाई कुरै ताम्रपत्र[21] आदि में भूमि की कीमत दो दीनार प्रतिकुल्यवाप थी किन्तु दामोदारपुर ताम्रपत्र[22] में भूमि की कीमत का उल्लेख तीन दीनार प्रतिकुल्यवाप हो गयी। छठी शताब्दी ई0 के मध्य में बंगलादेश से ही प्राप्त धर्मादित्य के शासन काल के फरीदपुर ताम्रपत्र[23] में भूमि की कीमत बढ़ कर चार दीनार प्रति कुल्यवाव हो गयी। शासकों ने जंगली एवं जन शून्य भूमि को कृषि योग्य भूमि में परिवर्तित करने तथा जन सन्निवेश स्थापित करने के उद्देश्य से इसे अनुदान के रूप में ब्राह्मणों को देना आरम्भ किया।[24] इसका उदाहरण लोकनाथ के टिप्पेरा ताम्रपत्र (असम) से प्राप्त होता है। इस अनुदान पत्र से ज्ञात होता है कि लोकनाथ ने एक सौ से भी अधिक ब्राह्मणों को जंगली क्षेत्र में भूमि का अनुदान दिया था।

भारतीय अभिलेखों में गुप्त युग से ही खेतों के माप का वर्णन स्थान–स्थान पर मिलता है। भूमि को दान देते समय दानकर्ता के लिए क्षेत्र की सीमा तथा उसके माप का स्पष्ट उल्लेख करना नितान्त आवश्यक था।[25] जिस भू–भाग को दानग्राही स्वीकार करता था उसी क्षेत्रफल के 'कर' ग्रहण करता था तथा आवश्यकता पड़ने पर उसे बंधक रखता था। यही कारण है कि खेत को माप कर ही दान दिया जाता था। गुप्त युग से बारहवीं शती तक

के ताम्रपत्रों में माप का दो रूपों में उल्लेख मिलता है। पहली श्रेणी में खेत की लम्बाई चौड़ाई नापने के साधन का नाम उल्लिखित है जो लेखों में विभिन्न नाम से उत्कीर्ण हैं जैसे–*हल, पादावर्त, हाथ, निवर्तन, नल या नालक* आदि। द्वितीय श्रेणी में पैमाइश के उस साधन के नाम हैं जो बीज बोने के माप से वर्णित किए गए हैं। जैसे– आढ़क, द्रोंण, माणि, कुल्यवाप आदि। इन मापों का उपयोग कर भूमि दान दी जाती थी।

हल शब्द से प्रकट होता है कि एक हल से जितनी भूमि जोत में रखी जाए उस माप का नाम हल था। उत्तरी तथा दक्षिणी भारत के अधिकतर लेखों में हल का नाम मिलता है। पूर्व मध्यकालीन एक लेख में उल्लेख मिलता है कि पाँच हल से जोतने योग्य भूमि को छोड़कर खेत का शेष भाग दान दिया जाए। दूसरे माप को पदावर्त कहते थे जिसका वर्णन बलभी दनपत्रों में मिलता है। एक पादावर्त भूमि एक वर्गपाद (लगभग 9 इंच) के बराबर मानी गयी है। चन्देल तथा गहड़वाल लेखों में हाथ का नाम क्षेत्र माप के लिए प्रयुक्त किया गया है। निवर्तन भी क्षेत्र माप के लिए प्रयुक्त होता था, जिसका उल्लेख प्रतिहार तथा राष्ट्रकूट प्रशास्तियों में मिलता है।

क्षेत्रफल माप से सर्वथा भिन्न खेतों के नापने का वर्णन बीज माप से भी किया गया है। गुप्त प्रशास्तियों में कुलवाप शब्द का अधिक प्रयोग मिलता है। दानपत्र, क्रय तथा विक्रय के प्रसंग में यही शब्द बार–बार प्रयुक्त है। nkeksnj xbq] cSxzke] Qjhmiqj rFkk igkM+iqj d sy§kksa e; g 'kCn {ks=eki d sfy, mfYyf[kr gS[26] कुल्यवाप शब्द के दो खण्ड हैं, कुल्य + वाप (कुल्य = टोकरी, वाप = बोना) कुल्य की समता एक टोकरी से की जाए तो इसका अर्थ होगा कि एक टोकरी बीज बोने योग्य भूमि। पांचवी शती के लेखों में द्रोण शब्द का प्रयोग भी उसी माप के लिए मिलता है, जो कि कुल्यवाप से छोटा था। आठ द्रोण एक कुल्य बीज के बराबर था। इसीलिए द्रोण मात्र बीज बोने योग्य भूमि को द्रोणवाप कहा जाता था। वैन्यगुप्त के गुर्णधर ताम्रपत्र लेख में तथा सेनवंशी राजा बल्लालसेन के नईहटी लेख में द्रोण के साथ पाटक शब्द भी माप के लिए उल्लिखित हैं[27]–

यत्रैक क्षेत्रखण्डे नव द्रोण वाप अधिक
सप्त पाटक परिमाणे सीमा लिङगानि

इससे स्पष्ट होता है कि पाटक द्रोण से बड़ा क्षेत्र स्वीकृत था। समस्त प्रशस्तियों का परीक्षण यह बतलाता है कि–

8 द्रोण = 1 कुल्यवाप

5 कुल्यवाप = 1 पाटक = (40 द्रोणवाप)

यह माप प्रमाणिक समझा गया है। अनुमानतः एक कुल्यवाप सोलह मन अन्न का माप था, जिसके द्वारा चौदह बीघा खेत बोया जाता था। पार्जिटर ने बिना किसी प्रमाण के 1 कुल्यवाप भूमि को एक एकड़ (3 बीघा) माना है। नईहटी ताम्रपत्र में आढ़क माप का भी उल्लेख मिलता है जो द्रोण से भी छोटा था और चार आढ़वाप एक द्रोणवाप भूमि के क्षेत्रफल के बराबर था।[28] आढ़, द्रोण, कुल्य तथा पाटक बीज के माप हुए जिनसे जितनी भूमि बोई जा सके उसे क्षेत्रमाप के अर्थ में व्यक्त किया गया है। बंगाल में 1 आढ़वाप डेढ़ एकड़ भूमि समझी जाती थी।[29]

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि पूर्व मध्यकालीन उत्तर भारत में भू–स्वामित्व का व्यापक स्वरूप देखने को मिलता है जिसमें तीन पद्धतियां–वैयक्तिक भू–स्वामित्व , सामुदायिक भू–स्वामित्व व राजकीय भू–स्वामित्व प्रमुख थी।

सन्दर्भ–सूची

1. अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ. 123
2. हिन्दू पॉलिटी, द्वितीय संस्कर, पृ. 343–51
3. पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन एंशियएंट इण्डिया, पृ. 179
4. रिज डेविड्स, बुद्धिस्ट इण्डिया, अध्याय 3
5. आशु0 मु0 सि0 जु0 जिल्द 3, भाग 2, पृ 386–87

6. कारपोरेट लाइफ, पृ. 186
7. वाकाटक गुप्त एज, पृ. 333
8. हिन्दू पॉलिटी, द्वितीय संस्करण, पृ. 343–51
9. पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन एंशियएंट इण्डिया, पृ. 179
10. कात्यायन स्मृति, श्लोक 16
11. भारतीय सामंतवाद, प्रथम संस्करण, पृ. 125
12. कात्यायन स्मृति, श्लोक 16
13. भारतीय सामंतवाद, प्रथम संस्करण, पृ. 126
14. वही, पृ. 127
15. वही, पृ. 133
16. काणे, पी0वी0, हिस्ट्री ऑफ धर्मषास्त्र, भाग 1, अध्याय 15, पृ. 315
17. सरकार, डी0सी0, सेलेक्ट इंसक्रिप्षंस, पृ. 355, संख्या 41
18. वही, पृ. 357
19. वही, पृ. 358, पाद टिप्पणी 1
20. वही, पृ. 288, पाद टिप्पणी 9
21. वही, पृ. 293
22. वही, संख्या 41, 42, 40ए, 39
23. वही, संख्या 43, 44, 45
24. शर्मा, आर0एस0, प्रारंभिक भारत का आर्थिक और समाािजिक इतिहास, पृ. 258
25. मैती, एस0के0, इकॉनामिक लाइफ इन नार्दर्न इण्डिया इन द गुप्त पीरियड, पृ. 56–57
26. एपिग्राफिका इण्डिका भाग 20, पष0 81 व भाग 21, पृ. 61
27. वही, भाग 14, पृ. 157
28. वही, जिल्द 16, पृ. 112
29. वही, जिल्द 14, पृ. 175

* * * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

History : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 324-326

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

अलाउद्दीन के राजस्व सुधार का अवलोकन

*मधु कुमारी**

सुल्तान बनने के पश्चात अलाउद्दीन सिकन्दर की तरह विश्व विजेता बनना चाहता था उसने द्वितीय सिकन्दर की उपाधि धारण की थी जिसके लिए एक सुदृढ़ विशाल सेना की आवश्यकता थी और विशाल सेना के लिए धन की आवश्यकता थी, अपनी आय के वृद्धि करने के लिए अलाउद्दीन खिलजी ने राजस्व व्यवस्था में सुधार करने का निश्चय किया, क्योंकि बरनी का यह कथन कि अलाउद्दीन खिलजी के पास विशाल सेना थी और दक्षिण से उसे लूट में जो धन प्राप्त हुआ वह भी शीघ्र ही समाप्त हो जाता। वह अपने सैनिकों को नगद वेतन देता था।

दिल्ली सल्तनत के मुख्य कार्य थे देश को एक एकीकृत प्रशासन के अन्तर्गत लाने के लिए स्वतंत्र रियासतों को विजित करना, विदेशी आक्रमण से देश की रक्षा करना तथा राजस्व एकत्र करना। विशाल सेना के व्यय के लिए एक ठोस वित्त व्यवस्था आवश्यक थी। अलाउद्दीन ने इन सब पहलुओं पर विचार किया तथा राजस्व के क्षेत्र में तमाम सुधार किये।

डॉ0 के0एस0 लाल ने लिखा है कि ''कुतुबुद्दीन ऐबक से लेकर जलालुद्दीन खिलजी तक उसके पूर्वाधिकारियों के पास या तो समय नहीं था या प्रशासन की इस जटिल शाखा में क्रियात्मक कार्य करने की योग्यता नहीं थी। उन्होंने तत्कालीन शासन तन्त्र का ही प्रयोग किया था।[1] **मिनहाज–उस–सिराज तथा जियाउद्दीन बरनी** का मौन रहना भी यही इंगित करता है।

अलाउद्दीन का शासन प्रारम्भ होते समय विद्यमान भू–राजस्व के निर्धारण और एकत्रीकरण की पद्धति संक्षेप में इस प्रकार रखी जा सकती है। खालसा भूमि सीधे दीवान–ए–वजारत के अन्तर्गत थी। आमिल, कारकुन आदि अधीनस्थ कर्मचारियों द्वारा राजस्व एकत्र किया जाता था। प्रान्तपति मुक्ति कहलाते थे। ये राजस्व एकत्र करते थे। वेतन काटकर शेष धनराशि केन्द्रीय कोषागार में जमा करते थे। अपनी उपज का कुछ अंष किसान कर के रूप में शासक को प्रदान करता था। यह अंश उपज का एक तिहाई होता था। इस पद्धति को बटाई कहा जाता थां यह रकम चौधरियों और खूतों के द्वारा एकत्र की जाती थी। राजस्व वयवस्था में सुधार के लिए अलाउद्दीन खिलजी द्वारा निम्न कार्य किया गया।

भूमि अनुदानों का अन्त–अलाउद्दीन का पहला कदम उस सारी भूमि को वापस लेना था जो अमीर वर्ग, शासकीय कर्मचारियों, विद्वानों और धर्मशास्त्रियों के पास राज्य की ओर से दी गयी भेंट, अनुदान या पुरस्कार के रूप में थी। अमीरों, विद्वानों और धर्मशास्त्रियों को भूमि अनुदान में देने की पुरानी प्रथा थी। ये छोटे इक्ते थे। अनुदान या राजस्व के प्रदेश वंशानुगत नहीं थे, किन्तु साधारणतया वंशजों के स्वत्वों पर हस्तक्षेप नहीं किया जाता था। कालान्तर में ये भूमिस्वामी सम्पन्न, आलसी और दम्भी हो गये थे, कयोंकि इनकी एक निश्चित आय थी जिसके सहारे वे अपना जीवनयापन कर सकते थे। अलाउद्दीन खिलजी ने राज भूमि में इक्ता और जमींदारी प्रथा को समाप्त कर दिया। जागीरों तथा भू सम्पत्तियां को जबरदस्ती जब्त कर लिया, राज दरबार में सेवा कार्य के बदले सेवा कार्य के बदले भूदान की प्रथा को खत्म कर दिया, पेंशन तथा दान की सीमा कुछ ही हजार टके तक सीमित कर दिया।[2] बलबन द्वारा भी ऐसे व्यक्तियों के विरूद्ध बड़ी कार्यवाही करने का आदेश दिया गया था, परन्तु बाद में बन्द कर दिया गया। मलिक और खान अपने अधिकारों से वंचित होने से बच जाते थे।

जैसा कि मोरलैण्ड उचित ही कहते हैं कि बरनी के अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि वास्तव में प्रश्न ग्रामीण और नेताओं परगनों तथा ग्राम के सदस्यों और मुखियों की शक्ति से नष्ट कराया।[3]

** शोध छात्रा, इतिहास विभाग, गाजीपुर पी.जी. कॉलेज, गाजीपुर*

डॉ0 के0एस0 लाल कि सभी भू सम्पत्तियों को जब्त नहीं किया गया होगा, बल्कि उसकी व्यवस्था पर सरकार ने नियंत्रण स्थापित कर लिया।[4] 1301 ई0 में एक आदेश द्वारा उपहार सम्बन्धी भूमि वापस ले ली गयी, जो मिल्क, वक्फ और इनाम के रूप में अमीरों, दरबारियों और भूतपूर्व सैनिकों के पास थी।

कठोर कर प्रणाली—के0एस0 लाल ने कर प्रणाली को एक दमनकारी कर प्रणाली स्वीकार किया है जबकि प्रो0 निजामी तथा अतहर अब्बास रिजवी इसे अस्वीकार करते हैं। अलाउद्दीन ने एक अध्यादेश द्वारा उपज का 50 प्रतिशत भूमि कर वसूल करने का निश्चय किया। कर निर्धारण की विधि भी तय कर दी गयी। अलाउद्दीन पहला भारत का ऐसा शासक था जिसने भूमि की पैमाइश करवायी। प्रो0 निजामी ने लिखा है कि ''भूमि की पैमाइश की सही विधि का ज्ञान नहीं हो पाता है, फिर भी बिस्वा के आधार पर भू—राजस्व एकत्र करने की बात करते हैं।''[5]

सम्पन्न और दरिद्र सबसे उपज का 50 प्रतिशत कर वसूल किया जाता था। उपज का आधा भाग शाही कोषागार में भेज दिया जाता था और शेष भाग में चराई एवं अन्य कर चुकाये जाते थे। इस प्रकार सभी कर देने के बाद किसानों के पास बहुत कम अनाज बच पाता था। बरनी द्वारा किसानों की दशा का घरी पता चलता है। वह कहता है, ''हिन्दू लोग जिनका कृषि पर एकाधिकार था इतने अधिक दरिद्र हो गये कि उनके घरों में सोना या चाँदी का कोई चिह्न भी नहीं छोड़ा गया।'' राजस्व के रूप में कुल उत्पादन की आधी यात्रा निर्धारित की गयी तथा यह नियम बिना किसी पक्षकार के खूतों (भू स्वामियों) तथा कृषकों (बलाहारों) पर लागू किया गया।

कुल उपज का 50 प्रतिशत कर वसूल करना वास्तव में एक कठोर नियम था। हिन्दू शासकों के अन्तर्गत राजस्व उपज का 25 प्रतिशत वसूल किया जाता था। इल्तुतमिश और बलबन के शासनकाल में भू—राजस्व 33 प्रतिशत से अधिक कभी भी वसूल नहीं किया गया। मद्य निषेध और जुएं के अड्डों को बन्द करने से शाही कोषागार की अधिक क्षति हुई। अलाउद्दीन ने इस घाटे की पूर्ति राजस्व की वसूली से पूरी की। राजस्व नकद और अनाज दोनों रूप में लिया जाता था। राजस्व प्राप्ति के लिए अलाउद्दीन खिलजी की व्यवस्था बड़ी दृढ़ थी, सम्भवतः कुछ पुराने खूतों, मुकदमों और चौधरियों को नयी शर्तों के आधार पर राजस्व समाहर्ताओं के रूप में नियुक्त किया गया। राजस्व विषय से सम्बन्धित नियुक्त समाहर्ताओं, खूतों, लिपिकों में यदि किसी प्रकार का भ्रष्टाचार की प्रवृत्ति पायी जाती थी तो उसे तत्काल ही पद्च्युत कर दिया जाता था।[6]

आवास एवं चराई कर—राजस्व के अतिरिक्त अलाउद्दीन ने आवास कर और चराई कर लगाया।[7] गाय, भैंस, बकरी जैसे दूध देने वाले पशुओं पर कर लगाया गया जबकि फरिश्ता का कहना है कि ''दो जोड़ी बैल, एक जोड़ी भैंस, दो गायें और दस बकरियां कर से मुक्त थी।''[8] **प्रो0 निजामी** ने लिखा है कि ''अलाउद्दीन ने कृषि कार्य में आने वाले पशुओं पर कोई कर नहीं लगाया।''

जजिया कर—जजिया कर गैर मुसलमानों से वसूल किया जाता था। मुस्लिम राज्य में रहने वाले गैर मुस्लिम लोगों पर यह कर लगाया जाता था, क्योंकि राज्य उनकी सुरक्षा की व्यवस्था करता था,[9] जबकि **के0एस0 लाल** ने स्पष्ट लिखा है कि ''यह कर लगाने का मुख्य उद्देश्य काफिरों को अपमानजनक स्थिति में रखना था और भुगतान के समय जिम्मी का गला पकड़ा जाता था।'' परन्तु **डॉ0 के0एस0 लाल** की बातें सत्य नहीं हैं क्योंकि हिन्दुओं की सुरक्षा का अर्थ था भारत की सुरक्षा तथा बहुसंख्यक हिन्दू होने के कारण विशाल सेना के रख—रखाव पर होने वाले व्यय के भार में कमी लाने के दृष्टिकोण से यह कर वसूल किया जाता था। स्वतंत्र भारत में भी ऐसे कई अवसर देखने को मिलते हैं जब सम्पूर्ण भारतीयों को अनिवार्य जमा योजना के अन्तर्गत निश्चित और औसत के आधार पर राष्ट्रीय कोषागार में निश्चित अवधि के लिए धन जमा करना पड़ा तथा किसानों को लेवी के रूप में अनाज भी देना पड़ा।

दिल्ली के शासक दरिद्र, मध्यम और सम्पन्न लोगों से 10, 20 और 40 टका क्रमशः वसूल करते थे।[10] अलाउद्दीन ने हिन्दू प्रजा से जजिया कर वसूल किया। जजिया कर उस समय मुख्य करों में से एक था। दक्षिण के राजा जो भुगतान करते थे वह जजिया कर कहा जाता था। यह एक राजनैतिक कर था जो पराजित राजाओं से वसूल किया जाता था। राजपूत राजाओं से भी यह कर वसूल किया जाता था। तत्कालीन किसी भी इतिहासकार ने यह नहीं लिखा है कि सम्पूर्ण देश में जजिया कर के नाम पर कितनी धनराशि कोषागार में आती थी, फिर भी पर्याप्त धन प्राप्त हो जाता था।

खुम्स—युद्धों में प्राप्त धन को सैनिकों में बांटने का अनुपात 4 और 5 का था, जिसे एक चौथाई से अधिक ही कहा जा सकता है। अलाउद्दीन लोगों की समृद्धि से नफरत करता था। फिरोज के शासनकाल की प्रचलित परम्परा की देन अलाउद्दीन ही था।

जकात–जकात मुसलमानों से लिया जाने वाला धार्मिक कर था। जकात देकर जरूरतमंद लोगों के साथ अपनी सम्पत्ति का बंटवारा करके मुसलमान स्वयं को लालच से मुक्त करता है। इस प्रकार जकात का भुगतान ईश्वर और मनुष्य के मध्य एक अनुबन्ध ही लिखा गया है। जकात सम्पत्ति का 40वां भाग होता था। इसे बलात एकत्र नहीं किया जा सकता था।[11] भारत में जकात मुसलमानों पर लगाया जाने वाला एक धार्मिक कर न रहा। यह मुसलमानों पर और गैर मुसलमान दोनों से वसूल किया जाता था। यह केवल प्रत्यक्ष सम्पत्ति जैसे सोना, चांदी, पशु समूहों और व्यापारिक वस्तुओं पर ही लगाया जाता था और केवल तभी लगाया जाता था जबकि ऐसी सम्पत्ति कर लगाने के लिए निर्धारित निम्नतम सीमा (निसाब) से अधिक होती है। मुस्लिम नैय्यायिक निसाब लगाने में बड़े उदार थे। सम्भवतः जकात सम्पत्ति का 1/40 भाग होता था।[12]

राजस्व की सफलता के परिणाम–जिस सफलता से आदेश लागू करके राजस्व की वसूली की गयी उसका पूरा श्रेय उपवजी शर्फ कायिनी को है। वह दिल्ली के आस–पास के क्षेत्रों में पालम, रेवारी, अफगनपुर, अमरोहा, बदायूं और कोल (अलीगढ़) तथा उत्तर में दीपालपुर, लाहौर, समाना, सुनम और कटेहर के क्षेत्र, दक्षिण मालवा और राजपूताना के कुछ हिस्सों में भूमि मापन की पद्धति प्रारम्भ करने में सफल हुआ। शर्फ कायिनी ने राजस्व विभाग की कुव्यवस्था को दूर करने के लिए कठोर उपाय किये। विशाल प्रदेशों को खालसा में परिवर्तित कर दिये जाने के कारण भी केन्द्रीय शासन द्वारा कर वसूल करने के लिए आवश्यक कदम उठाना पड़ा।

राजस्व प्रशासन पर बहस समाप्त करने के पूर्व यह कहना अधिक उचित होगा कि अलाउद्दीन ने न तो इक्ता प्रथा हटाई और न खूती अधिक जमीन रखने वाले भू–स्वामियों का विशेषाधिकार समाप्त किया। इनकी उद्दण्डता कुचल दी गयी, किन्तु अपने अतिशय करके कारण कृषक वर्ग को लाभ नहीं पहुंचा था। इसके लिए बरनी आलोचना करते हैं–''कृषक अपनी उपज का 50 प्रतिशत कर के रूप में चुकाता था, इसके अतिरिक्त जजिया, आवास कर, चराई कर तथा पशु कर देने पड़ते थे।'' आर्थिक सुधार के अन्तर्गत अनयमित दर पर किसानों को अपने अनाज बेचने के लिए बाध्य किया गया। के0एस0 लाल का कहना है कि ''अलाउद्दीन ग्रामवासियों को दरिद्र बनाना चाहता था जिससे ''विद्रोह'' शब्द उनके होठों से न निकल सकें।''[13] डॉ0 ताराचन्द का कहना है कि यह नीति आत्मघातक थी क्योंकि उसने उस मुर्गी को मार डाला जो सोने का अण्डा देती थी। इसने उपज बढ़ाने के लिए या कृषि में सुधार करने के लिए प्रोत्साहन का कोई आधार नहीं रहने दिया। सल्तनत के सुल्तानों में अलाउद्दीन पहला सुल्तान था जिसने राजस्व सुधार के लिए विशेष प्रयत्न किया। अलाउद्दीन की प्रजा में हिन्दू भी थे और मुसलमान भी। निश्चित ही उसने अपनी प्रजा पर कठोरता से नियमों को लागू किया, फिर भी यह संयोग था कि उसके राजस्व नीति से प्रभावित लोगों में अधिकतर हिन्दू ही थे, शायद इसका कारण यह था कि स्थानीय स्तर पर अर्थ व्यवस्था अभी भी हिन्दुओं के हाथों में थी वही कृषि कार्य करते थे।

सन्दर्भ–ग्रन्थ

1. Morland, A Grarian System of Muslim India, pp. 26, 27, Qureshi Administration of Sultnate of Delhi, pp. 103.
2. जियाउद्दीन बरनी तारीखे फिरोजषाही, पष्0 179
3. Morland, Agrarian System, pp. 32 पाद टिप्पणी
4. K.S. Lal History of the Khilji, Allahabad, 1950 pp. 243.
5. जियाउद्दीन बरनी, तारीख ए फिरोजशाही, पृ. 182
6. Ibid, Pp. 182.183
7. बरनी की मूल प्रति, पृ. 287
8. फरिश्ता, पृ. 109
9. आर्गनाइड्स, पृ. 399
10. अफीफ, पृ. 383
11. आर्गनाइड्स, पृ. 297
12. डॉ0 के0एस0 लाल, खिलजी वंश का इतिहास द्वितीय संस्करण विश्व प्रकाशन, पृ. 146
13. डॉ0 के0एस0 लाल, खिलजी वंश का इतिहास द्वितीय संस्करण विश्व प्रकाशन, पृ. 148

* * * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

History : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 327-330

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

कुम्भ पर्व की कालगणना का ऐतिहासिक अनुशीलन

*प्रो. अल्पना दुभाषे **

'कुम्भ' शब्द के पर्याय पर किसी ने विचार किया है या नही यह कोई नहीं जानता है। सामान्यत घट, भाण्ड और कलश कुम्भ के पर्याय माने जाते हैं। अगस्त को कुम्भज कहा गया है, इससे कुम्भ का अर्थ कृतिम गर्भ या कलशोदधि भी माना जा सकता है जो घट रूप में माना जाता होगा। गर्भ से बना गर्वा गुजराती में घट का द्योतक है और हिन्दी में उसका करवा (चौथ) शब्द सुपरिचित है। पौराणिक कथाओं में 'कलाशोदधि' शब्द प्रयुक्त है जिसमें कलश में ही समुद्र की कल्पना की गई है। दक्षिणी भाषाओं में उद्कुम्भ रूप में आया है जो, मनुस्मृति के अध्याय दो श्लोक बयासी में जलपूरित घट के रूप में भिक्षा मांगने के लिए प्रयुक्त होता है। मिट्टी एवं गाय के गोबर से मिलकर प्रयुक्त यह बर्तन पाप से प्रायश्चित के रूप में प्रयोग में लाया जाता है। कभी–कभी नाभि शब्द को भी कुम्भ का प्रतीक माना जाता है यद्यपि कि यह शब्द का भी वही अर्थ कमोवेश रखता है कहने का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार नाभि से सृष्टि की उत्त्पत्ति हो सकती है उसी प्रकार से कुम्भ से जगत् की सृष्टि की कल्पना की गई है। मनुस्मृति में नाभि से सृष्टि से जगत् की उत्पत्ति की बात की गई है यहाँ नाभि का तात्पर्य है ब्रह्मा से है। नाभि की बात भारतीय परम्परा में अत्यंत ही प्रसिद्ध है कहा जाता है कि रावण की नाभि में अमृत था अतः भगवान राम उसकी पराजय को सुनिश्चित करने में असफल हो रहे थे, यह तथ्य जब उनको पता चला तब वे उसकी नाभि का अमृत नष्ट कर अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सके। इस प्रकार का तादात्म्य नाभि एवं कुम्भ का था। कुम्भ के दो प्रकार मिलते हैं जो भिन्न–भिन्न सभ्यताओं से मिलने के कारण है यथा टोटीदार कुम्भ बाद के विकास को सूचित करता है और उसका सम्बन्ध सेमेटिक सभ्यताओं से ज्यादा है। सिन्धुघाटी सभ्यता में दोनों प्रकार के कुम्भ मिलते है। खुदाई से जो कुम्भ मिले हैं वे आर्य सभ्यता के भी मिले–जुलेपन का प्रतीक हैपर गोलाकृत कुम्भ तो भारतीय कल्पना का मूर्त रूप है।

भारतीयों का कर्म, उपासना एवं ज्ञान की त्रिवेणी में परम पावन शुभ स्नान की दृष्टि से भारतीय मनीषियों, महापुरुषों ने इस कुम्भ के पर्वों को सर्वोपरि माना है। हजारों वर्षों की अविच्छिन्न कुम्भ के पर्वों को सर्वोपरि माना है। हजारों वर्षों की अविच्छिन्न कुम्भ परम्परा जन–लाभ की दृष्टि से अद्वितीय चली आ रही है। पृथ्वी की एक लाख बार प्रदक्षिणा करने का फल कुम्भ पर स्नान, दान आदि कृत्यों से प्राप्त होता है। यह अमृत–कलश जिन–जिन स्थानों पर छलका या रखा गया था, महाकुम्भ वहाँ पर आता है। महाकुम्भ के ये स्थान तीर्थराज प्रयाग, हरिद्वार, नासिक और उज्जैन हैं। कुम्भ पर्व में जाने वाला मनुष्य अपने स्नान, दान होम इत्यादि सत्कर्मों से लकड़ी काटने वाले शस्त्र की भाँति अपने कर्मो का प्रक्षालन करता है। कुम्भ का महत्त्व का उल्लेख 'अथर्ववेद' में भी आया है–

"चतुराः कुम्भाम् श्रतुधां ददामि।" (अथर्ववेद, 4/34/7)

माघ महीने में अमावस्या को वृहस्पति वृश राशि में हों सूर्य और चन्द्रमा मकर राशि में हो, तब प्रयाग में महाकुम्भ का पर्व होता है। वृहस्पति के मेला तेरहवीं या चौदहवीं शताब्दी में वर्तमान स्वरूप में प्रारम्भ पड़ता हैं। एक मत के अनुसार कुम्भ का योग हरिद्वार में बारह वर्ष के पश्चात होता है जब वृहस्पति कुम्भ राशि पर आते हैं तब योगी संन्यासी विशेष पूजा तथा आराधना करते थें इस प्रकार पाँच ज्ञानेन्द्रियों, पाँच कर्मेन्द्रियों, एक चित्त व एक मन बारह के ऊपर विजय पाने से ही घट का कल्याण हो सकता है। विवके व अविवेक का संघर्ष ही देवासुर का संग्राम है और उनके पूर्ण नियंत्रण से ही घट में अमृत का प्रादुर्भाव होता है।

* *प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष, शोध केन्द्र इतिहास विभाग, शा. माधव कला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उज्जैन, म.प्र.*

चरों कुम्भों के काल निर्णय के विषय में स्कन्ध पुराण, पद्यमपुराण, मत्स्यपुराण आदि में वर्णन मिलता है।

पद्यनीनायके मेषे कुम्भराशिगते गुरौ।
गंगाद्वारे भवेद्योगः कुम्भनामा तथोत्तमः।।

अर्थात जिस समय वृहस्पति कुम्भ राशि पर स्थित हो और सूर्य मेष राशि पर रहे उस समय गंगाद्वारे (हरिद्वार) में कुम्भ पर्व होता है।

मेषशिगते जीवे मकरे चन्द्रभास्करौ।
अमावस्या तदा योगः कुम्भख्यस्तीर्थनायके।।

अर्थात जिस समय वृहस्पति मेष पर स्थित हो और चन्द्रमा और सूर्य मकर राशि में स्थित हों उस समय तीर्थराज प्रयाग में कुम्भ होता है।

सिंहराशिगते सूर्ये सिंहराशौ वृहस्पतो।
गोदावर्या भवेत् कुम्भो जायते खलु मुक्तिदः।।

अर्थात समय सूर्य तथा वृहस्पति सिंहराशि पर हों उस समय नासिक में मुक्ति प्रदायक कुम्भ पर्व होता है।

मेषराशिगते सूर्ये सिंहराशौ वृहस्पतौ।
उज्जयिन्यां भवेत् कुम्भः सदा मुक्तिप्रदायकः।।

अर्थात मेष राशि में सूर्य और सिंह राशि मे वृहस्पति के होने पर उज्जैन में मुक्ति प्रदायक कुम्भ पर्व होता है। अन्यत्र इस प्रकार की सूक्तियां भी इन्हीं कुम्भ पर्वों के लिए प्राप्त होती है।

मकरे च दिवानाथे वृषगे च वृहस्पतौ।
कुम्भ योगे भवेत प्रयागे ह्याति दुर्लभः।।

मकर राशि मे सूर्य व चन्द्रमा तथा वृष राशि मे वृहस्पति के रहने पर अति दुर्लभ योग प्रयाग में होता है।

कर्के गुरूस्तवा भानुचन्द्रश्चन्द्रगस्तवा।
गोदावर्या तदा कुम्भो जायतेवनिमण्डले।।

कर्क राशि में गुरु, सूर्य तथा चन्द्रमा के होने पर गोदावरी तट पर नासिक में कुम्भ पर्व होता है।

प्रयाग पर्व के साथ–साथ ही उज्जैन एवं नासिक तथा हरिद्वार में कुम्भ पर्व मनाने की व्यवस्था भी हमारे पुराणों एवं धर्म परम्परा में है। हमारे प्राचीन ग्रन्थों में राशियों के आधार पर पर्वों के निर्धारण की व्यवस्था संदिग्ध लगती है। वेदों सहित रामायण व महाभारत मे राशियों का वर्णन नहीं मिलता है। क्या कुम्भ पर्व महाभारत काल में आयोजित नहीं होते थे? व्रत, व त्यौहारों में तिथिमान को ही प्रमुखता से स्वीकार किया गया है। हमारे ही नहीं इस्लाम धर्म के अनुयायी भी तिथिमान व चन्द्रमास के आधार पर ही अपने व्रत, पर्व व त्यौहार का निर्धारण करते है। प्रयाग और उज्जैन का कुम्भ आमावस्या तिथि पर तथा हरिद्वार और नासिक का कुम्भ पूर्व पूर्णिमा तिथि पर होने की बात ऊपरयुक्त श्लोकों में कही गयी। ये चारों ही कुम्भ पुराणों में निर्देशित योगों पर ही मनाये जाते हैं। इसके पीछे चन्द्रमा का पृथ्वी पर पड़ने वाला अदृश्य प्रभाव है। अमावस्या तथा पूर्णिमा को चन्द्रमा के अदृश्य प्रभाव का अवलोकन समुद्र में उठने वाले ज्वार–भाटे से भी किया जा सकता है। सम्भवतः ज्योतिषीय परम्परा का प्रयोग तब किया गया जब भारत में कुम्भ पूर्णरूपेण अपनी पहचान स्थापित कर चुका था। आज तक किसी भी भारतीय ज्योतिषीय ने कुम्भ पर्व की साम्यता को ज्योतिषीय परम्परा के साथ स्थापित करने का प्रयास नहीं किया, यहाँ तक व्रतों का व्यापक वर्णन करने वाले पी.वी. काणे भी इससे सहमत नहीं दिखते है। चन्द्रमा शीतलता का प्रतीक है इसके इसी गुणों के कारण इसे कुम्भ से जोड़ा जाना शायद लगता है। इसी प्रकार गुरु का प्रभाव व्यक्ति को प्रभावशाली एवं विद्यावान बनाता है। अतः इसे भी कुम्भ से सम्भवतः जोड़ा गया है। मानव के भीतर ज्ञान–विज्ञान, आत्मज्ञान तथा उच्चकोटि के मानवीय गुणों के विकसित होने का या संस्कारित होने का योग बनाता है। इन प्रभावों के साथ–साथ चन्द्र वर्ष, तथा सूर्य वर्ष, वृहस्पति वर्ष के अद्भुत संयोगों का परिणाम है यह कुम्भ मेला।

कुम्भ पर्वों की ज्योतिषीय अवधारणा का विभिन्न पुराणों में उल्लेख मिलता है। यह पर्व तब होता है जब आकाश के ग्रहों का, पृथ्वी के पवित्र–स्थलों में एक निश्चित समय पर वृहस्पति, सूर्य और चन्द्रमा का परस्पर सम्बन्ध होता है। चारों कुम्भों के लिए लग–अलग ज्योतिषीय योगों का वर्णन प्राप्त होता है तथा हरिद्वार को छोड़कर अन्य कुम्भ पर्व के लिए वैकल्पिक वर्णन भी प्राप्त होते हैं।

कुम्भ पर्व का तीन वर्षों के अन्तराल के बाद चारों स्थलों पर मनाया जाता है ये अन्तराल का क्रम हरिद्वार से शुरू हो जाता है। लेकिन नासिक और उज्जैन के कुम्भ में पर्वों का अंतराल तीन वर्ष का नहीं है। उज्जैन में कुम्भ पर्व यदि वैशाख में लगता है तो उसी वर्ष के अन्तर्गत मनाये जाते है। उज्जैन में कुम्भ पर्व यदि वैशाख में लगता है तो उसी वर्ष नासिक में भाद्रपद में कुम्भ पर्व लगता है। कभी–कभी नासिक का कुम्भ पर्व उज्जैन से पहले भी हो जाता है।

कुम्भ पर्व के समय चक्र के संदर्भ में कुछ विद्वानों का मानना है कि यह प्रत्येक बारहवें वर्ष लगता है। अन्य विद्वानों का विचार है कि जब तक निश्चित ज्योतिषीय योग नहीं होता है कुम्भ पर्व नहीं लगता है उनके अनुसार 11वें वर्ष और 13वें वर्ष में भी कुम्भ पर्व लग सकता है। 12 वर्ष की परम्परा सदैव लागू नहीं होती है। यह वृहस्पति के पश्चगामी संचरण और सूर्य के चारों ओर चक्कर काटने में लगे समय के आधार पर होता है।

कुम्भ पर्व भारतीय संस्कृति का विराट् विग्रह प्रस्तुत करने वाला पर्व है, इसे वैदिक ग्रंथों में 'युग–पर्व' और बौद्ध ग्रंथों में 'मोक्ष–पर्व' कहा गया है। आदिकाल से आज तक यह सनातन धर्म के प्रति अदम्य जन–उत्साह का प्रदर्शन करता है। विश्व के प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद में इसके माहात्म्य का उल्लेख मिलता है। अन्य वेदों और पुराणों में भी इसकी महत्ता का उल्लेख बार–बार किया गया है। अन्य वेदों और पुराणों में भी इसकी महत्ता का उल्लेख मिलता है। इससे स्पष्ट है कि कुम्भ परम्परा या तो वैदिक परम्परा से भी पुरानी है या तो फिर वेद क समान ही सनातन है। यहां कुम्भ पर्व की एक विवरण देख सकते है जो कि ऋग्वेद में मिलता है–

जघान वृत्रं स्वधितिर्वनेव रूरोज पुरो अरदत्र सिन्धून ।
विभेद गिरि नवभिन्न कुम्भ भागा इन्द्रो अकृणुता स्वयुग्भिः।। (10/89/7)

अर्थात कुम्भ पर्व की बेला में तीर्थ स्थान में पहुंचकर स्नान–दान और यज्ञ आदि करने वाले मनुष्य अपने जन्म–जन्मांतरों के पापों को अपने सत्कर्मों के पुण्य से उसी प्रकार काट सकते हैं जैसे तेज धार वाला कुठार काठ को काटता है, जिस प्रकार सिंधु आदि नदी उफान के दौरान अपने तटों को तोड़कर प्रवाहित होने लगते हैं, उसी प्रकार कुम्भ पर्व तीर्थ स्थलों में स्नान करने वाले मनुष्यों के सारे पातक धो डालता है और नूतन पर्वताकार बादलों के समान सुख–शांति की संवृष्टि करता है इसी प्रकार का वर्णन काफी कुछ शुक्ल यजुर्वेद में भी मिलता है –

कुम्भो वनिष्टुर्जनिता शचीभिर्यस्मिन्नग्रे योन्यां गर्भोन्तः।
प्लाशिर्व्यक्तः शतधऽउत्सों दुहेन कुम्भी स्वधा पितृभ्यः।।
(शुक्ल यजुर्वेद 19/87)

अर्थात कुम्भ पर्व तीर्थों में श्रद्धापूर्वक स्नान–अनुष्ठान करने वाले मनुष्य के सत्कर्मों के प्रभाव को जगाता है और दुष्कृत्यों को प्रभावहीन करता है वह निष्ठावान मनुष्य को इस लोक के भौतिक सुख–साधन तो सुलभ कराता है, दूसरे जन्मों में उसे और उसके पितरों को भी सुख–आनन्द प्रदान करता है।

अथर्ववेद में भी कुम्भ पर्व को अंतरिक्ष में राशि और ग्रहों का पुण्य प्रद 'योग–काल' कहा गया है–

पूर्णः कुम्भोधिकाल अहितस्तं वै पश्यामो बहुधा नु सन्तः।
स इमा विश्वा भुवननि प्रत्यंग कालं तमाहुः परमे व्योमन्।।
अथर्ववेद (19/53/3)

अर्थात संतगण! यह कुम्भ पर्व समय–समय पर आया करता है। इसे हम विभिन्न तीर्थों में देखते हैं किंतु वास्तविक कुम्भ पर्व उस विशिष्ट काल को ही कहते है जब आकाश मण्डल में ग्रह, राशि आदि का विशिष्ट योग सम्पन्न होता है।

सामवेद के एक मंत्र में भी कहा गया है कि कुम्भ पर्व जन्म–जन्मांतर में सुख और शान्ति प्रदान करता है–

आविशन्तकलश (गुं) सुतो विश्वाऽऊर्शन्न मिश्रिय, इंदुरिंद्राय धीयते।

(सामवेद 56/3)

अथवर्वेद में ब्रह्मा जी को ही चारों कुम्भों का निर्माता कहा गया है वे स्वयं कहते है कि–'हे मनुष्यो! तुम्हारे भौतिक एवं आध्यात्मिक सुख के लिए मैं चार कुम्भ पर्वों का निर्माण कर चार तीर्थों (हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन, और नासिक) में तुम्हें प्रदान करता हूँ।

"चतुरः कुम्भांश्च चतुर्धा ददामि।" (अथवर्वेद 4/34/7)

इस प्रकार हम देखते है कुम्भ की तिथिकरण करना संभव नहीं है। इस संबंध में इतना ही कहा जा सकता है कि प्रारम्भ में ऋषि गण ने आकाश–मण्डल में ग्रह–नक्षत्रों की गति के भू–मण्डल पर पड़ने वाले प्रभावों का दीर्घकाल तक अध्ययन किया होगा, ग्रह–योगों पर बार–बार विचार–विमर्ष किया होगा, सैकड़ों वर्षों तक सतत् प्रयास करते रहने के बाद जो ज्योतिशीय निष्कर्ष निकले होंगे उन्हीं में से एक महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष कुम्भ पर्व भी होगा। सर्वसम्मत निष्कर्ष के आधार पर ही कुम्भ पर्व पर निर्दिष्ट तीर्थ स्थलों मे स्नान–ध्यान और तप–योग की परंपरा चली होगी जो अब विश्व के सबसे बड़े पर्व के रूप में विकसित हो गयी। अब कोई अंधविश्वास कहे यह अवैज्ञानिकता भारतीय जनता के इस विश्वास को कोई तर्क झुठला नहीं सकता कि कुम्भ पर्व पर हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन और नासिक के तीर्थों में स्नान करने वाले श्रद्धालुओं को वही फल प्राप्त होता है जो एक हजार अश्वमेध यज्ञ, सौ वाजपेय यज्ञ तथा एक लाख पृथ्वी–प्रदक्षिणा करने वाले व्यक्ति को प्राप्त होता है।

अश्वमेध सहस्राणि वाजपेय शतानि च।
लक्षं प्रदक्षिणां भूमेः कुम्भास्नाने हि तत्फलम्।।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. ऋग्वेद
2. सामवेद
3. यजुर्वेद
4. अथवर्वेद
5 विष्णुपुराण
6. स्कन्दपुराण
7. मत्स्यपुराण
8. पद्यमपुराण
9. वायुपुराण
10. नारदीय पुराण
11. मनुस्मृति
12. पी.वी.काणे–धर्मशास्त्र का इतिहास

* * * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

History : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 331-335

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

मुक्ति संग्राम के अग्रदूत : ठा. सल्तनत बहादुर सिंह

*डॉ. विमलेश कुमार पाण्डेय**

आदिगंगा गोमती का परिक्षेत्र अपनी प्राचीनता के साथ–साथ सांस्कृतिक विरासत हेतु महत्वपूर्ण है, जिसकी पहचान विश्व स्तर पर प्रतिस्थापित है। राजनीतिक घटनाएँ एवं हलचलें, जो कालान्तर में भारतीय मुक्ति संग्राम का अंग बनीं, भी इस परिक्षेत्र को असाधारण क्षमता–सम्पन्न प्रमाणित कर देती हैं। इन्हीं घटनाओं एवं हलचलों में बदलापुर का मुक्ति संग्राम भी परिगणित होता है, जिसके जगनायक थे विसेन भूषण अमर शहीद, ठा0 सल्तनत बहादुर सिंह ताल्लुकेदार बदलापुर। जौनपुर गजेटियन इन्हें बिसेन सरदार रण्य पांच कोस की परिधि में आने वाले पैंसठ ग्रामों का ताल्लुकेदार, तथा मण्डलेश्वर शासक बताता है। ये सभी ग्राम सम्प्रति बदलापुर एवं जौनपुर तहसीलें रारी परगना क्षेत्रान्तर्गत थे। ब्रिटिश हुकूमत को सत्ता–प्रसार अभियान में सल्तनत बहादुर सिंह और उनके सहयोगियों द्वारा सशस्त्र प्रतिरोध उत्पन्न कर मातृभूमि को दासता से मुक्ति प्रदान कराने हेतु आजीवन किया गया संघर्ष अविस्मरणीय रहेगा, जिसमें उन्हें जंगल–जंगल भटकना पड़ा था। संघर्षों से जूझते हुए अनेकशः अंग्रेजी फौज को कई बार मैदान छोड़कर भाग जाने हेतु विवश होना पड़ा। ताल्लुका एवं जमींदारी मुगलकालीन प्रशासनिक विभाजन के अन्तर्गत तप्पे एवं परगने ब्रिटिश प्रशासन के राजस्व वसूलने के केन्द्र थे।[1] बदलापुर ताल्लुके का विस्तार 234485 एकड़ अथवा 3659 वर्गमील था जिसके अन्तर्गत 65 राजस्व गाँव सम्मिलित थे। यह ताल्लुका जौनपुर सरकार के अधीन था।[2]

प्रशासनिक अंग के रूप में तालुके का उदय मुगल काल में हुआ। मुगल बादशाहों द्वारा सेवा के बदले निश्चित सीमा का भू क्षेत्र जागीर के रूप में जागीरदारों को अता दिया जाता था। चूंकि जागीर और जागीरदार निरन्तर परिवर्तनशील होते थे फलतः कृषि विकास एवं किसानों की सुख–सुविधा पर ध्यान कम दिया जाता था। औरंगजेब के शासन के अन्तिम वर्षों में जागीरदारों की हैसियत कम हो गई, अब वे मात्र कागज पर रह गये। 18वीं सदी के आते–आते जागीरदारों का स्थान ताल्लुकेदारों ने और जागीरों का स्थान ताल्लुकों ने ले लिया, जो इस सदी की मुख्य प्रशासनिक संस्था बन गई।[3] किसान एवं बादशाह के बीच की कड़ी जोड़ने वाले मध्यस्थ राजपूत ताल्लुकेदार बन गये, जिसके स्वामित्व में अन्य जातियों की अधिकृत भूमि भी आती जा रही थी। प्रशासनिक शैथिल्य के फलस्वरूप ग्रामीण व्यवस्था के प्रभावित होने से बड़े किसानों, मुकदमों एवं चौधरियों की शक्ति में इजाफा हुआ, भूमि के पट्टे लम्बी अवधि हेतु दिये जाने लगे, पैतृक उत्तराधिकारी को मान्यता मिली, अतः छोटे–बड़े सभी लोगों में भूमि अथवा भूखण्डों पर आधिपत्य जमाने की प्रतिद्वन्द्विता बढ़ गयी। नवाबी काल में सरकार मालगुजारी ताल्लुकेदारों एवं जमींदारों से वसूलती थी तथा ये लोग अपनी वृत्तियों (जागीरों) से कर वसूलते थे, किन्तु ईस्ट इण्डिया कम्पनी की नई व्यवस्थानुसार ये वृत्तिये (जागीरदार) भी जमींदार मान लिये गये।[4]

ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ सशस्त्र विद्रोह का कारण डंकन का इश्तमरारी बन्दोबस्त था जिसके फलस्वरूप अंग्रेजी हुकूमत[5] ने अधिसंख्य राजवंशों को नष्ट कर उनके वंशजों को पद एवं प्रभाव से वंचित कर दिया। अब ताल्लुकदार एवं जमींदार जो प्रशासन के वास्तविक अंग थे, मात्र मालगुजारी वसूल करने वाले ठेकेदार के रूप में रह गये। राजाओं से गांव छीन दिये गये, उनकी शक्तियाँ नष्ट कर दी गईं, ताल्लुकेदारों की गढ़ियाँ गिरा दी गईं। किसानों से खूब बेगार लिया जाने लगा। दमन, अत्याचार एवं अपने अनुयायियों को पुरस्कृत करना अंग्रेजी हुकूमत का मुख्य कार्य हो गया। अनुयायियों को सभी सेवाओं के बदले ताल्लुके एवं तप्पे तथा एक दो गाँवों का भू स्वामित्व दिया गया। एक–दो गाँवों के भूस्वामित्वों को जमींदार एवं दस–बीस गाँवों के भूस्वामित्वों को

* *एसोसिएट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, सल्तनत बहादुर पी.जी. कालेज, बदलापुर, जौनपुर*

ताल्लुकेदार की उपाधि से विभूषित किया गया। जनपद की आधी से तीन चौथाई लगान का भुगतान ताल्लुकेदारों द्वारा किया जाता था, जिनके पास बड़ी–बड़ी रियासतें थीं। इन रियासतों के बनने के कई कारण थे। प्रथमतः अशक्त नवाबों के काल में अधिकांश ताल्लुकेदारों द्वारा रियासतें बना ली गयीं, अपने दुर्ग एवं सेना हो गई, अधिकांश ग्राम समुदाय जो पहले स्वतंत्र थे, इनके संरक्षण में आ गये। द्वितीयतः अपनी रियासत के अधीन गाँवों को अधिकृत करने की स्वीकृति प्रशासन से इस्तमरारी बन्दोबस्त के अन्तर्गत मिलने से ताल्लुकेदारों को अपनी रियासत के पूरे अथवा आंशिक भाग को दूसरे के नाम लिख देने अथवा वसीयत का अधिकार मिल गया। ताल्लुकेदारों के अधीन दो प्रकार के भू–स्वामी होते थे[6]–

1. ऐसे लोग जिनके पूर्वज ताल्लुकेदार थे जिन्हें अधिकारच्युत कर दिया गया था। इन्हें इनका पुराना अधिकार इस शर्त पर दिया गया कि एक निश्चित लगाना ताल्लुकदार को देना होगा।

2. इस वर्ग में आसामी आते थे, जिनके दो वर्ग थे–(अ) नियमित हक मुक्त (ब) मुक्त।

ऐसे भूक्षेत्र जो ताल्लुकेदारों द्वारा अधिकृत नहीं होती थीं, जमींदारी भू–स्वामित्व के अन्तर्गत थीं, जिन्हें दो–चार गाँवों का स्वामित्व प्राप्त था। अब नये–नये जमींदार बन रहे थे जो भूमि के वास्तविक मालिक होते थे, ये चार प्रकार के होते थे–

(क) जमींदार, (ख) पट्टीदार, (ग) अप्रत्यक्ष पट्टीदार, (घ) भैया चारा।

वर्तमान भूस्वामियों के पूर्वजों को बेकार भूमि की लगानमुक्त जामीर (वृत्ति) ने जमींदारी प्रथा को जन्म दिया। ऐसी जागीरें स्थानीय सरदारों द्वारा लोगों को दी जाती थी और इस प्रकार भूमि पर जमींदार कृषि करते थे। कई पीढ़ी के पश्चात् जागीरदारों ने भूमि पर जमींदारी अधिकार प्राप्त कर लिया। इस जमींदारी अधिकार का विकास निम्न कारणों से हुआ–

1. पुराने सरदारों के झगड़ों को शान्त करने के लिए।

2. किसी उदासीन प्रशासक द्वारा लगान वसूली के झंझट से बचने की इच्छा।

पट्टीदारी भूस्वामित्व का विकास किसी परिवार के सभी सदस्यों के भूमि पर समान अधिकार की स्वीकृति से हुआ, जिसमें भूमि पर हिस्से के अनुसार सबका अधिकार अक्षुण्ण होता था। भूमि की उपज का बंटवारा तद्नुसार होता था। पट्टी प्रारम्भिक जमींदार के वास्तविक बेटों के हिस्सों की प्रतीक के रूप में बड़े आकार में होती थी। एक पट्टी के अन्तर्गत छोटे टुकड़े 'थोक' एवं थोक के छोटे टुकड़े 'टोला' के नाम होते थे।[7]

प्रजातांत्रिक तरीके से भूमि का विभाजन भैया चारा के अन्तर्गत होता था। इसमें निम्न प्रकार के गाँव सम्मिलित होते थे[8]–

(अ) ऐसे गांव जिनकी स्थापना के समय किसी विशेष प्रकार का विभाजन अथवा अधिकार प्रथा प्रचलित थी।

(ब) ऐसे गाँव जिनमें कभी अनुवांशिक (पैत्रक) अधिकार पर विभाजन था किन्तु अथवा अधिकार प्रथा प्रचलित थी।

(स) ऐसे गांव जिनमें कभी कोई समान या एकच्छत्र अधिकार की बात नहीं थी तथा जिसके अधिकार में जितनी भूमि होती थी उसी अनुपात में उसका अधिकार स्थापित हो सके।

गाँवों में पट्टीदार खेतिहर भी विद्यमान थे, जो एक ही पूर्वज की सन्तान होते थे। ये संयुक्त रहकर अपने–अपने कृषि कार्य का प्रबन्ध करते थे, अपने–अपने खेतों का अपना–अपना अलग अधिकार रहता था। नये गाँवों की स्थापना से वहाँ की नई पट्टीदारी बन जाती थी, जो पहले भी पट्टीदारी से पूर्णतया पृथक होती थी। अतः पट्टीदारियाँ प्रायः बनती–बिगड़ती रहती थीं।

पट्टीदारी एवं भैया चारा गाँव पुनः दो भागों में विभक्त होते थे[9]–

1. **प्रत्यक्ष**–इसके अन्तर्गत संपूर्ण भूमि का बंटवारा होता था।

2. **अप्रत्यक्ष**–में हिस्सेदार सम्पूर्ण भूमि का बंटवारा न करके उसका एक हिस्सा संयुक्त अधिकार में रहने देते थे।

भूस्वामित्व के उक्त सांजालिक विभाजन से यह स्पष्ट होता है कि अब भूमि एवं किसान दोनों की स्थिति उत्तरोत्तर बदतर होती जा रही थी। शोषण, ताड़न, बेगार, भुखमरी, गरीबी, कर्ज, महामारी, अकाल जैसी भौतिक एवं प्राकृतिक समस्याओं से ग्रस्त किसान निर्बल एवं असहाय होता चला गया और ग्रामीण अर्थव्यवस्था पंगु हो

गयी। जमींदार को लगान बढ़ाने एवं उसे न चुका पाने की स्थिति में काश्तकार को भूमि से बेदखल करने का पूर्ण अधिकार को भूमि से बेदखल करने का पूर्ण अधिकार मिल गया। भूमिकर निर्धारण जातीय आधार पर होने से सामाजिक वर्ग–विभेद बढ़ गया और शक्ति संगठन का ढांचा जर्जर हो गया।

उक्त सांजालिक प्रशासनिक वातावरण में कृषकों को अपनी जमीन बचाने, जमींदारों एवं ताल्लुकेदारों को अपनी जमींदारी एवं ताल्लुकेदारी बचाने की चिन्ता होने लगी, क्योंकि कम्पनी सरकार को अधिकाधिक लगान चुकाकर ये चीजें खरीदी जा सकती थी। 1775–1788 जौनपुर राजा बनारस के अधीन हो गया और 1787 में डंकन लार्ड कार्नवालिस द्वारा बनारस का कम्पनी सरकार का रेजीडेण्ट बनाकर भेजा गया। दासतापूर्ण शासन से त्रस्त जनता कम्पनी हुकूमत के खिलाफत बगावत पर उतारू हो रही थी। 1781 में राजा बनारस चेत सिंह अपदस्थ कर दिये गये तथा महीम नारायण सिंह को अंग्रेजों ने उनका उत्तराधिकारी बनाया।[10] मालगुजारी की वसूली न होने पर डंकन ने शिवलाल दूबे पुत्र मोतीलाल दूबे निवासी अमौली फतेहपुर को काल अली बेग पर नजर रखने हेतु नियत किया। जब काल अली जौनपुर की बकाया दस लाख की मालगुजारी वसूलने में असफल रहा तो मि. जॉन दूबे अपनी दूरदर्शिता के कारण 85000 मालगुजारी का अवशिष्ट जमा कराया। इससे खुश होकर कम्पनी सरकार ने अगले ही वर्ष जौनपुर एवं भुइली महाल को शिवलाल के मातहत कर दिया। अब सिगरामऊ एवं बदलापुर के ताल्लुकेदारों पर भी दबाव बढ़ता जा रहा था। जौनपुर का अमील बन जाने पर शिवलाल 3,64,000 रुपये मालगुजारी कम्पनी सरकार को देने लगे। ठाकुर सल्तनत बहादुर सिंह को 25000/– मालगुजारी देनी होती थी। जब मालगुजारी और सरकारी मांग पूरी करने में असमर्थ हो गये तो 1793 में ये अपने ताल्लुके को छोड़कर जंगलों में चले गये और अंग्रेजी हुकूमत से बगावत कर दिया। फलतः हुकूमत ने इन्हें पकड़ने हेतु 10,000/– रुपये का पुरस्कार घोषित किया। ठाकुर सल्तनत बहादुर सिंह विसेन वंश की परम्परागत न्याय प्रियता एवं कर्तव्य पालन हेतु दृढ़ प्रतिज्ञ होकर अंग्रेजी हुकूमत की संगीनों का जरा भी खौफ अपने ऊपर हावी नहीं होने दिया।[11]

ठाकुर सल्तनत बहादुर सिंह की अनुपस्थिति में जौनपुर से उन्हें पकड़ने के लिए अंग्रेजी सेना जनरल फ्रांसीसी के नेतृत्व में सेना बदलापुर आती है जिसके सरदार की अभद्र टिप्पणी से ठाकुर साहब का दुर्ग रक्षक क्रोधित हो उसकी हत्या कर देता है। फिर क्या था? अत्यधिक साजो–सामान के साथ एक विशेष सेना बदलापुर कोट का घेरा डाल देती है। अपनी व्यूह रचना[12] में ठाकुर सल्तनत बहादुर सिंह ने स्वयं को उत्तर दिशा में, दक्षिण दिशा की जिम्मेदारी अपने अनुज ठाकुर रणसिंह एवं पूर्व तथा पश्चिम दिशा में क्रमशः अपने पितृत्व ठाकुर अवधान सिंह (अवध सिंह) एवं मझले भाई ठाकुर हनुमान वत्स सिंह को अंग्रेजी सेना का मुकाबला करने का निर्देश दिया। अंग्रेजी सरदार कैप्टन वुजोनियरे अपने सैनिकों को बहुविध प्रोत्साहित करता हुआ बदलापुर कोट पर हमले का आदेश देता है। गोलीबारी शुरू हो जाती है। किन्तु यह क्या, कोट पर गोलीबारी का कोई असर नहीं होता दिख रहा था। इसका कारण था कि कोट की दीवारें चिनाई के कारण काफी मजबूत थीं। अतः कोट के अन्दर अंग्रेजी सैनिकों के हमले का कोई असर नहीं हुआ। प्रत्युत ठाकुर सल्तनत बहादुर सिंह के वीर लड़ाकों ने दुर्ग की ऊँची–ऊँची बुर्जियों से अंग्रेजों पर जो गोलियों की बौछार की, अंग्रेजी सेना अपना घेरा उठाकर भाग खड़ी हुई।[13]

अंग्रेजी सेना का सरदार कैप्टन वुजोनियरे अपने उच्च अधिकारियों से इस पराजय हेतु काफी डॉट–फटकार एवं धिक्कार सुनता है। पराजित सरदार बदलापुर कोट की मजबूती और यहाँ के लड़ाकों की तारीफ करता है। दीर्घकालिक मंत्रणा के उपरान्त अंग्रेजी सेना निर्णायक युद्ध हेतु तत्पर हो जाती है। अंग्रेजी सेना की बागडोर इस बार सम्पूर्ण जनपद पर अपनी पकड़ बनाने की गरज से शिवलाल अपने हाथों में लेता है, साथ ही लखनऊ से शीतल प्रसाद के नेतृत्व वाली बुन्देली सेना की सहायता से कम्पनी सरकार उसे उपलब्ध कराती है ताकि विजय सुनिश्चित हो। इधर ठाकुर सल्तनत बहादुर सिंह भी कड़े मुकाबले को भांप कर अपनी रणनीति बनाते हैं जिसके तहत अपने दुर्ग की सुरक्षा व्यवस्था चाक–चौबन्द कर अपनी राजपूती सेना का नेतृत्व ठाकुर बैरीशाल सिंह एवं ठाकुर तरवाँ सिंह को सौंप कर उन्हें अपनी परम्परागत रक्षा हेतु सनद्ध होने का आदेश देते हैं।[14]

रणनीति कारों ने ठाकुर गुरुदत्त सिंह एवं ठाकुर दयाल सिंह को दुर्ग से महिलाओं को ठाकुर फेर बहादुर सिंह के दुर्ग सरोखनपुर में पहुंचाने का जिम्मा दिया, जिसे इन लोगों ने बखूबी निभाया था। अंग्रेजी गोलन्दाजों ने अपनी तोपों से दुर्ग पर गोलीबारी आरम्भ कर दी। राजपूती सेना भी गोलीबारी कर शत्रु देना को क्षति पहुँचाने में जुट गयी। ब्रिटिश फौज की धुआँधार गोलाबारी से सल्तनत बहादुर सिंह का छोटा सादुर्ग रह गया। शत्रु पक्ष के भारी

दबाव के कारण अपने बच्चों एवं पत्नी को गुप्त रूप से सुरक्षित स्थान पर भेजकर स्वयं को सैनिक साथियों के साथ गोमती पार कर जंगलों में शरणागत हुए और वहीं से अंग्रेजों के विरुद्ध छिापामार युद्ध का मोर्चा खोल दिया। जंगल में गुप्त रूप से सैन्य संगठन किये जाने के क्रम में इनके ज्येष्ठ पुत्र ईश्वरी नारायण सिंह को वहीं बन्दी बना लिया गया। सिपहसालार मैनगली सिंह के नेतृत्व में क्षेत्र के मुस्लिम युवकों ने भयानक आक्रमण प्रत्याक्रमण की घटनाएं हुईं। अनेक युवकों की प्राणाहुति के बावजूद बन्दी को नहीं मुक्त कराया जा सका। इस संघर्ष में शहीद मुस्लिम युवक बल लोगों की बाग में आज भी याद किए जाते हैं। इसी युद्ध में सेनापति बैरीशाल सिंह शहीद हो जाते हैं। आंशिक विजय से उत्साहि शिवलाल ठाकुर सल्तनत बहादुर सिंह के ज्येष्ठ पुत्र ईश्वरी नारायण को लेकर अपना मोर्चा उठाकर जौनपुर चला जाता है।[15]

इधर ठाकुर सल्तनत बहादुर सिंह दुर्गविहीन हो पुत्र के बन्दी बना लिए एवं सैनिकों के साथ सेनापति की शहादत से भी हतोत्साहित नहीं हुए, प्रत्युत असंख्य कठिनाइयों में होते हुए भी अंग्रेजी दासता को स्वीकार न कर मातृभूमि की मुक्ति हेतु सैन्य संगठन में दत्त चित्त हो जाते हैं।

भलुवाही के ठाकुर नेवाजी शाह, दुगौली के जाली राय एवं शेरू दर्जी के सत्प्रयासों से जहाँ मृत राजपूत सैनिकों की जगह कुशल लड़ाके युद्ध हेतु तैयार किये जाते हैं वहीं मण्डल के साहू लोग सेना के खर्चे के लिए आर्थिक मदद हेतु स्वतः प्रस्तुत हो लडाई की धार को तेजी प्रदान करते थे। मातृभूमि की रक्षा हेतु सभी गाताओं में अपने को शहीद की माँ कहलाने की प्रतिस्पर्द्धा जाग उठी, मण्डल के सभी ग्रामों सभी नीतियों और सम्प्रदायों के नौ जवान मुक्तिवाहिनी में शामिल हो गये। फलतः 2000 सैनिक संयोजित हो गये जिन्हें ठाकुर सल्तनत बहादुर सिंह ने अनेक जत्थों में विभाजित कर नये सेना नायक बनाकर सैन्य संचालन का जिम्मा अपने भाई हनुमान सिंह को दिया।[16]

इस बार शिवलाल ने जब बदलापुर का घेरा डाला तो उसे वहाँ कोई न मिला अतः उसने अपने चुनिन्दा सैनिकों को छद्म वेश में ठाकुरसल्तनत बहादुर सिंह का पता लगाने में नियुक्त किया, जिसमें प्रारम्भिक तौर पर उसे असफलता ही नहीं मिली, वरन् इसी बीच ठाकुर अवधान सिंह एवं ठाकुर हनुमान सिंह असावधान अंग्रेजी सेना पर हमला कर दिया। अंग्रेजी सेना प्रत्येक मोर्चे पर विफल होकर भागने लगती है किन्तु अवध की बुन्देली सेना के आ जाने से परिणाम उलट जाता है और दोनों राजपूत सरदार बन्दी बना कर जौनपुर में मि0 जॉन नीव के सम्मुख लाये जाते हैं। इनमें से एक को शाही किले में और दूसरे को शाही बारहदरी में कैदकर दिया जाता है।[17] इसी बीच शिवलाल को शीतल प्रसाद को घिर जाने का समाचार मिल जाता है अतः वह पुनः बदलापुर आ धमकता है।[18]

ठाकुर सल्तनत बहादुर सिंह अपने भाई एवं काका के बन्दी बना लिये जाने से शोकातुरता के क्षणों से उबरकर आस–पास के रईसों से मदद हेतु अपने भाई हनुमान सिंह एवं नेवाजी शाह को लगाया। राजा बाजार के राजाराम दयाल सिंह, सराय त्रिलोकी के त्रिलोकमत्मय तथा बरारी एवं बेलहटा जोखापुर खालिसपुर के पाठकों मुबारकपुर के राजा इरादत जहाँ आदि से सहायता एवं तीन सौ सैनिक प्राप्त कर ठाकुर अजाय सिंह एवं मतियार सिंह अपने–अपने जत्थे बनाये और नेवाजी शाह के साथ फरहरिया के जंगल की ओर चल दिए, जहाँ ठाकुर सल्तनत बहादुर अज्ञातवास कर रहे थे। इसी बीच ठाकुर सल्तनत बहादुर सिंह को पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। जिसके नामकरण संस्कार में वे नहीं पहुँच पाये थे किन्तु संग्राम काल में निरत रहने के कारण उन्होंने अपने पुत्र का नाम 'संग्राम सिंह' रखा।[19]

कड़वा यथार्थ है कि भारतीय वीरों को ब्रिटिश सेना ने नहीं प्रत्युत लोगों की खुदगर्जी प्रलोभनों एवं विश्वासघात की समवेत युति ने मारा। अंग्रेजी सेना की नाक में दम कर देनेवाले सल्तनत बहादुर सिंह के खात्मे के लिए भी कम्पनी सरकार ने जिन्दा या मुर्दा पकड़ाने के लिए **दस हजार मुद्राएं एवं राजा बहादुर'** के खिताब अता करने की घोषणा की। शिवलाल दूबे ने ठाकुर सल्तनत बहादुर की कोट के एक रत्न पारखी को बहला–फुसलाकर अपने पक्ष में कर लिया। इस रत्न पारखी की अमदरफ्त कोट में बराबर होने से किसी ने इस पर सन्देह नहीं किया। गुप्तचर की इस सूचना पर शिवलाल एवं शीतला प्रसाद की सेना अमर शहीद को खोज निकालने में सफल हुई कि उन्हें समाधिस्थ अथवा पूजा के समय ही पकड़ा जा सकता है।[20]

सैन्य संगठन के दौरान अवध और आस–पास के घने जंगल विद्रोही सैनिकों के शरण स्थल होते थे। छोटे–छोटे मण्डल बनाकर ठाकुर सल्तनत बहादुर अंग्रेजी सेना के संघर्ष करते रहे और अंग्रेजी सेना से संघर्ष करते रहे और अंग्रेज उन्हें खोजने में नाकाम होते रहे। अन्ततः शहब्दीपुर (शहाबुद्दीनपुर) के घने जंगल में राजपूती सेना एवं कम्पनी सरकार की सेना के मध्य भयंकर युद्ध छिड़ जाता है। पूजा मग्न ठाकुर सल्तनत बहादुर सिंह पर आक्रमण कर शिवलाल उनका कत्ल कर देता है। शिवलाल अपनी घृणित योजना में सफल हो कम्पनी से 'राजा बहादुर' का खिताब पाकर राजा शिवलाल दत्त दूबे बहादुर बन जाता है। इसे दस हजार का पुरस्कार एवं बदलापुर का ताल्लुका प्राप्त हो जाता है। राज कुमार ईश्वरी नारायण अपने पिता की दुःखद मृत्युपरान्त काल कवलित हो जाते हैं।[21]

इस प्रकार हम देखते हैं कि ठाकुर सल्तनत बहादुर सिंह ने आततायी अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ बगावत बुलन्द कर बदलापुर में मुक्ति संग्राम का सूत्रपात किया और अपनी मातृभूमि की रक्षा का व्रत असीमित कष्टों को सहन करते हुए जीवन पर्यन्त निभाया। इस इतिहास पुरुष के विराट व्यक्तित्व में स्वदेश प्रेम, धर्मानुरागिता, दानशीलता, क्षमाशीलता, निःस्वार्थपरता, युद्ध कौशल, त्याग आदि उदात्त गुणों एवं आदर्शों का समावेश था। यदि महारायणा प्रताप ने राष्ट्रप्रेम हेतु जंगलों की खाक छानी, घास की रोटियाँ खाईतो ठाकुर सल्तनत बहादुर ने भी कम्पनी सेना द्वारा दुर्ग का घेरा डालने पर पुरइनियाँ, करनपुर, फरहरिया तथा अवध प्रान्त के जंगलों की खाक छानते, रणनीति बनाते सैन्य संगठन करते और अवसर पाते ही शत्रुओं पर आक्रमण करते थे। पृथ्वीराज चौहान ने भागते हुए मुहम्मद गोरी को छोड़कर जो गलती की क्षात्र धर्म निभाने के लिए, वही गलती ठाकुर सल्तनत बहादुर ने भी की थी। अवसर मिलने पर भी उन्होंने शिवलाल और शीतल प्रसाद को इसलिए बच निकल जाने दिया क्योंकि उनकी दृष्टि में सच्चे क्षत्रिय वीर रणोन्मुख वीरों से ही लड़कर यशस्वी होते हैं। धोखे से शत्रु की हत्या करना उनकी दृष्टि में कृत्रिम विजय थी जो लोक में प्रशंसनीय नहीं थी। वैभवपूर्ण जीवन व्यतीत करने हेतु वे धृतराष्ट्र बन सकते थे किन्तु अंग्रेजों से उन्होंने अपने पुत्र को छुड़ाने के लिए समझौता नहीं किया। अन्य समसामयिक ताल्लुकेदार की भाँति यदि उन्हें भी ताल्लुकेदार बने रहने की अभिलाषा होती तो वे भी जनता का शोषण कर कम्पनी की मांग पूरी कर देते, किन्तु पराधीनता में ताल्लुकेदार बने रहने की अपेक्षा उन्होंने स्वाधीनता की बलिवेदी पर अपना सर्वस्व न्यौछावर करना श्रेयस्कर समझाा। उनके इस त्याग ने उनके व्यक्तित्व को अतिशय महत्तर बना दिया। आज वे मुक्ति संग्राम के इतिहासमें देदीप्यमान नक्षत्र की भाँति आलोकित हो रहे हैं, भावी गवेषणाएँ ज्यों–ज्यों इतिहास के पृठों को पलटेंगी ठाकुर सल्तनत बहादुर सिंह की अमर गाथा अभिनव आयाम लेती जायेगी।

सन्दर्भ–सूची

1. गजेटियर जौनपुर जिल्द 28, वर्ष 1908, पृ. 82
2. डॉ. राम अवध, अवध प्रदेश का सामाजिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन, भवदीय प्रकाशन फैजाबाद, 2001, पृ. 11
3. वर्मा, आर. बी. द इबोल्यूशन ऑफ रूरल सेटलमेण्ट इन अवध, आई जी सी वोल्यूम 3, कलकत्ता 1971, पृ. 307
4. उपर्युक्त
5. वर्नियर, एफ. : ट्रैवेल इन द मुगल इम्पायर, वेंस्ट मिनिस्टर कांस्टेबल, 1891, पृ. 205
6. राम अवध, उपर्युक्त, पृ. 47
7. स्लीमैन, डब्ल्यू. एच. : ए जर्नी थ्रू द किंगडम ऑफ अवध वाल्यूम–2, लन्दन, 1858, पृ. 2006–2007
8. बेडेन–पावेल, बी0 एच0 : लैण्ड सिस्टम ऑफ ब्रिटिश इण्डिया वाल्यूम 2, लन्दन 1842, पृ. 211
9. उपर्युक्त, पृ. 30
10. उपर्युक्त पृ. 164
11. राम अवध, पूर्वोक्त, पृ0 52
12. लेखक कास0 ब0 पी0 जी0 कालेज, बदलापुर की वार्षिक पत्रिका 'अस्मिता में प्रकाशित लेख, 2012–13, पृ. 12–16
13. गजेटियर जौनपुर 1908, पृ. 180, सिंह, डॉ0 लाल साहब (सम्पा0), सल्तनत गाथा, वर्ष 2006, पृ. 1–24
14. पूर्वोक्त, 25–30
15. पूर्वोक्त, 31–40
16. पूर्वोक्त 41–44
17. पूर्वोक्त, 45–48
18. पूर्वोक्त, 49–52
19. पूर्वोक्त, 54–60
20. पूर्वोक्त, 61–65
21. पूर्वोक्त, 65–73
22. पूर्वोक्त, पृ. 74

* * * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

History : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 336-339

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

शिक्षा एवं समाज की उन्नति में साहित्य की भूमिका (काशी नगरी के सन्दर्भ में)

*कृष्ण कुमार पाण्डेय**

सारांश–समाज और शिक्षा के नव निर्माण में साहित्य की केन्द्रीय भूमिका होती है। यह समाज को दिशा–बोध कराने वाला, उसे नवनिर्मित करने वाला सशक्त माध्यम है। साहित्य, समाज को संस्कारित करता है, जीवन मूल्य देता है एवं कालखण्ड की विसंगतियों, विद्रूपताओं एवं विरोधाभासों को रेखांकित कर समाज को संदेश देता है। जिससे समाज में सुधार आता है और सामाजिक विकास लय मिलती है। साहित्य समाज को संजीवनी शक्ति प्रदान करके उसकी प्रशस्ति का मार्ग निर्धारित करता है।

शब्द कुन्ज– साहित्य, समाज, संजीवनी, कल्पनाजन्य आर्दश...इत्यादि।

प्रस्तावना–साहित्य वह सशक्त माध्यम है, जो समाज को व्यापक रुप में प्रभावित करता है। यह समाज में प्रबोधन की प्रक्रिया का सूत्रपात करता है। लोगों को उद्वेलित करता है। सत्य के सुखद परिणामों को रेखांकित करता है, तो असत्य के दुखद अंतों स्पष्ट कर हमें सीख व शिक्षा प्रदान करता है। साहित्य की तीन खूबियां इसकी महत्ता को बढ़ाती है। मसलन, साहित्य, समाज से प्रेरणा ग्रहण करता है, वर्तमान को चित्रित करता है और भविष्य का मार्गदर्शन करता है। साहित्य, सामाजिक यर्थाथ, मानवीय प्रतिभा और कल्पनाजन्य आर्दश का समन्वय रहता है। अच्छा साहित्य हमारे चरित्र निर्माण में सहायक होता है। इसकी उपादेयता व्यापक है। यही कारण है कि साहित्य जीवन के सत्य को प्रकट करने वाले शिवत्वमयी विचारों और भावों की घनीभूत अभिव्यक्त है।

साहित्य समाज का दर्पण माना जाता है। साहित्य में समाज की विशेषताओं एवं विकृतियों का चित्रण होता है। दर्पण हमारी वाहय विकृतियों का चित्रण होता है, जबकि साहित्य हमारी आंतरिक विकृतियों को चिन्हित करता है। महत्वपूर्ण तथ्य है कि– **साहित्यकार समाज में व्याप्त विकृतियों के निवारण हेतु अपेक्षित परिवर्तनों की भी व्यंजना प्रदान करता है।** साहित्य जीवन के सभी घटकों का श्रृंखला समुच्चय है। इसका एक–एक प्रभाग हीरक हार की मणिकमुक्ताओं की भांति संयोजित है। जीवन की समस्त विविधता को समग्रता से व्यंजित करने की क्षमता साहित्य में ही पायी जाती है।

विषयवस्तु–समाज के नवनिर्माण में साहित्य की भूमिका का विश्लेषण करने से पूर्व साहित्य के स्वरूप और उसके समाज दर्शन का लक्ष्य समझना आवश्यक है।

संस्कृत का प्रसिद्ध सूत्र वाक्य है –

हितेन सह इति सष्टिम्ह तस्याभावः साहित्यम्।

अर्थात साहित्य का मूल तत्व सबका हितसाधन है। मानव स्वभाव से एक क्रियाशील प्रणाली है तथा मन में उठने वाले भावों का चित्रण उसकी अनिवार्य आवश्यकता है। यही भाव जब लेखनीबद्ध होकर भाशा के माध्यम से प्रकट होते हैं, वहीं सामग्री यानी ज्ञानवर्धक अभिव्यक्ति साहित्य कहलाती है।

काशी नगरी शिक्षा एवं साहित्य से परिपूर्ण है। इस नगरी में महान भारतीय लेखक एवं विचारक हुए है, कबीर, रविदास, गोस्वामी तुलसीदास जिन्होंने यहाँ रामचरितमानस लिखी। कुल्लुका भट्ट जिन्होंने 15वीं

* *शोध छात्र, इतिहास विभाग, डॉ. सी.वी. रमन विश्वविद्यालय, करगी रोड, कोटा बिलासपुर, छत्तीसगढ़*

शताब्दी में मनुस्मृति पर सर्वश्रेष्ठ ज्ञात टीका लिखी एवं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और आधुनिक काल के जयशंकर प्रसाद, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, मुंशी प्रेमचन्द, जगन्नाथ प्रसाद रत्नाकर देवकीनन्दन खत्री, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, तेग अली, क्षेत्रेश चन्द्र चट्टोपाध्याय, वागीश शास्त्री, बलदेव उपाध्याय, सुमन पाण्डेय (धूमिल) एवं विद्यानिवास मिश्र और अन्य बहुत।

महान शल्य चिकित्सक सुश्रुत, जिन्होंने शल्य क्रिया का संस्कृत ग्रन्थ 'सुश्रुत संहिता' लिखा था। वे काशी (वाराणसी) में ही आवास करते थे। रामनगर किले में स्थित सरस्वती भवन में दुर्लभ पाण्डुलिपियाँ, विशेषकर धार्मिक ग्रन्थों का दुर्लभ संग्रह सुरक्षित है। यहाँ गोस्वामी तुलसीदास जी की पाण्डुलिपि की मूल प्रति भी रखी है। यहाँ मुगल मिनियेचर शैली में बहुत सी पुस्तकें रखी हैं, जिसके सुन्दर आवरण पृष्ठ हैं।

शिवनगरी काशी से प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित उक्त ग्रन्थ और रचनाकार साहित्य की अनमोल धरोहर हैं जिसकी भारतीय शिक्षा की उन्नति में मार्गदर्शन और समाज के नवनिर्माण में अविस्मरणीय भूमिका है।

पूर्व से ही काशी विद्या और शिक्षा के क्षेत्र में एक अहमं प्रचारक तथा केन्द्रीय संस्था के रूप में स्थापित था। प्रायः वाराणसी को सर्वविद्या की राजधानी है जहाँ हिन्दी एवं संस्कृत भाषा का साहित्य खूब फूला–फला और सामाजिक एवं धार्मिक शिक्षा विश्वप्रसिद्ध हुई। यहाँ साहित्य ने समाज को दिग्दर्शन प्रदान किया।

साहित्य का समाज दर्शन मानवीय विद्रूप परंपराओं और व्यवस्था के शोषण रूप का समर्थन करने वाले धार्मिक नैतिक मूल्यों के बहिष्कार से अनुप्रमाणित है। जीवन, शिक्षा और साहित्य की प्रेरणायें समान होती हैं। साहित्य मानव जीवन के सुख–दुःख, हर्ष, विवाद, आकर्षण–विकर्षण के ताने–बाने से निर्मित होता है। उसमें मानवीय आत्मा की तरंगें प्रतिबिंबित होती हैं। अस्तु समाज और साहित्य में अन्योन्याश्रित संबंध हैं, दोनों जीवन संबंधी सिक्के के दो पहलू हैं तथा **शिक्षा, समाज और साहित्य के मध्य सेतु** का काम करती है।

साहित्य समाज को नवनिर्माण के विभिन्न चरणों से परिचित कराता है। समाज के नवनिर्माण का पहला बिन्दु है, सभी स्थितियों को ऐतिहासिक संदर्भों में रखकर निष्पक्ष ढ़ंग से मूल्यांकित करना। कहा जाता है कि –**साहित्य समाज का दर्पण है।** एक ओर जहां समाज के शुभ संस्कार साहित्य में लिपिबद्ध होते हैं वहीं अशुभ संस्कार भी साहित्य में समान रूप से समादृत होते हैं। साहित्य की यही पारदर्शिता समाज के नवनिर्माण में हमारी सहायत बनती है। साहित्य हमारी खामियों को उजागर ही नहीं करता, बल्कि सुधार के लिये प्रेरित भी करता है और समाधान भी सुझाता है। यह हमें उच्च कोटि के संस्कार भी प्रदान करता है, जिनका समाज निर्माण में विशेष महत्व होता है। समाज के नवनिर्माण में अब सामने आती है, युगबोध की सटीक अभिव्यक्ति। युगबोध की अभिव्यक्ति कई रूपों में की जा सकती है। मसलन–समाज का यथार्थवादी कई रूपों में की जा सकती है। मसलन–समाज का यथार्थवादी चित्रण, समाज सुधार का चित्रण तथा समाज के प्रसंगों के जीवंत अभिव्यक्ति।

इस प्रकार हम देखते हैं कि साहित्य समाज की उन्नति और शिक्षा के विकास की आधारशिला रखता है। अमीर खुसरों से लेकर तुलसी, कबीर, जायसी, रहीम, प्रेमचन्द्र, भारतेन्दु, निराला, नागार्जुन तक की श्रृंखला के रचनाकारों ने समाज के लिजलिजे घावों की शल्यचिकित्सा की। शासकीय मान्यताओं के खिलाफ जाकर जोखिम लिया, जबकि वे भलीभांति जानते थे कि इसमें उन्हें व्यक्तिगत रूप से हानि और प्रतिकार के अलावा और कुछ नहीं मिलेगा। तथापि समाज के निर्माण के लिये उन्होंने यह जोखिम सहर्ष उठाया और अमर हो गये।

रचना तथा मूल्यों का द्वंद्वात्मक रिश्ता होता है तथा इस द्वंद्व के माध्यम से रचना यथार्थ को प्रस्तुत करती हैं। यथार्थ मानव मूल्यों के निर्माण में सहायक होता है। जिस मूल्य को रचनाकार गढ़ता है, जब समाज में वह टूटता है, तब रचनाकार विद्रोह कर बैठता है। क्रांतिकारी लेखकों की पूरी जमात इसे सिद्ध करती है। लेखकर समाज के त्रस्त लोगों से इतना निकट हो जाता है कि उनके कष्टों से एकाकार हो जाता है। तुलसी, कबीर आज भी इसीलिये प्रासंगिक हैं कि उन्हानें अपने व्यक्तिगत अनुभव का समाजीकरण किया।

एक अविकसित वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में मुंशी प्रेमचन्द्र का कथन उद्धृत करने योग्य है :–

''जो दलित है, पीड़ित है, संत्रस्त हैं, उसकी साहित्य के माध्यम से हिमायत करना साहित्यकार का नैतिक दायित्व है।''

जब कभी भी बात जंगल, नदी, पहाड़
रोटी, झोपड़ी, पेट, गरीब, देश की होगी

हम यूँ ही दर्ज करते रहेंगे
अपने तीखे प्रतिवाद
हम यूँ ही रचते रहेंगे विद्रोह की भाषा
हम अपनी जिद के ना–हद तक
बागी हैं हमारा देश हमारी जिद है

साहित्यकार सर्जक होने के नाते विशिष्ट होने के बावजूद सबसे पहले सामान्य नागरिक ही होता है, संवेदनशीलता एवं परिवर्तनकारी होना उसका सहज स्वभाव होता है। ऐसे में यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि कोई साहित्यकार दलितों, शोषितों और वंचितों का पक्षधर हो और इससे आगे जाकर वह वैकल्पिक रास्तों तक जाने की अंतश्चेतना रचता हो। इसी भावना को एक दलित कवि नामदेव ढसाल वाणी दे रहे हैं–

मुझे नहीं बसाना है अलग से स्वतंत्रा द्वीप
पिफर मेरी कविता, तू चलती रह सामान्य ढंग से
आदमी के साथ उसकी उंगली पकड़ कर,

× × × × × ×

सत्य–असत्य के संघर्ष में खो नहीं दिया मैंने खुद को मेरी भीतरी आवाश, मेरा सचमुच का रंग, मेरे सचमुच के शब्द मैंने जीने को रंगों से नहीं, संवेदनाओं के कैनवस पर रंगा है। दुनिया में दो तरह की शक्तियाँ हैं– सृजन की एवं विध्वंस की। साहित्य सृजन की शक्तियों की एक समर्थ अभिव्यक्ति है। विध्वंस की शक्तियों ने ही इस दुनिया में दलित, शोषित एवं वंचित पैदा किये हैं इसलिये यह स्वाभाविक है कि साहित्य दलितों, शोषितों और वंचितों का पक्षधर हो। पर दुर्भाग्य से ऐसा हमेशा नहीं रहा है। कभी अनजाने में, कभी जान–बूझकर, कभी उदासीनता की भावना ने ऐसा होने नहीं दिया है। यदि भारत की बात की जाए तो वैदिक साहित्य एक सर्वकल्याणकारी चेतना से युक्त है, उसमें इसलिये अलग से पक्षधरता दिखलाने की शरूरत ही न थी। वाल्मीकि, जो भारत के आदि कवि माने गए हैं, उनका कवित्व एक क्रौंच पक्षी के शोक को देखने के बाद जाग उठा था और उनके मुँह से विषाद के साथ निषाद के लिये शाप भी फूट पड़ा था –

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधी काममोहितम्।।

पर यही संवेदनशील वाल्मीकि शंबूक वध प्रकरण में बेहद सख्त बन गए। निश्चय ही इस तरह के अंतर्विरोधों से दुनिया के हर देश का प्राचीन साहित्य भरा पड़ा है क्योंकि तब साहित्य पर ईश्वर, राजा एवं सामंतों का यूँ कब्जा था कि उसमें वंचित–दलित–शोषित तत्त्वों के लिये स्थान निकलना।

साहित्यिक विषयों से जुड़े निबंध–प्लेटो ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'द रिपब्लिक' में शिक्षा की परिभाषा देते हुए कहा है, सच्ची शिक्षा, वह जो कुछ भी हो, उसे मनुष्यों को उनके परस्पर सम्बन्धों में और उनकी सुरक्षा में उनके प्रति सभ्य बनाने और मानवीकरण की सर्वाधिक प्रवृत्ति रखनी होगी। प्लेटो द्वारा दी गई शिक्षा की यह मानववादी परिभाषा वास्तव में शिक्षा की सर्वांगीण व्याख्या करती है। शिक्षा के संदर्भ में विभिन्न विचारकों एवं दार्शनिकों ने अपने–अपने मत प्रकट किये हैं। आदर्शवादी, फलवादी और यथार्थवादी दार्शनिकों ने शिक्षा की विभिन्न प्रकार से व्याख्या की है। जहाँ काण्ट शिक्षा को मानव का पूर्ण विकास मानते हैं, वहीं हीगेल ने शिक्षा का मूल प्रयोजन 'अध्यात्म' स्वीकार किया है। मध्यकाल के प्रसिद्ध पाश्चात्य शिक्षा–शास्त्री कामेनियस ने शिक्षा को एक प्रणाली बताते हुए कहा था कि शिक्षा व्यक्ति में धर्म, ज्ञान और नैतिकता से संबंधित गुणों का विकास करती है और इस प्रकार मानव प्राणी कहलाने का अपना अधिकार स्थापित करता है। हरबार्ट ने लिखा है, नैतिकता में ही शिक्षा का समस्त तत्त्व निहित है। भारतीय दर्शन इससे एक कदम और आगे है वह शिक्षा का प्रयोजन केवल नैतिक विकास ही नहीं बल्कि इससे ऊपर उठकर आध्यात्मिक स्तर की उपलब्धि को मानता है। शंकर ने कहा है कि –

सा विद्या या विमुक्तये।

विद्या वही जो मुक्त करे। उपनिषदों के ऋशि याज्ञवल्क्य के अनुसार, **शिक्षा वह है जो मनुष्य को सच्चरित्रता और संसार के लिये उपयोगी बनाए**। याज्ञवल्क्य से लेकर विवेकानन्द, गांधी और श्री अरविन्द तक भारतीय शिक्षा

शास्त्रियों ने शिक्षा की प्रक्रिया में आध्यात्मिक विकास आरै आंतरिक पूणर्ता पर बल दिया है। यदि सामान्य रूप से इन सारे विचारों का निचोड़ निकालें तो आदर्शवाद, धर्म, ज्ञान और नैतिकता ही शिक्षा के मूल प्रयोजन होते हैं।

आज जब हम वर्तमान शिक्षा–प्रणाली को शिक्षा की इन कसौटियों पर कसते हैं तो हमारे सम्मुख कई सवाल खड़े होते हैं। क्या वर्तमान शिक्षा–प्रणाली हमारी पीढ़ी को आदर्शवाद, धर्म, ज्ञान और नैतिकता से युक्त कर पा रही है? हम विज्ञान और तकनीक के क्षेत्रा में नए फलक छू तो रहे हैं परन्तु आदर्श, मूल्य और नैतिकता के अर्थों में हम कहाँ हैं? हमारी सहिष्णुता, क्षमाशीलता, परोपकारिता, आदर्शवादिता, नैतिकता धीरे–धीरे कहाँ गुम होती जा रही है? यह कहीं–न–कहीं हमारी शिक्षा–प्रणाली के दोषों को उजागर करता है। आज विकास की अंधी दौड़ में साहित्य जैसे मानविकी के विषयों को बिल्कुल हाशिये पर डाल दिया गया है क्योंकि इन विषयों की पढ़ाई देश के सकल घरेलू उत्पाद में बढ़ोतरी नहीं करती। ये सत्य है कि अगर वर्ष में साहित्य के कोई कार्य न हों कोई कविता न लिखी जाए, कोई गीत न गाए जाएँ, कोई मूर्ति न गढ़ी जाए, कोई चित्र न उकेरे जाएँ फिर भी देश की अर्थव्यवस्था पर कोई फर्क नहीं पड़ेगा, परन्तु यह कल्पना करना कठिन है कि मानव जीवन किस तरह शुष्क और नीरस हो जाएगा। मानव और रोबोट में कोई विशेष अंतर नहीं रह जाएगा। दुनिया कितनी उबाउ हो जाएगी। नैतिकता, आदर्श, मूल्य जैसी बातें बेमानी हो जाएगी। वैयक्तिक और सामाजिक जीवन इस नीरसता और आदर्शहीनता के साथ नहीं चल सकते। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और उसे समाज में मिल–जुलकर रहने के लिये विभिन्न उत्सवों, प्रयोजनों, सांस्कृतिक कार्यक्रमों की आवश्यकता पड़ती है।

साहित्य मानव जीवन को सरस बनाता है एवं उसमें नैतिकता तथा आदर्श स्थापित करता है। साहित्य मनुष्य के भावों को जीवित रखने वाली संजीवनी है। साहित्य का प्रयोजन ही मनुष्यता है। जब पुस्तक का यह उद्देश्य नहीं होता कि वह मनुष्य का अज्ञान, कुसंस्कार और अविवेक दूर नहीं हो। मनुष्य शोषण और अत्याचार के विरुद्ध सर उठाकर खड़ा नहीं होता, छीना–झपटी, स्वार्थपरता और हिंसा के दलदल से उबर नहीं पाता, वह पुस्तक किसी काम की नहीं है। साहित्य न केवल मनुष्य के ह्रदय को संवेदनशील और सहानुभूतिशील बनाता है बल्कि अन्याय और शोषण के विरुद्ध लड़ने की ताकत भी देता है। दुनिया में आज तक जितनी भी क्रांतियाँ घटित हुईं हैं चाहे वे फाँस की राज्यक्रांति हों, या रूस की क्रांति अथवा भारत का स्वतंत्राता संग्राम, इन सारी क्रांतियों में साहित्य और साहित्यकारों की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही है। रूसो, माण्टेस्क्यू, वाल्टेयर, मार्क्स, लेनिन, गांधी, लोहिया जैसे विचारकों ने अपने विचारों की बदौलत देश और दुनिया को नई दिशा प्रदान की। स्वतंत्रताकालीन साहित्यकारों ने भी अपनी कलम की ताकत से लोगों में क्रांति की ऊर्जा का संचार किया। अकबर इलाहाबादी ने कहा भी है–

खींचो न कमानों को न तलवार निकालो
जब तोप मुकाबिल हो तो अखबार निकालो।।

निष्कर्ष–भारतीय शिक्षा और समाज के निर्माण में साहित्य की सबसे बडी भूमिका है। हमारा समाज आज साहित्य से दूर भागता हुआ भले ही दिखाई पड़े परन्तु वह साहित्य के बिना अपना काम नही चला सकता। आज भी उसके सभी संस्कार साहित्य से ही पूरे होते है। स्वतंत्रता आन्दोलन के समय राष्ट्रीय भावना जागृत करने में साहित्य का सबसे बड़ा योगदान है। साहित्य केवल भाषा और शब्दों का खेल नहीं साहित्य की परिधि में किसी भी राष्ट्र के पेड़, पहाड़, नदियाँ, जंगल, पशु, चिड़ियाँ, जड़, जंगम, चेतन वनस्पतियाँ, खान–पान, वेष–भूषा आदि सभी आते है। इन सबसे मिलकर जो चीज बनती है वह साहित्य की नजर में वह सब राष्ट्रीय धरोहर है। एक युग चेतना सम्पन्न शिक्षक, लेखक, कवि, आलोचक मानवीय समाज के साथ–साथ शिक्षा के विकास की चिन्ता भी करता है। आज के साहित्य का कर्तव्य है कि वर्तमान शिक्षा और समाज के नव निर्माण एवं उन्नति पथ का मार्गदर्शन करें।

संदर्भ–सूची

1. बाजपेयी, कृष्णदत्त, 1957, उत्तर प्रदेश की ऐतिहासिक विभूतियाँ, शिक्षा–विभाग उत्तर प्रदेश
2. घटना चक्र, निबन्ध लेखन
3. itihassankalan.org 4. en.wikipedia.org

* * * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

History : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 340-343

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

भारत छोड़ो आन्दोलन का स्वरूप

*डॉ. केशो प्रसाद मंडल**

द्वितीय विश्वयुद्ध में जापान की दिन–प्रतिदिन सफलता ने मित्र राष्ट्रों को भयभीत कर दिया, क्योंकि जापान किसी भी समय भारत पर हमला कर सकता था। इसलिए ब्रिटेन की सरकार ने भारत–संबंधी अपनी नीति में परिवर्तन करने का निश्चय किया। साथ ही, चीन और अमेरिका ने भी ब्रिटेन की सरकार पर दबाव डाला कि वह भारत की राष्ट्रीय मांगों को पूरा करे। 11 मार्च, 1942 ई० को ब्रिटिश संसद में प्रधानमंत्री चर्चिल ने घोषणा की कि वे जापानी खतरे से भारत की रक्षा करने के लिए भारत के सभी वर्गों को संगठित करना चाहते हैं। युद्ध समाप्त होने पर भारत को पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज्य दे दिया जायेगा और भारतीय नेताओं से बातचीत करने के लिए युद्ध–मन्त्रिमंडल के एक सदस्य शीघ्र ही भारत जायेंगे। इस घोषणा के फलस्वरूप 22 मार्च, 1942 ई० को स्टैफोर्ड क्रिप्स भारत आये। उन्होंने भारत के वायसराय, केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति के सदस्यों तथा भारतीय नेताओं से बातचीत कर एक प्रस्ताव उपस्थित किया, जिसे क्रिप्स–प्रस्ताव कहा जाता है।

क्रिप्स प्रस्ताव से भारतीय नेताओं को संतुष्टि नहीं हुई। यद्यपि प्रस्ताव में कहा गया था कि युद्ध के पश्चात भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य दिया जायेगा, परन्तु औपनिवेशिक स्वराज्य की कोई अवधि निश्चित नहीं की गई। इस प्रस्ताव में यह भी कहा गया था कि प्रान्त अगर चाहें तो भारतीय संघ से बाहर भी रह सकते हैं। यह प्रावधान मुस्लिम लीग की पाकिस्तान की माँग को प्रोत्साहित करता था। भारतीय रियासतों को यह भी छूट दी गई थी कि संविधान निर्माण के पश्चात वे भारतीय संघ से बाहर रह सकती हैं। साथ ही संविधान सभा में शामिल होनेवाली भारतीय रियासतों के प्रतिनिधियों के मनोनय में प्रजा का हाथ नहीं था।

भारतीय नेतागण सुरक्षा विभाग पर भारतीयों का नियन्त्रण चाहते थे, परन्तु क्रिप्स ने स्पष्ट शब्दों में इसे अस्वीकार कर दिया। उन्होंने कहा कि सरकार केवल एक भारतीय को सुरक्षा विभाग का सदस्य बना सकती है, जिसके हाथ में सिर्फ सैनिकों की सुख–सुविधा का प्रबन्ध रहेगा। इस तरह भारतीय नेताओं ने जब क्रिप्स–प्रस्ताव वापस ले लिया और अगले दिन वे इंग्लैंड चले गये।

14 जुलाई, 1942 ई० को वर्धा में कांग्रेस कार्यकारिणी समिति की बैठक हुई, जिसमें भारत से ब्रिटिश शासन का शीघ्र अंत करने का निश्चय किया गया। वर्धा में जो प्रस्ताव पारित किये गये थे, उस पर विचार करने के लिए अखिल भारतीय कांग्रेस का अधिवेशन बम्बई में बुलाया गया, जहाँ 8 अगस्त, 1942 ई० को 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पारित किया गया। उस प्रस्ताव में कहा गया कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी अपनी कार्य समिति द्वारा 14 जुलाई के प्रस्ताव को स्वीकृत करते हुए भारत से अंग्रेजी राज्य को हटा देने की माँग करती है। भारत की स्वतंत्रता की घोषणा हो जाने पर एक अस्थायी सरकार स्थापित की जायेगी, जिसका प्रथम कर्त्तव्य अपनी समस्त शक्तियों द्वारा मित्रराष्ट्रों से मिलाकर भारत की रक्षा करना तथा आक्रमण का विरोध करना होगा। इस अधिवेशन में कांग्रेस ने गाँधीजी के नेतृत्व में शान्तिपूर्ण संघर्ष चलाने का भी निश्चय किया। गाँधीजी ने 'करो या मरो' का मंत्र दिया, जिसका अभिप्राय या तो भारत को आजाद करना था या उस प्रयास में मर–मिटना था।

'भारत छोड़ो' प्रस्ताव के स्वीकृत होने के बाद महात्मा गाँधी, मौलाना अबुल कलाम आजाद, सरोजनी नायडू, कस्तूरबा गाँधी, प्यारेलाल, विनोबा भावे तथा अन्य नेता गिरफ्तार कर लिये गया[1] तथा देश–भर में वृहत् पैमाने पर गिरफ्तारियाँ प्रारंभ हुई।

* *स्वतंत्र लेखन, तिलकमाँझी भागलपुर विवविद्यालय, भागलपुर*

अपनी गिरफ्तारी के समय महात्मा गाँधी ने राष्ट्र के नाम एक संदेश प्रसारित कर लोगों से अपील की कि लोग अपने को आजाद समझें, पूर्ण हड़ताल तथा अन्य अहिंसात्मक से सरकारी प्रशासन को ठप्प कर दें तथा मरकर भी राष्ट्र को जिन्दा रखें।[2] इस संदेश के कार्यान्वयन के लिए गाँधीजी ने बतलाया कि जनता की शक्ति के अलावा अन्य किसी शक्ति को मत मानो; कल–कारखानों, स्कूल तथा कॉलेजों को तब तक बन्द रखो, जब तक पूर्ण स्वाधीनता की प्राप्ति न हो जाये; सरकार के साथ पूर्णरूप से असहयोग करो; संचार के सभी साधनों को बर्बाद कर दो तथा पुलिस को बाध्य करो कि वे सरकारी आदेशों का पालन न करें।[3]

भारत छोड़ो आन्दोलन में अन्य प्रान्तों की अपेक्षा बिहार का योगदान सर्वोपरि रहा। राजेन्द्र प्रसाद ने बिहार प्रान्त को इस प्रकार से संगठित किया था कि सभी वर्गों के लोगों ने इस आन्दोलन में समान उत्साह तथा निश्चय के साथ भाग लिया। कांग्रेस के सिद्धान्त को नहीं समझने वाले किसान मजदूर भी इस आन्दोलन में शरीक हुए। बम्बई अधिवेशन के पूर्व 31 जुलाई को ही राजेन्द्र प्रसाद ने बिहार प्रदेश कांग्रेस कमिटी की एक विशेष बैठक बुलाकर कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं को भावी संघर्ष के लिए तैयार रहने को कहा। अपने भाषण में राजेन्द्र प्रसाद ने कहा कि ''विलम्ब करने में अब कोई फायदा नहीं है। हमने न टैंक का निर्माण किया है, न अस्त्र–शस्त्र का। हमें अपने हृदय की दृढ़ता तथा विश्वास के साथ ही लड़ाई लड़नी है।[4]

उसी शाम अंजुमन इस्लामिया हॉल में एक आम सभा हुई, जिसमें विद्यार्थियों से यह अपील की गई कि वे कांग्रेस के क्रान्तिकारी कार्यक्रम का अनुसरण करें। सभा में श्रीकृष्ण सिन्हा, अनुग्रह नारायण सिंह, सत्यनारायण सिंह, जगलाल चौधरी तथा जगतनारायण लाल के भाषण हुए।[5]

बिहार में यह अफवाह फैल गई थी कि बम्बई में ही सभी कांग्रेसी नेता गिरफ्तार कर लिये जायेंगे। कांग्रेसियों के पास भावी आन्दोलन की कोई निश्चित योजना नहीं थी, इसलिए राजेन्द्र प्रसाद ने दीपनारायण सिन्हा, मथुरा प्रसाद तथा अनुग्रह नारायण सिंह से विचार–विमर्श कर गाँधीजी के अनुरूप एक कार्यक्रम बनाया कि अगर सभी कांग्रेसी नेता गिरफ्तार हो जायें और कोई कार्यक्रम न दे सके उस हालत में हर कांग्रसी अपने को नेता समझे और अहिंसा के सिद्धान्त के अंदर रहकर जो कुछ भी सत्यग्रह के रूप में कर सकता हो, करे–इस संग्राम को अन्तिम लड़ाई समझकर कोई कुछ उठा न रखे, पर अहिंसा को किसी तरह न छोड़े। अपनी आत्मकथा में राजेन्द्र प्रसाद ने लिखा है, ''हमने जो कार्यक्रम बनाया, उसमें भी इस बात पर जोर दिया कि अहिंसा को नहीं छोड़ना चाहिए। उसमें सत्याग्रह के लिए कार्यक्रम भी बताया जो पूर्व सत्याग्रहों के कार्यक्रम से सिद्धान्ततः भिन्न नहीं था, पर अधिक उग्र जरूर था।''[6]

8 अगस्त, 1942 ई॰ को राजेन्द्र प्रसाद भी गिरफ्तार कर लिये गये। उनकी गिरफ्तारी से बिहार में आन्दोलन का रूप काफी उग्र हो गया तथा सारे सूबे में 'भारत छोड़ो', 'राजेन्द्र प्रसाद हमारे नेता हैं', 'कांग्रेस जिन्दाबाद' के गगनभेदी नारे सुनाई देने लगे। राजेन्द्र प्रसाद की गिरफ्तारी की खबर जब बी॰एन॰ कॉलेज पहुँची, तब विद्यार्थियों ने एक विशाल जुलूस निकाला, राजभवन तथा बाँकीपुर जेल के सामने प्रदर्शन किया तथा पटना विश्वविद्यालय के आहाते में सभा कर विद्यार्थियों से अगस्त आन्दोलन में शामिल होने की अपील की।[7]

तत्पश्चात फूलन प्रसाद वर्मा, मथुरा प्रसाद, श्रीकृष्ण सिन्हा, अनुग्रहनारायण सिंह तथा अन्य नेतागण गिरफ्तार किये गये तथा पूरे राज्य में वृहत् पैमाने पर गिरफ्तारियाँ शुरू की। बलदेव सहाय ने महाधिवक्ता के पद से त्यागपत्र दे दिया। सरकार ने बिहार प्रदेश कांग्रेस कमिटी तथा इसकी सहयोगी संस्थाओं को गैरकानूनी करार दिया तथा सदाकत आश्रम को पुलिस ने अपने कब्जे में ले लिया।[8]

राजेन्द्र प्रसाद तथा अन्य नेताओं की गिरफ्तारी के विरुद्ध पटना के विद्यालयों तथा महाविद्यालयों में पूर्ण हड़ताल रही। बी॰एन॰ कॉलेज, मेडिकल कॉलेज, इन्जीनियरिंग कॉलेज, पटना कॉलेज, साइन्स कॉलेज, पटना ट्रेनिंग कॉलेज, राममोहनराय सेमिनरी, पटना कॉलेजियट स्कूल, पी॰एन॰ ऐंग्लो–संस्कृत, महिला छात्रावास तथा अन्य शिक्षण–संस्थाओं पर राष्ट्रीय झण्डे फहराये गये।

पटना मेडिकल कॉलेज के विद्यार्थी, हाउसमैन, नर्स कुली, मेहतर सभी ने हड़ताल कर दी। जब अधिकारी वर्ग हड़ताल रोकने में असफल हो गये, तब वे बाँकीपुर जेल में राजेन्द्र प्रसाद से मिले और उनसे चिट्ठी लिखवाकर ले

गये कि उन्हें मरीजों के हित में हड़ताल बन्द कर देनी चाहिए। तब कहीं हाउसमैन, नर्स, कुली तथा मेहतरों ने हड़ताल स्थागित की, फिर भी विद्यार्थियों की हड़ताल जारी रही। उसी दिन गाँधी मैदान में शिवनन्दन मंडल की अध्यक्षता में एक आम सभा हुई। महिलाओं ने भी एक जुलूस निकाला और कांग्रेस मैदान में भगवती देवी की अध्यक्षता में एक सभा का आयोजन किया। इस सभा में सुन्दरी देवी तथा रामप्यारी देवी ने वकीलों से उनकी वकालत छोड़ने का विरोध किया।[9]

10 अगस्त को ही पटना के विद्यार्थियों ने विधान सभा भवन पर झण्डा फहराने का निश्चय किया। 11 अगस्त को सुबह में जब विद्यार्थियों का जुलूस पटना सचिवालय के पास पहुँचा, तब वहाँ करीब 20 हजार लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गई। पटना के जिलाधीश डब्ल्यू॰जी॰ आर्चर ने पहले ही वहाँ बन्दूकधारी पुलिस तैनात कर दिये थे। जब लाठी खाने तथा घोड़ों से कुचले जाने पर भी भीड़ नहीं हटी, तब जिलाधीश ने गोली चलाने का आदेश दे दिया, जिसके फलस्वरूप सात विद्यार्थी शहीद हुए; जिनमें राममोहन राय सेमिनरी के मैट्रिक के छात्र रामानन्द सिंह, पटना कॉलेजियेट के मैट्रिक के छात्र सतीश प्रसाद झा, बी॰एन॰ कॉलेज के द्वितीय वर्ष के छात्र जग्रपति कुमार, मिलर स्कूल के नवें वर्ग के छात्र राजेन्द्र सिंह, पुनपुन स्कूल के मैट्रिक के छात्र रामगोविन्द सिंह तथा राममोहनराय सेमिनरी के मैट्रिक के छात्र उमाकान्त प्रसाद सिन्हा थे। उमाकान्त प्रसाद सिन्हा की मृत्यु पटना मेडिकल कॉलेज अस्पताल में हुई। जब उन्हें घायल अवस्था में अस्पताल पहुँचाया गया, तब उन्होंने उपचार करनेवाले डॉक्टर से पूछा, ''डॉक्टर, मेरी पीठ में कोई गोली नहीं लगी?'' डॉक्टर के 'नहीं' कहने पर उनका चेहरा प्रसन्नता से चमक उठा। उन्होंने भारत माता की जयजयकार की ओर फिर गिरे तो उठ नहीं सके।[10]

इन शहीदों की स्मृति में पटना सचिवालय के सामने एक स्मारक बनाया गया है। परन्तु देवीपद चौधरी का नाम गलत ढंग से देवी प्रसाद चौधरी लिखा गया है। 1956 ई॰ में जब राजेन्द्र प्रसाद ने शहीद स्मारक का अनावरण किया उसी समय बिहार सरकार का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया गया और सरकार ने देवीपद चौधरी के नाम को शुद्ध करने का आश्वासन दिया, परन्तु अभी तक दिशा में कोई प्रयत्न नहीं हुआ है।[11]

साचिवालय–द्वार के गोली–काण्ड के उपरान्त बिहार के राज्यपाल ने एक आदेश द्वारा अखबारों पर यह प्रतिबन्ध लगा दिया कि वे उस वृत्तान्त को प्रकाशित न करें। आदेश इस प्रकार था : ''भारत रक्षा अधिनियम के अंतर्गत बिहार के राज्यपाल यह आदेश जारी कर रहे हैं कि 11 अगस्त, 1942 ई॰ के सचिवालय–द्वार प्रदर्शन के संबंध में कोई वृत्तान्त तथा पत्र नहीं छपेगा। सिर्फ प्रादेशिक सरकार की विज्ञप्ति ही छपेगी, जिसकी चौड़ाई एक कॉलम तथा ऊँचाई चौथाई कॉलम से अधिक नहीं होगी।''[12] अगस्त के राज्यपाल के इस आदेश को सर्चलाइट ने अन्यायपूर्ण ठहराया तथा सर्चलाइट ने सरकारी विज्ञप्ति भी छापनी बन्द कर दी। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर सर्वाधिक नियंत्रण के कारण 13 अगस्त से सर्चलाइट ने सम्पादकीय लेख छापना भी बंद कर दिया। 18 अगस्त को सर्चलाइट के तत्कालीन सम्पादक मुरली मनोहर प्रसाद ने त्याग–पत्र दे दिया तथा 19 अगस्त को भारत रक्षा कानून के अंतर्गत वे गिरफ्तार कर लिये गये। एक सरकारी विज्ञप्ति द्वारा सर्चलाईट के प्रकाशन पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया गया। 16 अगस्त से इण्डियन नेशन ने भी संपादकीय छापना बंद कर दिया तथा 6 सितम्बर से इसका प्रकाशन भी बन्द हो गया। इन अखबारों की जगह पर सरकार ने 'पटना न्यूज' नामक एक दैनिक अखबार निकालना प्रारंभ किया।

सचिवालय गोली–काण्ड से लोग उत्तेजित हो उठे। एक दिन जब बाँकीपुर जेल में श्रीकृष्ण सिन्हा की मुलाकात पटना के जिलाधीश से हुई, तब उन्होंने विक्षुब्ध होकर पूछा, ''आर्चर! तुमने सेक्रेटेरियेट पर मरनेवाले नौजवानों के पैरों के निशान क्यों नहीं लिये? अगर भीड़ को तितर–बितर करना ही ध्येय था तो उनके मर्म पर गोलियाँ चलाने का तुम्हें कौन अधिकार था? जानते हो कि इन बेगुनाह बहादुर नौजवानों का खून करके तुमने सभ्यता के प्रति कितना बढ़ा अपराध किया है?'' आर्चर चुप रहे। उनके मुँह से सिर्फ इतना ही निकला, ''मैं क्या करता? उनका इरादा इतना मजबूत था कि गोलियों की वर्षा के बीच भी वे आगे को की बढ़े जा रहे थे।'' यह सुनते ही श्रीकृष्ण सिन्हा

का चेहरा तमतमा उठा। उन्होंने काँपते हुए कहा, ''मिस्टर आर्चर! क्या आप लन्दन में रहनेवाले भारत–सचिव को यह खबर दे देंगे कि इस आन्दोलन के पीछे भारतीय जनता किस कठोर इरादे को लेकर खड़ी है?''[13]

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि भारत को स्वतंत्रता भारतीयों के कारण संभव हो सका। जिसमें महात्मा गाँधी की भूमिका अग्रणी रही है।

संदर्भ–सूची

1. सर्चलाइट, 10 अगस्त, 1942
2. कांग्रेस रिस्पान्सिबिलिटि फॉर दि डिस्टर्बेंस (1942–1943), भारत सरकार, नयी दिल्ल 1943, पृ. 80
3. वही, पृ. 80–81
4. सर्चलाइट, 1 अगस्त, 1942
5. वही,
6. राजेन्द्र प्रसाद, आत्मकथा, पृ. 589
7. सर्चलाइट, 11 अगस्त, 1942
8. सर्चलाइट, 11 अगस्त, 1171
9. वही, 12 अगस्त, 1942
10. सर्चलाइट, 11 अगस्त, 1971
11. सर्चलाइट, 12 अगस्त, 1942
12. रामधारी सिंह 'दिनकर' (संपदित) , श्रीकृष्ण अभिनन्दन ग्रन्थ, मुंगेर, सं0 2005 पृ. 377
13. सर्चलाइट, 13 अगस्त, 1942

* * * * * *

((Peer Review Approved Journal) ISSN No. - 2319–5908

History : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page 344-345

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

भारत में शिक्षा की ऐतिहासिक पृष्ठभमि

*डॉ0 विट्ठलनाथ दूबे**

वास्तव में शिक्षा ऐसे जीवन मूल्यों की खोज है, जो व्यक्ति, परिवार और समाज की सुख शान्ति व समृद्धि के लिए अनिवार्य होती हैं। प्राचीन शिक्षा पद्धति इन्ही लक्ष्यों को लेकर स्थापित की गई थी। सम्पूर्ण समाज पर इसका अनुकूल प्रभाव पड़ा। सम्भव है इसमें कुछ विसंगतियां रही हो लेकिन इसने छात्रों को सद्‌गुणों से जोड़ा। उस जमाने में गुरू–शिष्य सम्बन्ध अत्यन्त मधुर और सद्‌भावनापूर्ण थे,भारत की शिक्षा पद्धति आदर्शवादी और आध्यात्मिक थी। छात्रों को सहजता , सरलता तथा समन्वय का पाठ पढ़ाया जाता था। प्राचीन समय में नालंदा, तक्षशिला, बल्लभी, विक्रमशिला जैसे श्रेष्ठ विद्यालय थे। जो कि अपने ज्ञान विज्ञान विषयक उन्नति के लिए विश्व प्रसिद्ध थे।

मध्य काल में यद्यपि तुर्कों और मुगलों ने शासन किया, लेकिन उन्होंने भी शिक्षा के प्रति अपनी जागरूकता बनाये रखी यद्यपि प्राचीन भारत के प्रसिद्ध विद्या केन्द्रों का पराभव हो गया था। लेकिन इसके बावजूद इस काल में साहित्य, पुराण, दर्शनशास्त्र, आयुर्विज्ञान और ज्योतिषशास्त्र की प्रगति हुई। छात्र–ज्ञान प्राप्ति हेतु कुशल शिक्षक के पास जाते थे। उनके प्रमुख संस्कारों के अनुपालन पर ध्यान दिया जाता था।

मध्य काल में मुस्लिम शिक्षा पद्धति का प्रचार प्रसार हुआ। मुस्लिम शिक्षा का उद्‌देश्य इस्लामी सिद्धांत और दर्शन की जानकारी प्राप्त करके अपने ज्ञान को बढ़ाना था। शिक्षा के प्रमुख केन्द्र मदरसे और मकतब थे। मुस्लिम विद्वानो द्वारा मुल्तान, सिन्ध, लाहौर और दिल्ली में मदरसों की स्थापना की गयी थी। आगरा जौनपुर और गुजरात तथा अन्य शिक्षा के प्रमुख केन्द्र थे। उस समय के शिक्षा में न्याय शास्त्र, पैगम्बरों का परिचय व्याकरण, शब्द विज्ञान, साहित्य, आयुर्विज्ञान जैसे पारम्परिक विषयों पर अधिक ध्यान दिया जाता था। सिकन्दर लोदी के समय दर्शन और तर्कशास्त्र की शिक्षा प्रारम्भ हुयी। दोनों ही प्रकार की शिक्षा पद्धति के लिए बेहतर वातावरण की सूचना मिलती है। डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव ने लिखा है कि "मुगल सरकार जनता को शिक्षित बनाना अपना कर्तव्य नहीं समझती थी इस सरकार में न तो कोई शिक्षा विभाग था और न ही मालगुजारी का कोई अंश शिक्षा के लिए निकाल कर रखा जाता था। जनता अपने बच्चे की आयु और परिस्थिति के अनुसार स्वयं उसकी शिक्षा का प्रबन्ध करती थी" इस सन्दर्भ में ए०डब्ल्लू० थामस ने लिखा है कि "विश्व में भारत के समान ऐसा कोई देश नहीं है जहाँ लोगों में शिक्षा के लिए स्वयं प्रेम हुआ हो और उसका लोगों के मस्तिष्क पर स्थायी व शक्तिशाली प्रभाव पड़ा हो। वैदिक काल में साधारण कवियों से लेकर यहाँ पर टैगोर जैसे उच्च कोटि के दार्शनिक हुए और देश में गुरु शिष्य की परंपरा सदा ही चलती रही।''

हम कह सकते हैं कि मध्यकाल तक शिक्षा से जुड़ी सोच और संवेदना बरकरार रही। ब्रिटिश काल में पूरी शिक्षा पद्धति में अनेक परिवर्तन हुए। ब्रिटिश शासकों ने शिक्षा नीति पर निरंतर ध्यान दिया और समय–समय पर महत्वपूर्ण नीतिगत फैसले लिये। 1954 के चार्टर एक्ट द्वारा शिक्षा प्रसार के मौलिक सिद्धान्तों उसके प्रमुख उद्‌देश्यों का निर्धारण किया गया। 1855 में कलकत्ता, मद्रास और बम्बई विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई। पाश्चात्य

* *असिस्टेन्ट प्रोफेसर, आर. एस. के. डी. पी. जी. कालेज, जौनपुर*

मूल्यों पर आधारित अंग्रेजी शिक्षा–पद्वति का विस्तार किया गया तथा शिक्षा का प्रमुख माध्यम अंग्रेजी भाषा हो गयी। लार्ड मैकाले ने भारतीय शिक्षा पद्धति की श्रेष्ठता पर खुला आक्रमण किया, इसके परिणामस्वरूप भेद–भाव पूर्ण नीतियों का निर्माण किया गया।

वास्तव में अंग्रेजों के आगमन के बाद से शिक्षा और संस्कृति के समक्ष एक ऐतिहासिक संक्रमण उपस्थित हुआ, क्योंकि यहा के लोगों ने तुर्क और मुगल काल के दिनों में भी शिक्षा और संस्कृति के गौरवपूर्ण स्तर को बनाये रखा। परन्तु अब जीवन मूल्यों में व्यापक बदलाव से शिक्षा की गुणवत्ता प्रभावित हुई।

सन्दर्भ-सूची

1. पुरी, चोपड़ा और दत्त, भारत का सामाजिक, सामाजिक और आर्थिक इतिहास, पृ. 140
2. डॉ. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, मुगलकालीन भारत, पृ. 485
3. आर0एल0 शुक्ल, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ. 141

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

History : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 346-347

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

बौद्ध परम्परा में संगीत एवं वाद्य

*डॉ. विमलेश कुमार पाण्डेय**

भारतीय संगीत के विकास में बौद्ध सांगीतिक परम्परा के प्रभाव का अतिशय महत्व है। संगीत का विधान यद्यपि धर्म निरपेक्ष मनोविनोद के एक साधन के रूप में हुआ तथापि इसका मूल उत्स धर्म है, क्योंकि सांगीतिक स्वर नाद अथवा ब्रह्म की वास्तविक अभिव्यक्ति करते हैं तथा मानवीय दुर्बलताओं[1] से मानव को मुक्ति दिलाते हैं। अतः प्रागितिहासिक काल से ही किसी न किसी रूप में मानव संगीत का उपयोग भौतिक, मानसिक एवं मनोवैज्ञानिक दुर्बलताओं से मुक्ति पाने हेतु करता आया है।[2]

बौद्ध युगीन संगीत में जीवन की व्यापकता का समावेश कुछ व्यापक हो चला था। इसका प्रमाण संगीत सम्बन्धी उत्सवों के उल्लेख हैं, जहाँ नृत्य, गीत वादन होते थे। संगीत जीविका का भी स्रोत था, नट–नटी, वैतालिक एवं राज्य में नियुक्त संगीतज्ञ साधारण जनता का ही प्रतिनिधित्व करते थे, जिनकी जीविका का स्रोत संगीत था। एक साधारण दरिद्र लकड़ी भी गा–गा कर जलाने के लिए उपवन में ईंधन एकत्र करती थी। आवश्यकतानुसार राजा भी संगीत को जीविका के रूप में अपनाता था। समाज में संगीत–गायन मात्र मनोरंजन का ही साधन नहीं था प्रत्युत, अन्य धार्मिक अवसरों पर भी इसका उपयोग होता था।[3] समसामयिक विचारधारा में वही सफल संगीतज्ञ माना जाता था, जो अपने संगीत प्रदर्शन से मानव को समस्त विकारों से ऊपर उठा सकता था। बौद्ध सिद्धान्तों के संगीत मय गायन द्वारा सुशुप्त जनमानस को जागरूक किया जाने लगा। संगीत पर छाई काल क्रमागत वासना की धुंध को विनष्ट करने हेतु अनेक संगीत ग्रन्थों के प्रणयन किए गये। बौद्ध साहित्य में उपलब्ध सांगीतिक सामग्री का अभिव्यक्ति करण भारतीय शिल्प एवं साँची, भरहुत, अमरावती, नागार्जुनकोण्डा आदि की चित्रकलाओं में देखा जा सकता है।

बौद्ध युग में 'छन्दोक' नामक आचार्य द्वारा साम अर्थात् गायन (स्वर पाठ) किए जाने का उल्लेख मिलता है।[4] गौतम की इच्छानुसार कोणकुट्टिय नामक भिक्षु द्वारा अट्ठक वर्णिक सूत्रों का सस्वर पाठ किया गया।[5] नालन्दा तक्षशिला, विक्रमशिला, ओदन्त पुरी तथा वाराणसी सदृश विद्या केन्द्रों में संगीताध्यापन का स्वतंत्र निकाय अथवा फैकल्टी था, जिसमें भारत के सुविख्यात संगीतज्ञ की नियुक्ति अधिष्ठाता के रूप में की जाती थी।[6] संगीत हेतु 'गन्धब्बवेद' शब्द का व्यवहार किया जाता था, जिसमें गीत, वादित्त, नच्च, (नृत्य), अख्खनम् आदि सम्मिलित थे।[7] अख्यानम प्राचीन आख्यान (वीर गाथाओं) का गायन था, जिसकी गणना शिक्षा के अन्तर्गत की जाती थी।[8]

बौद्ध युगीन समाज के सम्पन्न परिवारों में संगीत का अध्ययन प्रतिष्ठा मूलक था। ललित विस्तर के अनुसार बुद्ध की माँ मायादेवी स्वर कला निपुण थीं। बुद्ध के भावी श्वसुर ने विवाह पूर्ण शर्त रखी थी कि कलानिपुण उनकी पुत्री हेतु वर को संगीतादि कलाओं में सिद्ध हस्त सिद्ध करना होगा, साथ ही सिद्धार्थ हेतु ऐसी वधू की अपेक्षा थी, जो गणिका के समान कलाकुशला हो।[9] बुद्धचरित से स्पष्ट है कि अन्तः पुरों में महती, वीणा, मृदंग, पणव, तूर्य, वेणु आदि वाद्यों का वादन तथा गायन द्वारा मनोरंजन किया जाता था। पितृ पुत्र समागम कथा द्वारा ज्ञात होता है कि बुद्ध के जन्मोत्सव पर पाँच सौ वाद्यों का वृन्दवादन हुआ था।[10] बौद्ध युगीन सुगीत परम्परा में सप्त स्वरों की पहचान भी की जा चुकी थी। यही नहीं, सवर, ताल ग्राम, मूर्च्छना के साथ–साथ रागों का भी ध्यान रखा जाने लगा था।[11] राग प्रणाली का वर्णन लंकावतार सूत्त में प्राप्त होता है जिसके अनुसार भगवान बुद्ध के दर्शन होने पर रावण ने अपने स्कन्ध पर लटकती वीणा पर सप्त स्वरों से मुक्त गाथा–गान आरम्भ किया। सामाजिक मान्यता थी कि सुस्वर संगीत पशु–पक्षी को आकर्षित कर सकता था।[12]

* *एसोसिएट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, सल्तनत बहादुर पी.जी. कालेज, बदलापुर, जौनपुर*

बौद्ध ग्रन्थों में तत्, वितत, धन तथा सुषिर इन चतुर्विद्य वाद्यों का प्रचुर उल्लेख मिलता है। इस काल में सप्ततंत्री वीणा लोकप्रिय एवं प्रमुख वाद्य यंत्र था। सप्ततन्त्रियों के अतिरिक्त एक ही तन्त्री के घर्षण से विविध स्वरावलियों के वादन की कला का विकास हो चुका था। इसी जाति के अन्य वाद्यों में परिवादिनी, विपंची, वल्लकी, महती, नकुली, कच्छपी तथा तुम्ब वीणा का प्रचलन था। वीणा का मृदंगबजाने के लिए दण्ड का प्रयोग होता था।[13] वीणा के अतिरिक्त अवनद्ध वाद्यों में मृदंग, पणव, भेरी, डिन्डिम, तथा दुन्दुभि का, धनवाद्यों में घटा, जलल्ली, झल्लरी तथा कान्स्य ताल एवं सुषिर वाद्यों में शंख, तूर्य, कुराल, श्रृंग आदि का उल्लेख मिलता है।[14] गोध, मंजीरा, ढोल, नगाड़े, कुम्भ थुन आदि के चित्र सांची में देखे जा सकते हैं। तूर्य अथवा तुरीय फूँक कर बजाये जाने वाले वाद्यों का मूल है। मुरज अपने गंभीर घोष के लिए प्रसिद्ध था। पाणिस्वर संभवतः हाथ से पीटकर बजाया जाने वाला वाद्य था।

बौद्ध ग्रन्थों में वीणा निर्माण और उसके अंगों का विवरण सविस्तार वर्णित है। निचला भाग पेट सदृश, ऊपरी ढांचे में तार जाते हुए जो एक लकड़ी पर स्थित होते थे वे विविध खूँटियों से बँधे होते थे जिन्हें कसकर और ढीला कर के उपयुक्त स्वर निकाले जाते थे।[15] इस प्रकार का वाद्य बेलूर अथवा विल्व या बेल की लकड़ी से बनाये जाने का उल्लेख है। तिणव ऊणक घर्षण से बजाये जाने वाला वाद्य था। सम्म अथवा समताल दो प्रकार की झाँझें थीं। वीणा के साथ आगम्बर हाथ में रखकर बजाये जाते थे। मृदंग गर्दन पर लटका कर बजाया जाता था। इसे आधुनिक नाल या ढोल कहा जा सकता है। इसके साथ मंजीरा भी बजाया जाता था।[16]

इस प्रकार स्पष्ट है कि संगीत भारतीय धर्मोपासना में भक्ति से भी अविच्छिन्न रूपेण सम्पृक्त रहा है। जहाँ हम प्राचीन उपासना में वैदिक एवं तान्त्रिक दो प्रकार पाते हैं, वहीं आधुनिक संदर्भ में वैदिक, तान्त्रिक अथवा आगम–निगम के साथ ही बौद्ध परम्परा का समावेश भी पाते थे। बौद्ध धर्म की सांगीतिक परम्परा ने न केवल भारतीय संगीत को प्रभावित किया प्रत्युत, इस देश के साथ–साथ तिब्बत, चीन तथा हिन्देशिया जैसे देशों को भी प्रभावित किया है।[17] कहा जा सकता है कि संगीत, मानवीय क्रिया–कलापों तथा क्रमिक विकास में एक विशेषक के रूप में कार्य करता है। यही इसकी ऐतिहासिक भूमिका है।

सन्दर्भ–सूची

1. राम अवतार : भारतीय संगीत का इतिहास, नई दिल्ली
2. शर्मा, अमल कुमार दास : विश्वसंगीत का इतिहास। शर्मा, डॉ. सत्यवती, संगीत का समाजशास्त्र
3. कुमार अरविन्द : प्राचीन भारत में संगीत, समाजार्थिक संदर्भ में, पृ. 255
4. लाहा, बी. सी. : इण्डिया ऐस जडिस्काइब्ड इन इन अर्ली टेक्स्ट ऑफ बुद्धिज्म एण्ड जैनिज्म नई दिल्ली।
5. अर्थपाद सुत्त, भूमिका, पृ. 1
6. मुखर्जी, आर. के. : एन्श्यण्ट इण्डियन एजूकेशन, पृ. 470
7. दीर्घनिकाय, पृ. 6
8. वही
9. चकलादार : सोशल लाइफ इन एन्श्यण्ट इण्डिया, पृ. 85
10. अर्थपाद, सुत, पृ. 152
11. फाक्स स्ट्रैंगवेज, म्युजिक ऑफ हिन्दुस्तान, पृ. 81
12. राय, मन्मथ; प्राचीन भारतीय मनोरंजन, पृ. 57
13. वही
14. अंगुत्तर निकाय, 3, पृ. 375, डायलाग्स ऑफ बुद्धा 2, पृ. 300
15. श्रीवास्तव, धर्मावती, प्राचीन भारत में संगीत, पृ. 29
16. वही
17. वही

* * * * * *

(Peer Review Approved Journal) ISSN No. - 2319–5908

History : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page 348–357

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

कौशाम्बी का आर्थिक विश्लेषण

*डॉ0 तेज बहादुर यादव**

उत्खनन से पता चलता है कि वर्तमान कौशाम्बी में कुछ धरती के ऊपर है, तो कुछ धरती के नीचे भी है, जिसका पता लगाया जाना समीचीन होगा। गौतम बुद्ध के समय कौशाम्बी अपने ऐश्वर्य के मध्यकाल में था।[1] घोषिताराम विहार क्षेत्र से प्राप्त सिक्के एवं मुहरें छठीं शताब्दी के वैभवषाली कौशाम्बी का अनुमोदन करते पाये जाते हैं।[2] डॉ० आर०एन० पाण्डेय के अनुसार कौशाम्बी–काल भौतिक समृद्धि तथा सम्पन्नता का युग था। इस काल में दूसरी बार उत्तर भारत की गंगाघाटी का नगरीकरण हुआ था। आर्थिक तकनीकि विकसित हुई। पुरातात्विक भाषा में इसे उत्तरी काली चमकीली पात्र परम्परा (एन०बी०पी० वेयर) के चरण की शुरुआत मानी जा सकती है। इस काल में इन मृद्भाण्डों का प्रयोग बुद्ध के काल में उत्पादन में प्रयोग किया जाता था। दोनों में लोहे के उपकरणों का उपयोग किया जाता था, जिससे कर–वसूली तथा लेन–देन में आहत सिक्कों का चलन था।[3]

कौशाम्बी काल में बौद्ध एवं जैन धर्म के प्रभाव में आने पर जीव हत्या से बचने के लिए वैष्य वर्ग कृषि कार्य करना बन्द करके व्यापार में लग गये थे, फिर भी ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों लोग कृषि करते थे। भारद्वाज ब्राह्मण के पास पाँच सौ हलों की खेती थी और उदय ब्राह्मण अच्छा किसान था। क्षत्रिय भी खेती करते थे।[4]

कौशाम्बी जनपद का भू–भाग समतल और उपजाऊ है। गंगा और यमुना नदियों के बीच का भू–भाग होने के कारण यह एक अत्यधिक उर्वरक क्षेत्र है। यहां की भूमि पर खेती के लिए गंगा और यमुना नदियों का महत्वपूर्ण योगदान था। इस क्षेत्र की शेष भूमि भी समतल और खेती के लिए बहुत अच्छी थी। भूमि का ढलान प्रायः एक–सा रहता था। मंझनपुर एवं सिराथू में नदियों के किनारे बलुई मिट्टी पायी जाती है। इसके ऊपर बालू का मिश्रण धीरे–धीरे घटता जाता है। यहाँ मटियार मिट्टी का फैलाव आ जाता है। नदी से दूरी ज्यों–ज्यों बढ़ती जाती है, मटियार एवं लोच का प्रादुर्भाव होने लगता है।

बुआई के पूर्व खेत को कृषि औजारों से तैयार किया जाता था। इसमें हल, फावड़ा[5], कुल्हाड़ी[6], हथौड़ी, कुदाल, हँसिया आदि मुख्य थे।[7] हल–फाल यंत्र के साथ दो बैलों के सहारे जोते जाते थे। खेत जोतने की क्रिया 'कर्मान्त' कही जाती थी।[8] निरन्तर प्रयास से खेत तैयार होते थे, उनमें बोने के पूर्व पाटा चला देते थे।[9] हल के बारे में उल्लेख मिलता है कि हल के मुख्यतः तीन भाग होते थे– ईशा या हलस (संस्कृत हलीशा) जिसे आज उत्तर भारत में हरिश कहते हैं, पोत्र (बीच का भाग) तथा लोहे की बनी कुशी (अयोविकार) जो पोत्र में लकड़ी की सहायता से मढ़ी रहती है। कुशी को वैदिक भाषा में फाल कहते थे। पालिग्रंथों में इसके लिए अयंगल शब्द का प्रयोग किया गया है। फाल का निर्माण सामान्यतः लोहे की सहायता से ही किया जाता था। कुछ लोगों का विचार है कि कृषि कार्य में लकड़ी के फाल का भी उपयोग किया जाता रहा होगा।

तैयार खेत में शुभ तिथि[10] देखकर उन्नत किस्म के बीज बोने का प्रावधान था। धान के लिए आषाढ़ मास के शुक्ल पक्ष से भाद्रपद मास तक का समय उत्तम माना गया था।[11] गेहूँ–जौ बोने के लिए कार्तिक एवं मार्गशीर्ष शुक्ल पंचमी से सप्तमी तक का समय उपयुक्त था।[12] शाक्य लोग बोने का एक उत्सव मानते थे, जिसमें एक हजार हल साथ–साथ चलते थे, उसमें अमात्यों के साथ राजा भी खेत जोतते हुए बुआई करते थे। रोपाई को संस्कृत

में 'रोपेति', पाली में 'बीजानिपतिट्ठपेति', जैन ग्रंथों में उक्खाराणिहुए कहा गया है। जैन ग्रंथ में धान की रोपाई की प्रक्रिया का विषद् विवेचन किया गया है।

सिंचाई का दूसरा महत्वपूर्ण साधन कुआँ था।[13] बैलों के माध्यम से मोठ (चरस) एवं रहट (चक्कवट्क, चक्कावट्टक, चकावर्त करहट) द्वारा पुरवट (पुर, करकटक) पद्धति से भी सिंचाई की जाती थी।[14] तालाब[15], पुष्कारिणी[16], जलाशय[17] आदि में एकत्रित जल से भी सिंचाई की जाती थी। इन जलाशयों में दौरी छोपकर[18], ढेकुली (तुल)[19] द्वारा, मषक[20] एवं घड़ा[21] द्वारा सिंचाई करते थे। उपजाऊ भूमि में भी समय से सिंचाई आवष्यक होती थी, अन्यथा बीज नहीं जमता था।[22] सिंचाई के लिए सदैव तत्पर रहना पड़ता था।[23] सावधानी यह रखनी होती थी कि बड़ी जड़ों वाली फसल को अधिक तथा छोटी जड़वाली फसल को कम पानी देना होता था।[24]

कौशाम्बी में अन्नाहार के साथ शाक–सब्जी भी खायी जाती थी। शाक–सब्जी के अन्तर्गत लोग करेमू, चौराई, मेथी, मरचा, पालक आदि का सेवन दाल अथवा आलू में मिलाकर एवं अलग से भी पकाकर खाते थे। धनिया एवं हरी मिर्च को भी उपयोग में लाया जाता था। मूली एवं चुकन्दर के अतिरिक्त गाजर, ककड़ी, खीरा का सलाद खाते थे। हरी सब्जियाँ लोग अधिक पसन्द करते थे। आलू, तालकन्द, कटहल की भी सब्जी बनती थी। लौकी, कोहड़ा, नेनुआ, तरोई, कच्चा पपीता, कच्चा कटहल भी सब्जी के काम आते थे। नीम का पुष्प, मन्दार का पुष्प आलू में मिलाकर खाते थे। क्षत्रिय लोग प्याज नहीं खाते थे।[25]

कौशाम्बी के लोग फलों के शौकीन थे। छायादार एवं फलदार दोनों प्रकार के वृक्षों को लगाते थे। वृक्षों के लगाने से वर्षा भी होती थी और प्रदूषण भी समाप्त होता था। यद्यपि मुनियों का जीवन तो वन पर्वतों पर पाए जाने वाले कन्द–मूल–फूलों[26] पर ही व्यतीत होता था। वनों से वनस्पतियाँ और औषधियाँ भी संकलित की जाती थीं।[27] अरण्य[28] कई एक थे, जिनको चोरों का वन, प्यालों का वन, भूतों का वन, निर्जल वन आदि कहते हैं।[29] वनों में लकड़ी प्रदान करने वाले अधिक वृक्ष होते थे।[30] तृणाच्छादित वनों में पषुओं के लिए चारागाह उपलब्ध होता था।[31] बेंत के भी वन होते थे। वहाँ बांस[32] भी कई प्रकार के मिलते थे। चन्दन[33] की लकड़ियाँ प्रायः सभी के घरों में होती थीं।

कौशाम्बी में कृषि के साथ–साथ पशु–पक्षी पालन का भी कार्य होता था। रीछ, सिंह, व्याघ्र जैसे जंगली एवं नरभक्षी मानकर मार दिये जाते अथवा जंगलों में रहने दिए जाते थे। हाथी (नाग या कुंजर) को पालतू बना लिया गया था। भारवाहन, सवारी ढोने तथा युद्ध में उसका अधिक उपयोग होने से पालतू हाथियों की संख्या बढ़ गयी थी। दूध के लिए गाय, भैंस, भेड़, बकरी, खेत जोतने के लिए बैल एवं भैंसा तथा बैलगाड़ी के लिए बैल, भैंसा, रथ के लिए घोड़ा, सवारी एवं भार ढोने के लिए हाथी, घोड़ा, ऊँट आदि को महत्व दिया गया था। पक्षियों से भी मांस, आहार के साथ ही कुछ अन्य लाभ पाने के प्रयास किए गए थे।

कौशाम्बी के पास वनाच्छादित पर्वतीय भूमि पर्याप्त मात्रा में थी। उसमें न बोये जाने योग्य भी काफी थी, जिसे पशुओं के लिए चारागाह के रूप में उपयोग में लाते थे। डॉ० आर०एन० पाण्डेय ने कहा है कि उस समय पशुओं के चरने के लिए गाँव की कृषि योग्य भूमि में संलग्न चारागाह होते थे। इन पर गाँव का सामूहिक अधिकार होता था। चारागाहों में जानवरों को ले जाने तथा चराने के लिए गोपालक (ग्वाले) रहते थे। ये प्रत्येक घर से प्रायः पशु को ले जाते थे तथा सायं वापस करते थे। इन्हें पशु–स्वामियों की ओर से पारिश्रमिक मिलता था।[34] चारागाहों के आगे प्रायः जंगल होते थे। पालतू पशु भूल से अथवा भटकते हुए जंगलों में चले जाते थे, तो वहाँ से हिंसक पशुओं के शिकार भी हो जाते थे। इसकी जिम्मेदारी ग्वाले पर होती थी। इसलिए वह प्रायः वनांचल छोर पर रहकर पषुओं को चराने का कार्य करता था। चारागाहों की यह पर्याप्तता क्रमशः घटती जा रही थी और छठी शताब्दी ई०पू० तक वनों का भी विस्तार सिकुड़ता जा रहा था, क्योंकि ग्रामों की जनसंख्या बढ़ते जाने और बस्तियों के विस्तार होने से जंगल साफ किए जाने लगे थे।

पशुपालन का कार्य वैदिक काल से ही चला आ रहा है। कौशाम्बी काल में भी वह कार्य प्रगति पर था। चूँकि कृषि–व्यवसाय का अधिकांश कार्य पशुओं द्वारा होता था। अतएव पशुपालन उस समय भी अपरिहार्य था। परिवहन

का साधन उतना विकसित नहीं था। इसलिए सवारी और भार ढोने के लिए लोग पषुओं को ही प्रयोग में लाते थे। सीधे उन पर भार लादकर सवारी करके अथवा निर्मित की गयी गाड़ी में उसको जोतकर रथ अथवा बैलगाड़ी vkfn ds: i esA ;gh dkj.k Fkk fd ml le; Hkh xkM+h k{ks esa i"kqvksa dh l[;k cgqr vf/kd FkhA[35]

कौशाम्बी की मृण्मूर्तियों एवं खिलौनों में भार ढोने वाले पशुओं एवं गाड़ियों के कुल फलक मिले हैं। बैलगाड़ियों में भली–भाँति सजे हुए बैल जोते जाते थे। बैलों के सींग चोखे होते थे। उनके गले में घण्टियाँ बजती थीं और स्वर्णिम रस्सियों से उनको अलंकृत किया जाता था। उनके सिर पर नील कमल खोंसे जाते थे।[36] जिस गाड़ी में घोड़े जुते होते थे, उनको रथ कहते थे। बैलगाड़ी को भी लोग सामान्यतया रथ ही कहते थे। तत्कालीन रथ (बैलगाड़ी) का एक फलक इलाहाबाद संग्रहालय में रखा है।[37] इलाहाबाद संग्रहालय में रखे हुए एक फलक में घोड़ा दौड़ता हुआ सवार है, जिसकी कमर में कटार है।[38] दूसरे फलक में घोड़े पर सवार पुरुष नहीं, बल्कि स्त्री है, जो यह स्पष्ट करती है कि घुड़सवारी का आनन्द न केवल पुरुष अपितु स्त्रियाँ भी उठाया करती थीं।[39]

कौशाम्बी नरेश उदयन को हाथी प्रिय था। वह युद्ध भूमि में हाथी पर सवार होना अधिक पसन्द करता था। वासवदत्ता के साथ जब वह अपने देश वापस आया, तो उस समय भी वह हाथी पर ही सवार था। हाथ स्वयं वासवदत्ता चला रही थी और उदयन पीछे बैठा था। वह हाथी भी वासवदत्ता की निजी सवारी थी। इसलिए उसके भागने में उस हाथी ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। यही कारण था कि कौशाम्बी में बच्चों के खेलने के लिए जो खिलौने बनते थे, उनमें यह दृश्य अधिक संख्या में रहता था। कौशाम्बी उत्खनन में अनेक मृण्मूर्तियाँ एवं मृत्फलक मिले हैं। बौद्ध ग्रन्थों में हस्तिवाहिनी, अथवा राज–हस्तिवाहिनी[40], हस्तिमहामात्र[41], राजकीय हस्तिशाला[42], हस्तिमण्ठ[43] अथवा पीलवान, महावत, हस्ति–विद्या[44] आदि का उल्लेख हुआ है।

भारत कला भवन वाराणसी के एक फलक में हाथी अपनी सूंड़ से एक वृक्ष के तने को उखाड़ता हुआ अंकित है। हाथी के गले में मोतियों की माला है। पिछले पैर का निचला भाग खण्डित है तथा फलक के रिक्त स्थान पर मोतियों की सज्जा है। इससे पता चलता है कि हाथी पाली जाती थीं। उनको मोती आदि आभूषणों से भी सजाया जाता था। किसी तरह से हीरे–मोती से कम नहीं आँकी जाती थी। चूँकि हाथी के अत्यधिक फल्क मिले हैं, इससे यह भी आभास होता है कि उस समय हाथी पालना राजाओं के लिए बहुत आवश्यक था, क्योंकि वह वाहन के उत्तम साधन तो थे ही, युद्ध में भी काम आते थे।[45] इलाहाबाद संग्रहालय में रखे गए प्रथम शती ई०पू० के एक अन्य फलक में हाथियों के पैर उठे हुए हैं और उन पर सवार होकर आपस में युद्ध कर रहे हैं।[46]

पालतू पशुओं की भाँति पालतू पक्षियों का भी उल्लेख अनेक ग्रंथों में हुआ है। मांसाहारी लोग मुर्गा, कबूतर, सारस, हंस, तितर, मोर आदि को पालते थे। बाज पक्षी को इसलिए पालते थे कि वह अन्य पक्षियों को पकड़कर लाता था। तोता, मैना, कोयल की बोली प्रिय लगती थी और तोता–मैंना तो मनुष्यों जैसी बोली बोला करते थे। हंस, कबूतर सन्देश पहुँचाने का कार्य करते थे। महाभारत[47] के अतिरिक्त कालिदास[48], शूद्रक[49], बाणभट्ट[50], वात्स्यायन[51] आदि ने शुक्र–क्रीड़ा के अन्तर्गत पक्षी पालन कार्य को महत्व दिया है। कौशाम्बी उत्खनन में इससे सम्बन्धित मृत्फलक भी मिले हैं, जिससे पता चलता है कि तत्कालीन समाज में पक्षी–पालन का कार्य भी होता था। यह कार्य बहेलिया जैसी जाति के लोग करते थे। वे पक्षियों को पकड़कर बेचते थे और पक्षी–पालन सभी जाति वर्ग के लोग अपनी पसन्द के अनुसार उन पक्षियों को खरीदकर उनको पिंजरे में बन्द करके पालते थे। कौशाम्बी से प्राप्त शुक[52] और बैल[53] के गले में पड़ी क्रमशः माला एवं घण्टी इस बात की प्रतीक है कि उस समय लोग पक्षी और कुछ पषुओं को भी अपने हित के लिए पालते थे।

प्राचीन भारत में शिल्प–कला में कई प्रकार की विशेषताएं पायी जाती थीं। वह शिल्पों को आदर के साथ प्रोत्साहित किया गया तो कुछ को पवित्रता के आलोक में गन्दा शिल्प कहकर उसे हीन–शिल्प की संज्ञा दी गयी। शिल्पों को पुश्तैनी नाम दिया गया। जिन शिल्पों को हीन कहकर उसके शिल्पकारों ने अपने व्यवसाय के अलग–अलग ग्राम तक बना लिया। नगरों में लोगों ने अपने मुहल्ले एवं गलियों के नाम उन शिल्पों को जोड़ लिए।

शिल्पकारों ने अपने को संगठित किया और शिल्पों के अनुसार श्रेणियों के संघ बनाए गए। श्रेणियाँ भ्रमणशील भी रहती थीं। अपने उत्पादों के नाप–तौल, मजदूरी–नियंत्रण आदि के काम भी करती थी। श्रेणियाँ बैंकर का भी काम करती थीं। ये श्रेणियों के आपसी विवादों का निपटारा करती थीं। इनके पास कुछ सेना भी थी, जिससे ये कभी–कभी शासकों की निरंकुशता पर नियत्रण भी करती थी।[54]

उपरोक्त शिल्प ज्ञान को विद्वानों ने अपने–अपने ढंग से कतिपय संख्याओं के अन्तर्गत सुनिश्चित करने का प्रयास किया है और समस्त शिल्पों की संख्या न्यूनतम 4 और अधिकतम 27 बतलाया है। जातक ग्रन्थों में कुल चार शिल्पों का नामोल्लेख इस प्रकार हआ है – (1) श्रेणी अर्थात् बढ़ई की श्रेणी, (2) कम्मारश्रेणि अर्थात् लुहार की श्रेणि, (3) चम्मकारश्रेणि अर्थात् चर्मकार की श्रेणि, (4) चित्रकारश्रेणि अर्थात् चित्रकारों की श्रेणि।[55]

पाष्चात्य विचारक रीज डेविड्स ने कुल 14 शिल्पों के नामों का उल्लेख करते हैं[56]– (1) पाषाणकोट्टक (पत्थर का काम करने वाले), (2) तंतुवाय (जुलाहे), (3) कुम्भकार, (4) दन्तकार, (5) जौहरी (रत्नकार), (6) रंगरेज, (7) मछुवाहा, (8) कसाई, (9) शिकारी, (10) रसोइया, (11) नाई (12) मालाकार, (13) नाविक तथा (14) बाँसकर (डलिया बनाने वाले)।

कुछ जातकों में 18 शिल्पों का नाम लिखा मिलता है। प्राचीन जैन–ग्रन्थ जम्बूदीपप्रज्ञाप्ति में भी इतने ही शिल्पों के नाम इस प्रकार दिए हैं[57]– (1) कुम्भकार, (2) पट्टैल (तंतुवाय), (3) सुवर्णकार, (4) सुवाकार (रसोइया), (5) गान्धव (संगीतज्ञ), (6) कासवग्ग (नाई), (7) मालाकार, (8) कच्चकार (रस्सी बनाने वाले), (9) तम्बोलिय (पान बेचने वाले–बरई), (10) चम्मयूरू (चर्मकार), (11) जन्तपिलग (गन्ना पेरने वाले), (12) गंजिय (निम्न जातीय व्यक्ति), (13) चिम्पाय (कपड़ा छापने वाले रंगरेज), (14) कँसागार (ठठेरा), (15) सीवग (दर्जी), (16) गुवार (गोपालक), (17) भिल्ल (जाति) तथा (18) धीवर (मछुवाहा)।

उपरोक्त वर्णकों के आधार पर कहा जा सकता है कि चूँकि उस समय की राजकीय शोभा यात्राओं में कुल 18 श्रेणियां शामिल होती थीं। इससे यह पता चलता है कि शिल्पों की संख्या उस समय 18 रही होगी, परन्तु उन सभी पर प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से षासक का नियंत्रण भी रहता था, ताकि राज्य की आवश्यकता के अनुरूप ही वे शिल्पीगण उत्पादन सम्बन्धी अपना कार्य सम्पन्न कर सके। यहाँ यह भी कहा जा सकता है कि जितने प्रकार के शिल्प थे, अपने ही प्रकार के शिल्पी अथवा श्रमिक (मजदूर) भी थे। सभी प्रकार के शिल्पी अथवा श्रमिक मजदूर अपने–अपने शिल्प ज्ञान के अनुसार उद्योग धन्धों में लगे थे। शिल्प की प्रशंसा में बौद्ध ग्रन्थों में किया गया है।[58]

कौशाम्बी में सबसे बड़ा उद्योग 'वस्त्र उद्योग' था। प्रत्येक व्यक्ति के लिए तन ढकने की आवश्यकता ने इस उद्योग को जन्म दिया था।[59] कौशाम्बी में वस्त्र बनाये जाते थे और वस्त्र के लिए प्रसिद्ध नगर काषी से वस्त्र आयात भी किये जाते थे। विविध प्रकार के वस्तुओं से बनाये गये वस्त्रों को सूतीवस्त्र, रेषमीवस्त्र ऊनीवस्त्र, क्षौमवस्त्र, वत्कलवस्त्र, षणवस्त्र, चर्मवस्त्र आदि कहते हैं। रेशमी वस्त्रों के लिए काषी (वाराणसी),[60] कम्बल तथा ऊनी वस्त्रों के लिए गान्धार एवं कोटुम्बर सूत्री वस्त्रों के लिए तथा दुषाला के लिए षिवि देष तथा महीन वस्त्र के लिए वाहिव प्रसिद्ध थे। काशी के बने वस्त्रों को काषिक वस्त्र (काषिकानी वस्त्राणी)[61] तथा वहाँ के रेषमी वस्त्रों को 'काषिकांषु' कहते थे।[62] वहाँ का यमली,[63] पौत्री,[64] कट्टक[65] वस्त्र भी काफी पसन्द किया जाता था। यामली से लोग अपनी कमर कसकर बांधा करते थे। डॉ० अग्रवाल ने कहा है कि यामली दो विभिन्न रंगीन सूतों को मिलाकर बनाया गया रेशमी वस्त्र था।[66] कालीन और दरियाँ कौशाम्बी में स्वतः बनती थीं तथागत को बैठने के लिए लोग कालीन दिया करते थे। सामान्य श्रेणी के लोग दरियाँ प्रयोग में लाते थे। कौशाम्बी का एक मृत्फलक ऐसा भी मिला है, जिसमें छोटी सी दरी पर चार पुरुष, दो स्त्रियाँ बैठी हुई हैं।[67] रेडीमेड कपड़े भी व्यवहार में लाये जाते थे, जो तुण्णकारा (दर्जी) द्वारा तैयार किया जाता था।

धातु उद्योग भी कौशाम्बी में विकसित पाया जाता है। वहाँ के धातु उद्योग की प्रषंसा अनेक ग्रन्थों में वर्णित है। कुछ मृत्फलक भी मिले हैं, जो यह सत्यापित करते हैं। धातुकर्मियों की अलग–अलग श्रेणियाँ भी थीं,[68] जैसे

सौवर्णिक, हैरण्यिक, ताम्रकुट्ट, लोहकार आदि। इन्हें 'पुग' और 'गण' कहते थे। मुख्य धातुकर्मी 'कुम्भार' कहे जाते थे। मज्झिम निकाय में यह पद स्वर्णकार को और जातक में लोहार को दिया गया था।

कौशाम्बी के वृहद् उद्योगों में वस्त्र–उद्योग, धातु–उद्योग के बाद तीसरे चर्म–उद्योग का नाम आता है। इस उद्योग का विकास मुस्लिम–अंग्रेज षासनकाल में हुआ था, क्योंकि प्राचीन भारत में वस्त्र–संस्कृति ही सर्वोपरि एवं प्रधान थी। उस समय अजिन (चर्म) के वस्त्र (मृगछाल एवं बाघम्बर आदि) केवल ऋषि–मुनि ही पहनते थे। कृषि एवं आत्म रक्षा में मारे गए जंगली पशुओं एवं अपनी मृत्यु से मरे पालतू पशुओं के चमड़े से ढोल, डमरु, नगाड़ा, मृदंग जैसे– वाद्य–यंत्र, सिंचाई के लिए रहत–मोट, जूते, रक्षा–कवच, ढाल, मयान, चोड़ों की लगाम, जिन, चाबुक, पानी भरने के लिए मशक, वस्तुएँ रखने के लिए बड़े थैले, धनुष की डोरी, ढेलवांस, गुलेल, धौकनी, भूसा भरकर खिलौने आदि बनते थे। छन्तजातक से पता चलता है कि उस समय चमड़े के इतने बड़े थैले बनते थे कि उसमें पीपा भरा वजन की वस्तुएँ आ जाती थी। पशु–चर्म[69] के कार्य में लगे लोगों की एक श्रेणी होती थी।[70] जिसमें चर्मकारों की अन्य एक श्रेणि होती थी। पालतू–पशुचर्म[71] और वन्य[72] पशुचर्म, दोनों ही अलग–अलग कार्यों के लिए[73] उपयोगी होते थे। चमड़े की आवश्यकता होने पर हाथी,[74] व्याघ्र, सिंह, चीता[75] आदि मार दिए जाते थे। बौद्ध काल में हिंसा वर्जित थी, फिर भी यह कार्य होता था। प्रारम्भ में चर्मकारिता का पेषा सम्मानित था, परन्तु बुद्धकाल में इसकी गणना हीन–शिल्पों की श्रेणी में किये जाने लगा था।

व्यापार की पृष्ठभूमि में अर्थ का महत्व सर्वविदित है। आर्थिक समृद्धि एवं अर्थ की संवृद्धि को ही सतयुग कहा गया है।[76] अर्थमेव प्रधानः इति कौटिल्यः के आलोक में ही कौटिल्य ने अपने राजनैतिक ग्रन्थ का नाम भी 'अर्थषास्त्र' रखा और बार्हस्पत्य[77] से भी अर्थषास्त्र का ही बोध होता है। त्रयीवार्ता (वार्ता) का अभिप्राय कृषि, पशुपालन और व्यापार ही माना गया।[78] अर्थोपार्जन अथवा धन–धान्यों की प्राप्ति के लिए अर्थ विद्या[79] का अध्ययन–अध्यापन भी होता था।

अर्थ के महत्व को कौशाम्बी के लोगों ने भी समझा था और अथक परिश्रम (मुख्यतः जोखिम–भरा हुआ वाणिज्य कर्म) से विपुल सम्पदा लाकर अपने नगर में धन धान्यों[80] की विपुल सम्पदा के कोष्ठागार[81] स्थापित कर दिया था, जिसका अनुमान तत्कालीन (बहुमूल्य धातुओं से निर्मित)[82] पात्रों के प्राप्त पुरावशेषों से लग जाता है।

कौशाम्बी के ग्रामीण एवं नगरीय आर्थिक संगठन (गठन) में अन्तर को संज्ञापित करने वाली कोई विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती थी। व्यापार आदि का कार्य सम्पादित करने के लिए व्यापारीगण एक समिति गठित करते थे, किसी एक को जेष्ठक (प्रधान) नियुक्त करते थे, जो व्यापार की दिषा तैयार करता था।[83] उद्यमियों, व्यवसायियों और शिल्पियों के संगठन को पूग और गण भी कहते थे।[84] पालि साहित्य में 18 श्रेणियों (पूग, गण) का उल्लेख है।[85] महावस्तु में भी यह संख्या मान्य है,[86] किन्तु उसमें दो वृहत् तालिकाएं[87] भी दी गयी है।

व्यापारियों का प्रत्येक श्रेणी के अपने–अपने नियम थे, जिन्हें राज्य भी मानता था। नगरों में काम करने वालों की अपनी–अपनी श्रेणियाँ थीं। इनको 'वीथी' कहते थे। बहुधा व्यवसाय परम्परागत होते थे। इस प्रकार से व्यवसाय पैतृक सम्पत्ति समझा जाता था।[88]

कौशाम्बी नगर से सेठ–महाजनों (श्रेष्ठियों) की अलग–अलग बनी श्रेणियाँ स्थानीय बैंकर्स का कार्य करती थीं। जनता का धन जमा करना तथा उन पर नियमित ब्याज देना उनका कार्य था। वे ऋण भी देती थीं तथा 12 से 9 प्रतिशत तक ब्याज लेती थीं। नगर–प्रशासन में उनका योगदान होता था। उनका कार्य पूर्णतः ईमानदारी के साथ होता था, इसलिए उनकी विश्वसनीयता असन्दिग्ध होती थी।[89]

व्यवसाय की एक से अधिक श्रेणियाँ भी होती थी। साधारणतया श्रेणियों के नाम उनके व्यवसायों से सम्बन्धित होते थे। श्रेणियाँ नैगम सम्पत्ति भी रख सकती थीं। वे नियम–विनियम बना सकती थी, जिनका उल्लंघन करना राजद्रोह माना जाता था।

पण्य (बाजार वस्तुओं) के मूल्य निर्धारण एवं नियंत्रण की कोई सरकारी एजेंसी नहीं थी। डॉ० आर०एन० पाण्डेय ने लिखा है कि पण्यों के व्यापारी तथा खरीददार इसे मोल–भाव तथा माल की गुणवत्ता तथा उसकी उपलब्धि–अनुपलब्धि के आधार पर स्वतः तय करते थे। राज्य की ओर से जो वस्तुएं खरीदी जाती थीं, उनकी कीमत निश्चित रहती थी। यह कार्य अग्गकारक नाम अधिकारी के जिम्मे था। यह इस बात की कोशिश करता

था कि वस्तुओं की कीमत कम–से–कम देनी पड़े। इसके द्वारा निर्धारित मूल्य शासक द्वारा कम भी कर दिया जाता था। जातक कथाओं में इसके द्वारा घूस (उत्कोच) लिए जाने का उल्लेख मिलता है।[90]

प्रो० परमानन्द सिंह ने लिखा है कि पण्यों का मूल्य राजकीय अधिकारी निश्चित करता था और प्रायः व्यापारी से रिश्वत लेकर मूल्य अधिक निर्धारित करता था। दूसरी तरफ वह रिष्वत नहीं पाने अथवा कम पाने से मूल्य कम निर्धारित करता था। उस अधिकारी को 'अर्थकारक'[91] कहते थे। वैसे वस्तु की आमद, व्यापारी के परिश्रम आदि, सभी को ध्यान में रखकर वह व्यापारियों को उचित मूल्य दिलवाने का प्रयास करता था।[92] गृहपति (व्यापारी) वस्तुओं का मूल्य स्वयं इसलिए निर्धारित नहीं करते थे कि उनकी धारणा थी कि ऐसा करना मनुष्य (उपभोक्ता) के प्राण लेने के समान था, इसीलिए वह दूसरों द्वारा निर्धारित मूल्य पर ही वस्तुएं बेचते थे।[93]

कौशाम्बी काल में वस्तु विनिमय सामान्य रूप से प्रचलित रहा, किन्तु मुद्रा का विकास हो जाने से विनिमय का साधन मुद्रा हो चुकी थी। इसके प्रमाण घोषिताराम क्षेत्र से प्राप्त मुद्राएं एवं मुहरें हैं। अशोक–स्तम्भ क्षेत्र से जो तीन स्तर (श्रेणी) के मृद्भाण्ड प्राप्त हुए हैं, उनमें तीसरे लाल रंग के मृद्भाण्डों के स्तर से मित्र–षासकों के सिक्के प्राप्त हुए हैं, जिनकी तिथि द्वितीय शताब्दी ई०पू० निर्धारित की गई है। साथ ही कुषाण सिक्के भी प्राप्त हुए हैं।[94] वे सिक्के प्रायः ताम्र निर्मित पाए गए हैं और उनकी प्रारम्भिक तिथि तीसरी शताब्दी ई०पू० निर्धारित की गई है।[95] डॉ० गोविन्दचन्द्र पाण्डेय का कहना है कि बुद्ध के समय में ही भारतीय संस्कृति सर्वप्रथम 'द्रव्य के युग' में अवतीर्ण हो रही थी, जिसे श्रमणों का ही नहीं, अपितु श्रेष्ठियों का युग कहना उचित होगा।[96]

यातायात के दो साधन थे – स्थल मार्ग और जल मार्ग।

स्थल मार्ग के व्यापारी कभी–कभी 500–500 गाड़ियों के साथ लेकर चलते थे। वह एक कारवां के रूप में होता था और उसका नेता 'सार्थवाह' कहलाता था। व्यापारी अपने साथ खाने–पीने की समस्त वस्तुएं, पानी भरे मटके, स्थल–पथ–कार्मिक (सुरक्षाकर्मी),[97] दिशा–प्रदर्शक[98] यंत्र आदि साथ लेकर चलते थे। निश्चित स्थानों पर वे चुंगी तो दे लेते थे, परन्तु निरर्थक कार्यों में अपना धन नष्ट नहीं करते थे।[99] यही कारण था कि गरीब व्यापारी क्रमशः धनवान हो गए थे और जिनके पास कभी कुछ नहीं था, वे भी मालामाल हो गए थे।[100]

स्थल–व्यापार के प्रसिद्ध केन्द्र ये थे– वाराणसी,[101] सुपीरक,[102] श्रावस्ती,[103] कपिलवस्तु,[104] राजगृह[105] आदि। कौशाम्बी भी एक व्यापारिक केन्द्र था। सभी व्यापारिक केन्द्र सभी स्थानों से (स्थल एवं जलमार्गों से) जुड़े हुए थे। कौशाम्बी–उत्खनन में सड़कों के अवशेष मिले हैं, जो सड़क–निर्माण कला के अन्तर्गत किया गया है। कौशाम्बी में सड़कें भी थीं, जिनका उपयोग व्यापारी एवं यात्री, दोनों ही करते थे। सड़कों की त्रिमुहानी, चौमुहानी, दोमुहानी आदि होते थे। सड़कों (मार्गों) की त्रिमुहानी को 'त्रिक', चौमुहानी को 'चतुष्क' और अधिक सड़कों के संगम (चौराहों) को 'चच्चर' कहा जाता था।[106]

वन मार्ग की कठिनाइयाँ में वे सिंह, व्याघ्र, गैंडा, हाथी, वनदेवता का भय, उदकभय, चोरभय आदि।[107] राक्षसी वणिजों को खा जाती थी।[108] पानी और वनों में रहने वाले देवता भी कभी–कभी रोक देते थे और गाड़ियों को आगे बढ़ने नहीं देते थे।[109] कभी–कभी गाड़ियाँ ही टूट जाती थीं।[110] कभी गाड़ियों के पहिये भूमि में धंस जाते थे और गाड़ी आगे नहीं बढ़ पाती थी।[111] ऐसी स्थिति में व्यापारी बड़ी मुसीबत में फँस जाते थे।[112] भ्रमवश सही रास्ते से भटककर रेगिस्तान पहुँच जाते थे। अतः यात्राएं सावधानी से की जाती थी।[113]

वे राक्षसी प्रकोपों से बचने के लिए व्यापारीगण तंत्र–मंत्र, जादू– टोना करने वाले तांत्रिकों, ज्योतिषियों तथा पंडा–पुजारियों को भी साथ–साथ ले जाते थे। उनका विश्वास था कि पूजा–पाठ करते रहने से देवी–देवतागण तथा उनके सामानों की रक्षा करेंगे और वे निर्विघ्न व्यापारिक यात्राएँ कर सकेंगे। रास्ते में अथवा वापस आने के बाद वे देवी–देवताओं को पशु–पक्षियों की बलि भी चढ़ाते थे।[114]

आन्तरिक व्यापार अधिकांशतः स्थल–मार्ग से किया जाता था। नगरों को जोड़ने वाले राजमार्ग[115] भी व्यापार कार्य के लिए खुले रहते थे। वीथियों[116] में सजी दुकानें नगरों की षोभा बढ़ाती थीं। वहाँ विभिन्न प्रकार के सामानों

का क्रय–विक्रय होता था।[117] फेरी वाले अपने सामान गधे, घोड़े, बैल, मजदूरों, गाड़ियों आदि पर लादकर गली–गली में घूम–घूम कर बेचते थे।

मौर्य काल के पष्चात् ईस्वी षती के आरम्भिक युग तक भारत का पष्चिमी देषों से स्थल–मार्ग से होने वाला व्यापार प्रायः बन्द हो गया था, क्योंकि भारत से बाहर जिन–जिन देषों से होकर वह मार्ग जाता था, उसकी राजनीतिक परिस्थिति शांतिमय नहीं रह गई थी। फिर भी मेसोपोटामिया और मिस्र (सिकन्दरिया) से व्यापार होता था।[118] ईस्वी शती के आरम्भिक युग में भारत का एशिया के पश्चिमी देषों से तथा चीन से स्थल मार्गों से पुनः व्यापार चलने लगा।

जल मार्ग में (नदी मार्ग, समुद्र मार्ग) से व्यापार कार्य सस्ता (कम खर्चीला) पड़ता था, परन्तु समुद्री मार्ग में जान–माल का खतरा बहुत था। जल राक्षसों,[119] समुद्री डाकुओं, जीव–जन्तुओं, मकर–मत्स्य[120] जो जहाजों को टक्कर मार कर क्षत–विक्षत् कर देते थे।[121] समुद्री तूफानों[122] (वन–वृष्टि) से भयभीत एवं पीड़ित व्यापारी रोते–चिल्लाते[123] तथा विभिन्न देवी–देवताओं[124] की प्रार्थनाएं करते थे। फिर भी दुःख सहने पड़ते थे।[125]

जल मार्ग के व्याारियों का सहयोग सार्थवाह और जलयान– चालकों द्वारा किया जाता था। सार्थवाह व्यापारिक क्षेत्र में विज्ञ होते थे। उनके सहयोग–सौहार्द्र[126] से ही व्यापारी यात्राएं कर पाते थे। सार्थवाह विभिन्न प्रकार से व्यापारियों की सहायता करते थे।[127] जलयान चालकों को कर्णधार और महाकर्णधार कहते थे। वे लोग परिचित देश की हानिकारक वस्तुओं से उन व्यापारियों को अवगत कराते रहते थे। व्यापारी स्वयं भी नाविक विद्या में पारंगत होते थे।[128] स्त्री व्यापारी भी कदाचित् उस समय व्यापार–कार्य करती थी, परन्तु इनके सन्दर्भ कम मिले हैं। जल मार्ग से कम्बोडिया जाकर व्यापार करना किसी भी स्त्री के लिए उपयुक्त नहीं माना जाता था।[129]

जल–मार्ग के व्यापारीगण रत्न, मणि और स्वर्ण आदि लाने के लिए अपने देष की प्रभूत मुद्राएं लेकर जाते थे।[130] कम होने पर वे राजाओं से भी उधार ले लेते थे।[131] तत्कालीन विदेशी व्यापार के मुख्य पण्य ये थे– हीरे, बिल्लौर, मणि, मूगे, स्वर्ण, चाँदी, नीलमणि, लौह (अयस), विपु, जस्ता, सीसा आदि।[132]

सन्दर्भ-सूची

1. माथुर, विजयेन्द्र कुमार : ऐतिहासिक स्थानावली, पृ० 243.
2. डॉ० नीहारिका : प्राचीन भारतीय पुरातत्व अभिलेख एवं मुद्राएं, वाराणसी 2007, पृ० 104.
3. पाण्डेय, डॉ० आर० एन० : प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, इलाहाबाद, 1975, पृ०–89
4. सुत्तनिपात, भाग–1, पृ० 138–139, अवदान जि० 295/6, दिव्यावदान 47/32, जातक।
5. सुत्तनिपात पृ० 15, इन्द्रनाम ब्राह्मणावदान, पृ० 47.
6. दिव्यावदान 77/10, महावस्तु जि. 3/50/15
7. सुत्तनिपात, पृ० 15, दिव्यावदान 47/32, जातक भाग–3, 389, 444–45.
8. लेफमैन, ललित० 128/26.
9. दिव्या० 2/21, 23–24, 43, 131, 31, सुत्तनिपात, भाग–1, पृ० 138.
10. दिव्या० 414/24–25.
11. वही, 415/20–21.
12. वही, 415/22–23 एवं थेरीगाथा 66/260 पृ० 82
13. दिव्या० 1/12, 21/12, बुद्धचरित 2/12, मित्रा (ललित०) 558/6.
14. विनयपिटक, चुल्लवग्ग, 432.
15. जातक, भाग–5, 502/11, भाग–1, पृ० 472.
16. वही, भाग–1, पृ० 473, सौन्दरानन्द, पृ० 1/50.
17. सौन्दरानन्द 11/61, बुद्धचरित 21/16.
18. जातक, भाग–1, 36/327.
19. विनयपिटक, चुल्लवग्ग 432.

20. जातक, भाग–1, 268 पृ० 70
21. वही, भाग–5, 505 / 33.
22. बुद्धचरित, 12 / 72.
23. जातक, भाग–3, 268, पृ० 70.
24. अंगुत्तरनिकाय, भाग–1, पृ० 247.
25. दिव्या० 264 / 9–10.
26. बुद्धचरित 11 / 17; महावस्तु जि० 3 / 113 / 9; सन्दर्भ 169 / 9, मित्रा, ललित०, 312 / 7.
27. लेफमैन, ललित०, 261 / 2.
28. लैफमैन ललित०, 261 / 2.
29. जातक, 1 / 177, महावस्तु, भाग–3, 30314–6.
30. दिव्या० 4 / 22–25.
31. विनयपिटक, चुल्लवग्ग, पृ० 453.
32. जातक भाग–5, 505137, मिलिन्दपञ्ह, पृ० 130, निकाय 71.
33. महावस्तु जि० 21309 / 18–19, 21310 / 1–4, अवदान नि० 1 / 154 / 3–4.
34. पाण्डेय, डॉ० आर०एन० (पूर्वोद्धत), पृ० 108.
35. दिव्यावदान, 78 / 10.
36. स्वप्नवासवदत्ता परिच्छेद 3.
37. ई०सं०सं० 5075.38 ई०सं०सं० 5298.
39. वही, 5 / 72.
40. महावस्तु, जि० 1 / 453 / 12.
41. वही, जि० 2 / 456 / 13 / 17, 2 / 456.
42. वही, जि० 2 / 454 / 4–8, 2 / 456 / 8.
43. वही, जि० 2 / 454 / 4–8, 2 / 456 / 8.
44. वही, जि० 2 / 423 / 16.
45. मा०क०म०सं० 22496.
46. ई०सं०सं० 4851.
47. महाभारत (सभापर्व), अध्याय–139, श्लोक 60.
48. कालिदास : मेघदूत (उत्तर भाग), कुमारसंभव एवं ऋतुसंहार 5 / 26.
49. बाणभट्ट : कादम्बरी (अग्रवाल वासुदेवशरण : कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन) पृ० 181.
50. शूदक : मृच्छकटिकम (अंक–4, पृ० 133, अनुवादक कमरिकर)।
51. वात्स्यायन : कामसूत्र (अध्याय–3)।
52. डी० / 4.
53 ई. / 96.
54. विनय विटक, 4, 220.
55. वही, 2, 18
56. रीज डेविडस, बुद्धिस्ट लीजेण्ड्स
57. जातक,
58. शिल्प लोके प्रशंसन्ति शिल्प लोके अनुत्तरी। सुषिक्षितेन वीणायां धनस्कन्धों में आहतो।। – मजूमदार आर०सी० वही।
59. दिव्यावदान 132 / 7–8.
60. अगुत्तर निकाय भाग–1 पृ.–148, दिव्यावदान 196 / 93 थेरीगाथा 711379
61. महावस्तु 2 / 458 / 16, 3 / 13 / 15, दिव्या 16 / 29–30.
62. दिव्या० 196 / 13.
63. वही, 179 / 5, 17, 26.
64. वही, 158 / 22.

65. वही, 17/30, 31 18/1, 2.
66. वही 18/30, 30.
67. इ.स.स. 2589.
68. वही 95/24, महावस्तु जि. 3/144/4, 3/392/6–7.
69. महावस्तु जि. 2/213/7
70. दिव्यावदान 12/6.
71. अंगुत्तरनिकाय भाग 2 पृ.–262, 217.
72. विनयपटिक 290.
73. थेरीगाथा 265/83.
74. महावस्तु जि. 2/213/7.
75. वही 2/2/317, जातक 6/540/8–9 विनयपटिक महावग्ग पृ.–209.
76. बुद्धचरित 21/64.
77. लैकमैन ललित 15/21.
78. दिव्या० 59/23 कौ०अ० 1/14/1/32.
79. लैकमैन, ललित; 156/21.
80. दिव्या० 284/3, 27, 28.
81. लैकमैन ललित. 24/17.
82. ललित. 495/11.
83. जातक भाग–4 493/559.
84. अवदान जि. 1/330/4, दिव्या 95/24.
85. महावस्तु जि.–1/144/4, 3/392/6–7.
86. रीज डेविड्स : बुद्धिस्ट इण्डिया पृ.–90 (लंदन 1926)
87. डॉ. अंगनेलाल : संस्कृत बौद्ध साहित्य के भारतीय जीवन पृ.–211.
88. पाण्डेय, विमलचन्द; (पूर्वाद्धृत) पृ.–251.
89. मजूमदार रमेशचन्द : प्राचीन भारत में संघटित जीवन पृ.–36–37.
90. वही पृ.–98.
91. सिंह, डॉ० परमानन्द (पूर्वाद्धृत पृ.–151–156.)
92. जातक भाग–1 5/207.
93. वही भाग–1 1/176–177.
94. डॉ. नीहारिका पृ.–103.
95. वही पृ.–232.
96. पाण्डेय, गोविन्दचन्द्र बौद्धधर्म के विकास का इतिहास पृ.–21.
97. जातक भाग–1 4/204.
98. जातक भाग–1 2/187.
99. जातक, भाग–4 458/309.
100. जातक भाग–1 4/203.
101. महावस्तु, जि० 3/286/16–18.
102. दिव्यावदान 19/29.
103. दिव्यावदान 14/9–10.
104. सौन्दरानन्द 511
105. अवदान जि० 1/129/6.
106. रापश्रेणिय 10
107. जातक, भाग–1 1/177, महावस्तु भाग–3 303/4–6.
108. महावस्तु 3/303/4–6.

109. मित्रा ललित० 253/20–21.
110. वही 493/17–18
111. वही 493/17–18.
112. वही 493/19–21.
113. अवदान. जि. 11/7/677.
114. जातक भाग–1 4/204.
115. वही भाग–4 493/559.
116. अवदान जि. 1/223/7.
117. लैफमैन, ललित० 7/18.
118. महावस्तु 3/303/4–6.
119. कोसाम्बी दामोदर धर्मानन्द ' प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता पृ.–144–45.
120. Compridge History, VOL._I
121. जातक भाग–6 पृ.–344.
122. महावस्तु जि. 3/460/2–3 दिव्या. 144/8.
123. दिव्या. 105/23, 108/15, 244/
124. करुणा 114/5, दिव्या० 25/8, 10/30.
125. करुणा. 114/5, दिव्या. 25/8, 10/30.
126. जातक भाग–1 4/204.
127. जातक भाग–1 4/204.
128. दिव्या. 358/30.
129. दिव्या. 59/19–30.
130. दिव्या0 142/27–30
131. जातक भाग–4 463/338.
132. अगुत्तर निकाय, भाग 2 पृ.–83.

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

History : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 358-366

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

गुप्त मूर्तिकला में आयुध एवं मांगलिक प्रतीक

*डॉ. विमलेश कुमार पाण्डेय**

मूर्तिकला, चित्रकला एवं अन्य ललितकलाओं में प्रतीक तत्वों का विशेष महत्त्व है। प्रतीक किसी विशेष तत्त्व अथवा देव का अभिज्ञान करने के लिए प्रतिबिम्बित किया जाता है। इनका सम्बन्ध सृष्टि की चल और अचल समस्त वस्तुओं से किसी न किसी रूप में है। प्राचीन काल से प्रतीकोपासना धार्मिक मान्यताओं से जुड़ी रही है।

कला में प्रतीक और प्रतीकोपासना के प्रारम्भिक उदाहरण हड़प्पाकालीन है। वैदिककालीन समाज धर्म प्रधान था, अतः प्रतीक–पूजा को महत्व मिला। उस युग में मनुष्य ने पृथ्वी, वायु, जल, अग्नि, नभ, वृक्ष आदि को देवतुल्य माना तथा प्रतीक रूप में उनकी वंदना की। स्मृतियों और महाकाव्यों में प्रतीकों को प्रमुख देवगणों के साथ सम्बद्ध किया गया तथा उनकी उपासना प्रचलित हुई। ऐतिहासिक काल की कलाकृतियों में प्रतीकों को देवगणों के साथ सम्बद्ध दर्शाया गया। ईसवी प्रथम शती से मूर्ति–कलागत प्रतीकों के निश्चित लक्षण निर्धारित हुए। देवी–देवताओं की विभिन्न मुद्राएं भाव–प्रतीक के माध्यम से सुनिश्चित हुईं। भाव–प्रतीकों का प्रदर्शन आसन और मुद्रा के माध्यम से किया गया। आयुध एवं वाहन प्रतीक रूप में अंकित हुए। कला को अलंकृत करने हेतु विभिन्न पशु–पक्षियों एवं मांगलिक प्रतीकों को दर्शाया गया।

गुप्तकाल में देवी और देवशक्तियों की अनेक प्रतीकों के माध्यम से विभाजित किया गया। प्रतीक लाक्षणिक आधार पर व्यवस्थित किये गये। रूपमण्डन, बृहत्संहिता, विष्णुधर्मोत्तर पुराण आदि ग्रन्थों में प्रतिमाशास्त्र और चित्र रचना की तकनीकी बारीकियों के विशद उल्लेख हैं। गुप्त युग में धार्मिक कथाओं का सजीव शिल्पांकन हुआ। प्रतीकों के माध्यम से कला में अलंकरण एवं सौंदर्य की वृद्धि हुई। गुप्त सम्राटों ने अपने द्वारा चलाये गये सिक्कों पर गरुणध्वज का अंकन कर उसे राष्ट्रीय प्रतीक के रूप में प्रतिष्ठित किया।

गुप्तकालीन मूर्तिकला में प्राप्त होने वाले प्रमुख आयुध एवं मांगलिक प्रतीकों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

(क) आयुध प्रतीक–देव प्रतिमाओं के आयुध उनकी शक्तियों के प्रतीक हैं। हाथों में धारण किये गये आयुधों द्वारा देवी–देवताओं का अभिज्ञान किया जाता है। गुप्तकला में आयुधों का सर्वप्रथम सर्वाधिक प्रयोग हुआ।

1. चक्र–वेदों में चक्र को सृष्टि एवं काल का प्रतीक कहा गया है। यह सृष्टि की गति का प्रतीकात्मक रूप है।[1] 'बौद्ध साहित्य में इसका वर्णन धर्मचक्र के रूप में हुआ। महाकाव्यों में विष्णु के चक्र को समस्त आयुधों का विनाशक एवं शत्रुओं का संहारक माना गया है।

ईसवी पर्व दूसरी शती से कलाकृतियों में चक्र को सूर्य की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति मिली। बाद में इस विष्णु के सुदर्शन चक्रायुध रूप में उनके दायें हाथ में प्रदर्शित किया जाने लगा। यह चक्र संसार के भ्रमण का प्रतीक है।

गुप्तकालीन वैष्णव कला में चक्र आयुध का प्रदर्शन अत्यन्त लोकप्रिय हआ। चक्र का आयुध पुरुष के रूप में सर्वप्रथम मूर्तन हुआ। पिपरिया, जिला सतना के उत्खनन में चक्र पुरुष की ईसवी पांचवीं शती में निर्मित एक सुन्दर प्रतिमा प्राप्त हई थी।[2] सूरतगढ़ के एक फलक पर द्विभुजी चक्र पुरुष को स्थानक मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है।[3] देवगढ़ के गजेन्द्र मोक्ष फलक पर चक्र पुरुष अंकित है। तिगवा की प्रतिमा में नसिंह चक्र पुरुष के ऊपर अपना हाथ रखे हैं। गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त विक्रमादित्य ने अपने चक्र विक्रम प्रकार के सिक्कों पर भी चक्र पुरुष को अंकित कराया। कुछ विद्वान् उसं विष्णु की आकृति मानते हैं जो अण्डाकार प्रभामण्डल के मध्य दक्षिणाभिमुख खड़े हुए प्रदर्शित हैं।

2. शंख–शंख को 'पांचजन्य' की संज्ञा दी गयी है। यह पंचजन नामक असुर के वध का बोधक है। यह

* *एसोसिएट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, सल्तनत बहादुर पी.जी. कालेज, बदलापुर, जौनपुर*

जलतत्व का प्रतीक है। मार्कण्डेय पुराण में शंख–निधि का विस्तृत उल्लेख है।[4] जैन साहित्य में शंख–निधि को समस्त वाद्यों से सम्बन्धित माना गया है। विष्णु धर्मोत्तर में शंख का उल्लेख शुभ्र वर्ण तथा सुन्दर नेत्रों वाले आयध–पुरुष के रूप में किया गया है जो मन का प्रतीक है और हरि के करकमलों में विद्यमान रहता है।

सांची और भरहुत की कला में शंख के साथ अनेक वाद्य–यंत्र प्रदर्शित किये गये हैं। मथुरा के कुषाणकालीन एक शिलापट्ट पर शंख के अतिरिक्त मृदंग, वीणा, दुदंभी आदि वाद्य दृष्टव्य हैं।[5] उस काल में निर्मित विष्णु तथा वैष्णवी दुर्गा की प्रतिमाओं में शंख को रथांग अलंकृत चक्र अथवा प्रस्फुटित कमल के रूप में प्रदर्शित किया गया। विष्णु के आयुधों में शंख प्रायः वामहस्त में प्रदर्शित रहता है।

कालिदास के विवरणों में द्वार–स्तम्भों की सज्जा के लिये शंख और पद्म का उल्लेख हुआ है। मथुरा और देवगढ़ के गुप्तकालीन मन्दिरों के द्वार–स्तम्भों पर शंख के साथ कमल–पुष्प तथा पत्रलता का मनोहर अंकन हुआ है। गुप्तकला में शंख का आयुध–पुरुष–रूप लोकप्रिय हुआ। विष्णु प्रतिमाओं में चक्र–पुरुष का आलेखन हुआ। आयुध के शीर्ष भाग पर भगवान का वरदहस्त रहता है। तत्कालीन सिक्कों पर भी सपक्ष गरुड़ के साथ पंखयुक्त चक्र पुरुष का अंकन हुआ है।

3. गदा–गदा बुद्धि का प्रतीक है। इससे दुष्टों का दमन होता है। यह विष्णु के चार आयुधों में से एक है। विष्णु की गदा को कौमोदकी कहा गया है। रामायण, महाभारत तथा पुराण साहित्य में गदा के प्रचुर उल्लेख उपलब्ध हैं। बृहत्संहिता में गदा को वासुदेव कृष्ण के पुत्र साम्ब का आयुध माना गया है। विष्णुधर्मोत्तर में इसका उल्लेख आयुध स्त्री के रूप में हुआ है।[6]

गदा के प्राचीनतम अंकन शक–क्षत्रप और यवन राजाओं के सिक्कों पर हुए हैं। कुषाण–कालीन विष्णु प्रतिमाओं में गदा को सामान्य दण्ड अथवा मुग्दर के रूप में उद्बाहु दक्षिण हस्त में दिखाया गया है। उसे हाथ में लटकाकर पकड़े हुए अथवा ऊपर उठाये हुए दोनों प्रकार से प्रदर्शित करते हैं।

गुप्तकालीन वैष्णव प्रतिमाओं में गदा के नीचे का भाग गोल न बनाकर कुंभाकार बनाया गया। वैष्णव मूर्तियों में गदा को दण्डनीति का प्रतीक और वासुदेव मूर्तियों के साथ तेज का प्रतीक माना गया। गुप्त साम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने अपने चक्र–विक्रम प्रकार के सिक्कों पर चक्र पुरुष को बायें हाथ में गदा लिए हुए दिखाया है। पिपरिया, जिला सतना से प्राप्त प्रतिमा में मानवाकार गदा देवी का सुन्दर अंकन है।[7] तिगवा से प्रापत प्रतिमा में चतुर्भुजी नृसिंह अपना एक हाथ गदा देवी के मस्तक पर रखे हुए प्रदर्शित हैं। विष्णु–प्रतिमाओं के अतिरिक्त गदा आयुध का अंकन दुर्गा तथा हनुमान के साथ भी हुआ।

4. पद्म–पद्म को वैदिक, बौद्ध और जैन–तीनों धर्मों में पवित्रता का प्रतीक माना गया। विष्णु की प्रतिमाओं में उनके चौथे हाथ में पद्म प्रदर्शित किया जाता है। इसे सम्पूर्ण विश्व की उत्पत्ति का प्रतीक माना गया है। पद्म का अंकन सूर्य, लक्ष्मी और पद्मपाणि अवलोकितेश्वर की प्रतिमाओं में भी मिलता है। इन्हें हाथों में सनाल कमल लिये हुए दिखाया जाता है। तुंबन की पार्श्वनाथ प्रतिमा में तीर्थंकर के प्रत्येक ओर सनाल कमल लिये हुए हाथी को दिखाया गया है। गुप्तकाल में द्वार–स्तम्भों को अलंकृत बनाने के लिये पद्म का अनेक रूपों में चित्रण हुआ। पद्म के अर्धविकसित, पूर्ण विकसित, ऊर्ध्व विकसित, अधोमुखी, ऊर्ध्वमुखी आदि रूप आलेखित हए। पद्म को पत्रलताओं के साथ घट से आच्छादित दिखाया गया। प्रभामण्डल पर पद्म को चित्रित किया गया। फिरोजपुर, जिला रायसेन की प्रतिमाओं में नाग–नागी अपने हाथों में कमल–पुष्प लिये हुए हैं। भूमरा की प्रतिमा में कुबेर अपने एक हाथ में सनाल कमल लिये हुए हैं।[8]

5. त्रिशूल–त्रिशूल भगवान शिव का आयुध है। कला में इस आयुध प्रतीक से ही सम्भवतः त्रिरत्न का उद्भव हुआ।[9] यह सृष्टि के त्रिपथ का प्रतीक है एवं सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण से युक्त है।

आहत मुद्राओं पर त्रिशूल के विविध स्वरूप देखने को मिलते हैं। औदुम्बर, कुणिंद, यौधेय तथा कुषाण शासकों ने अपने सिक्कों पर त्रिशूल को शिव के आयुध रूप में अंकित कराया। त्रिशूल के साथ परशू का साहचर्य औदुम्बर राजाओं के सिक्कों पर मिलता है।

गुप्तकला में त्रिशूल और परशु का साथ–साथ अंकन किया गया। यह खण्ड परशु नाम को चरितार्थ करता था। त्रिशूल के सर्प युक्त अथवा पुष्प मुद्रित स्वरूप भी मिले हैं। अहिच्छत्रा से प्राप्त मृद्भाण्डों पर सर्पयुक्त त्रिशूल

के उत्कीर्णन हुए हैं।[10] महिषासुरमर्दिनी दुर्गा की प्रतिमाओं में भी त्रिशूल आयुध का प्रदर्शन मिलता है। सिन्दुरसी, जिला जबलपुर की प्रतिमा में इसे देवी के दायें हाथ में दिखाया है।

विष्णुधर्मोत्तर में त्रिशूल की गणना आयुध पुरुष के रूप में की गयी है।[11] गुप्तकाल से मानवाकार त्रिशूल का अंकन आरंभ हुआ। लखनऊ संग्रहालय की भिक्षाटन शिव प्रतिमा में त्रिशूल पुरुष का सुन्दर अंकन हुआ है। उसमें त्रिशूल पुरुष सामान्य आभूषणों से युक्त है और शटवल्लीक प्रकार का अधोवस्त्र पहने है। उसके मस्तक के ऊपर त्रिशूल आयुध प्रदर्शित है।

6. धनुष–वाण–धनुष–वाण के प्राचीनतम उदाहरण प्रागैतिहासिककालीन शिलाचित्रों में मिले हैं। उनमें स्त्री–पुरुषों की आखेट तथा युद्ध के समय धनुष–बाण का प्रयोग करते हुए दिखाया गया है। हड़प्पा काल में धातु–निर्मित बाणों का प्रयोग होता था। आखेट तथा युद्ध के प्रयोजन हेतु उन बाणों के अग्र भाग विशेष रूप में नुकीले बनाये गये हैं।

ऋग्वेद के मंत्र साहित्य में धनुर्विद्या के उन्नत स्वरूप का वर्णन किया गया है–

धन्वनागा धन्वनाजि धन्वनातीव्राः समदो जयेम।

धनुः शत्रोरष्पकां कुणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम।।

आहत मुद्राओं में प्रत्यंचा तथा बाण के स्वतंत्र तथा संयुक्त दोनों रूप अंकित किये गये है। शक–यवन शासकों ने अपने सिक्कों पर धनुष–बाण लिये हुये राजा का धनुर्धारी रूप प्रदर्शित किया गया। गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय और कुमारगुप्त प्रथम ने धनुर्धारी प्रकार के सिक्के चलाये। इन सिक्कों पर राजा के बायें हाथ में धनुष और दायें में बाण हैं। राजा को विभिन्न मुद्राओं में दक्षिणाभिमुख अथवा वामाभिमुख खड़ा हुआ प्रदर्शित किया गया। इन सिक्कों में धनुष और बाण के विविध रूप देखने को मिलते हैं।

विष्णु धर्मोत्तर में विष्णु के प्रद्युम्न मुख वाली प्रतिमाओं के साथ शार्ंग चाप और बाण दिखाने का विधान है।[12] ये दोनों क्रमशः सांख्य और योग के प्रतीक माने गये हैं। कामदेव के अरविन्द, अशोक, आम्र, नवमल्लिका तथा नीलोत्पल इन पांच बाणों की गुप्तकालीन साहित्य और कला में विशेष प्रसिद्धि मिली। गुप्तकालीन प्रतिमाओं में धनुष का आकार छोटा दिखाया गया है। अहिच्छत्रा के एक फलक पर धनुर्धारिणी स्त्री को अपने बायें हाथ में धनुष पकड़े तथा दायें से प्रत्यंचा खींचते हुए दिखाया है। यही के एक अन्य मुतफलक पर युधिष्ठिर और जयद्रथ परस्पर धनुर्युद्ध में प्रदर्शित है। उसमें दोनों धनुष की प्रत्यंचा खींच रहे हैं और उनकी पीठ पर तूणीर कसे हुए हैं। कोंडाने, जिला औरंगाबाद की एक प्रतिमा में दो प्रेमिकाओं के बीच में खड़े धनुर्धर प्रेमी को प्रदर्शित किया है। उसमें पुरुष के हाथ में धनुषबाण है। दोनों स्त्रियाँ उसकी प्रत्यंचा तथा वस्त्र खींच रही हैं।

धनुष और बाण को क्रमशः आयुध स्त्री और पुरुष के रूप में दिखाने का विधान है।[13] देवगढ़ की शेषषायी प्रतिमा में धनुष–स्त्री विष्णु के चरण संवाहन करते हुए दिखायी गयी है।

7. खड्ग–विष्णु के खड्ग का नाम नन्दक है। यह आकाश तत्व का प्रतीक है। कला में इसे वैराग्य को सूचित करने वाला आयुध प्रतीक भी माना गया है। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में खड्ग की श्रेणी और उसके भेदों का विस्तृत उल्लेख किया है।[14]

मौर्यकला में खड्ग का अंकन नहीं दिखलायी पड़ता। शुंगकाल में कमल की पंखुड़ियों वाले छोटे खड्ग निर्मित हुए।[15] उनके म्यान चौड़े फलक वाले हैं। ढाल अनेक आकार–प्रकार के मिले हैं।[16] कुषाणकला के खड्ग चौड़े फलक वाले हैं। मथुरा और लखनऊ के संग्रहालयों की क्रमशः कनिष्क तथा नर्तकी[17] की प्रतिमाओं में खड्ग दोनों भागों में तेज धार वाले बने हैं तथा उनके फलक चौड़े आकार के हैं।

गुप्तकाल के सिक्कों पर राजा को तलवार अथवा खड्ग लिये हुए दिखाया गया है। अश्वारोही प्रकार के कुछ सिक्कों में राजा के हाथ में तलवार है। चन्द्रगुप्त द्वितीय के सिंह–निहंता प्रकार के एक सिक्के पर राजा तलवार से सिंह का सामना करते हुए प्रदर्शित है। कुमारगुप्त प्रथम के खड्गहस्त प्रकार के सिक्कों पर राजा कमर से लटकी हुई तलवार की मूठ अपने हाथ में लिये है। खड्गी–निहंता भांति के सिक्कों पर घुड़सवार राजा तलवार से गैंडे पर वार करते हुए प्रदर्शित है। अश्वारोही, सिंह निहंता, छत्र एवं चक्र विक्रम प्रकार के सिक्कों पर खड्ग का पर्याप्त अंकन हुआ।

देवगढ़ के मन्दिर में उत्कीर्ण शूर्पणखा–वध के फलक पर लक्ष्मण के हाथ में दुधारी खड्ग प्रदर्शित हैं। इसे खड्ग अथवा करताल भी कहा जाता था। गुप्तकालीन महिषासुरमर्दिनी की प्रतिमाओं में नुकीले धार वाले लघु खड्ग उत्कीर्ण किये गये हैं। इन्हीं शस्त्री भी कहते थे। सिन्द इन्द्र का प्रमुख आयुध है। बौद्ध धर्म में इसे अक्षोभ, वज्रपाणि, वज्रधर एवं वज्रसत्व का प्रतीक माना गया है।[20]

शुंग कला में वज्र दोनों ओर से तीक्ष्ण नोकदार अथवा बीच में बेलनाकार बनाये गये प्रायः इसी आकार के वज्र कुषाण राजा हुविष्क के सिक्कों पर चतुर्भुजी शिव के हाथों में प्रदर्शित है। प्रारम्भिक कुषाण कला में वज्र को इन्द्र के आयुध रूप में भी प्रदर्शित किया गया।[21]

विष्णु धर्मोत्तर में शुक्र की प्रतिमा के साथ वज्र और अंकुश दिखाये जाने का विधान है।[22]

गुप्तकालीन प्रतिमाओं में वज्र इन्द्र के आयुध रूप में उत्कीर्ण हुआ। भूमरा की एक प्रतिमा में इन्द्र अपने बायें हाथ में वज्र लिये हुए दिखाये गये हैं।[23] देवगढ़ की शेषशायी प्रतिमा में विष्णु के प्रति सम्मान प्रकट करने आये समस्त देवताओं में गजारूढ़ इन्द्र प्रदर्शित हैं। उनके दायें हाथ में वज्र है।[24] गुप्तकला मुें इन्द्र के साथ वज्र का आयुध परुष रूप भी मिला है जिसमें इन्द्र का दायां हाथ आयुध पुरुष के सिर पर रहता है।

9. शक्ति–यह धातु का बना भाला होता है। इसका आकार नीचे गोल तथा ऊपर संकरा रहता है। मथुरा की कार्तिकेय प्रतिमाओं में इस आयुध की लम्बाकार नोकदार अलंकृत दिखाया गया है।[25] गांधार कलाम में शक्ति को कुबेर के साथ प्रदर्शित किया गया है।[26]

गुप्तकला में शक्ति कार्तिकेय का आयुध बना। वृहत्संहिता में कार्तिकेय के हाथ में शक्ति प्रदर्शित करने का विधान है।[27] भारतकला भवन, वाराणसी, पटना, प्रयाग, राजशाही, मथुरा आदि संग्रहालयों में कार्तिकेय की अनेक प्रतिमायें हैं जिनमें उन्हें शक्ति लिये हुए दिखाया गया है। इनके अतिरिक्त भूमरा, नगर, वैराट, शामलाणी, कन्नौज आदि स्थानों की विविध प्रतिमाओं में शक्ति आयुध प्रदर्शित है।

10. परशु–यह दण्ड से युक्त चौड़े फल वाला अस्त्र होता है। महाभारत में इसे कुठार कहा गया है।[28] गुप्तकाल में परषु आयुध रौद्रास्त्र के रूप में प्रसिद्ध था। सामान्यतया इसे शिव और गणेश के साथ प्रदर्शित किया गया है।

11. अंकुश–अंकुश मनोकामना का प्रतीक है। इसे गणेश का आयुध माना जाता है। इसका प्रदर्शन इन्द्रायुध के रूप में गजारोही महावत के साथ भी हुआ। सांची की मांगलिक मालाओं में अंकुश का उत्कृष्ट उत्कीर्णन मिला है। भूमरा की द्विभुजी इन्द्र प्रतिमा में इन्द्र के हाथ में अंकुश प्रदर्शित है।[29]

12. हल–मूसल– संकर्षण बलराम के आयुध हल–मूसल क्रमशः काल और मृत्यु के प्रतीक हैं।[30] इनके क्रमशः रुचिशास्त्र और मौसलास्त्र नाम भी मिले हैं।[31]

मथुरा कला में मूसल को मुग्दर के समान प्रदर्शित किया गया है। गुप्तकालीन बलराम की प्रतिमाओं में बलराम को हल–मूसलधारी दिखाया गया है। सिरपुर के लक्ष्मण मन्दिर के एक फलक पर हल का सुन्दर अंकन दृष्टव्य है। इसमें सूत लोमहर्षण को मारने के लिये बलराम अपने दोनों हाथों में हल उठाये प्रदर्शित है।[32] इंधार से प्राप्त बलराम की एक चतुर्भुजी प्रतिमा में हल के साथ मय का प्याला प्रदर्शित किया गया है।[33] यह प्रतिमा अब ग्वालियर संग्रहालय में है। मथुरा संग्रहालय की प्रतिमाओं (संख्या 299 एवं 1399) में भी मूसल प्रदर्शित है।

13. पाश–पाश जल देवता वरुण का आयुध है। इसे सांसारिक बन्धन का प्रतीक माना गया है।[34] पाश का अंकन वरुण की प्रतिमाओं के अतिरिक्त गणेश एवं दुर्गा के साथ भी मिला है। यम की प्रतिमाओं में इसे मार्ग के प्रतीक रूप में कल्पित किया गया।

14. खट्वांग–यह शिव का प्रमुख आयुध है। इसे यौगिक शक्ति का प्रतीक माना जाता है।[35] खट्वांग का नीचे वाला दण्ड भाग अस्थि तथा ऊपर का भाग कपाल से बनाया जाता था।[36] अहिच्छत्रा से प्राप्त ईसवी पांचवीं शती की भैरव–प्रतिमा में शिव के हाथ में खट्वांग प्रदर्शित है। खट्वांग के दोनों सिरों के गोलाकार भाग पर वज्र के समान कई नोक निकली है। यह आयुध चामुण्डा तथा भैरवी की प्रतिमाओं में भी दिखाया गया है।

15. ध्वज–ध्वज का प्रयोग पर्वोत्सव एवं रणयात्रा के समय होता था। इसे संयम, अनुशासन और गौरव का प्रतीक माना गया है। रामायण, महाभारत, वृहत्संहिता आदि ग्रन्थों में ध्वज पताका के अनेक उल्लेख हुए हैं। उनमें

इन्द्रध्वज महोत्सव को एक लोकप्रिय सामाजिक समारोह के रूप में वर्णित किया गया है।

कला में ध्वज का अंकन विभिन्न रूपों में मिलता है। आहत मुद्राओं में इन्द्रध्वज को दण्ड के ऊपर त्रिभुजाकार आकृति बनाकर दिखाया गया। शुंग कला में अधिकतर फहराती हुई ध्वज पताका को चित्रित किया गया। कहीं–कहीं ध्वज के साथ त्रिरत्न और चक्र का साहचर्य भी हुआ है।[37] पताका के ऊपर ज्यामितीय आलेखन भी किया गया।

गुप्तकाल में गरुणध्वज को राष्ट्रीय स्तर पर प्रधानता मिली। गुप्त शासकों के दण्डधर प्रकार के सिक्कों पर वामाभिमुख खड़े हुए राजा के बायें हाथ में ध्वज पताका दिखायी गयी है। विष्णु धर्मोत्तर में कार्तिकेय के साथ ध्वजपताका दिखाये जाने का विधान है।[38] तत्कालीन प्रतिमाओं में कार्तिकेय को ध्वज आयुध लिये हुए दिखाया गया है। देव मन्दिरों में ध्वज विन्यास पर प्रतीक चिन्हों को अंकित कर उन्हें देव अथवा देवी के आयुध, वाहन आदि से सम्बन्धित बनाया गया।[39] उदाहरणार्थ विष्णु के साथ गरुड़, दुर्गा की ध्वजा पर सिंह, शिव के साथ त्रिशूल, लक्ष्मी के साथ पद्म, ब्रह्मा की ध्वजा पर हंस, कामदेव की ध्वजा पर मकर, कुबेर एवं वरुण के साथ क्रमशः गदा एवं पाश आदि प्रतीक प्रदर्शित किये गये। नचना के गुप्तकालीन एक शिलापट्ट पर शिवध्वज का सुन्दर आलेखन हुआ है। विष्णुधर्मोत्तर में ध्वज का उल्लेख आयुध पुरुष के रूप में हुआ है।[40]

16. पुस्तक–पुस्तक ज्ञान का प्रतीक है। इसे ब्रह्मा के हाथ में प्रदर्शित करते हैं। चारों वेद के प्रवक्ता होने के कारण ब्रह्मा की प्रतिमाएं चतुर्मुखी बनायी जाती हैं।

17. मोदक–मोदक विवेक का प्रतीक है। गाणपत्य संप्रदाय में इसे जीवन का मूल तत्व माना गया। यह गणेश का प्रिय भोज्य पदार्थ है अतः प्रतिमाओं में इसे गणेश के हाथ में प्रदर्शित किया गया। कुछ प्रतिमाओं में गणेश को मोदक पात्र लिये हुए भी दिखाया गया है।

(ब) मांगलिक प्रतीक

1. स्वस्तिक–स्वस्तिक वैदिक, बौद्ध और जैन, तीनों धर्मों में एक शुभ चिह्न के रूप में सदैव पूजनीय रहा। मेदिनीकोश में स्वस्तिक को शुभ लक्षण कहा गया है।[41] यह प्रतीक मांगलिक भावों की अभिव्यक्ति करता है। लोककला के विविध पक्षों में स्वस्तिक का प्रचुर रूप में समावेश हुआ।

रामायण और महाभारत में स्वस्तिक के अनेक उल्लेख उपलब्ध है। मत्स्य और शिवपुराण में इसे यौगिक क्रिया का एक अंग कहा गया है।[42] बौद्ध साहित्य में इस प्रतीक को 'सोत्थिय' कहा गया है।[43] जैन धर्म की उपासना पद्धति में अष्टमांगलिक प्रतीकों के अन्तर्गत स्वस्तिक को विशेष महत्व मिला। डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने स्वस्तिक की चारों भुजाओं को ब्रह्माण्ड कासूचक और स्वस्तिक को चतुश्पाद ब्रह्म का चिह्न माना है।[44]

कला में स्वस्तिक का प्रयोग धार्मिक, मांगलिक एवं सौंदर्यात्मक प्रतीक के रूप में हुआ। गुप्तकालीन कला में स्वस्तिक के धार्मिक पक्ष की अपेक्षा सौंदर्य तत्व को अधिक प्राबल्य मिला। नचना, तुमैन तथा तिगवा के द्वार स्तम्भों पर स्वतस्तिक का अलंकरण दृष्टव्य है। मृद्भाण्डों पर भी इस प्रतीक को चित्रित किया गया। गुप्तकाल में मांगलिक प्रतीक के रूप में देवी लक्ष्मी को प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। गुप्त सम्राटों ने अपने सिक्कों पर सौभाग्य की अधिष्ठात्री श्री लक्ष्मी को अंकित कराया।

2. पूर्ण कुम्भ (कलश)–कला के सुन्दर एवं अलंकृत प्रतीकों में पूर्णकुम्भ अथवा कलश का प्रमुख स्थान है। इसे सुख समृद्धि का द्योतक माना गया। ऋग्वेद में कलश का उल्लेख वर्णित है–

आपूर्णो अस्य कलशः स्वाहा।
सेक्तेव कोषं सिसिचे पिबर्ध्य।। (ऋग्वेद 3.32.15)

पूर्ण कुम्भ को वैदिक, बौद्ध और जैन तीनों धर्मों में समान स्थान मिला। इसे अनेक पुष्पों से सज्जित घट के रूप में प्रदर्शित किया गया। बौद्ध[45] एवं जैन[46] साहित्य में अलंकृत घट के विभिन्न उल्लेख उपबन्ध हैं।

शुंगकला में स्तम्भ–शीर्ष पर कमल से आच्छादित घट प्रदर्शित हुए।[47] कुषाणकाल की प्रतिमाओं में स्त्रियों को जल–पात्र अथवा अमृत घट लिए हुये दिखाया गया। मथुरा की प्रारम्भिक कला में पूर्णघट के अनेक नमूने दृष्टव्य हैं। प्रायः पूर्णघट को एक मांगलिक प्रतीक के रूप में द्वार–स्तम्भों पर प्रदर्शित किया गया। घट का साहचर्य लक्ष्मी के साथ हुआ। विष्णु धर्मोत्तर में लक्ष्मी के बायें हाथ में पूर्ण कुम्भ दिखाये जाने का विधान है।[48]

गुप्तकालीन गजलक्ष्मी की प्रतिमाओं में हाथी घट से जल निकालकर देवी का मंगल अभिषेक करते हुए दिखाये

गये हैं। अनेक प्रतिमाओं में नदी देवी गंगा यमुना को चंबर के स्थान पर घटलिये हुए दिखाया गया। मन्दिरों के शिखर पर घट प्रदर्शित किये जाने का विशेष प्रचलन था। मथुरा, नचना, भूमरा, तिगवा और देवगढ़ के मन्दिरों में आमलक के साथ कमल पुष्प से चित्रित घट प्रदर्शित हैं। मल्हार के एक स्तंभ पर अलंकृत मंगलघट दृष्टव्य है।

3. श्रीवत्स—श्रीवत्स को वैदिक, बौद्ध और जैन तीनों धर्मों की कला में प्रदर्शित किया गया। इसे मांगलिक एवं धार्मिक अभिप्रायों का समन्वित प्रतीक माना गया।

रघुवंश में विष्णु को श्रीवत्स लक्षण से युक्त वक्ष पर कौस्तुभ धारण किये हुए दिखाने का विधान है।[49] मथुरा और इलाहाबाद से प्राप्त विष्णु—प्रतिमाओं पर श्रीवत्स चिन्ह का अंकन नहीं मिलता, किन्तु विदिशा क्षेत्र से प्राप्त प्रतिमाओं में हीरावती की मध्य लटकन पर श्रीवत्स चिह्न अंकित किये गये हैं। उनमें से दो प्रतिमाएं अब ग्वालियर संग्रहालय एवं एक राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली में हैं। गुप्तकला में वराह प्रतिमाओं के साथ भी श्रीवत्स दिखाया गया।[50] मथुरा के एक द्वार स्तम्भ पर श्रीवत्स को गरुड़ के साथ दर्शाया गया है।[51]

बौद्ध आयागपट्टों पर श्रीवत्स का चित्रण मंगल मालाओं के रूप में हुआ है। तीर्थंकर प्रतिमाओं में इसे अन्तःकरण में उत्पन्न सर्वोच्च ज्ञान का सूचक माना गया। इसीलिए इसे तीर्थंकर के वक्षस्थल पर सुशोभित करते हैं।

4. त्रिरत्न—यह बौद्ध धर्म में बुद्ध, धर्म तथा संघ का प्रतीक है।[52] बौद्धकला में त्रिरत्न के अनेक उदाहरण मिलते हैं। इसे धर्मचक्र के साथ विभूषित किया गया। जैनकला में त्रिरत्न चैत्यवृक्ष के साथ सम्बद्ध मिलता है। आहत मुद्राओं में त्रिशूल का प्रचुर रूप में अंकन हुआ। शुंगकला में त्रिरत्न को धार्मिक एवं सामाजिक महत्व मिला। गुप्तकालीन अहिच्छत्रा से प्राप्त मृद्भाण्डों पर तोरणयुक्त त्रिरत्न अंकित किया गया है।

5. वीणा—यह सरस्वती का वाद्य—यंत्र है। ऋग्वेद में सप्ततंत्री तन्तुओं से निर्मित वीणा—वादन का उल्लेख हुआ है।[53] आपस्तम्बसूत्र में शततन्त्री वीणा वर्णित है।[54] उत्तर वैदिककालीन महाकाव्यों में अनेक आकार—प्रकार की वीणाएँ उल्लिखित हैं। बौद्ध साहित्य में वीणावादन के अनेक प्रसंग वर्णित हैं।

मौर्यकालीन कला में वीणावादन का पर्याप्त चित्रण हुआ है। शुंग—कुषाणकालीन मृण्मूर्तियों में सामूहिक वीणावादन की प्रतियोगिताओं का दृश्यांकन है। उनमें बैठे हुए स्त्री—पुरुष वीणा बजाने में मग्न हैं।

गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त तथा कुमारगुप्त ने वीणावादक प्रकार के सिक्के चलाये। उनमें राजा पर्यक पर बैठे हुए वीणा बजा रहे हैं। कलाकृतियों में वीणा के साथ अन्य अनेक वाद्ययंत्र भी दिखाये गये। भूमरा के मन्दिर की दीवार पर शहनाई, ढोल, श्रृंग आदि वाद्य अंकित हैं।[55] उदयगिरि की वराह प्रतिमा में वीणा के अतिरिक्त वंशी और मृदंग दृष्टव्य है।[56] नचना के शिलापट्ट पर अनेक वाद्य यंत्रों के साथ वीणावादन का दृश्य प्रदर्शित है।

6. कल्पवृक्ष—यह मन का प्रतिनिधि है। कल्पवृक्ष से मनोवांछित फल की प्राप्ति होती है।[57] यह देवासुरों द्वारा समुद्र—मंथन से उत्पन्न चौदह रत्नों में से एक है। कल्पवृक्ष के कल्पद्रुम, कल्पतरू, कल्पलता, कल्पवल्ली आदि अनेक नाम मिलते हैं।

गुप्तकला में कल्पवृक्ष को अलंकरण के लिए प्रयुक्त किया गया। इसे मन्दिर के द्वार—स्तम्भ, शाखाद्वार और चौखट पर प्रदर्शित किया जाता था।

7. दर्पण—कला में दर्पण—दर्शन का प्रतीकात्मक अभिप्राय तेज और स्वास्थ्य की अभिवृद्धि करने के लिये एक धार्मिक क्रिया है।[58] जनजीवन में दर्पण का प्रयोग मांगलिक प्रतीक के रूप में प्रचलित रहा। यह स्त्री—पुरुष दोनों के प्रयोग में आता है। शिल्पकारों ने दर्पण देखती हुई स्त्री का मूर्तन सौदर्य की अभिव्यक्ति के लिये किया। प्रसाधिकाओं को दर्पण के समक्ष केश संवारते हुए दिखाया गया। रंगमहल की एक प्रतिमा में शिव—परिवार दिखाया गया है। उसमें पार्वती अपने बायें हाथ में दर्पण लिये हुए प्रदर्शित हैं।

8. नंदिपद—यह समृद्धि और आनन्द का प्रतीक है। प्रारम्भिक कला में इस प्रतीक का प्रचुर रूप में अंकन हुआ है। गुप्तकला में नंदिपद को अलंकरण के रूप में प्रयुक्त किया गया है।

9. यक्ष—यक्षी—प्राचीन वैदिक, बौद्ध और जैन साहित्य में यक्ष—यक्षी के महत्व और उसके पूजनीय स्वरूप का विशद उल्लेख हुआ है। अथर्ववेद में यक्षराज को कुबेर और यक्षों के स्वामी को धनपति अथवा निधिपति संज्ञा दी गयी है।[59] बौद्ध साहित्य से समाज में यक्ष—यक्षी पूजा की व्यापकता का बोध होता है।[60] जैन साहित्य में यक्षों

के त्रिमुख और गौमुख नाम मिलते हैं।[61]

मूर्तिकला में यक्षों के मांगलिक तथा अमांगलिक दोनों स्वरूप प्रदर्शित किये गये। उन्हें हास्यास्पद तथा भयानक दोनों रूपों में दिखाया गया। मौर्य शुंग कला में भारवाही यक्षों का बहुल अंकन हुआ। भारवाही यक्ष श्रम, निष्ठा, धैर्य और साहस को सूचित करते हैं।[62]

गुप्तकालीन साहित्य और अभिलेखों में कुबेर का पर्याप्त उल्लेख हुआ है। तत्कालीन कुबेर प्रतिमाओं में यक्ष–शैली में अंकित प्रतीकों का विकास–क्रम मिलता है। उनमें यक्ष के छोटे हाथ–पैर, लटकता हुआ लम्बा पेट, गोल आँखें, विकराल खुले मुख आदि दिखाये गये हैं। नचना के पार्वती मन्दिर की द्वार शाखा पर यक्ष की नाभि से निकलती हुई पत्रावली का सुन्दर आलेखन हुआ है। इन स्तंभों पर भारवाही कीचक को दोनों हाथों से सिर से ऊपर सिरदल संभाले हुए दिखाया गया है। पवाया से गौकर्ण यक्ष का सिर मिला है जिसमें उसके गाय के समान बड़े–बड़े कान हैं। नागार्जुनीकोंडा की एक प्रतिमा में यक्ष को अपने बायें हाथ में धन की ऊँची थैली पकड़े हुए दिखाया गया है। उसका अलंकृत मस्तक तथा छग्नवीर दर्शनीय है। मण्डोर को गोवर्धनधारी कृष्ण प्रतिमा में सांची और मथुरा की प्रारम्भिक कला में चित्रित अश्वमुखी आकृतियों के सदृश्य एक खड़ी हुई अश्वमुखी यक्षी प्रदर्शित है।[63] मीरपुरखास से यक्ष के अनेक मृतफलक ज्ञात हैं।

मौर्य–शुंगयुगीन कला के सदृश्य गुप्तकला में भी शालभंजिका को आकर्षक ढंग से चित्रित किया गया। नचना की एक कृति में शालभंजिका को नरवाहन के ऊपर पुष्पित लता के मध्य में दिखाया गया। मथुरा से शालभंजिका की अनेक प्रतिमाएं ज्ञात हैं। यहाँ की एक मूर्ति में शालभंजिका अशोक वृक्ष की डाल बायें हाथ में थामे हुए आकर्षक भंगिमा में खड़ी हुई दिखायी गयी है। उसका केश श्रृंगार, उत्तरीय तथा कई लड़ी की मेखला दृष्टव्य है। मिट्टी के एक बर्तन पर मौक्तिकमाल तथा माणिक्य माल का अलंकरण किया गया है तथा उसके मध्य में शालभंजिका का सुन्दर आलेखन है।

10. छत्र–चँवर–बौद्धकला में छत्र का प्रदर्शन आरम्भ से स्तूपों की हर्मिका के ऊपर छत्र प्रदर्शित किये गये हैं। बुद्ध के चक्रवर्ती स्वरूप को प्रकट करने के लिए उनका आसन छत्र और मालाओं से अलंकृत किया गया। मांगलिक प्रतीक के रूप में छत्र का अंकन सिक्कों पर भी हुआ है। महाकाव्यों में छत्र के राजकीय प्रयोग का उल्लेख किया गया है।[64] जैन साहित्य में छत्र निर्माण की व्याख्या की गयी है।[65] तीर्थंकर प्रतिमाओं में शीर्ष भाग पर छत्र का प्रदर्शन किया गया है। बृहत्संहिता में छत्र के आकार–प्रकार एवं उसके निर्माण की विधि का उल्लेख उपलब्ध है।

कुषाणकला के सदृश्य गुप्तकालीन प्रतिमाओं में भी छत्र का साहचर्य चँवर के साथ हुआ है। कालिदास ने कुमारसंभव में चंवरधारिणी नदी देवियों का उल्लेख किया है।[66] गुप्तकला में पार्श्वदेवों एवं अनुरों को चंवर अथवा छत्र लिये हुए दिखाया गया है। गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने सर्वप्रथम छत्र प्रकार के सिक्के चलाये। बाद में उसका अनुकरण कुमारगुप्त प्रथम ने किया। उसके सिक्कों पर छत्रधारी अनुचर का अंकन हुआ है।

11. प्रभामण्डल–इसका उद्गम सूर्य अथवा अग्नि से प्रभायुक्त होने के कारण माना गया है।[67] प्रभामण्डल का प्रारम्भिक अंकन हिन्द यूनानी और कुषाण राजाओं के सिक्कों पर देखने को मिलता है। मथुरा और गांधार की बुद्ध प्रतिमाओं में प्रभामण्डल का सादा स्वरूप प्रदर्शित किया गया है। गुप्तकाल से प्रभामण्डल का स्वरूप अत्यन्त अलंकृत हो गया। कालिदास ने इसे 'स्फुरत् प्रभामण्डल'[68] और वराह मिहिर ने 'रत्नोज्ज्वल प्रभामण्डल'[69] कहा है। प्रभामण्डल को कमल पुष्प के चित्रण से अलंकृत बनाया गया–'पद्मातपत्र–छाया–मण्डल'।[70]

गुप्तकालीन मथुरा और सारनाथ की बुद्ध प्रतिमाओं में अत्यन्त अलंकृत एवं भव्य प्रभामण्डल दृष्टव्य है। उनमें प्रभामण्डल के मध्य में पूर्ण विकसित कमल बना है जो रस्सी के समान अत्यन्त घुमावदार है। साथ में फुल्लावली मयूराकार ज्यामितीय रेखांकन, माला, किनारे पर माणिक्यमाल आदि आलेखित हैं।

बुद्ध प्रतिमाओं के अतिरिक्त वैदिक एवं जैन प्रतिमाओं के साथ भी प्रभामण्डल प्रदर्शित किये गये। इसे सम्बन्धित देव के चक्रवर्तित्व का प्रतीक माना गया। गुप्त सम्राटों ने अपने सिक्कों पर भी प्रभामण्डल प्रदर्शित किया है।

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

History : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 367-368

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

महात्मा गाँधी और जन-आन्दोलन

*संतोष कुमार**

मोहनदास कर्मचन्द गाँधी का भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन में बहुत महत्वपूर्ण योगदान है। महात्मा गाँधी की की सबसे बड़ी शक्ति यह थी कि उन्होंने समाज के बिखरे हुए तबके को एकजुट कर स्वतंत्रता प्राप्ति के महायज्ञ में लगा दिया। गाँधी जी के नेतृत्व में छोटे से लेकर कई बड़े आन्दोलन हुए परन्तु कुछ ऐसे भी आन्दोलन थे जिन्होंने स्वतंत्रता आन्दोलन और भारतीय समाज की दिशा बदलने का महत्वपूर्ण कार्य किया। गाँधी जी ने अपने देश की खातिर अपनी जान कुर्बान कर दी।

भारत के इतिहास के सबसे महान व्यक्तियों में एक महात्मा गाँधी हैं। मोहनदास कर्मचन्द गाँधी भारत एवं भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के एक प्रमुख राजनैतिक एवं आध्यात्मिक नेता थे। सबसे पहले गाँधी जी ने प्रवासी वकील के रूप में भारतीय समुदाय के लोगों के नागरिक अधिकारों के लिए संघर्ष हेतु सत्याग्रह शुरू किया उसके बाद उन्होंने यहाँ के किसानों, मजदूरों और शहरी श्रमिकों को अत्यधिक भूमिकर और भेदभाव के विरूद्ध आवाज उठाने के लिए एकजुट किया। महात्मा गाँधी एक शुद्ध आत्मा थे जो प्रतीक थे शांति, आध्यात्मिकता की। उनकी संगठन करने की क्षमता को सत्याग्रह, असहयोग आन्दोलन, दांडी मार्च, भारत छोड़ो आन्दोलन में देखा और परखा जा सकता है। उनके पास जलती हुई आत्मा और देश भक्ति थी। गाँधी जी ने आन्दोलन को संगठित करने की अद्भुत क्षमता थी।

उद्देश्य–जन आन्दोलनों के महत्व को जानना, जन आन्दोलनों के माध्यम से गाँधी जी के विचार और सफलता को जानना, बेहतर समाज और मजबूत राष्ट्र के लिए समाज को जागरूक करना, राष्ट्र को एकजुट करने के लिए।

महात्मा गाँधी और जन आन्दोलन–सत्याग्रह, दा रोलेट एक्ट, असहयोग आन्दोलन, दांडी, मार्च, भारत छोड़ो आन्दोलन, सामाजिक आन्दोलन महात्मा गाँधी द्वारा भारत की आजादी के लिए समाज की जरूरत के अनुसार शुरू किये गये। गाँधी जी ने निम्नलिखित घटनाओं पर सफलतापूर्वक जन आन्दोलन चलाया और भारत की स्वतंत्रता में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

गाँधी जी ने अपने दक्षिण अफ्रीका के प्रवास के दिनों में अवज्ञा आन्दोलन प्रारंभ किया जिसे सत्याग्रह नाम दिया गया। गाँधी जी ने भारतीयों पर हो रहे प्रजातीय भेदभाव एवं उत्पीड़न रोकने के लिए सत्याग्रह किया। महात्मा गाँधी जी 9 जनवरी 1916 ई0 को भारत लौटे। उसके बाद उन्होंने यहाँ के किसानों, मजदूरों और शहरी श्रमिकों को अत्यधिक भूमिकर और भेदभाव के विरूद्ध आवाज उठाने के लिए एकजुट किया। शुरूआती दिनों में गाँधी जी ने चम्पारण, अहमदाबाद, खेड़ा सत्याग्रह में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। गाँधी जी ने खिलाफत के मुद्दे को उठाकर मुसलमानों को 'असहयोग आन्दोलन' में अपनी सहभागिता देने के लिए तैयार कर लिया। असहयोग आन्दोलन ने पहली बार पूरे राष्ट्र की जनता को एकसूत्र में बाँध दिया। गाँधी जी ने एक आह्वान पर असहयोग आन्दोलन के दौरान विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार, सरकारी उपाधियाँ व अवैतानिक पदों का परित्याग, सरकारी करों का भुगतान न करना जैसे सराहनीय प्रयास किये गये। सम्पूर्ण आन्दोलन के दौरान हिन्दू–मुस्लिम एकता का अनूठा संगम देखने को मिला।

* *स.अ., चौधरी भवानी भीख इण्टरमीडिएट कॉलेज, पंडिला महादेव जी, प्रयागराज*

'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' ब्रिटिश साम्राज्य के विरूद्ध महात्मा गाँधी जी द्वारा चलाये गये उन आन्दोलनों में एक था। महात्मा गाँधी ने भारत के लिए पूर्ण स्वतंत्रता की माँग पर जोर देने के लिए 6 अप्रैल, 1930 ई0 को सविनय अवज्ञा आन्दोलन छेड़ा। सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान छात्रों, किसानों, मजदूरों तथा महिलाओं ने बड़े पैमाने पर उत्साह में भाग लिया। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में निर्णायक भूमिका निभाने वाले 'भारत छोड़ो आन्दोलन' 9 अगस्त, 1942 ई0 को महात्मा गाँधी के आह्वान पर समूचे देश में शुरू हो गया।

गाँधी जी ने इस आन्दोलन में ही 'करो या मरो' का नारा दिया। भारत छोड़ो आन्दोलन ने देखते ही देखते ऐसा स्वरूप हासिल कर लिया कि अंग्रेजी सत्ता के दमन के सभी उपाय नाकामी साबित होने लगे।

निष्कर्ष—जन आन्दोलन में महात्मा गाँधी का उद्देश्य भारत की स्वतंत्रता थी। इसी उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए गाँधी जी सभी भारतीयों का समर्थन चाहते थे। लेकिन वर्तमान स्थिति गाँधी जी के विचारों से मेल नहीं खाती है। वर्तमान में हिंसा, असत्य, राजनैतिक मुद्दे जैसी बुराईयाँ देश को बर्बाद कर रही हैं। समाज में व्याप्त अनेक बुराईयों के समाधान के लिए जन आन्दोलन एक समाधान हो सकता है जिस तरह महात्मा गाँधी जी ने स्वतंत्रता संग्राम का नेतृत्व किया ठीक उसी प्रकार सभ्य और मजबूत राष्ट्र के विकास के लिए एक जन आन्दोलन शुरू करने की जरूरत है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. NCERT कक्षा 12वीं 'अध्याय–7', राजनैतिक विज्ञान स्वतंत्रता के बाद भारत।
2. एस0आर0 बक्षी की पुस्तक गाँधी एण्ड दा मास मूवमेंट।
3. महात्मा गाँधी की संग्रहित कृतियाँ, वाल्यूम–5।
4. क्रान्त, मदनलाल वर्मा (2006) स्वाधीनता संग्राम के क्रांतिकारी साहित्य का इतिहास।
5. विपिन चन्दा जी द्वारा लिखित पुस्तक, आधुनिक भारत का इतिहास।
6. गाँधी वाड्.यम (2006) खण्ड –19।

* * * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

History : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 369-373

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

SIGNIFICANCE OF GANDHIAN CONCEPT OF SWADESHI IN THE AGE OF GLOBALIZATION

*Dr. (Mrs). Jyotika Roy**

Globalization is mostly understood to mean integration of the economy of the country with the globe economy. On the contrary, the critics of globalization argue that it is a strategy of the developed countries to expand their markets in other countries. The market driven globalization has widened the economic disparities among nations and people. In the present age of globalization, poor people as well as the underdeveloped nations are getting marginalized.

Many of the poorest countries are marginalized from the growing opportunities of expanding international trade, investment and in the use of new technologies. This was clearly stated by Jogdand and Michael when they wrote "…while the world may be full of complex mobility and interconnections, there are also quite a number of people whose experience is marginal to, or excluded from, these movements and links. Indeed not everyone and every place participates equally in the circuits of interconnections that transverse the globe. And this, too, is the world of globalization."[1]

Therefore, it has exciting possibilities and at the same time it can lead to unprecedented miseries. Globalization has created a serious social crisis affecting wage workers, farmers and employees everywhere. The march of globalization adversely affected agriculture, the backbone of Indian economy. Unemployment and poverty shot up as a result of the decline of indigenous cottage and small-scale industries. A huge number of workers lost their jobs. The quality of life, especially in the rural areas declined with a steady decline of social services mainly in education and health. In this system, the government will have not much to invest in the schemes favoring the weaker sections of the society. The need of the hour is that kind of policy that can ensure the availability of basic amenities and equal opportunities to the poorest and deprived classes also so that social equality and rights could be enjoyed by all. Here lies the relevance of Gandhian ideal of swadeshi. Gandhi's relevance is perhaps even greater to this century than to the one in which he lived.

An important ideal on which Gandhi based his economic programme was the ideal of 'swadeshi.' Swadeshi is a central concept in Gandhi's economic thought. It is an eternal principle. It has emerged out of his idea of swaraj. It is in conformity with the goal of sarvodaya. It has both individual and group application. Literally, the term swadeshi means 'one's own country'. Gandhi noticed that the deep rooted poverty of the Indian masses was due to their departure from the swadeshi principles in the economic sphere. As a remedial measure, he asks every Indian to invite the spirit of swadeshi and help his neighbors in their needs as he helps himself. With such self-supporting and serving nature, every Indian village will become an autonomous unit.

* *Associate Prpf. & Head Department of Medieval History, Ewing Christian, College, Prayagraj.*

‘Simple living and high thinking’, was a principle that played a significant part in Gandhi’s life. He adopted this principle much to the advantage of the nation. As a practical idealist, he found that it was in this ideal that the remedy of the ills of modern civilization lies. Modern industrialism creates in man, according to him, the desire to increase wants and acquire material wealth at the cost of human values.2

Inspired by the ideas of Gandhi, Nehru emphasized the need for a rapid and radical but peaceful socio-economic transition. Through economic planning, Nehru wanted to establish a strong and self-reliant India with a just and social order. He adopted planning not as an end, but as a means at the “well-being and advancement of the people as a whole, at the opening out of opportunity to all and the growth of freedom and the method of co-operative organization and action”.3 Though Nehru gave enough attention to decentralization in the different Five Year Plans, his successors could not keep his tradition. They gradually left his way and by the time of the current Five Year Plan, we were very much diverted from the concept of decentralization. This led to an economic crisis.

The New economic Policy of 1991 kick started the unbalanced phase in India’s economic development. Through this policy, globalization has led to the emergence and growth of a new rich class with its love for dispensation of wealth, social power and luxuries. Liberalization and globalization have led to unbridled consumerism, flight of capital from India, killing of local industries in the name of competition and efficiency.4

We see that the new economic policy of neo-liberalization resulted in the concentration of wealth in the hands of a selected few, keeping the majority out of the development. It has created two sections within the nation.5

Swadeshi for Solution to the Economic Crisis : Having outlined the ailment of Indian economy, we can now look how Gandhian developmental strategy can help us to solve this crisis to some extent. Gandhi held that economics and ethics cannot be separated from each other and must be studied as a whole. In the opinion of Anthony.J. Parel, “Gandhi, in his turn, re-emphasized this meaning: a sound economy is one that empowered the last and the least of society, and helped to create and develop in them the necessary capacities and moral dispositions”. 6 The principle of buying in the cheapest and selling in the dearest market was the most inhuman law of economics, for market in globalization is based on the concept of ‘buy now and pay later’. As against this Gandhiji considered economic decentralization as the fundamental principle and this is what we need today. One of intellectual of our country is also said “decentralization will be able to mobilize the grass roots knowledge and public awareness to prevent the misuse of public funds for private ends.”7 In India, democracy will succeed only when it is built up in a grass root manner. This can be done by following the Gandhian concept of Swadeshi.

Gandhi created it clear that true self-government wasn’t just political independence by Indians. It meant a modification within the economic pattern and political power through ethical revolution of the individual upwards through society as an entire. He believed that there was no have to be compelled to have a society supported the Western notions of greed and wealth however on ethical people who cared for every other and followed their spiritual goals.8 This translated, in his vision, to a more equal society supported completely different religious groups showing tolerance towards one another, and engaged in small-scale economic activities. He distrusted large-scale means that of production since it led to an increase in difference and non-harmonious relations between the members of society.

Furthermore, Gandhi was deeply suspicious of the power of state to influence growth, and hence relied on the self-control of an individual as the force that could transform the society. To formulate his theory, he delved not only into Hindu and other Indian religions but also the contrarian Western thoughts which asserted that industrialisation had led to spiritual and social decline of the Western society.

Gandhi realized that much of the heart rending poverty of the masses is due to the ruinous departure from swadeshi in the economic life. His thesis was that India would not have been poor if the articles of consumption had not been brought from outside India. The broad meaning of swadeshi is the use of all home made things to the exclusion of foreign things. Gandhi believes that the economic good of all lies in strictly practicing the principles of swadeshi. It is a plea for protecting village industries which enjoys abundant manpower. We have to provide food, work and employment to our immediate neighbors. Swadeshi is a doctrine employed for the protection of home industry. According to Man Mohan Choudary "the principle of swadeshi is a fundamental concept in Gandhian economic thought. It defines the relation of individual to his society and the larger world in terms of socially responsible economic behavior."10 Thus the practice of swadeshi would result in innumerable self supporting and self contained units meeting their primary needs locally and exchange with other units such necessary commodities that are not locally producible.

Swadeshi spirit never allows exploitation of the raw materials of a country. It does not neglect the powerful man-power. Wasting time and money in producing goods which are unsuitable to the Indian, amounts to the negation of the swadeshi spirit. It is false swadeshi. At the same time, swadeshi does not mean boycotting foreign goods. Gandhi observes "any article is swadeshi, if it sub-serves the interest of the millions, even though the capital and talent are foreign but under effective Indian control". Swadeshi is also one of the ways of non-violence and therefore a true believer of swadeshi will not harbor any ill-feeling towards foreign things. It is not a cult of hatred but a doctrine of selfless service that has its roots in ahimsa. Gandhi would be prepared to buy from any part of the world, things that are needed for the growth of his country, but he would insist on the use of swadeshi when such foreign things are sought to be imported that hamper the economic status of home industry.12 Swadeshi thus is not an outright rejection of everything foreign. It is based on a feeling of concern for the economic and political stability of one's own country.

The concept of swadeshi comprises three propositions, the first being the reduction of wants by each individual consumer; the second , the reordering of preferences in such a way that it is made up mostly of goods produced in the neighborhood; and the third is the cooperation of the consumer with his neighbor producer to make them both work effectively. This principle decries competition and stresses the need to promote cooperation between the consumer and producer, which in turn leads to a downward trend in cost function.

Swadeshi is one of the best ways of preventing manufacture of goods in abundance that creates unemployment and exploitation. If a person wishes to increase his business so as to supply also the needs of others than those who belong to that unit, he will find that no one else would be willing to buy his goods due to a moral responsibility towards his neighbors. Thus he would be prevented from developing into a large scale manufacturer. Even if the article produced elsewhere are more attractive than those produced locally, they will not be allowed to flood out the local products. At the same time, the local producer is encouraged to improve the quality of his products to come up to the standard of foreign goods. Thus the consumers will limit themselves to, and help to improve, the quality of local produce.

Swadeshi Relevence in the Age of Globalization : Swadeshi was the economic foundation of Indian nationalism. "Neither railways nor hospital are a test of a high or pure civilisation. At best they are a necessary evil. Neither adds one inch to the moral stature of a nation. Nor am I aiming at a permanent destruction of law courts, much as I regard it as a 'consummation devoutly to be wished.' Still less I am trying to destroy all machinery and mills. It requires a higher simplicity and renunciation than the people are today prepared for".14 The idea behind it was to protect Indian economic independence as well as local industries and to prevent the drain of resources. To prevent this drain, Swadeshi based upon self-help and sacrifice was the only alternative. It was based upon the revival of cottage and village industries, revival of panchayat system or self government and opposition to large-scale industrialization, mechanization and western commercialism and values. But later on it involved reconciliation of large scale and small scale industries with nationalization of key industries and urban reorganization to cater to the needs of rural people, economic equality and fulfillment of basic minimum needs of all human beings.

If the indigenous industries are not protected from foreign competition, our naive skill will be ruined and the villages which constitute the greater part of the country will not prosper. Therefore, swadeshi is specially meant for the basic unit of society, i.e., villages, where production is made for consumption, not for exchange. The basic principle of swadeshi is to produce for the fulfillment of the basic needs and not to produce for commerce, market and profiting. This requires the simplification of our economic structure. If the economy is restricted to small units, it can influence the people morally make them self dependent. That was why Gandhi was not only against the big industries of the foreign multinationals but also against the native multinationals which swallow the small scale industries, which make greater section of people unemployed. But he was not totally against industries and technology. In fact he wanted a balanced growth of villages as well as cities, and small scale and big industries to form a harmonious peaceful society. He wanted to free economy from greed. By his concept of swadeshi he wanted to construct an exploitation free society.

To conclude we can say that Gandhian concept of swadeshi from its economic view point is a belief in self reliant economy. According to Asha Kaushik, "the attainment of self-reliance has, thus, continued to be accepted as a cherished goal and ingredient for development of the country with a view to ensuring balance of payments, sustainability, avoidance of external debts, generating investable resources domestically and attain self- sufficiency in food and self-reliance in technology as well."15 Swadeshi is a warning against the killing of native skills and putting the nation in the trap of others. It stands for the natural growth of people than to make some live in luxuries while others starving. It permits taking the help of other for building one's own economy but with great caution. If we enrich ourselves from others swadeshi welcomes it. But if we lose control over ourselves and fall between the endless wheels of exploitation, it is against the idea of swadeshi. "Gandhi's swadeshi principle exhorted people to remain contended with the local condition and with the things that God provided for man's sustenance, instead of indulging in ruthless exploitation of other countries to obtain unnecessary luxuries". 16 Thus Gandhian concept of swadeshi from economic point of view stands for strong belief in self-reliance, balanced growth and human economics i.e., the economics for larger and deeper life and not the economics for profit and market.

The New Economic Policy of India is a clear deviation from the idea of swadeshi for this would not promote to make Indian people self reliant and self-employed. But inertly this would result in

foreign domination, deterioration of indigenous industries due to hard competition and overall the Indian economy will be an elitist economy than a mass economy. This will be a market economy, rather than a need based economy, and is bound to create disparities in society. This will be fatal to the permanent peace of nation. Hence what is needed today is a cultural revolution of reduction of wants and adoption of swadeshi in real spirit. In its true spirit, Swadeshi does not mean isolation. On the other hand, it means constant interaction, adaptations and technological updation. Inward-looking economy is an outdated concept. But at the same time, the opening of economy should not be at the cost of economic upliftment of local population. It should result into increased production, employment, growth in per capita income, HRD, equity and better living. Here Swadeshi means self excellence It could not visualize the rise of one nation on the ruins of another nation. Gandhi made it clear again and again that Swadeshi did not mean exclusiveness, or isolation, or non-involvement with the rest of the world. On the contrary, he considered it to be the proper and firm starting point of global co-operation. Hence in a larger context, it can be conceived as instrumental in realization of the greater mission of the brotherhood of man. This will in turn be the proper and firm starting of global cooperation.

REFERENCES

1. Jogdand,P.G & Michael,S.M,'*Globalization and Social movements'*,(Jaipur : Rawat,2003) p. 7
2. Singh, M. M. Singh*, 'The Unfinished Business of Nation Building'* – The Hindu, (Delhi) 15th August 1997
3. Brown, J., Gandhi and Nehru: Frustrated Visionaries? UK: History Today, online, 1997.
4. Gandhi. M.K, 'Harijan', 25.2.1936, p. 8
5. Kohli, A. State Politics in India in 1990s, IIC December 16-17 2004, online, 2004.
6. Parel, Anthony. J.,'*Gandhi's Philosophy and the quest for harmony'*, (New Delhi: Cambridge University Press 2006), p. 75.
7. Bhagavan, Vishnu, '*Indian Political thinkers'*, (New Delhi: Atma Ram & Sons, 1976). P.63
8. Brown, J., '*Gandhi: A man for our times?'* New Delhi: Oxford University Press
9. Ferguson, J. The Anti–Politics Machine, Development, Depoliticisation, and Bureaucratic Power in Lesotho, Minneapolis: University of Minnesota Press, 1994.
10. Choudary, Man Mohan, *'Exploring Gandhi'*, (New Delhi: Gandhi Peace Foundation 2000), p. 200.
11. Ferguson, J. The Anti–Politics Machine, Development, Depoliticisation, and Bureaucratic Power in lesotho, Minneapolis: University of Minnesota Press, 1994.
12. Gupta, A. Postcolonial Development: Agriculture in the Making of Modern India, New Delhi: Oxford University Press, 1999.
13. Kohli, A., The State and Poverty in India: The Politics of Reform, Cambridge University Press, introduction accessed online at www.cambridge.org.
14. Bhagavan, Vishnu, '*Indian Political thinkers'*, (New Delhi: Atma Ram & Sons, 1976). P.63
15. Kaushik, Asha, "*Swadeshi, Self-reliance and Globalization: Conjunctions and Disjunctions*", (Gandhi Marg Vol.32.No.2, July-Sept 2010) p.211
16. Misra, R.P. & Gangrade, K.D. (eds). Gandhian Alternative: Economics Where People Matter, Gandhian Studies and Peace Research Series–26, Vol. IV (New Delhi: Concept Publishing Company)

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

History : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 374-378

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

पूर्व मध्यकालीन इतिहास में नारी शिक्षा : एक समीक्षा

*डॉ. विनोद कुमार यादव**

जीवन के समस्त पहलुओं के सर्वांगीण विकास का माध्यम शिक्षा है। प्राचीन भारतीय संस्कृति की ओर दृष्टिपात करने पर शिक्षा के क्षेत्र में नारी की स्थिति अत्यन्त संतोषजनक पाते है। जैसे ही नारी के धार्मिक अधिकारो का ह्रास होने लगा, उसके परिणामस्वरूप नारी शिक्षा का भी ह्रास होने लगा। बालिकाओं का उपनयन संस्कार समाप्त होते ही उसके वेदोच्चारण का मार्ग भी अवरूद्ध हो गया। इस युग में शूद्रों की तरह वेदों के पठन–पाठन और यज्ञों में सम्मिलित होने के अधिकार से भी स्त्रियों को वंचित कर दिया गया वस्तुतः शिक्षण संस्थाओं और गुरुकुलों में जाकर ज्ञान प्राप्त करना स्त्रियों के लिए अतीत की बात हो गयी थी। वह केवल माता–पिता भाई–बन्धु आदि से अपने घर पर ही शिक्षा प्राप्त कर सकती थी। पूर्व मध्यकालीन भाष्यकारों मेघातिथि; विश्वरूप और याज्ञवल्क्य की भी यही व्यवस्था है। निःसंदेह निरूपित काल में परदा प्रथा के प्रभाव के कारण मुस्लिम तथा हिन्दू दोनों जातियाँ नारियों की शिक्षा की ओर उचित अभिरुचि लेने से वंचित रहीं। तथापि इस युग में भी कुलीन तथा समृद्ध वर्ग की नारियाँ अपने अभिभावकों द्वारा नियुक्त निजी शिक्षकों द्वारा शिक्षा प्राप्त करती थीं। अभिजात वर्ग की स्त्रियाँ प्राकृत तथा संस्कृत में दक्ष होती थीं काव्य, संगीत, नृत्य, वाद्य और चित्रकला में भी वे प्रवीण होती थीं।

अल्तेकर के मतानुसार बालिकाओं के विवाह की वय न्यून होने के कारण उसमें और वृद्धि हो गयी। साहित्य नारी शिक्षा के प्रमाणों से परिपूर्ण है। अभिलेख नारी शिक्षा पर प्रकाश डालने में भले ही असमर्थ हैं किन्तु मूर्ति कला में नारी के शिक्षित होने के प्रमाण प्राप्त होते हैं। खजुराहो तथा भुवनेश्वर की कला में स्त्रियों को लेखन कार्य करते हुए या पुस्तक लिए हुए दर्शाया गया है। खजुराहो की कला में एक स्त्री कागज का एक टुकड़ा लिए हुए एक पुरूष के समक्ष बैठकर उससे कुछ समझ रही है। पढ़ती–लिखती हुई स्त्रियों के मनोभावों को कलाकर ने बड़ी सजीवता से दर्शाया है। पार्श्वनाथ मदिर में अंकित स्त्री मूर्ति के बाये हाथ में कागज है तथा दाहिना हाथ उसके वक्षः स्थल पर रखा है, उसकी मुखाकृति से लग रहा है कि वह पढ़कर भयभीत है और उसका ह्रदय धड़क रहा है। वहीं दूसरी जगह कंदरिया महादेव मंदिर के दाहिने बाहरी भाग में एक स्त्री पत्र पकड़े हुए अत्यन्त मृदुता से मुस्करा रही है। विश्वनाथ मंदिर के बाहरी भाग में दाहिनी ओर अंकित एक महिला के भावों को देखकर ऐसा लगता है मानों वह विचार कर रही है। कि आखिर पत्र में वह क्या लिखे? नारी शिक्षा पर प्रकाश डालने वाली इन मूर्तियों के माध्यम से कलाकार ने पत्र तथा उनसे होने वाली प्रतिक्रियाओं का भावांकन अत्यन्त सजीवता से किया

इस युग में बालिकाओं को दी जाने वाली शिक्षा के विषय की पुरातात्विक प्रमाणों की अपेक्षा साहित्य से अवश्य विभिन्न विषयों पर प्रकाश पड़ता है। स्त्रियों को प्राकृत तथा संस्कृत का सुंदर ज्ञान था। विल्हण ने कश्मीर की स्त्रियों की प्रशंसा में लिखा है कि वे संस्कृत एवं प्राकृत दोनो भाषाएँ बड़े अच्छे ढंग से धारा प्रवाह बोलती थीं। अभिजात वर्ग की स्त्रियों को व्यावहारिक, व्यावसायिक, आध्यात्मिक, धार्मिक तथा राजनीतिक सभी प्रकार की शिक्षा दी जाती थी।

व्यावहारिक शिक्षा : शिक्षा के अंतर्गत गृह विज्ञान की शिक्षा का विशेष महत्व था और प्रत्येक स्त्री से गृह कार्य के सम्पूर्ण ज्ञान की अपेक्षा की जाती थी। पति के प्रसाधन की व्यवस्था करना पत्नी का कर्तव्य होता था। पुत्री अपने पितृ गृह में ही ये समस्त शिक्षाएँ ग्रहण कर लेती थीं जिससे पतिगृह में जाकर वे श्रेष्ठ पत्नी सिद्ध हो सकें। वात्स्यायन ने कन्याओं की चौंसठ अंग विद्याओं की शिक्षा का ब्योरा देते हुए कुशल गृहिणी की विशेषताएँ बताई हैं। पत्नी को वार्षिक आर्थिक ब्योरा (चिट्ठा) की शिक्षा लेनी आवश्यक होती थी। बालिकाओं को यह शिक्षा

* *असिस्टेंट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास विभाग, पंचशील डिग्री कॉलेज, मिरजापुर*

निश्चित रूप से अल्पायु उम्र में ही दी जाती थी। गृहविज्ञान के अंतर्गत सिलाई–कढ़ाई की शिक्षा भी दी जाती थी। हर्षचरित में पुष्प तथा पक्षी कढ़े हुए वस्त्रों का विवरण है, जो निश्चित रूप से स्त्रियों द्वारा ही बनाये जाते थे। सिलाई के अतिरिक्त पाकशास्त्र की शिक्षा दी जाती थी। पाक कार्य में लड्डू बनाती हुई स्त्री की आकर्षक मूर्ति खजुराहो पार्श्वनाथ मंदिर के गर्भगृह के भीतरी दाहिनी दीवाल पर उत्कीर्ण है। गृह स्वच्छता की ओर भी स्त्रियों का पर्याप्त ध्यान रहता था। ललित कला की शिक्षा में भी स्त्रियाँ बहुत आगे थीं। इस कला में नृत्य, संगीत, वाद्य, काव्य, चित्रकला तथा माल्यग्रन्थंन का विशेष स्थान था। उच्चकुलों में इस शिक्षा पर अधिक ध्यान दिया जाता था। वात्स्यायन ने संगीत, नृत्य एवं चित्रकलाओं का ज्ञान नारी के लिए वांछनीय माना है। राजकुलों में राजकुमारियों को नृत्य– संगीत, वाद्य आदि की शिक्षा के लिए अपने से अलग भी रखना पड़ता था राजकुमारियों के विवाह की योग्यता की परख उनके नृत्य की परीक्षा द्वारा भी होता थी। मत्स्य पुराण में ''विशोक द्वादशी'' नामक व्रत का वर्णन है। जिसके अवसर पर नारियों को नृत्य संगीत करना पड़ता था। त्रिपुर की स्त्रियाँ हावभाव द्वारा वहाँ के निवासियों को आह्लादित करती थी। नाट्य शिक्षा में स्त्रियाँ प्रवीणता प्राप्त करती थीं तथा उनकी परीक्षा होती थी। हर्ष की बहन राजश्री सभी कलाओं में निपुण थी। चौहान शासन गूवक द्वितीय की बहन कलावती के विषय में कहा गया है कि वह चौंसठ कलाओं में पांरगत थी। आरंभ में संयोगिता को धर्मशास्त्र और गृह विज्ञान की विस्तृत शिक्षा प्रदान की गयी। यौवनावस्था के प्रारंभ में जब सयोगिता बारह वर्ष नौ मास और पाँच दिन की हो गयी तो शिक्षिका मदना उसके हृदय में सुघड़ता और पटुता की शिक्षा उतारने लगी। तदुपरांत संयोगिता शिक्षिका के सहयोग से नियम और विनय पाठ पढ़ने लगी। दक्षिण भारत में तो राजघरानों में नृत्य–संगीत कला स्त्रियों के जीवन का अभिन्न अंग प्रतीत होती है; क्योंकि दक्षिण भारतीय अभिलेख रानी की कलाओं की निपुणता की प्रशंसा में भरे पडें हैं। निम्न परिवार की कन्याओं को भी ललित कलाओं की शिक्षा प्रधान रूप से दी जाती थी। गीत वाद्य आदि से राजपरिवार का मनोरंजन करने; सुलाने–जगाने के लिए नियुक्त दासियों एवं गणिकाओं के लिए इन कलाओं की शिक्षा अनिवार्य थी। चित्रकला में स्त्रियों की बहुत अभिरुचि थी। खजुराहो के विश्वनाथ मंदिर के बायें बाहरी भाग में एक स्त्री को चित्र तख्ती तथा कूची पकड़े हुए दिखाया गया है। हर्षचरित में भी स्त्रियों द्वारा मंगल घट पर की गयी चित्रकारी का वर्णन है।

व्यावसायिक शिक्षा : राजपरिवार एवं कुलीन घरानों की दासियों, धात्रियों, गणिकाओं, वेश्याओं, देवदासियों, जैसी स्त्रियों के साहित्यिक एवं पुरातावित्क निर्देशों से स्त्रियों के व्यवसायों की कल्पना सहज ही की जा सकती है और इन व्यवसायों के लिए उन्हे शिक्षा भी अनिवार्य रूप से ग्रहण करनी पड़ती होगी; क्योंकि दासियों को सभी प्रकार की राजनीतिक एवं व्यावहारिक नीतियों का ज्ञान प्राप्त होता था। चिकित्सा विज्ञान की शिक्षा भी स्त्रियाँ ग्रहण करती थीं। 'रूसा' नामक एक स्त्री चिकित्सक ने प्रसव विज्ञान पर प्रमाणिक एवं पांडित्यपूर्ण ग्रंन्थ लिखा था और खलीफा हारू ने (आठवीं सदी) अरबी भाषा में अनुवाद करवाया था। स्त्री चिकित्सक अथवा धात्री (दायी) द्वारा एक स्त्री का प्रसूति दृश्य तमिलनाडु के मदुरै के मीनाक्षी मंदिर के मण्डप में अकित है। यह एक दुर्लभ पुरातात्विक प्रमाण है। प्रसूति विज्ञान में पारंगत स्त्रियाँ बड़े वैज्ञानिक ढंग से प्रसूति कराती थीं। इसकी पुष्टि भुवनेश्वर के एक द्वार पर उकेरी एक स्त्री है जिसे प्रसूति कुर्सी पर बैठे हुए दर्शाया गया है। गणित जैसे शुष्क एवं गूढ़ विषय के ज्ञान में भी स्त्रियाँ पीछे नहीं थीं, और बड़ी लगन से कुछ स्त्रियों ने गणित की शिक्षा ग्रहण की थी। गणितशास्त्र की प्रसिद्ध पुस्तक ''लीलावती'' की रचना बारहवीं सदी के प्रसिद्ध गणितज्ञ भास्कर द्वितीय ने अपनी कन्या लीलावती को पढ़ाने के लिए की थी। स्त्रियों में उपाध्याय तथा आचार्य भी होती थीं जिन्हें सात रहस्य वेदों के अध्यापन एवं भाणवकों को उपनयन देने का अधिकार था। यह बात संदिग्ध है। पाणिनी और पतंजलि के समय स्त्रियाँ वैदिक चरणों में अध्ययन ही नहीं अध्यापन भी करती थीं। हर्ष के पश्चात् सातवीं–आठवीं सदी में भी स्त्रियों के अध्यापन कार्य की जानकारी मिलती है। शंकराचार्य के मण्डन मिश्रा का शास्त्रार्थ होने तथा परिणामस्वरूप संन्यास ले लेने पर उनकी पत्नी उभय भारती; श्रृंगगिरि में अध्यापन का कार्य करने लगी थीं।

राजनीतिक शिक्षा : राज्य शासन में परामर्श एवं सहयोग के लिए नीतिशास्त्र का अनुशीलन आवश्यक होता है, इसीलिए राजनीतिक शिक्षा राजकुमारियों एवं सामंत कुमारियों की शिक्षा का प्रमुख अंग थी और उसमें वे रुचि भी लेती थी। प्राचीन काल से ही रानियाँ राजनीति में अपने पतियों का सक्रिय सहयोग देती आ रही थीं। इस युग में भी अनेक विधवा रानियों ने शासन कार्य–भार स्वयं संभाला था। कश्मीर के शासक क्षेमगुप्त (950 ई0 से

958 ई0 सदी) की पत्नी दिद्दां ने अपने पति को शासन चलाने में मदद की थी और उसके सिक्कों पर 'दि–क्षेम' उत्कीर्ण है, इसमें 'दि' वर्ण दिद्दां के लिए है। सिर्फ 'क्षेम' उत्कीर्ण सिक्के बहुत कम मात्रा में मिले हैं। पति की मृत्यु के बाद जब सारा शासन भार दिद्दां के कंधों पर आ गया तो उसने बड़े साहस से संचालन किया। यद्यपि कश्मीर के जमींदार तथा ब्राहाण दोनों ही उसके विरूद्ध थे, किन्तु उसने सबको कुचल डाला था। सुगंधा एवं दिद्दां के सिक्के इस बात का प्रमाण हैं कि उन्होंने कश्मीर का शासन प्रबंध अभिभावक के रूप में किया था। राजपुताना के सांभर के चौहान मुखिया की पत्नी सोमलादेवी के सिक्के प्राप्त हुए हैं। लेकिन दुर्भाग्यवश सोमलादेवी के संबध में पूर्ण तथ्य प्राप्त नहीं हो पाते हैं। इसने सम्भवतः दिद्दां के एक शताब्दी पश्चात् शासन किया था। प्रो0 रेप्सन ने अप्रकाशित नोट में लिखा था कि सोमलादेवी ने पति की मृत्यु के बाद अभिभावक के रूप में शासन किया था एवं सिक्के ढलवाये थे। दक्षिण भारत का सूडिं का अभिलेख जिसकी तिथि 1048 ई0 सदी है, कल्याणी के चालुक्य शासक विक्रमादित्य षष्ठम् की रानी लक्ष्मी देवी का उल्लेख है जिसने सम्राट के समान ही कल्याणी में शासन किया था।

अस्त्र–शस्त्र की शिक्षा : इस समय शास्त्र के साथ अस्त्र–शस्त्र की शिक्षा राजकुमारियों को अनिवार्य रूप से दी जाती थी। युद्ध विषयक ज्ञान गरिमा के प्रमाणों से साहित्य तथा प्रशस्तियाँ भरे पड़े हैं। युद्ध क्षेत्र में रानियाँ पति के साथ जाया करती थीं। विजयमल्ल की रानी पति के साथ युद्ध क्षेत्र में गयी थी। कल्याणी के चालुक्य वंश की रानी अक्कादेवी युद्ध में भाग लेती थी साथ ही युद्ध का संचालन भी करती थी। राजकुमारियों के अतिरिक्त अन्य स्त्रियाँ भी शस्त्र शिक्षा ग्रहण करती थी। मौर्यकाल से ही सुसज्जित अंगरक्षक स्त्रियों के विवरण मिलते हैं। मिहिरभोज की 'ग्वालियर प्रशस्ति' में स्त्रियों के सैन्य समुदाय का वर्णन है जो सैनिक व्यवसाय में प्रसिद्ध था। शास्त्रार्थ की शिक्षा ग्रहण कर स्त्रियाँ आत्मनिर्भर हो जाती थीं और पुरुषों पर पूर्णरूप से निर्भर नहीं रहती थी। आत्मनिर्भरता की द्योतक खजुराहो की मूर्तिकला में उत्कीर्ण एक स्त्री भाला, फरसा तथा धनुष बाण लिए है। एक अन्य स्त्री छुरा लिए हुए प्रहार करने की मुद्रा में खड़ी है। अपनी सुरक्षा के लिए स्त्रियाँ पुरुषों से युद्ध करती थीं कोणार्क मन्दिर में हाथी पर सवार एक स्त्री पुरुष से युद्ध कर रही है। इसी के साथ एक अन्य दृश्य में अश्व पर सवार स्त्री हाथ में लगाम पकड़े है। खजुराहो के लक्ष्मण मंदिर के दाहिने वाह्य भाग में युद्ध तथा शिकार में पुरुषों का साथ देने वाली स्त्रियों का आलेखन बड़ी सजीवता से किया गया है। भुवनेश्वर के मंदिर में विचित्र जानवर शार्दूल पर सवार स्त्रियाँ तलवार ढाल लिए युद्ध मुद्रा में दर्शायी गयी हैं। ये सभी दृश्य स्त्रियों को दी जाने वाली युद्ध शस्त्र संबधी शिक्षा पर प्रकाश डालते हैं। अमीर खुसरो ने भी इस तथ्य पर बल प्रदान किया है कि राजकुल से संबंधित कन्याओं का अन्य प्रकार की शिक्षा के साथ सैनिक–शिक्षा अवश्य प्रदान की जानी चाहिए।

धार्मिक शिक्षा : स्त्रियाँ प्रायः धर्मपरायण होती हैं। अतः उनके लिए धार्मिक शिक्षा अनिवार्य थी। ईश्वर का पूजन सामान्य बात थी। हर्षचरित में कन्याओं द्वारा बिना जोत के पके निवारों की बलि से ईश्वर पूजा का वर्णन मिलता है। वांछित फल की प्राप्ति के लिए कन्या कठिन धार्मिक नियमों का पालन तथा व्रत करती थीं। अध्यात्म के प्रति भी इनका रूझान था। बृहस्पति की भागिनी को ब्रह्माण्ड पुराण में ब्रह्मवादिनी कहा गया है। इसने योग में सिद्धि प्राप्त कर आसक्ति रहित हो समस्त पृथ्वी का पर्यटन किया था। दक्ष कन्यायें भी ब्रह्मवादिनी शब्द से अभिहित है। विष्णु पुराण की मेना और धारिणी भी ब्रह्मवादिनी योगिनी एवं श्रेष्ठ ज्ञान से परिपूर्ण थी। संनति और शतरूपा अन्य ब्रह्मवादिनी थी। ब्रह्मवादिनियों का केवल ब्राह्मचारिणी ही रहने का विधान नहीं था परतु वे विवाह भी करती थी। धर्मव्रता नामक कन्या ने अपने पिता के आदेश के अनुसार वर प्राप्त करने के लिए दुष्कर तपस्या की थी। बाल्यकाल के अन्तवर्ती अवधि में ब्रह्मचर्य व्रत अर्थात् ब्रह्मविद्या के विकास का अनुपालन कर वे अपने जीवन की पूर्वपीठिका को सुयोग्य बनाती थी। घर में रह कर वेदाध्ययन भी करती थी।

पूर्व मध्ययुग में कुलीन तथा समृद्ध वर्ग की स्त्रियाँ अपने अभिभावकों द्वारा नियुक्त निजी शिक्षकों द्वारा शिक्षा प्राप्त करती थी। अभिजात वर्ग की स्त्रियाँ प्राकृत तथा संस्कृत में दक्ष होती थीं। गाथासप्तशती नामक ग्रंथ में अनेक विदुशी स्त्रियों एवं कवयित्रियों का उल्लेख मिलता है–रेवा, रोहा, माधवी, अनुलक्ष्मी, पाही, बद्धवही और राशि प्रभा जैसी कवयित्रियाँ अपनी प्रतिभा और कल्पना शक्ति के लिए विख्यात थीं। काव्य मीमांसा का वर्णन प्रमाण है कि राजकुमारियाँ राजमंत्री की पुत्रियाँ, गणिकायें एवं नटनियाँ शास्त्रज्ञान से स्फीत, प्रतिभासम्पन्न कवयित्रियाँ होती थीं। चौहान शासक गूवक द्वितीय की बहन कलावती चौंसठ कलाओं में पारंगत थीं। तद्युगीन साहित्य में संस्कृत भाषा की कुछ अन्य उच्च कोटि की कवयित्रियों का भी वर्णन मिलता है। शिलोभट्टारिका नामक कवियित्री अपनी

सरल भाषा एवं ओजपूर्ण शैली में रचना हेतु अत्यन्त प्रसिद्ध थी। देवी गुजरात प्रदेश की एक अन्य प्रसिद्ध लेखिका थी, जो अपनी मृत्यु के उपरांत भी अपनी रचनाओं के माध्यम से लोगो के हृदय को उद्वेलित करती थी। विजयानक नामक कवियित्री की तुलना कालिदास से करते हुए यह कहा गया है कि विदर्भ क्षेत्र में कालिदास के उपरांत सर्वश्रेष्ठ रचनाकार विजयानक हैं जिसकी प्रसिद्धि चतुर्दिक है। तद्युगीन सभी कवियों एवं कवयित्रियों में विजयानक निःसंदेह सर्वश्रेष्ठ थी; राजशेखर ने संस्कृत भाषा की इस लेखिका की तुलना साक्षात सरस्वती से स्थापित की है। इस युग में अनेक ऐसी प्रज्ञासम्पन्न नारियाँ हुईं, जिन्होंने अपनी उत्कृष्ट रचना शैली और काव्य कला से साहित्यिक योगदान प्रदान किया। मुसलमान शासकों एवं सैनिकों के वासनात्मक दृष्टि से सुरक्षित रखने के लिए हिन्दू अपनी कन्याओं का विवाह छोटी अवस्था में कर देते थे। अतः ऐसी अवस्था में स्त्री शिक्षा का प्रश्न ही नहीं उठता था। पुनः अल्तेकर के अनुसार वेदों को अपौरूषेय मान लेने से, तथा स्त्रियों को शूद्र की कोटि में रखने से भी स्त्री शिक्षा की प्रगति में अवरोध उत्पन्न हुआ। इससे उनमें वैदिक अध्ययन का अधिकार ही नहीं रह गया। अल्तेकर के अनुसार स्त्रियों को शूद्र की कोटि में रखने से स्त्री जगत के अधिकारों की बड़ी क्षति हुई। बाल विवाह की यह प्रथा केवल भारत में ही नहीं थी बल्कि वरन् यूरोप के भी सभी देशों में इसी समय बाल विवाह की प्रथा प्रचलित थी।

इस प्रकार अवलोकित काल में नारी–शिक्षा राजघरानों तथा समृद्ध परिवारों तक सीमित थी। उनकी स्वतंत्रता का अपहरण पर्दा–प्रथा और अल्पवय में विवाह की प्रथा के प्रचलन से हुआ, जिससे शिक्षा की क्रमशः अवनति होती गयी। समाज में निम्न वर्ग तथा निर्धन परिवार की स्त्रियों को शिक्षा का उचित अवसर प्राप्त होना अपेक्षाकृत कठिन होता जा रहा था। यद्यपि समृद्ध परिवारों में शिष्य का किसी हद तक प्रचार था, यद्यपि समृद्ध परिवारों में शिक्षा का किसी हद तक प्रचार था, तथापि सामाजिक एवं धार्मिक आदर्शों के परिवर्तन तथा राजनैतिक उथल–पुथल के कारणों से जनसाधारण में स्त्री शिक्षा का उत्तरोत्तर ह्रास दृष्टिगोचर होता है। इस काल में स्त्रियों में अध्ययन–अध्यापन की परम्परा पूर्वतः चल रही थी, किन्तु उनके वेदाध्ययन पर प्रतिबन्ध लग गया था। इसे साथ ही यह भी देखा जाता है कि उच्च वर्ग की स्त्रियों के लिए ललित कलाओं एवं अन्य बहुत से विषयों की शिक्षा सुचारू रूप से दी जाती थी। जहां तक सामान्य वर्ग की स्त्रियों का प्रश्न है वह अधिक संतोषजनक नहीं कहा जा सकता। इस काल में स्त्री शिक्षा सामान्य न होकर वर्ग विशेष तक सीमित हो गयी थी।

संदर्भ–सूची

1. अल्तेकर, ए0एस0–दि पोजिशन ऑफ वीमेन इन हिंदू सिविलाइजेशन ।
2. डॉ0 गंगा सागर राम का हिन्दी अनुवाद, वाराणसी, 1964,
3. विल्हण–विक्रमांकदेवचरित, 18.6,

   तस्य तस्य किं ब्रूमः यत्र अपरं किं स्त्रीणामपि वचः।
   जन्म–भाशावत् एवं संस्कृत प्राकृंत च प्रत्यावांस विलसति।।
4. कथासरित्सागर; 95.92; के0 एन0 शर्मा का हिन्दी अनुवाद, पटना 1960
5. जयानक कृत पृथ्वीराज विजय 5.38; एम0 एम0 जी0 एच0 ओझा वैदिक मंत्रालय अजमेर; 1941
6. स्मिथ, वी.–केटलाग ऑफ द क्वाइन्स इन इंडिया म्यूजियम कोलकाता, भाग–1
7. चौधरी, हेमचन्द्र राय–पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ ऐंशियेन्ट इण्डिया।
8. कव्यमीमांसा, एम0 कृष्णामचारी कृत क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर।
9. विल्हण–विक्रमांकदेवचरित, 18/6।

   तस्य तस्य किं ब्रूमः यत्र अपरं कि स्त्रीणामपि वचः।

जन्म भाशावत् एवं संस्कृत प्राकृतं च प्रत्यवासं बिलसति।।

10 शंकर दिग्विजय, 8.5, **विधाय भार्या विदुषी सदस्यां, विधियतां वादकथा सुधीन्द्र।**

11 नैषधीयचरित, पपए 41, दी पोजीशन ऑफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन

12. काव्यमीमांसा।

पुरुषवद्योलितोव कवी भवेयुः। श्रूयन्ते दृश्यन्ते च राज पुत्रयों महामात्र– दुहितरो गणिकाः कौटुम्बिक भार्याश्च शास्त्र पहित बुद्धयः कवयश्च।।

13. अल्तेकर, ए0एस0–एजुकेशन इन ऐंशियन्ट इण्डिया।

14. काणें, पी0वी–हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, भाग–दो, खण्ड–1

15. वाशम, ए0एल0–द वण्डर दैट वाज इण्डिया।

16. वैद्य, सी0वी0–मेडुवल हिन्दू इण्डिया।

17 अल्तेकर, ए0एस0–दि पोजिशन ऑफ वुमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन।

* * ** *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

History : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 379-380

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

कन्नौज का इत्र : एक अध्ययन

*संतोष कुमार**

इत्र एक फारसी शब्द अत्र से बना है जिसका अर्थ है कि फूल पत्तियों से बना प्राकृतिक खुशबूदार तेल। भारत में इत्र का इतिहास उतना ही पुराना है जितना कि वेद ओर पुराण। सुगन्ध का सबसे पहला वर्णन वेदों में मिलता है। इस काल में जो यज्ञ होते थे उन यज्ञों में अनेक प्रकार की बलि दी जाती थी जिससे दुर्गन्ध उत्पन्न होती थी इस दुर्गन्ध को दूर करने के लिए सुगन्धित उत्यों को अग्नि में डालते थे। वैदिक साहित्यों में सुगन्ध को प्राणतत्व कहा गया है।

भारतीय सभ्यता जितनी पुरानी है उतनी ही पुरानी इत्र की कहानी है। ऑरकोलॉजीकल की खुदायी आदि से पता चलता है कि प्राचीन काल में फूल–पत्तियों से खुशबूदार तेल निकालने की विधि ज्ञात थी आयुर्वेद ग्रन्थ चरक

संहिता में इत्र निकालने की कला का जिक्र है। छठवीं शताब्दी के संस्कृति साहित्य वृहतसंहिता में इत्र का वर्णन है। वारहमिहिर के अनुसार जड़ी–बूटियों व फूलों की खुशबू का पूजा पाठ में प्रयोग होता है। पौराणिक शहर कन्नौज कभी सम्राट हर्षवर्द्धन की खूबसूरत राजधानी हुआ करती थी। गंगा नदी के किनारे बसा यह शहर कन्नौज ने दुनियाँ को महकते फूलों की खुशबूओं से परिचित कराया। 7वीं शताब्दी में रचित पुस्तक हर्षचरित्र में इत्र बनाने का कारोबार बादशाह मोहम्मद जहाँगीर की पत्नी नूरजहाँ की वजह से हुआ। खुशबू की शौकीन नूरजहाँ ने बादशाह जहाँगीर से अपने लिये खास तरीके की इत्र की ख्वाहिश की। मलिका की ख्वाहिश को पूरा करने के लिए फारस से कारीगरों को बुलाया गया। ये कारीगरों ने गुलाब की इत्र बनाकर वापस चले गये लेकिन जाते–जाते अपनी यह कला कन्नौज में ही छोड़ गये। तब से लेकर आज तक कारीगरों की पीढ़ी दर पीढ़ी उसी परम्परागत तरीके से इत्र बनाती आ रही है।

कन्नौज की 80 प्रतिशत आबादी इत्र के कारोबार से जुड़ी हुई है जो अपनी इस धरोहर को बचाये हुये है। कन्नौज में लगभग 250 छोटी बड़ी फर्म इत्र उत्पादन में लगी हैं। यहाँ से लगभग प्रतिवर्ष 20 लाख लीटर इत्र का उत्पादन होता है। कन्नौज की इत्र किसी जमाने में उसी तरह पसन्द की जाती थी जैसे आज फ्रांस के ग्रास शहर के इत्र पसन्द और उपयोग में लाये जाते हैं। आज परम्परागत इत्र की खुशबू में गुलाब, केवड़ा, बेला, केसर, कस्तूरी, चमेली, मेंहदी, कदम, गेंदा की इत्र तैयार की जाती है। इसके अलावा शमाम, तूल–अम्बर और मास्क–अम्बर जैसे इत्र भी तैयार किये जाते हैं। सबसे कीमती इत्र अदर–ऊद है जिसे असम की विशेष लकड़ी 'आसाम कीट' से बनाया जाता है। जिसकी कीमत बाजार में 90 लाख रुपये प्रति किलो है। जब बारिश की बूँदें कन्नौज की मिट्टी पर पड़ती हैं तो यहाँ की मिट्टी से खास तरह की खुशबू निकलती है। कन्नौज की इत्र की खास बात यह भी है कि यहाँ मिट्टी से भी इत्र बनाया जाता है। इसके लिए ताँबे के बर्तन में मिट्टी को पकाया जाता है। इसके बाद मिट्टी से निकलने वाली खुशबू को वेस ऑयल के साथ मिलाया जाता है। इस प्रक्रिया से दुनियाँ में सबसे अलग तरह से इत्र को तैयार किया जाता है। इत्र का प्रयोग पहले औषधि के रूप में और बाद में नारियों के श्रृंगार का अनिवार्य अंग बन गया। महक में वो तासीर होती है जो किसी भी मुरझाये मन को जिंदादिल, खुशमिजाज और तरोताजा बना देती है। बारात में आये बारातियों के स्वागत से लेकर देवी–देवताओं के पूजन में इत्र का प्रयोग

* *स.अ., चौधरी भवानी भीख इण्टरमीडिएट कॉलेज, पंडिला महादेव जी, प्रयागराज*

किया जाता है।

पान–सुपारी, गुटका आदि को खुशबूदार बनाने के लिए भी इत्र का प्रयोग किया जाता है। इत्र के बारे में मुगल बादशाह जहाँगीर का कहना था–'यह टूटे दिलों को जोड़ता और सुकून देता है।' खुशबू चाहे फूल की हो या इत्र की तन और मन को स्फूर्ति और रोमांच से भर देती है। ऐसे ही कन्नौज के खुशबूदार सेंट की माँग सिर्फ देश में ही नहीं बल्कि विदेशों में भी है। भारत के इत्र की राजधानी कन्नौज का इत्र भारत ही नहीं वरन विश्व स्तर पर प्रसिद्ध है। ब्रिटेन, अमेरिका, संयुक्त अरब अमीरात, सउदी अरब, ईराक, ईरान, सिंगापुर फ्रांस कतर आदि देशों में इसका आयात किया जाता था, लेकिन वर्तमान समय में लोग रसायनों से निर्मित तीक्ष्ण सुगन्ध वाले इत्र की ओर आकर्षित हो रहे हैं जिस कारण कन्नौज के पुष्पों के इत्र की सुगन्ध बाजार में कम आ रही है।

संदर्भ–ग्रन्थ

1. याकूब अल किंडी द्वारा लिखित पुस्तक "दी बुक ऑफ परफूम"
2. बाणभट्ट द्वारा रचित पुस्तक 'हर्षचरित्र'
3. अबुल फजल द्वारा लिखित पुस्तक 'आइने अकबरी'
4. चरक संहिता (चरक)
5. वृहद्संहिता (वारहमिहिर)
6. Scent of time : A History of Perfume
7. Perfume : The Alchemy of Scent by Jean CLAUD ELLEN ।
8. Hsaf Report 3 Aug. 2016
9. FFDC Report 2019-20

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Sociology : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 381-384

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में समाज में बढ़ती शिक्षित बेरोजगारी : एक अध्ययन

*डॉ. रश्मि पाण्डेय**

सारांश—वर्तमान समय में हमारे समाज में शिक्षित बेरोजगारी जिस रूप में विद्यमान है, वह सामाजिक समस्याओं से बिल्कुल भिन्न नहीं है, बल्कि समाज की अनेक विषम समस्याओं में से एक है। किसी भी सामाजिक संगठन की व्यवस्थित स्थापना के लिए यह आवश्यक है कि समाज के सभी व्यक्तियों की उन्नति व प्रगति उच्च स्तर पर हो, क्योंकि किसी भी स्वस्थ समाज का निर्माण उस समाज के व्यक्तियों पर निर्भर करता है और यही व्यक्ति या नागरिक समाज के कर्णधार हैं, तो आवष्यकता इस बात की है कि उन्हें समाज में आदर व सम्मान प्राप्त हो और समाज में उनकी योग्यता के अनुसार उच्च स्थिति प्राप्त हो। किन्तु हमारे समाज की आर्थिक व सामाजिक परिस्थितियां इस पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रही हैं, जो व्यक्ति समाज में भावी कर्णधार है, यदि समाज के उन व्यक्तियों की मौलिक आवश्यकताओं तक की पूर्ति न हो पायेगी तो क्या समाज की प्रगति व उन्नति हो पाना सम्भव है? शिक्षित बेरोजगारी समाज में दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। इसका एक प्रमुख कारण हमारे समाज की दोषपूर्ण शिक्षा व्यवस्था है। वास्तव में शिक्षा ही किसी समाज की उच्च स्थिति का आधार है, एक शिक्षित समाज को ही हम उन्नत समाज कह सकते हैं, लेकिन वर्तमान समय में शिक्षा व्यवस्था बहुत ही दोषपूर्ण है। शिक्षा केवल किताबी रह गयी है एक ओर तो कुछ व्यक्ति केवल रटने को शिक्षा कहते हैं और उसके आधार पर ही नौकरी प्राप्त करने की आशा करने लगते हैं, दूसरी ओर वे शिक्षित व्यक्ति जो वास्तव में सैद्धान्तिक ज्ञान प्राप्त करने के बाद भी रोजगार प्राप्त करने में असमर्थ हैं। वास्तव में इसका प्रमुख कारण हमारी दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली है। शिक्षा में पर्याप्त संशोधन व परिवर्तन करना आवश्यक है। यह एक ऐसी सामाजिक समस्या है जिसने समाज को चारों तरफ से खोखला कर दिया है।

शिक्षित बेरोजगारी से तात्पर्य—वर्तमान परिवेश में हमारा समाज अनेक विषमताओं से ग्रसित है। समाज की जटिलता से ही हमारा समाज दूषित होता जा रहा है। आज हम समाज को पूर्ण व्यवस्थित व विकसित समाज नहीं कह सकते हैं, समाज की विषम परिस्थितियों ने हमारे समाज में अनेक समस्यायें उत्पन्न की हैं जैसे– बेकारी, निर्धनता आदि। योजना आयोग के अनुसार–''यह बहुत दुर्भाग्यपूर्ण है कि, भारत जैसे विकासशील देश में जहाँ एक ओर वस्तुओं का उत्पादन और उचित सेवाओं की अत्यधिक कमी है, वहीं दूसरी ओर लाखों शिक्षित व्यक्ति रोजगार के अवसर पाने से वंचित रह जाते हैं।''

शिक्षित बेरोजगारी भी एक सामाजिक आर्थिक समस्या है। किसी समाज में जब बहुत से व्यक्तियों को आवश्यक शिक्षा तथा योग्यता के बाद भी जीविका के ऐसे साधन प्राप्त नहीं हो पाते जिससे उनकी कार्यकुशलता बनी रहे, ऐसी स्थिति को हम शिक्षित बेरोजगारी भी कहते हैं। शिक्षित बेरोजगारी की स्थिति किसी न किसी रूप में सभी समाजों में पायी जाती है चाहे वह कितना धनी क्यों न हो, लेकिन जब किसी समाज में शिक्षित व्यक्ति बहुत बड़ी मात्रा में बेरोजगार रहते हैं तो यह गम्भीर समस्या का रूप ले लेती है। भारत में इस समस्या का आरम्भ औद्योगीकरण के विकास के साथ हुआ। क्योंकि उद्योगों में सभी स्तर का कार्य मशीनों द्वारा हुआ जिसमें व्यक्तियों की शिक्षा, योग्यता का कोई महत्व नहीं रह गया।

* *प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, अकबरपुर महाविद्यालय, अकबरपुर कानपुर देहात*

वर्तमान समय में तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या तथा नौकरी की सामान्य प्रवृत्ति के कारण यह समस्या इतनी गम्भीर हो चुकी है, कि पिछली लगभी सभी पंचवर्षीय योजनाओं की अवधि में बहुत व्यापक प्रयत्न करने के बाद भी अब तक की प्राप्त सूचनाओं के आधार पर देश में लगभग 10 करोड़ व्यक्ति बेरोजगार हैं इसमें शिक्षित बेरोजगारों की संख्या भी अत्यधिक है। देश में 1500 कार्यालयों में सन् 2018 तक लगभग 6 करोड़ से अधिक व्यक्तियों ने अपने को रोजगार कार्यालयों में पंजीकृत करा रखा था। आज यह समस्या जटिल परिस्थितियों को जन्म दे रही है। शिक्षा व रोजगार के अवसरों में कोई संतुलन न हो पाने के कारण लाखों युवक रोजगार से वंचित रह जाते हैं। इसके अंतर्गत साधारण योग्यता प्राप्त व्यक्ति ही नहीं बल्कि उच्च तकनीकी ज्ञान रखने वाले लाखों व्यक्ति आज बेकारी में जीवन व्यतीत कर रहे हैं। इस प्रकार की बेकारी प्रायः नगरों में दिखायी देती है।

बेरोजगारी रोजगार की विपरीत स्थिति है। साधारणतया बेकारी अथवा बेरोजगारी का तात्पर्य किसी भी ऐसी स्थिति से समझा जाता है, जिसमें व्यक्ति कोई भी आर्थिक क्रिया न करता हो, यह धारणा भ्रमपूर्ण है वास्तव में शिक्षित बेरोजगारी से तात्पर्य यह है कि जब व्यक्ति उचित शिक्षा, पर्याप्त योग्यता, यथानुकूल इच्छा और प्रयत्नों के बाद भी न्यूनतम सुविधायें प्राप्त नहीं कर पाता है, तब इस स्थिति को शिक्षित बेरोजगारी कहा जाता है। शिक्षित बेरोजगारी उसी व्यक्ति को कहा जा सकता है, जब व्यक्ति पर्याप्त शिक्षा, योग्यता, इच्छा रखते हुए भी रोजगार प्राप्त नहीं कर पाता है।

भारत में बेकारी की समस्या का सबसे गम्भीर रूप शिक्षित व्यक्तियों की बेकारी के रूप में देखने को मिलता है। इस समय वास्तव में कितने शिक्षित व्यक्ति बेरोजगार हैं, इसका अनुमान लगाना भी कठिन है। हमारी मनोवृत्ति कुछ इस प्रकार की रही है कि व्यक्ति जब तक अपने प्रयासों में बिल्कुल असफल नहीं हो पाता, वह रोजगार दफ्तरों में अपना नाम नहीं लिखाने जाते हैं। इसके पश्चात् भी अब तक की प्राप्त सरकारी सूचनाओं के अनुसार इस समय रोजगार कार्यालयों में 7035 करोड़ से अधिक बेरोजगार व्यक्तियों के नाम पंजीकृत हैं। किसी भी सामान्य व्यक्ति को यह जानकार अत्यधिक आश्चर्य हो सकता है, कि रोजगार दफ्तरों में कुल पंजीकृत बेरोजगार लोगों में 3.2 करोड़ व्यक्ति मैट्रिक से अधिक लेकिन स्नातक स्तर से कम शिक्षित हैं, जबकि 16 लाख से भी अधिक व्यक्ति ग्रेजुएट, स्नातकोत्तर अथवा व्यावसायिक परीक्षायें उत्तीर्ण किये हुए हैं। यह समस्या तब और गम्भीर प्रतीत होती है जब यहाँ हजारों डॉक्टर, इंजीनियर तथा अन्य तकनीकी योग्यता प्राप्त व्यक्ति भी अपने लिए उचित रोजगार प्राप्त नहीं कर पाते।

शिक्षित व्यक्तियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होने के कारण रोजगार के नये अवसर बढ़ी हुई आवश्यकताओं को पूरा करने में असफल रहे हैं। भारत में अभी तक शिक्षित बेकारी की समस्या केवल पुरुषों तक ही सीमित थी, लेकिन अब बहुत सी उच्च शिक्षा प्राप्त स्त्रियाँ भी रोजगार प्राप्त करने का प्रयत्न करने लगी हैं, जबकि उन्हें बहुत कठिनता से रोजगार मिल पाता है। भारत में इस समय प्रतिवर्ष 80 लाख अतिरिक्त व्यक्तियों के लिए रोजगार की आवश्यकता होती है, जिनमें शिक्षित युवकों की संख्या बहुत अधिक होती है। इस आधार पर यदि हम भविष्य में बेरोजगारी की समस्या का मूल्यांकन करें तो और भी अधिक निराशाजनक स्थिति सामने आती है।

शिक्षित बेरोजगारी की समस्या को प्रेरित करने वाले कारण—समुचित स्तर तक शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त भी यदि व्यक्ति को उसके शैक्षिक स्तर के अनुरूप नौकरी प्राप्त न हो तो उस व्यक्ति को शिक्षित बेरोजगार कहा जायेगा। हमारे समाज में प्रत्येक स्तर पर बेरोजगारी व्याप्त है। करोड़ों युवक शिक्षा प्राप्त करने के बाद भी रोजगार कार्यालयों में चक्कर लगाते रहते हैं। वास्तव में शिक्षित बेरोजगारी देश के लिए अभिशाप है। बेरोजगारी की समस्या के लिए निम्न कारण उत्तरदायी हैं—

1. हमारी शिक्षा प्रणाली अपने आप में दोषपूर्ण है। हमारी शिक्षा प्रणाली के प्रारम्भ करने वाले अंग्रेज थे, उस समय शिक्षा का आधार केवल क्लर्क या बाबू बनना रह गया था। वही शिक्षा आज भी प्रचलित है। शिक्षित युवक कार्यालयों में बाबू बनने के अलावा कुछ और नहीं बन पाते। कार्यालयों में सीमित संख्या में ही भर्ती हो सकती है। इस स्थिति में अनेक शिक्षित नवयुवकों का बेरोजगार रह जाना अनिवार्य ही है।

2. हमारे देश में विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रों की संख्या बहुत अधिक है। ये छात्र प्रतिवर्श डिग्रियाँ प्राप्त करके शिक्षित व्यक्तियों की संख्या में वृद्धि करते हैं। इन सबके लिए रोजगार के समुचित

अवसर उपलब्ध नहीं होते, अतः शिक्षित बेरोजगारी की समस्या बढ़ती ही जाती है।

3. भारत में व्यावसायिक शिक्षा की पर्याप्त व्यवस्था एवं सुविधा उपलब्ध नहीं है। यदि व्यावसायिक एवं तकनीकी शिक्षा की समुचित व्यवस्था हो तो सभी व्यक्तियों को रोजगार प्राप्त हो सकता है।

4. हमारे देश में शिक्षित बेरोजगारी की समस्या के दिन प्रतिदिन बढ़ जाने का एक कारण यह है कि हमारे अधिकांश शिक्षित नवयुवकों का शारीरिक श्रम के प्रति उपेक्षा का दृष्टिकोण है, वे नवयुवक शारीरिक श्रम करना ही नहीं चाहते और उसके प्रति हीनता की भावना रखते हैं। इस दृष्टिकोण के कारण ही वे उन समस्त कार्यों को प्रायः अस्वीकार कर देते हैं, जो शारीरिक श्रम से जुड़े हुए होते हैं।

5. शिक्षित नवयुवकों के बेरोजगार रह जाने का एक कारण हमारे देश में व्याप्त निर्धनता भी है। अनेक नवयुवक धन के अभाव के कारण व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त भी अपना व्यवसाय प्रारम्भ नहीं कर पाते हैं। इस बाध्यता के कारण वह निरन्तर नौकरी की तलाश में घूमते हैं और बेरोजगारी में वृद्धि करते हैं।

6. हमारे देश में व्याप्त औद्योगीकरण व नगरीकरण की प्रक्रिया भी शिक्षित बेरोजगारी को बढ़ाने में सहायक है। आज उद्योग में प्रत्येक स्तर का कार्य मशीनों द्वारा होने लगा है, व्यक्ति के कार्य का कोई महत्व नहीं रह गया है। इसलिए व्यक्ति आज शिक्षित होकर भी बेरोजगार दिखायी देता है।

7. ग्रामीण अर्थव्यवस्था के पिछड़ेपन के कारण भारत में शिक्षित बेरोजगारी में वृद्धि हो रही है। ग्रामीण अंचलों में शिक्षा का प्रसार तीव्रता से हो रहा है, किन्तु उसके अनुपात में रोजगार के अवसर वहाँ नाम मात्र को हो रहे हैं। आर्थिक रूप से ये पिछड़े हुए क्षेत्र हैं जहाँ शिक्षित व्यक्तियों की खपत होना सम्भव नहीं है। इसलिए इन क्षेत्रों से सम्बन्धित व्यक्ति बेरोजगार रहता है।

8. शिक्षित बेरोजगारी में वृद्धि का एक प्रमुख कारण दैनिक जीवन में निरर्थक डिग्रियाँ हैं हम जो डिग्रियाँ युवकों को दे रहे हैं, क्या वह नौकरी प्राप्त करवाने में सहायक हैं? नहीं, ये डिग्रियाँ मात्र नौकरी की अर्हतायें पूर्ण करती हैं। एम0एस–सी0 उत्तीर्ण युवक बैंक में बाबूगिरी करता है तो क्या उसकी डिग्री की उपयोगिता उसके दैनिक जीवन में है।

शिक्षित बेरोजगारी एक ज्वलंत समस्या–वर्तमान समय में व्यक्ति समाज में हरसंभव सफलता प्राप्त करने के लिए अपनी रुचि, योग्यता व क्षमता के आधार पर शिक्षा प्राप्त करता है और यह आशा करता है कि वह समाज में समायोजन स्थापित कर सके किन्तु जब समाज में व्यक्ति की क्षमता व योग्यता के आधार पर उसे रोजगार के समुचित अवसर प्राप्त नहीं हो पाते तो, उसमें विद्रोही भावना घर कर जाती है। उसमें निराशा, कुंठा व वैमनस्यता की भावना व्याप्त हो जाती है। वर्तमान समय में शिक्षित बेरोजगारी की भावना में इतनी अधिक वृद्धि हो रही है कि इसके कारण न तो व्यक्ति का और न तो समाज का ही विकास संभव है।

इस गम्भीर समस्या ने समाज में अनेक संकटकालीन परिस्थितियाँ उत्पन्न की हैं। जब व्यक्ति इस गम्भीर समस्या के कारण अपनी मौलिक आवश्यकताओं तक की पूर्ति करने में असमर्थ हो जाता है तो वह अपनी आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए अनैतिक एवं समाज विरोधी कार्य करने लगता है। वास्तव में शिक्षित बेरोजगारी सामाजिक विघटन का कारण व परिणाम दोनों ही हैं।

वर्तमान समय में यह समस्या ऐसी विभीषिका के रूप में हमारे समाज में फैली हुई है कि भविष्य के समाज के प्रति कल्पना करना भी भयानक प्रतीत होता है। यह समस्या केवल व्यक्ति पर ही प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालती है, बल्कि समाज भी इससे अछूता नहीं है। यह समस्या समाज में अनेक गम्भीर विषमताओं को जन्म देती है जैसे– निर्धनता, वेश्यावृत्ति, सामाजिक तनाव आदि। यह समस्त समस्यायें सामाजिक जीवन में असंतुलन तथा अव्यवस्था को जन्म देती हैं और यह गम्भीर समस्या सामाजिक विघटन की ओर इंगित करती है। वास्तव में एक समस्या रहित समाज ही संगठित समाज कहलाता है, यदि समाज में सभी समस्यायें समूल नष्ट हो जायें, तभी हम एक संगठित समाज की स्थापना करने में सक्षम हो सकेंगे।

शिक्षित बेरोजगारी की समस्या के कारण समाज में अनेक दुष्परिणाम देखने को मिलते हैं जैसे– ऋणग्रस्तता, मानसिक असंतुलन, निम्न जीवन स्तर, अपराधों में वृद्धि, सामाजिक विघटन, सामाजिक समस्याओं का जन्म पारिवारिक विघटन, आत्महत्या, सामाजिक विचलन, आन्दोलन तथा क्रान्ति, नैतिक पतन, सामाजिक प्रतिष्ठा का पतन।

भारत में बेरोजगारी एक आर्थिक–सामाजिक समस्या के रूप में–किसी भी देश की असंख्य समस्यायें उस देश की आर्थिक सामाजिक व्यवस्था से उत्पन्न होती है। ये बात वे स्वीकार नहीं करते हैं जो जरूरत से ज्यादा धार्मिक हैं अथवा पूंजीवादी व्यवस्था के समर्थक हैं। वे व्यक्ति भी इस तथ्य को स्वीकार नहीं करते हैं, जो शुद्ध कर्मकाण्डी और भाग्यवादी हैं। इनके अनुसार गरीबी व अमीरी ईश्वर की देन है। ये भाग्यवादी और धार्मिक प्रवृत्ति वाले व्यक्तियों के तर्क हैं अथवा कुतर्क, ये आपके विवेक पर निर्भर है।

जहाँ तक भारत का प्रश्न है शताब्दियों से यहाँ पूजीवादी व्यवस्था रही है। सामन्तों का शासन रहा है, देश पर राजा महाराजाओं ने शासन किया है। ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने भी लगभग 200 वर्ष तक देश पर राज्य किया है इन सब की एक सामान्य नीति थी व्यक्तियों का शोषण करना। उत्पादन के साधनों पर इनका एकाधिकार था, लाभ का अधिकांश इनके खजाने में भरता था। इन्होंने आर्थिक व सामाजिक व्यवस्था को कभी भी इस रूप में नियोजित नहीं किया जिससे देश के सभी व्यक्तियों को रोजगार मिल सके। इनकी नीति व्यक्तियों को भूखा रखकर उसे गुलाम बनाये रखने की थी। अस्तु जब तक देश में पूँजीवादी व्यवस्था के समर्थक रहेंगे तब तक देश की न तो आर्थिक सामाजिक व्यवस्था सुदृढ़ हो सकती है और न तो बेरोजगारी की समस्या का निराकरण हो सकता है।

सरकार द्वारा किये गये प्रयास

प्रथम पंचवर्षीय योजना–इस योजना के साथ भारतीय समस्याओं के निराकरण का युग भी आरम्भ हुआ। रोजगार के अवसर अधिक से अधिक व्यक्तियों को प्राप्त हुए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रथम पंचवर्षीय योजना में 70 लाख व्यक्तियों को नौकरी की सुविधा दी गयी।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना–इस योजना ने रोजगार सुविधाओं में वृद्धि नहीं हो पायी, फिर भी 100 लाख व्यक्तियों को रोजगार सुविधायें प्रदान की गयीं।

तृतीय पंचवर्षीय योजना–इस योजना में ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ किया गया। इसमें सार्वजनिक निर्माण कार्यों को महत्व दिया गया। इस योजना में 145 लाख व्यक्तियों को रोजगार देने की व्यवस्था की गयी।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना–इस योजनाकाल में नवीन रोजगार सुविधामूलक कार्यक्रम आरम्भ किये गये जैसे–लघु उद्योग, सहकारिता, सड़क निर्माण तथा औद्योगीकरण को प्रोत्साहन दिया गया। ऐसी योजना के द्वारा 180 लाख व्यक्तियों को रोजगार प्रदान किया गया।

पंचम पंचवर्षीय योजना–इस योजना में रोजगार के निराकरण को प्राथमिकता दी गयी। ग्रामीण व शिक्षित बेरोजगारों पर विशेष ध्यान दिया गया। इसमें विशेषतयः लघु उद्योग धंधे जैसे–पशुपालन, दुग्ध व्यवसाय, ग्रामीण निर्माण कार्य, आवास व स्वास्थ्य समस्याओं से सम्बन्धित कार्यक्रम अपनाये गये।

षष्ठम पंचवर्षीय योजना–इस योजना में यह स्वीकार किया गया कि भारत में बेरोजगारी की समस्या भयावह बन गयी। अस्तु विभिन्न ग्रामीण व नगरीय विकास योजनाओं को ऐसे संगठित किया जाये जिससे सभी स्तर के व्यक्तियों को रोजगार के अवसर अधिक से अधिक प्रदान किये जायें। यह अनुमान लगाया गया कि इस योजनाकाल में 34.2 मिलियन व्यक्ति प्रतिवर्ष के समान रोजगार में वृद्धि होगी। सातवीं योजना में 4 करोड़ लोगों को रोजगार प्रदान करने की योजना है।

संदर्भ सूची

1. जी.आर. मदान, भारतीय सामाजिक समस्या
2. सरला दुबे, सामाजिक व्याधिकी व विघटन
3. डी.एस. बघेल, अपराधशास्त्र
4. दैनिक जागरण, 13 सितम्बर, 2016
5. स्वतंत्रत भारत, 11 अक्टूबर, 2017
6. अमर उजाला, 15 सितम्बर, 2010

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Sociology : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 385-388

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति एवं शिक्षा

*अर्चना**

किसी भी राष्ट्र की प्रगति में पुरुषों के साथ–साथ महिलाओं की भागीदारी अतिआवश्यक है। संसार के सृजन और संचालन में नारी का विशेष स्थान है। इस सृजन एवं संचालन की प्रक्रिया में पुरुष से महिला का अंशदान कहीं श्रेष्ठ है, साथ ही यह भी सर्वमान्य तथ्य है कि महिला सदियों से भेदभाव व शोषण सह रही है। आज भी उसकी स्थिति दूसरे दर्जे के नागरिक की है। लैंगिंक असमानता स्वयं मानव की देन है। शताब्दियों से बालिकाएँ, किशोरियाँ, युवतियाँ प्रौढ़ाएँ केवल इस आधार पर भेदभाव का शिकार होती आई हैं कि वे स्त्री हैं। परन्तु वर्तमान समय में हमें महिलाओं की स्थिति में बदलाव दिखाई दे रहा है जिसका मूल कारण शिक्षा है। शिक्षा के द्वारा ही समाज में व्याप्त विभिन्न प्रकार की असमानताओं का उन्मूलन किया जा सकता है। अतः समाज के सभी वर्गों का शिक्षित होना अनिवार्य है। जिससे समाज एवं राष्ट्र का विकास हो सके। हमारे प्राचीन समाज से लेकर वर्तमान आधुनिक समाज में महिलाओं की स्थिति भिन्न–भिन्न रही। जिससे इनकी सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक भूमिका सीमित रही। बदलते वर्तमान परिदृश्य में महिलाओं को समाज की मुख्यधारा में लाने के लिए हमारे समाज में दिन–प्रतिदिन अनेक सराहनीय कदम उठाए जा रहे हैं जससे महिलाओं की स्थिति में सकारात्मक परिवर्तन हो रहे हैं और इन परिवर्तनों में सबसे अहम भूमिका शिक्षा की है। शिक्षा के महत्व को स्वीकारते हुए कहा जाता है कि यदि एक पुरुष को शिक्षित किया जाए तो एक व्यक्ति ही शिक्षित होता है, लेकिन एक महिला को शिक्षित कर दिया जाये तो पूरा परिवार शिक्षित हो जाता है। अतः एक महिला का शिक्षित होना उसके पूरे परिवार की शिक्षा और कल्याण से जुड़ा है।

स्त्री शिक्षा की ऐतिहासिक स्थिति

वेदों में स्त्री जाति को पुरुष जाति का पूरक माना गया है वैदिक कालीन भारत में महिलाओं को पुरुषों के समान ही शिक्षा दी जाती थी। लड़कियों के वेदाध्ययन करने सम्बन्धी उल्लेख अथर्ववेद में भी मिलते हैं। वैदिक काल में महिलाओं को विद्याध्ययन का पूर्ण अधिकार था। अधिकांशतः माता–पिता अथवा कुल पुरोहित प्रायः लड़कियों को घर पर ही शिक्षा प्रदान करते थे। गृहस्थी आश्रम में प्रवेश करने से पहले तक लड़कियाँ अध्ययन करती थी अतः वैदिककाल में नारी शिक्षा को पर्याप्त महत्व दिया गया था। वैदिककाल में घोषा, लोपामुद्रा, विश्ववारा, अपाला आदि विदुषी महिलाओं का उल्लेख मिलता है। परन्तु उत्तर वैदिककाल में महिलाओं की स्थिति में ह्रास होने लगा, स्त्रियों के समाज में स्थान पुरुषों के बराबर नहीं रहा, निम्न हो गया। उनकी शिक्षा भी उपेक्षित हो गई। गार्गी, मैत्रेयी, घोषा, लोपामुद्रा, विश्ववारा, अपाला आदि की परम्परा टूट गई और तब मूर्खतापूर्ण सूक्तियाँ चल पड़ी कि स्त्री और शूद्र को नहीं पढ़ाना चाहिए। इस तरह से उत्तरवैदिक काल में महिलाओं की स्थिति निम्न हो गई। उत्तरवैदिक काल तक स्त्री शिक्षा का महत्व कम हो गया। स्त्रियों के लिए वेद अध्ययन और वेदपाठ पर रोक लगा दी गई, उनकी स्थिति बद से बदतर होती गई, पुरुषों द्वारा उन्हें पराधीन, हेय, अशिक्षित करके घर की चहारदीवारी में कैद कर दिया गया।

बौद्धकाल में स्त्रियों की स्थिति में उत्तरवैदिककाल की अपेक्षा सुधार हुआ, किन्तु बौद्ध बौद्ध शिक्षा से केवल धनी और कुलीन परिवारों की स्त्रियाँ ही लाभान्वित हुई। समान स्त्रियों के लिए बौद्धों ने शिक्षा के लिए कोई प्रयास

* *शोध छात्रा (समाजशास्त्र विभाग), नेहरू ग्राम भारती विश्वविद्यालय, इलाहाबाद*

नहीं किए। महात्मा बुद्ध ने अपने शिष्य आनन्द के कहने पर स्त्रियों को बौद्ध संघ में प्रवेश की अनुमति दी जिसके कारण स्त्री शिक्षा का विकास हुआ, लेकिन अधिकांशतः कुलीन वर्ग की स्त्रियाँ ही लाभान्वित हुई। प्रारम्भ में बौद्ध विहार चिन्तन और मनन के केन्द्र थे बाद में संस्कृति और ज्ञान के केन्द्र बन गए। बौद्धकाल में लिपिशाला विद्यालय को कहते थे, इसमें कन्यायें शिक्षा लेती थी। इस काल में स्त्री और पुरुष दोनों को शिक्षा पाने का अधिकार था। थेरीगाथा में 23 ऐसी विदुषी कवयित्रियों की रचनाएँ संग्रहीत है जो ज्ञान प्राप्ति हेतु अविवाहित रही थी। अनेक स्त्रियों ने बौद्ध संघ में प्रवेश लिया। संघमित्रा बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार हेतु श्रीलंका गई जहाँ उसने बौद्ध शिक्षाओं का प्रसार किया। अतः कहा जा सकता है कि बौद्धकाल में स्त्री शिक्षा का विकास एवं स्त्रियों की स्थिति में सकारात्मक पवरिवर्तन हुआ किन्तु यह परिवर्तन एवं विकास केवल कुलीन परिवारों में ही देखने को मिला। सामान्य वर्ग की महिलाओं की शिक्षा एवं स्थिति में न के बराबर ही विकास हुआ।

मध्यकालीन भारत में शिक्षा को सामाजिक कर्तव्य के रूप में स्वीकार नहीं किया जाता था। उस काल में सार्वजनिक शिक्षा कठिन हो गई थी। मुस्लिम शासन के समय महिलाओं में पर्दा प्रथा का प्रचलन होने के कारण उस समय नारी शिक्षा का विकास काफी कम हो सका था। कम आयु वर्ग की लड़कियाँ तो मकतबों में जाकर प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहण कर लेती थी परन्तु उच्च शिक्षा के लिए घर पर ही व्यवस्था करनी होती थी। इसी कारण उच्च शिक्षा केवल शाही तथा अमीर घरानों तक ही सीमित रह गई थी। मुस्लिम काल में परिवार के व्यक्तिगत उद्यम तथा आर्थिक क्षमता पर ही नारी शिक्षा निर्भर करती थी इसलिए कुछ परिवारों की लड़कियाँ ही शिक्षा प्राप्त करने में सफल हो सकी। निम्न और निर्धन वर्गों की महिलाएँ या तो ज्ञान प्राप्ति के लाभ से वंचित रह जाती थीं या उनको पढ़ने–लिखने के अत्यन्त अल्प अवसर प्राप्त हो पाते थे। ब्रिटिशकाल के प्रारम्भिक वर्षों में स्त्री शिक्षा में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई तथा स्त्री शिक्षा लगभग उपेक्षणीय बनी रही। परन्तु बाद के वर्षों में नारी शिक्षा के लिए प्रयास किए गए। स्त्रियों की शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए अनेक कन्या विद्यालय खोले गए। सन् 1813 के आज्ञा पत्र में स्त्री शिक्षा को कोई स्थान नहीं दिया गया। स्त्री शिक्षा की दिशा में सबसे पहला प्रयास इसाई मिशनरियों ने किया। 1820 में डेविड हेयर ने स्त्री शिक्षा का सबसे पहला विद्यालय कलकत्ता में स्थापित किया। राजाराम मोहन राय ने भी स्त्री शिक्षा का प्रचार किया, पर इन प्रयासों का लाभ एक वर्ग विशेष तक ही सीमित रहा। वुड के घोषणा पत्र में कहा गया कि स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए हर सम्भव प्रयत्न किए जाएं और स्त्री शिक्षा के प्रसार में लगे व्यक्तिगत प्रयासों को प्रोत्साहन दिया जाए, परिणामस्वरूप अनेक स्थानों पर बालिका विद्यालयों की स्थापना की गई।

स्त्री शिक्षा के समर्थन में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अथक प्रयास किए। स्त्री शिक्षा उनके आन्दोलन का यह एक मुख्य अंग था। उनके द्वारा स्थापित संस्था आर्य–समाज के कार्यक्रम में भी स्त्री कल्याण की योजनाओं का विशेष स्थान रहा है। स्त्री शिक्षा की अनेक संस्थाएँ आर्य समाज ने इसी कार्यक्रम के अन्तर्गत खोली। बंगाल में यही कार्य रामकृष्ण मिशन ने किया है। आज स्त्री शिक्षा में जो जागरूकता दिखाई देती है वह प्रमुख रूप से इन सांस्कृतिक आन्दोलनों का और गौण रूप में अंग्रेजी शिक्षा का समन्वित परिणाम है।

स्वतंत्रता के बाद स्त्री शिक्षा का काम काफी आगे बढ़ा है और नारियों का सामाजिक स्तर भी काफी ऊँचा उठा है। उसे अब समान शैक्षिक सुविधाएँ प्राप्त होती जा रही हैं। स्वतंत्रता पश्चात महिलाओं की स्थिति में प्रगति हुई लेकिन उसे संतोषजनक नहीं कहा जा सकता। स्त्रियों के प्रति हमारे परम्परागत दृष्टिकोण में अभी भी मौलिक परिवर्तन नहीं आया है। भारतीय संविधान में भले ही समानता का अधिकार दे दिया गया हो परन्तु व्यवहारिक रूप से आज भी पूर्ण रूप से समानता नहीं आ पाई है क्योंकि समाज में आज भी मान्यताओं, परम्पराओं, रीति–रिवाजों एवं संस्कारों को वरीयता दी जाती है। आज भी समाज में अनेक प्रकार की कुरीतियाँ मौजूद हैं जो महिला एवं पुरुष में भेद बनाए हुए हैं।

स्त्रियों की सुदृढ़ स्थिति के लिए किए गए महत्वपूर्ण कार्य

महिलाओं के जीवन की सभी समस्याओं की जड़ अशिक्षा है, इस सत्य से हम मुकर नहीं सकते। प्रत्येक विकसित समाज के निर्माण स्त्री एवं पुरुष दोनों की सहभागिता आवश्यक है। शिक्षा आर्थिक और सामाजिक

सशक्तीकरण के लिए पहला और मूलभूत साधन है। शिक्षा ही वह साधन है जिससे महिला समाज में अपनी सशक्त, समान व उपयोगी भूमिका दर्ज करा सकती है। दुनिया के जो भी देश आज समृद्ध व शक्तिशाली हैं, वे शिक्षा के बल पर ही आगे बढ़े हैं। इसलिए आज समाज की आधी आबादी अर्थात महिलाएँ जो कि विकास की मुख्यधारा से बाहर है उन्हें शिक्षित बनाना हमारी पहली प्राथमिकता होनी चाहिए। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सरकार एवं महिला आयोगों आदि के प्रयासों से महिलाओं के लिए विकास के द्वार खुले एवं उनमें शिक्षा का प्रसार बढ़ा जिससे उनमें जागृति आई, आत्मविश्वास उत्पन्न हुआ परिणामस्वरूप वे प्रगतिपथ पर आगे बढ़ी।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के भाग–4 (शीर्षक समानता के लिए शिक्षा) के अन्तर्गत वर्णन किया गया कि ''नई शिक्षा नीति विषमताओं को दूर करने पर बल देगी और अब तक वंचित रहे। लोगों की विशेष आवश्यकताओं को ध्यान देते हुए शिक्षा के अवसर उपलब्ध कराएगी।'' इन वंचित वर्गों में महिलाओं का भी उल्लेख किया गया है। महिलाओं के प्रति इस शिक्षा नीति में महिलाओं के मूल्यों की स्थापना हेतु शिक्षण संस्थाओं के सहयोग से पाठ्यक्रम तथा पठन–पाठन सामग्री पुर्नरचना करना, अध्यापकों व प्रशासकों को पुनः प्रशिक्षित करना, महिलाओं से सम्बन्धित अध्ययन को विभिन्न पाठ्यक्रमों का अंग बनाना, शिक्षण संस्थाओं को महिला विकास के सक्रिय कार्यक्रम प्रारम्भ करने हेतु प्रेरित करना, विभिन्न स्तरों पर तकनीकी और व्यवसायिक शिक्षा में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करना आदि शामिल हैं।

शिक्षा नीति 1986 के लागू होने के 5 वर्ष बाद उसकी समीक्षा हुई और कुछ संशोधन लाये गये जिन्हें क्रियान्वयन कार्यक्रम 1992 में वर्णन किया गया। इनमें नारी शिक्षा सम्बन्धी प्रमुख बातें कही गईं–समानता शिक्षा कार्यक्रम के तहत समग्र साक्षरता अभियान पर अधिक जोर दिया जायेगा। राष्ट्रीय साक्षरता मिशन को निर्धनता निवारण, नारी समानता को प्रोत्साहन और प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण से जोड़ा जायेगा। भविष्य में शिक्षण हेतु नियुक्त होने वालों में 50 प्रतिशत भागीदारी महिलाओं की होगी। वंचित बच्चों एवं लड़कियों हेतु अनौपचारिक शिक्षा के कार्यक्रमों को सुदृढ़ और विस्तृत किया जायेगा।

यदि हम वर्तमान स्थिति की समीक्षा करते हैं तो पाते हैं कि विगत दो–ढाई दशको में अन्य वंचित वर्गों सहित महिलाओं को राष्ट्र की मुख्य शैक्षिक धारा में अन्य वर्गों के समकक्ष काफी कुछ प्रयास हुआ है। इस सम्बन्ध में सर्वशिक्षा अभियान, प्राथमिक शिक्षा का सार्वजनीकरण, दूरस्थ शिक्षा, निरौपचारिक शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, राष्ट्रीय साक्षरता मिशन, महिला सशक्तीकरण, समग्र साक्षरता अभियान, आपरेशन ब्लैक बोर्ड, उच्च शिक्षा संस्थाओ में फीस माफी की व्यवस्था आदि कार्यक्रमों के द्वारा वंचित वर्गों एवं महिलाओं की शैक्षिक स्थिति में सुधार हुआ है। 4 अगस्त, 2009 को संसद द्वारा पारित निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा विधेयक 2008 जो 1 अप्रैल, 2010 से प्रभाव हुआ जिसका शिक्षा के क्षेत्र में अमूल्य योगदान है जिससे समाज के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि दृष्टिकोण से पिछड़े एवं वंचित वर्गों को शिक्षा के सुलभ अवसर प्राप्त हुए। इसमें महिलाओं की भी भूमिका महत्वपूर्ण है। अतः महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा समय–समय पर अनेक महत्वपूर्ण योजनाओं का क्रियान्वयन किया गया जिसमें महिलाओं की स्थिति में प्रगति सम्भव हो सके।

सुझाव

जब तक समाज का प्रत्येक प्राणी अपने चिन्तन–मनन, विवेक एवं तर्क के आधार पर वर्षों से चले आ रहे परम्परागत दृष्टिकोण में सुधार नहीं लायेगा अर्थात् नारियों को सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, धार्मिक दृष्टि से समान नहीं समझेगा एवं उनको समान अवसर नहीं उपलब्ध करायेगा, तब तक यह नीतियाँ केवल कागज के पन्नों में ही सिमट कर रह जायेगी और समाज का विकास हो पाना भी असम्भव है। अतः हमें महिलाओं को पुरुषों के समक्ष सभी कार्यों में समान अवसर प्रदान किये जाने चाहिए। प्रत्येक क्षेत्र में उनकी सहभागिता सुनिश्चित किया जाना चाहिए, जिससे परिवार, समाज, राज्य एवं राष्ट्र का विकास हो सके। अतः हमें महिलाओं के आत्मविश्वास को बढ़ावा देना चाहिए एवं विकासात्मक क्रियाओं में समान सहभागिता को बढ़ावा देना चाहिए। समाज की राजनीतिक, आर्थिक स्थिति में महिलाआं के योगदान को मान्यता प्रदान कर महिलाओं की सकारात्मक छवि को आगे ले जाने के लिए तत्पर रहना होगा, जिससे महिलाओं एवं लड़कियों के खिलाफ हिंसा एवं भेदभाव

को खत्म किया जा सके। शिक्षा, रोजगार तथा स्वास्थ्य जैसे क्षेत्रों में महिलाओं को अधिक से अधिक जानकारी प्रदान कर समस्या के समाधान की ओर अग्रसर किया जाना चाहिए। समाज के सभी वर्गों के लोगों के सामूहिक प्रयास द्वारा ही समाज एवं समुदाय के स्त्री सम्बन्धित दृष्टिकोण एवं सोच का सकारात्मक दिशा दिया जा सकता है।

सन्दर्भ सूची

1. पाण्डेय, रामशकल (2008), भारतीय शिक्षा की समसामयिक समस्याएं, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
2. पाठक, इन्दु (2005), शिक्षा तथा महिला सशक्तिकरण, कुरुक्षेत्र ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली, वर्ष 51, अंक 11, सितम्बर 2005।
3. पाटले, अमृत (2009), महिला सशक्तिकरण में सामाजिक सुरक्षा एवं शिक्षा का प्रभाव, परिप्रेक्ष्य, वर्ष 16, अंक 2, दिसम्बर 2009।
4. वर्मा, सवलिया बिहारी (2011), ग्रामीण शिक्षा एवं प्रौद्योगिकी, युनिवर्सिटी पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
5. सिंह, रघुराज एवं सिंह, योगेश कुमार (2008), भारतीय शिक्षा समस्याएं एवं समाधान, युनिवर्सिटी पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

* * * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Sociology : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 389-391

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

परम्परा व आधुनिकता के बीच नारी की स्थिति

*दीपिका शर्मा**

''न मैं देवी हूं न मैं दासी हूं मैं सिर्फ एक औरत हूँ''

परम्परा का शाब्दिक अर्थ है–बिना किसी व्यवधान के पहले से विद्यमान प्रारूप व मानकों के अनुसार कार्य को करना व जारी रखना है। परम्परा किसी विषय/कार्य प्रणाली को बिना किसी परिवर्तन के एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक संचारित करते रहने की प्रक्रिया है। परम्परा किसी समुदाय का वह संचारित मूल्य एवं मान्य व्यवहार है, जो दीर्घकाल से चली आ रही है। बहुधा परम्पराओं के साथ व्यापक रूप से स्वीकृत कर्मकाण्ड एवं प्रतीकात्मक व्यवहार के विभिन्न रूप जुड़े होते हैं। परम्पराएं पूर्णतः स्थिर नहीं होती, बल्कि स्थान व समय के अनुसार इनमें परिवर्तन मंद गति से होता रहता है। कई बार उपयोगिताहीन परम्पराएं समाज से लुप्त या समाप्त भी हो जाती है।

आधुनिकतारूपी विचार की शुरूआत औद्योगिकरण व पूंजीवाद के अस्तित्व में आने से हुई है, इसलिए आधिुनिकता की कई विशेषताएं है जैसे– परानुभूति, वैज्ञानिकता, अमूर्तीकरण, भविष्योन्मुखता, सार्वभौमिकता, धर्मनिरपेक्षता, व्यैक्तिकता, मुक्तिकरण, उन्नति आदि। संक्षेप में आधुनिकता बुनियादी बनने, अंधविश्वास से बाहर निकलने, नैतिकता में उदारता बरतने की प्रक्रिया है। जब हम यह कहते है कि यह 'आधुनिक' है तो इसका मतलब है कि यह परम्परा से 'हटकर' है। इसी परम्परा व आधुनिकता रूपी विचार को यदि समाज सापेक्ष लेकर चले तो हम देखते है कि परम्परागत समाज अन्य समाज की तुलना में बहुत धीमी गति से आगे बढ़ता है, शायद यही कारण है कि भारतीय समाज की स्त्रियों की दशा अन्य समाज की स्त्रियों से भिन्न व पिछड़ी चल रही है। क्योंकि भारतीय समाज परम्परा प्रधान समाज है। जिस कारण यहां परिवर्तनों को सहजता से स्वीकार नहीं किया जाता और यदि स्वीकार किया भी जाता है तो या तो उसमें कई वर्ष बीत जाते है या उसके परिवर्तन के पीछे कोई क्रांति होती है! इस परम्परा व आधुनिकता के दौर में फंसी स्त्री दुनिया में अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रही व अपने वास्तविक भूमिका की तलाश कर रही है।

वर्तमान नारी भारतीय परम्परा व अधुनिकता के बीच सामंजस्य को लेकर अपनी दोहरी भूमिका में स्वयं के अस्तित्व को ढूंढने की कोशिश कर रही है, और विचार कर रही है कि उसे किस रूप में स्वयं को समाज के समक्ष स्थापित करना है। स्त्रियों के इस संशय के विषय पर **एंजेल्स** ने अपने शब्दों में लिखा है–''जब नारी अपने परिवार की निजी सेवा के अपने कर्त्तव्य का पालन करती है, तब उसे सार्वजनिक उत्पादन के बाहर रहना पड़ता है, वह कुछ कमा नहीं सकती, और जब सार्वजनिक उत्पादन में भाग लेना और स्वतंत्र रूप से अपनी जीविका कमाना चाहती है तब वह अपने परिवार के प्रति अपने कर्त्तव्यों को पूरा करने की स्थिति में नहीं होती। आधुनिक व्यैक्तिक समाज व परिवार नारी की खुली या छुपी हुई घरेलू दासता पर आधारित है और समाज व परिवार में पुरुष व पति बुर्जुवा तथा स्त्री व पत्नी सर्वहारा की स्थिति में होती है।''

परम्परा व आधुनिकता के इस दौर में स्त्री की वास्तविक भूमिका क्या है? आज की स्त्री इन प्रश्नों का उत्तर ढूंढ रही है। भारत देश आज भी पूर्ण रूप से न तो आधुनिक हुआ है न ही पूर्ण रूप से परम्परा मुक्त हो पा रहा है। परम्परा आधुनिकता के संक्रमणकाल में आज भी स्त्री पुरुषवादी मानसिकता के आधार पर अपनी भूमिका का निर्वाहन कर रही है। आधुनिकता के दौर में भारतीय समाज भौतिकतावादी बन गया है, जिसमें लोगों की

* *असिस्टेण्ट प्रोफेसर (समाजशास्त्र विभाग), ईश्वर शरण पी.जी. कालेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज*

आवश्यकताएं व जीवन शैली में अत्यंत लचीलेपन से परिवर्तन आया है। इस परिवर्तित जीवनशैली के भरण–पोषण हेतु महिलाओं को आजीविका कमाने बाहर आना पड़ा, फिर धीरे–धीरे कामकाजी स्त्रियों का प्रचलन हमारे समाज में आम होता गया। परन्तु स्त्री की वास्तविक भूमिका क्या है? व क्या होना चाहिए? के संदर्भ में असमंजस्य बना हुआ है। इस असमंजस्य का कारण आज भी अधिकांशतः स्त्रियों का अपने अस्तित्व का निर्माण पुरुष वर्ग, परिवार व समाज के अनुसार करना है, स्वयं के अनुसार नहीं। भारत में निम्न वर्ग, मध्यम वर्ग व उच्च मध्यम वर्ग की स्त्रियां अपनी भूमिका का निर्धारण घर के पुरुषों व परिवार के अनुसार करती है, अर्थात् जरूरत के अनुसार कामकाजी व जरूरत के अनुसार घरेलू। तो इस परिस्थिति में हम एक स्त्री से पराम्परागत स्त्री के मानक स्वरूप के अनुसार कार्य की उम्मीद क्यों करतें हैं? यदि उसे आधुनिकता की दौड़ दौड़वाना है तो परम्परागत छवि की बेड़ी उसके पैरों में डाल कर क्यों चलवाते हैं।

भारतीय समाज में पुरुषों की भूमिका सदियों से तय थी और आज भी निश्चित है, कि उसे आजीविका कमाने के संदर्भ में ही कार्य करना होता है। सदियों से स्त्रियां पुरुषों की बस भूमिका में सहयोग देने का कार्य कर रही इसलिए पुरुष अस्तित्वता का प्रश्न जल्दी नहीं उठता परन्तु इस पारम्परिक व आधुनिक समाज के संक्रमण ने स्त्रियों की भूमिका पर सदैव ही प्रश्न चिन्ह लगाये है। पुरातन समय में ज्यादा दहेज देने वाली परिवार की स्त्रियां सशक्त मानी जाती थी, फिर धीर–धीरे पढ़ी–लिखी व ज्यादा दहेज देने वाली स्त्रियां सशक्त मानी गयी, फिर नौकरी करने वाली लड़कियां सशक्त मानी गयी। यहाँ कहने का तात्पर्य यह है कि स्त्री सशक्तता का आधार सदैव ही धन से जोड़ा गया है, और आज भी यही अप्रत्यक्ष वास्तविकता है। मशहूर अभिनेत्री **करीना कपूर** का कहना है कि ''आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर स्त्री ही विचारों व फैसलों को प्रभावित कर सकती है।'' अतः प्रश्न यह उठता है कि पुरुषवादी समाज में पुरुष के समकक्ष आर्थिक उपार्जन करने वाली स्त्रियों का अस्तित्व धनोपार्जन के आधार पर किया जाना चाहिए भी कि नहीं, क्योंकि स्त्री भूमिका का दूसरा पारम्परिक रूप जो घरेलू श्रम के अंतर्गत आता है कहीं भी अपना अस्तित्व नहीं बनाता क्योंकि समाज में यह कभी भी नहीं कहा जाता कि 'घरेलू स्त्री सशक्त है'। यदि घरेलू स्त्री सशक्तता के संदर्भ में स्वयं को समाज व परिवार की मुख्य धारा के अन्तर्गत नहीं पाती तो क्यों हमारा भारतीय समाज स्त्रियों को पारिवारिक तराजू पर तौलता है व स्त्रियों से दोहरी भूमिका की अपेक्षा रखता है।

परम्परा व आधुनिकता के द्वंद्व में फंसी वर्तमान नारी हर प्रकार से अपने अस्तित्व और चरित्र को ताक पर लिए घूम रही है। वह परिवार व पुरुष की जरूरतों के अनुसार स्वयं को परिवर्तित करती रहती है। अतः स्त्री का अस्तित्व आज भी 'परम्परा व आधुनिकता' तथा 'परिवार व नौकरी' के बीच उलझा हुआ है। इस उलझन से स्त्री निकल तो जाए परन्तु भारतीय समाज स्त्रीयों को मां, बहन, बेटी, पत्नी, बहू व धनोपार्जन करने वाली स्त्री आदि सभी रूपों में देखना चाहता है। वह स्त्री को उसके स्वयं की इच्छा के अनुसार ढलने की इजाज़त नहीं देता। भारतीय आधुनिक समाज यह मानता है कि प्रत्येक प्राणी भिन्न–भिन्न होते हैं। परन्तु परम्परावादी समाज नारी संदर्भ में 'आदर्शवादी स्त्री छवि' की कल्पना आज भी करता है। आधुनिक समाज नारी को धनोपार्जन की अनुमति तो देता है, परन्तु परम्परावादी समाज उसकी स्वतंत्रता में मर्यादा की रेखा डालता है। आधुनिक समाज नारी की 'सुपर वूमन' की संकल्पना देता है, परन्तु परंपरावादी समाज स्त्री कर्त्तव्यों की लम्बी सूची भी प्रस्तुत करता है। आधुनिक समाज नारी को धनोपार्जन करने के लिए देर रात बाहर रहने की इजाज़त देता है, तो परम्परावादी समाज घरेलू कार्यों का उत्तरदायित्व आज भी स्त्रियों पर ही थोपता है। वास्तव में भारतीय समाज न तो आधुनिकता को पूरी तरह स्वीकार कर पा रहा है, और न ही परम्पराओं की जकड़ से निकल पा रहा है। भारतीय समाज, आधुनिकता को अपनी सुविधानुसार स्वीकार कर रहा है व परम्पराओं में भी अपनी इच्छानुसार जोड़–तोड़ कर रहा है। इस परम्परा व आधुनिकता के जोड़ तोड़ में सबसे ज्यादा प्रयोग भारतीय स्त्रियों की भूमिका को लेकर हुई है। भारतीय स्त्री आज आधुनिकता और परम्परा रूपी उस चौराहे पर खड़ी है जहां एक ओर उसके आगे बढ़ने से उसका घर, परिवार, समाज के लोग पीछे छूटते जा रहे तो दूसरी ओर बढ़ने पर उसका स्वयं का परिवारिक अस्तित्व ही खोता जा रहा है, इस कारण इस परिस्थिति से भारतीय नारी में एक अलग सी अलगाव की भावना जन्म ले लेती है। आधुनिकता कहती है कि सबको समान समझो तो भारतीय पुरुष महिलाओं के संदर्भ में इस आधुनिक विचारधारा की अनदेखी क्यों करते है। एक पुरुष बाहर जाकर नौकरी करके पैसे तभी कमाता है जब घर भी स्त्री उसे आधार

(खाना, प्रेस किया कपड़ा, घर, गृहस्थी के काम से फ्री रखना, बच्चों की देख–रेख, पढ़ाई की सुविधा) देती हैं। तो इस परिस्थिति में सिर्फ पुरुष का ही काम ज्यादा महत्वपूर्ण कैसे रह गया। जब एक स्त्री सिर्फ घर–गृहस्थी चलाती है तो बच्चों को पढ़ाती है, घर की जरूरतों के समान, घर के लोगों की जरूरतों का ध्यान रखती है, तो यह परम्परावादी स्त्री की छवि को दर्शाता है। इस पूरी प्रक्रिया में स्त्री के स्वयं के लिए न कोई वक्त है, न कोई इच्छा है, न कोई सपने, न ही उसका सशक्त अस्तित्व और यदि व धनोपार्जन करती है तो पारिवारिक संवेदनाओं को पूरा नहीं कर पाती। इस दुविधा के कारण भारतीय नारी परम्परा व आधुनिकता के बीच की जंजीरों में जकड़ती जा रही है, और स्वयं के लिए स्वतंत्र भूमिका की तलाश कर रही है।

सन्दर्भ–सूची

1. सीमॉन द बुआ, स्त्री उपेक्षिता, नई दिल्ली सरस्वती विहार, 1990
2. सेटिया, सुभाष, स्त्री अस्मिता के प्रश्न, कल्याणी शिक्षा परिषद, 2006
3. कविता शर्मा, स्त्री विकास की ऐतिहासिक रूपरेखा, नई दिल्ली, रजन प्रकाशन
4. मानचन्द्र खण्डेला, महिला और बदलता सा परिवेश, अविष्कार पब्लिकेशन, 2008
5. चौधरी, एम.पी., महिलायें और सा. अधिकार
6. अरविन्द जैन, अस्तित्व और अस्मिता, स्त्री विमर्श
7. Kiran Prasad, Women and Meeta
8. डॉ. के.एम. भारतीय, स्त्री विमर्श : भारतीय परिदृश्य

* * * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Sociology : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 392-396

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

एशिया में ग्लोबल वार्मिंग : एक चुनौती

*सन्तेश्वर कुमार मिश्रा**

पर्यावरणीय संकट के स्वरूप के पीछे मानव का प्रकृति के साथ प्रतिकूल सम्बन्धों की देन है। आज वैश्विक जगत मानव की आर्थिक लालसा तथा मानव द्वारा प्राकृतिक संसाधनों के लगातार दोहन के परिणामस्वरूप गंभीर संकट में चला गया है। यदि पर्यावरण संरक्षण को रोकने के लिए गंभीर कदम न उठाये गये तो मानव सभ्यता अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करेगा। लोगों को ओजोन परत के बारे में जागरुक करने के लिए 16 सितंबर को ओजोन दिवस मनाया जाता है। ओजोन परत पृथ्वी की सतह से लगभग 12 से 35 किमी. तक की ऊँचाई पर समताप मंडल में स्थित है, जो खतरनाक पराबैंगनी किरणों को पृथ्वी पर आने से रोकती है। ओजोन परत पृथ्वी का रक्षा कवच माना जाता है। यह मानव अस्तित्व के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण गैस है। ओजोन गैस आक्सीजन के 3 परमाणु से मिलकर बना होता है तथा यह नीले रंगवाली तीक्ष्ण गंध की गैस होती है। वायुमंडल में पायी जाने वाली समस्त ओजोन का कुल 90 प्रतिशत भाग समतापमंडल में पाया जाता है। समतापमंडल में उपस्थित ओजोन पृथ्वी को हानिकारक विकिरण (Ultraviolet Radiation) से बचाती हैं।

वैज्ञानिकों का दावा है कि आर्कटिक के ऊपर की ओजोन परत में 2050–2070 के मध्य ओजोन छिद्र पूरी तरह समाप्त हो जायेंगे।

एशिया में 21वीं सदी के मौलिक चुनौतियों में प्राकृतिक आपदा या पर्यावरण संकट प्रमुख स्थान रखता है। जिसके लिए मानवीय क्रियाएँ जिम्मेदार हैं। इन्हीं मानवीय क्रियाओं के लिए राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कार्बन डाईआक्साइड, हरित गृह गैसों में वृद्धि ओजोन परत में वृद्धि, भूकम्प तथा सुनामी पर्यावरणीय संकट के रूप में सामने आती है। आज के परिदृश्य में पारिस्थितिकीय असंतुलन जैवविविधता तथा विनिष्टीकरण तथा प्रदूषण (जल, वायु, ध्वनि, ई–कचरा) प्राकृतिक संसाधनों को अत्यधिक दोहन उपयोग की प्राथमिकता के स्तर पर रखना है।

संयुक्त राष्ट्र संघ तथा अन्य संघों के सम्मेलनों में प्राकृतिक आपदाओं के लिए सर्वाधिक उत्तरदायी अमेरिका, रूस तथा यूरोपीय देशों को माना है। जिसके कारण सम्पूर्ण मानव जाति विनाश की चरम सीमा पर पहुँच गया है। यद्यपि दक्षिण एशिया में राष्ट्रों की भूमिका भी द्वितीयक स्तर पर है।

मानव जीवन के चारों तरफ का परिवेश पर्यावरण कहलाता है। हवा, पानी, जल, जीव–जन्तु आदि सभी पर्यावरण के घटक है। ये सभी मिलकर पर्यावरण की संरचना का निर्माण करते हैं। वर्तमान समय में हमारी सभ्यता पर्यावरणीय प्रदूषण के कारण भयंकर संकट में पहुँच गई है। भारत में वायु प्रदूषण के कारण बहुत ज्यादा लोगों की मौतें हो रही है। जहरीली वायु में छोटे–छोटे कण हमारे फेफड़ों के भीतर जाकर साँस एवं हृदय रोग पैदा कर रहे हैं। वायु प्रदूषण से मृत्यु के मामले में भारत पाँचवाँ बड़ा देश है।

वर्तमान में पर्यावरण में होने वाला परिवर्तन जलवायु परिवर्तन कहा जाता है। यह ग्रीन हाउस गैस–उत्सर्जन तथा ओजोन क्षरण आदि के रूप में दिखाई देता है। प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन ने प्रकृति का संतुलन बिगाड़ दिया है तथा दुनिया में वन क्षेत्र सिकुड़ते जा रहे हैं। वनों के क्षेत्रफल में मुख्य कमी का कारण कृषि का विस्तार, औद्योगीकीकरण, नगरीकरण, लकड़ी का अत्यधिक वाणिज्यिक उद्योग तथा ईंधन के रूप में घरेलू उपयोग

* *शोध छात्र (समाजशास्त्र विभाग), तिलकधारी महाविद्यालय, जौनपुर*

आदि है। वनों के कम होने के कारण ग्रीन हाउस गैसों में कार्बन डाई–आक्साइड (CO_2) का अनुपात बढ़ता जा रहा है जो ग्लोबल वार्मिंग के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

पृथ्वी के सतह के चारों ओर निम्नलिखित गैसों के मिश्रण का कवच पूरी तरफ मौजूद रहता है। जिसे वातावरण या वायुमंडल कहा जाता है। वायुमंडल में इन गैसों का मिश्रण निम्नवत है।

नाइट्रोजन	N_2	78%
आक्सीजन	O_2	21%
कार्बन डाई आक्साइड	CO_2	.033
मीथेन	CH_4	.0002
सल्फर डाई आक्साइड	SO_2	.0001
नाइट्रस आक्साइड	N_2O	.00005
ओजोन	O_3	.000007

वायु प्रदूषण का मुख्य स्रोत कोयला, लकड़ी, ईंधन, ठोस ईंधन तथा तरल ईंधन में पेट्रोलियम डीजल, मिट्टी का तेल से निकलने वाली गैसें होती हैं।

वायु प्रदूषण के लिए निम्न प्रदूषित तत्व तथा उनसे उत्पन्न रोग निम्नलिखित हैं–

प्रदूषित तत्व	**रोग का नाम**
CO	B.P.
CO_2	B.P.
Pb	Nerve System
C_6H_6	Blood Cancer
Cd	Totion
Dust parti Chq Coal	Anthacosis
Ast vasts particle	Asvaestosis

वर्तमान समय में समुद्र का जलस्तर बढ़ने का कारण ग्लोबल वार्मिंग है। जिसके कारण द्वीपों के डूबने का खतरा दिन पर दिन बढ़ता जा रहा है। यदि इसी रफ्तार से समुद्र का जलस्तर बढ़ता गया तो 2020 तक दुनिया के 14 द्वीप पूरी तरह से डूब जायेंगे। 21वीं सदी के अन्त तक समुद्र के जलस्तर में बढ़ोतरी के कारण 2050 तक 2 करोड़ लोग विस्थापित होंगे। इन सब समस्या के कारण के लिए प्रदूषण ही जिम्मेदार है। प्रदूषण फैलाने वाले विश्व के दस देश (ग्रीन हाउस गैस के उत्सर्जन के आधार पर) निम्न हैं–

चीन	–	25.26
अमेरिका	–	14.4
यूरोपिय संघ	–	10.15
भारत	–	6.7
रूस	–	5.35
जापान	–	2.3

ब्राजील	–	2.3
इंडोनेशिया	–	1.75
मैक्सिको	–	1.67
इरान	–	1.65
शेष विश्व	–	27:

जैव–विविधता के ह्रास के कारण पर्यावरण के सामने संकट उत्पन्न हो रहा है। जैव विविधता के निम्नलिखित कारण हैं–

1. आवासों का विनाश
2. आवासों का बिखराव
3. प्रदूषण
4. रोग
5. झूम खेती (उत्तर–पूर्वी भारत के वृहद् स्तर पर प्रचलित)
6. प्राकृतिक संपदाओं (पेड़–पौधों, जीव–जन्तुओं और सूक्ष्म जीवों) का अतिशोषण।
7. विदेशी जीतियों का प्रवेश जैसे कांग्रेस घास, गाजर घास लेण्टाना, हायसिंघ

पृथ्वी पर वे गैसें जो वातावरण को गर्म करती हैं। ग्रीन हाउस गैसें कहलाती हैं इन गैसों में सूर्य के प्रकाश के अवरक्त विकिरण को अवशोषित करने तथा उत्सर्जित करने की छमता होती है। क्योटो प्रोटोकाल में 6 गैसों को हरित गृह गैसों की श्रेणी में रखा गया है जब पृथ्वी के वायुमंडल का तापमान बढ़ जाता है जिसे ग्लोबल वार्मिंग कहा जाता है। वैश्विक गर्मी वर्तमान समय की एक ज्वलंत समस्या है। पृथ्वी के वायुमंडल के औसत तापमान में वृद्धि होना वैश्विक उष्णता कहलाता है। इसके लिए ओजोन का क्षरण, औद्योगीकरण नगरीकरण आदि के कारण उत्सर्जित हरित गृह गैसे, CH_2, CC_{14}, N_2O, Cd_4, आदि गैसें शामिल हैं। पृथ्वी के तापमान में 0.6^oC की वृद्धि हो चुकी है।

वर्तमान समय में ग्लोबल वार्मिंग वृद्धि को रोकना हम सब का प्राथमिक उद्देश्य होना चाहिए ताकि पर्यावरण प्रदूषण एवं ग्लोबल वार्मिंग को कम किया जा सके। मानव समाज के विकास में प्रौद्योगिकी की भूमिका महत्वपूर्ण होती है तथा आधुनिक प्रौद्योगिकी का पर्यावरण पर प्रभाव पड़ता है।

आज दक्षिण एशिया में जलवायु परिवर्तन एक वैश्विक समस्या के रूप सामने आ गया है। पर्यावरण में कार्बन डाई आक्साइड तथा ग्रीन हाउस गैसों की बढ़ती मात्रा के कारण ऐसा होता है। इसकी सीमा एक राष्ट्र या क्षेत्र तक नहीं है अपितु वैश्विक है। जलवायु परिवर्तन के प्रभाव के कारण इसका परिणाम सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक भी है। जलवायु परिवर्तन के परिणाम स्वरूप दक्षिण एशिया में सामाजिक संघर्ष, विघटन की स्थिति, जातीय हिंसा तथा तनाव के साथ, भुखमरी, ऊर्जा संकट तथा अत्यधिक गरीबी की समस्या आयी है।

आज भारत ही नहीं अपितु विश्व में मौसम का चक्र बदल सा गया है। जिसमें हिमालय के ग्लेशियरों का पिघलना, चक्रवात, बाढ़, भयंकर तुफान आदि शामिल है। संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वारा जलवायु परिवर्तन के लिए बनी अंतर–सरकारी पैनल की नई रिपोर्ट में एशिया में जलवायु परिवर्तन के कारण बाढ़, गर्मी, सुखा तथा जल से सम्बन्धित खाद्य पदार्थों की कमी का सामना करना पड़ सकता है। भारत की अर्थव्यवस्था कृषि पर आधारित है। इसलिए मानसून पर निर्भर होने के कारण इसमें खतरनाक स्थिति उत्पन्न हो सकती है।

विश्व बैंक के अनुसार सन् 2050 तक दक्षिण एशिया की जनसंख्या 23 अरब होने की सम्भवना है।

एशिया में सार्क के देश (दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन) जलवायु परिवर्तन के मुद्दे पर एक साथ खड़े रहते हैं। भारत में सार्क आपदा प्रबन्धन केन्द्र की स्थापना, भूटान में सार्क फारेस्ट्री सेन्टर, बाग्लादेश में सार्क मौसम अनुसंधान केन्द्र तथा मालदीव में सार्क कोस्टल जोन मैनेजमेंट सेन्टर तथा भूटान में सार्क फारेस्ट्री सेन्टर जलवायु

परिवर्तन के मुद्दे पर चर्चा करती है। दक्षिण एशिया के देशों को इकोलॉजिकल यूनिट के रूप में कार्य करना चाहिए तभी इनकी चुनौतियों से निपट जा सकता है।

भारत की पर्यावरण नीति पर प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी सहित विश्व के 150 देशों ने सम्मेलन में भाग लिया। पर्यावरण शिखर सम्मेलन का लक्ष्य ग्लोबल वार्मिंग में वृद्धि को औद्योगिक क्रांति को 2°C तक रोकना था।

यद्यपि भारत ने अपने विविध उद्देश्यों की पूर्ति के लिए पर्यावरण को असंतुलित कर रहा है। इस क्रम में वनों का सफाया तीव्रगति से हो रहा है। वर्तमान समय में सड़कों के चौड़ीकरण के कारण वृक्षों को काटा जा रहा है। जबकि उस अनुपात में वृक्षारोपण नहीं किया जा रहा है। दूसरी तरफ तीव्र औद्योगीकरण तथा भौतिकता के कारण ग्रीन हाउस गैसों की मात्रा वायुमंडल में बढ़ता जा रहा है।

जब भूमंडल का ताप बढ़ता है तो इसका प्रभाव बर्फ के पिघलने के रूप में सामने आता है। ध्रुवों पर जमी बर्फ जब पिघलती है तब पर्यावरण और जैव विधिता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है तथा ग्लेशियर के पिघलने से समुद्र का जल स्तर बढ़ने लगता है तथा जल प्रलय की स्थिति सामने आने लगती है। तथा निचले एवं तटवर्ती इलाके जल में डूब जाते हैं। अधिक तापमान के कारण जंगलों के पौधे नष्ट होने लगते हैं तथा जंगलों में आग की संभावना बनी रहती है।

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न संकट सम्पूर्ण विश्व की समस्या बन गई है। इससे निपटने के लिए दुनिया के राष्ट्रों को एक होने की आवश्यकता है। दुनिया के विकसित एवं विकासशील राष्ट्रों को आपसी मतभेद को भुलाकर जलवायु परिवर्तन के मुद्दे पर गहन चिन्तन की आवश्यकता है।

पर्यावरण संरक्षण पर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कई संधियाँ तथा सम्मेलन विभिन्न समयों पर हुई। ये विभिन्न सम्मेलन तथा संधियाँ निम्नलिखित हैं–

1972 – स्टाक होम सम्मेलन

1987 – मॉट्रियल समझौता (48 देशों के मध्य)

1990 – आई0पी0सी0सी0 की स्थापना

1992 – रियो सम्मेलन–एजेंडा 21

1997 – क्योटो संधि

क्योटो संधि में 2012 तक औद्योगिक देशों के द्वारा ग्रीन हाउस में 5, 4 प्रतिशत की कमी पर सहमति बनी थी।

2007 – जलवायु परिवर्तन के सम्बन्ध में बाली सम्मेलन

2009 – कोपेन हेगेन जलवायु परिवर्तन सम्मेलन

2015 – पेरिस सम्मेलन

2016 – मोरक्को जलवायु परिवर्तन सम्मेलन

पर्यावरण को संरक्षित करने के लिए 1992 में आयोजित रियो–डि–जेनेरियो (1992) में आयोजित सम्मेलन में चार महत्वपूर्ण निर्णय लिये गये

1. तापमान पर प्रभावी नियंत्रण लगाना।
2. वनों का संरक्षण करना।
3. जैव विविधता।
4. टिकाऊ विकास को सुनिश्चित करना।

इसके साथ ही इस सम्मेलनों में ग्रीन हाउस गैस के उत्सर्जन को कम करने की बात कही गई। जिसमें प्रत्येक देष के लिए कुछ मापदंड बनाये गये। जिसमें जापान को 6 प्रतिशत, अमेरिका को 7.1 तथा यूरोपीय देशों को 8 प्रतिशत तक कार्बन उत्सर्जन कम करने की बात कही गई थी।

जलवायु परिवर्तन पर हुई सभी संधियों ने सफलता नहीं प्राप्त की क्योंकि विकसित देश अपने आर्थिक हित विकास की दौड़ के आगे इन संघियों को नजर अंदाज कर दिया अमेरिका जैसे देश ने अपने आर्थिक उन्नति के लिए इन संधियों को नजर अंदाज कर दिया तथा सर्वाधिक प्रदूषण उत्पन्न करता है।

वर्तमान परिदृश्य में पर्यावरण के संरक्षण के लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर समस्त राष्ट्रों को बेहतर समन्वय की जरूरत है। जलवायु परिवर्तन जैसी वैश्विक समस्या को समाप्त करने के लिए सभी राष्ट्रों को मानव तथा प्रकृति तथा पर्यावरण की सुरक्षा को प्राथमिकता देना चाहिए। भारत सरकार ने संविधान के 72वें संशोधन को 1977 में पास किया जिसके द्वारा वन, झीलों, नदियों व वन्य जीवों की सुरक्षा सुनिश्चित करने का प्रावधान किया। पर्यावरण के कीमत पर होने वाला कोई विकास मानवता के विनाश लिए होगा। सन् 2050 तक विश्व की जनसंख्या 2 अरब तक पहुँच जाने का अनुमान है तथा इस विशाल जनसंख्या के लिए मूलभूत आवश्यकता भोजन, आवास, पेयजल और ऊर्जा उपलब्ध करना एक चुनौती होगी। वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में एक अरब लोग भुखमरी से जूझ रहे हैं तथा 75 करोड़ लोगों को स्वच्छ पेयजल नहीं उपलब्ध ही विश्व वन्य जीव कोष द्वारा जारी रिपोर्ट के अनुसार पृथ्वी पर वन्य जीवों की संख्या घट रही है।

सन्दर्भ– सूची

1. Agrawal & Garg (Eds.): Environmental Issues and Researches in India. Himanshu Publications, Udaipur, 1981.
2. Archana. A.A. Et. at (Eds.): Man's Dependence on Earth UNEP & UNESCO, 1987.
3. Chapman, J.C. & Reiss, M.J. : Ecology, Cambridge University Press, 1985.
4. Clarke, A.H.: Understanding Sustainable Development in the Context of other Emergent Environmental Perspectives, Policy Sciences, Vol. 35, 2002.
5. Detewleyer, T.R. & Marcus, M.G.: Urbanization and Environment: The Physical Geography of the City, Duxbuy Press, Belmont, California.
6. Dhara, S.: Natural Disasters: Minimising Risks, The Hindu Survey of Environment, 2001.
7. Glaser, B. : Environment, Development and Agriculture, University College London Press, London, 1995.
8. Odum, E.P.: Fundamentals of Ecology, IIIrd edition, W.B. Saunders, Philadelphia, 1971.
9. Press, F.: The Need for Action, Disaster Reeducation, Coping with Natural Hazards, UNESCO, 1993.
10. Robinson, D & Kellow, A.: Globilzation and the Environment: Risk Assessment and the WTO, Edward Elgar, Cheltenham, 2001.

* * * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Education : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 397-399

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

झांसी जनपद के प्राथमिक विद्यालयों में शैक्षिक योजनाओं का मानकों के आधार पर क्रियान्वयन : एक अध्ययन

श्रीमती कल्पना यादव   डॉ. धीरेन्द्र सिंह यादव***

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र में झांसी जनपद के प्राथमिक विद्यालयों में शैक्षिक योजनाएं कौन–कौन सी संचालित है। उन योजनाओं का मूल्यांकन किया और उन योजनाओं के क्रियान्वयन के दौरान लक्ष्य प्राप्ति, प्रबन्धन, प्रशासनिक समस्याओं एवं परिव्यय के सन्दर्भ में किया गया। इन योजनाओं के उद्देश्यों को तथा प्राथमिक शिक्षा के उद्देश्यों के मापदण्ड (मानक) मानते हुए योजनाओं के द्वारा कितना लक्ष्य प्राप्त हुआ कि जानकारी हासिल की। प्राथमिक विद्यालयों में संचालित शैक्षिक योजनाएं जेसे सर्वशिक्षा योजना, मध्यान्ह भोजन योजना, निःशुल्क एंव अनिवार्य शिक्षा, निःशुल्क यूनिफार्म वितरण कार्यक्रम, पाठ्य पुस्तक वितरण कार्यक्रम आदि जैसी योजनाओं की प्रगति की प्रभावशीलता का मूल्यांकन करना शोध पत्र का प्रमुख उद्देश्य रहा है।

प्रस्तावना–

नहि ज्ञानेन सदृशं पंक्तिमहि विद्यते

ज्ञान के समान पवित्र करने वाला अन्य कुछ भी नहीं।

भारत में शिक्षा की महत्ता सभी कालों में रही है। भारतीय मनीषियों ने तो यहां तक कह दिया है "बिना शिक्षा नर पशु समान" यहां पर नर से आशय मानव जाति से है।

मानव जीवन में शिक्षा का प्रारम्भ जनम के बाद ही प्रारम्भ हो जाता है। मानव एक बुद्धि जीवन प्राणी है वह जन्म के साथ ही अपने आस–पास की प्रेरणाओं, अनुभवों एवं वातावरण से सीखता है। जन्म से मृत्यु तक व्यक्ति अनायास, अनजाने एवं स्वाभाविक रूप से बौद्धिक एवं सामाजिक प्राणी होने के नाते कुछ न कुछ सीखता रहता है। यह शिक्षा अनौपचारिक शिक्षा कहलाती है। औपचारिक रूप से मानव की शिक्षा का प्रारम्भ 6 वर्ष की आयु से होता है। 6 वर्ष से 14 वर्ष की आयु तक प्राप्त की जाने वाली यही शिक्षा प्रारम्भिक शिक्षा कहलाती है। प्रारम्भिक शिक्षा भविष्य निर्माण की आधारशिला है। अतः यह अत्यन्त आवश्यक है कि मजबूत भविष्य के निर्माण के लिये नींव भी मजबूत ही रखी जाये।

भारत के वैदिक काल में ऋषिगण समाज के मित्र, मार्गदर्शक थे। वे निःस्वार्थ भाव से गुरुकुलों में निःशुल्क शिक्षा देते थे। इस शिक्षा पद्धति से गुरु शिष्य परम्परा मजबूत हुई। गुरुकुल में रहने वाले विद्याभ्यासी चाहे धनवान पुत्र हो या निर्धन पुत्र, गुरुकुल प्रांगण में ही विचरते थे, बिना किसी भेदभाव के बिना धन खर्च किये (शुल्क रहित) शिक्षा प्राप्त करते थे। समय बदला, समाज, राज्य व्यवस्था धर्म और संस्कृति बदली।

स्वतंत्रता के पश्चात केन्द्र सरकार ने शैक्षिक नीतियों एवं कार्यक्रमों को बनाने एवं उनके क्रियान्वयन के लिये अनेक प्रयत्न किये जो सफल भी रहें प्राथमिक शिक्षा में गुणवत्ता लाने के लिये भारत सरकार अत्यन्त सक्रिय है।

** शोध छात्रा (शिक्षाशास्त्र विभाग), बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी (उ.प्र.)*

** असिस्टेन्ट प्रोफेसर (शिक्षाशास्त्र विभाग), बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी (उ.प्र.)*

शत प्रतिशत नामांकन एवं प्रत्येक बच्चे को शिक्षा एक अधिकार के रूप में प्रदान करने के लिये समय–समय पर कई कार्यक्रम और योजनायें चलाई गई।

शोध की आवश्यकता–भारत के संविधान निर्माताआं में अनुच्छेद 45 के तहत् राज्यों को यह उत्तरदायित्व सौंपा था कि वह संविधान लागू होने के एक दशक के अन्दर 6 वर्ष से 14 वर्ष तक के सभी बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रयास करेगा परन्तु ऐसा हो न सका। यद्यपि सन 2001 में प्रारम्भ सर्व शिक्षा अभियान के माध्यम से कुछ महत्वपूर्ण प्रगति हुई वर्ष 2003–04 दौरान सर्व शिचा अभियान में अनेक नवीन विद्यालयों का निर्माण किया गया। अनेक नवीन शिक्षकों की नियुक्ति की गई इस प्रकार शैक्षिक योजनाओं की प्रभाशीलता एक अध्ययन का विषय है। इन सभी बातों पर ध्यान देते हुये इस सम्बन्ध में मेरे द्वारा उत्तर प्रदेश राज्य के झांसी जनपद में विभिन्न शैक्षिक योजनाओं के प्राथमिक शिक्षा पर प्रभाव एवं वर्तमान समय में सरकारी प्राथमिक विद्यालयों की शैक्षिक गुणवत्ता को जानने का प्रयास किया जायेगा।

अध्ययन के उद्देश्य

1. झांसी जनपद में संचालित प्राथमिक विद्यालयों में शैक्षिक योजनाओं की प्रभावशीलता एवं लक्ष्य प्राप्ति तथा योजनाओं के मानकों का विभिन्न आयामों के संदर्भ में अध्ययन करना।

2. झांसी जनपद में संचालित सर्वशिक्षा अभियान के क्रियान्वयन एवं प्रभावशीलता प्रबन्धन समस्या एवं परिव्यय के मानदण्डों का अध्ययन करना।

अध्ययन की परिकल्पनाएँ

1. झांसी जनपद में संचालित प्राथमिक विद्यालयों में शैक्षिक योजनाओं की प्रभावशीलता एवं लक्ष्य प्राप्ति तथा योजनाओं के मानकों का विभिन्न आयामों के प्रति सहभागी शिक्षक विशेष दृष्टिकोण नहीं रखते है।

2. झांसी जनपद में संचालित सर्वशिक्षा एवं शैक्षिक योजनाओं के क्रियान्वयन एवं प्रभावशीलता तथा प्रबन्धन समस्या, लक्ष्य प्राप्ति पक्ष के प्रति सहभागी शिक्षक विशेष दृष्टिकोण नहीं रखते है।

शोध विधि–प्रस्तुत अध्ययन में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग गया।

न्यादर्श–प्रस्तुत अध्ययन में विद्यालयों का चयन यादृच्छिक विधि द्वारा किया गया। इसमें बबीना, बंगरा, चिरगांव ब्लॉक के ग्रामीण क्षेत्र के सरकारी विद्यालयों के शिक्षक अभिभावक एवं सम्बन्धित व्यक्तियों को सम्मिलित किया गया।

शोध उपकरण–प्रस्तुत अध्ययन में स्वनिर्मित प्रश्नावली का प्रयोग किया गया।

परिसीमन

1. शोध में झांसी जनपद के बबीना ब्लॉक के प्राथमिक विद्यालयों का चयन किया जायेगा।

2. प्रस्तुत शोध में उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा अनुदानित प्राथमिक विद्यालयों का ही चयन किया जायेगा।

3. प्रस्तुत शोध में ग्रामीण क्षेत्र के सरकारी विद्यालयों के शिक्षकों एवं उनमें पढ़ने वाले बच्चों के अभिभावक को ही लिया जायेगा।

प्रयुक्त सांख्यिकी विधियां–प्रस्तुत अध्ययन में काई वर्ग मान परीक्षण का प्रयोग किया गया।

निष्कर्ष–विभिन्न योजनाओं के क्रियान्वयन से प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में पहले की अपेक्षा अनेक सुधार हुये है। जैसे –

1. विद्यालय में अभियान के अन्तर्गत भौतिक संसाधन पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध कराये गये हैं।
2. विद्यालय में छात्र शिक्षक अनुपात का ध्यान रखा जा रहा है।
3. शौचालय की व्यवस्था होने से छात्राओं के नामांकन में वृद्धि हुयी है।
4. मध्यान्ह भोजन, निःशुल्क यूनीफार्म, निःशुल्क पुस्तक वितरण आदि योजनाओं से छात्र नामांकन में वृद्धि हुयी है।
5. शिक्षक प्रशिक्षण द्वारा शिक्षकों की कार्य कुशलता में वृद्धि हुयी है।

6. विद्यालय में अभिभावकों की सहभागिता से विद्यालय व्यवस्था में सुधार आया है।

यद्यपि विभिन्न योजनाओं के लागू होने से प्राथमिक शिक्षा की स्थिति पहले से उन्नत हुयी है तथापि अभी भी कुछ स्थानों पर अपेक्षाकृत सुधार देखने को नहीं मिला है। प्राथमिक विद्यालयों की स्थिति कहीं–कहीं अभी भी जर्जर है। छात्र नामांकन भी बहुत कम है। मूलभूत सुविधाओं का अभाव अभी भी दृष्टिगोचर होता है।

सन्दर्भ–सूची

1. बक्शी, एन.एस. (2014), भारत में शिक्षा व्यवस्था का विकास, प्रेरणा प्रकाशन दिल्ली।
2. दवे, रमेश (2007), हम और हमारी शिक्षा, शालिनी प्रकाशन, शिवकुटी इलाहाबाद।
3. मिश्र, राजेन्द्र, तिवारी, प्रहलाद (2010), आधुनिक शिक्षा की चुनौतियां, विद्यार्थी प्रकाशन कृष्णा नगर, दिल्ली।
4. शर्मा, डॉ. राजेन्द्र (2009), नैतिक मूल्य शिक्षा, विवेक बाहरी पुस्तक संसार जयपुर।

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908
Education : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 400-406
General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. प्रशिक्षित अध्यापकों की कार्य-संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन

*प्रियंका श्रीवास्तव**

भारतीय संस्कृति का एक सूत्र वाक्य है–'' तमसोमाज्योतिर्गमय।'' अर्थात् अंधेरे से उजाले की ओर ले जाने की इस प्रक्रिया में शिक्षा का बहुत बड़ा योगदान है। भारतीय परंपरा में शिक्षा को शरीर, मन और आत्मा के विकास द्वारा मुक्ति का साधन माना गया है। शिक्षा की इस प्रक्रिया में शिक्षक की अहम् भूमिका होती है। शिक्षक तथा शिक्षण कार्य के महत्व की प्रशंसा करते हुए श्री एस0 बाल कृष्ण जोशी ने अति सुन्दर शब्दों में लिखा है कि ''एक सच्चा अध्यापक धन के अभाव में धनी होता है उसकी सम्पत्ति का विचार बैंक में जमा धन से नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि उसे प्रेम एवं भक्ति से जो उसने अपने छात्रों में उत्पन्न की है, उससे आंकना चाहिए। वह सम्राट है, जिसका साम्राज्य उसके शिष्यों के कृतज्ञ मस्तिष्कों में सीमा चिन्हों में अंकित है। 21वीं शताब्दी में भौतिकता का अत्यधिक विस्तार होने के कारण शिक्षा में अमूल्य परिवर्तन दिन प्रतिदिन तीव्र गति से हो रहा है। जिससे अध्यापकों की कार्य संतोष प्रभावित हो रहे है। अध्यापन के कार्य क्षेत्र में कार्य संतोष शिक्षक के लिए एक प्रकार का अभिप्रेरणा है, जिसके फलस्वरूप अध्यापक अपना कार्य सम्पादित करने में आनन्द की अनुभूति करता है। क्योंकि कार्य संतोष किसी अध्यापक में अतंर्निहित उन सभी मनोवृत्तियों का परिणाम होता है। जिसे एक अध्यापक अपने अध्यापन व्यवसाय के जीवन काल में बनाए रखने का प्रयास करता है।

शिक्षा वह माध्यम है जो मानव कोपशु–तुल्य से मनुष्य बनाती है। शिक्षा प्राप्ति के उपरान्त ही मानव के सभ्य एवं सुसंस्कृत जीवन की कल्पना की जा सकती है। शिक्षा का महत्व आदिकाल से ही चला आ रहा है। शिक्षा की महत्ता को बताते हुए महात्मा गौतम बुद्ध ने अपने प्रिय शिष्य आंनद से कहा था कि–''आत्मदीपोभव'' यानि अपने आपमें प्रकाशवान बनों। जो शिक्षा के द्वारा ही सम्भव है। क्योंकि शिक्षा ही मानव जीवन को सार्थक बनाती है। शिक्षा जहाँ एक ओर बालक का सर्वांगीण विकास करती है। वही दूसरी ओर वह बालकों में सामाजिक मूल्यों के विकास का सबसे शक्तिशाली साधन है।

भारतीय संस्कृति का एक सूत्र वाक्य है–'तमसोमाज्योतिर्गमय।' अर्थात् अंघेरे से उजाले की ओर ले जाने की इस प्रक्रिया में शिक्षा का बहुत बड़ा योगदान है। भारतीय परंपरा में शिक्षा को शरीर, मन और आत्मा के विकास द्वारा मुक्ति का साधन माना गया। शिक्षा मानव को उस सोपान पर ले जाती है जहाँ वह अपने समग्र व्यक्तित्व का विकास कर सकता है। भारत में गुरु शिष्य की पंरम्परा प्राचीनकाल से रही है–

गुरुर्ब्रह्म ग्रुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परं ब्रह्म, तस्मै श्री गुरवेनमः।।

शिक्षा की प्रक्रिया में शिक्षक की अहम् भूमिका होती है। बालक जो इस प्रक्रिया का महत्वपूर्ण अंग है वह भी स्वयं को शिक्षक के व्यक्तित्व के साथ अंगीकृत करना चाहता है। शिक्षक द्वारा किया गया कार्य, उसके आदर्शों, उद्देश्यों, मूल्यों को परिलक्षित करता है और उसका प्रभाव छात्रों पर भी डालता है क्योंकि बालक स्वभाव में अनुकरणात्मक और विचारोत्तेजक होते हैं। इसी कारण प्रगतिशील एवं उभरते हुए भारतीय समाज में एक अध्यापक का महत्वपूर्ण स्थान है। डॉ0 सैयद्दीन ने एक अध्यापक की महत्ता को बताते हुए कहा है कि–

* *शोध छात्रा (शिक्षाशास्त्र), मलवांचल विश्वविद्यालय, इंदौर*

''यदि आप किसी देश की जनता के सांस्कृतिक स्तर को मापना चाहते हैं तो इसका अच्छा तरीका यह है कि आप यह मालूम करें कि उस समाज में अध्यापकों की सामाजिक स्थिति क्या है और उन्हें कितनी प्रतिष्ठा प्राप्त है।''

21वीं शताब्दी में भौतिकता का अत्यधिक विस्तार व ज्ञान के परिक्षेत्र की व्यापकता के कारण शिक्षण एक अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं जटिल प्रक्रिया बन गयी है जिसके कारण शिक्षण की गुणवत्ता व प्रभावकारिता में कमी आई है। इस कमी को दूर करने हेतु यह आवश्यक है कि शिक्षकों में शिक्षण के प्रति धनात्मक अभिवृद्धि विकसित हो। जब वास्तव् में एक व्यक्ति के अन्दर शिक्षण के प्रति प्रेरणात्मक, संवेगात्मक एवं ज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का संगठन पाया जाएगा तब ही वह एक सर्वश्रेष्ठ अध्यापक बन सकता है। एक अध्यापक में शिक्षण हेतु सकारात्मक अभिवृत्ति विकसित करने के साथ–साथ कार्य संतुष्टि की भावना का विकास करना भी अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि कार्य संतुष्टि अध्यापक के लिए एक प्रकार की अभिप्रेरणा है जिसके फलस्वरूप अध्यापक अपना कार्य सम्पादित करने में आनन्द की अनुभूति करता है। यह कार्य संतुष्टि केवल वैयक्तिक स्तर तक ही सीमित होता है। इसकी व्याख्या हम सामूहिक रूप से नहीं कर सकते हैं क्योंकि कार्य संतुष्टि किसी अध्यापक में अंतर्निहित उन सभी मनोवृत्तियों का परिणाम होता है जिसे एक अध्यापक अपने अध्यापन व्यवसाय के जीवन काल में बनाये रखने का प्रयास करता है।

शोध समस्या का कथन–प्रस्तुत शोध कार्य हेतु उच्च प्राथमिक विद्यालयों बी0टी0सी0 एवं विशिष्ट बी0टी0सी0 प्रशिक्षित अध्यापकों की कार्य संतुष्टि में क्या कोई अतंर है, अथवा नहीं? इन दोनों प्रकार के अध्यापकों की कार्य संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए शोध कार्य हेतु निम्न प्रकरण का चयन किया गया है–"बी0टी0सी0 एवं विशिष्ट बी0टी0सी0 प्रशिक्षित प्राथमिक व उच्च प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों का मूल्य, सामाजिक–आर्थिक स्थिति, व्यक्तित्व एवं उनकी कार्य–संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन।''

शोध अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व–अनुसंधान का तात्पर्य है कि किसी नवीन वस्तु या ज्ञान के कुछ नवीन सिद्धान्तों के आधार पर अन्वेषण करना जिसका उद्देश्य सरल एवं सुव्यस्थित विधि द्वारा किसी क्षेत्र की प्रमुख समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करना। वर्तमान समय की प्राथमिक शिक्षा व्यवस्था पर गहन चिन्तन करना स्वाभाविक है जब हम शिक्षा प्रक्रिया पर दृष्टि डालते हैं तो वर्तमान शिक्षा का उद्देश्य आत्म विकास और जनकल्याण न होकर अपितु किसी कम्पनी या संस्था में नियुक्ति तक परिसीमित होता दिखाई पड़ता है। ऐसे में शिक्षक, शिक्षार्थी व पाठ्यक्रम में शिक्षक एक महत्वपूर्ण स्तम्भ होता है। बिना अध्यापक के शिक्षा प्रक्रिया को सुचारू रूप से क्रियान्वित होने की लेस मात्र भी कल्पना नहीं की जा सकती है। अतः शोधकर्त्ता के मस्तिष्क में कुछ प्रश्न बार–बार उठते हैं और इन्हीं प्रश्नों के उत्तर जानने हेतु प्रयुक्त अनुसंधान कार्य किया जा रहा है। जब एक प्रकार के कार्य एवं दायित्वों का निर्वहन करना है तो दो प्रकार का प्रशिक्षण क्यों? एक दो वर्षीय और दूसरा मात्र छः माह का। अगर दो तरह का प्रशिक्षण दिया भी गया है तो क्या उनकी कार्य–संतुष्टि एक जैसी है? वर्तमान समय में जिस प्रकार से समाज में अध्यापकों के प्रति धारणा बन रही है उससे शिक्षा की गुणवत्ता में ह्रास हो रहा है। इन सब बातों पर गहन विचार विमर्श और मंथन करने के बाद शोधकर्त्ता द्वारा इस समस्या का चयन किया गया।

शोध प्रश्न :

1. बी0टी0सी0 एवं विशिष्ट बी0टी0सी0 प्रशिक्षित प्राथमिक तथा उच्च प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों की कार्य संतुष्टि में क्या स्तर है?
2. बी0टी0सी0 एवं विशिष्ट बी0टी0सी0 प्रशिक्षित प्राथमिक तथा उच्च प्राथमिक विद्यालयों के महिला एवं पुरुष अध्यापकों के पृथक रूप से कार्य–संतुष्टि का क्या स्तर है?

शोध का उद्देश्य–प्रस्तुत शोध कार्य को सम्पन्न करने लिए शोध उद्देश्य का निर्धारण किया गया है जो निम्नलिखित है–

1. बी0टी0सी0 एवं विशिष्ट बी0टी0सी0 प्रशिक्षित प्राथमिक तथा उच्च प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों की कार्य–संतुष्टि का कार्य–सन्तुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. बी0टी0सी0 एवं विशिष्ट बी0टी0सी0 प्रशिक्षित प्राथमिक तथा उच्च प्राथमिक विद्यालयों के महिला एवं पुरुष अध्यापकों के पृथक रूप से कार्य–संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन करना।

शोध परिकल्पना–उपरोक्त शोध उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु निम्नलिखित शून्य परिकल्पनाएं निर्मित की गयी–

1. बी0टी0सी0 एवं विशिष्ट बी0टी0सी0 प्रशिक्षित प्राथमिक तथा उच्च प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों की कार्य–संतुष्टि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
2. बी0टी0सी0 एवं विशिष्ट बी0टी0सी0 प्रशिक्षित प्राथमिक तथा उच्च प्राथमिक विद्यालयों के महिला एवं पुरुष अध्यापकों के पृथक रूप से कार्य–संतुष्टि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध कार्य की परिसीमाएँ– वर्तमान शोध अध्ययन की निम्नलिखित परिसीमाएं निर्धारित की गयी हैं–

1. शोध की व्यापकता को ध्यान में रखते हुए शोधकर्त्ता द्वारा प्रस्तुत शोध अध्ययन गोरखपुर मण्डल के महराजगंज एवं कुशीनगर जनपद तक ही सीमित है।
2. प्रस्तुत अध्ययन में केवल राज्य सरकार के अधीन आने वाले प्राथमिक व उच्च प्राथमिक विद्यालयों (उ0प्र0 बेसिक शिक्षा परिषद् द्वारा संचालित) तक ही सीमित है।
3. जनसंख्या के रूप में उ0प्र0 बेसिक शिक्षा परिषद् द्वारा संचालित प्राथमिक व उच्च प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत्त 400 शिक्षक व शिक्षिकाओं का चयन किया गया। (बी0टी0सी0– 200 तथा विशिष्ट बी0टी0सी0–200)
4. न्यादर्श के रूप में चयनित कुल अध्यापकों में से 200 महिला अध्यापिका तथा 200 पुरुष अध्यापक लिये गये है जो शहरी व ग्रामीण परिक्षेत्र से सन्दर्भित होंगें।

प्रविधि–प्रस्तुत अध्ययन एक विवराणात्मक अनुसंधान है जिसमें शोधकर्त्ता द्वारा सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया जायेगा।

जनसंख्या तथा प्रतिदर्श–गोरखपुर मण्डल में स्थित महराजगंज व कुशीनगर जनपद के उ0प्र0 बेसिक शिक्षा परिषद् द्वारा संचालित प्राथमिक तथा उच्च प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत्त 400 अध्यापकों को प्रस्तुत शाधकार्य की जनसंख्या के रूप में परिभाषित किया जायेगा।

न्यादर्श–न्यादर्श हेतु आवश्यकता के अनुरूप स्तरीकृत सम्भाव्यता तथा यादृच्छिक प्रति–चयन विधियों का चयन किया जायेगा।

शोध उपकरण–प्रस्तुत शोध कार्य में डॉ0 मीरा दीक्षित द्वारा निर्मित अध्ययन कार्य–संतुष्टि मापनी का प्रयोग किया गया।

मापन के उपकरण का प्रशासन एवं आकंड़ों का संकलन–अध्यापक कार्य संतुष्टि मापनी का प्रशासन विद्यालय के प्रभारी से अनुमति से विद्यालय में उपस्थिति अध्यापकों से पूरित कराया गया। पूरित मापनी जो 5 बिन्दुओं पर प्रतिक्रियाओं हेतु निर्मित थी उसका अंकन पूर्णतः सहमत पर 5 अंक, सहमतपर 4 अंक, अनिश्चित पर 3 अंक, असहमत पर 2 अंक तथा पूर्णतः असहमत पर 1 अंक आवंटित करके अंकन कार्य किया गया और इस आधार पर प्रत्येक अध्यापक कार्य संतुष्टि मापनी पर प्राप्तांक संकलित किया गया।

प्रयुक्त सांख्यिकी विधियाँ–शोध प्रबंध में संकलित आँकड़ों के विश्लेषण एवं व्याख्या के लिए आंकडों की प्रकृति के अनुसार उपयुक्त सांख्यिकीय विधियों जैसे–मध्यमान, प्रमाणिक विचलन, क्रान्तिक अनुपात तथा तुलनात्मक अभिवृत्ति बहुभुज का प्रयोग किया जायेगा।

आंकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या–बी0टीसी0 एवं विशिष्ट उच्च प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों की कार्य संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन करने हेतु अध्यापक कृत्य–संतोष मापनी द्वारा प्राप्त विभिन्न वर्ग के उच्च प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों के अंकों का मध्यमान, प्रमाणिक विचलन तथा क्रान्तिक अनुपात ज्ञात किया गया है।

बी0टी0सी0 एवं विशिष्ट बी0टी0सी0 उच्च प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों की कार्य संतुष्टि के संदर्भ में तुलनात्मक अध्ययन–

तालिका सं0–01

क्रम संख्या	समूह	संख्या	मध्यमान	प्रामाणित विचलन	क्रान्तिकअनुपान	सार्थकता का स्तर
01	बी0टी0सी0प्राथमिकविद्यालय	200	227.8	37.08	2.32	0.01 स्तर पर सार्थक है।
02	विशिष्टबी0टी0सी0 प्राथमिकविद्यालय	200	219.10	37.98		
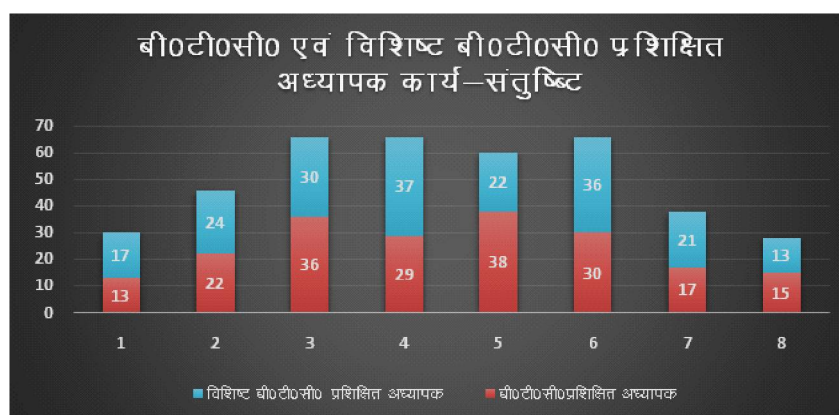
तलिका संख्या–01 के अवलोकन से स्पष्ट है कि परिकल्पना की जांच के लिये निकाले गये बी0टी0सी0 प्रशिक्षित अध्यापकों की कार्य–संतुष्टि का मध्यमान 227.8 तथा मानक विचलन का मान 37.08 है तथा विशिष्ट बी0टी0सी0 प्रशिक्षित अध्यापकों का मध्यमान 219.10 व मानक विचलन 37.98 है दोनों समूहों के मध्यमानों के मध्य तुलना करने पर क्रांतिक अनुपात का मान 2.32 प्राप्त हुआ जो कि सार्थकता के 0.01 स्तर पर सार्थक है।

अतः शोध कार्य के पूर्व बनायी गयी शून्य परिकल्पना अस्वीकार की जाती है और यह कहा जा सकता है बी0टी0सी0 एवं विशिष्ट बी0टी0सी0 प्रशिक्षित उच्च प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों के कार्य–संतोष के मध्य सार्थक अन्तर है। यहाँ पर शोधकर्त्ताओं को ऐसा महसूस हो रहा है कि जनसंख्या विस्फोट के कारण प्रत्येक व्यक्ति को उसकी योग्यता के अनुरूप नौकरी सुनिश्चित हो पाना संभव नहीं है और ऐसे परिवेश में जिस व्यक्ति को नौकरी प्राप्त हो जाती है। तो वह अपने को सामाजिक और आर्थिक रूप से असुरक्षित महसूस करने लगता है और इस प्रकार वह अपने कार्य से असंतुष्ट हो जाता है।

बी0टी0सी0 प्रशिक्षित उच्च प्राथमिक विद्यालय के पुरुष व महिला आध्यापिकाओं की कार्य–संतुष्टि का तुल्नात्मक अध्ययन

तालिका सं0–02

क्रम संख्या	समूह	संख्या	मध्यमान	प्रामाणित विचलन	क्रान्तिक अनुपान	सार्थकता का स्तर
01	बी0टी0सी0 प्राथमिक विद्यालय (पुरूष अध्यापक)	100	227.68	119.88	0.14	0.05 स्तर पर नहीं सार्थक है।
02	बी0टी0सी0 प्राथमिक विद्यालय (महिला आध्यापिका)	100	227.92	112.08		

	B.T.C		V.B.T.C.	
S.D.	119.88		112.08	
mean	227.68		227.92	

उपरोक्त तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है कि बी0टी0सी0 प्रशिक्षित उच्च प्राथमिक विद्यालयों के पुरुष अध्यापकों का मध्यमान 227.68 तथा मानक विचलन का मान 119.88 है जबकि महिला अध्यापिकाओं के मध्यमान का मान 227.92 तथा मानक विचलन का मान 112.08 है। दोनों समूहों के मध्य मध्यमानों की तुलना करने पर क्रान्तिक अनुपात का मान 0.014 प्राप्त हुआ जो कि सार्थकता के 0.05 स्तर पर सार्थक नहीं है।

अतः शोध कार्य के पूर्व बनायी गयी शून्य परिकल्पना स्वीकार की जाती है ओर यह कहा जा सकता है कि बी0टी0सी0 प्रशिक्षित उच्च प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत पुरुष व महिला अध्यापिकाओं की कार्य–संतुष्टि में कोई अन्तर नहीं है। शोधकर्त्ता का ऐसा मानना है कि चूँकि दोनों ही वर्ग के अध्यापकों की कार्य दशा और नौकरी के प्रति जागरूकता एवं महत्वाकांक्षा एक समान होती है।

विशिष्ट बी0टी0सी0 प्रशिक्षित उच्च प्राथमिक विद्यालयों के पुरुष अध्यापकों एवं महिला अध्यापिकाओं की कार्य–संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन –

तालिका सं0–03

क्र0 संख्या	समूह	संख्या	मध्यमान	प्रामाणित विचलन	क्रान्तिक अनुपान	सार्थकता का स्तर
01	विशिष्ट बी0टी0सी0 प्राथमिक विद्यालय (पुरुष आध्यापिका)	100	227.32	112.56	0.43	0.05 स्तर पर नहीं सार्थक है।
02	विशिष्ट बी0टी0सी0 प्राथमिक विद्यालय (महिला आध्यापिका)	100	219.88	129.36		
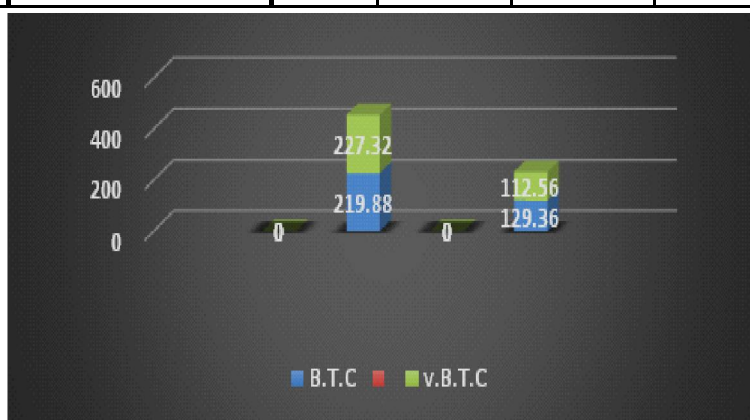
उपरोक्त तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है कि बी0टी0सी0 प्रशिक्षित उच्च प्राथमिक विद्यालयों के पुरुष अध्यापकों का मध्यमान 227.32 तथा मानक विचलन का मान 112.56 है जबकि महिला अध्यापिकाओं के मध्यमान का मान 219.88 तथा मानक विचलन का मान 129.36 है। दोनों समूहों के मध्य मध्यमानों की तुलना करने पर क्रान्तिक अनुपात का मान 0.43 प्राप्त हुआ जो कि सार्थकता के 0.05 स्तर पर सार्थक नहीं है।

अतः शोध कार्य के पूर्व बनायी गयी शून्य परिकल्पना स्वीकार की जाती है और यह कहा जा सकता है कि बी0टी0सी0 प्रशिक्षित उच्च प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत पुरुष व महिला अध्यापिकाओं की कार्य–संतुष्टि में कोई अन्तर नहीं है। शोधकर्त्ता का ऐसा मानना है कि चूँकि दोनों ही वर्ग के अध्यापकों की कार्य दशा और नौकरी के प्रति जागरूकता एवं महत्वाकांक्षा एक समान होती है।

शोध परिणाम तथा निष्कर्ष–इस शोध कार्य में वैज्ञानिक विधि का प्रयोग करके निष्कर्ष को प्राप्त किया गया है। अध्ययन के परिणामस्वरूप कई उपयोगी परिणाम तथा निष्कर्ष प्राप्त हुये। इन परिणामों तथा निष्कर्ष को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है–

(अ) कार्य–सतुंष्टि के संदर्भ में बी0टी0सी0 व विशिष्ट बी0टी0सी0 प्रशिक्षित प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों की तुलना ''अध्यापक कृत्य संतोषमापनी'' पर प्राप्त अंकों के मध्यमानों के आधार पर की गयी है। तुलना हेतु क्रान्तिक अनुपात का मान 2.32 प्राप्त हुआ जो कि सार्थकता के 0.01 स्तर पर सार्थक है। यहाँ पर बी0टी0सी0 प्रशिक्षित अध्यापकों का मध्यमान विशिष्ट बी0टी0सी0 प्रशिक्षित अध्यापकों की तुलना में अधिकहै। अतः निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि बी0टी0सी0 प्रशिक्षित प्राथमिकविद्यालयों के अध्यापकों की कार्य–संतुष्टि का स्तर उच्च है।

(ब) बी0टी0सी0 प्रशिक्षित प्राथमिक विद्यालयों के पुरुष व महिला अध्यापिकाओं की कार्य–सतुंष्टि मध्यमान के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन करने पर क्रान्तिक अनुपात का मान 0.14 प्राप्त हुआ जो सार्थकता के स्तर 0.05 पर भी सार्थक नहीं है। यहाँ पर बी0टी0सी0 प्रशिक्षित पुरुष व महिला अध्यापिकाओं के मध्यमानों के अंकों में कोई अन्तर नहीं है। अतः निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि बी0टी0सी0 प्रशिक्षित प्राथमिकविद्यालयों के पुरुष व महिला अध्यापिकाओं की कार्य संतुष्टि एक समान है।

(स) विशिष्ट बी0टी0सी0 प्रशिक्षित प्राथमिक विद्यालयों के महिला व पुरुष अध्यापकों के कार्य संन्तुष्टि मध्यमान के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन करने पर क्रान्तिक अनुपात का मान 0.43 प्राप्त हुआ जो कि सार्थकता के स्तर 0.05 स्तर पर सार्थक नहीं है। यहाँ पर विशिष्ट बी0टी0सी0 प्रशिक्षित महिला व पुरुष अध्यापकों के मध्यमानों के अंकों में कोई अन्तर नहीं है। अतः निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि विशिष्ट बी0टी0सी0 प्रशिक्षित प्राथमिक विद्यालय के अध्यापकों की कार्य संतुष्टि एक समानहै।

शोध कार्य का शैक्षिक महत्व–प्रस्तुत शोध कार्य बी0टी0सी0 व विशिष्ट बी0टी0सी0 प्रशिक्षित प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों की कार्य–संतुष्टि पर आधारित हैं। इस शोध कार्य के परिणाम इस तथ्य की ओर इंगित करते हैं कि तुलनात्मक दृष्टि से अधिकाशं परिस्थितियों में बी0टी0सी0 प्रशिक्षित प्राथमिक विद्यालयों के चाहे पुरुष अध्यापक हों या महिला अध्यापिका उनकी कार्य संतुष्टि विशिष्ट बी0टी0सी0 प्रशिक्षित प्राथमिक विद्यालयों के पुरुष व महिला आध्यापिकाओं की तुलना में बेहतर है। इसका मुख्य कारण यह प्रतीत होता है कि बी0टी0सी0 प्रशिक्षण जो केवल प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों के लिए ही नियोजित की जाती है जबकि विशिष्ट बी0टी0सी0 प्रशिक्षित अध्यापक वे अध्यापक हैं जो बेरोजगारी, जनसंख्या वृद्धि व जीवन की सुरक्षा के लिए इस अध्यापन व्यवसाय में सम्मिलित हुये। चूँकि इनकी शैक्षिक योग्यता उच्च श्रेणी की है अतः वे अपने को इस

परिस्थिति में समायोजन करने में कठिनाई महसूस करते हैं। जिससे कारण उनकी व्यवसायिक संतुष्टि नहीं हो पाती है।

सन्दर्भ–सूची

1. बुच., एम.बी. : सैकण्ड सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजुकेशन, बरोड़ा, सोसायटी फॉर एजुकेशन रिसर्च एण्ड डेवलपमेन्ट।
2. बेस्ट, जॉन डब्ल्यू : रिसर्च इन एजुकेशन, प्रेंटिसहॉल ऑफ इण्डिया प्रा.लि. नई दिल्ली, 1982
3. गुप्ता, एस0पी0 : जॉब सेटिस्फेक्शन एण्ड द टीचर, शारदा पुस्तक भवन यूनिवर्सिटी रोड प्रयागराज
4. गैरिट, ई0 हेनरी : शिक्षा और मनोविज्ञान में सांख्यिकी के प्रयोग, कल्याणी पब्लिसर्स, नोयडा, उ0प्र0
5. शर्मा, आर0 ए0 : अध्यापक शिक्षा, ईगल बुक्स, इण्टरनेशनल मेरठ, 1993

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Education : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 407-410

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

व्यक्तित्व समायोजन का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

*डॉ. राजेन्द्र कुमार जायसवाल**

सारांश–मानव एक सृजनात्मक प्राणी है वह अपनी सामाजिक व शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सृजनात्मक अभिवृत्तियों के प्रति स्वयं तो जागरूक रहता ही है तथा वह पर्यावरण परिस्थितियों के साथ उचित सम्पर्क बनाये रखता है, ताकि वह शैशवावस्था से लेकर वृद्धावस्था तक उत्पन्न शैक्षिक व सामाजिक समस्याओं व परिस्थितियों को अपने विवेक, बुद्धि व कौशल से समाधान करने में सामर्थ्य हो। ये आवश्यकतायें मानव जनित व समाज जनित किसी भी प्रकार की हो सकती हैं।

अतः व्यक्तित्व समायोजन की कसौटी व्यक्ति की आवश्यकताओं एवं उसकी तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों पर निर्भर करती है। चूँकि समायोजन स्वयं व्यक्ति और उसकी परिस्थितियों के सापेक्ष होता है। इसलिये समायोजन की प्रक्रिया में समाज तथा संस्कृति महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। इसी विचारधारा के फलस्वरूप उक्त शोध अध्ययन किया गया।

मुख्य शब्द :–समायोजन, व्यक्तित्व, सृजनात्मकता, मनोदैहिक।

व्यक्तित्व समायोजन का तात्पर्य यह है कि व्यक्ति की जैविक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक निर्धारकों से प्राप्त क्षमताओं एवं विशेषताओं को अपने सामाजिक जीवन तथा मानवीय क्रियाओं में वांछनीय दृष्टि से उपयोगी बनाना। सामान्यतः सामाजिक परिवेश में ऐसे व्यक्ति को ही समायोजित कहा जा सकता है जो जीवन की विभिन्न अनुकूल अथवा प्रतिकूल परिस्थितियों का मानवीय जीवन में सामना धैर्य, साहस, उत्साह एवं विवेक से करता है। समाज में अधिकतर व्यक्ति अपनी दैनिक परिस्थितियो में ऐसे नियोजन करते है ताकि परिस्थियों में बराबर बदलाव होती रहें है। शैशवावस्था से लेकर वृद्धावस्था तक मानव के समक्ष नई–नई शैक्षिक व सामाजिक समस्यायें एवं परिस्थितियाँ आती रहती हैं। व्यक्ति इन समस्याओं को अपने विवेक, बुद्धि व कौशल तथा सामर्थ्य से समाधान करने का प्रयत्न करता है। **एल0एल0 शेफर** के शब्दों में–''समायोजन वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से एक जीवित प्राणी अपनी आवश्यकताओं एवं इन आवश्यकताओं को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों के साथ संतुलन बनाये रखता है।'' अतः स्पष्ट है कि समायोजन की प्रक्रिया के दो मुख्य तत्व होते हैं–

1. **मानवीय आवश्यकतायें।**
2. **मानवीय आवश्यकताओं को प्रभावित करने वाली परिस्थितियाँ।**

ये आवश्यकतायें मानवीय जनित व समाज जनित अथवा व्यक्तिगत अथवा समूहगत किसी भी प्रकार की हो सकती हैं। आवश्यकताओं को प्रभावित करने वाली परिस्थितियाँ व्यक्ति व वातावरण दोनों में से कोई भी होसकती है। सामान्यताः व्यक्तिगत स्तर पर व्यक्तिको उसकी शारीरिक व मानसिक स्थितियाँ व सामर्थ्य आदि उसकी आवश्यकताओं को प्रभावित करती है जबकि परिवेशगत अर्थात् वातावरणीय परिस्थितियों में भौगोलिक परिस्थितियॉ, सामाजिक परिस्थितियाँ तथा सांस्कृतिक परिस्थितियाँ आदि प्रमुख हैं। इस प्रकार प्राणी अर्थात् व्यक्ति की आवश्यकताओं पर इन परिस्थितियों का अनुकूल तथा प्रतिकूल दोनों प्रकार का प्रभाव पड़ता है। परिस्थितियों की

* *असिस्टेंट प्रोफेसर (शिक्षाशास्त्र विभाग), श्रीगणेशराय पी. जी. कालेज, डोभी, जौनपुर*

अनुकूलता से आवश्यकताओं की संतुष्टि में सहायता मिलती है जबकि परिस्थितियों की प्रतिकूलता से बाधा अथवा रूकावट उत्पन्न होती है।

समायोजन की प्रक्रिया—मानव एक सृजनात्मक प्राणी है वह अपनी सामाजिक व शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सृजनात्मक अभिवृत्तियों के प्रति स्वयंतो जागरूक रहता ही है, तथा वह पर्यावरण परिस्थितियों के साथ उचित सम्पर्क बनाये रखता है ताकि वह उचित दिशा में कार्य करके अपनी आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके चूँकि मानव एक सामाजिक प्राणी है समाज सदंर्भित उसकी बहुत सी आवश्यकतायें होती हैं जिसमें से कुछ आवश्यकतायें शारीरिक होती हैं। तो कुछ आवश्यकतायें मानसिक क्रियाओं से संदर्भ रखती है। मानव इन शारीरिक व मानसिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष क्रियाओं व संसाधनों का उपयोग करता है। ताकि मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति संदर्भित लक्ष्य सिद्धि हो सकें। तो वह पर्यावरण की समसामाजिक परिस्थितियों में सामंजस्य का अनुभव करने लगता है।

इस प्रकार प्राणी को मानसिक संतुष्टि प्राप्त होती है तथा वहपर्यावरण की समसामाजिक परिस्थितियों में सामंजस्य अनुभव करने लगता है इस प्रकार उसका समायोजन स्थापित हो जाता है।

समायोजन के तत्व—समायोजन प्रक्रिया के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि समायोजन की प्रक्रिया में निम्नांकित तत्व पाये जाते हैं—

1. **प्ररेणा**—समायोजन की प्रक्रिया मानव में उपस्थित किसी भी प्रेरणा अथवा आवश्यकता से उत्पन्न होती है।

2. **निराशा उत्पन्न करने वाली परिस्थितयाँ**—यदि परिवेशजन्य परिस्थितियाँ आवश्यकताओं की पूर्ति में बाधक होती हैं तो समायोजन स्वतः ही हो जाता है लेकिन हताश करने वाली परिस्थितियों के उत्पन्न होने पर समायोजन की प्रक्रिया आगे की तरफ गति पकड़ती है।

3. **विविध अनुक्रियायें**—मानवीय आवश्यकताओं की संतुष्टि अथवा लक्ष्य की प्राप्ति में समस्या उत्पन्न होने पर मानव की प्रतिक्रिया स्वरूप अनेक अनुक्रियायें करता है। ये अनुक्रियायें सामान्य व विशिष्ट किसी भी प्रकार की हो सकती हैं। इन्हीं अनुक्रियाओं के परिणामस्वरूप मानव अपने परिवेश के साथ परस्पर समायोजित हो जाता है। समायोजन की प्रक्रिया स्वस्थ व अस्वस्थ दोनों ही स्वरूप में भी हो सकता है। स्वस्थ समायोजन से लक्ष्य प्राप्ति तो होती है साथ ही साथ मानव परिस्थितियों से परस्पर सम्बन्ध करने में भी सहज हो जाता है। क्योंकि मानवीय जीवन में ऐसी बहुत सी अनुक्रियायें होती हैं जिसमें उसे समझौता करने पड़ते हैं यदि मानव परिस्थितियों से समझौता नहीं कर पाता, तो उसमें हताशा की दशायें उत्पन्न हो जाती हैं, क्योंकि समायोजन की प्रक्रिया सार्वभैाम है तथा सभी प्रकार के जीवों में लगभग सभी समय किसी न किसी रूप में देखी जाती हैं।

व्यक्तित्व समायोजन की कसौटियाँ—समायोजन से अभिप्राय व्यक्ति की आवश्यकताओं और उसको संतुष्ट करने वाली परिस्थितियों में संतुलन से है। अतः किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व समायोजन जानने के लिये दो बातों का जानना महत्वपूर्ण है—

(1) व्यक्ति की आवश्यकतायें क्या है?

(2) आवश्यकताओं को प्रभावित करने वाली परिस्थितियाँ कौन सी हैं।

यदि उपरोक्त दोनों बातों में सतुंलन है तो व्यक्ति समायोजित कहा जायेगा। यदि संतुलन में असामान्यत हुआ तो व्यक्ति कुसमायोजित कहा जायेगा। क्योंकि मानवीय आवश्यकतायें तथा आवश्यकताओं को प्रभावित करने वाले कारक व परिस्थितियाँ भी भिन्न—भिन्न होती हैं।

अतः व्यक्तित्व समायोजन की कसौटी व्यक्ति की आवश्यकताओं एवं उसकी सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों पर निर्भर करती है। चूंकि समायोजन स्वयं व्यक्ति और उसकी परिस्थितियों के सापेक्ष होता है। इस लिये समायोजन की प्रक्रिया में समाज तथा संस्कृति महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। किसी समायोजन की कुछ प्रमुख कसौटियाँ निम्नलिखित हैं—

(1) व्यक्तित्व का संतुलन—व्यक्तित्व व्यक्ति के समस्त मनोदैहिक गुणों का संकलन है। इसमें बुद्धि और संवेग, इच्छा तथा संकल्प आदि विभिन्न क्रियाओं मे ंकिसी प्रकार की मानसिक अव्यवस्था नहीं रहती और मस्तिष्क की सभी क्रियायें संगठित रूप से कार्य करती हैं। जिस व्यक्ति में व्यक्तित्व का संकलन जितना ही अधिक दिखाई पड़ेगा उसमें समायोजन भी उतना ही अधिक होगा। संकलित व्यक्तित्व के अभाव में समायोजन सम्भव नहीं है। समायोजित व्यक्तित्व का व्यक्ति सन्तुलित तथा यथार्थवादी दृष्टिकोण रखता है। उसके संवेग, आवश्यकतायें, चिन्तन आदि अन्य मानसिक क्रियायें संतुलित दिखाई पड़ती हैं। जबकि कुसमायोजित व्यक्ति का व्यक्तित्व असन्तुलित रहता है उसकी मानसिक क्रियायें अशान्तिपूर्ण रहती हैं तथा अन्यों की भी शान्ति भंग करता है।

अतः व्यक्तित्व का संतुलन समायोजन की कसौटी है।

(2) मानसिक तनाव में कमी—मानसिक तनाव की कमी आवश्यकताओं की पूर्ति का परिणाम है। चाहे वह पूर्ति समाज सम्मति विधि से हो या न हो जबकि व्यक्ति की आवश्यकतायें संतुष्ट नहीं होती हैं तो वह व्यक्ति में तनाव उत्पन्न करती हैं यह तनाव तभी दूर होता है जब उसकी आवश्यकता की संतुष्टि किसी न किसी प्रकरण से सम्भव हो जाती है। समायोजन में न्यूनता से व्यक्ति में तनाव बढ़ता है तथा समायोजन बढ़ने से तनाव कम होता है अर्थात् तनाव की मात्रा से व्यक्ति के समायोजन को मापा जा सकता है। अतः तनाव में कमी व्यक्तित्व समायोजन की कसौटी है।

कठिनाइयों के प्रति प्रतिक्रियायें—प्रत्येक व्यक्ति की कुछ सामाजिक व शारीरिक आवश्यकतायें होती हैं तथा वह विशिष्ट परिस्थितियों में रहता भी है। इन्हीं परिस्थितियों में उसकी आवश्यकताओं की तुष्टि भी होती है। परिस्थितियां यदि समायोजन प्रक्रिया के अनुकल होती हैं तो समायोजन करने में कोई कठिनाई नहीं होती है परन्तु ऐसा सभी व्यक्तियों के लिये प्रत्येक समय सम्भव नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति को कभी न कभी ऐसी परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है जो उसकी आवश्यकता की संतुष्टि में बाधक होती है। ये परिस्थितियां अवरोध उत्पन्न करके कठिनाई उत्पन्न करती हैं। इन कठिनाईयों के प्रतिक्रिया में व्यक्तियों में व्यक्तिगत अन्तर देखा जाता है फिर भी कुछ प्रतिक्रियायें ऐसी हैं जो सभी व्यक्तियों में सामान्य रूप में पाई जाती हैं। ये निम्नांकित हैं—

1. रचनात्मक समायोजन—यह एक समस्या समाधान के प्रति सामान्य प्रतिक्रिया है। इसके उदाहरण दैनिक जीवन में प्रायः देखने को मिलते हैं। शिक्षण संस्थाओं में छात्रों को प्रतिदिन ऐसी कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है जिससे उनके लक्ष्य प्राप्ति में बाधा उत्पन्न होती है। इन समस्याओं के निवारण हेतु छात्र को रचनात्मक समायोजन का सहारा लेना होता है।

रचनात्मक समायोजन में परिस्थितयों में पलायन न करके उसे समाज में प्रतिस्थापित करके ऐसे उपाय किये जाते हैं ताकि कठिनाई पुनः उत्पन्न न हो।

2. प्रतिस्थापन समायोजन—सामान्यता प्रत्येक व्यक्ति में ऐसी विशेषतायें बहुत कम पाई जाती हैं कि वे अपनी बौद्धिक क्षमताओं के आधार पर अपनी सामाजिक जीवन में उत्पन्न होने वाली कठिनाईयों के प्रति रचनात्मक समायोजन करके संतुलन बनाये रखें। बहुत से व्यक्ति कठिनाईयों के उत्पन्न होने पर स्थानापन्न समायोजन का सहारा लेते हैं। स्थानापन्न समायोजन भी कठिनाई के प्रति प्रतिक्रिया की सामान्य विधि है।

3. मानसिक संघर्ष या मनोरचनायें—मनोरचानायें भी कठिनाईयों के प्रति प्रतिक्रिया की सामान्य विधि हैं। इनमें क्षतिपूर्ति, तादात्म्य, कल्पना तरंग, उन्नयन, युक्तिकरण आदि प्रमुख हैं। सामान्यतः इनमें से अनेक का परिणाम व्यक्ति तथा समाज के लिये अच्छा नहीं होता है फिर भी मनोरचनायें न्यूनाधिक मात्रा में समाज के लिये सभी व्यक्तियों में पाई जाती हैं। इनके आधार पर किसी व्यक्ति को असामान्य नहीं कहा जा सकता। यदि ये अत्यधिक तथा उग्र रूप से व्यक्ति में पाई जाती है तो ही व्यक्ति असामान्य कहा जाता है। मनोरचनाओं द्वारा व्यक्ति समायोज नहीं स्थापित करता है।

समायोजन की श्रेणियां

1. समायोजन प्रतिक्रियायें—समायोजनात्मक प्रतिक्रियायें कठिनाइयों के प्रति वे प्रतिक्रियायें हैं जो कि व्यक्ति का परिस्थितियों में समायोजन करती हैं। इस प्रकार की प्रतिक्रियाओं में रचनात्मक प्रतिक्रियायें आती हैं।

मानव की किसी प्रेरणा की संतुष्टि में बाधा उत्पन्न होने पर वह उस बाधा को दूर करने का स्वस्थ उपाय ढूंढता है। ताकि उसकी आर्थिक स्थिति बेहतर हो जाय। इस प्रकार वह अपनी प्रेरणा की संतुष्टि करता है। जबकि कुछ व्यक्ति अपनी प्रेरणाओं पर बराबर ऐसा संतुलन बनाये रखते हैं कि परिस्थितियों से समायोजन बना रहे ताकि कुण्ठा का सामना न करना पड़े। समायोजनात्मक प्रतिक्रियाओं का एक विशेष लक्षण यह है कि वे स्वयं व्यक्ति के लिये तथा अन्यों के लिये लाभदायक होती हैं। इसमें वे सभी प्रतिक्रियायें जिनमें व्यक्ति रचनात्मक दृष्टिकोण अपनाते हुये अपनी आवश्यकताओं को सीमित रखता है तथा परिस्थितियों में परिवर्तन करके आवश्यकता एवं परिस्थिति में सन्तुलन बनाये रखता है।

2. असमायोजनात्मक प्रतिक्रियायें—ये वे प्रतिक्रियायें हैं जिनसे व्यक्ति का परिस्थितियों से समायोजन नहीं होता। अतः उस विशेष प्रेरणा की दृष्टि से इस तरह की प्रेरणायें असमायोजनात्मक कही जाती हैं। असमायोजनात्मक प्रतिक्रियायों से कुण्ठित प्रेरणा का दमन होता है। क्योंकि व्यक्ति उसकी तुष्टि के लिये प्रयास ही नहीं करता। दमन का यह प्रयास असमायोजनात्मक प्रतिक्रिया का द्योतक है।

3. विसमायोजनात्मक प्रतिक्रियायें—विसमायोजनात्मक प्रतिक्रियायों से समायोज नहीं होता है परन्तु विषम होता है अर्थात् इस प्रकार का समायोजन व्यक्ति तथा समाज दोनों के लिये हानिप्रद होता है। अपनी असफलताओं के लिये दूसरों को दोष देने से व्यक्ति की अभिप्रेरणाओं की कुण्ठा से कुछ न कुछ तो बच जाता है परन्तु ऐसा करने से उसका सामाजिक सम्बन्ध बिगड़ जाता है। इस तरह की स्थिति वाला व्यक्ति अन्यों से तादात्म्य करके तुष्टि अनुभव करते हुए संतुष्ट तो दिखाई देता है परन्तु न तो वह उन्नति करता है और न तो दूसरों की उन्नति में सहायक होता है।

अतः स्पष्ट है कि ये प्रतिक्रियायें अन्य प्रतिक्रियायों से भिन्न हैं, क्योंकि इनसे प्रेरणाओं की तुष्टि होते हुये भी सामाजिक सम्बन्ध बिगड़ जाते हैं तथा इन से अनेक प्रकार के मानसिक रोगों तथा असामान्य व्यवहार की सृष्टि होती है। इस प्रकार के व्यक्तियों के उपचार की भी आवश्यकता पड़ सकती है।

सन्दर्भ—सूची

1. सिंह, अरूण कुमार : व्यक्तित्व मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी
2. माथुर, एस0एस0 : समाज मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा, 1992
3. माथुर, एस0एस0 : शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1988
4. Alport, G.W. : Personality - A Psychological Interpretation, Newyork/Heury Halt, 1937
5. Mangal, S.K.: Education Psychology, PHL Learning Private Limited, New Delhi.

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Education : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 411-413

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

पं. मदन मोहन मालवीय का सामाजिक दर्शन एवं समाज सुधार

*डॉ. भारतेन्दु मिश्र**

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रेणता महामना पण्डित मदन मोहन मालवीय इस युग के आदर्श पुरुष थे। अपने जीवन काल में पत्रकारिता, वकालत, समाज सुधार, मातृ–भाषा तथा भारत माता की सेवा में अपना जीवन अर्पण करने वाले इस महामानव ने जिस विश्वविद्यालय की स्थापना की उसमें उनकी परिकल्पना ऐसे विद्यार्थियों को शिक्षित करके देश सेवा के लिए तैयार करने की थी, जो देश का मस्तक गौरव से ऊँचा कर सकें। अपने व्यवहार में महामना सदैव मृदुभाषी रहे। कर्म ही उनका जीवन था। मदन मोहन मालवीय ह्रदय की महानता के कारण सम्पूर्ण भारत में 'महामना' के नाम से संपूजित थे। इन्हें संसार में सत्य, दया और न्याय पर आधारित सनातनधर्म सर्वाधिक प्यारा था। सनातन धर्म और हिन्दू संस्कृति की रक्षा और संवर्द्धन में मालवीय जी का योगदान अनन्य है। जनबल तथा मनोबल में नित्यशः क्षीयमान हिन्दू जाति को विनाश बचाने के लिए उन्होंने हिन्दू संगठन का शक्तिशाली आन्दोलन चलाया और स्वयं अनुदार सहकर्मियों के तीव्र प्रतिवाद झेलते हुए कलकत्ता, काशी, प्रयाग और नासिक में भंगियों को धर्मोपदेश और मन्त्र दीक्षा दी। पं0 जवाहर लाल नेहरू ने लिखा है कि मालवीय जी ने अपने नेतृत्वकाल में हिन्दू महासभा को राजनीतिक प्रतिक्रियावादिता से मुक्त रखा और अनेक बार धर्मों के सहअस्तित्व में अपनी आस्था को अभिव्यक्त किया। प्रयाग के भारती भवन पुस्तकालय, मैकडोनेल यूनिवर्सिटी, हिन्दू छात्रालय और मिन्टो पार्क के जन्मदाता, बाढ़, भूकम्प, सांप्रदायिक दंगों और मार्शल लॉ इत्यादि के दुखियों के आंसू पोछने वाले मालवीय जी को ऋषिकुल हरिद्वार गोरक्षा और आयुर्वेद सम्मेलन तथा सेवा समिति ब्याय स्काउट तथा अन्य कई संस्थाओं को स्थापित अथवा प्रोत्साहित करने का श्रेय है। महामना सभी प्राणियों का संताप मिटाना ही व्यक्ति का एक मात्र उद्देश्य मानते थे। ये मानवतावादी थे उनके सम्पूर्ण चिन्तन का केन्द्र मानव था। मालवीय जी स्वयं व्यक्ति को समष्टि का अंग मानते थे और निःस्वार्थ सेवा–भाव द्वारा जीवन में समष्टि को आत्मसात करना परम पुनीत कर्तव्य समझते थे। इनका मानना था कि किसी जाति वर्ग की उन्नति और विकास तब तक सम्भव नहीं है जब तक वह उसकी वर्तमान स्थिति में सुधार करने का प्रयास न करे।

अंग्रेजी हुकूमत के समय भारतीय समाज में अवनति प्रारम्भ हो गई थी उद्योग धन्धों के साथ ही भारतीय सामाजिक मूल्यों का पतन प्रारम्भ हो चुका था। भारतीय समाज बहुत सी बुराईयों जैसे वेश्यावृत्ति, जाति–पाँति, बाल–विवाह, विधवाओं की दयनीय दशा से ग्रसित था। भारतीय समाज को खोखली कर रही इन कुप्रथाओं को राजाराम मोहन राय, पं0 मदन मोहन मालवीय, स्वामी दयानन्द सरस्वती जैसे समाज सुधारक मनीषियों ने समाज से मुक्त कराने का बीड़ा उठाया। मालवीय जी ने कुप्रथाओं से समाज को मुक्त कराने का बहुत प्रयास किया और समाज को एक नई दिशा देने का प्रयास किया। वे निःसन्देह मनुष्यता की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति थे। इनके सिद्धान्त स्वभावानाकूल जीवन्त एवं प्रेरक हैं। इनका एक मात्र लक्ष्य था राष्ट्र सेवा। मालवीय जी भारत, भारती और भारतीयता के प्रतीक थे। प्राचीन काल से ही समाज में जात–पात अस्पृश्यता की बिमारी फैली थी। मालवीय जी ने समाज में फैली इन बुराईयों को दूर करने का प्रयास किया। वे अछूतों के प्रति श्रद्धा भाव रखते थे और उनके साथ सद्व्यवहार करते थे। मालवीय जी ने लाहौर के पंजाब सम्मेलन (1929) में कहा कि मुझे एक भी भंगी ऐसा नहीं मिला जो राम–राम न जपता हो और बिना स्नान किए भोजन करता हो। उन्होंने कहा कि यह ठीक नहीं है

* *असिस्टेंट प्रोफेसर (शिक्षक शिक्षा विभाग), एस.एम.एम. टाउन पी.जी. कॉलेज, बलिया*

कि कोई जात–पात के आधार पर किसी से घृणा करें। दिसम्बर 1927 में कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में उन्होंने कहा कि कोई व्यक्ति अछूत होने के कारण मन्दिर पूजा और देव दर्शन से वंचित नहीं किया जाना चाहिए। मालवीय जी ने अछूतों को भी समझाया और कहा कि राज–काज मिलकर करो और रोटी बेटी का व्यवहार अपनी बिरादरी में करो। महामना यह चाहते थे कि प्रत्येक नागरिक के मन में यह भाव जग जाए कि देश की उन्नति में अपनी उन्नति, देश के जीवन में अपना जीवन और देश की मृत्यु में अपनी मृत्यु समझे।

भारतीय समाज में दहेज प्रथा जैसा कोढ़ भी विद्यमान था। मालवीय जी ने इस कोढ़ को समाज से समाप्त करने के बारे में कहा कि विवाह में कम से कम खर्च किया जाये और अपव्यय से बचा जाये। दहेज प्रथा धर्म के विरूद्ध है। दहेज रूपी दानव ने कई लड़कियों की जिन्दगी ले ली। इस कुप्रथा का जड़ से उन्मूलन एवं समाज को नई दिशा देने का प्रयास महामना ने किया। मालवीय जी ने विधवाओं की दशा सुधारने का भी बहुत प्रयास किया। जिस विवाहिता का पति मर जाता था उसे समाज में विधवा के नाम से जाना जाता है और उस समय ऐसी महिलाओं का मुँह देखना भी अपशगुन माना जाता था और इन्हें कलंकिनी समझा जाता था। समाज ऐसी बेचारी महिलाओं को हेय दृष्टि से देखता था और उन्हें मांगलिक एवं शुभ कार्य से दूर रखते हुए घर की चहार दीवारी में पाबन्द रखा जाता था। मालवीय जी ने इसका प्रबल विरोध किया जौर विधवाओं के भरण पोषण के लिए आश्रम खुलवाये। मालवीय जी विधवा पुनर्विवाह के पक्षधर नहीं थे। उनका मानना था कि यदि विधवा की इच्छा पुनर्विवाह की हो तो इस पर विचार करना चाहिए। आधुनिक काल में बाल विवाह की कुप्रथा भी समाज में फैली थी। मालवीय जी ने बाल–विवाह का विरोध किया और इसकी रोकथाम के लिए एक विधेयक का उपलेख विधानसभा में रखा और कहा कि बाल विवाह को बढ़ावा देने वाले व्यक्ति को एवं बाल विवाह में भाग लेने वाले को पच्चास रुपये से पांच हजार रुपये तक का अर्थ दण्ड मिलेगा। बाल विवाह को नरक तुल्य बताया। स्त्री सुरक्षा के सवाल पर उनका दृष्टिकोण था ''मैं चाहता हूँ कि हमारे देश की सभी स्त्रियां अंग्रेज महिलाओं की भांति पिस्तौल और बन्दूक रखें और चलाना सीखें ताकि किसी प्रकार के अत्याचार आक्रमण से अपने सतीत्व की रक्षा कर सकें।'' मालवीय जी गांव की उन्नति में ही भारत की उन्नति मानते हैं। वे गांव–गांव में सभा कराने, पाठशाला, मल्लशाला खोलने मिलजुल कर प्रत्येक पर्व त्योहार मनाने, अनाथों, विधवाओं, मन्दिरों और गांवों की रक्षा करने, स्त्रियों का सम्मान एवं दुखियों की सहायता करने आदि का अपना एक स्वरचित संदेश दिया–

ग्रामे ग्रामें सभा कार्या ग्रामे ग्रामे कथा शुभा।
पाठशाला मल्लशाला प्रतिपर्व महोत्सवः।।
अनाथाः विधवाः रक्ष्याः मन्दिराणि तथा च गौः।
धर्म्य संघटनं कृत्वा देयं दानं च तद्धितम्।।
स्त्रीणां समादरः कार्यो दुःखितेशु दया तथा।
अहिसंका न हन्तव्या आततायी बर्धार्हणः।।

18 सितम्बर 1912 को मालवीय जी ने भाषण देते हुए कहा कि वेश्यावृत्ति पर सरकार द्वारा लाये गए बिल का मैं समर्थन करता हूँ। लड़कियों का व्यापार रूकना चाहिए उनसे सम्बन्धित वेश्यावृत्ति रोकी जानी चाहिए। वेश्यावृत्ति की प्रथा प्राचीन काल से ही भारत में चली आ रही थी। इसको रोकने के लिए बहुत से कानून बनाए गए लेकिन सब असफल रहे। मालवीय जी अपने लेखों के द्वारा समाज के लोगों को जागृत किया तथा वेश्यावृत्ति कुप्रथा को समाप्त करने के लिए आम जनता से अपील की।

वास्तव में मालवीय जी आधुनिक भारत के महान समाज सुधारक थे। उन्हें भारतीय समाज और देश दोनों की चिन्ता थी। उनका मानना था कि समाज टूटेगा तो देश टूटेगा और यदि देश टूटेगा तो स्वतंत्रता प्राप्ति असंभव है। वर्तमान में परम्पराओं, संस्कारों और मूल्यों का पतन तीव्र गति से हो रहा है। सभी मानव जाति का एक ही लक्ष्य है धन प्राप्ति। इस संकट से हमें केवल महामना का चिन्तन ही उबार सकता है। इसी चिन्तन से हम भारत की प्रतिष्ठा, मर्यादा और वर्चस्व को वापस ला सकते हैं। सम्पूर्ण राष्ट्र और भारतीय समाज महामना को सदैव उनकी सेवाओं के लिए याद करेगा।

सन्दर्भ–सूची

1. लाल, पं. मुकुट बिहारी, महामना मदन मोहन मालवीय : जीवन और नेतृत्व मालवीय अध्ययन संस्थान का0हि0वि0वि0 वाराणसी सं0 1978
2. तिवारी, उमेश दत्त, महामना पं0 मदन मोहन मालवीय : संक्षिप्त जीवन परिचय, महामना मालवीय फाउण्डेशन, वाराणसी।
3. व्यास, लक्ष्मी शंकर, महामना मालवीय और हिन्दी पत्रकारिता, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
4. प्रज्ञा अंक 56 : 2010–11 महामना मालवीय जयन्ती विशेषांक।
5. चतुर्वेदी सीताराम : महामना पं0 मदन मोहन मालवीय, अभिनन्दन पत्र, काशी, 1936
6. त्रिपाठी रामनरेश : तीस दिन मालवीय जी के साथ, दिल्ली।
7. अभ्यूदय, 20 जून 1914
8. मिश्र, अवनीश कुमार : महामना का चिन्तन एवं मूल्य दृष्टि, मूल्य विमर्श, मालवीय मूल्य अनुशीलन केन्द्र का. हि.वि.वि. वर्ष 6, अंक 12
9. वशिष्ठ वन्दना, हरीश कुमार, आधुनिक भारत के महानतम समाज सुधारक पंडित मदन मोहन मालवीय, कवितांजली वर्ष–1 अंक–1 बिजनौर।

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Education : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 414-416

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

Benefits of Using Technology in Second Language Teaching and Learning

Gargi Sethi*

Abstract : *This article aims to examine the technologies that teachers and learners have used lately in English learning practices and internet communication methods. Despite the growing thrill of using creativity in language learning, it is essential to look at how creativity has been implemented in the field up to this stage. This article is written using a survey of the literature, which included points such as English language learning resources focused on the internet and aimed to include knowledge about internet networking software and whether teachers or educators find the interaction more enjoyable in the classroom. The paper explores the new technology-related developments in second language teaching and learning,for example, iPod, cell phones, iPhone, forums, websites, online quizzes and exams, text messaging, and Skype Internet communication.*

Key words: technology, internet, second language learning

Many Englishas second language learners use new technology widely for all areas of second language learning as internet adoption continues to increase, including ties to social media, academic platforms, education preparation, and more. Second language-related technologies provide a range of opportunities for teaching and learning; they also represent a fascinating area of study. After computers were introduced in the early 1960s, the belief that computers would assist in language growth and learning has been based on a heavy emphasis on language instruction and language teacher training. For decades, second language teachers have used technical development and associated opportunities to use technology-based learning tools for language teaching. English is the most important language that is known worldwide and has proven to be an absolute must,and we need it in different areas of life(Rogan& Miguel, 2013). Web-based technology and strong internet links deliver a variety of new opportunities and tools to teachers and English language learner students.While teaching second language learners, teachers need to consider their career ambitions and objectives, their own teaching methods, and the plethora of available technical tools. Different methods offer different advantages and can contribute to a specific pedagogical purpose.

The internet provides numerous examples of content-focused lesson material and offers many means of communicating with the cultural knowledge of the students. In order to enhance teaching

* *USA, Chicago*

and learning efficiency in their classrooms, today's language teachers should think about how to integrate technology into their strategies best. The rapid growth in technology and the increasing use of electronic teaching and learning resources, including social media, create new possibilities for language learners, educators, and teachers. The use of Internet communication resources has begun in education, particularly in learning the English language. According to Rogan and Miguel (2013), digital technological advances have improved English education in precision and comprehension, such as learners' abilities to read, write, speak, and listen. These days students learn better and quicker than before, as educators are using technology. They are likely to become technology experts when they are eligible during their school years.

Research supports that early commencements are always beneficial for second language learner students. Students can learn the language by reading English over the internet and using new advances in school education.With the support of technologies in educational schools, students learn more quickly and efficiently than ever before. If they are eligible during their school years, they will become experts in technology. An early start, in the long run, is always right (Zhitkova, Kozlovskaya, &Kachalov, 2014). The English program will include communication skills for the students. Using modern developments in school education, students can master the language by learning English over the internet. It has become easier to read than ever with the introduction of many opportunities to help people learn English very quickly and enjoyably.

Diverse technology-aided training programs for second language teaching have been developed over the years. The use of technology in various fields has been so effective and useful in achieving specific goals for teachers, particularly those studying a second language and in education. Communication was never so simple. No specific technological program is identical to any other language teaching process. During these days, we are using and celebrating the importance of technology in every step of our lives. Some of the new technology such as the internet, twitter, handheld apps such as Personal Digital Assistant (PDA's), iPad, etc. have reduced the distance between people in different parts of the globe (Yuefang, 2019). Web-based technology and vast internet networks present massive new possibilities for educational growth.

The conceptualization of the role of technology in teaching is key to its effectiveness. The literature review found that technology has broadened the scope of interaction, thereby enhancing the students' learning experience and providing incentives for better use ofcommunication. Englishis an excellent language for conveying feelings and using technology and Research in the development of second language and machine-assisted language learning demonstrates that best practices in the use of technology to promote language teaching and learning see technology as a device that can improve teaching and learning by facilitating feedback, creating new tools for language instruction and acting as a forum for collaboration and task-based education.

Conclusion

The terms for technology-based second language learning has been revised in recent years; it has been referred to as technology-based or distance learning, online education, and is now simply called web-based learning and e-learning. With the assistance of web-based language learning activities, a set of necessary language skills can be developed. Language teaching does not just take place in the

classroom; it does not end before the students leave. Students and teachers can now use electronic apps. Web connections and mobile devices are among the most popular and useful for linguistic learners and teachers or peers to communicate. Technology-based learning of languages and instructional programs remains a significant and growing field. While computer programmers, instructional designers, and software linguists are gradually expanding the field's boundaries, language teachers may use the internet's essential resources.

REFERENCES

1. Rogan, F., & Miguel, C. (2013). Improving clinical communication of students with English as a second language (ESL) using online technology: A small scale evaluation study. *Nurse Education in Practice*, *13*(5), 400–406. https://doi.org/10.1016/j.nepr.2012.12.003
2. Yuefang, S. (2019). An analysis on the factors affecting second language acquisition and its implications for teaching and learning. *Journal of Language Teaching & Research*, *10*(5), 1018.
3. Zhitkova, E. V., Kozlovskaya, E. V., &Kachalov, N. A. (2014). Using the technology in content-based second foreign language teaching at the research university. *Procedia - Social and Behavioral Sciences*, *154*, 437–440. https://doi.org/10.1016/j.sbspro.2014.10.188

* * * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Education : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 417-422

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

अभिभावकीय भागीदारी, स्व-विनियमित अधिगम एवं विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन

नागेन्द्र सिंह तिवारी डॉ. सुनील कुमार तिवारी***

सारांश

यह अध्ययन अभिभावकीय भागीदारी, स्व–विनियमित अधिगम एवं विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन करता है। जिसमें उमरिया जिले के शहरी क्षेत्र में स्थित माध्यमिक शिक्षा मंडल से मान्यता प्राप्त विद्यालयों में कक्षा 11 अध्ययनरत 100 विद्यार्थी जनसंख्या के रूप में लिए गए थे। प्रतिदर्श का चयन उद्देश्यपूर्ण सह–प्रासंगिक प्रतिदर्शन विधि द्वारा किया गया था। शोध हेतु वर्णनात्मक विधि का उपयोग किया गया था। द पैरेंटल इन्वॉल्वमेंट मापनी (डॉ० विजया लक्ष्मी चौहान, उदयपुर एवं श्रीमती गुंजन गनोत्रा अरोरा, अहमदाबाद) का उपयोग अभिभावक की भागीदारी का अध्ययन करने के लिए किया गया था, स्व–विनियमित अधिगम मापनी (वतर्मान अध्ययन के लिए विकसित) का उपयोग स्व–विनियमित अधिगम का अध्ययन करने के लिये किया गया था। शैक्षणिक उपलब्धि के रूप में हाई स्कूल परीक्षा कक्षा 10 के प्राप्तांक के प्रतिशत को प्रयुक्त किया गया है। सांख्यिकीय विश्लेषण परिणाम, अभिभावकीय भागीदारी, आत्म–विनियमित अधिगम का विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक सह–संबंध दर्शाते हैं।

Key Words *: अभिभावकीय भागीदारी, स्व–विनियमित अधिगम, एवं शैक्षणिक उपलब्धि।*

---

1. प्रस्तावना–अभिभावकीय भागीदारी के छात्र की शैक्षणिक उपलब्धि पर सकारात्मक प्रभावों को स्कूल प्रशासकों औरशिक्षकों द्वारा ही नहीं बल्कि ऐसे नीति–निर्माताओं द्वारा भी मान्यता प्रदान की गई है, जिन्होंने नई शैक्षिक पहल और सुधारों में अभिभावकीय भागीदारी के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन किया है (ग्रेव्ज एवं राइट 2011; लैराक, क्लाइमन, एवं डार्लिंग 2011; मैटिंगली एवं अन्य 2002; टॉपोर एवं अन्य 2010)।

किशोरवय विद्यार्थियों में उच्च अभिभावकीय भागीदारी का उनके स्व–नियामक व्यवहार पर एक महत्वपूर्ण प्रभाव होता है (प्यूडी एवं अन्य, 2004)। हालाँकि, यह माना जाता है कि किशोरावस्था के दौरान, युवा आमतौर पर अपने माता–पिता पर कम निर्भर होते हैं और अपने साथियों के साथ अधिकांश समय व्यतीत करते हैं, उनकी मित्रता अत्यधिक जटिल और मूल्यवान होती है (ब्राउन और लासर्न, 2009)।

माता–पिता की भागीदारी एक कारक है, जो लगातार एक बच्चे के बढ़े हुए शैक्षणिक प्रदर्शन से संबंधित है (हारा एंड बर्क, 1998; हिल क्रॉफ्ट, 2003; मार्कोन, 1999; स्टीवेन्सन एंड बेकर, 1987)।

स्व–विनियमित अधिगम से तात्पर्य है, किसी के सीखने के वातावरण को समझने और नियंत्रित करने की क्षमता। स्व–विनियमन क्षमताओं में लक्ष्य निधार्रण, स्व–निगरानी, स्व–निर्देशन, और आत्म–सुदृढ़ीकरण (हैरिस एंड

** व्याख्याता, शा. शिक्षक शिक्षा महाविद्यालय, रीवा, मध्य प्रदेश, भारत*

** * व्याख्याता, शा. शिक्षक शिक्षा महाविद्यालय, रीवा, मध्य प्रदेश, भारत*

ग्राहम, 1999; स्च्र, क्रिप्पेन, और हाटर्ले, 2006; शंक, 1996) शामिल हैं। स्व–विनियमन को मानसिक क्षमता या शैक्षणिक प्रदर्शन कौशल के साथ जोड़कर देखना ठीक नहीं है। स्व–विनियमन एक स्व–निर्देशात्मक प्रक्रिया है और व्यवहारों का एक समूह है, जिससे शिक्षार्थी अपनी मानिसक क्षमताओं को, कौशलों (जिमरमैन, बोनर, और कोवाच, 2002) में बदल देते हैं और निर्देशित अभ्यास और प्रतिक्रिया से एक विकास प्रक्रिया (बटलर, 1995, 1998, 2002) के माध्यम से आदतों का अभ्युदय होता है (पेरिस और पेरिस, 2001)।

स्पष्ट है कि अभिभावकीय भागीदारी एवं स्व–विनियमित अधिगम विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि को çHkkfor djrk gSA vr%bl fo"k; dsegRo dsdkj.k 'kks/k v/;;u gsrq **''अभिभावकीय भागीदारी, स्व–विनियमित अधिगम एवं विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन''** समस्या का चयन किया गया।

2. अध्ययन का महत्व–किशोरावस्था, बचपन से वयस्क तक का संक्रमण काल है। शारीरिक, भावनात्मक, बौद्धिक और सामाजिक परिवर्तन के कारण इस अवधि के दौरान विद्यार्थी तनाव और तूफान का सामना कर सकता है। यदि किशोरावस्था में उन्हें ठीक से प्रशिक्षित नहीं किया जाता है तो वे अपनी दिशा से भटक सकते हैं। शैक्षणिक पहलुओं के अनुरूप बच्चों को व्यविस्थत रूप से अध्ययन करने के लिए सभी प्रयास करने चाहिए। बच्चों को इन सभी चीजों का अध्ययन करने के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करने के लिए बाहरी वातावरण को भी नियंत्रित किया जाना चाहिए। माता–पिता का प्यार, देखभाल और मार्गदर्शन बच्चों के व्यवहार में जबरदस्त बदलाव ला सकता है।

व्यक्तित्व की गतिशीलता में समाजशास्त्रीय कारक विशुद्ध रूप से मानते हैं कि, माता–पिता के प्रोत्साहन और बच्चों पर भागीदारी उनके व्यक्तित्व को प्रभावित करती है। बच्चों की शिक्षा भविष्य की बेहतरी के लिए जीवन कौशल प्रदान करती है।

कक्षा 11 और 12 में प्राप्त उच्च अंक उनका भविष्य तय करता है। विषय के अध्ययन के लिए बच्चों पर हर तरफ से दबाव बढ़ रहा है। छात्र में किशोरावस्था के कारण उत्साह व भावनाओं का ज्वार उफान पर होता है। बच्चों के अकादमिक प्रदर्शन में उत्कृष्टता लाने के लिए माता–पिता उनके प्रमुख शुभचितंक हैं। अभिभावकीय भागीदारी व स्व–विनियमित अधिगम अकादमिक प्रदर्शन में अद्भुत बदलाव ला सकता है।

वर्तमान अध्ययन उच्चतर माध्यमिक विद्यार्थियों के अभिभावकीय भागीदारी, स्व–विनियमित अधिगम और शैक्षणिक उपलब्धि पर केंद्रित है। वर्तमान अध्ययन के माध्यम से हम यह जान पाएँगे कि, उच्चतर माध्यमिक विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि में किस तरह और कैसे अभिभावकीय भागीदारी, स्व–विनियमित अधिगम सकारात्मक परिवर्तन लाता है।

3. **समस्या का कथन–''अभिभावकीय भागीदारी, स्व–विनियमित अधिगम एवंविद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलिब्ध के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन।"**

4. प्रमुख शब्दों की परिभाषा–अभिभावकीय भागीदारी : अभिभावकीय भागीदारी से तात्पर्य, अभिभावक की स्कूली शिक्षा और उसके बच्चे के जीवन में भागीदारी की मात्रा से है। कुछ स्कूल विभिन्न आयोजनों और स्वयंसेवी अवसरों के माध्यम से अभिभावक की स्वस्थ भागीदारी को बढ़ावा देते हैं, लेकिन कभी–कभी यह माता–पिता पर निर्भर होता है कि वे अपने बच्चों की शिक्षा में खुद को शामिल करें।

स्व–विनियमित अधिगम : स्व–विनियमित अधिगम से तात्पर्य किसी के सीखने के वातावरण को समझने और नियंत्रित करने की क्षमता से है।

शैक्षणिक उपलब्धि : शैक्षणिक उपलब्धि का अर्थ है कि छात्र परीक्षा में कैसा प्रदर्शन करते हैं। शैक्षणिक उपलब्धि के रूप में हाई स्कूल परीक्षा कक्षा 10 के प्राप्तांक के प्रतिशत को प्रयुक्त किया गया है।

उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थी : हाई स्कूल के बाद की शिक्षा को उच्चतर माध्यमिक शिक्षा कहा जाता है। उच्चतर माध्यमिक शिक्षा 2 वर्षों की अवधि के लिए है। इस अध्ययन में 'उच्चतर माध्यमिक विद्यालय

के विद्यार्थियों' शब्द से, आशय ऐसे छात्रों से है जो कक्षा 11 में उमरिया जिले के माध्यमिक शिक्षा मंडल मध्य प्रदेश भोपाल से मान्यता प्राप्त स्कूलों में अध्ययनरत हैं।

5. अध्ययन के उद्देश्य–1. अभिभावकीय भागीदारी एवं उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन करना।

2. स्व–विनियमित अधिगम एवं उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन करना।

3. अभिभावकीय भागीदारी एवं उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों के स्व–विनियमित अधिगम के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन करना।

6. शून्य परिकल्पनाएँ–1. अभिभावकीय भागीदारी एवं उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य कोई सार्थक सम्बन्ध नहीं है।

2. स्व–विनियमित अधिगम एवं उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य कोई सार्थक सम्बन्ध नहीं है।

3. अभिभावकीय भागीदारी एवं उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों के स्व–विनियमित अधिगम के मध्य कोई सार्थक सम्बन्ध नहीं है।

7. शोध की सीमाएँ–1. अध्ययन केवल मध्य प्रदेश के उमरिया जिले तक ही सीमित है।

2. अध्ययन केवल 11वीं कक्षा के विद्यार्थियों तक ही सीमित है।

3. अध्ययन चर अभिभावकीय भागीदारी, स्व–विनियमित अधिगम और शैक्षणिक उपलब्धि तक सीमित है।

8. शोध अध्ययन विधि–शोधार्थियों द्वारा उच्च्तर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों के अभिभावकीय भागीदारी, स्व–विनियमित अधिगम और शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन करने के लिए अनुसंधान की सर्वेक्षण पद्धति को अपनाया है।

9. जनसंख्या–शोधार्थियों द्वारा उमरिया जिले के माध्यमिक शिक्षा मंडल, भोपाल से मान्यता प्राप्त शहरी क्षेत्र के उच्च्तर माध्यमिक विद्यालयों में कक्षा 11 अध्ययनरत विद्यार्थी जनसंख्या के रूप में चुने गए थे।

10. प्रतिदर्श–शोधार्थियों द्वारा जनसंख्या से नमूना का चयन करने के लिए उद्देश्यपूर्ण–सह–प्रासंगिक प्रतिदर्शन विधि का इस्तेमाल किया गया था। इस प्रतिदर्श में उमरिया जिले के शहरी क्षेत्र के उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के 100 विद्यार्थी शामिल हैं।

11. अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण–शोध प्रदत्तों के संकलन हेतु द पैरेंटल इन्वॉल्वमेंट मापनी (TPIS), (डॉ०विजया लक्ष्मी चौहान, उदयपुर एवं श्रीमती गुंजन गनोत्रा अरोरा, अहमदाबाद) का उपयोग अभिभावकीय भागीदारी का अध्ययन करने के लिए एवं स्व–विनियमित अधिगम मापनी (वर्तमान अध्ययन के लिए विकसित) का उपयोग स्व–विनियमित अधिगम का अध्ययन करने के लिए किया गया था। शैक्षणिक उपलब्धि के रूप में हाई स्कूल परीक्षा कक्षा 10 के प्राप्तांक प्रतिशत को प्रयुक्त किया गया था।

12. आँकड़ों का विश्लेषण, व्याख्या एवं विवेचना

$H_0$1– अभिभावकीय भागीदारी एवं उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य कोई सार्थक सम्बन्ध नहीं है।

तालिका 1

अभिभावकीय भागीदारी एवं उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य सम्बन्ध

चर	N	सह–सम्बन्ध गुणांक "r"	सारणी मान "r"
अभिभावकीय भागीदारी एवं शैक्षणिक उपलब्धि	100	0.78*	0.195

*0.05 सार्थकता स्तर

अभिभावकीय भागीदारी व शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य सह–सम्बन्ध ज्ञात करने हतु कार्ल पियर्सन की गुणनफल आघूर्ण विधि का उपयोग किया गया है।

तालिका 1 से स्पष्ट है की अभिभावकीय भागीदारी एवं उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य प्राप्त सह–सम्बन्ध गुणांक r का मान 0.78 है, जो परिमित धनात्मक सह–सम्बन्ध को दर्शाता है तथा यह 0.05 स्तर पर सार्थक सह–सम्बन्ध को दर्शाता है। अतः शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है।

$H_0$2-–स्व–विनियमित अधिगम एवं उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य कोई सार्थक सम्बन्ध नहीं है।

तालिका 2

स्व–विनियमित अधिगम एवं उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य सम्बन्ध

चर	N	सह–सम्बन्ध गुणांक "r"	सारणी मान "r"
स्व–विनियमित अधिगम एवं शैक्षणिक उपलब्धि	100	0.96*	0.195

*0.05 साथर्कता स्तर

स्व–विनियमित अधिगम व शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य सह–सम्बन्ध ज्ञात करने हतु कार्ल पियर्सन की गुणनफल आघूर्ण विधि का उपयोग किया गया है।

तालिका 2 से स्पष्ट है की स्व–विनियमित अधिगम एवं उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य प्राप्त सह–सम्बन्ध r का मान 0.96 है, जो परिमित धनात्मक सह–सम्बन्ध को दर्शाता है तथा यह 0.05 स्तर पर सार्थक सह–सम्बन्ध को दर्शाता है। अतः शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है।

$H_0$3–अभिभावकीय भागीदारी एवं उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों के स्व–विनियमित अधिगम के मध्य कोई सार्थक सम्बन्ध नहीं है।

तालिका 3

अभिभावकीय भागीदारी एवं उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों के स्व–विनियमित अधिगम के मध्य सम्बन्ध

चर	N	सह–सम्बन्ध गुणांक "r"	सारणी मान "r"
अभिभावकीय भागीदारी एवं स्व–विनियमित अधिगम	100	0.92*	0.195

*0.05 साथर्कता स्तर

अभिभावकीय भागीदारी व स्व–विनियमित अधिगम के मध्य सह–सम्बन्ध ज्ञात करने हेतु कार्ल पियर्सन की गुणनफल आघूर्ण विधि का उपयोग किया गया है।

तालिका 3 से स्पष्ट है की अभिभावकीय भागीदारी एवं उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों के स्व–विनियमित अधिगम के मध्य प्राप्त सह–सम्बन्ध r का मान 0.92 है, जो परिमित धनात्मक सह–सम्बन्ध को दर्शाता है तथा यह 0.05 स्तर पर सार्थक सह–सम्बन्ध को दर्शाता है। अतः शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है।

13. निष्कर्ष–1. अभिभावकीय भागीदारी एवं उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य प्राप्त सह–सम्बन्ध गुणांक r का मान 0.78 है, जो परिमित धनात्मक सह–सम्बन्ध को दर्शाता है।

2. स्व–विनियमित अधिगम एवं उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य प्राप्त सह–सम्बन्ध गुणांक r का मान 0.96 है, जो परिमित धनात्मक सह–सम्बन्ध को दर्शाता है।

3. अभिभावकीय भागीदारी एवं उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों के स्व–विनियमित अधिगम के मध्य प्राप्त सह–सम्बन्ध गुणांक r का मान 0.92 है, जो परिमित धनात्मक सह–सम्बन्ध को दर्शाता है।

14. सारांश–अभिभावक अपने बच्चों के विकास, शिक्षा और स्कूलों की सफलता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। भले ही वर्तमान अध्ययन में कुछ सीमाएं हैं, लेकिन यह स्पष्ट है कि अभिभावकीय भागीदारी, उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों की आत्म–विनियमित अधिगम और शैक्षणिक उपलब्धि के बीच महत्वपूर्ण संबंध है। यह शोध श्रीवास्तव व माने (2020); तैलूरी व सुनील (2017); कुमारी व चमुंडेस्वरी (2015); कासेम (2018); रफीक (2013); सेकर और मणि (2013); और जोनथन व डयूक्स (2015) के निष्कर्षों की पुष्टि करता है। अभिभावकों को जागरूक किया जाना चाहिए कि वे अपने बच्चों की शैक्षणिक उत्कृष्टता के लिए उचित अभिभावक प्रोत्साहन कैसे nsA vfHkHkod h; Hkkxhnkjh dks c<+kus dsfy ,] 'kkyk çca/ku , oafodkl lfefr (SMDC) की नियमित बैठकों का आयोजन करना चाहिए। बच्चों के अध्ययन को प्रभावित करने वाले मनोवैज्ञानिक चरों के बारे में अभिभावक को जागरूक करने के लिए पहल करनी चाहिए। शाला प्रबंधन एवं विकास समिति (SMDC) के माध्यम से, अभिभावकों व विद्यालय में एक अच्छा तालमेल बनाने के लिए मार्ग दर्शन और अभिविन्यास कार्यक्रम का आयोजन किया जा सकता है, जिससे उन्हें अपने बच्चे के व्यवहार, प्रदर्शन, रुचि आदि को जानने में मदद मिलती है।

किशोरावस्था मानव जीवन का एक महत्वपूर्ण समय है। इस उम्र के बच्चे स्वतंत्र महसूस करते हैं और कई बार वे अपने माता–पिता द्वारा की जा रही देखभाल और उनकी सलाह की उपेक्षा करते हैं। इसलिए, माता–पिता को उनके प्रदर्शन के लिए पुरस्कार और प्रोत्साहन देने की विधि से अवगत कराया जाना चाहिए। माता–पिता को अपने बच्चों की प्रतिभा का पता लगाने, उन्हें प्रेरित करने, और उनके लिए क्या अच्छा है, क्या अच्छा नहीं है, इत्यादि का मार्गदर्शन देने में सक्षम होना चाहिए। उन्हें यह भी सुनिश्चित करना चाहिए कि उनके बच्चों को उचित भोजन मिले और वे व्यायाम भी करें। माता–पिता को बच्चे की क्षमता के अनुरूप ही उम्मीद रखनी चाहिए और उनके लक्ष्य निर्धारित करने में मदद करनी चाहिए।

उच्चतर माध्यमिक विद्यार्थियों की शिक्षा और शैक्षणिक उपलब्धि में माता–पिता की भागीदारी में सुधार के लिए शोधार्थियो द्वारा दी गई सिफारिशें बहुत मददगार हो सकती हैं। यह अध्ययन तब अधिक फलदायी होगा जब शोधार्थियों द्वारा दिए गए सुझावों को आगे के अध्ययन के लिए लागू किया जाएगा और यह उन लोगों के लिए बहुत मददगार साबित होगा जो इस क्षेत्र में आगे अध्ययन करना चाहते हैं।

संदर्भ–सूची

1. कुमारी ए. और चामुंडेश्वरी, एस. (2015), पैरेंटल इन्वॉल्वमेंट, सेल्फ–रेगुलेटेड लर्निंग एंड ऐकेडमिक अचीवमेंट ऑफ स्टूडेंट्स, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इकोनॉमिक्स एंड बिजनेस रिव्यु, वॉल्यूम–3, इश्यु–2, पृ. 153–160.

2. कुअन, एन.डब्ल्यू. और चुएं, टी. डब्ल्यू. (2017), अ स्टडी ऑन पैरेंटल इन्वॉल्वमेंट एंड ऐकडेमिक अचीवमेंट इन एलीमेंट्री स्कूल स्टूडेंट्स, पेनरबिट युटीएम प्रेस, वॉल्यूम–9 : 3–2, पृ. 45– 50
3. लॉरेंस, ए. एस. और बारथि, सी. (2016), पैरेंटल एनकरेजमेन्ट इनरिलेशन टू ऐकेडमिक अचीवमेंट ऑफ हायर सेकेंडरी स्कूल स्टूडेंट्स. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांस रिसर्च एन्ड इन्नोवेटिव आइडियाज इन एजुकेशन, वॉल्यूम–2, इश्यू–6, पृ. 1234–1239
4. क्वासें, ऐल. (2018), एक्टिव पैरेंटल कण्ट्रोल इन्वॉल्वमेंट रिलेशनशिप विथ सोसिओ इकोनॉमिक स्टेटस एंड इम्पैक्ट ऑन स्टूडेंट्स ऐकेडमिक परफॉरमेंस. इंटरनेशनल जर्नल पेडागोजी ऑफ सोशल स्टडीज. वॉल्यूम–3, इश्यू–2, पृ. 123–132
5. रूहोल्ट, आर., गोरे, जे.एस. और ड्यूक्स, के. (2015), इज पैरेंटल सपोर्ट आर पैरेंटल इन्वॉल्वमेंट मोर इंपोर्टेंट फॉर अडोलसेंट्स. अंडर ग्रेजुएट जर्नल ऑफ साइकोलॉजी, वॉल्यूम–8, पृ. 1–8
6. सिंह, एस., होरो, एन. और सिंह, वी. एन. (2016), पैरेंटल एजुकेशन एंड ऐकेडमिक परफॉरमेंस ऑफ स्टूडेंट्स एट सेकेंडरी लेवल, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांस्ड एजुकेशन एंड रिसर्च, वॉल्यूम–1, इश्यू–3, पृ. 26–29.
7. श्रीवास्तव, एस. और माने, के. एच. (2019), विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का अभिभावकीय प्रोत्साहन एवं अध्ययन आदत के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन, भारतीय आधुनिक शिक्षा, वॉल्यूम–4, पृ. 56–63
8. ताल्लुरी, एस. और सुनीला एम.ई. (2017), इम्पैक्ट ऑफ पैरेंटल इन्वॉल्वमेंट ऑन ऐकेडमिक अचीवमेंट ऑफ सेकेंडरी स्कूल स्टूडेंट्स. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांस्ड एजुकेशनल रिसर्च, वॉल्यूम–2, इश्यू–5, पृ. 180–183

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Education : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 423-425

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

उच्च माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों में सृजनात्मकता के विकास में एक शिक्षक की भूमिका

*मुहम्मद आसिफ अन्सारी**

आदि काल से ही मानव सृजनात्मक प्राणी रहा है उसकी सृजनशीलता का सम्बन्ध शैक्षिक व सामाजिक विषयों से संदर्भित होता है। यदि हम भारतीय साहित्य का अवलोकन करें तो ऐसे तमाम उदाहरण मिलते हैं, जिनके आधार पर सामाजिक परिप्रेक्ष्य के विकास में मानव की सृजनात्मक अभिवृत्तियों ने एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

इक्कीसवीं शताब्दी में बालक के अन्तर्निहित मूल्यों के संवर्धन में सृजनात्मक अभिवृत्तियों का बहुमूल्य स्थान होता है। बालक जब अपनी प्राथमिक शिक्षा आरम्भ करता है तो उसके अन्तर्मन में ऐसी बहुत सी जिज्ञासु अभिवृत्तियाँ प्राप्त होती हैं, जिनके सार्थक समाधान हेतु वह निरन्तर प्रयत्नशील रहता है।

शिक्षा ही वह साधन है, जिसके माध्यम से बालक की जिज्ञासा अभिवृत्ति को संतोष प्रदान किया जा सकता है, क्योंकि शिक्षा एक सतत् एवं व्यापक प्रक्रिया है, जिसे मात्र किसी कार्य निष्पादन तक ही नहीं सीमित किया जा सकता। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो बालक में निहित आन्तरिक शक्तियों के उत्सर्जन के साथ–साथ वैयक्तिक व सामाजिक क्रियाओं में समग्र विकास के रूप में अग्रसर करने का कार्य करती है।

अतः शिक्षा बालक के सर्वांगीण विकास का स्रोत है। बालक के विकास की विभिन्न अवस्थाओं में से एक किशोरावस्था बालक के सर्वांगीणता का एक प्रमुख साधक माना गया है, क्योंकि जब बालक बाल्यावस्था से किशोरावस्था में अपने पग रखता है तब तक उत्तम अमूर्त चिन्तन की योग्यताओं का विकास हो चुका होता है। अमूर्त चिन्तन की योग्यताओं के विकास में बालक की बुद्धि का भी एक महत्वपूर्ण स्थान होता है। सामान्यतया यह अवधारणा है कि बालक जितना ही अधिक बुद्धिमान होता है उसकी सृजनात्मकता अभिवृत्ति भी उतनी ही अधिक प्रबल होती है। इसके अतिरिक्त सृजनात्मकता के विकास में शिक्षा भी एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है शिक्षा में तर्क, चिन्तन, स्मृति, बुद्धि कल्पना व सीखना आदि शामिल है, इन प्रमुख तत्वों के अभाव में किसी भी व्यक्ति में सृजनात्मकता की कल्पना ही नहीं की जा सकती है।

उच्च माध्यमिक स्तर पर शिक्षा द्वारा सृजनात्मकता की दक्षता तीव्र गति से विकसित होती है तथा सृजनात्मकता के विकास से ही जीवन में सफलता प्राप्त होती है।

बालकों में सृजनात्मकता का विकास करने के लिए शिक्षक को स्वयं भी सृजनात्मक प्रवृत्ति का होना चाहिए। उसे चाहिए कि वह स्वयं भी साहित्य, विज्ञान, कला आदि के क्षेत्र में सृजनशील कार्य करे और छात्रों के समक्ष एक उदाहरण प्रस्तुत करे। इससे बालकों को प्रेरणा एवं प्रोत्साहन प्राप्त होता है। अध्यापकों का कर्तव्य है कि वह छात्रों को विभिन्न सृजनात्मक कार्यों को करने हेतु नवीनतम सूचनाओं को संग्रह करने का अवसर एवं सुविधा प्रदान करें। इसके अतिरिक्त उत्पादक चिन्तन और मूल्यांकन को प्रोत्साहन देना भी शिक्षक का एक प्रमुख कर्तव्य है। बालकों को सुधार, निर्माण, खोज व आविष्कार की क्रियाओं में लगाया जाय, इससे उनमें सृजनात्मकता का विकास होगा। सृजनात्मकता के प्रशिक्षण एवं विकास हेतु आवश्यक है कि छात्रों को समस्या समाधान के संदर्भ में तथ्यों का ज्ञान रहे। जो बालक सृजनात्मक प्रवृत्ति के हैं, स्पष्ट है कि उनकी बुद्धिलब्धि भी औसत से ऊपर होती है।

* *शोध छात्र, शिक्षाशास्त्र विभाग, श्री गणेश राय पी.जी. कॉलेज, डोभी, जौनपुर*

अतः इनके लिए विशेष शिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिए जिससे कि उनकी सृजनात्मकता और भी निखर कर विकसित हो सके और वे समाज, साहित्य व विज्ञान को कुछ नवीनता प्रदान करने में सक्षम हो सके। एक अध्यापक के लिए आवश्यक है कि वह विद्यार्थी को उनकी सृजनात्मकता की प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति हेतु उपयुक्त माध्यम तलाश करके समुचित दिशा निर्देशित करे तथा इसके अतिरिक्त निम्नांकित बिन्दुओं पर भी प्रयास करने की आवश्यकता है।

1. उच्च माध्यमिक स्तर पर बालकों में सृजनात्मकता का विकास करने के लिए शिक्षक स्वयं सृजनात्मक प्रवृत्ति का होना चाहिए, इससे बालक प्रोत्साहित एवं प्रेरित होते हैं।

2. शिक्षक को आवश्यक है कि वह छात्रों को विभिन्न सृजनात्मक कार्यों को अद्यतन सूचनाओं को संग्रह करने का अवसर एवं सुविधा प्रदान करे साथ ही आविष्कार विशेष में सृजनात्मक अंशों की ओर भी संकेत करे।

3. छात्रों में नवीन विचारों को ग्रहण करने, रुचि और उनको आत्मविश्वास एवं इच्छाशक्ति के विकास का अवसर प्रदान किया जाय। छात्रों में स्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा का विकास करने के साथ ही उनकी रचनाओं की प्रशंसा तथा उनके सृजनात्मक कार्यों के अभ्यास का अवसर प्रदान किया जाना चाहिए।

4. छात्रों की प्रतिक्रियाओं को जानने हेतु उनके समक्ष समस्यात्मक परिस्थिति रखना भी आवश्यक होता है।

5. छात्रों के सामने ऐसा वातावरण भी प्रस्तुत किया जाय जो प्रोत्साहित करने वाला और क्रियाशीलता की शिक्षा देने वाला होना चाहिए।

6. समस्याओं के समाधान की योजना प्रस्तुत करके छात्रों से हल कराने का प्रयास किया जाय। समस्याएं सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, तकनीकी एवं शिक्षा से सम्बन्धित हो।

7. उच्च माध्यमिक स्तर पर सृजनात्मकता के विकास के लिए छात्रों को खोज, आविष्कार और निर्माण की क्रियाओं में लगाया जाय। यह उनमें सृजनात्मकता विकसित करने में सहायक होगा।

8. उच्च माध्यमिक स्तर पर प्रशिक्षण एवं सृजनात्मकता के विकास हेतु किसी कार्य में छात्रों को उनकी रुचि तथा प्रयास बनाये रखना चाहिए तथा अभ्यास द्वारा उन्हें और मजबूत होने का अवसर भी उपलब्ध कराना चाहिए।

9. छात्रों से विभिन्न स्रोतों से ज्ञान, कौशल एवं अन्य सूचनाएँ ग्रहण तथा एकत्र करने की प्रेरणा भी शिक्षा द्वारा दी जानी चाहिए।

10. शिक्षक द्वारा छात्रों को ऐसा अवसर भी उपलब्ध कराना चाहिए कि जिससे वे दैनिक जीवन की जटिलताओं और समस्याओं को समझ सके। ये समस्याएं उनके विद्यालय के कार्य या विद्यालय के बाहर के कार्य से भी सम्बन्धित हो सकती हैं।

11. छात्रों को पत्र–पत्रिकाओं के प्रकाशन, विद्यालय कृषि फार्म छात्र संघ, स्कूल या उपभोक्ता भण्डार आदि के कार्यों में भाग लेने का अवसर दिया जाना चाहिए जिससे समस्या समाधान के संदर्भ में उन्हें तथ्यों (Facts) का ज्ञान हो सके। यह बिन्दु भी सृजनात्मकता के विकास एवं प्रशिक्षण में सहायक होगा।

12. छात्रों को मौलिकता की ओर अग्रसर होने के लिए प्रोत्साहित करते रहना चाहिए। इसके लिए अध्यापक को चाहिए कि वे छात्र के सामने कुछ ऐसी समस्या उत्पन्न करें जिससे वे स्वयं अपने पूर्व ज्ञान एवं तथ्यों का सहारा लेते हुए मौलिक समाधान प्रस्तुत कर सकें। सृजनात्मकता के प्रशिक्षण एवं विकास के लिए यह भी आवश्यक है।

13. छात्रों को इस तरह से प्रेरित किया जाय जिससे वे अपने कार्यों का खुद ही यथार्थ मूल्यांकन कर सकें। जिससे छात्रों में समस्याओं के समाधान या नवीन रचना के लिए जिन तथ्यों को लागू करने का निश्चय किया है वह स्वयं ही मूल्यांकन करें कि क्या वे उस समस्या के समाधान अथवा रचना में सहायक होंगे? छात्रों में सृजनात्मकता के प्रशिक्षण एवं विकास के लिए इसका होना भी अति आवश्यक है।

14. यथार्थ मूल्यांकन के साथ ही उन तथ्यों का परीक्षण भी आवश्यक होता है, परीक्षण से अभिप्राय सत्यता की जांच करना है। इसके लिए छात्रों को वे सभी सुविधाएं एवं अवसर उपलब्ध कराना होगा जिससे वे अपने विचारों एवं तथ्यों का सटीक मूल्यांकन और जांच कर सकें इसके लिए आवश्यक है कि उनके लिए विशेष शिक्षण

की व्यवस्था की जाय। जिससे उनकी सृजनात्मकता में उन्नयन हो और ये छात्र समाज, साहित्य और विज्ञान को कुछ नया दे सकें।

रचनात्मक रुचियों वाला अध्यापक अपने विद्यार्थियों को अपने कार्य से प्रभावित करता है और विद्यार्थियों में सृजनात्मक गुणों के विकास का संचार करता है। वह अध्यापक जो स्वयं सीख रहा है, और अपने विषय क्षेत्र में ज्ञान को जानने का पूर्ण प्रयत्न कर रहा है अपने शिष्य को अनुकरण करने के लिए एक आदर्श प्रदान कर रहा है।

अध्यापक को चाहिए कि वह विद्यार्थियों को श्रेष्ठ कृतियों के अध्ययन के लिए प्रोत्साहित करे, उन्हें मौलिक रचना के लिए कहे, उन्हें बताये कि वे अपने अनुभवों तथा ज्ञान का समुचित उपयोग किस प्रकार करें।

इसके अतिरिक्त लचीलापन तथा सक्रियता को प्रोत्साहित करे व बढ़ावा दे। बुद्धिमान बालक पढ़ाई की बहुत–सी प्रभावी तथा नवीन विधियों का प्रयोग करते हैं।

इस प्रकार के सृजनात्मक विचारों का स्वागत किया जाये तथा इनका अच्छी तरह मूल्यांकन किया जाय।

अध्यापक बच्चों को अपने विचारों में विश्वास की भावना के लिए उत्साहित करें। उन्हें चाहिए कि वे बालकों के रचनात्मक चिन्तन का पुरस्कार उनके प्रश्नों का उचित समाधान करते हुए काल्पनिक विचारों को महत्व दें।

श्रेष्ठ कृतियों के अध्ययन करने के लिए बालकों को प्रोत्साहित करना भी एक अध्यापक का कर्तव्य होता है। रचनात्मकता का विकास करने के लिए बालकों को खोज का अवसर प्रदान करना चाहिए और ऐसे वातावरण का सृजन करना चाहिए जिससे बालक अपना स्वतंत्र विचार दे सकें।

विद्यार्थियों के कार्य तथा प्रयत्न में किसी परिवर्तन या विविधता के चिन्ह का स्वागत करने के साथ ही उसे प्रेरित करना चाहिए।

अध्यापन कोई और व्यवस्था नहीं है, बल्कि प्रौद्योगिकी सदैव बदलते ज्ञान, वैष्विक अर्थशास्त्र के दबावों से प्रभावित होकर बदलता रहता है। इसका अर्थ है कि इन परिवर्तनों को सम्बोधित करने के लिए अध्यापन के तरीकों और कौशलों का लगातार अद्यतन विकास आवश्यक है।

नई पीढ़ी में रचनात्मक अभिवृत्तियों का उन्नयन करने के लिए शिक्षा की प्रक्रियाओं के नवीनीकरण के साधनों के रूप में सभी उच्च तकनीकी संस्थानों को तत्परता से एक जुट होना होगा तथा एक उच्च कोटि की सृजनात्मक जनशक्ति उपलब्ध कराना होगा जो विकास और शोध में उपयोगी सिद्ध हो सके।

सन्दर्भ–सूची

1. Mangal, Education Psychology, PHL Learning Private Limited, New Delhi.
2. डॉ. मालती सारस्वत, शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा, आलोक प्रकाशन, अमीनाबाद, लखनऊ।
3. पी.डी. पाठक व ममता चतुर्वेदी, शिक्षा मनोविज्ञान, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा–1
4. रमन बिहारी लाल व डॉ. राम निवास मानव, शिक्षा मनोविज्ञान, रस्तोगी पब्लिकेशन्स, मेरठ।

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908
Education : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 426-429
General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

भारतीय नारियों के सामाजिक उत्थान एवं सशक्तीकरण में महात्मा गाँधी की प्रासंगिकता

*श्वेता सिंह**

'नारी जीवन को सर्जनात्मकता शक्ति है' यह कथन सर्वत्र सभी साहित्यों में एक स्वर से स्वीकार किया गया है। भारतीय समाज के धटक के रूप में निर्विषय रूप में नारी का महत्व सर्वविदित है धर्मशास्त्र विषयक ग्रन्थ 'मनुस्मृति' में नारी के विविध रूपों का वर्णन है नारी के सामाजिक सम्मान को बड़े ही दृढ़ स्वर में समर्थन करते हुये कहा गया है कि 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।' किन्तु कालातंर में विभिन्न प्रकार के सामाजिक कुरीतियों व रुढ़िवादिता के आगमन से भारतीय नारी की गौरवमयी स्थिति का अधोपतन हुआ। इस स्थिति के लिये स्मृतिकारों और नारी चरित्र के नीति निर्माताओं को दोषी ठहराया जा सकता है। यद्यपि विभिन्न कालांतरों में प्रबुद्व वर्ग या सामाजिक संस्थाओं द्वारा भारतीय नारी की सामाजिक परिस्थितियों में सुधार हेतु प्रयास किये गये। जिसमें उन्हें आंशिक सफलता भी प्राप्त हुई तथापि कुछ दोष अभी भी जीवत थे। इस कार्य को आगे ले जाने में महात्मा गाधी का एक अहम् योगदान रहा है। उन्होंने ने संदियों से चली आ रही सामाजिक कुरीतियों, अधंविश्वास तथा रुढ़िवादिता के सन्दर्भ में अपने तीखे प्रहार शामिल था उन्होंने स्त्रियों की दुरावस्था का प्रमुख कारण उनमें व्याप्त अज्ञान तथा शिक्षा का अभाव माना था साथ ही साथ उन्होंने प्राचीन परिप्रेक्ष्य को आधार मानकर उसकी वर्तमान समस्याओं का हल प्रस्तुत करना रहा।

मानवजाति की सभ्यता, संस्कृति एवं विकास का मूलआधार नारी को ही माना जाता है। नर और नारी को सृष्टि सृजन की प्रक्रिया में मूलतत्व के रूप में स्वीकार किया गया है। शक्ति के अलावा बुद्वि और विवेक का बेजोड़ मिश्रण उसे अन्य प्राणियों में विशिष्टता प्रदान करता है। प्रगैतिहासिक काल से वर्तमान आधुनिक समय तक नर और नारी सृष्टि रूपी रथ के दो पहिये हैं इन दोनों तत्वों में से किसी एक भी का नष्ट होना सृष्टि रूपी रथ को गिरा देगा। इसलिये नर और नारी सर्वश्रेष्ठता के परिचायक हैं। यह उसके असभ्य से सभ्य बनने की सफलता को द्योतित करता है। मानवीय विकास के इस आयाम में नर और नारी दोनो का अभूतिपूर्ण योगदान समाहित है।

सभ्यता के इतिहास में मातृसत्तात्मकता समाज की झलक मिलती है परन्तु महिलाओं के उत्कर्ष और अपकर्ष ने पितृसत्तात्मक समाज की नीवं रखी, जिससे महिलाओं की स्थिति में असंतुलन व गिरावट आने लगी। असंतुलन की यह स्थिति क्यों और कैसे उत्पन्न हुई, इसके कारक क्या थे, और भारतीय समाज पर इसका क्या असर पड़ा। इन सवालों के समाधान हेतु भारतीय नारी की स्थिति का अध्ययन करना नितान्त आवश्यक है।

अध्ययन की इस प्रक्रिया में विभिन्न कालांतरों में भारतीय नारियों की स्थिति में भी विभिन्नता देखने को मिलती है। वैदिककाल में जहाँ नारी को वेदों के अध्ययन व अध्यापन व धार्मिक अनुष्ठनों सम्मिलित होने की पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त थी। तो वही उत्तरवैदिक काल से मध्यकाल तक भारतीय समाज में बहुविवाह, बालविवाह, विधवा विवाह निषेध, जैसी सामाजिक कुरीतियों के आगमन से भारतीय नारी की स्थिति पतनोन्मुख हुई। मुगलों के आगमन व शासनकाल में जहां पर्दा प्रथा जैसी नयी सामाजिक कुरीति का प्रवेश हुआ, वही हिन्दू समाज में बाल–विवाह तथा जौहर प्रथा में भी बढोत्तरी हुई। ब्रिटिश शासनकाल में भी नारी की यह स्थिति बदस्तूर जारी रही। यद्यपि ब्रिटिश शासनकाल के दौरान भारतीय समाज में एक नये प्रबुद्व वर्ग के उदय ने इन सामाजिक कुरीतियों का विरोध किया

* शोध छात्रा, शिक्षाशास्त्र विभाग, मालवांचल विश्वविद्यालय, इंदौर (म.प्र.)

तथा ब्रिटिशों को इन सामाजिक कुरीतियों के विरूद्व कठोर कानून बनाने के लिये विवश किया। इस प्रबुद्व वर्ग में राजा राममोहन राय, दयानन्द सरस्वती, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, देवेन्द्रनाथ टैगोर, ज्योतिबा फुले आदि का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। सती प्रथा की समाप्ति तथा बाल विवाह और बालिका हत्या निषेध संबंधी कानूनों का निर्माण हुआ। किन्तु अभी भी भारतीय समाज में उतनी जागृति उत्पन्न नहीं हो पायी। इस दिशा में 20वीं सदी के समाज सुधारकों ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इस श्रेणी में महात्मा गाँधी एक ऐसी युग पुरुष के रूप में उभर के सामने आए, उन्होंने नारीयों के सामाजिक उत्थान एवं सशक्तीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

महात्मा गांधी ने भारतीय नारी की सामाजिक स्थिति पर अपने विचारों को समाज के सम्मुख रखा जिसमें अंधविश्वास और रुढ़िवादिता पर तीखा प्रहार शामिल था उन्होंने स्त्रियों की दुरावस्था का प्रमुख कारण उनमें व्याप्त अज्ञान तथा शिक्षा का अभाव माना था स्त्री शिक्षा को महात्मा गाँधी ने सर्वोपरि स्थान दिया। उनके विचार में समस्त प्रचलित सामाजिक कुरीतियों के जड़ में नारी की अशिक्षा ही है। विद्या के बिना मानव पशुवत है। इसीलिये पुरुषों की भाँति स्त्रियों के लिए भी शिक्षा प्राप्त करना आवश्यक है।

महात्मा गाँधी ने समाज और देश को रसातल में पहुॅचाने वाले बाल–विवाह, वेश्यावृत्ति,देहज प्रथा, पर्दा प्रथा जैसे सामाजिक समस्याओं के निदान करने में अपने जीवन का बहुमूल्य योगदान दिया। सामाजिक स्तर के प्रगति के ऊँचे पायदान पर खड़े होकर भी आज स्त्री सशक्तिकरण की बात करने वालों में वह आत्मविश्वास नहीं झलकता, जो स्त्री को सामाजिक स्तर पर समुचित सम्मान दिला सकें। अतः आवश्यकता इस बात की है कि महात्मा गाँधी के विचारों को अपनाकर स्त्री को परम्परागत पराधीनता से मुक्ति प्रदान की जाये।

महात्मा गाँधी ने उन रुढ़ियों और कानूनों का विरोध किया जिसको बनाने में स्त्रियों का कोई हाथ नहीं था, परन्तु उससे होने वाले अत्याचारों ने नारी को लगातार कुचला है क्योंकि सामान्यजन में परम्पराओं के प्रति एक विशेष मोह होता है। एक युग में जो गुण होते हैं, वे अन्य युग में रुढ़ि–रीति बनकर बंधन हो जाते हैं, जो मानवीय समाज की गति को अवरूद्व कर देते हैं, भारत में भी यही हुआ। गाँधीजी ने सामाजिक आचार–विचार के इन नियमों को स्त्रियोन्मुख करने के लिये आवश्यक माना, जिससे स्त्रियाँ सामाजिक जीवन में अपना सहयोग प्रदान करके राष्ट्र निर्माता बन सकें।

महात्मा गाँधी के विचार से विवाह जीवन का एक पवित्र संस्कार है। गृहस्थ आश्रम सभी आश्रमों का मूल एवं आधार स्तम्भ माना गया है परन्तु वर्तमान समय में इसकी पवित्रता का पतन होने लगा है विवाह–विच्छेद, बहु–विवाह ने विवाह की एक निष्ठता की मर्यादा का हनन किया है। इन सभी कठिनाईयों से उभरने के लिये महात्मा गाँधी जी ने स्त्रियों को सामाजिक उत्थान व नैतिक चेतना और आधात्मिक मुक्ति के मार्ग के रूप में प्रस्तुत किया। गाँधी जी के शब्दों में ''यदि स्त्रियाँ यह भलू जायें कि वे पुरुषों के भोग–विलास की वस्तु है और यदि वे अपने अन्दर के अपार प्रेम के माध्यम से सम्पूर्ण मानवता पर छा जाये तो फिर वे मातृधातु एवं निर्मातृ–रूप धारण कर सकती है।''

इस प्रकार एक दूसरे के मार्ग का बाधक न बनकर नर और नारी को मन, वचन और कर्म से एक दूसरे का सहयोग करें। वैवाहिक जीवन की मर्यादा और नैतिकता को बनाये रखने के लिये परस्पर प्रेम, आधात्मिक उन्नति, मित्रवत् व्यवहार, परस्पर कर्त्तव्यों का निर्वाह आवश्यक है। विवाह जहाँ एक ओर सामाजिक संस्कार है वहीं बाल–विवाह को सामाजिक कलंक और स्त्रियों के मार्ग की प्रमुख बाधा माना। यही कारण था कि महात्मा गाँधी जी ने उन मान्यताओं को अस्वीकार कर दिया जो धर्म की दुहाई देकर बाल–विवाह को स्वीकार करते हैं। गाधी जी के शब्दों में–जो लड़की गोद में बैठने के लायक नहीं हुई है, उसे पत्नी बना लेना किसी भी अर्थ में धर्म तो नहीं है लेकिन अधर्म की परकाष्ठा है–''एक पाश्विक प्रथा में धर्म से पुष्टि करना धर्म नहीं अधर्म है। स्मृतियों में परस्पर विरोधी वाक्य भरे पड़े हैं। इन विरोधों पर तो इत्मीनान के काबिल यही एक नतीजा निकल सकता है कि उन वाक्यों को जो प्रचलित है लिखित नीति के और खासकर स्मृतियों में ही लिखित आदेशों के विपरीत है, झेपक समझकर छोड़ दिया जाये।''

गाँधीजी ने समाज के सम्मुख अपाला, घोषा, विश्ववारा जैसे महान विदुषी महिलाओं का आदर्श उदाहरण प्रस्तुत किया, जिन्होंने त्याग, दृढ़ता और सहनशीलता के बल पर समाज में एक अलग स्थान स्थापित किया। वर्तमान में स्त्रियों को इन स्त्रियों से प्रेरणा लेनी चाहिए और अपने अधिकारों की प्राप्ति हेतु अथक प्रयासरत रहना चाहिए, तभी वे समाज की नैतिक शक्ति के रूप में मार्ग–दर्शन का कार्य कर सकती है। समाज में नारी की गौरवमयी स्थिति का अधोपतन का कारक भौतिकवाद है। भौतिकवाद से प्रभावित व्यक्ति केवल आत्म–सुख चाहता है, वह दूसरों के सुख की चिन्ता नहीं करता। इसका प्रमुख उदाहरण समाज में व्याप्त दहेज प्रथा, वेश्यावृत्ति और भ्रूण–हत्या के रूप में दिया जा सकता है।

दहेज–प्रथा के संबंध में गाँधी जी का मानना है कि ''पैसे के लालच में किया गया विवाह, विवाह नहीं है, अपितु एक नीच कार्य है।'' अपनी ही जाति के संकुचित दायरे में विवाह–योग्य वर की तलाश के कारण ही दहेज का अस्तित्व बना हुआ है। इस पर अंकुश लगाने की दृष्टि से अन्तर्जातीय विवाह कारगर सिद्ध हो सकते हैं। ऐसा मानते हुए महात्मा गांधी जी ने सम्मिश्र विवाह की जोरदार हिमायत की। गाँधी जी दहेज देने की अपेक्षा लड़कियों के लिए यह बेहतर है कि वे आजीवन आविवाहित रह जाएँ, न कि एंसे व्यक्ति से विवाह कर ले जो दहजे मांग कर उनका अपमान करता हो जिन शादियों में दहेज मांगा जाये उनमें प्यार हो ही नहीं सकता। उन्होंने इस प्रथा के लिये जाति प्रथा को भी कुछ हद तक जिम्मेदार ठहराया। गाँधी जी के अनुसार इसमें संदेह नहीं कि यह हृदयहीन रिवाज है। यह प्रथा जनसाधारण में प्रचलित नहीं थी। मध्यम वर्ग के लोगों में यह रिवाज पाया जाता है जो भारत के विशाल जन–समुद्र में बिन्दु मात्र है फिर भी इसका यह अर्थ नहीं है कि दहेज रूपी कलंक की ओर ध्यान ही न दिया जाय। यह प्रथा तो नष्ट होनी चाहिए। क्योंकि विवाह एक पवित्र संस्कार है। इस प्रकार की समस्याओं को केवल शिक्षा द्वारा ही दूर किया जा सकता है। गाधी जी ने ऐसे अभिभावकों की आलोचना की जहाँ बालिकाओं की शिक्षा के प्रति उदासीन रहते हैं और उसके लिए केवल साधन सम्पन्न वर की खाजे करने पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं। इस सामाजिक कुरीति को समाप्त करने के लिये ऐसी शिक्षा प्रणाली अपनाना होगा जो विद्यार्थी के मस्तिष्क को इस तरह विकसित कर दे कि वह मानव जीवन की हर तरह की समस्याओं को सार्थक समाधान कर सकने में सक्षम हो सकें।

महिलाओं के सर्वांगीण विकास के लिये शिक्षा अत्यन्त आवश्यक है, जिससे वे स्वंय और समाज के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकें और देश के सामाजिक और आर्थिक विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे सकें। गाँधी जी स्त्री शिक्षा में सबसे बाधक तत्व पर्दा–प्रथा को मानते हैं। सतीत्व की रक्षा दीवार से नहीं की जा सकती, उसका विकास तो भीतर से होना चाहिए। गाँधी जी का मानना था कि स्त्री के सतीत्व की रक्षा के लिए पुरुषों की आन्तरिक शुद्धता आवश्यक है, न कि स्त्रियों का पर्दा करना।

आज पर्दा–प्रथा जिस स्वरूप में हैं, वर्तमान में उसका समर्थन करना असंभव है। गांधी जी के शब्दों में पर्दा कोई बाह्य वस्तु नहीं है, वह एक आंतरिक वस्तु है। बाह्य पर्दा करने वाली कितनी स्त्रियाँ निर्लज्ज पाई जाती हैं। जो बाह्य रूप से पर्दा नहीं करतीं परन्तु जिसने आंतरिक लज्जा नहीं छोड़ी, वह स्त्री पूजनीय है। जड़ता के वशीभूत होकर हमें सभी प्राचीन कुप्रथाओं का समर्थन करने को तत्पर हो जाते हैं। हमारी यह जड़ता हमारी उन्नति को रोकती है। यही जड़ता स्वराज्य की दिशा में हमारी प्रगति में रूकावट डालती है।

जहाँ तक बाल–विधवाओं का सवाल है विधवा विवाह के संबंध में पेडापाडु में उनका दिया गया भाषण सत्यवती नामक विधवा को समर्पित था जिसने अपने आभूषणों का त्याग देश सेवा के लिए किया था। उन्होंने भाषण दिया कि आपका कर्त्तव्य है कि आप पर्दा प्रथा को तोड़ें और यदि कोई विधवा पुनर्विवाह करना चाहती है तो इस काम में उसके अभिभावकों की मदद करें। यदि एक नौजवान विधुर पुनर्विवाह कर सकता है तो फिर उसी उम्र की एक विधवा को यह अधिकार क्यों न मिले? स्वेच्छा से ग्रहण किया गया वैधव्य राष्ट्र की महान सम्पत्ति होती है, लेकिन जबरदस्ती अनजाने में थोपा गया वैधव्य एक कलंक है। हिन्दू समाज को ऐसी विधवाओं के लिए पुनर्विवाह के रास्ते खोल देना चाहिए। गांधी जी का मानना था कि यदि हमें हिन्दू समाज को बचाना है तो हमें जबरदस्ती के वैधव्य का यह जहर समाज से निकाल कर बाहर कर देना चाहिए। बाल–विवाह के सम्मान ही भ्रूण हत्या का मूल कारण दहेज–प्रथा है, जिसने समाज को कलंकित कर दिया है। लैंगिक समानता के द्वारा पुत्र–पुत्री

को बराबर अवसर मिलने चाहिए, जिससे दोनों का ही विकास समान रूप से हो सके। ''कं नयति इति कन्या।'' कं यानी ब्रह्मा, ब्रह्म की ओर ले जाने वाली कन्या। पुत्री के लिए इतना सुंदर शब्द हमने किसी भी भाषा में नहीं देखा है।

महिला उत्थान एवं सशक्तीकरण की दिशा में उन्होंने लगातार प्रयास किया। उन्होंने कहा कि स्त्री त्याग की मूर्ति होती है। जब वह कोई कार्य शुद्ध और सही भावना से करती है तो पहाड़ों को भी हिला देती हैं। हमने अपनी स्त्री शक्ति का सही उपयागे नहीं किया है, शायद हमने उनकी उपेक्षा की है लेकिन मुझे जरा भी शक नहीं कि भारत की स्त्रियाँ पुरुषों द्वारा छोड़ा हुआ कार्य पूरा न कर पाये, बल्कि पुरुषों से कहीं अधिक खुबसूरती के साथ पूरा करेगी। स्त्री व पुरुष की समानता के संबंध में भी उनके विचार स्पष्ट थे। उनके अनुसार स्त्रियों को भी समाज में उच्च और सम्माननीय स्थान देना चाहते हैं, तो हमें उनको जन्म से ही सभी अधिकार देने होंगे। आखिर अपने जन्मसिद्व अधिकार को प्राप्त करने में महिलाओं को इतना संघर्ष क्यों करना पड़ता है? नारी से जन्म लेने वाले पुरुष का दर्प से अपनी जननी को अबला करना और स्त्रियों के छीने हुए अधिकार बड़ी उदारता से उसे वापस देने का वायदा करना कितना दुखद और हास्यजनक हैं? गाँधी जी ने कहा था कि नारी को अबला कहना उसकी मानहानि करना है। यदि बल का अर्थ पशुबल है तो तो बेशक नारी पुरुष से कमजोर है क्योंकि उसमें पशुता कम है और यदि बल का अर्थ नैतिक है तो नारी पुरुष से अनन्त गुनी श्रेष्ठ है। उसके बिना पुरुष का अस्तित्व संभव नहीं है। अगर अहिंसा हमारे जीवन में धर्म है तो भविष्य नारी जाति के हाथ में है, क्योंकि हृदय को आकर्षित करने का गुण स्त्री से ज्यादा और किसमें हो सकता है। महिलाओं को पुरुषों की अपेक्षा शिक्षित करना ज्यादा आवश्यक है, क्योंकि नारी को शैशवकाल से ही बच्चों को शिक्षित करना होता है। राष्ट्र में समरसता और सामाजिक न्याय स्थापित करने के लिए नैतिक और मनावैज्ञानिक वातावरण बनाना जरूरी है। जो केवल महिलाओं की भागीदारी से ही सम्भव है। इस प्रकार अपने विचारों और कार्यों से गाँधी जी ने महिला सशक्तीकरण का अभूतपूर्ण कार्य किया। गाँधी जी मानना था कि महिलाओं को अपने सामाजिक उत्थान के लिये स्वयं सचेष्ट होना पड़ेगा। यह कार्य पुरुषों के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता। इसके लिये महिलाओं को स्वयं उत्तरदायित्व स्वीकार करना होगा। इस दिशा में यह ध्यान रखना होगा कि पुरुष आधिपत्य की बर्बर स्थितियों से मुक्त होने में वह अपनी स्त्रियोचित चरित्र के नैतिक वैशिष्ट को खो न दें।

महात्मा गांधी जी के विचारों की अभिव्यक्ति सुभद्राकुमारी चौहान की इन पंक्तियों से की जा सकती है–

हम हिंसा का भाव त्याग कर विजयी वीर अशोक बनें।
काम करेंगे वही कि जिसमें लोक–परालोक बने।

संदर्भ–सूची

1. झा, राकेश कुमार : गांधी चिन्तन में सर्वोदय, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 1995
2. प्रभु, आर0 के0 : समाज में स्त्री का स्थान, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1959
3. वोहरा, आशारानी, : महिलाएँ और स्वराज्य, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार 1988
4. गुप्त, विश्वप्रकाश : स्वतंत्रता संग्राम और महिलाएँ, नमन प्रकाशन मोहनी, दिल्ली, 1999
5. सम्पूर्ण गाँधी वाङ्मय, खण्ड–41 पृ. 90
6. हरिजन, 17 अक्टूबर 1929, पृ. 340
7. कुमारी, रिंकी : स्त्री के सामाजिक उत्थान में महात्मा गाँधी की प्रासंगिकता, मूल्य विमर्श

* * * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Education : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 430-433

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

स्नातक स्तर के छात्रों के आकांक्षा स्तर एवं सामाजिक आर्थिक स्थिति के संदर्भ में उनकी शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन

*डॉ. प्रदीप कुमार श्रीवास्तव**

शोध विधि : अनुसंधानकर्ता ने वर्तमान शोध कार्य को पूर्ण करने हेतु सर्वेक्षण (Normative survey) विधि का प्रयोग किया है। सर्वेक्षण प्रदत्तों के संगठन की प्रक्रिया है, जिसको तब प्रयोग किया जाता है जब अनुसंधान प्रारम्भिक रूप से कारण और प्रभाव सम्बन्ध से सम्बन्धित नहीं होता। वास्तव में किसी प्रातिक घटना की वर्तमान दशाओं की यथार्थ जानकारी प्राप्त करने हेतु "सर्वेक्षण विधि'' का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार यह वर्णन विश्लेषण, वर्गीकरण, संख्या और मूल्यांकन का कार्य करण है।

सामाजिक तथा शैक्षिक क्षेत्रों में सर्वेक्षण एक समस्या से सम्बन्धित आंकड़ों के संकलन का महत्वपूर्ण साधन व उपकरण है। शैक्षिक क्षेत्र में सर्वेक्षण विवरणात्मक अनुसंधान का एक वर्ण अंग रहा है।

सर्वेक्षण शोध प्रणाली किसी एक व्यवहारपरक विज्ञान अनुसंधान की अपनी विशिष्ट प्रणाली ही नही हैं, बल्कि विविध अनुसंधानों में इसका व्यापक रूप में उपयोग किया जाता है। विविध अनुसंधानों में व्यापक रूप में प्रयुक्त होने के कारण तथा अपने व्यापक स्वरूप के कारण व्यवहारपरक विज्ञानों में विविध प्रकार के शोध उपकरणों के : i esbl dkcMk egRo gS QsLVaj vkSj d,Vt~ (Festinger & Kotz) के अनुसार "सर्वेक्षण शोध किसी विशिष्ट अनुशासन पर अवलम्बित नहीं है। व्यवहारपरक विज्ञानों के सभी क्षेत्रों में विशेषज्ञों द्वारा उपयोग किया जा रहा है। क्षेत्र विशेष की आवश्कतानुसार इसका अनुकूलन कर लिया जाता है।''

व्यवहारपरक विज्ञानों में सर्वेक्षण शोध, सामाजिक, वैज्ञानिक अन्वेषण की एक शाखा है जो लघु या वृहत जनसंख्या या उससे चयन किये गये किसी प्रतिदर्श पर समाज वैज्ञानिक तथा मानोवैज्ञानिक चरों के पारस्परिक घटनाक्रम, वितरण तथा अन्तः सम्बन्धों का वैज्ञानिक अनुसंधान करता है।

वैज्ञानिक युग में अब स्थिति सर्वेक्षण व अन्य साधारण सर्वेक्षणों को अधिक महत्व दिया जाता। वर्तमान में सर्वेक्षण के द्वारा अध्ययन में प्रतिचयन प्रक्रिया को विशेष महत्व दिया जाता है। प्रक्रिया के अन्तर्गत अध्ययन के लिए सम्भाव्यता सिद्धान्त के आधार पर केवल एक समाविष्ट के प्रतिदर्श द्वारा ही एक सर्वेक्षण में एक सामाजिक अथवा शैक्षिक क्षेत्र सम्बन्धित एक समस्या अथवा स्थिति के विषय में ऐसे प्रतिनिधि आंकड़े सम्मिलित किये जा सकते हैं जो कि सम्बन्धित समष्टि के स्वरूप को लगभग पूर्ण रूपेण प्रतिबिम्बित करते है। ऐसे वैज्ञानिक प्रतिचयन पर आधारित सर्वेक्षण को ही प्रतिदर्श सर्वेक्षण कहते है तथा ऐसे वैज्ञानिक प्रतिदर्श पर आधारित अध्ययनों को ही सर्वेक्षण अनुसंधान कहा गया है।

करलिंगर के अनुसार–"सर्वेक्षण अनुसंधान, सामाजिक वैज्ञानिक अन्वेषण की वह शाखा है जिसके अन्तर्गत व्यापक तथा एक आकार वाली जनसंख्याओं का अध्ययन, उनमें से चयनित प्रतिदर्शों के आधार पर इस आशय से किया जाता है जिससे कि उनमें व्याप्त सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक चरों के घटनाक्रमों में वितरणों तथा पारस्परिक अन्तःसम्बन्धों का ज्ञान उपलब्ध हो सके।''

सर्वेक्षण विधि में निम्नलिखित तीन प्रकार की सूचनाएँ एकत्रित की जाती हैं–

(अ) वर्तमान स्थिति क्या है?

* *असिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विभाग, सुमित्रा महाविद्यालय, जौनपुर*

(ब) हम क्या चाहते है? (स) कैसे उन्हें पा सकते हैं?

सर्वेक्षण अनुसंधान की विशेषतायें

1. सर्वेक्षण विधि के अन्तर्गत एक समय में बहुत सारे व्यक्तियों के बारे में आंकड़े प्राप्त किये जाते हैं।
2. इसका सम्बन्ध व्यक्तियों की विशेषताओं से नहीं होता है।
3. इसके अन्तर्गत स्पष्ट परिभाषित समस्या पर कार्य किया जाता है।
4. इसके लिए विशिष्ट एवं कल्पनापूर्ण नियोजन आवश्यक होता है।
5. इसके निश्चित व विशिष्ट उद्देश्य होते हैं।
6. इसके आँकड़ों की व्यवस्था एवं विश्लेषण में सावधानी आवश्यक होती है।
7. इसके लिये निष्कर्षों की तार्किक एवं युक्तिपूर्ण प्रतिवेदन आवश्यक होते हैं।
8. सर्वेक्षण जटिलता में अधिक परिवर्तनशील होते हैं।
9. यह वैज्ञानिक सिद्धान्तों के संगठित ज्ञान को विकसित नहीं करता है।
10. यह स्थानीय समस्याओं के समाधान के बारे में उपयुक्त सूचनायें देता है।
11. यह ज्ञान में वृद्धि करता है क्योंकि जो कार्य किया जाय उसके लिए अपेक्षित प्रदत्त प्रदान किये जाते है।
12. यह भविष्य के विकास के क्रम में सूचना देता है।
13. यह वर्तमान नीतियों का निर्धारण करता है तथा वर्तमान समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करता है।

यह नवीन उपकरणों जिसके द्वारा शोध प्रक्रिया को पूरा करते हैं, के निर्माण में सहायता करता है।

न्यादर्श एवं चयन प्रक्रिया : अनुसंधानकर्ता ने पूर्वांचल विश्वविद्यालय के जौनपुर एवं वाराणसी शहर में स्थित महाविद्यालयों में अध्ययनरत बी.ए., बी.कॉम (अन्तिम वर्ष) के छात्रों को समाहित किया है, जिनकी संख्या 250 थी।

अनुसंधानकर्ता ने इन सभी छात्र–छात्राओं का प्रश्नावली द्वारा परीक्षण किया और इनके शैक्षिक सम्बन्धी आकड़ों को पूर्वांचल विश्वविद्यालय से एकत्रित किया। इनमें से मात्र 198 विद्यार्थी ऐसे थे जिन्होंने सभी परीक्षणों को ठीक प्रकार से भरा एवं पूर्ण प्रक्रिया अपनायी थी। अतः अनुसंधानकर्ता ने पूरे 198 छात्र–छात्राओं को न्यादर्श हेतु चुना।

उपकरण : वर्तमान अध्ययन में विभिन्न सूचनाएं एकत्रित करने हेतु निम्नलिखित उपकरण प्रयोग में लिये गये–

1. विद्यार्थियों से सामान्य सूचना एवं सामाजिक एवं आर्थिक स्तर की सूचना एकत्रित करने हेतु एम.एम. षर्मा द्वारा निर्मित प्रष्नावली का प्रयोग किया गया।

2. षैक्षिक एवं व्यावसायिक आकांक्षा की सूचना एकत्रित करने हेतु डॉ0 वी.पी. शर्मा एवं कु, अनुराधा गुप्ता द्वारा निर्मित "शैक्षिक आकांक्षा मापनी'' एवं व्यावसायिक आकांक्षा का आंकलन करने हेतु डॉ0 जे.एस. ग्रेवाल (रीजनल कॉलेज ऑफ ऐजुकेशन, भोपाल) का प्रयोग किया गया।

3. विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि हेतु पूर्वांचल विश्वविद्यालय से प्राप्त वार्षिक परीक्षाफल को आधार माना गया।

प्रश्नावली का वर्णन : प्रश्नावली के प्रयोग का औचित्य विद्यार्थियों के शैक्षिक आकांक्षाओं को जानने हेतू अत्यन्त महत्वपूर्ण है। प्रश्नावली को सारगर्भित रूप से दो भागों में विभाजित किया गया। यथा "अ" "ब'' है। प्रश्नावली के ''अ'' भाग में सामान्य जानकारी हेतु प्रश्न है जैसे विद्यार्थी के आयु, माता–पिता की शिक्षा, परिवार की आय परिवार का व्यवसाय, परिवार के सदस्यों की संख्या, विद्यार्थी का परिवार में स्थान, व्यक्तिगत रुचि, खाली समय में कार्य, शैक्षिक सुविधाएं, मनोरंजन सुविधाएँ, माता–पिता की विद्यार्थी हेतु व्यवसाय की इच्छा।

प्रश्नावली के ''ब'' भाग में शैक्षिक अवसरों का उल्लेख है। किशोरावस्था में प्रत्येक किशोर की व्यवसाय प्राप्त करने की प्रबल इच्छा होती है। व्यवसाय की प्राप्ति शैक्षिक योग्यता परनिर्भर करती है। हेरियट के अनुसार किशोरावस्था में शैक्षिक अवसरों की प्रधानता आवश्यक है। यदि किशोर में अनुरूपित बौद्धिक क्षमता हैं एवं उसके अनुरूप आर्थिक स्थिति है तो शैक्षिक अवसरों से सकारात्मक रूप से लाभान्वित हुआ जा सकता है।

प्रश्नावली के इस भाग के अन्तर्गत किशोरावस्था की लगभग सभी संभव शैक्षिक योजनाओं को समाहित किया गया है, जिससे शैक्षिक आकांक्षाओं के आधार पर विद्यार्थी अपनी भावी व्यावसायिक योजनाओं का चयन कर सके।

व्यावसायिक योजनाओं का विवेचन : प्रश्नावली के इस भाग मे विद्यार्थियों की व्यावसायिक आकांक्षाओं के स्तर को समाहित किया गया है। इनमें अनेकों संभावित व्यवसायों को सूचीबद्ध किया गया हैं एवं विद्यार्थियों से इनमें से व्यवसाय चुनने की अपेक्षा की गई है। व्यवसाय सम्बन्धित प्रश्नों का उद्देश्य विद्यार्थियों को विभिन्न व्यवसायों से परिचित कराना एवं इन व्यसायों में से व्यसाय चयन हेतु प्रेरित करना है।

आत्म मूल्यांकन का विवेचन : आत्म मूल्यांकन करने की प्रक्रिया अत्यन्त महत्वपूर्ण है। आत्म मूल्यांकन में व्यक्ति अन्यों से अपनी स्वतः तुलना करता है एवं सम्पर्क में आये व्यक्तियों से अनेकों सूचनाएं एकत्रित करके अपने व्यवहार में परिवर्तन करने का प्रयास करता है। साधारणतः इस प्रक्रिया द्वारा एक व्यक्ति अन्य व्यक्तियों अथवा साथियों में विशेष व्यवहार देखकर उसे व्यवहारिक रूप में प्राप्त करने की आकांक्षा करता है।

वर्तमान अध्ययन में शैक्षिक योजनाओं से सम्बन्धित सात आधारों को समाविष्ट किया गया है :

1. उपलब्धि प्रेरणा
2. उपलब्धि योग्यता
3. उपलब्धि सम्पन्ता
4. आर्थिक प्रेरणा
5. आर्थिक सम्पन्नता
6. सामाजिक सम्पन्नता
7. सामाजिक सम्पन्नता (गैरशाखा)

शैक्षिक आकांक्षा एवं व्यावसायिक आकांक्षा : शैक्षिक एवं व्यावसायिक आकांक्षा के लिए निर्मित मापनी को प्रयोग किया गया। दोनों वर्गों के द्वारा छात्र–छात्राओं की शैक्षिक आकांक्षा एवं व्यावसायिक आकांक्षाओं के स्तर का अनुसंधानकर्ता ने वर्णन किया है।

शैक्षिक उपलब्धि : शैक्षिक उपलब्धि से तात्पर्य छात्र–छात्राओं द्वारा पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर में संचालित परीक्षाओं द्वारा प्राप्त परिणामों में है।

अपेक्षा–क्रम : विद्यार्थी का शैक्षिक आकांक्षा स्तर उसके माता–पिता के आकांक्षा स्तर द्वारा भी प्रभावित होता है। सामाजिक स्तर के अनुसार अपेक्षित आकांक्षा को क्रमबद्ध किया गया।

आकांक्षाओं का मूल्यांकन : भावी शैक्षिक योजनाओं के आधार पर छात्रों से कहा गया कि वे सामाजिक स्थिति के अनुसार महत्वपूर्ण आकांक्षा को क्रमबद्ध रूप में लिखें।

सांख्यिकी तकनीकी : प्रस्तुत अनुसंधान में प्राप्त आंकड़ों के लिए सारणी, हिस्टोग्राम, आकृति, का उपयोग किया गया है। माध्य, माध्यिका और बहुलक, प्रमापी चालन गुणा का भाग पाया गया है। इनका उपयोग विश्लेषण के लिए भी किया गया है। विश्लेषणात्मक कार्य के लिए वृहत प्रदर्श सिद्धान्तों के आधार पर अधिकता तथा सार्थकता परीक्षण का उपयोग किया गया है।

कारक 'ई' वर्ग उपयोग भी सामन्जस्य स्तर को मापने के लिए किया गया है।

अनुसंधान की प्रक्रिया : वर्तमान अनुसंधान प्रयोजना में अनुसंधानकर्ता ने जो उपकरण प्रयोग किये उनका प्रयोग किये उनका वर्णन निम्न प्रकार है–

प्रश्नावली : प्रश्नावली को प्रशासित करना कठिन कार्य है। यह अधिक समय लेता है। अतः अनुसंधानकर्ता ने इसके लिए क्षेत्रीय केन्द्र, कोटा के अधीन सम्पर्क शिविर के मुख्य समन्वयक एवं प्रवक्ताओं से सम्पर्क स्थापित किया।

विद्यार्थियों को अलग–अलग बैठाने के लिए उचित व्यवस्था की गई, जिससे प्रत्येक विद्यार्थी अपनी प्रश्नावली को भर सके और एक दूसरे के सम्पर्क में नही आ सके एवं प्रश्नावली को स्वविवेक से भर सके।

सभी विद्यार्थियों को विधिवत बैठाने के तुरन्त बाद लेखन सामाग्री को वितरित किया गया और इसके उपरान्त प्रश्नावली का अर्थ समझाकर उन्हें प्रश्नावली का वितरण किया गया। सबसे पहले सामान्य सूचना प्रश्नावली "अ"

को भरवाया गया, जिसकी प्रति परिशिष्ट में संलग्न है। भाग ''अ'' के बाद विद्यार्थियों से भाग ''ब'' को भरवाया गया जिसमें विद्यार्थियों की सामाजिक आर्थिक स्थिति की सूचनाएँ प्राप्त हो सके।

शैक्षिक आकांक्षा मापनी : प्रयुक्त मापनी परिशिष्ट "अ" डी में दी गयी है. इस शैक्षिक आकांक्षा मापनी को डॉ.वी.पी. शर्मा एवं कु. अनुराधा गुप्ता ने निर्मित किया। यह फार्म रहै, इसमें 8 सूचियां दी गयी हैं। प्रत्येक सूची में 10 मद दिये गये है। "बी" निर्माता ने महाविद्यालयी एवं विश्वविद्यालयी युवाओं के उपयोग के की गयी है। इसका आधार हालर एवं मिलन (1963) के तकनीकी विषययार्थी से यह अपेक्षा की गयी है कि वह उस डिग्री पर सही का निशान को वह प्राप्त करना चाहता है, अथवा 20 वर्ष प्राप्त करने का इच्छ बतया है। सभी सूचियों में अहमियत देने के लिए विद्यार्थियों से अपेक्षा की गयी। इस मापनी में अधिकतम 80, न्युनतम 08 अंक है तथा प्राप्तांकों को सार्थक निर्वाचन के लिए प्रभावी समंकों में परिवर्तित करने की सुविधा है।

विश्वसनीयता (Reliability) : इस मापनी की विश्वसनीयता को स्थायित्व गुणांक द्वारा ज्ञात किया गया है। इसमें परीक्षण, पुनः परीक्षण विधि द्वारा गुणांक आर = 0.798 प्राप्त किया गया है। आन्तरिक इन्टरकन्टेसी को स्पीट हाफ तकनीकी के द्वारा एस.वी. सूत्र द्वारा 0.671 प्राप्त किया गया है।

वैधता (Ualidity) : शैक्षिक आकांक्षा की वैधता को शैक्षिक आकांक्षा उपलब्धि से मापा गया है। इसमें आर = 0.758 प्राप्त किया गया है। इसी प्रकार निर्णाय को (N = 15) के निर्णय से वैधता गुणांक 0.542 आया। महाविद्यालयी समग्र (N = 1050) के लिए पुरुष और महिला वर्गों के लिए उच्च शैक्षिक एवं निम्न शैक्षिक उपलब्धि के पुरुष छात्रों के लिए P1 = 20 और P99 = 4 प्राप्त हुए। जबकि छात्राओं के लिए ये शतमक क्रमशः 21 और 63 है। निम्न शैक्षिक उपलब्धि वाले छात्रों के लिए P1 और P99 क्रमशः 15 और 49 हैं तथा छात्राओं के लिए ये शतमक 14 और 33 प्राप्त हुए।

व्यावसायिक आकांक्षा मापनी : अनुसंधानों में उपयोग की गयी व्यावसायिक आकांक्षा मापनी परिशिष्ट ''बी'' में प्रयुक्त है। व्यावसायिक आकांक्षा मापनी डॉ.जे.एस. अग्रवाल ने निर्मित की है। इसमें व्यावसायों के आठ वर्ग दिये गये है। प्रत्येक वर्ग में दस अलग–अलग व्यवसाय दर्शाये गये है। मापनी के द्वारा प्रत्येक व्यवसाय से व्यक्ति को अपनी पसन्द के सर्वोत्तम व्यसाय का चयन करने की अपेक्षा की गई है। इस चयन के लिए कोई समय सीमा नहीं दी गई है। इसकी विश्वसनीयता के गुणांक 0.82 परीक्षण, पुनः परीक्षण द्वारा प्राप्त की गई हैं। अर्द्ध परीक्षण पद्धति द्वारा यह गुणांक के 0.58 प्राप्त किया गया है। इसकी वैधता के लिए हिला सकी व्यावसायिक आकांक्षा मापनी काम में लायी गई है। इसके लिए वैधता गुणांक .079 पाई गयी। इसी प्रकार डॉ. श्रीवास्तव व्यावसायिक मापनी की वैधता 0.84 प्राप्त की गई हैं। इसमें छात्र–छात्राओं के लिए अलग–अलग आयु स्तरों पर षतमक माध्य और प्रभावी विचलन प्राप्त किये गये है।

संदर्भ–सूची

1. L. Festinger and D. Rotz; Op. cit. 1953, p. 37.
2. Fred N. Rerlinger : Op. cit. 1964, p. 393.
3. Gupta; O.P., Relationship between Level of Aspiration and Achievement of Student Teachers of Meerut Region, Unpublished M.Ed. Dissertation, Agra University. 1967.
4. Patel; R.P., A Critical Study of Recreational, Socio-cultural, Intellectual and Occupational Interests of High School Puplis in Gujrat, Ph.D. Edu. M.S. University, 1967, p. 202-203.
5. Syed; M.A., Factors Influencing the Vocational Choice of the Educated; A Social Psychological Study of the Occupational Determinants on Indian Sample, Ph.D. Psy. A.M.U., 1967, p. 210.
6. Anand; C.L., A Study of Effect of Socio-Economic Environment and Medium of Instruction on the Mental Abilities and the Academic Achievement of Children in Mysore, Ph.D. Ed. Mys. U 1973, p. 341.

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Education : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 434-437

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

21वीं सदी में स्वामी दयानन्द सरस्वती के विचारों की प्रासंगिकता का एक अध्ययन

*धीरज कुमार सिंह**

महर्षि दयानन्द सरस्वती जैसे युग–परिवर्तनकारी महापुरुषों के आचार–विचार की प्रासंगिकता मात्र उनके अपने जीवन काल तक ही सीमित नहीं रहती अपितु वे कुछ ऐसे उदाहरण एवं विचार हमारे बीच छोड़ जाते हैं जो उनके जाने के बाद भी बने रहते हैं।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने सबसे अधिक बल बालक के संस्कार पर देते हैं। संस्कार का अर्थ, अच्छी आदतों, नियमों, अनुशासन, आदर्शों को अपनाना। स्वामी जी ने कहा है कि जो व्यक्ति विद्या कम भी जानता हो परन्तु उठने–बैठने, खाने–पीने दूसरों के साथ व्यवहार करने में कुशल हो, तो उसे शिक्षित कहा जा सकता है। इसी शिक्षा के द्वारा सभी लोग जब सदाचरण सीख लेंगे तो परिवार व समाज आदि आनन्दित रहेगा।

यदि शिक्षा बालक और नवयुवक को उनके पारिवारिक सामाजिक उत्तरदायित्वों, कर्त्तव्यों तथा सद्व्यवहार का प्रशिक्षण न दे सके तो वह विद्या निरर्थक है। ऐसी विद्या द्वारा समाज का विकास नहीं हो सकता। आज जब जाति–पांति, भेद–भाव कम हो रहे हैं तो स्वामी जी द्वारा बताये गये ऐसी विचार हमें एक नयी दिशा प्रदान कर सकेगा।

आज के समय में नवयुवक को शिक्षा बहुत प्रकार से ज्ञान देती है। लेकिन उनमें यह चेतना विकसित नहीं कर पाती कि कौन से कर्तव्य या कार्य करने योग्य है और कौन से नहीं। करने योग्य और न करने योग्य दोनों का ज्ञान व्यक्ति को तभी हो सकता है, जब उसे समाज के ऐसे पहलुओं से परिचित कराया जाय। यदि व्यक्ति में आत्मानुभूति, संवेदना तथा दूसरों के प्रति सकारात्मकता का विकास हो जाय तो वह गलत–सही का पहचान कर सकता है। स्वामी जी कहते हैं कि जिस व्यवहार से दूसरे की हानि हो वह अधर्म, और जिस व्यवहार से उपकार हो वह धर्म कहलाता है, जो पक्षपात रहित, न्याय, सत्य का ग्रहण, असत्य का सर्वथा परित्याग, उसी का नाम धर्म (कर्त्तव्य) और इसके विपरीत गुण जो हैं उसे अधर्म (अकर्त्तव्य) कहते हैं। महर्षि जी का यह विचार जितना 19वीं सदी में प्रासंगिक था वही आज 21वीं सदी में भी प्रासंगिक है।

स्वामी दयानन्द जी के अनुसार शिक्षा ऐसी हो जिसके अभ्यास से सुन्दर, सुशील, स्वभावयुक्त, सत्य भाषण, नियम पालन युक्त, पवित्र, परोपकारी तथा त्यागी और दानी व्यक्तित्व का विकास हो सके। किसी भी समाज को चरित्र और नैतिकता ये दो गुण ऊपर उठाते हैं, और इन्हीं दोनों के कारण समाज का पतन भी होता है। चरित्र किसी न किसी रूप में कर्त्तव्य का बोध कराता है, और नैतिकता सदाचरण की ओर ले जाती है। स्वामी जी इन्हीं दो गुणों पर ज्यादा बल देते हैं, इन्हीं दोनों गुणों की आज के युग में ज्यादा जरूरत है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य शिष्ट एवं सभ्य व्यक्ति का निर्माण करना है। स्वामी सत्यार्थ प्रकाश में लिखते हैं कि, ''शिक्षा वह है कि जिससे सभ्यता, धर्मात्मा, जितेन्द्रिय आदि का विकास हो और अज्ञानता छूटे।''

स्वामी जी की शिक्षा उद्देश्यपूर्ण थीं, ज्ञान के विकास का उद्देश्य, शारीरिक विकास का उद्देश्य, सामाजिक विकास का उद्देश्य आदि, स्वामी जी ने अपने शिक्षा में ज्ञान प्राप्ति पर सर्वाधिक महत्व दिया है। इसीलिए वे जीवन पर भ्रमण करते रहे और सच्चे ज्ञान प्राप्त करने में जो भी कठिनाइयाँ आयी हों उसकी परवाह न करते हुये ज्ञान

* *असिस्टेंट प्रोफेसर, बी.एड्. विभाग, डिग्री कॉलेज उपरदहा, प्रयागराज*

प्राप्त किया। आज के प्रतिस्पर्धात्मक युग में जहाँ किसी भी व्यक्ति के ज्ञान परीक्षण के विस्तृत मार्ग हैं वहाँ ज्ञान का होना आवश्यक है।

स्वामी जी शरीर के विकास पर एवं उसकी पवित्रता पर भी अधिक बल दिया। ''शरीर माध्यम् खलु धर्म साधनाय्'' सुश्रुत के इस विचार को स्वामी जी भी स्वीकार करते थे।'' इसमें न केवल मानसिक विकास पर ही बल दिया, बल्कि शारीरिक विकास पर भी बल दिया गया। इसलिये आज विद्यालयों में शारीरिक शिक्षा व्यवस्था बनाये रखने के लिये व्यायाम शिक्षक की नियुक्ति का प्रावधान किया गया है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी व्यक्ति के वैयक्तिक और सामाजिक विकास पर समान बल देते थे। आर्य समाज के 9वें नियम में कहा गया है–

''प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में संतुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।''

21वीं सदी के वर्तमान शिक्षा प्रणाली में भी स्वामी जी के द्वारा बताये गये उद्देश्यों का अक्षरशः पालन किया जा रहा है। शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य के महत्व को स्वीकार करते हुये शिक्षा आयोग 1964–66 के प्रतिवेदन की प्रारम्भिक पंक्तियों में कहा कि देश के भविष्य का निर्माण उसके कक्षा–कक्षों में हो रहा है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि स्वामी जी के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य वर्तमान शैक्षिक परिवेश में अत्यन्त ही प्रासंगिक हो चुकी हैं।

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी शिक्षा के अनिवार्यता पर बहुत जोर देते थे। उनके अनुसार समाज के सभी वर्ग के पास शिक्षा पहुंचनी चाहिये, सत्यार्थ प्रकाश के तृतीय समुल्लास में स्वामी जी कहते है, ''इसमें राज नियम और जाति नियम होना चाहिये कि पाँचवें अथवा आठवें वर्ष से आगे कोई अपने लड़के, लड़कियों को घर में न रख सके। पाठशाला में अवश्य भेज दें, जो न भेजें दण्डनीय है।''

रामरतन के शब्दों में–"In Swami ji; scheme of education the state provides free and compulsory education not merely to cover only the Primary stage, as is the case at present but it enjoined the state to provide it for all the 18 years."

महर्षि जी के अनिवार्य शिक्षा सम्बंधी विचार तत्कालीन समय में ही आवश्यक नहीं थे वरन् आज महर्षि के विचारों का ही परिणाम है कि भारत की आजादी के पूर्व से ही इस दिशा में प्रयास होने लगे थे। 19 मार्च, 1910 को केन्द्रिय सभा के समक्ष गोपाल कृष्ण गोखले ने प्राथमिक शिक्षा के संदर्भ में अपना प्रस्ताव रखा और कहा– यह सभा संस्तुति करती है कि समस्त राष्ट्र में प्रारम्भिक शिक्षा को निःशुल्क तथा अनिवार्य बनाने की दिशा में प्रयास प्रारम्भ किये जाय तथा सरकारी, गैर सरकारी अधिकारियों का एक संयुक्त आयोग इस सम्बंध में निश्चित प्रस्ताव तैयार करने के लिये शीघ्र नियुक्त किया जाये।''

आजादी के बाद स्वामी जी के विचार संविधान के अनुच्छेद–45 में स्पष्ट है कि संविधान लागू होने के 10 वर्ष के अन्दर राज्य अपने क्षेत्रों के सभी बालकों को 14 वर्ष की आयु होने तक निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रयास करेगा। लगभग 150 वर्ष पूर्व अनिवार्य शिक्षा के संदर्भ में दिये गये विचार आज भारत का संवैधानिक तथा नैतिक भाग बन गया है।

स्वामी जी बिना किसी भेदभाव के चाहे जाति के आधार पर हो या लिंग या सम्प्रदाय के आधार पर हो, सभी को समान शिक्षा की वकालत की थी। सत्यार्थ प्रकाश में शिक्षा का अवसर सभी व्यक्तियें को उपलब्ध कराने की आवश्यकता पर बल देते हुए कहा, ''पाठशालाओं से एक योजन अर्थात् चार कोस दूर ग्राम व नगर रहे। सबको समतुल्य वस्तु खान–पान, आसन दिये जाये, चाहे वह राजकुमार व राजकुमारी हों, सबको तपस्वी होना चाहिए।''

स्वामी जी कहते हैं कि सभी को वेद पढ़ने का अधिकार है चाहे स्त्री हो या शूद्र। सबको शिक्षा का समान अवसर उपलब्ध कराने का महर्षि जी का विचार आज के समय में उतना ही उपयोगी है जितना महर्षि के समय में। महर्षि के विचार 21वीं सदी में भी उपयोगिता परिलक्षित हो ही रही है और इसको क्रियान्वयन के लिये भारतीय संविधान भी कटिबद्ध है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 29 से परिलक्षित होता है कि जैसे वे महर्षि जी के ही विचार हों। राज्य को अपने संविधान में अनुच्छेद 46 का प्रावधान करना पड़ा था, जो स्वामी जी के द्वारा डेढ़ सौ साल पहले ही दिया गया था।

संविधान के अनुच्छेद 46 के अन्तर्गत कहा गया है कि राज्य कमजोर वर्गों विशेषकर अनुसूचित जाति व जनजाति को शैक्षिक तथा आर्थिक उन्नति को विशेष रूप से प्रोत्साहित करेगा। आज जिस समतामूलक समाज की परिकल्पना की जाती है वह बिना शिक्षा का समान अवसर उपलब्ध कराये प्राप्त होना संभव नहीं है। स्वामी जी के विचारों व प्रयासों का ही परिणाम है कि शूद्रों व दलितो को शिक्षा प्राप्ति के समान अवसर उपलब्ध हैं।

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने नारी शिक्षा की महती आवश्यकता बताकर उन्हें सजग एवं विवेकी बनाने का बीड़ा उठाया। किसी भी समाज या राष्ट्र के विकास में नारी को आधारशिला के रूप में यदि कहा जाए ते अत्युक्ति न होगी, परिवार ही बालक की प्राथमिक पाठशाला है, इस कथन के पूर्णरूप से उचित मानते हुए कहा जा सकता है, कि जिस देश की नारी सुशिक्षित, बीरांगना तथा स्वतंत्र विचारों की होगी, उस देश के नगरिक भी सुशिक्षित, वीर एवं स्वतंत्र विचार वाले होंगे। जो शिक्षा बच्चों के माता से प्राप्त होती है तथा संस्कार का स्थयित्व किसी अन्य व्यक्ति द्वार देने में नहीं जा सकता।

वैदिक धर्म के पोषक स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने नारी शिक्षा की आवाज उस समय उठायी जब देश में नारी शिक्षा का विरोध हो रहा था। स्त्री शिक्षा और समाज में नारियों का सम्मान का स्वामी जी प्रबल रूप से प्रतिपादित किये, जो आज के 21वीं सदी में प्रासंगिक है।

आधुनिक संदर्भ में स्वामी दयानन्द सरस्वती के विचारों की सार्थकता को विश्लेषित करते हुये हम पाते हैं कि डेढ़ सौ वर्ष बाद भी स्त्री शिक्षा पर स्वामी जी के विचार आज भी प्रासंगिक हैं।

शिक्षा के प्रसार होने के साथ समाज में फैली कुरीतियाँ स्वतः समाप्त होती जा रही हैं। चाहे वह सती प्रथा या बाल विवाह ही क्यों न हो। यह समस्त जागृति स्वामी जी के विचारों व प्रयासों का प्रतिफल है। स्वामी दयानन्द सरस्वती जी नैतिक शिक्षा को शिक्षा का अनिवार्य तत्व मानते हैं। शिक्षा के संबंध में कहा गया है कि यह जन्म से प्रारम्भ होकर मृत्यु तक चलती है। चूँकि स्वामी जी की शिक्षा योजना का आवश्यक भाग नैतिक शिक्षा था। इसलिये उन्होंने कहा प्रारम्भिक शिक्षा से ही नैतिक पाठ का अध्ययन–अध्यापन कराना चाहिये, इसके लिये आचार्य से ज्यादा माता–पिता की शिक्षा पर बल दिया गया।

स्वामी जी के नैतिक शिक्षा सम्बन्धी विचारों का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि वर्तमान शैक्षिक परिवेश में नैतिक शिक्षा के बिना पूरी शिक्षा ही अधूरी है। वह शिक्षा केवल कुछ पुस्तकें पढ़ा देने से प्राप्त नहीं हो सकती है। स्वामी जी ने नैतिक शिक्षा के संदर्भ में एक ऐसी विचारधारा दी जिसकी आवश्यकता आज शिक्षा के साथ–साथ राष्ट्र के निर्माण में भी अनुभव की जा रही है। आज राष्ट्र के नव–निर्माण की आवश्यकता है, जो कि नैतिक एवं चरित्र निर्माण द्वारा ही सम्भव है।

आज हमारे देश में बेरोजगारी की समस्या बहुत है, जिसका समाधान काफी हद तक विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी द्वारा हल किया जा सकता है। इसे महर्षि ने अपने समय में ही अनुभव कर लिया था। देश में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विकास के लिये विद्यार्थी अध्ययन के लिये विदेश जा रहे हैं, नयी तकनीकी का अध्ययन करके राष्ट्र निर्माण में अपना सहयोग कर रहे हैं, स्वामी जी इसका समर्थन करते हैं और कहते हैं कि देश व समाज के निर्माण के लिये विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का अध्ययन, विदेशों को जाकर छात्र अध्ययन कर सकता है और उन्होंने विदेश गमन की अनुमति भी देते हैं जो उस समय विदेश गमन को तुच्छ समझा जाता था।

उनके पत्र से स्पष्ट होता है कि– ''विद्यार्थी कला कौशल सीखने जर्मनी में भेजे जावे या वहाँ से अध्यापक यहाँ बुलाये जावें।''

21वीं सदी में भारतीय शिक्षा की परिस्थितियों में स्वामी दयानन्द सरस्वती के विचारों की प्रासंगिकता है इस तथ्य से भी प्रमाणित हो जाती है कि जिस आधुनिक विज्ञान का अध्ययन वर्तमान में प्रासंगिक है उसकी विस्तृत विवेचना स्वामी जी पूर्व में कर चुके हैं।

स्वामी जी भारतीय संस्कृति के पोषक एवं उपासक थे, हमारी संस्कृतियां समृद्धशाली हैं। नैतिक एवं चारित्रिक रूप से उन्नत है, जबकि पाश्चात्य संस्कृति में चरित्र और नैतिकता का अभाव है। इतिहास साक्षी है कि जिन देशों ने अपनी संस्कृति को महत्व नहीं दिया वे देश दुनिया के मानचित्र से समाप्त हो गये। भारत भी इसी ओर उन्मुख हैं, आज सूचना क्रान्ति के युग में हमें अपनी संस्कृति को यदि अक्षुण्य बनाये रखना है तो स्वामी दयानन्द सरस्वती

के विचारों का अनुसरण करने की आवश्यकता है, उनके विचार आज भी प्रासंगिक है और इसी के द्वारा भारतीय समाज का कल्याण किया जा सकता है। महर्षि स्वामी जी माता को प्रथम गुरु मानते थे; सत्यार्थ प्रकाश में स्वामी जी द्वारा वर्णित है– ''बालको को माता सदा उत्तम शिक्षा करे जिससे संतान सभ्य हो और किसी अंग से कुचेष्टा न करे न परखे'', यह प्रमाणित करता है कि माता का स्थान बालक के शिक्षण योजना में कितना अधिक महत्वपूर्ण है। डॉ. सरस्वती एस. पण्डित स्वामी जी के विचार का समर्थन करते हुए कहा है, ''माताओं को बाल शिक्षण के जीवन सम्बंधी परम आवश्यक पहलुओं पर स्वामी जी ने उन विचारों को महत्व दिया है जिन्हें आधुनिक मानस शास्त्रियों ने उच्चतम समझा है।''

बाल्यकाल बहुत कोमल हृदय व मस्तिष्क का होता है उन पर बहुत जल्दी कुप्रभाव पड़ता है, ये बात स्वामी जी जानते थे इसलिये उन्होंने माताओं के ऐसी शिक्षा देने का निर्देश दिया है जिसमें बालक कामवासना से दूर रहें और ये बात आज के चकाचौंध संसार में स्वामी जी का विचार अत्यन्त प्रासंगिक हैं।

स्वामी दयानन्द सरस्वती का भारतीय समाज के लिये किये गये योगदान का जितना भी सराहना की जाय उतना ही कम है, स्वामी जी के योगदान, भारतवर्ष में यदि देखा जाय तो वह सबसे अधिक समाज सुधार में है। उन्होंने तत्कालीन समय में प्रचलित वर्ण व्यवस्था का विरोध किया क्योंकि उसका आधार जन्म था। अक्टूबर 1875 में महर्षि ने सतारा में उपदेश देते हुये कहा–''वर्ण–भेद गुण पर निर्भर है न कि जन्म पर।''

भारतीय समाज में व्याप्त कुरीतियों ने भारत में सामाजिक विघटन की स्थिति उत्पन्न कर दी थी। सामाजिक असहिष्णुता व्याप्त हो जाती लेकिन आज स्वामी जैसा कोई नायक नहीं है जो समाज में व्याप्त भेदभाव, कुरीतियों को दबाकर एक सूत्र में बांध सके। स्वामी दयानन्द सरस्वती जी समाजिक बुराइयों को दूर करने के लिये कठोर कानून बनाने का समर्थन नहीं किया। उनका तो यह विश्वास था कि जब तक व्यापक हिन्दू समाज के सामाजिक, पारिवारिक और नैतिक जीवन में सुधार नहीं होगा, जब तक वे अपनी रूढ़ियों, हानिकारक प्रथाओं तथा जीर्ण–शीर्ण रीतिरिवाजों से छुटकारा नहीं पा लेंगे तब तक भारत की स्वाधीनता भी आकाश पुष्प के तुल्य ही रहेगी।

डॉ. भवानी लाल ने अपनी पुस्तक 'नव जागरण के पुरोधा दयानन्द सरस्वती में लिखे हैं–'एक और आश्चर्य की बात है कि हमारे इतिहासकारों ने यह धारणा प्रचलित कर रखी है कि भारत में राष्ट्रवाद की भावना, लोकसत्ता तथा प्रजातंत्र की धारणा उसी समय से फैलनी लगी जबसे देशवासी यूरोपीय राजनैतिक चिन्तन के संदर्भ में आये। प्रकारान्तर में यह कहा जा रहा है कि रूसे और बाल्टेयर, बेन्थम और मिल से अनुप्राणित होकर देश में राष्ट्रीय चेतना का स्फुरण हुआ। परन्तु ऐसा कहने वाले इस तथ्य को भूल जाते हैं कि दयानन्द ने अपने ग्रन्थों में राष्ट्रवाद, लोकसत्ता तथा प्रजातंत्र पर आधारित राज्य शासन की परिकल्पना की है, उसे किसी पाश्चातय चिन्तक या दार्शनिक से कोई प्रेरणा नहीं मिली थी।''

महर्षि दयानन्द के यह विचार जितने 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध और बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में थे आज 21वीं शताब्दी के सूचना तकनीकी क्रान्ति के युग में भी तथा भूमण्डलीयकरण की स्थिति में भी प्रासंगिक हैं।

संदर्भ–सूची

1. अरविन्द, द आर्य, पांडिचेरी (1913–14) दयानन्द एण्ड दे वेद, स्टार प्रेस, इलाहाबाद
2. अन्थोनी, पैरल, वर्ल्ड पर्सपेक्टिव ऑन स्वामी दयानन्द कन्सेप्ट, पब्लिसिंग कम्पनी, वाली नगर नई दिल्ली।
3. अर्ल ऑफ रोनाल्डो, द हार्ट ऑफ आर्यावर्त– वर्ल्ड पर्सपेक्टिव आन स्वामी दयानन्द
4. अवस्थी, एस., 'आधुनिक परिप्रेक्ष्य में वैदिक शिक्षा' पी–एच0डी0 शोध प्रबन्ध इन ऐजुकेशन सम्पूर्णानन्द संस्कृत वि0वि0 1984.

5.. आचार्य, श्रीकान्त, युग निर्माता स्वामी दयानन्द; दिली नाग प्रकाशन, 1991

6. आशा कुमारी, 'एजूकेशनल आईडियाज ऑफ दयानन्द सरस्वती' अप्रकाशित एम0एड0 शोध प्रबन्ध पटना वि0वि0 पटना।
7. आलोक, डॉ0 देवव्रत महर्षि दयानन्द सरस्वती अपना जीवन चरित्र, आदित्य प्रकाशन नई दिल्ली।
8. आचार्य दयानन्द सिद्धान्त प्रकाश, द आर्य समाज, इट्स कल्ट एण्ड क्रीड' सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली 1967.
9. चौबे, सरयूप्रसाद, भारतीय एवं पाश्चात्य शिक्षाशास्त्री; वाराणसी, रामप्रसाद एण्ड सन्स, 1967
10. चरनजीत, 'लाइट ऑफ ट्रुथ 1927' आर्य समाज मद्रास 1932

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Education : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 438-439

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

शिक्षा आर्थिक एवं सामाजिक विकास की प्रथम कड़ी है

*डॉ. राम कृष्ण शर्मा**

शिक्षा आर्थिक तथा सामाजिक विकास की प्रतम कड़ी है। जिसका मानव जीवन में सर्वोपरि स्थान है। शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य सामाजिक परिवर्तन लाना है। गुन्नार मिर्डल (1968) ने एशिया के देशों विशेषतया विकासशील देशों पर अपने अध्ययन के आधार पर बताया कि इन देशों में शिक्षा आधुनिकीकरण लाने के लिए है। अरनाल्ड टायनबी (1934) ने बताया है कि प्रत्येक सभ्यता एक चुनौती देती है जो दूसरी चुनौती को प्रत्युत्तर रूप में पैदा करती है और चुनौतियों का यह क्रम सामाजिक परिवर्तन लाता है। एक पीढ़ी ने जो कुछ भी सीखा है वह दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित करती है। पीढ़ियों के मध्य यह आदान-प्रदान शिक्षा के माध्यम से होता है। शिक्षा एक ऐसा साधान है जो परिवार को परिवर्तित करता है, जाति व्यवस्था के सोपान को बिगाड़ता है तथा प्रदत्त एवं अर्जित परिस्थिति के अन्तर को कमजोर कर देता है। शिक्षा ही यह जागृति उत्पन्न करती है, कि प्रदत्त परिस्थिति तो केवल जैविकीय है।

एम. एस. गोरे (1994) का मानना है कि प्रौद्योगिकी विशेषता अर्जित करना, उच्च प्रशासनिक पद ग्रहण करना, नये धन्धे सीखना और श्रेष्ठता प्राप्त करना केवल शिक्षा से ही सम्भव है। के. अहमद (1974) का मत है कि ''औपचारिक शिक्षा लोगों की अभिरुचियों और मूल्यों में ज्ञान के परिवर्तन के माध्यम से वैचारिक परिवर्तन करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है।''

ईश्वर भक्ति, धार्मिकता की भावना, चरित्र निर्माण, व्यक्तित्व का विकास, सामाजिक कर्तव्यों का पालन, सामाजिक कुशलता की उन्नति एवं राष्ट्रीय संस्कृति को संरक्षण और प्रसार जैसे शिक्षा के चरम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए हमारे देश में शिक्षा का उदय वैदिक काल से ही हो गया था। उस समय शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य मनुष्य का आध्यात्मिक विकास करना था। वैदिक काल में शिक्षा को प्रकाश और शक्ति का स्रोत समझा जाता था। इसके द्वारा मनुष्य अपनी बुद्धि प्रखर कर जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में ठीक मार्ग का अनुसरण कर सकता था। शिक्षा के द्वारा प्रत्येक व्यक्ति अपनी शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक शक्तियों का विकास कर इस संसार में और परलोक में जीवन के वास्तविक सुख को प्राप्त कर सकता था। शिक्षा का अभिप्राय उस प्रकाश से था जिसमें मनुष्य का सर्वांगीण विकास हो सके और वह उच्च जीवन व्यतीत करता हुआ मोक्ष की प्राप्ति कर सके। प्रारम्भ में गुरुकुल पर्वतों के निकट, नदियों के संगमस्थल एवं वनों में स्थित होते थे, किन्तु बाद में नगरों एवं ग्रामों में भी विकसित होने लगे। यजुर्वेद में उल्लिखित है कि पर्वतों के निकट एवं नदियों के संगमस्थल पर गुरुओं की प्रज्ञा एवं क्रियाकुशलता द्वारा प्रज्ञा व क्रियाकुशलता से युक्त मेधावी विद्वान तैयार होते हैं। वैदिक काल में शिक्षा की व्यवस्था करना राज्य का उत्तरदायित्व नहीं था, परिणामतः उस पर राज्य का कोी नियन्त्रण नहीं था। शिक्षा का सम्पूर्ण कार्य व्यक्ति विशेष के ही हाथों में होता था। गुरुकुल में प्रबन्धन का कार्य गुरु स्वयं करता था। पाठ्यक्रम का निर्धारण भी वह स्वयं करता था। विद्यार्थी शिक्षक के घर पर ठहर कर ही अध्ययन किया करते थे। वे अपने गुरु के परिवार के सदस्य की ही तरह रहते थे। इस प्रकार शैक्षणिक संस्थाएँ अपने स्वरूप में आवासीय हुआ करती थीं।

कालान्तर में तीर्थस्थानों और बौद्ध केन्द्रों के समीप उच्च शिक्षा केन्द्रों की स्थापना की गई। छठी शताब्दी ईसा पूर्व में तक्षशिला उच्च शिक्षा का मुख्य केन्द्र था। पाणिनि, कौटिल्य, चरक यहाँ के स्नातक थे। शिक्षा के केन्द्र के रूप में ख्यातिप्राप्त नालन्दा विश्वविद्यालय की प्रबन्ध व्यवस्था आधुनिकतम थी। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने इसकी अध्यापन प्रणाली, पुस्तकालय आदि का विस्तृत वर्णन किया है। यहाँ 10,000 विद्यार्थी और 1,510 आचार्य अध्ययन-अध्यापन कार्य में लगे थे। देश के विभिन्न स्थानों पर, जैसे–वल्लभी, कांची, उज्जयिनी, विक्रमशिला उच्च शिक्षा के उल्लेखनीय केन्द्र थे। काशी और प्रयाग शैक्षिक दृष्टि से भी भारत के महत्वपूर्ण नगर थे। बौद्ध विहारों को विश्वविद्यालयों में बदलते देखकर बहुत से हिन्दू मंदिरों ने भी इस समय तक औपचारिक

* *असिस्टेंट प्रोफेसर, बी.एड्. विभाग, डिग्री कॉलेज उपरदहा, प्रयागराज*

विद्यालयों का रूप ग्रहण कर लिया था। "प्राचीन भारत में राजा तथा उदार दानदाता किसी ग्राम में विद्वान ब्राह्मणों को बसाकर निःशुल्क अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था किया करते थे। इनका खर्च पूरा करने हेतु गाँव का राजस्व लगा दिया जाता था। ऐसे गाँवों को अग्रहर कहते थे। ये उच्च शिक्षा के केन्द्र हो जाते थे क्योंकि यहाँ रहने वाले विद्वान ब्राह्मण अपना सारा समय निश्चिन्त होकर स्वाध्याय व अध्यापन में लगा पाते थे। यहाँ शिक्षा निःशुल्क दी जाती थी।

11वीं शताब्दी में भारत में मुसलमानों के आगमन के फलस्वरूप शिक्षा के पाठ्यक्रम और माध्यम में परिवर्तन हुआ। मुस्लिम शासकों ने इस्लामी संस्कृति एवं इस्लामी शिक्षा का प्रचार किया जिससे संस्कृत पाठशालाओं के साथ-साथ मदरसों की भी स्थापना हुई जहाँ कुरान की शिक्षा के साथ-साथ गणित, फारसी, दर्शन आदि की शिक्षा दी जाती थी। इस काल में वैदिक शिक्षा प्रणाली और मुस्लिम शिक्षा प्रणाली दोनों ही समानान्तर रूप से चलीं।

जहाँ तक आधुनिक भारत में आधुनिक प्रकार की शिक्षा के विकास का प्रश्न है, इसे सामान्यतः स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व तथा स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद अर्थात् दो भागों में विभाजित करके विमोचित किया जाता है। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व अंग्रेजों ने भारत में अंग्रेजी प्रणाली का सूत्रपात करके निःसन्देह भारतीय शिक्षा को एक नई दिशा प्रदान की। निष्पक्ष रूप से विचार करने पर इस तथ्य की भी पुष्टि होती है कि ब्रिटिश काल में ही भारत में आधुनिक शिक्षा प्रणाली का प्रादुर्भाव हुआ।

परन्तु जहाँ तक भारत में आधुनिक शिक्षा प्रणाली की शुरुआत की बात है, इसकी शुरुआत बहुत पहले 1511 ई. में पुर्तगाली इसाई मिशनरियों ने कर दी थी। इन्होंने 1575 ई. में गोआ में जैसुएट कालेज की स्थापना की और उसके बाद 1577 में बम्बई के निकट बांद्रा में सेंट एनी कालेज की स्थापना की। इन कालेजों में लैटिन भाषा, व्याकरण, तर्कशास्त्र और संगीत की शिक्षा की व्यवस्था की गई और साथ ही साथ इसी धर्म की शिक्षा की व्यवस्था की गई। इसके बाद यहाँ 1613 ई. में अंग्रेज इसाई मिशनरियों का प्रवेश हुआ। उन्होंने यहाँ आधुनिक अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली की नींव को मजबूत किया। इनके साथ-साथ फ्रांसीस और डेनिस मिशनरियों ने भी इस कार्य को अपने-अपने स्तर पर किया। हाँ, इसको गति देने और इसमें विकास करने का कार्य अन्त में अंग्रेज इसाई मिशनरियों और ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने ही किया।

देश में स्कूली शिक्षा सहित उच्च शिक्षा, आधुनिक प्रकार के विश्वविद्यालयों की स्थापना, तकनीकी तथा व्यावसायिक शिक्षा के व्यवस्थिति रूप की आधुनिक संकल्पना ब्रिटिश शानकाल की ही देन है। यह कहना भी अतिशयोक्ति नहीं होगा कि ब्रिटिश शासनकाल में भारत में शैक्षिक विकास के लिए आधारभूत संरचना विकसित करने तथा आधुनिक प्रकार की शिक्षा प्रदान करने का तो प्रयास किया गया था, साथ ही साथ इसे अंग्रेजी रंग में रँगने का प्रयास भी किया गया।

* * * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Education : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 440-445

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

How High and Low Creative Learning Disabled Perform on Academic Anxiety.

Amit Kumar Yadav*

Abstract : *The basic purpose of this study was to explore academic anxiety of learning disabled adolescents on the basis of their creativity. The two groups of high and low creative learning disabled were formed by measuring their creativity with the help of Torrance Test of Creative Thinking and academic anxiety by Academic Anxiety Scale for Children by A. Sen Gupta. The high creative learning disabled group showed high level of academic anxiety while low creative L.D. were less academically anxietic. On the basis of the sex both L.D. boys and L.D. girls were not differ significantly on academic anxiety and creative functioning. The results of the analyses are presented in the forms of tables & interpreted appropriately.*

Key terms used- Academic Anxiety, Creativity, Learning Disability

---

The main aim of education is to provide equal opportunities for development of potentialities of individuals to contribute for the development of the nation. But having so many individual differences among the students of the normal class room, it is very difficult to attain the particular aim of education. Variety of problems occurs in classroom teaching but the most important of them is a variation in the learning capacity of the students. The behavioral analysis of school going population reveals that in a classroom many of children follow the class room instruction, understand the content taught comprehend well and retrieve whenever required. However there are some children in the same class, who look blank, unmotivated, uninterested, confused and dull because they do not follow the class instruction and failed to learn. There are variety of reason and difficulties for this learning failure such as intellectual handicapped (M.R), sensory handicap (visual or hearing handicap) and social environmental factors such as psychological & social area. However these categories do not exhaust the entire population of poor performers. There is still a group of child with relatively normal or average or more than average intelligence who is having one or other learning problems. Children, who fail to learn and differ from any of the existing categories exceptional, are called learning disabled children.

The complexity of the concept of creativity has been recognized by many in the field (*e.g.* Grown, 1972; Roweton, 1973; Torrance, 1974; Hébert et al., 2002; Kim, K. H., 2004.) and has been the source of 'apprehension and misgivings' especially in terms of its measurement correlates. There is considerable lack of agreement over the definition of the term creativity (Torda, 1970). Since the word, 'Creativity' has through usage become associated with many aspects of creative behaviour and mental functioning that range along a cognitive emotive continuum. The problem of definition is compounded by variant description of the energy source of creativity, each dependent on the several existing theoretical models

* ***Research Scholar, IASE, M.J.P. Rohilkhand University, Bareilly (U.P.)***

of human functioning. Each person who takes an interest in creativity naturally gets interested in a particular way; that is he or she enters the continuum at a particular point according to interest need obvious, lacunae, compulsion, or for some other reason. Decision to do particular pieces of research are thus subjected to the very conditions often being researched, the interactive relationship between he cognitive and emotive. This unholy welter has prompted Torrance to warn "that creativity studies might not be popular for a while yet, but I do not believe, we should be deterred. The more that is said and written about creativity, the more attention will have to be paid to it. We are going to make mistakes in identifying it and interpreting it, but our whole human existence is based on mistakes and their correction. The fact that so many people have so many ideas about creativity means we have a richer field to plow, and that is a cause of rejoining (Khatena, 1976).

Academic Anxiety : Anxiety is the most common mental disorder affecting millions of adolescents around the world. It is one of the devastating consequences of psychiatric disorders during adolescence (Fiori, Wanner, Jomphe, Croteau, Vitaro, Tremblay, Bureau, Turecki, 2010). According to Khouzam (2009), anxiety disorders are among the most common mental, emotional, and behavioral problems of adolescence in many countries. The concept of anxiety is characterized most commonly as a diffused, unpleasant, vague sense of apprehension, often accompanied. By autonomic symptoms such as headache, perspiration, palpitation, tightness of the chest, mild stomach discomfort, and restlessness, indicated by an inability to sit or stand still for a long time (Sadock, 2007). Over the years, researchers have categorized anxiety into many forms. Sigmund Freud proposed traumatic and signal anxieties whereas Asadi Sadeghi,Basirani, Asadi Bidmeshki, Panahi Mirshekar, Amirshahi and Salehin, (2010) studied generalized anxiety disorder (GAD).

Historically speaking, the twentieth century was called the "anxiety century" because of the prevalent wars, inflation, population increase, unemployment, immigration, and the destruction of families (Passer, Smith, Holt, Bremner, Sutherland and Vliek, (2009). Developmentally, adolescents consistently experience changes between the ages of 11 and 18 (Hofstra, Van der Ende and Verhulst, (2011). Moreover, the process of growing up is complicated and challenging because this is the period when adolescents are faced with many expectations, responsibilities, influences, uncertainties, and lack of experience (Healy, 2009). In a study on parent characters and anxiety in adolescents, Moore (2008) concluded that adolescents are prone to some kinds of anxiety such as tension and worries in a family with a lot of stressors. Passer et al. (2009) found that most adolescents suffer some kind of anxiety when their parents also have the symptoms. The study also suggest a pathway to the modern education system who will safe our students with academic stress, academic anxiety, miss behave by diverging their emotional strength to words the creative behaviour.

Objectives of the Study

To form two groups of high and low creative learning disabled students.

To compare two groups of high and low creative learning disabled students on academic

To see sex differences between two groups in relation to creativity and academic anxiety.

Hypotheses of the Study

There is no significant difference between high & low creative learning disabled students in relations to academic anxiety.

There is no significant difference between learning disabled boys and learning disabled girls in relation to creativity.

There is no significant difference between learning disabled boys and learning disabled girls in relation to their academic anxiety.

Population and Sample : The population of this study comprises the students of high school Classes, studying in various government aided colleges of Bareilly District. The sample of the present study was selected from the students of IX classes who were studying in different government aided college of Bareilly district. Out of these 2158 students learning disabled students were identified with the help of teacher observation, previous class achievement scores and behavioral check list for screening learning disabled. A list of 102 suspected L.D. students were finalized with the help of Diagnostic Test of Learning Disability. Finally 94 students were identified as L.D. These 94 students were administered on Academic Anxiety Scale and Torrance Test of Creative Thinking.

Psychometric Instruments Employed

Behaviour Check List for Screening the Learning Disabled (B.C.S.L.D) by Swaroop and Mehta.

Group Mental Ability Test (72) by Dr. Jalota.

Torrance Test of Creative Thinking by E. Paul Torrance and Translated in to Hindi by Prof. Girijesh Kumar.

Diagnostic Test of Learning Disability by Dr. Smiriti Swaroop

Academic Anxiety Scale for Children by A. Sen Gupta

The objectives of the present study were, to compare high and low creative learning disabled students on academic anxiety. Sex differences on creativity and academic anxiety have also been calculated.

Results and Discussion-

High & Low Creative Learning Disabled on Academic Anxiety : To test the hypothesis that "there is no significant difference between high and low creative learning disabled students in relation to academic anxiety", the statistical values were calculated and are shown in table-1

Table – 1

Significance of mean difference of High and Low Creative Learning Disabled on Academic Anxiety

Variable	High creative L.D. (N=49)			Low creative L.D. (N=45)			t-ratio
	Mean	S.D.	S.E.	Mean	S.D.	S.E.	
Academic Anxiety	14.22	1.735	0.257	9.22	1.754	0.251	9.823*

*Significant at .01 level

From Table 4.02 the result points out that the mean scores on academic anxiety of high & low creative learning disabled are 14.22 (1.735) and 9.22 (1.754) respectively. The mean values on academic anxiety show that high creative learning disabled scored higher mean value i.e.14.22 (1.735) in comparison to their counterpart .'t' ratio 9.823 is also significant at .01 level. It shows that high creative learning disabled students are more academically anxietic than low creative learning disabled.

The findings of the present study is in tuned with Jason and Hannah (2011), Manjula et al. (2009) which revealed that high creative L.D. students are more academically anxietic than low creative learning disabled. In the view of the findings of the present study and the above given research support the hypothesis that "there is no significant difference between high & low creative learning disabled students in relation to academic anxiety" has been rejected.

Sex Differences in Relation to Academic Anxiety of Learning Disabled : To test the hypothesis that "there is no significant difference between learning disabled boys and L.D. girls in relation to academic anxiety", the mean, SD, SE and 't' ratio were calculated and are shown in table -2

Table -2

Significance of mean difference on Academic Anxiety of Learning Disabled Boys & Girls

Variable	LL.D. Boys (N=52)			L.D. Girls (N=42)			
	Mean	S.D.	S.E	Mean	S.D.	S.E	t-Ratio
Academic Anxiety	11.29	3.242	0.45	11.79	3.240	0.49	0.744

It can be seen from table -2 the mean scores for learning disabled boys and girls on the measures of academic anxiety were 11.29 (3.242) and 11.79 (3.240) respectively. The t-ratio 0.744 is insignificant. The result thus clearly indicates that both L.D. boys and girls equally behave on academic anxiety.

The finding of the present study is partially in line with Faleye (2010), Oludipe (2009) who found that learning disabled boys and girls do not differ on academic anxiety. However the result of this study contradict the findings of Esfandiory, Baharudin & Nowzari (2009), Reese-Weber and khan (2005), Deb, Chatterjee & Walsh(2011), Joshi, Gumastha, Kasturwar & Deshpande(2010), Ojha(2005), Reena, Kunjan Trivedi(2008) who found a significance difference in academic anxiety of boys and girls.

Sex Differences in Relation to Creativity of Learning Disabled : In order to test fourth hypothesis that "There is no significant difference between learning disabled boys and girls in relation to creativity" Mean, S.D., S.E. and t-ratio were calculated, the statistical values are given in table -3

Table -3

Significance of mean difference between L.D. Boys and L.D. Girls in relation to Creativity

Variable	L.D. Boys (N=51)			L.D. Girls (N=42)			t-ratio
	Mean	S.D.	S.E.	Mean	S.D.	S.E.	
Creativity	103.06	26.477	3.707	101.47	29.829	4.603	0.269

The result point out that the mean score on creativity of learning disabled boys & girls are 103.06 (26.477) & 101.47 (29.829) respectively. The mean values for both the groups are almost same. The insignificant t-ratio 0.269 clearly indicates that both the groups are identical to each other i.e. learning disabled girls perform almost similar to learning disabled boys on creativity.

The findings of the present study is partially in line with Bromley (1956) Alpaugh and Birren (1977), Jaquish and Ripple (1981), Agarwal and Kumari (1982), Siddiqi (2011) who found no statistically significant gender difference. The result of this study contradict the findings of Coone, (contentious topic), Warren and Luria (1972) Bharadwaj (1985) Flaherty (1992) Tegano and Moran (1989) who found gender differences, favouring women while Ruth and Birren, (1985) considered gender differences, favoring men.

Conclusion : The study reveals following conclusions-

The high creative learning disabled students academically found more anxietic than low creative learning disabled students. It showed that high creative learning disabled are helpless, have lack of motivation, low authenticity, low self esteem and poor social skills in comparison to low creative learning disabled. They feel an extra stress by some social and classroom environment. So they become more anxietic with respect to normal classroom conditions.

The gender has no role in the development of academic anxiety in learning disabled boys and girls. Both have same type of difficulties but their way of expression of problems is different which causes anxiety in them.

REFERENCES

1. Agarwal, S., Kumari, S. (1982), "A Correlational Study of Risk-taking and Creativity with Special Reference to Sex Differences", Indian Educational Review, 17 : 104-110
2. Alpaugh, P.K., Birren, J.E. (1977), "Variables Affecting Creative Contributions Across the Adult Life Span", Human Development, 20:240-248
3. Bierman, K.L. & Erath, S.A. (2007). Social Anxiety and Peer Relations in Early Adolescence: Behavioral and Cognitive Factors. Journal of Abnormal Child Psychology, 35 (3) 405-416
4. Bharadwaj, R. (1985), "Intelligence, Sex, and Age as Correlates of the Components of Creativity", Asian Journal of Psychology and Education, 16:41-44
5. Coone, G. (1969), A Cross-cultural Study of Sex Differences in the Development of Selected Creative Thinking Abilities, Doctoral Dissertation, University of Georgia, Dissertation Abstracts International, 29
6. Chansky, T. (2004). Freeing Your Child from Anxiety. New York: Broadway Books.
7. Esfandyari, B., Baharudin, R. and Nowzari, N. (2009), The Relationship between Inter-parental Conflicts and Internalization Behaviour Problems Among Adolescents. European Journal of Social Science. 10(4) pp 641-648
8. Faleye, B.A. (2010), Cognitive Test Anxiety and Learning Outcomes of Selected Undergraduate Students, The African Symposium. 10 (2). 69-74
9. Fiori, L. M., Wanner, B., Jomphe, V., Croteau, J., Vitaro, F., Tremblay, R. E., Bureau, A., Turecki, G.(2010), Association of Polyaminergic Loci With Anxiety, Mood Disorders, and Attempted Suicide. Polyamine Variants in Psychiatric Disorders. 5(11). 1-9. Fineman, S. (Ed.). (1993). Emotion in organizations. Newbury Park : Sage

10. Jaquish, G.A., Ripple, R.E. (1981), "Cognitive Creative Abilities and Self Esteem Across the Adult Life-span", Human Development, 24:110- 119
11. Manjula P., Saraswati G. and Prakash P. (2009) Cognitive Profile of Children with Reading and Writing Difficulties. Journal of Community Guidance and Research, 2009, Vol. 26, No. 2, pp-199-207
12. Martin, B. (2006). Strategies to Reduce Anxiety and Stress. Psych Central. (Online) Availablehttp://psychcentral.com/lib/2008/dipression-and anxiety_among_college_students/ (September 10, 2008)
13. Moore, S. L. (2008), Annihilation Anxiety and Parental Representation in Adolescent, Doctor of Psychology, Department of Psychology, Pace University, New York.
14. Ruth, J.E., Birren, J.E. (1985), "Creativity in Adulthood and Old Age : To Intelligence, Sex, and Mode of Testing", International Journal of Behavioural Development, 8:99-109
15. Sadock, B. J., Sadock V. A., (2007). Kaplan & Sadock's Synopsis of Psychiatry. Publisher: Lippincott Williams & Wilkins.
16. Siddiqi, S.(2011), A Comparative Study of Creativity Among Boys and Girls of Class VII
17. Tegano D.W., Moran J.D. (1989), "Sex Differences in the Original Thinking of Preschool and Elementary School Children", Creativity Research Journal, 2 : 102-110

* * * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Geography : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 446-449

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

G P S : The Need of Present Era

*Dr. Uma Kant Singh**

INTRODUCTION : This paper presents the need as well as importance of Global Positioning System (G.P.S.) in present era, because GPS is the necessity of every sphere of human life. The field of G.P.S. is very vast. Its specialised branches have grown tremendously in the present century. Now I would like to tell what exactly, Global Positioning System is. Global Positioning System (GPS) refers to a structured satellite constellation network comprising of around 24 satellites orbiting the earth's atmosphere. GPS satellites are used for navigational, surveying, mapping, routing, charting and time distribution purposes. GPS technology is a sophisticated as well as complicated form of satellite technology that uses a complex network of processors and servers to receive and transmit data to and from the earth. GPS technology is mainly integrated with GSM (Global System of Mobile Communications) data network protocol to locate and update data.

GPS was developed by the U.S. Department of Defense (DoD) primarily for the US military to provide precise estimates of position, velocity and time (PVT). Nevertheless, the civil application of GPS have grown at an astonishing rate. GPS has found applications in land transportation, civil aviation, maritime commerce, surveying and mapping, construction, mining, agriculture, earth sciences, electric power systems, telecommunication and outdoor recreational activities. GPS is on its way to becomeza part of our daily lives as an essential element of the commercial and public infrastructure.
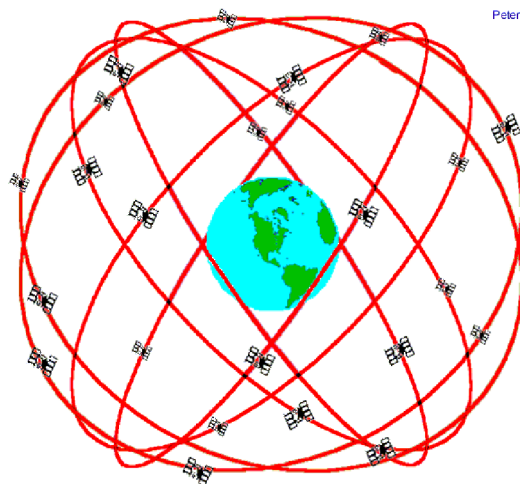
GPS Nominal Constellation
24 Satellites in 6 Orbital Planes
4 Satellites in each Plane
20,200 km Altitudes, 55 Degree Inclination

** Assist. Prof. & Head, Department of Geography, Sri Baldeo P. G. College, Baragaon, Varanasi.*

Objective of GPS : All human acts are based on some objectives. The present study is mainly aimed at examining the Global Positioning System. GPS was developed with the objective to provide accurate estimates of position velocity & Time with root-mean-square errors of 10m in position, 0.1m/s in velocity and 100ns in time. These estimates are to be available to an unlimited number of concurrent users all over the globe continuously and nearly instantaneously.

At present, GPS offers two kind of services: for civil use and for authorised military use by providing different sets of signals;

However, access to full capability of the system for civil use can be restricted in two ways: (i) By making selective availability (SA) i.e., purposefully degrading of the signals available for unrestricted user by the satellite clock "dithering" and broadcasting of erroneous or imprecise values of the satellite ephemeris parameter in navigational message; and (ii) By anti-spoofing (AS) i.e., encryption of ranging code.

Basic Principles of GPS : GPS is based on the principle of resection i.e., receiver's position (x, y, z) can be determined given at least three objects whose positions are known. Analytically, from the known positions of three objects and their distances from unknown position, we get three distance equations involving three unknowns corresponding to the unknown position of the receiver. These three equations can be solved for the three unknowns (x, y, z). In GPS, the satellites, which broadcast their positions, are the objects at known locations. The distance between the receiver and a satellite is measured in terms of transit time of the signal multiplied by the velocity of light. '

Uses of G.P.S : In India G.P.S. services are used to control & manage vehicular flow in many cities. Automatic vehicle locater system is a hardware device that uses GPS technology to monitor vehicle movement. Automobiles can be equipped with GPS receivers at the factory or as after-market equipment. Units often display moving maps and information about location, speed, direction, and nearby streets and landkmarks.

Aircraft navigation system usually displays a "moving map" and is often connected to the autopilot for en-route navigation. A aviation- certified GPS receivers using technologies such as WAAS or LAAS to increase accuracy may also be used for some final approach and landing operations. Hand –

held aviation-certified GPS receivers are often used in smaller general aviation aircraft. Glider pilots use GNSS Flight Recorders to log GPS data verifying their arrival at turn points in gliding competitions. Flight computers installed in many gliders also use GPS to compute wind-speed aloft, and glide paths to waypoints such as alternate airports or mountain passes, to aid en route decision making for cross-country soaring.

Boats and ships can used GPS to navigate all of the world's lakes, seas and oceans. Maritime GPS units include functions useful on water, such as "man overboard" (MOB) functions that allow instantly marking the location where a person has fallen overboard, which simplifies rescue efforts.

Heavy Equipment can use GPS in construction, mining and precision agriculture. The blades and buckets of construction equipment are controlled automatically in GPS-based machine guidance systems. Agricultural equipment may use GPS to steer automatically, or as a visual aid displayed on a screen for the driver. This is very useful for controlled traffic and row crop operations and when spraying. Harvesters with yield monitors can also use GPS to create a yield map of the paddock being harvested.

Bicycles often use GPS in racing and touring. GPS navigation allows cyclists to plot their course in advance and follow this course, which may include quieter, narrower streets, without having to stop frequently to refer to separate maps. Some GPS receivers are specifically adapted for cycling with special mounts and housing.

Hikers, climbers, and even ordinary pedestrians in urban or rural environments can use GPS to determine their position with or without reference to separate maps. In isolated areas, the ability of GPS to provide a precise position can greatly enhance the chances of rescue when climbers or hikers are disabled or lost (if they have a means of communication with rescue workers).

Surveying – Survey Grade GPS receivers can be used to position survey markers, buildings, and road construction.

Mapping and GIS (geographic information system) – Mapping grade GPS receivers use the carrier wave data from only the L1 frequency, but have a precise crystal oscillator which reduces errors related to receiver clock jitter.

Geophysics and geology – High precision measurements of crustal strain can be made with differential GPS by finding the relative displacement between GPS sensors, Multiple stations situated around an actively deforming area (such as a volcano Earth zones) can be used to find strain and ground movement.

Precise time reference : Many systems that must be accurately synchronized use GPS as a source of accurate time. GPS can be used as a reference clock for time code generators or NTP clocks. (Sensors (for seismology or other monitoring application) can use GPS as a precise time source, so events may be timed accurately.

Mobile Satellite Communications : Satellite communications systems use a directional antenna (usually a "dish") pointed at a satellite. The antenna on a moving ship or train, for example, must be pointed based on its current location. Modern antenna controllers usually incorporate a GPS receiver to provide this information.

Emergency and Location-based services : GPS functionally can be used by emergency services to locate cell phones. GPS is less dependent on the telecommunications network topology than radiolocation for comparable phones. A phone's geographic location may also be used to provide location- based services including advertising, or other location- specific information.

Location-based game : The availability of hand-held GPS receivers has led to games such as Geocaching, which involves using a hand-held GPS unit to travel to a specific longitude to search for objects hidden by other geocachers. This popular activity often includes walking or hiking a natural locations. Geodashing is an outdoor sport using waypoints.

Aircraft passengers : Most airlines allow passenger use of GPS units on their flights, except during landing and take-off when other electronic devices are also restricted.

Heading information : The GPS system can be used to determine heading information, even though it was not designed for this purpose. A "GPS compass" uses a pair of antennas separated by about 50 cm to detect the phase difference in the carrier signal from a particulars GPS satellite. Given the positions of the satellite the position of the antenna, and the phase difference, the orientation of the two antennas can be computed. More expensive GPS compass systems use three antennas in a triangle to get three separate readings with respect to each satellite. A GPS compass is not subject to magnetic declination as a magnetic compass is, and doesn't need to be reset periodically like a gyrocompass. It is, however, subject to multipath effects.

GPS tracking systems use GPS to determine the location of a vehicle, person, or pet and to record the position at regular intervals in order to create a log of movements. The data can be stored inside the unit, or sent to a remote computer by radio or cellular modem. Some systems allow the location to be viewed in real- time on the Internet with a web-browser.

Weather Prediction Improvements : Measurement of atmospheric bending of GPS satellite signals by specialized GPS receivers in orbital satellites can be used to determine atmospheric conditions such as air density, temperature, moisture and electron density.

Photograph annotation : Combining GPS position data with photographs taken with a (typically digital) camera, allows one to lookup the locations where the photographs were taken in gazeteer, and automatically annotate the photographs with the name of the location they depict. The GPS device can be integrated into the camera, or the timestamp of a picture's metadata can be combined with a GPS track log.

CONCLUSION : It can be concluded that GPS is widely seen as the most important gift of the DOD to the civil world, perhaps with the exception of the Internet. It can be utilized to any conceivable project under the sky where position, velocity and time of any object or phenomena is required. In fact, the domain of application of GPS may vary with the imagination of the user. On the other hand, more precise GPS system is going to replace many of the conventional technology cost effectively in a big way. Commerce in GPS equipment and services continues to grow rapidly. This success has also created expectations, indeed demands, which the system was not destined to meet. It is expected that the planned GPS modernization, when completed, would make determining position as easy as determining precise time is today. This knowledge of position would come to occupy the same important place in our daily lives as time does today. It means it has become the need of present scenario.

REFERENCE

1. **Michael Ferguson, Randy Kalisek, Leah Tucker (1997)** : GPS Land Navigation : A Complete Guidebook for Backcountry Users of the NAVSTAR Satellite System
2. **Michael Kennedy (May 1996)** : The Global Positioning System and GIS : An Introduction
3. **Scottie Barnes and Lafe Low (June 2000)** : Basic Essentials : Global Positioning Systems
4. **Bradford W. Parkinson (Editor), James J. Spilker (1996)** : Global Positioning System : Theory and Applications, Volume I
5. **James B-Y. Tsui (May 2000)** ; Fundamentals of Global Positioning System Receivers : A Software Approach

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Geography : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 450-455

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

जनपद अम्बेडकर नगर में मृदा के प्रकार एवं उनकी विशेषताओं का कृषि उत्पादकता पर प्रभाव : एक भौगोलिक अध्ययन

डॉ. महीपाल सिंह राम सुरेश***

सारांश–*प्राकृतिक उपहारों में मृदा सबसे महत्वपूर्ण एवं आधारभूत तत्व है। मनुष्य की अधिकांश मूलभूत आवश्यकताएँ मृदा से प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से पूरी होती है। आदि मानव से लेकर आधुनिक मानव तक की लम्बी यात्रा में मानव विकास किसी न किसी रूप में मिट्टी से जुड़ा रहा है। मृदा चट्टानों, खनिजों एवं जैव तत्वों का एक मिश्रण है जिसमें वनस्पति एवं पौधे उत्पन्न करने की क्षमता विद्यमान रहती है। मृदा के अवनयन एवं संरक्षण की समस्या 21वीं सदी की महत्वपूर्ण समस्या के रूप में उभरी है। ऐसी मृदा जिस पर मृदा निर्माण की प्रक्रिया लम्बी अवधि तक चलती है विभिन्न गहराई तथा रासायनिक एवं भौतिक विशेषताओं वाले स्तरों का निर्माण होता है जो कृषि उत्पादकता को प्रभावित करती है।*

प्रस्तावना–मृदा भौतिक एवं आर्थिक दोनों दृष्टि से महत्वपूर्ण है। अध्ययन क्षेत्र जनपद अम्बेडकर नगर में मृदा यहाँ के लोगों की जीविका का प्रमुख साधन है यदि इसका उपयोग वैज्ञानिक विधि से किया जाय तो कभी भी खाद्यान्य संकट की समस्या उत्पन्न नहीं हो सकती है। अध्ययन क्षेत्र गंगा–यमुना द्वारा निक्षेपित जलोढ़ मैदान है जो लगभग समतल है। यहां पर पायी जाने वाली मृदा को शोधकार्ता द्वारा पाँच भागों में वर्गीकृत किया गया है–बलुई मिट्टी, मटियार मिट्टी, टोस एवं उसके निकटवर्ती क्षेत्रों की दोमट मिट्टी, मटियार मिट्टी एवं ऊसर मिट्टी है। उपर्युक्त मिट्टयों की विशेषताओं का प्रभाव अध्ययन क्षेत्र के फसल उत्पादकता पर स्पष्ट रूप से पाया जाता है। मृदा की समस्याओं का प्रभाव भी कृषि उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है मृदा के उचित संरक्षण, प्रबन्धन एवं नियोजन से मृदा की उर्वरा शक्ति को बढ़ाकर मृदा की गुणवत्ता को सुधारा जा सकता है और कृषि उत्पादकता में वृद्धि की जा सकती है।

अध्ययन क्षेत्र–प्रस्तुत शोध पत्र का अध्ययन क्षेत्र जनपद अम्बड़ेकर नगर है जो गांगेय मैदान का ही एक vfHkUu vax g&t uin v{kka'kh; foLrkj 26°,9′ उत्तरी देशान्तर से 26°, 40′ उत्तरी अक्षांश एवं देशान्तरीय बिस्तार 82°, 12′ पूर्वी देशान्तर से 83°, 05′ पूर्वी देशान्तर के मध्य है। अध्ययन क्षेत्र का कुल क्षेत्रफल 2350 वर्ग किलोमीटर है। जनपद की उत्तरी सीमा पर जनपद बस्ती एंव दक्षिणी सीमा पर जनपद सुल्तानपुर का विस्तार पाया जाता है। इसके पूर्वी सीमा का निर्धारण जनपद आजमगढ़ एवं पश्चिमी सीमा पर जनपद अयोध्या स्थित है। (मानचित्र संलग्न–1) अध्ययन क्षेत्र में 9 विकास खण्ड– अकबरपुर, आलापुर, भीटी, जलालपुर, टांडा, भियांव, रामनगर, जहाँगीरगंज एवं कटेहरी है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार कुल जनसंख्या 23,98,888 है, जिसमें 12,12,410 पुरूष एवं 11,85,478 स्त्रियाँ सम्मिलित है। जनघनत्व की दृष्टि से 1020 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर निवास करते हे। लिंगानुपात 978, साक्षरता 81.66 प्रतिशत और जनसंख्या वृद्धि दर 19.50 प्रतिशत रही है।

** अध्यक्ष एवं एसोसिएट प्रोफेसर (भूगोल विभाग), गुलाब सिंह हिन्दू पी.जी. कालेज, चाँदपुर स्याऊ, बिजनौर, उ.प्र.*

*** शोध छात्र (भूगोल विभाग), गुलाब सिंह हिन्दू पी.जी. कालेज, चाँदपुर स्याऊ, बिजनौर, उ.प्र.*

Ambedkarnagar District
2010
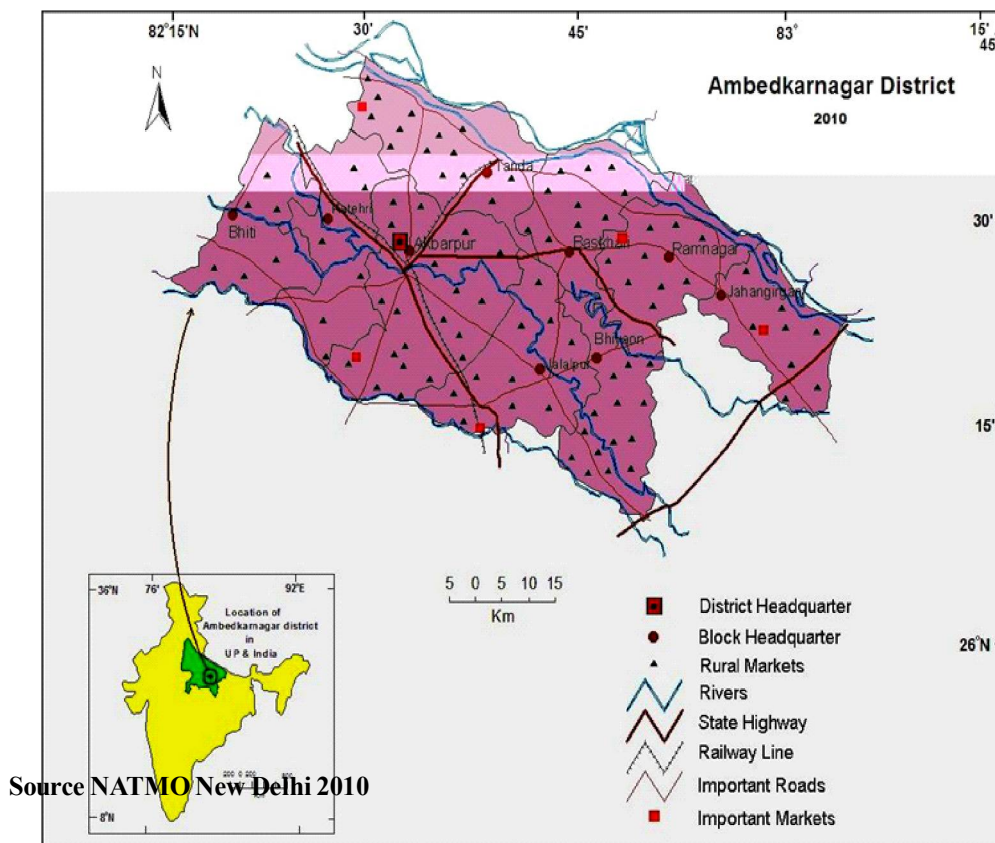
Source NATMO New Delhi 2010

अध्ययन के उद्देश्य—जनपद अम्बेड़कर नगर में मृदा के प्रकार एवं उनकी विशेषताओं का कृषि उत्पादकता पर प्रभाव का एक भौगोलिक अध्ययन करना मुख्य उद्देश्य है। इस अध्ययन से विकास योजनाओं का विकास कर रहे योजनाकारों का सुझाव देना है, जिससे इस क्षेत्र की मिट्टी की गुणवत्ता को ध्यान में रखकर योजनाएं क्रियान्वित की जाय और मिट्टी की गुणवत्ता के अनुसार उसका उपयोग दीर्घकाल तक किया जा सके। इस शोध कार्य के लिए निम्न उद्देश्य रखे गये हैं—

1. अध्ययन क्षेत्र में पायी जाने वाली मृदा के प्रकार का भौगोलिक अध्ययन करना।
2. मृदा की विशेषताओं का कृषि उत्पादकता पर प्रभाव का अध्ययन एवं विश्लेषण करना।
3. मृदा के संरक्षण एवं कृषि उत्पादकता में वृद्धि हेतु सुझाव देना।

विधि तन्त्र—प्रस्तुत शोध पत्र में भौगोलिक तथ्यों को प्रकट करने के लिए तीन माध्यमों (भाषा, आँकड़े तथा मानचित्र) का सहारा लिया गया है। प्राथमिक एंव द्वितीयक आँकड़ों का उपयोग आवश्यकतानुसार उचित स्थान पर उपयोग किया है। प्राथमिक आकड़ें जैसे मृदा की संरचना एवं संगठन से सम्बन्धित आँकड़ें मृदा परीक्षण केन्द्रों से परीक्षण के माध्यम से प्राप्त किया गया है। द्वितीयक आँकड़ें जनपद की सांख्यकीय पत्रिका, जनपद मृदा परीक्षण केन्द्र एवं किताबों से लिया गया है।

साहित्यावलोकन—यह शोध पत्र जनपद अम्बेडकर नगर में मृदा के प्रकार एवं उसकी विशेषताओं का कृषि उत्पादकता के प्रभाव को लेकर किया गया है। अब तक प्रकाशित भूगोल की पुस्तकों में अध्ययन क्षेत्र की मृदा से सम्बन्धित अध्ययन बहुत कम हुआ है। मृदा से सम्बन्धित अध्ययन में देश—विदेश के भूगोलवेत्ताओं ने महत्वपूर्ण कार्य किये है। प्रमुख विदेशी भूगोलवेत्ताओं में ई0 हीमन्स (1952), के0डी0 ग्लिका (1972), हिवटने मिल्टन (1925),

भारतीय भूगोल वेत्ताओं में इनायत अहमद (1973), आर0आर0 अग्रवाल (1966), डी0एस0 चौहान (1966), मास्जिद हुसैन (1979), आदि प्रमुख है।
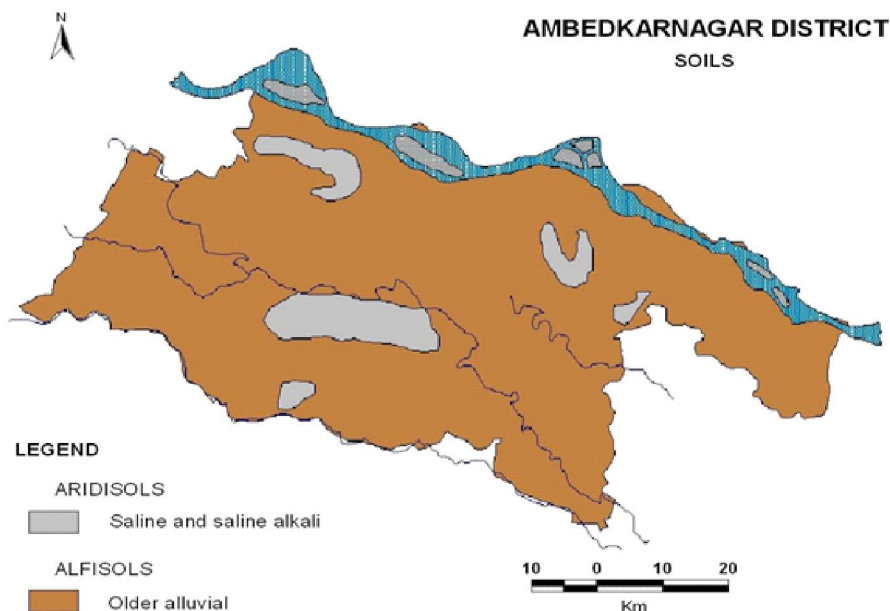
मृदा के प्रकार :—अध्ययन क्षेत्र मृदा संसाधन की दृष्टिकोण से बहुत धनी क्षेत्र है जो इस क्षेत्र के अधिकांश लोगों का जीविकोपार्जन का साधन है और इस क्षेत्र की अर्थव्यवस्था तथा विकसित संरचना की धुरी है। यह क्षेत्र मध्यवर्ती गंगा मैदान का एक भाग है। इस सम्पूर्ण समतल मैदान पर दो प्रकार की मिट्टी पायी जाती है—नवीन जलोढ़ मिट्टी एवं पुरानी जलोढ़ मिट्टी। नवीन जलोढ़ मिट्टी अध्ययन क्षेत्र में मुख्य रूप से नदियों के किनारे और पुरानी जलोढ़ मिट्टी उच्च भागों में पायी जाती है। (मानचित्र सं–2) शोधकर्ता द्वारा यहाँ पर पायी जाने वाली मिट्टियों को बलुई, दोमट, मटियार, उसर एवं तटीय मिट्टी को पाँच भागों में वर्गीकृत किया है जो इस प्रकार है—

1. बलुई मिट्टी—बलुई मिट्टी जनपद अम्बेडकर नगर में घाघरा नदी (सरयू नदी) के किनारे वाले भागों में सकरी पट्टी के रूप में पायी जाती है। इस मिट्टी में रेत की मात्रा 70–90 प्रतिशत या इससे अधिक होती है, इसे बलुआ या भूर मिट्टी भी कहा जाता है। इस मिट्टी के कण बड़े होने के कारण जलधारण की क्षमता कम होती है तथा उपजाऊ कम होती है, इस मिट्टी का पी0एच0 मान 5.00–7.00 के मध्य होता है और नाइट्रोजन 0.93 प्रतिशत, फास्फोरस 0.06 प्रतिशत, पोटाश 0.56 प्रतिशत, कार्बनिक पदार्थ 0.27 प्रतिशत पाया जाता है। बलुई मिट्टी का जमाव प्रतिवर्ष घाघरा नदी द्वारा होती रहती है, जिसके कारण इस क्षेत्र की फसल उत्पादकता ज्यादा या कम होती रहती है। गर्मी के दिनों में इस मिट्टी में कृषि करना कठिन होता है। रबी के मौसम में इस मिट्टी में जौ, गेहूँ, बाजरा, चना, मटर, सरसों, ककड़ी, तरबूज, खरबूज, करैला, खीरा आदि का उत्पादन किया जाता है। जनपद में इस माँझा भूमि के नाम से जाना जाता है, इस मिट्टी का रंग हल्का पीला, भूरा तथा सफेद होता है।

2. बलुई दोमट—बलुई दोमट मिट्टी अध्ययन क्षेत्र के उत्तरी भाग एवं घाघरा नदी के दक्षिणी भू–भागों एक चौड़ी पट्टी के रूप में पायी जाती है। इस मिट्टी का पीला एवं भूरा है, इसमें बालू के छोटे–छोटे कण पाये जाते हैं, इस मिट्टी में बालू तथा चीका का मिश्रण पाया जाता है। जलधारण करने की क्षमता कम होती है। वर्षा के

मौसम में इस मिट्टी में आर्द्रता का प्रतिशत अधिक हो जाता है। इस मिट्टी में कृषि कार्य हेतु सिंचाई साधनों का उपयोग किया जाता है, मृदा की उर्वरता बनाये रखने के लिए समय–समय पर कृषक रासायनिक एवं जैविक खादों का प्रयोग करते है। इस मिट्टी में गेहूँ, जौ, चना, मटर, अरहर, गन्ना आदि फसलों का पैदा किया जाता है। इस मृदा का पी0एच0 मान 6–8 होता है। इस क्षेत्र में अधिक जनसंख्या निवास करती है।

3. मटियार दोमट या दोमट मिट्टी–यह मिट्टी अध्ययन क्षेत्र में ऊपरी बांगर वाले उच्च क्षेत्रों में पायी जाती है यह मिट्टी अधिक उपजाऊ होती है। इस क्षेत्र की मिट्टी में पानी धारण की सामान्य है, इसलिए अधिक फसलोत्पादन के लिए सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। इस मिट्टी का पी0एच0 (PH) मान 7.5–8.5 के मध्य होता है। इस मिट्टी में कंकड की अधिकता है। इस मिट्टी का रंग पीले भूरे से गहरे भूरे के बीच होता है। इस मिट्टी में जौ, गेहूँ, चावल, चना, मटर, अरहर, सयांवा एवं गन्ना मुख्य रूप से बोया जाता है। यह मिट्टी अध्ययन क्षेत्र में अकबरपुर, बसखारी, जलालपुर कटेहरी, रामनगर, जहाँगीरगंज, विकास खण्डों में पायी जाती है। इस मिट्टी से अधिक उत्पादन के लिए अध्ययन क्षेत्र के कृषक रासायनिक खादों तथा सिंचाई साधनों का उपयोग करते है।

4. टोंस एवं उसकी निकटवर्ती दोमट मटियार मिट्टी–अध्ययन क्षेत्र में इस प्रकार की मिट्टी टोंस नदी के समीपवर्ती क्षेत्रों में पायी जाती है, मिट्टी के कण सघन होते हैं। इसका रंग हल्का पीला भूरा होता है, इस मिट्टी पर कभी–कभार बाढ़ आती है, जिससे उर्वरा शक्ति में वृद्धि हो जाता है। इस मिट्टी में जल धारण करने की क्षमता कम होती है, जिससे सिंचाई की आवश्यकता होती है, यह मिट्टी अध्ययन क्षेत्र में कटेहरी, अकबरपुर, टांडा, सम्मनपुर, सुल्तानगढ़, जलालपुर, नागपुर, जहांगीरगंज आदि विकासखण्डों में पायी जाती है। मिट्टी में मुख्य रूप गेहूँ, चना, सरसों, आलू, मटर, धान, गन्ना आदि फसलों का उत्पादन किया जाता है।

5. ऊसर मिट्टी–अध्ययन क्षेत्र में **ऊसर** मिट्टी का मध्य एवं दक्षिणी भाग में सुरहुरपुर, मालीपुर, जाफरगंज, नेमपुर, विडहर आदि क्षेत्रों में यत्र–तत्र ऊसर मिट्टी पायी जाती है। इस मिट्टी में कैल्शियम कार्बोनेट तथा लवण की मात्रा अधिक पायी जाती है इसे लवण या क्षार वाली मृदा के नाम से जाना जाता है। इस मिट्टी का पी0एच0 मान 6.3 होता है। इस मिट्टी के सुधार के लिए अध्ययन क्षेत्र के कृषकों द्वारा पापिराइट तथा जिप्सम का प्रयोग किया जा रहा है।

मृदा की विशेषताओं का कृषि उत्पादकता पर प्रभाव–मृदा की उत्पादन क्षमता और पौधों का विकास मिट्टियों के भौतिक रासायनिक एवं जैविक गुणों पर निर्भर करता है। मृदा की संरचना व विशेषताओं के आधार पर उत्पादकता निश्चित होती है। भौतिक गुण मृदा कणों के आकार, प्रकृति, कणाकार, खनिज संगठन, कार्बनिक पदार्थों की प्रकृति, मात्रा एवं अपघटन की सीमा, अकार्बनिक एवं कार्बनिक पदार्थों के सम्मिश्रण से निर्मित रन्ध्रावकाश का रूप एवं आयतन उसमें उपस्थित जल एवं वायु का एक मिश्रण है। मृदा उपयोग एवं उसमें पौधों की वृद्धि, विकास एवं उत्पादकता मृदा के भौतिक गुणों पर आधारित होता है। आधुनिक परिवेश में बढ़ते औद्योगिकीकरण, नगरीकरण के कारण कृषि योग्य भूमि का क्षेत्रफल निरन्तर कम होता जा रहा है और जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है। देश की बढ़ती आबादी के लिए खाद्यान्य आपूर्ति सुनिश्चित करना और मृदा की गुणवत्ता बनाये रखना नितान्त आवश्यक है, मृदा को उपजाऊपन बनाये रखना और उत्पादकता बढ़ाने के लिए परिशुद्ध खेती महत्वपूण होती है। इसे विशेष कृषि के नाम से जाना जाता है, जिसमें लागत साधनों का पूरा उपयोग किया जाता है बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए खाद्यान्य सुरक्षा हेतु, उत्पादकता को बढ़ाना होगा। मृदा की उत्पादकता एवं उसके भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों को बनाये रखना नितान्त आवश्यक हो गया है। मृदा की विशेषताओं पर ही कृषि उत्पादकता निर्भर करती है। अच्छी गुणों वाली मृदा की उत्पादक क्षमता अधिक होती है, जबकि वही दूसरी ओर निम्न गुणवत्ता वाली मृदा में कृषि उत्पादक क्षमता कम होती है, अतः कृषि उत्पादकता मृदा की गुणवत्ता से प्रभावित होती है।

मृदा की गुणवत्ता का क्षेत्रीय वितरण–अध्ययन क्षेत्र जनपद अम्बेडकरनगर एक समतल उपजाऊ मैदानी भू–भाग है, इस समतल मैदान की मिट्टी का निर्माण यहाँ पर प्रभावित होने वाली नदियों के जलोढ़ से हुआ है।

इस क्षेत्र की अधिकांश मृदा उपजाऊ है, जो कृषि उत्पादकता के लिए सर्वोत्तम है यहाँ की अधिकांश मृदा गुणवत्ता लिए हुए है। जनपद के कृषक उच्च कृषि उत्पादकता बनाये रखने के लिए मृदा संरक्षण पर विशेष ध्यान दे रहे है। समय–समय पर अपने खेत की मिट्टी का मृदा परीक्षण केन्द्र पर जांच करवाते रहते हैं। फसलों के अच्छी गुणवत्ता के लिए जैविक खादों का प्रयोग करते है, जिससे न केवल मृदा की गुणवत्ता में सुधार होता है बल्कि सतत् कृषि उत्पादकता बनी रहती है। नदियों के समीपवर्ती क्षेत्रों कभी–भी वर्षा अधिक हो जाने के कारण जल भराव की समस्या उत्पन्न हो जाती है जिससे मृदा में उपजाऊपन की कमी आती है, इस प्रकार उच्च कृषि उत्पादक क्षमता को सतत बनाये रखने के लिए मिट्टी के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों को बचाये रखना बेहद जरूरी है। जनपद के कृषक अच्छी फसल उत्पादन के लिए अपने खेतों में नाइट्रोजन, फास्फोरस, मैग्नीशियम, कैल्शियम, गंधक, पोटाश आदि रासायनिक खादों का प्रयोग करते है। मृदा अध्ययन क्षेत्र की मृदा गुणवत्ता का क्षेत्रीय विवरण निम्न है –

1. निम्न मृदा गुणवत्त क्षेत्र–यह क्षेत्र अध्ययन क्षेत्र की नदियों के समीप एक संकरी पट्टी के रूप फैली है, इसमें मिट्टी में बालू के कणों की मात्रा अधिक होने के कारण कम उपजाऊ है। नदी के समीपवर्ती क्षेत्र होने के कारण यहाँ पर जल भराव अधिक रहता है, इस क्षेत्र की मिट्टी कम उपजाऊ है, वर्ष में केवल एक ही फसल उगायी जा सकती है, इस कारण इस क्षेत्र की फसल उत्पादकता कम होती है, किसान फसल उत्पादकता बढ़ाने के लिए उर्वरकों का प्रयोग करते है कुछ किसान मृदा का परीक्षण मृदा प्रयोगशाला में कराते है, इसके बाद मृदा परीक्षण से प्राप्त परिणाम के अनुसार अपने खेतों में रासायनिक एवं जैविक उर्वरक का प्रयोग करते है। अध्ययन क्षेत्र में इस प्रकार की मृदा, टाण्डा, हंसवर, मैंदी आदि क्षेत्रों पाया जाता है। इस क्षेत्र की मिट्टी की गुणवत्ता में कमी के कारण किसान बाजरा, उड़द, तरबूज, ककड़ी खीरा, जौ, मंसूर, पशुओं के लिए चारा आदि फसलों का उत्पादन करते है। तटीय क्षेत्रों में प्रतिवर्ष बाढ़ आने कारण मृदा का कटाव अधिक तीव्र होता है जिसके कारण मृदा की उर्वरता कम हो जाती है।

अध्ययन क्षेत्र जनपद अम्बेड़कर नगर में नदियों के समीपवर्ती क्षेत्र के अलावा मध्य में यत्र–तत्र निम्न मृदा गुणवत्ता वाले छोटे–छोटे क्षेत्र स्थित है, यह क्षेत्र सुरहुरपुर, मालीपुर, जाफरगंज, नेमपुर, बिड़हर आदि है। कृषक इस निम्न गुणवत्ता वाली भूमि का सुधारने के लिए पापिराइट तथा जिप्सम का प्रयोग करते हैं।

2. मध्यम मृदा गुणवत्ता वाले क्षेत्र–अध्ययन क्षेत्र में इस प्रकार की मृदा का पर्याप्त क्षेत्र है, मिट्टी जलालपुर, जहांगीरगंज, बसखारी, भियाँव, कटेहरी विकासखण्डों में पायी जाती है, इस मिट्टी में मुद्रादायिनी फसलें गेहूँ, चावल, गन्ना, सरसों, उड़द आदि पैदा की जाती है, इस भूमि का ज्यादातर भू–भाग समतल है, मृदा की गुणवत्ता बनाये रखने और अधिक कृषि उत्पादकता के लिए कृषक उर्वरकों का प्रयोग करते हैं, इस क्षेत्र में कृषि फसलों की सिंचाई के साधनों का पर्याप्त विकास हुआ है। वर्षा ऋतु में तीव्र वर्षा होने के कारण यत्र–तत्र जमाव व मृदा कटाव की समस्या उत्पन्न हो जाती है, जिसका प्रतिकूल प्रभाव कृषि उत्पादकता पर पड़ता है इस समस्या से निपटने के लिए अध्ययन क्षेत्र के किसान मेड़बन्दी तथा सघन फसल चक्र प्रणाली विधि का उपाय अपनाते हैं।

3. उच्च मृदा गुणवत्ता क्षेत्र–अध्ययन क्षेत्र में इस प्रकार की मृदा का विस्तार मध्यवर्ती भू–भाग पर अवस्थित है, यह क्षेत्र की सबसे उपजाऊ भूमि है, इसके मध्यवर्ती भाग के कुल क्षेत्र पर दोमट मिट्टी का विस्तार पाया जाता है, जो कृषि फसलों के लिए सर्वोत्तम मृदा है, इस मिट्टी में गन्ना, जौ, गेहूँ, चावल, मैन्था आदि फसलों की खेती की जाती है। इस क्षेत्र में सिंचाई के साधनों का पर्याप्त विकास के कारण कृषि उत्पादकता अधिक है। अध्ययन क्षेत्र के कुछ कृषक जागरूक और शिक्षित है, वे अपने खेतों की मिट्टी का जाँच मृदा परीक्षण केन्द्र से कराते हैं, मृदा परीक्षण परिणाम के आधार कृषक अपने खेतों में फसलों का चयन करता है और उर्वरक का प्रयोग करता है, जिससे मृदा में कम आवश्यक तत्वों की पूर्ति हो जाती है, और मृदा की उत्पादन क्षमता बढ़ जाती है तथा मृदा के भौतिक, रासायनिक और जैविक तत्व संरक्षित रहता है, जिससे मृदा की फसल उत्पादन क्षमता लम्बे समय तक बनी रहती है। कृषक फसल उत्पादन के लिए अपने खेतों में नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटास का प्रयोग 4 : 2 : 1 में करते हैं, जिससे मृदा में पौधों के लिए आवश्यक पोषक तत्वों की पूर्ति संतुलित मात्रा में बनी रहती

है और पौधों को पोषक तत्व संतुलित मात्रा में प्राप्त होती है। मृदा की भौतिक, रासायनिक गणवत्ता उच्च बनी रहती है। मृदा की कृषि फसल उत्पादकता भी उच्च स्तर की होती है, जिससे वहाँ के कृषकों का सामाजिक, आर्थिक, विकास उच्च होता है।

मृदा समस्याओं हेतु सुझाव–1. मृदा उर्वराशक्ति को बनाये रखने के लिए कृषक नियमित रूप से फसल चक्र अपनाये यहाँ फसल चक्र से तात्पर्य फसल परिवर्तन से है जिसमें किसी खेत में धान्य, दलहन, एवं तिलहन आदि फसलों को बदल कर बोते हैं।

2. खेतों में कम्पोस्ट, खली एवं हरी खाद का प्रयोग करते रहना चाहिए जिससे ह्यूमस की कभी न हा और उसकी जल धारण क्षमता बनी रहे।

3. कृषक समय–समय पर मृदा जांच अवश्य कराये जिससे उन्हें मृदा की कमियों की सही जानकारी प्राप्त हो सके साथ ही कृषकों को जांच के आधार पर उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए।

4. खेतों में जल प्रवाह एवं सिंचाई का संतुलित विकास होना चाहिए। क्योंकि जल की अधिकता एवं कमी से मृदा की उत्पादकता एवं गुणवत्ता प्रभावित होती है।

5. जनपद के कृषकों को प्रशिक्षण एवं जागरूक किया जाना चाहिए कि वे उत्पादन क्षमता पर ध्यान न देकर सभी प्रकार के फसलों का उत्पादन करें ऐसा करने से मृदा उत्पादन क्षमता दीर्घकाल तक बनी रहेगी।

6. अध्ययन क्षेत्र के किसानो को पोषणीय कृषि के विकास हेतु नयी तकनीकों को अपना चाहिए।

7. भूमि प्रबन्धन तथा फसल प्रबन्धन पर ध्यान केन्द्रित करना अत्यन्त आवश्यक है।

8. कृषकों को अपने खेतों की मृदा के विशेषताओं के आधार पर फसलों का चयन करना चाहिए क्योंकि इससे फसल उत्पादन अधिक होगा साथ ही लम्बे समय तक मृदा की उर्वराशक्ति भी बनी रहेगी।

निष्कर्ष–उपर्युक्त शीर्षक के भौगोलिक अध्ययन एवं विश्लेषण से निष्कर्ष निकलता है कि अध्ययन क्षेत्र गांगेय मैदान का अभिन्न अंग है जो कृषि प्रधान क्षेत्र है यहां पर बलुई, बलुई दोमट, मटियार, उसर एवं नदी तटवर्ती क्षेत्रों की मटियार मिट्टी प्रमुख रूप से पायी जाती है जो कृषि कार्य के लिए उपर्युक्त है। मिट्टी की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक विशेषताओं का प्रभाव कृषि उत्पादकता पर स्पष्ट रूप से पड़ता है।

सन्दर्भ–सूची

1. डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, जनपद फैजाबाद पृ. 2–3
2. जिला सांख्यिकीय पत्रिका जनपद अम्बेडकर नगर 2011
3. हुसैन, माजिद, कृषि भूगोल, रावत पब्लिकेशन, 1979 जयपुर पृ. 95
4. सिंह, सविन्द्र, भौतिक भूगोल का स्वरूप, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद 2009 पृ. 101
5. सिंह, यू.पी. एवं प्रकाश वेद, संसाधन भूगोल, जय श्री प्रकाश मुजफ्फरनगर प्रथम संस्करण 1993–94 पृ. 25
6. विकीपिडिया होम पेज
7. www.hindikduniya.com
8. त्रिपाठी, एस.पी. एवं त्रिपाठी आर.के., आधुनिक मृदा विज्ञान का परिचय, विजया पब्लिकेशन, दिल्ली 2018 पृ. 24

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Geography : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 456-461

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

Agriculture Major Problems and Spatial Planning for Agricultural Development of Jaunpur District, U.P.

*Dr. Vineet Narain Dubey**

Abstract: Jaunpur district constitutes an integral part of the Gangetic plain which represents the intensive subsistence tillage-system. Being a plain area it has been a permanent and dependable support to the sizeable portion of the regional population. The entire district has been formed by the deep and fertile alluvium brought down by the Gomati, Sai, Basuhi, Barna and Pili rivers. This has been a great advantage to this region due to which it is capable of feeding a large peasant population. The pressure of demands and necessities on agriculture is increasing very rapidly, due to growing population of the district. India is a country of villages and villagers who, for obvious reasons depend, mainly on agriculture as their principal occupation. Agriculture by and large, constitutes on of the most important sector of our economy and contributes a sizeable portion (about 50 per cent) of the national income. Agricultural sector is also called 'Primary' sector because it supplies the basic necessities of the human life provides basic input for industries and in addition to this purveys goods of exports. The temporal and spatial analysis of various aspects of agriculture in Jaunpur district reveals that this sector is gradually picking up, but in view of the growing demands of a growing population, the pace of agricultural development is not up to the mark. There are various problems and constraints like soil erosion, soil degradation, usarization, water logging, flood, draught, hail storm, lack of improved (H.Y.V.) seeds, near about 50 per cent unirrigated area, lack of power supply, agricultural credit and finance, problems of godowns etc. The other problem related to agriculture like growing population, service centres are not effectively serving the rural areas, lack of education, skill and enterprise among the farmers is also a great draw back in the development of agricultural sector in the district Jaunpur.

Introduction: Specially Indian context the pressure of demands and necessities on agriculture is increasing very rapidly, due to growing population. Unless the agricultural sector is properly managed and the effective measures of population control are adopted, particularly in developing countries like India and others, the population-agriculture relationship which is already disbalanced will further deteriorate to an alarming extent. Agriculture is tilling crops and herding animals to produce many of the needs of life, especially foods, drinks and fibers. As the main activity of man throughout much of history, it is of particular interest to the geographer. Over thousand of years, agricultural pursuits became highly diverse regionally and cultivators and herders altered the environment on a massive scale. The cultural landscape over much of the earth's surface became largely agricultural. More than any other economic activity, agriculture is closely related to physical geographic variables viz. weather, climate, terrain and soil texture and qualities. But within roughly comparable physical, geographic circumstances, industrial nations are for more productive per acre than under developed ones. The prominent role of physical geographic factors in agriculture must not be allowed to obscure the importance of cultural variables. The selected methods of dealing with environmental conditions vary according to a number of cultural factors. Farmers in different societies possess different levels of

* *Associate Porfessor (Deptt. of Geography), Shri Murli Manohar Towan Post Graduate College, Ballia*

knowledge about physical, environmental factors and have different technological capability for achieving desired modifications, within the limits of such capability, a farmer may be persuaded to select particular methods and activities on the basis of perception of the relative value of various alternatives.

Study Area: Jaunpur district has an important historical background. It lies in the eastern part of Uttar Pradesh known as 'Purvanchal'. It forms the north-western portion of Varanasi and western portion of Azamgarh divisions. The district is situated between the parallels of $25^{0}24'$ North to $26^{0}12'$ North latitudes and between the meridians of $82^{0}07'$ East longitudes to $83^{0}05'$ East longitudes. It covers a geographical areas of about 4038.00 Sq.kms. out of which about 3998.00 Sq.kms. are occupied by rural and the rest 40.0 Sq.kms. by urban area. Jaunpur district is perfectly land-locked and its entire boundary is formed by land on all sides except the south west boundary by Barna river. It is surrounded on the North-West by the district of Sultanpur on the west by Pratapgarh and Allahabad, on the South-West by Sant Ravidas Nagar (Bhadohi) on the east by Ghazipur, South-East by Varanasi and North East by Azamgarh district. There are six tehsils and 21 development centres (Block) (Fig.No.01 & 02).
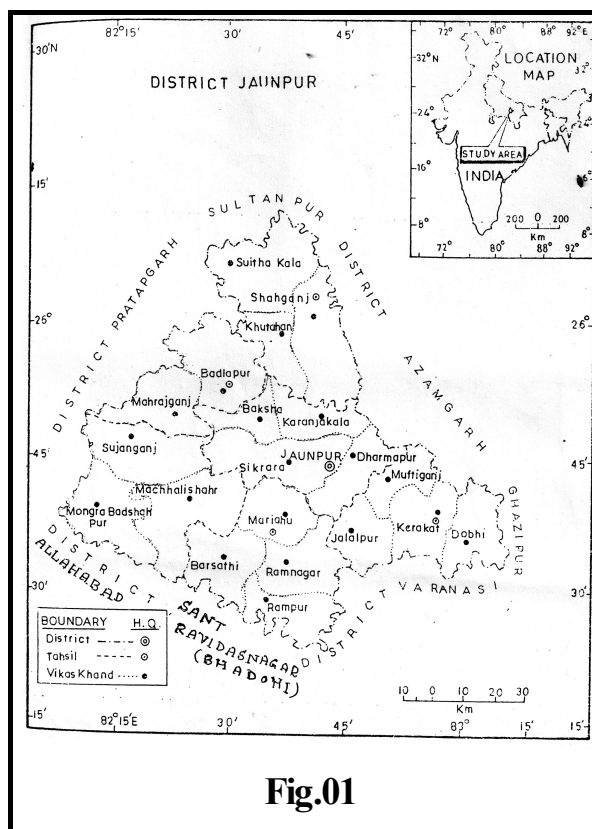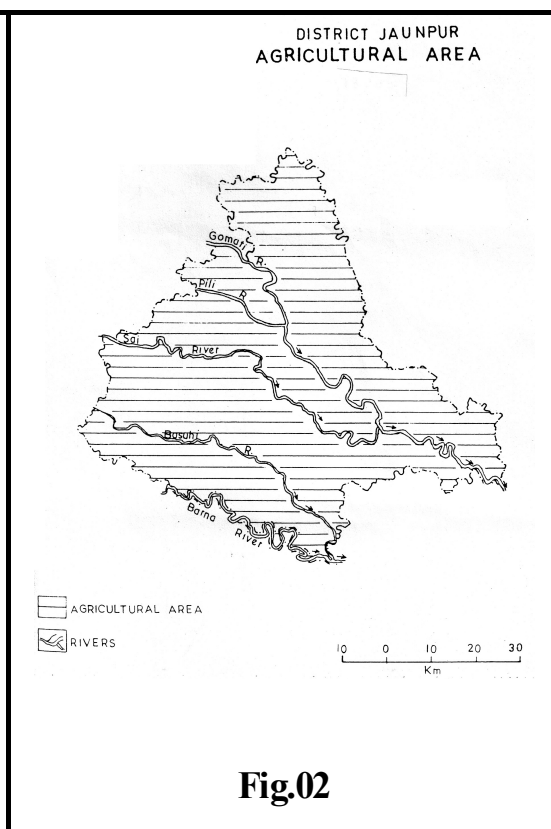
Fig.01 **Fig.02**

Objectives: The objective of the research paper is to assess the district Jaunpur agricultural development why is backward. To assess that which factors are the responsible for this situation of the district agricultural development and to access the reason of problems.

Methodology: In the research paper used secondary data of the many years of statistical year books, District census, hand book, district agriculture department available data, National Informatics Centre Jaunpur official website, Gazetteer, maps, diagrams and topographical sheets of the district and many others available literature, research papers and source books to this related fields.

Agricultural Regional Overview: The occupation of agriculture in the region is permanent as it is being carried out here for the last several centuries. Naturally, the long cultivation has now led to some serious problems like soil mining, soil exhaustion and soil erosion in the district. Thus, the system of farming in the region has been one of exploitation or predatory nature as contrasted to the ecologically balanced systems, adopted in the developed parts of the world. The fast decay and fragmentation of the joint family system in the district area unlike other parts of the country has heavily told upon the structure of land holdings, which is characterized by small farms consisting of fragmented plots giving the entire agricultural landscape a morose and lackadaisical look. The impact of entire agriculture and the modern farm technology in the farming system was quite luckewarm and sporadic but at present it is gradually picking up. This is corroborated by the fact that the traditional implements like wooden plough, harrow, hoe, sickle etc. and traditional methods relating to sowing harvesting, threshing and marketing etc. still dominate the agricultural scene in the district.

Major Problems of Agricultural Development in the District: The temporal and spatial analysis of various aspects of agriculture in Jaunpur district reveals that this sector is gradually picking up, but in view of the growing demands of a growing population, the pace of agricultural development is not up to the mark. There are various problems and constraints which hinder the growth of agriculture sector. Although the district has high percentage of cultivated area but the sizeable portion of it is handicapped with the physical problems like soil erosion soil degradation, usarization, water logging, skill constraints etc. The growth of agricultural sector due to the over use of agricultural land since long past and the traditional farming practices have also told upon the development of agricultural sector in the district. Natural calamities like flood, draught, hailstorm, frost etc. also damage the standing crops almost every year. The effective control and checks of these calamities may lead to significant results in the farming sector. The ignorance of farmers about the weather conditions also adds to this problem. The input facilities like improved seeds insecticides fertilizers and implements are available only at few service centres and are costly. Hence farmers can hardly afford to use them. About 50 per cent of the total cultivated areas is irrigated and the next 50 per cent is unirrigated. This lessens agricultural production and productivity. The infrastructural facilities like power supply, agricultural credit and finance, rural banks, land development banks, godowns, cold storages, agricultural marketing are only few and far between. Due to this the development of agricultural sector in the district has been adversely affected. Few agricultural service centres have been identified but they are not effectively serving the rural areas. The cropping intensity and the agricultural efficiency are although gradually showing up, but they are far short of the requirement, besides the land-capital productivity are also very low. Due to the growing population, the pressure of farm labour is increasing, but they hardly find full time employment in the agriculture sector. As a result, most of them try to migrate to the urban areas in search of jobs and employment. The state of animal husbandry, dairying, fisheries, forestry, poultry etc. is also not very good in district due to the indigenous breeds of the cattles poor animal feed, poor conditions of keeping, non use of innovative techniques etc. Lack of education, skill and enterprise among the farmers is also a great drawback is the development of agricultural sector in the district Jaunpur. Many other problems like lack of electricity, poor conditions of transport and roads good market facility, lack of agricultural related industries, poor animal conditions and low rate of literacy also problems of the agricultural development barriers of the district.

Spatial Plan for Agricultural Development: It is evident that there are vast potentialities far agricultural development in the study area but to utilize the potentials. Some necessary changes and modifications will have to be made particularly in the agricultural land use pattern, cropping pattern, farming practices, infrastructural and input facilities, outlook and attitude of farmers etc. The network of the planning units i.e. service centres and their tributary area, can be fruit fully utilized for the locational planning of various agricultural functions and services in the district, therefore, in view of

the problems of agricultural development in the area, some suitable and practicable policy suggestions for agricultural planning are being made and a spatial plan for the location of agricultural activities is being presented, here which if honoured will go along way in eradicating the problems and bottlenecks and paving the way for viable and accelerated development of agricultural and allied activities in the Jaunpur district (Fig. 03 & 04).

Fig.03 **Fig.04**
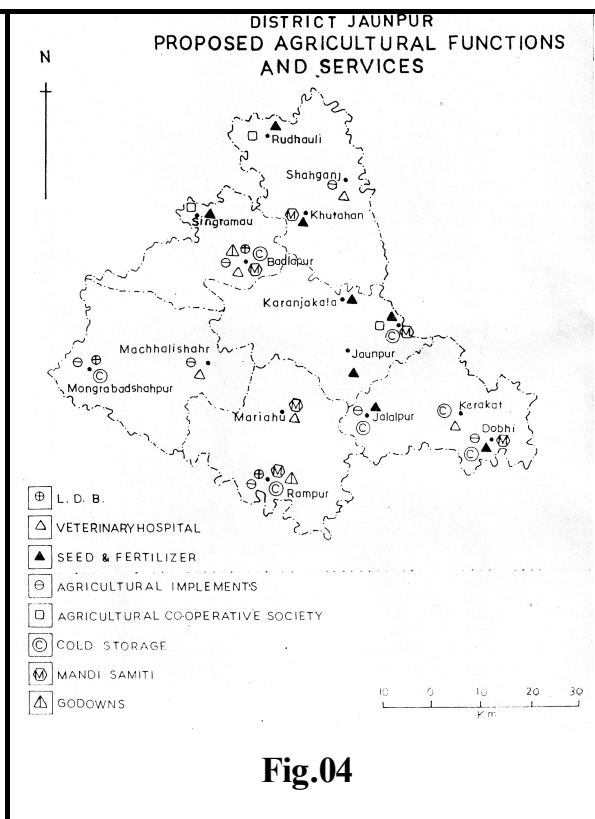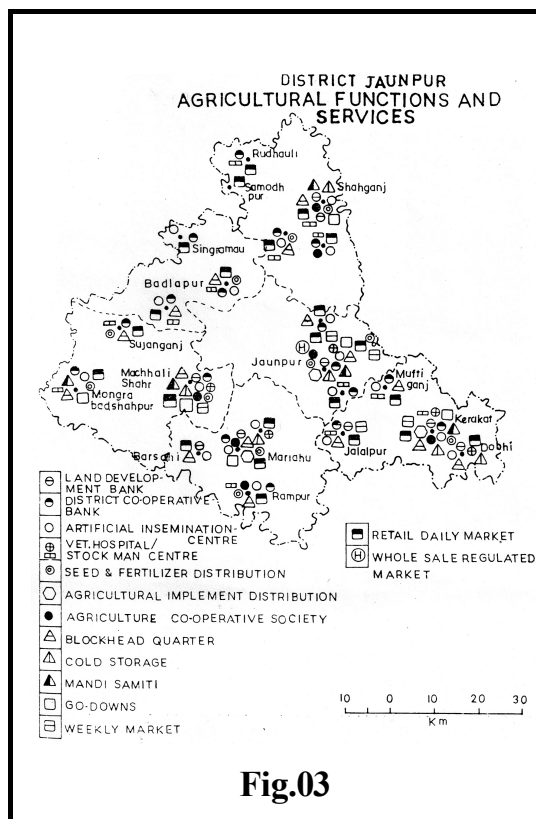
To tone up the agricultural development process in the district, the first and foremost priority should be given to expanding the agricultural area by bringing more and more lands, which are lying waste and idle like areas handicapped with soil erosion, soil degradation, water logging reed infestation etc. under the cultivation. These problems need to be arrested soon and the land should be reclaimed for agricultural utilization. Besides the deficiency of critical minerals and nutrients in the soils and their fertility levels should be accurately ascertained through the testing of soils of different parts of the district and adequate measure like green manuring. Compost manuring, pyrites, artificial manuring etc. should be adopted to recoup and maintain the fertility of the cultivated soils in the region.

The existing agriculture land use pattern should be change and modified in accordance while the fertility of various soils and availability of irrigational facilities in particular and consumption and demand pattern and cost benefit pattern in general. This will ensure better utilization of soils and irrigational resources and will increase the income and yield of the farmers.

The existing network of irrigational facilities should be expanded to match the present and future demands by opening new canals and distributaries drilling the boring tube-wells, installing pump sets, digging wells and tanks, wherever possible and necessary.

Similarly, the cropping pattern in Kharif, Rabi and Zaid seasons should also be adjusted accordingly keeping in view the quality of soils, availability of irrigation, pattern of consumption and demands.

Cropping belts should be identified in the district Jaunpur in accordance with the physical qualities of the land proper uses of the soils and the availability of water crops requiring good lands and soils and greater amount of water should be grown in the high-grade, soil water belt. Crops with average requirements in medium-grade soil-water belt and the crops with lesser requirements in low grade-soil water belt. Those parts of the district area which do not have enough amount of water or good quality of soil should be utilized for coarse crops like millets, maize etc. A suitable crop combination and crop rotation should be practiced in the district.

The use of improved farm inputs like, H.Y.V. seeds, chemical fertilizers, insecticides, sophisticated implements etc. should be encouraged and promoted by giving demonstrations and educating and training the farmers. The present distribution system of inputs is quite inadequate and irregular. The farmers have to travel long distance to avail of input facilities which involves more time, labour, cost and strains which poor farmers can not afford. It is therefore, recommended that these facilities must be made available in adequate quantities at the nearest service centres in the area.

The practice and the tradition of multiple and cash cropping should be encouraged by providing adequate irrigational input, storage and marketing facilities to ensure better utilization of land and human resources. This will help to improve the income and living standard of the farmers and at the same time it will enrich and strengthen the agricultural sector to meet its own demand as well as the demands of the manufacturing and service sectors.

The agriculture pricing should be streamlined and the exploitation of the farmers by middle man, traders and merchants should be stopped by providing adequate marketing facilities for the sale and purchase of the agricultural produce at the nearest service centres, so that the farmers may get remunerative and adequate returns from their yields.

The infrastructural facilities like storage, marketing, credit and finance, consultancy etc. are also considerably short of the present demand and their distribution is also quite irregular. Hence, the effort should be made to locate these facilities in various order of service centres from where they can be easily distributed to the farmers at least cost and effort. Adequate facilities for agricultural loans, credit and finance should be made available to the formers by the concerned government agencies at convenient places. To purchase the required inputs, the loans and credit facilities should be provided on soft terms and should be located in different service centres in the area of the district.

For an ideal locational planning for agricultural development in Jaunpur district it is recommended that all the agricultural growth promoting activities including infrastructural input, post-harvest etc. should be located at various orders of service centre identified in the area. As the service centres bear symbiotic relationship with their surrounding countryside's, the location of various growth promoting activities will promote greater functional interaction between the centres and the countrysides. Besides, the service centres will also act as potential markets for the sale and purchase of various agricultural products. Thus the network of service centres in the district area can play a significant role in promoting the cause of balanced agricultural development. Some proposed agricultural functions and services which are not available in the district is shown in the map of proposed agricultural functions.

Conclusion: The introduction emphasizes the role of agricultural sector in the socio-economic development of a region and the regional overview presents the salient features of the agricultural system of Jaunpur district. A comparative analysis of the changing pattern of land use over time and space has been attempted high light the changing nature of agricultural sector. the main sources of irrigation in the district area are tubewells, which irrigate the total area of near about 73.7 per cent, while the second source canal account for 25.2 per cent of the total irrigated area. The farmers in the district are generally use indigenous varieties of seeds of almost all crops while big farmers use improved

H.Y.V. seeds. The sophisticated agricultural implements are use in the district area by elite farmers. A greater majority of farmers use wooden ploughs and harrows while big and rich farmers use tractors and other advanced technological machines instrument. At present the government sponsored programmes of agricultural development helpful to farmers of the area. If there are many problems in the district related to the farmers, but some solutions are proposed agricultural functions and services which are not available in the district. Presently the district farmers have used advanced technology of the agricultural fields.

References

1. Nevill, H.R. 1908: Jaunpur - A Gazetteer, Vol. XXVIII, Allahbad, p. 145.
2. Uttar Pradesh District Gazetteers Jaunpur, N.L. Gupta (State editor, 1968, p. 91).
3. Zimolzak, C.E. and stanfield, C.A. 1979: The Human Landscape- Geography and Culture, Merrill Publishing Company, London, p. 259.
4. Mishra, B.N. and Tripathi, S.N. 1989: Level of Agricultural Development and its contribution to Regional Economy in Basti District, National Geographer, Vol. XXVI, No.2 Allahabad, p. 97-108
5. Thoman, R.S. and Corbin, P.B. 1974 : The Geography of Economic Activity, McGraw Hill Book Company, London, p. 72.
6. Mishra, B.N. 1992 : Agricultural Management and Planning in India, Chug Publications, Allahabad.
7. National Commission on Agriculture, 1976: Report, Part II, Policy and Strategy, Govt. of India, New Delhi, p. 1.
8. Dubey, V.N., 1993: Role of Service Centres in the Regional Development of District Jaunpur, D.Phil. Unpublished thesis, University of Allahabad, p. 232-242.
9. National Informatics Centre, Jaunpur official website “Agricultural contigency plan for Jaunpur, Govt. of India, November, 2014.
10. Comprehensive- District Agriculture Plan-C DAP Jaunpur, District Planning Committee, Jaunpur, U.P.
11. Ram, R. Agricultural development : Command area approach, Abhinav Publications, 1993, p. 82.
12. Singh, D.K. 1993: Technological changes and Agricultural Development Jaunpur, Deep & Deep Publication, New Delhi.

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Economics : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 462-466

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

Concept of Marketable Surplus Marketed Surplus and Residual Surplus

*Jaya Singh**

The term marketable surpluses is confused with the term marketed surplus but the distention between marketable surplus and marketed surplus have already been acknowledge. The marketable surplus refers to the amount which is excess or the balance left with the farmer after meeting has farm family consumption requirement. this includes food consumption for the farm household members. seeds, wages paid to the laborers contractual obligations to the land lord and the wastage undergone in the process of storage. certain quantity is also wasted on the farm and in transit. Therefore the quantity which leaves the farm after making allowances for the above use and loses constitute the marketable surplus. If the farmers consumption habits are the made of payment of labor or landlord changes over time the marketable surplus would also change accordingly.

Marketed surplus on the other hand is quantity of the portion of the marketable surplus which is actually marketed and is pleased at the disposal of non farm producers. This includes 'distress grains' which are sold by the small and marginal farmers in order to secure income for discharging their rant and other liabilities and for purchasing cloth, kerosene, salt and other necessaries of life. But it excludes storage done in expectation of higher prices marketed surplus can either be less equal or even more than the marketable surpluses and each of these situation has its economic and social implications. It is more when the farmer retains less of the produce than it required for home and farm consumption this happens under pressures of meeting immediate case needs. In such a situation farmer either purchases grains at later stage or takes grain loans from land lords to meet his requirements. The marketed surplus is less than the marketable surplus when farmer has the intention and capacity to hold some of his surplus produce of the farm for some future period of time in expectation of higher prices. Some time a farmer consumers more than normal amounts of a particular commodity in substitution for other commodities if the latter are relatively cheap. This will affect the surplus accordingly.

In other words marketable surplus represents the theoretical surplus available for disposal with which the producer is left after his genuine requirements of the family consumption. payment of wages in kind feed and seed have been met. it is the proportion of the total output that should nominally be brought for sales. In other words excess of output over sect oral retention refer to what is tanned as the marketable surplus sect oral retention of form output may be partly for consumption purposes(domestic consumption)or for further use in farming operations such as for seed, animal feed, wage payments, agricultural laborers in kind etc.

These retention can be tanned as on farm utilization or a little loosely as farm consumption. Thus the marketable surplus of farm output can be redefined as excess of output over on farm utilization (or

on form consumption) while marketed surplus refers to that portion of the marketable surplus which is being actually disposed of. a distinction is important hear between the term marketable surplus which is "extant" concept referring to the surplus planned to be marketed and marketed surplus, which is an 'exposit' concept referring to the actual amount marketed during a period (usually an agricultural year). In short the concept of marketable surplus is subjective in its approach whereas marketed surplus is objective.

A part from these facts, some difference between the marketable surplus and marketed surplus can arise on purely statistical grounds where the sale of market disposal are not fully recorded but where the database for estimating. The interpretation of the difference between the two has therefore to be done cautiously taking into the account other supporting evidences. As such concept of marketed surplus are used in the recent literature gross and net. "Gross marketed surplus" refers to the actually marketed quantities and "net marketed surplus" is the gross marketed surplus mines repurchases of food grains.

As further destination between the gross marketable surplus and the net marketable surplus at the sect oral level is made through it is not necessary at the household level. The distinction arises from the fact that within the agriculture sector itself, there are deficit households who have to purchase food. From the point of the urban sector it is the net marketable surplus, i.e. the marketable surplus net of the food purchases of all rural house holds that is relevant gross marketable surplus is important from indicating the procurable surplus because it is this surplus which should guide the policy makers as to what can be procured.

It is however necessary to see whether the marketable and marketed surpluses refer to all agricultural commodities or of food grains only obviously the marketable surplus of food grains is of special significance because the basic wage goods and also because the problem of consumption at source as a complications factor in supply response arise mainly for the food grains are not for other crops. through consumption at source can arise even in the case sugarcane (guar) it is obviously for less in comparison with food-grains. The marketable surplus of all agricultural commodities is also of significance.

In Another words, "Marketable surplus" represent the theoretical surplus left with the farmer of disposal after his genuine requirements of family consumption, payments of wages in kind. seed are met it usually exceeds the marketed surplus. Under ideal conditions or under efficient marketing system. The marketed surplus equal the marketable surplus and rarely the marketable surplus is found less than marketed surplus.

As the term indicates the quantity which is actually sold is known as marketed surplus. Actually speaking this marketed surplus is the important aspect from the point of view of marketing.

There is a general tendency among the people that in spite of sufficient surplus . available for marketing. the cultivator sells a little less than what he was with him. This practice is followed mainly with the idea of getting an advantage of an increase in the price of commodity of for precautionary measure and increases hoarding. This amount which is kept for these purposes is known as residual surplus.

The details of marketable surplus and marketed surplus of farmers of different size group in the district under consideration are given in Table in No.1.

Table No 1

Crops	Size Group in hectares	Net average total production of per family in quintals(1)	Average consumption of per family(2)		Average seed expenditure of per family(3)		Average expenditure of wages in kind of per family(4)		Marketable Surpluse 1-(2+3+4)=Marketable Surpluse			
									Marketed Surplus		Residual Surplus	
		In Quintals	In Quintals	Average Percentage	In Quintals	Average Percentage	In Quintals	Average Percentage	In Quintals	Average Percentage	In Quintals	Average Percentage
Sugarcane(Guar)	Below 2	22.10 (100)	5.53	25.02	....	....	....	....	11.63	52.62	4.94	22.35
	2-4	34.05 (100)	8.34	24.50	....	....	....	....	17.74	52.11	7.97	23.44
	4&above	72.07 (100)	17.07	23.69	....	....	....	....	37.07	51.44	17.93	24.87
Average		42.74 (100)	10.31	24.4	....	....	....	....	22.15	52.06	10.28	23.54
Potato	Below 2	21.96 (100)	9.04	41.15	1.78	8.11	1.57	7.15	7.78	35.41	1.80	8.18
	2-4	40.03 (100)	10.01	25.01	3.29	8.22	4.30	10.74	18.51	46.24	3.92	9.79
	4&above	85.65 (100)	16.70	19.50	7.9	9.22	9.85	11.50	40.75	47.58	10.45	12.20
Average		49.21 (100)	11.92	28.55	4.32	8.52	5.24	9.80	22.35	43.08	5.39	10.05

Source:- By Research Scholar

Table No.1 Shows that the average production per farmers family is increasing regularly with the size group in sugarcane and potato. But in case of sugarcane and potato this tendency of percentage of home.

Table no.1 shows that the average production per farmer's family is increasing regularly with the size group in sugarcane and Potato. But in case of sugarcane and potato the tendency of percentage of home consumption is regularly decreasing with the size groups. The percentage of home consumption in the average size is 24.4 and 28.55 percent in sugarcane and potato respectively. The consumption of sugarcane is maximum 17.07 quintals in bigger size group where as the corresponding percentage in the average size is 24.14 The consumption of potato is also maximum i.e.16.70 quintals in large size group, where as the corresponding percentage in the average size is 28.55.

The seed requirement of sugarcane is met out of sugarcane plant itself hence amount of seed is not indicated in table No.1. The wages are not paid in kind so amount and percentage of wages is not indicated in case of sugarcane.

The average amount of seed in average size is 4.32 quintals in case of potato. But the percentage of seed in average size is 8.52 in case of potato.

The amount of wages in average size is 5.24 quintals in case of potato. But the percentage of wages expenditure in average size is 9.80 in case of potato. In the case of Potato the expenditure of wages of small medium and big size group are 1.57,4.30 and9.85 quintals respectively.

The quantity of marketed surplus in quintals is always maximum in bigger size group and gradually increases with the increase of the size of holding in sugarcane and potato. But the percentage of marketed surplus of sugarcane is in decreasing tendency. In case of potato the percentage of marketed surplus are in increasing position.

The residual surplus is increasing regularly in every size of group in sugarcane (Guar)and Potato with the increase of size of holding i.e. less in the smaller size group and more in bigger size group.

In this context the amount of marketed surplus can be increased in the following three ways either in total or individually.

(A) By increasing production

(B) The lowering propensity to stock

(C) By decreasing consumption

The first alternative of namely increasing enhanced production can be modernized by increasing quantity as well as quality of the input factors. In this case maximum input is used to increase the production. Some of the amount of foreign exchange utilized for the import selected cash group should be utilized as input to increase production. It is desirable not feasible that import of selected cash crop may remain as such through. At the same time if we utilize this amount in accelerating production level will naturally rise making the country self-sufficient and free from foreign imports in the near future. So this is on the valuable methods to increase the marketed surplus through production.

The second alternative of lowering the propensity to stock is possible through rigid city enforced administrative measures against hoarding etc coupled with highly congenial reoriented marketing facilities on cooperative basis. This includes the altitude of cultivators towards government marketing or cooperative marketing with the idea of least stock rise in price etc. But if with proper planning the produce is stored in cooperative or in warehouses etc. then he will get a remunerative price for his produce as well as safety.

The third alternative namely decreasing consumption will be possible by exercising restraint and adapting to radical changes in food habits which will of course take considerable time for fruit or under such condition what is needed is a systematic planning motivated in the forgoing three direction.

REFERENCE

1. This was said to be the situation in the prewar period where cultivator was driven to what are known as “distress sales”.
2. Bensil, P.C.”Problem of Marketable surplus.”Indian Journal of Agricultural economics vol.XVI.No.1,JanMarch 1961.Page 26.
3. Panchamukhi, P.R.”Reporter’s Report on Mobilization of Rural Surpluses for Development.” Indian Journal of Agricultural Economies , Vol.XXX,No.3 1975 P.68
4. Shah, S.I. andPanday,V.K.study of Marketable surplus of wheat in critical areas of India, Published by G.B. Pant university of Agricultural and Technology, India. 1976.P.17
5. Nadkaruni M.V. Marketable surplus and market dependence. a study of a Millet Regaion.New Delhi Allied,1979.P.4
6. J.Prasad, “Marketable surplus and market performance, mittal Publication New Delhi,1989 P.45,46
7. M. Balasubramnaniam, “ The problem of marketable surplus in Indian Agricultural, “Indian Journal of Agriculture Economic Vol.XVI.No.1 Jan-March 1961 P.33
8. Mandal G.C. and Ghosh M.C. “Study of Marketed surplus of Paddy at the farm level infour East Indian Villages. “Indian Journal of Agricultural Economic Vol.XXIII.No.3 July-Sep-1968 P.28

9. B. Natarajan "Problem of marketable surplus in Indian Agricultural. Indian Journal of Agricultural Economics Vol.XVI No.1 Jan-March 1961,Page 55
10. Willaim H. Nicholls, "Agricultural surplus as a factor in economics development The Journal of Political economy ,Vol.71No.1 Feb1963.
11. Mandal, G.C. The marketable surpluses of Paddy in east Indian villages "Indian Journal of Agricultural economics, Vol.XVI No.1Jan-March1961 P.50
12. Murice Dobb,on economic theory and socialism,Routledge and Kegan Paul,Londan 1955.P.152
13. B. Natrajan.op.ct.P.55
14. Gupta R.P. Agricultural Prices in backward economy. National Publishing House Delhi 1973,P.134-135
15. G Patha Sarthy and B.V.Sudha Rao. "Production and marketed surplus of rice in the details of the south. "Agricultural situation in Indian Vol.XIX No.8 Nov.1964,P.721-725
16. Sharma P.P. "Substance crops consumption and marketable surplus.economic and political weekly, Vol.III.No.49 Dec.1968 P.1879-1983
17. Kabde,M,V. economics of Marketing co-operatives,NationalPublishing Houses Delhi 1997.P.77

* * * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Economics : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 467-469

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

Relationship Between District Co-operative Bank Credit and Kharif Agriculture Production

(A Case Study of District Sharanpur (U.P.)

*Dr. Shanwwar**

Finance has been recognized as the lifeblood of all economic activities. Like all other producers, the agriculturist also credits. According to an old proverb "Credit support the Farmers as the hangman's rope supports the hanged." This statement is fully true in the contest of Indian farmers. Thus, for stimulating the tempo of agriculture production, an adequate and timely credit, is most essential.

The fact is that farmers in under in developed countries cannot expect their credit needs to come from savings. It is so because their income from farm operation is barely sufficient to provide minimum necessities of life. Therefore, they have to rely upon outside finance. In olden days, rural debt was considered as an unmixed evil, but now time has changed altogether. Modern agriculture is a costly affair. Credit is needed to adopt new farm technology resulting in ushering of green revolution. In india, it has two fold problems to scope with. Firstly, corp productivity is very low due to traditional methods of cultivation and secondly, there is an urgent need to enhance agricultural production to get self-sufficiency and to save valuable foreign exchange. In short, effective arrangements are needed to provide credit facilities so that the agriculturest may adopt better techniques of productin.

An agriculturest may require for the purpose of production and consumption. In other words, credit needs of the farmers can be classified into two heads-

(1) Credit needed for productive purpuses

(2) Credit needed for unproductive purpose

The loans, which are used in productive operation of agriculture, are called the productive credit. The productive requirements of the farmers are lons for purchase of cattle, implements, fertilizers, inputs, better seeds and machinery etc. On the contrary, farmers need credit for consumption purpose. The loans, which are used for consumption purposes, are called the unproductive credit. Between the moment of marketing of agricultural produce and the harvesting of next crop, there is a long interval of time.

Co-operative principles have been for umlaute on the basis of experience gained by be workers in the co-operative movement in various countries. The first to state the co-operative principles were the Rockdale pioneers. A committee setup by the International co-operative Alliance in 1937 sated the following as the Rock dale pioneers principles:

(a) Open membership

(b) Democratic control

(c) Limited interest on capital

(d) Distribution of surplus to members in proportion to their transaction

* *Govt. Degree College, Churiyala, Haridwar (Uttarakhand)*

(e) Political and religious neutrality

(f) Case trading

(h) promotion of education
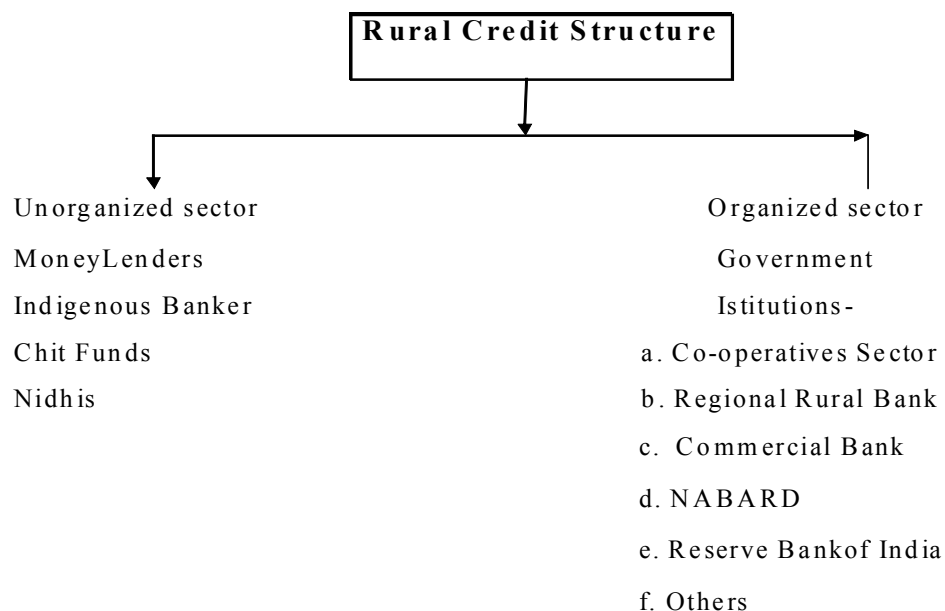
REVIEW OF LITERATURE

A. Kumar Vijaya (1999)- Liberalization of economic policies in india and its consequential effect on co-operatives in the emerging scenario should no the treated as a threat to the survival of co-operatives but as an opportunity for action on the part of the state to rid co-operatives of interference and control.

''Revamping Co-operatives in the Liberalsed Environment'' southern economist, Aug.15. No.-8

B.L. Mathure (2001)- It is suggested that the state government not to make such pronouncement which affect viability of the system. The problem of over dues is quite alarming but it is mainly subscribed by big and in fluential farmers. The rising quantum of overdose should be arrested at the earliest to create faith people in the working of financial institutions.

''Institutional Agricultural Credit: A Review'' southern economist, sep.15, No.-10

Jery, J. Thanarathnam (2006)- The study evaluated the PACBs for the their functional efficiency. The banks showed a good performance in giving loans to the farmers, particularly crop loans on the basis of specified scale of finance and jewel loans with some for nullities to meet any need of the farmers. This has implication that the positive growth trends in performance variables of the PACBs need to be sustained and strengthened.

''Working of primary Agricultural C0-operative Bank: A Case Study'' southern economist, sep.01, No.-9

The Study Area of District Saharanpur- District Saharanpur is the study area of this work. Saharanpur is one of the most district in Western Uttar Pradesh. In the year 1997 Saharanpur had been announced to be the commissioner by the State Government of U.P. and it was implemented also. It lies between $29^0$34' and $30^0$24' North Latitudes and $70^0$2' and $87^0$2' East Longitude. The geographical area of District is 3860.2 sq. Kms. out of which 336 kms. is covered by forests and the are of each of District Saharanpur is given under.

Time of the Study- Use the agriculture production and Co-operative bank credit secondry data 2000-01 to 2004-05 in this study.

Kharif Co-operative Credit and Kharif crops Production

year	Kharif Co-operative Credit (in lakh)	Growth (%)	Kharif crops Production (qtl.)	Growth (%)
2000-01	3008.52	-	75982276.91	-
2001-02	3791.61	26.02	78298066.75	3.04
2002-03	4071.93	07.39	87460989.75	11.70
2003-04	5631.72	38.30	79888387.98	-8.65
2004-05	5318.20	-5.56	78247694.41	-2.05

Source-1.District Co-operative bank ltd. Saharanpur, 2. Statistical Department Saharanpur

Relationship between the Kharif Co-operative Credit and Kharif crops Production

Growth Kharif Co-operative Credit(%) x	Deviation from assumed mean (-5.56) dx	Sq. of Deviation d^2x	Growth Kharif Crops production (%) y	Deviation from assumed mean (3.04) dy	Sq. of Deviation d^2y	dx.dy
26.02	20.46	418.611	3.04	0	0	0
07.39	1.83	3.349	11.70	8.66	74.995	15.847
38.30	32.74	1071.907	-8.65	-11.69	136.656	-382.73
-5.56	0	0	-2.05	-5.09	25.908	0

$$r = \frac{n. ? dxdy-(? dx).(? dy)}{v\ n. ? d^2x- (? dx)^2 . v\ n. ? d^2y- (? dy)^2}$$

r = -0.45

Conclusion- The study has analysed the relationship between District Co-operative bank Credit and agriculture production. Though Co-relation technique the result may be summarized as there in negative relationship between Kharif Agriculture production and kharif Co-operative bank credit. The reason before negative relationship may be that as the value of credit exceed its misuses also increase. Another reason may be that production may be declining because of number of other factors. As bad mansoon, failure of govt. policies, corporatin etc.

REFERENCE

1. Economic and Political Weekly, Oct., 18, 1997, Vol.-42
2. Rural India , march., 1999, Vol,-62 No-09
3. Southern Economist , sep.15,2001, No-10
4. Southern Economist , March 01,2006, No-21
5. Southern Economist , July 05,2006, No-05
6. Southern Economist , sep.01,2006, No-09
7. Yojana, July,2001, Vol.-45

* * * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Economics : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 470-471

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

भारतीय अर्थव्यवस्था पर कोविड-19 का प्रभाव चुनौतियाँ एवं निवारण

*डॉ. राम सनेही पाल**

किसी भी देश की अर्थ व्यवस्था पर कोरोना वायरस का कितना गहरा प्रभाव पड़ेगा ये दो स्थितियों पर निर्भर करेगा–

1. आने वाले समय में कोरोना वायरस की समस्या भारत में कितनी गंभीर होगी?

2. कब तक कोरोना वायरस पर काबू पाया जा सकता है?

कोरोना वायरस न केवल भारत बल्कि पूरे विश्व की अर्थव्यवस्था की स्थिति बद से बदतर कर रखी है। विश्व बैंक की ताजा रिपोर्ट के मुताबिक कोरोना वायरस के कारण भारत की अर्थव्यवस्था पर बहुत बड़ा असर पड़ सकता है। इस वैश्विक महामारी के बीच भारत की आर्थिक वृद्धि दर में भारी गिरावट आएगी।

वर्ल्ड बैंक के अनुमान के अनुसार वित्तीय वर्ष 2019–20 में भारतीय अर्थव्यवस्था की वृद्धि पर घटकर मात्र 5 तक आ सकती है। वहीं 2020–21 में तुलनात्मक आधार पर अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर भारी गिरावट के साथ घटकर मात्र 2.8 रहने की सम्भावना व्यक्त की है। वैश्विक महामारी कोविड–19 ऐसे वक्त में आयी है कि जब वित्तीय क्षेत्र पर दबाव के कारण पहले से ही भारतीय अर्थव्यवस्था मंदी की मार झेल रही है तथा कोरोना वायरस के कारण इस पर और अधिक दबाव पड़ा है।

वैश्विक महामारी कोविड–19 के कारण पूरे देश में लाक डाउन है इस स्थिति में सभी फैक्ट्रियाँ, ऑफिस, माल्स, व्यवसाय आदि बंद हैं, घरेलू आपूर्ति और माँग प्रभावित होने से आर्थिक वृद्धि पर इसका विपरीत प्रभाव पड़ा है वहीं जोखिम बढ़ने से घरेलू निवेश में सुधार होने में वक्त लगेगा। ऐसे में भारतीय अर्थव्यवस्था को मुश्किल दौर से गुजरना पड़ेगा। चुनौतियों से निपटने के लिए भारत को इस वैश्विक महामारी कोविड–19 को फैलने से रोकने के लिए भारत को जल्द से जल्द प्रभावी कदम उठाना पड़ेगा साथ ही स्थानीय स्तर पर अस्थायी रोजगार सृजन के कार्यक्रमों पर भी ध्यान देना होगा। विश्व बैंक ने आगाह किया है कि इस महामारी की वजह से भारत में ही नहीं बल्कि समूचा द. एशिया गरीबी उन्मूलन से मिले फायदे को भी गवाँ सकते हैं। इंटरनेशनल ऑर्गनाइजेशन के मुताविक कोविड–19 सिर्फ एक वैश्विक स्वास्थ्य संकट नहीं रहा बल्कि एक बड़ा लेबर मार्केट और आर्थिक संकट भी बना, जो लोगों को बड़े पैमाने पर प्रभावित किया है।

पूरे विश्व में बचत एवं राजस्व के रूप में जमा खरबों डालर स्वाहा हो चुका है। लाखों लोग अपना रोजगार खो चुके हैं। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के मुताविक लगभग 90 देश उससे मदद माँग रहे हैं, आई0एल0ओ0 के अनुसार कोविड–19 के कारण दुनिया भर में ढाई करोड़ नौकरियाँ खतरे में हैं। कोविड–19 के कारण चीन से होने वाले आवागमन से प्रभावित होने से स्थानीय और बाहरी आपूर्ति श्रृंखला के संदर्भ में चिन्ताएं बढ़ गयी हैं, सरकार द्वारा कोविड–19 के प्रभाव को रोकने के लिए लाकडाउन और सोसल डिस्टेंसिंग जैसे प्रयासों से औद्योगिक उत्पादों पर प्रभाव पड़ा है। लाकडाउन के कारण बेरोजगारी बढ़ी है जिससे सार्वजनिक खर्च में भारी कटौती हुई है फलस्वरूप कच्चे माल की उपलब्धता उत्पादन और तैयार उत्पादों के विवरण की श्रृंखला प्रभावित हुई है जिसे पुनः शुरू करने में कुछ समय लग सकता है। उदाहरण के लिए उत्पादन स्थगित होने के कारण मजदूरों का पलायन बढ़ा है, जिससे कंपनियों को पुनः शुरू करने और सुचारू रूप से संचालित करने के लिए एक बड़ी चुनौती बनेगी जिसका प्रभाव अर्थव्यवस्था पर होगी जो प्रगति के रूप में देखा जा सकता है। खनन और उत्पादन जैसे अन्य प्राथमिक एवं द्वितीयक क्षेत्रों में गिरावट का प्रभाव, सेवा क्षेत्र की कंपनियों पर भी पड़ेगा जो सेक्टर इस

* *महेन्द्र सिंह महाविद्यालय पिपरौली गड़िया, चकरनगर, जिला इटावा*

बुरे दौर से सबसे ज्यादा प्रभावित होंगे वहाँ नौकरियों की ज्यादा खतरा होगा। एविएशन सेक्टर में 50 प्रतिशत वेतन कम करने की खबर पहले से ही आ चुकी है। इसलिए सरकार ने कंपनियों से न निकालने की अपील की है।

विश्व बैंक के मुख्य अर्थशास्त्री टैंस टिमर ने कहा कि इस संदर्भ में भारत का परिदृश्य अच्छा नहीं है। यदि भारत में लाकडाउन आधिक समय तक जारी रहा तो यह भारत को आर्थिक परिणाम विश्व बैंक के आकलन से भी अधिक खराब हो सकते हैं। टैंस टिमर ने इस चुनौती से निपटने के लिए भारत को सबसे पहले महामारी को और अधिक फैलने से रोकना होगा। साथ ही यह भी सुनिश्चित करना होगा कि सभी को भोजन मिल सके। लाकडाउन का सबसे ज्यादा प्रभाव अनौपचारिक क्षेत्र पर पड़ेगा तथा हमारी अर्थव्यवस्था का 50 प्रतिशत डी0जी0पी0 अनौपचारिक क्षेत्र से ही आता है।

अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्था आई0एम0एफ0 ने एक टास्क फोर्स का गठन किया है। इस टास्क फोर्स का उद्देश्य है कि बिगड़ती हुई अर्थव्यवस्था को कैसे पटरी पर लाया जाय। टास्क फोर्स में आर0बी0आई0 के पूर्व गवर्नर रघुराम राजन को भी सम्मिलित किया गया है जो पहले भी आई0एम0एफ0 में कार्य कर चुके हैं। इस तरह जो कोरोना वायरस के कारण पैदा हुई हालात ने जैसे अर्थव्यवस्था का चक्का ही जाम कर दिया है। न तो कहीं उत्पादन है और न ही माँग, लोग अपने घरों में कैदी की भाँति जीवन व्यतीत कर रहे हैं। कल, कारखाने, दुकानों में ताले लगे हैं। कोरोना से ज्यादा लड़ाई अब ज्यादातर देश की सेहत और अर्थव्यवस्था दोनों का विनाश सीमित करने में जुटे हैं। भारत में संक्रमण रोकने की कवायद जोर पकड़ रही है लेकिन आर्थिक राहत में भारत पिछड़ा रहा है।

अमेरिका को मंदी से बचाने के लिए डोनाल्ड ट्रंप अपनी संसद में दो ट्रिलियन डालर के पैकेज पर मना रहे हैं। अमेरिकियों को एक मुश्त 3000 डालर दिये जाने का प्रस्ताव दिया। केन्दीय बैंक (फेडरल रिजर्व) व्याज दरें शून्य करते हुए बाजार में सस्ती पूँजी (4 ट्रिलियन डालर छोड़ने की तैयारी) का पाइप ही जैसे खोल दिया हो। ब्रिटेन सरकार ने टैंक रियायतों, कारोबार को सस्ता कर्ज, अनेकानेक अनुदान सहित 400 अरब डालर का पैकेज लाई, जो देश की जी0डी0पी0 के 15 फीसदी के बराबर है। कोरोना वायरस से बुरी तरह तबाह इटली सरकार ने 28 अरब डालर का पैकेज घोषित किया, जिसमें विमान से एलिटालिया का राष्ट्रीकरण शामिल है। हमारे देश भारत में छोटे–छोटे कारखानों और लघु उद्योगों की बहुत बड़ी संख्या है उन्हें नकदी की समस्या आयेगी क्योंकि उनकी कमाई नहीं होगी तो लोग बैंक के पास भी नहीं जा पायेंगे और ऊँचे व्याज पर कर्ज लेंगे और कर्ज जाल में फंस जायेंगे।

अनौपचारिक क्षेत्र में फेरी लगाने वाले विक्रेता, कलाकार, लघु उद्योग और सीमापार व्यापार शामिल हैं। इन वर्गों से सरकार के पास टैक्स नहीं आता है। लाकडाउन और कोविड–19 से पूरे देश में सबसे ज्यादा असर एविएशन, पर्यटन होटल सेक्टर पर पड़ने वाला है। जो सरकार के लिए चुनौती है। प्रत्येक सेक्टर में उत्पादन और खरीददारी प्रभावित हुई है। कोविड–19 का प्रभाव समूचे विश्व झेल रहा है। चीन, अमेरिका जैसे बड़ी अर्थव्यवस्था वाले देश भी इस वैश्विक महामारी कोविड–19 के आगे नतमस्तक हैं। इससे भारत विदेशी निवेश के जरिये अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने की कोशिशों को धक्का लगेगा विदेशी कंपनियों के पास भी भरपूर जैसे नहीं होंगे तो ये भी निवेश में रुचि कम लेगें।

हालांकि विशेषज्ञों का कहना है कि अर्थव्यवस्था पर इन स्थितियों का कितना गहरा असर पड़ेगा ये दो बातों पर निर्भर करेगा। एक तो आने वाले समय में भारत में कोविड–19 कितनी गम्भीर होगी तथा इस वैश्विक महामारी कोविड–19 की समस्या पर कैसे काबू पाया जाता है।

कोविड–19 वैश्विक महामारी से निपटने के लिए भारत को भी अपनी अर्थव्यवस्था को संभालने के लिए अर्थशास्त्रियों की एक कमेटी का गठन करना चाहिए जो प्रोफेशनल हों और भारतीय चुनौतियों के अनुसार भारत की अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाने के लिए चरणबद्ध तरीके से नीतिगत समाधान सरकार के समक्ष प्रस्तुत करें और सरकार उसके अनुसार अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाने के लिए उसका क्रियान्वयन करें।

संदर्भ–सूची

1. दैनिक जागरण पेपर, https://www.jagranjosh.com.
2. https://www drishtiias.com.
3. https://www orfonline.org.
4. www downtoearth.org.in.
5. https://m.economictimes.com.

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Economics : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019,, Page : 472-473

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

धारणीय विकास तथा पर्यावरण संरक्षण में लघु एवं कुटीर उद्योग की भूमिका

*डॉ. राममोहन अस्थाना**

पिछले कुछ वर्षों में विशेषज्ञों ने पर्यावरण तथा विकास के बीच के सम्बन्धों की ओर विश्व समुदाय का ध्यान आकर्षित किया है। तीव्र औद्योगीकरण की अंधाधुन्ध दौड़ में पर्यावरण का बड़े पैमाने पर ह्रास हुआ है तथा प्रकृति प्रदत्त प्राकृतिक संसाधनों का व्यापक विनाश हुआ। यदि इसी दर से प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग होता रहा तो बहुत से अनवीनीकरणीय संसाधन कुछ ही दशकों में समाप्त हो जायेगें। बहुत सारे अध्ययनों ने भी पर्यावरण के ह्रास से उत्पन्न होने वाले खतरों की ओर ध्यान आकर्षित किया है। विश्व बैंक की विश्व पर्यावरण रिपोर्ट के अनुसार पर्यावरण समस्या विकास में दो तरह से बाधक हो सकती है प्रथमतः पर्यावरण की गुणात्मकता यदि बढ़ते विकास के साथ–साथ स्वास्थ्य के लिए हानिकारक स्थिति पैदा होती है तो इसे विकास नहीं माना जा सकता है। द्वितीय पर्यावरण की होने वाली क्षति का भविष्य की उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। इसलिए औद्योगिक विकास के किसी भी बड़े कार्यक्रम में पर्यावरण संरक्षण को अवश्य शामिल किया जाना अत्यन्त आवश्यक है। इसी सन्दर्भ में धारणीय विकास की बात की जाती है।

धारणीय विकास का अर्थ है वर्तमान में लोगों की आवश्यकताओं व आकांक्षाओं को इस प्रकार करना कि आने वाली पीढ़ियों को अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने की सामर्थ्य पर कोई आँच न आये। धारणीय विकास उसी दशा में सम्भव है जब पर्यावरण का संरक्षण तथा उसमें सुधार किया जाता है। धारणीय विकास के लिए आवश्यक है कि प्राकृतिक संसाधनों तथा पर्यावरण की गुणात्मकता में ऋणात्मक परिवर्तन न हो अर्थात् पर्यावरण का और अधिक पतन न होने पाये यदि इसमें सुधार होता है तो यह अवश्य स्वागत योग्य परिवर्तन है। धारणीय विकास का सीधा सा तर्क यह है कि किसी भी देष का संसाधन आधार तथा उसके जल, वायु तथा भूमि के स्रोत उस देश के सभी पीढ़ियों की संयुक्त धरोहर है। अल्पकालीन लाभों के लिए इस धरोहर का विनाश करने का अर्थ है भावी पीढ़ियों के हितों का हनन जो की अनुचित है इसलिए आवश्यक है कि सदैव पर्यावरण के अनुकूल रहे लघु एवं कुटीर उद्योगों के महत्व को पहचानें।

आज लघु एवं कुटीर उद्योगों की चर्चा इसलिए भी आवश्यक है कि जलवायु परिवर्तन एवं ग्लोबल वार्मिंग के दौर में ये उद्योग हमारी अर्थव्यवस्था और पर्यावरण दोनों को सुरक्षित रख सकते है जो कि धारणीय विकास का भी लक्ष्य है। हमारे देष में अधिकांशतः भारी उद्योगों को ध्यान में रखकर नीतियाँ बनायी जाती रहीं है, जिससे न केवल पर्यावरण का व्यापक क्षति हुई बल्कि लघु एवं कुटीर उद्योगों की क्षमता एवं महत्व में भी कमी हुई। अनेक बार लघु एवं कुटीर उद्योग के सम्बन्ध में नीतियाँ बनी किन्तु इन सब में पर्यावरणीय पक्ष की पूर्णतया उपेक्षा किया गया जबकि धारणीय विकास के क्षेत्र में यह बात हमारे देश के लिए वरदान साबित हो सकती है।

लघु एवं कुटीर उद्योग सीमित पूँजी एवं श्रम के साथ परिवार के सदस्यों द्वारा चलाये जाते है। साथ ही साथ इसमें इस्तेमाल होने वाला कच्चा माल कृषि क्षेत्र से आता है जो कि किसानों को अतिरिक्त आय प्रदान कर कृषि

* *प्रवक्ता अर्थशास्त्र विभाग, सल्तनत बहादुर पी.जी. कालेज, बदलापुर, जौनपुर*

अर्थव्यवस्था को बल प्रदान करता है। इनकी उत्पादन प्रक्रिया पर्यावरण को कम नुकसान पहुँचाते है जो धारणीय विकास का लक्ष्य है। लघु एवं कुटीर उद्योगों के लिए महत्वपूर्ण बात यह भी है कि कुछ उत्पाद विभिन्न समुदायों की संस्कृति एवं कला से जुड़े होने के कारण हमारे सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों के अनुकूल है और प्रदूषण विस्तार भी नही करते हैं। लघु उद्योग एवं कुटीर उद्योग, बड़े उद्योगों के कारण फैलने वाले प्रदूषण एवं प्राकृतिक संसाधनों का भी बचाव करते हैं। स्थानीय उद्योग प्राकृतिक संसाधनों का उतना ही दोहन करते हैं जितनी आवश्यकता होती है प्रलोभन एवं संचय की प्रवृत्ति उनमें नहीं होती जिससे पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव भी नहीं पड़ता है। अतः वे पर्यावरण के प्रति संवेदनशील रहते है। इसके विपरीत बड़े–बड़े उद्योगपतियों में इन भावनाओं के अभाव के कारण द्रुतगति से प्राकृतिक संसाधनों का विध्वन्स कर अधिकतम लाभ प्राप्त करने की इच्छा शक्ति प्रबल होती है।

वर्तमान समय में देश में 5 करोड़ से अधिक लघु एवं कुटीर उद्योग है जो मैन्यूफ्रैक्चरिंग में 40 प्रतिशत और तिजारती निर्यात में 45 प्रतिशत का योगदान देते हैं। स्वाभाविक है कि अर्थव्यवस्था में योगदान देने के मामले में ये उद्योग बड़ी भूमिका अदा करते हैं। पूर्व में यह धारणा थी कि लघु एवं कुटीर उद्योग पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं जिससे वे उपेक्षित रहे हैं। प्रधानमंत्री स्वयं इस बात को स्वीकार कर चुके है कि लघु एवं कुटीर उद्योग पर्यावरण को कम नुकसान पहुँचाते हैं क्योंकि ये उद्योग विकास की वैकल्पिक अवधारणा पर टिके है और स्थानीय तथा सीमित जरूरतों को पूरा करते है। लघु उद्योग की पुरानी उत्पादन की तकनीक पर्यावरण प्रदूषण के लिए हलचल पैदा करती है। क्योंकि इन उद्योगों में उत्पादन की आधुनिक तकनीक आज भी नहीं प्रयोग करते हैं और साथ ही यदि ये शहरों के पास होते है तो समस्या आना आवश्यक है। भारी उद्योग पर्यावरण को दीर्घकाल में अधिक हानि पहुँचाते हैं किन्तु सरकार द्वारा उनके लिए स्पष्ट नीति निर्धारित की गई है। विकसित देश अपने विकास के लिए भारी उद्योगों पर बल देते हैं किन्तु इसका परिणाम आज जलवायु परिवर्तन, ग्लोबल वार्मिंग, ओजोन क्षरण आदि के रूप में सामने आ रहे हैं।

ग्लोबल वार्मिंग, जलवायु परिवर्तन एवं पर्यावरण क्षरण के इस दौर में अब समय आ गया है कि हम अर्थव्यवस्था में स्थानीय माँग को ध्यान दें। इससे पर्यावरण संरक्षण के साथ ही साथ प्राकृतिक संसाधनों की भी भविष्य के लिए संरक्षा होगी। स्थानीय माँग का व्यापक आधार अर्थव्यवस्था में उत्पादन एवं उपभोग को इस प्रकार बदल देगी की बुनियादी जरूरतों को प्राथमिकता मिलेगी। अर्थव्यवस्था में कुछ क्षेत्रों में भारी उद्योगों द्वारा उत्पादन करना चाहिए लेकिन बहुत से क्षेत्र ऐसे है जो गाँव, कस्बे, छोटे शहर की जरूरतों को लघु एवं कुटीर उद्योग ही भली–भाँति पूरा कर सकते है और कुछ क्षेत्रों में कर भी रहें है। इसलिए हर क्षेत्र में भारी उद्योगों की अंधा–धुंध स्थापना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है। लघु एवं कुटीर उद्योग की स्थापना पर्यावरण संरक्षा की दृष्टि से उपयोगी है।

सन्दर्भ–सूची

1. United National Development Programme, Human Development Report 1996 (New Delhi, 1996).
2. Devid W. Pearce and Feremy J. Warford, World without End: Economics Inurnment and Sustainable Development: A Summary (World Bank 1993).
3. Michael P. Todaro and Stephen C. Smith, Economic Development (Pearson Education Asia 2003).
4. Mishra S.K. and Puri V.K., Indian Economy: Himalaya Publication House 2012.
5. Yojana Monthly, Magazine.

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Philosophy : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019,, Page : 474-478

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

गीता दर्शन के दृष्टि में : कर्म

*डॉ. ब्रज किशोर प्रसाद**

गीता महाभारत का एक अंश है जो हिन्दुओं के लिए एक अमूल्य ग्रंथ माना जाता है। इस गीता में ज्ञान मार्ग, कर्म मार्ग और भक्ति मार्ग का एक सुन्दर समन्वय है। गीता–दर्शन का कार्य है परम सत्य को तर्कसम्मत तथा संश्लेषणात्मक रीति से समझाना और जानना। अनुभव मानव जीवन का मूल आधार है इसलिए गीता–दर्शन का काम हमारे अनुभव जगत् के तथ्यों का समालोचनात्मक अध्ययन करना है। कर्म भी एक मानवीय अनुभव है। इसलिए इस कर्म का अनुभव भी तार्किक ढंग से करना आवश्यक है। ईश्वर आत्मा, अमरता, पुनर्जनम, अशुभ आदि प्रत्ययों का धार्मिक अनुभव में महत्वपूर्ण स्थान तो है ही लेकिन कर्म की दृष्टि से भी इसका कोई का कम महत्व नहीं है। अतएव गीता का कर्मयोग का कार्य है उन सब प्रत्ययों का तर्कसंगत मूल्यांकन करना।

गीता हिन्दू धर्म का एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है इसलिए कर्म के दृष्टिकोण से गीता हिन्दू धर्म का एक अद्वितीय ग्रंथ माना जा सकता है। वेदों में यज्ञ, बलि, इत्यादि को कर्म कहा गया है। उपनिषद् के अनुसार कर्म सत्य की प्राप्ति का साधन है। बौद्ध दर्शन में कर्म का अर्थ शुद्धाचरण है।

आस्तिक दर्शन ईश्वर के अराधना को ही कर्म की संज्ञा देते हैं। लेकिन गीता में वर्णित कर्म अत्यन्त व्यापक है। गीता में कर्म के बारे में कहा गया है कि कर्म करना जीव का स्वाभाविक धर्म है। शुद्ध धर्म व्यक्तिगत स्वार्थ से परे होते हैं। निष्काम कर्म को ही वास्तविक कर्म माना गया है। कर्म करने के समय मन और इन्द्रियों पर पूर्ण नियंत्रण रखना आवश्यक है। गीता का आदर्श त्याग है न कि संन्यास। इस प्रकार हम देखते हैं कि गीता में वर्णित तीनों मार्गों ज्ञान, कर्म एवं भक्ति में परस्पर कोई विरोध नहीं है। बल्कि ज्ञान, भक्ति और कर्म मनुष्य के जीवन के तीन अंग हैं कर्म में इन तीनों का होना आवश्यक हैं। कुछ लोग गीता को कर्म प्रधान मानते हैं, कुछ लोग ज्ञान प्रधान, तो कुछ लोग भावना प्रधान मानते हैं। कर्म प्रधान लोगों के लिए कहा गया है कि निष्काम कर्म ईश्वर में अराधना के तुल्य है। ज्ञानियों के लिए गीता सूक्ष्म बुद्धिजन्य ब्रह्म जीव जगत् संबंधी तत्वों को जानने का उपदेश देती है। मुक्ति की अवस्था में ईश्वर के वास्तविकता का ज्ञान भी रहता है। ईश्वर के लिए अपार प्रेम भी रहता है और उसी के अनुकूल कर्म भी करना पड़ता है इसलिए गीता कर्म प्रधान ग्रंथ है। भगवान श्रीकृष्ण गीता में कर्मयोग की विशद् व्याख्या करते हैं। ज्ञान भक्तियुक्त कर्म–योग ही गीता का सार है। प्रत्येक व्यक्ति को कर्मशील रहना चाहिए। मानव जीवन में दो लक्ष्य हैं– आत्म लाभ और लोक संग्रह। आत्म लाभ ईश्वर लाभ है। इसके लिए व्यक्ति को सतत् कार्यशील रहना पड़ता है।

आत्म लाभ के बाद व्यक्ति लोक संग्रह अर्थात् लोक कल्याण के लिए कर्म करता है। ईश्वर के स्वभाव से ही इस लोक या विश्व की उत्पति हुई है। वह इसकी रक्षा करता रहता है। व्यक्ति को भी विश्व एवं मानव समाज की रक्षा के लिए कर्म करते रहना चाहिए। कर्म के संबंध में गीता में तीसरे अध्याय में चौथे श्लोक में कहा गया है कि–

न कर्मणामनारन्नैष्कर्म्यं पुरुषीश्नुते।
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति।।

अर्थात बिना कर्म किये स्वातंत्र्य लाभ की प्राप्ति संभव नहीं है। कर्म संन्यास से संन्यास की सिद्धि नहीं मिल सकती है। इसलिए कर्मों का प्रारंभ नहीं त्यागना चाहिए। कर्मों का आरंभ न करने से ज्ञान नहीं होता।

* *एम.ए., पी-एच.डी., प.वि.वि., पटना, हिलसा, नालन्दा, बिहार*

अतः कर्मों से ही ज्ञान होता है। क्योंकि कर्म ज्ञान प्राप्ति करने का साधन है।

गीता के तीसरे अध्याय के आठवें श्लोक में कहा गया है कि–

नित्य कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ध्यकर्मणः
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिध्येदकर्मणः।।

अर्थात् शरीर यात्रा भी बिना कर्म किये नहीं हो सकती।

गीता के तीसरे अध्याय के सोलहवें श्लोक में कहा गया है कि–

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तमतीह यः
अधायुरिन्द्रियारामों मोधं पार्थ स जीवित।।

अर्थात् कर्म सृष्टि का नियम है जो व्यक्ति इस नियम का उल्लंघन करता है जीना व्यर्थ है।

गीता मुख्य रूप से निष्काम कर्म की शिक्षा देता है। ईश्वर–भक्ति का सांसारिक जीवन और उसके कर्तव्यों के पालन करने के साथ कोई विरोध नहीं है। अपने वर्ण और आश्रम के अनुसार सारे संसार के हित के निमित काम करने से ही भगवान प्रसन्न होते हैं और सिद्धि देते हैं।

जिस परमात्मा से सब भूतों की उत्पति हुई है और जिससे यह सब जगत व्याप्त है उसको अपने कर्तव्य द्वारा प्रसन्न करके मनुष्य परम सिद्धि को प्राप्त होता है। गीता के अठारहवें अध्याय के छियालिसवें श्लोक में कहा गया है कि–

यतः प्रवृतिमूर्तानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्मचर्य सिद्धि विन्दति मानवः।।

अर्थात् प्राणिमात्र की जिससे प्रवृति हुई है जिसने सारे जगत् का विस्तार किया है अथवा जिससे सब जगत् व्याप्त है, उसकी अपने (स्वधर्मानुसार प्राप्त होने वाले कर्मों के द्वारा) केवल वाणी अथवा फूलों से ही नहीं पूजा करने से मनुष्य को सिद्धि प्राप्त होती है।

अतएव ज्ञान और भक्ति का कर्म के साथ कोई विरोध नहीं है। परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करके उसको प्रसन्न करने के लिए ही मनुष्य को अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिए। कुछ न कुछ कर्म तो मनुष्य को करना पड़ता है। इसके बिना जीवन यात्रा संभव नहीं है। अतएव मनुष्य को यह जानना चाहिए कि कौन करे, कौन न करे, किस भाव से करे, किस उद्देश्य से करे, किससे न करे। कोई भी पुरुष किसी काल में क्षण मात्र भी बिना किये नहीं रहता। सब लोग निःसंदेह प्रकृति के गुणों द्वारा परवश हुए कर्म करते हैं।

गीता के तीसरे अध्याय के पाँचवें श्लोक में कहा गया है कि–

न हि कश्चितक्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत।
कार्यते ध्यवशः कर्म सर्वः प्रकृति जैर्गुणः।।

अर्थात क्योकि कोई मनुष्य कुछ न कुछ कर्म किया बिना क्षण भर भी नहीं रह सकता है। प्रकृति के गुण प्रत्येक परतन्त्र मनुष्य को सदा कुछ न कुछ कर्म करने में लगाया हीं करते है।

मनुष्यों को अपने वर्णाश्रम और परिस्थिति तथा धर्मशास्त्रों का आदेशों अनुसार अपने कर्त्तव्यों का निश्चय करना चाहिए, क्योंकि वर्ण आदि की व्यवस्था भगवान ने समाज को ठीक–ठाक चलाने के लिए ही की है। यदि भगवान संसार में अवतार भी लेते हैं तो स्वयं शास्त्रानुकूल वर्ण और आश्रम तथा परिस्थितियों के अनुसार आचरण करते हैं। संसार में जितने भी महापुरुष हुए हैं उन्होनें ऐसा ही किया है और ऐसा करने से परम पद की प्राप्ति की हैं। तू नियमतः कर्मों को कर क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना ही श्रेष्ठ है।

गीता की तीसरे अध्याय के आठवें श्लोक में कहा गया है कि–

नियतं कुरू कर्म त्वं कर्म ज्यासो ध्यकर्मणः
शरीर यात्रापि च ते न प्रसिध्येदकर्मणः।।

अर्थात् भगवान श्री कृष्ण कहते हैं कि मनुष्य को नियमित कर्म करना चाहिए क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना कहीं अधिक अच्छा है। इसके अतिरक्त तू कर्म न करेगा, तो (भोजन भी न मिलने से) तेरा शरीर निर्वाह तक न हो सकेगा।

अपने मन से ही इच्छानुसार जो चाह कर लिया इससे सिद्धि नहीं मिलती। शास्त्रों ने जिस काम को उचित बतलाया है उसी को करना चाहिए। जो पुरुष शास्त्र की विधि का त्याग कर अपनी इच्छा से अनुकूल ही आचरण करता है वह न सिद्धि को प्राप्त करता है, न परम गति को, और न सुख को। इसलिये तेरे लिए कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य की व्याख्या में शास्त्रों की ही प्रमाण है, ऐसा जानकर तो तू शास्त्र–विधि से नियत किये हुए कर्म को ही कर।

गीता के सोलहवें अध्याय के तेइसेवें और चौबीसवें श्लोक में कहा गया है कि–

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः
न स सिद्धिमकप्नोति न सुखं न परां गतिम्।।
तस्माच्छात्रं प्रमाणं से कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहाईसि।।

अर्थात जो शास्त्रोक्त विधि छोड़कर मनमाना करने लगता है, उसे न सिद्धि मिलती है, न सुख मिलता है, और न उत्तम गति ही मिलती है। इसलिए कार्य–अकार्य व्यवस्थित कर अर्थात् कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य का निर्णय करने के लिए तुझे शास्त्रों को प्रमाण मानना चाहिये। और शास्त्रों में जो कुछ कहा है, उसकों समझकर तद्नुसार इस लोक में कर्म करना तुझे उचित है।

महापुरुषों का सदा ही सदाचारी होना चाहिए क्योंकि साधारण जन तो महापुरुषों का अनुकरण हीं किया करते हैं।

श्रेष्ठ पुरुष जो–जो आचरण करता है, अन्य पुरुष भी उसका अनुसरण किया करते हैं। वह पुरुष जो कुछ करता है प्रमाण हो जाता है और साधारण लोग उसके अनुसार चलते हैं। यदि मैं स्वयं आलस्य के कारण कर्म न करूं तो, हे अर्जुन! सब मनुष्य मेरे बर्ताव के अनुसार बर्ताव करने लगेंगे। यदि मैं कर्म न करूँगा तो ये सब लोग नष्ट हो जायेगें और मैं समाज में गड़बड़ करने वाला तथा पूजा का नाश करने वाला होऊँगा।

गीता के तीसरे अध्याय के इक्कीसवाँ और चौबिसवाँ श्लोक में कहा गया है कि–

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्ततदेवेतरों जनः
स चत्प्रमाणं कुरते लोकस्तदनुवर्तते।।
उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्या कर्म चेदहम्।
संकटस्य च कर्ता स्यामुपहन्या मिमाः प्रजाः।।

अर्थात श्रेष्ठ जो कुछ करता है, वही अन्य अर्थात् साधारण मनुष्य भी किय करते हैं। वह जिसे प्रमाण मानकर अंगीकार करता है, लोग उसी का अनुकरण करते हैं। ''जो मैं कर्म न करूँ तो ये सारे लोक उत्पन्न अर्थात नष्ट हो जाएँगे, मैं संहारकर्त्ता होऊँगा और इन प्रजाजनों का मेरे हाथ से नाश होगा। जनकादि ने भी कर्म करते हुए ही परम सिद्धि को प्राप्त किया था। इसलिए प्रजा को सुव्यवस्थित अवस्था में रखने के लिए कर्म करना ही चाहिए।

गीता तीसरे अध्याय के बीसवें श्लोक में कहा गया है कि–

कर्मणैव हि संकिद्धिमास्थिता जनकादयः
लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्चन्कर्तुमर्हसि ।।

अर्थात् जनक आदि ने भी इस प्रकार कर्म से ही सिद्धि पाई है। इसी प्रकार लोक संग्रह पर भी दृष्टि देकर तुझे कर्म करना ही उचित है।

गीता में कर्मफल तथा कर्मबन्धन के मुक्ति के संबंध में कहा गया हैं कि प्रत्येक कर्म का फल होता है और उस भले या बुरे फल को हमें भोगना ही पड़ता है, तो कर्म शुभ हो अथवा अशुभ, यह एक प्रकार का बन्धन ही हुआ, जबकि मनुष्य की आन्तरिक इच्छा है सब बन्धनों से छुटकारा पाना। कर्म करते हुए भी जीव उसके बन्धन में न पड़े इसका क्या उपाय है, उसी उपाय का निर्देश करना गीता का मुख्य उपदेश है।

गीता के अठारहवें अध्याय के अड़तालिसवें श्लोक में कहा गया हैं कि–

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत्।
सर्वारम्भा हि दोषण धूमेनाग्मिरिवावष्ताः।।

अर्थात् जो कर्म सहज हे अर्थात् जन्म से ही गुण, कर्म विभागानुसार नियत हो गया है यदि वह सदोष हो तो भी उसे न छोड़ना चाहिए। चारो वर्णों के संबंध में कहा गया है कि सभी वर्णों का अपना एक स्वाभाविक गुणानुसार कर्म विभक्त है और उसी के अनुकूल करना उनका कर्त्तव्य है।

जो पुरुष सब कर्मों को परमात्मा को अर्पण करके आसक्ति को त्याग कर कर्म करता है वह जल में कमल के पत्ते के सदृश्य पाप से लिप्त नहीं होता।

जैसे–गीता के पाँचवें अध्याय के दसवें श्लोक में कहा गया है कि–

ब्रह्म ध्याधाम कर्नाणि संड्म त्क्त्वा करोति यः।
भिप्यते न स पापेन पद्यपत्रमिवाभ्भसा।।

अर्थात् जो ब्रह्म में अर्पण कर आसक्तिविरदित कर्म करता है, उसको वैसे ही पाप नहीं लगता, जैसे कि कमल के पत्ते को पानी नहीं लगता।

गीता के तीसवें अध्याय के नवें श्लोक में कहा गया है कि–

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थ कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचार।।

अर्थात अनासक्ति से रहित यज्ञ के निमित्त ही आचरण करना चाहिए। जो व्यक्ति अनासक्त होकर निरंतर अपने कर्त्तव्य कर्मों को भली–भाँति करता है वह परम पद को प्राप्त होता है। फल की वासना रखकर कर्म करने वाले बड़े ही दीन व्यक्ति होते हैं।

गीता के दूसरे अध्याय के उनचासवें श्लोक में कहा गया है कि–

दूरेण ध्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय।
बुद्धों शरणमन्विच्छ कृपाः फलहेतवः।।

अर्थात् फल की वासना रखकर कर्म करने वाले व्यक्ति बड़े ही दीन होते हैं अर्थात् जो बुद्धि से युक्त होकर कर्म करते हैं वे व्यक्ति लोक में पाप और पुण्य से लिप्त नहीं रहते हैं। अतः पाप, पुण्य से बचकर कर्म करने की चतुराई को ही कर्म योग कहा गया है।

गीता में कर्म का मूल उद्देश्य है निष्काम कर्म। गीता के द्वितीय अध्याय के सैंतालिसवें श्लोक में कहा गया है कि–

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतूर्भूर्मा ते सद् गोऽस्त्वकर्मणि।।

अर्थात् कर्म में ही तुम्हारा अधिकार हो, फल में कभी नहीं, तुम कर्मफल का हेतु भी मत बनो, अकर्मण्यता में भी तुम्हारी आसक्ति न हो। इसका मूल उद्देश्य यह है कि गीता कर्म के त्याग के बदले कर्म में त्याग का उपदेश देती है। कर्मफल से छूटने के लिए कर्म को छोड़ने की आवश्यकता नहीं है।

गीता के छठे अध्याय के प्रथम श्लोक में कहा गया है कि–

अनाश्रितः कर्मफलं कार्य कर्म करोति यः।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निं चाक्रियः।।

अर्थात जो कर्म फल में आसक्ति त्याग कर कर्त्तव्य कर्म करता है वही संन्यासी है, वही योगी है। अग्नि को न रखने वाला क्रियाहीन कुछ भी नहीं है। काम्य कर्मों के त्याग को ही विद्वान लोग संन्यास कहते हैं सब कर्मो के फल को ही मनीषि त्याग बताते हैं।

इन सब गीता–वाक्यों का निचोड़ यह है कि भगवान् श्रीकृष्ण की प्रसन्नता के लिए और उनकी आज्ञा से स्वाभाविक कर्त्तव्य को फ ल की आकांक्षा छोड़कर केवल इस भाव से करते रहना चाहिए कि उसके करने से लोक–कल्याण और आत्मशुद्धि होगी। ऐसा करने से मनुष्य कर्मों के भले–बुरे फलों को भोगने का भागी नहीं होता। कर्मों के फलों से बचने का यही एक उपाय है कि उनका सर्वथा त्याग न हो क्योंकि न तो कर्मों का पूर्ण त्याग सम्भव है और न मात्र कर्म त्याग से मनुष्य कर्म–बन्धन से छुटकारा पाता है, जब तक मन से उनका त्याग न हुआ हो। इच्छा मात्र से ही कुछ भी कर्म न करता हुआ मनुष्य बन्धन में पड़ जाता है।

अतः गीता दर्शन कर्म पर विशेष बल देता है। निष्काम कर्म सर्वोत्तम कर्म है तथा कर्मानुसार फल भोगने के लिए यह आत्मा पुनर्जन्म को प्राप्त करती है क्योंकि फल का भोग यह आत्मा शरीर धारण करने पर ही करती है।

सन्दर्भ सूची

1. गीता रहस्य, तीसरा अध्याय, श्लोक 4. पृ. 655.
2. गीता रहस्य, तीसरा अध्याय, श्लोक 8. पृ. 658.
3. वही, 16, पृ. 663.
4. वही, अठारहवाँ अध्याय, श्लोक 46, पृ. 860
5. वही, तीसरा अध्याय, श्लोक 5, पृ. 655.
6. वही, श्लोक 8, पृ. 658.
7. वही, सोलहवाँ अध्याय, श्लोक 23, पृ. 832
8. वही, 24 पृ. 833.

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Philosophy : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019,, Page : 479-484

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

गीता दर्शन

*डॉ. दल सिंगार सिंह**

गीता एक समग्र दर्शन है। इसके भीतर अनेक तात्विक चिन्ताओं का समाधान विद्यमान है। गीता वस्तुतः कामधेनु एवं कल्पवृक्ष के समान है। सन्त ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं कि, ''यह गीतारूपी माता कभी ज्ञानी तथा अज्ञानी सन्तान में कोई भेद नहीं करती है।''[1] भगवान श्रीकृष्ण की यह वांगमयी मूर्ति है। बौद्ध शब्दावली में कहा जाए तो यह भगवान श्रीकृष्ण का 'धर्मकाय' है। इसका प्रत्येक अक्षर ब्रह्म–रस से सुगन्धित है। समस्त ज्ञान तथा दर्शन का मन्थन करके व्यास देव जी की बुद्धि ने गीता को उत्पन्न किया है। यह किसी को भी 'न' नहीं कहती है। चाहे कोई उसका केवल श्रवण करे, चाहे कोई पाठ करे, और अर्थ–ग्रहण करने वाले की तो बात ही और है। यह सभी को मोक्ष रूपी प्रसाद बराबर–बराबर ही बांटती है। सन्त ज्ञानेश्वर के शब्दों में, ''मोक्ष से कम तो वह कभी किसी को देती ही नहीं और सभी को एक सिरे से ही मोक्ष देती है।''[2] गीता–तत्व का आँकलन प्रमाण–प्रमेय–विषय बुद्धि के द्वारा संभव नहीं है। गीता में उपनिषदों का वेदान्त दर्शन का सार–संकलन है। वस्तुतः उसमें उपनिषदों के ज्ञान का ही गायन हुआ है और उसका अन्तिम मन्तव्य उससे भिन्न नहीं है। आचार्य शंकर ने गीता दर्शन को इसी दृष्टि से देखा है। उनके अनुसार गीता शास्त्र का प्रयोजन, संक्षेपतः परम निःश्रेयस की प्राप्ति ही है और परम निःश्रेयस् का अर्थ है–''इस सहेतुक संसार की आत्यन्तिक उपशान्ति।[3] सर्व–कर्म–संन्यास के द्वारा आत्मज्ञान की प्राप्ति, परम निःश्रेयस् के रूप में, गीता का प्रतिपाद्य विषय है।

गीता महाभारत के भीष्म पर्व के 25वें अध्याय से लेकर 42वें अध्याय तक का अंश है। इसमें कुल अठारह अध्याय हैं, जिनमें भगवान श्रीकृष्ण द्वारा कुरुक्षेत्र–युद्ध में अर्जुन को दिया गया उपदेश है। यह वेदान्तदर्शन का सार है। कृष्ण रूपी गोप ने अर्जुन रूपी बछड़े को लगाकर उपनिषदों रूपी गायों से गीतामृत को दुहा है। गीता एक प्रकार से सम्पूर्ण महाभारत के दर्शन का संक्षेप है और उसका प्रभााव भारतीय दर्शन पर सर्वाधिक है। इस ग्रन्थ का महत्व इसी से आंका जा सकता है कि यह सभी प्रकार के वेदान–तद्दर्शनों का एक प्रस्थान बन गया है और इस पर जितने भाष्य लिखे गये हैं उतने भाष्य किसी भी अन्य ग्रन्थ पर नहीं लिखे गये। वेदान्त की प्रस्थानत्रयी में यह स्मृति प्रस्थान के रूप में है। महात्मा गांधी ने गीता को जगन्माता बताया है क्योंकि इसके द्वार हमेशा सबके लिए खुले हैं। कुरुक्षेत्र युद्ध में पाण्डव–कौरव सेना युद्ध के लिए खड़ी है। अर्जुन के सारथि श्रीकृष्ण उनके रथ को दोनों सेनाओं के मध्य ले जाकर खड़ा कर देते हैं। अर्जुन अपने गुरुजन, परिजन, सम्बन्धियों से लड़ने से साफ मना करते हैं और कहते हैं कि ऐसा युद्ध जीत लेने से, ऐसे रक्तरंजित राज्य–सुख का उपभोग करने से कोई लाभ नहीं, वह उन सबसे नहीं लड़ेगा, चाहे ये सब मुझे मार ही डालें। श्रीकृष्ण अर्जुन को समझाते हैं कि क्षत्रिय राजपुत्र और धर्मरक्षक होने के नाते उसका कर्तव्य है कि वह अधर्म एवं अशुभ से लड़े और धर्म को विजयी बनाये। युद्ध करना उसका धर्म है। उसे अपने स्वभाव एवं स्वधर्म का पालन करना चाहिए। गीता का उपदेश सम्पूर्ण होने पर श्रीकृष्ण ने अर्जुन से केवल यही कहा कि 'जैसी तुम्हारी इच्छा हो वही करो ('यथेच्छसि तथा कुरु' 18/63)।' अर्जुन ने उत्तर दिया कि 'आप की कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया है, अतः मैं, जैसा आपने कहा, वही करूँगा ('करिष्ये वचनं तव' 18/73)।

* *अध्यक्ष (दर्शनशास्त्र विभाग), तिलकधारी कॉलेज, जौनपुर*

तत्व मीमांसा—गीता कोई दर्शनशास्त्र तो है नहीं, फिर भी इसका उद्देश्य भी वही है जो हमारे दर्शनों का है। इसमें तीन प्रकार के तत्वों का वर्णन है— (1) क्षर; (2) अक्षर और (3) पुरुषोत्तम। इस संसार के सभी जड़—पदार्थ क्षर हैं। इसे ही 'अपरा प्रकृति', 'अधिभूत', 'क्षेत्र', और 'अश्वत्थ' भी कहते हैं। यह विकारों, कारणों और भूतों का मूल कारण है। आकाश आदि पंच भौतिक परमाणु एवं पंच तन्मात्राएँ 'विकार' हैं। मन, अहंकार बुद्धि, पंचज्ञानेन्द्रियां एवं पंच कर्मेन्द्रियाँ 'करण' कहलाते हैं। इनके अतिरिक्त उनसे उत्पन्न राग, द्वेष, सुख, दुःख, परमाणुओं का संघात, चेतना एवं धृति—ये 'क्षर' हैं। इनमें से पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मनस्, बुद्धि एवं अहंकार—ये आठ भगवान की 'अपरा प्रकृति के रूप हैं।'[4] अपरा प्रकृति भगवान के साथ अनादि काल से सम्बद्ध है। यह अविशुद्ध है। इससे बन्धन की प्राप्ति होती है। प्रलय—काल में समस्त भूत इसी में लीन हो जाते हैं और इसी से पुनः सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न होते हैं।[5] इसी प्रकृति को अधिष्ठान मानकर भगवान सृष्टि की रचना करते हैं।[6] इसीलिए भगवान ने इस प्रकृति को 'ममयोनिर्महद्ब्रह्म' और अपने को 'अहंबीजप्रदः पिता' कहा है।[7] यह प्रकृति भगवान की माया से सर्वथा भिन्न है। इसीलिए भगवान ने स्वयं कहा है कि अपनी 'प्रकृति' को अधिष्ठान् मानकर अपनी माया की सहायता से मैं संसार में अवतार लेता है।[8]

'अक्षर तत्व' को जीव, परा प्रकृति, अध्यात्मा, पुरुष एवं क्षेत्रज्ञ भी कहते हैं। यह अपरा प्रकृति से उच्च स्तर का है और यही जगत् को धारण करता है।[9] भूतों का कारण, भगवान का अंश एवं मरने पर एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर में प्रवेश करने वाली एवं इन्द्रियों के द्वारा विषयों का भोग करने वाली यह भगवान की दूसरी प्रकृति है। केवल अविद्या के कारण यह तत्व भगवान से भिन्न दिखलाई पड़ता है।[10] यह उपद्रष्टा, साक्षी, अनुमन्ता, भर्ता, भोक्ता, महेश्वर और परमात्मा भी कहलाता हे। जीव तथा भगवान में वास्तविक भेद न होने के कारण भगवान के सभी गुण जीव में भी हैं किन्तु अविद्या के प्रभाव से ये गुण जीवित दशा में अभिव्यक्त नहीं होते।

इनमें 'पुरुशोत्तम' प्रधान तत्व है। इन्हें परमात्मा, ईष्वर, वासुदेव, कष्ष्ण, प्रभु, साक्षी, महयोगेश्वर, ब्रह्म, अधियज्ञ, विष्णु, परमपुरुष, परम अक्षर, योगेश्वर आदि भी कहते हैं। सभी भूतों के उत्पन्न एवं नाश करने वाले यही है। त्रिगुणमयी 'माया' इनकी दैवी शक्ति है, जो सदैव इनके साथ रहती है। यह माया अचिन्त्य है। इसे न सत् और न असत् कह सकते हैं। पुरुषोत्तम सर्वव्यापी है। पुरुषोत्तम प्रभा से अन्य सभी वस्तुएं प्रकाशित होती हैं। पुरुषोत्तम निर्गुण होते हुए भी सभी गुणों का भोग करने वाले है। गीता में साकार तथा निराकार दोनों रूपों में यह पुरुषोत्तम वर्णित है। यह सबके अति निकट होते हुए भी सबसे दूर है। यह अखण्ड हैं किन्तु सभी जीवों में अलग—अलग हैं। यह ज्ञान स्वरूप हैं। ज्ञानी लोगों को इनका दर्शन होता है। सम्पूर्ण जगत् इनमें लीन होता है। त्रिगुणातीत होते हुए भी यह तीनों गुणों को उत्पन्न करते हैं। योगनिष्ठ ज्ञानी से यह अत्यन्त प्रेम करते हैं। वस्तुतः ज्ञानी इनके अपने स्वरूप हैं। भगवान स्वयं कहते हैं कि 'मेरे इस स्वरूप को साक्षात् करने वाले भक्त मेरे भाव को प्राप्त करते हैं।[11] भगवान कहते हैं कि जगत् की सभी जड़ एवं चेतन वस्तुएँ पुरुषोत्तम के ही स्वरूप हैं। उपनिषद् भी कहते हैं कि 'सर्वखल्विदं ब्रह्म'। गीता में कहा गया है, ''मन्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय'' (717) और ''वासुदेवः सर्वमिति'' (719)।

प्रलयकाल में सम्पूर्ण जगत् प्रकृति में लीन हो जाता है और प्रकृति भगवान से अलग होकर रहती है।[12] भगवान की विभूति अन्तः तथा बाह्य जगत् में सर्वत्र है। यह अपने ज्ञान—दीप के द्वारा अपने भक्तों के अज्ञान को नाश कर उनके अपराधों को क्षमा करते हैं। भगवान कहते हैं कि मेरा जन्म तथा कर्म सभी दिव्य है। अर्जुन को अपने अवतार का उद्देश्य भी बतलाते हैं।[13] प्रत्येक जीव को जैसे संसार में आने के लिए कर्म एवं पंच भूतों की आवश्यकता है, वैसे ही भगवान को अवतार लेने के लिए, संसार में रहने के लिए एक उपयुक्त शरीर ग्रहण करने के लिए, साधुओं को रक्षा करने के लिए, दुर्जनों का नाश करने के लिए तथा धर्म को स्थिर करने के लिए इच्छाशक्ति और पंचभूतों की अपेक्षा होती है—''प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाभ्यात्ममायया'' (4/6)। प्रकृति और माया शब्द का प्रयोग गीता में भिन्न—भिन्न अर्थों में किया गया है।

अपने कर्मों के द्वारा संसारी लोगों को कर्म करने की शिक्षा देने के लिए भगवान श्रीकृष्ण स्वयं कर्म करते हैं। भगवान् कहते हैं कि इस जगत् में उन्हें कुछ भी करने को नहीं है फिर भी वे कर्म करते हैं। वे संसार के कल्याण

के लिए मार्ग प्रदर्शक हैं। भक्तों की रक्षा के लिए सर्वदा सब तरह से तैयार रहते हैं। वे ज्ञान के तो स्वरूप ही हैं। इस प्रकार पुरुषोत्तमरूप भगवान 'कृष्ण' दार्शनिक परम तत्व हैं, सामाजिक सर्वश्रेष्ठ नियन्ता हैं और लौकिक जगत को कल्याणपथ के प्रदर्शक एवं धर्म के पालक तथा संस्थापक भी हैं।[14] गीता में वासुदेव परम तत्व हैं। मनुष्य रूप में होते हुए भी वे दिव्य हैं। वे निर्गुण व सगुण दोनों हैं।

ईश्वर–प्राप्ति का मार्ग (योग)–ईश्वर प्राप्ति के उपाय को गीता में योग कहा गया है। गीता में योग शब्द व्यापक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है और योग में ध्यान, ज्ञान, कर्म और भक्ति सभी का समन्वय है। योग का शाब्दिक अर्थ है–मिलन, अर्थात् जीवात्मा का परमात्मा से मिलन। यह मिलन इतना प्रगाढ़ कि दोनों दो न रहकर एक हो जावें। दुःख से आत्यन्तिक वियोग एवं अखण्ड आनन्द से आत्यन्तिक संयो योग है। योग धारणा–ध्यान–समाधि है (ध्यान योग)। योग स्थितप्रज्ञ की द्वन्द्वातीत ब्राह्मी स्थिति है (ज्ञानयोग)। योग निष्काम कर्म है, कर्म कोशल अर्थात् कामना रहित कर्म है (कर्मयोग)। योग भक्ति द्वारा भगवत तत्व का सम्यक ज्ञान और भगवत् प्रवेश है (भक्तियोग)।

अतः गीता में ध्यान योग, ज्ञान योग, सांख्य योग, कर्मयोग तथा श्रवण योग का उल्लेख है। अन्त में यह भी कहा गया है कि जिस योग से भगवान की प्राप्ति होती है वह भक्ति योग है। भगवान् ने स्वयं कहा है, ''मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु। मामेवैश्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे (18/6 एवं 9/60)।

सच्ची भक्ति सरणागति है। अनन्य भाव से भगवान के ही एकमात्र शरण में जाने से भगवान् प्राप्त होते हैं। भगवान कहते हैं कि 'सब धर्मों को छोड़कर केवल मेरे शरण में आ जाओ। मैं तुम्हें सभी पापों से मुक्त करूंगा। शोक मत करो।[15] भक्त चार प्रकार के होते हैं–(1) अर्थार्थी, (2) आर्त, (3) जिज्ञासु और (4) ज्ञानी। इनमें से ज्ञानी भक्त को भगवान ने स्वयं अपनी आत्मा से नित्य युक्त और सबसे प्रिय कहा है।[16]

गीता में योग केवल ज्ञानयोग या भक्तियोग या कर्मयोग के अर्थ में ही नहीं प्रयुक्त हुआ है। योग की परिभाषा दो स्थानों पर दी गयी है। एक परिभाषा है कि योग कर्म–कौशल है (योगः कर्मसु कौशलम्)। दूसरी परिभाषा है–योग उच्यते, समता योग है। ये दोनों परिभाषाएं योग के विशेष स्वरूप को निर्धारित करने में असमर्थ हैं क्योंकि ये प्रायः भक्तियोग, कर्मयोग, सांख्ययोग और ज्ञान योग में से प्रत्येक पर लागू होती हैं। इन दोनों योगों का सम्बन्ध प्रत्येक प्रकार के योग से है। ऐसी स्थिति में भिन्न–भिन्न भाष्यकारों ने भिन्न–भिन्न योग को महत्व दिया है। मधुसूदन सरस्वती का मत स्पष्टतः सभी मतों का समन्वय है। नीलकण्ठ ने अपनी टीका में मधुसूदन सरस्वती के मत का समर्थन किया है। आधुनिक युग के विद्वान भी इसी समन्वय को गीता का प्रमुख योग मानते हैं।[17] वास्तव में गीता में बताये गये साधना का क्रम इस प्रकार से है–पहले कर्म से सत्वशुद्धि, फिर सत्स से ज्ञान होता है और अन्त में ज्ञान के सतत् ध्यान से अनन्य भक्ति–रूप आनन्द की प्राप्ति होती है। यह आनन्द ज्ञान सत्व से अवश्य उत्पन्न होता है, परन्तु यदि वह सत्व श्रद्धामिश्रित नहीं है तो उससे यह आनन्द ज्ञान नहीं मिल सकता है। गीता में कहा है कि श्रद्धावान लभते ज्ञानम्'।[18] यह श्रद्धा भक्ति का मूल है। भक्ति श्रद्धा का विकास है। अतः कर्म से सत्वशुद्धि, भति से श्रद्धा का विकास और तदनन्तर श्रद्धावान सत्व से ज्ञान की उत्पत्ति होती है। इस क्रम में कर्म, भक्ति तथा ज्ञान परम आनन्द रूपी ज्ञान को प्राप्त करने में साधन है। यही साधन भगवद्गीता का योग है।[19] किन्तु इस योग के अतिरिक्त गीता में एक शुद्ध भक्तियोग का भी वर्णन मिलता है। भगवान की कृपा जिस भक्त पर हो जाए और जो भक्त अपने को सम्पूर्णरूप से भगवान के प्रति अनन्य भाव से एकाग्रचित्त होकर समर्पित कर दे, वह एकान्त भक्ति से भगवान् को प्राप्त कर सकता है। यह भक्ति योग है जो पांच रात्र शास्त्र के अनुसार है जिसको वैष्णव आचार्यों ने बहुत महत्व दिया है। इससे इसी जीवन में भगवान को प्राप्त कर सकते हैं। रामानुज ने इसे प्रपत्तिमार्ग कहा है, बल्लभ ने पुष्टिमार्ग और चैतन्य ने प्रेममार्ग।[20]

मुक्त पुरुष–भगवद्गीता में मुक्त पुरुष के लिए विभिन्न नामों का प्रयोग हुआ है। उसे **जीवन्मुक्त,** अर्थात् इसी जीवन में, शरीर रहते हुए भी मुक्त, **गुणातीत** वह जो सभी गुणों से ऊपर उठ चुका हो। अर्थात् जिसने इस ज्ञान को प्राप्तिकर लिया हो कि वह साक्षी आत्मा या तटस्थ पुरुष है और सभी कर्म प्रकृति तथा उसके विकार–मन, इन्द्रिय इत्यादि–द्वारा किये जा रहे हैं, **स्थितप्रज्ञ** अर्थात् जिसका मन या चित्त स्थिर हो गया हो, जो सुखों में चंचल या दुःखों में विचलित नही होता, **भक्त** अर्थात् जिसने अपने आपको ईश्वर को समर्पित कर दिया हो एवं

स्वयं को ईश्वर का केवल निमित्त समझता हो, **ज्ञानी** अर्थात् जिसने ब्राह्मी स्थिति को प्रापत कर लिया हो, जो सब कर्मों में प्रकृति का कर्तृत्व एवं आत्मा या पुरुष का अकर्तव्य देखता हो, और **कर्मयोगी** अर्थात् जिसने निश्काम भाव से कर्म करने के आदर्श को प्राप्त कर लिया हो, इत्यादि नामों से पुकारते हैं।

मुक्त पुरुष की सभी इच्छायें, आशक्तियाँ, अहंकार एवं सांसारिक सुखों की तृष्णा का नाश हो जाता है, सभी प्रकार के मोह–बन्धनों से मुक्त होकर आत्मा में ही प्रीति वाला, आत्मा में ही तष्प्त, आत्मा में ही सन्तुष्ट रहने वाला बन जाता है।[21] उसे विषयों से प्रेम की या बाह्य विशयों की कोई आवष्यकता नहीं है। ऐसे आत्मज्ञानी के लिए कोई कर्तव्य शेष नहीं है।[22] कर्मों को वह अब भी करता है लेकिन लोक संग्रह के लिए या ईश्वर के लिए। वह समझता है कि मैं (अर्थात् पुरुष या आत्मा) कर्म नहीं कर रहा हूं, कर्म करने वाली केवल प्रकृति ही है। सभी कर्मों में वह देखता है कि केवल गुण ही गुणों में बरत रहे हैं (3) (27 और 28)। वह कर्म में अकर्म एवं अकर्म में कर्म को देखने लगता है (4/8)। कर्म प्रकृति ही कर रही है वह तो केवल इन सबका साक्षी है। भक्त के दृष्टिकोण में वह यह अनुभव करता है कि उसके कार्य वास्तव में उसके नहीं हैं, इन कार्यों का वास्तविक कर्ता ईश्वर ही है और वह तथा उसका शरीर ईश्वर के कार्यों का केवल एक माध्यम है (ईश्वर के कर्म में स्वयं का अकर्म देखना)। लेकिन जब तक शरीर है, भक्त भी कर्मों से भाग नहीं सकता। भक्त की स्वयं की कोई इच्छा या तृष्णा नहीं है जिसके लिए वह कर्म करे। वह स्वयं को ईश्वर का निमित्त समझकर कर्म करता है। वह कोई कार्य नहीं करता क्योंकि कर्मों के पीछे उसकी अपनी कोई इच्छा या तृष्णा नहीं है, फिर भी ईश्वर चूंकि अपना कार्य उसके माध्यम से कर रहा है। अतः व्यावहारिक दृष्टि से सब कर्म उसी पर आरोपित हैं। यही अकर्म में कर्म है। कर्मयोग की दृष्टि से हम यह कह सकते हैं कि मुक्त पुरुष कर्म तो करता है, लेकिन कर्म करते हुए भी वह उनसे अलिप्त रहता है। पहले अहंकारवश कर्म करता था परन्तु अब अहंकार का नाश हो गया है। कर्मों के पीछे उसका अपना कुछ भी नही है। वह कर्मों को शरीर का धर्म समझकर करता है। अतः वह स्वयं अकर्मी रहता है। यही कर्म में अकर्म को देखना है। जब तक शरीर है, कर्म से छुटकारा पाना संभव नहीं है। वह कर्म करता है परन्तु अपने लिए नहीं, केवल लोकसंग्रह के लिए, विश्व में व्यवस्था बनाये रखने के लिए ही। अतः आन्तरिक रूप से वह अकर्मी ही है। अधर्मी रहते हुए भी वह कर्म करता है क्योंकि कर्मों से उसे अपने लिए कुछ प्राप्त नहीं करना है। यही अकर्म में कर्म देखना है। मुक्त पुरुष स्वधर्म का पालन करता है क्योंकि सांसारिक लोग महापुरुषों का ही अनुकरण करते हैं। यदि मुक्त पुरुष स्वधर्म का पालन करना छोड़ दे, तो वे लोग जो अभी व्यवहार एवं अज्ञान में हैं, और जिनकी अभी कर्मों में आसक्ति है, वे अपने कर्मों को छोड़ देंगे। संसार में बड़ी अव्यवस्था फैल जाएगी। अतः विश्व में व्यवस्थाकारों के लिए मुक्त पुरुष स्वधर्म का पालन करता रहता है।[23]

जिस वस्तु का त्याग हो जाता है वह है– 'कर्तृत्व की भावना' या अहंकार कर्म नहीं।[24] हिरियन्ना ने ठीक ही कहा है कि गीता की शिक्षा 'कर्मों का त्याग नहीं वरन् कर्मों में त्याग (कर्तृत्व की भावना का त्याग) है। योगी कर्म को पूर्ववत् करता रहता है। परन्तु पहले की स्थिति और अब की स्थिति में अंधकार तथा प्रकाश के समान अन्तर है। पहले कर्मों में आसक्ति थी, अपने लिए कुछ प्राप्त करने की इच्छा थी परन्तु अब वह पूर्णरूप से अनासक्त है, केवल लोकसंग्रह के लिए ही कर्म कर रहा है।

मुक्त पुरुष सभी नैतिक दायित्वों का अतिक्रमण कर जाता है। वह कर्तृत्व की भावना से मुक्त हो जाता है। उसके विषय में ऐसा कहा जाता है कि यद्यपि सह सभी लोगों की हत्या कर डालता है, फिर भी वह हत्यारा नहीं है। इसका कारण स्पष्ट है। वह तो अपने आपको ईश्वर का केवल निमित्त मात्र ही समझता है। वह यह समझता है कि वह तो केवल ईश्वर की ही इच्छा को अपने कर्मों के माध्यम से पूरा कर रहा है। वह यह अनुभव करता है कि हत्या करने वाली भी प्रकृति है और जिनकी हत्या हो रही है वे भी सब प्रकृति ही हैं। गुण ही गुणों में बरत रहे हैं। इस कारण वह पाप के बन्धन में नहीं पड़ता। उसके किसी भी कार्य से किसी का भी अशुभ होना उसी प्रकार असम्भव है, जिस प्रकार अमृत से मृत्यु हो जाना।[25] मुक्त पुरुष का स्वभाव बन जाता है, समाज का कल्याण करना।

स्थितप्रज्ञ का चित्त स्थिर हो जाता है। वह सुख में चंचल अथवा दुःख में विचलित नहीं होता। अत्यधिक सुख या अत्यधिक दुःख दोनों को समान भाव से ग्रहण करता है। यह पूर्ण साम्यावस्था में पहुंच जाना है। स्थितप्रज्ञ की स्थिति ब्राह्मी स्थिति है जो ईश्वर को जान ले, उसको प्राप्त कर ले, गीत में उसे स्थितप्रज्ञ कहा गया है। मगन

मिश्र ने लिखा कि स्थितप्रज्ञ भक्त है, वह मुक्त पुरुष नहीं है। परन्तु अधिकांश आचार्यों का मत है कि स्थितप्रज्ञ पुरुष जीवन्मुक्त होता है। उसकी प्रज्ञा नित्य ब्रह्म में प्रतिष्ठित रहती है। वह सभी प्रकार के द्वन्द्वों से परे है। वह इन्द्रिय जीत है। वह आत्मा राम है। वह अपने कर्तव्य कर्म को करता है। परन्तु उसके कर्तव्य स्वतः होते हैं। वह लोक संग्रह के लिए निष्काम भाव से कर्म करता है। अपने इन कर्मों से वह बन्धन में नहीं पड़ता। उसने अपने ज्ञान से सभी कर्मबन्धनों को काट दिया है। वह निःस्पृह, निर्मम तथा निरहंकार होता है। उसे परम शान्ति मिलती है। इससे वह कभी मोह–माया में नहीं पड़ता। शरीर के छूट जाने के बाद वह भगवान में ही लीन हो जाता है। इसी को गीता ने भगवान के भीतर प्रवेश करना कहा है। उसे भगवान धाम की प्राप्ति होती है।[26] कर्मों में यज्ञ, दान तथा तप उसके लिए भी पावन है।[27]

ऐसी बात नहीं है कि गीता कम मुक्ति या विदेह मुक्ति की बात नहीं करती। गीता कहती है कि इस संसार में सनातन काल से दो मार्ग माने गये हैं– शुक्ल तथा कृष्ण या देवयान या पितृयान।[28] इनमें से धम मार्ग से मरकर गया हुआ सकाम कर्मयोगी स्वर्ग तक तो पहुँच जाता है किन्तु वहाँ अपने शुभकर्मों का फल भोगकर वापस इसी संसार में आता है, फिर जन्म मृत्यु को प्राप्त होता है। परन्तु निष्काम कर्मयोगी या ब्रह्मवेत्ता इस मार्ग से नहीं बल्कि देवयान से होता हुआ ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। जिसने इसी जीवन में ही ब्रह्म को जान लिया है, वह शरीर–त्याग के पश्चात् अग्नि देवता, दिन का देवता, शुक्ल पक्ष का देवता, और उत्तरायण के छः महीनों का देवता, इन सबसे होता हुआ अन्त में ब्रह्म लोक को प्राप्त करता है।[29] वह पुनः इस संसार में नहीं लौटता। वह जन्म–मरण के चक्र से पूर्णतः मुक्त हो गया है। गीता में मुक्त पुरुष को सामान्यतया स्थितप्रज्ञ कहा गया है।

गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि भूतकाल में उनके द्वारा दो प्रकार की साधनाएं बतलाई गयी हैं–(1) ज्ञानियों की ज्ञान योग से, और (2) अन्यों की निष्काम कर्मयोग से। गीता केवल ज्ञानियों को ही नहीं बल्कि उन लोगों को भी मोक्ष का रास्ता बतलाती है जिनको अभी कर्मों में प्रवृत्ति तथा आसक्ति है। जिनकी कर्मों में आसक्ति है, उन्हें कर्म तो करते रहना है लेकिन उसमें से अहंकार भाव एवं फलों के प्रति आसक्ति को धीरे–धीरे दूर करना है। इन दोनों मार्गों का भेद केवल सतही है। वस्तुतः इन दोनों रास्तों में कोई भेद नहीं है।[30] एक पर चलने वाला दूसरे का भी फल प्राप्त करता ही है क्योंकि दोनों का फल तो एक ही है। अन्तर केवल साधक की योग्यता, स्वभाव व दृष्टिकोण का है। जिनकी रुचि एवं आसकित कर्मों में है उनके लिए कर्मयोग का रास्ता सरल एवं सुगम एवं सुलभ है और जिनकी रुचि एवं स्वभाव ज्ञान के प्रति है, उनके लिए ज्ञान मार्ग पर चलना सही है। मन, षरीर तथा इन्द्रियों के द्वारा होने वाली सभी क्रियाओं में कर्तापन का अभिमान त्यागना और इन क्रियाओं को गुणों द्वारा गुणों पर की जाने वाली क्रियाएं समझना एवं आत्मा या पुरुष को केवल इनको अनासक्त भाव से देखने वाला, न इन्हें करने वाला, और न इनके फलों को भोगने वाला समझना यही, ज्ञानयोग या सांख्य–योग है। फलों में आसक्ति को त्यागकर और स्वयं को केवल ईश्वर द्वारा अपना काम करने के लिए कृपापूर्वक चुना गया निमित्त समझकर कार्य करना ही निष्काम कर्म योग है। सांसारिक व्यक्ति के लिए सहसा निष्काम भाव से कार्य कर पाना असंभव है। इसीलिए गीता कर्मों के फल ईश्वर को समर्पण करने की बात कहती है।[31] सांसारिक व्यक्ति को निष्काम कर्मयोग के आदर्श पर पहुंचने के लिए अनिवार्य रूप से भक्तियोग की सहायता लेनी पड़ती है। भक्तियोग कम से कम एक मनोवृत्ति है–अपने कर्मों को अपने से अन्य किसी परम शक्ति या सत्ता द्वारा प्रेरित, अतः उसी के समझने का भाव। अतः निष्काम कर्म के आदर्श को प्राप्त करने के लिए अनिवार्यतः सांसारिक व्यक्ति को भक्त बनना पड़ता है। ज्ञान तथा निष्काम कर्मयोग की अपेक्षा भक्ति मार्ग सरल है। जो लोग आध्यात्मिक दृष्टि से बहुत ऊँचे नहीं उठे हैं, ऐसे लोग भी सरलतापूर्वक इस मार्ग पर चल सकते हैं। गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं कि, जो उन पर अपने ध्यान को केन्द्रित नहीं कर सकते, या जो निष्काम भाव से कर्म भी नहीं कर सकते वे अपने सब कर्मों के फल उन्हें अर्पित करके अध्यात्ममार्ग पर चलना प्रारम्भ कर सकते हैं।[32] उन्हें केवल यह समझना चाहिए कि वे ईश्वर के लिए कार्य कर रहे हैं।

ऐसा लगता है कि गीता मोक्ष के साधन के रूप में वैदिक कर्मकाण्ड को मान्यता नहीं प्रदान करती। गीता मोक्ष साधन के रूप में कर्मकाण्ड को मान्यता नहीं देती। गीता स्वर्ग–प्राप्ति के लक्ष्य की आलोचना ही करती है। गीता में यज्ञ शब्द का अर्थ यह नहीं जो वेदों के ब्राह्मण एवं मन्त्र खण्डों में होता है।

गीता में यज्ञ उन सब कर्मों को कहा गया है जो लोक संग्रह के लिए किये जाते हैं। यह नहीं कि जिन्हें मनुष्य स्वयं के वर्तमान या भविष्य, ऐहलौकिक या पारलौकिक कल्याण के लिए करता है। यज्ञ का प्रचलित अर्थ भी यही है जिसमें व्यक्ति अपने निज के लौकिक एवं पारलौकिक कल्याण के लिए शुभ कर्म करता है। गीता में यज्ञ का अर्थ इसके विपरीत है। गीता, इस प्रकार के कर्मों से मोक्ष नहीं मिलता, यह स्वीकार करती है। वह तो, निष्काम कर्म से, ऐसे कर्मों से, जिनमें अपने व्यक्तिगत लाभ का कोई विचार नहीं किया जाता है मिल सकता है। इसी प्रकार के निष्काम कर्म को यज्ञ कह सकते हैं।33 डॉ. अशोक कुमार लाड अपने ग्रन्थ 'भारतीय दर्शन में मोक्ष चिन्तन, एक तुलनात्मक अध्ययन' में एकभूत उद्धृत करते हैं, जिसके अनुसार, ''गीता में यज्ञ तथा त्याग पर्यायवाची शब्द हैं और यह आवश्यक नहीं कि हम गीता के यज्ञ शब्द को वैदिक यज्ञ के संकुचित अर्थ में ही ग्रहण करे। शब्द व्युत्पत्ति के अनुसार भी यज् धातु से उत्पन्न यज्ञ का अर्थ त्याग या दान होता है।''34 अतः गीता की साधना पक्ष में कर्मकाण्ड को महत्व नहीं दिया गया है।

संक्षेप में, गीता ज्ञान, कर्म, भक्ति और ध्यान सभी साधना–पद्धतियों की उपयोगिता स्वीकार करती है और उन्हें अपनी साधना प्रणाली में उचित स्थान देती है। मनुष्य की रचना ही कुछ ऐसी है कि ये कर्म करने के लिए बाध्य हैं। उससे छुटकारा संभव ही नहीं। लेकिन जब कर्म निष्काम भाव से होंगे तो वे बन्धन का कारण नहीं होंगे। अतः यह अत्यन्त आवश्यक हो जाता है कि कर्ता भक्त की मनोवृत्ति ग्रहण करे और सभी कर्मों का फल ईश्वर को अर्पित करे और अपने सभी कर्मों में ईश्वर का कर्तृत्व देखे। जिनके व्यक्तित्व में ज्ञान की प्रधानता है वे ईश्वर की जगह प्रकृति का कर्तृत्व तथा स्वयं को तटस्थ पुरुष या साक्षी आत्मा को समझे। पदार्थ दृष्टि से कर्म, भक्ति और ज्ञान इनमें कोई भेद नहीं है।

सन्दर्भ–सूची

1. ज्ञानेश्वरी (रामचन्द्र वर्मा कृत) हिन्दी अनुवाद, पृ. 695
2. वही, पृ. 707
3. गीताभाष्य का उपोद्घात।
4. गीता 7/4.5
5. वही, 9/7
6. वही, 9/8
7. वही, 14/3.4
8. वही, 4/6
9. वही, 7/5
10. वही, 15/7
11. वही, 14/19
12. वही, 9/4.7
13. गीता, 4, 7–8 ''यदा यदा हि धर्मस्य....सम्भवयामि युगे–युगे।''
14. डॉ. उमेश मिश्र, भारतीय दर्शन, पृ. 80
15. गीता, 18/66 ''सर्वधर्मान परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज। अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षिष्यामि मा शुचः।
16. वही, 7/15–16
17. डॉ. संगम लाल पाण्डेय, भारतीय दर्शन का सर्वेक्षण पृ. 53
18. गीता, 4/39
19. डॉ. संगमलाल पाण्डेय, भारतीय दर्शन का सर्वेक्षण, पृ. 53
20. वही, पृ. 53
21. गीता, 3/17
22. गीता 3/17, पर शांकर भाष्य
23. गीता, 3/21–22, द्रष्टव्य, डॉ. अशोक कुमार लाड भारतीय दर्शन में मोक्ष चिन्तन, एक तुलनात्मक अध्ययन
24. गीता, 14/25
25. द्रष्टव्य, डॉ. अशोक कुमार लाड, 'भारतीय दर्शन में मोक्षचिन्तन, एक तुलनात्मक अध्ययन, पृ. 29
26. गीता 18/5
27. गीता 8/26
28. गीता 8/24
29. गीता, 5/4
30. द्रष्टव्य, डॉ. अशोक कुमार लाड, भारतीय दर्शन में मोक्ष–चिन्तन, एक तुलनात्मक अध्ययन, पृ. 31
31. वही, पृ. 32, गीता 12/9–10
32. डॉ. अशोक कुमार लाड, भारतीय दर्शन में मोक्ष चिनतन, एक तुलनात्मक अध्ययन, पृ. 33 कल्याण (गीता तत्व अंक), पृ. 103
33. वही, पृ. 33
34. वही,

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Philosophy : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 485-488

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र की प्रासंगिकता

*डॉ. मुकेश कुमार चौरसिया**

अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र, दर्शन शास्त्र की एक नई–शाखा के रूप में बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में विकसित हुआ। सामान्यतः दर्शनशास्त्र का अभिप्राय तत्वमीमांसीय विषय अर्थात् ईश्वर, आत्मा, जगत तक लगाया जाता है पर दर्शन का क्षेत्र काफी व्यापक है। चूंकि इसका अध्ययन का क्षेत्र सम्पूर्णता में है। मानव जीवन से जुड़े सभी प्रकार के समस्याओं का बौद्धिक विवेचन करना और उसकी समाधान करना दार्शनिक चिंतन का उद्देश्य होता है। वर्तमान में मानव जीवन से जुड़े अनेक समस्याएँ सामने हैं। जैसे पर्यावरण प्रदूषण की समस्याएँ, चिकित्सक के व्यवहार की समस्याएँ, पशुओं के साथ हो रहे अमानवीय व्यवहार की समस्याएँ, मीडिया की भूमिका की समस्याएँ इत्यादि। ये सभी मानव जीवन से जुड़ा है तथा अनुपयुक्त नीतिशास्त्र के अन्तर्गत इसी का अध्ययन करते हैं तथा इसका समाधान खोजने का प्रयास करते हैं, इसलिए वर्त्तमान में इसकी प्रासंगिकता काफी बढ़ गई है।

नीतिशास्त्र का सम्बन्ध मनुष्यों के आचरण या ऐच्छिक कर्मों पर निष्पक्ष एवं व्यवस्थित रूप से विचार करके उनके सम्बन्ध में उचित, अनुचित अथवा शुभ, अशुभ का निर्णय देने के लिए मापदण्ड प्रस्तुत करता है और इस निर्णय के आधार के लिए कुछ मूल सिद्धांतों अथवा मनाकों या आदर्शों की स्थापना करता है। पर नियम बनाने मात्र से सभी समस्याओं का समाधान संभव नहीं है। बल्कि बनाये गये नियमों का विश्लेषण भी होना चाहिए कि वह नियम या मानक कहाँ तक सही है। अधिनीतिशास्त्र या विश्लेषणात्मक नीतिशास्त्र यही काम करता है। विश्लेषणात्मक नीतिशास्त्र का विकास बीसवीं सदी के दूसरे दशक में हुई और इसे आगे बढ़ाने में मूर रशेल बिटगेंस्टाइन, गिलबर्त राइल आदि का महत्त्वपूर्ण योगदान है। इस दिशा में जी.ई. मूर की कृति 'प्रिंसिपिया एथिका' एक महत्त्वूपर्ण किताब मानी जाती है। पर जहाँ नीतिशास्त्र का सम्बन्ध 'चाहिए' तक सीमित है, वहीं अधिनीतिशास्त्र इसका विश्लेषण करता है। पर विश्लेषण मात्र से समस्याओं का समाधान नहीं हो जाता है बल्कि नियम या मानकों को जीवन में उतारने की आवश्यकता पड़ती है या व्यवहार में लाने की आवश्यकता पड़ती है। अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र इसी विषय पर बल देता है। इसलिए इसे व्यावहारिक या प्रायोग नीतिशास्त्र भी कहा जाता है।

अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र सभी प्रकार के नैतिक आदर्शों या मानकों को जीवन में उतारने पर बल देता है। इस विषय को विकसित करने में पीटर सिंगर का महत्त्वपूर्ण योगदान है। इसकी कृति 'प्रैक्टिकल एथिक्स' में इस तरह के विषयों पर विस्तार से चर्चा की गई है। पीटर सिंगर ने इसे परिभाषित करते हुए कहा है कि– अप्लाइड एथिक्स के अन्तर्गत किसी तात्कालिक महत्व की व्यावहारिक समस्या का नैतिक समाधान खोजने का प्रयास किया जाता है।[1] इसी तरह दि ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी ऑफ फिलॉस्फी के अनुसार अप्लाइड एथिक्स वह विषय है–जो वास्तविक व्यावहारिक समस्याओं पर नीतिशास्त्र को लागू करता है– जैसे गर्भपात, इच्छा मृत्यु, पशुओं के साथ व्यवहार या अन्य पर्यावरणीय कानून, सामाजिक समस्याएँ इत्यादि।[2] हम कह सकते हैं कि इसके अन्तर्गत निजी और सार्वजनिक जीवन की ऐसी विशेष समस्याओं की नैतिक दृष्टि से दार्शनिक परीक्षा की जाती है, जिन पर नैतिक निर्णय किया जा सकता है। अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र की इस परिभाषा से यह स्पष्ट हो जाता है कि मानव जीवन से जुड़े सभी प्रकार के समस्याओं का नैतिक समाधान करना व्यावहारिक नीतिशास्त्र का काम है। मानव जीवन से जुड़े अनेक समस्याओं में एक प्रमुख चिकित्सक एवं रोगी संबंध तथा चिकित्सकों का नैतिक दायित्व प्रमुख है।

* *दर्शनशास्त्र विभाग, बी. एन. कालेज, पटना विश्वविद्यालय*

विज्ञान के इस युग में नई खोज मनुष्य के सारे भौतिक सुख–सुविधा उपलब्ध करा रहा है तथा चिकित्सा विज्ञान कुछ ऐसे बिमारी का स्थायी समाधान खोज निकाला जो वंशागत होता था। इतना ही नहीं सरोगेट मदर, जो महिलाएँ बच्चों को जन्म देने में असमर्थ है तथा बच्चे की कल्पना करती है उसके लिए सरोगेट मदर एक वरदान साबित हो रहा है। पर नई तकनीक का दुरुपयोग चिंता का विषय है। जैसे–भ्रूण परीक्षण, क्लोनिंग, सरोगेट मदर का दुरुपयोग गर्भपात, इच्छा मृत्यु इत्यादि कुछ ऐसे विषय हैं जिस पर हम सभी बुद्धिजीवी को विचार करने की आवश्यकता है। ये सभी समस्या मानव जीवन से जुड़ें हैं। इसी कड़ी में चिकित्सकों का नैतिक दायित्व आता है। डॉक्टर को धरती का भगवान माना जाता है पर वर्त्तमान में ये अपने दायित्व से कितने पीछे जा चुके हैं यह किसी से छीपा नहीं है। पैसे के लिए वह कुछ भी कर सकता है। आवश्यकता से अधिक जांच कराना, दवाई लिखना ऑपरेशन करना ये तो आम बात है। मरे हुए रोगी को आई.सी.यू. में दो–चार दिनों तक रखना और पैसा लेना ये सब समाचार पत्रों में पढ़ने को मिलता है। यहाँ पर डॉक्टर का क्या नैतिक दायित्व बनता है तथा उसे जीवन में क्या करना चाहिए इस विषय पर विचार करने की आवश्यकता है। वर्त्तमान में सरोगेट मदर का किस प्रकार दुरुपयोग हो रहा है इससे हम सब अवगत हैं जबकि इसके विरूद्ध हमारी सरकार कानून भी बना दी है पर उस कानून का उल्लंघन हो रहा है।[3] अनुपयुक्त नीतिशास्त्र चिकित्सा से जुड़े सभी प्रकार के कानूनों को जीवन में उतारने पर बल देती है। तथा डॉक्टरों को अपने नैतिक दायित्व–ईमानादारी, सत्यवादिता, दयालुता, प्रेम, मानव सेवा पर बल देना है।[4]

मानव जीवन से जुड़े विभिन्न समस्याओं में एक प्रमुख पर्यावरण प्रदूषण की समस्या है, पर्यावरणीय नीतिशास्त्र के अन्तर्गत हम इसका अध्ययन करते हैं। प्रकृति ने मनुष्य को अनूठी प्रतिभा, क्षमता, सृजनात्मकता तथा तर्कशक्ति देकर विवेकवान, चिंतनशील और बुद्धिमान प्राणी के रूप में निर्मित किया है। अतः मनुष्य का यह दायित्व है कि वह प्राकृतिक संसाधनों के संतुलित चक्र को बनाए रखते हुए पर्यावरण का संरक्षण करे और स्वस्थ पर्यावरण बनाए रखना अपना पुनीत कर्त्तव्य समझे। हमारी भारतीय संस्कृति सदा से ही पर्यावरण संरक्षण की पोशक रही है। पर्यावरण का शोषण करना नहीं, बल्कि उपयोग और पोषण करना हमारी संस्कृति का आधार रहा है। सभी धर्मग्रंथों में भी इसका विस्तार से वर्णन पाते हैं। जैसे–

ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षँ शान्तिः

पृथ्वी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शांतिः वनस्पतयः शान्तिः।[5]

इसी तरह पीटर सिंगर ने पर्यावरणीय नीतिशास्त्रा के सम्बन्ध में अपनी पुस्तक में अनेक महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये है। उनके अनुसार मनुष्यों तथा पशुओं के भोजन, आवास आदि के आवश्यक एवं स्वस्थ प्रबंधन के लिए वातावरण के तत्त्वों का सही परिमाण में उपयोग करना चाहिए।[6] इसी तरह का सुझाव रिचार्ड सिलवन तथा वाल प्लमवुड जैसे आस्ट्रेलियन विचारकों ने भी आचारनीति को जैव जगत् के बाहर भी लागू होने को प्रासंगिक माना है। उनके अनुसार मनुष्यों की यह बाध्यता है कि वे उचित कारण के बिना प्राकृतिक वस्तुओं या व्यवस्थाओं की विद्यमान स्थिति को भंग या नष्ट न करे।[7]

यहाँ प्रश्न उठता है कि पर्यावरण संरक्षण की बात तो पूरा विश्व करता है तथा वैश्विक मंच में बहुत सारे नैतिक उपदेश दिये जाते हैं पर उस उपदेश को अपने व्यावहारिक जीवन में उतारते नहीं है। कथनी और करनी में बहुत अंतर पाते हैं। हाल में न्यूयॉक में संयुक्त राष्ट्र का जलवायु परिवर्त्तन सम्मेलन सम्भव हुआ जिसमें सभी देशों के राष्ट्राध्यक्ष ने भाग लिया बहुत बड़े–बड़े फैसले लिए गए पर वो कोगज पर ही रह जाता है व्यवहार में नहीं आ पाता है। इसी तरह भारत में इस दिशा में बहुत सारी योजनाएं चलाई जा रही है। जैसे भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने 2 अक्टूबर, 2014 को स्वच्छ भारत मिशन की शुरूआत की जो ग्रामीण तथा शहरी दोनों क्षेत्रों के लिए जिसका उद्देश्य महात्मा गाँधी की 150 वीं वर्षगांठ को सही रूप में श्रद्धांजलि देते हुए वर्ष 2020 तक स्वच्छ भारत की प्राप्ति करना है। इस दिशा में बहुत काम हुआ भी है। इसी के तहत 2022 तक सिंगल यूल प्लास्टिक पर पूर्ण प्रतिबंध की तैयारी चल रही है। इस दिशा में सबसे महत्वपूर्ण सपफलता खुले में शौच से मुक्त हुआ भारत। इसी कड़ी में बिहार सरकार द्वारा 2 अक्टूबर, 2019 से जल–जीवन–हरियाली योजना की शुरूआत की गई।

महात्मा गाँधी के स्वप्नों का भारत की शुरूआत की गई। इसके तहत हर पंचायत में तालाबों व कुओं की खुदाई होगी, सभी सड़कों के किनारे बड़ी संख्या में पेड़ लगाये जाएंगे। इसके अलावा सरकारी भवन में रेनवाटर हार्वेस्टिंग होगी। सौर ऊर्जा को बढ़ावा देने के लिए सरकारी इमारतों पर सोलर प्लेट लगाए जाएंगे।[7] बिहार के मुख्यमंत्री महात्मा गाँधी के 150 वीं वर्षगांठ पर 2 अक्टूबर, 2019 को यह घोषणा की कि महात्मा गाँधी के सामाजिक प्रदूषण अभियान को धरातल पर उतारा जाय तभी सम्पूर्ण स्वच्छता अभियान पूरा होगा। इस तरह महात्मा गाँधी के 150वीं वर्षगांठ पर सभी जगह अनेक कार्यक्रमों के माध्यम से अच्छी–अच्छी बात कही गई पर व्यवहार में कितने व्यक्ति हैं जो गाँधी के रास्ते पर चल रहे हैं, उनके विचार को अपने जीवन में उतार रहे हैं। नहीं के बराबर। गाँधी जयंती मनाने के बजाय उनके विचारों को अपने जीवन में ढालने की आवश्यकता है। अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र इसी बात पर जोर देता है।

पशु अधिकार की चर्चा किये बिना पर्यावणी नीतिशास्त्र अधूरा होगा। आज पशुओं पर हो रहे अत्याचार किसे से छिपा नहीं है। जबकि वैदिक धर्मग्रंथों में पशुओं को भी देव तुल्य माना गया है। वैदिक कर्मकांड के अनुसार यज्ञ के लिए पशु श्रेष्ठ है। हिन्दू संस्कृति का अहिंसा परमो धर्मः का उद्घोष तो अत्यंत ही विख्यात है। ऋग्वेद कहता है– हमारे द्विपद, चतुष्पद, सभी अनातुर हों।[9] उसी तरह अथर्ववेद कहता है जीवों के साथ प्रमाद नहीं करें।[10] बाइबिल के सृष्टि–प्रकरण में कहा गया है कि ईश्वर ने मनुष्यों को अपने अनुरूप ही बनाया और उनको कहा– सफल होओं और अपनी बुद्धि को समुद्र की मछलियों पर, वायु के पक्षियों पर और पृथ्वी पर विचरने वाले सभी जीवों पर अपना आधिपत्य रखो। यूनानी दार्शनिक अरस्तू ने भी कहा है कि पेड़–पौधे जीव–जन्तुओं के लिए और जीव–जन्तु, मनुष्यों के लिए परस्पर आश्रित है। अर्थात् सभी धर्मग्रंथों के साथ–साथ ऋषि–मुनि, दार्शनिक सभी जीवों के प्रति अहिंसात्मक भाव रखने की बात की है, पर व्यवहार में ठीक विपरीत है। व्यावहारिक नीतिशास्त्र इस बात पर बल देती है। कि सिद्धांत या नियम किताबी ज्ञान तक नहीं होना चाहिए, बल्कि उसे अपने व्यावहारिक जीवन में उतारने की आवष्यकता है। पीटर सिंगर लिखते हैं कि पशुओं पर हो रहे अत्याचार का अनुमान इस बात से भी लगाया जा सकता है कि– संयुक्त राज्य के कृषि विभाग के कार्यालयी आँकड़ों के अनुसार करीब–करीब 140,000 कुत्ते, तथा 42000 बिल्लियाँ प्रत्येक वर्ष संयुक्त राज्य की प्रयोगशालाओं में मारे जाते हैं, और इससे कम लेकिन फिर भी बड़ी संख्या में प्रत्येक विकसित राष्ट्रों में ऐसे ही प्रयोग किये जाते हैं। यह चिंता का विषय है, इस पर विचार करने की आवश्यकता है। मनुष्यों के साथ–साथ पशुओं को भी जीने का अधिकार है उसके साथ अमानवीय व्यवहार नहीं होना चाहिए।[11]

इसी तरह मीडिया नीतिशास्त्र पर विचार किया जाय तो मीडिया के अन्तर्गत प्रिंट, रेडियो, टेलीविजन, सोशल मीडिया, समाचार पत्र आदि इसके अन्तर्गत आता है। इसे चतुर्थ स्तंभ कहा जाता है जिसका काम है समाज में घटने वाली सभी घटनाओं, सरकार की नीतियों की जानकारी आम जनता तक पहुँचान तथा सरकार के कार्यप्रणाली की समीक्षा करना। पर जाँय गुहा ठाकुरता ने अपनी किताब मीडिया एथिक्स में मीडिया नीतिशास्त्र के अन्तर्गत सत्य, निष्पक्षता और वस्तुनिष्ठता को केन्द्रिय महत्व दिया है। उनके अनुसार पत्रकारिता के लिए सत्यता की धारणा अधिक महत्त्वपूर्ण है। ठाकुरता के अनुसार निष्पक्ष पत्राकारिता नीतिशास्त्र के लिए महत्त्वपूर्ण है, और हर पत्रकार से इसकी अपेक्षा रखी जाती है। पत्रकारों को शब्दों का चुनाव बहुत सोच–समझ कर करना चाहिए, क्योंकि शब्दों के एक से अधिक अर्थ होते हैं, और अलग–अलग संदर्भों में अर्थ बदल सकते हैं। संदर्भ की ओर ध्यान देना जरूरी है ताकि दी गयी जानकारी को सही परिप्रेक्ष्य में समझा जा सके।

पर वर्तमान में पेड न्यूज की धारणा मीडिया की भूमिका में नैतिक मूल्यों को समाप्त कर दिया है। अब मीडिया का एक ही उद्देश्य रह गया है अधिक से अधिक पैसा कमाना, इसके लिए राजनीतिक पार्टियों के हाथों में अपने को बेच दिया है और अधिक लोकप्रियता के लिए अश्लीलता एवं झूठा समाचार जनता के बीच परोसते हैं। व्यावहारिक नीतिशास्त्र इस बात पर बल देता है कि मीडिया जिसे चतुर्थ स्तंभ कहा जाता है उसे अपने नैतिक दायित्वों को व्यवहार में लाना होगा।

इस प्रकार अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र का क्षेत्रा काफी व्यापक है। सभी विषयों पर चर्चा करना समय–सीमा को देखते हुए संभव नहीं है। खास कर शिक्षा सम्बन्धी नीतिशास्त्र, व्यावसायिक नीतिशास्त्र, विधिक नीतिशास्त्र, इत्यादि विषय मानव जीवन में अभिन्न रूप से जुड़े हुए हैं। सभी विषयों पर चर्चा होना चाहिए। पर यहाँ अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र का मूल प्रश्न है कि सैद्धांतिक बातें कब तक होते रहेगी उसे व्यवहार में लाने की आवश्यकता है। किताबी ज्ञान से समस्याओं का समाधान नहीं हो सकता है। उसे व्यवहार में लाने की आवश्यकता है। व्यक्ति किसी आदर्श पूरुष पर जितना चर्चा करते हैं उनके जीवन का दस प्रतिशत अपने जीवन में अनुकरण कर ले तो बहुत हद तक सभी प्रकार के समस्याओं का समाधान हो सकता है। चाहे पर्यावरण से जुड़े समस्या हो अथवा मानव जीवन से जुड़े कोई भी समस्या क्यों न हो। अतः हम कह सकते हैं कि वर्त्तमान में अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र की प्रासंगिकता काफी बढ़ गई है, जिसका मूल मंत्र है–कर के सिखीये। व्यवहार में ला के देखो।

सन्दर्भ–सूची

1. Peter Singer, Practical Ethics P.10, Cambridge University Press, New Delhi, 1980
2. Peter Singer (ed.), Applied Ethics P. 1, Oxford University Press, Oxford, 1981
3. Rosemarie Tong, "Surrogate Parenting" in Interned Encyclopedia of Philosophy (15.4.2016)
4. एच. एच. टाइट्स एण्ड मॉरिस टी. कीटन., दी रेंज ऑपफ एथिक्स, पृ. 226
5. यजुर्वेद 36/17
6. नित्यानन्द मिश्र, नीतिशास्त्र सिद्धांत एवं व्यवहार पृ. 545, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, दिल्ली, 2004
7. वही, पृ. 544
8. हिन्दुस्तान पेपर, नगर संस्करण, पटना पेज 1
9. ऋग्वेद, 10.96.20
10. अथर्ववेद, 8.1.7
11. Peter Singer, Animal Right, p 236 Cambridge University Press, Oxford 1986

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Philosophy : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 489-493

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

Sphota Theory of Meaning : An Analytical Study

*Abhas Kumar**

ABSTRACT : The Sphota theory of language is a linguistic approach to Indian Philosophy.

It proclaims that a word or a term has an identical relation with their meaning. But it is not a complete identity. It is a specific identity that assimilates difference as well. An ordinarily spoken sentence has no capacity to generate its meaning. It depends on 'Sphota'- (a transcendent store house of general meaning like cowness and horseness etc). When an ordinarily spoken (Vaikhari) term enters into Madhyama – a transcendent category of reason, it signals to 'Sphota' for its meaning and sphotic a meaning flashes out in this transcendent category. It becomes a general meaning.

KEYWORDS : Sphota (a transcendent store house of meanings or general terms), Sphotic, Vaikhari (the ordinarily spoken language), Madhyama (a transcendent category of reason).

INTRODUCTION : Sphota theory of language is a type of Philosophy which concerns about Sanskrit grammar, which presents a specific view of 'word-meaning' relationship. As we know that the emergence of 'Hindi grammar' has happened from Sanskrit grammar, so we can accept 'Sphotavada' as considerable Philosophy of grammar of both the languages. If we consider the term 'Sphota' with a view to literature or written documents, it is found in the writings of Pâtanjali as the earliest. Some scholars regard sphotayanacharya as the inventor of this term earlier than Patanjali and Pânini. Reason is that Pânini has also expressed such as in his writing. **^^voM~- LQksVk;uL;**AA** This expression is meant by that Sphotâyana is the inventor of that. As the writing in this regard of sphotâyanacharya is not available in the present era, it is difficult to prove him as the inventor of the term 'Sphota'. Even there in not any state forward description of this term in Panini sutras (writings).

In spite of that, the composition –order of his sutrâs proves that he was well acquinted with the term and he understood this term with its grace. The main writings, related to 'Sphotavada' are Vakyâpadi of Bhartrihari, Sphotavada of Nâgesh Bhatt, Sphot-Siddhi of Mandan Mishra and Sphot-Nirnaya of Kond Bhatt, which provide knowledge of 'Sphota' Theory of meaning.

Theory of 'Sphota' In Its Completeness : To study the view which the title of this essay indicates, we have to clarify it in completeness. At the outset an effort is being made to clarify 'Sphota' theory or meaning.

The term 'Sphota' is ordinarily defined as

"स्फुटति = विकसति अर्थः अस्मात् इति स्फोटः।"[1]

It is meant by, "which meaning flashes without any doubt" is 'Sphota' . In simple, it can be said that the picture which flashes out as meaning in the reason or on the mind of a listener is Sphota, when he listens something.

* *Associate Porfessor (Deptt. of Philosophy), Kisan College, Sohsarai, Nalanda, Pataliptra University, Patna, Bihar*

An ordinarily spoken word (Vaikhari Vâni) which is simply a sound does not generate any meaning according to the favourites of sphotavada. Bhartrihari quoted as in his writing Vâkyâpâdiya.

''वैखर्याहि कृतो नादः परश्रवरागोचरः।
मध्यमया कृतो नादः स्फोट व्यंजक उच्यते।।''[2]

It means "whatever is spelt or spokezn ordzinarily (Vakhari Vani) is made for listening only. It does not generate the actual meaning of a term or a sentence. A transcendent category of reason called 'Madhyamâ' that exists on our mind, receives 'Sphota' as the actual meaning of the term. The general idea that flashes out after speaking the ordinary word on the minds of both the on speaker and the listener is 'Sphoa'. Sphota flashes out on the mind of a speaker, when he speaks and the same happens on the mind of a listener, when he listens a ordinary word or a sentence (vaikhari).

For example, the terms of hindi language-Gaya (गाय), Gau (गऊ), Gauni (गौणी), cow *etc.* indicate a common 'Sphot' term 'Gao' (गौः)।

This 'Gao' (cowness) flashes out on our minds whenever we speak above written terms or words- Gaya (गाय), Gau (गऊ), Gauni (गौणी Sanskrit term) and cow. In the flow of 'English language, It can be said that whenever we ordinarily say 'cow' or 'a black cow' or a white cow', one and only one general idea of a cow, that may be cowness, flashes out in our reason and ultimately on our minds, that includes all the cows of the universe. That flashed general idea is 'Sphota'. It is said with a view point of sphota theory that an identical relation follows between general idea of a cow and a particular cow. According to Sphota theory, terms or words of 'Vaikhari' or ordinarily spoken words like Gaya (गाय), Gau (गऊ), Gauni (गौणी) and cow etc. pass through the rational category of reason (Madhyama- मध्यमा) that already resides on our respective minds, express the general idea of a cow, that may be 'cowness'. The general idea of a cow is an sphotic meaning of aforesaid 'Vaikhari" words like- Gaya (गाय), Gau (गऊ) *etc*., which comes from a transcendent store house 'Sphota' on our minds. The general idea of a cow which is (गौः) in Sanskrit and cowness in English have an identical relation with the original meaning or sphotic meaning of them. In 'Madhyama' vaikhari words send a signal to the transcendent 'Sphota' and the general or universal meaning or sphotic meaning flashes out in it. Vaikhari words have no capacity to generate the original or universal or general or sphotic meaning on their own. A sphotic meaning flashes out in reason on the basis of its own potential.

'Sphota' can be called as 'Adrista- kârnântara' which is meant by that the 'Sphota' is probably 'transcendent Causation' or "ultimate causation' of the meaning of terms or words which has accurate general or universal meanings of as sphota, which are used in worldly languages. As it is transcendent, it is beyond the reach of a speaker and a listener, hence it is eternal. That is the cause it flashes out in the reason. It is not produced or generated by the reason. This 'Sphota' is likewise 'Brahman of Upanisada', the ultimate reality as sphotist declares.

''मध्यमात तु अन्तः सन्निवेशिनी परिगृहीत क्रमेव बुद्धिमात्रोपादाना।।''[3]

It means, whatever flashes out in our reason is Sphota 'Sphota'-words are class-representative therms which can flash out only in reason. They flash out in the rational category 'Madhyma'. Sometimes it is called rational or conceptual in sphota related literature, but Bhartrihari denies reason as its origin. Reason cannot produce sphotic terms; 'Sphota' is transcendent like Brahman. In fact it is not different form Brahaman. All shpotic terms which are conceptual in actuality are inclusive in external 'Sphota' or Brahman but flashes out in reason. Reason resides in every healthy man and when ordinarily spoken term's last syllable is pronounced, related sphotic term flashes out in it. Bhartrihari says sphotic terms have got identity with their meanings. This way syllables when conjoin, a word or a term in formed but for, its meaning, it depends upon 'Sphota'-the independent and eternal substance or reality. It means, "Before speaking and after listening sphotic-terms flash out in the speaker's reasoning and the listener's reasoning as well in forms of concepts."[4] Syllables when ever conjoins, depend upon 'Sphota' for

meaning. Janis, Mimansist and Nyayic defies this theory of Sphotists. Kumaril and shankaracharya ultimately accept 'Varnanityatavada', which is meant by syllables have such capability that they can generate a meaning whenever they conjoin. They are naturally built like that. There is no need to accept and additional independent and eternal reality 'sphota' with a view to Vadanta and Kumaril Bhatt.

Any way, I am talking about Sphota theory of meaning and these dialoges are against this theory. So, I have to continue the talks related to Sphota.

Let us, discuss the term Vaikhari ¼oS[kjh½ in sphota as it plays a great role in language reciprocation. The language which is spoken by common people or by and large the language which is used as medium of communication. The language which is spoken or listen by human beings. This type of language is called 'Vaikhari' in sphotavâda. I have used the term 'ordinarily spoken' for 'Vaikhari' in this writing earlier.

Now it is being discussed the relation between Vaikhari (ordinarily spoken words) and its sphotic meanings. What type of relationship can be possible between a Vaikhari word and its sphotic meaning? Whether there is a complete identity or partial identity or half identity lies between them is considerable. This discussion will be made in the context of Sphotavada. In actuality, sphotists accept contingent relation between them.

Bhartrihari says in Vakayapadiya:-

''उपाधिभेदात् सत्तैव भिद्यमाना गवदिशु
जातिरित्युच्यते तस्यां सर्वे शब्दाः व्यवस्थिताः।
तां प्रातिपदिकार्थञच धात्वर्थञच प्रचछते।
सा नित्सा सा महानात्मा तामाहुस्त्वलादयः।।''[5]

Here, It is said that 'Brahman' is the ultimate reality, but it appears as cowness and horseness; commonly called 'Jatti' because of different nominations. So, Cowness and Horseness and likewise general concepts are 'Brahmnan', the ultimate reality. So, Vaikhari's ordinarily spoken word indicates various objects of the world from worldly point of view but their sphotic meaning is 'Brahman', the ultimate reality. In actuality, only 'Brahman' enlightens in common man's reason as the worldly meanings of various words and those meanings, which are 'sphotic' or 'general' in actuality, are 'Brahman' with a view to transcendent causation ultimately. So, Cowness (Gotwa) and Horsness (Ashwatva) and likewise words may be the words of Vaikhari but they are 'Sphotic' in actuality and have contingent relation with their worldly meanings like a white Cow and a dark horse. Only 'Brahman' enlightens in human's reason as general terms ultimately. Bhartihari thinks that all worldly living beings are 'Brahman' with a view to transcendence. Now, these sphotic meanings, which are the real meanings or transcendent meanings of various woldly or ordinarily spoken words, then, Are the words of vaikhari (The 'ordinarily' spoken) the formation of ignorance? This is such a question, which is unanswered even by Sphoitists. Words of ordinary language or 'Vaikhari' are just the appearance of ignorance is not firmly declared by Bhartrihari by he indicates like that at several places in his writing.

Again, Sphota in the form of transcendent causation(Adrista Karanantara) has what type of relation with the ultimate reality 'Brahaman' is not clarified. What type of identity lies between these two. Are they in the relationship as 'Brahaman' and 'God' of Adwaitism or both have complete identity? This not clarified. "This is the reason that Adwaitist Sankaracharya accepts 'Eternity of syllables' (Varnanityatâv--âda) of Mimansa Philosophy."[6]

Sphotists admit that the universal terms or words which have 'rational' meanings have identical relations with them. But the question is what type of identity that may be, is considerable. Reason is that followers of Mimansa Philosophy raise voices against sphotists, if there is a complete identity between words and their meanings, whenever we spell the word 'fire' why don't we have sensation of

burning? As per solution of this problem Sphotists say that the attribute of ‘Identity’ over here is, identity is agreeable to difference” (Bhed (भेद) – Ghatit (घटित) or Sammat (सम्मत) Abhed (अभेद)). It is meant by that the identity lies between a word and its sphotic meaning is relative to or agreeable to difference. We can ordinarily explain this as “which may be different but appears identical.” It means here identity assimilates difference. It can be said that the property of this identity is that appears identical in spite of having differences. So, In actuality, Identity is imposed over the sphotic words and their rational meanings.

So, According to Sphotists, there is no paradox in saying ‘Difference is agreeable to Identity’ as here difference is not very much exclusive or extended, because as per meaning of a word, the important quality of the object, whom the word indicates is imposed. To prove this, they have a sentence “Some tigers are white.” This sentence is meant by “White tigers are white.” Here it seems ‘White’ is the important quality of that ‘white tiger’, which has aforesaid relation with white tiger, I mean to say, Difference is agreeable to identity or identity of agreeable to difference is such a relation that occurs between ‘white’ and white tiger. Yes, there is a difference between ‘white’ as a colour and ‘white tiger’ as an animal, but it is not very exclusive. So ‘white’ can be imposed over white tiger and identity can be assumed. When difference becomes exclusive, no imposition can be possible. For example the quality like horseness has no identity with a man. Bhartrihari proclaims, It is wrong to impose coldness over fire. Because the difference between fire and coldness is exclusive. So, if we impose identity on a word and its meaning having the above precaution, it will not be wrong even with a view to grammar.

He has picked up the law of Sanskrit Grammar that clarifies that whenever we talk about difference agreeable to identity, It becomes true or just with a view to ‘Prathama Bihhakti’ of that. This justifies the identical relation of a word and it’s sphotic meaning. Bhartrihari proclaims:-

‘‘इन्द्रियाणां स्वविशयेश्वनादि यौंग्यता यथा

vukfnj FkkZ "kCnkuka laca/kks ;ksX;rk rFkkA**7

It means:- As, sense organs like- ‘Eye’, ‘Ear’ and ‘Nose’ have got eternal capacity to receive their subjects like form, word and smell ete; in the same way words of a language have got eternal relation with their meanings. But the problem is that this relation of impose identity will not be said ‘eternal’ and ‘infinite’ for an individual (Jiva), because, when he realizes his original self, which is free from all rational impositions, this imposed identity will be insignificant in vedantian sense.

In actuality, As far as imposition is concerned, ordinarily spoken words (Vaikhari) are imposed on their sphotic meanings, Because, eternal sphotic meanings cannot be the things of imposition with a view to ‘Adwaita’ theory. It may be true that imposed items are ‘Sphotic meanings’ on ‘Vaikhari’ from worldly point of view. So, Sphotic meanings can be the item of imposition with a view to immanence only.

Now, It can be relevant ot reconsider the concept of ‘Sphotic meaning’ of a word or ‘Vaikhari’ word.

Sphotists say **स्फुटयते = प्रकाश्यते अर्थः अनेन इति स्फोटः।**

Having been spelt a word, what is flashed as the meaning of that in our reason is sphota. With a view to sphotists, of the real meaning of a word must be acceptable to all (“Sarwa Parathniya sphota”). Bhartrihari says’, “ अर्थ्यते प्रार्ष्यते सर्वेरिति अर्थः ।।” Objectivity is accepted here, concerning the meaning of the term ‘meaning’. But he is accepting that with a worldly point of view or with a view to immanence. With a view to reality or transcendence, the meaning of a word is already determined or it is pre-determined. Meaning of various words are sphotic and they reside in ‘Sphota- the transcendent causation’. That is the reason that ‘Sphota’ is ‘Tran’s causation’, called ‘Pranava’ or ‘Brahamn’. Patanjali says in Yog Sutra – “तस्य वाचकः प्रणव, तज्जपस्तदर्थ भावनम् ।।”[8]

So, Sphota is the real word-meaning according to sphota theory of meaning, which is conceivable by our reason and because of that it is cognitive. Bhartrihari never considers it as the unit of language in his writing vakayapadi. Language works as the medium of projection of 'Sphota', the real meaning of a term. 'Sphota' is not produced by the language. Whenever language is spoken or something is expressed in language, 'Sphota' flashes out in the reason of a man. In 'Harivrtti', Bhartrihari says:-

"The ordinary or contingent meaning of a word or a sentence is insignificant unless the Sphotic meaning flashes out in our reason. Cognigence of the meaning is possible only after the appearance of that sphotic meaning." [9]

So, the significant meaning of a word is 'Sphotic meaning'. Because of this very superiority of 'Sphota', it is known as 'Omkara' and sometimes it is called 'Brahman', the ultimate reality. "To conceive that 'Sphotic meaning', It depends upon 'vaikhari'." To think like that, It will be wrong with a view to 'Sphota theory of meaning.

'Sphota has got capability to project itself just after words and sentences are spelt. Sphota, as meaning is perfect as it is not produced by words and sentences. Words and sentences of ordinarily spoken language are dependent for generating their meanings. Sphota continues to be absolute and self dependent.

It is said, " 'Sphota' is not an unit of any language but it is an unit of awareness."[10]

In the consideration of 'Sphotic' meaning or in the description of that we feel epistemological dualism. The first is ordinary rational meaning and the other is sphotic meaning. Both flash out in reason, but the sphotic meaning does not depend on either reason or words or sentences. In actuality it's picture flashes out in reason. Sphotic meaning is universal, independent, eternal, absolute and is the ultimate reality Brahaman.

In the end, it can be said, sphota is general or universal (Jatti) and conceptual. In ordinarily spoken language (Vaikhari) - Cow, Gâya, Gau, Gâvi and Gauni, which are spelt normally, project Gawh (गौः) as sphotic form of all that in reason first, then this 'Gawh' projects 'Gotwa' (गोत्वा) as sphotic meaning of that immediately.

It is said in Vakayapadiay:-

अनेक व्यक्त्य ऽमिव्यंग्याजातिः स्फोट इति स्मृता।।[11]

Now it is clear that a speaker or a listener, when speaks or listens, that passes through 'Madhyama-The transcendent category or reason' and signals to a general term (Sphota) and that general term flashes out in our reason as the meaning of that term. 'Sphota' is transcent causation (vn`"V dkj.kkUrj) where sphotic words or terms or general terms reside.

Reference

1. Bhartrihari, Vâkayapadiya, Page-'Vrihdhaturupavali' -325
2. Ibid, Page: tattireeyopnishdhshyam (110), (Brahamanandvali)
3. Ibid, 1/142
4. Ibid, 401/123
5. Sphot Darsan, Pandit Ranga Nath Pathak, Bihar Rastrabhsha Parishad, P-64
6. Sphot Dar'san, Pandit Ranganath Pathak, Page-6 (Prastawana), Bihar Rashtrabhasha Parisad (India).
7. Ibid, P-200
8. Patangali Yoga Sutra, 112711, P-32, Swami Prabhavananda, Publisher-Sri Remakrishna Matth (Mylapore, Madras)
9. Hari Vrtti 2/82
10. K. A. S. Ayar 'BhartriHari', P-180

* * * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Philosophy : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 494-501

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

शंकर के अद्वैतवाद में चेतना सम्बन्धी अवधारणा : एक दार्शनिक विश्लेषण

डॉ. संजय कुमार सिंह*

उपनिषदों के ज्ञान तथा अपने अनुभव और तर्क से शंकर ने ऐसा दर्शन प्रस्तुत किया है, जैसा अन्य किसी ने नहीं किया। शंकर ने सामान्य अनुभव और तर्क के माध्यम से जिस प्रकार अनुभव निरपेक्ष सत्य को प्रस्तुत किया, वह अद्वितीय है। शंकर की पूरी आस्था, निष्ठा और आग्रह चैतन्य तत्व पर ही है। जो एक मात्र शुद्ध चिन्मय और निरपेक्ष तत्व है। यह चैतन्य सृजन और विनाश से परे, पूर्ण और सदैव वर्तमान है।

द्वैतवाद, जड़ और चेतन की समस्या को ऐसी जगह पहुँचा देता है कि उनका तार्किक समाधान किसी भी प्रकार संभव नहीं हो पाता। द्वैतवाद में जड़ और चेतन के समबन्धों की स्थापना करना तथा अनुभव की व्याख्या करना एक कठिन समस्या बन चुकी है। दर्शन में सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रश्न जड़–चेतन के स्वरूप और उनके सम्बन्धों की व्याख्या करना है। हमने देखा कि सांख्य दर्शन द्वैत पर अत्यधिक आग्रह करने के कारण कई अनुत्तरित प्रश्न छोड़ देता है। यदि सांख्य द्वैत से थोड़ा भी समझौता करता तो इतने विरोधाभाष नहीं होते जितने कि, द्वैत के कारण उत्पन्न हो गये।

चेतना की उत्पति और चेतना के स्वरूप के विषय में भारतीय दर्शन में कई दृष्टिकोण प्राप्त होते हैं। चार्वाक के भौतिकवादी दृष्टिकोण के साथ ही साथ अद्वैतवाद के अनुभव निरपेक्ष सम्बन्धी दृष्टिकोण तक की यात्रा अत्यन्त रोचक तथा दार्शनिक दृष्टि से विलक्षण हैं। अद्वैतवाद आत्मा और चेतना को एक ही मानता है तथा आत्मा को ज्ञान का कर्ता या क्रिया नही बल्कि आत्मा को ज्ञानस्वरूप प्रस्तुत कर जो दार्शनिक दृष्टि प्रस्तुत किया है वह अद्भुत है। आत्मा को स्वतंत्र, शाश्वत तथा आनन्द स्वरूप बताकर–शंकर जड़ जगत की वास्तविक सत्ता का ही निषेध कर देते हैं।

शंकर के अद्वैतवाद के अनुसार चैतन्य ही वास्तव में सत्तावान है। अचेतन का कोई वास्तविक अस्तित्व नहीं है। हम व्यवहारिक जगत में जड़ वस्तुओं का अनुभव अवश्य करते हैं, लेकिन यह अनुभव भी सत् (चैतन्य) का ही व्यावहारिक अर्थात् प्रातीतिक अनुभव है। यह वास्तविक अनुभव जैसा लगता है, परन्तु वास्तविक है नहीं। अविद्या ने अखण्ड और पूर्ण तत्व को विभाजित कर प्रस्तुत कर दिया है, जिसे हम संसार कहते हैं। समस्त विभाजित और सीमित वस्तुओं में अविभाजित और नित्य वर्तमान चैतन्य विद्यमान है। वही शुद्ध चैतन्य है। उसी की एकमात्र सत्ता है।

शंकर के अद्वैतवाद में चेतना वह है जो विषयी न बन सके। व्यवहारिक रूप से हम बाह्य वस्तुओं को अस्वीकार नहीं कर सकते। बाह्य वस्तुओं की वास्तविकता की प्रतीति तभी तक संभव रहती है जब तक हमारी चेतना अपने निज स्वरूप को अनुभव नही कर लेती। अपने स्वयं के स्वरूप का अनुभव करते ही जागतिक जड़–चेतन का भेद मिट जाता है, तथा हमारी चेतना अपने स्वरूप को उपलब्ध हो जाती है। हम कह सकते है कि व्यक्तिगत चेतना, चेतना का वास्तविक स्वरूप है ही नहीं। शंकर कहते हैं कि व्यक्तिगत चेतना परम चेतना द्वारा प्रकाशित 'अहं' है। यही 'अहं' विषयी बनकर जड़ को भी प्रकाशित करता है, जड़ को विषय बनाता है। जबकि परम चेतना 'अहं' और 'साक्षी' को भी प्रकाशित करने वाली है। वह अद्वैत स्वरूप है। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि शंकर दर्शन को तभी स्वीकार करना संभव होगा जब हम अनुभव मूलक चेतना तथा अनुभव निरपेक्ष चेतना के भेद को स्वीकार कर सके। भारत में अनुभव निरपेक्ष चेतना की स्वीकृति कई दार्शनिक मत देते है। पाश्चात्य दार्शनिक परम्परा

* *एसोसिएट प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र विभाग, आई.ओ.पी. वृन्दावन, मथुरा, उ.प्र.*

में अनुभव निरपेक्ष चेतना की स्वीकृति असंभव सी है। यदि हम अनुभव निरपेक्ष चेतना की अनभूति को अस्वीकार कर दे तो शंकर को समझना कठिन ही नहीं, असंभव है। शंकर के अनुसार अकेले चेतना ही अस्तित्ववान है। जड़ का कोई अस्तित्व नहीं है। सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रश्न तो यही है कि यदि चेतना ही एक मात्र तत्व है तो वह अपने विरोधी जड़ तत्व को कैसे उत्पन्न करती है? चेतना को जड़ तत्व को उत्पन्न करने की आवश्यकता ही क्यों पड़ी?

साँख्य दर्शन से हम यह समझ चुके हैं कि दो निरपेक्ष तत्त्वों से अनुभव की समस्या का समाधान नही कर सकते। हाँलाकि साँख्य प्रतिबिम्बवाद और प्रतिबिम्ब के प्रतिबिम्ब के सिद्धान्त को प्रस्तुत कर अनुभव की समस्या का समाधान करने का प्रयास करता है, परन्तु इससे भी वह कई तार्किक विरोधाभाषों से ग्रसित हो जाता है।

शंकर के अनुसार बुद्धि जड़ है, परन्तु, वह ब्रह्म (चैतन्य) के चैतन्य को ग्रहण करने में समर्थ है। बुद्धि में प्रकाशित शुद्ध चैतन्य अपने को भ्रमवश सीमित तथा विशेषित समझ लेता है। चेतना जड़ के समस्त विशेषणों को स्वयं में आरोपित कर लेती है तथा विषयी बनकर विषयों का भोक्ता बन जाती है। जैसे चन्द्रमा परिवर्तनशील जल में पड़ने वाले अपने प्रतिविम्ब से अपने को एक कर ले तथा प्रतिविम्ब के सभी परिवर्तनशील रूपों को अपना ही रूप मान ले।1 वही स्थिति परम चैतन्य ब्रह्म की होती है। जैसे स्वच्छ और रंगहीन काँच अपने निकटतम रंगीन पदार्थों के प्रतिबिम्ब से अपना तादात्म्य कर लेता है और उनके विभिन्न रूप भेदों को अपना मान लेता है। यही है चेतना का बन्धन, जो है तो अवास्तविक, लेकिन लगता है वास्तविक।

हम जानते हैं कि प्रतिविम्ब का यह सिद्धान्त दो समान स्वभाव वाली वस्तुओं पर लागू होता है। परन्तु शंकर के दर्शन में अस्तित्त्वान तो एक ही तत्व है। ऐसी दशा में प्रतिबिम्बवाद को कैसे समझा जाय? ऐसा कोई तो तत्व होना चाहिए जो एक तत्व को दो बनाकर प्रस्तुत कर सके जिससे प्रतिबिम्बवाद के सिद्धान्त की तार्किकता को प्रस्तुत किया जा सके। शंकर दर्शन में ऐसा कोई तत्त्व नहीं है। शंकराचार्य अद्वैतवाद की दृढ़ पृष्ठभूमि पर अड़िग है। वे शुद्ध चैतन्य के व्यवहारिक प्रतीति को एक अन्य उदाहरण द्वारा प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं। उनके अनुसार असीम आकाश घट द्वारा सीमित होने होने जैसा लगता है (घटाकाश), जबकि वह विभाजित नहीं होता। ठीक उसी प्रकार असीम चेतना बुद्धि द्वारा विभाजित सी लगती है परन्तु वह विभाजित होती नहीं। अद्वैतवाद के अनुसार महाकाश का घटाकाश होना व्यवहारिक उदाहरण है, जिसे हम इन्द्रियों द्वारा अनुभव करते हैं, जबकि शुद्ध चेतना का व्यक्तिगत चेतना में प्रगट होना प्रतीति का विषय है, न कि वास्तव में शुद्ध चेतना विभाजित होती है। यहाँ शंकर के अनुभव मूलक ज्ञान तथा अनुभव निरपेक्ष ज्ञान में अन्तर को समझना आवश्यक है। शंकर के अनुसार शुद्ध चेतना अनुभव निरपेक्ष है। ऐसी स्थिति में प्रश्न उठता है कि उसे घटाकाश और महाकाश जैसे इन्द्रियानुभविक ज्ञान से कैसे तर्कत समझा जा सकता है? अतः उपरोक्त उदाहरण संतोषजनक नहीं है।

अद्वैतवाद के अनुसार चेतना का बन्धन और मुक्ति भ्रमवश ही है। जिस प्रकार एक राजकुमार निम्न जाति में पलने बढ़ने के कारण अपने को निम्न जाति का समझ लेता है और अपनी सीमायें बना लेता है। वह दीन–हीन और अभावयुक्त जीवन यापन करता है। परन्तु जैसे ही उसे पता चलता है कि वह राज्य का राजकुमार है, तत्क्षण ही दीनता से मुक्त हो जाता है। वास्तव में जब वह भ्रम में था तब भी राजकुमार ही था। वह दीनता तो अज्ञानजन्य थी, जो वास्तव में थी ही नहीं। ठीक उसी प्रकार ब्रह्म अज्ञानवश अपनी सीमायें बना लेता है तथा चेतन और जड़ के भेद को जन्म देकर जीव के रूप में कर्ता और भोक्ता बन जाता है। जैसे ही स्वयं के स्वरूप को उपलब्ध हो जाता है। ज्ञाता ज्ञान और ज्ञेय की त्रिपुटी से मुक्त होकर अपने आनन्द स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है।

प्रश्न यह उठता है कि अविद्या या भ्रम क्यों होता है? यह प्रश्न साँख्य दर्शन में भी उपस्थित हुआ था। जहाँ तक साँख्य–दर्शन का प्रश्न है तो वहाँ भी अविद्या या भ्रम का तर्कतः पूरा समाधान नहीं हो पाता है। हम देखते हैं कि शंकर भी अविद्या या भ्रम को तर्कतः समझाने में असमर्थ ही लग रहे हैं। शंकर के मूल तत्व का स्वभाव 'ज्ञान स्वरूप' है। शाश्वत तत्व के तात्विक स्वरूप को कभी भी नष्ट नहीं किया जा सकता। अतः शंकर के लिए भी भ्रम की अवधारणा से जड़ और चेतन की समस्या का समाधान अत्यन्त कठिन है।

आधुनिक विज्ञान के अनुसार ऊर्जा और द्रव्य में अन्तर नहीं है। अर्थात् तत्त्वतः दोनों एक ही है। वे एक दूसरे में रूपान्तरित होते हैं। लेकिन शंकर का परतत्त्व, जिसे वह परम चैतन्य कहते हैं, उसमें कोई परिवर्तन नहीं है। शंकर यह भी कहते हैं कि ब्रह्म तत्व बिना परिवर्तित हुए संसार में रूपान्तरित हो गया है। रूपान्तरण ब्रह्म चैतन्य पर आरोपित है। यहाँ हम देखते है कि जड़–चेतन के सम्बन्धों की तार्किक व्याख्या में शंकर भी असफल से दिखते

हैं। शंकर अपरोक्षानुभूति का सहारा लेते हैं। इनके अनुसार अनुभव निरपेक्ष ज्ञान से माया (परिवर्तनशीलता) से मुक्ति मिलती है। माया से मुक्त होना ही जड़–चेतन के समस्त प्रश्नों से मुक्त होना है। जड़ एवं चेतना से सम्बन्धित प्रश्न rHhrd mBrsgaSt c rd cã kudbu ughagksk gS[2] ब्रह्मानुभव के उपरान्त यह ज्ञान हो जाता है कि जड़ का अस्तित्व ही नहीं है। सब कुछ चैतन्य ही है। यहाँ पर जड़ सम्बन्धी प्रश्न ही समाप्त हो जातें है। साँख्य दर्शन में चेतना को अपने अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति की आवश्कता होती है, अर्थात् प्रकृति (जड़) के बिना पुरुष अपने को अभिव्यक्त नहीं कर सकता जबकि शंकर का परम तत्व अपने से ही अपने को अभिव्यक्त करता है। अपने को विषय रूप में अर्थात् जड़ रूप में भी अभिव्यक्त करने की विशेषता ब्रह्म में है। इस प्रकार शंकर किसी भी स्तर पर द्वैत को स्वीकार नहीं करते। समस्त भेद अविद्या अर्थात माया के कारण है।

अद्वैत दर्शन में अविद्या या माया का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यदि अविद्या या माया का स्थान नहीं होता तो साँख्य की तरह यह दर्शन भी किसी न किसी प्रकार द्वैतवाद में ही उलझ जाता। माया का ही सिद्धान्त है जिससे शंकर अद्वैतवाद की स्थापना करने में समर्थ है। शंकर के दर्शन में जड़ जगत अविद्या के द्वारा ही प्रगट होता है, यह अनादि और अव्याख्येय है।[3] जब तक जीव के लिये अविद्या है जब तक जड़ प्रपंच भी है। इसका स्वरूप अनादि तथा सान्त है। यह चैतन्य तत्व (ब्रह्म) के सत्य स्वरूप का आच्छादन करती है तथा उसमें अनेकता और सीमितता की भ्रान्ति पैदा करती है।[4] इस कारण इसे माया कहते हैं। अतः शंकर के अद्वैतवाद की स्थापना का मूल आधार चैतन्य के व्यवहारिक और परमार्थिक स्वरूप को समझना आवश्यक है। इस कड़ी में माया का स्थान महत्वपूर्ण हो जाता है। अद्वैत में चैतन्य तत्व को एकमात्र सता घोषित करना तथा जड़ जगत को मिथ्या बताना तभी संभव हो सकता है, जब अनुभव करने की दो दृष्टियों का अन्वेषण किया जाय। शंकर अनुभव की दो दृष्टियों का अन्वेषण करते हैं–व्यवहारिक और परमार्थिक। जिसे इन्द्रियानुभूति और अपरोक्षानुभूति कहा जाता है। 'स्वचेतना' (विषयी, ज्ञाता, जीव) में दो तत्व अनिवार्य रूप से होते हैं– विषय और विषयी। यहाँ विषयी शब्द सामान्य अनुभव या बोलचाल के अनुभविता से भिन्न है। विषयी कभी भी विषय नहीं बनता, जबकि जीव मनोवैज्ञानिक रूप से विषय रूप है। शंकर उस चेतना (विषयी) की बात करते हैं जो कभी विषय नहीं बनता। हम जानते हैं कि परिर्वतनशील मनोवैज्ञानिक चेतना अथवा मन अथवा अहंकार विषयरूप है। शंकर कहते हैं कि यह मनोवैज्ञानिक चेतना, शुद्ध चेतना की प्रातीतिक अभिव्यक्ति है। वास्तविक चेतना सदैव ज्ञाता रूप ही रहती है, जो अखण्ड और परिवर्तन रहित नित्य वर्तमान स्वरूप है। इस प्रकार शुद्ध चेतना अंहचेतना से भिन्न व्यवहारिक जगत की अनुभूतियों की पूर्वापेक्षा है। चेतना स्वयं को विषय रूप में नहीं प्रस्तुत कर सकती, ठीक उसी तरह जैसे अग्नि स्वयं को नही जलाती।[5] मानसिक और बौद्धिक वृत्तियाँ भी चेतना को विषय नही बना सकती।[6] शंकर कहते हैं कि यह शुद्ध चेतना कभी भी ज्ञाता–ज्ञेय में विभाजित नहीं हो सकती है।[7] ज्ञाता–ज्ञेय–ज्ञान के त्रिपुटी के पार शंकर इसे ही अखण्ड चैतन्य तत्व कहते हैं।

शुद्ध चेतना (आत्मा) और स्वचेतना (जीव) के विषय में धर्मराजध्वरीन्द्र कहते हैं कि प्रगाढ़ निद्रा में शुद्ध चेतना केवल 'साक्षी' की भाँति ही अस्तित्व में रहता है न कि ज्ञाता की तरह। यहॉ पर अहंकार (मैं) अविद्या में लीन हो जाता है। यहाँ स्पष्ट है कि स्वचेतना का अस्तित्व अहंकार 'मैं' के साथ ही रहता है। 'मै'़ (विषयी) और विषय की अपेक्षा रखता है। परन्तु शुद्ध चेतना स्वयं प्रकाश और ज्ञान स्वरूप है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि व्यवहारिक चेतना और पारमार्थिक चेतना में अज्ञान और ज्ञान की दृष्टि का भेद है न कि वास्तविक भेद। क्योंकि अस्तित्वगत केवल ब्रह्मचैतन्य ही है। इसलिए भेद भी भ्रमात्मक ही हो सकता है। हमारा समस्त व्यवहारिक अनुभव विषयी–विषय, (अहंता विषय) के द्वारा ही प्रकट होता है। ये दोनों ही (विषय और विषय) शुद्ध चैतन्य (आत्मा) के प्रकाश से ही प्रकाशित होते है। जिससे विषयी और विषय दोनों ही प्रकाशित होते है, वही शुद्ध चैतन्य है। यह अनुभव इन्द्रियातीत है तथा समस्त परिवर्तनों के बीच जो अखण्ड स्वप्रकाश तत्व है, वही उसका स्वरूप है। समस्त मानिसक वृत्तियाँ जिसे व्यवहारिक जगत में चेतना कहते है, उसी अखण्ड चेतना की प्रातीतिक अभिव्यक्तियाँ है। आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण से चेतना सम्बन्धी मान्यता, शंकर की मान्यता से भिन्न है, क्योंकि शंकर मानसिक वृत्तियों को चेतना नहीं स्वीकार करते हैं। भारत के दार्शनिक सम्प्रदायों में कणाद, गौतम, श्रीधर जयंत आदि व्यवहारिक अनुभव की व्याख्या के किए आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं, परन्तु यह स्वीकृति आत्मा को चैतन्य बनाने के स्थान पर जड़ स्तर पर ला देती है। शंकर के दर्शन में आत्मा की स्वीकृति मात्र

व्यवहारिक अनुभवों की व्याख्या के लिये ही नहीं है, बल्कि उसकी सत्ता अस्तित्वगत है। वह अनुभव तथा तर्क की पूर्णमान्यता के अतिरिक्त भी है, जो अपरोक्षानुभूति में उपलब्ध होती है।

साँख्य–योग और वेदान्त, चैतना के सम्बन्ध में अत्यन्त परिवक्व मत प्रस्तुत करते हैं। यहाँ चेतना अनुभव निरपेक्ष है, अखण्ड है, तथा समस्त व्यवहारिक अनुभवों की पृष्ठभूमि है। समस्त 'विशेष' अनुभव उसी निर्विशेष के द्वारा ही घटित होते हैं। यहाँ तक कि निद्रा और मुर्छा भी इसी निर्विशेष की पृष्ठभूमि पर घटित होते हैं। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाओं के तार्किक व्याख्या का आधार यदि कुछ बन सकता है तो वह है–निर्विशेष चेतना। निर्विशेष चेतना को स्वीकार किये बिना खण्ड–खण्ड अनुभवों की व्याख्या संभव नहीं है। और यदि जाग्रत, स्वप्न और मुर्च्छा में भी यह चैतन्य तत्व अपनी उपस्थिति बनाये रखता है, तो यह तार्किक अनिवार्यता है कि तुरीयावस्था में उसकी उपस्थिति स्वीकार किया जाय।

सर्वप्रथम प्रगाढ़ निद्रा और मुर्च्छा को समझा जाये। इन अवस्थाओं में विषय का बोध नहीं होता। अर्थात विषय उपस्थित नहीं होता। विषय न होने के अतिरिक्त यहाँ 'अह बोध' भी नहीं होता। हम देखते है कि 'अहं बोध' भी विषय को ध्यान में रखकर ही होता है। सुषुप्ति और मुर्च्छा में 'अहं बोध' और 'स्वचेतना' दोनों ही नहीं होते हैं। क्योंकि स्व–चेतना विषयों की चेतना के रूप में आत्मा की चेतना ही है। यह स्व–चेतना, जाग्रत तथा स्वप्नावस्था में विषय–बोध के रूप में उपस्थित रहती है। अन्य अवस्थाओं में जहाँ विषय नहीं होते हैं, वहाँ स्व–चेतना भी नहीं होती। अद्वैतवाद कहता है कि यहीं पर सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर पता चलता है कि जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्तावस्था के पूर्व एवं पश्चात् के अनुभूतियों के मध्यस्थ के रूप में एक अखण्ड तत्व विधमान है। यही तत्व निर्विशेष तत्व है। यह अखण्ड और शुद्ध चैतन्य स्वरूप है। यह विषयों के मध्य तथा विषयहीन अवस्थाओं में सर्वदा वर्तमान स्वरूप में विद्यमान रहती है। यहाँ पर एक निष्कर्ष और निकलता है कि चेतना वहॉ भी है जहाँ विषय नहीं है, सुषिप्ति और मुर्च्छा में भी चेतना विद्यमान है। यह चेतना विषयों के नहीं होने की दशा में भी है।[8] इस प्रकार शंकर व्यवहारिक जगत् में भी विषयों के सहायता के बिना ही चेतना को अस्तित्वगत बना देते हैं, जो कार्य के कणाद, जयंत, गौतम आदि नहीं कर सकें थे। शंकर कहते हैं कि चेतना उस सूर्य की तरह है जो वस्तुओं के न रहने पर भी अपने प्रकाश से प्रकाशित है।[9] विषय रहित चेतना को तर्क और अनुभव की कसौटी पर सिद्ध करने के बाद चेतना के स्वरूप पर भी प्रकाश डालना आवश्यक है। शंकर कहते हैं कि चेतना किसी तत्व का गुण नहीं है, बल्कि स्वयं प्रकाश, अखण्ड सत्ता है। यह (चेतना) आत्मा का क्रियात्मक या सांयोगिक गुण (लक्षण) भी नहीं है, बल्कि यह तो सारे क्रिया और अक्रिया के पृष्ठभूमि में अखण्ड प्रकाशवान तत्व है। विषय युक्त तथा विषय रहित अवस्थाएँ अपने अस्तित्व को इसी निर्विशेष चेतना से प्राप्त करती है। कहा जा सकता है कि चेतना का किसी भी स्थिति में लोप नहीं होता। विषय रहित चेतना और तुरीयावस्था को भी स्पष्ट करना आवश्यक है। विषय रहित चेतना में 'अहं' अविद्या में लीन रहता है। वहाँ चैतन्य तो विद्यमान रहता है परन्तु अविद्या में लीन 'अहं' नष्ट नहीं होता है, जबकि तुरीयावस्था वह अवस्था है जहाँ अविद्या के नष्ट होने से 'अहं' भी विलुप्त हो जाता है। यह चैतन्य के स्वप्रकाश अखण्ड स्वरूप का अतीन्द्रिय अनुभव है। इसके उपलब्धि के पश्चात् जीव बोध का भी नाश हो जाता है। यह विषय रहित चेतना समायातीत है। सम्पूर्ण परिवर्तनों में अपरिवर्तित (साक्षी) स्वरूप है। यह विषय रहित चेतना देश–काल, कारण–कार्य, विषय–विषयी, ज्ञाता–ज्ञेय को भी सार्थकता प्रदान करता है। स्पष्ट है कि यह निरपेक्ष चेतना न तो किसी का कारण है और न किसी का कार्य। यह अपने में पूर्ण तथा आत्मकाम है, तथा जिसके अतिरिक्त कोई अन्य नहीं है। वह सबको प्रकाशित करने वाला अनुभवातीत निरपेक्ष तत्व है। हम जानते है कि हमारी सारी धारणायें देश और काल की सीमाओं से निर्मित होती है। हम जो कुछ भी सोचते हैं, और समझते हैं, उसे देश–काल और उनसे निर्मित अनुभवों के माध्यम से ही समझने का प्रयास करते हैं। जैसे ही शंकर चेतना को समयातीत कहते हैं हम समझ सकते हैं कि अब कोई भी मानसिक धारणा उस देश कालातीत निरपेक्ष को व्याख्यानित नहीं कर सकता हैं। उपनिषदों में निरपेक्ष तत्व को समयातीत कहा गया है। उपनिषदों में एक ही वाक्य में कह दिया गया है कि जन्म, जीवन और मृत्यु के समय चेतना नित्य वर्तमान तत्व के रूप में रहती है। अर्थात् एक निरपेक्ष तत्व समय की सभी कोटियों में अखण्ड रूप से सदा विद्यमान है।[10] समय से पार होते ही 'चेतना' के अजन्मा और अकारण होने का प्रमाण देता है। ऐसा कुछ भी नहीं है जो इस निरपेक्ष से पहले रहा हो और इसके बाद होने वाला हो। देश–काल और कारण–कार्य का अस्तित्व प्रातीतिक है। इनकी प्रतीति भी उसी निरपेक्ष तत्व के कारण ही है।[11] यहाँ पर यह भी यह स्पष्ट है कि निरपेक्ष तत्व जो कि अकारण है, वह किसी कार्य का भी कारण

नही है। अर्थात सृजन, स्थिति और लय भी इसमें संभव नही है। यह निरपेक्ष तत्व अपने में पूर्ण तथा आत्मकाम है। पूर्ण और आत्मकाम होने के कारण यह किसी की अपेक्षा नहीं करता है। अर्थात यह निरपेक्ष है।

प्रश्न उठता है कि पूर्ण और आत्मकाम निरपेक्ष चैतन्य तत्व पर सृष्टि की प्रक्रिया को कैसे समझा जाय? इस पर अद्वैतवाद ने लीला सिद्धान्त को प्रस्तुत किया है, जिसे समझना आवश्यक है। यदि हम अपनी अपूर्णता को पूर्ण करने के लिए अथवा किसी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कुछ भी करते हैं तो यह सप्रयोजन क्रिया कहलाती है। परन्तु यदि हम अपने ऐश्वर्य और वैभव में इतने आनन्दित है कि वह आनन्द स्वतः ही प्रस्फुटित होने लगे अर्थात् आनन्दातिरेक में ही सृष्टि की प्रक्रिया सम्पन्न होने लगे तो यह क्रिया सप्रयोजन न होकर निस्प्रयोजन ही कहलायेगी। उदाहरण के लिए नृत्य में होने वाली गति ही नृत्य है, वह नृत्य से भिन्न नही है। हम कह सकते हैं कि आनन्द अपने से, अपने द्वारा, अपने में ही प्रगट होता है। इसलिए वह निरूद्देश्य है। व्यवहारिक जगत में कलात्मक कार्यों को क्रिया न कहकर अक्रिया ही कहा जाता है। जब एक कलाकार अपने भीतर के आनन्द को प्रगट करने के लिए रचना को प्रस्तुत करता है, जब उस रचना में डूबता है, तब वहाँ कोई लक्ष्य नहीं होता, बल्कि अपने आनन्द से पहले, मध्य और अन्त तीनों अवस्थाओं में होता है। सामान्य दृष्टि से यह क्रिया होते हुए भी अक्रिया है। हम देखते हैं कि सौन्दर्यात्मक रचना में भी जितना अधिक कलात्मकता होती है, उसकी व्यवहारिक उपयोगिता उतनी ही कम होती जाती है। अब ब्रह्म के सम्बन्ध में हम कह सकते हैं कि वह तो अनन्त और असीम है, उसकी कलात्मकता भी अनन्त और असीम होगी। अतः यह जगत ब्रह्म की क्रिया न होकर ब्रह्म का आनन्दातिरेक है, लीला है, जो कि निस्प्रयोजन है। इस प्रकार लीला के सिद्धान्त से शंकर ब्रह्म को कारणहीन तथा कार्यहीन सिद्ध करने का प्रयास करते हैं।

चेतना अपने में अद्वितीय है। इसमें सजातीय, विजातीय तथा 'स्व–गत' भेद भी नहीं है।[12] जो भी भेद हम व्यवहारिक जगत् में देखते हैं, वह वास्तविक नहीं है। यदि व्यवहारिक जगत में जड़–चेतन का वास्तविक भेद नहीं है तो यह निष्कर्ष निकलता है कि जड़–चेतन की व्यवहारिक परिभाषा भी वास्तविक नहीं है। अर्थात् मानसिक वृत्तियाँ भी जड़ ही है, जिसे आधुनिक विज्ञान चेतना कहता है। शंकर की दृष्टि में व्यवहारिक जगत प्रातीतिक है। जड़ जैसा कोई तत्व नहीं है। चेतना, वस्तुतः 'अहं चेतना रहित', स्वंय प्रकाश तत्व है, जो अद्वैत और सर्वदा वर्तमान रूप है।

'अहं–चेतना' रहित 'चेतना' को कैसे समझा जाय? यह प्रश्न उनके लिए समस्या उत्पन्न करता है, जो अपरोक्षानुभूति को अस्वीकार करते हैं, तथा द्वैत परक अर्थात 'विषयी–विषय' ज्ञान के पार नहीं जाना चाहते हैं। शंकर कहते हैं कि इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि पूर्णचेतना सामान्य अनुभव का विषय नहीं है, क्योंकि अद्वैत रूप चेतना कभी विषय रूप में प्रस्तुत हो ही नहीं सकती। वास्तविकता यह है भ्रम में ही मन सक्रिय होकर सारा द्वैत प्रपञ्च का खेल रचता है। सारा द्वैत, ब्रह्म चैतन्य पर मन की सक्रियता के कारण है।[13] 'ब्रह्म–चैतन्य' हमारे सुख–दुःख, शुभ–अशुभ, इच्छा–भावना आदि से अछूता है। इसमें न कोई विभाजन है, न विभिन्नता।[14] इसे हम व्यवहारिक जगत में साक्षी तथा पारमार्थिक जगत में ब्रह्मचैतन्य के रूप में समझ सकते हैं।

अब यहाँ एक प्रश्न उठता है कि क्या 'साक्षी' और 'ब्रह्म चैतन्य' की वास्तविक सत्ता तर्कों के माध्यम से प्रमाणित किया जा सकता है? अद्वैत वेदान्त में तर्क और अनुभव की पराकाष्ठा देखी जा सकती है। चेतना के अस्तित्व का सर्वाधिक सटीक प्रमाण यह है कि यह (चेतना) सारे बौद्धिक प्रमाणों की पूर्वापेक्षा है, अर्थात् पूर्वमान्यता है। कोई भी पूर्व मान्यता उतना ही सत्य होता है, जितना उस पर आधृत ज्ञान सत्य होता है। अब, जबकि हम जानते हैं कि चेतना ही समस्त ज्ञानों की पूर्ण मान्यता है तो उसे अलग से प्रमाणित नहीं किया जा सकता बल्कि वह स्वयं–प्रमाणित है। यह प्रमाणों का प्रमाण है। इसे न तो प्रत्यक्ष द्वारा और न ही तर्क द्वारा प्रमाणित किया जा सकता है। समस्त खण्ड–खण्ड ज्ञानों को सूत्र में पिरोने वाला स्थाई चेतना स्वतः सिद्ध है। इसे अस्वीकार करने का अर्थ अज्ञेयवाद और संशयवाद को जन्म देना है। शंकर के अनुसार ब्रह्मज्ञान और समाधि, अज्ञेयवाद और संशयवाद का खण्डन करते हैं। यह वह अवस्था है, जहाँ प्रश्न नहीं उठते हैं। प्रश्न न उठने का अर्थ है– कि वहाँ अद्वैत है, पूर्णता है।

अब प्रश्न उठता है कि उसका वर्णन कैसे किया जाय? हम देखते कि वर्णन सदा गुण युक्त तत्व का ही किया जा सकता है, जो निर्गुण और असीम है उसका वर्णन कैसे किया जाए। एकमात्र यही कहा जा सकता है कि 'यह' अवर्णनीय है। हम निषेधात्मक वर्णन की प्रणाली को यहाँ लागू कर सकते हैं। उपनिषदों के ऋषियों और शंकर ने यही किया। कुछ पाश्चात्य दार्शनिकों जैसे स्पिनोजा ने भी निषेधात्मक प्रणाली का उपयोग किया है। यहाँ हम

एक महत्वपूर्ण तथ्य देखते हैं कि सत्ता तो विधेयात्मक है परन्तु वर्णन निषेधात्मक है। कही ऐसा तो नहीं, शंकर अज्ञेयवाद की ओर संकेत कर रहे हैं। कई विद्वानों ने परमसत्ता के वर्णन में निषेधात्मक प्रणाली को स्वीकार करने के कारण शंकर पर अज्ञेयवादी होने का आरोप लगाया है। कुछ ने प्रच्छन्न बौद्ध तक कह डाला। परन्तु शंकर ने परमतत्व को परमचैतन्य तथा सत् कहकर यह प्रमाणित कर दिया कि वे न तो अज्ञेयवादी हैं और न ही संशयवादी हैं, बल्कि वे ब्रह्मचैतन्यवादी हैं। उन्होंने ब्रह्म चैतन्य को समस्त ज्ञानों की पूर्वापेक्षा बताया। किसी भी परिभाषा में ब्रह्म को न रख पाना सता का निषेध नहीं है, बल्कि उसके अवर्णनीय होने का संकेत है।

भाषा और तर्क की अपनी सीमाएँ हैं। हम आत्मा के लिए मन, बुद्धि, अन्तःकरण, चेतना आदि शब्दों का प्रयोग कर देते हैं। ये शब्द व्यवहारिक जगत के हैं। शंकर के शब्दों में कहें तो इनके द्वारा किसी भी प्रकार से आत्म–चैतन्य के विषय में कुछ भी पता नहीं चलता। अतः आवश्यकता है, भाषा, के भ्रम–जाल से मुक्त होना। भाषा अस्तित्व (ब्रह्म चैतन्य) को बताने में समर्थ नहीं है। भाषा तो अस्तित्व की छाया भी नहीं बना पाती है। अद्वैतवाद कहता है कि भाषागत् भ्रम से बचना भी आवश्यक है। इसके लिए 'शब्द संकेत स्मृति परिशुद्ध' के माध्यम से शुद्ध चैतन्य के साक्षात्कार की प्रेरणा मिलती है। शब्द केवल संकेत करते हैं कि भाषा के पार कुछ है, जो उसके द्वारा प्रगट नहीं हो सकता है। 'है' शब्दों की सीमा के पार है। शब्द यह भी कहते हैं कि जो कुछ भी उसके विषय में कहा जा रहा है, वह उससे भी पार है। अतः उसका मात्र निषेद्यात्मक वर्णन ही संभव है। निषेद्यात्मक वर्णन करने का अर्थ यह है कि वह 'जड़' नहीं है, क्योंकि अद्वैत वेदान्त में जो विषय है अर्थात जिसका वर्णन संभव है वह जड़ ही है।

अद्वैतवाद के अनुसार भाषा सदैव विषयगत चेतना के विषय में ही कुछ कह सकती है। हम देखते हैं कि 'विषय' सदैव विषयी की मांग करता है। विषय और विषयी दोनों से अलग परम चेतना की स्वीकृति ही अद्वैत की स्वीकृति है। यह अनुभवातीत अवस्था है, निर्विकल्प समाधि की स्वीकृति के बिना नहीं स्वीकार किया जा सकता। अब यहाँ यह प्रश्न उठता है कि यदि अनुभवातीत अवस्था को हम नहीं स्वीकार कर रहे है तो क्यों अद्वैतवाद के सिद्धान्तों को स्वीकार करें? अद्वैतवाद की ओर से यह कहा जा सकता है कि अनुभवातीत अवस्था को अस्वीकार करने का तर्क क्या है? जो बुद्धि के विकल्पों से, सामान्य अनुभव के पार है, वह अपरिभाष्य है। वह 'है', वह अपरोक्षानुभूतिगम्य है। शंकर उस अपरिभाष्य और अवर्णनीय तत्व को और भी बोधगम्य बनाने के लिए उसका सर्वोच्च वर्णन प्रस्तुत करते हैं। यद्यपि यह वर्णन भी सांकेतिक है, पूर्ण नहीं है। सांकेतिक वर्णन कभी वास्तविक और पूर्ण नहीं होते, परन्तु उसके द्वारा उसके मूल्यात्मक स्वरूप का पता चलता है। अद्वैतवाद में सत्, चित् और आनन्द, ये तीन शब्द परम चैतन्य अथवा ब्रह्म के लिये सर्वाधिक प्रयुक्त हुए हैं। ये तीनों शब्द उस परम चेतना के विषय में संकेत करते हैं।[15] सत्–अर्थात् जिसका तीनों कालों में अभाव न हो, जो नित्य और सर्वदा वर्तमान स्वरूप हो। जो समस्त खण्ड–खण्ड ज्ञानों अनुभूतियों में अखण्ड और एक रस हो तथा जो कभी भी विषय रूप में प्रस्तुत न हो। चित्–अर्थात् स्वयं–प्रकाश और विषयों का प्रकाशक। आनन्द,–अर्थात अभय, पूर्ण और आत्मकाम चैतन्य। इसे शंकराचार्य ने इस प्रकार स्पष्ट करने का प्रयास किया है–जो सबको जानने वाला है, जो विषयों को प्रकाशित करता है स्वतः fl) gSrFkkft l dkdksbZvU; n'VkughagS[16] यही आत्मा है। चेतना के स्वयं–प्रकाश का अर्थ है– जिसके कारण सभी वस्तुएँ अपने को प्रस्तुत करती हैं। अर्थात् चेतना ही समस्त वस्तुओं के होने की पूर्वापेक्षा है। यह अकारण तथा स्वयंभू है। अद्वैतवाद में चेतना और ज्ञान समानार्थी है। व्यवहारिक चेतना और व्यवहारिक ज्ञान से भिन्न परमचेतना और परम चेतना की अपरोक्षानुभूति है। इसलिए चेतना, ज्ञान स्वरूप है। ज्ञान अथवा चेतना के स्वप्रकाश स्वरूप के कारण ही हमारा सारा ज्ञान संभव हो पाता है। हमारे जीवन की सभी क्रियाओं की प्रमाणिकता ज्ञान के स्वप्रकाशतत्व के कारण ही संभव होती है। चेतना के स्वतः प्रकाशतत्व को सामान्य अनुभव से नहीं जाना जा सकता, परन्तु, हमारे व्यवहारिक ज्ञान तो स्वतः प्रमाणित होते हैं। शंकर कहते हैं कि जागतिक वस्तुओं का ज्ञान तथा परम चेतना का ज्ञान एक ही अनुभव से नही प्राप्त किये जा सकते। एक सापेक्ष है, खण्ड–खण्ड है तथा दूसरा निरपेक्ष है, अखण्ड है। इसलिए एक इन्द्रियानुभूति के माध्यम से तथा दूसरा अपरोक्षानुभूति के माध्यम से जाना जा सकता है। एक दृष्टि से हम कह सकते हैं कि जब समस्त दृष्टियों का अन्त हो जाता है तब उस परम चेतना का साक्षात्कार होता है।

अद्वैतवाद दर्शन उस समय भारत में, आया जब उपनिषदों के दर्शन जैन दर्शन तथा बुद्ध का दर्शन भारत में पूरी तरह से फैला चुका था। बौद्धों का निषेधात्मक 'निर्वाण' उपनिषदों का भावात्मक ब्रह्म तत्व, तत्व चिंतन करने

वालों तथा बुद्धिजीवियों के मध्य आकार्षण का केन्द्र रहे। बौद्धों के प्रखर तर्क के आगे समस्त प्राचीन दार्शनिक परम्परायें ध्वस्त प्रायः हो गयी थी। ऐसे में शंकर ने तत्व प्राप्ति के उपनिषदों के द्वारा बताये गये उस मार्ग को पुनर्जीवित करना उचित समझा जिसकी जड़े अत्यन्त गहरी थी तथा जिसमें जीवन्त जीवन–दर्शन निहित था। उन्होनें निषेद्यात्मक निर्वाण तत्त्व के स्थान पर भावात्मक आनन्द ब्रह्मवाद को सर्वोच्च दार्शनिक मत घोषित कर दिया। उनके अनुसार अनन्त, अव्यय तथा निरपेक्ष तत्व न हो शून्यवत है और नहीं जड़, बल्कि वह परम आनन्द स्वरूप है। अद्वैतवाद कहता है 'होना' और 'चेतना' एक ही है। ब्रह्मप्राप्ति दुःख रहितता तक ही सीमित नहीं है, बल्कि चैतन्यवत अस्तित्व है, इसलिए वह आनन्द स्वरूप है। इस आनन्द में 'सत्' और 'चित्' निहित है। ये 'सत्' और 'चित' उसके गुण नहीं है, बल्कि स्वरूप ही है। ये एक ही अवस्था के तीन नाम है। अतः शंकर सर्वोच्च अवस्था को 'आनन्द' कहते हैं। अब प्रश्न उठता है कि क्या गति रहित अवस्था में भी आनन्द की कल्पना की जा सकती है?

न्याय–वैशेषिक आदि ने शंकर के आत्मा के आनन्द स्वरूप की आलोचना की है। इनके मत के अनुसार बिना गति के दुःख और सुख दोनों ही अनुभव में नही आ सकते। 'योग–सार–संग्रह' में तो यहॉ तक कह दिया गया है कि मोक्ष तो दुखों का अन्त है, उसे आनन्द कहना मन्द बुद्धि वालों को आकर्षित करने के लिए ही कहा गया **gS**[17] न्याय दर्शन भी परमानन्द जैसी किसी अवस्था को नहीं मानता। न्याय आत्मा को सुख–दुख रहित मानता है। आत्मा समस्त विशेषणों से रहित है।[18]

अद्वैतवाद का कहना है कि शरीर और इन्द्रियों के अनुभव के अतिरिक्त जो अनुभव है, वह अपरोक्षानुभूतिगम्य है। वही आनन्द है। यहाँ पर किसी इन्द्रिय सुखों की चर्चा नहीं है और न ही इन्द्रियों के किसी भी अनुभव की चर्चा है। शंकर कहते हैं कि विषयी–विषय रहित चेतना जो कि 'अहं' से पूरी तरह परे है–आत्मकाम है, अभय है। यह अवस्था ही आनन्द स्वरूप है। यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि शंकर पहले ही कह चुके है कि आनन्द उस परम चैतन्य का सर्वोच्च वर्णन है न कि अंतिम वर्णन। अतः शंकराचार्य पर न्याय–वैशेषिक के आरोप पूरी तरह सिद्ध नहीं होते। न्याय–वैशिषक अपने द्वैतवाद से ऊपर की अवस्था को स्वीकृत नहीं प्रदान कर रहे है, जबकि शंकर यह कहना चाह रहे हैं कि आत्मा ही आनन्द है।[19] परन्तु न्याय–वैशेषिक यह समझ रहे है कि आत्मा को आनन्द का बोध हो रहा है। यहाँ दो दृष्टियों का भेद है–द्वैत–दृष्टि और अद्वैत–दृष्टि।

अतः देखा जाता है कि अद्वैतवाद आत्मा और चेतना को एक ही मानता है। ज्ञान या चेतना, आत्मा का आन्तरिक स्वरूप है।[20] यह समस्त भेदों में अखण्ड ज्ञान–स्वरूप और नित्य वर्तमान स्वरूप तथा समस्त ज्ञानों की पूर्णमान्यता के रूप में विद्यमान है। अद्वैतवाद के अनुसार व्यवहारिक जगत परम चेतना की प्रातीतिक अभिव्यक्ति है। हम साँख्य–दर्शन में देख सकते हैं कि द्वैतवाद अनुभव की व्याख्या करने में असमर्थ है। दो विपरीत स्वभाव के स्वतंत्र तत्वों का मिलन संभव करना साँख्य के लिए अत्यन्त कठिन रहा है। अतः अद्वैतवाद ही अनुभव की व्याख्या करने में सक्षम होता लग रहा है। परम चेतना की अनुभूति से मिले सत्य और व्यवहारिक जगत के सत्य को सूक्ष्म दार्शनिक विश्लेषण के द्वारा प्रस्तुत कर शंकर ने अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य किया है।

शंकर ने भेद को अवास्तविक घोषित कर समस्त जीवों तथा वस्तुओं में एक ही चैतन्य तत्व को अखण्ड तथा नित्य वर्तमान रूप में विद्यमान माना है। वह (आत्मा) ही एक मात्र तत्व है। वह अनुभव निरपेक्ष है तथा किसी भी प्रकार के द्वैत से रहित है। यहाँ एक और सूक्ष्म प्रश्न उठ सकता है, यदि वह (चैतन्य) किसी से भी सम्बद्ध नहीं है तो वह व्यवहारिक जगत् की व्याख्या में कैसे सम्मलित हो सकता है? यहाँ पर तर्क सूक्ष्म और तात्त्विक दृष्टि से महत्वपूर्ण बन जाता है। शंकर कहते हैं कि यदि चेतना वास्तविक रूप से जड़ से सम्बन्ध रखती तो कभी भी उससे मुक्त होना संभव नहीं होता अर्थात मोक्ष की अवधारणा संभव नहीं होता। इससे यहाँ पर दो निष्कर्ष निकल सकते हैं–

1. या तो मोक्ष को असंभव कर दिया जाय अथवा
2. व्यवहारिक अनुभव को असंभव मान लिया जाय।

अद्वैतवाद मोक्ष की बात करता है दूसरी ओर व्यवहारिक अनुभव तो सर्वविदित है। उसे नकारा नही जा सकता। शंकर कहते हैं कि व्यवहारिक अनुभव और मोक्ष दोनों ही संभव है, क्योंकि व्यवहारिक अनुभव और मोक्ष में, मोक्ष तो वास्तविक है परन्तु, व्यावहारिक अनुभव व्यावहारिक ही है, वास्तविक नहीं। व्यवहारिक अनुभव भ्रम है, माया के कारण है और तभी तक है जब तक वास्तविक अनुभव नहीं हो जाता। माया के सिद्धान्त के द्वारा शंकर व्यावहारिक अनुभव और मोक्ष के सिद्धान्त को पूर्णतया तार्किक रूप देने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार अद्वैतवाद

एक ऐसा दार्शनिक दृष्टिकोण है जो आज के वैज्ञानिक युग में भी अपने दार्शनिक दृष्टिकोण को स्थापित करने में सफल है। व्यवहारिक जगत में एकतत्ववाद अर्थात् द्रव्य और ऊर्जा की एकता आज विज्ञान भी मानता है। साँख्य दर्शन ने भी प्रकृति के सिद्धान्त को प्रस्तुतकर बहुत पहले ही बता दिया था।

शंकर ने परमचेतना को दो रूपों में प्रस्तुतकर चिंतन की धारा ही बदल दी। व्यवहारिक जगत के सत् को व्यवहारिक सत् तथा अनुभव निरपेक्ष सत्य को परमचैतन्य का तात्विक रूप बताना और उसकी उपलाब्धि को ही जीवन का परम मूल्य घोषित करना शंकराचार्य की अद्भुत देन हैं।

साँख्य की प्रकृति और शंकर की माया दोनों ही परमार्थ ज्ञान में तिरोहित हो जाते हैं। कहा जा सकता है कि शंकर की माया अधिक तर्क संगत है क्योंकि मोक्षावस्था में यदि माया अथवा प्रकृति नहीं रहती तो वृद्धावस्था में भी नहीं ही है। यदि उसका (प्रकृति) होना था तो वह वास्तविक न होकर भ्रमात्मक था। परमार्थ ज्ञान में दोनों (माया और प्रकृति) तिरोहित हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में शंकर का सिद्धान्त अधिक तर्क संगत है कि माया की वास्तविक सता नहीं है। माया या प्रकृति का लोप होना ही यह बताता है कि वह पहले भी नहीं थी, उसकी केवल प्रतीति ही थी। अतः अनुभव तर्क और आधुनिक वैज्ञानिक निष्कर्षों के अधिक निकट होने से अद्वैतवाद ही अधिक ग्राह्य है। अद्वैतवाद के व्यवहारिक जगत के सिद्धान्त (एक तत्व वाद) के विज्ञान सम्मत होने के कारण यह दर्शन सर्व स्वीकृत दर्शन के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. बृहदारण्यक उपनिषद्, शंकर भाष्य, 2.1.19.
2. प्राग्ब्रह्मात्मताप्रतिवोघात् उपपन्नः सर्वोः लौकिको वैशिकश्च व्यवहारः। शारी0 भाष्य प्रागचात्मैकत्वाव्गतेः अव्याहतः सर्वः सत्यानृत व्यवहारों लौकिको वैदिकश्चेत्यवोचाम। उद्धृत डॉ. सी.सी. शर्मा, भारतीय दर्शन पृ. 245
3. चित्सुखी 1.12
4. शंकर भाष्य 1.3.19
5. वृहदारण्यक 2:4:14
6. वृहदारण्यक 3.8
7. तैत्तीरीय 2 : 1
8. शंकर भाष्य 2.3.18
9. वृहदारण्यक उपनि0 4,3.23
10. वृहदारण्यक उप. 4.4.16.17. छान्दोग्य 5.3, योग सूत्र 4 : 18 : 21
11. गौड़ पादकारिका शांकर भाष्य, 4.14.40, वृहदारण्यक उप. 2.4.40.5
12. पंञ्चदशी 20.21
13. गोड़पादकारिका 3.31
14. वृहदारण्यक उप. 4.4.19
15. तैत्तीरीय उपनिषद्, शंकरभाष्य
16. वृहदारण्यक उप. 3.8.11
17. योग सार संग्रह 4
18. न्याय कन्दली पृ. 287
19. वृहदारण्यक उप., 3.8.28 शंकर भाष्य
20. छान्दोग्य उपनिषद् 8.12.5 शंकर भाष्य

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Philosophy : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019,, Page : 502-506

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

हिन्दु धर्म की सामान्य विशेषताएँ

*डॉ. राजेश बहादुर सिंह**

हिन्दू धर्म अति प्राचीन धर्म है। भारतवर्ष में हिन्दू धर्म के अतिरिक्त जैन, सिक्ख और बौद्ध धर्म भी जन्म लिये। उसमें हिन्दू धर्म की विशेषता यह है कि यह धर्म किसी प्रवर्तक के द्वारा उत्पन्न नहीं है। इतिहास से पता चलता है कि हिन्दू नाम विदेशियों द्वारा दिया गया है। इरानियों ने सिन्धु नदी के तट पर तथा उसके पार रहने वाले लोगों को हिन्दू कहा। आर्य और द्रविण दोनों ही यहाँ के प्रमुख निवासी है। हिन्दू संस्कृति के विकास में दोनों का समान सहयोग रहा है। नृतत्व शास्त की दृष्टि से भारत कई जातियों और वर्णों का सम्मिश्रण है। हिन्दू संस्कृति पर किसी एक जाति या वर्ण का वर्चस्व नहीं है। हमारे महापुरुष गौर वर्ण और श्याम वर्ण दोनों के हैं। अतः भारतीय सभ्यता और संस्कृति के विकास में आर्यों और द्राविणों का समान रूप से योगदान रहा है।

वेद हिन्दू धर्म के मूल ग्रन्थ हैं। वेद का अर्थ ज्ञान है। यह अत्यन्त प्राचीन और संभवतः हिन्दू धर्म का आदि ग्रन्थ है। ऋषियों के आध्यात्मिक अनुभूतियों का संकलन है। यह बौद्धिक सिद्धान्त नहीं बल्कि अतीन्द्रिय अनुभूतियों का संकलन है। अतः देश–काल से परे सनातन है। वेद चार हैं–ऋग्वेद, यदुर्वेद, सामवेद और अर्थवेद। ऋग्वेद सर्वाधिक प्राचीन है। इसकी रचना ईशा पूर्व 2500 से लेकर 1500 तक मानी जाती है। वेदों के कर्मकाण्ड भाग की व्याख्या के लिए ब्राह्मण संहिता की रचना हुयी। इसके पश्चात् उपनिषदों का विकास हुआ। इस प्रकार वैदिक साहित्य में वेद, उपनिषद् और ब्राह्मण संहिता सम्मलित हैं। वेद आध्यात्मिक ज्ञान के ही नहीं बल्कि तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक विचारधारा का भी वर्णन करते हैं। तत्कालीन समाज में प्राकृतिक शक्तियों को अत्यन्त श्रद्धा और भय के साथ पूजा, अर्चना, का विषय बनाया गया। ऋग्वेद में प्राकृतिक शक्तियों में देवत्व का दर्शन कर उनकी स्तुति के अनेक मन्त्र उपलब्ध हैं। ऋग्वेद में इन्द्र, वरुण, उषा, अग्नि, मरुद्गण, सूर्य आदि देव शक्तियों के रूप में वार्णित हैं। ऋग्वेद में वहुदेववाद के साथ ही साथ एकेश्वरवाद की भी पूरी मान्यता है। एकंसद्विप्रा वहुधा वदन्ति। अग्निर्यमतु मातरिश्वानु मा हु! अर्थात एक ही सत्ता है। विद्धानों ने उसे अनेक नामों से पुकारा है। अर्थात् अग्नि, यम, महिरश्वा (वायु) सब उसी एक ही सत्ता के नाम है।[1]

ऋग्वेद में नासदीय सूक्त दार्शनिक चिंतन का प्रारम्भिक बिन्दू कहा जाता है।[2] संभवतः यह अंतिम बिन्दु भी है। जो सत् को नहीं जानते उनका भी यह सूक्त है, तथा जो सत् को पूरी तरह जानते है उनका भी सूक्त है। क्योंकि जो नहीं जानते हैं तथा उनमें जानने की पूर्ण जिज्ञासा है वे बौद्धिक सिद्धान्तों से संतुष्ट नहीं होते। उन्हें तो अनुभव के अतिरिक्त अन्य कहीं भी संतुष्टि नहीं मिलती। इसके अतिरिक्त वे ऋषि भी हैं जो अतीन्द्रिय अनुभव सम्पन्न है, परन्तु किसी भी प्रकार के शब्दों में परम सत् को प्रस्तुत न कर पाने की विवशता उन्हें न तो मौन रहने देती है और न ही परमसत् को शब्दों में प्रस्तुत करने का कोई सांसारिक शब्द उनकी सहायता करता है। हम कह सकते हैं कि वैदिक काल में परम सत का ज्ञान ऋषियों को था, परन्तु कोई दार्शनिक मत स्थापित करने की उनकी कोई जिज्ञासा नहीं थी। यह अन्तरजगत में प्राप्त पूर्ण सत्य था।[3]

वेदों के बाद उपनिषद् काल आता है। शंकराचार्य के अनुसार उपनिषद ब्रह्म विधा का व्याख्यान है, जिससे सत्य की प्राप्ति होती है, तथा अज्ञान का नाश होता है। उपनिषदों की संख्या 108 मानी जाती है। शंकराचार्य ने जिन उपनिषदों पर भाष्य लिखे वे प्रमाणिक माने जाते हैं। ये हैं –ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूम्य, एतरेय और छान्दोग्य। इनके अतिरिक्त, श्वेताश्वतर कौषीतकी, मैत्रेयी और महानारायण भी प्राचीन और प्रामाणिक माने जाते हैं।

* *एसोसिएट प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र विभाग, तिलक धारी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जौनपुर, उ.प्र.*

उपनिषदों में आत्मा और परमतत्व के वास्तविक रूप को समझाने का प्रयास किया गया है। अयमात्मा ब्रह्म, तत्त्वमसि, अहंब्रह्मास्मि आदि महावाक्य मनुष्य में तत्व जिज्ञासा की प्रेरणा उत्पन्न करतें हैं। भारत के सभी आस्तिक सम्प्रदाय इन्हीं महावाक्यों की व्याख्या कर अपने दार्शनिक सिद्धान्तों की स्थापना करतें हैं। उपनिषदों के अतिरिक्त पुराण, रामायण, और महाभारत जैसे ग्रन्थ भी हिन्दू धर्म में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। पुराणों में अनेक कहानियों के माध्यम से दार्शनिक दृष्टियों की स्थापना तथा उनके महत्व को समझाया गया है। पुराणों के रचना को लेकर विद्वानों में मतभेद है। हिन्दू धर्म का सर्वमान्य ग्रन्थ श्रीमद्भगवद्गीता है। यदि किसी एक ग्रन्थ को हिन्दू धर्म का प्रतिनिधि ग्रन्थ माना जाय तो वह है श्रीमद्भगवद्गीता। गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कर्तव्याकर्तव्य का उपदेश देकर समस्त मानव समुदाय को कर्तव्य का निर्णय करने का उपदेश दिया है। इस प्रकार गीता देश–काल से परे मानव मात्र को उपदेश देता है तथा उसके बताये मार्ग पर चलकर कोई भी जाति, वर्ण, समुदाय, लिंग का मनुष्य परमसत्य का साक्षात्कार कर सकता है।

हिन्दू धर्म किसी एक महान पुरुष के उपदेशों पर आधृत धर्म नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति साधना तथा तपस्या द्वारा आत्मज्ञान प्राप्त कर सकता है। इस धर्म में तर्क–बुद्धि को पर्याप्त महत्त्व दिया गया है। क्योंकि अनेक दार्शनिक मत इस धर्म में अपने–अपने मार्ग से परम सत्य के साक्षात्कार का उपदेश देते हैं। सभी मार्ग सम्मानीय तथा आदरणीय है।

नबीमूलक धर्मों में दर्शन और धर्म एक दूसरे के विरोधी हैं। यहाँ दार्शनिक चिंतन को धर्म विरोधी माना जाता है, क्योंकि ये पूर्णतया श्रद्धा एवं विश्वास पर आधृत हैं। हिन्दू, बौद्ध और जैन धर्म में धार्मिक मान्यताओं को तर्क एवं बुद्धि से पुष्ट करने का प्रयास किया गया है।

हिन्दू धर्म में छः प्रमुख दार्शनिक विचाराधारा है। न्याय–वैशेषिक, सांख्य–योग, मीमांसा और उत्तर मीमांसा (वेदान्त) इन सभी दार्शनिक सिद्धान्तों में सभी एकमत है कि मानव जीवन का लक्ष्य सांसारिक बन्धन से मुक्त होना है। इसके लिए आत्म साक्षात्कार होना आवश्यक है। सांख्य–योग दर्शन के अनुसार जीव ज्ञान के द्वारा प्रकृति के बन्धन से मुक्त हो सकता है। योग–दर्शन में योग साधना द्वारा साक्षीभाव को उपलब्ध होने की बात कही गयी है। इन दर्शनों में मनुष्य स्व प्रयास से ही बन्धन मुक्त हो सकता है। न्याय–वैशेषिक भी यही मत रखता है। मीमांसा दर्शन के अनुसार वेद विहित कर्म करने से मनुष्य सांसारिक बन्धनों से मुक्त हो सकता है। अद्वैतवाद के अनुसार आत्म ज्ञान के लिए श्रवण, मनन, ध्यान आदि की आवश्यकता है। ज्ञान ही मनुष्य को अज्ञान से मुक्त कर सदैव के लिए दुःखों से मुक्त कर सकता है।[4] उपर्युक्त छः दर्शन पूर्णतया ईश्वर केन्द्रित नहीं हैं, परन्तु मनुष्य को धार्मिक अर्थात् आध्यात्मिक मार्ग पर चलने की पूर्ण प्रेरणा देते है।

भारत में एक दार्शनिक मत के रूप में अद्वैतवाद को सर्वाधिक सम्मान प्राप्त है। अद्वैतवाद के अनुसार सृष्टि के मूल में एक अपरिवर्तनशील सत्ता है। वह सत्ता ही चैतन्य तत्व है तथा अपने 'स्व' से भिन्न नहीं है। आत्मज्ञान से इस परमसत्ता से एकाकार हुआ जा सकता है। यह जगत, सत् और असत् से विलक्षण, अनिर्वचनीय अर्थात् मिथ्या है। अतः शंकर के अनुसार व्यवहारिक जगत वास्तविक न होकर ब्रह्म सत्ता पर अध्यारोपित है। मनुष्य का लक्ष्य है आत्मज्ञान अर्थात् ब्रह्मज्ञान के द्वारा दुःखों से छुटकारा प्राप्त करना। आधुनिक काल के बौद्धिक ओर वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विचारकों को अद्वैतवाद ने आर्कषित किया है। इसके अतिरिक्त वैष्णव वेदान्त भी भारत में अत्यन्त आदरणीय स्थान रखता है। इस शाखा के आचार्यो के आचार–विचार कठिन तथा साधनामय है। यहाँ सगुण ईश्वर से चिद्–अचिद् जगत की रचना मानी गयी है तथा भक्ति के द्वारा ईश्वर की कश्पा प्राप्त कर सांसारिक बन्धनों से मुक्ति की बात कही गयी है। इसके अतिरिक्त सन्तमत भी हिन्दू धर्म का अंग है, जो प्रेम एवं भक्ति के द्वारा ईश्वर प्राप्ति का समर्थन करता है। इस प्रकार ईश्वर के सगुण एवं निर्गुण रूप के सिद्धान्तों के साथ ही साथ आत्मा के साक्षात्कार के सिद्धान्तों को समेटे हुए हिन्दू धर्म एक विशाल समुद्र की भाँति है, जिसमें विश्व के सभी धर्मों के बीज प्राप्त किये जा सकते हैं। मैक्समूलर तक को कहना पड़ा कि हिन्दू धर्म इतना व्यापक है कि विश्व के सभी धर्मों को इसमें स्थान दिया जा सकता है। महान विश्व प्रसिद्ध दार्शनिक सर्वपल्ली डा. राधाकृष्णन कहते हैं कि हिन्दू धर्म केवल वेद आधारित धर्म नहीं है, बल्कि पुराणों और महाकाव्यों का भी धर्म है। इसकी उपमा एक ऐसे कपड़े से की जा सकती है, जिसमें विभिन्न रंगों

के ताने–वाने है। पुराण जो अप्रमाण्ति ऐतिहासिक वर्णन तथा विचित्र और अलौकिक कहानियों से भरे पड़े है, बहुत से लोगों द्वारा पवित्र परम्परा के के अंग माने जाते है। तंत्र–योग, शैव–मत, शाक्त–मत, गाणपत्य–मत और सौर–मत भी हिन्दू परम्परा के साधना पक्ष को प्रदर्शित करते हैं।

हिन्दू धर्म के अनुसार अनेक मार्गो से सत्य साक्षात्कार किया जा सकता है। जिस प्रकार सीधे और वक्र मार्गों के विभिन्न नदियाँ समुद्र में पहुँचती है, उसकी प्रकार विभिन्न रुचि वाले व्यक्ति अपने अपने रुचि के मार्ग के द्वारा ईश्वर साक्षात्कार करते हैं। हम कह सकते हैं कि हिन्दू धर्म संकीर्ण मान्यताओं वाला धर्म न होकर विशाल और उदार मान्यताओं द्वारा धर्म है। हिन्दू धर्म के असंख्य मत, परम्परा एवं साधना पक्ष को देखते हुए इसे नवीमूलक धर्मों से भिन्न समझना आवश्यक है, अब हम हिन्दू धर्म की कुछ सामान्य विशेषताओं पर दृष्टिपात करते हैं–

1. हिन्दू धर्म के सभी मत सम्प्रदाय जगत में एक शाश्वत व्यवस्था को स्वीकार करते हैं। इस व्यवस्था के कारण ही सृष्टि व्यवस्थित तथा नियमबद्ध है। ऋृत के कारण ही कृत प्रणाश और अकृत कर्म भोग नहीं होता। अर्थात जो कर्म हमने किये है उसका फल हमें मिलेगा तथा जो कर्म हमने नहीं किये है उसका फल हमें नहीं मिलता। कर्म तीन प्रकार के होते हैः– संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण। संचित कर्म कर्मों का फल व्यक्ति को प्रारब्ध के रूप में मिलता है। क्रियमाण कर्म आगे चलकर संचित और प्रारब्ध बनते है। व्यक्ति प्रारब्ध कर्मों का फल अवश्य ही भोगता है। संचित और क्रियमाण कर्म प्रारब्ध बनने से पहले ज्ञान के द्वारा अथवा भगवद्कृपा से नष्ट किया जा सकता है।[5] कर्म सिद्धान्त एक दार्शनिक सिद्धान्त है, परन्तु भौतिकवादी दार्शनिक इस सिद्धान्त से असहमत है। मार्क्स के अनुसार कर्म सिद्धान्त ने जाति वाद एवं वर्णव्यवस्था को पुष्ट किया है तथा शोषण पर आधारित सामाजिक व्यवस्था को जन्म दिया है। परन्तु यह आक्षेप पूर्णतया सत्य नहीं है। कर्म सिद्धान्त व्यक्ति के ऊपर पड़ने वाले उन प्रभावों की व्याख्या करता है जो उसके अपने वश में नहीं है। जातिवाद तथा वर्ण व्यवस्था मानव निर्मित सामाजिक व्यवस्था है, इसका कर्म सिद्धान्त से कोई लेना–देना नहीं है। महामहोपाध्याय पी.वी. काणे के अनुसार वैदिक काल में जब कर्म सिद्धान्त का पूर्ण विकास नहीं हुआ था, तब मृतकों की आत्मा की शान्ति के लिए कर्मकाण्ड किया जाता था, जिससे उनकी आत्मा को शांति मिले। परन्तु कर्म सिद्धान्त के विकास के बाद इसकी कोई आवश्यकता नहीं रही। परन्तु पुरोहित वर्ग ने अपने हित के लिए कर्मकाण्डों की व्यवस्था बनाए रखी। कर्म सिद्धान्त के कारण ही हिन्दू धर्म पुनर्जन्म में विश्वास करता है। कर्म सिद्धान्त और पुनर्जन्म का बहुत गहरा सम्बन्ध है।

2. पुरुषार्थ–धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष हिन्दू धर्म के पुरुषार्थ है, अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति जो हिन्दू धर्म में जन्म लेता है, उसे इन पुरुषार्थों का ज्ञान तथा उसके प्राप्ति का प्रयत्न करता होता है। धर्म अर्थात् वह आचरण जिससे अभ्युदय और निःश्रेय दोनों की प्राप्ति होती है। अपरिग्रह और लोभवृत्ति से रहित होकर अर्थ की प्राप्ति करनी चाहिए। धर्म सम्मत कामनाओं की पूर्ति भी मानवीय मूल्य है। मनुष्य की तीन महत्वपूर्ण इच्छाएँ है। पुत्रैषणा, वितैषणा और लोकेषणा। इन तीनों की प्राप्ति में धर्म का उल्लघंन नही करना चाहिए। सामान्य जन के लिए धर्म, अर्थ और काम की पूर्ति ही लक्ष्य है। परन्तु मुमुक्ष और कामनारहित व्यक्ति के लिए मोक्ष भी पुरुषार्थ है, जहाँ व्यक्ति परमसत्ता से तादात्म्य होकर जन्म–मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो जाता है। इसके लिए हिन्दू धर्म ज्ञान, भक्ति और कर्म के मार्ग का अनुसरण करने का उपदेश देता है।

3. हिन्दू धर्म सृष्टि के उत्पत्ति और प्रलय की चक्रक व्यवस्था में विश्वास करता है। समय चक्रक है। सृष्टि की उत्पत्ति विकास एवं विनाश प्राणियों का जन्म–मरण–पुनर्जन्म का चक्र चलता रहता है। पाश्चात्य धर्म और अन्य पैगम्बरी धर्म समय के रैखिक सिद्धान्त में विश्वास करते हैं।

4. हिन्दू धर्म की मान्यता है कि प्रत्येक जन्म लेने वाला व्यक्ति तीन ऋणों से युक्त होता है, जिससे मुक्त होना उसका कर्तव्य है। ऋषि ऋण, पितृ ऋण और देव ऋण। गुरु से प्राप्त ज्ञान का संरक्षण और सवंर्धन करना ऋषि ऋण अथवा गुरु ऋण कहलाता है। पितृ ऋण से तात्पर्य है हम अच्छे सन्तान बने। हम अपने पारिवारिक और सामाजिक दायित्वों का भाली–भांति निर्वहन करें। देव ऋण का तात्पर्य है हमें प्रकृति अथवा देवता से जो कुछ मिला है, उसे आने वाली पीढ़ी के लिए सुरक्षित रखें पर्यावरण की सुरक्षा और संपोषित विकास से इसे जोड़ा जा सकता है।

5. अवतारवाद और मूर्ति पूजा—अधिकांश हिन्दू अवतारवाद और मूर्तिपूजा में विश्वास करते है। अवतारवाद का अर्थ है सभी जीव ईश्वर के अंश हैं। जिस व्यक्ति में ईश्वरीय अंश अधिक प्रकाशित होती है वह व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के लिये मार्गदर्शक बन जाता है। वही अवतार हो जाता है। मूर्ति पूजा प्रतीक पूजा है। हिन्दू धूर्म के देवी—देवता प्रतीकात्मक है। जो जिस रूप में परमसत्ता की उपासना, आराधना करता है, परम सत्ता उसी माध्यम से उसे उपकृत करती है। इस प्रकार ध्यान, उपासना और एकाग्रता को बनाए रखने में मूर्ति पूजा से अत्यधिक सहायता मिलती है। हिन्दू धर्म की मान्यता बहुदेववाद की नहीं है, बल्कि इसके अनुसार सभी देवी—देवता एक ही परमसत्ता के विभिन्न रूप है।[6] समस्त मार्ग अन्ततोगत्वा ईश्वर की ओर ही जाते हैं। हिन्दू धर्म की यह मान्यता सभी धर्मों से भिन्न एवं उदार है।

6. वर्ण व्यवस्था—हिन्दू धर्म के अध्ययन से पता चलता है कि प्रारम्भिक सामाजिक व्यवस्था कार्य विभाजन पर आधारित थी। मनुष्य प्रकृति पर निर्भर था। प्रारम्भिक समाज पूजा, पाठ और यज्ञ द्वारा प्राकृतिक शक्तियों को प्रसन्न करने वाले ब्राह्मण, क्षेत्र की रक्षा करने वाले शूद्र कहे गये। प्रारम्भ में वर्ण व्यवस्था कर्मणा थी जन्मगत नहीं। परन्तु कुछ लोगों (पुरोहित वर्ग) के कारण यह जन्मना हो गयी। आज भी हम देखते हैं विशेषाधिकार प्राप्त व्यक्ति अपने पद और प्रतिष्ठा को अपने संततियों में संक्रमित करना चाहता है। वर्ण व्यवस्था, जिसका अधोपतन जाति व्यवस्था में हुआ। हिन्दू धर्म का कड़वा सच है। हिन्दू धर्म की सामाजिक व्यवस्था ने उसके पराभव की नींव भी रख दी। आधुनिक काल के महान् व्यक्तियों के अनुसार जाति व्यवस्था और उसके परिणामस्वरूप़ छुआ—छूत की व्यवस्था हिन्दू धर्म में नहीं होती तो वह अपने आध्यात्मिक और धार्मिक वैभव का पताका पूरे विश्व में लहरा रहा होता। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद महात्मा गाँधी जाति व्यवस्था को दूर करना ही अपने जीवन का लक्ष्य मानते थे। अपने मृत्यु से कुछ दिन पूर्व उन्होनें पत्रकार लुई फिशर को दिये गये साक्षात्कार में कहा था मैं उस भारत को देखना चाहता हूँ जिसमें उच्च वर्णों तथा कथित निम्नवर्गों में रोटी बेटी का सम्बन्ध हो। उन्होंने प्रण किया था कि वे उसी शादी में आर्शीवाद देने जायेगें जिसमें वर वधु भिन्न जाति के हो।

आधुनिक युग के दार्शनिकों एवं विद्वानों का मत है कि विभिन्न दार्शनिक सम्प्रदायों के होते हुए भी हिन्दू धर्म की आधार शिला और मुख्य विचार धारा अद्वैतवाद ही है। आधुनिक काल में हिन्दू धर्म के महान् व्याख्याकार स्वामी विवेकानन्द ने अद्वैतवाद को ही हिन्दू धूर्म का आधार माना। महात्मा गाँधी के चिंतन में भी अद्वैत दर्शन ही है। अद्वैतवाद समस्त जीवों में तथा जड़ में भी एक ही चैतन्य सत्ता का प्रकाश मानता है। इस सत्ता का बोध ही जीवन का लक्ष्य है। वैचारिक रूप से अद्वैतवाद सामाजिक, धार्मिक समता को स्थापित करने का सर्वोच्च दर्शन है। आत्मवत सर्वभूतानि यः पश्यति सः पश्यति। जो व्यवस्था भेद—भाव पर आधृत हो वह अद्वैतवाद की मूल भावना के विपरीत है। जब सृष्टि एक ही सत्ता का खेल है, तब यहाँ सभी धर्म के उपासना पद्धति मान्य है। कहीं कोई विरोध नहीं।[7] अनेक देवी—देवताओं की उपासना अपनी रुचि के कारण है न कि सत्ता के विभिन्न प्रकार के कारण। सत्ता तो एक ही है और सभी मार्ग और उपासना पद्धति उसी तक जाते है। यह अद्वैतवाद की मूल धारणा है। हिन्दू धर्म की यह भी मान्यता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने रुचि के अनुसार परमात्मा के स्वरूप का चुनाव कर सकता है। गीता कहती है कि परमात्मा को जो जिस भाव से प्रेम करता है उसे उसी भाव से वह प्राप्त होती है।[8] अपनी क्षमता और रुचि के अनुसार किसी भी स्वरूप में परम सत्ता की स्थापना करके वह परम तत्व का साक्षात्कार कर सकता है। अनेक देवी—देवा एक ही परमसत्ता के विभिन्न रूप हैं। व्यक्ति निर्गुण उपासना करे अथवा संन्यास ग्रहण करें, हर मार्ग परमात्मा की ओर ही ले जाते हैं। परन्तु यहाँ यह अवश्य शर्त है कि साधना की भूमि नैतिकता के ढृढ़ आधार पर टिकी है, अर्थात् नैतिक आचरण प्रत्येक साधना का महत्वपूर्ण पक्ष है। साधना के द्वारा पर में स्व का विस्तार करके, सब में 'स्व' को देखना और अंततः अहंकार शून्य होकर परम सत्ता में विलीन होना ही सभी मनुष्यों का चरम पुरुषार्थ है।

हिन्दू धर्म में आत्मज्ञान अथवा परमात्मा की प्राप्ति के लिए समाज सेवा (निष्काम कर्म), भक्ति और योग साधना[9] के साथ ही साथ तंत्र साधना को भी स्वीकार किया गया है। भक्ति जहाँ ह्रदय पक्ष को विकसित कर अनन्त सत्ता

के प्रेम में डूबना है, वही तंत्र का मूल सिद्धान्त घृणा को जीतना है। घृणा को जीत कर ही अनंत के प्रेम में प्रवेश संभव है। तंत्र अत्यन्त ही आत्म संयम तथा दृढ़ संकल्प का मार्ग है। सामान्य व्यक्ति के भटकने की संभावना अधिक है। इसलिए आधुनिक युग में इस नये रूप में अघोर संप्रदाय ने प्रस्तुत किया है। पीड़ितों, रोगियों, वंचितों, तथा उपेक्षित लोगों की सेवा मनुष्य को शरीरभाव से मुक्त कर आत्मतत्व के स्वरूप की प्राप्ति कराती है।

आज भेद मूलक समाज की बात करना सामाजिक बुराई के साथ ही साथ अवैज्ञानिक भी मानी जाती है। ऐसे समय हिन्दू धूर्म का अद्वैत दर्शन समता मूलक समाज की स्थापना में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। अद्वैत दर्शन ही ऐसा दर्शन है जो वैज्ञानिक मान्यताओं के विरोध में नहीं है तथा स्त्री–पुरुष, जाति–पात, रंग–भेद जैसे विभेद मूलक विचार धारा को अस्वीकार कर समता मूलक समाज का आध्यात्मिक आधार है। आज उच्चतम वैज्ञानिक अनुसंधान अद्वैतवाद के सिद्धान्तों को स्वीकार करते हैं। यदि सामाजिक व्यवस्था में अद्वैतवाद के समतामूलक मूल्य को स्वीकार कर सामाजिक विकृतियों को दूर कर लिया जाये तो यह सर्व स्वीकार्य धर्म बनकर मानवता को उसके उच्चतम् शिखर पर ले जा सकता है।

संदर्भ–टिप्पणी

1. ऋग्वेद 1–164–46
2. नासदीय सूक्त ऋग्वेद 10.129
3. युदर्वेद 32.28
4. छान्दोग्य 2,4,4
5. गीता 4/22
6. बृ0उप0 4.4.19 नेहं नानास्ति किंञ्चन।
7. गीता 2/64
8. गीता 10/20,21,22
9. योग सूत्र – 18.50, योग सूत्र– 27,20

* * * * * *

(U.G.C. Approved Journal No. : 41329) ISSN No. - 2319–5908

Philosophy : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 507-510

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

पर्यावरणीय स्थिति : प्राचीन एवं वर्तमान संदर्भ में

*रितु कुमारी**

पर्यावरणीय संरक्षण एवं परिवर्द्धन का विचार भारतीय जीवन दर्शन में स्पष्टतः परिलक्षित होता है। यहाँ आरंभिक काल से दिन का प्रारम्भ सूर्य नमस्कार एवं तुलसी में जल डालकर करने की रीति रिवाज रही है। पूजन पद्धति में पीपल एवं वट वृक्ष से लेकर नीम, आँवला एवं केला तक जैसे पेड़–पौधों की महत्ता का प्राचीन काल से स्थापित होना न तो अचानक है और न ही बिना किसी निरुद्देश्य के। चौबीसों घंटा ऑक्सीजन का उत्सर्जन करने वाले पीपल का वृक्ष की रक्षा करने हेतु उसमें देवताओं का वास करने की बात कही गई है। प्रकृति एवं पुरुष के संयोग से दृष्टि का उत्पन्न होना एवं प्रकृति में देवत्व के दर्शन करने का हमारा दर्शन इसी बात की ओर इंगित करता है कि जिनसे हमारा जीवन संभव है। उन पेड़–पौधों, नदियों, पर्वतों अर्थात् संपूर्ण पर्यावरण में ही देवता का वास है। इनको पूजने का अर्थ है कि इन्हें समुचित सम्मान दें।

भारतीय दर्शन के अतिरिक्त किसी अन्य दर्शन मत में समग्र प्रकृति या अखण्ड पर्यावरण के प्रति ऐसी समवेत, प्रगाढ़ एवं दूरगामी चिंतन या जन भागीदारी सुनिश्चित करने वाला प्रयास नहीं मिलता। भोगवाद, बाजारवाद, वैश्वीकरण की वर्तमान दौर में भी जब हम अपने पूर्वजों के बारे में सोचते हैं तो आश्चर्य लगता है कि कैसे शताब्दियों पूर्व ये पर्यावरण से जुड़े चुनौती खतरों को महसूस कर लिये थे एवं पर्यावरण के संरक्षण में प्रत्येक व्यक्ति की भागीदारी सुनिश्चित करने वाली जीवन प्रणाली का विकास कर डाले थे।

पर्यावरण जो समस्त जीव–जन्तुओं, मनुष्यों, वनस्पतियों, वनों इत्यादि को घेरे हुए है वह विभिन्न प्रकार के प्रदूषण के कारण प्रदूषित हो चुका है। जब हम इस प्रदूषण के बारे में विचार करते हैं एवं उसके कारणों को जानने का प्रयास करते हैं तो पाते हैं कि पृथ्वी पर पाये जाने वाले समस्त जीव प्राणियों में सर्वाधिक बुद्धिमान मनुष्य ही इस समस्त प्रदूषणों का एकमात्र कारण है। लोभवश, अधिक धन संचय, अहंकार के कारण शासन की प्रवृत्ति एवं स्वार्थ के कारण सिर्फ अपने सुखों का चिन्तन करने की प्रवृत्ति के कारण मनुष्य ने अन्य प्रजातियों का संहार करना प्रारंभ कर दिया। फलस्वरूप पर्यावरण में असंतुलन की स्थिति पैदा होने लगी है। इसके अतिरिक्त कृषि के लिए भूमि की जरूरत थी। लोगों ने कृषि हेतु वनों को नष्ट करना प्रारंभ कर दिया जिससे पर्यावरण में असंतुलन की स्थिति पैदा हो गयी एवं विभिन्न प्रकार की जटिल समस्यायें हमारे सामने उपस्थित होने लगी।

प्राचीन काल में वृक्षों को हम सहानुभूति, प्रेम, आदर की दृष्टि से देखते थे। वृक्षों में चेतना को स्वीकार किया जाता है, सुख–दुःख के अनुभव की शक्ति में विश्वास करते हैं। मनुस्मृति में एक–दो स्थानों पर कहा गया है कि वृक्षों की योनि पूर्व जन्म के कारण मानी गयी है एवं इन्हें जीवित एवं दुःख सुख का अनुभव करने वाला माना गया है।

वैदिक ऋचाओं में वृक्षों को माता कहकर पुकारा गया है। उन्हें उखाड़ने के पूर्व प्रार्थना की गयी है कि हे वनस्पति तुम्हें उखाड़ने वाला नष्ट न हो, जिसके लिए उखाड़ा गया वह भी नष्ट न हो तुम कल्याण करनेवाली हो।

इसके अतिरिक्त धार्मिक ग्रन्थों में भी वनस्पतियों को बहुत महत्व दिया गया है। यहाँ जीवन के सोलह संस्कारों गर्भाधान से लेकर मृत्यु पर्यन्त तक उन्हीं वनस्पतियों का उपयोग होता है। घर में कोई मंगल कार्य होता है तब सर्वप्रथम शांति पाठ किया जाता है जिसमें अंतरिक्ष, पृथ्वी की शांति के साथ औषधि एवं वृक्षों की शांति के लिए प्रार्थना की जाती है।

* *शोधार्थी, दर्शनशास्त्र विभाग, ल. ना. मि. वि., दरभंगा*

वृक्ष मानवमात्र के सेवक हैं। हरेक कदम पर सहायक और मनुष्य जीवन को ऊँचा उठाने वाले हैं। औषधि स्वरूप तो उनके कर्ज से मानव, जीव–जन्तु कोई भी कर्जमुक्त नहीं हो सकता। खाद्य–पदार्थ, काष्ठ, बहुमूल्य रासायनिक तत्वों सभी का लाभ हमें पेड़ों से ही मिलता है। इसलिए हमारे यहाँ हरे–भरे वृक्षों की कटाई करने पर पाप लगने का भय माना गया है। हिन्दुओं के आचान–विचार वैज्ञानिक तत्वों से भरपूर हैं। विशेषतः वृक्ष पूजन तो सूक्ष्म अनुसंधान का द्योतक है।

वैदिक काल में वन अधिक थे एवं पर्याप्त वर्षा होती थी। झरनों एवं नदियों का शुद्ध जल मनुष्य ग्रहण करता था। अनेकों वनस्पतियाँ एवं औषधियाँ जल के साथ बहकर जल के गुणों को और बढ़ा देती थीं। किन्तु वर्तमान समय में झरनों, तालाबों एवं नदियों एवं औद्योगिक क्षेत्रों के अपशिष्ट तत्व, मल–मूत्र बहते हैं। जब जलचर इस विषैले जल को ग्रहण करते हैं, तो अकस्मात मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। फलस्वरूप जल में रहने वाले जीवों में लगातार हास हो रहा है। मछलियाँ एवं अन्य जीव जन्तु स्वयं पानी में उपलब्ध गंदगी को खाकर जल को शुद्ध करने का काम करते हैं किन्तु जिस तरह से जल विषाक्त होते जा रहा है उससे उन जीवों के ऊपर संकट के बादल छाये हुए हैं और इन जीवों का अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा तो शुद्ध जल की उपलब्धता कैसे प्राप्त होगी, यह एक सोच का विषय है।

सच तो यह है कि सभी पेड़–पौधों के लाभ हैं, पर बड़ नीम, पीपल, तुलसी, आँवला के पेड़ तो रासायनिक दृष्टिकोण से काफी उपयोगी हैं। इसलिए इनकी पूजा को हिन्दू धर्म में सम्मिलित कर लिया गया है। तुलसी का पौधा घर के आंगन में लगाना और नित्य प्रातः उसका पूजन तथा उसमें जल सींचना भारतीय नारियों का प्रतिदिन का धार्मिक कर्म माना गया है। वैज्ञानिक भी इस बात से सहमत हुए हैं कि तुलसी के संसर्ग से वायु शुद्ध रहती है, मलेरिया आदि विषैले कृमियों का नाश होता है। ज्वर में तुलसी रामबान–औषधि है। मरणासन्न होने पर हमारे हिन्दू समाज में गंगाजल में तुलसी पत्ता मिलकर पिलाया जाता है। इससे मरने वाले की आत्मा पुण्यता को प्राप्त करती है। राजयक्ष्मा के रोगी को भी पूर्ण लाभ होता है। तुलसी दर्शन मात्र से शरीर में कई शक्तियों का संचार होता है। शरीर में संचित मल बाहर आ जाता है। यहाँ तक कि दूषित जल की शुद्धि के लिए भी तुलसी का पत्ता डाला जाता है।

इसी प्रकार देवालयों में पीपल रखने और उसके पूजा पाठ का विधान है। मानव जन पीपल पर जल चढ़ाकर और शाम में दिया जलाकर अपने ग्रह दोषों से मुक्ति पाते हैं। पीपल का पेड़ भी अनेकानेक रासायनिक गुणों से युक्त है। इसका चूर्ण पौष्टिकता से भरपूर होता है। बंध्या स्त्रियों को इसकी जटा का भस्म पिलाने से बांझपन दूर होता है। पीपल के पत्ते का दोना बनाकर उसमें दूध पीने से गंध के पात्र की भांति बिना टॉनिक दवाई पीये पुष्टि होती है।

ठीक इसी तरह पलाश, आंवला और बड़ भी बड़े उपयोगी वृक्ष हैं। इनमें जीवन दायिनी शक्ति वर्धन की अद्भुत क्षमता है। बस इसीलिए इन्हें भी धर्म–कर्म से जोड़ दिया गया है। 'गीता' में पीपल के वृक्ष को साक्षात देव तुल्य स्वीकार कर लिया गया है।

हमारे धर्म और संस्कृति में जो स्थान विद्या–व्रत, ब्रह्मचर्य ब्राह्मणत्व, गऊ, देव मंदिर, गंगा, गायत्री एवं गीता–रामायण आदि धर्म ग्रंथ को दिया गया है, वैसा ही वृक्षों को भी महत्व दिया गया है। यह महत्व उन्हें उनके द्वारा प्राप्त होने वाले लाभों को देखते हुए दिया गया है।

वृक्ष में देवत्व की प्रतिष्ठा स्वीकार करते हुए गीता में भगवान कृष्ण ने कहा है–

हे धनजय! संपूर्ण वृक्षों में पीपल वृक्ष हूँ। देव ऋषियों में नारद गंधर्वों में चित्ररथ तथा सिद्धों में कपिलमुनि मैं ही हूँ।

जहाँ भगवान कृष्ण ने स्वयं को पीपल वृक्ष में समासीन किया है, वहाँ उनके कथन से यह भी सिद्ध हो जाता है कि वृक्ष देव ऋषियों, सिद्धों और गंधर्वों के समकक्ष प्रतिष्ठित होते हैं देवत्व के समाज में इनकी श्रेणी छोटी नहीं है। संसार में यदि कल्याणकारी, परोपकारी, समदर्शी, फलदायी और वरदायी वयक्तियों में देवों या गंधर्वों को प्रतिष्ठा दी जाये तो वृक्ष भी उनसे कम सम्मान के पात्र नहीं हैं।

संभवतः इन्हीं बातों पर पूर्णरूप से विचार करने के पश्चात् भारतीय आचार्यों ने वृक्षारोपण और वृक्ष की प्रतिष्ठा को महान पुण्य स्वीकारा है और उनसे अनेक प्रकार के वरदान मिलने की बात कही है। धर्म ग्रन्थों में ऐसे बहुत से उदाहरण मिलते हैं।

ऋग्वेद में ऋषि ने कहा है–जिस प्रकार दुष्ट बाज पक्षी दूसरे पक्षियों की ग्रीवा मरोड़ कर उन्हें कष्ट पहुँचाता है और मौत के घाट उतार देता है, तुम वैसे मत बनो और इन वृक्षों को कष्ट न पहुंचाओ, इनका उच्छेदन न करो, ये पशु–पक्षियों एवं समस्त प्राणियों के लिए शरणागतवत्सल हैं। धरती माता को शष्य–श्यामला कह कर उसकी वंदना की गयी है। यह पुण्य नाम उसे इसलिए दिया गया था कि वह पेड़–पौधों लता–गुल्मों से सदा आच्छादित रहा करती थी। ऊंचाई से इसका पिण्ड सर्वथा हरा भरा दृष्टिगोचर होता है।

प्राचीन काल में विद्यालय जैसे जगह पर होते थे जहाँ आस–पास हरियाली होती थी। छात्रों को वृक्षावली बढ़ाने के लिए सदैव प्रेरित किया जाता था। गुरुकुलों में वृक्षारोपण–उत्सव मनाया जाता था और बड़े–बड़े वृक्ष जैसे नीम, पीपल, बेल, बरगद, आम, इमली आदि के पेड़ लगाये जाते थे। छात्र–समूह इनकी नियमित देखभाल करते थे, उन्हें किसी तरह की हानि नहीं हो इसका विशेष ख्याल रखा जाता था। विद्यार्थियों के ह्रदय में वृक्षों के प्रति आध्यात्मिक प्रेम जगाया जाता था। वृक्षों की सुश्रुषा से उनका आंतरिक सौंदर्य जाग्रत होता था। लोगों के मन सुसंस्कृत बने रहते थे। आत्म–प्रेरणा मिलती थी। बच्चों के विकासोन्मुख मस्तिष्क पर इनके प्रेरणाओं की नींव गहरी हो जाती थी, फलस्वरूप कठिन परीक्षा की घड़ियों में भी वे सदाचार से विचलित नहीं होते थे। वृक्षों द्वारा सूक्ष्म आध्यात्मिक प्रशिक्षण अनवरत मिलता रहे इसके लिए विद्यालयों में ही उनकी बहुतायत नहीं होती थी। प्रत्येक आश्रम, गांव, देवालयों तथा सार्वजनिक स्थलों को भी वृक्षों से अच्छादित रखा जाता था। भारतवर्ष की अनेक विलक्षणताओं में यह भी एक विलक्षण तथ्यपूर्ण और वैज्ञानिक बात रही है। एक से एक दुर्लभ प्रजाति के वृक्ष यहाँ पाये जाते हैं। नीम तथा पीपल सिर्फ इसी देश में पाया जाता है।

किन्तु मनुष्यों के कुकृत्यों, धन की लालसा के कारण वृक्षों की अवैध कटाई प्रारंभ कर दी गयी। अब पहाड़ों पर बर्फ का जमना धीरे–धीरे कम होता जा रहा है। सूर्याताप के कारण बर्फ थोड़े समय में ही पिघलकर बह जाती है। वृक्षों की संख्या घटने से वर्षा की सघनता भी कम होने लगी है और उसका दुष्प्रभाव अब सिंचाई जैसे महत्वपूर्ण कार्यों पर पड़ रहा है। सिंचाई के अतिरिक्त लोगों को पीने के लिए पानी उपलब्ध नहीं हो रहे हैं। भारत में भी पीने के पानी के लिए लगभग 33 करोड़ लोग तड़प रहे हैं। भारत के छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश, मध्य प्रदेश, तेलंगाना, गुजरात, राजस्थान इत्यादि राज्यों में पीने के पानी का अभाव है। महाराष्ट्र का लातूड़ में तो सरकार को ट्रेन द्वारा पानी पहुंचाने की व्यवस्था करनी पड़ी हैताकि वहाँ के लोगों को पीने का पानी उपलब्ध हो सके। इससे स्पष्ट होता है कि वृक्षों का कितना महत्व है।

वर्तमान समय में पर्यावरण की स्थिति दयनीय होती चली जा रही है। पर्यावरणीय प्रदूषण का प्रभाव मनुष्य के साथ–साथ समस्त जीव–जन्तुओं के ऊपर स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हो रहा है। तकनीकी ज्ञान के विनाशकारी विकास एवं व्यवसायीकरण के कारण नित्य नये–नये कल–कारखानों एवं उद्योगों की स्थापना हो रही है। जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं के साथ–साथ व्यक्तिगत स्वार्थों एवं अनावश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति का माध्यम प्रकृति को बनाया गया है। इसके अत्यधिक दोहन से संपूर्ण पर्यावरण प्रभावित होता है। फलस्वरूप वातावरण में विभिन्न प्रकार के प्रदूषण सम्बन्धित समस्यायें उत्पन्न हो रही हैं और प्राकृतिक असंतुलन जैसी विकट स्थिति का सामना हमें करना पड़ रहा है। इस असंतुलन का मानव जीवन के व्यक्तिगत एवं सामाजिक दोनों स्तरों पर तात्कालिक एवं दूरगामी प्रभाव परिलक्षित होना आवश्यंभावी है। वर्तमान में असंतुलन के परिणामस्वरूप समाज की उत्तरजीविता के संकट को देखते हुए विश्व भर में पर्यावरण–संरक्षण के विधान बनाये जा रहे हैं। नागरिक संगठन एवं संयुक्त राष्ट्र संघ भी समूहबद्ध होकर संरक्षण हेतु प्रयासरत हैं किन्तु उनके द्वारा अपनाये जा रहे उपायों से पर्यावरणीय स्थिति में बदलाव दिखायी नहीं देता। शायद इसका कारण सामाजिक व्यवस्थाओं की उपेक्षा करते हुए सिर्फ वैज्ञानिक विधियों को अपनाने पर बल देना है।

भूमंडलीय पर्यावरण संतुलन को बनाये रखने के लिए प्राचीन काल से ही पर्यावरण बड़ी ही श्रद्धापूर्वक अपने दायित्व को निभाता आ रहा है। संसाधनों की क्षतिपूर्ति हेतु अवशिष्ट उत्पादों की पुनरावृत्ति सम्बन्धित सिद्धान्त को अपनाकर पर्यावरण संतुलन बनाये रखने के प्रयास आ रहे हैं जिससे आगे आने वाली पीढ़ियों को जीवन समर्थक प्रणालियों की प्राप्ति उसी प्रकार हो सके जिस प्रकार पूर्व की पीढ़ी ने प्राप्त की थी।

किन्तु आज हमारी गलतियों के कारण संपूर्ण पर्यावरण प्रदूषित होते जा रहा है। गौर से देखा जाये तो प्रदूषण के सबसे अधिक महत्वपूर्ण कारणों में से एक जनसंख्या वृद्धि को ठहराया जा सकता है। जनसंख्या वृद्धि के कारण लोगों को आवास की समस्या से रूबरू होना पड़ रहा है। आवास के लिए वनों की अंधाधुंध कटाई जारी है। हिमखंडों का पिघलना तो जारी है ही, साथ ही वर्षा के असंतुलित होने के कारण पर्यावरण असंतुलन की स्थिति उत्पन्न हो गयी है। वनों की कटाई के परिणामस्वरूप वातावरण का तापमान दिनोंदिन बढता जा रहा है। औद्योगीकरण के कारण अपशिष्ट की अधिकता से पर्यावरण में असंतुलन की स्थितिपैदा होती जा रही हे। इन विषैले अपशिष्टों से हम पर्यावरण को इस प्रकार असंतुलित करने का प्रयास कर रहे हैं कि आगे आने वाले दिनों में जैवमंडल में निवास करने वाले समस्त प्राणियों को अपना अस्तित्व बचाये रखने में परेशानी होगी। मनुष्य की अधिक से अधिक उपभोगता की प्रवृत्ति से समस्त पर्यावरण के समक्ष अनेकों प्रकार की समस्या उत्पन्न हो रही है। इन समस्याओं से यद्यपि हम अवगत हैं फिर भी हमारे द्वारा गलतियों को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जा रही है। 1960 के दशक में औद्योगिक कचरा एवं अत्यधिक कृत्रिम खाद्य युक्त पानी के परिणामस्वरूप जापान स्थित एरी नामक झील की सभी मछलियाँ मर गयी थी एवं उन मछलियों के सेवन से हजारों लोगों को अपना प्राण गंवाना पड़ा था। झील के जल में फॉस्फेट एवं नाईट्रेट की मात्रा की अधिकता के कारण इस प्रकार की घटनायें घटी थीं। इसी तरह आज हमारे देश की सबसे पवित्र गंगा नदी भी पर्यावरण प्रदूषण की शिकार हो गयी है। लाखों टन कचरा प्रतिदिन इस पवित्र नदी में गिराया जा रहा है। परिणामस्वरूप गंगा जल दूषित होती जा रही हैं। अभी हाल ही में एक समाचार पत्र में इस बात का खुलासा किया गया है कि गंगा जल में आर्सेनिक की मात्रा पाई गई है। आर्सेनिक हमारे स्वास्थ्य के लिए कितना हानिकारक है, यह हम सबों से छिपी हुई नहीं है। आर्सेनिक युक्त जल के सेवन से हमारे शरीर के अन्दर अनेकों प्रकार की बीमारियाँ उत्पन्न हो रही हैं। जनसंख्या विस्फोट के कारण रहने की समस्या के अतिरिक्त भोजन की समस्या भी विकराल रूप धारण कर रही है। शहरीकरण के कारण गांवों की जमीन सिमटी जा रही है। कम जमीन में अधिक उपज के लिए विभिन्न तरह के खादों का प्रयोग खेतों में किया जाता है। फलस्वरूप उपज तो अधिक तो जाती है किन्तु खादों के रासायनिक तत्व अनाज के साथ हमारे शरीर में प्रवेश कर जाता है जिसके कारण हम गंभीर बीमारियों का शिकार होते जा रहे हैं। पुनः अधिक जनसंख्या के कारण हमारे द्वारा त्यागे गये मल–मूत्र नहीं, तालाब में नाला के द्वारा जाता है। परिणामस्वरूप पीने के पानी की समस्या उत्पन्न हो जाती है। मल–मूत्र के कारण जल प्रदूषित हो जाता है जो हमारे किसी काम के नहीं रहता। अतः जनसंख्या नियंत्रित करने से भी बहुत हद तक पर्यावरणीय वातावरण में सुधार लाया जा सकता है।

उपरोक्त बताई गई बातों के आधार पर मैं यह कह सकता हूँ कि शुद्ध पर्यावरण के लिए वृक्षारोपण ही एकमात्र उपाय है। पेड़ पौधे मानव–जीवन चक्र के लिए बहुत मायने रखते हैं। लेकिन मानवीय क्रिया–कलापों के कारण वृक्षों का अस्तित्व ही खतरे में है। सीधे तौर पर हम कह सकते हैं कि कुल्हाड़ी पेड़ों पर नहीं हम अपने पैरों पर मार रहे हैं।

संदर्भ-सूची

1. श्रोत, दैनिक जागरण, मधुरिमा, 3 जून, 2016
2. महेंद्र कुमार मिश्रा, भारत में पर्यावरण समस्यायें और उसका निदान
3. डॉ. निधि मिश्रा, आयुर्वेद में पर्यावरण और समाज
4. डॉ. सत्येन्द्र यादव, वृक्षारोपण
5. रेखा चौधरी, औद्योगीकरण का पर्यावरण पर प्रभाव
6. रामकुमार, Environmental Chemical Hezards

* * * * *

(U.G.C. Approved Journal No. : 41329) ISSN No. - 2319–5908

Philosophy : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 511-515

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

THE ANCIENT PHILOSOPHY AND TOOLS OF YOGA CAN HELP TO BEAT THE COVID-19

*Dr. Amita Pandey**

''समत्वं योग उच्यते'' (गीता 2/48)

''योगः कर्मसु कौशलम्'' (गीता 2/50)

तं विद्दयादुःखसंयोगवियोगं योगसंवितम् । (गीता 6/23)

युज्यते अनेन इति योगः!

Yujyate anena iti yoga: Yuj means joining . It is joining of the Individual Self, Jivatma (जीवात्मा) with the Universal Self, Paramatma (परमात्मा)

It is an expansion of narrow constricted egoistic personality to an all pervasive, eternal and blissful state of Reality.

Yoga is a conscious process of gaining mastery over the mind. (Maharshi Patanjali).

Yoga is a systematic conscious effort towards self development to explore and enhance the latent potentialities of the individual. (Sri Aurobindo)

The coronavirus pandemic has created a global crisis with far-reaching social, economic, and spiritual repercussions. Our resilience during these challenging times will be tested not only by how we combat the spread of the virus but also how we make the best out of the circumstance.

While it's important to take this pandemic seriously and act responsibly, it's definitely not the time to panic.

The value of cleanliness : Beating the virus requires collective action. It's imperative that everyone follows the rules like staying clean, washing the hands frequently, maintaining social distance, etc. Initially, they might appear challenging, but they aren't hard to practice. If you observe, these practices have been part of many traditional cultures. The ancient philosophy of yoga lays a great deal of emphasis on cleanliness, not only of the body but also of the mind and the surroundings.

The first personal ethic of yoga, niyama, is about cleanliness or saucha. Saucha, as enunciated in the Yoga Sutras of Maharishi Patanjali, advocates purity and cleanliness as a key foundation for yogic life. Saucha in its deeper sense also includes avoiding unnecessary physical contact and intimacy. The self-discipline of eating healthy and chemical-free food which keeps us clean from within is complementary to saucha. It also includes the discipline to sleep enough, to work out, to meditate and the like, anything that leads to purification of our system. Making asanas, pranayamas and meditation an integral part of a healthy lifestyle can go a long way in boosting one's immunity and keeping the coronavirus at bay.

** HOD, Philosophy Deptt. I.S.P.G.College University of Allahabad*

Balancing rest and activity : The most important contribution we can make during these tumultuous times is to isolate ourselves to reduce the possibilities of contracting and transmitting the virus. Stay indoors, avoid travelling and going to public gatherings or community feasts. I would recommend even avoiding congregational prayers and rituals. Meditation and mental prayers are far superior and much more effective than rituals.

Take the imposed social distancing or self-quarantine as an opportunity to slow down and go inward. It offers you space and time to focus on yourself, to reflect and reset your roles and goals. It's also an excuse to break the monotonous pattern of fast-paced life and indulge in some right-brain activities like creative writing, cooking, music, painting, or learning a language.

It's the time to move beyond the scenery and find the lost seer. It's also the time to strike a balance between rest and activity. One who is always in rest doesn't progress in life and one who is always in activity misses the bliss of deep rest.

Social distancing is not a punishment. Silence and solitude are a potent means for personal growth and self-renewal. Many great works of the world have emerged out of solitude. Meditate more and use this forced solitude to improve your mental strength, creativity, empathy, and productivity. Now that you are getting to spend more time with your family members, listen to them. Talk less and avoid arguments.

Caring and sharing : So far, India and many other countries have done extremely well in combating the spread of coronavirus, but there's a lot more to do. During catastrophic events, people must care for and share with each other. Those who have enough should resort to some austerity and spend the savings on those who are in dire need. I urge all those who can afford it to take a pay cut and form endowments to take care of daily wage earners and low-income groups in their areas so that the economic burden is shared by society locally. Let's reassure ourselves and others that there's enough humanity to take care of everyone.

This is a temporary phase of uncertainty. Mankind has fought against and prevailed over such threats before. We have overcome epidemics like SARS, swine flu and bubonic plague in the past. Be assured that we will overcome this one too. I request everyone to desist from circulating unfounded information about the pandemic. While we need to be informed of what is happening, do not get obsessed with corona. Endless TV debates and mindless social media shares could add to the uncertainty and cause an upsurge of anxiety and panic.

The coronavirus is definitely a catastrophe for the world, but it doesn't have to mean the apocalypse. Despite the dark clouds of gloom, silver linings are emerging bright enough to bring hope. This is what we need to focus on. The stories of birds chirping again in Wuhan, or skies and water bodies clearing up as people stay indoors, or people opening up their hearts to provide solace to those who are in need might not immediately compensate the losses brought about by the novel pandemic, but they do come as lasting reassurances of the good for the human race. For sure, this crisis will also leave the population more sensitized about cleanliness, personal hygiene and healthy ways of life.

Time indeed is the great healer. Let's give it time, time with patience, courage and compassion. When thinking about the cause of wintertime sickness, cold weather is usually the first object of blame. However, talk to any yogi in the winter season and you will most likely find out that they rarely get sick.

Contrary to popular belief, germs, rather than cold weather itself, cause sickness. And what makes us susceptible to those microscopic crazymakers? Lack of sleep, poor nutrition, and life stress all lead

to a weakened immune system and vulnerability to sickness. Stress, more than anything, leads to a breakdown in the body's ability to defend itself against bacteria and viruses.

When stressed, the hormone cortisol stays in the blood for extended periods of time, which the body develops resistance to, leading to increased inflammation. According to Psychology Today. a new research published in the Journal of Behavioral Medicine suggests that yoga can be helpful way to boost your immune system and decrease inflammation in the body.

When sick, antibiotics and other medicine can help the body recover from disease. However, what medicine fails to do is improve the body's immune system. This is where yoga comes to the rescue! Yoga is one of the most effective and time-tested natural immunity boosters that can lead to a healthy, sickness-free body. Yoga lowers stress hormones and strengthens the nervous system while also stimulating the lymphatic system, which removes toxins from the body. Yoga calms the mind and can contribute to deeper, regulated sleep, which is crucial for wellness; sleep is one of the most important factors in healing and maintaining a healthy immune system.

Yoga is a holistic practice that strengthens our physical body, as well as the microscopic systems that are not visible to the eye. As a result, the body's natural defense mechanisms also improve. A healthy, disease-free body can be easily achieved by adopting a healthy lifestyle, including eating unprocessed, whole foods, maintaining a regular yoga and meditation practice, getting plenty of sleep, and minimizing stressors. Ayurveda, yoga, and meditation are the keys to achieving our full potential. To reap the immune-boosting results of yoga, be sure to maintain a daily practice!

Vedanta philosophy about the Self and the Not Self : For a Vedanta student, Vedanta is Yoga philosophy, then we talk about the Self, and about the detachment toward the things that are transient and changing, and to discriminate, to know the difference between what is permanent, and that which is changing, which is the Self and that which is the not-Self. You need to have some basic education in Vedanta philosophy, which is Yoga philosophy in order for you to understand how to do this. But in general you need to remember that there is some presence within you, consciousness within you that is there, no matter what. You need to tune to that. That consciousness can be seen outside as hands of God or the Divine, or can be seen inside as your own inner deeper presence.

Guidelines to combat covid-19 pandemic according to Yogic Philosophy : Yoga is a discipline based on an extremely subtle science, whichfocuses on bringing harmony between mind and body. It is an artand science of healthy living. Yoga leads to a perfect harmonybetween mind and body, man and nature, individualconsciousness and universal consciousness. Yoga helps to buildup psycho-physiological health, emotional harmony; and managedaily stress and its consequences. Yoga is also useful inconditions where stress is believed to play a role. Various yogicpractices such as Yogasanas, Pranayama, Dhyana (meditation),cleansing and relaxation practices etc. are known help modulatethe physiological response to stressors. Several randomizedcontrolled studies have shown the efficacy of Yogic practices inmanagement of non-communicable diseases likehypertension, Chronic Obstructive Pulmonary disease (COPD), bronchial asthma , diabetes, sleep disorders, depression, obesity, etc. that can be comorbid conditions inpatients with COVID 19. Yoga has also been shown to be useful invulnerable population such as elderly, children. The function ofthe immune system is critical in the human response to infectiousdisease. A growing body of evidence identifies stress as a cofactorin infectious disease susceptibility and outcomes.Studies on yoga in managing flu symptoms during an Influenza season have shown promising results. A recent randomized trialcomparing meditation and exercise with wait-list control amongadults aged 50 years and older found significant reductions in ARIillness during cold season with mindfulness meditation. Yogais also known to increase mucosal immunity by

increasingSalivary Beta Defensin-2 levels in elderly population Considering that they are a vulnerable group to contract suchinfections, yoga may be useful as a preventive measure. Yogapractices such as Kriya, Yogasana and Pranayama have beenshown to reduce airway reactivity in elderly subjects with asthmaand COPD. Thus, sufficient evidence exists to justify testingthe hypothesis that training in Yoga /Meditation can reducesusceptibility to ARI illness. Netikriya is useful in acute coryza and symptoms of cold.

Yoga may play significant role in the psycho-social care andrehabilitation of COVID-19 patients in quarantine and isolation.They are particularly useful in allaying their fears and anxiety.

This document provides guidelines for yoga professionals (CertifiedYoga teachers/ instructors and therapists etc.) to teach a safe set ofYoga practices based on available scientific evidences, to novices in allwalks of society as a service to humanity during this pandemic ofCOVID -19.

This is complimentary to all measures that have beenadopted. Yoga based life style modules which can be used for differentsections of the society in the present scenario are presented with the following objectives.

1. To improve general immunity among the population.

2. Prehabilitation of vulnerable populations (children, elderly andthose with comorbid conditions such as diabetes andhypertension) and to those patients in isolation/quarantinewith or without mild symptoms.

3. To add-on Yoga based interventions and Meditation practices in covid-19 cases in isolation and hospitalization for psycho-social care A Common Yoga Protocol (CYP) was developed by a team of leadingYoga Experts / Yoga Gurus that is being widely performed onInternational Day of Yoga (IDY) i.e. 21st June of every year. Thisprotocol available on WHO m-app can be used by the generalpopulation to stay fit along with other hygiene and social distancingmeasures in this current scenario.

Yoga based lifestyle modules for health promotionin healthy population ; *Yoga Based life style module to improve immune resilience inhealthy population of all age groups.*

Common Yoga Protocol : Forty-Five-minute module: The Common Yoga Protocol of IDY thatwas developed by a team of leading Yoga experts / Yoga Masters includesafe practices to improve physical, mental, emotional and spiritualhealth of the population. Regular practice on empty stomach isrecommended to improve immune resilience.

Twenty and ten minute modules are recommended for children,adults, Youths and the elderly population to be repeated twice a day (morning and evening).

Apart from CYP; Jalaneti, Sutraneti and BhastrikaKriyas arerecommended once or twice in a week and Yoga nidra for 20-30minutes twice or thrice a week.

Yogic Diet : Follow the recommendations as per the medical advice on diet for your condition of diabetes, or heart disease etc. and add-on these conceptsfrom yoga that promotes mental health. This includes wholesomenutritious freshly cooked traditional home cooked food with plenty offresh vegetables and fruits (with restrictions as per your diseasecondition) with added traditional spices in moderate quantities,consumed at regular timings. Abstinence from substance abuse including tobacco,alcohol and other addictive drugs.

To reduce disease susceptibility in high risk population : This guideline recommends evidence based safe and simple yogapractices as mentioned above that promote heath of the respiratory,cardiovascular and the immune systems.

To add-on Yoga based life style to hospitalized caseswithout acute respiratory distress.

As these subjects are hospitalized and they remain in bed withoutrespiratory distress, the meditative practices without breathawareness practiced repeatedly is recommended. Practice of deeprelaxation of the body, slowing down of the breathing rate andcalming down of the mind using any of the practices from any schoolof Yoga for twenty minutes repeated once every 3-4 hours during theday time using audio instructions is recommended. Some examplesinclude : mindfulness meditation, transcendental meditation, yoga-nidra, progressive relaxation, quick relaxation, deep relaxation etc.

ACKNOWLEDGEMENT

1. Chong CS, Tsunaka M, Chan EP. Effects of yoga on stress management in healthy adults: a systematic review. Alternative therapies in health and medicine. 2011;17(1):32.
2. Posadzki P, Cramer H, Kuzdzal A, Lee MS, Ernst E. Yoga for hypertension: a systematic review of randomized clinical trials. Complementary Therapies in Medicine. 2014 Jun 1;22(3):511-22.
3. Ranjita R, Hankey A, Nagendra HR, Mohanty S. Yoga-based pulmonary rehabilitation for the management of dyspnea in coal miners with chronic obstructive pulmonary disease: a randomized controlled trial. Journal of Ayurveda and integrative medicine. 2016 Jul 1;7(3):158-66.
4. Cramer H, Posadzki P, Dobos G, Langhorst J. Yoga for asthma: a systematic review and meta-analysis. Annals of Allergy, Asthma & Immunology. 2014 Jun 1;112(6):503-10.
5. Innes KE, Selfe TK. Yoga for adults with type 2 diabetes: a systematic review of controlled trials. Journal of diabetes research. 2016;2016.
6. Wu WW, Kwong E, Lan XY, Jiang XY. The effect of a meditative movement intervention on quality of sleep in the elderly: a systematic review and meta-analysis. The Journal of Alternative and Complementary Medicine. 2015 Sep 1; 21(9):509-19.
7. Cramer H, Anheyer D, Lauche R, Dobos G. A systematic review of yoga for major depressive disorder. Journal of Affective Disorders.2017 Apr 15; 213:70-7.
8. Lauche R, Langhorst J, Lee MS, Dobos G, Cramer H. A systematic review and meta-analysis on the effects of yoga on weight-related outcomes. Vol. 87, Preventive Medicine.Academic Press Inc.; 2016. p. 213–32.
9. Pedersen A, Zachariae R, Bovbjerg DH. Influence of psychological stress on upper respiratory infection—a metaanalysis of prospective studies. Psychosomatic medicine. 2010 Oct 1;72(8):823-32
10. Gleeson M, Bishop N, Oliveira M, McCauley T, Tauler P, Muhamad AS. Respiratory infection risk in athletes : Association with antigen-stimulated IL-10 production and salivary IgA secretion. Scand J Med Sci Sport. 2012 Jun;22(3):410–7.
11. Eda N, Shimizu K, Suzuki S, Tanabe Y, Lee E, Akama T. Effects of yoga exercise on salivary beta-defensin 2. European journal of applied physiology. 2013 Oct 1;113(10):2621-7.
12. Singh V, Wisniewski A, Britton J, Tattersfield A. Effect of yoga breathing exercises (pranayama) on airway reactivity in subjects with asthma. The Lancet. 1990 Jun 9;335(8702):1381-3.
13. Meera S, Rani MV, Sreedhar C, Robin DT. A review on the therapeutic effects of NetiKriya with special reference to JalaNeti. Journal of Ayurveda and integrative medicine. 2019 Jan 5.
14. The Hindu Newspaper.
15. Frontline.
16. The Mint.

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Pol. Science : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page :516-519

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

नागरिकता संशोधन अधिनियम, 2019 : भारत माता की अन्तरात्मा

*डॉ. सुमित्रा देवी शर्मा**

भारत की संसद द्वारा पारित एक अधिनियम है जिसके द्वारा सन् 1955 के नागरिकता कानून को संशोधित करके यह व्यवस्था की गई है कि 31 दिसम्बर सन् 2014 के पहले पाकिस्तान, बांग्लादेश और अफगानिस्तान से भारत आए हिन्दू, बौद्ध, सिक्ख, जैन, पारसी एवं ईसाई को भारत की नागरिकता प्रदान की जा सकेगी। इस विधेयक में भारतीय नागरिकता प्रदान करने के लिए आवश्यक 11 वर्ष तक भारत में रहने की शर्त में भी ढील देते हुए इस अवधि को केवल 5 वर्ष तक भारत में रहने की शर्त के रूप में बदल दिया गया है।

नागरिकता (संशोधन) अधिनियम, 2019

Citizenship (Amendment) Act, 2019

ससंद

नागरिकता अधिनियम, 1955 को संशोधित करने के लिए लागू किया गया अधिनियम–नागरिकता (संशोधन) अधिनियम 2019[1]

शीर्षक	Act No. 47 of 2019
द्वारा अधिनियमित	लोकसभा
पारित करने की तिथि	10 दिसम्बर, 2019
द्वारा अधिनियमित	राज्यसभा
पारित करने की तिथि	11 दिसम्बर, 2019
अनुमति तिथि	12 दिसम्बर, 2019
हस्ताक्षर तिथि	12 दिसम्बर, 2019
	विधायी
विधेयक का उद्धरण	Bill No. 370 of 2019
बिल प्रकाशन की तारीख	9 दिसम्बर, 2019
द्वारा पेश	अमित शाह, भारत के गृहमंत्री
पठन (विधायिका) = प्रथम पठन	9 दिसम्बर, 2019
पठन (विधायिका) = द्वितीय पठन	10 दिसम्बर, 2019
पठन (विधायिका) = तृतीय पठन	11 दिसम्बर, 2019

सारांश–इस अधिनियम के द्वारा पाकिस्तान, बांग्लादेश, अफगानिस्तान से 31 दिसम्बर, 2014 के पूर्व भारत आए हुए हिन्दू, सिख, बौद्ध, जैन, पारसी, ईसाई को भार की नागरिकता देने की व्यवस्था की गई है।

* *असिस्टेंट प्रोफेसर (लोक प्रशासन), प्रभा देवी मेमोरियल महाविद्यालय, आमेर, जयपुर*

नागरिकता संशोधन बिल को लोकसभा ने 10 दिसम्बर, 2019 को तथा राज्यसभा ने 11 दिसम्बर, 2019 को पारित किया व 12 दिसम्बर, 2019 को भारत के राष्ट्रपति ने इसे अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी और यह विधेयक एक अधिनियम बन गया व 10 जनवरी, 2020 से यह अधिनियम प्रभावी हो गया है।

पृष्ठभूमि—महात्मा गांधी जी ने 26 सितम्बर, 1947 में प्रार्थना सभा में खुले आम घोषणा की कि पाकिस्तान में रह रहे हिन्दू, सिख यदि वहाँ नहीं रहना चाहते तो वो भारत आए, उनको सुरक्षा हम देंगे।

महात्मा गांधी ने कहा था कि पाकिस्तान से प्रताड़ित होकर आने वाले अल्पसंख्यकों को भारत में नौकरी सहित अन्य सुविधाएं उपलब्ध कराना चाहिए। जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि प्रधानमंत्री आकस्मिक निधि का उपयोग पाक से आने वाले अल्पसंख्यकों के लिए किया जाना चाहिए। इंदिरा गांधी ने कहा था कि पूर्वोत्तर के राज्यों में भ्रमण कर बांग्लादेश व पाक से आये अल्पसंख्यकों के दुख को साझा करना चाहती हूँ। सन् 2003 में पूर्व प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने विपक्ष के नेता के रूप में अटल बिहारी वाजपेयी सरकार से मांग की थी कि बांग्लादेश जैसे देशों से प्रताड़ित होकर आ रहे अल्पसंख्यकों को नागरिकता देने में हमें ज्यादा उदार होना चाहिए।

नेहरू लियाकत समझौता—भारत सरकार और पाकिस्तान के बीच अल्पसंख्यकों की सुरक्षा और अधिकारों के संबंध में यह समझौता हुआ। इस संधि पर नई दिल्ली में भारत के प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू और पाकिस्तान के प्रधानमंत्री लियाकत अली खान के द्वारा 8 अप्रैल, 1950 को हस्ताक्षर किए गए। यह संधि भारत के विभाजन के बाद दोनों देशों में अल्पसंख्यकों के अधिकारों की गारंटी देने और उनके बीच एक और युद्ध को रोकने के लिए की गई, छह दिनों की वार्ता का परिणाम थी।

दोनों देशों में अल्पसंख्यक आयोग गठित किए गए। भारत में पूर्वी पाकिस्तान (अब बांग्लादेश) से पश्चिमी बंगाल में दस लाख से अधिक शरणार्थी पलायन कर पहुँचे।

नागरिकता (संशोधन) अधिनियम 2019 को पारित करने से पहले हुई लोकसभा बहस में (नागरिकता संशोधन) विधेयक को सही ठहराते हुए गृहमंत्री अमित शाह ने इस समझौते का उललेख किया। उन्होंने नेहरू लियाकत समझौते को इस संशोधन की वजह बताते हुए कहा, यदि पाकिस्तान द्वारा संधि का पालन किया गया होता, तो इस विधेयक को लाने की कोई आवश्यकता नहीं होती। नागरिकता संशोधन विधेयक का बचाव करते हुए अमित शाह ने दोहराया कि पाकिस्तान और बांग्लादेश विभाजन के बाद धार्मिक अल्पसंख्यकों की रक्षा करने में विफल रहे। उन्होंने कहा, मोदी सरकार इस ऐतिहासिक गलती को सही कर रही है।

नागरिकता (संशोधन) कानून 2019 से सम्बन्धित मुख्य तथ्य[2]

1. क्या है नागरिकता (संशोधन) कानून 2019—अविभाजित भारत में रहने वाले लाखों लोग अलग धर्म को मानते हुए आजादी के वक्त से वर्ष 1947 से पाकिस्तान और बांग्लादेश में रह रहे थे, इसके साथ ही अफगानिस्तान भी मुस्लिम राष्ट्र है और इन देशों में हिन्दू, सिख, बौद्ध, पारसी, जेन और ईसाई समुदायों के बहुत से लोग धार्मिक आधार पर उत्पीड़न झेलते हैं।

नागरिकता कानून 1955 के अनुसार, किसी अवैध अप्रवासी नागरिक को भारत की नागरिकता नहीं मिल सकती। सरकार ने इस कानून में संशोधन के जरिये अब नागरिकता कानून 2019 के हिसाब से अल्पसंख्यकों को भारत की नागरिकता आसानी से देने का फैसला किया है।

2. मोदी सरकार क्या कहती है?—भारत के तीनों पड़ोसी देशों में हिन्दू, सिख, बौद्ध, पारसी, जैन और ईसाई समुदायों के बहुत से लोग धार्मिक आधार पर उत्पीड़न झेलते हैं। पाकिस्तान, बांग्लादेश और अफगानिस्तान का संविधान उन्हें विशिष्ट धार्मिक राज्य बनाता है। इनमें से बहुत से लोग रोजमर्रा के जीवन में सरकारी उत्पीड़न से डरते हैं।

इन तीनों देशों में अल्पसंख्यकों को अपनी धार्मिक पद्धति उसके पालन और आस्था रखने में बांधा आती है। इनमें से बहुत से लोग भारत में शरण के लिए आए और वे यहीं रहना चाहते हैं। इन लोगों के वीजा या पासपोर्ट की अवधि भी समाप्त हो चुकी है। कुछ लोगों के पास कोई दस्तावेज नहीं है, लेकिन अगर वे भारत को अपना देश मानकर यहां रहना चाहते हैं तो सरकार उनकी सुरक्षा सुनिश्चित करना चाहती हैं।

3. विपक्षी दलों का क्या है तर्क?—विपक्षी दलों का कहना है कि विधेयक मुसलमानों के साथ भेदभाव करता है, जिन्हें इसमें शामिल नहीं किया गया है। इस हिसाब से यह संविधान के आर्टिकल 14 का उल्लंघन है।

केन्द्र सरकार ने कहा कि पाकिस्तान, बांग्लादेश और अफगानिस्तान मुस्लिम राष्ट्र हैं, वहां मुस्लिम बहुसंख्यक हैं, इस वजह से उन्हें धर्म के आधार पर उत्पीड़न का शिकार नहीं माना जा सकता। केन्द्र सरकार ने आश्वासन दिया है कि सरकार दूसरे समुदायों की प्रार्थना पत्रों पर अलग–अलग मामले में गौर करेगी।

4. पूर्वोत्तर में बवाल क्यों?–पूर्वोत्तर के राज्य इसका विरोध कर रहे हैं। दरअसल, पूर्वोत्तर के कई राज्यों का कहना है कि अभी भी बड़ी संख्या में उनके राज्य या इलाके में इस समुदाय के लोग ठहरे हुए हैं, अगर अब उन्हें नागरिकता मिलती है तो वह स्थाई हो जायेंगे। इससे उनकी संस्कृति, भाषा, खानपान और अन्य पहचान को खतरा पैदा हो जायेगा।

पूर्वोत्तर के कुछ क्षेत्रों/राज्यों को केन्द्र सरकार ने इनर लाइन परमिट में रखा है, जिसके कारण नागरिकता कानून वहां लागू नहीं होता। इनमें मणिपुर, अरूणाचल प्रदेश, मेघालय के कुछ इलाके शामिल है।

संसद के बजट सत्र (31 जनवरी, 2020) की शुरूआत राष्ट्रपति के अभिभाषण से हुई। राष्ट्रपति रामनाथ कोविंद ने सीएए को ऐतिहासिक बताते हुए कहा कि इसने महात्मा गांधी के सपनों को पूरा किया है। देशभर में चल रहे सीएए को वापस लेने के मुद्दे पर हो रहे प्रदर्शनों की ओर इशारा करते हुए कहा कि विरोध प्रदर्शनों के दौरान हिंसा से लोकतंत्र कमजोर होता है।[3]

केरल के राज्यपाल आरिफ मोहम्मद खान ने सीएए के विरोध में विधानसभा में पारित प्रस्ताव को असंवैधानिक बताया–केरल के राज्यपाल ने कहा कि नागरिकता का मामला केन्द्र और संसद के अन्तर्गत आता है। राज्य इसके खिलाफ कोई प्रस्ताव पास नहीं कर सकता। सीएए पर विधानसभा में पारित प्रस्ताव असंवैधानिक है।[4]

नागरिकता (संशोधन) कानून 2019 का कई राजनीतिक पार्टियां व पूर्वोत्तर के राज्य विरोध कर रहे हैं जिनके विरोध में उनके अपने–अपने मत है। विरोध को प्रदर्शित करने के लिए अपने–अपने तर्क दिये जा रहे हैं।

परन्तु हम भारत माँ की सन्तान हैं और यह कैसे भूल जाये कि जिन शरणार्थियों की बात की जा रही है वो भी एक दिन इसी भारत माता के आँगन में रहते थे। अविभिजित भारत में तो वो भी यहीं का एक हिस्सा थे। हम उन्हें प्रताड़ित होने के लिए कैसे वहाँ छोड़ सकते हैं। हमें स्वयं के लिए ना सोचकर भारत माता के बारे में, हमारे महापुरुषों के त्याग के बारे में सोचकर फिर इस पर बात करनी चाहिए।

संशोधित नागरिकता कानून (CAA) के खिलाफ केरल, पंजाब, राजस्थान, पश्चिमी बंगाल की विधानसभाओं में प्रस्ताव पास हुये हैं।[5]

इसका अर्थ कि हमें अविभाजित भारत के लोगों से कोई हमदर्दी नहीं। उनके दुःख हमारे दुःख नहीं हैं। आज वो विभाजित होकर चले गये तो उनसे हमारा कोई नाता ना रहा। हमारी कोई नैतिकता नहीं रही कि हम हमारे ही बारे में न सोचकर उन लोगों के बारे में सोचे।

इतने स्वार्थी कब बन गये हम। हम तो ऐसे देश के निवासी है जो पहले दूसरों का सोचते हैं फिर अपना। केरल, पंजाब, राजस्थान, पश्चिमी बंगाल के ऐतिहासिक महापुरुषों ने कभी यह नहीं सोचा होगा कि जिस देश को एक राष्ट्र बनाने में अपना सब कुछ कुर्बान कर दिया आज वो राज्य ही कुछ शरणार्थियों, प्रताड़ित लोगों को अपने यहाँ रहने का जरा सा भी बसेरा नहीं दे सकते, राजस्थान महाराणा प्रताप की भूमि जिसने त्याग, कुर्बानी का पाठ पढ़ाया वो प्रताड़ित, अल्पसंख्यक, हाशिए पर पड़े हुए, लोगों के प्रति अपना कोई कर्तव्य नहीं समझता। समझता है, लेकिन अब यहाँ राजस्थान के त्याग, बलिदान की बात या उनको समझकर कार्य किया जाने का कोई औचित्य ना रहा क्योंकि वोट बैंक की राजनीति के आगे अपने राज्य के योगदान भी याद ना रहे।

भारत–पाकिस्तान के विभाजन के समय यह बात हुई कि अल्पसंख्यक समुदाय–विभाजन के बाद भी अगर वह किसी देश में शोषित महसूस करता है तो उसे भारत में आने का हक है। पाकिस्तान, बांग्लादेश सभी भारत के हिस्से ही तो थे जो आज अलग हो गये। यहाँ का अल्पसंख्यक समुदाय शोषित महसूस करता है और वापिस अपने घर लौटता है तो इसमें कुछ लोगों को तकलीफ क्यों? हम भारत माता की सन्तान हैं, उस माता कि सन्तान है जिसने सदियों से ना जाने कितने अत्याचार, विभाजन देखे हैं। उस भारत माता की आत्मा से सोचो! यह सब भारत माता की सन्तानें ही तो है, तो क्या भारत माता की किसी सन्तान को ऐसे ही जीने के लिए हम छोड़ दें। दो पुत्र होते हैं एक पुत्र अच्छा जीवन जी रहा होता है ओर दूसरा पुत्र विभाजन के दंश से दूसरे देश चला गया और अगर वहाँ उसको तकलीफ होती है तो क्या भारत माता को तकलीफ नहीं होती। उसी के पुत्रों के साथ

अत्याचार होते हैं तो क्या उसको तकलीफ नहीं होती? उस बेघर, शरणार्थी, अल्पसंख्यक, बहिष्कृत, हाशिए पर पड़े हुए समुदाय के बारे में हम ना सोचे, यह कैसी विडम्बना है? इस तकलीफ को एक महिला, एक माँ अच्छी तरह समझ सकती है जब उसका एक पुत्र अच्छा जीवन जी रहा होता है और उसका एक पुत्र कहीं जाकर तकलीफ की जिन्दगी जीता है तो हमेशा उस माता का दिल दुखता है। रोती है वो कि आज मेरा एक पुत्र तकलीफ में है। उसकी अन्तरात्मा हमेशा उस पुत्र के लिए दुखी होती रहती है और वह माँ चाहती है कि मेरा पुत्र वापिस यहाँ आ जाये। आ जाये मेरे पास, आ जाये मेरी बाँहों में, अपने कलेजे में छिपा लूंगी उसको नहीं होने दूंगी एक भी तकलीफ। यह एक माँ के विचार होते हैं, तो क्या हमें भारत माता के बारे में कभी नहीं सोचना। हम भारत माता की सन्तान हैं कभी उसकी अन्तरात्मा की नहीं सोचना। कभी नहीं सोचना कि उस माता को कितनी तकलीफ होती होगी जब उसके किसी पुत्र के साथ अत्याचार होता होगा। विभाजन की रेखा में लोगों को बाँट दिया लेकिन माँ तो एक ही थी, भारत माता। उसका दिल तो दोनों के लिए रोता है। विभाजन से चला गया उसका एक पुत्र तो क्या वह उसकी चिन्ता करना छोड़ दें, उससे प्यार करना छोड़ दे। नहीं एक माँ यह नहीं कर सकती। इसलिए आज नागरिकता (संशोधन) अधिनियम 2019 किसी सरकार का एजेण्डा नहीं हैं यह एक माँ की तकलीफ है भारत माता की तकलीफ है। 72 सालों से जो पुत्र दूसरे देशों में अत्याचार सह रहे हैं, रो रहे हैं, उन्हें वो वापस लाना चाह रही हैं, अपने गले से लगाना चाह रही है, वह बताना चाहती है कि मैंने अपनी सन्तानों को बेचा नहीं है। मुझमें दम है कि अगर मेरा पुत्र कहीं तकलीफ में है तो मैं उसे अपने पास बुला सकती हूँ, मुझे हक है कि मैं उन्हें मेरे दिल, घर–आंगन में रख सकती हूँ। मुझे किसी से पूछने की आवश्यकता नहीं है। अपने पुत्रों को वापस अपने पास बुला सकती हूँ। नहीं जीने दूंगी उन्हें तकलीफों में, उनका विभाजन मैंने उन्हें तकलीफे देने के लिए नहीं किया था। मुझे अब भी हक है कि मैं मेरे पुत्रों को वापिस अपने पास रख सकती हूं। भारत माता की अन्तरात्मा, एक माँ की अन्तरात्मा है। इसलिए इस बात को एक माँ ही भली–भांति समझ सकती है। क्या हम अपनी भारत माता की अन्तरात्मा की जरा भी नहीं सुन सकते? वोट बैंक की राजनीति इतनी हावी हो गई कि माँ की तकलीफ छोटी हो गई।

जिन्दगी भर बहिष्कृत, हाशिए पर पड़े हुए, शरणार्थी, पहचान का संकट आदि इन्हीं तमगों को नहीं सुन सकती भारत माता। आज वक्त है कि हम आगे बढ़े। आगे बढ़े की लोगों को बता दे कि हम भारत माता के ऋणी है और उसकी अन्तरात्मा की आवाज अब हम जरूर सुनेंगे।

हमें फक्र होना चाहिए कि आज भारत देश इतना सक्षम हो चुका है कि वो भारत माता के इन लाड़लों को वापिस लाने की बात करता है। अल्पसंख्यक, बहिष्कृत, शरणार्थी, हाशिए पर पड़े हुए लोगों को पहचान दिलाने की बात करता है। ऐसे देश के नागरिकों को अपने आप में गर्व होना चाहिए। ऐसे देश के नागरिक को अगर कुछ तकलीफ भी होती है तो क्या हम जरा सी तकलीफ भी सहन नहीं कर सकते, अपने ही लोगों को मुख्य धारा में लोने के लिए। महात्मा गाँधी, बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय, झांसी की रानी, रानी हजरत महल, तात्याँ टोपे, कुवर कनक सिंह, राजेन्द्र प्रसाद, बिस्मिल, सरदार भगत सिंह, सुभाषचन्द्र बोस आदि ने इस देश को आजाद कराने में तकलीफ ही सही है तो क्या हम अपने लोगों को पहचान दिलाने में थोड़ी सी भी तकलीफ सहन नहीं कर सकते। हमें नागरिकता (संशोधन) अधिनियम 2019 को कारगर होने में सहयोग करना चाहिए तभी भारत माता एवं गाँधी जी को यह हमारी तरफ से एक सच्ची श्रद्धांजली होगी।

सन्दर्भ–सूची

1. https://hi.m.wikipedia.org
2. economictimes.indiatimes.com
3. राजस्थान पत्रिका, ''सीएए ऐतिहासिक, महात्मा गांधी के सपनों को किया पूरा : राष्ट्रपति'' जयपुर, राजस्थान, फरवरी 2020, पृ. 15
4. राजस्थान पत्रिका, ''असंवैधानिक सीएए के खिलाफ प्रस्ताव'', जयपुर, राजस्थान, 3 जनवरी, 2020, पृ. 1
5. राजस्थान पत्रिका, ''पश्चिम बंगाल में भी सीएए खिलाफ प्रस्ताव पारित'', जयपुर, राजस्थान, 28 जनवरी 2020, पृ. 1

- The Citizenship (Amendment) Bill, 2019, Bill No. 370 of 2019.
- नागरिकता (संशोधन) विधेयक, 2019 (P.D.F) PRS India] अभिगमन तिथि 11 दिसम्बर, 2019
- https://www.bbc.com
- https://m.aajtak.in

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Pol. Science : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 520-524

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

कश्मीर समस्या : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

अनूप कुमार तिवारी डॉ. उपमा सिंह***

सारांश : *पाकिस्तान की स्थापना जिन्ना एवं मुस्लिम लीग द्वारा की गई थी। जिन्ना के अनुसार मुसलमान, हिन्दू बहुसंख्या को कभी स्वीकार नहीं कर सकते, इसलिए उन्हें एक अलग राज्य चाहिए। उनकी यह आकांक्षा अंग्रेजों ने पूरी कर दी। प्रारंभ में ही दोनों राष्ट्रों के बीच भय, आक्रोश, घृणा एवं गृहयुद्ध जैसी समस्याओं ने जटिल रूप धारण कर लिया। भारत के 15 अगस्त, 1947 को स्वतन्त्र होने के बाद अनेक प्रकार की समस्याओं से जूझना पड़ा। कश्मीर समस्या का समाधान नहीं किया जा सका। आज भी कश्मीर समस्या भारत और पाकिस्तान के आपसी सम्बन्धों पर ग्रहण लगाए हुए है, जिसका निराकरण असम्भव नही तो कठिन अवश्य है। इसी ने सीमा पर आतंकवाद को जन्म दिया, जो आज भी जारी है। कश्मीर पर ऐन–केन प्रकारेण अधिकार कर लेने के इरादे से पाकिस्तान ने भारत पर सन् 1947, सन् 1965, सन् 1971 व सन् 1999 में कारगिल क्षेत्र में आक्रमण किया।*

जिन्ना की इस प्रकार की कार्यवाही ने इस अशांत उप–महाद्वीप की सम्पूर्ण भू–राजनीतिक स्थिति में ही परिवर्तन ला दिया, उन्होंने युद्ध का श्रीगणेश किया जिसके परिणामस्वरूप दोनों देशों के बीच असामान्य तनाव देखा गया। यदि जिन्ना कुछ दिन और रुक जाते तो वे कश्मीर को बिना खून–खराबे के ही सहज रूप से प्राप्त कर लिए होते। परन्तु सशस्त्र संघर्ष ने स्थिति में अचानक परिवर्तन ला दिया, जिसकी आशा दोनों पक्षों को बिल्कुल नहीं थीं। सन् 1948 के अन्त में हुए गृहयुद्ध विराम के बाद भी दोनों देशों ने इस सम्पूर्ण क्षेत्र में बड़ी संख्या में सेनाएं छोड़ रखी हैं, जिससे युद्ध की सम्भावनाएं सदैव बनी रहती हैं।

प्रस्तावना : 15 अगस्त, 1947 को ब्रिटिश सत्ता के अन्त हो जाने पर भारतीय रियासतों के लिए भौगोलिक सामीप्य के आधार पर भारत अथवा पाकिस्तान में से किसी भी देश के साथ विलय करने का कार्य सरल हो गया, परन्तु जम्मू एवं कश्मीर रियासत ने अपने को कठिन परिस्थितियों में पाया। भारत सरकार ने कश्मीर के राजा हरीसिंह पर अपने राज्य को भारत में विलय करने के लिए किसी प्रकार का दबाव नहीं डाला। लार्ड माउन्टबैटन द्वारा यह कहला दिया गया कि यदि वे अपने राज्य का विलय पाकिस्तान में करना चाहते हों तो ऐसा करने के लिए स्वतंत्र हैं। जून, 1947 में माउन्टबैटन ने राजा हरीसिंह को यह राय दी कि वे अपने राज्य को भारत अथवा पाकिस्तान किसी में मिला दें तथा ऐसा करने के लिए वे जनमत संग्रह करा सकते हैं। राजा हरीसिंह ने अपने यहाँ की जनता के हितों को ध्यान में रखते हुए यह निर्णय लिया कि फिलहाल अपने राज्य का विलय दोनों देशों में से किसी के साथ नहीं करेगें, उन्होनें कश्मीर को स्वतंत्र रखने हेतु अपनी इच्छा व्यक्त की।

महाराजा ने इस प्रकार का समझौता पाकिस्तान के साथ कर भी लिया, परन्तु जब भारत के साथ इसी प्रकार का समझौता करने के लिए विचार–विमर्श कर रहे थे, तो उसी समय पाकिस्तान ने समझौते का उल्लंघन करके इस रियासत पर आर्थिक दबाव डालना प्रारम्भ कर दिया। पाकिस्तान पेट्रोल, नमक, चीनी, कपड़ा तथा अन्य उपयोगी वस्तुओं की आपूर्ति में भारी कटौती कर दी तथा आर्थिक नाकेबन्दी को और भी तेज कर दिया। कश्मीर के पुंछ इलाके ने वस्तुतः अलग होने की तैयारी कर ली, जिसका पता पाकिस्तान को भी चल गया। सितम्बर, 1947 से ही इस राज्य की 450 मील लम्बी सीमा रेखा पर पाकिस्तानी क्षेत्र से प्रतिदिन अनेकों बार सशस्त्र हमले किए जाने लगे, पाकिस्तान ने सियालकोट से जम्मू तक की रेल सेवा बन्द कर दी।

** शोधार्थी (राजनीति विज्ञान), अवधेश प्रताप सिंह विवविद्यालय, रीवा, म. प्र.*

** * प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान), शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रीवा, म.प्र.*

ऐतिहासिक स्थिति : प्रारम्भ में जम्मू कश्मीर का विलय कश्मीर के महाराजा हरीसिंह द्वारा भारत व पाकिस्तान के साथ नहीं किया गया। कश्मीर के महाराजा हरी सिंह दोनों देशों के साथ यथा स्थिति बनाये रखने के इच्छुक थे। ब्रिटिश सरकार ने 3 जून, 1947 को भारतीय उप–महाद्वीप में स्वतंत्रता की मांग को स्वीकार किया।

उस समय भारत एवं पाकिस्तान के साथ 565 रियासतों को भी स्वतंत्र घोषित कर दिया गया। सन् 1947 के ''भारतीय स्वतंत्रता एक्ट'' ने इन राज्यों को यह छूट दे दी कि वे भारत अथवा पाकिस्तान के साथ अपना विलय कर सकते हैं। 14 अगस्त, 1947 की मध्यरात्रि के पश्चात भारत के स्वतंत्र होने के साथ–साथ केन्द्रीय सरकार पर राष्ट्र की सुरक्षा का भार स्वतः आ गया। दूसरी ओर 14 अगस्त, 1947 को पाकिस्तान अस्तित्व में आ गया।[1] भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में अपनी आस्था प्रकट की तथा इसी संस्था के माध्यम से विश्व में चिरस्थायी शांति एवं सुरक्षा को स्थापित करने तथा इसे और अधिक सुदृढ़ करने की नीति को भी अपनाया।

दोनों देशों के बीच केवल भारतीय प्रदेश तथा उसकी जनसंख्या का ही बँटवारा नहीं हुआ, अपितु सशस्त्र सेनाओं का भी बँटवारा किया गया। सीमा आयोग का गठन किया गया तथा लार्ड रैडक्लीफ को इसका अध्यक्ष बनाया गया। इस कमीशन के एक निर्णय ने भारत को कश्मीर में प्रवेश का अधिकार दे दिया। भारत एवं पाकिस्तान दोनों देशों के जातीय उपद्रवों के बाद के पुनर्निमाण एवं आन्तरिक सुरक्षा से जुड़ी वृहद् समस्याओं का प्रादुर्भाव हुआ। सीमा के उस पार पाकिस्तान के सुसज्जित हमलावरों ने कश्मीर राज्य पर आक्रमण कर दिया, परिणामस्वरूप भारतीय सेनाओं को इस राज्य की प्रतिरक्षा के लिए दौड़ लगानी पड़ी, जो भारत के साथ कश्मीर राज्य के विलय पश्चात किया गया। सन् 1948 के अंत तक अनेक समस्याओं पर विजय प्राप्त कर ली गयी।

20 अक्टूबर, 1947 को पाकिस्तान के मुजाहिदों द्वारा कश्मीर पर वृहद स्तर पर आक्रमण कर दिया गया। मुख्य हमलावर 200 से 300 के कॉलमों में विभक्त थे। इनकी संख्या 5000 से अधिक थी। इन मुजाहिदों का नेतृत्व अवकाश पर रहने वाले नियमित पाकिस्तानी सैन्य अधिकारी, अफसर कर रहे थे, ये कश्मीर की भूमि से भलीभाँति परिचित थे। दूसरी ओर रियासत की सेनाओं को सम्पूर्ण सीमा पर फैला दिया गया, जिसके कारण वे कहीं भी शक्ति को प्रदर्शित करने की स्थिति में नहीं आ सके। इन हमलावरों ने 24 अक्टूबर तक बारामूला पर अधिकार कर लिया, यह कस्बा श्रीनगर से केवल 35 मील दूर बसा है। पाकिस्तान के सैन्य अधिकारियों ने 26 अक्टूबर तक श्रीनगर पर आक्रमण करके उसे अपने अधिकार में कर लेने की योजना बना ली। रियासत की सेना अपर्याप्त थी तथा उसकी शक्ति भगोड़े एवं विश्वासघाती मुसलमान सैनिकों को निकाल देने के कारण काफी क्षीण हो गई थी, इस कारण राजा हरीसिंह ने 24 अक्टूबर को भारत से सहायता करने की अपील की, महाराजा के इस अपील के पश्चात् राजनीतिक एवं सैन्य गतिविधियां तेज हो गई।[2]

गवर्नर जनरल माउन्टबैटन ने यह शर्त रखी कि भारत की सेनाएँ उसी दशा में कश्मीर में प्रवेश कर सकती हैं, जबकि उस राज्य का विलय भारत में कर दिया जाए। वाइसराय ने इस बात पर भी बल दिया कि यह विलय जनमत संग्रह पर ही आधारित होना चाहिए, ताकि हमलावरों को खदेड़ने के पश्चात् वहाँ की जनता की राय ली जा सके। नेहरू तथा अन्य भारतीय मंत्रियों (रक्षा समिति के सदस्यों) ने इस शर्त को सहर्ष स्वीकार कर लिया, कश्मीर के महाराजा ने भी माउण्टबैटन की शर्तों को तुरन्त स्वीकार कर लिया। उन्होंने 26 अक्ब्टूर की रात्रि में विलय–पत्र पर हस्ताक्षर कर दिया, इस विलय पत्र को वी.पी. मेनन तुरन्त दिल्ली ले आए तथा भारत सरकार के रक्षा विभाग को सौंप दिया गया। भारत सरकार ने शेख अब्दुल्ला की उपस्थिति में ही कश्मीर में भारतीय सेना को भेजने का निर्णय लिया। 27 अक्टूबर, 1947 को प्रातः सिक्ख रेजीमेंट की एक पैदल बटालियन को, जिसमें लगभग 350 सैनिक थे, वायु सेना के वायुयानों द्वारा श्रीनगर भेजा गया, यह कार्य इतनी तेजी से हुआ कि लार्ड माउन्टबैटन भी चकित रह गये।

उक्त समय के अंग्रेज सेनाध्यक्षों ने भारत सरकार को भावी खतरों से आगाह कर दिया था, तब नेहरू जी ने कहा था कि सैन्य हस्तक्षेप का कोई अन्य विकल्प और भी खतरनाक साबित होगा क्योंकि इससे श्रीनगर में कत्लेआम प्रारंभ हो जाएगा तथा सम्पूर्ण भारत में वृहद स्तर पर जातीय नरसंहार का सिलसिला प्रारम्भ हो जाएगा। नेहरू ने यह भी कहा कि महाराजा द्वारा विलय–प्रपत्र पर हस्ताक्षर कर देने के पश्चात अब भारत सरकार का यह नैतिक एवं संवैधानिक दायित्व हो जाता है कि वह कश्मीर राज्य की सीमाओं की रक्षा करे। 27 अक्टूबर को बिना किसी पूर्व निर्धारित योजना के भारतीय थल सेना की यूनिटें एवं भारतीय वायु सेना ने सैन्य कार्यवाहियां प्रारम्भ

कर दीं। सिक्ख बटालियन के सैनिक गुडगांव (हरियाणा) से सीधे श्रीनगर भेजे गए, सौभाग्य से उस समय तक श्रीनगर पर हमलावरों का अधिकार नहीं हो पाया था, नवम्बर के प्रथम सप्ताह में थल सेना की यूनिटों ने प्रमुख मार्गों तथा बारामूला से उरी तक जाने वाली सड़क पर प्रत्याक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। भारतीय थल सेना की यूनिटों ने 14 नवम्बर तक उरी पर अधिकार कर लिया। अतः श्रीनगर में 26 अक्टूबर, 1947 को ईद का पर्व मनाने के जिन्ना साहब के मनसूबों पर पानी फिर गया।

जिन्ना को जब यह ज्ञात हुआ कि जम्मू एवं कश्मीर राज्य का विलय भारत में कर दिया गया है तथा भारतीय थल सेना की यूनिट वायुयान द्वारा श्रीनगर भेजी जा रही है, तो उस समय उन्होंने अपने कमाण्डर–इन–चीफ ग्रेसी को कश्मीर में पाकिस्तानी सैनिकों को भेजने का आदेश दिया, परन्तु जनरल ने सर्वोच्च कमाण्डर के निर्देशों के अभाव में ऐसा करने से मना कर दिया। 28 अक्टूबर को फील्ड मार्शल आचिनलेक ने गवर्नर–जनरल मोहम्मद अली जिन्ना को सूचित किया कि यदि पाकिस्तान की नियमित सेनाएं कश्मीर में भेजी गई, जो कि अब भारत का अभिन्न अंग बन चुका है, तो पूर्व समझौतों के अनुसार ब्रिटिश अफसर पाकिस्तान की सेना से हटा लिए जाएंगे, इसके उपरान्त जिन्ना ने खुले आम पाकिस्तानी सैनिकों को भारतीय सीमा के अन्दर मार्च नहीं कराया, परन्तु उनकी सेना के संसाधनों का उपयोग कश्मीर पर आक्रमण करने के लिए निरन्तर किया जाता रहा।

पाकिस्तान ने भारत पर यह आरोप लगाया कि जिस द्रुतगति से भारतीय सेनाओं को वायुयान द्वारा श्रीनगर भेजा गया, उससे यह बात सिद्ध हो जाती है कि सब कुछ पूर्व नियोजित था, जिसमें महाराजा हरिसिंह द्वारा भारत में विलय की कहानी भी सम्मिलित है, परन्तु वी0 पी0 मेनन ने अपनी पुस्तक में यह स्पष्ट कर दिया है कि भारतीय सेना ने ब्रिटिश चीफ–ऑफ–स्टाफ को सर्वप्रथम 24 अक्टूबर को यह सूचना मिली कि मुजाहिदों ने मुजफ्फराबाद पर 22 अक्टूबर को अधिकार कर लिया है तथा इसी से उन्हें आक्रमण का ज्ञान हुआ, इस तिथि से पूर्व कश्मीर में भारतीय सेनाओं को भेजने के लिए न तो किसी योजना का निर्माण किया गया और न ही उस पर विचार–विमर्श किया गया।

पाकिस्तान ने मई, 1948 मे यह स्वीकार कर लिया कि उसकी नियमित सेनाएं भारतीय आक्रमण से उत्पन्न खतरों का सामना करने के लिए लगाई गई थीं। पाकिस्तानी सेना ने अपनी आक्रमणात्मक कार्यवाहियां गर्मियों में प्रारंभ की। इन कार्यवाहियों का लक्ष्य भारतीय सेनाओं को तितर–बितर करना तथा अधिक से अधिक क्षेत्र पर अधिकार करना था। दो अन्य क्षेत्रों में अर्थात कारगिल सेक्टर तथा जोजीला दर्रा के समीप लड़ाई भड़क उठी, ये लड़ाइयां छुट–पुट होती रहीं, इस बीच महाराजा हरीसिंह को अपदस्थ कर दिया गया।

भारत 3 दिसम्बर, 1948 को इस विवाद को संयुक्त राष्ट्र संघ में इस आशा के साथ ले गया कि पाकिस्तान को आक्रमणकारी घोषित कर दिया जाएगा। परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय संस्था ने इस तरह रुख कभी नहीं अपनाया और भारत कश्मीर तथा उसकी विशिष्ट समस्याओं के साथ जूझता रहा। 20 फरवरी 1948 को सुरक्षा परिषद ने कश्मीर मामले को सुलझाने के लिए तीन सदस्यों का एक आयोग स्थापित किया, 21 अप्रैल को इस आयोग में और दो सदस्य बढ़ा दिए गए। 21 अप्रैल, 1948 को सुरक्षा परिषद ने अपने दूसरे प्रस्ताव में भारतीय सैनिक और कबाइली आक्रमणकारियों को एक विशेष फार्मूला के अन्तर्गत पीछे हटने के लिए कहा ताकि एक मिली–जुली आंतरिक सरकार की स्थापना की जा सके। परन्तु इसे लागू नहीं किया जा सका। आयोग के साथ पाकिस्तान तथा भारत की सरकारों का लम्बा पत्र–व्यवहार भी चला, अन्त में दोनों देश 13 दिसम्बर, 1948 को युद्ध विराम के लिए राजी हो गए। फलतः जनवरी, 1949 में कश्मीर से युद्ध विराम लागू कर दिया गया। जो देखने पर एक क्रान्ति के समान ही था। ये दोनों देश एक रक्त रंजित परिस्थिति में गर्भ से उत्पन्न हुये थे।[3]

कश्मीर से सम्बन्धित राजनीतिक युद्ध अनवरत चलता रहा है, जो घातक भी रहा है। यह युद्ध अग्रलिखित दो प्रमुख मुद्दों को लेकर सन् 1947 से चलाया जा रहा है, प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के परिप्रेक्ष्य में, (विशेष रूप से संयुक्त राष्ट्र संघ में) तथा द्वितीय कश्मीर के दोनों भागों में छिपे तौर पर चलाई जा रही राजनीति के परिप्रेक्ष्य में यह संघर्ष भ्रमित करने वाले प्रचार पर ही आधारित रहा है। इसने मुख्य समस्या को और अधिक जटिल बना दिया है। पाकिस्तान सन् 1947–48 की अपनी सैन्य भूल को छिपाने के लिए कश्मीर के प्रश्न पर विश्व के जनमत को अपने पक्ष में करने का भरपूर प्रयास करता रहा है। इस हेतु वह तोड़फोड़, आतंक तथा राजनीतिक दांव–पेंच का भी सहारा लेता रहा है। कश्मीर के प्रश्न को लेकर तथा सुरक्षा की भावना से ग्रसित होकर पाकिस्तान, अमेरिका

एवं साम्यवादी गुट से सहायता प्राप्त करने में सफल रहा है। पाकिस्तान की इस नीति को दृष्टि में रखते हुए भारत ने भी कश्मीर को पूर्ण रूप से राजनीतिक तरीके से विलय करने का प्रयास किया, जिसका उद्देश्य इस क्षेत्र पर पाकिस्तान के दावे को हमेशा के लिए समाप्त कर देना है। पाकिस्तान ने यह आशा छोड़ दी है कि संयुक्त राष्ट्र संघ उसे कश्मीर को कभी वापस दिला सकेगा। संयुक्त राष्ट्र संघ एवं अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति ने इस क्षेत्र पर अपना प्रभाव अवश्य डाला, परन्तु ये कभी निर्णायक सिद्ध नहीं हो सके। प्रारंभ में दोनों पक्षों ने राश्ट्रीय सुरक्षा को विवाद का मुख्य मुद्दा बना लिया, जिसको बाद के वर्षों में और भी तेज कर दिया गया। दोनों देशों ने यह घोषणा भी की है कि वे संयुक्त राष्ट्र संघ के निर्देश एवं सलाह को मानने को तैयार हैं, परन्तु ये अपने हितों के ही अनुरूप होनी चाहिए। सुरक्षा के इस तर्क को उस समय तक काटना सम्भव नहीं है जब तक कि वैधानिकता का ढांचा यथावत कायम है।

सन् 1947 से सन् 1953 तक के समय को प्रथम चरण के अन्तर्गत सम्मिलित किया जा सकता है। यह वह समय था, जब नेहरू जी जनमत संग्रह की बात बड़े जोर–शोर से करते थे। उन्होंने इस सन्दर्भ में कई सुझाव भी दिए, परन्तु नेहरू जी द्वारा किए गए इन प्रयासों पर पाकिस्तान ने पानी फेर दिया, क्योंकि वह जनमत संग्रह से पूर्व हड़पे गए तथाकथित ''आजाद कश्मीर'' नामक क्षेत्र से अपनी सेनाएं हटाने को तैयार नहीं था। सन् 1953 के उत्तरार्द्ध में द्वितीय चरण के अन्तर्गत कश्मीर राज्य के अन्दर की राजनीतिक घटनाओं के परिणामस्वरूप नई दिल्ली का नियंत्रण और भी बढ़ गया। सन् 1954 में संयुक्त राज्य अमेरिका तथा पाकिस्तान के बीच की गई सन्धि ने वस्तुतः आग में घी डालने का ही कार्य किया। 6 फरवरी, 1954 को कश्मीर की संविधान सभा ने भारत में इस राज्य के विलय का अनुमोदन कर दिया। 14 मई, 1954 को भारत के राष्ट्रपति ने अनुच्छेद 370 की कानूनी व्यवस्थाओं को ध्यान में रखते हुए राजाज्ञा प्रसारित करके कश्मीर को भारतीय संघ का एक अभिन्न अंग बना दिया। 19 नवम्बर, 1956 को राज्य के संविधान का प्रारुप तैयार किया गया तथा इसे स्वीकार भी कर लिया गया। इस प्रकार कश्मीर को भारत का अविछिन्न भाग बना दिया गया। 26 जनवरी, 1957 को भारत ने इस राज्य के विलय को कानूनी रूप दे दिया और ''एक्ट'' को अटल बना दिया गया। तीन वर्ष बाद 20 जनवरी, 1960 को यह राज्य भारत के सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में भी आ गया। अतः सुरक्षा की दृष्टि से कश्मीर का क्षेत्र अब दोनों विरोधी देशों के लिए अति महत्व का क्षेत्र बन गया है।

कश्मीर घाटी में जबसे आतंकवाद पर सीमित तौर पर काबू पा लिया गया है, अलगाववादियों को अपना अस्तित्व खतरे में नजर आने लगा है। अलगाववादी भली–भाँति जान गए हैं कि भाड़े के आतंकवादियों में भारतीय सुरक्षाबलों का सामना करने हेतु सक्षमता नहीं है। पाकिस्तान लगातार छद्म युद्ध लड़ रहा है तथा नये–नये तरीके भारत से लड़ने हेतु तलाश रहा है, जिसमें पत्थरबाजी एक नया फार्मूला उभरकर सामने आया है, इसमें पैसे देकर नवयुवकों एवं असामाजिक तत्वों से पत्थरबाजी कराई जाती है। कष्मीर में पत्थरबाज और कोई नहीं वरन् कष्मीर के नवयुवक ही हैं, जिनका अलगाववादियों और वहां के राजनेताओं से मोह भंग हो गया है। ये पत्थरबाज वास्तव में आई.एस.आई. के पेड एजेंट बन गए हैं। ये अब उसके इशारे पर ही सुरक्षा बलों और पुलिस पर पेट्रोल बम एवं हथगोले फेंकते हैं। सुरक्षा बलों ने इन पत्थरबाजों पर काबू पा लिया है। जम्मू–कश्मीर में शान्ति बहाली की पूर्ण संभावना के साथ भारत सरकार का प्रयास जारी है। भारत सरकार ने जम्मू कश्मीर के विकास हेतु अरबों–खरबों रुपये खर्च कर रही है, परन्तु भ्रष्टाचार, कुशासन और कुप्रबन्ध के कारण वहां की सामान्य जनता लाभान्वित नहीं हो पा रही है।

सन् 1958 में सशस्त्र बल विशेषाधिकार अधिनियम के तहत कश्मीर में सेना को विशेषाधिकार दिए गए हैं। वहाँ की राज्य सरकार एवं कुछ एक दल इन विशेषाधिकारों में संशोधन करने अथवा इन्हें हटा लेने की पैरवी कर रहे हैं, जिसका विरोध सेनाध्यक्षों ने भी किया है। कश्मीर में सेना आबादी वाले इलाकों में नहीं तैनात की गई है। वह तो सीमाओं पर लगाई गई है। सेना को हटाए जाने का विरोध उस क्षेत्र की जनता ने भी किया है क्योंकि इससे उन्हें सुरक्षा का अहसास होता है। सीमाई इलाकों में तो सेना ने राहत, चिकित्सा, शिक्षा, पुनर्वास एवं विकास आदि से जुड़े कई कार्यक्रम चलाए हैं। इन क्षेत्रों में स्थानीय जनता के साथ उनके अच्छे सम्बन्ध हैं। सेना को हटाने का आंदोलन अलगाववादियों एंव आतंकियों के पिट्ठुओं ने की है।

कश्मीर घाटी में हिंसक प्रदर्शनों पर नियंत्रण हेतु राज्य सरकार को पूरे क्षेत्र को छोटे–छोटे टुकड़ों में बांट कर लोगों की उचित माँगों को ईमानदारी के साथ हल करने का प्रयास करना चाहिए। प्रशासन एवं स्थानीय राजनेताओं

को आम जनता से संवाद स्थापित करने का भरपूर प्रयास करना चाहिए। जिन कट्टर अलगाववादियों ने जन आंदोलन का नेतृत्व करने की चष्टा की है, उनके साथ कड़ाई से पेश आना चाहिए। ये मुट्ठीभर अलगाववादियों ने कश्मीरियत की बहुलवादी धारणा को पृष्ठभूमि में धकेल दिया है।

कश्मीर में 2008 में हुये चुनावों को शरणार्थियों के संयुक्त राष्ट्र उच्चायुक्त द्वारा आम तौर पर उचित माना गया। आतंकवादियों द्वारा मतदान का बहिष्कार करने की धमकी के बावजूद भी लोगों ने भारी मात्रा में मतदान किया और भारत समर्थक जम्मू एवं कश्मीर नेशनल कान्फ्रेंस पार्टी को राज्य में सरकार बनाने के लिये चुना। इस चुनाव में हुये उच्च मतदान को इस रूप में देखा गया कि कश्मीर के लोग शांति और सद्भाव चाहते हैं।

कश्मीर समस्या के मुख्य स्वरूप : वैसे तो कश्मीर समस्याओं से भरा पड़ा है परन्तु मुख्य रूप से कश्मीर की निम्न समस्यायें हैं : 1. भारत की छवि खराब करने के लिये पाकिस्तान और पाक अधिकृत कश्मीर से प्रिंट और इलेक्ट्रानिक मीडिया के माध्यम से दुष्प्रचार करना। 2. सीमा पार से आतंकवादियों को घुसपैठ करने की सुविधा प्रदान करवाना और भारतीय सुरक्षा बलों को आतंकवादियों के विरुद्ध लड़ाई में लगातार उलझाये रखना। 3. राज्य की धर्म निरपेक्ष नींव पर हमला करना और घाटी से हिन्दुओं का पलायन सुनिश्चित करने के लिये कट्टरपंथी इस्लामी गतिविधियों का समर्थन करना।[4]

कश्मीर समस्या को हल करने के लिये अभी तक किये गये राजनीतिक प्रयास : भारत सरकार द्वारा कश्मीर समस्या को हल करने के लिये अभी तक निम्न उपाय किये गये : विश्व की अनन्त समस्याओं का समाधान बंदूक की गोलियों और तलवारों के बल पर नहीं बल्कि आमने सामने बैठकर बातचीत से होता है इस सिद्वान्त की पुष्टि के उदाहरणों से इतिहास भरा पड़ा है।[5] जिसके आधार पर भारत सरकार द्वारा अन्य राज्यों पर किया जा रहा प्रति व्यक्ति केन्द्रीय अनुदान 1,137 रुपए है, जबकि कश्मीर को 8,092 रुपए की दर से अनुदान मिलता है। इसके बावजूद चरमपंथियों को भारत सरकार से शिकायत ही रहती है। भारत को कश्मीर से पलायन पर रोक लगानी ही होगी, नहीं तो कश्मीर में अलगाववाद पर काबू पाना आसान नहीं होगा।[6] कश्मीर समस्या को हल करने के उद्देश्य से मोदी सरकार द्वारा 2019 में कश्मीर में अनुच्छेद 370 में आंशिक परिवर्तन कर कश्मीर व लद्दाख को स्वतंत्र राज्य घोषित किया गया है।

उपसंहार : भारत एवं पाकिस्तान के बीच सीधी बातचीत के दौरान अनेक मुद्दे उठाए गए, परन्तु विवाद का प्रमुख मुद्दा पाकिस्तान द्वारा ''आजाद कश्मीर'' को एक सशस्त्र तथा स्थिर राज्य बना देने पर बल दिए जाने का ही था। उसी के बाद भारत ने यह तर्क दिया कि तथाकथित ''आजाद कश्मीर'' से पाकिस्तान की सेनाओं के न हटने के ही कारण संयुक्त राष्ट्र संघ का प्रस्ताव अब निष्प्रभावी हो गया है, क्योंकि जनमत संग्रह के लिए यह एक आवश्यक शर्त थी। दूसरी ओर पाकिस्तान ने यह तर्क दिया कि पूर्व निर्धारित तरीके से सेनाओं को विभिन्न चरणों में हटाने के लिए प्रबन्धों को अमल में नहीं लाया गया। पाकिस्तान की नजर में सेनाओं को हटा लेने से उसकी आंतरिक ख्याति को क्षति पहुंचेगी। गम्भीरता से मंथन किया जावे, तो कहा जा सकता है कि मूल तत्व यह है कि दोनों राष्ट्रों के मध्य अविश्वास है। यदि इसे समूल दूर कर दिया जावे तो कश्मीर समस्या एक गौण स्थान प्राप्त कर लेगी और यदि नहीं किया जा सका, तो यह समस्या ज्यों की त्यों बनी रहेगी। भारत हमेशा इस बात पर बल देता रहा है कि दोनों देशों से सम्बन्धित सभी समस्याओं को एक साथ सुलझाने का प्रयास किया जावे, परन्तु पाकिस्तान हमेशा यही कहता रहता है कि वह कश्मीर की समस्या को एक अलग प्रश्न के रूप में ही लेता है।

संदर्भ–सूची

1 मूमिन बुरहानुद्दीन, भारत पाक सम्बन्ध, प्रिंट वैल जयपुर, पृ. 44

2 श्रीवास्तव, जे.एम. एवं सिन्हा, हर्ष कुमार, राष्ट्रीय सुरक्षा, ए.एस.आर. पब्लिकेशन्स, लखनऊ, पृ. 213

3 खान, यास्मीन, विभाजन, भारत और पाकिस्तान का उदय, पेगुंइन बुक्स गुड़गाँव हरियाणा, पृ. 225

4 कुमार, अशोक एवं विपुल, भारत की आंतरिक सुरक्षा मुख्य चुनौतियां, एम.सी.ग्रा हिल एजुकेशन इं.प्रा.लि. पृ. 40, 41

5 सिंह, अशोक कुमार, 21वीं सदी में भारत का सुरक्षा दर्शन, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज, पृ. 99

6 श्रीवास्तव, जे.एम. एवं सिन्हा, हर्ष कुमार, राष्ट्रीय सुरक्षा, ए.एस.आर. पब्लिकेशन्स, लखनऊ, पृ. 221

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Pol. Science : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 525-532

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

समावेशी विकास एवं वैध पहचान का संकट : वोट बैंक की राजनीति

*डॉ. सुमित्रा देवी शर्मा**

समावेशी विकास, विकास की ऐसी संकल्पना है, जिसमें सभी वर्गों की सहभागिता होती है। समावेशी विकास हाशिए पर पड़े हुए सभी बहिष्कृत समूहों के विकास की प्रक्रिया को सुनिश्चत करता है। **संयुक्त राष्ट्र विकास d k Øe (UNDP) के अनुसार,** ''बहुत से लोगों को उनके लिंग, धर्म, जाति, विकलांगता या गरीबी, वैध पहचान का अभाव के आधार पर विकास से बाहर रखा गया है। इस तरह के बहिष्कार का प्रभाव दुनियाभर में इन वर्गों के साथ असमानता के स्तर को बढ़ाता है। सभी समूहों का अवसरों के सृजन में योगदान तक तब नहीं हो सकता जब तक विकास को प्रभावी ढंग से लागू न किया जाये व विकास के लाभ का हिस्सा और धरातल की संस्थाओं में निर्णय लेने में उनको शामिल न किया जाये।[1] समावेशी विकास का लक्ष्य मतभेदों को समायोजित करने और मूल्य विविधता को समाप्त करने के लिए एक समावेशी समाज को प्राप्त करना है।

समावेशी विकास के कार्यान्वयन के लिए आवश्यक है सभी निर्बल वर्गों को प्रासंगिक विकास परियोजनाओं और कार्यक्रमों में शामिल किया जाना सुनिश्चित करना। समावेशी विकास की एक प्रक्रिया मजबूती से अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार मानकों पर आधारित और मानव अधिकार के प्रचार और संरक्षण पर ध्यान केन्द्रित करने के रूप में मानव विकास के ढांचे के संदर्भ में समझा, विकास के लिए एक अधिकार आधारित दृष्टिकोण है।

समावेशी विकास वास्तव में[2] वैश्विक स्तर पर **पीछे कोई नहीं** (No one behind) रहने के स्तर पर ''समावेशी विकास वास्तव में'' का आह्वान किया जाता है। जिसका अर्थ है देशों एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सबसे कमजोर लोगों का विकास की प्रक्रिया में समान समावेश। हाशिए पर पड़े हुए समुहों की विभिन्न श्रेणियों जैसे–प्रवासियों, शरणार्थियों, विकलांगों, स्थानीय लोग एवं भविष्य की पीढ़ी आदि को इसमें शामिल करने के लिए पहचान की गई है।

''समावेशी विकास वास्तव में'' के पाँच प्रमुख सिद्धान्त हैं–

- विकास के लिए सभी को अवसरों में शामिल करना। यह शिक्षा एवं रोजगार के अवसरों को बढ़ाने के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। नागरिक सुविधाएँ सार्वजनिक रूप से प्रदान करने के लिए अभिगम जैसे कि जल, ऊर्जा, परिवहन, स्वास्थ्य एवं सुरक्षा के लिए आधारिक संरचना और जो इन सुविधाओं/अवसरों तक नहीं पहुँच पाते, उनके लिए सुरक्षा तंत्र।
- विकास की प्रक्रिया में सभी का ज्ञान सम्मिलित करना। (जैसे समावेशी ज्ञान, स्थानीय एवं सामुदायिक ज्ञान और विद्वतापूर्ण ज्ञान जो समावेशी विकास पर केन्द्रित हो)।
- विकास की प्रक्रिया में सभी का वचनबद्ध होना (राजनीति, आर्थिक, सामाजिक, पर्यावरणीय और सांस्कृतिक–प्रशासनिक प्रक्रिया में)।

* *असिस्टेंट प्रोफेसर (लोक प्रशासन), प्रभा देवी मेमोरियल महाविद्यालय, आमेर, जयपुर*

- अवसरों और कार्य प्रक्रिया से सबसे कमजोर लाभ की मदद करना, लक्षित क्षमता निर्माण करके, और
- हाशिए पर पड़े हुए समुदाय के लिए सुरक्षा के स्तर को बढ़ाना। इसका अर्थ यह सुनिश्चित करता है कि वे अपने प्राकृतिक संसाधनों के परम्परागत तरीकों को त्यागना नहीं चाहते। वे निर्भर है, जैसे कि जंगलों, भूमि, जल, मछली एवं अन्य संसाधनों पर (गुणवत्ता एवं मात्रा के संदर्भ में), और यह कि वे अधिकतर वैश्विक परिवर्तन के प्रभावों को उजागर नहीं कर रहे हैं।

एशियन डेवलपमेंट बैंक के अनुसार[3] ''यह समावेशी विकास है जब समाज के सभी लोग इसमें भाग लेते हैं और उनकी व्यक्तिगत परिस्थितियों की परवाह किये बिना समान रूप से वृद्धि प्रक्रिया में योगदान देते हैं। इस तरह समावेशी विकास जोर देता है कि विकास के द्वारा बनाये गये आर्थिक अवसर सभी के लिए उपलब्ध हो, विशेष रूप से बहिष्कृत, हाशिए पर पड़े हुए लोगों के लिए।

वैध पहचान आयाम[4] **(Legal Identity Dimension)**—एशियन डेवलपमेंट बैंक (ADB अध्ययन 2007) ने उपलब्ध कराया कि **वैध पहचान** समावेशी विकास का एक मुख्य आयाम है। जैसे कि यह सार्वजनिक सेवाओं से लाभ और अवसरों तक पहुँचने के लिए निहितार्थ है विशेषतया सबसे कमजोर समुदायों के लिए। **वैध पहचान** मनुष्य के वैध/कानूनी व्यक्तित्व को दर्शाता है जो कि अदालतों और कानून प्रवर्तन एजेंसियों के रूप में राज्यों के संस्थानों तक पहुँचने के द्वारा उल्लंघन के लिए अधिकार या माँग—निवारण लागू करने के लिए संरक्षण की कानूनी व्यवस्था का आनंद लेने के लिए व्यक्तियों को अनुमति देता है। वैध पहचान के प्रमाण/साक्ष्य सरकार द्वारा जारी और मान्यता प्राप्त दस्तावेजों से मिलकर बनते हैं जैसे कि जन्म प्रमाण पत्र या अन्य दूसरे दस्तावेज व्यक्ति की उम्र, स्तर और/या कानूनी सम्बन्ध के लिए अनुप्रमाणित दस्तावेज। अध्ययन में पाया गया कि सामान्य में जन्म दस्तावेज या वैध पहचान मध्यवर्ती है और प्रक्रिया में अंतिम लक्ष्य नहीं हो पाये हैं। यह महत्त्वपूर्ण सार्वजनिक सेवाओं तक पहुँचने के लिए एकमात्र आधार बन जाना चाहिए।

समावेशी विकास इसलिए सभी हाशिए/बहिष्कृत समूहों को विकास की प्रक्रिया में शामिल करने की प्रक्रिया है। सामान्य रूप में दुनिया और विशेष रूप में भारत के लिए ''समावेशी'' दृष्टिकोण एक नई वस्तु नहीं है। न्यायपरस्ता के साथ विकास के दृष्टिकोण का आजादी के बाद से भारत में पालन किया गया है।

भारत देश समावेशी विकास के युग में प्रवेश कर चुका है। जिसका ध्येय सभी लोगों का विकास करना है चाहे वह प्रवासी, शरणार्थियों, अल्पसंख्यक, बहिष्कृत, हाशिए पर पड़े हुए लोगों को समाज की मुख्य धारा में लाने का हो या उनकी पहचान को वैध दस्तावेजों के रूप में बदलने का। स्वतंत्रता के बाद भारत देश को न जाने कितनी चुनौतियों का सामना करना पड़ा। स्वतंत्रता के समय से ही वैध पहचान का संकट एक बहुत बड़ी चुनौति बनी हुई है। नागरिकों की वैध पहचान के लिए सरकार द्वारा कई दस्तावेज बनवाये जाते हैं ताकि विकास की मुख्य धारा से इन्हें सीधे जोड़ा जाये। वैध पहचान/प्रमाण पत्र यह सिद्ध करते हैं कि यह व्यक्ति भारत का नागरिक है। इन प्रमाण पत्रों में और भी मुख्य बातें होती हैं जो किसी व्यक्ति के बारे में उसकी पहचान प्रकट करती है। भारत देश के सभी व्यक्तियों को गर्व होना चाहिए कि उनकी वैध पहचान के दस्तावेज बनाने के लिए सरकारों ने समय—समय पर कार्य किया है और कर रही है ताकि देश के सभी नागरिक मुख्य धारा से जुड़ सके।

भारत में वर्तमान सरकार द्वारा पहचान के संकट से उभरने के लिए नागरिकता (संशोधन) अधिनियम, 2019, राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर को लागू किये जाने की व्यवस्था की जा रही है। यह सभी नागरिकता (संशोधन) अधिनियम, 2019, राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर किसी न किसी रूप में लोगों को पहचान के संकट से उभरने के मुख्य आयाम ही तो है। जो लोगों की वैध पहचान की दृढ़ता से पैरवी करते हैं। आजादी के बाद से अभी तक भी, हाशिए पर पड़े हुये लोगों की वैध पहचान की समुचित रूप से व्यवस्था नहीं हो पाई, वर्तमान सरकार द्वारा इस कृत्य से न केवल, हाशिए पर पड़े हुए लोगों को वैध पहचान मिलेगी बल्कि उन्हें समाज की मुख्य धारा से भी जुड़ने का मौका मिलेगा।

एनपीआर, सीएए और एनआरसी का संक्षिप्त में उल्लेख[5]

दायरे में कौन हर रहवासी पाकिस्तान, अफगानिस्तान, बांग्लादेश से आए अल्पसंख्यक शरणार्थी भारत के नागरिक मकसद सरकारी योजनाओं में इस्तेमाल करने के लिए हर रहवासी का डेटाबेस बनेगा 3 देशों से आए हिन्दू, ईसाई, सिक्ख, पारसी, जैन और बौद्ध शरणार्थियों को नागरिकता मिलेगी घुसपैठियों की पहचान होगी परिभाषा जो 6 महीने से किसी पते पर रहा हो, अगले 6 महीने भी रहने वाला होऐसे अल्पसंख्यक शरणार्थी जो 5 साल पहले भारत आये हो जिनके पास पहचान के वैध दस्तावेज, वे इस देश के नागरिक क्या नहीं होगा नागरिकता नहीं देगा, न राष्ट्रीयता छीनेगा पड़ोसी देशों के गैर–अल्पसंख्यक शरणार्थियों को नागरिकता नहीं देता नागरिकता की अंतिम सूची में जो जगह नहीं बना पाए, वे नागरिक नहीं कहलाएंगे उठते सवाल आधार नम्बर और जनगणना के बावजूद एनपीआर क्यों मुस्लिमों का जिक्र क्यों नहीं? क्या हर वो व्यक्ति घुसपैठियां, जिसके पास दस्तावेज नहीं सरकार के जवाब कोई डुप्लीकेशन नहीं है, उद्देश्य अलग–अलग हैतीनों पड़ोसी देशों में मुस्लिम अल्पसंख्यक नहीं हैं, इसलिए उनका जिक्र नहीं दस्तावेज न होना संभव नहीं, फिर भी दावे आपत्ति के लिए ट्रिब्यूनल बनेंगे।

नागरिकता (संशोधन) अधिनियम 2019[6] (Citizenship (Amendment), Act 2019)

भारत की संसद द्वारा पारित एक अधिनियम है जिसके द्वारा सन् 1955 के नागरिकता कानून को संशोधित करके यह व्यवस्था की गई है कि 31 दिसम्बर सन् 2014 के पहले पाकिस्तान, बांग्लादेश और अफगानिस्तान से भारत आए हिन्दू, बौद्ध, सिक्ख, जैन, पारसी एवं ईसाई को भारत की नागरिकता प्रदान की जा सकेगी। इस विधेयक में भारतीय नागरिकता प्रदान करने के लिए आवश्यक 11 वर्ष तक भारत में रहने की शर्त में भी ढील देते हुए इस अवधि को केवल 5 वर्ष तक भारत में रहने की शर्त के रूप में बदल दिया गया है।

नागरिकता संशोधन का तर्कहीन विरोध[7]

नागरिकता कानून में संशोधन को लेकर देश में एक राजनीतिक विरोध का माहौल पैदा कर दिया गया है। भारत में नागरिकता कानून 1955 में लागू किया गया था जिसमें धारा–2(बी) के तहत 'अवैध अप्रवासी' शब्द की परिभाशा इन शब्दों में दी गई है– वह विदेशी, जो पासपोर्ट या अन्य आवश्यक यात्रा दस्तावेजों आदि के बिना भारत में प्रवेश करता है। इसके साथ–साथ वह विदेशी, जो बेशक वैध कानूनी दस्तावेजों के साथ भारत में प्रवेश करे परन्तु निर्धारित समय सीमा के बाद भी भारत में ही रहता रहे। इसी प्रकार नागरिकता कानून की धारा–3 जन्म पर आधारित नागरिकता को भी परिभाषित करती है। नागरिकता का विस्तार वर्ष 2004 के नागरिकता संशोधन कानून के द्वारा भी किया गया था। इसी प्रकार 1985, 1992 तथा 2005 में भी नागरिकता कानून के कुछ प्रावधानों में संशोधन किए गये थे।

हर देश को शरणार्थी और घुसपैठिये में अंतर समझना चाहिए। शरणार्थी को शरण देना हर देश का मानवीय कर्तव्य है। विश्व में लगभग 100 से अधिक ईसाई देश है और उनसे अधिक बौद्ध देश हैं। परन्तु किसी भी देश का ध्यान पाकिस्तान के ईसाई और बौद्धों को शरण देने की ओर नहीं गया। भारत ने हिन्दुओं और सिक्खों के साथ–साथ बौद्ध, ईसाई और पारसी अल्पसंख्यकों को भी नागरिकता की सुविधा का विस्तार किया है तो इसे मानवता का उदाहरण समझना चाहिए, राजनीति नहीं।

राजनीतिक विरोध का एक बिन्दू यह भी है कि यह संशोधन भेदभावपूर्ण है, क्योंकि इन तीनों देशों के मुस्लिम नागरिकों पर इसे क्यों नहीं लागू किया गया। इसका उत्तर स्पष्ट है कि यह तीनों देश भारत की तरह धर्मनिरपेक्ष नहीं है। बल्कि तीनों घोषित मुस्लिम देश हैं। दूसरा विरोधी तर्क यह है कि भारत के संविधान में इस पर आधारित

भेदभाव की अनुमति नहीं दी गई है। भारत का संविधान भारतीय नागरिकों को ही मूल अधिकार प्रदान करता है। इसलिए समानता का यह मूल अधिकार पाकिस्तान, अफगानिस्तान और बांग्लादेश जैसे मुस्लिम देशों के नागरिकों को देना भारत सरकार की जिम्मेदारी नहीं है। इसलिए इस कानून का विरोध केवल दिखावे का राजनीतिक विरोध है, जिसमें तर्कशीलता और विवेक का पूरी तरह अभाव है।

राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर[8] **(National Population Register)**–राष्ट्रीय जनंसख्या रजिस्टर (NPR) सभी भारतीय निवासियों की पहचान का एक डेटाबेस है। ये डेटाबेस भारत के रजिस्ट्रार जनरल और जनगणना आयुक्त द्वारा मैनेज किया जाता है। अप्रैल से सितम्बर 2020 के बीच असम को छोड़कर देशभर में राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर यानि एनपीआर तैयार किया जायेगा। जनगणना 2021 के लिए जब घरों की पहचान होगी, तभी घर–घर जाकर एनपीआर भी तैयार कर लिया जाएगा।

एनपीआर का अर्थ–एनपीआर का अर्थ है, नेशनल पॉपुलेशन रजिस्टर या राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर। यह देश के सामान्य रहवासियों का रजिस्टर होता है। इस रजिस्टर में नाम दर्ज करवाना हर रहवासी के लिए जरूरी है। एनपीआर को स्थानीय स्तर पर तैयार किया जाता है। यहां स्थानीय स्तर के मायने गांव, कस्बे, उप–जिले, जिले, राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर तैयार होने वाले डेटाबेस से हैं।

क्या एनपीआर पहली बार लाया जा रहा है?–नहीं। यह तीसरा मौका होगा, जब एनपीआर के तहत जानकारी जुटाई जाएगी। यूपीए की सरकार आने के बाद नागरिकता कानून 1955 में संशोधन किया गया और एनपीआर के प्रावधान जोड़े गए। अब केवल इसे अपडेट किया जा रहा है। 2011 की जनगणना के लिए 2010 में घर–घर जाने के दौरान ही एनपीआर के लिए जानकारी इकट्ठा की गई थी। इस डेटा को 2015 में घर–घर सर्वे कर फिर अपडेट किया गया था।

एनपीआर कब तैयार होगा–राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर अप्रैल से सितम्बर 2020 के बीच असम को छोड़कर सभी राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों में तैयार किया जाएगा। इसकी अधिसूचना अगस्त में ही जारी हो चुकी है। असम को इसलिए बाहर रखा गया है क्योंकि वहाँ नेशनल रजिस्टर ऑफ सिटीजन तैयार किया गया है।

जब सभी एनपीआर में रजिस्टर हो सकते हैं तो इसका उद्देश्य क्या है?–

- **जो कानून में लिखा है** : रजिस्ट्रार जनरल और भारत के जनगणना आयुक्त के निर्देशन में राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर तैयार किया जाता है। इसका मकसद देश के हर सामान्य रहवासी का डेटाबेस तैयार करना है।

- **जो सरकार ने बताया** : गृहमंत्री अमित शाह ने कहा कि एनपीआर की जरूरत इसलिए है क्योंकि हर 10 साल में अन्तर्राज्यीय स्तर पर उथल–पुथल होती है। एक राज्य के लोग रोजी–रोटी के लिए दूसरे राज्य में जाकर बस जाते हैं। ऐसे में किस क्षेत्र में कितने लोगों के लिए किस तरह की योजनाएं पहुंचानी है, इसका आधार एनपीआर से तैयार होता है।

राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर (National Register of Citizens Bill)[9]–राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर भारत सरकार द्वारा निर्मित एक रजिस्टर है जिसमें उन भारतीय नागरिकों के नाम है जो असम के वास्तविक (वैध) नागरिक हैं। इसमें जो लोग असम में ''बांग्लादेश बनने के पहले (25 मार्च, 1971 के पहले) आए है, केवल उन्हें ही भारत का नागरिक माना जाएगा।'' असम भारत का पहला ऐसा राज्य है जिसके पास राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर है।

- **एनआरसी का उद्देश्य**[10] –राष्ट्रीय नागरिकता रजिस्टर का उद्देश्य यह है कि असम के नागरिकों का दावा है कि बांग्लादेशी प्रवासियों ने उनके अधिकारों को लूट लिया है और वे राज्य में हो रहे अपराधिक गतिविधियों में शामिल है। इसलिए इन शरणार्थियों को उनके देश भेज दिया जाना चाहिए। असम में एनआरसी अपडेट करने का मूल उद्देश्य वहां जो घुसपैठिय हैं, विदेशी नागरिक है और जो भारतीय नागरिक है उनमें पहचान करना है, और घुसपैठियों को बाहर निकालना है। एनआरसी केवल असम में लागू हुआ है और ये भी सुप्रीम कोर्ट के दिशा–निर्देश के बाद लागू हुआ है। एनआरसी पूरे देश में लागू नहीं हुआ है जबकि सीएए पूरे देश में लागू हुआ है। एनआरसी का विरोध लगभग असम में रहने वाले सभी धर्मों के लोग कर रहे हैं।

- **प्रधानमंत्री ने कहा पूरे देश में लागू नहीं होगा एनआरसी**[11] –महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री और शिवसेना प्रमुख उद्धव ठाकरे ने प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी से मुलाकत के बाद कहा कि सीएए, एनपीआर से मुसलमानों समेत किसी नागरिक को खतरा नहीं है। उन्होंने कहा कि मोदी ने एनआरसी को पूरे देश में लागू नहीं करने की बात उनसे कहीं।

नागरिकता संशोधन कानून, राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर और राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर का बहुत से लोगों द्वारा विरोध प्रदर्शन किया जा रहा है। देश के कई इलाकों में विरोध प्रदर्शन देखने को मिल रहा है।

सीएए के विरोध–समर्थन में दिल्ली में हिंसा[12]–दिल्ली के जाफराबाद के मौजपुर में रविवार (23 फरवरी 2020) को सीएए विरोधी और समर्थकों में हुए पथराव ने सोमवार 24 फरवरी, 2020 को विकराल रूप धारण कर लिया। 24 फरवरी, 2020 को हुई हिंसा में एक पुलिसकर्मी समेत चार लोगों की मौत हो गई। उत्तर–पूर्वी दिल्ली के 10 क्षेत्रों में अनिश्चितकालीन कर्फ्यू लगा दिया गया। उपद्रवियों ने जाफराबाद स्थित पेट्रोल पंप पर आग लगा दी व कई दुकान–मकान और कई वाहन फूंके।

- **शाहीन बाग : रिपोर्ट सुप्रीम कोर्ट में पेश**[13] –दिल्ली के शाहीन बाग में सीएए के खिलाफ प्रदर्शन कर रहे लोगों से बातचीत करने के लिए नियुक्त वार्त्ताकारों ने 24 फरवरी, 2020 को सुप्रीम कोर्ट में सीलबंद लिफाफे में रिपोर्ट पेश की।

- **दिल्ली हिंसा**–दिल्ली के जाफराबाद के मौजपुर में 24 फरवरी, 2020 को सीएए के विरोध–समर्थन में हुई हिंसा में मौत के आंकड़े 2 मार्च, 2020 तक 45 तक पहुंच गये। न जाने कितने लोगों ने अपनों को खो दिया। हिंसा, दहशत और पलायन के बाद अब बात सियासत पर आ गई। सीएए के विरोध में कांग्रेस और कई विपक्षी दलों के सदस्य 31 जनवरी 2020 को संसद के बजट सत्र की शुरूआत के राष्ट्रपति के अभिभाषण के दौरान बाहों पर काली पट्टी बांधकर केन्द्रीय कक्ष पहुंचे थे।

27 फरवरी, 2020 को सोनिया गांधी की अगुवाई में कांग्रेस प्रतिनिधिमण्डल राष्ट्रपति से मिला। उन्होंने हिंसा के दोषियों पर कार्रवाई और प्रभावित लोगों को राहत देने के लिए दखल देने की मांग की। कांग्रेस ने केन्द्र सरकार को राजधर्म निभाने की सलाह दी। राष्ट्रपति को ज्ञापन देने के बाद कांग्रेस नेताओं ने राष्ट्रपति भवन से केन्द्रीय गृहमंत्रालय तक सांकेतिक शांति मार्च किया। दिल्ली हिंसा को लेकर राष्ट्रपति से मुलाकत के बाद पूर्व प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह की ओर से भारतीय जनता पार्टी को दिए गए राजधर्म की सीख पर पार्टी ने जोरदार पलटवार किया। केन्द्रीय कानून मंत्री रविशंकर प्रसाद ने सोनिया गांधी व प्रियंका गांधी पर लोगों को उत्तेजित करने का आरोप लगाते हुए कहा कि कांग्रेस हमें राजधर्म पर भाषण न दे। आर–पार की लड़ाई का बयान देने वाले राजधर्म के आइने में चेहरा देखें। कांग्रेस का इतिहास वोट बैंक की राजनीति के लिए अधिकारों का दमन करने व बात से पलटने का रहा है।

नागरिकता ''संशोधन'' अधिनियम के विरोध में वोट बैंक की राजनीति के लिए लोगों को उकसाया व उग्र किया गया जिसका नतीजा निकला मासूम लोगों की मौत जो अब तक 45 का आंकड़ा पार कर चुकी है और न जाने कितना आंकडे पार करेगी। सीएए के विरोध–समर्थन में हुई दिल्ली हिंसा में कई माँओं ने अपने पुत्र, कई बहनों ने अपने भाईयों, कई मासूम बच्चों ने अपने माता–पिता को खो दिया। यह सभी तथ्य यह दर्शाते हैं कि इन सब की मार एक आम जनता को ही सहनी पड़ी। लोगों की आंखों में अपनों को खोने का दर्द का हिसाब कौन देगा? हिंसा में मारे गए परिवार के सदस्यों के शव के लिए जीबीटी अस्पताल की मोर्चरी के बाहर सभी धर्मों के लोग इंतजार कर रहे थे। लेकिन उस समय ना कोई मुसलमान था और ना कोई हिन्दू। उस समय था तो वो इंसान जो अपनों को खोने के दर्द से कहरा रहा था। शवों में लापता परिजनों को तलाश रहे लोग, शवगृह के बाहर इंतजार करते लोग हिन्दू–मुसलमान नहीं थे वो थे, अपनों को खोने वाले लाचार–बेबस इंसान जो समझ ही नहीं पाये कि यह क्या हो गया? कैसे कुछ ही घंटों में सब कुछ बर्बाद हो गया क्योंकि यह काम तो हिन्दू–मुसलमान का नहीं था। हिन्दू पड़ोसी ने मुसलमान को बचाया, मुसलमान पड़ोसी ने हिन्दू को, हिन्दू मंदिरों तक, मुस्लिम मस्जिदों तक को हम दोनों ने बचाया तो फिर यह कौन थे? जो हमारे नाम पर दंगा भी कर गये हमें बर्बाद भी कर गये और हम समझ भी नहीं पाये। जब जल रही थी दिल्ली, तब दिखी धार्मिक एकता–चांद बाग में रहने वाले मोहन सिंह

तोमर ने बताया कि किस तरह हिंसा वाले दिन वहां रहने वाले मुसलमान भाईयों ने मंदिर तोड़ने से बचाया। तोमर ने बताया कि यहां 17 प्रतिशत मुस्लिम और 30 प्रतिशत हिन्दू हैं और सभी बड़े प्यार से रहते आए हैं। हमें एक–दूसरे से कोई तकलीफ नहीं है। सभी धर्मों के लोग एक–दूसरे पड़ोसियों की मदद करने में लगे थे क्योंकि उस समय हिन्दू–मुस्लिम के नाम पर भड़काने वाला, बेवकूफ बनाने वाला कोई वहां न था। ना ही कोई राजनीतिक वोट बैंक की रोटियां सेकने वाला। दिल्ली की हिंसा देख आजादी की लड़ाई देखने वाले जग्गेरीलाल बेहद दुःखी हैं। उनका कहना है कि दंगों में अपने ही देश के लोगों को मरते देख आंखों में आंसू आ जाते हैं। पत्रिका से बातचीत करते वह बेहद भावुके हुए और कहा कि कभी अपने ही लोगों को लंबरदार बनाकर अंग्रेज भी अत्याचार करवाते थे। आज इस भूमिका में कुछ नेता और समाज के कुछ लोग आ गए हैं।

नागरिकता संशोधन बिल, राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर हमें विकासशील व्यवस्था से विकसित व्यवस्था की ओर ले जाने की व्यवस्था है। हर कार्य, प्रक्रिया व व्यवस्था के प्रति हमेशा लोगों की क्रिया–प्रतिक्रिया होती है और होनी भी चाहिए ताकि एक पुख्ता व्यवस्था का निर्माण हो सके किन्तु उसका कभी राजनीतिक लाभ के लिए दुष्प्रचार नहीं किया जाना चाहिए। जिस नागरिकता संशोधन बिल का आज विरोध किया जा रहा है वह आज के परिप्रेक्ष्य में सही नहीं है। लोगों को भड़काया जा रहा है। समुदाय विशेष को उग्र किया जा रहा है उन्हें कहा जा रहा है कि वो अपनी मौजूदगी के सबूत नहीं दे पायेंगे तो उन्हें देश से बाहर का रास्ता दिखा दिया जायेगा। क्या हमारे देश के लोग इतने कमजोर है कि वो अपनी मौजूदगी के सबूत नहीं दे सकते हैं। विरोधियों द्वारा कहा जाता है कि जो पीढ़ियां 500 वर्षों से यहां रह रही है उनके पास मौजूदगी के सबूत नहीं है बेचारे वो लोग कहां से सबूत लायेंगे। वोट बैंक की राजनीति ने हमारी जनता को फिर से बेचारी साबित कर दिया अब वक्त आ गया है कि हमारे देश की जनता यह बताये कि हम बेचारी नहीं हैं हम अपने देश के विकास के योगदान में अपना थोड़ा बहुत योगदान अवश्य दे सकते हैं। तकलीफें तो बापू ने भी झेली थी वो भी संभ्रात परिवार से थे वो चाहते तो अपना जीवन आनन्दमय, बिना तकलीफदेय बिता सकते थे किन्तु उन्होंने अपने देश की आजादी, इसके विकास के लिए बहुत कुछ सोच रखा था जिसकी वजह से ना जाने उन्होंने कितनी तकलीफें, कितने अत्याचार सहे होंगे।

बापू ने इस देश को कुर्सी पर बैठकर आजाद नहीं करवाया। बापू ने इस देश को आजाद करवाया अंग्रेजों के अत्याचार से लड़ते हुए, जेल में रातें बिताते हुए तो हम जिस महापुरुष की यहां अब बात करें तो हमें ग्लानि होनी चाहिए कि जिसने इतना कुछ सहा उसके देश के विकास में हम अपना जरा सा भी साथ नहीं दे सकते। जरा सी भी तकलीफ नहीं सह सकते। क्या अपने बारे में ही सोचे उन विस्थापित, शरणार्थियों, अल्पसंख्यकों, हाशिए पर पड़े हुओं के बारे में नहीं सोचे, कुछ सरकारों ने वोट बैंक के चलते अल्पसंख्यक लोगों को मुख्य फ्रंट पर कभी आने ही नहीं दिया, क्या उन्हें कभी भी मुख्य फ्रंट पर आने नहीं दिया जाये? हाशिए पर पड़े हुए, अल्पसंख्यक, बहिष्कृत लोगों को ऐसे ही जीवन जीने दे, सिर्फ अपनी वोट बैंक की राजनीति के कारण। कुछ लोग कहते हैं कि पीढ़ियां 500 साल से रह रही है। उनके पास लेकिन अपने वजूद के सबूत नहीं हैं, यह देश की कैसी विडम्बना है? इसका मतलब यह है कि आपने कभी उन्हें मुख्य फ्रंट पर आने ही नहीं दिया क्योंकि आपका वोट बैंक खत्म हो जाता। जो यहां 500 साल से रह रहे हैं माना बहुत निर्धन की भूमिका में हैं तो आपने उनके विकास के लिए क्या किया? कुछ नहीं क्या? आपने कभी उनको किसी योजना का लाभ दिलाने की कोशिश की, कभी उनके बच्चों को स्कूल भेजने की व्यवस्था की, कभी उनको सरकारी नौकरियों में आने की व्यवस्था की, कभी उनके विकास के लिए भूखण्डों का आवंटन किया, नहीं तो क्यों नहीं फ्रंट पर आने दिया?

इसका मतलब तो यह हुआ जो भी हाशिए पर पड़े हुये थे उनमें से जो लोग फ्रंट पर आये वो अपने बुते पर आये किसी भी सरकार ने उन्हें वहां आने नहीं दिया तो जब उन्हें विकास की मुख्य धारा से जोड़ा जा रहा है, समावेशी विकास की बात की जा रही है तो आप उन अबोध लोगों को उकसा रहे हैं। अब तो उन्हें आगे आने दो। कब तक वोट बैंक की राजनीति से उनका शोषण करते रहोंगे। कभी उनके लिए समुचित शिक्षा की बात की, कभी उनके समुचित रोजगार की बात की, अगर यह सब होता तो आज नागरिकता संशोधन बिल पर इतना जोर नहीं आने दिया जाता। जो लोग बहुत सालों से यहां रह रहे हैं उनमें से कुछ लोगों ने जमीनें खरीदी होगी, हॉस्पिटलों में कभी अपना इलाज करवाया होगा, बैंक अकाउंट खोले होंगे, किसी भी सरकारी योजना का लाभ

उठाया होगा। तब भी तो अपनी पहचान के सबूत दिये होंगे। तो क्या हम अपने देश के विकास के लिए अपने सबूत नहीं दे सकते? क्या हम थोड़ी सी तकलीफ सहन नहीं कर सकते? देश के हर नागरिक से देश की आत्मा आशा करती हैं कि तुम आगे आओ, आगे बढ़ो बताओ कि मैं यह हूँ, मैं हूँ, अब मैं खुद का विकास करूंगा, देश में आगे बढ़ूंगा और लोगों में आगे बढ़ने की सोच विकसित करूंगा। मैं उन्हें मेरे लोगों को पीछे नहीं धकेलूंगा, मेरे समुदाय का पहचान पत्र बनवाऊंगा और क्यों ना बनवाऊ, यह मेरा देश है, बापू का देश है, वोट बैंक की राजनीति के कारण मेरे ही लोगों का शोषण करने वालों के साथ नहीं, अपने देश के साथ खड़ा होऊंगा। जो वोट बैंक की राजनीति कर रहे हैं वो तो न 70 साल पहले इन लोगों को आगे आने दे रहे थे और ना ही अब। क्यों? मैं क्यों नहीं बनवा सकता अपना पहचान पत्र? क्यों डरता हूं मैं? कौन–सा चोर हैं मेरे अन्दर? जब यह सब नहीं तो क्यों ना मैं भी मुख्य धारा से जुडुँ। अब वक्त आ गया है कि मैं जुडुँगा और अपने लोगां को जोडुँगा भी। अब यही वक्त है यही समय है मुझे आगे आने का। मुझे कभी आगे आने ही नहीं दिया गया हमेशा पीछे ही धकेला गया। हमेशा डरा कर, हमेशा मुझे डराता गया जमाना ऐसा लगने लगा अपराधी हूं मैं। मैं आज तक भी अपनी पहचान का प्रमाण पत्र नहीं बना पाया, मैं आज तक भी अपने बच्चों को स्कूल नहीं भेज पाया। क्या जिन्दगी भर इसी ग्लानी से मरता रहा हूं? कितने सालों तक डरता रहा। लेकिन कभी यह सोचा क्या यह सब मैंने किया। कभी मुझको किसी ने आगे ही नहीं आने दिया। मुझे कब तक यह लोग आगे नहीं आने देंगे मेरे बच्चों का भविष्य कैसे सुधरेगा? क्या मैं इन लोगों की वोट बैंक की राजनीति में अपने बच्चों, अपने देश का भविष्य कभी नहीं सुधारू। मैं ताउम्र इतनी तकलीफ सहता रहा हूं और आगे भी क्या सहता रहूं? अब वक्त है इस तकलीफ को जड़ से निकाल फेंकने का। हां इस तकलीफ को उखाड़ने में मुझे तकलीफ होंगी दर्द सहना होगा, अपने ही लोगों से दुष्कार मिलेगा लेकिन कोई बात नहीं जिस तरह इस देश को आजाद कराने में गांधी जी ने अत्याचार सहन किये थे, मैं भी कुछ तकलीफ सह लूंगा तो क्या? आज किस्सा ही खत्म करता हूं। मैं हाशिए से मुख्य फ्रंट की तैयारी करता हूं। मैं भी योगदान दूंगा, नागरिकता संशोधन बिल, राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर को कारगर करने में, मैं भी लोगों को बताऊंगा कि मैं भी हूं। मुझे असहाय और शोषित, बेचारा, लाचार और गुमनाम जी के नहीं रहना। आज किस्सा ही खत्म करता हूं बता देता हूं कि मैं भी इसी भारत माँ का लाडला हूं इस तकलीफ को झेलूंगा। गांधी जी ने देश को आजाद करवाया था और आज मैं अपने लोगों को पहचान दिलाऊंगा। यह विचार है एक सच्चे देश भक्त के, यह विचार है उस हर व्यक्ति के जो अपने आप अपने लोगों को मुख्य धारा में लाना चाहता है। हमें ऐसे लोगों को, ऐसे विचारों को प्रोत्साहित करना चाहिए उन्हें आगे आकर बढ़ाना चाहिए, ना कि उनका शोषण करना चाहिए। मत धकेलों उन मासूमों को अब तो उनको आगे आने दो। अब तो उन्हें हक से जीने दो। कुछ लोगों कि सरकारें रहते हुए तो उनकी पहचान, उनकी शिक्षा उनके विकास के लिए कुछ नहीं किया जब देश विकास की ओर बढ़ रहा है अब तो उनको आगे आने दो, आगे आने दो मत धकेलों मासूमों को। आज लोग बैंक में भी जाते हैं तो अपने अकाउंट के लिए पहचान पत्र देते हैं तो क्या कभी लोगों ने बैंक अकाउंट नहीं खोले। खोले हैं और शोक से अपनी पहचान भी बताई है क्योंकि यहां उनको लाभ है लेकिन देश को बताने में तकलीफ। यह कैसी तकलीफ है क्यों नहीं हम अपने देश की इस सोच का सम्मान कर सकते? क्यों नहीं बता सकते, बताना होगा, हमें अपने लिए नहीं अपने उन भाईयों के लिए जो इस देश के होते हुए ना जाने कितनी तकलीफों से गुजरे हैं।

निष्कर्षतः वैध पहचान का संकट मानवीय विकास एवं विकास की मुख्य धारा में लोगों को जोड़ने में एक बाधक तत्व है। भारत सरकार द्वारा हाशिए पर पड़े हुए लोगों को पहचान दिलाने, उन्हें सामाजिक, आर्थिक विकास, योजनाओं का लाभ दिलाने के लिए सीएए, एनपीआर, आदि के द्वारा उनकी विकास प्रक्रिया में भागीदारी बढ़ाने का कार्य किया जा रहा है जो एक सराहनीय पहलु है।

कुछ सरकारों ने तो व्यक्तियों के पहचान दस्तावेज भी नहीं बनने दिए अगर यह सरकार अल्पसंख्यक, बहिष्कृत, हाशिए पर पड़े हुए लोगों को पहचान दिला रही है उन्हें फ्रंट पर लाने की तैयारी कर रही है तो इसमें राजनीति नहीं होनी चाहिए। जब भी इन लोगों के पहचान दस्तावेज की बात आती है तो या तो इन्हें डरा दिया जाता है या उग्र कर दिया जाता है कभी भी इनके पहचान दस्तावेज नहीं बनने दिये जाते और इनका पक्ष लेकर कहा जाता है कि इनके पास पहचान दस्तावेज नहीं है। इन अबोध मासूमों को ये ही डराते है कभी आगे नहीं आने देना चाहते

क्योंकि वोट बैंक की राजनीति खत्म होने का डर सताता है। इन मासूमों को कभी भी वोट बैंक की राजनीति ने आगे बढ़ने ही नहीं दिया। और जब इन्हें मुख्य धारा से जोड़ा जा रहा है तो देश को आंदोलनों–हिंसा का गढ़ बनाया जा रहा है। हम सभी भारतीय नागरिकों का कर्तव्य है कि हम हाशिए पर पड़े हुए लोगों को मुख्य फ्रंट पर लाने के लिए सरकार के इस कदम की सराहना करे ना कि नकारात्मकता फैलाये।

सन्दर्भ–सूची

1. www.undp.org/content/under/en/home/ourwork/povertyreduction/focus-areas/ focus-inclusive-development.html
2. [PDF] Sustainable Development Goals and Inclusive UNO Collections, collections.unu.edu.eserv/ ..../post2015-UNUIAS-policybrief5.pdf
3. रॉनियर, गणेश एवं कनबूर, रवि, 'इनक्लुजिव ग्रोथ एण्ड इनक्लुजिव डवलपमेंट एण्ड सिंथिसिस ऑफ एशियन डेवलपमेंट बैंक लिटरेचर'', जून 29, 2009, प्र. 39, www.kanbur-aem-cornell-edu.29, June, 2009
4. उपर्युक्त, पृ. 42
5. https://www.bhaskar.com'
6. https://hi.m.wilkipedia.org
7. राजस्थान पत्रिका, खन्ना, अविनाश राय, ''नागरिकता संशोधन का तर्कहीन विरोध, जयपुर, 22 फरवरी, 2020, पृ. जन गण मन
8. http://www.bhaskar.com
9. https://hi.m.wilkipedia.org
10. http://www.skgktricks.in
11. राजस्थान पत्रिका, ''प्रधानमंत्री ने कहा है पूरे देश में लागू नहीं होगी एनआरसीः ठाकरे'', जयपुर, 22 फरवरी, 2020, पृ. 11
12. राजस्थान पत्रिका, ''सीकर के पुलिसकर्मी समेत चार की मौत'', सीएए के विरोध–समर्थन में दिल्ली में हिंसा : दुकान–मकान और कई वाहन फूंके, 10 इलाकों में कर्फ्यू, जयपुर, 25 फरवरी, 2020, पृ. 1
13. उपर्युक्त, ''शाहीन बाग : रिपोर्ट सुप्रीम कोर्ट में पेश''

- राजस्थान पत्रिका, ''सीएए ऐतिहासिक, महात्मा गांधी के सपनों को किया पूरा : राष्ट्रपति'', विपक्ष ने किया विरोध, जयपुर, 1 फरवरी, 2020, पृ. 15
- राजस्थान पत्रिका, ''जब जल रही थी दिल्ली, तब दिखी धार्मिक एकता'', पीड़ितों के लिए केजरीवाल सरकार ने किए कई फैसले, राष्ट्रपति से मिला कांग्रेस प्रतिनिधिमण्डल, बोला केन्द्र सरकार निभाए राजधर्म, पुलिस की निष्क्रियता 1984 के दंगों जैसी, जयपुर, 28 फरवरी, 2020, पृ. 14
- राजस्थान पत्रिका, ''हिंसा, दहशत और पलायन के बाद अब सियासत'', जयपुर, 29 फरवरी, 2020, पृ. 19
- राजस्थान पत्रिका, ''दिल्ली दंगों के तार जुड़े हैं, सीमा पार से, ड्रग डीलर रहा है शाहरूख का परिवार, ताहिर के घर मौजूद थे बाहरी लोग, जानबूझकर अंकित को टारगेट किया, जयपुर, 1 मार्च, 2020, पृ. सण्डे
- राजस्थान पत्रिका, ''तीन शव मिले, शाहीन बाग में–धारा 144'', अमित शाह बोले सीएए को नहीं रोक पाएंगी ममता'', जयपुर, 2 मार्च, 2020, पृ. 1

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Pol. Science : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 533-537

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

माधवराव सदाशिव राव गोलवलकर का राजनीतिक चिन्तन

*जनमेजय मिश्र**

सारांश– हमारे कार्य के लक्ष्य का अंतिम स्वरूप हमारे समाज की पूर्ण संगठित अवस्था है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति आदर्श हिन्दू मनुष्यत्व की मूर्ति बनकर समाज के संगठित व्यक्तित्व का सजीव अंग होगा। माधवराव सदाशिव राव गोलवलकर का राजनीतिक चिन्तन साम्प्रदायिक नहीं था, वे मुस्लिम विरोधी भी नहीं थे। वे तो समान अधिकारों और धार्मिक स्वतंत्रता के प्रबल पक्षधर थे। उनका मानना था कि– सम्यक् ज्ञान का मार्ग मध्यमार्ग ही है। किन्तु उसे ठीक न पकड़ पाने पर व्यक्ति और समाज के लिए एक भयावह स्थिति उत्पन्न हो जाती है। भारत की जीवनधारा में विविधता में एकत्व का साक्षात्कार करना तथा व्यवहार करना है। सबको एक ही ढाँचे में ढालकर विविधता के सौन्दर्य की जीव मानता को नष्ट करना नहीं है। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर सब चलें, यही कामना है। वे समाज को सर्वोपरि मानते थे इसलिए उन्होंने समाज की उन्नति के लिए अपना तन–मन धन सब कुछ अर्पित कर दिया था।

प्रस्तावना–हमारा भारत महान कहते ही, भारत का निर्विशेष विराट् रूप छोटा हो जाता है, दशी भाव यह है कि भारत के हम है, एक विशाल व्यापक भाव के हम छोटे से कण है। इसमें देश तो बड़ा होता ही है, हम भी बड़प्पन से भर उठते है। देश–परदेश बहुत घूमा, विदेश में लम्बे–लम्बे अरसे तक रहा, पैरों में शनि है (ऐसा लगा कहते है, पर मुझे लगता है, शनि होते तो पंगु बनाते, पैरों में शायद पारे की तरह स्वभाव का बुध है) यात्रा बरबस होती रहती है, देश–विदेश दोनों की। इनमें कई प्रकार के अनुभव हुए, मैं तमिलभाषी हूँ, मैं कन्नड हूँ, मैं बंगाली हूँ, मैं गुजराती हूँ, मैं प्रोफेसर हूँ, मैं सम्भ्रान्त हूँ, मैं अलग हूँ, मैं वर्ग–संघर्ष के खिलाफ लड़ाई लड़ रहा हूँ, मैं जाति तोड़क हूँ, मैं यह हूँ मैं वह हूँ, मेरा निजी एकान्त है, उसमें हस्तक्षेप मानवाधिकार का हनन है।

मेरा सनातन गँवई मन कभी नहीं देखता, अतीत भी नही देखता वह वर्तमान को चाहे (चाहे जैसा भी हां, प्रीतिकर–अप्रीतिकर) केवल देखता उसका रस भी लेता है। उस समय बिसर जाता है मैं कौन हूँ, हम कौन हैं, हम भारतीय संविधान में हिन्दू, ईसाई, मुसलमान, सिख के रूप में परिभाषित है, हम अगड़े–पिछड़े के रूप में बँटे हुए हैं, हम विजेता–विजित के रूप में एक–दूसरे से आक्रान्त है। सब कुछ बिसर जाता ह वैसे ही जैसे हिमालय की शुभ्र चोटियों को निहारते समय बिसर जाता है या आकाश से गंगा की आँकी–बाँकी रेखा को देखते समय बिसर जाता है, छोटी–सी बालिका का आमोदित नृत्य देखते समय बिसर जाता है। हम क्या है, इसका उत्तर बस इतना ही मिलता है, यह सब हम है, इन सबके साथ जुड़ाव हम है इतने रिश्तों के निर्वाह हम है, हम और कुछ नहीं है, और कुछ नहीं।

हमारे कार्य के लक्ष्य का अंतिम स्वरूप हमारे समाज की पूर्ण संगठित अवस्था है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति आदर्श हिन्दू मनुष्यत्व की मूर्ति बनकर समाज के संगठित व्यक्तित्व का सजीव अंग होगा।

विषयवस्तु–हम एक ही समाज की संतान है और हमें अपने सुख–दुःख परस्पर बाँटने है। इस कारण एकात्मकभाव का अभाव ही हमारी दुर्गती का मूल कारण है। समाज के प्रति हमारा प्रेम और समर्पण ठोस रूप में प्रकट होना चाहिए। उदाहरणार्थ–हमारे समाज में अनेक लोगों को दैनिक भोजन के बिना रहना पड़ता है, क्या हम उनके प्रति संवेदनशील है? क्या हमारे मन में उनके लिए कुछ करने की इच्छा जागृत होती है? प्राचीनकाल में हमारे यहाँ 'बलिवैश्वदेव यज्ञ' होता था, जहाँ सर्वप्रथम निर्धन व भूखों को भोजन कराया जाता था, शेष सब बाद में खाते थे। आज भी हम सामाज के भूखे लोगों के लिए मुट्ठीभर अन्न निकालकर अपना भोजन कर पाते सकते है और करना भी चाहिए। यही वास्तविक 'बलि वैश्वदेव यज्ञ' होगा।

* *पी-एच.डी. (राजनीतिशास्त्र), डॉ. सम्पूर्णानन्द विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)*

भारतीय संस्कृति लोक व्यवस्था एवं जन समुदायवार के परिवर्तनों का इतिहास मात्र न होकर मूलतः सनातन योग अथवा साधना की प्रति विशिष्ट ऐतिहासिक परंपरा है। ज्ञान के क्षेत्र में इसका साध्य पराविद्या, कर्म के क्षेत्र में धर्म एवं अनुभूति के क्षेत्र में रस कहा जाता है और इस त्रिधाकरण के अनुसार एक ही मौलिक योग ज्ञानयोग, कर्मयोग एवं भक्तियोग के रूप में विभक्त हो जाता है। व्यवहारिक स्तर पर यही त्रिविध साधना बहुधा पारमार्थिक अनुसंधान को ही योग अथवा साधन कहा जाता है और शेष अवरस्तरीय अनुसंधान को व्यवहार की आख्या देकर उससे अलग समझा जाता है। वस्तुतः परमार्थ का व्यवहार से भेद संदर्भ विशेष में विचारमूलक व्यावृत्ति के रूप में ही सार्थक होता है, वह स्वयं पारमार्थिक नहीं है। उदाहरण के लिए मोक्षभागीय अनात्मव्यवर्तनात्मक विचार में चेतना को विषय–पराङ्मुख करने के लिए व्यवहार हेय पक्ष में व्यस्थित किया जाता है। किन्तु परिनिश्पन्न लक्षण ज्ञान के लिए परमार्थ और व्यवहार का भेद ही असिद्ध ठहरता है।

''यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः।।''
''न संसारस्य निर्वाणत्किचिदस्ति विशेषणम।
न निर्वाणस्य संसारात्किचिदस्ति विशेषणम्।''

यह कहा जा सकता है कि पराविद्या और योग का अध्यात्मशास्त्र से आवश्यक संबंध स्वीकार करने पर भी अपरा विद्या एवं तत्प्रतिपादित शास्त्रों का इस मूल आध्यात्मिक परंपरा से कोई संबंध नहीं ठहरता, जिसका परिणाम यह होगा कि ज्ञान एवं विज्ञान की परंपराएं अत्यन्त विभिन्न होकर विद्या और अविद्या के समान एक दूसरे की प्रतिषेधक बन जायेंगी और परमार्थ एवं व्यवहार का भेद पुनः पारमार्थिक हो जायेगा।

''यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्गन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते।।''

यही आदर्श योग सूत्रों में निर्दिष्ट है–''तारक'' सर्व विषयं सर्वथाविषमकमं चेति विवकजं।''(3,24) बौद्ध और जैन आगमों में परा विद्या को इसी सर्वज्ञता के रूप में लिया गया है। अनन्त ज्ञान की शक्ति आत्मा अथवा चित्त में स्वरूपतः विद्यमान रहती है। चित्त के विमलीयकरण के द्वारा इस सहज ज्ञानशक्ति का विकास ही ज्ञानयोग है। वस्तुतः सभी जिज्ञासा में यही प्रक्रिया न्यूनाधिक रूप में उपलब्ध होती है और इसी लिए सभी विज्ञान की पूर्व पीठिका के रूप में एक अनन्त जिज्ञासा के सूत्र में संग्रथित है। 'व्यवहारमानश्रित्य परमार्थो न देश्यते। परमार्थनागम्य निर्वाण नाधिगम्यते।।' अमृतार्थी के लिए व्यवहार उसी प्रकार आवश्यक है जैसे सलिलार्थी के लिए पात्र। जिज्ञासा की अनन्तता एवं ज्ञान की अन्तःस्थता अथवा सहजता का अभास ही ज्ञानयोग को जन्म देता है और यह क्रमशः व्यवहार की प्रतिबिम्बाकारता को स्पष्ट करता है।

इसके विपरीत आधुनिक ज्ञान–दर्शन एवं प्राकृतिक बुद्धि सीमित बाह्य विषय के प्रत्यक्ष को ही ज्ञान का आधार मानते है। इसी प्रवृत्ति के आधार पर प्राचीन शास्त्र–परम्परा को आजकल 'लौकिक' और 'धार्मिक' कहकर दो विभागों में बाँट दिया जाता है और इन दोनों से ही सर्वथा अलग होकर योग एक गुह्यपरम्परा मात्र बन जाता है। आधुनिक दृष्टि की ठीक प्रतिपक्षभूत एक प्राचीन दृष्टि भी थी जो कि इसी भेद के आधार पर संसार–त्याग का समर्थन करती थी। इस संन्यासपरक दृष्टि से लौकिक जीवन और उसका साधक ज्ञान दोनों ही हेय ठहरते थे और यह स्पष्ट ही सामाजिक अभ्युदय की विरोधक थी। पर इस प्रकार की दृष्टि वैसे ही एकान्तावलम्बिनी है जैसे कि आधुनिक भौतिकवादी दृष्टि। सम्यक् ज्ञान का मार्ग मध्यमार्ग ही है। 'प्रतिपत्सैव मध्यमा।' किन्तु उसे ठीक न पकड़ पाने पर व्यक्ति और समाज के लिए एक भयावह स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

कर्म के क्षेत्र में धर्म की साधना ही कर्मयोग है। कर्म की अहंकार मूलकता और भोगार्थकता विशोधन से कर्मयोग सम्पन्न होता है। अशोक के शब्दों में धर्म के मूल में संयम और भावशुद्धि है। इन्हीं के परिशीलन से कर्तृत्व का आन्तरिक पुनगर्ठन होता है। इस प्रतिक्रिया में कर्म का कोई विषयकृत उत्कर्षापकर्ष नहीं है। उत्कर्षापकर्ष होता है मनोयोग प्रयोजक हेतुओं की विशुद्धि के अनुसार। कर्मयोग आदर्श मानवता की साधना है जिसमें मानवीय आदर्श भोगसंचय न होकर धर्मवृद्धि है। धर्मचर्या अन्ततः विधि के मूलभूत बुद्धिनिहित सहज विवेक से प्रेरित होती है और उसके परिणामस्वरूप आचार में संयम, निःस्वार्थता, कर्तव्य निर्वाह, आत्मौपम्य का बोध एवं परोपकार आदि लक्षण

प्रकट होते है। व्यक्तिगत और सामाजिक, दोनों ही आयामों में यह साधन एक साथ अग्रसर होती है और इसी लिए धर्म एक और व्यक्ति के चारित्रिक आदर्श को सूचित करता है, दूसरी ओर आदर्श सामाजिक व्यवस्था की। धर्म के इन्ही दोनों पक्षों को धर्मशास्त्र की परम्परा में वैदिक आचार के आधार पर साधारण धर्म और वर्णाश्रम धर्म के रूप में व्यवस्थित किया गया। साधारण धर्म सभी आगमिक एवं आध्यात्मिक परम्पराओं में भी स्वीकृत हुआ। प्रवृतिमूलक कर्म को नैतिक–आध्यात्मिक प्रेरणा से जोड़ते हुए कर्मयोग के निष्कामता, समत्वयज्ञार्थकता, लोकसंग्रह, आत्मौपम्य, समर्पण आदि घटक गीता आदि अध्यात्मशास्त्रों में निरूपित है। स्वधर्म के द्वारा कर्मयोग सामाजिक कार्यप्रवाह से जुड़ जाता है। उसका आन्तरिक भावपक्ष व्यक्ति की साधना का अंग है। आचार और व्यवहार का यह भेद आध्यात्मिक और लौकिक ज्ञान के भेद के समानान्तर है। आचार का संदर्भ धर्म की शाश्वत व्यवस्था है जिसमें प्रत्यक्ष अथवा कालिक परिणाम महत्त्वपूर्ण नहीं होते। व्यवहार का संदर्भ समाज की सत्ता प्रधान ऐतिहासिक व्यवस्था होती है, 'राजा कालस्य कारणम्'। इस संदर्भ में कर्म का निर्देश जिस विद्या के द्वारा होता है, यही नीतिवाद वाच्य है। नीति अर्थ को संलक्षित कर उपर्युक्त उपायों की योजना है। राजनीतिक और आर्थिक जीवन में उपयोगिता को कर्म का दिग्दर्शक स्वीकार करना ही नीति का मौलिक सिद्धांत है। आदर्श जीवन के लिए जीविका के सामान ही धर्म के लिए अर्थ अपेक्षित होता है। 'धर्मादाक्षिप्यते ह्मार्थ।' (भागवत) इसी लिए नीति अपेक्षित होते हुए भी धर्म के विरोध में नहीं रहती, जब तक उसे स्वयं ऐकान्तिक न मान लिया जाय। जहाँ कर्मयोग आत्मोन्मुखी और प्रयोजक–प्रत्यवेक्षी होता है, नीति परिणामोन्मुख समीक्ष्यकारिता होती है। विभिन्नस्तरीय होते हुए भी नीति योग की उपकारक ही मानी जानी चाहिए। वेदोक्त ब्रह्म और क्षत्र की अनियंत्रित में यह निर्देशित है। अर्थशास्त्र, शांतिपर्व आदि में भी यही प्रतिपादित है।

ज्ञानयोग मनुष्य को प्रकृतिक विषयों को उपलब्धि से आत्मानुभूति की ओर ले जाता है और पुनः विषय–प्रपंथ की प्रतिबिम्बाकारता को पुरस्कृत कर एक अखण्ड सत्य में पर्यवसित होता है। कर्मयोग कर्तृत्य की औपाधिकता को व्यक्त करता हुआ आधिभैतिक–सामाजिक कार्यकारण श्रृंखला से नियत घटनात्मक कर्म से चेतना को भावात्मक हेतुओं के आत्मानुकूल व्यापार की ओर ले जाता है। ज्ञानयोग से प्रकृत विषयों में आग्रह के शिथिल होने पर ही भक्तियोग का विकास सम्भव होता है। आत्मिक अथवा परमात्मिक रस–रूपता की अनुभूति ही पारमार्थिक भक्तियोग है। जैसे ज्ञानयोग में सीमित विषय एक निःसीम ज्ञानके प्रतिबिम्ब बन जाते है, और कर्मयोग में प्रत्येक कर्म आत्मस्वातन्त्र्य की अभिव्यक्ति, इसी प्रकार भक्तियोग में सभी अनुभूति, रस की व्यंजक, सभी कर्म लीला के रूप बन जाते है। व्यवहारिक जीवन का इस प्रकार का रूपान्तरण कला में तात्कालिक रूप में सर्वगोचर होता है। कला मानों जादुई खिड़कियाँ खोल देती है और व्यवहार के दुर्ग में बंदी प्रकृत जन को उत्ताल भाव–सागर की एक छटा दिखा देती है। इससे स्थूलाग्रही मानस को यह भ्रम हो जाता है कि जीवन और कला नितान्त भिन्न है एवं सौन्दर्य विश्व मायिक मात्र है। मानों विश्वमात्र मायिक न हो! वस्तुतः जैसे ज्ञान का रहस्य तब तक समझ नहीं आता जब तक उसकी स्वतंत्रता नहीं समझी जाती, जब तक सब विषय ज्ञान को विशेषित करने वाले आकार मात्र नहीं समझे जाते; इसी प्रकार जब तक एक मूल महाभाव की स्वतंत्रता और सब विषयों की उस मूल महाभाव के औषाधिक भेदों के लिए मात्र प्रतीयामान आलम्बनरूपता नहीं समझी जाती तब तक रसानुभूति का रहस्य स्पष्ट नहीं हो सकता और न भक्तियोग एवं कला का सम्बन्ध ही स्पष्ट हो सकता है।

हमारे लचीले धर्म के स्वरूप की जो प्रथम नैसर्गिक विशेषता बाहरी व्यक्ति की दृष्टि में आती है, वह है पंथ एवं उपपंथों की आश्चर्यजनक विविधता। यथा–शैव, वैष्णव, वैदिक, बौद्ध, जैन, सिख, लिंगायत, आर्यसमाजी आदि। इन सभी उपासनओं के महान आचार्यों एवं प्रर्वतकों ने उपासना के विभिन्न रूपों की स्थापना हमारे लोक–मस्तिष्क की विविध योग्यताओं की अनुकुलता का ध्यान रखकर ही की है। किन्तु अंतिम निष्कर्ष के रूप में सभी ने उस एक चरम सत्य को लक्ष्य के रूप में प्राप्त करने के लिए कहा है जिसे ब्रह्म, आत्मा, शिव, ईश्वर अथवा शून्य या महाशून्य तक के विविध नामों से पुकारा जाता है। केवल चारित्र्य का आग्रह करने से चारित्र्य निर्माण नहीं होगा, उसके लिए ठोस आधार लेना पड़ेगा। भारत में प्राचीन काल से चला आनेवाला हमारा संस्कार रूप जीवन, जिसे संस्कृति कहते हैं, वहीं सामान्य अधिष्ठान है।

यह हिन्दू राष्ट्र है, इस राष्ट्र का दायित्व हिन्दू समाज पर ही है, भारत का दुनिया में सम्मान या अपमान हिन्दूओं पर निर्भर है। हिन्दू समाज का जीवन वैभवशाली होने से ही इस राष्ट्र का गौरव बढ़ाने वाला है। किसी के मन में इस विषय में कुछ भ्रांति रहने के कारण नहीं है–

1. हम हिन्दूओं ने अनन्य साधारण आत्म संपत्ति प्राप्त करना अपने जीवन का लक्ष्य निर्धारित किया है। वह मानवी जीवन का संपत्तिकोष है। इसकी हम स्वतंत्र रीति से अपने अंदर वृद्धि कर सकते हैं। चिरस्थायी सद्गुण परिपूर्ण ज्ञान और आत्मा की सर्वश्रेष्ठता ही वह संपत्ति है। यह सत्य और शाश्वत संपत्ति अपना जीवनधार है। इसलिए अन्य देशों की तुलना में श्रेष्ठता का अधिक अस्तित्व अपने देश में दिखाई देता है। अन्यत्र सर्वसामान्य जनता किसी वीर और सेनापति अथवा पराक्रमी जनता ही क्या, बड़े–बड़े वीर और राजा भी अरण्यवासी, अकिंचन (जो अपने पास फटे कपड़े का एक लत्ता तक नहीं रखता) अर्धनग्न संन्यासी की चरणधूलि शिरोधार्य करते हैं।

2. हिन्दू समाज में सबके लिए व्यवहार के एक नियम बनाये गये। नियमों का ये भेद प्राकृतिक भिन्नता के ही कारण है। तात्पर्य यह है कि हमने सबको एक ही लकड़ी से हाँकने का विधान नहीं किया। यदि जीवन में हम समान नियम लागू करें और उसके अनुसार सबको बराबर मात्रा मे भोजन दे तो कुछ बदहजमी के कारण मर जाएंगे, जबकि कुछ भूख से। अतः अपने यहाॅ क्रमानुसार विकास का विचार है। हमने मनुष्य समूहों के गुण वैशिष्ट्य के अनुसार व्यवहार का निर्देश किया है। यह उचित भी है। सारी अवस्थाओं को देखते हुए यदि मानव के पोषण के लिए उसके वैशिष्ट्य को बनाये रखकर उसका राष्ट्र के रूप में विकसित होना आवश्यक है, तो मानवता के विकास तथा कल्याण के लिए अपने राष्ट्र को उसकी सम्पूर्ण विशेषताओं तथा विविधताओं तथा विविधताओं के साथ विकसित करना भी आवश्यक है।

3. अनेकता में एकता का हमारा वैशिष्ट्य हमारे सामाजिक जीवन के भौतिक, आध्यात्मिक तथा सभी क्षेत्रों में व्यक्त हुआ है। यह उस एक दिव्य दीपक के समान है, जो चारों ओर विविध रंगों के शीशों से ढका हुआ हो। उसके भीतर का प्रकाश, दर्शक के दृष्टिकोण के अनुसार भांति–भांति के वर्णों एवं छायाओं में प्रकट होता है।

4. धर्म अथवा आध्यात्मिकता, हमारी दृष्टि में जीवन की एक व्यापक दृष्टि है, जिससे सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों को अनुप्राणित और उन्नत कर उनके बीच समन्वय की स्थापना करनी चाहिए, जिससे कि मानव जीवन अपने सभी पहलुओं में पूर्णत्व को प्राप्त करें। यह हमारे राष्ट्र तरू का जीवन–रस है, हमारी राष्ट्रीय अहिस्मता सत्ता का प्राण है।

5. हमारी संस्कृति कहती है कि 'ध्येय' (सामाजिक हित) को प्राप्त करने का 'साधन'(व्यक्ति) भी शुद्ध एवं पवित्र होने चाहिये।

6. हमारे शास्त्रों का सार यही रहा है कि 'शक्ति ही जीवन है, दुर्बलता मृत्यु है।'

देश में अनादि काल से जो समाज–जीवन रहा है, उसमें अनेक महान व्यक्तियों के विचार, गुण, तत्व, समाज–रचना के सिद्धांत तथा जीवन के छोटे–छोटे सामान्य अनुभवों से जीवन–विषयक एक स्वयं स्फूर्त स्वाभाविक दृष्टिकोण निर्माण होता है। वह सर्व साधारण दृष्टिकोण ही संस्कृति है। यह संस्कृति अपने राष्ट्र की जीवन–धारणा है, विश्व की ओर देखने की पात्रता देने वाली प्रेरणा है, विश्व की ओर देखने की पात्रता देने वाली प्रेरणा–शक्ति है, एक सूत्र से गूँथने वाला सूत्र है। भारत में आसेतु हिमाचल यह संस्कृति एक है। उससे भारतीय राष्ट्र जीवन प्रेरित हुआ है।

हम एक ही समाज की संतान है और हमें अपने सुख–दुख परस्पर बाँटने है। एकात्मक के भाव का अभाव ही हमारी दुर्गति का मूल कारण है। समाज के प्रति हमारा प्रेम और समर्पण ठोस रूप में प्रकट होना चाहिए। हमारे समाज में अनेक लोगों को दैनिक भोजन के बिना रहना पड़ता है, क्या हम उनके प्रति संवेदनशील है? क्या हमारे मन में उनके लिए कुछ करने की इच्छा जागृत होती है? प्राचीन काल में हमारे यहाँ 'बलिवैश्वदेव यज्ञ' होता था, जहाँ सर्वप्रथम निर्धन व भूखों को भोजन कराया जाता था, शेष सब बाद में खाते थे। आज भी हम समाज के भूखे लोगों के लिए मुट्ठीभर अन्न निकालकर अपना भोजन कर सकते है और करना भी चाहिए। यही वास्तविक 'बलि वैश्वदेव यज्ञ' होगा।

राष्ट्र क्या है यह ज्ञान हुए बिना राष्ट्र भक्ति पैदा नहीं होती। राष्ट्र की भावना के बिना स्वार्थ को तिलांजलि देकर राष्ट्र के लिए परिश्रम करना संभव नहीं है। इसलिए विशुद्ध राष्ट्र–भावना से परिपूर्ण, श्रद्धायुक्त तथा परिश्रमी लोगों को एक–सूत्र में गूँथना, एक प्रवृत्ति के लोगों की परंपरा निर्माण करने वाला संगठन खड़ा करना तथा इस संगठन के बल पर राष्ट्र–जीवन के सारे दोष समाप्त करने का प्रयत्न करना मूलभूत और महत्वपूर्ण कार्य है।

सबसे पहला कर्त्तव्य है जिस देश को अनन्तकाल से हमने अपनी पवित्र मातृभूमि माना है, उसके लिए ज्वलन्त–भावना का आविर्भाव। द्वितीय है साहचर्य एवं भ्रातृत्व भावना, जिसका जन्म इस अनुभूति के साथ होता है कि हम एक ही महान माता के पुत्र है। तृतीय है, राष्ट्र–जीवन की समान धारा की उत्कट चेतना जो समान संस्कृति एवं समान पैतृक दाय, समान इतिहास, समान परम्पराओं, समान आदर्शों एवं आकांक्षओं से उत्पन्न होती है जो राष्ट्र के मूल्यों की यह त्रिगुणात्मक मूर्ति एक शब्द में हिन्दू राष्ट्रीयता है जो राष्ट्र–मंदिर के निर्माण के लिए आधार बनती है।

सर्वेपि़ऽखिनः सन्तु सर्व सन्तु निरामयाः सदैव से हमारी प्रार्थना रही है। हम परमेश्वर से यही निवेदन करते है कि सब लोग सुखी और व्यधिमुक्त रहें। पश्चिमी के जगत आज के विद्वान अभी भी 'अधिकतम लोगों के अधिकतम सुख की संकल्पना से परे नहीं जा पाये हैं, पर हम भारतीयों को तो एक भी प्राणी का दुःख असहनीय है। प्राणिमात्र के चिरकल्याण के भव्य व उदात्त आदर्श को हमनें अंगीकार किया है।

प्रत्येक राष्ट्र के जीवन संगीत का एक विशिष्ट स्वर होता है। उसके साथ सुसंवाद साधने पर ही राष्ट्र की प्रगति होती है। अपने हिन्दू राष्ट्र ने भी अनादिकाल से एक विशिष्टता का रक्षण किया है। भारतीय दृष्टि से अर्थ पुरुषार्थ और काम पुरुषार्थ भौतिक सुख के पहलू है। यह मानवी जीवन के केवल उपांग है। इनसे सब परिचित भी है।

जीवन में कभी कुछ माँगना नहीं। देशभक्ति का व्यापार क्या करना? समष्टि रूप परमात्मा को राष्ट्र के रूप में सेवा के लिए सामने व्यक्त देखकर, अपनी सम्पूर्ण शक्ति और बुद्धि उसके चरणों में अपर्ण कर उसकी कृपा के ऊपर अपना जीवन चलाना है।

भारत की जीवनधारा में विविधता में एकत्व का साक्षात्कार करना तथा व्यवहार करना है। सबको एक ही ढाँचे में ढालकर विविधता के सौन्दर्य की जीवमानता को नष्ट करना नहीं है। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर सब चलें, यही कामना है।

उपसंहार–सम्पूर्ण समाज के प्रति विशुद्ध प्रेमभाव से, मन में स्वार्थ की या पारिश्रमिक की अपेक्षा नहीं रखते हुए, अपने राष्ट्र की सेवा हम करें। विशुद्ध और पवित्र राष्ट्रभक्ति के इन तेजस्वी किरणों से अपना चारित्र्य पुष्प विकसित होने दें। ऐसी अविचल और अनन्य भक्ति की आकांक्षा से उस हेतु हम प्रयत्न हो। बुद्धि और अहंकार के उस पार की अनन्य भक्ति हमारे रोम–रोम में घुली हो। विशुद्ध भक्ति का गहरा, गम्भीर और अखण्ड प्रवाह रहे। सारे लोग इसी ओर अंगुली निर्देश कर रहे हैं। इस प्रकार समग्र रूप से गुरुजी एक महापुरुष थे। दूर से देखने वाले लोग उनके बारे में गलत धारणाएँ बना लेते थे। वे साम्प्रदायिक नहीं थे, वे मुस्लिम विरोधी भी नहीं थे। वे तो समान अधिकारों और धार्मिक स्वतंत्रता के प्रबल पक्षधर थे। वे समाज को सर्वोपरि मानते थे इसलिए उन्होंने समाज की उन्नति के लिए अपना तन–मन धन सब कुछ अर्पित कर दिया था।

संदर्भ–सूची

1. डॉ. राधाकृष्णन, सर्वपल्ली, भारतीय संस्कृति कुछ विचार राजपाल एण्ड सन्स, कशमीरी गेट, दिल्ली, 1996, आमुख, पृ. 5
2. मिश्र, विद्यानिवास, स्वरूप विमर्श, भारतीय ज्ञानपीठ, 18, इन्सटीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली, 2006, पृ. 11–14
3. श्री, पतंगे रतेश, गुरुजी और सामाजिक समरसता, तारा प्रिंटिंग वर्क्स, रथयात्रा, गुरुबाग रोड, वाराणसी, 2006, पृ. 21–22
4. डॉ. पाण्डेय गोविन्द चंद्र, भारतीय परम्परा के मूल स्वर, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 23, दरियागंज, 23 नई दिल्ली, 1993, पृ. 124–129
5. मिश्र, विद्यानिवास, स्वरूप विमर्श, भारतीय ज्ञानपीठ इन्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली, 2006, पृ. 73
6. श्री पराड़कर श्रीधर, अमृतवाणी श्री गुरुजी, तारा प्रिंटिंग वर्क्स, रथयात्रा, गुरुबाग, वाराणसी, पृ. 2–3
7. डॉ. मोडक अशोक, व्यक्तिगत व राष्ट्रीय चरित्र श्री गुरुजी, तारा प्रिंटिंग वर्क्स, रथयात्रा, गुरुबाग, वाराणसी, 2006 पृ. 28–29

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Pol. Science : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 538-543

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

The Refugees Situation in South Asia

Dr. Ashima Ghosh*

According to the international definition, a refugee is a person who owing to well founded fear of being persecuted for reasons of race, religion, nationality, membership of a particular social group or political opinion, is outside the country of his nationality and unable or unwilling to avail the protection of his country.

Refugees, also leave their country for reasons of insecurity arising out of armed conflict or civil strife. No person becomes a refugee of his own volition. Thus, a refugee is different from an economic migrant; the latter seeks to improve his livelihood, a refugee to save his life. Another group known as internally displace persons (IDPs) share many characteristics with refugees who cross international borders, are not eligible for protection of international refugee law or entitled to legal guarantees and material assistance offered by the United Nations High Commission for Refugees (UNHCR).

Refugees are placed in a pathetic situation. They not only face the threat of persecution, but are also victims of desperate political, social, economic and environmental circumstance. Refugees "flea a past of persecution and suffering, and they face a future of homelessness. They are clusters of humanity left to endure the aftermath of terror : lost family members, lost possessions and lost hopes."[1]

The Refugees problem has various dimensions. It involves the question of basic human rights of the refugees. It poses the problem of their rehabilitation. It also involves solution to the economic and social pressures on the host country. It may also threaten the security of the countries that receive or send the refugees. The refugees could turn out to be a serious political risk under various circumstances that have direct bearing on the foreign policy considerations of the host country.

The 21st century's growing global interdependence signals a new era. Human rights and human development share a common vision and a common purpose – to secure the freedom, well being and dignity of all people everywhere. We find that refugees from African countries like Somalia, the Middle Eastern countries or elsewhere in South Asia share a common story of deprivation and want. They are deprived of basic human rights and amenities. Majority live in camps lacking health-care and sanitation facilities. Their children face a dark and uncertain future with little or no educational infrastructure. Unemployment and lack of livelihood forces them to low standard of living. The womenfolk face sexual harassment. Thus the refugees are a vulnerable group who have the right to live a dignified life and enjoy basic rights and freedoms. The UNHCR has been working hard to provide international protection to refugees and to seek durable solutions to their problems.

In South Asia the major cause of displacements have been the low intensity wars. Forced migration in the region has also stemmed out of official policies. This has been undertaken to achieve cultural homogeneity, to deal with political dissidents or to achieve some foreign policy objective.[2] Another pertinent angle to the refugee issue is South Asia is that of security of the countries that receive or send

* ***Associate Professor, Political Science, Ewing Christian College, University of Allahabad***

refugees. The refugees may be armed and threaten the law and order. Increasing demands on and conflict over scarce resources also threaten the internal stability. Another interesting factor is that most of the South Asian refugees are absorbed in the region. Their geographical destinations are determined mostly by physical accessibility, linguistic affinity and political support of the host country.

The partition of the Indian sub-continent in 1947 witnessed one of the largest refugee movements recoded in the world history. On the eve of the liberation war in Bangladesh over 10 million refugees came to India from East Pakistan. The Indian governments handled this crisis successfully. Though India has been a generous country in hosting refugee population, it is not a party to the 1951 UN convention on Refugees and its protocol. The Indian Parliament passed 'The protection of Human Rights Act' in 1993. The protection of Human Rights Act, 1993 defines the term "human rights" to mean, "the rights relating to life, liberty, equality and dignity of the individual, guaranteed by the constitution, or embodied in International Covenants; and enforceable by court in India"[3]

South Asia is home to over 2.5 million refugees. This poses unprecedented challenges to this part of the world. Conflicts in China, Iran, Afghanistan, Sri Lanka and other states in this region has contributed to the displaced population. Also, a large number of refugees fleeing ethnic and racial conflicts in Afghanistan – the nation with second largest population of refugees after Syria – pass through the region as they move towards Europe, with many choosing to settle in South Asia.

The refugee management process in South Asia is not uniform and there have been shifts in terms of policy framework. Two factors – humanitarian and national security are largely responsible for States' response to accept or resist or reject the refugees. Refugees may be perceived as a threat by the host country – threat to the stability of the regime in power, a threat to cultural identity and socio-economic burden. The major refugee groups in South Asia and their problems are discussed below :

The Afghan Refugees : Recent history of Afghanistan has been characterized by political strife, instability, the communist rule, the capture of power by the Talibans and the fall of the Talibans government as a result of the action of coalition forces led by United States entering Afghanistan. The Taliban was officially ousted from power on November 17, 2001. Political instability and economic dislocation have been the prime factors which have forced the people to leave the country. Most of the Pasthuns from Afghanistan have gone to settle in camps in adjoining NWEP in Pakistan. The more educated and urbanized refugees fled to Iran.

The Talibans captured Kabul on 27 September, 1996. They went on to impose strict social and cultural codes. Rights of women received a major setback. Women were barred from going to school or taking up jobs. Strict dress code was imposed and any king of laxity was brutally punished. Civil rights of the people were curbed and democratic institutions could not function.

Lakhs of Afghan people fled the country to take refuge in boarding countries of Afghanistan. Afghans seeking asylum in Europe face what UNHCR has termed as ever-growing barricade of exclusionary measures designed to keep them out. Some refugees who were forced to return to their country found it more dangerous than when they left it.

The United Nations Assistance Mission in Afghanistan documented the highest ever recorded civilian deaths. Despite this dangerous situation, the international community continues to show a callous indifference towards Afghan refugees and asylum seekers.

The Bhutanese Refugees in Nepal : Bhutanese refugees are 'Lhotshampas' ("southerners") a group of Nepali language speaking Bhutanese people. These refugees registered in refugee camps in eastern Nepal during the `1990s as Bhutanese citizens deported from Bhutan during the protest against Bhutanese state and monarch by some Lhotshampas demending decocracy and seperate state.

The genesis of the crisis can be traced in the social cultural milieu. "To a large extent this problem can be attributed to the state constructed nation building and the place of ethnic identity is such construction and mode of national integration".[4] The state constructed nation-building process was epitomized in early 1988 through cultural edict "Driglam Namzha". Which upheld the principle of 'One Nation, One People'. The Marriage Act of 1980 and the Citizenship Act of 1985 had also been promulgated with similar intentions.

The imposition of Driglam Namzha in 1988 exploded the simmering discontent into protest demonstration which is uncommon in Bhutan. Soon the Royal Bhutanese Army and Police resorted to brutal methods to terrorize the 'Lhotshampas' in general and the relatives of protestors in particular. The terror inflicted by government organs was the cause for many people to leave the country. The 'Lhotshampas' have been forced by the authorities to sign voluntary immigration forms. In the early 1990s, about 100,000 ethnic Nepalis in Bhutan were expelled or fled from the small Himalayan kingdom, leading to what Amnesty International has called "one of the most protracted and neglected refugee crisis in the world."

The Bhutanese government has stated that it is not possible to accept those refugees who do not have any government documents, who voluntarily emigrated and those who have committed criminal acts. Applying this law would mean that most Bhutanese in refugee camps could be stateless people denied of their fundamental human right of nationality.

As Nepal and Bhutan have yet to implement any agreement on repatriation, since 2008 many Bhutanese refugees have resettled in North America, Oceania and Europe under the auspices of the office of United Nations High Commissioner for Refugees. Many Lhotshampas also migrated to areas of West Bengal and Assam in India, independent of UNHCR. However, about 18,000 refugees still lived in the two remaining camps as of late 2015.

Chittagong Hill Tracts Refugees : The Chittagong Hill Tracts (CHT) is situated at the south-eastern corner of Bangladesh wedged between the Indian States of Tripura and Mizoram. It is the homeland of 12 tribal hill peoples numbering about 600,000. The largest groups, Chakma and Marma are Buddhists. After the independence of Bangladesh in 1971the Chakmas submitted a memorandum seeking autonomy for the CHT and a ban on the influx of non-hill peoples in the CHT. But the demand was rejected by the government of Bangladesh. The State sponsored migration of Bengali settlers into the CHT which disturbed the demographic composition of the CHT. Increasing number of Bengali settlers were coming into the Hill Tracts. The hill people retaliated by resorting to gorilla attacks at regular intervals but they were brutally suppressed by the Bangladesh army. The massacres of Kaukhail 1980, Dewan Bazar 1986 and Logang 1992 are the worst example of brutal atrocities of the army. This caused continuous influx of refugees from CHT into neighbouring states of India. The number of refugees living in various transit camps in South Tripura rose to nearly 70,000.

In November 1990, the Chittagong Hill Tracts Commission, an independent body of experts from countries such as Denmark, Germany and Canada went to the CHT at the invitation of the Bangladesh Government. The report clearly documents massive human rights violations in the Chittagong Hill Tracts, which constitutes Genocide. Hill people have been murdered, crippled, raped and tortured, imprisoned, deprived of their homes and means of livelihood. With the signing of a Joint Statement by Bangladesh and India in May 1993, the process of repatriation of the Chakmas to their places of origin in the CHT region of Bangladesh was set in with programmes for rehabilitation It got a major boost after the Chakma leaders and the Bangladesh government signed an accord giving the CHT region an autonomous status in November 1997. By May 1998 most of the Chakma refugees have been repatriated from the camps in Tripura.

International focus and political will of the concerned countries facilitated towards resolving the CHT refugee issue.

With the signing of a joint statement by Bangladesh and India in May 1993, the process of repartiation of the Chakmas to their places of origin in the CHT region of Bangladesh was set in with programmes of rehabilitation. It got a major boost after the Chakma leaders and the Bangladesh government signed an accord with an aim to take back the tribal refuges from India's Tripura State based on the 20-point facilities package. In accordance with the said agreement repatriation of the refugees started since March 28, 1997. By May 1998 most of the Chakma refugees have been repatriated from the camps of Tripura. Political will of the concerned Countries have facilitated resolving the CHT refugee issue to a large extent.

However, the rehabilitation process could not bring solace to large number of refugees. Many of them remained deprived of their paternal lands and free rationing benefits due to lack of coordination and execution by both the national government and the land commission.

The Rohingyas of Myanmar : The Rohingyas of Burma who are Muslim, have been persecuted in their country. They crossed over in large numbers to the nearest Bangladeshi frontiers. The large scale violations of human rights of Myanmar Muslims have caught the attention of international media.

The Rohingya people have faced decades of systematic discrimination, statelessness and targeted violence in Rakhine State in Myanmar. Entire village were burned to the ground, families were separated and killed, and women and girls were gang raped. Such persecution has forced Rohingyas to flea to neighbouring Banglagesh, Malaysia, Indonesia, Cambodia, Laos and Thailand following violent attacks in 1978, 1991-1992 and again 2016. The refugee influx has been maximum into Cox's Bazar Bangladesh which is now home to one of the world's largest refugee camp.

After the bilateral agreement between the Myanmar and Bangladesh governments and UNCHAR's Memorandum of understanding with Burma in 1993, the UNHCR was given free access to ensure voluntary repatriation multi-faceted collaborative response has gradually stabilized the situation. Refugees have access to the basics such as food and health-care but they are still extremely vulnerable, living in highly challenging circumstances, exposed to the monsoon elements and dependent on aid.

However, despite some progress, the Rohingyas remain in an extremely precarious situation. The root causes of their plight in Myanmar has not been addressed and their future is yet uncertain.

The case of the Rohingyas highlights the fact that failure to integrate minorities can lead to violations of human rights and war like situation. "The spirit of democracy has to be inclusive, embracing the principal that power must be dispersed and shared. The multiple layers of peoples' identity and loyalty to their ethnic group, their religion, their region and their state – have to be recognized and given fair play in democratic institutions –or explode into conflict."[5]

The Sri Lankan Tamil Refugees : The escalation of conflict between the Sri Lankan army and the Tamil militants have led to the influx of Sri Lankan Tamils in India. The trouble started from 1956 when the Sinhalese majority started imposing a single-language national identity. The Sri Lankan Tamils have got support from their own ethnic group in Tamil Nadu in India. It has also been alleged that they have also received arms and reinforcements from their supporters in India. The issue of Sri Lankan Tamils have direct bearing on the relations between India and Sri Lanka. Under an agreement with the Government of India, UNHCR monitors the voluntary repatriation of Tamil refugees returning to Sri Lanka. Since July 1992 over 54,000 Sri Lankan Tamils have been repatriated. In 1995 repatriation received a setback as Sri Lankan army intensified its war to recapture the LTTE bastions in north and the east. In July 1999, a well known human rights activist and lawyer, Dr. Neelan Tirchelvam was

brutally assassinated. Neelan advocated tolerance and celebration of diversity and pluralism in an environment where both the state and the people could be held accountable for their action.[6] Such incidents impede the process of finding a peaceful solution to the problem.

The recognition of the parity of the two communities – the Sinhalese majority and Tamil speaking minorities is a pre-requisite for reconstruction of Sri Lankan nation. But discrimination against the Tamils by the government in Sri Lanka is evident in many places. Two communities of Sri Lankan Tamils have been left out of the ambit of the citizenship (Amendment) Bill (CADB) : the plantation Tamils, who have roots in India and were relocated to Sri Lanka by the British as indentured labourers and the Sri Lankan Tamil refugees living in India.

There are about 59,000 Sri Lankan Tamil refugees in the 100-plus refugee camps in Tamil Nadu and nearly 30,000 outside the camps.

The population in most refugees settlements have grown, but there is no provision for an increase in housing. Rain and drought are still problems. Medical facilities are few and far away and sanitation issues are growing. There is also a massive problem of access to jobs and resources in rural camps compared to urban camps.

There is a difference of views between the older generation, who are more open to going back, and the younger generation, who have literally grown up in India and who do not want to go back.

There is also the question of facilities available back in Sri Lanka. Compared to the cities in Tamil Nadu, where some of the camps are located, both the north and the east of Sri Lanka, the places where the refugees hail from, are backward. Some of the refugees who have gone back are unhappy because they find it difficult to get access to livelihoods.

The Tibetan Refugees : Tibetan emigration has three separate stages. The first stage was in 1959 following the 14th Dalai Lama's escape to Dharmshala in India in fear of persecution from the People's Liberation Army of China. The second stage occurred in 1980s, when China partially opened Tibet to foreigners. The third stage began in 1996. The 2009 census registered about 128,000 Tibetans is exile, with the most numerous part of the community living in India, Nepal and Bhutan. However, in 2005 and 2009 there were estimated of up to 150,000 living in exile.

The Tibetans in exile have always tried to gather, international support for their cause. The Tibetans in exile at large wish for outright independence. "Grumbles have been perceptible within the exiled community, especially among the youth and intelligent against the accommodating approach of the Dalailama".[7] The Dalailama is making all efforts to get autonomous Tibet within the Chinese state but response from Beijing is far from encouraging. The most prominent organization in exile, the Tibetan Youth Congress (TYC) has not been able to organize strong native resistance to the Communist Rulers of China.

The Tibetan refugee who has settled down in Nepal and northern regions of India, have been carrying on small business activities for their livelihood. There is still a long way to go for any fruitful political solution to the Tibetan issue which would ensure the return of the Tibetan refugees to their own soil.

Conclusion : India is surrounded by countries where the living conditions are of lower standard, so it may face more refugees' entry if situation in these countries is not addressed. India has an adhoc policy on refugees. Discretionary powers are exercised by the administrative authorities in the context of different groups of refugees or individual cases. A dialogue started in 1995-96 in South Asia by an informal group of Eminent Persons discussing refugee issues for different states in the South Asian region. The Eminent Persons Group also looked into the issues of burden sharing and liabilities of the country of origin (e.g. human rights violation which cause refugee flows) could lead to sanctions,

embargo, etc. It would be useful if SAARC was formally involved in this process. At the regional level SAARC can play a positive role in formulating a regional convention on refugee management. Any solution to the refugee problem has to be holistic in its approach. The UNHCR, in collaboration with various regional agencies and institutions dedicated to refugee problems can contribute greatly towards tackling this problem.

REFERENCES

1. Fred Gallmayr, *Philosophy of East and West*, University of Hawai Press, p. 173.
2. Mahendra P. Lama, “Refugees in South Asia’, World Focus, January 1999, p. 3.
3. D. P. Khanna, *Reforming Human Rights*, pp. 111-112.
4. Smruti S. Patnaik, Bhutanese Refugees in Nepal, *World Focus*, January 1999, p. 7.
5. Human Development Report, 2000, p. 60.
6. Human Development Report, 2000, p. 61.
7. Shankar Sharan, “Tibetan Refugees in Fix”, *World Focus*, January 1999, p. 11
8. Manil Chakravarty, “Refugees and Human Rights (A Case study of Chittagong Hill Tracts) in N. Sanajaoba (ed.). *Human Rights – Principles, Practices and Abuses*. p. 200.
9. Mark O. Hatfield, “U.S. Refugee Policy and Sout-east Asia : Time for Renewed Commitment”, kis United States Committee for Refugees, World Refugee Survey, 1994. p. 28.
10. Nafees Ahmed, Options for Protecting Refugees in South Asia, *Harvard International Law Journal*, harvardilj.org
11. The Refugees Situation in South Asia and its Security Implications. Report on the IPCS Seminar held on 26th Nov. 2000.
12. www.amnesty.org
13. www.unhcr.org

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Pol. Science : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 544-546

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

भारत में सेक्युलरिज्म की अवधारणा

*डॉ. संतोष कुमार उपाध्याय**

विश्व में भारत ही ऐसा एकमात्र देश है जिसमें जिस युग युगांतर से पंथ निरपेक्षता के विचार एवं व्यवहार का विकास होता रहा। भारतीय सेकुलरिज्म की अवधारणा पश्चिम के सेकुलरिज्म से पूर्णतया भिन्न हैं। पाशा चिंतन में सेकुलरिज्म का शाब्दिक अर्थ लोकोन्मुख है। वहां पर इसका उदय मध्यकाल में पोप सत्ता बनाम राजसत्ता के मध्य संघर्ष के परिणामस्वरूप हुआ भारत मैं कभी भी हिन्दू धर्म सत्ता और राजसत्ता के मध्य संघर्ष नहीं हुआ है हिंदुत्व का मूलभूत धार्मिक सांस्कृतिक एवं दार्शनिक सिद्धांत है कि परम सत्य तथा ईश्वर तक पहुंचने के अनेक मार्ग हैं। किसी धर्म, संप्रदाय, पंथ, उप पंथ, को मानने अथवा नहीं मानना व्यक्ति का निजी मामला है जिसमें राज्य समाज व धार्मिक वर्ग को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। इस भाव को अभिव्यक्त करने में अंग्रेजी भाषा का सेकुलर पूर्णतया असमर्थ है। प्रारंभ में भारतीय संविधान में पंथ निरपेक्षता का कहीं प्रयोग नहीं हुआ फिर भी पंथ निरपेक्षता के आधारभूत विचार एवं भाव संविधान के प्रत्येक महत्वपूर्ण अनुच्छेद में पाए जाते हैं। कानूनी रूप में संविधान के उद्देश्य क्या में बयालिसवाँ संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा पंथ निरपेक्ष शब्द जोड़ा गया।[1]

संविधान के अधीन भारत पंथ निरपेक्ष राज्य है अर्थात ऐसा राज्य जो सभी धर्मों के प्रति तटस्थता और निश्पक्षता का भाव रखता है।पंथ निरपेक्ष राज इस विचार पर आधारित है राज्य का विषय केवल व्यक्ति या व्यक्ति के बीच संबंध से हैं। व्यक्ति और ईश्वर के बीच संबंध से नहीं। भारतीय संविधान के अनुच्छेद पच्चीस से अट्ठाइस तक धर्म की स्वतंत्रता से संबंधित सभी नागरिकों के मूल अधिकार के रूप में समाविष्ट करके क्रियान्वित किया गया है ये अधिकार प्रत्येक व्यक्ति को धर्म मानने, आचरण करने और प्रचार करने का अधिकार देते हैं। राज्य की ओर से और इसके साथ ही राज्य की विभिन्न संस्थाओं की ओर से सभी धर्मों के प्रति पूर्ण निष्पक्षता सुनिश्चित करते हैं। में भारत में कोई राजधर्म नहीं होगा राज्य न तो अपने कोई धर्म की स्थापना करेगा और न ही किसी विशिष्ट धर्म को विशेष सहायता देगा। धर्म तो विश्वास का विषय है। यह आवश्यक नहीं कि वह ईश्वरवादी हो भारत में सुप्रसिद्ध बौद्ध और जैन धर्म निरीश्वरवादी हैं। प्रत्येक धर्म की कुछ आस्था और सिद्धांत भी होते हैं। जिन्हें हम धर्म के अनुयायी अध्यात्म के लिए आवश्यक मानते हैं किंतु यह कहना भी उचित नहीं है कि विश्वास मात्र ही धर्म है क्योंकि न्यायालय को यह निर्णय देने का अधिकार है कि कोई विशिष्ट कर्मकांड या पूजा पाठ की मान्यता के अनुसार आवश्यक है या नहीं।[2]

पंथ निरपेक्षता शब्द भी धार्मिक है। अंग्रेजी में इसे सेकुलर कहते है जिसको अनेक अर्थों में प्रयोग भी किया जाता रहा है। सेकुलर का अर्थ लौकिक बातों से संयुक्त जो धार्मिक क्रियाकलाप से भिन्न हैं इससे भारत के राजनीति विज्ञान एवं वीर ही शिक्षकों में भ्रम उत्पन्न हुआ। हितबद्ध लोगों और दलों ने इसका लाभ उठाया इस भ्रम को उच्चतम न्यायालय के नव न्यायाधीशों की एक पीठ ने दूर करते हुए राज्य के धर्म के प्रति शत्रुभाव है अर्थात यह कि राज्य को विभिन्न धर्मों के बीच तटस्थ रहना चाहिए।[3]

अपने देश के संबंध में स्थिति यह है कि भारत देश अनेकता में एकता का आदर्श उदाहरण रहा है। हमारे संविधान निर्माता सर्व धर्म संभाव के प्रति निष्ठा रखते हैं अतः उनके पंथ निरपेक्षता के आदर्श को अपनाया गया लेकिन एक पंथ निरपेक्ष राज्य की स्थिति को पूर्ण अंशों में पंथ निरपेक्ष समाज की स्थिति को प्राप्त नहीं कर सके हैं। अभी हाल ही के वर्षों में भारतीय संविधान में धर्म पर आधारित भेदों ने अधिक तीव्र रूप धारण कर लिया।

* *सहायक प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान विभाग), रघुवीर महाविद्यालय थलोई, भिखारीपुर कला, जौनपुर, उ.प्र.*

अयोध्या में एक राजनीतिक दल चौरासी पंचकोशी यात्रा करने जाता है तो दूसरे राजनीतिक दल अपने को धर्मनिरपेक्षतावादी बता करके वोट बैंक नाम की रोटी सेंकने लगते हैं। तीसरे राजनीतिक दल की उत्तर प्रदेश में सरकार हुआ करती है। तो अध्यक्ष छावनी में तब्दील हो जाता है लेकिन जब सत्ता परिवर्तित होती है तो वही दल अयोध्या में ऐसे धार्मिक कार्यों की रूपरेखा देता है कि अयोध्या में दशहरा और दीपावली के अवसर पर ऐसे कार्यों को अंजाम दिया जाता है कि विश्व धरोहर में शामिल है। इस तरह से यदि देखा जाये तो आज इस संक्रमण काल की राजनीति में धर्म निरपेक्षता को सत्तारूढ़ दल अपने अपने हिसाब से परिभाषित किया करते हैं। क्या यही इक्कीसवीं सदी का धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र है या फिर राजनीतिक चौकड़ी का खेल बन कर रह गया है? धर्म निरपेक्ष राष्ट्र भारत को राजनैतिक दल अपने हाथों का खिलौना समझने लगे हैं। एक तरफ हमारे नेता हिन्दुत्व को सेकुलर कह करके अलग विश्लेषण करते हैं तो दूसरी तरफ इसमें राजनीतिक खेल भी शुरू हो जाता है। जाहिर सी बात है चाहे वह चौरासी कोसी यात्रा हो या फिर पंचकोशी यात्रा हो या फिर विश्व धरोहर में शामिल करवाने की बात हो यदि धार्मिक स्वतंत्रता में हस्तक्षेप होता है तो धर्म निरपेक्ष राष्ट्र भारत पर सवालिया निशान लग जाया करते हैं।[4]

क्योंकि भारतीय संविधान के मौलिक अधिकार में धर्म की स्वतंत्रता का जो अधिकार दिया गया है अपने आपमें एक बेमिसाल उदाहरण तो प्रस्तुत करता ही है चाहे हम धर्म को माने या न माने मंदिर जाएं या मस्जिद किसी के ऊपर कोई फर्क नहीं पड़ना चाहिए आज पंथनिरपेक्षता की आड़ में धार्मिक भ्रष्टाचार एवं सामाजिक बुराइयां भी जन्म लिया करती हैं। हमें धार्मिक होना चाहिए लेकिन धार्मिक कट्टरतावादी नहीं होना चाहिए क्योंकि यह न तो मानवता है और न ही कोई धार्मिक शिक्षा ही देता है। सभी धर्म एवं धार्मिक वेद संहिताएं तो वसुधैव कुटुम्बकम की शिक्षा देती हैं मानवता के उत्थान एवं कल्याण का रास्ता बताती हैं लेकिन इसके बावजूद भी हिंदुस्तान में ऐसी अनेक धर्म की संस्थाएं सक्रिय हैं जो नैतिक शिक्षा के नाम पर किसी खास धर्म के सिद्धांतों, विश्वासों व कर्मकांडों की शिक्षा प्रदान कर रही हैं। इतना ही नहीं खुद भारत जैसे धर्म निरपेक्ष राष्ट्र जो अपने आपको धर्मनिरपेक्ष होने का डंका पीटता है। धर्म के आधार पर कानूनों का निर्माण भी होता है जो आज भी यह हिन्दू लॉ या मुस्लिम पर्सनल लॉ के रूप में जाना जाता है। भारत एक धर्म निरपेक्ष राष्ट्र है अथवा नहीं यह एक विचारणीय प्रश्न है तो उसे इन शर्तों को पूरा करना इसके लिए अपेक्षित है वह राष्ट्र धर्म को मनुष्य का व्यक्तिगत मामला जानकर व्यक्ति तथा समुदाय को धर्म के विषय में संचित आजादी देता है।5

धर्म निरपेक्ष राष्ट्र में प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छा के मुताबिक किसी भी धर्म को अपना सकता है तथा उसकी पूजन पद्धति के समरूप उपासना कर सकता है। इसी प्रकार वह अपना धर्म परिवर्तन करने या किसी भी धर्म में विश्वास न करने के लिए भी स्वतंत्र है। वह खुद अपने एवं अन्य धर्मों के विषय में दूसरों के साथ शांतिपूर्वक विचार विमर्श कर सकता है। धर्म निरपेक्ष राष्ट्र में किसी व्यक्ति को धर्म में विश्वास करने, किसी विशेष धर्म को अंगीकार व परित्याग करने अथवा उसका प्रसार करने अथवा उसका प्रचार करने के नाते किसी भी रूप में आर्थिक सहायता देते हुए विवश नहीं किया जा सकता। ऐसे राष्ट्र में धर्म के विषय में व्यक्तिगत स्वतंत्रता के साथ–साथ सामूहिक आजादी भी दी जाती है इसका अर्थ यह नहीं कि अनेक व्यक्ति मिलकर अपनी इच्छानुकूल धार्मिक और धार्मिक दृष्टि से स्वयं धार्मिकता भी प्रदान कर सकते हैं। इसमें धर्म निरपेक्ष राष्ट्र हस्तक्षेप नहीं करता लेकिन यह साफ कर देना लाजमी है कि इस धार्मिक आजादी की कुछ आवश्यक सीमाएँ भी निर्देशित हैं जिन्हें दरकिनार नहीं किया जा सकता। किसी भी व्यक्ति या समुदाय को यह धार्मिक आजादी उस समय तक प्रदान की जा सकती है जिस सीमा तक राष्ट्र में कानून शांति एवं व्यवस्था जन स्वास्थ्य राष्ट्रीय सुरक्षा नीति का अन्य व्यक्तियों के अधिकारों एवं उसके धार्मिक आजादी में अवरोध न साबित हो। अगर कोई धर्म पढ़ाने व्यक्ति या समुदाय किसी भी रूप में अन्य व्यक्तियों के अधिकारों का दमन करता है तो उसकी धार्मिक स्वतंत्रता में हस्तक्षेप करना राष्ट्र का आवश्यक कर्तव्य हो जाता है। इस प्रकार धर्म निरपेक्ष राष्ट्र प्रत्येक व्यक्ति और समुदाय में कुछ विशेष सीमाओं के तहत यथोचित धार्मिक आजादी दी जाती है। धर्म के आधार पर किसी प्रकार का भेदभाव किए बिना प्रत्येक व्यक्ति को राष्ट्र का नागरिक समझा जाता है। नागरिक के रूप में उनका उत्तरदायित्व अधिकार किसी भी रूप में उनके धार्मिक विश्वासों में आपको अप्रभावित करता है।[6]

किसी भी राष्ट्र को एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र के उपाय तभी दी जा सकती है जब वह स्मिथ के विचार को समाहित करता हूँ–'' धर्म निरपेक्ष राष्ट्र वह राष्ट्र है जो व्यक्ति तथा समुदाय को धर्म की स्वतंत्रता का आश्वासन देता है जो व्यक्ति के धर्म पर विचार किए बिना नागरिक के रूप में उसके साथ व्यवहार करता है जो संवैधानिक दृश्य किसी विशेष धर्म के संबंध में नहीं बोलता है, जो धर्म को न तो प्रोत्साहित करता है, न तो उसमें हस्तक्षेप करता है।[7]

इस तरीके से राष्ट्र का कोई अपना धर्म नहीं सभी धर्म अपने हैं और सभी धर्मों के प्रति समभाव रखना सही मायने में धर्म निरपेक्षता है न की सत्ता के लालच में धर्म निरपेक्षता का आडम्बर करना। जब एक दल इलाहाबाद विश्वविद्यालय में सभा या सम्मेलन करना चाहता है तो दूसरा दल उसे रोकता है। हिंसा भड़काने और सांप्रदायिकता का बहाना बनाया जाता है। इस तरीके से धर्म निरपेक्ष और सांप्रदायिकता हमारे देश के लिए बहुत बड़ा घातक सिद्ध हो सकती है। भारत के संबंध में स्थिति यह है कि भारत देश विविधता में एकता का आदर्श उदाहरण रहा है और हमारे संविधान के निर्माता सर्वधर्म संभाव में प्रतिष्ठा रखते थे अतः उनके द्वारा पंथ निरपेक्षता के आदर्श को अपनाया गया लेकिन एक पंथ निरपेक्ष राज्य की स्थिति को पूर्ण अंशों में पंथ निरपेक्ष समाज में ही प्राप्त किया जा सकता है और भारतीय जीवन का चिंताजनक तथ्य यह है कि हम बीसवीं सदी के अंतिम दशक तक भी हम पंथ निरपेक्ष समाज की स्थिति को प्राप्त नहीं कर सके हैं अभी हाल के ही वर्षों में भारतीय समाज में धर्म पर आधारित भेदों को तीव्र रूप से देखा जा सकता है जिसका जीता जागता उदाहरण जेएनयू के कन्हैया कुमार हैं जो यह कहते हैं भारत तेरे टुकड़े होंगे इंशा अल्लाह इंशा अल्ला, अफजल हम शर्मिंदा हैं तेरे कातिल जिंदा हैं, तो दूसरे राजनैतिक दल ऐसे लोगों को सानिध्य और अपना समर्थन प्रदान करते रहे हैं। इस स्थिति का समाधान केवल यही है कि भारतीय नागरिक सर्वधर्म समभाव और सभी धर्मों के प्रति सद्भाव एवं सम्मान की स्थिति को अपने मन मस्तिष्क और ह्रदय में सदैव के लिए संजो ले। शिक्षा और कानून की तरह भारत का राजनीतिक जीवन प्रमुख रूप से धर्म से ही गतिमान है। करीब–करीब प्रत्येक राजनीतिक दल चुनावों में वोट हासिल करने के लिए किसी ने किसी रूप में धर्म को ही आधार मानते हैं। विभिन्न दलों के प्रमुख धर्म के आधार पर चुनाव लड़ने के लिए अधिकांश मामलों में प्रत्याशियों के नाम का फैसला करते हैं उसके बाद यह प्रत्याशी भी अक्सर धर्म के आधार पर मतदाताओं से अपना मत मांगते हैं। हिन्दू हिन्दुओं से ही हिन्दुत्व के नाम का ढिंढोरा पीटता है और ज्यादा से ज्यादा मत प्राप्त करने की कोशिश भी करता है। उसी प्रकार अपने ही धर्मनिरपेक्ष दल कहे जाने वाले नेता मुस्लिम बहुलवाले लोकसभा या विधानसभा क्षेत्रों में मुस्लिम प्रत्याशियों को टिकट देते हैं और ये प्रत्याशी एक मुसलमान होने के नाते मुस्लिम मतदाताओं से अपना मत मांगते फिरते हैं। ज्यादातर मतदाता धर्म, जाति या पार्टी से प्रभावित होकर वोट भी करते हैं। सत्ता प्राप्ति के उपरांत अधिकतर मंत्री, विधायक, संसद सदस्य, राजनीतिक, धार्मिक समारोह में शिरकत करते हैं। यहां बहुत से ऐसे राजनीतिक दल हैं जिनका निर्माण ही धर्म के आधार पर हुआ है। ये दल तो धर्म के बिना राजनीति की कल्पना भी नहीं कर सकते उनके लिए धर्म एक साधन बन कर रह गया है। चुनाव आयोग भी ऐसे दलों को धड़ल्ले से राजनीतिक दल की मान्यता भी प्रदान कर देता है जो भारत जैसे देश राष्ट्र के सिद्धांतों से खिलवाड़ ही नहीं करते वरन राष्ट्र के माथे पर चोट पहुंचा रहे होते हैं। इससे एक बात साफ हो जाती है कि धर्म का वर्चस्व भारतीय राजनीति में कहीं न कहीं से प्रवेश कर गया है जो एक राष्ट्र के सोपानों को पूरा नहीं कर पा रहे है। भारतीय संविधान द्वारा भारत को एक धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थिति प्रदान की गई है लेकिन 1976 के पूर्व धर्म निरपेछ शब्द को प्रस्तावना में स्थान नहीं दिया गया था। अब इसे प्रस्तावना में स्थान दे दिया गया है प्रस्तावना में धर्मनिरपेक्ष शब्द के उल्लेख में धर्म निरपेक्षता को और बल प्राप्त हो गया है।

संदर्भ–सूची

1. डी.डी. बसु, भारत का संविधान
2. सुभाष कश्यप, भारत का संविधान
3. दैनिक जागरण
4. डॉ. पुखराज जैन, राजनीति विज्ञान के सिद्धांत
5. डॉक्टर प्रसाद, गांधी और सर्वोदय
6. हिंदुस्तान दैनिक समाचार पत्र
7. स्मिथ का लेख, भारत में धर्म निरपेक्षता

* * * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Pol. Science : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 547-553

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

ग्रामीण विकास की योजनाओं का क्रियान्वयन तथा पंचायती राज व्यवस्था पर इसका प्रभाव

*डॉ. आशा यादव**

महात्मा गाँधी का कथन है, ''**दिल्ली भारत नहीं है, भारत तो गाँवों में बसता है।**'' अतः यदि हमें भारत को उन्नत करना है तो गाँवों की दशा सुधारनी होगी। गाँधी जी ने नारा भी दिया था 'गाँवों को वापस चलो'। इसी विचार को ध्यान में रखकर ही गांधी जी के नेतृत्व में लड़ी गयी आजादी की लड़ाई को गाँव–गाँव तक पहुँचाया गया और उन सबके मिले–जुले संकल्प से ही देश को आजादी मिली।

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी से लेकर नोबल पुरस्कार से सम्मानित अर्थशास्त्री डॉ. अमर्त्य सेन तक सभी चिन्तनशील और देशहित के प्रति संवेदनशील लोग इस बात पर एकमत रहे हैं कि ग्रामीण लोगों के जीवन में सकारात्मक बदलाव लाए बिना भारत के विकास का सपना साकार नहीं हो सकता है। यही कारण है कि आजाद भारत में केन्द्र तथा राज्यों में कोई भी दल या गठबन्धन सत्ता में रहा हो, सभी ने गाँवों के विकास के काम को अपनी योजनाओं तथा घोषणापत्रों में हमेशा प्राथमिकता दी है। इन प्रयासों के अच्छे परिणाम भी देखने को मिले हैं।

ताजा आँकड़ों के अनुसार गाँवों में गरीबी–दर में उल्लेखनीय गिरावट देखी गयी है। महात्मा गाँधी नरेगा, प्रधानमंत्री ग्रामीण सड़क योजना, इन्दिरा आवास योजना, महिलाओं के स्वयं सहायता समूह, मिड डे मील, शिक्षा का अधिकार कानून, खाद्य सुरक्षा कार्यक्रमों जैसे अनेक प्रयासों के फलस्वरूप लगभग सभी राज्यों के गाँवों में खुशहाली बढ़ी है। इन सरकारी प्रयासों के अलावा बहुत से स्वयंसेवी संगठन भी अपने–अपने ढंग से गाँवों में अपनी गतिविधियाँ चलाकर गाँववासियों के जीवन में सुधार ला रहे हैं। लेकिन इन प्रयासों के बावजूद ग्रामीण जनता की स्थिति संतोषजनक नहीं है। जैसे–जैसे शिक्षा और जागरुकता बढ़ रही है, लोगों में अपना जीवन बेहतर बनाने की लालसा भी बढ़ रही है। बढ़ती आबादी के कारण भी समस्याएँ पूरी तरह हल होने का नाम नहीं ले रही हैं।

जाहिर है कि ग्रामीण लोगों की जिन्दगी को और सुखी तथा खुशहाल बनाने के लिए लम्बी लड़ाई लड़ने की जरूरत है। लेकिन यह बात भी ध्यान में रखने की है कि ग्रामीण विकास का लक्ष्य केवल आर्थिक विकास तथा सरकारी और गैर–सरकारी एजेन्सियों के कल्याण कार्यक्रमों के जरिए प्राप्त नहीं किया जा सकता, बल्कि गाँव के लोगों में आत्मविश्वास, हिम्मत, ज्ञान और प्रेरणा का संचार करने में ठोस योजनाओं के साथ–साथ शिक्षा और जनसंचार और योग्य, कुशल ग्राम–प्रधानों की भी बहुत बड़ी भूमिका है।

महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा) : बेरोजगारी, भूख और गरीबी से छुटकारा पाने के लिए केन्द्र सरकार की महत्वाकांक्षी राष्ट्रीय रोजगार गारंटी योजना का शुभारम्भ प्रधानमन्त्री **डॉ. मनमोहन सिंह** ने **2 फरवरी 2006** को आन्ध्र प्रदेश के अनन्तपुर जिले से किया। पहले चरण में वर्ष 2006–07 के दौरान देश के 27 राज्यों के 200 चुनिंदा जिलों में इस योजना का कार्यान्वयन किया गया था। इसमें सर्वाधिक 23 जिले बिहार के सम्मिलित थे, जबकि गोवा के 2 जिलों में से कोई भी जिला इसमें शामिल नहीं था। प्रथम चरण के कार्यान्वयन के लिए चयनित 200 जिलों में वे 150 जिले शामिल थे, जहाँ 'काम के बदले अनाज' कार्यक्रम पहले से चल रहा था। 'काम के बदले अनाज' योजना तथा 'सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना' का विलय अब इस योजना में कर दिया गया है। **1 अप्रैल, 2008 से इस योजना को सम्पूर्ण देश में लागू कर दिया गया है।**

इस योजना के तहत् चयनित जिलों में ग्रामीण जिलों में प्रत्येक परिवार के एक सदस्य को वर्ष में कम से कम 100 दिन अकुशल श्रम वाले रोजगार की गारंटी दी गयी है। (प्रत्येक परिवार एक वित्तीय वर्ष में 100 दिनों का रोजगार प्राप्त कर सकता है तथा इसका विभाजन परिवार के वयस्क सदस्यों के बीच किया जा सकता है।) राज्यों में कृषि श्रमिकों के लिए लागू वैधानिक न्यूनतम मजदूरी का भुगतान इसके लिए किया जाता है, जो 60 रुपये से कम नहीं होगी। वर्ष 2011–12 में वास्तविक मजदूरी दर को बढ़ाकर 120 रुपये प्रतिदिन कर दिया गया है।

ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार उपलब्ध कराने की केन्द्र सरकार की महत्वाकांक्षी योजना 'मनरेगा' के तहत् वर्ष 2011–12 के दौरान 19 जनवरी, 2012 तक 3.80 करोड़ परिवारों को रोजगार उपलब्ध कराए गये। कुल मिलाकर 122.37 करोड़ श्रम दिवस रोजगार का सृजन संदर्भित वर्ष में इस योजना के तहत किया गया, जिसमें से 60.45 करोड़ महिला, 27.27 करोड़ अनुसूचित जाति तथा 20.97 करोड़ अनुसूचित जनजाति के लिए थे। वर्ष 2012–13 के बजट में 33,000 करोड़ रुपये का आवंटन इस योजना के तहत किया गया था तथा वर्ष 2013–14 के लिए 'मनरेगा' योजना के तहत पुनः 33,000 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया।

स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना/राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन : गाँव के लोगों को सक्षम बनाने तथा रोजगार देने के उद्देश्य से भारत सरकार द्वारा विभिन्न योजनाओं जैसे–समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, स्वरोजगार के प्रशिक्षण कार्यक्रम, ग्रामीण क्षेत्र महिला एवं बाल विकास कार्यक्रम, ग्रामीण दस्तकारों को उन्नत औजारों के किट आपूर्ति कार्यक्रम, 10 लाख कुआँ योजना तथा गंगा कल्याण योजना सभी का विलय करके एक समग्र स्वरोजगार योजना के रूप में **1 अप्रैल 1999** में **स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना** प्रारम्भ की गयी। इस योजना का प्रमुख उद्देश्य लघु उद्योग की स्थापना के माध्यम से गरीब परिवारों की आय बढ़ाकर उनको गरीबी–रेखा से ऊपर उठाना है। स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना के अन्तर्गत ग्रामीण गरीब परिवारों को स्वयं–सहायता समूहों के रूप में संगठित किया गया तथा लोगों की क्षमताओं एवं कौशल में वृद्धि करते हुए उन्हें ऋण, प्रौद्योगिकी एवं मूलभूत सुविधाएँ उपलब्ध करवाकर लघु उद्योगों की स्थापना को प्रोत्साहित किया गया। इस योजना में ज्यादा से ज्यादा जोर गाँव के कमजोर वर्ग यानी महिलाओं, विकलांगों तथा अनुसूचित जाति/जनजाति के उत्थान पर दिया जाता है। विकलांगों तथा अनुसूचित जाति/जनजाति के लोगों के स्वयं सहायता समूह को मिलने वाली राशि का 50 प्रतिशत हिस्सा ऋण तथा 50 प्रतिशत हिस्सा सब्सिडी के रूप में होता है। ज्ञात आँकड़ों के आधार वर्श 2009 तक देश के 22 हजार स्वयं सहायता समूहों को सहायता दी गयी, जिनमें 45 प्रतिशत लोग अनुसूचित जातियों/जनजातियों के थे। साथ ही साथ गरीबी मिटाने तथा लघु उद्यम विकास में भी सहयोग किया जा रहा है।

स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना में स्वरोजगार पर विशेष जोर दिया गया है। इस योजना के लागू होने के दस वर्ष के भीतर ही देश के गरीबों को स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से संगठित करने की जरूरत महसूस की जाने लगी। इसके सकारात्मक परिणाम भी सामने आ रहे हैं।

देश में करीब 7 करोड़ ग्रामीण बी.पी.एल. परिवारों में से 4.5 करोड़ परिवारों को अभी भी स्वयं सहायता समूहों में संगठित करने की जरूरत समझी गयी है। इन परिवारों में से बहुत बड़ी तादाद ऐसे परिवारों की है जो अभी तक अपेक्षित है। इसी पृष्ठभूमि में केन्द्र सरकार ने स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना को **राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन** के रूप में पुनर्गठित किया ताकि इसे मिशन के रूप में देशभर में लागू किया जाए। मिशन में स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना के अनुभवों को भी शामिल किया गया। इस मिशन ने निर्धनों के लिए निर्धनों द्वारा चलाए जाने वाले कार्यक्रम का रूप ले लिया है।

देष के 6 लाख गाँवों की ढ़ाई लाख पंचायतों के 6 हजार विकासखण्डों में सात करोड़ बी.पी.एल. परिवारों के स्व–संचालित स्वयं सहायता समूहों एवं उनके संघीय संस्थानों एवं आजीविका प्रयोजनों के लिए सहायता प्रदान करने का लक्ष्य रखा गया है। राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन के तहत उन्हें दीर्घकालिक तथा गरीबी दूर करने के उनके प्रयासों में सहायता देना और गरीबों को उनके अधिकारों के बारे में जागरूक करने का भी लक्ष्य है।

मध्याह्न भोजन योजना/मिड डे मील योजनाएँ : आज भी हमारे के लाखों बच्चे स्कूल का मुँह तक नहीं देख पातें, क्योंकि ये आर्थिक रूप से कमजोर होते हैं। ये बच्चे छोटी उम्र में ही अपने परिवार के कामकाज में अतिरिक्त आय के लिए हाथ बँटाने लगते हैं। भारत सरकार ने इन बच्चों को स्कूल की ओर आकर्षित करने

के साथ–साथ उनके स्वास्थ्य को ध्यान रखते हुए मध्याह्न भोजन योजना शुरू की है। 15 अगस्त, 1995 को शुरू की गयी इस योजना के तहत बच्चों को दोपहर का भोजन उपलब्ध कराया जाता है, जिसमें निश्चित पोषक तत्व शामिल होते हैं। शुरूआत में नेशनल प्रोग्राम ऑफ न्यूट्रीशनल सपोर्ट टू प्राइमरी एजुकेशन यानी एनपीएनएसपीई के अधीन यह योजना देश के 2,408 ब्लॉक्स में चलायी गयी, जो आज देश के सभी प्रखण्डों तक विस्तारित हो चुकी है। इस योजना के तहत स्कूल आने वाले हर बच्चे को 300 कैलोरी और 8 से 10 ग्राम प्रोटीन वाला पका हुआ भोजन दिया जाता है। जुलाई, 2006 से इसे 450 कैलोरी और 12 ग्राम प्रोटीन पर केन्द्रित कर दिया गया है। अकालग्रस्त क्षेत्रों में तो यह योजना गर्मी की छुट्टियों में भी चलती है। इस योजना के बाद स्कूल आने वाले बच्चों की संख्या में उल्लेखनीय बढ़ोत्तरी दर्ज की गयी है। योजना का उद्देश्य बच्चों को स्कूल लाकर साक्षरता बढ़ाना और बच्चों में कुपोषण समाप्त करना है। स्कूलों को बढ़िया अनाज उपलब्ध कराने की जिम्मेदारी भारतीय खाद्य निगम पर है, जबकि इस पर नजर रखने के लिए ग्राम पंचायत से लेकर, शिक्षा, खाद्य, महिला एवं बाल विकास और स्वास्थ्य विभागों को उत्तरदायी बनाया गया है।

ग्रामीण स्कूलों में मिड डे मिल योजना का व्यापक लाभ देखने को मिला है। इस योजना के कारण स्कूलों में 6–14 वर्ष के बच्चों का नामांकन बढ़ा है। वर्ष 2011 में 6–14 वर्ष के सभी बच्चों में से लगभग 96.7 प्रतिशत बच्चों का विद्यालयों में नामांकन हुआ था। स्कूल से बाहर रहने वाले बच्चों की संख्या में भी गिरावट दर्ज की गयी।

प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना : कहा जाता है, **''राष्ट्र में सडकें वही कार्य करती हैं, जो मानव शरीर में धमनियाँ एवं शिराएँ करती हैं।''** ग्रामीण सड़कों से ग्रामीण सामाजिक–आर्थिक विकास को भी एक नयी दिशा मिलती है। बढ़ती सड़कों के घने जाल से आधारभूत सुविधाओं यथा शिक्षा, स्वास्थ्य, उद्योग, व्यापार–व्यवसाय, बिजली, पानी, रोजगार, संचार, कृषि, पर्यटन, बैंक, बीमा आदि का विकास सम्भव हो सका है।

यह सर्वविदित है कि जहाँ पर भी सड़क सम्पर्क मुहैया कराया गया है, वहाँ निर्मित सड़कों की हालत (खराब निर्माण अथवा रखरखाव की वजह से) ऐसी नहीं हैं कि उन्हें बारहमासी सड़कों के रूप में वर्गीकृत किया जा सके। इस स्थिति को सुधारने हेतु केन्द्र सरकार ने **25 दिसम्बर, 2000 को प्रधानमन्त्री ग्राम सड़क योजना** आरम्भ की। यह केन्द्र सरकार द्वारा प्रारम्भ की गयी एक अत्यन्त सुदृढ़ एवं प्रभावकारी योजना है। इस योजना की प्रगति सड़क निर्माण के रूप में गाँव–गाँव में दिखायी देती है। इस योजना ने सड़क निर्माण से सम्बन्धित सफलता के अनेक सोपानों का छुआ है। योजना के अन्तर्गत निर्मित सड़कों के माध्यम से मुख्य सड़कों से जुड़ने से लाभान्वित ग्रामों के जनजीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा है।

राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (एनआरएचएम) : राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन भारत भारत में ग्रामीण स्वास्थ्य सुधर हेतु एक ग्रामीण स्वास्थ्य कार्यक्रम है। यह योजना **12 अप्रैल, 2005** को शुरू की गयी। आरम्भ में यह मिशन केवल सात वर्ष (2005–2012) तक के लिए रखा गया था। यह कार्यक्रम स्वास्थ्य मंत्रालय द्वारा चलाया जाता है। एनआरएचएम, ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सुरक्षा हेतु चलायी जा रही, केन्द्र सरकार की एक प्रमुख योजना है। इसका उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धनतम परिवारों को वहनीय और विश्वसनीय गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य सेवाएँ उपलब्ध कराना है। यह योजना विभिन्न स्तरों पर चल रही लोक स्वास्थ्य प्रदान करने की प्रणाली को और मजबूत बनाने के साथ–साथ अन्य कार्यक्रमों जैसे–प्रजनन बाल स्वास्थ्य परियोजना, एकीकृत रोग निगरानी, मलेरिया, कालाजार, तपेदिक तथा कुष्ठ आदि के लिए एक ही स्थान पर सभी सुविधाएँ प्रदान करने से सम्बन्धित है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत बाल मृत्युदर में कटौती करके उसे प्रति हजार जीवित जन्में बच्चों पर तीस से नीचे लाना तथा कुल प्रजनन अनुपात को 2012 तक 2.1 तक लाना है। इस योजना को पूरे देश में लागू किया गया, विशेषकर उन 18 राज्यों में जिनमें स्वास्थ्य अवसंरचना अत्यन्त दयनीय तथा स्वास्थ्य संकेतक निम्न हैं। इस योजना के क्रियान्वयन में लगी प्रशिक्षित 'आशा' की भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण है। लगभग प्रति 1000 ग्रामीण जनसंख्या पर 1 'आशा' कार्यरत है। वर्ष 2012–13 के संघीय बजट में राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन के लिए 18,115 करोड़ रुपये की धनराशि आवंटित की गयी है। इस मिशन का उद्देश्य राष्ट्रीय जनसंख्या नीति, 2000 और राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति दोनों के लक्ष्यों को भी प्राप्त करना है।

अन्त्योदय अन्न योजना : 25 दिसम्बर, 2000 को तत्कालीन **प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने** अपने 76वें जन्मदिवस के अवसर पर दो नयी योजनाओं का शुभारम्भ किया गया। इसमें से एक योजना निर्धनों

को खाद्य सुरक्षा उपलब्ध कराने के उद्देष्य से **अन्त्योदय अन्न योजना** नाम से आरम्भ की गयी। इस योजना के तहत देश के एक करोड़ निर्धनतम परिवारों को प्रतिमाह 35 कि.ग्रा. अनाज विशेष रियायती मूल्य पर उपलब्ध कराया जाता है। इससे एक वर्ष में सरकार पर 2300 करोड़ रुपये की अतिरिक्त खाद्य सब्सिडी का भार पड़ने का अनुमान है। इस योजना के तहत जारी किये जाने वाले गेहूँ व चावल का केन्द्रीय मूल्य क्रमशः 2 रुपये, 3 रुपये प्रति कि. ग्रा. है। इस योजना से एक करोड़ निर्धनतम परिवार (लगभग 5 करोड़ लोग) लाभान्वित होते हैं। यह योजना केन्द्रीय उपभोक्ता मामले, खाद्य एवं सार्वजनिक वितरण मंत्रालय के तहत् प्रारम्भ की गयी। सरकार द्वारा गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले 50 लाख अतिरिक्त परिवारों को इस योजना में शामिल करने के लिए अन्त्योदय अन्न योजना का विस्तार किया हैं, जिनमें निम्नलिखित प्राथमिकता समूह से परिवारों को शामिल किया गया है :–

(अ) ऐसे परिवार जिनकी प्रमुख विधवा या मरणासन्न बीमार व्यक्ति या विकलांग व्यक्ति या 60 वर्ष या उससे अधिक आयु का ऐसा व्यक्ति हो, जिसके पास आजीविका का सुनिश्चित साधन अथवा सामाजिक सहारा न हो।

(ब) विधवाएँ या मरणासन्न व्यक्ति या विकलांग व्यक्ति या 60 वर्ष से अधिक आयु का व्यक्ति अथवा ऐसी अकेली महिला या अकेला पुरुष, जिसका कोई पारिवारिक या सामाजिक सहारा न हो।

(स) सभी मूल जनजातीय परिवार (विस्तारित अन्त्योदय अन्न योजना के अन्तर्गत जनजातीय लाभार्थियों को राज्य / केन्द्रशासित प्रदेश में जनजातीय आबादी के अनुपात में होना चाहिए)।

राज्यों / केन्द्रशासित प्रदेशों में कहा गया है कि वे इन अतिरिक्त परिवारों की पहचान करके उन्हें विशेष राशनकार्ड जारी करें ताकि वे अन्त्योदय अन्न योजना का लाभ उठा सकें।

आवास योजना : आवास मानव जीवन की एक मौलिक आवश्यकता है। जनगणना से प्राप्त निष्कर्षों के अनुसार गरीबी और आवास में सह–सम्बन्ध देखने को मिलता है। गरीबी आवास की उपलब्धता में बाधक है। इसी को ध्यान में रखते हुए सरकार द्वारा इन्दिरा आवास योजना चलायी जा रही है।

इन्दिरा आवास योजना वर्ष 1985–86 से क्रियान्वित हो रही है। इसका उद्देश्य गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाले अनुसूचित जाति / जनजाति और मुक्त कराए गये बंधुआ मजदूरों के परिवारों को अपना घर बनाने या उसमें सुधार करने के लिए मदद करना है। वर्ष 1993–94 में इस योजना का विस्तार करके इसमें गरीबी रेखा के नीचे जीवन–यापन करने वाले गैर–अनुसूचित जाति / जनजाति परिवारों को भी शामिल किया गया है।

इन्दिरा आवास योजना वर्ष 1985–86 में आरएलईजीपी की एक उपयोजना के रूप में आरम्भ की गयी थी, जिसका उद्देश्य अनुसूचित जाति / जनजाति तथा मुक्त बंधुआ मजदूरों को निःशुल्क आवास उपलब्ध कराना है। 1989–90 में आरएलईजीपी को जवाहर रोजगार योजना में मिला दिये जाने के बाद इस योजना को भी जवाहर रोजगार योजना का अंग बना दिया गया, किन्तु 1996 में जवाहर रोजगार योजना से अलग करके इसे एक स्वतन्त्र योजना का रूप दिया गया। वर्तमान समय यह भारत निर्माण कार्यक्रम के 6 घटकों में से एक है।

प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना के एक घटक के रूप में **ग्रामीण आवास योजना** लागू की गयी है। ग्रामीण स्तर पर लाभकारी मानव विकास प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना का मुख्य उद्देश्य है, जिसकी पूर्ति के लिए इस योजना में राज्यों एवं केन्द्रशासित प्रदेशों को अतिरिक्त केन्द्रीय सहायता आवंटित करने का प्रावधान है, ताकि ग्रामीण क्षेत्रों में ग्रामीण आवास की मौलिक आवश्यक सेवा में सुधार किया जा सके। वर्ष 2008–09 के दौरान प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना के 'ग्रामीण आवास' घटक के लिए 5400 करोड़ रुपये आवंटित किये गये थे। योजना को इन्दिरा आवास योजना के पैटर्न की तरह ही कार्यान्वित किया जा रहा है।

ग्रामीण आवास के लिए योजना की शुरूआत 1 अप्रैल, 1999 को की गयी और इसमें 32,000 रुपये तक की वार्षिक–आय वाले ग्रामीण परिवारों को लक्षित लाभार्थियों में सम्मिलित करने का प्रावधान है। इस योजना में अधिकतम 10,000 रुपये तक की सब्सिडी और 40,000 रुपये तक का अधिकतम ऋण देने का प्रावधान है। इस योजना में सब्सिडी राशि में केन्द्र तथा राज्यों की हिस्सेदारी 75:25 है और ऋण भाग व्यापारिक बैंकों, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों एवं आवास वित्त संस्थाओं द्वारा बाँटा जाता है।

समग्र आवास योजना वर्ष 1999–2000 में लागू की गयी थी, जिसका उद्देश्य स्वच्छता एवं जलापूर्ति के लिए एकीकृत उपाय सुनिश्चित करना है। इस योजना को प्रथम चरण में देश के 24 राज्यों के 25 जिलों में

एक–एक विकास खण्ड में एवं एक केन्द्रशासित प्रदेश के एक विकासखण्ड में लागू किया गया है।

प्रधानमंत्री आदर्श ग्राम योजना की घोषणा वर्ष 2009–10 में तत्कालीन वित्तमंत्री प्रणब मुखर्जी ने अपने बजट में की थी। देश में ऐसे 44000 ग्राम है, जहाँ की 50 प्रतिशत जनसंख्या अनुसूचित जाति की है। इन गाँवों के एकीकृत विकास के लिए प्रायोगिक आधार पर वर्ष 2009–10 के दौरान 100 करोड़ रुपये के आवंटन से 1000 गाँवों में यह नई प्रधानमंत्री आदर्श ग्राम योजना प्रारम्भ की जानी थी। ऐसे प्रत्येक गाँव के विकास के लिए ग्रामीण विकास एवं निर्धनता निवारण स्कीमों के तहत जारी की जाने वाली राशि के अतिरिक्त 10 लाख रुपये दिये जाते हैं।

सिंचाई कार्यक्रम : देश की लगभग दो तिहाई आबादी के भरण–पोषण का आधार अभी भी कृषि ही है। कृषि न केवल सीधे–सीधे गाँवों के लोगों को भोजन ही उपलब्ध कराती है बल्कि यह घरेलू, लघु एवं कुटीर उद्योगों के लिए कच्चा माल भी उपलब्ध कराती है। सरकारी सिंचाई के लिए कार्यक्रम के अन्तर्गत त्वरित सिंचाई लाभ कार्यक्रम, जलग्रहण क्षेत्र सुधार कार्यक्रम और जल प्रबन्धन कार्यक्रम संचालित कर रही है।

सिंचाई कार्यक्रम का मुख्य लक्ष्य **वर्ष 2009 तक एक करोड़ हेक्टेयर भूमि के लिए सिंचाई की क्षमता का निर्माण किया जाना है,** इसके अन्तर्गत निम्न बिन्दुओं पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है –

- सतही जल और भूमिगत जल की छोटी सिंचाई परियोजनाओं द्वारा 28 लाख हेक्टेयर जमीन में सिंचाई की क्षमता तैयार की जायेगी।
- जो योजनाएँ पूरी हो गयी हैं, उनके उपयोग को बढ़ाना इस कार्यक्रम की एक अन्य विशेषता है। इससे 20 लाख हेक्टेयर सिंचाई क्षमता में वृद्धि हो सकेगी।
- वर्तमान में जो छोटी और मझोली सिंचाई परियोजनाएँ कार्य कर रही है, उनको पूरा करके 42 लाख हेक्टेयर भूमि की सिंचाई क्षमता विकसित की जायेगी।
- वर्तमान में जो भी जल संसाधन उपलब्ध हैं उनकी मरम्मत, नवीनीकरण और बड़ी योजनाओं का विस्तार करके लगभग 20 लाख हेक्टेयर सिंचाई क्षमता तैयार की जायेगी।
- भूमिगत जल का विकास करने से 10 लाख हेक्टेयर भूमि में सिंचाई करने की क्षमता बढ़ेगी।

राजीव गाँधी ग्रामीण विद्युतीकरण योजना और दीनदयाल उपाध्याय ग्राम ज्योति योजना : बिजली के बिना विकास कार्यक्रमों की कल्पना नहीं की जा सकती। ग्रामीण क्षेत्रों में लघु एवं कुटीर उद्योगों तथा सिंचाई के लिए यह बहुत ही महत्वपूर्ण हो गया है। इसी को ध्यान में रखकर सरकार ने भारत के ग्रामीण इलाकों तक बिजली पहुँचाने के लिए एक योजना बनाई है। जिसका नाम है–राजीव गाँधी ग्रामीण विद्युतीकरण योजना। इस योजना के द्वारा सवा लाख ऐसे गाँवों में बिजली पहुँचाई जायेगी, जहाँ अभी तक इसकी पहुँच नहीं हो पायी है। इसके अलावा देश के 2 करोड़ 30 लाख घरों में बिजली के कनेक्शन देना ही इसका लक्ष्य था। गाँवों के सभी विद्यालयों, पंचायत कार्यालयों, स्वास्थ्य केन्द्रों, सामुदायिक भवनों आदि में बिजली की व्यवस्था की जा रही है। इस योजना में सबसे पहले ऐसे गाँवों में बिजली दी जायेगी, जहाँ अभी तक बिजली नहीं है। इसके बाद दलित बस्तियों, आदिवासी बसाहटों तथा कमजोर वर्गों के मोहल्लों में प्राथमिकता के आधार पर बिजली पहुँचाई जायेगी।

इसके लिए सरकार द्वारा पूँजीगत खरीदी पर 90 प्रतिशत अनुदान दिया जायेगा। सभी ग्रामीण बस्तियों में गरीबी–रेखा से नीचे के परिवारों के घरों में बिजली पहुँचाने के लिए शत–प्रतिशत पूँजीगत सब्सिडी तथा हर कनेक्शन पर 1500 रुपये की वित्तीय सहायता भी प्रदान की जाएगी। अन्य लोग निर्धरित दर पर कनेक्शन के लिए भुगतान करेंगे तथा उन्हें कोई अनुदान नहीं दिया जायेगा।

देश के सभी हिस्सों में सातों दिन चौबीस घंटे निर्बाध गुणवत्तापूर्ण बिजली मुहैया कराने के लिए हाल ही में केन्द्र सरकार द्वारा दीनदयाल उपाध्याय ग्राम ज्योति योजना (डीडीयूजीजेवाई) को मंजूरी दी गयी है। इस योजना के तहत ग्रामीण क्षेत्रों में बहु–प्रशिक्षित सुधारों को लागू करने में मदद मिलेगी। योजना के अन्तर्गत ग्रामीण घरों तथा कृषि कार्यों के लिए अलग–अलग फीडर की व्यवस्था कर–पारेषण और वितरण ढाँचे को मजबूत किया जायेगा। इसी के साथ ग्रामीण क्षेत्रों में सभी स्तरों पर बिजली के मीटर लगाए जाएंगे। इस व्यवस्था की सहायता से ग्रामीण घरों को तथा कृषि उपभोक्ताओं को 24 घंटे बिजली मुहैया कराने में मदद मिलेगी। ग्रामीण क्षेत्रों को बिजली की आपूर्ति के लिए शुरू की गयी राजीव गाँधी ग्रामीण विद्युतीकरण योजना को नई योजना में सम्मिलित

किया गया है। योजना का प्रमुख भाग अलग–अलग फीडर की व्यवस्था कर उप–पारेषण तथा वितरण नेटवर्क को मजबूत बनाना है और सभी स्तरों जैसे–इनपुट प्वाइंट, फीडर और वितरण ट्रांसफार्मर पर मीटर लगाना है।

संचार क्रान्ति : करीब चार दशक पहले **पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी** ने संचार क्रान्ति की अवधारणा को भारत के धरातल पर उतारने की मंशा जाहिर की थी। प्रधानमंत्री राजीव गाँधी ने जब संचार क्रान्ति का जिम्मा सैम पित्रोदा को दिया था तो उस समय भारत के लिए यह एक बड़ी चुनौती थी। क्योंकि भारत गाँवों का देश हैं लेकिन सैम पित्रोदा और उनकी टीम ने इस **इंटरनेट** चुनौती को स्वीकार किया। **वर्ष 1980 में इंटरनेट की शुरुआत हुई।** भारत सरकार ने **15 अगस्त, 1995** को इस सुविधा को आम जनता के लिए उपलब्ध कराया। इसके बाद तो संचार सुविधाओं का तेजी से विकास हुआ। भारत सरकार ग्रामीण भारत को संचार सुविधाओं से लैस करने की दिशा में निरन्तर प्रयास कर रही है। ग्रामीण युवाओं को संचार सुविधाओं से लैस करने के साथ ही उन्हें संचार सुविधाओं के जरिए आत्मनिर्भर भी बना रही है। यही वजह है कि ग्रामीण विकास की दिशा में कम्प्यूटर प्रशिक्षण, साइबर कैफे अथवा मोबाइल मैकेनिक के रूप में कैरियर संवारने वाले युवाओं को विभिन्न बैंकों की ओर से रियायती ब्याज दर से ऋण भी उपलब्ध कराया जा रहा है।

भारत में प्रत्येक वर्ष 1.8 से 2.0 करोड़ नये ग्राहक जुड़ने का अनुमान है। केन्द्र सरकार ने 2017 तक ग्रामीण दूरसंचार घनत्व को 35 फीसदी से बढ़ाकर 60 फीसदी और 2020 तक शत–प्रतिशत करने की उद्घोषणा की है। इसी तरह 2017 तक 17 करोड़ 50 लाख ग्राहकों और 2020 तक 60 करोड़ लोगों को इंटरनेट ब्राडवैंड की सुविधा देने का लक्ष्य है।

डिश का उपयोग : संचार क्रान्ति में आयी तेजी का प्रभाव अब प्रसारण एवं केबल क्षेत्र में भी पड़ा है। गाँवों–शहरों सब जगह डिश सेवा के जरिए विभिन्न चैनलों के कार्यक्रम देखे जा रहे है, जिससे जानकारी परक कार्यक्रमों की वजह से ग्रामीणों के जीवन–स्तर में लगाकार सुधार हो रहा है।

भारतीय टेलीविजन उद्योग के राजस्व का 66 प्रतिशत उपभोक्ताओं से अर्जित राजस्व से तथा 34 प्रतिशत विज्ञापन बाजार से आता है। विभागीय आँकड़े बताते हैं कि देश में टीवी वाले घरों की संख्या अब 133 मिलियन तक पहुँच गयी है। केबल टीवी सब्सक्राइबरों की संख्या करीब 68 मिलियन है। इसी प्रकार डीटीएच सब्सक्राइबरों की संख्या 31 मार्च, 2010 तक 21.30 मिलियन तक पहुँच गयी है। केबल प्रचारकों की संख्या 60 हजार से अधिक है तथा चैनलों की संख्या 500 से अधिक। सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय देश में केबल टी.वी. नेटवर्क को डिजिटल बनाने की योजना को चार चरणों में क्रियान्वित कर रहा है। जिसे दिसम्बर 2014 तक पूरा किये जाने की उम्मीद है। इससे भारत के शहर ही नहीं बल्कि ग्रामीण इलाके भी उस उन्नत देश की श्रेणी में शामिल हो जायेंगे, जो पहले से ही डिजिटलीकरण का फायदा ले रहे हैं।

देश के 96 प्रतिशत गाँवों में ग्रामीण पंचायत टेलीफोन सेवा उपलब्ध करा दी गयी है और ग्रामीण टेलीघनत्व के नजरिए से 34 प्रतिशत से अधिक का लक्ष्य हासिल कर लिया है। मार्च 2011 में जारी दूरसंचार विकास पैरामीटरों की प्रगति रिपोर्ट की स्थिति को देखा जाए तो टेलीफोन की कुल संख्या 8463.28 लाख पहुँच चुकी है, जबकि मार्च 2010 में यह संख्या 6214.80 लाख थी।

अन्य योजनाएँ जैसे

सर्वशिक्षा अभियान : सर्वशिक्षा अभियान के तहत देश के 20 करोड़ बच्चों में से जहाँ 2001 तक 6–14 वर्ष आयु के लगभग 28 प्रतिशत बच्चे स्कूलों से बाहर थे वहीं इनकी संख्या 2006 से गिरकर 6.9 प्रतिशत और 2010 तक 4.3 प्रतिशत तक पहुँच गयी थी। सरकार के दावों के अनुसार अब प्रत्येक गाँव से लगभग एक किलोमीटर की दूरी पर एक प्राथमिक विद्यालय है।

कस्तूरबा गाँधी बालिका शिक्षा योजना : जिन जिलों में विशेष रूप से महिला साक्षरता पर बहुत कम है, उन क्षेत्रों में बालिकाओं के लिए विशेष विद्यालयों की स्थापना हेतु प्रधानमंत्री द्वारा **15 अगस्त, 1947** को कस्तूरबा गाँधी बालिका शिक्षा योजना नामक एक कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया। इस योजना को जुलाई 2004 में प्रमुखतः अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़े वर्गों और अल्पसंख्यक समुदायों से सम्बन्धित बालिकाओं के लिए उच्च प्राथमिक स्तर के आवासीय विद्यालयों की स्थापना हेतु आरम्भ किया गया था। **अप्रैल**

2007 में इस योजना को सर्वशिक्षा अभियान के साथ मिला दिया गया। लगभग 2180 कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालयों को भारत सरकार द्वारा मार्च 2007 तक स्वीकृति दी गयी। इनमें 270 कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय, मुस्लिम बहुल प्रखण्डों में, 583 अनुसूचित जनजाति वाले प्रखण्डों में, 622 अनुसूचित जाति वाले प्रखण्डों में स्वीकृत किये गये।

बालिका समृद्धि योजना : बालिका समृद्धि योजना का उद्देश्य है परिवार और समाज का कन्या जन्म के प्रति सकारात्मक व्यवहार विकसित करना। इस योजना के तहत प्रचार और कार्यक्रमों के माध्यम से बच्ची और उसकी माँ के प्रति समाज तथा परिवार के नकारात्मक रवैये को बदलने की कोशिश की जाती है। इसके अलावा कन्याओं का स्कूल में नामांकन, उच्च शिक्षा तक स्कूल जारी रखना, कन्या विवाह की आयु बढ़ाना और आय के कामों से जुड़ी बालिकाओं की सहायता करना योजना का मुख्य उद्देश्य है। 15 अगस्त, 1997 के बाद जन्मी बीपीएल परिवार की सभी बालिकाओं को कवर करती है तथा शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों पर लागू होता है। इस योजना के तहत प्रत्येक बच्ची को एकमुश्त धन देने का प्रावधन तो है ही, साथ ही स्कूल में प्रत्येक साल उत्तीर्ण होने पर वार्षिक छात्रावृत्ति की भी सुविधा है।

किशोरी शक्ति योजना : यह योजना किशोरवय लड़कियों को सक्षम बनाने के लिए शुरू की गयी है। ताकि वो अपने जीवन को दिशा दे सकें। इस योजना के तहत किशोरियों को अपनी क्षमताओं का उपयोग करने के अवसर दिये जाते हैं। इसे केन्द्र प्रयोजित योजना, एकीकृत बाल विकास सेवा योजना यानी आईसीडीएस के तहत रखा गया है। यह पहले से चल रही किशोरवय बालिका योजना का संशोधित रूप है। इसका उद्देश्य किशोरियों में पोषण. स्वास्थ्य विकास, शिक्षा, कुशलता प्राप्त करना, जीवनशैली में सुधार और समाज के लिए एक उत्पादक सदस्य के रूप में उभरने की दिशा तय करना है। इसमें 11–18 वर्ष तक की बालिकाओं को शामिल किया गया है।

किशोरियों के लिए पोषण कार्यक्रम : किशोरवय लड़कियों में कुपोषण की समस्या से निपटने तथा गर्भवती महिलाओं के साथ–साथ दूध पिलाने वाली माओं के लिए **2002–03** में योजना आयोग ने किशोरियों के लिए पोषण कार्यक्रम **एनपीएजी** की शुरूआत की। देश के 51 जिलों में पायलट प्रोजेक्ट के रूप में शुरू हुई इस योजना के तहत कुपोषित बालिकाओं और गर्भवती महिलाओं को 6 किलो अनाज दिया जाता था बाद में इसे महिला एवं बाल विकास विभाग के अधीन दे दिया गया, लेकिन आईसीडीएस के तहत जाने के बाद इस योजना से गर्भवती महिलाओं और माँओ को हटा दिया गया। अब इस योजना का सारा फोकस 11–19 साल की उन लड़कियों पर है, जिनका वजन 35 किलों से कम है।

शिशु पोषण योजना : शिशु पोषण योजना के तहत नवजात बच्चों के पोषण और कार्यक्रम चलाए जाते हैं। निकाय क्षेत्रों से लेकर सुदूर गाँवों तक विभिन्न सरकारी संस्थाओं के माध्यम से यह अभियान चलाया जाता है। इसके तहत छोटे बच्चों को जन्म से अगले छः माह तक हर परिस्थिति में स्तनपान कराना सुनिश्चित किया जाता है। माँओ के बीच यह जागरुकता फैलायी जाती है, कि ऊपरी दूध के साथ भी दो साल तक स्तनपान जारी रखा जाए। इसका उद्देश्य बच्चे के शुरूआती विकास में सभी तरह के पोषक तत्व शामिल करना है। 1993 में लागू की गयी राष्ट्रीय पोषण नीति के तहत महिला एवं बाल विकास विभाग इसके संचालन के लिए जिम्मेदार है। कुपोषण रोकना इस योजना का उद्देश्य है। और इसके प्रचार के लिए कई तरह के माध्यम उपयोग किये जाते हैं।

यह सत्य है कि सरकार ग्रामीणों के विकास के लिए नित्य प्रतिदिन योजनायें बनाती हैं तथा इन योजनाओं में प्रत्येक वर्ग का ध्यान भी रखा जाता है। लेकिन केवल योजनाएँ बना देने भर से ग्रामीण जनता का विकास भी नहीं हो सकता जब तक कि इन योजनाओं से होने वाला लाभ उनको न मिले। इन योजनाओं का लाभ ग्रामीणों को प्राप्त हो सके उसके लिए ग्रामीण जनता का जागरूक होना आवश्यक है और यह जागरुकता शासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम के माध्यम से ग्राम–प्रधानों द्वारा लाया जाना चाहिए। हालांकि ग्राम–प्रधानों ने इस दिशा में प्रशंसनीय कार्य भी किया है लेकिन कहीं–कहीं उनके कार्यों में नीरसता भी झलकती है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि यदि वास्तव में भारत को एक विकसित राष्ट्र बनाना है तो विकास की शुरुआत गाँवों से की जानी चाहिए।

* * * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Commerce : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 554-555

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

Fiscal Policy, GST and Economic Growth

*Dr. Rani Shukla**

Impact : Every coin has two facets and so the same applies to the concept of mplementation of the **GST In India** Of course, this is the biggest Tax reformation in India after independence and thus it will have a tremendous and direct futuristic impact on the economic front. However, few negotiable short-term negative issues too are associated with it, but for the sake of an accelerated economy, a revolutionary step like GST had become really mandatory.

To know how GST is a boon-for the Indian Economy, let us look into some significant facts & figures pertaining to Effects and Benefits of GST on Indian economy.

The Short-Term Impact : From the viewpoint of the consumer, they would now have pay more tax for most of the goods and services they consume. The majority of everyday consumables now draw the same or a slightly higher rate of tax. Furthermore, the GST implementation has a cost of compliance attached to it. It seems that this cost of compliance will be prohibitive and high for the small scale manufacturers and traders, who have also protested against the same. They may end up pricing their goods at higher rates.

How will GST impact the Indian Economy? : Reduces tax burden on producers and fosters growth through more production. The current taxation structure, pumped with myriad tax clauses, prevents manufacturers from producing to their optimum capacity and retards growth. GST will take care of this problem by providing tax credit to the manufacturers.

1. Different tax barriers, such as check posts and toll plazas, lead to wastage of unpreserved items being transported. This penalty transforms into major costs due to higher needs of buffer stock and warehousing costs. A single taxation system will eliminate this roadblock.

2. There will be more transparency in the system as the customers will know exactly how much taxes they are being charged and on what base.

3. ·GST will add to the government revenues by extending the tax base.

4. GST will provide credit for the taxes paid by producers in the goods or services chain. This is expected to encourage producers to buy raw material from different registered dealers and is hoped to bring in more vendors and suppliers under the purview of taxation.

5. GST will remove the custom duties applicable on exports. The nation's competitiveness in foreign markets will increase on account of lower costs of transaction.

What the Future Looks Like : Talking about the long-term benefits, it is expected that GST would not just mean a lower rate of taxes, but also minimum tax slabs. Countries where the Goods and Service Tax has helped in reforming the economy, apply only 2 or 3 rates – one being the mean rate, a lower rate for essential commodities, and a higher tax rate for the luxurious commodities. Currently, in

* *Department of Commerce, Seth RCS Arts & Commerce College,Durg (Chhattisgarh)*

India, we have 5 slabs, with as many as 3 rates – an integrated rate, a central rate, and a state rate. In addition to these, cess is also levied. The fear of losing out on revenue has kept the government from gambling on fewer or lower rates. This is very unlikely to see a shift anytime soon; though the government has said that rates may be revisited once the RNR (revenue neutral rate) is reached.

The GST roll out, with a single stroke, has converted India into a unified market of 1.3 billioncitizens. Fundamentally, the $2.4-trillion economy is attempting to transform itself by doing away with the internal tariff barriers and subsuming central, state and local taxes into a unified GST.

The rollout has renewed the hope of India's fiscal reform program regaining momentum and widening the economy. Then again, there are fears of disruption, embedded in what's perceived as a rushed transition which may not assist the interests of the country.

Will the hopes triumph over uncertainty would be determined by how our government works towards making GST a "good and simple tax". The idea behind implementing GST across the country in 28 states and 9 Union Territories is that it would offer a win-win situation for everyone. Manufacturers and traders would benefit from fewer tax filings, transparent rules, and easy bookkeeping; consumers would be paying less for the goods and services, and the government would generate more revenues as revenue leaks would be plugged. Ground realities, as we all know, vary. So, how has GST really impacted India? Let's take a look.

Among big-ticket consumer items, automobiles, tyres, cement, air conditioners and large LCD televisions are currently in the 28% bracket. Automobiles also bear a cess, depending on the size of the vehicle, further increasing the total tax incidence.

"Issues are being examined in detail… Numbers are also being looked at," said one of the officials. Some states have already written to the Centre highlighting the need to cut rates on autos and cement to provide a boost to the economy. Some state policymakers are of the view that a more radical view of the rate structure needs to be taken, for instance merging the 12% and 18% slabs into one.

"Given the economic slowdown, there is certainly a for reduction in for a few sectors such as auto," Pratik Jain, national leader, indirect Taxes PwC. 'This has been done in the past and worked more often than not. Of course, this has to be backed up with other economic stimulus (measures) as well."

For sectors such as real estate and railways, where input tax credit is restricted, there is a Case for reduction in rates on key inputs, he said.

Jain said the GST Council may also want to consider merging the 12% and 18% slabs into a single one of possibly 15% or 16%, which will also simplify the rate structure, "However, it will not be an easy decision for the council and a larger consensus needs to be built for any major rate Changed," he said.

Conclusion : Implementation of GST in India, is definitely a historical deed for the futuristic growth of Indian Economy. Our next generation will enjoy the real taste and benefits of GST. Thus, in a broad sense, GST is a great boon for India which will help our country to get enter in the list of developed nation: very soon.

REFERENCES

1. The Economic Times (2009) Featured Articles from The Economic Times.
2. Gst India (201 5) Economy and Policy.
3. Mehra P (2015) Modi govt's model for GST may not result in significant growth push. The Hindu.
4. Sardana M (2005) Evolution Of E?Commerce In India Part 3.
5. **TRAI (201 5) Highlights of Telecom Subscription Data as on 28th February.**
6. Patrick M (201 5) Goods and Service Tax: Push for Growth, Centre for Public Policy Research (CPPR).
7. SKP (2014) GST: Impact on the Telecommunications Sector in India.

* * * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Commerce : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 556-563

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

Role of Micro Finance and Self Help Groups in Financial Inclusion

*Dr. Sunita Sinha**

ABSTRACT : *Indian economic policy emphasises on achieving high growth rate coupled with ensuring that the poor people are able to participate and equally benefited and avail opportunities offered by the Indian economy. It leads to development of all sections of people. Today, the MFIs also stimulating to government for the empowerment of poor people, for mobilising savings and get benefited by the immense opportunities available in the new manifestation of micro credit in India. This agenda for inclusion involves creating specific and favourable environment by which the poor people across the country have open, safe, secure and affordable access to various financial products. Micro financing is one of such strategies for inclusive growth, which can be explained as provision of financial literacy etc. Those who promote the concept of microfinance as an inclusive development tool believe that such unrestricted access will help in poverty alleviation and uniform growth in India. To study the financial inclusion for poor people, this multi-model approach was adapted. These are like Service area apporoach and priority sector leading.*

Various steps have been taken by the government in this direction after the independence, Financial Institutions, Microfinance Institutions and NGO's, which include SHG-Bank linkage programme as one such initiative. NGO's have played a commendable role in promotig Self Help Groups (SHG) linkking them with banks. There is, therefore, a need to evolve an incentive package, which will motivate these NGO's to diversify into other backward areas of India.

Keyword : *Financial Inclusion, Microfinance, NGO, Self-Help Group (SHG), Rural, backwad people and Development.*

Introduction : In India a majority of population especially at the bottom of economic pyramid those mainly include poor, backward, women and people of rural and distant places remain without access to formal financial services. Lots of exclusion can be seen among cities, districts, states and communities. The development with exclusion cannot achieve social justice.

Financial Inclusion is an integral part of SHG (Self Help Group) programme and widely supported and promote by financial inclusion concept, SHG bank linkage is one of the key focus areas of concern of SUPPORT. During the financial 2013-14 total 2340 new SHG's have been promoted in order to bring women together for their self-development, 1285 SHGs \have linked with bank and enabled to access banking facilities, 101 SHG's have been availed bank loan to start their small enterprise in rural areas to support their livelihoods.

* *Associate professor, Dept. of Commerce, Ranchi Women's College, Ranchi*

These SHG's have been linked with credit facilities with several branches of Bank of India, State Bank of India, Jharkhand Gramin Bank, United Bank of India and IDBI. On regular basis such banks organised various promotional activities like loan fare and awareness camp in various places of state. Suchan event of loan fare for SHG's was organized in Giridih with the help of NABARD and Bank of India in order to avail bank credit to maximum number of SHG's for their livelihood.

Experience from large scale projects shows access to repeat finance, at affordable price for desired amount and customised repayment terms is crucial for poor and vulnerable group of the society, to meet their consumption, exit debt trap and investment in livelihood assets.

Financial inclusion can best defined as "The process of ensuring access to financial services and timely and adequate credit where needed by vulnerable groups such as weaker sections and low income groups at an affordable cost."

Financial products and services are identified as basic banking services like deposits accounts, institutional loans, access to payment, remittance facilities and also life and non life insurance services. The following are the denotation and connotation of financial inclusion in India. 1. Affordable credit, 2. Savings bank account, 3. Payments and Remittance, 4. Financial advice, 5. Credit/debit cards 6. Insurance facility, 7. Empowering SHGs (self help groups), an inclusive financial system facilitates efficient allocation of production resources and thus, it can potentially reduce the cost of capital. An all-inclusive financial system enhances efficiency and welfare by providing avenues for secure and safe saving practices by facilitating a whole range of efficient financial services such as easy dayto-day management of finances, safe money transfer etc. The govt. of India as well as the banking industry has recognized this imperative and had undergone fundamental changes over the last two decades. In fact, in order to address the issues of financial inclusion, the Government of India constituted a "Committee on Financial Inclusion" under the Chairmanship of Dr. C. Rangarajan. Not only in India, but financial inclusion has become an issue of worldwide concern, relevant equally in economies of the underdeveloped, developing and developed nations. Building an inclusive financial sector has gained growing global recognition.It fosters the collaborative effort or initiative required for development of strategies and touch all lives instead of a select few.

Objectives : The objectives for this paper are as follows :

- To explain the role and importance of financial inclusion in Indian Financial System.
- To analyse the different approaches of financial inclusion.
- To examine the role of banking system in extending banking services for financial inclusion.
- To enumerate the achievments and problems of SHG (Self Help Group) microfinance in including the excluded section of the society.
- To suggest some policy prescriptions.

Micro-Finance Institutions–Minimalist and Integrated Approach : MFIs by definition provide financial services.However, an MFI may also offer other services as a means of improving the ability of its clients to utilize financial services. There is much debate in the field of micro-finance as to whether MFIs should be minmalist – that is offering only financial intermetdiation – or integrated – offering both financial intermediation and other services.

Within financial system there are four broad categories of services that may be provided to micro-finance clients :

- ***Financial Intermediation or the provision of financial products and services*** such as savings, credit, insurance, credit cards, and payment systems. Financial intermediation should not acquire ongoing subsidies.
- ***Social Intermediation or the process of building the human and social capital*** required sustainable financial intermediation for the poor. Social intermediation may require subsidies for a longer period than financial intermediation,but eventually subsides whould be climinated.
- ***Enterprise development services or non-financial services*** that assist micro-enterpreneurs. They include business training,marketing and technology services, skills development and subsecor analysis. Enterprise services may or may not require subsidies, depending on the willingness and ability of client to pay for these services.
- ***Social Services or non-financial services*** that focus on improving the well-being of micro enterpreneurs. They include health, nutrition, education and literacy training social services are likely to require ongoing subsidies, which are often provided by the state or through donors supporting NGOs.

MFI (Micro-Finance Institutions) using the minimalist approach normally offer only financial intermediation, but they may occasionally offer limited social intermediation services Minimalists base their approach on the premise that there is a single “missing piece” for enterprise growth, usually considered to be the lack of affordable, accessible short-term credit, which the MFI, can offer. While other “missing pieces” may exist, the MFI recognizes its comparative advantage in providing only financial intermediation.

Development Services Marketing, Business, Training, Production Training, SocialServices Education, Health and Nutrition, Literacy Training 32 comparative advantage in providing.

Recent Reserve Bank of India (rBI) Initiative for Financial Inclusion : The Reservice Bank of India (RBI) continued its efforts towards fulfilling the financial inclusion agenda during the financial year (2017-2018). In this direction, several new initiatives were undertaken during 2017-18.

1. Revamping the Lead Bank Scheme (LBS) : TheLBS was started to ensure economic development of the districts/states by establishing co-ordination between banks and government agencies. In view of changes that have taken place in the financial sector over the years, the Reserve Bank constituted a Committee of Executive Directors of the Bank to Study the efficacy of the scheme and suggests measures for its improvement. The Committee’s recommendations were discussed with various stakeholders and based on their feedback, it has been decided to bring changes in the scheme which include, interalia, streamiling functioning of the State Level Bankers’ Committees (SLBCs) by bifurcating policy and operational issues whereby operational issued would be addressed by specific sub-commiteees and a steering sub-committee would decide on the primary agenda items for the State Level Bankers’ Committees (SLBC); a standardised approach to manage websites of the SLBCs including direction collection of data through respective CBS of all participating banks and a revised agenda for State Level Bankers’ Committees (SLBSC) meetings for more focused reviews on setting up of CBS-enabled banking outlets at the unbanked rural centres (URCs); operations of BCs; digital modes of payments including connectivity; Direct Benefit Transfer (DBT); Financial literacy initiatives; digitisation of land records; and discussion on improving rural infrastructure/credit absorption capacity.

2. Small Financial Banks (SFBs) under the Lead Bank Scheme : SFBs are required to participate in their respective locations, in various for a under the LBS, *i.e.,* SLBC, District Consulative Committee (DCC)/ District Level Review Committee (DLRC) and Block Level Bankers' Committee (BLBC) as regular members from 2018-19 and also be part of the credit planning exercise.

3. Assignment of Lead Bank Responsibility–Under the LBS, one bank in each district is assigned the leadership role and acts as a consortium leader to coordinate the efforts of the banks in that district, particularly in matters such as branch expansion and credit planning to meet the credit needs of the district. The assignment of lead bank responsibility to designated banks in every district is done by the Reserve Bank.As of June, 2018, 20 public sector banks and one private sector bank have been assigned lead bank responsibility in 714 districts across the country.

4. Committee on Medium-Term Path on Financial Inclusion–The Committee on Medium-Term Path on Financial Inclusion (Chairman : Shri Deepak Mohanty, Executive Director), 2015 sought to propel the economy to a medium-term sustainable inclusion path. Drawing upon the recommendations of the Committee, the Reserve Bank focused on strengthening the mechanism for effective credit delivery to the productive sectors of the economy. Some of the major recommendations that were implemented during 2017-18 include the following : (a) BC registry portal has since been launched to enable domestic SCBs, excluding RRBs, to uplaod data pertaining to BCs deployed by them. Subsequently, on stablisation of the database, facility of using BC tracker for public shall be made available; (b) a basic certification course for BCs has commenced. The translation of the syllabus into different languages is also under process; and (c) The CCC scheme for MSMEs which could help bridge the information gap, and thereby help banks to make better credit decisions was launched during 2017-18.

5. Financial Inclusion Plans (FIPs)–In order to have a planned and structured approach to financial inclusion, banks have been adviseed to prepare Board-approved Financial Inclusion Plans (FITs). These FIPs capture banks' achievements on parameters such as the number of outlets (branches and BCs), Basic Saving Bank Deposit Accounts (BSBDAs), overdraft facilities availed in those accounts, transactions in Kisan Credit Cards (KCCs) and General Credit Card (GCC) accounts and transactions through the Business Correspondent-Information and Communication Technology (BC-ICT) channel. The progress made on these parameters as reported by banks as at end-March 2018 is set out in below table.

6. Penetration of Banking Services : The Reserve Bank has taken several steps to provide banking facilities in the unbanked villages in the country. The use of information technology (IT) and intermediaries has made it possible to increase outreach, scale and depth of banking services at affordable cost. Upon issuance of revised guidelines on branch authorisation policy on May 18, 2017 clarifying on 'banking outlet', SLBC convenor banks were advised to consider opening of a CBS enabled banking outlet or a part time banking outlet in the villages with population less than 2000 that still remain unbanked.

Financial Inclusion Plan (FIP) : a Progress Report

Particulars	End-March 2010	End-March 2017	End March 2018**
1	2	3	4
Banking Outlets in Villages–Branches	33,378	50,860	50,805
Banking Outlets in Villages > 2000.BCs	8,390	1,05,402	1,00,802
Banking Outlets in Villages < 2000-BCs	25,784	4,38,080	4,14,515
Total Banking Outlets in Villages–BCs	34,174	5,43,472	5,15,317
Banking Outlets in Villages–Other Modes	142	3,761	3,425
Banking Outlets in Villages–Total	67,694	5,98,093	5,69,547
Urban locations covered through BCs	447	1,02,865	1,42,959
BSBDA–Through branches (No. In Million)	60	254	247
BSBDA – Through Branches (Amt. in ` Billion)	44	691	731
BSBDA– Through BCs (No. in Million)	13	280	289
BSBDA – Through Bcs (Amt. in ` Billion)	11	285	391
BSBDA –Total (No. in Million)	73	533	536
BSBDA Total (Amt. in ` Billion)	55	977	1,121
OD facility aviled in BSBDAs (No. In Milllion)	0.2	9	6
OD facility availed in BSBDAs (Amt. in ` Billion)	0.1	17	4
KCC – Total (No. in Billion)	24	46	46
KCC – Total (Amt. in ` Billion)	1,240	5,805	6,096
GCC – Total (Amt. in Billion)	1	13	12
GCC – Total (Amt. ` Million)	35	2,117	1,498
ICT-A/Cs-BC-Total Transactions (Number in Million)	27	1,159	1,489
ICT-A/Cs-BC-Total Transactions (Amt. in ` Billion)	7	2,652	4,292

** Provisional

Source : As reported by banks

7. Branch Authorisation Policy : The guidelines on Branch Authorisation Policy mandate banks to open at least 25 per cent of the total number of banking outlets opened during a financial year in Unbanked Rural Centres (URCs) (i.e., tier 5 and tier 6 centres). SLBC convenor banks were advised that while opening new banking outlets in URCs, banks should give priority to URCs having population above 5000 (i.e., tier 5 centres). To facilitate banks in doing so, SLBCs were also advised to complie and maintain an updated list of all URCs in the state and review the progress in SLbC meetings.

8. National Strategy for Financial Inclusion : I. In order to systematically accelerate the level of financial inclusion in the country in a sustainable manner, the National Strategy for Financial Inclusion document is being finalised under the aegis of the FIAC to take forward the momentum generated by the Reserve Bank's financial inclusion policies, the government's Jan Dhan programme and the emerging advancements in the field of digital technology.

II. Apart from the overview of the progress made so far in bringing financial inclusion to the hitherto unserved and underserved sections of the population, the document would also provide a critique on the key issues and challenges that hamper financial inclusion in the country. Based on a cross-country analysis, the document would provide a vision and mission for ensuring sustainable financial inclusion in the country, through provision of easy to use, affordable and appropriate financial services to the entire population.

III. With an increased understanding of the inter-linkages among financial inclusion, financial literacy and consumer protection framework, the following stragegy pillars have been identified in the document :

(a) Developing adequate physical and digital infrastructure in the country through providing necessary access points and connectivity.

(b) Designing suitable regulatory framework that balance innovation and risks in the financial sector to enable financial service providers to come up with innovative ways to ensure universal access to financial services.

(c) Focus on increasing financial awareness among various target groups in order to enable prospective customers and new customers to make suitable choices.

(d) Putting in place structures for a robust grievance redressal mechanism to protect the customers' rights and have a timely redressal of their grievances.

(e) Designing of appropriate scientific assessment tools to granularly measure the extent and issues in financial inclusion, and

(f) Fostering an effective co-ordinattion mechanism among all the relevant stakeholders.

SHG–Basnk Linkage in Jharkhand : Self-Help Groups initiatives in Jharkhand have expaned even to the remotest parts of the state. Microcredit, through SHGs, has proved to be one of the most effective ways of making credit available to the rural poor lately Jharkhand is also catching up with other parts of the country in such linkage. Women have not only succeeded in overcoming their over increasing family respojnsibilities, they have organised themselves into SHGs to sustain their families. In rural areas of Dhanbad district, till date these women are running 562 of the 1295 SHGs functioning and they are finding it a better way to change their lives. It can be notedc thatsuch SHGs are becoming increasingly important in improving the state of the womenfolk. Around 6000-7000 women are earning their livelihood from these groups by engaging themselves in fields like floriculture, mushroom farming and horticulture. DRDA is providing all necessary assistance to the SHGs and the state Government gives Rs. 1.25 lakh subsidies to them. NABARD is very much impressed with the women SHGs in Rural Jharkhand, as the recovery rate of loans sanctioned is nearly 100% while that of those run by men is less than 80%. This fact has forced the NABARD to help the deprived women by designing different kinds of poverty alleviation programmes for boosting self-employment among them through providing credits. It may sound strange that most of the members of the SHGs run bywomen have not seen school over primary classes, but each has got tight grip and mastery in micro financing.

Thirteen distri ts of the state have received the second instalment of Rs. 13,534 crore from the Centre for completing the implementation of the rural development scheme like infrastreucture development and training of self-help groups (SHGs) started in the 2007-08 fiscal under the SGSY programme. The beneficiaries are Bokaro (Rs. 153.56 lakh), Chatra (Rs. 84.82 lakh), Deoghar (Rs.

6.07 lakh), Dhanbad (Rs. 145.78 lakh), Dumka (Rs. 209.72 lakh), East Singhbhum (Rs. 26.72 lakh), Garhwa (Rs. 45.48 lakh), Gooda (Rs. 42.03 lakh), Gumla (Rs. 157.29 lakh), Pakur (Rs. 14.50 lakh), Ranchi (Rs. 130.34 lakh), West Singhbhum (Rs. 248.92 lakh) and Simdega (Rs. 19.11 lakh). According to the Dhanbad district rural development authority (DRDA), the total fund (including the first instalment) that Dhanbad has received so far is Rs. 5.6 crore from the Centre and Rs. 168 lakh from the state. 10% of the amount was used to train SHGs and 20% on infrastructure development. The rest was used for loan Subsequent to announcement made by Hon. Finance Minister in the Union Budget 2011-12, a scheme for promotion and financing of Women Self-Help Group (WSHGs) in association with Govt. of India is being imlemented across 150 backward and Left Wing Extremism (LWE) affected districts of the country since March-April 2012. The Scheme aims at

- An anchor NGO/support agency will be selected by LDS in consultation with the DDM. NABARD and DLCC in each of the identified districts for implementation of the project.
- The scheme would be implemented through Bank branches, having CBS facility.
- The identified Bank branch will enter into a MOU with the identified NGO/Support agency.
- The identified NGOs will be eligible for grant assistance maximum of Rs. 10,000 per WSHG.
- All loans to new WSHGs promoted shall preferably be under the cash credit mode.
- NABARD will provide need based awareness and capacity development programmes for key stakeholders under the project.

As on 31 March 2016, the total number of WSHGs promoted and credit linked are 1.88 Lakh and 1.04 Lakh respectively.

Conclusion : Financial Inclusion through Self Help Group (SHG) and Microfinance has important role of development of poor and backward people in Jharkhand/India. Financial Inclusion is being achieved by SHG and Microfinance. It is very good initiative to reach poor and backward class of the society. It is helping poor people to improve their household earning. We have seen and observed by the above study that living standard of poor people has been increasing. there are so many further initiative need to be taken to enhance the financial inclusion of poor and backward class of tribal people of state (Jharkhand). Financial Inclusion, with the help of Self Help Group and Micro financing enhances into two different ways i.e. individual and group level. Government and NGOs efforts are not enough to achieve financial inclusion, it needs to enhance individual understanding and making them aware about the initiative taken by government and other participants of initiative. Developing self esteem among people with the financial development leads to better life of the underprivileged people of society. It helps in poverty alleviation and rural society development.Most of self helpgroups and microfinance benefiter are females. The study of role of financial inclusion and women empowerment of backward or under privileged females need to emphasis. It will helpful for their societal uplift through financially, socially and emotionally. Itwill also help in development of rural women in state and India. Apart from financial support other initiatives to be taken into consideration such as providing self confidence among rural and backward people, providing family support, changing their saving pattern, developing better understanding of Self Help Group, making better understanding of concept of micro financing system, developing political and social harmony among stakeholders such as backward people of state and India. At last better understanding and effective utilization of financial inclusion will leads to society towards social harmony, societal justice, sustainable development and set better accountability of stakeholders. We need Sustainable-Value Based Financial Inclusion rather than only financial Inclusion.

REFERENCES

1. S. Porkodi, Dr. D. Aravazhi, lecturer, Department of Commerce, Argnas Anna Government, Arts College, Villupuram, Tamilnadu, India. International Journal of Marketing, Financial Services and Management Research. ISSN 2277-3622. Vol. 2, No. 3, March (2013).
2. Rangarajan Committee (2008) : "Report of the committee on financial inclusion" Government of India RBI circulars on Financial Inclusion.
3. Ahmed Dermish christoph kneading, Paul Leisman & Ignacis Mas 2012, "Branchless and mobile banking solutions for the poor" (online).
4 Arup Mukherjee & Sabyasachi chakraborty. Dept. of Finance, XISS, Jharkhand, India, "Financial Inclusion of the poor and marginalised in Jharkhand. Analysis of the existing model (online).
5. Armendariz B. and Morduch J, (2007). The Economics of Microfinance, New Delhi : Prentice Hall of India Private Limited.
6. Dasgupta, R. (2005) : Microfinance in India : Empirical Evidence, Alternative Models and Policy Imperatives, Economic and Political Weekly, Vol. 40, No. 12, 1229.
7. Elahi K. Q. and Rahman M. L. (2003) : Micro-credit and Micro-finance : Functional and Conceptual Differences, Development in Practice, 16 : 5, 476-483.

Websites :

www.nabard.org

www.oneworldaction.org

www.rbi.org.in

* * * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Law : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 564-566

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

भारत में इच्छामृत्यु का औचित्य : एक समीक्षात्मक अवलोकन

*अनूप यादव**

वाल्ट व्हिटमैन का मृत्यु के सम्बन्ध में अभिकथन ''मृत्यु से अधिक सुन्दर और कोई घटना नहीं हो सकती।'' इस कथन से ध्वनित होता है कि मृत्यु में मुक्ति और स्वच्छंदता निहित है, अतएव यह एक सुन्दर घटना है, न कि डरावना एहसास। जहां तक इच्छामृत्यु की वैद्यानिकता का प्रश्न है तो इसे हम प्राण और चेतना के अधिकार से जोड़कर देख सकते है। इस प्रश्न से जुड़ा एक दूसरा प्रश्न यह भी है कि प्राण और चेतना पर अधिकार किसका है? यह प्रश्न अहम है कि प्राण या चेतना पर व्यक्ति का अधिकार है अथवा राज्य का? इस प्रश्न को सुस्पष्ट रूप से समझने के लिए हमें प्राचीन भारतीय परम्पराओं तथा पौराणिक दृष्टान्तों का तथा वर्तमान भारतीय परिदृश्य का विश्लेषण करना होगा।

महाभारत काल में गंगा पुत्र भीष्म की मृत्यु को इच्छामृत्यु से जोड़कर देखा जा सकता है। एक असुर के संहार के लिये लोकहित में महर्षि दधीचि ने देवताओं को अपनी अस्थियों को दान देते हुये स्वेच्छया से अपने प्राणों को त्यागा था। ऋषियों मुनियों एवं तपस्वियों से जुड़े ऐसे अनेक दृष्टांत है, जब समाधि लेकर उन्होंने अपने प्राणों का उत्सर्ग किया। भारतीय संस्कृति में वानप्रस्थ की भी परम्परा रही है। वानप्रस्थ आश्रम में वनों में रहकर तप करते हुये लोग शरीर का त्याग करते थे। सम्भवतः इसके पीछे यह अवधारणा रही होगी कि जब व्यक्ति इस योग्य न रह जाये कि वह परिवार और समाज के विकास में अपना योगदान दे सके, तो उसे स्वेच्छा से अपने प्राणों का उत्सर्ग कर देना चाहिये।

जैन धर्म में भी इच्छामृत्यु को मान्यता दी गयी है। जैन धर्म में संधारा का उल्लेख मिलता है। संधारा के अन्तर्गत मोक्ष प्राप्ति हेतु स्वेच्छापूर्वक मृत्यु वरण का प्रावधान है।

उक्त बातों एंव दृष्टांतों से यह स्पष्ट होता है कि पौराणिक परम्पराओं एवं धर्म दर्शन के अनुसार प्राण एवं चेतना पर व्यक्ति के अधिकार को प्रधानता दी गयी है।

इच्छामृत्यु से जुड़ा वर्तमान परिदृश्य एवं परिवेश भिन्न है और प्राण अथवा चेतना पर राज्य के अधिकार की प्रधानता **भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21** में प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता का उल्लेख किया गया है जो कि एक मूल अधिकार है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 में जीवन का अर्थ मानवीय सम्मान के साथ जीवन समझा जाना चाहिये, जीवन का कोई भी पहलू जो उसे सम्मानजनक बनाता हो इसमें शामिल किया जा सकता है, परन्तु जो उसको समाप्त करता है सम्मिलित नहीं किया जा सकता है। जिस प्रकार मृत्यु जीवन से असंगत है उसी प्रकार मृत्यु का अधिकार जीवन के अधिकार से असंगत है। **भारतीय दण्ड संहिता 1860 की धारा 309** के अन्तर्गत आत्महत्या को अपराध माना गया है। इस प्रकार हम देखते है कि हमारे देश के कानूनों में न तो इच्छामृत्यु (Right to Die) और न ही दयामृत्यु (Mercy Killing) की ईजाजत दी गयी है। सम्भवतः इस मनाही को कानून के मानवीय स्वरूप से जोड़ा गया है।

भारत में इच्छामृत्यु या दयामृत्यु की वैधता सदैव ही एक चर्चा का विषय रहा है। यह आम धारणा है कि यदि चिकित्सक की सहायता से निष्क्रिय–इच्छा या दया–मृत्यु को वैधता प्रदान की जाये तो इससे चिकित्सक द्वारा व्यवसाय प्रारम्भ करते समय ली जाने वाली शपथ कि ''किसी को हानिकारित नहीं करेगें'' का उल्लंघन होगा। लेकिन यह धारणा उचित प्रतीत नहीं होती क्योंकि यह वनस्पतिगत जीवन जी रहे व्यक्ति की इच्छामृत्यु को निष्क्रियता से समाप्त किया जाता है तो यह उसके प्रति सहानुभूति और अनुकम्पा होगी न कि कोई हानिप्रद कार्य।

* *एल-एल.एम. नेट*

इच्छा मृत्यु निष्क्रिय हो सकती है या सक्रिय। उदाहरणार्थ, किसी रोगी को जीवित रहने की मशीन अर्थात् रेस्पीरेटर पर रखा गया हो और उसे हटा दिया जाता है तो यह निष्क्रिय दया मृत्यु होगी। इसी प्रकार किसी असाध्य रोग से पीड़ित मरीज को आवश्यक दवाइयां देना बन्द कर देना ताकि उसकी मृत्यु हो जाये निष्क्रिय दया मृत्यु होगी। परन्तु किसी व्यक्ति को, जो जीवन से तंग आकर मरना चाहता है यदि विषैला इंजेक्शन देकर उसकी मृत्यु कारित की जाये तो यह सक्रिय दया मृत्यु का उदाहरण है। आशय यह है क निष्क्रिय दया मृत्यु में कार्य लोप द्वारा तथा सक्रिय दया मृत्यु में कार्य कारित करके मृत्यु कारित की जाती है।

भारत में कुछ मामले सामने आये जहां मरीज के रिश्तेदार या स्वयं मरीज ने अपनी मौत की इच्छा जताई पटना (बिहार) के निवासी तारकेश्वर सिंहा ने 2005 में राज्यपाल के समक्ष यह याचिका पेश की कि उनकी पत्नी कंचन देवी जो सन् 2000 से बेहोश होकर दया मृत्यु दी जाये।

हैदराबाद के 25 वर्षीय **व्यंकटेश** ने इच्छा जतायी थी कि वह मृत्यु के पहले अपने सारे अंग दान करना चाहता है। इसकी मंजूरी अदालत ने नहीं दी।

केरल उच्च न्यायालय ने 2001 में **बी0के0 पिल्लई** के मामले में जो असाध्य रोग से पीड़ित था को इच्छा–मृत्यु की अनुमति नहीं दी क्यों कि भारत में ऐसा कोई कानून नहीं है।

सन् 2005 में उड़ीसा के निवासी **मोहम्मद युनूस अंसारी** ने राष्ट्रपति से अपील की थी कि उसके चार बच्चे असाध्य बीमारी से पीड़ित है। इनके इलाज के लिये पैसा नहीं है लिहाजा उन्हें दया मृत्यु की इजाजत दी जाए किन्तु अपील नामंजूर कर दी गयी।

भारत के उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ ने **अरुणा शानबाग** की दया मृत्यु की याचना में निर्णय देते हुये अभिकथन किया कि विधि के अन्तर्गत निष्क्रिय इच्छा मृत्यु को कुछ शर्तों के साथ अनुमति दी जा सकती है या वैधता प्रदान की जा सकती है, परन्तु न कि सक्रिय इच्छा मृत्यु को, अतः सक्रिय इच्छा मृत्यु भारतीय दण्ड संहिता की धारा 309 में दण्डनीय अपराध यथावत बना रहेगा।

अरुणा शानबाग की इच्छा मृत्यु या दया मृत्यु के प्रकरण में प्रिंकी बीरानी नामक एक सामाजिक कार्यकत्री ने मुम्बई के के0ई0एम0 अस्पताल में वर्षों से चेतनाहीन पड़ी अरुणा शानबाग नामक नर्स की दया मृत्युकारित हेतु याचना करते हुये उच्चतम न्यायालय में याचिका दायर की। पीड़िता (अरुणा) के साथ उस अस्पताल के बार्ड ब्याय ने 37 वर्ष पूर्व लैगिंक शोषण किया था, जिसके परिणामस्वरूप वह विगत 37 वर्षों से स्थायी रूप से वनस्पति स्थिति में चेतनहीन पड़ी है। पीड़िता की दया याचिका खारिज करते हुये न्यायालय की संविधान पीठ ने निर्णय में कहा कि स्थायी रूप से वनस्पति की स्थिति में पड़े हुये रोगियों के लिये निष्क्रिय दया मृत्यु की अनुमति दी जा सकती है। लेकिन विषैले इंजेक्शन देकर सक्रिय दया मृत्यु को किसी भी दशा में अनुमति नहीं दी जा सकती। न्यायालय ने अभिकथन किया कि जब कोई व्यक्ति अवसाद या उदासी में होता है, तो वह आत्महत्या का प्रयास करता है अतः ऐसे समय उसे सहायता और सहानुभूति की आवश्यकता होती है न कि दण्ड की। न्यायमूर्ति मार्कण्डेय काटजू ने कहा कि यद्यपि रेस्पीरेटर जैसे लाइफ सपोर्ट मशीन को हटा देने में वैध माने जाने के लिये कोई कानून अस्तित्व में नही है, परन्तु यदि रोगी अचेतनावस्था में स्थायी तौर पर वानस्पतिक स्थिति में हो, तो कुछ परिस्थितियों में उसे दया–मृत्यु की अनुमति दी जा सकती है।

उच्चतम न्यायालय ने अप्रत्यक्ष इच्छामृत्यु के दरवाजे खोलते हुये यह कहा कि संसद द्वारा कोई कानून बनाये जाने तक यह व्यवस्था उच्च न्यायालयों की निगरानी में जारी रहेगा। जब तक संसद कानून नही बनाता, तब तक मरीज, माता–पिता, पत्नी या पति अथवा अन्य निकट सम्बन्धी, करीबी दोस्त या इलाज करने वाले डॉक्टर की ओर से अप्रत्यक्ष इच्छामृत्यु की माँग की जा सकती है। यह मरीज के हित में है या नही, इस पर उच्च न्यायालय विचार करने के बाद निर्णय देगा। उच्च न्यायालय तीन डॉक्टरों की राय लेने एवं मरणासन्न मरीज के निकट सम्बन्धियों की राय जानने के बाद यह निर्णय करेगा कि अप्रत्यक्ष इच्छामृत्यु की अनुमति दी जाये या नहीं।

वस्तुतः इच्छामृत्यु एक अत्यंन्त संवेदनशील मुद्दा है तथा इसे वैध घोषित करने से पहले इसके विधिक पहलुओं पर गौर करना आवश्यक है। जहाँ तक उच्चतम न्यायालय के फैसले का सवाल है, तो प्रथम दृष्टया इच्छामृत्यु की इजाजत न देते हुए विशेष परिस्थितियों में कुछ एहतियातों के साथ एक निर्धारित प्रक्रिया के तहत

उच्च न्यायालय के विवेकाधिकार के अनुसार अप्रत्यक्ष इच्छामृत्यु की बात की गयी है, जिसे हम एक सन्तुलित निर्णय कर सकते हैं।

वस्तुतः इच्छामृत्यु की स्वीकार्यता के पक्ष–विपक्ष में अनेक तर्क है। यह एक ऐसा संवेदनशील मुद्दा है, जिस पर आम सहमति बन पाना मुश्किल है। जल्दबाजी में कोई भी निर्णय ऐसे संवेदनशील मुद्दे पर नहीं लिया जा सकता है, क्योंकि इसे वैध ठहराकर कानून निर्मित करने की स्थिति में इसके दुरूपयोग की संभावनाओं से इंकार नही किया जा सकता है। यही कारण है कि न सिर्फ भारत में, बल्कि विश्व के अनेक विकसित एवं विकासशील देशों में इच्छामृत्यु की संवैधानिक स्थिति को लेकर बहस छिड़ी हुयी है, और निर्णायक मत सामने नहीं आ पा रहा है। जैसा कि पहले ही इंगित किया जा चुका है कि संवैधानिक दर्जा मिलने की स्थिति में इसके व्यापक दुरूपयोग की संभावना है। ऐसा देखने में भी मिला है। **आस्ट्रेलिया** में सबसे पहले 1995 में इच्छामृत्यु को कानूनी मान्यता देते हुए जायज ठहराया गया। सन् 1996 में वहाँ इच्छा मृत्यु का कानून लागू किया गया। देखते ही देखते वहाँ इच्छामृत्यु के मामलों की बाढ़ सी आ गयी। आए दिन इसके दुरूपयोग के मामले सामने आने लगे जिन्हें देखते हुये वहाँ की सरकार को कदम वापस खींचने पड़े तथा 25 मार्च, 1997 को आस्ट्रेलिया में यह कानून समाप्त कर दिया गया।

मानव अधिकार विशेषज्ञों के अनुसार इच्छा मृत्यु को वैधता प्रदान करने में सबसे बड़ा खतरा यह है कि इसका बड़े पैमाने पर दुरूपयोग हो सकता है। मृत्यु शैय्या पर पड़े व्यक्ति की सम्पत्ति को हड़पने के लिए चिकित्सक के साथ मिलकर जहरीला इन्जेक्शन देकर उसे दया मृत्यु के नाम पर मरवाया जा सकता है। इसी तरह परिवार पर बोझ बन चुके मानसिक रूप से विक्षिप्त, लकवा, कैंसर, या असाध्य रोग से ग्रसित मरीजों पर भी इस कानून की गाज गिर सकती है। अनेक बार जीवन की आस छोड़ चुके गंभीर रोगों से पीड़ित व्यक्ति भी आश्चर्यजनक रूप से ठीक हो जाते है, इसलिये ऐसे लोगों के लिये इच्छामृत्यु उचित विकल्प नहीं है।

उपर्युक्त परिणाम को देखने के पश्चात हम यह कह सकते है कि कुछ विशेष दशाओं में इच्छामृत्यु को संवैधानिक दर्जा दिया तो जा सकता है, किन्तु इसके लिये फूंक–फूंक कर कदम रखने की जरूरत है, ताकि इसके दुरूपयोग की सम्भावना न रहे। भारत जैसे देश में जहाँ भ्रष्टाचार और अराजकता के साथ पारिवारिक विघटन और बुजुर्गों की उपेक्षा का चलन बढ़ा है, पारिवारिक हिंसा की घटनायें बढ़ी है, वहाँ तो और भी अधिक सतर्कता बरती जानी चाहिए।

विशेष परिस्थितियों में इच्छामृत्यु को संवैधानिक दर्जा देने से पूर्व यह नितांत आवश्यक है कि इस विवादास्पद मुद्दे पर संसद में एक परिचर्चा कराई जाए जिससे मिलने वाले रूझानों को देखते हुए अंतिम और स्थायी व्यवस्था का निर्धारण किया जाये। ऐसा करते समय कानूनी, नैतिक, सामाजिक एवं मानवीय सभी पहलुओं को ध्यान में रखा जाये। ऐसा उपाय सुनिश्चित किया जाए कि इसके दुरूपयोग की सम्भावना न रहे।

सन्दर्भ–सूची

1. पाण्डेय, जय नारायण : भारत का संविधान, 46वां संस्करण 2013 सेन्ट्रल ला एजेन्सी, इलाहाबाद
2. परांजपे, डॉ. ना.वि. : अपराधशास्त्र एवं दण्ड प्रशासन, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन
3. चतुर्वेदी, डॉ. मुरलीधर : अपराधशास्त्र एवं दण्ड प्रशासन इलाहाबाद लॉ एजेन्सी पब्लिकेशन
4. कुलकर्णी, डॉ. एन.जी. : लीगेलाइजिंग यूथेनेशिया
5. जोसेफ साउण्डर्स : यूथेनेशिया–नन डेयर काल इट मर्डर (1961)

पत्र एवं पत्रिकाएँ–

1. जजमेंट एण्ड लॉ टूडे।
2. जजमेंट टूडे।
3. द टाइम्स ऑफ इण्डिया।
4. उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका।
5. उच्च न्यायालय दाण्डिक निर्णय पत्रिका।

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Law : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 567-573

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

ENVIRONMENT : CONSTITUTIONAL & JUDICIAL REMEDY IN INDIA

Rakesh Kumar Pathak*

Abstract : In view of Human & natural disasters, there was a widening of existing environmental laws in the country and increased in judicial activity. The boosting population and rapid growth of industrialization causing tremendous burden on the available natural resources. The environmental awareness neccessary in the society to prevent the pollution and to keep the surroundings clean and healthy. The various provisions & laws are made in our Indian constitution for protection of environment. The Supreme Court and High Court haved worked for making environment as a fundamental right widening the constitutional provisions from case to case. PIL is a outcome of judiciary to play the vital role for protection of environment & human life.

Introduction : The human pollution is the main & basic reason of the environment pollution prevailing in India. The expanding human population and industrialisation growth has been know to cause serious environmental disasters .The boosting population placing a tremendous burden on the available natural resources. India's population reached more than 1.30 billion. It is the fastest after China. Mother nature has offered all she had , the earth itself is dark, eared due to population pressure, India pushes ahead with aggressive industrial development, disproportionate excessive cultivation, use of harsh chemical and pesticides and excessive use of ground water, the thousands of industrial clusters nationwide produce big amounts of untreated toxic waste that goes into revires, lakes, forests and landfills . Undisposed garbage and uncontrolled sewage flowing in reverse and sea . Decreased of land quality ,increasing , pollution of underground water and other resources are the main cause of pollution of environment. Which is injurious to the species of flora and fauna. The nonbio degradable plastic bags we openly dump to the fumes generated by various types of vehicles are also causing alarming situation.

The issues of environment are effect of humans activities having known civic consciousness they think only on the about their profite without concern about the impact on the environment of their future life. Day is not for away when not only India but entire world will be converted into deserts. At present India is facing many important environmental challenges. The state of India's environment is in upset at the hands of uncontrolled human activities. We Indians can not put its burden on the shoulders of the government as it is not the government who is solely liable for the deteriorating conditions , it is also common mass who is to be blamed. If We don't fallow the principles of the nature, we would face destruction. Environmental pollution may be classified into: (1) Natural pollution :(2) Man-made pollution.

Natural pollution: Environment is polluted often by natural phenomena, such as earthquake, floods, droughts, cyclones, etc.

* ***Research scholar, Agra Law Collage, Dr.B.R. Ambedkar University Agra, (U.P)***

Man-made pollution : Human activities.

Constitutional Remedies : In this regard the constitution of India has clearly stated that it is the duty of the state to 'protect and improve the environment and to safeguard the forest and wildlife of the country.The states responsibility with regard to the environmental protection has been laid down under **article 48 -A** of our constitution which reads:"as follows: The state shall endeavour to protect and improve the environment and to safeguard the forests and wildlife of the country".

Environmental protection is a fundamental duty of every citizen of this country under **article 51-A (g**) of our constitution which read as follows: 'It shall l be the duty of every citizen of india to protect and improve the natural environment including forest, lake, rivers and wildlife and to have compassion for living creature".

Article 21 of the constitution is a fundamental right which reads as follows:" No person shall be deprived of his life or personal liberty axcept according to procedure established by law. The **forty second amendment** in constitution of india introduced principles of environmental protection in an explicit manner into the constitution. The Stockholm conference honored by reference is in the Air Act and the Environment act a result of effective application of Article 253 of the constitution , which gives the parliament the power to make laws implementing India's international obligations, as well as any decisions made at and international conference,association or other body.

Time and again the Indian Laws have taken a turn and tried adapting to the dynamics of the need.

However there transition phase has always been miserable. There is a lot done, but the fact cannot be denied that a lot is yet to be done. The government of india has established an environmental legal and institutional system to meet these challenges within the overall framework of India's development agenda and international principles and norms. The department of environment was established in india 1980 to ensure healthy environment for the country. This later become the ministry of environment and forests in 1985. the environmental protection act 1986 come into force soon after the bhopal gas tragedy which was the major leak of toxic chemical gases accurred from the Union Carbide chemical plant in the city of bhopal in 1984.

Ministry of Environment and Forest Laid Down the Following principle—

(i) Conservation & survey of flora, fauna,forests and wildlife .

(ii) Prevention & control of pollution.

(iii) Afforestation &restoration and regeneration of degraded areas.

(iv) Protection of environment all within the framework of legislation

"**Article 32** of the Constitution of India also provides protection for removing the pollution of water or air which may be detrimental to the quality of life." The government of india has enacted the following acts for prevention and control of pollution on environment on various points :

(i) Wildlife (Protection Act) 1972 ,

(ii) The Indian Forest Act 1927 ,

(iii) The Water (Prevention Control of Pollution) Act 1974,

(iv) The Air (Preventions Control and Pollution) Act 1981,

(v) Environment (Protection Act) 1986,

(vi) Noise Pollution (Regulation and Control) Rules ,2000

(vii) The Series Act, 1867

(viii) Obstruction & Fairways Act, 1881

(ix) Municipal Solid Waste Management Rules, 2000 .

(x) Judicial Activism

A number of policy and law reforms measures were catalyzed by the Bhopal tragedy, and in this effort, an already activist judiciary has been unwilling to play the role of a passive spectator. Supreme court and high court worked from case to case for making clean environment as fundamental right and extending its boundaries to formulate the right for compensation clean water and air. One of the major outcomes of bhopal disaster is the Environment Protection Act (EPA). The principle of absolute liability was established and liability can be fixed even if there is no negligence on part of the accused. Due to the bhopal gas tragedy government passed the Public Liability Insurance Act, 1991 which provides for compulsory insurance of any unit or factory undertaking a hazardous activity.

The most characteristic feature of the indian environmental is the important role played by the public interest litigation. The majority of the environment cases in india since 1985 has been brought before the court as writ petition normally by individuals. In india it was **Justice P.N Bhagwati** and **Justice Iyer** through there landmark judgement made at clear path to proceed on the road of PIL It is the indian judiciary which has taken a lead in terms of the actual immediate effects in the matter of the environment. It prompted the NGO and public to approach the court as a last resort. The glory of delivering several at admirable landmark verdicts goes to the Supreme Court of india. It was Mr. M.C Mehta who received the concept of environmental jurisprudence in india through PIL some of the landmark judgement having fair share in development of environmental jurisprudence in India are :- **Andhra Pradesh Pollutiing Industries case[1] :** The supreme court directed that an amount of 20 million should be paid to the farmer who had lost their crops and cattle due to air and water pollution. The authorities are directed monitor setting up of setup pollution control devices by the polluted industries.

The Calcutta High Court in the case of **Moulana Mufti Syed Md NoorurRehman Barkati v. State of West Bengal[2]**, stated that : "The noise pollution rules restricting the use of loudspeakers for call of azan before 7 am as per the Noise Pollution Rules for the time being do not violate the right to equality and freedom of religion. It held that the use of loud speakers and microphones before 7 am disturbs and takes away a person s right to sleep."

In **Chhetriya Pradushan Mukti Sangharsh Samiti v. State of U.P. & Others [3]** court observed that: "Every citizen has fundamental right to have the enjoyment of quality of life and living as contemplated by **Article 21** of the Constitution of India. Anything which endangers or impairs by conduct of anybody either in violation or in derogation of laws, that quality of life and living by the people is entitled to take recourse to **Article 32** of the Constitution."

Guiding Principles evolved by the Supreme Court to protect natural environment : In the mid-nineties, Supreme Court invoked a number of internationally accepted principles in issues pertaining to the environment in its decisions. Supreme Court also started to rely heavily on Article 21 of the Constitution and went ahead to give an expansive meaning to *"environment"* taking within its fold the quality of lifes .The environmental jurisprudence began to come into its own at about this time.

Specific Interventions by the Higher Judiciary : The wide range of cases on various issues related to environment decided by the Supreme Court to bring enviro-justice can be appreciated. Some of these cases are :

"Taj Pollution case[4] Ganga Pollution case[5], Vehicular Pollution in Delhi[6] Pollution by Industries in Delhi case[7] , Pollution in River Yamuna[8], Ground Water manegmrnt[9], Pollution in Noida[10], Ghaziabad area[11], Noise Pollution[12] Import of Hazardous Waste[13], Pollution in Porbandar[14], Gujrat Management of Municipal Solid Waste[15], Pollution in Medak District[16], Andhra Pradesh Pollution by Chemical Industries in Gajraula Area[17], Pollution in River Gomti, Protection to wildlife[19], Preservation of Forests[20], environmental impact assessment and rehabilitation of displaced persons[21], etc."

These judgments have shown the judicial sensitivity, creativity and activism towards environmental justice to common people through Court s attitude particularly in PIL In ***Indian Council for Enviro-*** Legal Action & Orthrs **v.** ***Union of India***[22] the Supreme Court accepted the ***Polluter Pays principle*** . The notion of ***"Sustainable Development"*** was expressed and given effect to by the Supreme Court in ***Vellore Citizens Welfare Forum* v. *Union of India & Ors*** [23] this doctrine was firstly recognized in the Stockholm Declaration, 1972. It was later given distinct form in the World Commission on Environment and Development, 1987 in its report called *"Our Common Future"* chaired by Prime Minister of Norway ***Mr. Gro Harlem Brundtland*** . Further helpful debate on the ***"Polluter Pays principle"*** and the ***"Precautionary Principle"*** is recognized in the case of ***A.P. Pollution Control Board* v. *Prof. M.V. Nayudu*** [24] in this case, the Indian Supreme Court made a reference to the Stockholm Declaration and the U.N. General Assembly Resolution on World Charter for Nature, 1982. Another major doctrine recognized by the Supreme Court is the „ ***public trust doctrine*** . This principle evolved in India for consideration in the case of ***M.C. Mehta* v. *Kamal Nath***.[25]

In ***Rural Litigation and Entitlement Kendra, Dehradun and Others* v. *State of U.P. and Others,***[26] the Supreme Court ordered shutting of all limestone mining in the Doon Valley taking notice of the fact that limestone mining in the region had unfavorably affected water springs and ecosystem. The Court in ***T.N. Godavarman Thirumulpad* v. *Union of India***[27] has stated that it would not be feasible or in the larger interest to allow mining activities based on earlier licenses.

M.C. Mehta* v. *Union of India , ***Vellore Citizens Welfare Forum* v. *Union of India***[28] and ***M.C. Mehta* v. *Union of India (Calcutta Tanneries Case),***[29] several factories were operating in violation of the mandatory provisions of the Water Act and EPA. The Apex Court was also imposed similar fine in the case of ***Enviro-Legal Action* v. *Union of India***.[30]

Taking cue from Article 32, it was also directed that: *"The fine be deposited in the "**Environment Protection Fund** which was to be utilized for compensating the affected persons and for restoring the damaged environment."*

Committees Appointed by the Supreme Court : Supreme Court has taken a visibly activist bent since the beginning of this millennium if not before it. This is evident from Court s active engagement, in many respects, in the protection and promotion of natural environment.Some of the committees appointed by the Supreme Court include :

Bhargava Committee : It was constituted to enquire whether the hazardous mines were meeting safety standards, whether quarrying is possible cause oflands due to quarrying actions.

Valdia Committee : It was an expert committee tasked with looking into the question of air, water and environmental pollution and ecological damage due to mining and the exploit of limestone crushers.

Manmohan Singh Committee : It was tasked with eliminating community risk by looking after the security and toxic waste management features of Shriram Foods and Fertilizer Industries.

Nilay Chaudhry Committee : It was another Supreme Court appointed Committee of Experts to advise on matters related to Shriram Foods and Fertilizer Industries.

Bandopadhyaya Committee : This Committee was headed by *Mr. Bandopadhyay* was also formed to look into some of the characteristics cited above and also a Monitoring Committee called the ***Geetakrishnan Committee*** to check the directions issued by the higher judiciary.

The Apex Court in India is overloaded with a huge backlog of cases. It may be respected that in order to have successful prevention of environmental pollution, environmental issues should be disposed off quickly, which is impossible in the present situation of judicial management. Further, the Court could not deal cases involving pollution of air and water and other related issues. These cases have added tremendous burden on the High Courts and the Supreme Court. Therefore, these courts wanted an urgent call for a substitute forum so that environmental cases could be disposed off without much delay. The Supreme Court in many cases opined that :

"It would be desirable to have the creation of "environmental courts on the regional basis with a professional judge and two experts drawn from the ecological science research group."

To realize the above imperative and in order to provide a forum for successful and speedy disposal of cases involving multidisciplinary issues relating to environmental protection. That may mitigate the procedural ills of the regular courts in case of any misfortune happening while managing any hazardous activities; the legislature enacted the **National Green Tribunal Act, 2010** (herein after referred to as NGT). NGT was formed to give effect to India s duties arising out of numerous resolutions taken at international conventions to which India has been a signatory. The acknowledgment of *"right to healthy environment"* as a integral part of right to life under Article 21 was also an enabling pronouncement that necessitated setting up of some dedicated body on environment.The Act establishes a specialized Green Tribunal headquartered currently in New Delhi with five NGT benches located in different parts of the country (The tribunal also sits in Bhopal, Pune, Kolkata, Allahabad and Chennai).

Thus, the Tribunal with its Eastern, Central, Western and Southern Zonal benches reaches all corners of the country and ensures easy accessibility to environmental justice and expeditious disposal of cases.The NGT issued a various directions and orders from its inception. These are as follows :

1. NGT Bhopal lifts 200 m rider on Kaliasot green belt.

2. On Ganga pollution issue the direction of NGT to UP government.

3. On violation of environment norms by Talabira-1 Coal Mine the NGT issues notices.

4. NGT appoints panel to look into grossly polluting units.

5. Polluter Pays Principles to Pay and Pollute Principle: In the case of ***Sri Sri Ravi Shankar's Art of Living.***

Conclusion : It is a evident that there is a ample of constitutional and legislative provisions on environment protection in india. But despite of these legislation rules and regulations protection and preservation of the environment is still a pressing issue. Hence there is a need for an effective and efficient enforcement of the constitutional and the other environmental legislation. India is the land of river and harbours. There are many rivers in india. The indian river's are increasingly becoming dump sites for domestic industrial , and agricultural wastes. Polluted environment endangers the human race by threatening as several on planet earth. The government of india is spending a lot of money for cleanliness of rivers specially Ganges and Narmada. The main stimulus for environmental judicial

activism come from Bhopal Gas tragedy. After which there was widening of existing environmental laws in the country and increase in judicial activity through PIL. This has been a achieved by interpreting environment as a fundamental right in the Constitution (Article 21) and by imposing obligations on the states to carry out its duties as guided by the Directive principles (Article 48 A and 51 A). The court directed the Central and State Governments to take necessary steps to prevent illegal mining and re-afforesation in the area of mining. In the light of judicial judgement government has enacted the **National Environment Appellate Act 1997,** and the government established the tribunals.. Therefore there is emergence of the concept of right to environment as a fundamental right as can be seen in various judgements mentioned above.

Thus, in india the judiciary has reinterpreted Article 21 to give it an expanded meaning of including the right to a clean safe and healthy environment class actions have been entertained by the Supreme Court under Article 32 of the constitution as being part of public interest litigation actions . Therefore the judiciary took the lead and played a key role in protecting and preserving the environment through its judicial pronouncement. The high court also be granted this jurisdiction under Article 226 have intervened by passing writs, order, and directions in appropriate case thereby giving birth to an incomparable environmental jurisprudence in the form of the constitutional right to healthy environment. In public perception the judiciary is the last hope and it is necessary that the executive enforces its orders. The very common causes of environment degradation which can be clearly pointed out the population growth, the economic growth associated with the affluence factor and change of technology.. the change of technology causes planned obsolescence causing the generation of more and more wastes which in turn prove ecologically harmful. Short term interest of private maximization, further, hamper the process of replacement of absolete technologies by the ecologically benign technologies. Awareness of environmental laws in society plays a vital role in prevention and control of pollution in industrial as well as at community levels. Moreover, awareness is essential for the action.

REFERENCES

Cases :

1. Andhra Pradesh Pollutiing Industries case (1996) 6 SCC. 26
2. Moulana Mufti Syed Md NoorurRehman Barkati v. State of West Benga AIR 1999 Cal 15.
3. Chhetriya Pradushan Mukti Sangharsh Samiti v. State of U.P. & Others AIR 1990 SC 2060.
4. AIR 1991 SC 420.
5. AIR 1985 SC 652.
6. (2010) 1 SCC 500.
7. M.C. Mehta v. Union of India &Ors., AIR 1997 SC 734.
8. M.C. Mehta v. Union of India &Ors., AIR 1997 SC 1037.
9. M.C. Mehta v. Union of India &Ors., 1998 (6) SCC 60.
10. M.C. Mehta v. Union of India &Ors., (2002) 9 SCC 481, 483, and 534.
11. Writ Petition (Civil) No.725/1994, News Item „HT , dated 18.7.1994.
12. M.C. Mehta v. Union of India, 1997 (11) SCC 812.
13. Research Foundation for Science, Technology and Natural Resource Policy v. Union of India & Ors., (2000) 9 SCC 41.

14. Dr. KiranBedi v. Union of India &Ors., Writ Petition (Civil) No. 26/98.
15. Dr. B.L. Wadehra v. Union of India &Ors., AIR 1996 SC 2969.
16. Indian Council for Enviro Legal Action & Ors. v. Union of India & Ors., (1996) 3 SCC 212.
17. Imtiaz Ahmad v. Union of India &Ors., Writ Petition (Civil) No.418/1998.
18. Vineet Kumar Mathur v. Union of India &Ors.,
19. State of Bihar v. Murad Ali Khan, AIR 1989 SC 1.
20. T.N. Godavarman Thirumalpad v. Union of India, (1997) SCC 267.
21. N.D Jayal v. Union of India, AIR 2004 SC 1 (Supp) 867.
22. Indian Council for Enviro-Legal Action v. Union of India AIR 1996 SC 1797
23. Vellore Citizens Welfare Forum v. Union of India & Ors (1996) 5 SCC 647.
24. M.C. Mehta v. Kamal Nath. (1997) 1 SCC 388, (1999) 1 SCC 702, (2000) 6 SCC 213 and (2002) 3 SCC 653.
25. Rural Litigation and Entitlement Kendra, Dehradun and Others v. State of U.P. and Others AIR 1985 SC 652.
26. T.N. Godavarman Thirumulp v. Union of India (2010) 1 SCC 500
27. M.C. Mehta v. Union of India (2000) 6SC 1997.
28. Vellore Citizens Welfare Forum v. Union of India AIR 1996 SC 2715.
29. M.C. Mehta v. Union of India (1997) 2SCC 411
30. Enviro-Legal Action v. Union of India AIR 1996 SC1069

Books

1. Environment law; S.C Shastri; Eastern book company, second edition (2005)
2. Environmental protection law and policy in India ;Kailash Thakur; Edition ;Deep and deep Publication private limited (2007)
3. Environmental laws ; I.A. Khan ; Central agency Allahabad (2002)
4. Shorter Construction of India;D.D Basu; Wadhwa & Company; Edition (2003)
5. Law Relating to Protection of Human rights; Modern Law Publication;Edition (2004)

* * * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Zoology : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 574-575

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

Mosquitoes Biodiversity in Kumaun, Uttarakhand (India)

*C. P. Singh**

ABSTRACT : *An Intensive survey on the Biodiversity of mosquitoes of kumaunUttarakhand was conductedduring present investigation total of 109 specimen, 47 male and 62 female.The culexfuscannuswasfound to most abundant followed by An.fluviatilisand Aedesaegypti.Less number was Culexvishnui. All these mosquito species outnumbered in the outdoor environment. Open drainage sewage and ditches which show that these places are more prone to the infectious.*

We conclude that outdoor environments viz-sewage,ditches, canal cattle sheds, ricefield, construction site are better habitats for the sustenance of mosquitoes.

Key words*: - Biodiversity, Humidity, Vector borne.*

INTRODUCTION : Biodiversity on earth is facing numerous crises and threat. Most prominently by a large scale exploitation of resources and habitat to fulfil the demand of an exponentially growing human population (5).Kumaun region of Uttarakhand are hot spot of mosquito diversity.(3),Rainfall plays an important role in transmission of vector borne diseases,because water not only provides the medium for the aquatic stages of mosquitoes life but increases the relative humidity and there by the longevity of the adult mosquitoes.Rain may prove beneficial to mosquito breeding if it is moderate.(4).Currently the insect-transmitted diseases are highly fatal and prime cause of illness and death the world over. (1).

MATERIAL AND METHODS : The actual site selected for the present study in kumaun belt of Uttarakhand are Kathgodam,Garmpani,and Haldwani town areas. We collect the mosquitoes from both indoor human dwelling and outdoor human dwelling,Rice field,Ditches,Canals,and Cattlesheds.The collected mosquitoes were first narcotized separated and sorted out genera wise and then identified (2) perman hour density(PMHD) of vector mosquitoes collected from every possible indoor habitats like cattle shed, and mixed dwelling. Was calculated using following formula-

PMHD = nx60/p Xt

Where p = no of person involved during collection

t = time spent in min.

n = total no of each mosquitoes species.

RESULTS AND DISCUSSION : During present investigation from kumaun region total of 109 specimens,47 male and 62 female(Table-1) The *culexfuscannus*wasfound to most abundant followed by *An.fluviatilis* and*Aedesaegypti.*less number was *Culexvishnui.* All these mosquito species outnumberedin the outdoor environment. Open drainage sewage and ditches which show that these places are more prone to the infectious.

We conclude that outdoor environments viz-sewage,ditches,canal cattle sheds, ricefield, construction site are better habitats for the sustenance of mosquitoes.

---

* *Associate professor, Department of zoology, Govt, college churiyala, Haridwar.(Uttarakhand).*

Table 1- List of identified mosquito species during April 2015-Oct 2015 from different localities.

S.No	Organism	Male	Female	Total
01	An. aconitus Donitz	01	10	11
02	An. annularisVender wulp	03	05	08
03	An. culicifaciesGiles	05	03	08
04	An. fluviatilisJames	06	08	14
05	An. gigasGiles	02	01	03
06	An. maculatusTheobald	05	07	12
07	An. subpictusGrassi	06	08	14
08	Cx. fuscanusWiedman	07	10	17
09	Cx. vishnuiTheobald	06	03	09
10	AedesaegyptiLinnaeus	06	07	13
Total		**47**	**62**	**109**

REFERENCES

1. Borah,R,Kalita,M.C. Kar,A, and Talukdar,A.K(2010) Larvicidaleffiency of Toddaliyaasiatica Linn. Lam against two mosquito vectors *Aedesaegypti*and *culexquinquefasciatus.***Afr.J.Biotechnol,9 (16);2527-2530**.
2. Christophers,S.R.(1933) The fauna of British India including Ceylon and Burma.Diptera;iv,familyculicidae, tribe Anopheline.**London,Taylor and Francis.p 371**.
3. Devi,N ,Pemola,Jauhari,R.K.(2005) Climatic variables and malaria incidence in Dehradun.Uttarakhand India. **J.Vect.Borne.Dis,43(3) 21-28**
4. M.C.Michael,A.J.Martens W.J .M (1995) The Health impact of global climate changes. Grasping with scenarios predictive models and multiple uncentainties.**Ecosyst.Hlth.1; 23-33.**
5. Mc. keeJ.K, Chambers E.N.(2004) Behavioral mediators of human population effect on the global biodiversity losses. **Ecological studies, 214; 47-59.**
6. Thomson,F.W.(1909) Notes on culicidae of Dehradun.**J.Trop.Med.6;314-315**.

* * * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Zoology : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page 576-581

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

"IMPACT OF MELATONIN ON PULMONARY FIBROSIS & LUNG ASSOCIATED IMMUNITY IN ALBINO RAT"

Sonkar Manish Mishra Devbrat***

Abstract

Pulmonary fibrosis (PF) is a lung disease in which excessive deposition of collagen in the matrix of alveolar cells through which impairments of lung dysfunction. Excessive deposition of matrix disrupt the architecture of lung & its function. Pulmonary fibrosis is symptomized by inflammatory cell proliferation, alveolar epithelial injury, fibroblast, myofibroblast & extra cellular matrix deposition. PF is rare but severe disease with a high mortality rate within 3-5 years of diagnosis (Hao et al 2015). Two oral drugs, pirfenidone & nintedanib have recently gained approval to treatPF.

Lung is directly exposed to foreign antigens & varying type of microbial pathogens in the environment. Therefore, animal health depends on the successful control of pathogen invasion & replication at the bronchus- associated mucosal surface & in the lung tissue. To reduce the problems of invasion & attack of harmful factors, the lung has a well organized system of defense. The lung associated immune system (LAIS). LAIS include bronchus associated lymphoid tissue (BALT), non-BALT, free lymphocytes, free alveolar respiratory macrophages (FARMs) etc.

Melatonin is a secretary products of pineal gland & normally play role in regulating circadian rhythm, sleep & awake cycle, immune system function, inhibiting ageing &tumor growth. Its immunostimulatory, anti-oxidative& anti-inflammatory action cannot be neglected in inflammatory & allergic diseases.

Key words : *PF, BALT, FARM*

INTRODUCTION :

Several studies have exposed that pulmonary fibrosis is associated with infection, inflammation & oxidative stress & the use of antioxidants, especially melatonin, contributes to the inhibition & control of fibrosis expansion Budinger, G.R. et al. (2011). Melatonin is highly beneficial effects for many organs & tissue. The functions of melatonin are either mediated by receptors or they are receptor independent. In addition to regulating circadian rhythm, melatonin regulates several molecular pathways of inflammation, oxidative stress & cellular injury. Melatonin also has been reported to have vasorelaxant & anti-fibrotic properties. Over expression of melatonin receptors is found in fibroblast in human hypertrophic scar tissue but not in normal skin, Das N, Mandala A. Naaz s. Giri S, Jain M, Bandyopadhyay D. Rieiter R.J. Roy S.S. (2017).

**Research Scholar Dept. Of Zoology, T.D. College Jaunpur*

***Asstt. Prof.Dept. Of Zoology T.D. College Jaunpur 22002*

Lung associated immune system (LAIS) comprises of bronchus-associated lymphoid tissue (BALT), non BALT nodules, lymphocytes, epithelial cells etc. The frequency of occurrence of BALT is 100% in rabbits & rats by pabst & Gehrte (1990) whereas BALT is not recognized in normal human. BALT is present at lower frequency in smokers (Richmonal et at 1993).

Many reports suggest that the induction of BALT depends on intratracheal administration of antigens, resulting in the structural& functional development of BALT. BALT uptake antigens from the airways & subsequent local production of antigen-specific IgA& IgG, thereby working as an inductive tissue for local immunity. Melatonin regulates the immune system by affecting cytokine production in immuno-componentcells.

Identification of new biomarkers associated with pulmonary fibrosis is a growing field of research. Potential IPF biomarkers derived from activated alveolar macrophages include CCL18, CCL2, IL-8 & calgranulin-B. There are four surfactant proteins (SP-A, SP-B, SP-C & SP-D); each one has different biological functions. SP-A & SP-D are contribute to the host's lung immunity.

MATERIALAND METHODS :

Experiments were performed within the framework of revised animals committee for the purpose of control & supervision of experiments on animals (CPCSEA) act of Government of India on animal welfare. The Experiments were conducted on male Albino rat. The Rats were acclimatized under our laboratory condition prior to the experiments. The Experiments were set after acclimatize the rat. The male albino rats were grounded as follows-

Control Group	Bleomycin	Melatonin	Bleomycin +Melatonin
4 male	4 male	4 male	4 male

The Groups were made after weight of male rats. The Rats were the approximately equal weight. The Animals were in animal cage & provided with mice feed pallet & water. The animals were under standard conditions of temperature ($27^{0C} \pm 2^{0C}$) & humidity (60 +5%) with an alternate light & dark cycles. The Rats were develop the signs of pulmonary fibrosis after 4-5 weeks post administration of bleomycin at a dose of 5 mg/kg body weight viathetracheal cannula Kolb M. Bonella F. Wollin L. (2017). Melatonin were dissolved in 10% ethanol & further diluted in saline (0.09% Nacl) to give a final concentration of 1% ethanol, this solution were administrated intra-peritoneally at a dose of 4 mg/kg. daily for 15 days at the evening. After the termination of experiment the animals were sacrificed & lung lavage, lung tissue & blood serum were collected for study of different parameters. Lung tissue were washed in phosphate buffer saline (PBS) & fixed in neutral formalin for 72 hours. After fixation, tissue were dehydrated in a series of alcoholic grade, xyline & embedded in paraffin wax for block preparation. The block were fixed in microtome & cut transverse sections at $6\mu m$ thickness & provides a ribbon shaped sections. The sections were further taken for re-hydration processing & stained with Harris hematoxylin & eosin before this process $6\mu m$ thick section mounted on gelatin (1%) coated slides which helps in adhesion of tissue section on the histologicalslides.

RESULTS :

Morphological analysis & symptoms : There was a significant effects on the experimental groups when compare with control groups. Bleomycin treated animals groups were unhealthy, body weight probably decreases (P<5-10%) in comparison with control groups. They were lazy, inactive, sleep more & breathing rate high. They have symptoms of respiratory disorder like pneumonia & asthma, Southern, L.R. et al. (2015).Melatonin treated groups which not injected with bleomycin they

were healthy like a control groups but bleomycin & melatonin treated groups were showing symptoms of not completely likes control groups & only melatonin treated group. They were symptoms & feature not exactly like control groups. It indicates that melatonin recover the animals related with respiration problems at same extent (level). It is a hope for researchers to the use of melatonin in near futures.
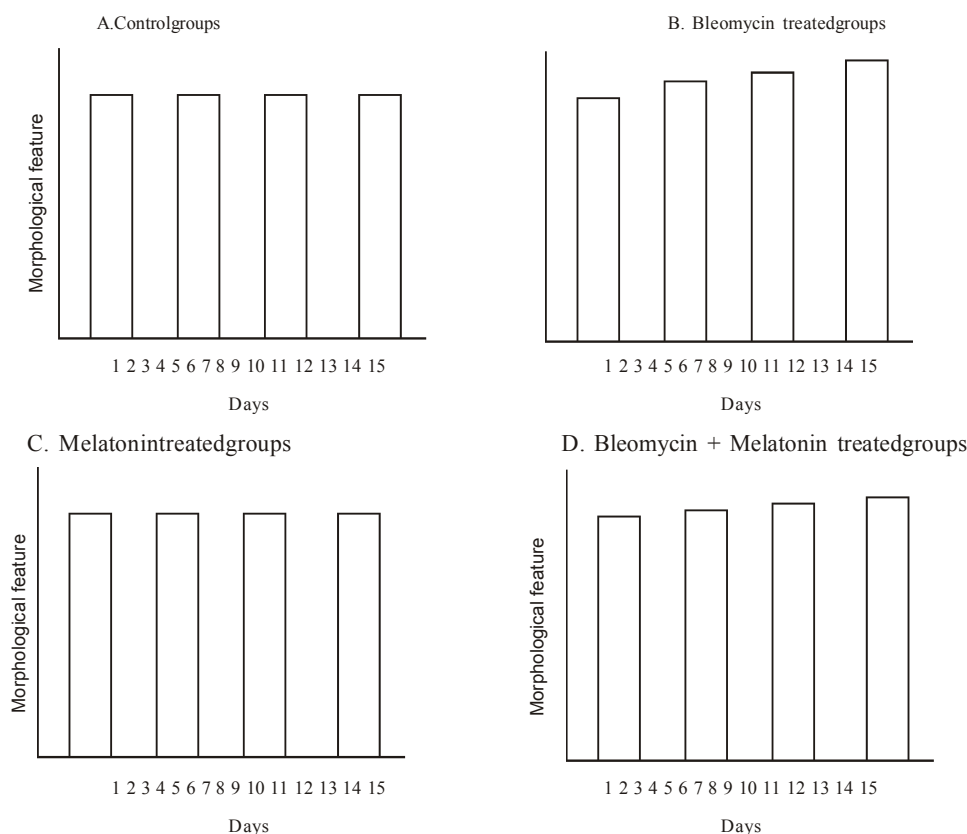
Fig. Statical data showing changes in morphology of lung tissue after completion of Experiments

HISTOLOGICALANALYSIS :

There was a significant change in the few treated groups in comparison with control group & others. After observation of histological slides of belomynin treated groups it confirms that there was scars formation in the alveoli of lung tissue but in the melatonin & control groups there was no scars in alveolar cells of lungs. After observation of bleomynin & melatonin treated histological slides in the microscope there were scar's formation become reduce at some extent it means that melatonin helps in the reduction of pulmonary fibrosis, Hu W; MaZ., Jiang S., Fan C., Deng C., Yan X., LvJ. Reiter R.J. Yang Y (2016). It is a hope for scientist & researchers for furthers works on this chemical messenger.

A. Controlgroups C. Only Melatonin treatedgroups

B. Bleomycinetreatedgroups D. Bleomycin & Melatonin treatedgroups
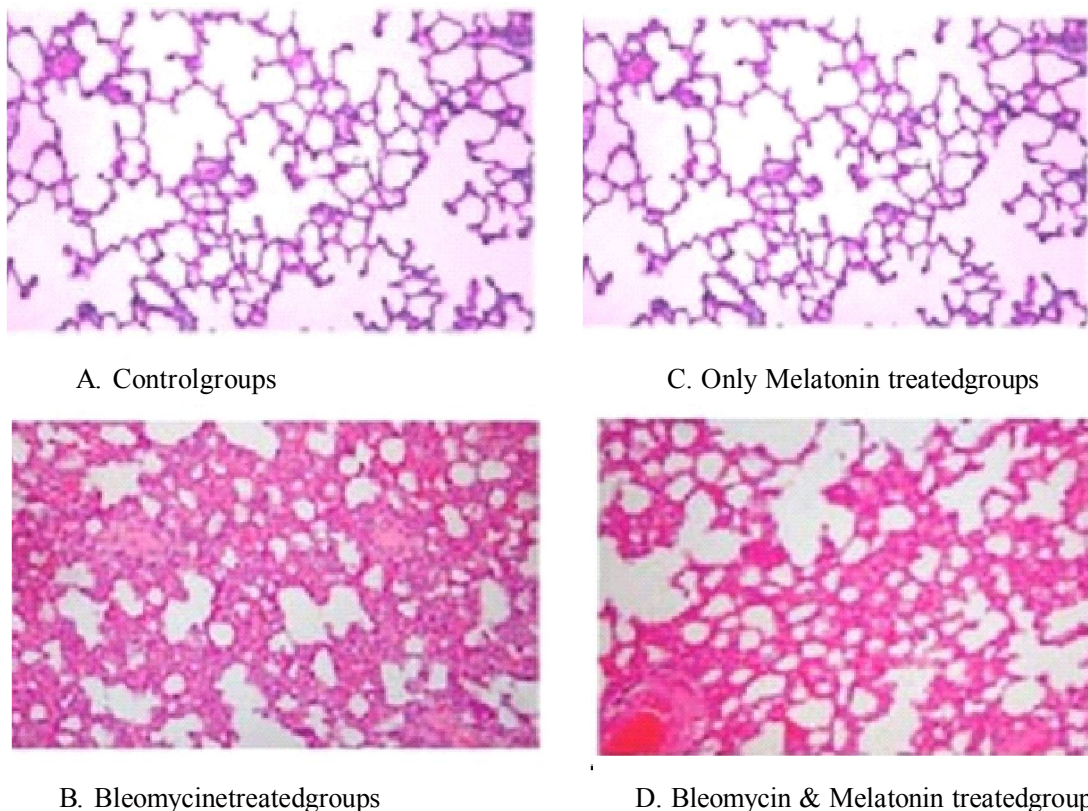
Fig. Histological analysis of Rat lung's after termination of experiments.

IMMUNO-HISTOLOGICALANALYSIS :

There was a large size (P<0.02) of BALT & non-BALT nodules in comparison to control groups. There was also a number of B-Lymphocytes & T- lymphocytes become increase which play role in humoral& cell medicated immunity. It suggests that melatonin regulates immunological pathways which also induce the production of lymphocytes. Calvo J.R. Gonzalez-yanes C. Maldonado M.D. (2013).

DISCUSSION & CONCLUSIONS :

In the present scenario related with respiratory problems in rats specially pulmonary fibrosis which causes major damage to lungs the rat becomes threats & their survival after diagnosis was very less (P<0.02 %) on the one side but in other side lung associated immunity (LAIS) specially BALT, non-BALT nodules & lymphocytes is a hope for the solve of this problems. There was also a all-round chrono-biomolecules (Melatonin) which induce immunological pathways & reduces lungs tissue scars (pulmonary fibrosis) formation in rats at some extent. It was a hope for human welfare by the scientist & researchers. There was two oral small molecule drugs, pirfenidone & nintedanib, gained approval to treat pulmonary fibrosis in humans. No one in India is working exactly on role of melatonin on pulmonary fibrosis & lung associated immunity.

REFERENCES

1. Maheshwari U, Gupta D, Agrawal AN, Jindal SK (2004). Spectrum & diagnosis of idiopathic pulmonary fibrosis. Indian J Chest Dis Allied Sci. 46:23-6.

2. Magi B, Bargagli E, Bini L et al (2006). "Proteome analysis of bronchoalveolar larvae in lung disease; Proteomics. 6(23)6354-6369.
3. Wang X (2009). The ant apoptotic activity of melatonin in neurodegenerative disease. CNS Neurosci Ther.5:345-357.
4. Frankel SK, Schwarz MI (2009) Update in idiopathic pulmonary fibrosis Curr Opin Pulm Med. 15(5):463-469.
5. Ahmad R & Halder C (2010) Melatonin & androgen receptor expression interplay modulate cell mediated immunity in tropical rodents Funambulist pennati. Scand J Immunol71:420-430.
6. Emblom-callahan MC, Chhina MK, Shlobin OA et al (2010). "Geneomic phenotype of non-cultured pulmonary fibroblasts in ideopathic pulmonary fibrosis, " Genomics 96(3):134-135.
7. Kharwar RK, Haldar C (2011). Anatomical & histological profile of bronchus - associated lymphoid tissue & localization of melatonin receptor types (Mel1a & Mel1b) in the lung associated immune system of a tropical birds perdicula asiatica. Acta Histochem.113:333-339.
8. Nathan SD, Shlobin OA, laleir N et al (2011). Long –term course & Prognosis of idiopathic pulmonary fibrosis in the new millenium chest. 140(1):221-9.
9. Budinger, G.R. et al. Epithelial cell death is an important contributor to oxidant-mediated acute lung injury. Am.J. Respir. Crit care Med. 183, 1043-1054 (2011).
10. Yang IV (2012) Epigenomics of idiopathic pulmonary fibrosis. Epigenomics 4(2):195-203.
11. Calvo J.R. Gonzalez-yanes C. Maldonado M.D. The role of melatonin in the cells of the innate immunity. A review J. Pineal Res 2013;55:103-120 doi.10.1111/Jpi.12075.
12. Govender J, Loos B, Marais E et. al (2014). Mitochondrial catastrophe during doxorubicin – induced card toxicity : a review of the protective role of melatonin J. Pineal Res.57:367-380
13. Martinez-Martinez E. Jurado-Loker R, Valero-Meenoj M et al (2014). Leptin induces cardiac fibrosis through galectin -3, mTOR & oxidative stress : Potential role in obesity. J Hypertens.32:1104-1114
14. Taslidare E, Esreloglu M, elbe H et al (2014). Protective effect of melatonin & qulration on experimental lung injury induced by carbon tetra chloride in rats. Exp lung Res.4:40:59-65.
15. Acuna-castroviejo, D. et al Extra pineal Melatonin: sources, regulation & potential functions. cell Mol. Life Sci. T1, 2997-3025(2014).
16. Hong. Y., Won J., Lee Y. Lees, Park K., Chang K. T. Melatonin treatment of apoptosis, autophagy, & Senescence in human colorectal cancel cells J. Pinceal res. 2014; 56:264-274. doi:10.1111/jpi.12119.
17. Woodcock HV, Maher TM. (2014). The treatment of idiopathic pulmonary fibrosis . Fl000 prime Rep6:16.
18. Yang GH, Li YC, Wang ZQ et al (2014) Protective effect of melatonin on cigratte smoke-induced restenosis in rat carotid arteries after balloon injury. J. Pineal Res.57:451-458.
19. Zhang HM, Zhang Y (2014). Melatonin : a well documented antioxidant with conditional pro-oxidant actions. J Pineal Res.57:131-146.
20. Borges. LDA. S, Dermargoes A, Da Silva Junior EPte al (2015). Melatonin decreases muscular oxidative stress & inflammation induced by strenuous exercise & stimulates growth factor synthesis J. Pineal Res. 58:166-172.
21. Karimfar MH, Rostami, Haghanik et al (2015). Melatonin alleviates bleomeynin induced pulmonary fibrosis in mice J. Biol Regus Homeost Agents29:327-334
22. Kreuter M. Bonella F, Marlies et at (2015). Pharmacological Treatment of Idiopathic pulmonary fibrosis : current Approaches, Unsolved Issue & Future perspectives. Bio Med Research International Article Id 329481, 10 Pages.

23. Wollin L, Wex E pautich et al (2015) Mode of action of ninetedanib in the treatment of idiopathic pulmonary fibrosis. ERJ Express (inpress).
24. Southern, L.R. et al. Association between maturation and ageing & pulmonary responses in animals models of lung injury: a systematic review Anesthesiology 123, 389-408(2015).
25. Hu W; MaZ., Jiang S., Fan C., Deng C., Yan X., LvJ. Reiter R.J. Yang Y Melatonin: The drawing of a treatment for fibrosis J. Pineal Res. 2016; 60:121-131 doi :10.1111/Jpi.12302.
26. Shao, L. Meng, D, Yang, F, Song, H. & Tang, D. Irisin-mediated protective effect on LPS-induced acute lung injury via suppressing inflammation & apoptosis of alveolar epithelial cells Biochem. Biophys, Res. Commun. 487, 194-200(2017)
27. Bewley, M.A. et al. Impaired mitochondrial responses in chronic obstructive pulmonary disease macrophages. Am. T. Respir. Crit. Care Med. 196, 845-855(2017)
28. Chen, K. et al Irisin protects mitochondrial function during pulmonary ischemia/reperfusion injury. Sci. Transi Med. 9, eaa06298(2017)
29. Sharan K., Lewis K., Furukawa T, Yadav V.K. regulation of bone mass through pineal derived melatonin-MT2 recepter pathway. J. Pineal Res. 2017; 63:1-12 doi;10.1111/jpi.12423.
30. Matinez F.J. Collard H.R. Pardo A; Raghu G. Richeldis, Selman M. Swigris J.J. Taniquchi H. Well, A.U. Idiopathic pulmonary fibrosis Nat. Rev. Dis. Prim 2017; 3:17074. doi; 10.1038/nrdp.2017-74.
31. Zhang Y, L. Liux. Baix., Lin Y, Liz, Fuj, Lim. Zhoa T, yang H., Xu R., et al. Melatonin percent endothelial cell pyroptosis via regulation of long noneoding RNA MEG3/mir-223/NLRP3 axis. J. Pinceal Res. 2017; 64 doi: 10.1111/jpi.12449
32. YangF,YnagL.Li Y.,YanG.,FengC.LiuT.,GangR.YuanY.,Wang N. Idiiatullina E. et al. Melatonin protects bone marrow mesenchymalstem cell against iron overload-included aberrant differentiation & senescence J. Pineal Res. 2017; 63 doi:10.1111/jpi. 12422 (PubMed)
33. Lo Sardo F., Muti P., Blandino G; strano S. Melatonin& Hippo Pathway : Is there existing cross-Talk ? Int. J. Mol. Sci. 2017;18 doi: 10.3390/ijms 18091913 (PubMed)
34. Das N, Mandala A. Naaz s. Giri S, Jain M, Bandyopadhyay D.Rieiter R.J. Roy S.S. Melatonin protects against lipoid induced mitochondrial dysfunction in hepatocytes & inhibits stellate cell activation during hepatic fibrosis in mice. J. Pineal res. 2017; 62 doi: 10.1111/Jpi.1240.
35. Kolb M. Bonella F. Wollin L. Therapeutic targets in idiopathic pulmonary fibrosis. Resp. Med. 2017; 131:49-57 doi : 10.1016/J.rmed. 2017.07.062.(PubMed)

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Home Sci. : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 582-585

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

गृहत्याज्य प्रबन्धन

*डॉ. संगीता उपाध्याय**

गृहत्याज्य प्रबन्धन में जीवन के गुणवत्ता होम वेस्ट मैनेजमेंट ऑफ क्वालिटी लाइफ में सुधार की प्रक्रिया के गृहत्याज्य प्रबन्धन का अत्यधिक महत्व है, वैज्ञानिक गृहत्याज्य प्रबन्धन पारिवारिक तथा सामुदायिक जीवन में गुणवत्ता के स्तर को सुधारने के निमित्त अत्यन्त आवश्यक है। घरों में उत्पन्न गृहत्याज्य पर्यावरण में सुधार हेतु महत्वपूर्ण विषय में हस्तक्षेप के रूप में प्रकट हुआ है। निकास की नालियों में प्लास्टिक त्याज्य अवरोध उत्पन्न करते हैं। फलस्वरूप मल सम्बन्धी पदार्थ बाहर प्रवाहित होकर मच्छरों, मक्खियों तथा विभिन्न रोगों के विषाणुओं की वृद्धि के कारक होते हैं। प्लास्टिक तथा त्याज्य पालतू या आवारा जानवरों या दुधारू जानवरों के लिए जीवन संकट उत्पन्न करते हैं जैसे गाय, भैंस आदि पशुओं में या अन्य जानवरों में रोगों का विस्तार से वृद्धि करते हैं, तथा विस्तार करने वाले अनेक गृहत्याज्य जनित विषाणु भोजन, स्वशन अथवा जीवन स्वास्थ्य में अथवा भेदन द्वार में नागरिकों में प्रविष्ट होकर संक्रामक रोग के प्रसार एवं स्वास्थ्य की समस्या बन चुके हैं। जनजीवन स्वास्थ्य तथा जीवन की गुणवत्ता को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों का कारक गृहत्याज्य का ही अविचारित प्रबन्ध तथा बिना प्रभाव पर विचार किये विसर्जन का फल है।

नगरीय जीवन में गृहत्याज्य के उचित प्रबन्धन का महत्वपूर्ण जनसंख्या के घनत्व में वृद्धि तथा नवीन विसर्जन का प्रतिफल है। विविध नगरों की स्थिति, रचना, सामाजिक, सांस्कृतिक परिवेष आदि का प्रभाव उसके गृहत्याज्य प्रबन्धन की समस्या एवं समाधान पर पड़ता है। फलस्वरूप विभिन्न नगरों के गृहत्याज्य प्रबन्धन की प्रवृत्ति का अलग महत्व है। वाराणसी देश के पुरातन नगरों में से एक है। यहाँ पर विविध सांस्कृतिक समूहों, भाषा समूहों, विभिन्न धर्मों के लोग निवास करते हैं। वाराणसी संकरी गलियों एवं साड़ी के वैश्विक व्यवसाय के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ पर पतित पावनी गंगा में वरुणा नदी, शिव भोलेनाथ की काशी, काशी विश्वनाथ के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ पर प्रसिद्ध विश्वविद्यालय बी.एच.यू., काशी विद्यापीठ आदि। यहाँ पर धर्मस्थल भी बहुतायत हैं, जैसे संकट मोचन, दुर्गाकुण्ड इत्यादि एवं तुलसी मंदिर, भारत माता मन्दिर, कबीर मठ आदि मन्दिर भी हैं। वाराणसी महानगर की गृहत्याज्य विसर्जन की समस्या अलग प्रकार की है। विविधता के परिप्रेक्ष्य में इसका अध्ययन सामयिक महत्वपूर्ण एवं आवश्यक है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मौर्य साम्राज्य उचित सफाई प्रबन्धन के माध्यम से नगरों को साफ रखने का विवरण दिया गया है। इसके अनुसार प्रत्येक 10 परिवारों के बीच सार्वजनिक रूप में प्रयोग किया जाने वाला कुआँ था, जिसका प्रयोग सभी करते थे। कूड़े और त्याज्य वस्तुओं का सड़क एवं रास्तों पर फेंका जाना वर्जित था। सड़क के किनारे लगे जल जमाव को निकालना अगल–बगल के वासियों की जिम्मेदारी थी। ऐसा न करने पर उन्हें दण्डित किया जाता था।

वाराणसी शहर–शहर वाराणसी, गंगा नदी के तट पर थार के उत्तर प्रदेश राज्य में बसा शहर है, इसे हिन्दू धर्म में सर्वाधिक पवित्र शहर माना जाता है। और इसे विमुक्त क्षेत्र कहा जाता है। (Visvanathan and Trankler, 2006) इसके अलावा बौद्ध एवं जैन धर्म में भी इसे पवित्र माना जाता है। यह संसार के प्राचीनतम बसे शहरों में से एक और भारत का सर्वाधिक प्राचीनतम बसा शहर है।

प्रसिद्ध अमेरिकी लेखक मार्कट्वेन (1999) लिखते हैं, बनारस इतिहास से भी पुरातन है, परंपराओं से भी पुराना है, किंवदंतियाँ (लेजीजेन्ड्स) से भी प्राचीन है और इन सबको एकत्र कर दें तो उस संगह से भी दो गुना प्राचीन है।

* *प्रवक्ता, गृह विज्ञान विभाग*

वाराणसी का उद्‌गम संभवतः यहाँ की दो स्थानीय नदियाँ वरूणा नदी एवं अस्सी नदी के नाम से मिलकर बना है। यह नदियाँ गंगा नदी में क्रमशः उत्तर एवं दक्षिण से आकर मिलती हैं (Desai, 2003)। इस शहर के नाम का एक अन्य विचार वरूणा नदी के नाम से भी आता है। क्योंकि प्राचीन ग्रन्थों में इस नदी को वरूणासि कहा गया है (Gupta, 2003)। और हो सकता है कि इसी कारण इसका नाम वाराणसी पड़ गया है।

ऋग्वेद में शहर को काशी या काशी के नाम से बुलाया गया है। इसे अर्थ के रूप में प्रकाशित शब्द से लिया गया है। जिसका अभिप्राय शहर के ऐतिहासिक स्तर से है क्योंकि ये शहर सदा से ज्ञान शिक्षा एवं संस्कृति का केन्द्र रहा है। काशी शब्द सबसे पहले अथर्ववेद की पैप्पलाद शाखा से आया है और इसके बाद शतपथ में भी उल्लेख है। लेकिन यह संभव है कि नगर का नाम जनपद में पुराना हो। स्कंद पुराण के काशी खण्ड में नगर की महिमा 1500 श्लोकों में कही गयी है (Sahai, 2010)।

शहरों में कूड़े की ढेर सड़कों पर ही नहीं वरन् गलियों में भी इधर–उधर बिखरे रहते हैं। बड़े नगरों में तो एक ओर मोहल्लों के भव्य और आलीशान मकान अवस्थित हैं तो दूसरी ओर कूड़ों के अम्बार लगे होते हैं जो सड़ते हैं दुर्गन्ध फैलाते हैं और कुत्ते उन ढेरों में से कुछ उच्छिष्ट पदार्थ प्राप्त करने की चेष्टा में उन्हें बिखरे देते हैं। सूअर भी इन ढेरों पर अपना अधिकार समझते हैं। इस प्रकार के दयनीय स्थिति से सभी अवगत हैं और वाराणसी शहर भी इससे अछूता कैसे रह सकता है (Dasai et al., 1998)।

कूड़े का गृह में संग्रह करना–प्रत्येक घर की गृहिणी को चाहिए कि सूखे व गीले कूड़े के लिए पृथक–पृथक कूड़े पात्रों की व्यवस्था करके उन्हें सुविधाजनक स्थानों पर रखे तथा परिवार के सदस्यों की आदत हो कि वे कूड़ा पात्रों में ही कूड़ा डालें और बच्चों में प्रारम्भ से ही यह आदत डालनी चाहिए, जिससे उनका रहन–सहन सुव्यवस्थित व स्वच्छ हो सके (Keip, 2003)।

मनुष्य के प्राथमिक आवश्यकताओं में स्वच्छता सम्बन्धी आवश्यकता का महत्वपूर्ण स्थान है तथा इसके अभाव में स्वस्थ रहना संभव नहीं है (Amramy, 1968)।

व्यक्ति के दिनचर्या में विविध प्रकार के आवश्यकताओं की पूर्ति के अनन्तर अनेक निरुपयोगी पदार्थ उत्पन्न होते हैं अथवा गृहत्याज्य पदार्थ छूटते हैं। इन पदार्थों को समय से हटाना आवश्यक है। इन्हें हटाने की प्रक्रिया में विलम्ब होने से उनके सड़ने की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि व्यक्ति का जीना दुर्लभ होने लगता है (Tracy, 2005)।

गृह–त्याज्य पदार्थों के सड़ने से वातावरण में दुर्गन्ध फैलने लगती है तथा चारों ओर राग वाहक तत्व जैसे–मक्खी, मच्छर, चूहे आदि पनपने लगते हैं। विविध प्रकार के रोग जैसे–पेचिश, डायरिया, नेत्र रोग, चर्मरोग आदि का प्रादुर्भाव एवं प्रसार होने लगता है। वायु एवं जल का प्रदूषण उत्पन्न होता है। आवास, क्षेत्र नगर, आदि में अव्यवस्था एवं गन्दगी का साम्राज्य होने लगता है (Bergner, 1965)।

गृह–त्याज्य जिसे घर में एकत्रित करके कूड़ा संकलन के निर्धारित स्थान पर फेंकने का प्रयास किया जाता है। इसके अन्तर्गत राख, कोयला, धूल, लकड़ी व पॉलिथीन, लोहे के टुकड़े, रद्दी कागज कपड़े के कतरन या चिथड़े आदि आते हैं। इसके अतिरिक्त रसोई का व्यर्थ, सूखी–सड़ी पत्तियाँ, सब्जियाँ, सड़े–गले फल, रसोई का कूड़ा आदि भी सम्मिलित हैं। क्षेत्र के कूड़े के अन्तर्गत जानवरों के मल, मरे हुए पशु–पक्षी व जानवर आदि आते हैं। औद्योगिक संस्थानों से भी कूड़े का अम्बार निकलता है (Huptal et al., 1998)।

कूड़े–करकट का संग्रह एवं निस्तारण स्वयं में एक समस्या है। नगरीकरण ने जहाँ नगरों को विकसित एवं आधुनिकीकृत किया है वहीं पर नगर को स्वच्छ बनाये रखने के लिए विविध प्रकार की समस्याओं का सृजन भी किया है। अगर घर, क्षेत्र एवं नगर को स्वच्छ रखना है तथा कूड़े–करकट से मुक्त रखना है, तो यह आवश्यक है कि प्रत्येक घर में एक गृह–त्याज्य पात्र हो, जिसमें दिन में एक या दो बार घर से हटाये गये कूड़े–कचड़े को रखने की व्यवस्था हो। प्रत्येक मुहल्ले, क्षेत्र, प्रत्येक चौराहे पर बड़े–बड़े कचड़े के पात्र हों, जिनसे नित्य कूड़ा हटाने की व्यवस्था हो। इस प्रकार के पात्र अगर ढक्कनदार हैं तो उत्तम है। कचरे को निस्तारण के लिए ट्रैक्टर, ट्रक आदि में भरकर निस्तारण स्थल तक पहुंचाने की उत्तम व्यवस्था हो (Hazra and Goel, 2009)।

कहीं–कहीं पर कूड़े का पात्र न रखकर ढक्कन युक्त गाड़ियाँ ही रख देते हैं जो भर जाने पर वहाँ से हटा दी जाती हैं और उनके स्थान पर दूसरी खाली गाड़ी रख देते हैं। यह व्यवस्था एक उत्तम व्यवस्था का उदाहरण है (Beigh et al., 2008)।

संकलित कूड़े के निस्तारण प्रक्रिया के अन्तर्गत भष्मीकरण (incineration), संपादन (Compost), रोपन (Dumping), एवं समुद्रार्पण (नदी में प्रवाहित करना) आदि को अपनाया जाता है (Berglind, 2006)।

भष्मीकरण में ईंट या लोहे की भट्टियों में कूड़े को डालकर जला दिया जाता है। अवशेष का उपयोग सड़कों के निर्माण में किया जाता है। संखादन के अन्तर्गत कूड़े को सड़ाकर खाद के लिए उपयोग कर लिया जाता है। इस कूड़े से प्लास्टिक, पोलीथिन आदि निकाल लेनी चाहिए अन्यथा इससे भूमि की उर्वराशक्ति प्रभावित हो सकती है। संखादन प्रक्रिया के अन्तर्गत शहर के पुराने तालाबों, गड्ढों या गहरे भूमि में कूड़ा डालकर भूमि को समतल बनाने के कार्य में लाते हैं (Stermer and Barticlings, 1997)। यह विधि अस्वास्थ्यकारक होती है तथा इससे दुर्गन्ध पैदा होने से आस पास का वातावरण एवं भूमिस्थ जल दूषित हो जाता है (Rugg, 1997)। समुद्रार्पण प्रक्रिया के अन्तर्गत जो नगर समुद्र के किनारे बसे हैं उनका कूड़ा समुद्र में फेंका जाता है (Lagerkvist, 2006)।

रसोई घर में गीली व्यर्थ वस्तुओं के लिए पृथक पात्र रखने की सुविधा होनी चाहिए। इसके कूड़े को दोनों समय कूड़े के बड़े डोल में डालना चाहिए जिससे उसका निस्तारण शीघ्र हो जाय। कूड़े के पात्रों को प्रतिदिन खाली करके साफ करना आवश्यक होता है। सड़कों के बड़े कूड़ा पात्रों के लिए ढक्कनों की भी व्यवस्था होनी चाहिए। इन कूड़े दानों का कूड़ा नगर पालिका के सफाई कर्मी शहर के बाहर निर्धारित स्थान पर पहुंचाने की व्यवस्था करते हैं (Schutt et al., 2001)।

गृह त्याज्य का संकलन एवं निस्तारण एक कठिन प्रक्रिया है। इसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्वास्थ्य से है। अगर नगर को स्वच्छ रखना है तो कूड़े के संकलन एवं निस्तारण की समुचित व्यवस्था करनी होगी। अन्यथा उसके अभाव में अस्वास्थ्यकर स्थिति के उत्पन्न होने की सम्भावना बन सकती है (Houtven and Morris, 1999)।

कूड़े का संवहन–नगरों में स्वच्छता की देखभाल व व्यवस्था, नगरपालिका, नगर निगम आदि के सैनिटरी इन्स्पेक्टर करते हैं। घरों से तो महतरों द्वारा कूड़ा टोकरियों से भरकर बाहर ले जाया जाता है और गली व मुहल्ले के बड़े कूड़ादानों में डाला जाता है। फिर सफाई कर्मी द्वारा वहाँ से कूड़ा को नगरपालिकाओं, नगर निगम की गाड़ियों में भरकर, नगर के बाहर निस्तारण हेतु बाहर भेजा जाता है (Nelson, 2001)। किन्तु नगर महापालिका और सफाई कर्मचारियों की व्यवस्था समुचित एवं अनुत्तरदायित्वपूर्ण होने के कारण भारत के अधिकांष नगरों में कूड़ा संवहन की व्यवस्था उचित ढंग से संचालित नहीं हो पा रहा है (KMC, 2008)।

कूड़े को नष्ट करना–कूड़े को विनाश करने की कई विधि अपनाई जाती है। गड्ढे आदि को कूड़े से भरना एक विविध होता है। बहुधा नगर के बाहर के गड्ढों को कूड़े से पाटा जाता है (Rahi, 2007)।

कूड़े को नष्ट करने की दूसरी प्रमुख विधि नगर के बाहर कूड़े को एकत्रित करके वहाँ बैक्ट्रिया क्रिया द्वारा कूड़े से खाद बनाया जाता है। इस खाद का प्रयोग खेतों में किया जाता है। निस्तारण की एक अन्य प्रमुख विधि कूड़े को जलाना है। कूड़े को जलाने के लिए कई प्रकार की भट्ठियों का प्रयोग किया जाता है (TERI, 1998)।

गृह का कूड़ा–गृह के सूखे एवं गीले कूड़े को संग्रह करने के लिए भिन्न–भिन्न पात्र होने चाहिए। गृह में पात्र ऐसे स्थानों पर रखना चाहिए जहाँ परिवार के सदस्यों को उनमें कूड़ा डालने में सुविधा रहे। परिवार के सभी सदस्यों को इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि वे फटे कागज, खाद्य पदार्थ के टुकड़े व अन्य निरर्थक वस्तुओं को इधर–उधर न फेंके रन उनको कूड़ेदानों में ही डालें। इस विषय में बालकों को प्रारम्भ से ही शिक्षा मिलनी चाहिए (Asnani, 2004)। कूड़े दानों को ढंकने की समुचित व्यवस्था आवश्यक है जिससे मक्खियां उस पर न बैठें। समसामयिक समय में एक विशेष प्रकार के कूड़ेदान बनाये जा रहे हैं जिनका ढक्कन खड़े–खड़े पैर से एक लोहे के टुकड़े को दबाने से खुल जाता है। इससे बहुत सुविधा रहती है। कूड़ेदानों से प्रतिदिन कूड़ा हटाया जाना चाहिए और साथ ही यह भी आवश्यक है कि कूड़ेदानों को अन्दर व बाहर से समय–समय पर धोकर साफ किया जाय, नहीं तो वे कूड़ेदान स्वयं ही गन्दगी की समस्या बन जायेंगे। वे जहाँ भी रखे जायेंगे गन्दे लगेंगे और उन पर मक्खियाँ भिनभिनायेंगी (Beigh, et al., 2008)।

सन्दर्भ सूची

1. Beigh, P., Lebersorger's and Salhofar's (2008) : Modelling Municipal Social Waste Generation, A Review Waste Management, Vol. 28, N 1, pp. 200-214.
2. Berglind, C (2006) : The Assessment of Households Recycling Cost : The Role of Personal Motives Ecological Economics, Vol. 56, N. 4, pp. 560-566.
3. Hazra, T. and Goel's (2009) : Solid Wastage Management in Kolkata, India Practices and Challenges Published in Waste Management 29 (2009), pp. 470-478.
4. Houtven, G.L.V. and Morris, GE. (1999) Household BehaviourUnder Atternative Pay as You Throw Systems for Solid Waste Disposal, Land Economics, Vol. 75, N 4, pp. 515-537.
5. Kolkata Environment Improvement Project (KE IP) Master Plan on Solid Was Management.
6. Lagerk visit, A (2006) Academic research on solid waste in Swedon 1994-2003 Waste Management, Vol., 26, pp. 277-283.
7. Tracy, p. (2005) Guest; at God's weeding : Celebrating Kartik Among the woman of benares, S Sunny Press, pp. 501-502.

* * * * *

(U.G.C. Approved Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN No. - 2319–5908

Agricultur : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXV, Sept.-Dec. 2019, Page : 590-592

General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 6.756

महराजगंज जनपद में शस्य विविधता

*डॉ. मधुलिका श्रीवास्तव**

शस्य विविधता : शस्य स्वरूप के क्षेत्रीय विश्लेषण में शस्य विविधता महत्वपर्ण स्थान रखता है। विभिन्न विद्वानों ने क्षेत्र एवं समय के सन्दर्भ में शस्य स्वरूप का निर्धारण भौगोलिक कारकों के सन्दर्भ में किया है। वास्तव में प्राकृतिक दृष्टि से विषम क्षेत्र वाले भू–भाग में क्षेत्रीय वितरण पर प्राकृतिक कारकों का अधिक प्रभाव पड़ता है। इन परिस्थितियों में उस भू–भाग के कुछ विशेष क्षेत्रों में विशेष शस्यों का संकेन्द्रण हो जाता है जबकि क्षेत्र के अन्य भागों में जहाँ प्राकृतिक कारकों के साथ–साथ मानवीय, आर्थिक एवं तकनीकी कारकों का भी प्रभाव पड़ता है वहाँ कुल बोयी गयी भूमि पर विभिन्न प्रकार के शस्यों का उत्पादन होता है। भारत में शस्य संकेन्द्रण एवं विविधता का सुव्यवस्थित विश्लेषण सर्वप्रथम भाटिया (1965)[1] ने किया है। इन्हीं के आधार पर विभिन्न भूगोलविदों ने शस्य विविधता का अध्ययन प्रस्तुत किया है। शस्य विविधता से शस्यों में संकेन्द्रण की स्थिति स्पष्ट होती है। शस्य विविधता का आधिक्य उन्हीं क्षेत्रों में पाया जाता है जहाँ कृषक छोटे–छोटे क्षेत्र में भी अधिक से अधिक संख्या में अनेक शस्यों का उत्पादन करते हैं। शस्य विविधता की संकल्पना किसी क्षेत्र विशेष में एक वर्ष में उत्पन्न को जाने वाली शस्यों की संख्या के सम्बन्ध को सीमावर्ती क्षेत्रों की शस्यों की संख्या के परिप्रेक्ष्य में किया जाता है।

विभिन्न कृषि परिस्थितियों का स्पष्ट प्रभाव शस्य विविधता पर पड़ता है। जीवन निर्वाहक कृषि व्यवस्था में कृषक अपनी आवश्यकता की अधिकतर शस्यों का उत्पादन अपने खेत में करना चाहता है। फसलों की संख्या इस तथ्य पर निर्भर करती है कि बोयी गयी शस्यों के उत्पादन पर कोई प्राकृतिक अथवा मानवीय व्यवधान या आपदायें प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से कितना प्रभाव डालती है। जिस क्षेत्र में बाढ़ या सूखा के कारण समस्त बोई गयी फसलों में से कुछ के नष्ट होने की सम्भावना रहती है। वहाँ पर अनेक कृषक शस्यों का उत्पादन करते हैं। सामान्यतया जिन क्षेत्रों में उत्पन्न होने वाली शस्यों की संख्या अधिक होगी वहाँ पर शस्य विविधता भी अधिक होगी।

भारत में अनेक भूगोलवेत्ताओं ने शस्य विविधता सूचकांक की गणना सूत्रों के आधार पर की है जिसके आधार पर अपने क्षेत्रों के शस्य विविधता का अध्ययन प्रस्तुत किया है। पाण्डेय (1991)[2] ने भाटिया के सूत्र में संशोधन करते हुए सरयूपार मैदान में विकासखण्ड पर विविधता सूचकांक ज्ञात कर सम्पूर्ण क्षेत्र को पाँच शस्य विविधता क्षेत्रों में विभक्त किया है। अल्प विविधता सूचकांक वाले विकासखण्डों में उच्च तथा अधिक विविधता सूचकांक वाले विकासखण्डों में शस्य विविधता निम्न पायी जाती है। उर्वर मृदा सिंचाई के साधन की उपलब्धता तथा अधिक जनसंख्या वाले भू–भाग पर शस्य विविधता उच्च है। जिन क्षेत्रों में मुद्रादायिनी फसल के रूप में गन्ना का उत्पादन किया जाता है तथा धान को फसल प्रधान फसल के रूप में भी बोयी जाती है, वहाँ पर अन्य फसलों की बुआई कम होती है। ऐसे क्षेत्रों में निम्न शस्य विविधता पायी जाती है। वर्तमान समय में अधिक लाभ देने वाली कुछ ही फसलों की खेती कृषक करना चाहते हैं। अतः अब शस्य विविधता कम पाये जाने की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होने लगी है।

वास्तव में शस्य विविधता परिवर्तनशील है। जीवन निर्वाहक कृषि व्यवस्था में धीरे–धीरे परिवर्तन होकर व्यापारिक कृषि के कारण अब कम लाभ वाली फसलों को उत्पादन नहीं किया जाता है। परिणामस्वरूप शस्य विविधता में कमी आ रही है।

* *सहायक अध्यापिका, पूर्व माध्यमिक विद्यालय, बक्शा, जौनपुर*

शस्य विविधता ज्ञात करने हेतु शस्यों के प्रतिशत की गणना करते समय अनेक समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं। शस्य विविधता की गणना उन क्षेत्रों में सुगमतापूर्वक को जा सकती हैं, जहां वर्ष में एक खेत में एक ही फसल उत्पन्न की जाती हैं अथवा जहां पर एक खेत में खरीफ में कोई फसल, रबी में दूसरी फसल एवं जायद में तीसरी फसल का उत्पादन होता हैं। इस प्रकार एकल उत्पादन वाली शस्यों के प्रतिशत की गणना आसान होती है, परन्तु ऐसी स्थिति सर्वत्र नहीं पायी जाती है। अधिकतर कृषक एक साथ एक ही खेत में कई फसलों का उत्पादन करते हैं जिसे मिश्रित फसलें या सह फसली कृषि कहते हैं। इस प्रकार एक साथ अथवा अलग–अलग समयों में एक ही क्षेत्र में कई फसलों की कृषि करने से उनके प्रतिशत गणना में कठिनाई होती है, क्योंकि बोयी गयी समस्त फसलें समान महत्व की नहीं होती हैं। उनमें कुछ शस्य मुख्य तथा कुछ गौण होती हैं। अतः मिश्रित फसल व्यवस्था में उनके प्रतिशत भाग का निर्धारण शस्यों के महत्व के अनुपात में करना चाहिए। यथासम्भव बोयी गयी फसलों के महत्व, बोने से पैदा होने तक की अवधि आदि के आधार पर मिश्रित शस्यों में प्रत्येक शस्यों का समानुपातिक भाग निर्धारित कर उनके प्रतिशत को गणना करने से बोई गयी कुल शस्यों के प्रतिशत का योग ज्ञात किया जा सकता है। पाण्डेय (1991) 2 के अनुसार शस्य विविधता के आधार पर किसी भी क्षेत्र में शस्य संकेन्द्रण के स्वरूप को समझा जा सकता है, जिसके आधार पर कृषि नियोजन की रूपरेखा प्रस्तुत करने में सहायता मिलती है। शस्य विविधता स्तर ज्ञात करने के लिए इन चरों का विकास खण्डानुसार चरों के मूल्यों का औसत एवं प्रामाणिक विचलन ज्ञात करके निम्न सूत्र द्वारा प्रत्येक चर का Z Score ज्ञात किया गया है।

$$Z\ Score = X - \underline{X}$$

X = विकासखण्ड अनुसार चरों का मूल्य

= चरों का औसत मूल्य

प्राप्त Z Score 0 धनात्मक एवं ऋणात्मक मूल्यों तक फैले है इसके अन्तर्गत 0 से धनात्मक मूल्य जितना ही अधिक होता है वह उतना ही अधिक विकसित स्तर को व्यक्त करता है एवं 0 से जितना ही ऋणात्मक मूल्य होगा वह उसी अनुपात से अविकसित स्तर को व्यक्त करेगा। विकासखण्डों के अनुसार सभी चरों के मूल्यों को जोड़कर शस्य विविधता स्तर ज्ञात करने के लिए समन्वित मूल्य ज्ञात किया गया है जिसका परास 0–1.51 धनात्मक एवं 0–1.92 ऋणात्मक मूल्य है। क्षेत्र की शस्य विविधता का श्रेणीगत विवरण तालिका संख्या 1.1 में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका संख्या 1.1

महराजगंज जनपद : शस्य विविधता

श्रेणीगत वितरण	विविधता सूचकांक	विकासखण्डों की संख्या	विकास खण्डों की :
अति उच्च		1	8.33
उच्च	0.75–1.50	2	16.67
मध्यम उच्च	0–0.75	4	33.33
मध्यम	0– 0.75	1	8.33
निम्न		4	33.33

स्रोत – सांख्यिकीय पत्रिका, महराजगंज, 2007–08

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि यहां अति उच्च श्रेणी के शस्य विविधता के अन्तर्गत मात्र एक विकासखण्ड बृजमनगंज है जिसमें धान, गेहूं, तलहन एवं आलू की सबसे अधिक फसलें तथा .गन्ना एवं दलहन की कम फसलें उगायी जाती है। जिसकी स्थिती पश्चिमी भाग में है।

उच्च श्रेणी की शस्य विविधता के अन्तर्गत दो विकासखण्ड निचलौल एवं धानी सम्मिलित है। इन क्षेत्रों में धान, गेहूं, आलू एवं तिलहन की अधिक तथा दलहन, गन्ना की कम फसलें उगायी जाती है।

मध्यम–उच्च श्रेणी को शस्य विविधता के अन्तर्गत चार विकासखण्ड मिठौरा, पनियरा, लक्ष्मीपुर एवं नौतनवां सम्मिलित है जिसकी स्थिति मध्यवर्ती, दक्षिणी एवं उत्तरी भाग में है। इन क्षेत्रों में धान, गेहूं, दलहन, आलू की प्रमुख फसलें एवं तिलहन को कम फसलें उगायी जाती है जिसके कारण इन क्षेत्रों में शस्य विविधता औसत रूप में पायी जाती है।

मध्यम श्रेणी की शस्य विविधता के अन्तर्गत मात्र एक विकासखण्ड महराजगंज में धान, गेंहू, आलू, की प्रमुख फसलें गन्ना, दलहन एवं तिलहन की कम फसलें उगायी जाती है। जिसकी स्थिति मध्यवर्ती भाग में है।

निम्न श्रेणी को शस्य विविधता दो अन्तर्गत चार विकासखण्ड फरेन्दा, सिसवा, घुघुली एवं परतावल में गेहूं, दलहन एवं गन्ना की प्रमुख फसलें तथा धान, तिलहन एवं आलू की कम फसलें उगायी जाती है जिसकी स्थिति दक्षिणी एवं पूर्वी भाग में है।

शस्य गहनता : शस्य गहनता से आशय सामान्यतया–किसी क्षेत्र विशेष के उस कृषित क्षेत्र से है, जिस पर वर्ष के भीतर एक अधिक कितनी शस्यों का उत्पादन किया जाता है। शुद्ध कृषि भूमि में द्विशस्यीय एवं बहुशस्यीय क्षेत्र के योग को कुल शस्यान्तर्गत क्षेत्र का अधिकतम होना शस्य गहनता की मात्र को प्रदर्शित करता है। शस्य गहनता वह सामयिक बिन्दु है, जहां भूमि, श्रम, पूँजी विनियोग तथा प्रबन्ध तन्त्र का सम्मिश्रण सर्वाधिक लाभप्रद सिद्ध होता है। विकासशील देशों को कृषि सम्बन्धी दशाएं विकसित देशों की अपेक्षा भिन्न हैं। अधिकतर विकासशील देशों के कृषि का वर्तमान स्वरूप जीवन निर्वाहक है। यहां कृषि का व्यावसायिक स्वरूप अभी पूर्ण विकसित नहीं हो पाया है। कुछ सीमित क्षेत्रों में ही कृषि विकसित हो सकी है। वास्तव में शस्य गहनता सिंचाई के साधन, उन्नतिशील शस्य प्रजातियों, उर्वरकों एवं कृषि यन्त्रों की उपलब्धता पर निर्भर करती है। बड़े खेतों की अपेक्षा छोटे आकार के खेतों में शस्य गहनता की मात्रा अधिक होती है क्योंकि इनमें कृषक वर्ग पारिवारिक श्रम तथा अन्य लागतों का पूर्णरूपेण प्रयोग करते हैं।

संदर्भ सूची

1. Bhatia, S.S.(1965) : 'Pattern of Crop Concentration and Diversification in India' Economic Geography.Vol XXXX1.
2. Panday, J.N.(1991) : Resource use and Conservation in Saryupar Plain in U.P., Gorakhpur.

* * * * *